विज्ञान

प्रयागकी विज्ञान-परिषदका मुखपत्र

भाग ६२, संख्या १

तुला, सम्वत् २००२, अक्टूबर १९४५

प्रकाशक

विज्ञान-परिषद, इलाहाबाद।

प्रयागकी

विज्ञान-परिषद्के मुख्य नियम

परिषद्का उद्देश्य

१—विज्ञान-परिषद्की स्थापना इस उद्देश्यसे हुई है कि भारतीय भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्यका प्रचार हो तथा विज्ञानके अध्ययनको और साधारणतः वैज्ञानिक खोजके काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद्का संगठन

२—परिषद्में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमोंके अनुसार सभ्यगण सभ्योंमेंसे ही एक सभापति, दो उपसभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमंत्री, दो मंत्री, एक संपादक और एक अन्तरंग सभा निर्वाचित करेंगे, जिनके द्वारा परिषद् की कार्य्यवाही होगी।

पदाधिकारियोंका निर्वाचन

१८—परिषद्के सभी पदाधिकारी प्रतिवर्ष चुने जायंगे। उनका निर्वाचन परिशिष्टमें दिये हुये तीसरे नकशेके अनुसार सभ्योंकी रायसे होगा।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्यको ५) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश-शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ ७०) रु० की रकम दे देनेसे कोई भी सभ्य सदाके लिये वार्षिक चन्देसे मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्योंको उनके चुनावके पश्चात् प्रकाशित परिषद्की सब पुस्तकों, पत्रों, विवरणों इत्यादिके बिना मूल्य पानेका—यदि परिषद्के साधारण धनातिरिक्त किसी विशेष धनसे उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व-प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्यमें मिलेंगी।

२७—परिषद्के सम्पूर्ण स्वत्वके अधिकारी सभ्यवृन्द समझे जायंगे।

परिषद्का मुखपत्र

३३—परिषद् एक मासिक पत्र प्रकाशित करेगा जिसमें सभी वैज्ञानिक विषयोंपर लेख प्रकाशित हुआ करेंगे।

३४—जिन लेखोंको परिषद् प्रकाशित करेगी उनमें जो लेख विशेष महत्व योग्यताके समझे जायंगे उनके लेखकों को अपने अपने लेख की बीस प्रतियां बिना मूल्य पानेका अधिकार होगा।

विज्ञान

विज्ञान-परिषद्, प्रयागका मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

****

भाग ६२	तुला, सम्वत् २००२ अक्टूबर १९४५	संख्या १

****

राडर

लेखक—श्री कृष्णजी, एम० एस-सी०, लेक्चरर, भौतिक विज्ञान, प्रयाग विश्वविद्यालय

राडर इस महायुद्ध की कदाचित् वह वैज्ञानिक खोज है जिसने जर्मनोंको विजयी होनेसे रोक दिया। यह रेडियोकी आँख अँधेरेमें, कोहरेमें, बादल और पानीमें दूरकी चीज़ोंको देख कर उनकी ठीक जगह बता सकती है। अँधेरेमें सतह पर भागती हुई शत्रुकी पनडुब्बी नावों की ठीक जगहका पता लगाकर अपने बमबारोंको बता देना या बादलोंके बीचसे भागते हुये शत्रुके बमबारोंकी जगहका पता लगाकर अपने लड़ाकू जहाज़ोंको उनके पीछे भेज देना तो राडरका दैनिक काम था। इसी राडर ने जर्मनोंके सारे गुप्त हथियारोंका सामना किया; जर्मन हवाई सेना (Luftwaffe) और यू बोट (U-Boat) सेना का नाश करके ब्रिटिश द्वीप समूहकी रक्षाकी। राडर अर्थात् रेडियोसे दूरी और दिशा निकालने वाले यन्त्रका सिद्धान्त तो बहुत पुराना है परन्तु इसका प्रयोग गत दस वर्ष में अधिक हुआ है।

राडर का इतिहास पढ़ने से यह ज्ञात होता है कि केवल वैज्ञानिक खोजसे भी ऐसी बातें निकल सकती हैं जिनको तुरन्त प्रयोगमें लाया जा सकता है। सन् १९१४ के महायुद्धके बाद ब्रिटेनके रेडियो अनुसन्धान बोर्ड (Radio Research Board) ने यह पता लगाने की कोशिश शुरू की कि रेडियो-लहर (Waves) दुनिया के चारों तरफ कैसे पहुँचती हैं। सन्देह यह था कि वायुमंडल के ऊपरी भाग में ऐसे विद्युन्मय स्तर (Electrically Charged layers) हैं जहाँ से रेडियो लहरें लौट आती हैं। सन् १९२४ में डा० एपल्टन ने यह प्रस्ताव किया कि अगर वायु मंडलमें रेडियो-लहरें भेजी जायँ और उनके लौटने का समय मालूम किया जाय तो स्तरोंकी केवल उपस्थिति ही नहीं बल्कि उनकी ऊँचाईका भी पता लग जायगा, क्योंकि रेडियो-लहर की गति १८६००० मील प्रति सेकंड मालूम है। डाक्टर ऐपल्टनका ट्रान्समिटर (Transmitter), रेडियो लहरके तीव्र स्पन्दन (Sharp pulses of Radio waves) जिनका काल (period) १/१००० सेकण्ड था, वायुमंडल में भेजता था। एक रिसीवर (Receiver) भेजे हुये स्पन्दन (pulse) और ऊपर से लौटे हुये स्पन्दनको पकड़ता है। दोनों स्पन्दनोंके बीचका समय निकालने के लिए कैथोड किरण आसिलोग्राफ (Cathode Ray Oscillograph) काममें लाया गया था। एपल्टनकी सफलताके बाद इस क्षेत्रमें अधिक शीघ्रतासे काम होने लगा। कुछ वर्षोंमें यह पता लगा कि हवाई जहाज, पनडुब्बी नाव इत्यादि छोटी चीजें भी रेडियो लहरको परावर्तित (Reflect) कर सकती हैं। इसके लिए इस बातकी आवश्यकता थी कि रेडियो लहरको एक पतली रेखा (Beam) के रूप में भेजा जाय। पतली रेखा बनानेके लिए अधिक झूलन-संख्यावाली लहरोंकी (High frequency waves) अर्थात् छोटी लहरों (Short waves) की आवश्यकता थी। १९३६ तक १ मीटरकी लहर पैदा करने के तरीके मालूम हो चुके थे और प्रयोग द्वारा यह सिद्धकर दिया गया था कि छोटी लहरों द्वारा समुद्री जहाज़ों, हवाई जहाज़ों इत्यादिकी दूरी उसी आसानीसे निकाली जा सकती है जैसे ध्वनि लहर (Sound waves) द्वारा एक पासके चट्टानकी दूरी या कुएँकी गहराई निकाली जा सकती है। इस बीचमें रेडियो लहर

(Beam) को एक दिशामें भेजनेके तरीके भी निकल चुके थे। यह देखा गया था कि अगर बहुतसे खड़े एरियल (Vertical Antenna) बराबर दूरी पर एक सीधी रेखामें लगाये जांय तो यह समूह रेडियो लहरको एक ही दिशामें भेजते हैं। ऐसे समूहको ऐनटिना समूह (Antenna Arrays) कहते हैं। सन् १९३७ तक बहुत बातें मालूम हो चुकी थीं और ब्रिटेनमें क़रीब बीस राडरके केन्द्र (Stations) काम करने लगे थे। इसी बीचमें संयुक्त राष्ट्र अमेरिकामें इसी सिद्धान्त पर काम करने वाला परन्तु कुछ लम्बी लहर (Long waves) प्रयोग करने वाला यन्त्र निकाल लिया गया था। इसका नाम लोरान (Loran) था। होनेवाले युद्धके डरके कारण ब्रिटेन इस क्षेत्र में बहुत आगे बढ़ रहा था। सूक्ष्म लहर (Microwaves) अर्थात् परम सूक्ष्म लहर (Ultra Short waves) पैदा करने के तरीके मालूम किये जा चुके थे और इनको प्रयोग में लाने से दूरी और दिशा बहुत ठीक ठीक निकलती थी क्योंकि रेडियो लहर रेखा (Beam) बहुत पतली बनाई जा सकती थी। किसी वायुयान की दूरीमें दो-चार गज़ से अधिक गलती नहीं होती थी। १९४० तक अमेरिका और ब्रिटेन राडर में अलग-अलग उन्नतियाँ करते रहे। १९४०में दोनों राष्ट्रोंने मिलकर उसमें उन्नति शुरू की और उसी समय इसका नाम राडर रक्खा गया।

राडर द्वारा किसी चीज़की दूरी निकालने के लिये तीन यन्त्रों की आवश्यकता पड़ती है। एक रेडियो लहर भेजनेवाला यन्त्र ट्रान्समिटर (Transmitter), दूसरा रेडियो लहर पकड़नेवाला यन्त्र रिसीवर (Receiver), और तीसरा कैथोड किरण आसिलो-ग्राफ़ (Cathode Ray Oscillograph)। ट्रान्समिटरसे सूक्ष्म लहरों (Microwaves) के स्पन्दन भेजे जाते हैं। यह स्पन्दन केवल $१०^{६}$ सेकन्डके होते हैं और दो स्पन्दनों के बीच का समय लगभग $१०^{-३}$ सेकन्ड होता है। एक कैथोड किरण आसिलोग्राफ के क्षितिज प्लेट (Horizontal Plates) में एक उल्टा-सीधा वोल्टेजन (Alternating voltage) लगाया जाता है जिसका काल (Period) $१०^{-३}$ सेकन्ड अर्थात् दो स्पन्दनोंके बीच के समयके बराबर होता है और खड़े प्लेट (Vertical plates) में रिसीवर लगा रहता है। जैसे ही ट्रान्समिटर ने एक स्पन्दन भेजा, उसको रिसीवर ने पकड़ कर कैथोड किरण आसिलोग्राफ़ में लगा दिया।
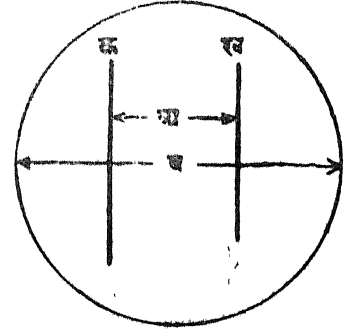
चित्र १

इस कारण कैथोड किरण आसिलोग्राफ़ के पर्दे पर एक खड़ी रेखा 'क' बन गयी। यह स्पन्दन जिधर भेजा जाता है उधर किसी चीज़से टकराकर लौटता है और रिसीवर उसे भी पकड़कर कैथोड किरण आसिलोग्राफ़में लगा देता है। इस कारण पर्दे (Screen) पर एक दूसरी रेखा 'ख' बन जाती है। इन दोनों रेखाओंके बीचकी दूरीसे रेडियो लहरके जाने और टकरा कर लौटने का समय मालूम हो जाता है और उससे लौटा देनेवाले वस्तु की दूरी निकल आती है। अगर कैथोड किरण आसिलोग्राफ़ के क्षितिज प्लेट में १००० N का सिगनल (Signal) लगा हो तो इलेक्ट्रन लहर (Electron beam) को पर्दे पर पूरी लम्बाई 'ब' जाने में $\frac{१}{१०००}$ सेकण्ड लगता है, इसलिए लम्बाई 'अ' जाने में $\frac{१ \times अ}{१०००ब}$ सेकण्ड लगता है, अर्थात् $\frac{अ}{१०००ब}$ सेकण्ड में रेडियो लहर ट्रान्समिटर से वस्तु तक जाकर लौट आती है। अगर वस्तु की दूरी 'म' मील है तो $\frac{२म}{अ/१०००ब} =$ १८६००० और $म = \frac{अ \times १८६०००}{१०००ब \times २} = क \times अ$ मील,

यदि क = $\frac{१८६०००}{२०००ब}$ । इसलिये केवल कैथोड किरण आसिलोग्राफ़ के पर्दे पर दोनों रेखाओं की बीचकी दूरी जाननेसे किसी चीज़की दूरी तुरन्त मालूम हो जाती है। राडर पर काम करने वालेको इतनी गणित करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। वह आसिलोग्राफ़ के पर्दे को देख कर तुरन्त दूरी बता देता है। जैसे-जैसे वायुयान पास आता जाता है वैसे-वैसे रेखा 'ख' की तरफ आती जाती है। किसी भी जहाज़, पनडुब्बी या हवाई जहाज़की दूरीका पता लगानेके बाद यह पता लगाना भी ज़रूरी है कि वह मित्र है या शत्रु। अपने जहाज़ों और वायुयानों पर एक रेडियो रिसीवर और ट्रान्समिटर लगा रहता है। जैसे ही खोजने वाली रेडियोकी लहर रेखा (beam) उस पर आती है वैसे ही रिसीवरमें पता चल जाता है और ट्रान्समिटर एक जवाबी कोड (Code) में खबर भेज देता है जिससे राडर पर काम करने वालोंको पता चल जाता है कि वह अपना ही जहाज़ है। सन् १६४२ की गर्मीमें जर्मनोंने अपने यूबोटों में एक रेडियो रिसीवर लगा लिया था। यह राडर लहरोंको पकड़ लेता था, इस कारण उनको पता लग जाता था कि उनको कोई राडर द्वारा देख रहा है और तुरन्त पानीके अन्दर डूब कर भाग जाती थी। इस बातका पता जब अँगरेज़ोंको लग गया तब उन लोगों ने राडर लहरोंकी लम्बाई एकदम बदल दी और बहुत छोटी लहरों अर्थात् सूक्ष्म लहरों से काम लेने लगे जिनको जर्मनोंका रिसीवर नहीं पकड़ सकता था।

दूरीके साथ-साथ दिशा और ऊँचाई जानना तो अत्यन्त आवश्यक है। रेडियो लहरसे दिशा निकालनेके बहुतसे तरीके युद्ध छिड़नेके बहुत पहलेसे मालूम थे। कई तरहके एनटिना समूह (Antenna Arrays) बनाये जा चुके थे जो केवल एक ही दिशामें रेडियो लहर भेजते थे और केवल एक ही दिशासे आने वाली लहरों का उनपर असर होता था। एक मामूली समूह (Array) में कई खड़े (Vertical) एरियल बराबर दूरी पर एक रेखामें लगे रहते हैं और एक ही ट्रांसमिटर से जुड़े रहते हैं। राडरके ट्रान्समिटर या रिसीवरके साथ ऐसा ही एक समूह जो सब दिशाओंमें घुमाया जा सकता है, लगा रहता है। इस एरियलको घुमाया जाता है और जब यह ठीक उसी दिशामें लहरें भेजता है जिधर कोई वस्तु है तब लहरें उस वस्तुसे टकरा कर लौटती है और लौटी हुई लहरोंकी तीव्रता (intensity) सबसे अधिक होती है। एक बात याद रखने की है कि जितनी ही छोटी लहरें प्रयोगमें लायी जायगी उतनी ही अधिक पतली रेडियो लहर रेखा (Narrow Radio Beam) भेजी जा सकेगी और उतनी ही अधिक अच्छाईसे ठीक दिशा मालूम होगी। राडरमें युद्ध के समयकी सबसे बड़ी उन्नति सूक्ष्म लहरोंके प्रयोग करनेसे हुई है। राडरमें ऐसा भी किया गया है कि अगर आवश्यकता हो तो ऐनटिना समूह किसी एक वायुयानकी तरफ हमेशा घूमता रहे। जैसे-जैसे वायुयान घूमे वैसे ही एनटिना समूह भी उसकी तरफ़ अपने आप घूमता रहे और कुछ दूर पर लगी हुई ऐंटी एयरक्रैफ्ट (Anti Aircraft) तोपें भी कुछ मशीनों द्वारा अपने आप उसी दिशामें गोले छोड़ती रहें।
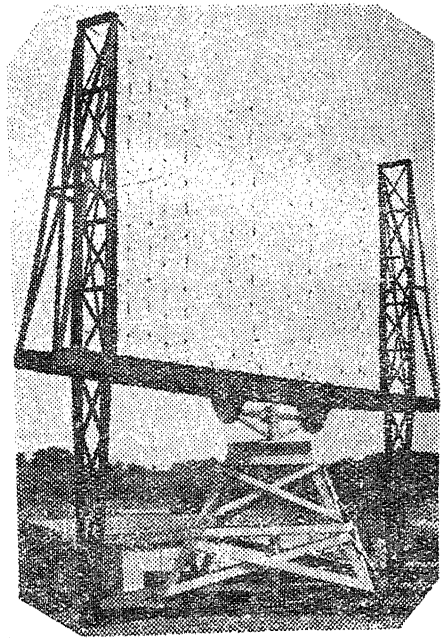
चित्र २

जिस तरहसे दिशा निकालनेके लिए ऐसे एनटिना समूह लगाये गये थे जो कि क्षितिज तल (Horizntal plane) में चारों तरफ घुमाये जा सकते थे उसी तरहसे अगर ऐसे एनटिना समूहलगाये जायँ जो खड़े तल (Vertical plane) में घुमाये जा सकते हों तो ऊँचाई भी निकल आयेगी। राडरका पूरा यन्त्र, दूरी, दिशा और ऊँचाई निकालनेकी रीतियोंकी मिलावट है। यह यंत्र बड़ा भी होता है और छोटा भी। कुछ यन्त्र तो एक ही जगह लगे रहते हैं, कुछ एक जगह से दूसरी जगह मोटर पर घुमाये जा सकते हैं। वायुयानों पर छोटे यंत्र लगे रहते हैं जो उतनी ही बातें बता सकते हैं जितनी बड़े यंत्र बता सकते हैं।
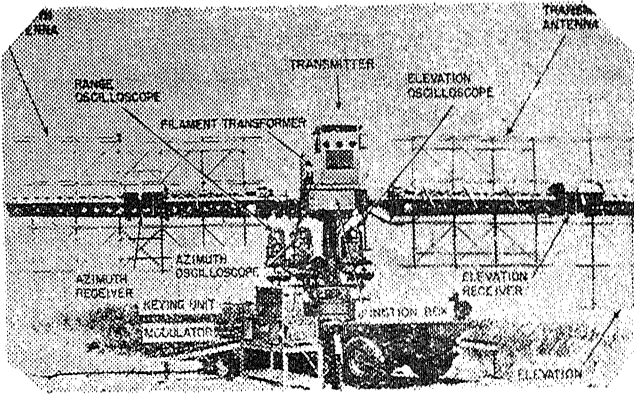
चित्र ३

राडर ने इस युद्धमें बड़े-बड़े काम किये। जर्मनीके हारका एक बड़ा कारण यह था कि वह अमेरिकासे आनेवाले सामानको यूबोट द्वारा रोक न सका। जैसे ही पनडुब्बी सतह पर आक्रमण करनेके लिए निकलती थीं राडरसे उसका पता लग जाता था और ब्रिटिश बममार उसको आक्रमण करके डुबा देते थे। कुछ दिनों बाद राडरके छोटे यंत्र वाययानोंमें लगा दिये गये थे। यह वायुयान रात-दिन अंध-महासागरके कोने-कोनेमें पनडुब्बोंका पता लगाकर उनको डुबा देते थे। जब कभी सामान लेकर जहाज़ोंका झुंड चलता था तो मुखिया जहाज़ झुंडके हर एक जहाज़का हर समय पता रखता था, अगर कोई जहाज़ झुंडसे अलग हो जाता था तो उसका राडर द्वारा पता लगाकर फिर झुंडमें बुला लेते थे।

१९४० में जब ब्रिटेन पर सबसे बड़ा हवाई आक्रमण हुआ था उस समय अँगरेज़ोंके पास वायुयानोंकी कमी थी और इस कारण हमेशा वायमंडलमें पहरा नहीं दे सकते थे। राडरसे जब पता लगता था कि शत्रुके बम-मार इस दिशासे आ रहे हैं उसी समय इनके लड़ाकू वायुयान उसी दिशामें पहुँच जाते थे और उन बममारोंसे युद्ध करके वहीं रोक देते थे या नाश कर देते थे।

इस समय राडरमें और भी उन्नतियाँ हो गयी हैं जिनके कारण यह इस युद्धके सबसे भीषण शस्त्र परमाणु बम (Atom Bomb) का भी सामना भविष्यमें कर लेगा। जब परमाणु बम छोड़ा जायगा तो उसकी दिशाका पता राडर द्वारा लगाकर उसी दिशामें एक राकेट बम (Rocket Bomb) भेजा जायगा जो परमाणु बम को वायुमंडलमें ही विस्फोट कर देगा। शांतिके समयमें राडरका प्रयोग वायु तथा समुद्री यात्राओंमें बहुत किया जायगा जिससे कि दुर्घटनायें बहुत कम हो जायँगी।

इस लेखके दूसरे और तीसरे चित्र दैनिक अंग्रेजी लीडर से प्राप्त हुए हैं जिनके लिए विज्ञान अभारी है।

सम्पादक—

जापान की पराजय में राडर का भाग

शाही भारतीय नौसेना द्वारा प्रयुक्त किया गया महान अस्त्र

राडरकी गणना वर्तमान युद्धके आश्चर्यजनक वैज्ञानिक आविष्कारोंमें की जाती है। यह जहाज़के लिये सब कुछ देखने वाली आँखका काम देता है। इसके द्वारा वायुयान, आदि की स्थिति का पता दूरसे ही मालूम कर लिया जाता है। राडर ने शाही भारतीय नौसेना को समुद्री और तटवर्ती मार्गों द्वारा निर्विघ्न रूप से जहाज़ी माल ले जाने में सहायता दी है।

रुधिरका आदान प्रदान

(ले०--श्री ओमप्रकाश, गुरुकुल कांगड़ी)

विज्ञान ने मनुष्यको नाना प्रकारकी सुविधाएँ प्रदान की हैं। उसके आविष्कारोंसे मनुष्य बड़े कठिन कामोंको थोड़े समयमें सुविधासे कर सकता है। चिकित्सा-जगतकी खोजों ने उसे दीर्घ जीवन बितानेके लिए सहायता प्रदान की है। इन्हीं खोजोंमें रुधिरके परीक्षण भी कहे जा सकते हैं।

हम प्रायः कहा करते हैं कि अमुक व्यक्ति बड़ा बहादुर है क्योंकि उसमें राजपूतोंका खून है। इससे स्पष्ट है कि लोगोंका यह भी विश्वास है कि माता-पिताके रुधिर के साथ संतानको शूरता, दया, श्रद्धा आदि गुण भी प्राप्त होते हैं। परन्तु हम इस विषयमें कुछ न कहेंगे, क्योंकि ऐसा देखा गया है कि रुधिर-प्रवेशमें इस प्रकारके परिणाम नहीं पाये गये। एक भारतीयका रुधिर हबशीमें प्रविष्ट करा सकते हैं और हबशीका रुधिर अंग्रेज़में भी प्रविष्ट हो सकता है और उसका जापानीमें। वे केवल इसी बात का ध्यान रखते हैं कि रुधिर देने वालेका रुधिर रोगीके रुधिरसे मिलता है या नहीं। यदि मिलता है, तो ठीक है।

रुधिर-प्रवेशसे हमारी चिकित्साकी बहुत उन्नति हुई है। जब स्त्रियोंके शरीरमें सन्तान होनेके कारण, या किसीको चोट लगने या पीलिया रोग होनेसे उसके शरीरमें रुधिरकी कमी हो जाती है, तो रुधिर प्रवेशके द्वारा ही क्षति-पूर्ति की जाती है। इस तरह रुधिर-प्रवेशसे मनुष्यका अत्यधिक कल्याण हुआ है।

रुधिर-संचय

आज हमारे बड़े-बड़े अस्पतालोंमें खून लेनेके लिए आदमी रक्खे जाते हैं। जिस व्यक्तिका खून लेना होता है, वह डाक्टरके सम्मुख बैठ जाता है। डा० इंजेक्शन की सुईके द्वारा उसके हाथसे खून खींच लेता है और उसे दूसरे रोगीके शरीर में प्रविष्ट करा देता है। इस तरह खून देने वाले व्यक्तिको कोई शारीरिक क्षति नहीं होती। कुछ ही दिनोंमें उसका खून उतना ही हो जाता है। परन्तु एक बीमारका इससे बहुत उपकार होता है।

रूसमें इस विषयमें सर्वप्रथम परीक्षण होने शुरू हुए थे। इसका अधिकतर श्रेय रूसी वैज्ञानिकोंको ही है। सन् १९३६ में मास्कोमें रुधिरके आदान-प्रदानके लिये एक संस्था खुली थी। परन्तु सन् १९४२ तक रूसके बड़े-बड़े शहरोंके अतिरिक्त ८३० ज़िलोंमें ऐसी संस्थाएँ खुल चुकी थीं। प्रारम्भमें खून देने वाले व्यक्तिका खून लेकर सीधे ही बीमारमें प्रविष्ट करवा देते थे। परन्तु आज वह अवस्था नहीं है। अब वैज्ञानिक विधियोंसे खून को बोतलोंमें सुरक्षित रीतिसे बन्द कर दिया जाता है। जहाँ आवश्यकता पड़ती है, वहाँ उसे भिजवा दिया जाता है।

चौथे पृष्ठका शेषांश

जैसेही नये जहाज़ बन कर नौसेना में सम्मिलित होते थे उनमें राडर यंत्र लगा दिये जाते थे और उनके संचालन के लिये विशेष रूपसे शिक्षित कर्मचारी नियुक्त कर दिये जाते थे। युद्धकाल में अनेक भारतीय नौसैनिक अफ़सरों और नाविकों ने इन जटिल यंत्रों को चलाना सीखा है। इनमेंसे अधिकांश नाविक दक्षिण भारतके रहने वाले हैं।

भारतमें भी राडर स्कूल की स्थापना की गयी। ब्रिटेन के बाहर ब्रिटिश राष्ट्रमंडल में बहुत थोड़े राडर स्कूल हैं। भारत के उपर्युक्त राडर स्कूल की गिनती इसी परिमित संख्याके अन्तर्गत की जाती है। इसका काम शाही भारतीय नौसेना के कर्मचारियों को राडर यंत्र के कार्यों की शिक्षा देना है।

शाही भारतीय नौसेना का एक जहाज़ राडर यंत्र से सुसज्जित करके इस स्कूल को नाविकों के शिक्षण के लिये दे दिया गया था।

जापानी युद्धके समय शाही भारतीय नौसेना की राडर शाखा का शीघ्रतासे विस्तार हुआ और इसका प्रभाव अन्य नौसैनिक शाखाओं पर व्यापक रूप में पड़ा। जहाजों में लगे हुए इन बहुसंख्यक और जटिल राडर यंत्रोंको सुव्यवस्थित रखनेके कामने एक कठिन समस्या उत्पन्न कर दी थी जिसको हल करनेके लिये प्रमुख भारतीय बंदरगाहों पर प्रारंभिक कारखाने (वर्कशाप) स्थापित कर दिये जायँगे।

रूसमें खून देना एक उपकारी कर्म समझा जाता है। इसलिये रूसी नागरिक अपने बंधुओंके हितके लिये रुधिर प्रदान करनेमें सदा उद्यत रहते हैं। कूशिन्सकी मास्कोका एक रक्त-दानी है। उसने इस विषयमें बड़ी ख्याति प्राप्त की है। लगभग सन् १९४२ के पूर्ववर्ती १२ वर्षोंमें उसने १०३ बार खून दिया था। वह अब भी उसी तरह खून दे रहा होगा।

रुधिर-प्रवेश

हमारे खूनके चार भेद होते हैं। प्रत्येक प्रकारका खून दूसरे खूनके लिए विजातीय द्रव्य होता है। इसलिए जब किसी रोगी व्यक्तिके शरीरमें रुधिर प्रविष्ट कराया जाता है, तो इस बातका ध्यान रक्खा जाता है कि भरा जाने वाला खून उसके लिए सजातीय हो। अन्यथा यदि हम बीमारके शरीरमें उसके रुधिरसे भिन्न प्रकारका रुधिर भर दें तो वह उसके लिए प्राणदायक होनेके बजाय प्राणनाशक सिद्ध होगा।

रुधिर के प्रकारों को स्पष्ट करने के लिये हम उन्हें अ, ब, स, द कह सकते हैं। 'अ' प्रकार 'ब' से भिन्न होता है। 'स', 'अ' और 'ब' का मिश्रण होता है। शेष 'द' न तो, अ होता है और न 'ब'। वह इनसे सर्वथा भिन्न होता है। इस तरह रुधिर के ४ भेद हो जाते हैं। पशुओं का खून मनुष्य के लिये विजातीय होता है। इसलिये उसे उपयोग में नहीं लाते।

इसके अतिरिक्त रुधिर प्रवेश में इस बात का भी ध्यान रखना पड़ता है कि रुधिर किसी अन्य कारण से (यथा असावधानीसे बन्द करनेसे) दूषित तो नहीं हो गया है। यदि शुद्ध हो तभी उपयोग करना चाहिये; अन्यथा नहीं।

सुरक्षा और उपयोग

खून को लेते समय इन सब बातों का ध्यान रखते हैं कि वह पूर्ण शुद्ध है या नहीं। यदि उसमें रोग के कीटाणु मिले होते हैं, तो उसे नहीं लेते। मान लीजिये यदि रुधिर देनेवाले के खूनमें आतशक (Syphilis) के कीटाणु हों तो महान अनर्थ हो जायगा।

खून को बड़ी सावधानीसे बन्द करते हैं। उसे विशेष प्रकारसे बने हुए बर्फके सन्दूकोंमें रक्खा जाता है। ऐसी दशामें ऋतुओं का किसी भी प्रकार का प्रभाव उस पर नहीं पड़ता। उसे आसानीसे ध्रुवों और भूमध्य रेखा के समीप-वर्ती क्रमशः बर्फीले तथा तपते हुए देशों में भी ले जाया जा सकता है। वर्तमान समयमें खून को चार सप्ताह अर्थात् एक मास तक सुरक्षित रख सकते हैं। परन्तु युद्धसे पूर्व यह अवधि अधिकसे अधिक १५ दिन थी।

युद्ध में जब चोट लगनेके कारण सिपाहीके शरीर में रुधिर की कमी हो जाती है तो यदि इस अवस्थामें डाक्टर के पास सुरक्षित रुधिर नहीं होता है, तब वह समीपवर्ती रुधिर-प्रचारक संस्था को सूचना दे देता है। वहाँ से शीघ्रही वायुयान द्वारा युद्ध क्षेत्र में रुधिर पहुँचा दिया जाता है। वायुयानसे उसे पैराशूट के द्वारा भूमि पर उतारा जाता है। इस तरह सफलतापूर्वक बीमारों की तात्कालिक चिकित्सा कर दी जाती है। फिर उन्हें युद्धक्षेत्र से हटाकर दूर के सुरक्षित स्थानों में भेज देते हैं।

इसके अतिरिक्त रुधिरके भेदोंसे हमें एक अन्य भी सहायता मिलती है। कई बार ऐसा होता है कि लोग दूसरों के बच्चों को भगा ले जाते हैं। अथवा कई बार यह भी झगड़ा हो जाता है कि अमुक बच्चा अमुक मनुष्य का है या दूसरे का। ऐसी दशा में वादी और प्रतिवादी अपने अपने पक्ष के लिये अनेकों युक्तियाँ देते हैं। अतः निर्णय करना कठिन हो जाता है। तब उन दोनों का रुधिर लिया जाता है और यह देखा जाता है कि उनमें से क्या किसी का रुधिर बालक के रुधिर से मिलता है? जिसका मिलता है वही उसका अधिकारी होता है, क्योंकि वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि सन्तान में परम्परानुसार ही रुधिर आता है, जो किसी भी प्रकार की बीमारीसे या समय तथा किसी अन्य कारण से नहीं बदलता है।

औटोजैक्टर के प्रयोग

रूसी वैज्ञानिकों ने रुधिर के संबंधमें नाना प्रकारके प्रयोग किये हैं। उनसे रुधिर और हमारे शरीर के संबंध पर विशेष प्रकाश पड़ता है। उदाहरण के लिये औटो-जैक्टर के प्रयोग कहे जा सकते हैं। इन प्रयोगों को ब्रिटेन में पर्दों पर भी दिखाया गया था।

१—रूसी चिकित्सकों ने कुत्ते की गर्दन को काट दिया। फिर उसे औटोजैक्टर से जोड़ दिया। यह एक प्रकार का पम्प होता है जिससे खून को प्रविष्ट करा सकते हैं और फिर उसे बाहर भी खींच सकते हैं। उन्होंने इस यत्र के द्वारा उसके सिरमें रुधिर भरा। जब उसकी जीभ पर साइट्रिक एसिड डाला गया तो उसने अपनी जीभ को हिलाया। उसके पास हथौड़े से ठक् ठक् शब्द किया गया, तो उसने उसकी तरफ ध्यान दिया। फिर उसकी आँखों पर तेज प्रकाश डाला गया तो उसने आंखों की पलकों को हिलाया और उन्हें बंद करने का प्रयत्न किया इस तरह उन्होंने उस कटे सिर को ४ घण्टे तक जीवित रक्खा।

२—उन्होंने दूसरा परीक्षण यह किया कि कुत्ते के रुधिर को इतना निकाल दिया जिससे वह अंतिम सांस लेने लग गया। उन्होंने फिर उसे औटोजैक्टर से संयुक्त कर दिया। ज्यों-ज्यों उसमें रुधिर भरता गया, उसे अधिक प्राण-शक्ति मिलती गयी। इस तरह वह अंतमें पहले की तरह हाथ पैर भी मारने लग गया।

इन परीक्षणों के आधार पर उनका अनुमान है कि जिस तरह कुत्ते के कटे सिर को जीवित रक्खा जा सकता है, उसी तरह सम्पूर्ण कुत्ते को भी जिलाया जा सकेगा। इसी तरह वैज्ञानिक मानव के निर्माण में भी लगे हुए हैं। उन्होंने अनेक परीक्षण किये हैं। उनका विवरण पाठकों को अगले लेखों में दिया जायेगा, जिससे वे मानव के महान प्रयत्नों को जान सकेंगे।*

———

*वर्तमान चिकित्सा प्रणालीमें रोगीके शरीरमें स्वस्थ मनुष्यके शरीर का रक्त प्रवेश करानेकी विधि चल निकली है। इस विधि द्वारा चिकित्सा करनेके परिणाम अब तक बहुत ही सन्तोषजनक रहे हैं। वर्तमान लेख इसी चिकित्सा-विधि से सम्बन्ध रखता है। लेख उपयोगी है।

संपादक

जोज़ेफ प्रीस्टले

जोज़ेफ प्रीस्टले का जन्म सन् १७३३ में इंगलैंड में लीड्स के समीप फील्डहेड नामक स्थान में हुआ था। इनके पिता ऊनी कपड़ों की सिलाई का कार्य करते थे। प्रीस्टले जब केवल सात वर्ष के थे तभी इनकी माता का देहान्त हो गया और उसके बाद इनका लालन-पालन इनकी एक बुआ ने किया जो स्वयं धनी थी।

बचपन से ही प्रीस्टले ऐसे वायुमंडल में पले जहाँ धार्मिक विचारों की प्रधानता रही। इस धार्मिक वायु-मंडल का प्रभाव प्रीस्टले के जीवन में सदा विद्यमान रहा। ब्लैक और प्रीस्टले एक दूसरे से मानसिक रुचि में बिल्कुल विभिन्न थे। ब्लैक प्रधानतया प्राकृतिक विज्ञान के एक विद्यार्थी थे किन्तु प्रीस्टले सर्वप्रथम ईश्वर भक्त थे उसके बाद कुछ और।

प्रीस्टले की प्रारम्भिक शिक्षा भिन्न-भिन्न भाषाओं के सीखने में ही सीमित रही। उन्होंने लेटिन, ग्रीक तथा हिब्रू की अच्छी व्यवहारिक योग्यता प्राप्त की। प्रारम्भ में उनका विचार व्यापार में लगने का था और इसी उद्देश्य से उन्होंने फ्रेंच, इटैलियन तथा उच्च भाषाओं का ज्ञान भी प्राप्त किया। अपने एक मित्र की सहायता से उन्होंने थोड़ा गणित और प्राकृतिक विज्ञान का भी अध्ययन किया।

१६ वर्ष की अवस्था में प्रीस्टले "डैवेन्ट्री की एके-डमी" में भरती हुये। यहाँ का वायुमंडल उनके मन के अनुकूल था और उसने इनके मानसिक विकास में सहायता पहुँचाई। विद्यार्थियों को यहाँ हर प्रकार के प्रश्न पर वादविवाद करने की पूरी स्वतंत्रता थी और वे अपने गुरुओं से प्रत्येक प्रकार के प्रश्न कर सकते थे।

एकेडमी छोड़ने के बाद सन् १७५५ में प्रीस्टले

———

रसायन विज्ञान के तीन संस्थापकों में से एक जोज़ेफ प्रीस्टले हैं। विज्ञान के भाग ६१ संख्या ३ में एक संस्थापक जोज़ेफ ब्लैक के जीवन का हाल दिया जा चुका है। यहाँ प्रीस्टले के कार्यों का उल्लेख किया गया है।

संपादक

नीडहम में चर्च बिभाग के मिनिस्टर के सहायक हुये। इस पद पर वह तीन वर्ष तक कार्य करते रहे। यहाँ अपने विचित्र धार्मिक विचारों के कारण प्रीस्टले कुछ बदनाम भी हुये।

नीडहम से वह नैन्टविच के एक स्कूल में चले गये। यहाँ स्कूल सम्बंधी कार्य में उनका बहुत-सा समय जाता था। इस कारण उन्हें मन की उड़ान के लिये समय कम मिल पाता था। फिर भी यहाँ उन्होंने कुछ वैज्ञानिक औज़ार तथा इसी सम्बंध के अन्य सामान एकत्रित किये जैसे बिजली की मशीन तथा हवा पंप। इन मशीनों की मरम्मत करने तथा उनके द्वारा प्रयोग करने का ढंग वह अपने विद्यार्थियों को समझाया करते थे। स्कूल में वह प्राकृतिक घटनाओं पर व्याख्यान दिया करते थे। और अपने विद्यार्थियों को सदा प्रयोग करने के लिये उत्साहित करते थे। इससे उनके विद्यार्थियों में प्राकृतिक विज्ञान की ओर रुचि पैदा हुई।

सन् १७६१ में प्रीस्टले वैरिंगटन में नई स्थापित एकेडमी में अध्यापक होकर चले गये। यहाँ प्रारम्भ में उन्होंने केवल भाषाओं का अध्यापन कार्य किया किंतु बाद में इसके साथ ही एनाटमी (Anatomy) पर भी लेक्चर देने लगे। इन्हीं दिनों इन्होंने अपना विवाह किया। इनकी पत्नी उदार हृदय, सहिष्णु तथा बहुत नम्र और नेक स्वभाव की थीं। घर के प्रबंध में भी वह बड़ी दक्ष थीं। इनके साथ प्रीस्टले का विवाहित जीवन सदा सुखी रहा।

इसी बीच में प्रीस्टले का परिचय डा० फ्रैंकलिन से लंदन में हुआ। इनके सम्पर्क में आने से प्रीस्टले को विज्ञान का कार्य करने में और अधिक प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। प्रीस्टले ने विद्युत की घटनाओं का निरीक्षण प्रारम्भ किया और इस सम्बंध के कुछ प्रयोग भी किये। विद्युत सम्बंधी इनके प्रयोगों के फल छपने पर वैज्ञानिकों का ध्यान इनकी ओर आकृष्ट हुआ और वह रॉयल सोसायटी के फेलो चुन लिये गये। एडिनबरा विश्व-विद्यालय ने इन्हें एल-एलडी० की उपाधि भी प्रदान की। सन् १७६७ में यह लीड्स चले गये जहाँ यह ६ वर्षों तक एक गिरजे के मिनिस्टर रहे।

लीड्समें उनके घरके समीप एक शराब बनानेका कारखाना था। ब्लैक ने लगभग १३ साल पहले यह बतलाया था कि शराब बनते समय कार्बन डाइ-आक्साइड गैस निकलती है। प्रीस्टले ने ब्लैककी खोज पढ़ी थी। वह यहाँ इस गैसको शराबखानेसे प्रायः इकट्ठी कर लाते थे और अपने आमोदके लिए उसके विभिन्न गुणोंकी परीक्षा करते थे। शराबखानेसे हटकर दूर जब उन्होंने अपना घर लिया तब शराबखानेसे गैस लानेमें असुविधा होने लगी और अब उन्होंने स्वयं यह गैस खड़ियासे बनानी शुरू की। इस गैसको इकट्ठा करनेके लिए उन्होंने एक बहुत सरल सा यन्त्र तैयार किया। यह यंत्र आज तक प्रयोगशालाओंमें गैस इकट्ठा करनेके लिए व्यवहारमें आता है। यह यंत्र एक काँच या किसी धातुकी एक रकाबी है जिसमें पानी भर दिया जाता है। इस रकाबीके अन्दर एक तिपाई रखी जाती है जिसके ऊपर छेद रहता है। तिपाईके इस छेदके ऊपर काँचका एक पानी भरा गिलास उल्टाकरके खड़ाकर दिया जाता है। जिस यंत्रमें गैस बन रही है वहाँसे एक काँचकी पतली नली जोड़कर तिपाईके छेदके नीचे रख दी जाती है। इसी नलीके रास्ते गैस गिलासमें आती है और जैसे-जैसे गैस इसमें भरती है पानी नीचे रकाबीमें गिरता जाता है।

कार्बन डाइ-आक्साइडके ऊपर प्रयोग करते समय उन्होंने यह ज्ञात किया कि पानीमें यह गैस कुछ घुल जाती है। सन् १७७२ में उन्होंने एक पर्चा छपवाया जिसमें यह बतलाया कि पानीमें किस प्रकार यह गैस अधिक मात्रामें घोला जा सकता है। गैसका यह पानी दवाके उपयोग में लाया जाने लगा। इसी समयसे लोगों ने 'खनिज जल' बनाना सीखा।

सन् १७७३ से सन् १७७९ के बीचके प्रीस्टलेके ६ वर्ष रसायन-इतिहासमें बड़े महत्वके हैं। इन्हीं दिनों प्रीस्टलेकी गैस सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण खोजें अधिकतर हुईं। इन्हीं दिनों सन् १७७४ में वह हालैंड और जर्मनी भी गये थे।

सन् १७७४ में वह अपने आमोदके लिये तापका विभिन्न पदार्थों पर प्रभाव देख रहे थे। ऐसा करनेमें उन्होंने पहलेसे कोई उद्देश्य विचारा नहीं था। ताप

उत्पन्न करनेके लिए वह ताल द्वारा सूर्यकी किरणोंको पदार्थ पर केन्द्रित करते थे। भाग्यवशात् उन्होंने पारे की लाल ऑक्साइड पर सूर्यकी किरणें ताल द्वारा केन्द्रित कीं। ऐसा करने पर उन्होंने देखा कि ऑक्साइडसे एक गैस निकली जिसमें दहकती हुई मोमबत्ती लानेसे वह बहुत तेज़ रोशनीके साथ जलने लगी। इस गैसको देखकर प्रीस्टलेको बड़ा आश्चर्य हुआ और आरम्भमें वह स्वयं यह नहीं समझ सके कि इस गैसके उत्पन्न होने का क्या कारण था। उन्होंने अनुमान किया कि सम्भवतः पारेकी ऑक्साइड अशुद्ध थी। पुनः उन्होंने पारेकी लाल आक्साइडका दूसरा नमूना लेकर यही प्रयोग किया और देखा कि फिर वही गैस निकली। प्रीस्टले ने इस गैसके गुणोंकी परीक्षा की और यह मालूम किया कि इस गैसमें हमारी वायुके सारे गुण मौजूद हैं किन्तु अन्तर केवल इतना ही है कि वायुके वे सारे गुण इसमें कई गुना तेज हैं। इस गैसका नाम प्रीस्टले ने डीफ्लोजिस्टिकेटेड हवा रखा। बादमें इसी गैसका नाम ऑक्सिजन पड़ा। इस प्रकार ऑक्सिजन गैसका आविष्कार प्रीस्टले ने किया। बादमें प्रीस्टले ने इस गैसको अन्य धातुओंकी ऑक्साइडसे गरम कर बनाई।

प्रीस्टले इस नई गैस को केवल एक बहुत शुद्ध साधारण हवा समझते थे। गैसों के बारे में उनकी यह धारणा थी कि एक गैस दूसरी गैस में आसानी से बदली जा सकती है। फ्लोजिस्टन सिद्धांत की सत्यता में प्रीस्टले का अटूट विश्वास था और वे अपने सब प्रयोगों के फलों की इसी सिद्धांत के अनुसार व्याख्या करते थे। इसी कारण वह अपनी आविष्कार की हुई डीफ्लोजिस्टिकेटेड हवा का स्वरूप स्वयं नहीं समझ सके।

प्रीस्टले ने बतलाया है कि जब वह सन् १७७४ में पेरिस में थे तो उन्होंने डीफ्लोजिस्टिकेटेड हवा के बनाने की विधि लैवासियर तथा अन्य फ्रान्सीसी रसायनज्ञों को बतलाई थी। लैवासियर की जीवनी में तुम देखोगे कि लैवासियर ने प्रीस्टले की इस गैस का उपयोग कर कितने महत्त्व का कार्य किया।

सन् १७७९ में प्रीस्टले बरमिंघम के एक गिरजे के मंत्री होकर चले गये। यहाँ वह अपनी मृत्यु पर्यन्त सन् १७९१ तक रहे।

बरमिंघम में यह जब तक रहे उनके मित्रों द्वारा उन्हें आर्थिक सहायता मिलती रही जिससे वह अपनी खोजें बिना कठिनाई के कर सके। यहाँ पर इन्होंने कई और गैसें खोज निकालीं।

ऑक्सिजन के अतिरिक्त प्रीस्टले ने नीचे लिखी गैसों को भी खोज निकाला और उनके गुणों की परीक्षा की। नाइट्रिक एसिड गैस, सलफर डाईऑक्साइड, हाइड्रोक्लोरिक एसिड गैस, अमोनिया।

प्रीस्टले ने यह दिखलाया कि हाइड्रोजन गैस कई एसिड और धातुओं की प्रक्रियाओं में उत्पन्न होती है।

हाइड्रोजन और ऑक्सिजन के मिश्रणों को उन्होने एक ताँबे के गोल बर्तन में बिजली की चिनगारी द्वारा जलाया। एक भड़ाके के साथ दोनों गैसें जलीं। प्रीस्टले ने इस प्रयोग का वर्णन लिखते समय यह लिखा है कि दोनों गैसों के जलने के बाद बर्तन में कुछ पानी की बूँदें दिखलाई दीं, किन्तु इस पानी के बन जाने के कारण की ओर उन्होंने ज़रा भी ध्यान नहीं दिया, नहीं तो जो बात कैवेन्डिश ने ४ सालों बाद मालूम की कि हाइड्रोजन और ऑक्सिजन के मिलने से पानी बनता है वह बात प्रीस्टले ४ साल पहले मालूम कर लेते।

नाइट्रिक एसिड गरम करने से जो गैस निकलती है उसके रंग के सम्बन्ध में प्रीस्टले ने आश्चर्यजनक निरीक्षण किये। उन्होंने देखा कि नाइट्रिक एसिड जो सफ़ेद है उसे गरम करने से पीली गैस निकलती है। यह पीली गैस और अधिक गरम करने से गहरे रंग की होती जाती है, और अंत में बहुत गहरे नारंगी रंग की हो जाती है। नाइट्रिक एसिड गैस के रंग परिवर्तन का कारण बाद में वैज्ञानिकों ने मालूम किया।

पेड़ों तथा जानवरों पर गैसों का प्रभाव देखने का प्रीस्टले को बड़ा शौक था। प्रत्येक गैस के गुणों की परीक्षा करते समय वह एक जीवित चूहे को उसमें डाल कर चूहे पर उस गैस का प्रभाव अवश्य देखते थे। उन्होंने पुदीने के पौदे पर साधारण हवा, ऑक्सिजन, तथा अशुद्ध नाइट्रोजन का प्रभाव देखा और मालूम

किया कि अन्तिम हवा में वह सब से अच्छा उगता है और ऑक्सिजन में सब से ख़राब। उन्होंने यह भी मालूम किया कि जो हवा मोमबत्ती के जलने या जानवरों के साँस लेने से गन्दी हो जाती है वह पेड़ों द्वारा फिर शुद्ध होकर पहले की भाँति हो जाती है। इन सब प्रयोगों में केवल उन्होंने ऊपरी निरीक्षण ही किया। यदि वह अपने प्रयोग ब्लैक की भाँति तोल कर करते तो इन सब बातों की वह ठीक-ठीक व्याख्या कर सकते।

उन्हीं दिनों फ्रान्स की राज्यक्रान्ति हुई। इस राज्य-क्रान्ति का इंगलैंड के लोगों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। प्रीस्टले राजनीतिक विचारोंमें अपने समयके लोगोंसे काफ़ी आगे बढ़े हुये थे। फ्रान्स की राज्यक्रान्ति में उनकी सहानुभूति प्रजा से थी। प्रीस्टले ने कई राजनीतिक सुधार प्रस्तावित किये थे। वह गिरजेकी सम्पत्तिके सदा विरुद्ध रहे और इस बात पर जोर देते रहे कि ये सब नष्ट कर देनी चाहिए। इस बातमें बरमिंघमके पादड़ोंसे उनका सदा मतभेद रहा और इस मतभेद के कारण जनता का एक दल उनके विरुद्ध था।

सन् १७९१में फ्रान्समें प्रजाके बैस्टाइल पर अधिकार करने का वार्षिक दिन प्रीस्टलेके मित्रों ने बरमिंघम में मनाया। उसी दिन बरमिंघम की कुछ जनताने गिरजे और बादशाहके नाम पर शहर में दंगा खड़ा कर दिया। शहरके अधिकारियों ने इन दंगाइयों को रोकने का प्रयत्न नहीं किया और इन लोगोंने जोशमें आकर प्रीस्टले तथा उनके अन्य मित्रोंके घरों पर आक्रमण कर आग लगा दी। इसमें प्रीस्टले का एक बच्चा बहुत कठिनाईसे मरनेसे बचा। प्रीस्टले को स्वयं अपनी रक्षा करने लंदन भाग आना पड़ा। इस दंगेमें उनकी बहुतसी हस्तलिखित पुस्तकें, उनका सारा पुस्तकालय और उनके वैज्ञानिक यंत्र नष्ट हो गये और उनका मकान जल कर राख हो गया।

इस घटना के बाद वह हैक्नी (Hackney) की धार्मिक सभामें चले गये। मित्रों द्वारा मिले रुपयों तथा सरकार द्वारा मिली हुई मावज़ेकी रक़मसे उन्होंने यहाँ एक छोटीसी अपनी प्रयोगशाला बना ली और धार्मिक कार्योंके बाद अवकाश मिलने पर अपने रासायनिक प्रयोग करते रहे।

इन्हीं दिनों प्रीस्टलेके तीन पुत्र अमेरिका चले गये। उन्हें अपना जीवन बहुत सूना लगने लगा और बाद में वह स्वयं भी अमेरिका अपने जीवनका अन्तिम समय बिताने गये। यद्यपि इंगलैंडके लोगोंने प्रीस्टले का बहुत अपमान किया था, किन्तु फिरभी इंगलैंड छोड़ते समय उनके मनमें इंगलैंडवासियों के प्रति कोई बुरा भाव नहीं था। वह इंगलैंड से सन् १७९५ में गये और पेनसल-वेनिया के नार्थम्बरलैंड स्थानमें बस गये। अपने मित्रों द्वारा प्राप्त आर्थिक सहायतासे यहाँ भी उन्होंने अपना एक पुस्तकालय तथा प्रयोगशाला स्थापित कर ली।

इन्हीं दिनों फिलाडेलफ़ियाके रसायन विज्ञान के प्रोफ़ेसर का पद स्वीकार करनेके लिए उनसे प्रार्थना की गई किन्तु उन्होंने अस्वीकार कर दिया और अपनी प्रयोग-शालामें शान्ति का जीवन बितानाही अधिक अच्छा समझा। अमेरिकामें भी उन्होंने कई खोजें कीं।

सन् १८०१में उनका स्वास्थ्य गिरने लगा और धीरे-धीरे वह दुर्बल होते गये।

प्रीस्टलेने भिन्न-भिन्न विषयों पर जो पुस्तकें लिखी हैं वे बहुत हैं। वह बहुत परिश्रमी थे और अपना समय नष्ट न कर अपना सब कार्य नियमपूर्वक करते थे। इसी कारण वह अपने जीवनमें इतना अधिक काम कर सके।

उन्होंने अपने पिता से एक हँसमुख स्वभाव और स्वस्थ शरीर सम्पत्ति रूप में प्राप्त किया था। यद्यपि शरीर से वह बहुत मोटे-ताज़े नहीं थे किन्तु उनका स्वास्थ्य सदा अच्छा रहा जिसके कारण उन्हें अपना कार्य किसी ऋतुमें भी करनेमें आलस्य या कष्ट नहीं मालूम होता था। उनका स्वभाव हँसमुख होनेके कारण कोईभी झगड़े आदि की बातें उनकी मानसिक शान्ति को अधिक समयके लिए भंग नहीं कर सकती थीं।

प्रीस्टले अपना वैज्ञानिक कार्य करनेमें बहुत जल्दबाज़ थे। इसी कारण यद्यपि उनकी कुछ खोजें बहुत महत्त्वकी हैं, किन्तु उनके सारे कार्य शृंखलाबद्ध नहीं हैं।

प्रीस्टलेकी अधिकांश खोजें आकस्मिक हैं। पहले से किसी उद्देश्यको निश्चयकर उन्होंने कोई खोज नहीं की। दूसरे साधारण मनुष्योंमें और उनमें अन्तर केवल इतना ही था कि आकस्मिक खोजें सामने आने पर

उन्होंने उन्हें छोड़ नहीं दिया किन्तु अपने निरीक्षणसे कोई परिणाम मालूम करनेका प्रयत्न किया। इस स्वभाव के कारण वह प्रत्येक खोजका कुछ अर्थ समझ सके और इसीसे सन्तुष्ट होकर वह उत्साहपूर्वक नये कामोंमें जुटे रहे।

यद्यपि आजके रासायनिकोंको प्रीस्टलेके कुछ रासायनिक विचारों पर हँसी आती है क्योंकि वे गलत हैं, किन्तु फिर भी हम सबको उनके प्रयोग करनेके उत्साह की प्रशंसा करनी पड़ती है। वह रसायनके एक सच्चे विद्यार्थी थे और प्रयोगों द्वारा प्रकृतिके छिपे रहस्योंको ढूँढ़ निकालनेमें सदा प्रयत्नशील रहे। यद्यपि प्रयोगोंके परिणामोंको समझनेमें उन्होंने अधिकतर गलतियाँ कीं किन्तु स्वयं उनका प्रयोगोंमें जुटा रहना ही प्रशंसनीय है। उन्होंने जो खोजें कीं वे आगे चलकर कई महत्व-पूर्ण कार्योंके लिए आवश्यक और आधारभूत सिद्ध हुईं।

प्रीस्टलेको विज्ञानकी खोज करनेमें इतना अधिक उत्साह था कि वह अपना सारा रुपया अपनी प्रयोगशाला में लगा दिया करते थे।

प्रीस्टलेका स्वभाव बहुत मधुर था। वह अपने कुटुम्बके लोगोंके बीचमें बैठकर बातें भी करते थे और लिखनेका कार्य भी करते जाते थे।

जिस समय में प्रीस्टले थे उस समयमें सचमुच प्रीस्टले ऐसे मनुष्यकी ही अधिक आवश्यकता रसायनको थी। अपनी अनेक महत्वपूर्ण खोजों द्वारा उन्होंने वैज्ञानिकों का ध्यान खोजकी एक नई दिशाकी ओर लगाया और साथ ही इस दिशामें आगे नई खोजें करनेके लिए वैज्ञानिकोंको आवश्यक सामान भी सिपुर्द किये। आगे लैवासियरकी जीवनीसे तुम्हें यह मालूम होगा कि लैवासियर ने प्रीस्टलेकी खोजोंका सहारा लेकर रसायनमें कितना महत्वपूर्ण कार्य किया।

परमाणु बमकी प्रथम परीक्षाके परिणाम

(ले०—श्रीमती रानी टंडन, एम० एड०)

परमाणु बमकी शक्तिका अनुमान करनेके लिए उसकी जो प्रथम परीक्षाकी गई उसका वर्णन यहाँ किया जाता है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकेगा कि इस बममें कितनी भयंकर विध्वंसकारी शक्ति होती है।

इसी वर्षकी १६ जुलाईके दिन न्यू मेक्सिकोके एलोमोगोरडे (Alomogorde) हवाई अड्डेके एक एकान्त भागमें परमाणु बमकी पहली परीक्षाकी गई थी। बमके सब हिस्सोंको यहाँके एक पुराने मकानमें लाकर रक्खा गया। एक इस्पात (Steel) की मजबूत मीनार खड़ी की गई और इस मीनारकी बुर्जी पर बम बनाकर रख दिया गया। बमको विस्फोटन करने का प्रबन्ध यहाँसे ५ मील दूरी पर बने नियन्त्रण केन्द्र (Control Station) में रक्खा गया। नियंत्रण केन्द्रमें लगभग एक दर्जन वैज्ञानिक जमीनके नीचे बने एक सुरक्षित स्थानमें एकत्रित हुये। १६ जुलाईके दिन प्रातःकाल निश्चित समय पर नियन्त्रण केन्द्रसे बमको विस्फोटित किया गया। विस्फोट होते ही एकदम इतनी तेज रोशनी उठी जैसी संसारमें कभी देखी नहीं गई थी। इस रोशनी ने उस स्थानको इतना प्रकाशित किया कि तेजसे तेज धूप भी किसी स्थानको इतना प्रकाशित नहीं कर सकती। इसके बाद काफी देर तक एक बड़ी भयंकर गर्जनकी आवाज आती रही। इसके साथ ही आँधीका एक बहुत तेज झोंका भी आया जिसने नियन्त्रण केन्द्रके बाहर खड़े हुए दो मनुष्योंको दूर फेंक दिया। विस्फोटन स्थानसे बहुरंगोंका बहुत-सा धुआँ भी तेजीसे ऊपर उठा जो ४० हजार फीट ऊपर पहुँच गया। इस्पातकी मीनार पूरी की पूरी वाष्पीभूत होकर न जाने कहाँ विलीन हो गई। जहाँ मीनार थी वहाँ एक बड़ा गढ़ा बन गया। इस आँधीके झोंके ने दक्षिणी ऐरीजोनाके (Arizona, S.) जो वहाँसे लगभग २५० मील दूर है,

मकानोंकी खिड़कियोंको भी झनझना दिया। विस्फोटन स्थानसे ५० मील दूरीके मकान तो इस प्रकार हिल रहे थे जिस प्रकार एक भयंकर भूकम्पके समय हिलते हैं।

बमके विस्फोटनसे उत्पन्न हुई रोशनी इतनी तेज थी कि ६ मील दूर पर खड़ा हुआ मनुष्य तुरन्त अंधा हो गया। अलबुकर्कमें जो १२० मील दूर है, एक अन्धी लड़की ने भी प्रकाशकी यह तेज़ी अनुभवकी। जैसे ही बमसे निकली हुई ज्योति ने आकाशको आलोकित किया वह चीख उठी 'यह क्या हुआ?' विस्फोटनकी गर्जना उसे इसके बाद सुनाई दी।

हमारी पृथ्वी

(ले०—श्री छोटुभाई सुथार)

अगर हम किसीसे पूछें कि पृथ्वीका आकार कैसा है तो वह तुरन्त कहेगा, "गोल है" और पृथ्वीके गोलाकारका सबूत किताबसे रटी हुई बातोंके रूपमें दे देगा। पुराने समयमें जनताके बड़े भागको यह ज्ञात नहीं था कि पृथ्वी गोल है। अब भी ऐसे अनेक मनुष्य हैं जो वास्तवमें पृथ्वीको गोल नहीं समझ सकते हैं। उन्हें हमारे प्रमाणोंकी सचाईमें भी शंका है। नाविक मैगेलेनने सारी पृथ्वीकी परिक्रमा करके पृथ्वीका गोल स्वरूप ज़ाहिर किया था। मगर उससे पहले भी लोग समझते थे कि पृथ्वी गोल है। समुद्रके किनारे रहने वाले ग्रीस और फीनिसियाके नाविकोंको तारोंके वेधसे मालूम था कि पृथ्वी गोल है। पुराने भारत के ज्योतिर्विदों और पंडितोंको भी यह बात भलीभाँति मालूम थी। २२०० साल पहले ख्यातनामा पाश्चात्य वैज्ञानिक इरेटोस्थिनीस ने हिसाब लगाकर पृथ्वीका घेरा (परिधि) २४,००० मीलका निश्चय किया था। अगर हम चाहें तो आज भी उसी ढङ्गसे* पृथ्वीका घेरा नाप सकते हैं।

किन्तु पृथ्वी गेंदकी तरह बिलकुल गोल नहीं है। उसके ध्रुव प्रदेश सेब या नारंगीकी तरह कुछ चिपटे हैं। पृथ्वी अपनी धुरी (अक्ष) पर लट्टूकी तरह घूमती है। इस तरह घूमनेसे उसका विषुववृत्त प्रदेश उभरा होता है और ध्रुव प्रदेश चिपटा। पृथ्वीके इस प्रकार चिपटा होनेका परिमाण १/२९८ का है। पृथ्वीकी ध्रुवीय त्रिज्या ३९४९.९९ मील और विषुववृत्तीय त्रिज्या ३९६३.३४ मील है। दोनों त्रिज्याओंमें १३.३५ मीलका फर्क है। यों पृथ्वीके ध्रुवीय व्याससे उसका विषुववृत्तीय व्यास २६.७० मील ज्यादा लम्बा है।

पृथ्वी अपने अक्षपर चक्कर लगानेके साथ-साथ सूर्यके चारों ओर भी परिभ्रमण करती है। सूर्यके इर्द-गिर्द वह हर सेकण्डमें १८.५ मीलके (=क़रीब १००,००० फुटके) भीम वेगसे घूमती है। उसका अपनी धुरीपर घूमनेका वेग बहुत कम (विषुववृत्तके प्रदेशमें हर घंटेमें १००० मीलका या हर सेकण्डमें १५०० फुट का) है। अगर पृथ्वी अपनी धुरी पर बहुत वेगसे घूमती होती तो पृथ्वीतलकी अनेक चीजें ऐसे घूमनेके कारण छूटककर आकाशमें चली जातीं। आज पृथ्वीका वेग इतना ज्यादा नहीं है कि चीजोंको आकाशमें फेंक दे, फिर भी उसीके कारण चीजों के वज़नमें फरक अवश्य पड़ता है।

जिसे हम वस्तुका 'वज़न' कहते हैं वह वास्तवमें उस चीज़ परके पृथ्वीके गुरुत्वाकर्षणके बलकी नाप होती है। पृथ्वीके केन्द्रसे ज्यों-ज्यों दूर जायँ त्यों त्यों यह गुरुत्वाकर्षण बल कम होता जाता है। इसी कारण पृथ्वीके ध्रुव प्रदेशमें एक चीज़का जो वज़न होगा उसकी तुलनामें विषुववृत्त प्रदेशमें उसी चीज़का वज़न कुछ कम होगा, क्योंकि ध्रुव प्रदेशकी अपेक्षा विषुववृत्त प्रदेश पृथ्वीके केन्द्रसे कुछ दूर है। प्रयोगोंसे मालूम हुआ है कि ध्रुव प्रदेशमें २०० पौंड वज़न दिखलाने वाली चीज़का वज़न विषुववृत्त प्रदेशमें १९९ पौण्ड होता है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि यह पूरा एक पौंड वज़नका फर्क अकेले गुरुत्वाकर्षणसे नहीं पड़ता। एक पौंड वज़न फर्क मेंसे १/३ पौंडका फरक गुरुत्वाकर्षणसे पड़ता है और बाकी २/३ पौंडका फर्क पृथ्वीके अपनी धुरीके

*देखिए भूगोलकी कोई अच्छी किताब।

इर्द-गिर्द घूमनेके कारण पड़ता है। पृथ्वीके अपने अक्ष पर घूमनेका एक और भी असर पड़ता है।

पृथ्वीका धुरी भ्रमण हमेशा एक-सा नहीं है। उसका वेग धीरे धीरे कम होता जा रहा है। फलस्वरूप एक शताब्दिमें ·००१ सैकण्डके बराबर दिनमान लम्बा होता जाता है। इसके अलावा एक दूसरा असर सूर्य, चंद्र और ग्रहोंके तेज़ीसे घूमते दिखायी पड़नेका होता है। पृथ्वीके अक्ष-भ्रमण-वेगको इस प्रकार घटानेमें ज्वारभाटा मदद देता है। फिर भी एक बात निश्चित है कि यह भ्रमण फर्क पृथ्वीके व्यासमें बार-बार घट-बढ़ होनेकी वजहसे ही होता है। पृथ्वीके अन्दरूनी बलोंके कारण उसके व्यासमें फर्क पड़ता रहता है, किन्तु यह फर्क कुछ फुट तक ही सीमित है। पृथ्वीके अक्ष-भ्रमणसे अक्षांशोंमें भी फर्क पड़ता है, किन्तु वह बहुत ही सूक्ष्म (०''·४० विकला तकका) है।

पहलेके लोग समझते थे कि पृथ्वी स्थिर है और उसके चारों ओर आकाशी चँदोवा फैला हुआ है। तारे इस आकाशी चँदोवेमें टँगे हुये दीपक हैं। वे दिन-रात पृथ्वीके चारों ओर घूमते रहते हैं। आज भी अनेक अपढ़ लोगोंकी ऐसी ही कल्पना है। उनको पृथ्वीके धुरी-भ्रमण का कुछ खयाल ही नहीं है। हाँ, इतना वे ज़रूर जानते हैं कि २४ घंटेका दिन रात होता है। वास्तवमें पृथ्वीके अपनी धुरी पर चक्कर काटनेकी वजहसे ही दिन-रात होते हैं। पृथ्वीका अक्ष-भ्रमण साबित करनेके लिये फोको नामके एक वैज्ञानिक ने, आजसे सौ साल पहले (ई० स० १८५६ में) फ्रांसके पारी नगरमें एक सुन्दर प्रयोग कर दिखाया था। उसने वहाँके यान-दि-आन (सर्वदेव मन्दिर) के गुम्बजसे १२ इंच व्यासका एक गोला २०० फीट लम्बे तारसे लटकाया था। नीचे १२ फुट व्यास का वृत्त बनाकर उसपर बालू फैला दिया था। लोहेके गोलेके ठीक नीचे एक पिन लगाया था। बालू इस प्रकार रख दी गई थी कि गोलेके हर एक आंदोलनके समय, नीचेकी पिन रेतको थोड़ी ही छू सके, और उस पर लकीरके रूपमें अपनी चालकी निशानी छोड़े। चलते समय गोलेको झटका लगनेसे बचानेके लिए कठघरेकी रेल के साथ उसे सूतके डोरेसे बाँध दिया गया था। घंटों तक गोलेको डोरेसे बँधी हुई स्थितिमें स्थिर रहने दिया था। बादमें डोरेको जला दिया गया। लोहेका लङ्गर चलने लगा। थोड़ी देरमें मालूम हुआ कि लोहेका लङ्गर हर एक आन्दोलनमें रेती पर नया ही रास्ता काटता है। इसका मतलब यह हुआ कि लङ्गर हरएक समय अपने चलनेकी दिशा बदलता है। अब प्रश्न यह हुआ कि लंगरको जिस ढंगसे लटकाया था उसमें उसकी दिशा बदलनेका कोई भी कारण था ही नहीं, तो यह दिशा परिवर्तन हुआ किस वजहसे? वास्तवमें पृथ्वी और उसके साथ देव-मन्दिरका फर्श आकाशमें घूम रहे थे और उसी कारण लंगरका आन्दोलन हर समय नया रास्ता काटता रहता था।

हम चाहें तो आज भी यह प्रयोग कर सकते हैं। पृथ्वीके-अक्ष भ्रमणके और भी सबूत दिये जाते हैं। पृथ्वी पर ऊँचेसे गिरता हुआ पदार्थ थोड़ा पूरबकी ओर गिरता है। जायरो कम्पास (Gyroscope) नामका एक यंत्र बनाया गया है। इस जायरोस्कोपमें एक लट्टू होता है। यह लट्टू अपनी धुरी पर घूमता रहता है। लट्टूकी धुरीको एक फ्रेममें बिठाया गया है और इस फ्रेमको एक चूल या कील पर इस प्रकार बिठाया गया है कि वह किसी भी दिशामें घूम सके। जायरो कम्पास हरएक जहाज़में लगाया जाता है। जहाज़को चलानेसे पहले लट्टूकी धुरीको उत्तर-दक्षिण दिशामें कर दिया जाता है। बादमें लट्टूको चलाया जाता है। जहाज़के दायें बायें घूमने पर भी लट्टूकी धुरीकी दिशा नहीं बदलती। कारण उसकी दिशा बदलनेवाला कोई बल वहाँ मौजूद है ही नहीं। अगर कोहरेमें जहाज़ने दिशा भूलकर गलत दिशामें चलना शुरू किया तो जायरोस्कोपकी धुरीकी दिशा जहाज़में बदलती हुई नज़र आयेगी और तब नाविक लोग तुरन्त समझेंगे कि उनका जहाज़ गलत दिशामें जा रहा है। इसी प्रकार पृथ्वी पर गायरोस्कोपको चलाकर देखने से हमें मालूम होगा कि पृथ्वी अपनी धुरीके इर्दगिर्द चक्कर काट रही है।

पृथ्वीकी गतियोंकी बातोंका उल्लेख छोड़कर यहाँ हम पृथ्वी-विषयक दूसरी बातें समझ लेनेकी कोशिश करेंगे।

पृथ्वी सूर्यमंडलकी सदस्या है। सूर्य परिवारमें बुध और चन्द्रको छोड़कर बाकी सभी ज्योतिष्कोंके वातावरण है। मगर पृथ्वीका वातावरण उन सभीसे निराला है। शुक्र और दूसरे ग्रहोंमें वातावरण है, किन्तु उसमें ओषजन (oxygen) पृथ्वीकी अपेक्षा बहुत कम है। कुछ ग्रहोंका वातावरण अपारदर्शक है इसलिये हम दूरदर्शक यंत्रोंकी मददसे भी उनके भीतरी भेदको नहीं जान पाये हैं। सूर्यपरिवारमें मंगल ही एक ऐसा ग्रह है जिसपर वातावरण होते हुए भी हम उसका भू-पृष्ठ देख सकते हैं। अगर पृथ्वीको मंगल परसे देखा जाय तो जैसा हम वृहस्पतिको देखते हैं वैसी नज़र आयेगी। किन्तु शुक्र पर से दूरदर्शक द्वारा या चन्द्र परसे कोरी आँखोंसे पृथ्वीको देखा जाय तो पृथ्वीका आधा भाग बादलोंसे घिरा हुआ मालूम पड़ेगा। खास करके इन बादलोंका विपुववृत्त प्रदेशमेंका जमघट बहुत चमकीला और ऋतु-परिवर्तन-के साथ-साथ सरकता हुआ मालूम पड़ेगा और इस जम-घटके दोनों ओर बिना बादलके श्याम प्रदेश नज़र आएँगे। इनसे भी दूर, थोड़े-थोड़े बादलोंवाला ध्रुव तक पहुँचता हुआ प्रदेश दिखाई पड़ेगा। चन्द्र या शुक्र परसे दूरबीनकी सहायतासे देखने पर भी पृथ्वीके निवासियोंकी बहुत ही कम हलचल दिखाई पड़ेगी हाँ, बड़े-बड़े नगर, ज्वालामुखी पहाड़ और जंगल ज़रूर नजर आयँगे।

पृथ्वीके चारों ओर कम्बलके रूपमें हमारा वायुमंडल है। यह वायुमंडल २०० मील तक ऊँचे फैला हुआ है। हम उसमें ३४ मील तक ही प्रवेश पा सके हैं। फिर भी उसकी अनेक बातोंकी जानकारी हमें प्राप्त हुई है। पृथ्वी-का वातावरण एक प्रकारसे हमारा मित्र है तो दूसरे ढंग से शत्रु भी। वातावरणसे ही पृथ्वी परके प्राणियोंका जीवन टिक सका है। अगर हवा न हो तो जीवन असंभा-वित है। वातावरणसे एक और फायदा यह है कि सूर्यमेंसे निकलनेवाली अनेक मृत्यु किरणोंको वह पृथ्वी तक पहुँचने नहीं देता है और यों पृथ्वीके जीवों को कुछ आराम पहुँचता है। किन्तु इसी वातावरणके कारण हम दिनमें तारे नहीं देख सकते। इसके अलावा तारोंकी प्रकाश-किरणोंको यह वातावरण मोड़ देता है। और नाविकोंकी तकलीफ बढ़ा देता है। हमारा यह अनुभव है कि दिन भर में ग्रहणकी गयी गरमीको, पृथ्वी का वायुमंडल, रात्रिके समय आकाशमें नहीं जाने देता है और हमें ठंढकसे बचाकर मित्रका कार्य करता है; किन्तु इसी गरमी संग्रहके कारण पृथ्वीकी सतहके संपर्कमें आनेवाले वायुके स्तरोंमें ऐसी भयंकर गति उत्पन्न होती है कि उसके कारण बड़ा कष्ट होता है। आकाशमें

चन्द्रसे पृथ्वी कैसी दिखती है।

घूमती अनेक उल्कायें पृथ्वी पर आ टूटती हैं उनमेंसे अधिकांश पृथ्वीके वायुमंडलके साथ रगड़ खाकर जल उठती हैं। यों वातावरणके कारण हम उल्कापातकी मारसे बच जाते हैं। किन्तु इसी रगड़के कारण वाता-वरणमें भारी बिजलीकी शक्ति पैदा हो जाती है जो पृथ्वी के जीवोंको कभी-कभी मृत्युका आस्वाद चखाती रहती है। इतना होने पर भी इसी वातावरणके कारण हम प्रकृतिके अनेक अनुपम दृश्य—मेरुज्योति, इंद्रधनुष, नीला आकाश, उषा, संध्याका प्रकाश, टिमटिमाते रंग-

बिरंगे तारे और उल्कापात आदि—देख पाते हैं। अगर वातावरण न होता तो इनमेंसे कुछ भी न दिखाई पड़ता और शायद, तब ज़िन्दगी (अगर वैसी कोई सूरत हो तो) नीरस, फीकी और बोझिल मालूम होती।

वातावरणके भीतर हमारा १४ मील तकका प्रवेश हुआ है, किन्तु पृथ्वीके भीतर दो या तीन मील तक ही जाया जा सका है। मगर इस सीमित पृथ्वी-प्रवेश ने भी हमारे सम्मुख अनेक रहस्योंको खोल रखा है।

गुरुत्वाकर्षण, पृथ्वीके चुम्बकीय क्षेत्रकी दिशा, शक्तियोंमें पड़ने वाले फर्क और भूकम्पकी लहरोंके प्रसरणोंके अभ्याससे यह मालूम हुआ है कि पृथ्वीका अंतःस्तल घनपदार्थका बना हुआ है। पृथ्वीके केन्द्रसे २१५० मील त्रिज्या तकका—पृथ्वीके आधे हिस्से तक का—भूभाग लोहा और निकेलकी ठोस धातुका बना हुआ है। यह धातु पानीके हिसाबसे १०-१२ गुना भारी है। इस भीतरी भूभागका द्रव्य बहुत घना और ठोस है। पृथ्वीका सामान्य घनत्व ५.५२ का है। पृथ्वीके ऊपरी (बाहरी) हिस्सेका घनत्व २.७१ है। ज्यों-ज्यों हम पृथ्वीमें नीचे जाते हैं त्यों-त्यों ऊपरके द्रव्यके दबावसे नीचेके द्रव्यका घनत्व बढ़ता जाता है। पृथ्वीके भीतरका पदार्थ यदि द्रव या अर्धद्रव ही मान लें तो भी वह घनत्वके कारण भारी होनेकी वजहसे पृथ्वीके केन्द्रकी ओर ही जानेका प्रयत्न करेगा और यों पृथ्वीका मध्यभाग और भागोंकी अपेक्षा ज्यादा वज़नदार होगा। ज्योतिषियों ने हिसाब लगाकर देखा है कि पृथ्वीका यह मध्यभाग फौलादसे भी ज्यादा कठिन और ठोस है। भूकम्पकी तिरछी लहरें इस भागमें होकर फैल नहीं सकतीं। इस भीतरी द्रव्यके उष्णता मानका अभी तक पता नहीं चला है। पृथ्वीमें १०० फुट नीचे जाने पर १° का तापमान बढ़ता है, इस हिसाबसे देखें तो पृथ्वीकी सतहके नीचे ५० मीलकी दूरी पर ही अति उत्तप्त उष्णता मान होना चाहिये।

पृथ्वीके इस लोहे-निकलके मध्यभागके ऊपर १०७५ मील तक, लोहा और पत्थर मिश्रित द्रव्यकी एक परत है। इस परतका घनत्व ५.५ है। इस परतके ऊपर करीब ७०० मील तककी पत्थरकी चट्टानोंकी एक और परत है जिसका घनत्व ४.३ है। इस शिलावरणके ऊपर करीब २५ मील चौड़ाईका पृथ्वीका बाहरी आवरण है। पृथ्वीका यह बाहरी आवरण बहुत ही अस्थिर है और वह नीचेके शिलावरणके ऊपर थोड़ा बहुत सरकता रहता है। इसी कारण लम्बे समयके अर्सेमें कहीं-कहीं ज़मीनके बड़े बड़े खंडोंका सरक जाना स्वाभाविक है।

अब प्रश्न होगा कि यह पृथ्वी आयी कहाँ से ? क्या वह पहलेसे ही मौजूद है ? कई एक वैज्ञानिकोंका कहना है कि पृथ्वी सूर्यमें से पैदा हुई है। लाखों वर्ष पहले हमारे सूरजके नज़दीक एक और तारा घूमता-घामता आ पहुँचा था। उसने आकर्षणके बल सूरजके द्रव्यमें खलबली मचा दी थी। फलस्वरूप सूर्यके द्रव्यमें (जो आज तक भी वायु रूप है) जोरोंका ज्वार उठा। बादमें वह तारा धीरे धीरे सूरजसे दूर सरकता गया और सूरजमें से ज्वारके रूपमें ऊपर ऊँचेको उठा हुआ द्रव्य सूरजमें वापिस पड़नेके बजाय आकाशमें टूट पड़ा और उसके ग्रह, उपग्रह बने और वे सभी, बादमें सूर्यके चारों ओर परिभ्रमण करने लगे। कई विज्ञानी इस बातसे सहमत नहीं हैं। कुछ भी हो, मगर एक बात निश्चित है कि पृथ्वीका जन्म हुआ था और कालांतरमें उसकी सतह धीरे-धीरे ठंडी पड़ गयी है। इस बातसे सभी सहमत हैं। पृथ्वीकी आयु कितनी है वह अभी निश्चित नहीं हो
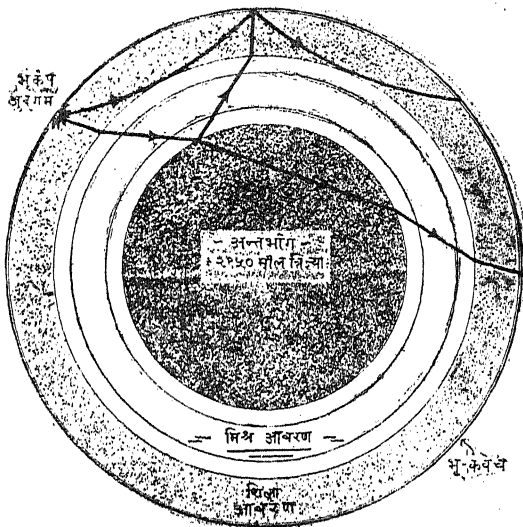
सकी है फिर भी वह २० अरब सालसे कम आयुकी न होगी ऐसा माननेमें आता है।

जिस प्रकार बिना पृथ्वीमें बहुत अन्दर घुसे उसके केन्द्रकी बातें जाननेमें आई हैं उसी प्रकार बिना उससे बाहर गये और तराजूमें तौले उसका वज़न निकाला गया है। हमारी पृथ्वीका वज़न है ६६ × १०^२० या ६,६००, ०००,०००,०००,०००,०००,००० टन। इतनी भारी हमारी यह पृथ्वी आकाशी पिंडोंके सामने बिलकुल क्षुद्र है फिर भी इस छोटी दुनियाके बहुत ही छोटे किंतु बुद्धिशाली जीवों ने—मनुष्यों ने—पृथ्वीकी और अनेक आकाशी पिंडोंकी अनेक प्रकारकी गतियोंको नापा है। और उनमें होने वाले अन्तरोंका अच्छी तरहसे हिसाब लगा करके पंचांग जैसी हर रोजके कामकी चीज़ बनायी है। इतना ही नहीं किन्तु अपने चारों ओरके वायु-मंडलको भेदकर, दूर-दूरके ज्योतिर्पिंडोंकी अनेक बातों का—उनकी भीतरी बनावट, वातावरण, अन्तर, भ्रमण-गति, आयु, तापमान आदिका—पता लगा करके हमारे ज्ञान और दृष्टिको बहुत ही ऊँचा उठाया है। धन्यास्ते जीवाः।

युद्ध, विजय और विज्ञान

(ले०—सर शान्तिस्वरूप भटनागर एफ०, आर० एस०)

प्रसन्नताकी बात है कि युद्ध समाप्त हो गया है। हम भारतवासी इस युद्धमें विज्ञान द्वारा की जाने वाली सेवाओंको भूल न जायँ तथा वैज्ञानिकको भविष्यमें उपेक्षाका शिकार न बनने दें इस बातको ध्यानमें रख कर एक बार फिर मैं "प्रीवर" के बारम्बार उद्धृत शब्दोंको उद्धृत करना चाहता हूँ।

"एक छोटा-सा नगर था जिसमें थोड़े-से लोग रहा करते थे। एक बार एक राजा उसपर चढ़ आया और उसे चारों ओरसे घेर लिया।

'इस नगरमें एक निर्धन बुद्धिमान भी था जिसने अपनी बुद्धिके द्वारा इसकी रक्षाकी। फिर भी किसीको उस निर्धन व्यक्तिका स्मरण नहीं रहा।"

इस पर मैंने कहा, "शारीरिक बलसे बुद्धिबल बड़ा है, फिर भी निर्धनकी बुद्धिमत्तापूर्ण बातोंसे लोग घृणा करते हैं और उसकी बातें नहीं सुनते।"

जो भी हो, इस बातकी बहुत अधिक सम्भावना जान पड़ती है कि शान्तिकी स्थापनामें विज्ञानका स्थान इस युद्धमें विजय प्राप्ति करनेकी अपेक्षा कहीं अधिक आशाप्रद एवं सफल सिद्ध होगा तथा आगे चलकर उस नवीन प्रजातन्त्र द्वारा, जिसका विकास इस युद्धसे होगा, विज्ञान पर और भी अच्छे ढंगसे विचार किया जायगा।

वैज्ञानिकोंका प्रशंनीय कार्य

युद्धके विगत साढ़े पाँच वर्षोंमें विज्ञान तथा टेक्नोलाजीके क्षेत्रमें होने वाली कुछ अद्वितीय सफलताओंके एक संक्षिप्त विवरण द्वारा इस बातका दिग्दर्शन भली भाँति किया जा सकता है कि वैज्ञानिकों पर जिन बातोंका भार डाला गया था उन्हें उन लोगों ने किस योग्यता के साथ सम्पन्न किया है। फ्रांसके पतनसे ब्रिटेन बड़ी ही निराशापूर्ण स्थितिमें पड़ गया। उस पर शत्रु द्वारा तत्काल आक्रमण किये जानेका भय उपस्थित हो गया था। शत्रुके बमवर्षकोंके कारण उसके नगरों पर आतंक छा गया। उस समय वहाँ साज-सामान तथा युद्ध-सामग्री का इतना उत्पादन नहीं हो रहा था जो युद्धको सफलता पूर्वक चलानेके लिए पर्याप्त होता। इसके साथ ही अमेरिकासे अधिक उपयोगी सामग्री लाने वाला अटलांटिकका जलमार्ग, जो ब्रिटेनके अस्तित्वके लिए भी बहुत महत्वपूर्ण था, एक ऐसे राष्ट्र द्वारा हृदय हीनतापूर्वक छोड़े गये पनडुब्बी युद्धसे भीषण खतरेमें पड़ गया था जिसकी वैज्ञानिक शक्तियों तथा सम्मानका सूर्य उन्नतिके शिखर पर पहुँच चुका था। ब्रिटेन स्वयं अपना बचाव करनेमें संलग्न था।

राडरका आविष्कार

ब्रिटिश वैज्ञानिकोंके लिए अपने देशकी सहायताके लिए यह संकेत था। ब्रिटेनकी हवाई आक्रमणोंसे बिलकुल

---

*देखो 'सूर्यमंडलकी उत्पत्ति'

विध्वंस होनेसे बचानेके लिए उन्होंने राडरका आविष्कार किया जो वर्तमान युद्धके अत्यन्त आकर्षक आविष्कारोंमें से एक है। रेडियोके सिद्धान्तोंको कौशलके साथ व्यवहार में लाकर उन्होंने मृत्यु और विध्वंसका नग्न तांडव करने वाले बमवर्षकोंके निर्दिष्ट स्थल पर पहुँचने और आक्रमण करनेके पूर्व ही उनका पता लगा लिया। ब्रिटेनके हवाई युद्धमें राडर ने ही विजय दिलायी और उसका श्रेय ब्रिटिश वैज्ञानिकोंको ही है।

आगे चलकर प्रतिभावान जर्मन वैज्ञानिकों ने उड़ाका विहीन विमानों तथा राकेट बमोंसे इंग्लैंडका विनाश करना चाहा तब फिर राडर ने ही देशकी रक्षाकी। विस्तृत समुद्रमें पनडुब्बियों तथा चुम्बकीय सुरंगोंका सामना जलगोलों द्वारा और जहाज़ोंमें तार लपेट कर किया गया और इस प्रकार मूल्यवान जलमार्गोंकी रक्षा की गई।

शीघ्र ही अमेरिका इग्लैंड का मित्र बन गया। दोनों देशोंकी वैज्ञानिक प्रतिभा संगठित करके युद्धके काममें लायी गई। इसका परिणाम यह हुआ कि दोनों देशोंकी अनुसन्धान प्रयोगशालाओंसे आक्रमण और बचावके श्रेष्ठ शस्त्रास्त्र तैयार होकर बाहर निकलने लगे।

वायुयान निर्माणमें क्रान्ति

ब्रिटिश प्रयत्न और अमरीकाकी उत्पादन प्रणालीने वैज्ञानिक सफलताओंके इतिहासमें एक नये संसारकी रचना कर दी। आश्चर्यजनक प्लास्टिक पदार्थ पालीथीन और "सिलीकोन" की खोजकी गयी और उन्हें व्यापक रूपसे रक्षा सम्बन्धी टेलीफोन, तार और समुद्री तार-व्यवस्थाओं, हवाई जहाजों, विद्युत-उद्योग तथा बहुतसे कामोंमें लाया गया। कृत्रिम रबड़के कारण, जो अमरीका और जर्मन वैज्ञानिकोंकी प्रतिभाकी देन है, प्राकृतिक रबड़की कमीकी वह भारी समस्या दूर हो गयी, जो मलाया, बर्मा और डच पूर्वी द्वीपसमूह पर जापान का अधिकार हो जानेसे पैदा हो गयी थी। अन्तर्दहनशील इंजनोंमें नये सुधारोंके कारण वायुयान हल्के और अधिक प्रभावशाली बन गये। इसीसे मित्रराष्ट्र जर्मनी और जापान पर घातक हवाई आक्रमण करनेमें सफल हो सके। समुद्रके पानीसे मैग्नीशियम निकालनेकी नयी सफल प्रणालीके उन्नत हो जाने तथा मिट्टीसे अलूमीनियम निकालने और मैग्नीशियम तथा अलूमीनियमके नये मिश्रणोंकी खोजके कारण भी, जिन्हें मैग्नालूमीनियम कहते हैं—मित्रराष्ट्रोंको शत्रु पर आक्रमण करनेमें बड़ी सहायता मिली। ड्यूरेलूमीनियमके कारण हल्के और तेज़ रफ्तार वाले बमवर्षक तथा लड़ाकू वायुयान बनाने में सहायता मिली और इससे वायुयानोंके निर्माणमें एक क्रान्ति पैदा हो गयी। स्थल और जलमें काम आनेवाले टैंक, मलबरी बन्दरगाहों तथा जीप मोटर गाड़ियोंसे मित्र-राष्ट्रोंको यूरोप पर सफल आक्रमण करने और युद्धको शीघ्र समाप्त करनेमें सहायता मिली। व्यापारिक नौसेना को खुले समुद्रोंमें बहुतसे संकटोंका सामना करना पड़ता था, किन्तु जीवन-रक्षा सम्बन्धी नयी तरकीबें उनके लिए ईश्वरीय देन साबित हुई। अग्निवर्षकोंके कारण जापानियोंको उनके गुप्त स्थानोंमें नष्ट कर दिया गया। ऋतु सम्बन्धी परिस्थितियोंकी वैज्ञानिक भविष्यवाणीसे वायुसेनाओंको अपना बचाव करनेमें मदद मिली और उसके कारण यूरोप पर आक्रमण करनेके दिन अमूल्य सहायता मिली।

युद्धकालमें जर्मनीने जो वैज्ञानिक उन्नति की है वह भी मित्रराष्ट्रोंकी अपेक्षा कम आश्चर्यजनक नहीं है। उनके वी–१ और वी–२ तथा अन्य शस्त्रास्त्रोंके सम्बन्धमें समाचारपत्रोंमें काफी छप चुका है। ब्रिटिश सैनिक सूत्रोंने जर्मनीसे जो समाचार भेजे हैं उनसे अब पता चलता है कि बिलकुल ही नये शस्त्रास्त्रोंके उत्पादनके सम्बन्धमें अन्त तक जोरदार अनुसंधान और विकास होते रहे थे। वी-१ और वी-२ से भी अधिक ज़हरीले शस्त्र विकासकी उन्नत अवस्थामें पहुँच गये थे। एक नयी गैस, जिसमें कुछ वस्तुएँ इतनी घातक थीं कि जिनका अभी तक पता भी न था, वास्तवमें तैयार कर ली गयी थीं।

शल्य चिकित्सा के क्षेत्रमें उन्नति

युद्धके विनाशात्मक क्षेत्रमें होनेवाली इन उन्नतियोंके साथ-साथ मानवोपयोगी वैज्ञानिक विषयों, औषध तथा चीर-फाड़के क्षेत्रमें भी ऐसी आश्चर्यजनक सफलताएँ

देखनेमें आयीं, जो पहले कभी देखनेमें नहीं आयी थीं। वास्तवमें यह जानना खुशी की बात है कि युद्धने अन्य विषयोंकी अपेक्षा इन वैज्ञानिक विषयोंको कुछ कम प्रेरणा प्रदान नहीं की है।

युद्धकालमें डाक्टरी क्षेत्रमें जो उन्नति हुई है उनका महत्व केवल शान्तिकालमें ही सराहा जा सकता है। शरीरमें रक्त प्रवेश करनेकी विधियोंकी पूर्णता और रक्तके वर्णहीन जमनेवाले ठोस भागका भारी मात्रामें उत्पादन करनेके फलस्वरूप अगणित प्राणियोंकी रक्षा की जा सकी। पेनीसिलिनकी खोज हमारे वैज्ञानिकोंके अथक प्रयत्नों की सर्वोत्कृष्ट सफलता थी। रोगों पर विजय पानेके लिए अब तक जो रासायनिक भेषज तैयार हो चुके थे उनमें सिन्थिडाइन तथा एच० ११ जैसी अन्य औषधियाँ भी अब सम्मिलित की जा सकती हैं। प्लास्टिक शल्य चिकित्सा की नवीन विधियोंने पंगु सैनिकोंमें आशाका संचार कर दिया। कृमिनाशक क्षेत्रके युद्धकालीन अन्य वैज्ञानिक आश्चर्योंमें, डी. डी. टी. और जैम्माक्सेनने भी मानवजाति की रक्षा करनेमें पेनिसिलिनसे कुछ कम सहायता नहीं की है।

यदि डी० डी० टी० कृमिनाशक तरल पदार्थ नहीं होता, तो आज विश्व अपने आपको भयंकर महामारियोंके चंगुलमें पाता। १९४३ में इसने नेपल्सके साढ़े बारह लाख व्यक्तियोंकी रक्षा की, जब टाइफस द्वारा विनष्ट हो जानेका भय उनके समक्ष उपस्थित हो गया था। साथ ही साथ युद्धके कितने ही प्रदेशोंमें मलेरिया और कृमियोंसे फैलनेवाली बीमारियोंसे मित्रराष्ट्रीय सैनिकोंको सुरक्षित रखनेका आश्वासन भी इस तरलसे प्राप्त हो गया।

वैज्ञानिक सफलताओंकी इस लम्बी सूचीमें खाद्यपदार्थोंका सुखाना और जोड़ा जा सकता है। युद्धकालके संकटके दिनोंमें इसके द्वारा जहाजोंसे लाखों टन अधिक सामग्री भेजना सम्भव हो सका और युद्धसे क्षत देशोंके करोड़ों क्षुधार्त नागरिकोंके प्राण बचाये जा सके।

परमाणु बम

और, विज्ञानकी इस समस्त उन्नतिके बाद, अब उसकी सर्वोच्च सफलताके रूपमें हमें परमाणु बम प्राप्त हुआ है। पदार्थकी परमाणु शक्तिका उपयोग ध्वंसात्मक तथा रचनात्मक कार्योंके लिए कर सकनेका मनुष्यका स्वप्न सत्य सिद्ध हुआ है। यह उचित ही है कि यह महान् घटना, इस युद्धकी विजयका यश विज्ञानको प्रदान करे।

युद्धके सिलसिलेमें, किस देशकी कितनी वैज्ञानिक देन है, इसका हिसाब लगाना कठिन कार्य है। युद्धको मित्रराष्ट्रोंने एक दूसरेके प्रति निकटतम सहयोगसे लड़ा और जीता है। कई बार एक देशके वैज्ञानिक अनुसन्धानके परिणामको लेकर दूसरे देशने उस विषयमें और उन्नति की है तथा उससे लाभ उठाया है। उदाहरणार्थ, ब्रिटेनने पेनिसिलिनका आविष्कार किया, पर अमेरिकाने बड़ी मात्रामें उसके उत्पादनकी व्यवस्था की; जिसके फलस्वरूप समस्त संसारको प्रचुर मात्रामें पेनिसिलिन उपलब्ध हो सकी। इसी प्रकार, बृटेन द्वारा आविष्कृत 'राडर' के पर्याप्त उत्पादनकी व्यवस्था भी अमेरिकामें ही की गयी। जर्मनोंने भी राडर-सम्बन्धी अनुसन्धान कार्य जारी रक्खा और कुछ विशेष जानकारी प्राप्त की। गुप्त 'बाम्ब साइट' अमरीकन आविष्कार था, किन्तु अन्य मित्रराष्ट्रोंसे वह गुप्त नहीं रक्खा गया। सभी अवसरों पर, दोनों ही देशोंमें वैज्ञानिक अनुसन्धानके सम्बन्धमें पूर्ण सहयोग जारी रहा।

परमाणु बम इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। इस शक्तिशाली अस्त्रके आरम्भिक अनुसन्धानके दिनों, अमरीका और इंगलैंडके बीच नियमित रूपसे उपलब्ध जानकारी का आदान-प्रदान होता रहा है। एक बात और है। यद्यपि अधिक आश्चर्य-जनक वस्तुओंका आविष्कार इंग्लैंड तथा अमरीकामें हुआ है, किन्तु अन्य देशोंने भी रक्षा, रसदकी पूर्ति तथा आक्रमणकी समस्याएँ हल करनेमें विज्ञानसे काफी काम लिया है।

भारतकी सहायता

समझा जाता है कि परमाणु बमके अनुसन्धान-कार्यके सम्बन्धमें ५० करोड़ पौंड धन व्यय किया गया। इसके अतिरिक्त, वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसन्धान कार्यके

लिए अमरीका, आस्ट्रेलिया तथा कनाडामें इससे कहीं अधिक धन व्यय करनेकी स्वीकृति दी गयी। इसकी तुलनामें भारतको अनुसन्धान कार्यके लिए कुल ५ लाख रुपया वार्षिक की मंजूरी मिली थी, पर अब वह बढ़ा कर १५ लाख वार्षिक कर दी गयी है। यह धन सब प्रकार के अनुसन्धान-कार्यके लिए है, अर्थात् युद्ध सम्बन्धी देशव्यापी अनुसन्धानकार्य का खर्च भी इसमें सम्मिलित है। किन्तु इन सब तथा अन्य अड़चनोंके होते हुए भी भारतने युद्धोद्योगसे विज्ञान सम्बन्धी जो सहायता प्रदान की है, वह प्रशंसाके योग्य है।

युद्धके पूर्व वर्षोंमें भारतकी वैज्ञानिक तथा औद्योगिक उन्नतिका सच्चा चित्र इसी पृष्ठ भूमिके साथ खींचा जा सकता है और साथ ही यह भी स्मरण रखनेकी बात है कि युद्धारम्भके समय देशके उद्योगधंधे एकदम पिछड़ी हुई दशामें थे। जब भारतको, समस्त एशियाके लिए रसद पहुँचानेका केंद्र बनानेका समय आया, तो देश तथा सरकारने अनुभव किया कि रासायनिक, धातु-सम्बन्धी तथा इंजीनियरिंग उद्योगोंके सम्बन्धमें, केवल आयोजित अनुसन्धानके द्वारा ही, युद्ध संचालनके निमित्त देशके बृहत् साधनोंका उपयोग किया जा सकता है। अतएव इस विचारके फलस्वरूप, अप्रैल १९४०में वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसन्धान-मंडल (बोर्ड) की और तदनंतर वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसन्धान परिषद्की स्थापना की गयी। युद्धकालमें भारतीय वैज्ञानिक अनुसन्धान तथा उन्नतिकी कहानी, अधिकांश इसी संस्थाकी तथा देशकी ऐसी ही अन्य संस्थाओंके अनुसन्धानके कार्यकी कहानी है।

अनुसन्धान समितियाँ

सरकारसे केवल ५ लाख रुपयेकी सहायता मिलने पर, भारतीय वैज्ञानिकोंने उस नये भारतका निर्माण करना आरंभ किया जो युद्धकालीन आवश्यकताओंकी पूर्ति कर सके। जो अनुसन्धान युद्धको जारी रखनेके लिए तथा विभिन्न उद्योगोंका निर्माण करनेके लिए उपयोगी थे उनकी योजनाएं बनाने और उनको कार्यान्वित करनेके लिए बीस अनुसन्धान समितियाँ बनाई गयीं। भारतीय विश्व-विद्यालयोंको अनुसन्धान योजनाओं पर व्यय करनेके लिए धन दिया गया। वैज्ञानिक और औद्योगिक डायरेक्टरोंकी रसायनशालाओंका सूत्रपात हुआ जो परिषद की अनुसंधान सम्बन्धी कार्रवाइयों का केन्द्र हो गयीं। बैंगलोर, कलकत्ता, बम्बई और मद्रास स्थित अन्य केन्द्रोंने भी, जिन्हें वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद्से धन-सम्बन्धी सहायता दी गई थी, परिषद्की अनुसंधान योजनाओंको सफल बनानेमें अत्यधिक भाग लिया।

दो सौसे भी अधिक अनुसन्धान

इस परिषद्ने अपने अल्पकालीन जीवनमें २००से भी अधिक अनुसंधान-विषयक समस्याओंकी छानबीन की है। वैज्ञानिक और औद्योगिक डायरेक्टरोंकी रसायनशालाओं ने भारतीय उद्योग और देशके युद्ध-प्रयत्नोंकी वैज्ञानिक शाखाको अनेक महत्त्वपूर्ण सहायताएँ प्रदान की हैं। उदाहरणार्थ उनमेंसे कुछका उल्लेख किया जा सकता है।

युद्धके कारण लगभग समस्त संसार तथा विशेषतया भारतमें धातु-सम्बन्धी अभावकी समस्या बड़ी पेचीदा हो गई थी। अनेक उद्योगोंमें धातुओंके स्थान पर प्लास्टिक पदार्थ काममें आने लगा और इससे अनेक प्रकारके सुधार भी हुए। अमरीका, इंग्लैंड और जर्मनीमें प्लास्टिक पदार्थ कृत्रिम रालसे बनाये जाते थे। जिन कच्चे पदार्थोंकी आवश्यकता रालके लिए पड़ती थी, वे भारतमें पर्याप्त मात्रामें प्राप्त नहीं किये जा सकते थे। जिन देशी साधनोंसे प्लास्टिक प्राप्त किया जा सकता था उनकी छानबीन वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधानके डायरेक्टरोंकी रसायनशालाओं तथा लाख अनुसंधानशाला और अन्य स्थानों पर की गई और इस सम्बन्धमें विभिन्न प्रकारकी सफलताएँ प्राप्त की गईं। जेटीसन टैंक और प्लास्टिकके डिब्बे, जिन पर पेट्रोलका प्रभाव नहीं पड़ता था, जूट और चपड़ेसे बनाये गये। गन्नेकी खोईके प्लास्टिक की उन्नति मकान, आदि बनानेके लिए की गई। चपड़ा और जूटका प्रयोग रेशेके तख्ते, धातु-विहीन डिब्बे, परिचयकारी बिल्ले आदि पदार्थों के बनानेमें किया गया। विद्युत यन्त्रोंके लिए सींगका प्लास्टिक तैयार किया गया। रेंडीके तेल और चीथड़ोंसे ट्यूब बनाये गये। भिलावा और अखरोटसे इनैमल,

पीतलकी वार्निश, अन्य वार्निशें तथा प्लास्टिक बनाए गए। तैल प्लास्टिक बनानेके लिए तिलहनके तैलोंकी छानबीन की गई।

तिलहनके तेलोंका उपयोग

भारतमें तिलहनकी पैदावार सबसे अधिक होती है। युद्धके कारण भारतके तिलहनका निर्यात समुद्रपारके लिए बंद हो गया और इससे तिलहनके व्यापारको भारी धक्का लगा। वनस्पति तेलोंसे मशीनोंकेपुर्जों में चिकनाई लानेवाले तेल अन्तर्दहनशील इंजनोंके लिए ईन्धन की उत्पत्ति एक और नयी प्रकारकी सफलता थी जो विभिन्न औद्योगिक आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए प्राप्त की जा सकी। इन अनुसन्धानोंके परिणाम-स्वरूप देशमें हजारों गैलन वनस्पति तेलका उत्पादन किया गया। इन अनुसन्धानोंका परिणाम चीनको भी बता दिया गया और यह समझा जाता है कि चीनने भी वनस्पति तेलसे लाभ उठाया है।

सरकार और कारखानोंको यह सुझाया गया कि युद्धकालमें भारतको जिपसमसे गन्धकाम्ल (सल्फ्यूरिक ऐसिड) तैयार करनेकी उन्नति करनी चाहिए तथा बिहार के ताँबेके कारखानोंमें तैयार किये गये सल्फर डाइआक्साइडके उपयोग पर जोर देना चाहिए। इन प्रस्तावोंका प्रधानतः इस आधार पर विरोध किया गया कि उन्हें कार्यान्वित करनेमें बहुत खर्च होगा। परिषद्के अनुरोधसे भारतीय भूगर्भ-पर्यवेक्षण विभाग द्वारा बलूचिस्तानकी गंधककी खानोंका उचित समय पर उपयोग किये जानेसे खानसे निकले हुए गंधकके शोधनकी प्रक्रियाकी उन्नतिमें सहायता मिली और भारतमें युद्धकालमें गंधकके सम्बन्धकी चिन्ताजनक स्थितिको सुधारनेमें भी कुछ सहायता मिली। यह आशा की जाती है कि परिषद्के अन्य प्रस्ताव शान्ति-कालमें कार्यान्वित किये जायँगे।

विदेशों से औषधियों और रंगोंका आना बन्द होनेके कारण उन्हें प्राप्त करनेके उद्देश्यसे देशके भीतरी साधनोंके उपयोगके लिए अन्वेषणकी योजनाएँ कार्यान्वित होने लगीं। बूचड़खानेसे रद्दी मांससे शरीरकी ग्रंथियोंसे प्राप्त होनेवाले पदार्थ तैयार किये गये। अटोक्सिल और कार-बर्सान सुप्राप्य कच्चे मालसे तैयार किये गये। देशके जंगलों से विभिन्न वनस्पतिजन्य रंग तैयार किये गये।

परिषद्के अनुरोधसे टाटा कम्पनीने चीरफाड़के शस्त्रों में काममें आनेवाला इस्पात बनाना प्रारम्भ किया।

परिषद्के और सरकारके रक्षासंघटनों, बृटिश वायु सेना और अमरीकन वायुसेनाके बीच घनिष्ट सहयोग स्थापित होने पर परिषदने अपनी प्रयोगशालाओंमें बहुत-सी ऐसी समस्याओंके समाधानका प्रयत्न किया जो युद्ध संचालनके लिये तत्काल महत्वपूर्ण थीं। गैससे रक्षा करने वाला कपड़ा पूर्णतया देशी पदार्थोंसे बनानेके लिये एक सफल विधिका आविष्कार किया गया। यह विधि अन्य मित्रराष्ट्रोंको भी बताई गई। इस प्रकार बहुत-सा कपड़ा इस देशमें बनाया गया। अधिक खिंचावके प्रज्वलन-कारी तारकी परीक्षा करनेका यन्त्र, पेट्रोल रखनेकी धातु-की टंकियोंकी वार्निश, रबड़की टंकियोंकी मरम्मतके लिये सीमेंट, ऐसी नालियाँ जिनपर पेट्रोलका असर नहीं होता, पेट्रोल रखनेके पात्र, पेट्रोल पम्प डायफ्राम, पेट्रोलकी टंकियोंको बन्द करनेके पदार्थ, स्मोक कैंडिल, संकट-सूचक-यंत्र, खाद्य गरम रखनेके पात्र, पानीको ढूँढ निकालने वाले मिश्र पदार्थ और नारियलकी जटासे तैयार होनेवाला पैकिंगका सामान ये सब चीज़ें वायुसेनाके लिये तैयार की गयीं। दक्षिण पूर्वी एशियाके रणक्षेत्रमें सब सेनाओंके लिए पाइरेथ्रम क्रीम और पाइरेथ्रम इमल्सिफायर तैयार किये गये। एक प्रकारके आग बुझानेवाले यन्त्र और चमकदार रंग, जो परिषद्की प्रयोगशालाओंमें तैयार किये गये थे, रक्षा कार्योंमें व्यापक रूपसे काममें लाये गये। सैनिक सूचना-विभागके लिए बहुतसे वैज्ञानिक उपायोंका आविष्कार किया गया।

और बहुत-से औद्योगिक पदार्थ और क्रियाएँ देशके उद्योगको वैज्ञानिक क्षेत्रमें प्रबल बनानेके लिये आविष्कृत की गयीं। इनमें खलीसे, विशेषतः मूँगफलीकी खलीसे, बननेवाले रेशे, नीम, ब्राह्मी, ककरसिंघी, भिलावा आदि से बननेवाली रासायनिक औषधियाँ, प्रड्यूसर गैस प्लांट, चमड़ा कमानेकी अर्धकृत्रिम चीज़ें, देशी साधनोंसे बने कृमिनाशक पदार्थ, अन्य पौधोंसे बनाया जानेवाला रबड़ और प्राकृतिक गोंदोंका उपयोग है।

नव भारतका निर्माण

यदि शान्तिकालमें वैज्ञानिक और औद्योगिक अन्वेषणके कार्यको समर्थन प्राप्त हुआ तो इन उपर्युक्त पदार्थों के और प्रस्तावित राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं और विश्वविद्यालयोंके बढ़े हुये वैज्ञानिक कार्योंके फलस्वरूप नव भारतका निर्माण होगा जो सुखी, सन्तुष्ट और कार्यों और विचारोंमें आगे बढ़ा हुआ होगा।

समुद्रमें उत्पन्न होनेवाली घास का उपयोग

[लेखक—श्री जान लैंग्डोन डेवीस]

यदि किसी साधारण ब्रिटेनवासीसे पूछा जाय कि युद्धकालमें उसने कितनी बार समुद्रमें उत्पन्न होनेवाली घास खायी है, तो सम्भवतः वह कहेगा कि कभी नहीं, क्योंकि इसकी आवश्यकता कभी आईही नहीं। पर वास्तवमें बात ऐसी है नहीं। युद्धकालमें ब्रिटेनके कितने ही खाद्य-पदार्थों, औषध तथा शृंगारके काम आनेवाली वस्तुओंमें समुद्रसे उत्पन्न होनेवाली घास और सोडियम एलिजिनेंट, जो इस घाससे निकाला जाता है, का सम्मिश्रण होता था।

युद्धने ब्रिटेनको बता दिया है कि आयात किये जानेवाले रासायनिक पदार्थोंके स्थान पर ऐसे पदार्थोंको ढूँढ निकालनेकी आवश्यकता है, जो उनके स्थानमें काममें लाये जा सकें। ब्रिटेनके समुद्रतटों पर उगनेवाली समुद्री घास कई उपयोगोंके लिये बहुत अच्छी सिद्ध हुई है और इसी कारण शान्तिकालमें भी इसका उपयोग कम नहीं होगा।

आज सोडियम एलजिनेंट बृटेनका एक विशाल उद्योग बन गया है और मैन्युकोलके नामसे बेचा जाता है। सोडियम एलजिनेट तरल पदार्थोंमें गाढ़ापन और लसलसाहट उत्पन्न करता है। मैन्युकोल, आइसक्रीममें बर्फके रवे पैदा नहीं होने देता और उसे चिकना रखता है। यद्यपि आइसक्रीममें इसका हजारवाँ हिस्सा ही होता है।

युद्धकालमें ब्रिटेनमें शृंगारकी वस्तुओंकी कमी पड़ गयी थी। त्वचा पर लगायी जानेवाली क्रीम ही एक ऐसी वस्तु थी, जिसकी सबसे अधिक आवश्यकता अनुभव की गयी। अतः मैन्युकोलके सम्मिश्रणसे एक ऐसी क्रीम तैयार की गयी जो कुछ शस्त्रोंके विशेष कारखानोंमें काम करनेवाले व्यक्तियों को होनेवाले चर्मरोगोंके लिये अमोघ सिद्ध हुई। आज जो व्यक्ति गोलाबारूदके कारखानोंमें काम कर रहे हैं और चर्मरोगोंको रोकनेमें इस क्रीमका प्रयोग कर रहे हैं, कल वे ही समुद्रकी घाससे बनी इसी क्रीमको शृंगारकी वस्तुके रूपमें प्रयोग करेंगे। मैन्युकोल नकली दाँत बनाने और दाँतोंकी झिरियाँ भरनेके काम भी आता है।

भविष्यमें, प्राकृतिक रबड़ अथवा कृत्रिम रबड़ कौनसा प्रयोगमें लाया जायगा, यह अभी विवादास्पद बात है, परन्तु यह निश्चित है कि रबड़को मज़बूती प्रदान करनेमें इसका प्रयोग अवश्य किया जायगा।

रोगनोंमें और कपड़ोंमें सफाई और चमक लानेके लिये भी इसका प्रयोग किया जा सकता है। वे सब लोग जिनके समक्ष वस्तुओंको गाढ़ा करनेकी समस्या है, धीरे-धीरे इस वस्तुसे परिचित हो जायँगे और इसपर प्रयोग करने लगेंगे।

रसायन विज्ञानका एक और चमत्कार

निर्माणके क्षेत्रमें 'पर्स पेक्स' की बहुमुखी उपयोगिता

(ले०—श्री जान लैंगडन डेवीज)

अभी कुछ ही दिन पहले घोषणा हुई थी कि 'पर्स पेक्स' नामक पदार्थ अब ब्रिटेनमें नागरिक उपयोगके लिए भी उपलब्ध हो सकेगा। अतएव, हम आशा कर सकते हैं कि नागरिकोंके लाभके लिए, 'पर्स पेक्स'से तैयारकी जा सकने वाली अनेक उपयोगी वस्तुओंके उत्पादनका क्रांतिकारी युग शीघ्र आ रहा है।

आखिर, यह 'पर्सपेक्स' है क्या? सम्भवतः अभी बहुत कम लोग इस पदार्थ और उसकी उपयोगिताको, पूर्णतया समझ सके हैं।

औद्योगिक रसायन विज्ञानकी अनेक नवीन सफलताओं की भाँति, पर्सपेक्सकी उपयोगिता और उसके व्यवहार क्षेत्रकी विस्तृत जानकारीका बहुत-कुछ श्रेय गत महायुद्ध को ही प्राप्त है। यही एक पदार्थ था, जो शीशेके ही समान अथवा उससे कुछ अधिक पारदर्शी था, किन्तु शीशेकी तरह जिसके जल्द टूट जानेका डर नहीं था और आवश्यक आकारोंमें जिसे आसानीसे ढाला अथवा मोड़ा जा सकता था। पर्स पेक्सके इन्हीं गुणोंसे लाभ उठाकर, युद्धकालमें, उससे विमान-चालकके 'केबिन', पर्यवेक्षणके गुम्बद, तोपोंकी बुर्जियाँ आदि बनानेका काम लिया गया। किन्तु शान्तिकालमें उससे नागरिक उपयोगिताकी विविध वस्तुओंके तैयार किये जानेकी सम्भावना है।

भाँति-भाँतिकी वस्तुएँ

पारदर्शक होनेके अतिरिक्त, 'पर्स पेक्स' का और अद्‌भुत गुण यह है कि उसके द्वारा प्रकाशकी किरणें मोडी जा सकती हैं। अतएव, 'पर्स पेक्स से ऐसी मुड़ी हुई (खमदार) नलियाँ तैयारकी जा सकती हैं, जिनके भीतर प्रकाशकी किरणें दौड़ाकर डाक्टर मनुष्यके मुँह, कान आदि छिद्रोंके किसी भी अँधेरे भागका परीक्षण कर सकते हैं। चूँकि पर्स पेक्स आसानीसे मोड़ा अथवा ढाला जा सकता है, इसलिए खमदार खिड़कियाँ तैयार करनेके काममें उसका विशेष रूपसे उपयोग किया जा सकता है। एक बहुत अच्छी बात यह है कि पर्स पेक्स में रंग मिलाकर उसे किसी भी रंगका बनाया जा सकता है और उसकी पारदर्शक शक्ति वैसे ही कायम रह सकती है। अतएव, कमरों, आलमारियों, दरवाजों की सजावटके लिए उसकी प्रकाशवाहिनी रंगीन खमदार नलियाँ, देखनेमें बहुत सुन्दर लगेंगी।

एक दुर्गुण

पर्स पेक्सका एक दुर्गुण यह है कि उसपर खरोंच के चिह्न जल्द पड़ जाते हैं, उसका तल शीशेकी भाँति कठोर नहीं होता। यही कारण है कि शीशेकी तरह दरवाजों और खिड़कियोंके उसके फलक पूरी सफलताके साथ अभी नहीं बनाये जा सकते। फिर भी शो-केस, आदिके पट अथवा फलक बनानेके काममें उसका उपयोग भलीभांति किया जा सकता है, क्योंकि उनमें हाथ अथवा किसी अन्य वस्तुसे आघात पहुँचनेके अवसर कम होते हैं, जिससे उनके खुरचनेकी संभावना भी कम हो जाती है। आशा है कि पर्स पेक्सके तलमें खरोंच पड़नेका यह दुर्गुण कुछ ही समयके भीतर दूर किया जा सकेगा और तब उसकी उपयोगिता कहीं अधिक बढ़ जायगी। उस दशामें पर्स पेक्सका उपयोग चश्मोंके लेन्स बनानेमें लाभदायक सिद्ध होगा और शीशेकी जगह उससे दरवाजों और खिड़कियोंके फलक निर्भयतासे बनाये जा सकेंगे।

इसमें संदेह नहीं कि अनेक प्रकारसे काम में लाये जा सकनेके कारण, पर्स पेक्स भांति-भांतिकी वस्तुएँ तैयार करनेके काममें आ सकेगा। काट, छाँट, मोड़ और ढालकर उसे हम कोई भी अनुकूल वस्तु बनानेके काममें ला सकेंगे। यह बहुत सुविधा-जनक बात है कि 'पर्स पेक्स' को हम लकड़ीकी ही भांति आरोंसे चीर सकते हैं और रुखानीसे उसे काट तथा बर्मेसे उसमें छेदकर सकते हैं। इसी प्रकार वह किसी साँचेमें ढाला और पत्तरोंमें फैलाया जा सकता है तथा वायुसे किसी भी आकारमें फैलाया जा सकता है। उसकी चादरें गरमकर, किसी भी जगहसे हाथ द्वारा मोड़ी जा सकती है। सम्भव है कि 'पर्स पेक्स का उपयोग अधिक बढ़ने पर, कुछ समय बाद, उसकी भांति भांतिकी कलापूर्ण वस्तुएँ भी तैयारकी जा सकें। वस्तुकलाके क्षेत्रमें तब एक नवीन पदार्थ अपने सौंदर्यसे लोगोंमें एक नयी रुचिका प्रादुर्भाव करेगा। निस्सन्देह, संश्लेषणात्मक रसायन विज्ञानने संसारको विपुल संभावनाओंसे संयुक्त, एक अभिनव एवं उपयोगी पदार्थ प्रदान किया है।

मलेरियाकी नयी औषधि

ले०—श्री जोज़ेफ केलमर

ब्रिटिश वैज्ञानिकों और कृषि-विशेषज्ञोंके अध्यवसाय के फलस्वरूप मलेरियाकी नई औषधि प्राप्त हुई है जो एक प्रकारके गेंदे का फूल है। यह गेंदा वनस्पति विज्ञान में अंग्रेजीमें क्रिसैन्थिमम कहलाता है। इसका फूल केनिया में पैदा किया जाता है और उसे सुखाकर उसका व्यापार किया जाता है। सूखा हुआ यह फूल पाइरेथ्रम कहलाता है।

उपर्युक्त पौधा नया नहीं है। ईरानके लोग हजारों नहीं, तो सैकड़ों वर्षोंसे अवश्य ही उसे जानते हैं। यूरोपमें एक आर्मीनिया-निवासी गत शताब्दीमें यह पौधा ले आया। सन् १८२८में उसका लड़का व्यापारके लिये इसे बोने लगा। रासायनिकोंने उसके फूलका विश्लेषण किया जिसका उपयोग पहले खटमलों और कीड़ों को मारनेमें किया जाता था। विश्लेषणमें उन्हें उग्र गंध वाले इस फूल का वह अंश ज्ञात हुआ जिससे हानिकर कीड़े मकोड़े मर जाते हैं। इस अंश का नाम पाइरेथ्रिन रखा गया।

नब्बे वर्ष बाद या सन् १९१८ तक यह विदित हुआ कि इस फूलसे पौधों आदि परके कृमिकीटभी नष्ट होते हैं। इससे कृमि-सम्बन्धी रसायन-विज्ञान की एक बड़ी समस्या का समाधान हो गया। बगीचों के कृमिकीटों को नष्ट करने के लिए पहले जो विष काममें लाये जाते थे वे मनुष्यों और पशुओंके लिएभी हानिकर होते थे। जूं और अन्य हानिकर कृमिकीटोंसे भरे हुए चारागाहों पर उन्हें मार डालनेके लिए यदि कोई विष छिड़का जाता था तो चरने वाले जानवरोंको भी उससे हानि पहुँचती थी। पाइरेथ्रम से या उपर्युक्त पौधेके फूलसे घरोंमें, बगीचोंमें, मैदानोंमें और पशुओंके शरीरसे चिपटे रहने वाले कृमिकीट ही नष्ट होते हैं। इस फूलका विष, जो पाइरेथ्रिन कहलाता है, तरल रूपमें और चूर्णके रूपमें भी होता है।

प्रथम महासमरसे पूर्व उपर्युक्त आर्मियन द्वारा उपर्युक्त फूलसे तैयार किया गया काकेशियन कृमिनाशक चूर्ण विशेषतः डालमेशियामें बनता था। सन् १९१४ तक डालमेशिया ही उसकी सारी मांग पूरी करता था। प्रथम महासमरमें जापानने पाइरेथ्रिन विष बनानेके उद्योग का संगठन किया और इस उद्योगमें व्यवहारतः एकाधिकार प्राप्त किया। वह प्रतिवर्ष यह विष १२ हजार टन बनाता था। पर शीघ्रही उसका प्रतिस्पर्धी उत्पन्न हो गया। यह ब्रिटिश साम्राज्य था, विशेषतः केनिया। वहां सन् १९३३से इस फूलकी खेती होने लगी और सन् १९३९ तक वहां तीन हजार टन पाइरेथ्रिन बनने लगा। इस सफलता का कारण यह था कि केनियामें पैदा किये जाने वाले फूलोंमें १.३ प्रतिशत विष और जापानमें पैदा किये जाने वाले फूलोंमें ९ प्रतिशत विष होता था। इस विषके उत्पादकोंमें संसारमें केनिया का स्थान दूसरा अवश्य था पर वह वहां तैयार किया गया विष गुणमें प्रथम था। जापान द्वारा तैयार किया हुआ विष घटिया था। केनिया में तैयार किये गये विषके उत्तम होनेका एक कारण यह था कि वहां इन फूलोंके अच्छे बीज बोये गये जो ब्रिटिश कृषि विभागसे प्राप्त किये गये थे।

प्रारम्भ पाइरेथ्रिन छोटे पैमाने पर स्थान-स्थान पर उत्पन्न किया जाता था जिससे उस स्थानके पासके कहवेके पौधों परके कृमिकीट नष्ट करनेके लिये औषधि सुगमतासे प्राप्त हो। दस वर्षसे पहले तक लगभग ४०० एकड़ भूमि में इस फूलकी खेती होती थी। आज ५५ हजार एकड़ जमीनमें इसकी खेती होती है। समुद्रकी सतह से पांच हजारसे आठ हजार फुट तककी ऊँचाई पर इसकी खेती होती है। इसके लिये विशेष प्रकारकी जमीनकी आवश्यकता नहीं होती। बहुत अच्छी जमीनमें उसकी खेती करने में वहाँ घास उगती है और वह निकालनी पड़ती है। इसकी खेतीमें या तो बीज बोये जाते हैं या कलमें लगायी जाती हैं। बीजसे फूल पैदा होनेमें छ या सात सप्ताह लगते हैं और कलमोंसे फूल पैदा होनेमें दो या तीन मास अवश्य लगते हैं।

पौधोंमें फूल लगने पर वे तोड़ लिये जाते हैं और विशेष स्थानोंमें १२० डिगरी गरमीमें धीरे-धीरे सुखाये जाते हैं। १ टन फूल १२ घंटोंमें सुखाये जाते हैं। सुखाये जानेमें फूलों का तीन चौथाई वजन कम हो जाता है। बाद को उनका विष निकाला जाता है।

यह विष अब उन स्थानों परभी छिड़का जाता है जहां मलेरियाके मच्छर होते हैं जब यह डी० डी० टी० कृमि-नाशक विषके साथ छिड़का जाता है तब यह बहुतही लाभकारी सिद्ध होता है।

युद्धके बाद संसारमें मलेरिया और हानिकर कृमिकीटों को नष्ट करने का प्रयत्न फिर प्रारंभ होगा तब डी० डी० टी०के साथ मिलानेके लिये पाइरेथ्रमके विषकी मांग बहुत बढ़ सकती है। इस विषयमें एक ऐसा गुण है जो डी० डी० टी०में नहीं है। यह मधुमक्खियों जैसे लाभ-कारी प्राणियों को नष्ट नहीं करता। डी० डी० टी० ऐसे प्राणियों कोभी नष्ट कर डालता है।

सिगरटी तमाकू की नयी किस्म

भारतकी गणना, तमाकू पैदा करनेवाले संसारके प्रमुख देशोंमें की जाती है और सिगरेटोंके काममें आने-वाली तमाकू यहां प्रतिवर्ष अत्यधिक मात्रामें पैदा होती है। सिगरटी तमाकू भारतकी लाभ-कर फसलोंमें एक मुख्य फसल है।

उत्तम श्रेणीकी सिगरटी तमाकूके लिए आवश्यक है कि उसके पत्तोंमें नीबू का सा आबदार पीलापन हो और वे वजनी तथा अच्छे रेशेके हों, ताकि प्रति एकड़ उनसे अधिकसे अधिक मात्रामें सिगरेटोंके लिए सिझाई गयी तमाकू तैयार हो सके। यह भी आवश्यक है कि इस प्रकार की तमाकूकी गंध मधुर हो, सरलतासे वह आग पकड़ सकती हो और 'निकोटीन' नामक विष का उसमें अधिक अंश न हो। सर्वोत्तम सिगरटी तमाकूके पत्तों का मूल्य साधारण श्रेणीकी तमाकूके पत्तोंसे कहीं अधिक होता है।

अब तक इस प्रकारकी सर्वश्रेष्ठ तमाकू अमरीका की एक किस्म 'हेरिन्स स्पेशल' समझी जाती रही है और सिगरटी तमाकू पैदा करने वाले भारतके समस्त प्रदेशोंमें इसीकी खेती होती है। किन्तु केंद्रीय कृषि अनुसन्धान-शाला नयी दिल्ली की, गंटूर-स्थित तमाकू अनुसन्धान शाखामें किये गये अन्वेषण-कार्यके परिणामस्वरूप 'अमरेलो नं०५' नामक सिगरटी तमाकूकी एक बड़ी ही अच्छी किस्मका पता चला है। यह अमरेलो श्रेणीकी तमाकूकी एक अच्छी किस्म है, जो लम्बे परीक्षण कार्यके द्वारा अनुसन्धानशालाके फार्मों तथा कृषकके खेतों, दोनोंमें समान रूपसे अत्यधिक सफल तथा हेरिन्स स्पेशलसे कहीं अच्छी सिद्ध हुई है।

हेरिन्स स्पेशलकी अपेक्षा अमरेलो तमाकूकी फसल कम समयमें तैयार होती है और प्रति एकड़ इसका परता अधिक होता है। इसके सिझानेमें परिश्रम और समय कम लगता है।

खादके रूपमें पोटाश की आवश्यकता

वृद्धिके लिए पौधों को नाइट्रोजन, फासफेट, तथा पोटाश नामक तीन मुख्य पोषक तत्त्वोंकी आवश्यकता रहती है। वैज्ञानिकोंका कथन है कि यदि पौधों को इनमेंसे एक अथवा अधिक तत्त्व प्राप्त नहीं हो सकता, तो उनकी बाढ़ मारी जाती है। यदि इनमेंसे किसी एक का अभाव होता है, किन्तु अन्य सब पर्याप्त मात्रामें होते हैं, तोभी पौधा उस लाभसे वंचित रहता है जो इन तीनों तत्त्वोंके सम्मिलित पोषणसे उसे प्राप्त होता है। ऐसी दशामें भी पौधेकी वृद्धि अंशतः मारी जाती है और उसके विकासका क्रम विदूषित हो जाता है। इसीलिए, सामान्य कृषि-उत्पादन के लिए खाद द्वारा संतुलित पोषणकी आवश्य-कता रहती है।

भारतके विभिन्न भागोंकी मिट्टीके रासायनिक विश्ले-षण से मालूम हुआ है कि उसमें फास्फेट तथा पोटाशकी अपेक्षा नाइट्रोजनकी अधिक कमी है। इस जानकारीके आधारपर आम तौरसे समझा जाने लगा है कि देशकी मिट्टीमें फास्फेट तथा पोटाश पर्याप्त मात्रामें मौजूद हैं और केवल नाइट्रोजनकी पूर्ति कतिपय कृत्रिम खादों को मिट्टीमें मिला कर सरलतासे की जा सकती है। किन्तु बात ऐसी नहीं है। इस प्रकारकी आंशिक खाद-व्यवस्था का फल प्रथम कुछ वर्षों में तो अच्छा होता है, पर कुछ समय बाद इससे भूमिमें पोषक तत्त्वों का संतुलन बिगड़ जाता है, जिसके परिणामस्वरूप भूमिकी उर्वराशक्ति क्षीण हो जाती है और इसके विपरीत, ऐसी पूर्ण खादके उपयोग से, जिसमें नाइट्रोजन फासफेट तथा पोटाश, तीनों ही मिश्रित हों, सर्वोत्तम फल प्राप्त हुआ है।

अनुसन्धानशालामें खादोंके सम्बन्धमें जो प्रयोग किये गये हैं, उनसे मालूम हुआ है कि फलीदार पौधों (दालों) के वर्गको फासफेटकी खादसे बहुत अधिक लाभ होता है और उसी भूमिमें दूसरे वर्ष गेहूँ आदि अनाज बोनेसे, उनकी फसल भी अच्छी होती है। अन्य फसलोंके लिए पोटाश खादकी उपयोगिताके सम्बन्धमें खोज जारी है। यद्यपि दिल्लीकी मिट्टीमें पोटाशकी कमी नहीं है, तो भी देखा गया है कि चारेके काममें आनेवाली कई किस्मकी फलीदार घासकी उपज, पोटाशकी खाद देनेसे बढ़ जाती है। यह भी देखा गया है कि विभिन्न फसलोंके लिए विभिन्न मात्रामें इस पोषक तत्त्वकी आवश्यकता होती है और जिन पौधोंको आवश्यक मात्रामें यह खाद प्राप्त नहीं होती उनकी जड़ें कमजोर पड़ जाती हैं। इससे समझा गया है कि पोटाशकी कमी अथवा उसके पूर्ण अभावका असर पौधेके बाहरी भागसे अधिक उसके भूगर्भ स्थित भाग अर्थात् जड़ों पर पड़ता है और उनकी वृद्धि मारी जात है। फलीदार पौधोंकी पोटाश तथा फास्फेट सम्बन्धी आवश्यकताओंके विषयका अध्ययन जारी है और आशा है कि अनुसन्धानशालाकी एतत् सम्बन्धी खोज महत्वपूर्ण सिद्ध होगी।

दो महिला वैज्ञानिक

(ले०—श्रीमती मेरियन स्पेयर)

रायल सोसायटी (राजकीय समिति) ने अपने लंबे इतिहासमें पहली बार दो महिला वैज्ञानिकोंको अपना फेलो चुना है।

सन् १८३८ में महारानी विक्टोरियाको सोसाइटी ने अपना फेलो चुना था। तबसे कोई महिला उसकी 'फेलो' नहीं चुनी गयी थी। उपर्युक्त दो वैज्ञानिक महिलायें श्रीमती कैथलीन लोन्सडेल और कुमारी मारजोरी स्टीफेनसन हैं। प्रथम महिला भौतिक विज्ञानकी और दूसरी बायोकेमिस्ट्रीकी पंडिता हैं। अब वे अपने नामके बाद एफ० आर० एस० लिख सकती हैं।

इन दो महिला वैज्ञानिकोंके रायल सोसाइटीका 'फेलो' चुने जानेसे वैज्ञानिक क्षेत्रोंमें बड़ी हलचल मची हुई है। अतः यह प्रश्न किया जा सकता है कि इस घटनाका महत्व क्या है। यह भी पूछा जा सकता है कि रायल सोसाइटी कैसी संस्था है।

रायल सोसाइटीका इतिहास

रायल सोसाइटीका उद्देश्य भौतिक शास्त्र, गणित आदिके ज्ञानकी अभिवृद्धि है। सन् १६६२ में बादशाह द्वितीय चार्लस ने इसे अधिकारपत्र प्रदान किया। तबसे यह रायल सोसाइटीके नामसे प्रसिद्ध है।

वैज्ञानिकोंके एक दल ने इस संस्थाकी नींव डाली। वे उस समयकी समस्याओं पर विचार करनेके लिये एकत्रित हुए थे। बादशाह चार्लसको इस सभाका उद्देश्य सूचित किया गया था और उन्होंने उसका समर्थन किया था तथा उसकी पूर्तिमें सहायता करनेके लिये तैयार थे।

श्रीमती लोन्सडेल और कुमारी स्टीफेनसन वैज्ञानिकों की लम्बी और प्रसिद्ध पंक्तिमें बैठायी गयी हैं। रायल सोसाइटी अपने जन्मकालसे ही वैज्ञानिक प्रगतिका केन्द्र बन गयी है। उसकी बैठकोंमें विभिन्न देशोंके प्रसिद्ध वैज्ञानिक तथा दार्शनिक, लेखक, कलाकार, विचारक और अन्वेषक उपस्थित होते हैं।

रायल सोसाइटीकी बैठकें पहले क्लबों, होटलों और ग्रेशम कालेजमें होती थीं। सन् १७७८ में ब्रिटिश सरकार ने सोसाइटीको सोमरसेट भवनमें स्थान दिया। सन् १७०३ में उसमें १२५ सदस्य थे और उसके अध्यक्ष सर आइजाक न्यूटन थे। उस समय तक सरकार ने यह स्वीकार कर लिया था कि वह एक प्रभावशाली वैज्ञानिक संस्था है। इसी समय सोसाइटी ने कैप्टन कुककी समुद्रयात्राका प्रबन्ध किया तथा ग्रीनविचकी शाही वेधशालाकी स्थापनाकी।

इस समय रायल सोसाइटीके पास बहुत बड़ा कोष है जिसका उपयोग अनुसंधान-कार्यमें किया जाता है। सोसाइटी पुस्तकें भी प्रकाशित करती है। उसने मलेरिया, मोतियाबिन्द आदि कई विषयोंमें अनुसंधान किये हैं।

संक्षिप्त परिचय

कुमारी स्टीफेनसन उत्साही, कर्मठ और स्फूर्तिशाली व्यक्ति हैं। उनके व्यक्तिगत मत बड़े दृढ़ हैं। उनका विश्वास है कि विज्ञानको जनताके सम्मुख रखना वैज्ञानिकोंका कर्तव्य है।

कुमारी स्टीफेनसन ने अपना अधिकतर अनुसंधान-

कार्य केम्ब्रिजकी प्रयोगशालामें किया है। वहाँ वे व्याख्यान और अध्यापनका कार्य भी करती हैं। उन्होंने २० वर्ष तक बायोकेमिस्ट्रीके एक विषयका विशेष अध्ययन किया और उस पर पुस्तक लिखी। इस पुस्तकका महत्त्व तत्काल स्वीकार किया गया।

श्रीमती लोन्सडेल मित्रसमितिकी सदस्य हैं। वे वैज्ञानिक अनुसंधानमें लगी रहती हैं। उन्होंने अध्यवसाय और लगनसे ही अपना वर्तमान पद प्राप्त किया है। उनमें पाखंडका नाममात्र भी नहीं है। अपनी सफलता के विषयमें वे बहुत ही विनयशील हैं। उनकी अवस्था ४२ वर्षकी है पर देखनेमें वे इतनी अवस्थाकी नहीं प्रतीत होतीं। उन्होंने लगभग ७० पुस्तकें लिखी हैं।

पोस्टमास्टरकी बेटी

श्रीमती लोन्सडेलका कोई सम्बन्धी गणितज्ञ या वैज्ञानिक नहीं था। उनके पिता पोस्टमास्टर थे। वे अपने माँ-बापकी दस संतानोंमें सबसे छोटी हैं। उनकी शिक्षा सरकारी स्कूलोंमें हुई। हाईस्कूल छोड़नेके बाद उन्हें दो छात्रवृत्तियाँ मिलीं। और उन्होंने गणित पढ़नेका निश्चय किया। उन्होंने १६ वर्षकी अवस्थामें लन्दन विश्वविद्यालयके बेडफोर्ड कालेजमें प्रवेश किया और १९ वर्षकी अवस्थामें बी० ए० की परीक्षामें उत्तीर्ण हुईं। कालेजमें उन्होंने गणित विषय छोड़कर भौतिक शास्त्र लिया। सन् १९२२ में सर विलियम ब्रैगने उन्हें युनिवर्सिटी कालेजमें एक्स रे क्रिस्टलोग्राफी पर अनुसंधान करने वाले अपने दलमें सम्मिलित होनेके लिए निमंत्रित किया।

युद्धके छः वर्षोंमें श्रीमती लोन्सडेल अपनी प्रयोगशालामें ९ बजेसे ५ बजे तक काम करती थीं। वे जर्मनों के हवाई हमलोंकी परवा नहीं करती थीं। उनके पति भी वैज्ञानिक हैं और उनके तीन संतानें भी हैं जिनमें दो लड़कियाँ और एक लड़का है। वे बहुत तड़के उठती हैं और बहुत रात बीतने पर सोती हैं और इस प्रकार अपना घर भी चला लेती हैं। सप्ताहके अन्तमें वे बाजारसे आवश्यक वस्तुएँ भी स्वयं खरीद लाती हैं।

इन दो महिलाओंके रायल सोसाइटीका 'फेलो' चुने जानेसे यह आशा की जा सकती है कि अन्य महिलाएँ भी शीघ्र ही उसकी 'फेलो' चुनी जायँगी।

व्यावहारिक मनोविज्ञान

स्वतः विचार करनेका अभ्यास

कल्पना-शक्ति बढ़ानेका नवाँ उपाय यह है कि स्वतः विचार और नवीन रचना करनेका अभ्यास डाला जाय। कितने आदमी ऐसे हैं जो अपने मकानके लिये सदा सामग्री इकट्ठी करते हैं और उसके लिए दूसरोंके बनाये हुये नमूनोंको ही निहारते रहते हैं, पर स्वयं अपने मकान बनानेमें जरा सा भी समय नहीं लगाते। प्रतिमाओं, विचारों और तथ्योंका एक भण्डार जमा कर लेनेका क्या फायदा यदि उन्हें बिना इस्तेमाल किये ही डाल रक्खा जाय? कल्पनाकी शिक्षाका सबसे उत्तम तरीका यह है कि अपनी ही सामग्रीसे स्वयं अपनी इमारत बनाई जाय। यह सच है कि दूसरे लोगोंके मकानोंको देखने और उनकी बनावटके ढंगको समझनेसे सहायता मिलती है, पर यह कदापि आवश्यक नहीं कि अपना सारा समय भाँति-भाँतिके मकानोंके देखनेमें ही व्यतीत किया जाय। इसी तरह पढ़ना अच्छा है पर सदा पढ़ते ही रहनेकी कोई आवश्यकता नहीं। हमें खुद अपनी कहानियाँ लिखनी चाहिये या कविता बनानी चाहिये, या जो कुछ भी अपना काम-धन्धा हो उसीमें स्वतंत्र और नवीन विचार पैदा करने की आदत डालनी चाहिये। स्वयं विचार करना ही कल्पनाका रहस्य है, यही नये विचार पैदा करनेका एक मात्र रास्ता है। पढ़नेके सम्बन्धमें यह सलाह दी गई है कि कोई नई पुस्तक आरम्भ करनेसे पहले उसके विषय पर अपनेसे सवाल-जवाब करने चाहिए जिससे यह पता लग जाय कि उस विषयमें अपनी जानकारी कितनी है और अपना कोई मत स्थिर हुआ है कि नहीं। इसी प्रकार मौलिकताके लिये भी यह आवश्यक है कि दूसरोंकी सम्मति देखने या पढ़नेसे पहले स्वयं अपनी राय क़ायम करनेका भरसक प्रयत्न करना चाहिये। ज्यादातर आदमियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति यही रहती है कि दूसरोंका सहारा लिया जाय, उनके क़दम पर क़दम रक्खा जाय और उन्हींकी मददसे सोचा जाय। पर मनकी शिक्षा और विशेषकर मौलिकताके लिये तो स्वयं सोचना ही एकमात्र साधन है।

उपसंहार

कल्पना एक बड़ी उच्च कोटिकी मानसिक शक्ति है।

इसमें कोई शक नहीं कि मनुष्योंकी रचनात्मक योग्यतामें बड़ा अन्तर रहता है। बहुतसे लोग ऐसे होते हैं जो बहुमूल्य और विविध प्रकारके अनुभवोंको अधिकारमें रखते हुये भी उन अनुभवोंसे कोई नया पदार्थ नहीं उत्पन्न कर सकते। उनका दिमाग लद्दू घोड़ेकी तरह रहता है जो कड़ा परिश्रम करता है और उपयोगी सेवा भी करता है, पर और कुछ नहीं कर सकता। ऐसे दिमाग विचारोंके बीच सम्बन्ध समानता और असमानता नहीं ढूँढ़ सकते और न सोच सकते हैं। पर जैसा कि हम देख चुके हैं किसी भी मानसिक शक्तिकी कमीको तीव्र इच्छा, दृढ़ संकल्प और उद्योग द्वारा बहुत हद तक पूरा किया जा सकता है। यही बात कल्पनाके सम्बन्धमें भी लागू होती है।

शिक्षा द्वारा कल्पनामें बहुत वृद्धि की जा सकती है और उसकी शिक्षा पढ़ाई-लिखाईका एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण अंग होना चाहिये। कल्पनाकी उन्नति करनेके लिये पहली बात जो आवश्यक है वह यह है कि हम अपनी शक्तियोंको एक अनिश्चित या विस्तृत विषयमें न बिखेरें, बल्कि उन्हें एक निश्चित और सीमित विषय या कार्यक्षेत्र पर केन्द्रित करें क्योंकि मनकी दूसरी शक्तियोंकी तरह कल्पना भी अत्यन्त ही विशेष ढंगसे काम करती है।

अपनी योग्यता, आवश्यकता और रुचिके अनुसार एक विषय या कार्यक्षेत्र चुन लेनेके बाद उसी पर अपने प्रेम और अनुरागको अर्पित कर देना चाहिये।

तीसरे अपने अभीष्ट विषयके सम्बन्धमें प्रामाणिक और उत्तम पुस्तकें पढ़कर और दूसरे उपायोंसे अपनी जानकारीको बढ़ाना चाहिये।

चौथे इकट्ठा किये हुये ज्ञान और तथ्योंको विचार, मनन और विश्लेषण द्वारा पचा लेना चाहिये। ऐसा करने ही से आप पुराने विचारोंमें नया सम्बन्ध देख सकेंगे अथवा नये विचार प्रकाशित कर सकेंगे।

पाँचवें, एक समय तक मेहनत करनेके बाद या तो विषयको बदल देना चाहिये या मनको किसी दिल बहलावके काममें लगाना चाहिये जिससे कि अन्तश्चेतनाको भी काम करनेका मौक़ा मिल सके। रातको अन्तश्चेतनाका काम जोरोंके साथ होता है और सोते समय किसी सवाल पर खयाल करनेसे अक्सर उसका हाल एक दिन जागने पर मिल जाता है।

छठे ऐसी सहानुभूतिका अभ्यास करना चाहिये जिससे आप अपने पात्रों तथा प्रकृतिके दूसरे जीवोंकी भावनाओंको, या ख़ुद प्रकृतिकी मूक भाषाको, समझ सकें।

सातवें, जहाँ कारणों या नियमोंकी तलाश हो वहाँ एक या अधिक सिद्धान्त बनाकर बारी-बारीसे उनकी जाँचकर लेना भी नये विचार उत्पन्न करनेका एक उत्तम साधन है।

आठवें, तुलनाका प्रयोग करना चाहिये और अनजान तथ्यों, कारणों या विधियोंकी उपमा जाने हुये क्षेत्रोंमें ढूँढ़नी चाहिये।

नवें, स्वयं स्वतंत्रतासे विचार करनेकी आदत डालनी चाहिये और नवीन रचना करनेका अभ्यास करना चाहिये।

सम्पादकीय

परमाणु बमका विध्वंसकारी प्रभाव

परमाणु बमकी खोजने समस्त संसारमें एक हलचल-सी मचा दी है। इसकी विनाशक शक्तिको देखकर विजयी तथा पराजित सभी देशोंके लोग सहम गए हैं। एक परमाणु बमके गिरनेसे हिरोशिमाका पूरा नगर विनष्ट हो गया तथा वहाँकी तीन लाखकी जनसंख्यामेंसे केवल तीस हज़ार लोग ही बच पाये। बमके इस प्रलयंकारी प्रभावको देखकर ही जापानकी सारी शक्ति एकदम ढीली पड़ गई और उसको आत्मसमर्पण कर देना पड़ा। यदि परमाणु बमकी खोज न हुई होती तो संभव है जापान अभी मित्र-देशोंसे कुछ समय तक और लड़ता रहता।

अमेरिका तथा इंगलैंडको उस समय तो प्रसन्नता अवश्य हुई होगी जब कि उन दोनोंने यह देखा कि परमाणु बमका प्रयोग करते ही जापानने आत्मसमर्पण कर दिया। प्रसन्नता प्राप्त होना स्वाभाविक भी था। अपने शत्रु पर विजय पानेमें कौन प्रसन्न नहीं होता? किन्तु अब धीरे-धीरे यह प्रसन्नता लोगोंके हृदयसे हटती जा रही है। परमाणु बमकी जिस विनष्टकारी शक्तिको देखकर मित्र-राष्ट्र प्रसन्न हुए थे अब उसकी उसी शक्तिके कारण सहमे तथा डरे हुये हैं। वे यह अनुभव कर रहे हैं कि युद्धमें परमाणु बमके प्रयोगसे कितनी भयंकर परिस्थिति आ सकती है।

आज परमाणु बम बनानेकी विधि केवल अमेरिका और इंगलैंड ही के पास है। किन्तु यह परिस्थिति कब तक रह सकती है? अन्य देशोंके वैज्ञानिक कम या अधिक समयमें इस विधिको मालूम कर ही लेंगे। अमेरिका और

इंगलैंड दोनों ही इस सत्यको समझ रहे हैं। अन्य देशों-को भी परमाणुबम बनानेकी विधि मालूम हो जानेके बाद जब भविष्यमें कोई दूसरा युद्ध होगा तो वह कितना भयंकर होगा उसका अनुमान अभीसे वैज्ञानिक तथा जन-साधारण सभी लगा रहे हैं। ऐसे युद्धमें संसारकी समस्त सभ्यता तथा जनसंख्याके ही लोप हो जानेका भय है। इसी कारण संसारके दूरदर्शी तथा विद्वान् लोग—अमेरिका तथा इंगलैंड में भी—इस बातकी चेष्टाकर रहे हैं कि संसारके सारे राष्ट्रोंके बीचमें ऐसा सम्बन्ध स्थापित किया जाय जिससे भविष्य में कोई युद्धकी संभावना ही न रह जाय। यह तो भविष्य ही बतला सकेगा कि लोगोंका यह प्रयत्न कहाँ तक सफल होता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि सब देश स्वतंत्र हों और उनमें परस्पर समानता और मित्रताका व्यवहार हो।

हिन्दी-साहित्य सम्मेलन और वैज्ञानिक साहित्य

अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनका ३३वाँ अधिवेशन उदयपुरमें इसी मासमें होने जा रहा है। सम्मेलनके सामने इस समय कई महत्वपूर्ण प्रश्न हैं जिनके निर्णय पर सम्मेलनके भविष्यकी प्रगति निर्भर करती है। सबसे बड़ा प्रश्न हिन्दी-हिन्दुस्तानीका उठ खड़ा हुआ है। महात्माजीके त्यागपत्रने इस प्रश्नको और भी अधिक महत्व दे दिया है। सम्मेलनके सामने कठिन समस्या उपस्थित हो गई है। एक ओर तो महात्माजीके सम्बन्ध-विच्छेदसे सम्मेलनके कार्यमें भारी धक्का लगनेकी सम्भावना है, और दूसरी ओर यदि महात्माजीकी नीति मान ली जाय तो सम्मेलनको उर्दूके प्रचारमें भी हाथ बटाना पड़ेगा जो हिन्दीके लिए कम हानिकर नहीं होगा। राष्ट्र और हिन्दीका प्रश्न व्यक्तियोंसे ऊपर है। सम्मेलनके कर्णधारोंको हिन्दी और राष्ट्र दोनोंका हित देखते हुए बहुत शान्त मनसे इस प्रश्न पर निर्णय करना चाहिए। पिछले ३३ वर्षोंका सम्मेलनका हिन्दीका नेतृत्व बड़ा गौरवपूर्ण रहा है। आशा है भविष्यमें भी उसका मार्ग-प्रदर्शन गौरवपूर्णही रहेगा।

विज्ञान-परिषद्की ओरसे एक सुझाव मुझे सम्मेलनके सामने रखना है। सम्मेलनने अब तक अपनी लगभग सारी शक्ति प्रचार-कार्यमें ही लगाई है। सम्मेलनके ही उद्योगका यह फल है कि आज आसाम तथा मद्रास ऐसे अहिन्दी प्रान्तोंमें भी हिन्दीका पठन-पाठन काफ़ी फैला हुआ है। किसी भाषाकी उन्नतिके लिए प्रचारके साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि उसके साहित्यके सब अंग भरे-पूरे और पुष्ट हों। साहित्य-निर्माणका कार्य प्रचार-कार्यसे कम महत्वका नहीं है। सम्मेलनने इस ओर अभी तक इतना ध्यान नहीं दिया है जितना उसे देना चाहिए था। हिन्दीके प्रचार कार्यके फैलनेसे अपरोक्ष रूपसे तो अवश्य ही साहित्य-निर्माणके कार्यमें सहायता प्राप्त हुई है। किन्तु यह सहायता अधिकतर केवल गद्य, पद्य, औपन्यासिक तथा अन्य विशुद्ध साहित्य तक ही सीमित रही है। वैज्ञानिक साहित्यके निर्माण कार्यको इससे विशेष प्रोत्साहन नहीं प्राप्त हो सका है। यही कारण है कि हिन्दीका वैज्ञानिक साहित्य अभी उस कोटिका नहीं है जिसपर हम गर्वकर सकें।

संसारकी वर्तमान उन्नतिमें विज्ञानका प्रमुख हाथ है। अतः वैज्ञानिक साहित्यका महत्व साहित्यके अन्य अंगोंसे किसी भाँति कम नहीं है। किन्तु दुःख इस बातका है कि हिन्दीवालोंने अब तक वैज्ञानिक साहित्यकी ओर उदासीनता-की ही दृष्टि रक्खी है। आज जब हम इस बातका प्रयत्न करते हैं कि हिन्दी राष्ट्रभाषा हो और इसीके माध्यम द्वारा हमारी उच्चसे उच्च शिक्षा हो तो तुरन्त वैज्ञानिक साहित्यके अभावकी बात सामने आकर रुकावट डाल देती है।

विज्ञान-परिषद्ने वैज्ञानिक साहित्यके निर्माणमें अपनी शक्तिभर प्रयत्न किया है, किन्तु यह अभी बहुत ही कम है। अपने साधनोंके बहुत सीमित होनेके कारण विज्ञान-परिषद् इस कार्यको अधिक तेज़ीसे नहीं बढ़ा पाता। सम्मेलन यदि इस ओर ध्यान दे तो बहुत अधिक कार्य किया जा सकता है। सम्मेलनकी स्थिति और परिषद्की स्थितिमें भारी अन्तर है। सम्मेलन यदि थोड़ा भी इस दिशामें प्रयत्न करे तो इस कार्यके लिए प्रचुर साधन एकत्रित कर सकता है। मेरे विचारमें अधिक अच्छा तो यह है कि सम्मेलन विज्ञान-परिषद्के लिए आवश्यक साधन एकत्रित करनेमें सहायक हो और परिषद् द्वारा इस कार्यको आगे बढ़ाये।

सूचना

पाठकोंको यह जानकर हर्ष होगा कि 'विज्ञान'का कागज़का कोटा बढ़ गया है। अब इस माससे 'विज्ञान' २४ पेजोंके स्थानमें ३२ पेजोंका निकला करेगा। चार पृष्ठोंका कवर भी अलगसे रहेगा।

हमें दुःख है कि पेजोंकी कमीके कारण पिछले दो सालोंमें हम अपने लेखकोंके कुछ उपयोगी लेख छापनेमें असमर्थ रहे। अब हमारा 'विज्ञान'के लेखकोंसे पुनः अनुरोध है कि वे विज्ञानके विभिन्न विषयों पर उपयोगी लेख 'विज्ञान'के लिए बराबर भेजा करें; हम अच्छे लेखों को 'विज्ञान'में सहर्ष स्थान देंगे।

विज्ञान

प्रयागकी विज्ञान-परिषद्का मुखपत्र

प्रधान संपादक

डाक्टर सन्तप्रसाद टंडन डी० फ़िल

विशेष संपादक

डाक्टर श्रीरंजन

डाक्टर सत्यप्रकाश

डाक्टर गोरखप्रसाद

डाक्टर विशंभरनाथ श्रीवास्तव

श्री श्रीचरण वर्मा

डाक्टर रामशरण दास

भाग ६०

अक्टूबर १९४४—मार्च १९४५

प्रकाशक

विज्ञान-परिषद्, इलाहाबाद।

अनुक्रमणिका

औद्योगिक रसायन

चिकित्सा शास्त्र

जीवन विज्ञान

ज्योतिष

भाषा विज्ञान

मनोविज्ञान

रसायन

साधारण

विज्ञान

प्रयागकी विज्ञान-परिषद्का मुखपत्र

प्रधान संपादक

डाक्टर सन्तप्रसाद टंडन डी० फ़िल०

विशेष संपादक

डाक्टर श्रीरंजन

डाक्टर सत्यप्रकाश

डाक्टर गोरखप्रसाद

डाक्टर विशंभरनाथ श्रीवास्तव

श्री श्रीचरण वर्मा

डाक्टर रामशरण दास

भाग ६१

अप्रैल–सितम्बर १९४५

प्रकाशक

विज्ञान-परिषद, इलाहाबाद।

अनुक्रमणिका

विज्ञान

प्रयागकी विज्ञान-परिषद्‌का मुखपत्र

प्रधान संपादक

डाक्टर सन्तप्रसाद टंडन डी० फ़िल

विशेष सम्पादक

डाक्टर श्रीरंजन

डाक्टर सत्यप्रकाश

डाक्टर गोरखप्रसाद

डाक्टर विशंभरनाथ श्रीवास्तव

श्री श्रीचरण वर्मा

डाक्टर रामशरण दास

भाग ६२, संख्या २

सम्वत् २००२, नवम्बर १९४५

प्रकाशक

विज्ञान-परिषद, इलाहाबाद ।

प्रयागकी

विज्ञान-परिषद्के मुख्य नियम

परिषद्का उद्देश्य

१—विज्ञान-परिषद्की स्थापना इस उद्देश्यसे हुई है कि भारतीय भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्यका प्रचार हो तथा विज्ञानके अध्ययनको और साधारणतः वैज्ञानिक खोजके कामको प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद्का संगठन

२—परिषद्में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमोंके अनुसार सभ्यगण सभ्योंमेंसे ही एक सभापति, दो उपसभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमंत्री, दो मंत्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे, जिनके द्वारा परिषद् की कार्य्यवाही होगी।

पदाधिकारियोंका निर्वाचन

१८—परिषद्के सभी पदाधिकारी प्रतिवर्ष चुने जायँगे। उनका निर्वाचन परिशिष्टमें दिये हुये तीसरे नकशेके अनुसार सभ्योंकी रायसे होगा।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्यको ५) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश-शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ ७०) रु० की रकम दे देनेसे कोई भी सभ्य सदाके लिये वार्षिक चन्देसे मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्योंको उनके चुनावके पश्चात् प्रकाशित परिषद्की सब पुस्तकों, पत्रों, विवरणों इत्यादिके बिना मूल्य पानेका—यदि परिषद्के साधारण धनातिरिक्त किसी विशेष धनसे उनका प्रकाशन न हुआ अधिकार होगा। पूर्व-प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्यमें मिलेंगी।

२७—परिषद्के सम्पूर्ण स्वत्वके अधिकारी सभ्यवृन्द समझे जायँगे।

परिषद्का मुखपत्र

३३—परिषद् एक मासिक-पत्र प्रकाशित करेगा जिसमें सभी वैज्ञानिक विषयोंपर लेख प्रकाशित हुआ करेंगे।

३४—जिन लेखोंको परिषद् प्रकाशित करेगी उनमें जो लेख विशेष महत्व योग्यताके समझे जायँगे उनके लेखकों को अपने अपने लेख की बीस प्रतियाँ बिना मूल्य पानेका अधिकार होगा।

विज्ञान

विज्ञान-परिषद्, प्रयागका मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ।। तै० उ० ।३।५।

भाग ६२ | सम्वत् २००२ नवम्बर १९४५ | संख्या २

उदयपुरके ३३वें हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी विज्ञान-परिषद्के सभापति श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तवका भाषण

प्यारे भाइयो और बहनो,

विज्ञानका विषय बड़ा ही व्यापक और गंभीर है। एक बड़े विद्वान्ने 'विज्ञान' को समुद्रकी उपमा दी थी और अपने को समुद्रके किनारेपर बिखरे हुए छोटे-छोटे पत्थरोंका बटोरनेवाला समझा था। यह उस समयकी बात है जब आधुनिक विज्ञान अपनी बाल्यावस्थामें था अर्थात् आजसे लगभग ३०० वर्ष पहले। इस बीचमें आधुनिक विज्ञानने इतनी उन्नति कर ली है कि इसकी एक शाखाके विशेषज्ञ भी अपनेको उस शाखाकी सभी उपशाखाओंका मर्मज्ञ नहीं समझते। एक मित्रका कथन है कि इधरके २० वर्षोंमें भौतिक विज्ञानकी इतनी उन्नति हुई है कि इससे पहले के पढ़े हुए बड़े बड़े पदवीधारी भी इसको अच्छी तरह ग्रहण करके छात्रोंको समझानेमें अपनेको असमर्थ पाते हैं जब तक कि वे अपना बहुत-सा अवकाश इसके अध्ययनमें न लगावें। ऐसी दशामें इस सेवकसे जो विज्ञानका भक्त तो अवश्य है परन्तु उसके विषयमें बहुत कम ज्ञान रखता है आप लोग यह आशा तो कर नहीं सकते कि वह इस मंचसे विज्ञानके संबंधमें गंभीर और गवेषणापूर्ण भाषण करे। यह समझते हुए भी आपने मुझे इस पद पर बैठानेकी जो कृपा की है उसके लिए मैं आपको हृदयसे धन्यवाद देता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि आपने जिस प्रेमसे इस आसन पर बैठानेकी कृपा की है उसी प्रेमसे मेरी तोतली बातें सुननेकी भी कृपा करेंगे।

विज्ञानका अर्थ है विशेष ज्ञान। आज-कल लोग पदार्थ विज्ञानको ही विज्ञान समझते हैं। यह विशेषता दिखलानेके लिए कुछ लोग इसे प्राकृतिक विज्ञान (Natural Science) कहते हैं और उन्हीं पदार्थोंको प्राकृतिक समझते हैं जो हमारी इन्द्रियोंसे जाने जा सकते हैं। इस दृष्टिसे पहले पदार्थोंके केवल तीन विभाग किये गये थे, ठोस, द्रव और वायव्य। जब बहुतसी ऐसी घटनाएँ उपस्थित हुईं जिनकी व्याख्या इन तीनोंके द्वारा न हो सकी तब चौथा पदार्थ ईथर लाया गया जो अत्यन्त सूक्ष्म और सारे सौर जगतमें व्यापक समझा जाता है। यह प्राचीन भारतीयोंके 'आकाश' शब्दसे बहुत कुछ मिलता है।

विज्ञान और धर्म

जिस समय पाश्चात्य जगतमें आधुनिक विज्ञान बढ़ने लगा उस समय ऐसी बहुतसी बातें ज्ञात हुईं जो वहाँकी धर्मपुस्तक बाइबिलकी बहुतसी बातोंके प्रतिकूल पड़ती थीं। इसलिए उस समयके धर्मवेत्ताओंने विज्ञानको अधार्मिक समझकर इसका तिरस्कार किया और इसके सेवियोंको तरह-तरहके कष्ट दिये। यह हवा कुछ दिन तक यहाँ भी चली और लोग समझने

लगे कि विज्ञानके जाननेवाले धर्मपुस्तकोंमें लिखी हुई बहुतसी बातों को नहीं मानते और न ईश्वर को ही मानते हैं; इसलिए नास्तिक हैं। परन्तु यह विचार कुछ दिनके बाद बदलने लगा और अब प्राचीन पद्धतिके विद्वान् भी वैज्ञानिक अनुसंधानोंसे लाभ उठाकर धर्मकी व्याख्या इस प्रकार करने लगे कि दोनोंका समन्वय होता है। अब तो यह विश्वास दृढ़ होता जाता है कि धर्म और विज्ञान में कोई विरोध नहीं है, विज्ञान धर्म का सहायक है। यह बात प्राचीन महर्षियोंने भी स्वीकार की है जो एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायगी।

धर्मका तत्त्व समझनेके लिए हमारे यहाँ षड्दर्शन हैं जिनके नाम हैं, वैशेषिक, न्याय, सांख्य, योग, पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा या वेदान्त। इन छहों दर्शनोंमें, जहां तक पदार्थोंका संबंध है, समानता है। वरन् यह कहना चाहिए कि सबका आधार पदार्थ-विज्ञान या विज्ञान है। वैशेषिक दर्शन तो पदार्थ-विज्ञानका ही मुख्य दर्शन माना गया है। इसलिए इसके आरंभके दो-तीन सूत्रों पर विचार करनेसे यह पता चल जायगा कि धर्म और विज्ञानमें कितना गहरा संबंध है और विज्ञानके बिना धर्मका पूरा-पूरा ज्ञान नहीं हो सकता। इसका पहला सूत्र यह है—

अथातो धर्मं व्याख्या स्यामः।

जिससे प्रकट होता है कि यह पुस्तक धर्मकी व्याख्या करनेके लिए लिखी गयी है। इसका दूसरा सूत्र बतलाता है कि धर्म क्या है,

यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धि स धर्मः।

अर्थात् धर्म वही है जिससे अभ्युदय (सांसारिक उन्नति) और निश्रेयस (मोक्ष) की सिद्धि हो।

चौथे सूत्रमें बतलाया गया है कि किस तत्त्वज्ञानसे निःश्रेयसकी सिद्धि होती है,

द्रव्य गुण कर्म सामान्य विशेष समवायानां पदार्थानां साधर्म्य वैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानान्निश्रेयसम्।

अर्थात् द्रव्य, गुण कर्म, आदि पदार्थोंके साधर्म्य और वैधर्म्यके तत्त्वज्ञानसे निश्रेयस होता है।

पाँचवें सूत्रसे स्पष्ट हो जाता है कि द्रव्य क्या है,

पृथिव्यापस्तेजो वायूराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्यणि।

इस प्रकार स्पष्ट है कि वैशेषिक दर्शन पंच महाभूतोंके अतिरिक्त काल, दिक्, आत्मा और मनको भी द्रव्य समझता है।

आधुनिक विज्ञान अभी तक केवल चारको ही द्रव्य मानता है—पृथ्वी, जल, वायु और आकाश और इन्हीं को वह अपना विषय समझता है। तेजको वह शक्ति समझता है, मन और आत्माको भी वह द्रव्य नहीं मानता। परन्तु इधरके १५, २० वर्षोंके और विशेष करके इधर सात वर्षों के अनुसन्धानोंसे अब आधुनिक विज्ञान-वेत्ता भी कहने लगे हैं कि चारों प्रकारके भिन्न-भिन्न तत्त्वमूलमें शक्ति पुंज ही हैं। इसलिए वैशेषिक दर्शनके अनुसार आधुनिक विज्ञान धर्मका विरोधी तो नहीं है।

विज्ञानका ध्वंसकारी परिणाम

इस समय विज्ञानके ध्वंसकारी परिणामसे लोगोंका चित्त घबड़ा उठा है और लोग समझने लगे हैं कि विज्ञानके कारण संसारका नाश शीघ्र हो जायगा। उन लोगोंसे मेरा नम्र निवेदन है कि इसमें विज्ञानका दोष नहीं है, वरन् ईर्ष्या, द्वेष, लोभ आदि का दोष है। इसलिए जब तक किसी मनुष्य या समाजके इन मानसिक विकारोंको सामूहिक रूपसे नियंत्रणमें रखनेका उपाय नहीं सोचा जायगा तब तक हम इसी प्रकार दुःख भोगते रहेंगे। यदि इनको नियंत्रणमें रखकर वैज्ञानिक अनुसंधानों या परमाणुशक्तिसे लाभ उठाया जाय तो संसारका कायापलट हो सकता है। वैज्ञानिक आविष्कार यंत्रकी तरह हैं, यदि इनसे अच्छा काम लीजिए तो संसारकी भलाई

हो सकती है और बुरा काम लीजिए तो संसारका नाश भी हो सकता है। आग, छुरी तलवार आदिसे आततायी समाजकी बड़ी हानि करता है, परन्तु फिर भी इनकी उपयोगिताके कारण इन्हें कोई त्याग नहीं सकता। इसी प्रकार वैज्ञानिक अनुभवोंसे भी हमें लाभ उठाना चाहिए और व्यवस्था करनी चाहिए कि परमाणुशक्ति जैसी शक्तियोंका उपयोग कोई भी देश या मनुष्य ध्वंसकारी कामोंके लिए न करे। मैंने रसायनसार या किसी ऐसी ही वैद्यक पुस्तकमें पढ़ा था कि विषोंका प्रयोग दुष्ट विद्यार्थियोंको नहीं बतलाना चाहिए। मैं समझता हूँ कि आधुनिक विज्ञानवेत्ताओं को भी कुछ ऐसा नियम बना लेना चाहिए कि ध्वंसकारी पदार्थोंका उपयोग दुष्ट प्रकृतिके मनुष्योंको न बतलाया जाय। हर्षकी बात है कि परमाणु बमके दुष्प्रयोगके विरुद्ध संसारके बड़े-बड़े विचारकोंका ध्यान जा रहा है और इसके नियन्त्रणके भी उपाय सोचे जा रहे हैं।

विज्ञानसे धर्मका ज्ञान

ऊपर मैंने बतलाया है कि विज्ञान और धर्म एक दूसरेके प्रतिकूल नहीं हैं, वरन् विज्ञान धर्मका सहायक है। हमारा धर्म कहता है कि यह संसार एक ही अव्यय, अविनाशी और सनातन सत्यसे बना है। 'सांख्योंका सिद्धान्त है कि इन्द्रियों को अगोचर अर्थात् अव्यक्त, सूक्ष्म और चारों ओर अखंडित भरे हुए एक ही निरवयव मूल द्रव्यसे सारी व्यक्त सृष्टि उत्पन्न हुई है (गीतारहस्य पृ० १७१)। परन्तु यह बात साधारण बुद्धिके मनुष्योंकी समझमें नहीं आती थी और न इसका प्रत्यक्ष प्रमाण ही दिया जा सकता था। परन्तु आधुनिक विज्ञानने इसे सिद्ध कर दिया। एक समय था जब आधुनिक विज्ञानके अनुसार सारी सृष्टि दो भागोंमें विभक्त की जाती थी, द्रव्य और शक्ति (mater and force)। परन्तु अब यह सिद्ध हो गया कि द्रव्य नामकी कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं है, जिसे साधारणतः लोग द्रव्य समझते हैं वह शक्तिकी ही एक अवस्था है। जैसे वाष्प, जल और बर्फ एक ही सत्ता की तीन अवस्थाएं हैं वैसे ही द्रव्य शक्तिकी एक अवस्था है। यही नहीं आधुनिक विज्ञानने यह भी सिद्ध कर दिया है कि संसारके ९३ या इससे कुछ ऊपर तथाकथित मौलिक तत्त्व भी एक दूसरेसे भिन्न नहीं हैं। क्योंकि प्रत्येक तत्त्वका सूक्ष्मतर रूप परमाणु हैं जो "गत शताब्दीके अंत तक अविभाज्य और पदार्थके सबसे छोटे अंश समझे जाते थे, परन्तु अब देखा गया है कि परमाणु एक क्षुद्र सौर परिवारकी तरह है जिसका बीज (nucleus) सूर्यकी तरह नाभिमें स्थिर रहता है और विद्युत्कण (electron) इसके चारों ओर अपनी-अपनी कक्षाओंमें ग्रहकी तरह परिक्रमा करते रहते हैं। परमाणु बीज कितना छोटा होता है इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। एक घन सेंटीमीटरमें एक करोड़ अरब × एक करोड़ अरब अथवा $१०^{३२}$ केन्द्र समा सकते हैं। परमाणुका कुल द्रव्य बीजमें ही एकत्र रहता है और द्रव्यके सारे भौतिक और रासायनिक गुण परिक्रमा करनेवाले इलेक्ट्रनोंसे संबंध रखते हैं और बीज साधारणतः किसी क्रियामें भाग नहीं लेता। इस बीजमें भी छोटे-छोटे कण होते हैं जिनको प्रोटन (Proton) और निउट्रन (neutron) कहते हैं। अभी तक यह समझा जाता है कि यह अविभाज्य हैं अर्थात् इनसे भी छोटे टुकड़े नहीं हो सकते। निउट्रनमें कोई विद्युत् शक्ति नहीं होती परन्तु प्रोटनमें धनात्मक विद्युत् भरी रहती है। ये दोनों प्रबल आकर्षणशक्तिके द्वारा बीजके भीतर बँधे रहते हैं। संसारके भिन्न-भिन्न प्रकारके तत्त्वोंमें जो अंतर देख पड़ता है वह बीजके भीतरके इन प्रोटनों और निउट्रनोंकी संख्याके कारण है। यदि किसी तत्त्वके प्रोटनों और निउट्रनोंकी संख्यामें कमी-वेशी कर दी जाय तो वह दूसरे तत्त्वमें बदल सकता है। लोहेसे सोना

बनाया जा सकता है जो पहले असंभव समझा जाता था। ('विज्ञान' भाग ६१ सं०६ पृष्ठ २-५)

इधर ६ वर्षोंके अनुसन्धानसे सिद्ध हुआ कि परमाणु बीजके भी टुकड़े किये जा सकते हैं और इस क्रियासे जो शक्ति उत्पन्न होती है वही परमाणु बम (atom bomb) की विध्वंसकारिणी शक्ति है। इस प्रकार यह सिद्ध हो गया कि संसारके परस्पर भिन्न-भिन्न पदार्थ केवल देखनेमें भिन्न प्रतीत होते हैं, यथार्थमें भिन्नता नहीं है। क्या इससे हमारे सांख्योंका सिद्धान्त सिद्ध नहीं होता ?

इस प्रकार आधुनिक विज्ञानसे इतना तो सिद्ध हो गया कि पदार्थ मूलमें जड़ नहीं है वरन् शक्तिका पुंज है। अब यह सिद्ध करना और रह गया कि यह शक्ति अंधी नहीं है, इसमें चेतनता भी है। यदि यह भी सिद्ध हो जाय तो हमारे वेदान्त सिद्धान्तकी सारी सृष्टिके मूलमें एक परमब्रह्म ही है जो सत् चित और आनन्दरूप है, सप्रमाण सिद्ध हो जाता है।

विज्ञान और विश्वासका मिथ्या विरोध

इस प्रकार आधुनिक विज्ञानके निष्कर्ष हमारे वेदान्त दर्शनके अनुकूल सिद्ध हो रहे हैं और इसका पोषण कर रहे हैं। परन्तु जो विश्वास किसी तत्वज्ञान पर आश्रित नहीं है, वरन् भ्रम-मूलक ज्ञानके कारण है उनपर आधुनिक विज्ञान अवश्य कुठाराघात करता है जिससे हमें दुखी नहीं होना चाहिए और न डरना चाहिए। ऐसे मिथ्या विश्वासों को हमें बदलना ही पड़ेगा। कौन ऐसा मनुष्य है जो प्राचीनोंकी तरह इस बातका विश्वास करेगा कि पृथ्वी अचल है और सूर्य, ग्रह, तारे आदि इसकी परिक्रमा कर रहे हैं जब वह स्पष्ट देख सकता है और प्रयोगोंसे सिद्ध कर सकता है कि यथार्थमें पृथ्वी ही चलती है और ग्रहोंकी विचित्र गतियाँ इसीके कारण होती हैं।

इसी प्रकार प्रायः सभी पुराणोंमें सप्तर्षिके चलनेकी बात कही गयी है। काश्मीरमें तो एक प्रकारका संवत्भी चालू है जो सप्तर्षि संवत् कहलाता है और जिसका चक्र १०० वर्ष-का माना गया है क्योंकि पुराणोंमें कई जगह लिखा मिलता है कि सप्तर्षि १०० वर्षमें एक नक्षत्र चलता है और २७०० वर्षोंमें एक नक्षत्र चक्र पूरा कर लेता है। परन्तु आकाशको ध्यान से देखने वाले यह देख सकते हैं कि सप्तर्षिमें ऐसी कोई गति नहीं है। यदि आप १८५० ई०के वेधों को वर्तमान् वेधोंसे मिलाएँ तो पता चल जायगा कि ७५ वर्षोंमें सप्तर्षिके ध्रुवसूचक तारोंके विषुवांशकी गति अयन चलनके कारण कितनी हुई।

	१८५० का विशुवांश			१९२५ का विशुवांश			अंतर	
	घं०	मि०	से०	घं०	मि०	से०	मि०	से०
सप्तर्षिका ख तारा	१०	५२	४५	१०	५७	२०	४	३५
,, क ,,	१०	५४	२५.७	१०	५९	७	४	४१

आप देखेंगे कि ७५ वर्षोंमें इन तारोंकी विषुवांश गति ४ मिनट ३५ सिकंडके लगभग हुई जो अयन चलन के कारण हुई। यदि १० वर्षमें एक नक्षत्रकी गति ठीक होती तो इतना ही अंतर थोड़े ही पड़ता।

अब आवश्यकता इस बातकी है कि भारतीय दर्शनके मर्मज्ञ पाश्चात्य अनुसन्धानोंका समन्वय करें और दिखलावें कि हमारे दर्शनशास्त्र और वैज्ञानिक अनुसंधानोंमें कितनी समानता है। हर्षकी बात है कि हमारे कुछ तत्त्वज्ञानी इस ओर अपना ध्यान दे रहे हैं।

परन्तु हमारी बहुत बड़ी विद्वान् मंडली इस ज्ञानसे वंचित है, क्योंकि उनका पठन पाठन संस्कृतमें होता है जिसमें आधुनिक विज्ञानकी शिक्षा नहीं दी जाती। इसलिए वे इससे न तो कोई लाभ उठा सकते हैं और न इसके परिणामों-से दर्शनशास्त्र का समन्वय कर सकते हैं। इसलिए आवश्यक है कि इस समाजको भी हिन्दी भाषाके

द्वारा आधुनिक विज्ञानकी पूर्ण जानकारी करायी जाय। आजसे लगभग ३२ वर्ष पूर्व अर्थात् हिन्दी साहित्य-सम्मेलनके जन्मसे लगभग एक वर्ष के भीतर प्रयागमें विज्ञान-परिषद्की स्थापना की गयी जिसके मुखपत्र 'विज्ञानका' मूल मंत्र यह रक्खा गया—

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात् विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसं विशन्तीति। तै० ३।३।५

परन्तु विज्ञान परिषद्की ओर लोगोंका ध्यान उतना नहीं गया जितना जाना चाहिए। इन ३२ वर्षों में विज्ञान-परिषद्ने हिन्दीमें जितना साहित्य रचा और उसके कारण हिन्दीमें विज्ञान-संबंधी पुस्तकें लिखनेका जितना उत्साह लेखकोंको हुआ वह कम प्रशंसाकी बात नहीं है। परन्तु इतना पर्याप्त नहीं है। हम चाहते हैं कि हमारी मातृभाषामें विज्ञानकी सभी शाखाओंके उत्तम-उत्तम ग्रन्थ रचे जायं जिनके द्वारा विज्ञानका ऊँचेसे ऊँचा ज्ञान केवल मातृ-भाषा जाननेवालोंके लिए सुलभ हो जाय। हैदराबादकी निज़ाम सरकारने प्रचुर धनकी सहायतासे एक ऐसा विभाग खोल रखा है जो वैज्ञानिक पुस्तकोंके अनुवादों द्वारा उर्दू साहित्यका भंडार भर रहा है। यह काम हिन्दी साहित्य-सम्मेलन आसानीसे कर सकता है। इसका प्रचार विभाग जैसा काम कर रहा है वैसा ही साहित्य निर्माण विभागको भी करना चाहिए। भारतीय ग्रन्थोंके अनुवादके साथ-साथ, जैसा इस समय हो रहा है, आधुनिक विज्ञानके ग्रन्थोंका भी अनुवाद या भावानुवाद होना चाहिए। इसके लिए एक अलग उपसमिति होनी चाहिए जिसमें रसायन, भौतिक, जीव, भूगर्भ, वनस्पति, खनिज आदि विज्ञानोंके विशेषज्ञ रहें जो यह बतलावें कि विज्ञानके भिन्न-भिन्न विषयोंकी कौन-कौनसी प्रामाणिक पुस्तकोंका अनुवाद कराया जाय और कैसी-कैसी पुस्तकें स्वतन्त्र रची जायँ। इस संबंधमें केवल सिद्धान्तके ही ग्रन्थ न रचे जायं वरन् ऐसी पुस्तकोंकी भी रचना हो जो विविध उद्योग-धंधों और कलाओंके जानकारोंको भी सहायता पहुँचा सकें और उनके सैद्धान्तिक ज्ञानकी भी वृद्धि करें। युद्धोत्तर निर्माणकालमें ऐसे ग्रन्थोंकी अत्यन्त आवश्यकता है। ऐसे ग्रन्थ लिखनेवालोंको उचित और पर्याप्त पारिश्रमिक भी देनेकी व्यवस्था होनी चाहिए क्योंकि विज्ञान-परिषद्, प्रयागके ३२ वर्षों के अनुभवसे सिद्ध हो रहा है कि यह काम अवैतनिक रूपसे सन्तोषजनक रीतिसे नहीं हो सकता।

हमको यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती कि हिन्दीमें विज्ञानकी किन-किन शाखाओंपर पुस्तकें लिखवाई जायँ। हम तो समझते हैं कि विज्ञानकी जितनी शाखाएँ हैं प्रत्येक पर दो-दो पुस्तकें ऐसी होनी चाहिए जिनको पढ़कर हमारे हिन्दी या संस्कृतके विद्वान् उस विषयकी कुछ जानकारी प्राप्त कर सकें। किस वैद्यको आधुनिक विज्ञानके रसायन, भौतिक, जीव, वनस्पति, खनिज, शरीर-विज्ञान आदिके जाननेकी आवश्यकता नहीं है? कला कौशलके व्यवसाइयोंको रसायन, भौतिक वनस्पति विज्ञान आदि सभी जाननेकी आवश्यकता है। क्या वर्तमान् ज्योतिषी शुद्ध गणित, व्यावहारिक गणित, भौतिक और रसायन-विज्ञानके बिना जाने नक्षत्र विद्याका पूरा-पूरा ज्ञान प्राप्त कर सकता है? क्या कोई गृहिणी रसायन, भौतिक, जीव, वनस्पति-विज्ञान आदि का बिना परिचय प्राप्त किये गृह विज्ञानमें निपुण हो सकती है और अपने घरको आदर्श बना सकती है? इसलिए हिन्दीमें विज्ञानकी प्रत्येक शाखाका साहित्य निर्माण करना चाहिए।

दो प्रकारकी पुस्तक-मालाएँ हों

समाजके सब प्रकारके मनुष्योंको लाभ पहुँचानेके लिए हमें कमसे कम दो प्रकारकी विज्ञान-ग्रन्थ-मालाओंकी आवश्यकता है। एक तो विद्वानोंके लिए उच्च कोटिके वैज्ञानिक ग्रन्थ जिनसे वैज्ञानिक सिद्धान्तोंकी जानकारी बढ़े और हमारा सांस्कृतिक स्तर ऊँचा उठे और दूसरीसे

हमारे गाँवोंमें रहनेवाले किसानों और शहरोंमें रहनेवाले कलाकारोंको लाभ हो। दूसरे प्रकारकी पुस्तकें सौ-सौ पृष्ठोंसे बड़ी न हों और न उनका दाम ही आठ आठ आनेसे अधिक रक्खा जाय। उदाहरणके लिए गाँवोंमें बसनेवालोंके लिए पुस्तकोंका विषय यह होना चाहिए—

१ खेती-बारीके मूल सिद्धान्त, २—पशुपालन जिसमें पशुओंकी रक्षा, सफाई, गोबर, मूत्र आदि से खाद बनानेकी रीति, दूध दही और मक्खनको सुरक्षित रखनेकी विधियाँ, पशुओंके रोग और चिकित्सा इत्यादिका वर्णन हो। ३—शरीर-विज्ञान, स्वास्थ्यरक्षा पर भी पुस्तक होनी चाहिए क्योंकि हमारे किसान इन विषयोंसे अनभिज्ञ होने और मिथ्या विश्वासोंके कारण अपनी बड़ी हानि कर रहे हैं।

ऐसी पुस्तकें सरल भाषामें रोचक ढंगसे लिखी जायँ तो गाँववाले इनसे सहज ही लाभ उठा सकते हैं। इनसे उनकी साक्षरता बढ़ेगी, उनका परम्परा-गत ज्ञान बढ़ेगा, भ्रमात्मक विचारोंसे छुटकारा होगा और सांस्कृतिक स्तर ऊँचा होगा। ऐसी पुस्तक-मालाओंसे हमारे लेखकों और प्रकाशकोंको भी लाभ होगा। मान लीजिए कि हिन्दी भाषी प्रान्तोंमें कुल मिलाकर एक लाख गाँव हैं और प्रत्येक गाँवमें कमसे कम एक-एक पुस्तक पहुँचानेका प्रबन्ध किया गया है तो कमसे कम एक लाख पुस्तकोंकी खपत तो अवश्य ही होगी। इससे प्रकाशकोंको भी पर्याप्त लाभ पहुँच सकता है और लेखकोंको भी रायल्टी और पुरस्कारके रूपमें उचित और आवश्यक सहारा मिल सकता है।

कृषि और उद्योग

कृषि और उद्योगकी शिक्षा हिन्दीमें देनेके लिए मेरठका कलाभवन जिसके संचालक चौधरी मुख्तारसिंहजी हैं कई वर्षोंसे काम कर रहा है और उसने कई पुस्तकें भी प्रकाशित करवाई हैं। चौधरी साहब कृषि-संबंधी आवश्यकताओंको अच्छी तरह समझते हैं इसलिए यदि उनके सहयोगसे कृषि और उद्योग-संबंधी पुस्तकोंका प्रकाशन किया जायतो बड़ा ही अच्छा हो। चौधरी साहबसे हमारी प्रार्थना है कि वे विषयोंके चुनावके संबंधमें कुछ सुझाव दें। आरंभमें तीन-चार पुस्तकें जो बहुत ही आवश्यक हों छापी जायँ और उनका प्रचार किया जाय। इससे जो लाभ हो उससे आगेकी पुस्तकें प्रकाशित की जायँ। मैं समझता हूँ कि इस कामके लिए लोगोंसे चन्दा माँगनेकी आवश्यकता नहीं है। यदि पुस्तकें आवश्यक और महत्वपूर्ण होंगी तो उनकी बिक्रीसे हमारा खर्च चलेगा और हम लेखकोंको उचित पुरस्कार भी दे सकेंगे।

दुःख है कि हमारे हिन्दी प्रान्तीय विश्वविद्यालयोंमें अब भी हिन्दी सब छात्रोंको अनिवार्य रूपमें नहीं पढ़ाई जाती। विज्ञानके विद्यार्थीतो इससे प्रायः वंचित ही रहते हैं जिसका दुष्परिणाम यह होता है कि वह अपने ज्ञानको हिन्दीमें प्रकट करने में असमर्थ रहते हैं और अपने ज्ञानसे हिन्दी-भाषी लोगोंको लाभ नहीं पहुँचा सकते। इसलिए हमारा यह प्रयत्न होना चाहिए कि विश्वविद्यालयोंमें सभी हिन्दी भाषी छात्रोंको बी० एस-सी० और एम० एस-सी के विद्यार्थियोंके लिए भी हिन्दी भाषाका एक प्रश्नपत्र अनिवार्य कर दिया जाय जैसा अंग्रेजीके लिए एक सामान्य (General English) प्रश्नपत्र आता है। इससे उनमें यह योग्यता रहेगी कि वे अपने मनोभाव शुद्ध हिन्दीमें व्यक्त कर सकें और अपने ऊँचेसे ऊँचे ज्ञानको हिन्दी भाषामें लिखकर प्रकट कर सकें। डा० रामकुमार वर्माके भाषणसे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि प्रयाग विश्वविद्यालयने यह प्रबन्ध कर दिया है।

इस संबंधमें कलकत्ता विश्वविद्यालय बहुत दिनोंसे ऐसा काम कर रहा है। वहाँ बँगला भाषाका जानना प्रत्येक बंगाली विद्यार्थीके लिए अनिवार्य है। इसका परिणाम भी स्पष्ट है।

बँगला भाषामें आधुनिक विज्ञान और दर्शन पर जितनी उत्तम-उत्तम पुस्तकें निकली हैं उतनी हमारी भाषामें कहाँ हैं।

पारिभाषिक शब्द

वैज्ञानिक ग्रन्थ निर्माणमें एक कठिनाई यह होती है कि हिन्दीमें वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों का कोई अच्छा और पूर्ण कोष नहीं है। काशी की नागरी प्रचारिणी सभाका परिवर्धित कोष भी पर्याप्त नहीं है क्योंकि विज्ञानका विस्तार बड़ी तेजीसे हो रहा है जिससे उसके पारिभाषिक शब्दोंकी संख्या भी बहुत बढ़ रही है। इसलिए ऐसा प्रबन्ध होना चाहिये कि शब्द कोष भी तैयार कराये जायं। हर्षकी बात है कि प्रयाग विश्वविद्यालयकी भारतीय हिन्दी परिषद् ने इसी वर्ष विज्ञानके विविध शाखाओंके मर्मज्ञोंसे एक वैज्ञानिक शब्दकोष तैयार करवाया है जिसमें प्रयत्न किया गया है कि एम० एस्-सी० के कोर्स तकमें पढ़ाये जानेवाले शब्द सब आ जायँ। इसका सम्पादन हमारे गत अधिवेशनके सभापति डाक्टर सत्यप्रकाश जी कर रहे हैं। आशा है कि यह कोष शीघ्र छपकर प्रकाशित हो जायगा। इससे पारिभाषिक शब्दों की कठिनाई कुछ दिनोंके लिए दूर हो जायगी। फिर जैसे जैसे वैज्ञानिक साहित्यका विकास होगा तैसे तैसे इसमें भी परिवर्तन होता जायगा।

कुछ लोगोंका विचार है कि ये नये पारिभाषिक शब्द गढ़नेकी आवश्यकता नहीं है, अंग्रेजीके शब्द ही नागरी लिपिमें लिखे जायं तो अच्छा होगा क्योंकि इससे हमें बाहरी देशोंसे व्यवहार करनेमें सुविधा होगी। मैं इससे सहमत नहीं हूँ। छोटे छोटे सरल शब्द जो रूढ़ि हो गये हैं ले लेनेमें कोई आपत्ति नहीं है परन्तु बड़े-बड़े शब्द जिनका उच्चारण करना भी हमारे लिये कठिन होगा लेनेसे लाभ बहुत कम है परन्तु कठिनाई बहुत है। यह तो निर्विवाद है कि अंग्रेजी शब्द ऊटपटांग ढंगसे नहीं गढ़े गये हैं; वे भावात्मक हैं अर्थात् उनसे किसी अर्थका बोध होता है जिससे उस वस्तुका बोध सुगमता से हो जाता है जिसके वे द्योतक हैं। उदाहरण के लिए टेलिस्कोप या माइक्रास्कोप शब्द ले लीजिये। पहलेका शब्दार्थ है दूरसे देखानेवाला और दूसरेका सूक्ष्म वस्तुओंको दिखानेवाला। जो अंग्रेजी भाषा जानते हैं उनको इन शब्दोंका शब्दार्थ समझानेकी आवश्यकता नहीं है, इस लिए वे सहज ही समझ सकते हैं कि यह कैसे यंत्रोंके द्योतक हैं। परन्तु यदि यही शब्द हिन्दीमें ज्योंके त्यों ले लिये जायं तो हिन्दी वालोंको अंग्रेजीके 'टेली' और 'स्कोप' तथा 'माइक्रो' शब्दों का भी अर्थ रटना पड़ेगा। इसलिए इन भावात्मक शब्दोंकी जगह दूरबीन या दूरदर्शक और खुर्दबीन या सूक्ष्मदर्शक शब्द ही ग्रहण करना उचित और लाभदायक है। इन शब्दोंमें भी दूरबीन और खुर्दबीन शब्दोंकी जगह दूरदर्शक और सूक्ष्मदर्शक शब्द अधिक उपयोगी और सरल हैं। किसी समय इनके लिये दूरवीक्षण और सूक्ष्मवीक्षण यंत्र नामक शब्दोंका भी प्रयोग किया गया है परन्तु ये शब्द भी अपने स्थूलकाय शरीर और जटिलताके कारण ग्रहण करने योग्य नहीं हैं।

इसलिए हिन्दीके सरल और भावसूचक शब्दोंका ही प्रयोग करना उचित है। अंग्रेजीके हज़ारों जटिल वैज्ञानिक शब्दोंको ज्योंका त्यों ले लेनेसे हमारी स्मरणशक्तिको व्यर्थ ही अनावश्यक बोझेसे लादना कहाँकी बुद्धिमानी है? शब्दोंका निर्माण संस्कृत और हिन्दी भाषाके ही आधार पर होना चाहिये। हाँ यह ध्यान रखना होगा कि उसमें जटिलता न आने पावे, जैसे दूरवीक्षण यंत्रकी जगह दूरदर्शक अधिक सरल और भावबोधक हैं। इस सम्बन्धमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती क्योंकि गत अधिवेशनके सभापति ने इस विषयको अधिक विस्तारके साथ लिखकर दिखलाया है कि शब्द

निर्माण किस ढंग पर होना चाहिए जिसका सारांश मैं यहाँ उन्हींके शब्दोंमें दुहरा देता हूँ:—

"मेरे विचारसे ऐसे अंग्रेजी शब्द ले लेनेमें कोई आपत्ति नहीं है जिस शब्दके अन्य वैयाकरण रूप हमें बनाने न पड़ें। जिन शब्दोंके अनेक रूपान्तरोंका हमें अपनी वैज्ञानिक भाषामें प्रयोग करना पड़े उनके लिए अंग्रेजीका विदेशी रूप ग्रहण करना भाषाकी क्षमतामें बाधा डालना है। शब्दोंके रूपान्तर तो प्रत्येक भाषामें अपने-अपने व्याकरणके आधार पर ही बनाये जायंगे। हम विदेशी भाषाके किसी एक रूपको तो ग्रहण कर सकते हैं पर उसके ग्रहण करनेके अनन्तर शेष भावात्मक रूप अपने व्याकरण तथा अपनी भाषा-परिपाटीके अनुसार बनानेकी हमें स्वतन्त्रता होनी चाहिये।......अतः यह स्पष्ट है कि जिस शब्दके हमें अनेक वैयाकरण रूपोंका वैज्ञानिक साहित्यमें प्रयोग करना पड़े उसके अंग्रेजी रूपका ग्रहण करना साहित्यमें श्रेयस्कर न होगा। शेष शब्दोंमेंसे कुछ अंग्रेजी तत्सम अपनाये जा सकते हैं, कुछ तद्भव रूपमें।"

अनेक लिपियोंका प्रयोग

अंग्रेजी वर्णमालामें कुल २६ अक्षर हैं और वैज्ञानिक संकेत इससे कहीं अधिक। इसलिये रोमन अक्षरोंके साथ ग्रीक अक्षरोंका भी प्रयोग किया जाता है और जब इनसे भी काम नहीं चलता तब एक, दो, या तीन डैश भी लगाये जाते हैं। दुःख है कि कोई-कोई लेखक हिन्दी अक्षरोंके साथ भी डैशोंका प्रयोग करते हुए देखे गये हैं जो अनावश्यक हैं। हमको विदेशी अक्षर या डैशोंको अपनानेकी आवश्यकता नहीं है। हमारी नागरी वर्णमाला मात्राओंके साथ मिल कर इतने संकेतोंका सूचक हो सकती है जिसमें सारे संसारके भाव प्रकट किये जा सकते हैं और हमारा सब वैज्ञानिक काम सरलता पूर्वक चल सकता है।

अंग्रेजी अंकोंका प्रयोग अनुचित

मुझे यह देखकर बड़ा दुःख होता है कि स्कूलोंमें पढ़ायी जाने वाली गणित और विज्ञान की हिन्दी पुस्तकोंमें अंग्रेजी-या रोमन अंकोंका प्रयोग बराबर हो रहा है और इसके लिए संयुक्त-प्रान्त के शिक्षा विभाग ने यह नियम बना दिया है कि इनमें रोमन अंकोंका ही व्यवहार किया जाय। इससे हमारी बड़ी हानि हो रही है पर दुःख है कि इस ओर हमारा ध्यान बहुत कम गया है। क्या नागरी अंक रोमन अंकोंकी अपेक्षा कठिन या निकृष्ट हैं? जब ऐसी बात नहीं है तब क्यों हमको अपने अंकोंका बहिष्कार करना सिखलाया जा रहा है? इन अंकोंका वर्तमान रूप हज़ारों वर्षों के संस्कारका परिणाम है जिनका इतिहास भी रोचक और शिक्षाप्रद है। इसलिये हमको चाहिये कि हम अपने ही अंक व्यवहार करें। मैं समझता हूँ कि यह बात केवल उन पुस्तकोंमें पायी जाती है जो ऐंग्लो-वर्नाक्यूलर स्कूलोंमें पढ़ायी जाती हैं। यदि दुर्भाग्यवश यह रोग गांवोंमें पढ़ायी जाने वाली पुस्तकोंमें भी पहुँच गया तो बड़ा अन्याय होगा। इसलिये हम अभी से बतला देना चाहते हैं कि हिन्दी पुस्तकोंमें प्रयुक्त होनेवाले अंक हमारे अपने हों जिनका प्रचार सैकड़ों वर्षों से हमारे गाँवोंमें है और जिनसे हमारा ग्राम-समाज पूरी तरह परिचित है। मैं समझता हूँ कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन इसपर एक प्रस्ताव स्वीकृत करे और यहाँके शिक्षा विभागको बतलावे कि भविष्यमें हिन्दीमें लिखी विज्ञान गणित आदिकी पुस्तकोंमें रोमन अंकोंका व्यवहार न किया जाय।

प्राचीन भारतीयोंकी वैज्ञानिक विचारधारा

पाश्चात्य विद्वानोंकी यह साधारण धारणा है कि प्राचीन भारतीय आधुनिक वैज्ञानिक पद्धतिसे परिचित नहीं थे। एक विद्वान् ने तो अपने ज्योतिषके इतिहासमें यहाँ तक लिख डाला है

कि भारतीय अच्छे दर्शक (observer) नहीं थे। परन्तु मेरा अनुभव बतलाता है कि पाश्चात्योंकी यह धारणा निमूल है। चरकसंहिता वैद्यक का सिद्धान्त ग्रन्थ है और कमसे कम दो हजार वर्ष पहलेका समझा जाता है। इसमें एक अध्याय षटरसों पर है जिसमें गुरु और शिष्य के सम्वाद रूपमें बहुत विस्तारके साथ विचार किया गया है कि रस कितने प्रकारके हो सकते हैं और अंतमें निश्चय किया गया है कि यह ६ प्रकारके हैं। इस अध्यायके पढ़नेसे पता चल जायगा कि उनकी निरीक्षण शक्ति कितनी सूक्ष्म थी और किस प्रकार तर्कके साथ वह विषय का प्रतिपादन किया करते थे। आचार्य पी० सी० रायके हिस्ट्री आव् हिन्दू केमिस्ट्रीसे भी सिद्ध होता है कि हमारे रसायनाचार्य उस समय वैज्ञानिक पद्धतिसे काम लेते थे।

ज्योतिषके प्राचीन ग्रन्थोंके अध्ययनसे भी यह निश्चय हो जाता है कि ज्योतिषके पुराने आचार्यों ने आकाशका कितना सूक्ष्म निरीक्षण किया था। पाश्चात्य ज्योतिषमें वसन्त-सम्पात के चलनेकी बात हिपार्कसके समयमें, अर्थात् ईसासे लगभग १५० वर्ष पहले देखी गयी थी। परन्तु हमारे यहाँ वेदाङ्ग ज्योतिषमें जो १४०० वर्ष ईसासे पहले अवश्य बनाया गया होगा, यह बतलाया गया है कि उत्तरायणके समय सूर्य धनिष्ठा नक्षत्रके आरम्भमें रहता था। इससे भी पूर्वकी घटनाका उल्लेख मैत्रायिणी उपनिषद् में मिलता है जिससे सिद्ध होता है कि दक्षिणायनके समय सूर्य मघा नक्षत्रके आदिमें और उत्तरायण धनिष्ठाके मध्यमें होता है। स्वयम् वराहमिहिर ने ईसाकी छठी शताब्दीमें इन घटनाओंकी चर्चा करते हुये लिखा है कि पहले दक्षिणायन जिस नक्षत्रमें होता था उससे हटकर अब वह पुनर्वसु नक्षत्रमें होता है। इसलिए मैं यह माननेको तैयार नहीं हूँ कि भारतीयोंमें वैज्ञानिक रीतिसे वस्तुओंके गुण-धर्म निश्चय करनेकी परिपाटी नहीं थी।

सज्जनो, मैंने आपका बहुत-सा समय ले लिया। आपने धैर्यके साथ इसे सुननेकी कृपा की इसके लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि आप विज्ञान-परिषद्‌को व्यावहारिक और उपयोगी बनानेकी कृपा करेंगे।

महावीरप्रसाद श्रीवास्तव
आश्विन शुक्ला ९, २००२ वि०

वनस्पतिका रहन-सहन और इसका लोकोपयोग

[लेखक—डा० रामदेव मिश्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय]

(१)

वनस्पति रहन-सहन (Plant ecology) औद्भिदी विज्ञान (Botany) का एक प्रधान अंग है। इसमें वनस्पतियों और इनके परिसरों (Environment) के सम्बन्धका अध्ययन होता है। इधर ३०-३५ वर्षोंके अनुसन्धानोंसे इस विज्ञानका लोकोपयोगी क्षेत्र अधिक विस्तृत हो गया है। उद्भिज (Vegetation) धनकी सुव्यवस्था, वनोद्योग (Forestry), पशुपालन, जल और भूमि-संरक्षण (Conservation of water and soil), इत्यादि के लिये तो यह विद्या अनिवार्य हो गई है।

वनस्पति-जीवन निम्नलिखित चतुर्वर्ग परिसरों पर निर्भर है :—

(१) **जलवायिक घटक** (Climatic factors)

ताप, प्रकाश, जल और वायुकी भिन्न भिन्न अवस्थाओं का वनस्पतियों पर निश्चित प्रभाव पड़ता है।

शारीरिक क्रियायें और वर्धन (Metabolism and growth) परिमित तापमें हो पाते हैं। इनके लिये २०°—३०° शतांश (Centigrade) का तापक्रम उत्तम है। इस सीमाके नीचे और ऊपर क्रियाएँ मन्द पड़ती हैं और किसी प्रकार जीवन निर्वाह होता रहता है। निस्सन्देह विशेष वनस्पति ०° के भी नीचे और ६०°—६५° शतांशसे भी कुछ ऊपर भली प्रकार रह सकते हैं।

प्रकाशकी आवश्यकता खाद्य बनाने, फूलने-फलने और वर्धन में पड़ती है। वनस्पतिके हरे भाग प्रकाशकी ही शक्ति लेकर प्रांगार द्विजारेय (Carbon dioxide) एवं जल से प्रांगोदीय (Corbohydrate) नामक खाद्य पदार्थ बनाते हैं। अतएव हरी वनस्पतियों को पर्याप्त मात्रामें प्रकाश आवश्यक है।

हाल ही में यह भी बात सिद्ध हुई है कि किसी भी वनस्पतिके फूलने-फलनेके लिए नित्य एक निश्चित काल (Period) तक उसे प्रकाश मिलना चाहिये। वनस्पतिके इस व्यवहारको भावर्तनी (Photoperiodism) कहते हैं। भावर्तनिक विचारसे वनस्पति तीन वर्गोंमें रक्खे जा सकते हैं।

(क) **लघु-दिवसो** (Short day plants)—जैसे तम्बाकू, सरसों, मटर, इत्यादि। इन्हें नित्य १२ घंटेसे कम प्रकाश मिलना चाहिये।

(ख) **दीर्घ-दिवसी** (Long day plants)—जैसे मूली, चुकन्दर, मकई, इत्यादि। इनके प्रकाशका काल १२ घंटेसे अधिक होना चाहिये। और—

(ग) **दिवस-उदासी** (Indeterminate)—जैसे सूर्यमुखी, टोमाटो, कपास, इत्यादि। इनका भावर्तन (Photoperiod) अनिश्चित होता है जिससे ये उपर्युक्त दोनों दशाओंमें फूलते और फलते हैं।

जंगली पौधोंमें साधारणतः लघुदिवसी उष्ण प्रदेशोंमें, दीर्घदिवसी शीत प्रदेशोंमें, दोनों ही शीतोष्ण प्रदेशोंमें और दिवस-उदासी सभी प्रदेशोंमें पाये जाते हैं।

अँधेरेमें वनस्पतियोंका वर्धन विकृत और अस्थायी होता है।

वर्षा, शिशिर और हिमपातसे भूमिको जल मिलता है। भूमिमें, पर्याप्त मात्रामें जलका न होना वनस्पतिके लिए घातक है। जलकी सुलभता पर वनस्पति वितरण (Plant distribution) बहुत कुछ निर्भर है। वाष्प रूपमें जल वायुको भी आर्द्र रखता है जिससे पत्तियाँ जल्दी शुष्क नहीं हो पातीं।

वायुकी शुष्कता और वेगसे वनस्पति शुष्क हो जाते हैं, और इनका वर्धन मन्द पड़ जाता है। समुद्रके किनारे अधिकांश वृक्ष तीव्र वायुके आघातसे झुके और टेढ़े-मेढ़े उगते हैं। किन्तु वायुसे वनस्पतिको उचित मात्रामें जारक (Oxygen) और प्रांगार द्विजारेय (Corbon dioxide) वातियाँ (Gases) मिलती हैं। ये वातियाँ परिसरों (Environment) के अनुसार न्यूनाधिक होती रहती हैं। इनसे पौधोंकी श्वसन

*यह लेख, काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके हिन्दी परिषद्में, लेखकके एक व्याख्यानके आधार पर लिखा गया है। रसायनके शब्द, डा० रघुवीरके 'आङ्गल-भारतीय महाकोष'' से लिये गये हैं। कुछ शब्द डा० ब्रजमोहन की कृपासे भी प्राप्त हुए हैं।

(Respiration) और खाद्योपार्जनकी क्रियाएँ प्रभावित होती हैं।

(२) भौकृतिक घटक (Physiographic factors)—धरातलकी ऊँचाई (Altitude), ढाल (Slope) और अनावर्तन (Exposure) से स्थानीय जलवायु और भूमिमें भिन्नता आ जाती है। पहाड़ी देशोंमें अथवा समुद्रके किनारे जहाँ भूमिकी दशा परिवर्तनशील होनेसे धरातल एकसा नहीं रहता, परिसर जल्दी-जल्दी बदलते रहते हैं। भूमि एक जगह घिसती या कटती (Erosion) है तो दूसरी जगह पटती (Deposition) है। खारे दलदलों (Salt marshes), वालुकाढूहों (Sand dunes), रोड़ों और चट्टानोंकी अवस्था भी बदलती रहती है। इन बातोंका वनस्पतिसे घनिष्ट सम्बन्ध है।

(३) भौमिक घटक (Edaphic factors) वनस्पतिका विस्तृत मूल भाग भूमिमें रहता है। यहींसे खाद्य पदार्थोंके निमित्त अधिकांश सामग्रियोंका शोषण होता है। अतएव भौमिक घटकोंका विशेष महत्व है।

भूमिकी आकृति (Structure) धूलके कणोंके आकार, सम्मिश्रण और विस्तार पर निर्भर है। इसमें प्रांगारिक पदार्थ (Organic matter) की मात्राके अनुसार जल और जीवाणु (Micro-organisms) होते हैं। भूमिके जलमें भाँति-भाँतिके लवण (Salts) कणोंसे छूटकर घुलते रहते हैं। पौधे अपनी जड़ों द्वारा जल और लवणोंका वहाँसे शोषण करते हैं। फिर इनसे और प्रांगोदीयके सम्मिश्रणसे प्रोभूजिन (Proteins) नामक खाद्य पदार्थ बनाते हैं जिससे शरीरका पोषण होता है। शोषण (Absorption) क्रियाके लिये भूमिमें मूलोंका अत्यधिक प्रसार होता है और इनके बढ़ते हुए अंगों (Growing regions) में निरंतर नये मूल रोम निकलकर, कणोंके बीच रासायनिक विलयन (Soil solution) में पहुँचते हैं। मूलोंके वर्धन और श्वसन के लिये जारक वाति (Oxygen gas) की आवश्यकता होती है; अतएव भूमिमें पर्याप्त वात (Air) भी होना चाहिये। कणोंके मध्यस्थ वात पहुँचानेमें नाना प्रकारके कृमिज और केंचुये सहायक होते हैं। कृषिमें जुताईका भी यही अभिप्राय होता है।

बलुही भूमिमें अधिकांश कण बड़े होते हैं जिससे इनके मध्यस्थ वात तो अधिक होती है, परन्तु जल संचित न होकर नीचे छन जाता है। मृत्सा (Clay) में ठीक उल्टी बात होती है, क्योंकि इसके कण अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं। दोनोंके पर्याप्त अनुपात (Proportion) में मिश्रित होनेसे भूमिमें वात और जलकी कमी नहीं होती।

भूमिको प्रांगारिक पदार्थ, वनस्पति और प्राणियों के शरीरसे प्राप्त होते हैं। इनके निर्जीव शरीरको असंख्य जीवाणु सड़ाते हैं, जिससे कई एक द्रव्य दुर्गन्ध वातियोंमें परिणत होकर वायुमण्डलमें विलीन हो जाते हैं, और सड़ा हुआ अंतिम पदार्थ (Humus) प्रांगारिक श्लेषाभ (Organic colloids) के रूप में भूमिकी उत्पादन शक्तिको बढ़ाता है। एक यव (Grain) मात्र भूमिमें १से १०० प्रयुत (Million) तक तृणाणु (Bacteria) पाये जाते हैं। इनके कार्यसे मृत्तिका विलयन (Solution) में लवण अधिकाधिक मिलता रहता है और प्रांगारिक श्लेषाभि जल-संचयनमें सहायक बनता है। प्रांगारिक पदार्थके अभावसे भूमि निर्जीव और क्षीण हो जाती है; परन्तु इसका अत्याधिक्य भी हानिकर है।

(४) जैविक घटक (Biotic factors)—वनस्पतियों और जन्तुओंमें पारस्परिक सम्बन्ध आदिकाल से रहा है। सेचन (Pollination) और बीज विकिरण (Dispasal of seeds) में बहुतसे कीट, पतिंगों, चिड़ियों और अनेक जन्तुओंसे सहायता मिलती है। परन्तु, जन्तुगण प्राकृतिक उद्भिज (Natural vegetation) के लिये, लाभदायिक व्यवहारोंकी अपेक्षा, हानिकर अधिक हुये हैं। इसमें मनुष्यका हाथ सबसे ऊँचा है। जहाँ भी घनी बस्ती मिलती है उसके निकट प्राकृतिक हरियालीका अभाव रहता है। खेती, पशु चराना, आग लगाना, लकड़ी काटना, इत्यादि उद्भिजके ह्रासके प्रधान कारण रहे हैं।

अब बनोंके स्थान पर कुछ कँटीली झाड़ियाँ या निकम्मी घासें मिलती हैं।

वनस्पतियोंमें स्थान, प्रकाश और भोजनकी सामग्रियों के हेतु घोर स्पर्धा (Competition) होती है। परोपजीवी (Parasitic) जातियाँ, जैसे अमरबेल और बंडा क्रमशः अपने पोषक (Host) ही को चूस डालते हैं। नाना प्रकारके रोगोंसे भी वनस्पतिकी क्षति होती है।

उपर्युक्त चतुर्वर्ग परिसरोंमें वनस्पति जीवन बँधा है।

यदि संसार के समस्त स्थानोंकी परिस्थितियाँ मकोई या धतूरा जैसे पौधोंके अनुकूल हों तो यह अपनी उत्पादन शक्तिके अनुसार चार-पाँच सालमें सारे भूमंडल को ढँक दें। घासोंके छोटे हल्के बीज वायु द्वारा उड़ कर कहाँ नहीं पहुँच जाते? बालुकामय मरुभूमिमें भी इनकी वर्षा सी होती रहती है। किन्तु परिस्थितियाँ अनुकूल न होनेके कारण यह अंकुरित नहीं होते, अथवा किशोरावस्थामें विनष्ट हो जाते हैं।

वनस्पति जगत्में अनेक प्रकारकी जातियाँ हैं। जीवन-कालकी विभिन्न अवस्थाओंमें प्रत्येक जातिकी सहन-शीलताकी अवधि (Range of tolerance) भिन्न होती है। शारीरिक रूप, रचना और क्रियाओंका परिवर्तन, इनकी सहनशीलताका साधन है। जिन जातियोंकी सहन-शक्ति अधिक है वे अनेक परिसरोंमें मिलेंगे, किन्तु जो संकीर्ण और साधनहीन हैं वे विशेष परिस्थितियोंमें ही पाये जायँगे।

साधारणतः कई जातियाँ एक स्थानमें उगती मिलती हैं। एक छोटे भूमिखण्ड पर असंख्य पौधोंको देखकर कभी-कभी आश्चर्य भी होता है। परन्तु प्रत्येक जातिकी जड़ें भिन्न-भिन्न गहराई तक, और उनके तने और शाखायें भिन्न-भिन्न ऊँचाई पर पाये जाते हैं। जो लम्बे और विशाल शरीरवाले हैं उनकी छायामें छोटे-छोटे पौधे उगते हैं। इस प्रकार सभी जातियोंके परिसर, एक ही स्थान पर उगते हुये भी, समान नहीं होते। किसी एक जातिके स्थानीय (Local) परिसरको जातीय वासव्य (Habitat of species) (अँग्रेजीमें इसे Micro climate अर्थात् सूक्ष्म-जलवायु) कहते हैं।

जो बली, बहुसंख्यक और विशालकाय जाति होती है उसे प्रधान जाति (Dominant species) कहते हैं। प्रधान जातिसे प्रभावित और निर्मित स्थानीय परिस्थितियोंमें आधीन जातियाँ (Subordinate species) रहती हैं। इस प्रकार किसी समान परिसर में, वृक्षोंके सहवाससे वनस्पति समुदाय (Plant community) बना है। किसी समुदायका निदान (Diagnosis-characterisation) इसके बाह्य रूप (Physiognomy), वानस्पतिक संयोजन (Floristic composition), स्तरण (Layering), सघनता और ऋतु-प्रतिक्रियासे निश्चित होता है। [उदाहरण :—शुष्क-पतझड़वाले मानसूनी बन (Dry deciduous mo.soon forest):—बाह्य रूप-बन; वनस्पतिक संयोजन—चिलबिल, सिरिस, इत्यादि जातियाँ; स्तरण—वृक्षस्तर (Tree layer), झाड़ियोंका स्तर (Shrub layer), छोटे पौधों-का स्तर (Herb layer) और काइयोंका स्तर (Moss layer); सघनता—सघन बन; ऋतु-प्रतिक्रिया—बसन्त और ग्रीष्म ऋतुओंमें पतझड़ और फूलना, वर्षामें सघन वृद्धि, इत्यादि]

यदि किसी भूमागके सभी वनस्पतियों और उनके उत्पादक अंगोंको नष्ट कर दिया जाय और निर्विघ्न छोड़-कर उसका निरीक्षण किया जाय तो पता चलेगा कि वनस्पतियोंके समुदायकी उत्पत्ति और वृद्धि निम्नलिखित विधियोंसे होती है :—

(१.) सूक्ष्म और हल्के बीज प्रथम वायुसे उड़कर फिर और माध्यमों द्वारा भी उस भूमाग पर गिरते रहेंगे और अनुकूल परिस्थितियोंमें अंकुरित होंगे। किनारेके पौधे जिनमें रेंगकर उगनेकी शक्ति है, धीरे-धीरे उसकी ओर बढ़ते रहेंगे। इनमें घासोंकी ही संख्या प्रारम्भमें अधिक रहेगी और आर्द्रताके आधिक्यमें काइयाँ भी होंगी।

(२) वे ही नवागन्तुक पौधे शैशवसे प्रौढ़ावस्था प्राप्त कर अपनी संख्या वृद्धि कर सकेंगे जिनको

उनकी प्रत्येक अवस्थाके अनुकूल परिस्थितियाँ मिलती जायँगी (Ecesis)।

(३) इनकी संख्या वृद्धि (Aggregation) के साथ ही इनमें स्पर्धा (Competition) की विषमता (Intensity) भी बढ़ती जायगी । किन्तु इनके सहयोग और संगठनसे समुदायका निर्माण होगा।

समुदायकी वृद्धिके साथ-साथ परिस्थितियोंमें क्रमशः भिन्नता आती जाती है । संघर्षमें क्रिया-प्रतिक्रियासे निस्सन्देह दोनों ही में परिवर्तन होते हैं । मिट्टीमें मृत अंगों-के सड़नेसे प्रांगारिक पदार्थकी मात्रा बढ़ती है; फलस्वरूप इसमें जल, अम्लता (Acidity), जीवाणु-संख्या, भूमीय (Nitrate), भास्वीय (Phosphate) और चूर्णानु (Calcium) लवणों (Salts) की अधिकता होती जाती है। पत्तियोंके वाष्पोच्छ्वासन (Transpiration) से और वृक्षों द्वारा पवनकी गति रुकनेसे, वायुमंडल आर्द्र होता है। ऊँचे वृक्षोंकी छायासे इनके नीचे प्रकाशमें न्यूनता होती है इत्यदि इत्यादि। इस प्रकार परिसर (Environment) के सारे घटक (Factors) बदल जाते हैं, और जिन प्रधान जातियोंके कारण यह परिवर्तन हुआ अब दशायें उन्हींके प्रतिकूल बन गईं, जिससे इस समुदायका विनाश और पहले बताई हुई विधियों द्वारा इसी स्थान पर क्रमशः एक दूसरे समुदायका निर्माण होता है। यह समुदाय और परिसरका संघर्ष, यह विनाश और निर्माण तबतक चलता रहेगा जबतक कि दोनों जलवायुके अनुसार स्थित न हो जायँ। इसी विधानको वानस्पतिक क्रम-विकास (Plant succession) कहते हैं। यह निम्नांकित चित्रमें भली भाँति दिखाया गया है।

इस भाँति प्रगतिशील समुदायोंकी एक शृंखलासे उद्भिजका विकास होता है। इन शृंखल समुदायों (Seral communities) की अपेक्षा विकसित अथवा प्रौढ़ समुदाय (Climax community) अधिक जटिल और सुसंगठित होता है। इसे वनस्पति-समाज (Plant association) कहेंगे। इसमें छोटे-मोटे परिवर्तन होते ही रहते हैं। इसीसे चित्रमें यह वृत्ताकार दिखाया गया है।

क्रमचक्र

[वनस्पति और परिसरके घटकोंमें पारस्परिक संघर्ष; परिणाममें "शृंखल" और "प्रौढ़" समुदायों स्थापना।]

यह क्रम-विकास देशकी जलवायुके अनुसार एक ही सा हो, सो बात नहीं है । एक देशमें स्थानकी भिन्न-भिन्न अवस्थाओंके अनुसार समुदायों की भिन्न-भिन्न शृंखलायें मिलती हैं। यदि स्थान जलमग्न रहा तो प्रारम्भमें जलीय (Aquatic) वनस्पतियोंसे समुदायकी प्रगति होगी और इसे उदीय शृंखला (Hydrosere) कहेंगे। यदि स्थान सूखा रहा तो इस क्रमको शुष्क शृंखला (Xerosere) कहेंगे। ऐसे ही यदि मिट्टीकी जगह प्रारम्भमें पत्थर हो तो पाषाणिक शृंखला (Lithosere) और बालू हो तो सिकतिल शृंखला (Psamosere) मिलेगी। परन्तु इन सब शृंखलाओंका अन्त जलवाषिक प्रौढ़ उद्भिज (Climatic climax vegetation) में ही होके रहेगा। निस्सन्देह अनुकूल भूमि बननेमें अधिक समय लगनेसे यह शृंखलायें लम्बी होंगी।

यद्यपि प्रौढ़ समाजमें क्रम-विकासकी गति नहीं रह जाती तथापि यह अनन्त काल तक एक ही अवस्थामें नहीं रह पाता। जब किसी युगमें जलवायु बदलती है तो

इसमें पुनः क्रम-विकास होता है। अतएव प्रौढ़ समाज जलवायुके विचारसे ही चिरस्थायी होता है।

कुछ विद्वानोंने इसीलिए जलवायिक प्रौढ़ता (Climatic climax) के अतिरिक्त भौमिक (Edaphic) और जैविक (Biotic) प्रौढ़ता-को भी माना है। यदि किसी पर्वत पर ऐसे कठिन पाषाण हों जिनका ऋतुकरण (Weathering) अत्यन्त मन्द-गतिसे हो और वहाँ भूमिकी दशा वैसी ही चिरस्थायी हो जैसी वहाँकी जलवायु, तो यहाँका उद्भिज भूमि-प्रौढ़ होगा। ऐसे ही गंगाके मैदानोंमें पशुओंके चरते रहनेसे सघन बनोंके स्थान पर घासें ही चिरकालसे मिलती हैं; अतएव यह घासका उद्भिज (Grassland vegetation) जीव-प्रौढ़ माना जा सकता है।

(२)

वनस्पतियोंके रहन-सहन, उनके संगठन और क्रम-विकाससे हमारा क्या प्रयोजन है?

इन्हीं बातोंको भली भाँति समझकर हम उद्भिज धन पर नियन्त्रण (Control) रख सकते हैं और इसकी आर्थिक व्यवस्था (Economic planning) करके देशका दारिद्रय बहुत कुछ दूर कर सकते हैं। निस्संदेह हमने इन बातोंको अब तक भली प्रकार नहीं समझा और प्रकृतिका विरोध करके यहाँके घने जंगलोंको बड़ी क्रूरतासे समूल नष्ट कर डाला। इसके परिणाममें भूमि घिसती (Soil erosion) गई, वर्षाका जल इसमें न ठहरकर नदियोंमें बाढ़ लाने लगा; भूमिकी शुष्कतासे गंगाके हरे मैदान मरुभूमि बनते गये; इस जर्जर भूमिकी उपज कम होने लगी; पशुपालनमें कठिनाइयाँ आने लगीं और अब काम भरको अन्न और लकड़ी नहीं मिलती। इस दूषित चक्र (Vicious circle) से बचनेका अब भी एक उपाय है। जल्दीसे जल्दी प्रकृतिके नियमको समझकर इनसे सहयोग करने ही में हमारी कुशल है।

बनोंकी रक्षा करना हमारा परम कर्तव्य है। बनोंसे हमें अनेक लाभ हैं, जैसे, अधिक वर्षा, सूखी ऋतुओंमें भी पर्याप्त जल मिलते रहना, बाढ़का रुकना, उपजाऊ मिट्टीका स्थान पर टिकना और इसके ऊपर रोड़े, रेत इत्यादि का बहकर इकट्ठा न होना। इसके अतिरिक्त बनोंके कारण भाँति-भाँतिकी लकड़ियों और औषधियोंकी प्राप्ति, कागज़, दियासलाई, तारपीन-तैल, लाख, इत्यादिका उद्योग और चौपायोंके चरनेका स्थान इत्यादि सुलभ होते हैं। भारतवर्षका २५ प्रतिशत क्षेत्रफल अब भी जंगलोंसे ढका है; परन्तु यह जंगल अधिकतर पहाड़ी खण्डोंमें ही हैं। बनोद्योगके सिद्धान्तोंके अनुसार इनकी रक्षा हो रही है; किन्तु इनका दुरुपयोग भी कुछ कम नहीं होता।

अनेक स्थानोंमें अब भी 'झूम' की प्रथा प्रचलित है। पहाड़ी लोग जंगलोंको एक स्थान पर काटकर जला देते हैं और वहाँ खेती करते हैं। प्रारम्भमें अच्छी उपज हो जाती है, परन्तु शीघ्र ही वर्षाके आघातसे मिट्टी बह जाने पर न तो यहाँ अन्न हो सकता है न जंगल ही। इस स्थानको उजाड़ (Desolate) बनाकर धीरे-धीरे यह लोग और जगहोंकी भी यही दशा कर देते हैं। इस प्रथाको यथाशीघ्र रोकना चाहिये और पहाड़की ढालों पर जंगलोंसे घिरे समतलोंके समानान्तर (Contour) युक्तिपूर्वक सीढ़ियोंके आकारके बँधे स्थान कृषिके लिए बना लेना चाहिये।

पशुओंके निरंतर चरते रहनेसे और घास छीलनेके कारण हमारे चारागाह निकम्मे पड़ गये हैं। इन जैविक घटकों (Biotic factors) की अधिकतासे शुष्क घासें होती हैं या कँटीली झाड़ियाँ ही उग पाती हैं और किसी सीमा तक भूमि ऊसरमें परिणत हो जाती है। अतएव चरानेमें स्थानोंका क्रमपूर्वक परिवर्तन (Rotation) करते रहना चाहिये। परन्तु यदि चराना अधिक समय तक छोड़ दिया जाय तो भी ठीक नहीं क्योंकि क्रम विकासकी प्रगतिमें उस स्थान पर दूसरे निकम्मे वनस्पति आ जाते हैं। बनारसके मैदानोंमें Bothriochloa pertusa और Dichanthium annulatum नामकी घासें अच्छी होती हैं। किन्तु यदि एक वर्ष तक काटी या चराई न जायँ तो इन्हें Rhynchosia minima जातिका आरोही (Climbing) पौधा ऐंठ डालता है।

वृक्षोंकी मूल प्रणालीसे भूमि संगठित रहती है और वानस्पतिक आवरण (Plant cover) से वायुका

वेग रुक जाता है, जिससे धूल नहीं उड़ती और भूमिकी रक्षा होती है। इसकी विपरीत दशामें—जहाँ धरातल बनोंका नाश करके, विशेषतः ढालोंपर, नग्न किया जा चुका है—भूमिकी भयंकर क्षति होती है। मूसलाधार वृष्टिके आघातसे भूमि कटती जाती है (Gully erosion) और मिट्टी नदी-नालों द्वारा बह निकलती है। नदियोंके किनारेकी भूमि अत्यन्त ऊबड़-खाबड़ हो जाती है और जगह-जगह धरातलके खिसकने (Land-slide) से गहरे नाले बन जाते हैं। ऐसे ही सूखे दिनोंमें खुली और ढीली मिट्टीकी परत आँधीसे उड़ जाती है (Sheet erosion)। इस प्रकार मिट्टी का स्तर, यदि मोटा न रहा तो इसके पूर्ण नाश होने पर नीचेके पत्थर निकल (Crop) आते हैं; अन्यथा भूमिके ऊपरका उपजाऊ भाग जाता रहता है।

वृक्षोंसे आभूषित पृथ्वी, वर्षाके जलको, छिद्रिष्ट (Sponge) की भाँति ग्रहण करती है। अधिक जल धीरे-धीरे छनकर नदी-नालों द्वारा सूखे दिनोंमें भी मिलता रहता है। आसामके सघन बनोंमें बरसाती पानी ऐसे ही छनकर निर्मल रूपमें बहता है। वनस्पति-हीन भूमिकी जल-ग्रहण-शक्तिका ह्रास होनेसे, घोर वर्षा में नदियाँ उमड़कर जन और धनको जलमग्न कर देती है। यदि हिमालय और उसके नीचेके सघन बनोंका नाश न हुआ होता तो सम्भवतः गंगाके मैदानोंमें आज दिन बाढ़का इतना भीषण प्रकोप न होता। वर्षा होते ही इन नग्न पर्वतोंका पानी बड़े वेगसे बह चलता है। आश्चर्य तो यह है कि इतना होते हुये भी हमारे पहाड़ी प्रान्तों के अधिकारियों ने एक सभामें, गंगाके मैदान वालोंको ही नदियोंकी बाढ़के लिये, दोषी ठहराया है!

सूखी ऋतुओंमें जलके अभावका कारण भी उद्भिज-हीन भूमि है, जिससे दुर्भिक्ष पड़ता है। हमारे संयुक्त प्रांतके पश्चिम भागमें राजपूतानाकी मरुभूमि बढ़ती आ रही है, क्योंकि मुगलोंके समयके जंगल कट चुके और भूमि शुष्क होती जा रही है; जैसा कि कुओंके जल-तल (Water table) के पतनसे प्रतीत होता है।

इन भयंकर परिस्थितियोंसे बचनेका उपाय बस एक ही है। वह है प्राकृतिक उद्भिजकी रक्षा। नदी-नालोंके किनारे, विशेषतः पहाड़ों पर, जंगलोंका नाश राजकीय विधान द्वारा रोकना चाहिये और नग्नीकृत (Denuded) स्थानों पर जंगल लगाना चाहिये।

किन्तु, इन स्थानोंकी परिवर्तित परिस्थितियोंमें एका-एक जंगल लगा देना असम्भव है। परिस्थितियोंके अनुसार शीघ्र वर्द्धिनी जातियाँ (Fast growing species), क्रम-विकासके उपयुक्त ही उगाई जा सकती हैं। इन्हीं बातोंको अच्छी तरह समझकर अमेरिकाके संयुक्त राज्योंमें विद्वानोंने विशेष वनस्पतियोंके बीजोंको वायुयान द्वारा नग्नीकृत पर्वतों पर बोया है, जिससे शीघ्रति-शीघ्र सघन बन उगकर मिसिसिपीकी ताबड़तोड़ बाढ़को रोक दें। जहाँ पृथ्वीका घिसन अति तीव्र है वहाँ बीजों और हल्के वनस्पतियोंका टिकना कठिन होता है। ऐसे स्थलोंको कुछ समय तक बाँध कर वहाँ शीघ्र वर्द्धिनी झाड़ियाँ जिनका उत्पादन मूलोंसे भी हो सके, लगा देना चाहिये और इनकी पशुओंसे रक्षा करनी चाहिये। काशी में लेखकने राजघाटके नालोंके उद्भिजका अध्ययन किया है। ("The vegetation of the Rajghat Ravines" Journ. Ind. Bot Soc. vol. 23, No. 3; 1944.) वहाँ Capparis Sepiaria जातिकी झाड़ियाँ बड़ी तत्परतासे उगती हैं। भूमि धुलनेसे जहाँ कहीं भी इसकी जड़ें खुल जाती हैं वहीं इसके नये नये वृक्ष निकलकर अपने मूलोंसे मिट्टी-को बाँध देते हैं। कँटीली होनेसे इस जातिको पशु नहीं चर पाते और इन्हींकी रक्षामें दूसरी जातियाँ जैसे Diospyros Cordigolia और Pongamia glabra, जिनमें भी मूलोत्पादनशक्ति है, उग कर भूमि को सम्बद्ध कर देती हैं। मिट्टीके बँध जानेपर श्रृंखल समुदायों द्वारा प्रौढ़ उद्भिजका परिवर्द्धन (Development) होने लगता है।

बनोंमें कुछ वृक्ष जातियाँ औरोंकी अपेक्षा अधिक उपयोगी होती हैं। मनुष्य लालचमें आकर केवल इन्हीं के लगानेका प्रयत्न करता है। ऐसे ही बंगाल और आसाममें Gmelnia arborea के शुद्ध उपवन (Pure plantations) लगाये गये, क्योंकि इसकी लकड़ी अत्यन्त उपयोगी होती है। किन्तु बण्डा (Loranthus

scurrula) नामके परोपजीवीने इन उपवनोंको थोड़े ही दिनोंमें समूचा नष्ट कर दिया, जिससे लाखों रुपये-की क्षति हुई। ऐसे ही चम्पा (Michelia champaca) का शुद्ध उपवन लगाना, एक परोपजीवी कीड़े Urostylis punctigera) के कारण असम्भव हो गया। ये वृक्ष अपने सहवासी जातियोंके साथ ही स्व-समाजमें सुखी रह सकते हैं। मनुष्यकी प्रकृतिके अति विरुद्ध जानेमें दण्ड मिलना ही था।

अनेक स्थानोंमें शृंखल समुदाय, प्रौढ़ समाजसे अधिक उपयोगी होता है। ऐसे स्थानोंमें शृंखल समाजकी प्रगति-को रोकनेका प्रश्न उठता है। परन्तु क्रम-विकासके मर्मोंको समझकर ऐसा करनेमें सफलताभी मिली है। संयुक्त-प्रांतके पूर्वोत्तर और बिहारमें, प्रौढ़ समाजमें, सदाबहार (Evergreen) जंगलोंका आधिक्य है पर ये इतने उपयोगी नहीं हैं जितनी इनकी पूर्वावस्था, क्योंकि इसमें शाल (Sorea robusta) के वृक्ष मिलते हैं। यह शृंखल समुदाय जंगलोंमें युक्तिसे आग लगाकर स्थिर किया गया है।

उपर्युक्त बातोंसे स्पष्ट है कि वनस्पति रहन-सहन विज्ञानके आधार पर, जंगलोंके उत्पादन और रक्षामें अपार धन और समय बचाया जा सकता है।

अधिक क्या कहा जाय इस विज्ञानकी सहायता समय-समयपर न्यायालयोंने भी की है। अमेरिकाके संयुक्त राज्योंमें, रेड नदीका प्रवाह-मार्ग अधिक दिनोंसे बदल जानेके कारण आक्लोहामा और टेक्सास राज्योंकी सीमायें निश्चित न हो सकीं, और इनके साथ बर्कबर्नेट तैल-क्षेत्र—जो करोड़ोंकी सम्पत्ति है—झगड़ेमें पड़ गया। वहाँके सर्वोच्च न्यायालयने टेक्सासके पक्षमें जो न्याय किया वह कार्नेजी विद्यालयके क्रम-विकासके अध्ययन ही के आधार पर हो सका था।

राष्ट्रीय-योजना-समिति

महात्माजी जबसे कांग्रेसमें आये तबसे कांग्रेसने राजनीतिक कार्योंके साथ-साथ देश-के उद्योग-धंधोंकी ओर भी कुछ ध्यान देना प्रारम्भ किया। महात्माजीने लोगोंको समझाया कि राजनैतिक उन्नतिके लिए यह आवश्यक है कि देहातोंके उद्योग-धंधोंको बढ़ाकर देहातियों-की दशा सुधारी जाय। यह आज निर्विवाद सिद्ध है कि प्रत्येक देशकी उन्नति वहाँके उद्योग-धंधों पर ही मुख्यतः निर्भर रहती है। अमेरिका इस समय बड़ा प्रभावशाली राष्ट्र है। इसका मुख्य कारण वहाँके उद्योग-धंधे ही हैं।

राष्ट्रके उद्योग-धंधोंकी व्यवस्था किस प्रकार की हो जिससे देशकी उन्नति हो सके; इस बात-का निर्णय करनेके लिए पं० जवाहरलाल नेहरूके सभापतित्वमें एक राष्ट्रीय-योजना-समिति की स्थापना कई वर्ष हुए हुई थी। इस समितिमें देशके धुरंधर विद्वान् वैज्ञानिक तथा व्यावसायिक आदि सभी क्षेत्रोंके लोग हैं। पं० जवाहरलाल जी-के सन् १९४२ में जेल चले जानेसे समितिका कार्य बन्द रहा। उनके जेलसे बाहर आने पर अब कार्य फिरसे आरंभ हुआ है। यह आशा की जा रही है कि समिति अपनी रिपोर्ट सन् १९४६ के मध्य तक तैयार कर देशके सामने रखेगी।

पं० जवाहरलाल जी स्वयं विज्ञानके विद्यार्थी रह चुके हैं, तथा समितिमें अन्य भी कई प्रसिद्ध वैज्ञानिक हैं, अतः हमें यह आशा है कि समिति जो राष्ट्रीय योजना देशके सामने रखेगी वह वैज्ञानिक तथा राजनीतिक दोनों ही दृष्टियोंसे उत्तम होगी।

परमाणु बमकी काट*

[ले०—डा० सत्यप्रकाश, डी० एस-सी०]

अभी हालहीमें अमेरिकाके एक पादरी महाशयने यह घोषणा की थी कि सितम्बर मासकी किसी तारीखमें पृथ्वीका प्रलय हो जायेगा। परन्तु यह सत्य न हुआ। इसी प्रकार जब कि पहला परमाणु बम अगस्त मासमें जापानके हीरोशीमा नगर पर गिराया गया तो मालूम होता था कि अब नाश ही नाश है; पृथ्वी पर मनुष्योंको ब्रह्मास्त्र प्राप्त हो गया और अब विनाशमें देर न लगेगी। परन्तु यह सब ठीक प्रतीत नहीं होता क्योंकि बहुतसी लड़ाइयाँ हुईं और एकसे एक विनाशकारी अस्त्र-शस्त्रोंका उपयोग किया गया फिर भी प्रलय नहीं हुआ। पिछले महायुद्धमें वायुयान और गैसोंका उपयोग हुआ और ऐसा प्रतीत होता था कि प्रलय निकट है। परंतु प्रलय कहाँ! यह विश्वव्यापी महायुद्ध भी समाप्त हुआ और दुनिया ज्यों-की-त्यों बनी है। यह सब देखते हुए हमें परमाणु बम से अधिक भयभीत न होना चाहिए।

परमाणु बमकी काट समझनेके लिए पहले आवश्यक है कि हम परमाणु बमकी बनावटको समझ लें। १९३३में चैडविक महाशयने एक नये कणका आविष्कार किया जिसे न्यूट्रन कहते हैं। इसकी उत्पत्ति बेरीलियम धातुसे की जाती है। यदि रेडियम (Ra) से निकली हुई एल्फा (α) कणोंका प्रहार बेरीलियम (Be) धातु पर किया जावे तो न्यूट्रनों (N) की उत्पत्ति होती है। रासायनिक भाषामें इसको इस प्रकार लिख सकते हैं—$Ra \rightarrow \alpha \rightarrow Be \rightarrow N$.

जूलियट और क्यूरीने भी न्यूट्रनका आविष्कार किया। लगभग १९३३-३४में इस नए कणका उपयोग एक धातुको दूसरी धातुमें परिवर्तन करनेमें हुआ और इसमें सफलताभी प्राप्त हुई। इस प्रकार आधुनिक कीमियागिरी (alchemy) में न्यूट्रनका उपयोग हुआ। १९३९के लगभग इस कण द्वारा कृत्रिम रश्मिशक्तिक (Artificial radioactive) तत्त्व प्राप्त हुए। ये तत्त्व पहले रश्मिशक्तिक नहीं होते, परन्तु न्यूट्रानोंकी क्रियासे रश्मिशक्तिक हो जाते हैं। इस पर जूलियट और क्यूरीने बहुत काम किया है और इसी पर उन्हें नोबेल पुरस्कारभी मिल चुका है।

१९३९में ही फरमी नामक वैज्ञानिकने यह घोषणा की कि यूरेनियम धातु ही सबसे भारी व आखीरी तत्त्व नहीं है, परंतु उससे भी भारी तत्त्व हैं। वैज्ञानिक अभी तक यह मानते हैं कि तत्त्वोंकी संख्या ९२से अधिक नहीं है और यूरेनियम धातु इन तत्त्वोंकी संख्यामें अन्तिम तत्त्व है। फरमीने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया कि ९३, ९५ और ९७ तत्त्व भी होते हैं। इन प्रयोगोंमें उन्होंने न्यूट्रन-का उपयोग किया था। यदि न्यूट्रनका प्रहार ९२ तत्त्व यूरेनियम (U) पर किया जावे तो उससेभी भारी ९३, ९५ और ९७ तत्त्वोंकी उत्पत्ति होती है। परन्तु यह बात सच न निकली। १९४०-४२में हान और स्ट्रासमैनने यह सिद्ध कर दिया कि न्यूट्रनके प्रहारसे नए तत्त्वोंकी उत्पत्ति नहीं होती, बल्कि यूरेनियम परमाणुके दो टुकड़े हो जाते हैं। ये टुकड़े टूटते रहते हैं और अन्तमें एक टुकड़ेसे बेरियम तत्त्व रह जाता है जो कि रश्मिशक्तिक रहता है और दूसरे टुकड़ेसे क्रिप्टन तत्त्व। यह भी रश्मिशक्तिक रहता है। इस टूटनेकी क्रियामें न्यूट्रन कण भी पैदा होते रहते हैं और ये कण यूरेनियमके दूसरे परमाणुओंपर प्रहार कर और तोड़कर और न्यूट्रनों की उत्पत्ति करते हैं। इस प्रकार यह क्रिया चलती रहती है और इससे बहुत-सी शक्ति प्राप्त हो जाती है। इसी शक्तिका उपयोग परमाणु बममें किया जाता है।

इस प्रयोगमें धीमी गतिवाले न्यूट्रनोंको सफलता प्राप्त होती है और शीघ्र गतिगामी न्यूट्रन असफल रहते हैं। इस कारण शीघ्र गतिगामी न्यूट्रनोंको धीमी गति-वाले कणोंमें परिवर्तन करना होता है। यह बड़ी सरलतासे किया जाता है। यदि शीघ्रगतिगामी न्यूट्रनको मोम में से निकाला जावे तो उसकी गति धीमी हो जाती है और वह यूरेनियम परमाणु तोड़नेमें सफल होता है।

यदि धीमी गतिवाले न्यूट्रनका प्रहार यूरेनियम धातु पर किया जावे तो सारे यूरेनियम परमाणु टूट जावेंगे और उनसे अपार शक्ति निकलेगी, परन्तु वास्तवमें यह नहीं होता। सारे यूरेनियम परमाणुओंके टुकड़े-टुकड़े नहीं हो पाते। इसका कारण यह है कि यूरेनियम धातुके सब

---

*विज्ञान-परिषद्, प्रयागकी ओरसे हिन्दु बोर्डिंग हाउसमें पहली अक्टूबर १९४५को डा० श्रीरंजनके सभापतित्वमें दिये गये भाषणका सारांश।

परमाणु एक ही भारके नहीं होते। भिन्न भिन्न भारके परमाणु यूरेनियममें होते हैं। इनमेंसे बहुत बड़ी मात्रामें वे परमाणु होते हैं जिनका परमाणु भार २३८ होता है और बहुत ही थोड़ी मात्रामें वे परमाणु रहते हैं जिनका भार २३५ होता है। इस टूटनेकी क्रियामें २३५ भारके परमाणु ही सफल होते हैं। इस कारण साधारण यूरेनियमसे २३१ भारका यूरेनियम अलग किया जाता है जो कि परमाणु बमके बनानेमें काम आता है।

तो फिर परमाणु बमके लिए रेडियमकी आवश्यकता है जिससे एल्फा कण निकलते हैं और फिर ये कण बेरीलियम धातु पर प्रहारकर न्यूट्रन कणोंकी उत्पत्ति करते हैं जो कि शीघ्र गतिवाले होते हैं। इन्हें मोमसे निकाल कर धीमी गतिमें परिवर्तितकर उनका प्रहार २३५ भारके यूरेनियम पर किया जाता है जो कि कुछ क्षण ही में टूटकर अपार शक्ति प्रदान करता है। यह सब जमाव थोड़ी-सी ही जगहमें हो जाता है जिसका कि आकार अंडेसे अधिक बड़ा नहीं होता। बमका जमाव रासायनिक भाषामें इस प्रकार लिखा जा सकता है :—

$Ra \xrightarrow{\alpha}$ ├→ Be ——→ N ——→ (शीघ्र गति) │ (धीमी गति) ——→ U_{235} ——→ अपार शक्ति (ताप, प्रकाश और विस्फोटके रूपमें)
└→ टाइम फ्यूज़ N └→ मोम
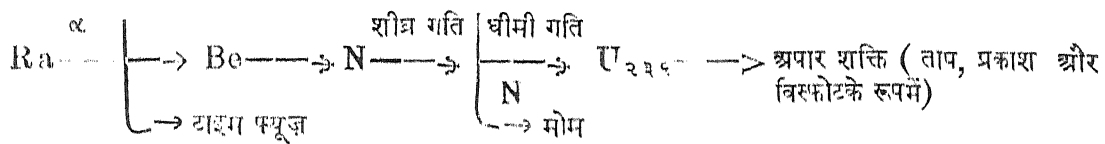
टाइमफ्यूज़की आवश्यकता इसलिए है कि जब चाहें उसी समय यह क्रिया आरम्भ होवे। इससे एल्फा कणोंका प्रहार बेरीलियम पर नहीं हो पाता और जब कि क्रिया आरम्भ करनी हो तो टाइम फ्यूजको बिजली द्वारा उड़ा देते हैं और थोड़ी ही देरमें बमका विस्फोट हो जाता है। बममें टाइम फ्यूज़ बहुत ही मार्केकी चीज़ होती है।

परमाणु बमका सबसे पहला प्रयोग १६ जुलाई १९४५ को न्यू मेक्सिकोके रेगिस्तानमें हुआ। उसमें इतनी अधिक गर्मी पैदा हुई कि वहाँ की बालू, रेत और पत्थर आदि पिघलकर नीले रंगके मणिके रूपमें बदल गये। दूसरा प्रयोग अगस्त माहमें हीरोशिमा नगर पर किया गया जिसके कारण करीब-करीब पूरा नगर विध्वंस हो गया। यहाँ तक कि बमके विस्फोटसे वह वायुयान भी हिलने लगा जिसने कि वह बम डाला था। ज्वालाका एक बड़ा भारी स्तम्भ कुछ समयके लिए खड़ा हो गया। जिस स्थान पर बम गिरा था वहाँ पर एक बहुत बड़ा गढ़ा हो गया जैसे कि ज्वालामुखीका गढ़ा हो। आज तक उसकी गामा आदि किरणोंके कारण मनुष्य नरक भोग रहे हैं और दुःख पा पाकर इस पापी पृथ्वीसे बिदा हो रहे हैं। यह सब भयंकर दृश्य देखकर उस नवयुवक अमेरिकन वायुयान-चालकने यह निश्चय कर लिया कि अब वह कभी वायुयानमें नहीं उड़ेगा।

अब हमें अपने विषयकी ओर ध्यान देना है कि परमाणु बमकी क्या काटें हो सकती हैं। परमाणु बम और साधारण बममें बहुत बड़ा अन्तर है और वह यह कि साधारण बममें जो रासायनिक पदार्थ होते हैं वे विस्फोटक होते हैं और उनका विस्फोटीकरण तीन प्रकार से होता है। या तो चोटसे या दबावसे या जलानेसे। परमाणु बममें कोई भी पदार्थ विस्फोटक नहीं है। ये सब पदार्थ मिलाकर रक्खे जा सकते हैं और इनमें साधारण बमके समान विस्फोटीकरण नहीं होगा।

परमाणु बमका एक काट यह हो सकता है कि उसके टाइम फ्यूज़ द्वारा क्रिया आरम्भ होनेके पहले ही वह नष्टकर दिया जाय और यह आसानीसे किया जा सकता है। हम कुछ यंत्रों द्वारा जैसे रेडार आदिसे पता चला सकते हैं कि परमाणु बम किस दिशासे छोड़ा गया है और कितनी दूरी पर है। यह पता चल जाने पर दूसरे मामूली बम द्वारा परमाणु बमसे संघर्ष करा दिया जावे जिससे कि टाइमफ्यूज़ क्रियाके पहले ही परमाणु बमके सब पदार्थ अलग होकर पृथ्वी पर गिर पड़ें। इस काटके लिए V_2 बम भी काम में आ सकते हैं जिन्हें कि जर्मनीवालों ने इंगलैण्ड पर इस महायुद्धमें छोड़ा था।

दूसरा काट स्वयं चालक चुम्बकीय बम द्वारा हो सकता है। जिस प्रकार इस महायुद्धमें चुम्बकीय सुरंग

पेन्सिल-व्यवसाय

[ले०—श्री मदनलाल वर्मा, रसायन विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय]

पेन्सिल बनाना उन लाभकारी व्यवसायोंमें है जो थोड़ेसे उपयोगी अनुभवसे छोटे पैमाने पर भली भाँति किया जा सकता है। भारतमें इसके लिए आवश्यक सब कच्चा माल प्राप्त है। केवल थोड़े ही कौशलसे हम अपनी पेन्सिलें उतनी ही अच्छी बना सकते हैं जितनी बाहरसे आनेवाली होती हैं।

कुछ ऐसे विवरण हैं जिन्हें व्यवसाइयोंने व्यापार-सम्बन्धी भेद होनेके कारण गुप्त बना रखा है। वास्तवमें ये गुप्त-भेद ही अच्छाईके आधार हैं। लेकिन फिर भी धैर्यसे कार्य करते रहकर हम अति उत्तम उपाय स्थिर कर सकते हैं।

पेन्सिल बनानेके तरीके की एक रूप-रेखा हम यहाँ बतलायेंगे। आवश्यक कच्चे माल ये हैं :—

१—शुद्ध ग्रैफाइट (Pure Graphite)

२—चीनी मिट्टी [China Clay (kaolin]

३—नरम लकड़ी (Soft wood)

कुछ समय पहले ग्रैफाइटके स्थान पर प्लमबगो (Plumbago) का उपयोग किया जाता था। परन्तु अब ग्रैफाइट अधिक अच्छा समझा जाता है। इसके अतिरिक्त यह दक्षिण भारतमें प्रचुर मात्रामें पाया भी जाता है। परन्तु यह पदर्थ बहुधा अशुद्ध मिलता है। भारतीय ग्रैफाइटमें सिलीका (Silica) नामक द्रव्य मिला रहता है। यह अशुद्धि धोने और छाननेसे दूर हो जाती है।

कच्चे धातुकी बुकनी बनाकर १०० छेदोंकी छननी (चलनी) से छाना जाता है। बारीक वस्तु तब पेट्रोलियम-के साथ ३५ : १ के अनुपातसे अच्छी तरह मिला दी जाती है। मिश्रित द्रव्योंको एक धोनेके सन्दूक (wash-box) पर रखा जाता है जिसके तलेमें ६० छेदोंकी चलनी होती है। तब बक्समें इतना पानी छोड़ा जाता है जितना केवल उसके किनारोंसे होकर बह सके। ऊपरसे बहता हुआ पानी सब बारीक और हल्की अशुद्धियोंको अपने साथ बहा ले जाता है और नीचेकी ओर निकलता हुआ अधिक भारी को। समस्त कोमल राशि को निरन्तर हिलाया जाता है। जब पानी स्वच्छ रूपसे निकलने लगे तो धोना बन्द कर दिया जाता है। वह ग्रैफाइट जो पानीके साथ नहीं बहता पुन: इसी भाँति प्राप्त किया जाता है, पर वह अच्छे प्रकारका सुर्मा बनानेके काम नहीं आता।

शुद्ध ग्रैफाइटको चीनी मिट्टीके साथ सुर्मेमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी ठोसता लानेके लिए विविध अनुपातमें मिलाया जाता है, जैसे ३ : २, १८ : ३७½, ७ : १२ और १८ : २०।

ऊपरकी चीज़ें भली भाँति मिल कर पीस दी जाती हैं। यह कार्य उन कामोंमेंसे एक है जिनपर मालकी अच्छाई निर्भर करती है। इस कार्यके बीचमें १०% सुहागा मिला दिया जाता है। सुहागा बहावमें सहायता देता है, अर्थात् सुर्मेके गुणोंको बिना नाश किये दोनों वस्तुओंको मिलानेमें सहायता देता है। फ्लक्स (Flux) के मिलानेमें भी युक्ति चाहिये। इसे धीरे-धीरे मिलाना चाहिये और सब एक ही स्थान पर न डाल देना चाहिये जिससे सुर्मे पर धब्बे न पड़ें। सारा पदार्थ मिल (Roller Mill) में अपनी अन्तिम अवस्था पर लाया जाता है। और फिर एक लोहेके सिलिंडर (Cylinder) में, जिसमें

परमाणु बमकी काट

(magnetic mine) द्वारा जहाज़ोंको नष्ट किया गया था, उसी प्रकार चुम्बकीय बमको आकाशमें छोड़ा जाय जिसके आकर्षणसे परमाणु बम खिंच आकर उससे टकरा जावेगा और नष्ट हो जायगा। यदि चुम्बकीय बम और परमाणु बममें संघर्ष न हो सका तब भी लाभ ही होगा क्योंकि उस अवस्थामें परमाणु बमकी गति तथा दिशामें अवश्य ही अन्तर हो जायगा जिसके कारण परमाणु बमका विस्फोट अपने निश्चित स्थान पर न होकर किसी अन्य स्थान पर होगा।

तीसरा काट चुम्बकीय बम जाल, (Barrage) द्वारा किया जा सकता है। जिस प्रकार इस महायुद्धमें लंदन नगरकी रक्षाके लिए गुब्बारोंका जाल (balloon barrage) बनाया गया था जिससे कि वायुयान जाल के निकट आने पर नष्ट हो जाते थे उसी प्रकारका जाल चुम्बकीय बमका भी बनाया जा सकता है जिससे कि परमाणु बम अधिक ऊँचाई पर ही फट जावेंगे और उनसे किसी प्रकारकी हानिकी आशा न रहेगी।

———

दृढ़ रूपसे एक पिस्टन (Piston) जड़ा रहता है, डाल दिया जाता है। यह पिछली वस्तु एक मजबूत पेंच द्वारा नीचे ढकेल दी जाती है। सिलिंडरके तलेमें ठप्पा होता है जिसमें तैयार सुर्मेके नापके छिद्र होते हैं। जब बाहर निकलता हुआ सुर्मा तीन पेन्सिलोंके बराबर आ जाता है तो वहाँसे काट दिया जाता है। कितने गीलेपनमें सारा द्रव्य पीसा और सिलिंडरमेंसे नीचे दबाया गया है यह सुर्मेकी अच्छाई और अन्तिम रूप पर बहुत प्रभाव रखता है। पकानेसे पहले सुर्मेको सूखने दिया जाता है। तब द्रव्यकी जाँचके लिये निम्न बातें देखी जाती हैं।

(१) वह तौलमें १५ से २०% से अधिक तो नहीं घटा, (२) इंचके १।६४ भागसे अधिक तो नहीं सिकुड़ा। सूखनेके बाद सुर्मेको तापक्रमके भीषण परिवर्तनमें न आने देना चाहिये। परन्तु सूखनेके बाद वह 'स्थिर तौल" पर आ जाय। तब वह कुछ घंटोंके लिए धूपमें छोड़ दिया जाता है जिसके बाद वह धातु गलानेकी घरिया (crucible) में ग्रैफाइटसे ढककर पकाया जाता है।

पकानेका तापक्रम ६००-८००° श तक रहता है। पकाना भी सुर्मेके ठोसपन पर प्रभाव रखता है। तात्पर्य यह कि भिन्न-भिन्न अंशकी कड़ी पेन्सिलोंके लिए भिन्न-भिन्न तापक्रम और चीनी मिट्टी और ग्रैफाइटके भिन्न-भिन्न अनुपात (proportion) की आवश्यकता पड़ती है।

जहाँ तक लकड़ीका संबंध है सेडर (Cedar) और गाड (Godd) संसारमें सर्वोत्तम हैं, और भारतीय किस्मोंमें देवदार तथा कुछ अन्य लकड़ियाँ (Bombax, Malabesicum, Acacia Lawedphlora) लकड़ी मुलायम समतल और चिकने रेशेवाली होनी चाहिए। जंगल-विभाग इस बातमें अधिक संकेत और सूचना दे सकता है।

लकड़ी चुन लेनेके बाद उसे आधी पेन्सिलकी चौड़ाई-के अनुसार ऐसे टुकड़ों या फट्टियोंमें काट लिया जाता है कि उसकी लम्बाई ३ पेन्सिलों और चौड़ाई चार पेन्सिलोंके बराबर हो। पेन्सिलके नापकी प्रत्येक फट्टीके बीचो-बीच सुर्मेके नापकी खाई अथवा नाली बना दी जाती है। तब मशीनसे पेन्सिलकी लकड़ी गोल अथवा छः कोने वाली इच्छानुसार बना ली जाती है। नालीको गोंदके साथ साफ करके और सुर्मेको ग्लिसरीन अथवा पैराफीनमें डुबोकर वहाँ रख दिया जाता है। इसी प्रकारकी एक और फट्टी गोंद लगाकर उसके ऊपर रखकर दबा दी जाती है। तब उसे एक और मशीनमें डालकर मनचाहा नापकी छड़ियोंमें काट लिया जाता है। इन्हें Gloss-paper से रगड़कर चिकना और साफ बनाकर रङ्ग दिया जाता है।

गोंद भी बहुत अच्छे प्रकारका होना चाहिये।

ऊपर उन सब बातों पर विशेष बल दिया गया है जिन पर मालकी वास्तविक अच्छाईके लिए विशेष ध्यान देना पड़ता है। संक्षेपमें ये बातें ये हैं:—(१) ग्रैफाइट की शुद्धता (२) मिश्रण, (३) फ्लक्सका मिलाना, (४) पीसना, (५) पीसते समय गीलेपनकी मात्रा, (६) सुखाना, (७) पकाना, (८) उपयुक्त लकड़ी का चुनाव और (९) अच्छे प्रकार का गोंद।

जहाँ तक मशीनका संबंध है पूर्व युद्ध कालमें जापानी यंत्र सामान्य रूपसे मिल जाते थे। वे सस्ते कमखर्च और आसानीसे चालाये जा सकते थे। वे छोटे होते हुए भी कार्य-साधन और निपुणतामें बड़ोंकी बराबरी करते थे। इस बारेमें सब प्रकारकी सूचनाके लिए M/s. Batliboi & Co., Forbes Street, Fort, Bombay को लिखना चाहिये।

एक और बात, जिसका ध्यानमें रखना अत्यन्त आवश्क है, यह है कि फैक्टरी ऐसे स्थान पर बनाई जाय जो लकड़ी मिलनेकी जगहसे अधिकसे-अधिक निकट हो।

रंगीन पेन्सिलोंके बनानेके बारेमें यह नोट कर लेना चाहिये कि सुर्मा (१) ग्रैफाइट, (२) चीनी मिट्टी और (३) रङ्गके उचित अनुपातों (proportion) का मिश्रण होता है, जैसे : ३ : १ : ४, या १७ : १२ : २३, या १८ : २० : १५।

अन्तोनी लाराँ लावाशिये*

(Antoine Laurent Lavoisier)

लावाशियेका जन्म सन् १७४३ ई०में पेरिसमें हुआ था। उनके पिताके अनेक वैज्ञानिक मित्र थे और उनकी रुचि विज्ञानकी ओर थी। उन्होंने लावाशियेको बहुत अच्छी शिक्षा दी। मैज़ारिन कालेज (Mazarin College) में शिक्षा प्राप्त करनेके बाद लावाशियेने सौर-विज्ञान, वनस्पति-विज्ञान, भौतिक विज्ञान तथा रसायन विज्ञानका अच्छा अध्ययन किया। भौतिक विज्ञानका अध्ययन करनेसे लावाशिये को शुद्ध प्रयोग करनेका महत्व मालूम हुआ और आगे चलकर इसी शिक्षाका लाभ उठाकर उन्होंने रसायन-विज्ञानमें महत्वपूर्ण खोजें कीं।

जब वह २१ वर्षके थे तब उन्होंने सड़कों पर रोशनी करनेकी एक अच्छी और सस्ती विधि फ्रान्सकी सरकारको बतलाई। इस विधि पर सरकारने उन्हें एक पारितोषिक दिया। इस सम्बन्धके प्रयोग करते समय लावाशिये ६ दिनों तक लगातार केवल उस कमरेमें रहे जहाँ अप्राकृतिक रोशनी की गई थी जिससे उनकी आँखें अप्राकृतिक रोशनीसे अभ्यस्त हो जायँ और उन्हें अप्राकृतिक रोशनियोंकी चमकमें थोड़ा भी अन्तर होने पर मालूम हो जाय। इससे यह मालूम होता है कि लावाशियेमें प्रयोग करनेमें कितनी धीरज और लगन थी। २५ वर्षकी अवस्थामें वह फ्रान्सकी विज्ञान एकेडेमीके सदस्य चुन लिए गये। सन् १७६८से १७७४के बीचमें उन्होंने रसायन, भूगर्भ तथा गणितविज्ञान सम्बन्धी खोजोंके कई लेख छपवाये। इससे मालूम होता है कि इस समय तक उन्होंने यह निश्चय नहीं किया था कि वह किस विज्ञान विषयको अपने कार्यके लिए पूरी तौरसे अपनायेंगे।

लावाशियेके समयमें वैज्ञानिकोंका यह अनुमान था कि पानीका परिवर्तन पृथ्वीके रूपमें हो जाता है। इस सम्बन्धमें लावाशियेने सन् १७७० ई०में दो लेख एकेडेमीके पत्रमें छपवाये। इनसे ज्ञात होता है कि लावाशिये प्रयोग करनेमें कितने निपुण थे और गूढ़ बातोंको सुलझाकर समझनेकी शक्ति उनमें कितनी अधिक थी।

पानी जब किसी काँचके बर्तनमें काफ़ी देर तक उबाला जाता है तब थोड़ा बलुआ पदार्थ बर्तनकी तलीमें बैठ जाता है। इसी बातके आधार पर लावाशियेके बहुत पहलेसे ही वैज्ञानिकोंका यह विश्वास था कि पानी गरम करनेसे बलुये पदार्थमें परिवर्तित हो जाता है और इसकी सत्यतामें रत्तीभर भी उन्हें सन्देह नहीं था। लावाशियेने इस बातका पूर्ण रूपसे निश्चय करनेकी ठानी। उन्होंने एक बंद काँचके बर्तन में पानी भरकर उसे तौला और फिर १०१ दिनों तक गरम किया। बर्तन बंद रखनेमें उद्देश्य यह था कि पानीमें से कोई भी पदार्थ उड़कर बाहर न चला जाय। १०१ दिनों तक गरम करनेके बाद पानी सहित उस बर्तनको फिर तौला। उन्होंने देखा कि भारमें कोई अन्तर नहीं आया; पहले जैसा ही रहा। बर्तनमेंसे पानी निकालकर उबालनेके बाद उन्हें उसमें बलुआ ठोस पदार्थ मिला जिसे उन्होंने तौला। इसका वज़न २०.४ ग्रेन था। उन्होंने फिर बर्तनको भी तौला और देखा कि इसके वजनमें १७.४ ग्रेन कमी हो गई थी। २०.४ ग्रेन और और १७.४ ग्रेनमें जो थोड़ा अन्तर हुआ उसे उन्होंने प्रयोगमें हुई गलतियोंके कारण बतलाया और अपने इस प्रयोगसे परिणाम यह निकाला कि पानी स्वयं उबालनेसे किसी दूसरे पदार्थमें परिवर्तित नहीं होता किन्तु जब वह काँचके बर्तनमें उबाला जाता है तो काँचको कुछ घुला लेता है। यही घुला हुआ पदार्थ पानी उड़ाने पर अंतमें बचता है। इस निष्कर्षको बादमें स्वीडेनके रसायनज्ञ शीले (Sheele) ने भी ठीक बतलाया।

इस प्रयोगसे लावाशिये ने आलकीमियोंके इस विश्वासको कि एक तत्त्व दूसरे तत्त्वमें परिवर्तित किया जा सकता है गलत सिद्ध कर दिया। इसके साथ ही उन्होंने एक महत्वका सिद्धान्त भी खोज निकाला। वह सिद्धान्त यह है—प्रत्येक प्रकारके भौतिक तथा रासायनिक परिवर्तन में पदार्थोंका पूरा भार परिवर्तनके प्रारम्भ तथा अन्तमें एक ही रहता है अर्थात् पदार्थ कभी नष्ट नहीं होता। इस सिद्धान्तको पदार्थों की विनिष्टताका सिद्धान्त कहते हैं। यह सिद्धान्त प्रत्येक रासायनिक प्रक्रियामें ठीक

---

*रसायन विज्ञानके संस्थापकोंमेंसे एक लावाशिये हैं। दो संस्थापकों—जोजेफ़ ब्लैक और जोजेफ प्रीस्टले—के जीवन तथा कार्योंका उल्लेख 'विज्ञान' के पिछले अंकोंमें हो चुका है। तीनों संस्थापकोंमेंसे लावाशियेके कार्य अधिक महत्वपूर्ण हैं। —संपादक

उतरता है। यह सिद्धान्त भौतिक तथा रसायनशास्त्रका आधार-स्तम्भ है। एक उदाहरण द्वारा यह सिद्धान्त अच्छी तरह समझ में आ जायगा। ठोस गन्धक आक्सिजन तथा हाइड्रोजनसे मिलकर रासायनिक क्रिया द्वारा गन्धकके तेजाबमें बदली जा सकती है। इसक्रिया में गन्धकके तेजाबका वजन उतना ही रहता है जितना गन्धक, आक्सिजन और हाइड्रोजनका मिलाकर होता है क्योंकि इन्हीं तीन चीजोंके मिलनेसे गन्धकका तेजाब बनता है। अर्थात् जितना पदार्थोंका वजन शुरूमें था अन्तमें भी वही रहा। हाइड्रोजन और आक्सिजनके मिलनेसे पानी बनता है। यदि एक निश्चित वजनके पानीको बनानेमें जितनी हाइड्रोजन और आक्सिजन लगती है उन दोनोंका वजन लिया जाय तो ज्ञात होगा कि इन दोनोंके वज़नका भाग पानीके वजनके बराबर है।

सन् १७७० से लावाशिये ने अधिक मनोयोगसे रसायनकी ओर ध्यान दिया।

सन् १७७२ में लावाशिये ने एकेडेमीके मंत्रीके पास एक बन्द मुहर लगा लिफाफा जमा किया। यह लिफाफा १७७३ की १ली मईको खोला गया। उसमें लिखा था "लगभग ८ दिन हुए मैंने मालूम किया कि गन्धकके हवामें जलने पर जो पदार्थ बनता है उसका वज़न गन्धकसे कम होनेके बजाय अधिक रहता है। फास्फोरसको गरम करनेसे भी यही होता है। मेरा विश्वास है कि इन पदार्थोंको हवामें गरम करनेसे हवाका कुछ भाग इनसे मिल जाता है और इसी कारण नये बने पदार्थका वज़न अधिक होता है। मुझे पूरा विश्वास है कि उन सब दशाओंमें जिनमें पदार्थोंका वज़न हवामें गरम करनेसे बढ़ता है हवाका एक भाग पदार्थसे अवश्य मिलता है। इसी आधार पर मैं यह समझता हूँ कि धातुओंके गरम करने पर जो बचे हुये पदार्थका वज़न बढ़ता है उसका भी यही कारण है, इस कथनकी सत्यता मेरे निम्न प्रयोगसे होती है।

मैंने सीसेकी राखको एक बन्द बर्तनमें रासायनिक क्रिया द्वारा सीसेमें परिणित किया। ऐसा करने पर मैंने देखा कि सीसेकी राखमेंसे बहुत सी गैस निकली। यह गैस हवाका वह भाग है जो सीसेको गरम करते समय उससे मिल गया था।

चूँकि मैं अपने इस कार्यको बहुत महत्वका समझता हूँ मैंने यह नोट एकेडेमीमें जमाकर दिया है जिससे इस कार्यमें केवल मेरा ही नाम रहे।"

राँगेको गरम करनेसे उसके वज़नके बढ़नेका कारण मालूम करनेके लिए लावाशिये ने नीचे लिखा प्रयोग किया। एक निश्चित तोलका राँगा एक काँचके रिटार्टमें पिघलाया गया। रिटार्टके मुँहका छेद बहुत छोटा कर दिया गया था। जब अन्दरकी हवा फैलकर बाहर निकल गई तब रिटार्टके मुँहको बिलकुल बन्द कर दिया गया। राँगाको फिर तब तक बन्द रिटार्टमें तेज़ आँच पर गरम किया जब तक उसके अन्दर राँगेकी राख बनती रही। जब राख बनना बन्द हो गया तब रिटार्ट को ठंडाकर उसकी तौल की। तौलमें कोई अन्तर नहीं हुआ था। फिर रिटार्टके मुँहको तोड़कर खोला। मुँह खुलते ही हवा अन्दर सनसन् करती हुई तेज़ीसे घुसी। फिर रिटार्टका वज़न किया। इस बार रिटार्टका वज़न बढ़ गया था। जितनी वज़नमें वृद्धि हुई उसे लिख लिया। अन्दरसे राँगा और उसकी राख निकालकर उसे भी तौला। इसका भी वज़न शुरूमें लिए हुये राँगे से अधिक था। जो वृद्धि राँगेके बज़नमें हुई थी वह उस हवाके वज़नके बराबर थी जो रिटार्टका मुँह खोलने पर उसके अन्दर घुसी थी। इस प्रकारसे लावाशिये ने यह सिद्ध कर दिया कि गरम करने पर राँगा हवाके एक भागसे मिलता है और राखका वजन राँगेके वजनसे जितना अधिक होता है वह उस हवाके वज़नके बराबर है जो राँगेसे मिली है।

इस लेखके छपनेके कुछ दिनों बाद ही प्रीस्टले ने लावाशियेसे पेरिसमें भेंट की। प्रीस्टले ने स्वयं लिखा है कि जब उन्होंने पेरिसमें लावाशियेसे भेंटकी थी तब वहाँ अन्य लोगोंके बीचमें अपनी खोज निकाली डीफलोजिस्टि-केटेड हवा (आक्सिजन) के बारेमें चर्चाकी थी और यह बतलाया था कि इस हवामें मोमबत्ती साधारण हवा की अपेक्षा बहुत तेज़ीसे जलती है। इस बात पर

लावाशिये, उनकी पत्नी तथा अन्य लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ था।

सन् १७७५ में लावाशिये ने एकेडेमीमें "धातुओंको गरम करनेसे हवाका कौन सा पदार्थ उनसे मिलता है" इस पर एक लेख पढ़ा। इसमें उन्होंने पारेकी लाल आक्साइडसे एक गैस प्राप्त करनेकी विधि तथा उस गैसके गुणोंका वर्णन किया है किन्तु लेखमें कहीं भी यह चर्चा नहींकी है कि यह बात उन्होंने प्रीस्टलेसे मालूम की थी। लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि लावाशियेने इस गैसके बनानेकी विधि प्रीस्टलेसे ही मालूम की थी, यद्यपि प्रीस्टलेको स्वयं इस गैसके स्वभाव तथा गुणोंकी पूरी जानकारी सन् १७७९ तक भी नहीं हुई थी।

अगले ३-४ वर्षोंमें उन्होंने धातुओंके जलनेके सम्बन्धमें और भी कई प्रयोग किये और अपने सिद्धान्तको पूर्ण रूपसे सिद्ध कर दिया।

इसके कुछ ही दिनों बाद रसायन-विज्ञान पर उन्होंने एक पुस्तक लिखी जिसमें अधिक अच्छी तरह प्रमाणों द्वारा इस बातको सिद्ध कर दिया कि धातुओंके जलने पर धातुयें हवासे आक्सिजन लेती हैं और जो पदार्थ बनते हैं वे धातुओं और आक्सिजनके यौगिक हैं। लावाशियेने अपने सारे प्रयोग तौल कर किये हैं अतः उनके निष्कर्षों में कहीं भी सन्देह नहीं रह जाता।

अपने प्रयोगोंसे लावाशियेने यह सिद्ध कर दिया कि पारा, राँगा और सीसेकी धातुओंके हवामें गरम करनेसे जो राख बनती है वह इन धातुओं और हवाकी आक्सिजनके यौगिक हैं। इन यौगिकोंको उन्होंने आक्साइड नाम दिया। लावाशियेके इन प्रयोगोंसे फ्लोजिस्ट सिद्धान्त एकदम गलत सिद्ध होगया। फ्लोजिस्टन सिद्धान्तके अनुसार वैज्ञानिकोंका यह मत था कि धातुओंके जलने पर इनमेंसे फ्लोजिस्टन नामक एक पदार्थ हवामें चला जाता है। यह फ्लोजिस्टन कोई पदार्थ नहीं माना जाता था। यह एक गुण समझा जाता था जिसके रहनेसे पदार्थोंमें चमक आती थी।

लावाशियेने कहा कि धातुओंके जलनेसे जो राख बनती है उसका वजन सदा धातुओंसे अधिक रहता है। अतः यह असम्भव है कि कोई फ्लोजिस्टन नामक पदार्थ धातुओंके जलने पर उनमेंसे निकल जाय और बचे हुए पदार्थका वजन घट जाय। यदि यह बात सच होती तो राखका वजन धातुके वजनसे कम होता।

इतना सब होने पर भी फ्लोजिस्टन सिद्धान्तके अनुयायी अपनी बात पर अड़े हुए थे। वे कैवेन्डिश द्वारा मालूम की हुई इनफ्लैमेबिल हवा (जो बादमें हाईड्रोजन कहलाई) को ही फ्लोजिस्टन कहने लगे और कहा कि जब धातुओंकी राखें इस हवामें जलती हैं तो वे फिर इससे मिलकर धातुमें बदल जाती हैं।

लावाशियेने इस इनफ्लैमेबिल हवाके स्वभाव तथा गुणोंकी परीक्षा की और यह मालूम करनेका प्रयत्न किया कि धातुओंकी राखें इसमें जलनेसे क्यों धातुओंमें पुनः बदल जाती हैं। इसी समय कैवेन्डिशने यह बतलाया कि इनफ्लैमेबिल हवा और प्रीस्टलेकी डीफ्लोजिस्टिकेटेड हवाके मिलनेसे पानी बनता है। लावाशियेने तुरन्त इस खोजका महत्व समझा और इसीकी सहायतासे वह यह समझ सके कि क्यों धातुओंकी राख इनफ्लैमेबिल हवामें गरम करनेसे धातुओंमें परिवर्तित हो जाती है। उन्होंने बतलाया कि इनफ्लैमेबिल हवा धातुओंकी राखमेंसे आक्सिजन लेकर उसके साथ पानी बनाती है और धातुओंकी राखमेंसे आक्सिजन निकल जानेके कारण धातुयें बच रहती हैं।

लावाशियेने फासफोरस, गन्धक और कार्बनके आक्सिजनमें जलनेसे जो यौगिक बनते हैं उनके गुणोंकी भी परीक्षा की। उन्होंने मालूम किया कि इन यौगिकोंको पानीमें घोलनेसे पानीका स्वाद खट्टा हो जाता है और यह खट्टा पानी नीले लिटमसको लाल कर देता है। अतः ये खट्टे पानी अम्ल हैं। इससे लावाशियेने यह परिणाम निकाला कि इन पदार्थोंका एसिड गुण उनमें आक्सिजनके रहनेसे आता है और फिर यह परिणाम निकाला कि सारे एसिड पदार्थोंमें आक्सिजन अवश्य रहता है। लावाशियेका यह कथन कि सारे अम्लोंमें आक्सिजन अवश्य होता है बादमें गलत सिद्ध हो गया।

जानवरों तथा वनस्पतियोंके श्वासोच्छ्वाससे हवामें क्या परिवर्तन होते हैं इस बातको भी लावाशियेने अपने प्रयोगों द्वारा अच्छी तरह समझा दिया। वह यह पहले ही

दिखला चुके थे कि हवामें आक्सिजन और नाइट्रोजन गैसें विद्यमान हैं और इनमेंसे केवल आक्सिजन ही पदार्थोंके जलने पर उनसे संयुक्त होती है। उन्होंने अब यह दिखलाया कि श्वासोच्छ्वासमें जानवर हवा फेफड़ोंमें खींचते हैं। फेफड़ोंमें इस हवामेंसे आक्सिजन खूनमें मिल जाता है। यहाँ यह कार्बनको जलाता है जिससे कार्बन डाइआक्साइड गैस बनती है। यह गैस बची हुई नाइट्रोजनके साथ साँस बाहर निकालनेमें चली जाती है।

लावाशियेने इस प्रकार सन् १७८५ तक फ्लोजिस्टन सिद्धान्तको बिलकुल अशुद्ध सिद्ध कर दिया। किन्तु अभी भी कुछ ऐसे लोग बच रहे थे जो फ्लोजिस्टन सिद्धान्तको सत्य सिद्ध करनेमें ऊटपटांग बातें कहते थे। यहाँ तक कि कैवेन्डिश भी, जो स्वयं अच्छे आविष्कारक थे, फ्लोजिस्टन सिद्धान्तको अभी तक पकड़े हुए थे। यद्यपि स्वयं कैवेन्डिशने ही सर्वप्रथम यह दर्शाया था कि हाइड्रोजन और आक्सिजनके मिलनेसे पानी बनता है किन्तु यह आश्चर्य की बात है कि वह स्वयं यह नहीं समझ सके कि पानी इन्हीं दो गैसोंका एक यौगिक है। इसे लावाशियेने ही समझाकर फ्लोजिस्टन सिद्धान्तके अन्तिम आधारको भी नष्ट कर दिया।

पुराने वैज्ञानिकोंका विचार था कि इस पृथ्वी पर चार तत्त्व हैं—पृथ्वी, वायु, अग्नि और जल। इन्हींके संयोगसे सारे पदार्थ बने हैं। लावाशियेने तात्त्वकी ठीक परिभाषा दी जो आज भी सर्वमान्य है। उन्होंने बतलाया कि 'तत्त्व' वह पदार्थ है जिससे कोई दूसरा सरल पदार्थ भिन्न गुणोंवाला नहीं प्राप्त किया जा सकता।

सन् १७७४से सन् १७८४ तकके बीचके १० वर्षोंमें रसायन-विज्ञान लावाशिये द्वारा एक दृढ़ आधार पर स्थापित कर दिया गया। यद्यपि लावाशियेने अन्य लोगों द्वारा आविष्कार की हुई बातोंका लाभ उठाया, किन्तु उन सब बातोंको श्रंखलाबद्ध कर उनके ठीक महत्वको समझाना लावाशियेका ही काम था। रसायनशास्त्रको अंधकारसे निकालकर एक सुदृढ़ नींव पर रखनेका अधिक श्रेय लावाशियेको ही है।

लावाशियेने एक बड़ा कार्य और भी किया। रसायन-विज्ञानकी प्रक्रियाओंको समझनेके लिए एक वैज्ञानिक भाषाकी आवश्यकता बराबर अनुभव की जा रही थी। सन् १७८५-८७में लावाशियेने कुछ अन्य फ्रान्स के वैज्ञानिकोंके सहयोगसे तत्त्वों तथा यौगिकोंके नाम करणकी एक नई शैली निकाली। इस शैलीके अनुसार यौगिकोंका नाम ऐसा रखा गया जिससे तुरन्त यह मालूम हो जाय कि वे किन तत्त्वोंके संयोगसे बने हैं और उन तत्त्वोंका परस्पर क्या अनुपात है। उदाहरणार्थ आक्सिजनके यौगिक आक्साइड कहलाये। जैसे लोहेका आक्साइड, राँगेका आक्साइड इत्यादि। यही शैली आज तक रसायन विज्ञानमें प्रचलित है।

शीघ्र ही लावाशियेका फ्लोजिस्टन विरोधी सिद्धान्त सारे फ्रान्समें माना जाने लगा। ब्लैकने भी इसे स्वीकार कर लिया। जर्मनीमें फ्लोजिस्टन सिद्धान्त कुछ दिनों और रहा, किन्तु सन् १७९२में वहाँ भी लावाशियेका सिद्धान्त पूरी तौरसे अपना लिया गया। इस प्रकार १८वीं सदीके अन्त तक लावाशियेका पदार्थोंके हवामें जलनेके सम्बन्धका नया सिद्धान्त सर्वमान्य हो गया। इस सिद्धान्तके साथ ही साथ लावाशिये द्वारा बतलाया हुआ तत्त्वों और यौगिकोंका अन्तर और रासायनिक प्रक्रियाओंकी महत्ता भी लोगोंने स्वीकार कर ली। यह भी लोगोंने मान लिया कि पदार्थ न तो उत्पन्न किया जा सकता है और न नष्ट; केवल उसके रूपमें ही रासायनिक क्रियाओं द्वारा परिवर्तन किया जा सकता है।

इन्हीं दिनों फ्रान्समें एक बड़ी राजनीतिक हलचल मची हुई थी। वास्तवमें यह आश्चर्यकी बात है कि ऐसे हलचलके समयमें भी लावाशिये अपना महत्वपूर्ण कार्य कर सके।

फ्रान्सकी राज्यक्रान्तिमें जब रोब्सपियरीके हाथमें राज्यकी बागडोर आई तब विज्ञानका कार्य फ्रान्समें करना असम्भव हो गया। रोब्सपियरी के हाथों जितने फ्रान्सके प्रतिष्ठित मनुष्य इस समय मारे गये उनमें लावाशियेका नाम प्रमुख है। लावाशियेने कुछ दिनों तक सरकारी विभागमें भी काम किया था। सन् १७९४ में उनपर यह अपराध लगाया गया कि उन्होंने तम्बाकूके साथ पानी और अन्य ऐसे पदार्थ मिलाये हैं जो जनताके

स्वास्थ्यके लिए हानिकारक हैं । इसी झूठे अपराध में लावाशिये तथा उनके कुछ अन्य साथियोंको मृत्यु-दण्ड दिया गया। लावाशिये कुछ दिनों तक छिपे रहे किन्तु बादमें जब उन्हें मालूम हुआ कि उनके मित्रगण पकड़ लिये गये हैं तब उन्होंने भी अपनेको गिरफ़्तार करा दिया । इस समय उन्होंने अधिकारियों से केवल एक विनय की कि उन्हें अपना एक खोज सम्बन्धी कार्य समाप्त करनेके लिए थोड़ा समय दिया जाय और उस कार्य के समाप्त होने पर उन्हें मृत्यु-दण्ड दिया जाय । किन्तु शासकोंने उत्तर दिया कि फ्रान्सको रसायनज्ञोंकी आवश्यकता नहीं है और न्याय द्वारा दिया दंड टाला नहीं जा सकता। अतः ८ मई सन् १८६४में लावाशिये फाँसी पर चढ़ा दिये गये । मृत्युके समय उनकी अवस्था केवल ५१ वर्षकी थी।

रसायन-विज्ञानके बालपनकी दशा, जो इन तीन रसायनज्ञोंकी जीवनी द्वारा बतलाई गई है, १८वीं सदीके पिछले ४० वर्षोंमें सीमित थी। इन दिनों मनुष्योंके हृदयमें एक प्रकारकी जाग्रति हो चुकी थी । पुराने सिद्धान्तोंको, जिनके साथ बड़े लोगोंके नाम जुड़े हुए थे, माननेको तब तक लोग तैयार नहीं थे जब तक वे तर्ककी कसौटी पर ठीक न उतरें । प्रत्येक बातको लोगोंने अपने मस्तिष्ककी तराज़ू पर तौलना प्रारम्भ कर दिया था। ऐसे लोगोंने पुराने सिद्धान्तोंके विरुद्ध आवाज़ उठाकर विज्ञान-जगत्‌में एक हलचल पैदा कर दी थी। यह हलचल ज्ञानके हर विभागमें इस समय दृष्टिगोचर होती है। विद्वान दार्शनिक वोलटेयर (Voltaire) के नेतृत्वमें फ्रान्सके दार्शनिकोंने नीति, धर्म तथा इतिहासकी पुरानी धारणाओं पर आक्रमण कर उन्हें ग़लत सिद्ध कर दिया । भौतिक विज्ञानके क्षेत्रमें फोरियर (Fourier), प्रेवास्ट (Prevost) और फ्रेसनेलने महत्वके कार्य किये। रसायनमें लावाशियेने जाग्रति उत्पन्न की ।

इन सब हलचलोंका परिणाम यह हुआ कि जनतामें भी विज्ञानके प्रति रुचि बढ़ने लगी। ब्लैकके व्याख्यानोंको सुननेके लिए बड़े-बड़े प्रतिष्ठित लोग आया करते थे। जनताने विज्ञानकी प्रारम्भिक बातें जानना शिक्षाकी पूर्णताके लिए आवश्यक समझना प्रारम्भ किया ।

इस जाग्रतिसे उत्साहित होकर लोग खोज सम्बन्धी कार्य अधिक ज़ोरोंसे करने लगे और थोड़े ही दिनोंके भीतर आश्चर्यजनक उन्नति रसायन-विज्ञानमें हुई। इस उन्नतिके प्रारम्भिक समयमें प्रीस्टलेने अपनी भिन्न-भिन्न खोजों द्वारा जनतामें प्रचलित विचारों पर आक्रमण कर नेतृत्वका काम किया। यद्यपि उन्होंने प्रचलित सिद्धान्तको स्वीकार कर अपने प्रयोगोंके निष्कर्षोंको उसके द्वारा ही समझाया फिर भी उनकी खोजोंने एक हलचल पैदा की। प्रीस्टलेकी तुलना हम उन खोजकोंसे कर सकते हैं जो आगे बढ़कर पहले रास्ता साफ़ करते हैं। मार्ग दिखानेका कार्य प्रीस्टलेने कितनी उत्तमतासे किया यह हम उनकी खोजोंसे देखते हैं। आक्सिजन तथा अन्य गैसें जो प्रीस्टलेने मालूम कीं उन्हींके आधार पर लावाशियेने अपने महत्वका सिद्धान्त रखा जिसने रसायनशास्त्रकी नींव स्थापित की।

यद्यपि ब्लैकका कार्य प्रीस्टलेके कार्यसे लगभग १५ साल पहले हुआ किन्तु प्रभाव और महत्वकी दृष्टिसे यह अधिक ऊँचा है। ब्लैकके कार्यकी विशेषता यह है कि वह पूर्ण है और साथ ही यह संकेत भी देता है कि किस दिशा की ओर अधिक जानकारीके लिए कार्य करना चाहिए। उन्होंने लोगों को इस बातका महत्व समझाया कि जब तक कोई विचार प्रयोगों द्वारा सत्य न सिद्ध किया जा सके मान्य नहीं होना चाहिए। ब्लैकको इस बातका श्रेय है कि उन्होंने सर्वप्रथम ठीक प्रयोग किये और प्रयोगोंका महत्व लोगोंको समझाया ।

लावाशियेका स्थान इन दोनोंसे ऊँचा है। ठीक प्रयोग और सुलझे हुए विचारोंको सामने रखनेके साथ ही उन्होंने उन विचारोंका उपयोग ऐसे सिद्धान्तको ढूँढ़ निकालनेमें किया जो बहुत ही महत्वका था ।

इन तीनों रसायनज्ञोंके कार्योंके फलस्वरूप रसायनको नीचे लिखे लाभ हुए। यह मालूम हुआ कि विज्ञानका उद्देश्य पदार्थोंके गुणोंके परिवर्तनोंकी जाँच करना तथा परिवर्तनोंके कारणोंका पता लगाना है। तत्व और यौगिककी परिभाषाएँ सदाके लिए स्थिर करनेमें रसायनज्ञ समर्थ हुये।

बिना नर-मादाके सन्तानोत्पत्ति

(Reproduction without sex)

ले०—श्री० चम्पत स्वरूप गुप्त, बी० एस-सी०, एल-एल० बी०

साधारणतया संसारमें यह देखनेमें आता है कि एक नये प्राणीके पैदा होनेके लिए यह आवश्यक है कि उसके माता और पिता हों। दूसरे शब्दोंमें हम यह कह सकते हैं कि एक नये जीवनकी उत्पत्तिके लिए नर और मादाका होना आवश्यक है। इस दृष्टिकोणके अनुसार कोई जन्तु या पौधा अपना जीवन दो सूक्ष्म तत्त्वोंके मेलसे ही प्रारम्भ करता है। इन तत्त्वोंमेंसे एक शुक्राणु (sperm cell) और दूसरा डिम्ब (Egg cell or ovary) होता है। किन्तु इसके अपवाद-रूप हमें प्रकृतिमें बहुतसे अद्भुत दृश्य देखनेको मिलते हैं। नीचे कुछ ऐसे ही साधनों का वर्णन किया जाता है जिनमें बिना लैंगिक समागम (sexual intercourse) के ही सन्तान उत्पन्न हो जाती है।

कृत्रिम साधन (Artificial methods):—

यदि एक केंचुए (Earthworm) को काट कर उसके दो भाग कर दिये जाते हैं तो उसको कुछ हानि होना आवश्यक नहीं, यद्यपि उसे पीड़ा तो अवश्य होती होगी। अग्रिम (Anterior) भाग एक नया पश्चिम (Posterior) भाग बना लेता है और पश्चिम भाग अग्रिम। बाजारमें बिकनेवाले स्पंज एक प्रकारके जन्तु हैं। इनकी पैदावार बढ़ानेके लिए भी एक-एक प्राणीके कितने ही टुकड़े काटकर क्यारियोंमें फैला दिये जाते हैं और प्रत्येक टुकड़ा पूरा जन्तु बन जाता है।

हाइड्रा (Hydra) लगभग एक सेन्टीमीटर लम्बा एक जन्तु होता है जो कि पोखरोंमें घाससे सटा हुआ मिलता है। यदि हम इस एक जन्तुके कितने ही जन्तु बनाना चाहें तो सबसे सरल और शीघ्र विधि यही होगी कि उसको कितने ही टुकड़ोंमें विभक्त कर दिया जाय। प्रत्येक टुकड़ा एक पूरा प्राणी हो जायगा।

स्टारफिश (Starfish चित्र नं० ३) एक समुद्री जन्तु है जिसमें पाँच भुजाएँ होती हैं। यदि इन भुजाओंको काटकर पृथक कर दिया जाय तो प्रत्येक भुजा एक पूरा प्राणी बन जाता है।

चित्र १—स्टारफिश

पौधोंमें भी हम देखते हैं कि उनकी पैदावार भी ऐसे ही कृत्रिम साधनों द्वारा बढ़ाई जा सकती है। कुछ पौधे ऐसे हैं कि यदि उनके तनोंको कई टुकड़ोंमें इस प्रकार विभक्त कर दिया जाय कि प्रत्येक टुकड़ेमें एक गाँठ हो और फिर इन टुकड़ों को नम मिट्टीमें गाड़ दिया जाये तो गाँठोंमेंसे कलिकाएँ निकलने लगती हैं और प्रत्येक कलिका एक प्राणीके रूपमें परिणत हो जाती है, जैसे ईख और बाँस इत्यादि। पत्थर चट (Bryophyllum) (चित्र नं०२) की पत्तीके किनारे पर अनियमित कलिकाएँ (adventitious buds) होती हैं। यदि किसी ऐसी पत्तीको इस प्रकार टुकड़ोंमें बाँटा जाये कि प्रत्येक टुकड़ेमें एक कली हो और इन टुकड़ों को नम जगहमें

रख दिया जाय तो प्रत्येक टुकड़ेमेंसे नवीन पौधा पैदा हो जायगा। आस्तरीकरण (Layering) एक दूसरे प्रकारका कृत्रिम उपाय है जिसमें किसी पौधेका तना पृथ्वीकी सतह तक झुका दिया जाता है और इसको भूमिमें अच्छी तरह गाड़कर पानी दे दिया जाता है। कुछ समय बीतने पर इसमेंसे जड़ें निकलकर पृथ्वीके भीतर चली जाती हैं। अब यदि इस तनेको काटकर पृथ्वीमेंसे जड़ों सहित निकाल लिया जावे और किसी दूसरे नम स्थान में लगा दिया जाय तो यह एक पूरा पौधा बन जाता है। आस्तरीकरण (Layering) को क्रियाका व्यवहार नीबू, अंगूर, जैसमीनम, मोतिया आदिमें किया जाता है। मालियों द्वारा कलम लगाया जाना (Grafting) भी एक इसी प्रकारका साधन है।

सन्तानोत्पत्तिके जितने उपाय ऊपर दिये गये हैं और बहुतसे और भी जिनका वर्णन आगे किया
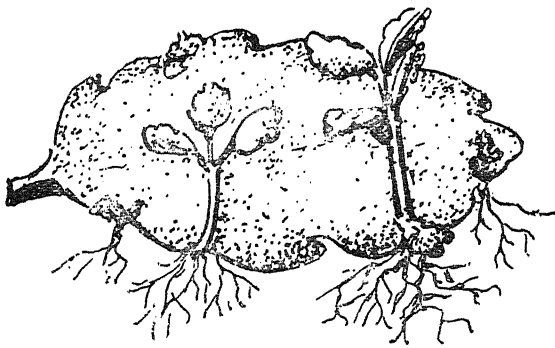
चित्र २—पत्थर चट की पत्ती

जायेगा इस सिद्धान्तके ऊपर निर्भर है कि बहुतसे प्राणियोंमें ऐसी शक्ति होती है कि यदि उनके शरीरका कोई भाग काट लिया जाय तो वह कटा हुआ भाग अपने आपको पूरा करनेमें समर्थ होता है। इस शक्ति को पुनर्जीवन शक्ति (power of regeneration) कहते हैं। इस शक्तिका चमत्कार हम और भी कितनी ही साधारण मनोरंजक घटनाओंमें देखते हैं। कभी कभी एक केकड़ा (crab) अपने शत्रुसे लड़ता हुआ अपने पंजे (claw) को खो बैठता है। किन्तु प्रकृति फिर उस पर दया करती है और वह पंजा पूरा हो जाता है। संघर्षके समयमें जिस सरलताके साथ एक स्टारफिश अपनी भुजाको या एक छिपकली अपनी पूँछको कट जाने देती हैं उससे तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्राणी सारे जीवनको खो देनेकी अपेक्षा शरीरके इन भागोंको खो देना अधिक उत्तम समझते हैं। इसका कारण यही है कि वह इस बातको जानते हैं कि कटा हुआ भाग फिर भी पुनर्जीवित हो सकता है किन्तु खोया हुआ जीवन फिर नहीं लौटता।

प्राकृतिक साधन (Natural Methods)

ऊपर जितने कृत्रिम साधनोंका वर्णन किया जा चुका है। वे प्रायः मनुष्यके द्वारा न होकर प्रकृतिमें अपने आपभी होते रहते हैं। इनके अतिरिक्त और भी प्राकृतिक विधियाँ सन्तानोत्पत्तिकी संसारमें देखनेको मिलती हैं, किन्तु इनके वर्णन करनेसे पहले यह समझ लेना आवश्यक होगा कि प्राणी दो प्रकारके होते हैं: एक तो एक-कोष्ठीय (unicellular) और दूसरे बहु-कोष्ठीय

(multicellular)। जिस प्रकार ईंटोंकी बनी हुई दीवारमें ईंट सबसे छोटी इकाई (unit) है उसी प्रकार शरीरकी रचनामें ऐसी इकाईको कोष्ठ (cell) कहते हैं । एक-कोष्ठीय प्राणियोंमें सम्पूर्ण शरीर एक ही कोष्ठका बना हुआ होता है। अमीबा (amoeba) और बहुत से एलगी (algae) और फन्जाइ (fungi) एक-कोष्ठीय जन्तुओंके उदाहरण हैं।
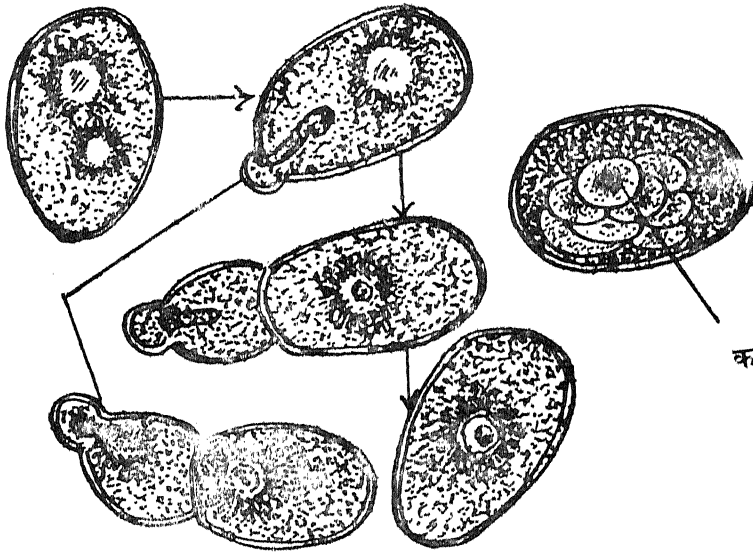
चित्र ३—ईस्ट (yeast) में कलिकाओं द्वारा प्रजनन

एक-कोष्ठीय प्राणियोंमें अलैंगिक सन्तानोत्पत्ति (Asexual reproduction) तीन प्रकारसे होती है:

(१) साधारण विभाजन (simple division)—जब किसी प्राणीका शरीर सीमासे अधिक बड़ा हो जाता है तो शरीरके बीचमें एक संकुचन (constriction) पैदा हो जाता है। यह प्राणीको दो भागोंमें विभक्त कर देता है और इस प्रकार एक प्राणीसे दो समान प्राणी बन जाते हैं।

(२) कलिकाओं द्वारा (Budding)—यह क्रिया भी लगभग उसी प्रकार होती है जैसे कि उपर्युक्त साधारण विभाजन, किन्तु इसमें दो समान प्राणी न बनकर नया प्राणी छोटा होता है (चित्र ३)।

(३) बहुविभाजन (multiple fission and spore formation)-कभी-कभी प्राणीके शरीरके सीमित स्थानमें ही शरीरका बहु-विभाजन हो जाता है । एक कोष्ठके भीतरही बहुत-से कोष्ठ (spores) बन जाते हैं। जिस समय ऊपरकी दीवार (cyst) फट जाती है तो यह सब प्राणी पृथक हो जाते हैं।

बहु-कोष्ठीय प्राणियोंमें अलैंगिक सन्तानोत्पति (Asexual reproduction) जन्तुओं की अपेक्षा पौधोंमें इस प्रकारकी सन्तानोत्पत्ति अधिक साधारण है । मारकैन्शिया (Marchantia) एक पौधा है जो कि नम पृथ्वी पर पानीके चश्मे और खाइयोंके किनारे पाया जाता है (चित्र ४) । इसके शरीर पर छोटे-छोटे प्याले से (cupules) होते हैं जिनमें अलैंगिक कलियाँ (gemmae) पाई जाती हैं । ये कलियाँ पृथक होने पर स्वतन्त्र रूपसे एक नया पौधा पैदाकर सकती हैं। प्याज और लहसुनके फूलोंके बीचमें और टाइगर लिली (tiger lily) की पत्तियोंके अक्षकोणों (axils) में स्वतन्त्र कलिकाएं (Bulbils) पाई जाती हैं। ये कलिकाएँ अपने पितृ पेड़ (parent) से पृथक होकर अनुकूल अवस्थाओंके मिलने पर नये पौधे पैदा कर सकती हैं। बहुतसे पौधोंमें,

जैसे कि गन्ना, केला, अदरक, हल्दी, आलू, कचालू और पौदीना आदिमें भूमिगर्भित तने होते हैं जिनके ऊपर अनियमित कलिकाएँ

चित्र ४—मारकैन्शिया
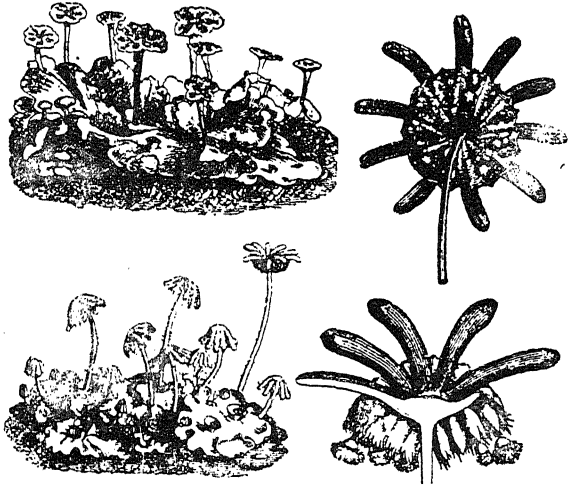
(adventions buds) होती हैं। इन कलिकाओंमेंसे जड़ें निकलने लगती हैं और नये पौधे पैदा हो जाते हैं। शतावरी और शकरकन्दीकी कन्दलसम (tuberous) जड़ोंमें, घास, स्ट्राबेरी और ब्लेकबेरीके पृथ्वीकी सतह पर फैले हुए तनों (runners) में और नागफनीके पत्तीभूत तनों (cladodes or phylloclades) में भी ऐसी ही कलिकाएँ होती हैं। पत्थरचटकी पत्तीका प्रसंग पहले ही आ चुका है।

हाइड्रा जिसका वर्णन ऊपर दिया जा चुका है जन्तु होते हुए भी पौधोंकी तरहसे कलिकाएँ पैदा करता है। ये कलिकाएँ जन्तुके रूपमें परिणत हो जाती हैं। कभी कभी तो ये अपने उत्पादकसे पृथक होकर पानीमें तैरने लगती हैं और कभी उसीमें लगी रह जाती हैं और इन कलिकाओंमें से भी और कलिकाएं निकलने लगती हैं। इस प्रकार इन जन्तुओंकी एक बस्ती सी (colony) बन जाती है। माइक्रोस्टोमम (microstomum) एक कृमि (worm) होता है जिसमें कि चार बारके कलिकाकरण (budding) द्वारा सोलह प्राणियों कि एक अस्थिर श्रृङ्खला बन जाती है। तत्पश्चात् प्रत्येक प्राणी अपनेको इस श्रृङ्खलासे पृथक करके एक स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने लगता है। मिरियेनिडा (Myrianida) एक दूसरा समुद्री कृमि (sea worm) है जो कि इसी प्रकारके कलिकाकरण द्वारा एक लम्बी श्रृङ्खला बनाकर सन्तानोत्पत्ति करता है।

———

सम्पादकीय

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, उदयपुर

हिन्दी साहित्य सम्मेलनका ३३वाँ अधिवेशन उदयपुरमें खूब धूम-धामसे समाप्त हो गया। लोगोंका कहना है कि प्रबन्ध आदिकी दृष्टिसे इतना अच्छा अधिवेशन अभी तक कोई नहीं हुआ था। इन सबके लिये स्वागतकारिणी समिति हिन्दी जनताके धन्यवादकी पात्र है।

सम्मेलनका यह अधिवेशन कार्यकी दृष्टिसे भी बहुत महत्त्वपूर्ण रहेगा। महात्माजीके त्यागपत्र ने हिन्दी जनताके सम्मुख हिन्दी उर्दू का प्रश्न लाकर एक समस्या खड़ी कर दी थी। हिन्दी जनताके लिए यह एक कठिन प्रश्न था। एक ओर महात्माजी का सम्मेलनसे सम्बन्ध विच्छेद और दूसरी ओर उर्दूको अपनानेका प्रश्न था। यह प्रश्न यदि अन्य किसीके द्वारा सम्मेलनके सम्मुख उपस्थित किया गया होता तो सम्भवतः सम्मेलनको अपना निर्णय देनेमें इतना विचार न करना पड़ता और न इतना समय ही लगता। कारण स्पष्ट है। महात्माजी हिन्दी जनता तथा सम्मेलनको उतना ही प्रिय हैं जितना कि हिन्दी तथा हिन्दी सम्बन्धी कार्य। अतः प्रत्येक हिन्दी प्रेमीके लिए महात्माजीका संबंध विच्छेद एक कष्टदायी बात थी।

एक दृष्टिसे यह अच्छा ही था कि इस हिन्दी-उर्दूके प्रश्नके साथ महात्माजीका नाम लगा हुआ था। महात्माजी का इस प्रश्नसे संबंध होने के कारण ही सम्मेलन ने इस प्रश्न पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया। महात्माजीका त्यागपत्र स्वीकार कर सम्मेलनने हिन्दी-उर्दू संबंधी अपनी नीति निर्धारित कर दी। मेरे विचारमें सम्मेलनका निर्णय बहुत उचित रहा। सम्मेलन हिन्दी-जनताकी संस्था है और प्रारम्भसे ही हिन्दी-सेवाका कार्य करती आ रही है। सम्मेलन ने उर्दूको सदा हिन्दीको एक शैली माना है। आजकल उर्दूके नामसे जो भाषा प्रचलित है उसका हिन्दीके साथ समन्वय होना तभी संभव है जब हिन्दी भाषा अपनी जनता पर एकदम कुठाराघात कर दे। क्या यह वांछनीय है और क्या देशकी उन्नतिमें यह सहायक हो सकता है?

हमें तो अपना हिन्दीका कार्य करना है। हमारी उर्दू वालोंसे कोई लड़ाई न तो रही है और न है। हम हिन्दीका कार्य करते हैं, उर्दू वाले उर्दूका कार्य करें। इसमें विरोध क्यों हो? प्रत्येक देशका यह नियम होता है कि वहाँ जिस-जिस भाषाके बोलनेवाले लोग जितनी संख्यामें होते हैं उसीके अनुसार प्रत्येक भाषा को उचित स्थान दिया जाता है। यद्यपि आज जर्मनी विजित है फिर भी यदि रूस, इंगलैंड, या अमेरिका उन पर अपनी भाषा लादना चाहें तो क्या जर्मनी इसे सहन कर सकेगा? इसी प्रकार जब हम हिन्दी-भाषा भाषी अपनी आवाज उठाते हैं कि हमारी भाषाको हमारी संख्याके अनुसार प्रत्येक क्षेत्रमें उचित स्थान दिया जाय तो क्यों उर्दू वाले यह कहें कि हम उनकी भाषा को एकदम बाहर निकाल फेंकना चाहते हैं? हम तो साथ साथ यह भी कहते हैं कि उर्दू भाषा को भी उसके बोलने वालोंकी संख्याके अनुसार उचित स्थान मिलना चाहिये। यदि हिन्दी तथा उर्दू भाषा-भाषियोंकी अपनी-अपनी संख्याओंके अनुसार दोनों भाषाओंके अधिकार सदा सुरक्षित रखे जायँ तो कभी विरोधकी बात आ ही नहीं सकती; विरोध तो तभी उठता है जब एक भाषा के प्रति दूसरे भाषा-भाषी अत्याचार करते हैं और उसको न्यायोचित स्थान नहीं देते।

महात्माजीके स्नेहके कारण कुछ लोग यह चाहते थे कि महात्माजीकी बात मान ली जाय और उनका सम्मेलनसे सम्बन्ध-विच्छेद न हो। यह स्पष्ट तथा सर्वमान्य सिद्धांत है कि संस्थायें व्यक्तियोंसे ऊपर हुआ करती हैं। वे ही संस्थायें

जीवित रहती हैं और महत्वपूर्ण कार्य करती है जो इस सिद्धांतका पालन करती है। एक सज्जन के एक लेखमें, जिसमें उन्होंने महात्माजीके त्यागपत्र पर अपने विचार प्रकट किये हैं, यह पढ़कर कि यह सिद्धांत भ्रमपूर्ण है मुझे आश्चर्य हुआ। वह लिखते हैं कि सम्मेलन महात्माजी की कृति है। कृति कर्त्तासे बड़ी उसी प्रकार नहीं हो सकती जिस प्रकार कि सृष्टि ईश्वरकी कृति होते हुये भी ईश्वरसे बड़ी नहीं है। ईश्वर जब चाहे अपनी कृतिको बना और बिगाड़ सकता है। ईश्वरका सृष्टिका कर्त्ता होना और महात्माजी का सम्मेलनका कर्त्ता होना यह दो बातें एक समान समझकर उनकी तुलना करना और उससे निष्कर्ष निकालना कहाँ तक ठीक है यह तो मेरी समझसे साधारण मनुष्य भी समझ सकता है। ईश्वरकी शक्तिके सम्बन्धमें जो धारणायें हैं क्या व्यक्तियोंके लिये भी वे ही हैं? ईश्वर सर्वशक्तिमान माना जाता है। उसमें यह शक्ति है कि वह बड़ीसे बड़ी चीजोंको केवल अकेला अपनी शक्तिसे बना और बिगाड़ सकता है। क्या मनुष्यमें ऐसी शक्ति है? क्या संस्थायें व्यक्तियोंकी किसी ऐसी ही शक्तिके कारण जन्म लेती हैं? ईश्वरके सृष्टिका कर्त्ता होने और किसी व्यक्तिके किसी संस्थाके कर्त्ता होनेमें बहुत भिन्नता है। संस्था कभी किसी एक व्यक्ति के द्वारा पूर्णताको प्राप्त नहीं होती। इसके बनाने में समूहका हाथ रहता है। यह अवश्य है कि कोई विशेष व्यक्ति नेतृत्व ग्रहण कर समूहके सामने एक विचाधारा रखता है और उसके सहयोगसे किसी संस्थाको जन्म देता है। यदि समूहका सहयोग न प्राप्त हो तो संस्था या तो जन्म ही नहीं प्राप्त करेगी या जन्म प्राप्त करते ही मृत्युको प्राप्त हो जायगी। जन्म होनेके बाद संस्थाको पुष्टि और उन्नतिभी समूहके सहयोगका परिणाम है। अतः यह कहना कि कोई संस्था उसी रूपमें किसी कर्त्ताकी कृति है जिस रूपमें सृष्टि ईश्वरकी निराधार है। जब हम यह कहते हैं कि कोई व्यक्ति किसी संस्थाका कर्त्ता है तो हमारा तात्पर्य केवल यह होता है कि उस संस्था को बनानेमें उसने नेतृत्व और मार्गप्रदर्शनका कार्य किया है। यदि कर्त्ता और कृतिका सिद्धान्त ईश्वर और सृष्टिकी भांति संसारमें लागू होता तो प्रजातंत्रकी विचारधारा संसारमें आ ही नहीं पाती; केवल एकतंत्र ही देखनेको मिलता।

मुझे विश्वास है कि महात्माजीके इस सम्मेलनसे संबंध विच्छेदसे प्रत्येक हिन्दी प्रेमीको दुःख हुआ है। हिन्दी जनताने महात्माजीका त्याग बहुत दुखी मनसे स्वीकार किया है। सम्मेलन तथा हिन्दी-संसारके हितका ध्यान रखनेके कारण ही ऐसा करना पड़ा है। इसमें महात्माजीके प्रति कोई अश्रद्धा या दुर्भावना कारण नहीं है।

सम्मेलनके विज्ञान-परिषद्के सभापतिका भाषण

इस वर्ष हमारी विज्ञान-परिषद्के प्रधान मंत्री श्री महावीरप्रसादजी श्रीवास्तव सम्मेलनके विज्ञान-विभागके सभापति चुने गये थे। विज्ञान्-परिषद्को स्वभावतः इससे प्रसन्नता हुई है। श्री महावीरप्रसादजी हिन्दीके पुराने सेवक हैं। विज्ञान परिषद प्रयागकी स्थापनाके कुछ समय बादसे ही आपने परिषद्के कार्यको अपना कार्य समझकर बराबर सहयोग प्रदान किया। सरकारी नौकरीसे अवकाश ग्रहण करनेके बादसे आप अपना पूरा समय विज्ञान-परिषद्के कार्यमें दे रहे हैं। इससे आपका हिन्दी-प्रेम प्रकट होता है।

श्री महावीर प्रसादजी हिन्दीके अच्छे लेखक हैं और बराबर हिन्दीमें वैज्ञानिक विषयों पर लिखते रहे हैं। खगोल तथा ज्योतिषशास्त्र पर आपका अच्छा अधिकार है। आपकी पुस्तक सूर्य सिद्धान्तके विज्ञान्-भाष्यपर सम्मेलनने

आपको मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्रदान कर आपकी योग्यता स्वीकार की है।

विज्ञान विभाग के सभापतिके पदसे आपने जो भाषण दिया है वह गवेषणापूर्ण है, उसमें आपने कई आवश्यक बातोंकी ओर ध्यान दिलाया है। इनमेंसे एक सुझाव हिन्दी साहित्यमें वैज्ञानिक ग्रन्थोंके निर्माण कार्य के संबंधका है। मैंने पिछले मासके विज्ञानमें इस संबंधकी वर्तमान आवश्यकता पर कुछ प्रकाश डाला था। यह कार्य सम्मेलनको तुरन्त उठाना चाहिये। केवल काव्य, दर्शन, इतिहास आदिके ग्रन्थोंसे ही हिन्दी की उन्नति होना संभव नहीं। वर्तमान युग विज्ञान युग है। जब तक इस विषयका साहित्य हमारी भाषामें नहीं बन पाता हम अपनी भाषा को राष्ट्र-भाषा के पद पर नहीं बैठा सकते। अन्य सभी विषयों पर कुछ न कुछ पुस्तकें हिन्दीमें मिल जाती है, किन्तु विज्ञानके विभिन्न विषयों पर हिन्दीमें पुस्तकोंका लगभग अभावही है। अतः यह आवश्यक है कि इस क्षेत्रमें तुरन्त काफी तेज़ीसे कार्य किया जाय। मैं जैसा कि पिछले मासके विज्ञानमें लिख चुका हूँ, इस कार्य के लिये हिन्दी साहित्य सम्मेलन को विज्ञान परिषद्से अच्छी सहायता मिल सकती है। अतः यदि सम्मेलन विज्ञान-परिषद् को सहायक बनाकर या उसके द्वारा यह कार्य कराये तो शीघ्रही इसमें अच्छा कार्य हो सकता है।

परमाणु बमकी काट

परमाणु बमकी प्रलयंकारी शक्तिको देखकर सारा संसार भयभीत है। लोगों को यह भय है कि यदि भविष्यमें कोई युद्ध हुआ तो कहीं सृष्टि का ही लोप न हो जाय। सभी लोग इसी विचारमें लगे हैं कि क्या परमाणु बमसे कोई बचाव हो सकता है। परमाणु बमकी काटके सम्बन्धकी चर्चा सभी जगह हो रही है। वैज्ञानिक इस प्रश्न पर गम्भीरता-पूर्वक विचार कर रहे हैं। डा० सत्यप्रकाश जीने इस संबंधमें अपने कुछ विचार रखे हैं जो विचारणीय हैं।

अभी वैज्ञानिक निश्चय रूपसे यह नहीं बतला सकते कि क्या परमाणु बमकी कोई काट हो सकती है? और यदि हाँ, तो वह किस प्रकारकी होगी? कुछ वैज्ञानिकोंका मत है कि इसकी कोई काट हो ही नहीं सकती। जब एक बार परमाणु बम बन गया और छोड़ दिया गया तो वह अपना विनाशकारी प्रभाव दिखाये बिना रुक नहीं सकता।

जबसे विज्ञानकी उन्नति प्रारम्भ हुई है संसार में एकसे एक बढ़कर भयानक अस्त्र तथा रासायनिक पदार्थ बनाये गये। जबभी कोई इस प्रकार की नई चीज़ निकली, लोगोंने सोचा इसको काटने वाली कोई चीज़ हो ही नहीं सकती। किन्तु अभी तक प्रत्येक भयंकरसे भयंकर अस्त्र तथा पदार्थसे बचनेके उपाय वैज्ञानिकोंने मालूम कर लिये हैं। मैं समझता हूँ कि इसी प्रकार परमाणु बमकी कोईन कोई काट अवश्यही मालूम हो जायगी। ईश्वरकी सृष्टि आसानीसे लोप नहीं की जा सकती। सृष्टिमें ईश्वरने जहाँ एक ओर मारण वस्तु उत्पन्न की है वहीं उसके साथही उसके प्रभावको नष्ट करने वाली दूसरी चीजभी बनाई है।

राडर इस युगका एक बड़ा आविष्कार है जो रक्षा सम्बन्धी उपायोंके क्षेत्रमें बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। मेरा अनुमान है कि परमाणु बम की काट मालूम करनेमें भी राडरही संभवतः सहायक सिद्ध होगा।

———

विज्ञान-परिषद्की प्रकाशित प्राप्य पुस्तकोंकी सम्पूर्ण सूची

१—विज्ञान प्रवेशिका, भाग १—विज्ञानकी प्रारम्भिक बातें सीखनेका सबसे उत्तम साधन—ले० श्री रामदास गौड़ एम० ए० और प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी० ; ।)

२—ताप—हाईस्कूलमें पढ़ाने योग्य पाठ्य पुस्तक—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोशी एम० ए० तथा श्री विश्वम्भर नाथ श्रीवास्तव, डी० एस-सी० ; चतुर्थ संस्करण; ॥=),

३—चुम्बक—हाईस्कूलमें पढ़ाने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी०; सजि०; ॥=

४—मनोरञ्जक रसायन—इसमें रसायन विज्ञान उपन्यासकी तरह रोचक बना दिया गया है, सबके पढ़ने योग्य है—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम० एस-सी० ; १॥),

५—सूर्य-सिद्धान्त—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान-भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखनेका सबसे सुलभ उपाय पृष्ठ संख्या १२१५ ; १४० चित्र तथा नकशे—ले० श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; सजिल्द; दो भागोंमें, मूल्य ६)। इस भाष्यपर लेखकको हिन्दी साहित्य सम्मेलनका १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है।

६—वैज्ञानिक परिमाण—विज्ञानकी विविध शाखाओंकी इकाइयोंकी सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहालकरण सेठी डी० एस सी०; ॥),

७—समीकरण मीमांसा—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १॥, द्वितीय भाग ॥=,

८—निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री बी० एस सी० ; ॥),

९—बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित—इंटरमीडियेटके गणितके विद्यार्थियोंके लिये—ले० डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी० ; १।),

१०—गुरुदेवके साथ यात्रा—डाक्टर जे० सी० बोसकी यात्राओंका लोकप्रिय वर्णन ; ।-),

११—केदार-बद्री यात्रा—केदारनाथ और बद्रीनाथके यात्रियोंके लिये उपयोगी; ।),

१२—वर्षा और वनस्पति—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शङ्करराव जोशी; ।),

१३—मनुष्यका आहार—कौन-सा आहार सर्वोत्तम है—ले० वैद्य गोपीनाथ गुप्त; ।=,

१४—सुवर्णकारी—क्रियात्मक—ले० श्री गंगाशंकर पचौली; ।),

१५—रसायन इतिहास—इंटरमीडियेटके विद्यार्थियोंके योग्य—ले० डा० आत्माराम डी० एस-सी०; ।॥),

१६—विज्ञानका रजत-जयन्ती अंक—विज्ञान परिषद् के २५ वर्षका इतिहास तथा विशेष लेखोंका संग्रह; १)

१७—विज्ञानका उद्योग-व्यवसायाङ्क—रुपया बचाने तथा धन कमानेके लिये अनेक संकेत—१३० पृष्ठ, कई चित्र—सम्पादक श्री रामदास गौड़ ; १।),

१८—फल-संरक्षण—दूसरापरिवर्धित संस्करण—फलोंकी डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार आदि बनानेकी अपूर्व पुस्तक; २१२ पृष्ठ; २५ चित्र—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी०; २),

१९—व्यङ्ग-चित्रण—कार्टून बनानेकी विद्या—ले० एल० ए० डाउस्ट ; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी, एम० ए०; १७५ पृष्ठ, सैकड़ों चित्र, सजिल्द; १॥)

२०—मिट्टीके बरतन—चीनी मिट्टीके बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा ; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र, सजिल्द; १॥),

२१—वायुमंडल—ऊपरी वायुमंडलका सरल वर्णन—ले० डाक्टर के० बी० माथुर; १८६ पृष्ठ; २५ चित्र; सजिल्द; १॥),

२२—लकड़ी पर पॉलिश—पॉलिशकरनेके नवीन और पुराने सभी ढंगोंका ब्योरेवार वर्णन। इससे कोई भी पॉलिश करना सीख सकता है—ले० डा० गोरख-

Reg. No. A 372

प्रसाद और श्रीरामयत्न भटनागर, एम०, ए०; २१८ पृष्ठ; ३१ चित्र, सजिल्द; १।।),

२३—उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश; आकार बड़ा (विज्ञानके बराबर) २६० पृष्ठ; २००० नुसखे, १०० चित्र; एक एक नुसखेसे सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं या हज़ारों रुपये कमाये जा सकते हैं। प्रत्येक गृहस्थके लिये उपयोगी; मूल्य अजिल्द २ सजिल्द २।।),

२४—कलम-पेवंद—ले० श्री शंकरराव जोशी; २०० पृष्ठ; ५० चित्र; मालियों, मालिकों और कृषकोंके लिये उपयोगी; सजिल्द; १।।),

२५—जिल्दसाज़ी—क्रियात्मक और ब्योरेवार। इससे सभी जिल्दसाज़ी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०; १८० पृष्ठ, ६२ चित्रसजिल्द १।।।),

२६—भारतीय चीनी मिट्टियाँ—औद्योगिक पाठशालाओं के विद्यार्थियोंके लिये—ले० प्रो० एम० एल मिश्र, २६० पृष्ठ; १२ चित्र; सजिल्द १।।),

२७—त्रिफला—दूसरा परिवर्धित संस्करण प्रत्येक वैद्य और गृहस्थके लिये—ले० श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार २१६ पृष्ठ; ३ चित्र एक रङ्गीन; सजिल्द २),

यह पुस्तक गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय १३ श्रेणी द्रव्यगुणके स्वाध्याय पुस्तकके रूपमें शिक्षापटलमें स्वीकृत हो चुकी है।"

२८—मधुमक्खी-पालन—ले० पण्डित दयाराम जुगड़ान, भूतपूर्व अध्यक्ष, ज्योलीकोट सरकारी मधुवटी; क्रियात्मक और ब्यौरेवार; मधुमक्खी पालकोंके लिये उपयोगी तो है ही जनसाधारणको इस पुस्तकका अधिकांश अत्यन्त रोचक प्रतीत होगा; मधुमक्खियों की रहन-सहन पर पूरा प्रकाश डाला गया है। ४०० पृष्ठ; अनेक चित्र और नकशे एक रंगीन चित्र; सजिल्द; २।।),

२९—घरेलू डाक्टर—लेखक और सम्पादक डाक्टर जी० घोष, एम० बी० बी० एस०, डी० टी० एम०, प्रोफेसर डाक्टर बद्रीनारायण प्रसाद, पी० एच० डी० एम० बी० कैप्टेन डा० उमाशंकर प्रसाद, एम० बी० बी० एस० डाक्टर गोरखप्रसाद आदि। २६० पृष्ठ, ११० चित्र आकार बड़ा विज्ञानके बराबर; सजिल्द; ३,),

३०—तैरना—तैरना सीखने और डूबते हुए लोगोंको बचाने की रीति अच्छी तरह समझायी गयी है। ले० डाक्टर गोरखप्रसाद पृष्ठ १०४ मूल्य १),

३१—अंजीर—लेखक श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार-अंजीर का विशद वर्णन और उपयोग करनेकी रीति। पृष्ठ ४२ दो चित्र, मूल्य ॥),

यह पुस्तक भी गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय शिक्षा पटलमें स्वीकृत हो चुकी है।

३२—सरल विज्ञान सागर प्रथम भाग—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद। बड़ी सरल और रोचक भाषा में जंतुओंके विचित्र संसार, पेड़ पौधों की अचरज भरी दुनिया, सूर्य, चन्द्र और तारोंकी जीवन कथा तथा भारतीय ज्योतिषके संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। विज्ञानके आकार के ४५० पृष्ठ और ३२० चित्रोंसे सजे हुए ग्रन्थ की शोभा देखते ही बनती है। सजिल्द मूल्य ६),

हमारे यहाँ नीचे लिखी पुस्तकें भी मिलती हैं:—

१—भारतीय वैज्ञानिक—(१२ भारतीय वैज्ञानिकोंकी जीवनियां) श्री श्याम नारायण कपूर, सचित्र और सजिल्द; ३८० पृष्ठ; ३

२—यान्त्रिक-चित्रकारी—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा, ए० एम०आई०एल०ई०. इस पुस्तकके प्रतिपाद्य विषयको अँग्रेज़ीमें मिकैनिकल ड्राइंग' कहते हैं। २०० पृष्ठ, ७० चित्र; ८० उपयोगी सारिणियां; सस्ता संस्करण २॥)

३—वैक्युम-ब्रेक—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा। यह पुस्तक रेलवेमें काम करने वाले फ़िटरों इंजन-ड्राइवरों, फ़ोरमैनों और कैरेज एग्ज़ामिनरोंके लिये अत्यन्त उपयोगी है। १६० पृष्ठ; ३१ चित्र जिनमें कई रंगीन हैं, २),

विज्ञान—मासिक पत्र विज्ञान परिषद् प्रयागका मुखपत्र है। सम्पादक डा० संतप्रसाद टंडन, लेक्चरर रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय। वार्षिक चन्दा ३)
विज्ञान परिषद्, ४२, टैगोर टाउन, इलाहाबाद।

मुद्रक तथा प्रकाशक – विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञान

प्रयागकी विज्ञान-परिषद्का मुखपत्र

प्रधान संपादक

डाक्टर सन्तप्रसाद टंडन डी० फ़िल

विशेष सम्पादक

डाक्टर श्रीरंजन
डाक्टर सत्यप्रकाश
डाक्टर गोरखप्रसाद

डाक्टर विशंभरनाथ श्रीवास्तव
श्री श्रीचरण वर्मा
डाक्टर रामशरण दास

भाग ६२, संख्या ३

धनु, सम्वत् २००२, दिसम्बर, १९४५

वार्षिक मूल्य ३)   एक संख्या का मूल्य ।)

प्रकाशक

विज्ञान-परिषद्,

४२, टैगोर टाउन, इलाहाबाद।

प्रयागकी

विज्ञान-परिषद्के मुख्य नियम

परिषद्का उद्देश्य

१—विज्ञान-परिषद्की स्थापना इस उद्देश्यसे हुई है कि भारतीय भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्यका प्रचार हो तथा विज्ञानके अध्ययनको और साधारणतः वैज्ञानिक खोजके कामको प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद्का संगठन

२—परिषद्में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमोंके अनुसार सभ्यगण सभ्योंमेंसे ही एक सभापति, दो उपसभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमंत्री, दो मंत्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे, जिनके द्वारा परिषद् की कार्य्यवाही होगी।

पदाधिकारियोंका निर्वाचन

१८—परिषद्के सभी पदाधिकारी प्रतिवर्ष चुने जायँगे। उनका निर्वाचन परिशिष्टमें दिये हुये तीसरे नकशेके अनुसार सभ्योंकी रायसे होगा।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्यको ५) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश-शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ ७०) रु० की रकम दे देनेसे कोई भी सभ्य सदाके लिये वार्षिक चन्देसे मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्योंको परिषदके सब अधिवेशनोंमें उपस्थित रहनेका तथा अपना मत देनेका, उनके चुनावके पश्चात् प्रकाशित परिषद्की सब पुस्तकों, पत्रों, विवरणों इत्यादिके बिना मूल्य पानेका—यदि परिषद्के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धनसे उनका प्रकाशन न हुआ - अधिकार होगा। पूर्व-प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्यमें मिलेंगी।

२७—परिषद्के सम्पूर्ण स्वत्वके अधिकारी सभ्यवृन्द समझे जायँगे।

परिषद्का मुखपत्र

३३—परिषद् एक मासिक-पत्र प्रकाशित करेगी जिसमें सभी वैज्ञानिक विषयोंपर लेख प्रकाशित हुआ करेंगे।

३४—जिन लेखोंको परिषद् प्रकाशित करेगी उनमें जो लेख विशेष महत्व और योग्यताके समझे जायँगे उनके लेखकोंको अपने अपने लेख की बीस प्रतियाँ बिना मूल्य पानेका अधिकार होगा।

विषय सूची

विज्ञान

विज्ञान-परिषद्, प्रयागका मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ।। तै० उ० ।३।५।

भाग ६२ | सम्वत् २००२ दिसम्बर १९४५ | संख्या ३

वायुमण्डलकी सूक्ष्म हवाएँ*

(ले०—डा० सन्तप्रसाद टंडन)

नियन

नियन केवल वायुसे ही प्राप्त होती है।

वायु से नियन प्राप्त करना

वायुसे नियन क्लाउडके अपरेटस (चित्र ६) द्वारा प्राप्त की जाती है।

ठंढी हवा एक बड़े दबाव पर अ बर्तनमें भरी जाती है । यहाँसे यह ब ब$_1$ नलियोंमें चली जाती है। ये नलियाँ तरल आक्सिजन द्वारा ठंढी रक्खी जाती हैं। इन नलियोंमें हवाका अधिकांश आक्सिजन तथा कुछ नाइट्रोजन द्रवीभूत होकर अ बर्तनमें पहुँच जाता है। बची हुई हवा द द$_1$ नलियोंमें पहुँचती है। ये नलियाँभी तरल आक्सिजन द्वारा ठंढी रक्खी जाती हैं। यहाँ नाइट्रोजनका प्रायः पूरा भाग द्रवीभूत होकर इ बर्तनमें इकट्ठा हो जाता है।

नलियोंकी गैसके भारी दबावके कारण अ बर्तनका तरल ट$_1$ नलीमें चढ़ जाता है और अपरेटसके ऊपरी सिरेसे कुछ नीचे पहुँचता है। इसी प्रकार इ बर्तन का तरल ट$_2$ नली द्वारा ऊपर पहुँचता है।

स में भरा आक्सिजन वायुमंडलके दबाव पर उबलता रहता है। इस स्थानका तापक्रम तथा भभकेकी नली (rectifying column) के पेंदी स्थानका तापक्रम अपरेटसके और स्थानोंसे अधिक रहता है । जब इ का तरल एकाएक भभकेकी नलीके ऊपर, जहाँ केवल एक वायुमंडलका दबाव है, पहुँचता है तो तुरन्त तेज़ीसे उबलने लगता है जिससे इसका अधिकांश-नाइट्रोजन गैसके रूपमें फ नलीसे बाहर चला जाता है। इसके साथ ही इस वाष्पीकरण द्वारा यहाँ खूब ठंढक पैदा होती है और अपरेटसके इस भागमें सबसे कम तापक्रम हो जाता है। यहाँसे जैसे-जैसे तरल नीचे गिरता है अधिक गरम होता जाता है। इस नीचे गिरने वाले तरलके सम्पर्कमें ऊपर उठनेवाली गैसें आती हैं। ये गैसें जैसे जैसे तरलमेंसे होती हुई ऊपर जाती हैं अधिक ठंढी होती जाती हैं। तापके इस आदान-प्रदानका परिणाम यह होता है कि ऊपर

*'विज्ञान' भाग ६१, सख्या ६, पृष्ठ १३८ से आगे

उठनेवाली गैसका सारा आक्सिजन द्रवीभूत होकर स में पहुँच जाता है तथा नीचे गिरनेवाले तरलका सारा नाइट्रोजन वाष्प बनकर फ नली द्वारा बाहर निकल जाता है।

चित्र ६

वायुकी सूक्ष्म गैसोंका द्रवीभूत होनेका तापक्रम बहुत नीचे होता है। अतः ये गैसकी अवस्थामें इ बर्तनमें तरलके ऊपर रहती हैं। एक पतली नली क द्वारा यहाँसे गैस ऊपर सर्पाकार नली ब में पहुँचाई जाती है। यह नली उस स्थान-में रहती है जहाँका तापक्रम सबसे कम रहता है। गैसमें जो कुछ भी नाइट्रोजन मिला रहता है वह द्रवीभूत होकर ज बर्तनमें पहुँच जाता है और यहाँ से ख टोटीके रास्ते बाहर निकाल लिया जाता है।

सर्पाकार नलीके ऊपरी सिरेसे जो गैस निकलती है उसमें वायुका सारा हीलियम, नियन, हाइड्रोजन, तथा कुछ नाइट्रोजन रहता है।

इस गैसमेंसे नाइट्रोजन रासायनिक रीति द्वारा अलग किया जा सकता है, किन्तु अधिक आसान तरीका ठंढे कोयले द्वारा अलग करनेका है। कोयला नाइट्रोजनको तुरन्त पूर्णतः शोषित कर लेता है, नियनको धीरे-धीरे और हीलियमको बिल्कुल नहीं शोषित करता। ठंढे कोयलेके सम्पर्कमें कई बार गैसको लानेसे नाइट्रोजन पूरा अलग निकल जाता है। बचे हुये नियन और हीलियमके मिश्रणमेंसे दोनोंको हीलियममें बतलाई विधि द्वारा अलग कर लेते हैं।

आरगन

आरगन वायुके नाइट्रोजन वाले भागमें रहती है और इसीमें से निकाली जाती है।

वायुसे आरगन प्राप्त करना

पहली विधि—कैवेन्डिशके प्रयोगको रैले और रैमज़ेने कुछ सुधार और परिवर्तित कर उसके द्वारा आरगन प्राप्त की। चित्र ७ में इसका अपरेटस दिखलाया गया है।

चित्र ७

काँचका एक बड़ा गोल फ्लास्क अ जिसमें लगभग ५० लीटर गैस समा सके उलटकर किसी आधारके सहारे टाँग दिया जाता है। उसके मुँह पर रबरका डाट रहता है जिसके भीतरसे होती हुई ५ नलियाँ फ्लास्कमें जाती हैं। दो नलियोंके अन्दरसे ताँबेके तार जाते हैं जिनके च स सिरोंपर प्लैटिनमके मोटे छड़ लगे रहते हैं। ये एलक्ट्रोड (electrode) का काम देते हैं। द नली द्वारा सोडेका घोल अन्दर भेजा जाता है। यह घोल फ्लास्कके अन्दर ऊपरी सिरे पर गिरता है और चारों तरफकी सतहको भिगोता हुआ इ नलीके रास्ते बाहर निकल जाता है। इस फ्लास्कमें फ नली द्वारा ९ भाग हवा ११ भाग आक्सिजनके साथ मिश्रित कर भर दी जाती है।

प्लैटिनम एलक्ट्रोड (electrode) में अधिक वोल्टकी विद्युतकी धारा (६००८-८०००वोल्ट) इस गतिसे भेजी जाती है कि दोनों एलक्ट्रोड के बीचमें एक तेज़ लपक बराबर जलती रहे। इस लपकके तापक्रम पर हवाका नाइट्रोजन आक्सिजनके साथ संयुक्त होकर नाइट्रस गैसमें परिणत हो जाता है जो सोडेके घोल में घुलकर फ्लास्कसे बाहर चला जाता है। नाइट्रोजन निकल जानेके बाद फ्लास्कमें हवाकी आरगन बच रहती है। इस रीतिसे कई बार प्रयोग कर फ्लास्कमें काफ़ी आरगन इकट्ठा करली जाती है। इस आरगनके साथ फ्लास्कमें बची हुई आक्सिजन मिली रहती है। फ्लास्कसे गैसको एक अलग बर्तनमें निकालनेके बाद उसमें-से आक्सिजनको क्षारीय पाइरोगैलालके घोल द्वारा शोषित कर लेते हैं। अन्तमें केवल आरगन बच रहती है।

दूसरी विधि—जब नाइट्रोजनको खूब गरम मैगनीसियमके सम्पर्कमें लाया जाता है तो यह मैगनीसियमके साथ संयुक्त होकर मैगनीसियम नाइट्राइड नामक यौगिक बनाता है। प्रारम्भमें रैमज़ेने इसी रासायनिक क्रिया द्वारा वायुमंडलके नाइट्रोजनमें मौजूद आरगनको प्राप्त किया था। इस विधि में सबसे बड़ा दोष यह है कि यह बहुत धीमी है। इस दोषको दूर करनेके लिए यह सोचा गया कि मैगनीसियमके स्थानमें कोई दूसरी ऐसी धातु इस्तेमाल करनी चाहिए जो नाइट्रोजनके साथ बहुत शीघ्र संयुक्त होकर नाइट्राइड बनाती हो। इसके लिए लीथियम उपयुक्त अवश्य है, किन्तु काफ़ी मँहगा होनेके कारण अधिक इस्तेमाल नहीं किया जा सकता।

मैगनीसियमके स्थानमें ५ भाग चूना और ३ भाग मैगनीसियमके मिश्रणको भी इस्तेमाल किया जाता है। मैगनीसियमकी अपेक्षा यह मिश्रण नाइट्रोजनसे अधिक शीघ्र संयुक्त होकर उसे अलग कर देता है। प्रयोग इस भाँति किया जाता है। मिश्रणको एक काँचकी नलीमें रखकर खूब गरम किया जाता है। हाइड्रोजन या कार्बन मानो-आक्साइड जो भी गैस मिश्रणमेंसे निकलती है उसे पंप द्वारा नलीसे बाहर निकाल देते हैं। इसके बाद नलीमें वायुमंडलकी नाइट्रोजन पहुँचाते हैं। चूने और मैगनीसियमके गरम मिश्रणके सम्पर्कमें आते ही नाइट्रोजन मिश्रणके चूने और मैगनीसियमसे संयुक्त होकर कैलसियम नाइट्राइड तथा मैगनीसियम नाइट्राइड यौगिक बनाता है। अब जो गैस नलीमेंसे बाहर निकलती है उसमें नाइट्रोजन नहीं रहता। इसमें मुख्यतः आरगन कुछ हाइड्रोजन और कुछ कार्बन-मानो आक्साइडके साथ मिली हुई अवस्थामें रहती है। इसे पहले तपे ताँबेकी आक्साइडके ऊपर भेजकर इसका हाइड्रोजन अलग कर देते हैं और बादमें ठोस पोटासके ऊपर भेजकर उस कार्बन-मानो-आक्साइड को, जो ताँबेकी आक्साइड द्वारा कार्बन डाइ-आक्साइडमें परिणत हो चुकी है, अलग कर देते हैं। बची हुई गैस आरगन है। इसकी नमी फासफोरस पेन्टा-आक्साइड द्वारा दूर कर इसे सुखा देते हैं।

अंतमें आरगनमें किंचित मात्रा नाइट्रोजनकी

बची रह जाती है। यह नाइट्रोजन आसानीसे नहीं निकलता। इसे निकालनेके लिए गैसको तपे कैलसियमके ऊपर भेजा जाता है।

तीसरी विधि—फिशर और रैमज़ेने आरगन प्राप्त करनेकी एक नई विधि मालूम की। यह विधि अच्छी और सस्ती है। इस विधिमें ९० भाग कैलसियम कार्बाइड और १० भाग कैलसियम क्लोराइडका मिश्रण आक्सिजन और नाइट्रोजनको दूर करनेके लिए इस्तेमाल किया जाता है। यह मिश्रण एक लोहे के रिटार्ट में रख कर खूब गरम किया जाता है। रिटार्ट के मुँह पर जो डाट रहता है उसकी दीवारें दोहरी होती हैं जिससे इसके अन्दर पानी भर कर डाट ठंढा रक्खा जाता है।
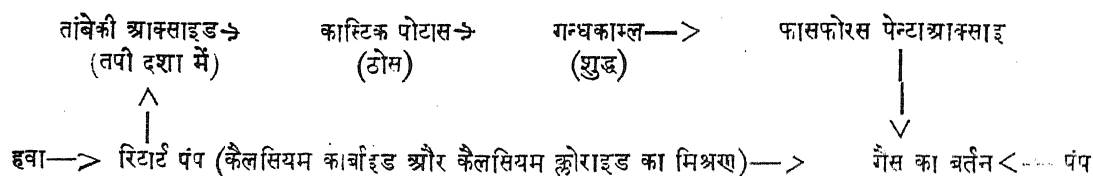
चित्र ८

चित्र ८में पूरे प्रयोगका संक्षिप्त प्रबन्ध बतलाया गया है। प्रयोग करते समय रिटार्टको पहले गरम कर उसके अन्दरकी सारी हवा पंप द्वारा बाहर निकाल दी जाती है। इसके बाद इसे ८०० तापक्रम पर रखकर इसमें हवा भरते हैं। जैसे-जैसे हवाका आक्सिजन तथा नाइट्रोजन मिश्रण द्वारा शोषित होता जाता है वैसे वैसे अधिक हवा रिटार्टमें पहुँचती जाती है। इस प्रकार बार-बार हवा भेजते रहनेसे रिटार्टमें आरगन इकट्ठा होती रहती है। जब रिटार्ट आरगनसे पूरा भर जाता है तब इसे चित्रमें दिखलाये चक्रमें तब तक घुमाते हैं जब तक यह शुद्ध नहीं हो जाती।

इस विधिमें जो रासायनिक क्रियायें होती हैं वे निम्न हैं :—

नाइट्रोजन कैलसियम कार्बाइडसे प्रक्रिया कर कैलसियम सायनामाइड और कार्बन बनाता है। यह कार्बन आक्सिजनसे मिलकर कार्बन डाइ-आक्साइड तथा कुछ कार्बन मानो-आक्साइड बनाता है। कार्बन डाइ-आक्साइड कैलसियम कार्बाइड द्वारा कैलसियम कार्बोनेटमें बदली जाकर शोषित करली जाती है। बची हुई कार्बन मानो-आक्साइड ताँबेकी आक्साइड द्वारा कार्बन डाइ-आक्साइडमें बदल जाती और फिर पोटास द्वारा शोषित करली जाती है।

चौथी विधि—प्रयोगशालामें थोड़ी मात्रामें आरगन प्राप्त करनेकी सबसे सरल विधि यह है कि इसे बाज़ारकी दबावमें रक्खी आक्सिजनसे निकाला जाय। इस आक्सिजनमें, जो हवासे निकाली जाती है, लगभग ३ प्रतिशत आरगन रहती है। गैसको तपे लोहेके ऊपर पहुँचानेसे इसका आक्सिजन अलग हो जाता है। बची गैसमें आरगनके अतिरिक्त थोड़ी मात्रा नाइट्रोजनकी भी होती है। नाइट्रोजनको ऊपर बतलाई गई किसी भी रासायनिक विधि द्वारा अलग कर दिया जाता है। इस प्रकार आरगन प्राप्त हो जाती है।

आरगनकी शुद्धि

ऊपरकी किसीभी विधिसे तैयारकी गई आरगनमें अन्य सूक्ष्म गैसें थोड़ी मात्राओंमें मिली रहती हैं। इन सबकी मात्रा ०.२५ प्रतिशत होती है और इसमें नियन ही मुख्य होती है। इस आरगनको पूर्णतः शुद्ध निम्न किसी भी एक विधिसे किया जाता है—

(१) द्रवीभूत कर तरलमें परिणत करना

और फिर तरलको धीरे-धीरे वाष्पीकरण कर वाष्पको कई तापक्रमों पर अलग-अलग इकट्ठा करना (Fractional distillation)।

(२) ठंढे कोयले द्वारा शोषित करा कर।

(३) द्रवीभूत तरलको धीरे-धीरे और ठंढा कर ठोसमें परिवर्तित करना और अलग-अलग तापक्रमों पर बने ठोसको अलग करते जाना (Fractional crystallization)।

कृपटन

यह भी केवल वायुसे ही प्राप्त होती है।

विधि—जब तरल वायुको धीरे-धीरे वाष्पीकरण होने दिया जाता है तो इसमेंसे अधिक उड़नशील गैसें पहले निकल जाती हैं और पेंदी में कृपटन तथा ज़ीनन बच रहती हैं। कृपटन और ज़ीननको एक दूसरेसे अलग करनेमें तरल वायुके तापक्रम पर उनके परस्परके वाष्प दबावोंके अन्तर सहायक होते हैं। इस तापक्रम पर कृपटन और ज़ीनन ठोस रूपमें रहती हैं। इस ठोसके ऊपर केवल कृपटनके ही वाष्प रहते हैं ज़ीननके नहीं। पंप द्वारा इस वाष्पको निकाल देने पर कुछ ठोस कृपटन पुनः वाष्पमें बदल कर ऊपर पहले वाष्पकी जगह आ जाती है। इस प्रकार वाष्पको पंप द्वारा बराबर निकालते रहने पर सारी कृपटन वाष्पके रूपमें होकर ज़ीननसे अलग हो जाती है।

इस कृपटनमें कुछ अशुद्धियाँ रह जाती हैं। इसे पूर्णतः शुद्ध करनेके लिए इसको पुनः तरलमें परिणत कर देते हैं और तरलका वाष्पीकरण कर भिन्न-भिन्न तापक्रमों पर वाष्पको इकट्ठा करते हैं।

ज़ीनन

ज़ीनन कृपटनकी अपेक्षा अधिक आसानीसे शुद्ध की जा सकती है क्योंकि यह सबसे भारी गैस है और अन्तमें तलछटके रूपमें बर्तनमें बच रहती है। तरल वायुके तापक्रम पर ज़ीनन ठोस रूपमें रहती है। इस तापक्रम पर इस ठोसका दबाव इतना कम रहता है कि अन्य गैसोंके वाष्प तो पंप द्वारा अलग निकाल लिए जा सकते हैं किन्तु ज़ीनन ठोसके रूपमें ही बची रह जाती है।

सूक्ष्म गैसोंके भौतिक गुण

ये पाँचों रंगहीन और गंधहीन गैसें हैं। किसीभी पदार्थके साथ ये रासायनिक क्रियामें भाग नहीं लेतीं, इसीसे इन्हें वायुमंडलकी अक्रियाशील गैसें कहते हैं।

हीलियमको छोड़कर अन्य चारों गैसोंके तड़ित रश्मिचित्र (Spark spectra) में बहुतसी रेखायें रहती हैं। विद्युत-चक्रमें (Circuit) लीडेन जार (Leydon-jar) लगा देनेसे हीलियम और नियनके रश्मिचित्रों (spectra) में विशेष अन्तर नहीं पड़ता, किन्तु आरगन, कृपटन और ज़ीननके रश्मिचित्रों मेंबहुत अन्तर हो जाता है। हीलियमके रश्मिचित्र (spectrum) का रंग हलका हरा, नियनका नारंगी होता है। आरगन, कृपटन और ज़ीननके रश्मिचित्र का रंग बिना लीडेन जारके क्रमशः लाल, बैंजनी, हरा और गहरा बैंजनी होता है। लीडेन जार चक्रमें लगा देने पर इनका रंग क्रमशः नीला, पीला और आसमानी होता है।

बहुत दिनों तक हीलियमको द्रवीभूत करनेमें वैज्ञानिक असफल रहे। ओन्सने प्रथम वार तरल हीलियम प्राप्त की। यह रंगहीन बहुत पतला तरल है। इसका घनत्व ०·१५४ है। अतः यह अन्य सब तरल तथा ठोस पदार्थोंसे बहुत ही अधिक हलका है। तरलका अर्धेन्दु एकदम समतल होता है। इससे मालूम होता है कि तरलका पृष्ठ तनाव (Surface tension) बहुत कम है। तरलका क्वथनांक ४·३° [केल्विन मापके अनुसार (Absolute)] है। तरल हीलियमका उपयोग नीचा तापक्रम प्राप्त करनेमें आता है।

नियनका क्वथनांक – २४५·९२°, आरगनका

– १८५·८°, क्रुपटनका – १०१·७° और ज़ीननका – १०६°·९° है।

सूक्ष्म गैसोंके रासायनिक गुण

इस कुटुम्बकी पाँचों गैसोंको अक्रियाशील नाम इसीलिए दिया गया है चूँकि ये किसी तत्त्व के साथ रासायनिक रूपसे संयोजित नहीं होतीं। अपने हल्केपन तथा अक्रियाशील (अदाह्य-non-inflammable) गुणके कारण हीलियम वायुयानों (Air-ships) में भरनेके लिए हाइड्रोजन की अपेक्षा अधिक उपयुक्त है। १५ भाग हाइड्रोजनके साथ हीलियमका मिश्रण भी अदाह्य तथा विस्फोटकहीन होता है। कैनाडा और अमेरिकामें प्राकृतिक सोतोंकी गैसोंसे हीलियम प्राप्त होनेके कारण वहाँ इसकी मात्रा बहुत काफ़ी है और वायुयानके उपयोगमें आ सकती है।

हाइड्रोजनकी अपेक्षा यह थर्मामीटरमें भी भरे जानेके लिए अधिक उपयुक्त है और इस कार्यमें आती है। इसके तरलका क्वथनांक ४·°२९ A (केल्विन माप) है जो सबसे कम है। अतः तरल हीलियम अन्य पदार्थोंको इस तापक्रम तक ठंढा करनेके काममें आती है।

नियन तथा अन्य सूक्ष्म गैसें बिजलीके बल्बमें तरह-तरहके रंगकी रोशनी देने के लिए काममें आती हैं।

यद्यपि साधारण रीतिसे ये गैसें किसी पदार्थ से रासायनिक संयोजन नहीं करतीं किन्तु फिर भी यह देखा गया है कि विशेष अवस्थामें हीलियम पारा तथा अन्य कुछ तत्त्वोंसे मिलकर यौगिक बनाती है।

मैनले (Manley) ने हीलियमको भिन्न-भिन्न तत्त्वोंके साथ रासायनिक संयोजन करानेके बहुतसे प्रयोग किये। उसने मालूम किया कि बिजलीकी लपकमें होलियम पारेके साथ मिलकर एक यौगिक बनाती है जो पारेको डेका हेलाइड ($Hg\ He_{10}$) है। यह पदार्थ साधारण तापक्रमों पर स्थायी (Stable) रहता है किन्तु ऊँचे तापक्रमों पर विनष्ट होजाता है और हीलियम और पारा अलग हो जाते हैं। यह पदार्थ एक गैस है जो तरल वायुके तापक्रम पर भी द्रवीभूत नहीं होता। मैनलने पारेको मानोहेलाइड (Hg-He) भी प्राप्त की। यह भी एक गैस है और तरल वायुके तापक्रम पर द्रवीभूत नहीं होता। यह गैस जब तपे प्लैटिनमके सम्पर्कमें लाई जाती है तो विनष्ट हो जाती है और पारा तथा हीलियम अलग निकल आते हैं।

बूमरने होलियमको बहुत कम दबाव पर गरम टंगस्टनके तारके सम्पर्कमें रखकर उस पर धनाणुओंकी बौछार की। उसने देखा कि धीरे-धीरे हीलियम और टंगस्टन विलीन हो गये और एक काला पदार्थ बच रहा। इस पदार्थके बनानेमें टंगस्टन और हीलियमका अणुओंमें अनुपात १ : २ था। अतः टंगस्टनकी इस हेलाइडका सूत्र (Formula) $W\ He_2$ है। इस हेलाइडको नाइट्रिक एसिडमें मिलानेसे यह तुरन्त विनष्ट हो गया और हीलियम गैस बाहर निकल आई। टंगस्टन या तो आक्साइडके रूपमें अलग हो गया या यौगिकके रूपमें नाइट्रिक एसिडमें घुला रहा।

नियनके एक विचित्र गुणका कूली (Coolie) ने निरीक्षण किया है। जब नियन पारेके साथ एक नलीमें हिलाई जाती है तो एक लाल रोशनी या चमक निकलती है। यह चमक वायुमंडलके दबाव (७६० मिलीमीटर) से लेकर १२०-२०० मिलीमीटर दबाव तक एक ही सी रहती है। नलीके विभिन्न स्थानोंको विभिन्न तापक्रमों तक गरम करने तथा अन्य तरीकोंसे ऐसी नलियाँ बनाई गई हैं जो कुछ स्थानों पर तो चमकती हैं, किन्तु कुछ पर नहीं। जल-वाष्पकी उपस्थितिमें यह चमक घट जाती है। इस चमकका ठीक कारण नहीं मालूम हो सका है।

यदि कम दबावमें रक्खी नियनमेंसे २००० वोल्टकी विद्युत-धारा प्रवाहित की जाय तो गैस

[शेष पृष्ठ ८१ पर]

आकाश-गंगा

[ले०—श्री छुट्टनलाल कपूर, गणितविभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय]

[समय—तमावृत रजनीका प्रथम पहर ।

पात्र—बालकोंका एक दल; एक अध्यापक कुछ यंत्रोंके साथ]

मोहन—गुरुजी, यह मध्य आकाशमें, बिखरे हुए दूधके सदृश, क्या है ?

गुरुजी—यह आकाशगंगा है, मोहन। जिसे तुम बिखरा हुआ दूध समझ रहे हो वह तारोंका समूह है। बहुत दूर होनेके कारण बिन्दुके सदृश प्रतीत होने वाले असंख्य तारोंका समूह दूधकी नाईं बिखरासा प्रतीत होता है। कहीं-कहीं पर जो तारे चमकते हुएसे दिखाई देते हैं वे अधिक उज्ज्वल एवं विशाल हैं और इतने दूर होने पर भी अपने बिन्दु-अस्तित्वकी झलक दिखा रहे हैं।

राम—गुरुजी, यह चमकीले स्थान तो मुझे बहुत ही लुभावने प्रतीत होते हैं। यदि आप उचित समझें तो वहाँ भी हम लोगोंको सैरके लिये ले चलें।

गुरुजी—तुम्हारा यह सुझाव उपयुक्त अवसर पर कार्यान्वित होगा। अब हमें ऐसे दूरस्थ प्रदेशकी यात्राके लिये अपनेको उद्यत कर लेना चाहिये। जिस प्रदेशकी यात्रा हमको करनी है। उसके मानचित्र तो विज्ञान प्राप्त कर सका है। कहीं तो पथ पर वह प्रदेश पड़ेंगे जहाँ अभी प्रवेश निषिद्ध है (Unexplored territory) अथवा कहीं ऐसे प्रदेश जहाँ अभी प्रशस्त राजमार्गका निर्माण नहीं हो सका है (Men at work)।

मोहन—गुरुजी, क्या आकाशगंगाके मानचित्र एवं हमारे भौगोलिक मानचित्रोंमें कोई सादृश्य है ? मुझे तो समस्त आकाश एक-सा प्रतीत होता है; कहीं कहीं ज्योतिः पुंज (Bright clusters) अवश्य दृष्टिगोचर होते हैं।

गुरुजी—यही ज्योतिःपुंज वह विशिष्ट स्थान हैं जो मानचित्रको सरल कर देते हैं। मानचित्रमें दूरीका प्रश्न भी कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं होता पर इस दिशामें हमारा आकाश-गंगाका मानचित्र अधूरसा है। हाँ तो, अब मैं मुख्य विषय पर आता हूँ। आकशगंगा जो मध्याकाशमें एक दुग्ध धवल धारा (band) सदृश दृष्टिगोचर होती है, तारों एवं तारा-दलोंका एक वृहत समूह है। ऐसे अन्य समूह भी आकाशमें हैं पर वे अपेक्षतः अधिक दूर होनेके कारण प्रकाशित बादलोंके समूह सदृश दृष्टिगोचर होते हैं। हमारा सूर्य इसी आकाशगंगा का एक तारा है।

श्याम—गुरुजी, आकाशगंगाका आकार, इसकी बनावट, इसके विस्तारके विषयमें जाननेकी मुझे बड़ी उत्सुकता है।

गुरुजी—वत्स, यह तो स्वाभाविक ही है। यही उत्सुकता, वस्तुओंको जाननेका सतत प्रयत्न एवं अपने चारों ओरके वातावरणसे परिचित होनेकी अभिलाषाने ही तो विज्ञानको जन्म दिया है एवं ज्योतिर्विदों (Astronomers) को अपने पथ पर अग्रसर होनेकी प्रेरणा दी है।

इसके आकार-प्रकारसे अभी वैज्ञानिक पूर्ण परिचित नहीं हैं पर आधुनिक खोजोंके आधार पर यह ताल-सदृश (Lens-shaped) प्रमाणित होती है। कतिपय नवीन सिद्धान्तोंके आधार पर इसका गोलाकार होना प्रमाणित होता है। इसके तालसदृश प्रतीत होनेका कारण है तारोंका विषुवत् रेखीय तल (Equatorial plane) में केन्द्रित होना। केन्द्रसे हमारा सूर्य ३०,००० प्रकाश-वर्ष की दूरी पर है। इस विषुवत रेखीय तलका अर्धव्यास ४५,००० प्रकाश-वर्ष है एवं तालकी अक्षदिशामें इसकी मोटाई ३,००० प्रकाश वर्ष है। कुछ वैज्ञानिक अर्धव्यास-को ६०,००० प्रकाश-वर्ष मानते हैं।

मोहन—गुरुजी, प्रकाश-वर्षसे आपका क्या अर्थ है ? दूरी और समयमें क्या सम्बन्ध है ?

गुरुजी—जिसे हम प्रकाश कहते हैं, उसकी भी गति है (जल-तरंगोंके सदृश)। यह गति १८६,००० मील प्रति सेकिण्ड है। एक वर्षमें प्रकाश-रश्मि जितनी दूर

जा सकती है (एक सीधी रेखामें), उसे प्रकाश-वर्षके नामसे सम्बोधित करते हैं।

हाँ तो मैं तुम्हें आकाश-गंगाके आकारके विषयमें बता रहा था। तुम उत्सुक होगे कि वैज्ञानिकोंने किस प्रकार यह दूरियाँ नापीं। जिस तरहसे एक Surveyor एक पहाड़ीकी दूरीको नापता है उसी प्रकार एक ज्योतिषी तारोंकी दूरीका अनुमान लगाता है।

गोपाल—गुरुजी दूरी नापनेका यह सिद्धान्त मेरी समझमें नहीं आया।

गुरुजी—जिस वस्तुकी दूरी नापनी होती है उसे एक सीधी रेखा (आधार) के दो छोरोंसे देखते हैं और आधार रेखासे जितने कोणके अन्तरपर वह वस्तु देख पड़ती है उनको नाप लेते हैं। अब यदि आधार रेखाकी लम्बाई नाप लें तो उस वस्तुकी दूरी भी त्रिकोणमितिके आधार पर बतलाई जा सकती है।

एक छोरसे उस वस्तुकी दूरी

$$= \frac{\text{आधार रेखाकी लम्बाई} \times \text{दूसरे छोरवाले कोण की ज्या}}{\text{दोनों कोणोंके योगकी ज्या}}$$

श्याम—आपने अभी बतलाया था कि सूर्य भी इसी वृहत्-समूहमें है। सूर्यके आकार-प्रकार उसकी दूरीके बारेमें जाननेकी मुझे बड़ी उत्सुकता है।

गुरुजी—सूर्य हमसे ९,३०,०० ०० मील दूर है। प्रकाश रश्मिको ८३ सेकंड वहाँसे यहाँ आनेमें लगते हैं। सूर्यका व्यास ८,६०,००० मीलसे भी अधिक है। सूर्यको तौलनेमें भी वैज्ञानिक सफल हो सके हैं। इसका घनत्व १·४१ (जलके घनत्वको इकाई मानकर) एवं पृथ्वी से यह ३,३२,००० गुना भारी है। समस्त आकाशगंगा सूर्यसे १५ × १०¹⁰ (१५ अरब) गुना भारी है।

मोहन—गुरुजी, मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि आप हमें आश्चर्य-चकित करनेके लिये ही क्रमबद्ध काल्पनिक घटनायें सुना रहे हैं। भला किस तुला पर वैज्ञानिक इन भारी पदार्थोंको तौलनेमें समर्थ हो सकता है?

गुरुजी—इस प्रश्नका उत्तर कुछ कठिन है। गुरुत्वाकर्षण-सिद्धान्तके आधार पर, गणितकी सहायतासे एक सूत्र निकालनेमें वैज्ञानिक समर्थ हुए। वह है:—

$$\text{प} = \text{य} \times \frac{\text{म}}{(\text{दू}_0)^2}$$

प—प्रति-क्षण गति-परिवर्तन

(Acceleration on earth's surface)

य—गुरुत्व-संख्या (constant of Gravitation)

म—पृथ्वीका भार

दू—पृथ्वीके केन्द्रसे कणकी दूरी

पृथ्वी के धरातल पर इन सभी वस्तु-संकेतोंका हमें ज्ञान है (भार छोड़कर)। इस प्रकार पृथ्वीका भार ज्ञात हुआ।

इसी आकर्षण-सिद्धान्तके आधार पर हम एक और सूत्र (Formula) निकालनेमें समर्थ हुए हैं जो यह है:—

$$(\text{का})^2 = \frac{४ \cdot (\text{ल})^2 \; (\text{व})^3}{\text{य} \cdot \text{म}}$$

का—काल (Period)

ल—एक निश्चित संख्या (π) जिसका मूल्य ३·१४ है

व—पृथ्वीकी सूर्यसे दूरी (अधिकतम)

म—सूर्यका भार

यहाँ भी हमें 'सूर्यके भार'को छोड़कर सभी वस्तु-संकेतोंका ज्ञान है, अतएव सूर्यका भार भी जाना जा सकता है।

इसी आकर्षण सिद्धान्तके आधार पर, तथा चक्राकार गति (Rotational motion) एवं आवर्त्तिक कम्पनों (Harmonic Vibrations) की विशेषताओंका आश्रय ले हम विभिन्न तारों एवं वृहत्समूहोंका भार जाननेमें समर्थ हो सके हैं।

श्याम—गुरुजी, जिस तरह इस पृथ्वी पर जीवधारियोंका निवास है, क्या अन्य सब नक्षत्रों पर इसी तरहके जीवधारी हैं?

गुरुजी—इस प्रश्नका उत्तर वैज्ञानिक केवल अनुमान के आधार पर दे सका है। हम सभी जानते हैं कि जीवधारी अधिक शीत या ग्रीष्म जलवायुमें नहीं पनप सकते। यदि आज पृथ्वीका तापक्रम जलके क्वथनांक (Boiling point) तक पहुँच जाय अथवा ओषजन (Oxygen) के प्रवांक (Critical point) तक निम्न हो जाय तो

जीवधारियोंका अस्तित्व असम्भव हो जाय। इसी अनुमान-के आधार पर आजका वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि हमारे सौर-मण्डल (Solar system) में किसी भी ग्रह पर जीवधारियोंका होना सम्भव नहीं। अपने अनुमान-क्षेत्रको अधिक विस्तीर्ण कर आजके वैज्ञानिक-का कथन है कि समस्त आकाश-गंगामें ऐसे स्थानोंकी संख्या नगण्य है जिस पर जीवधारियोंकी सृष्टि होना सम्भव हो सकती है।

गोपाल—आपने अभी तापक्रमकी बात कही। सूर्य-का तापक्रम क्या है एवं वह जो इतनी गर्मी हमें देता है वह इसे किस तरह प्राप्त होती है? क्या वास्तवमें हमारा सूर्य आगका एक गोला है?

गुरुजी—इसके पूर्व कि मैं तुम्हें सूर्यका तापक्रम बताऊँ, मैं तुम्हारे इस प्रश्नका उत्तर दूँगा कि तारोंमें इतनी गर्मी कहाँसे आती है एवं क्योंकर वे प्रकाशित होते हैं।

पहले वैज्ञानिकोंका मत यह था कि जिस तरह कोयलेके जलनेसे प्रकाश एवं उष्णता का विकिरण (Radiation) होता है उसी तरह सूर्य भी प्रकाशित होता है। आकाश (Ether or space) में जितने युगोंसे सूर्य प्रकाशित है और ताप एवं प्रकाश की जितनी मात्रा प्रतिक्षण विकिरणके द्वारा सूर्य छोड़ता है, उसके आधार पर गणना करके वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सूर्यका अस्तित्व ही इस समय न होता। अतएव इस मतको तो वैज्ञानिक तिलांजलि दे चुके।

एक दूसरा मत है कि गुरुत्वाकर्षण (Gravitational Attraction) के द्वारा सूर्यका व्यास क्रमशः कम होता जा रहा है और व्यासमें इस तरह कमी होने पर गणितके द्वारा यह दर्शाया जा सकता है कि प्रकाश-रश्मियों एवं ताप-रश्मियोंका विकिरण होगा। एक तीसरा नवीन मत है कि रश्मि-शक्तिक परिवर्तन (Radioactive changes) एवं परमाणु सम्बन्धी प्रतिक्रियाओं (Atomic-reactions) द्वारा भी प्रकाश एवं ताप रश्मियोंका सृजन सम्भव है। आधुनिक वैज्ञानिक इन्हीं दो मतोंको वस्तुतः प्रेरक सिद्धान्त समझते हैं और इसीके आधार पर वे विभिन्न घटनाओं (Events) को सम-झानेमें समर्थ हो सके हैं।

अब तुम समझ गये होगे कि सूर्य क्योंकर प्रकाशित होता है। सूर्यका बहिंतापक्रम (surface temperature) ५६००° सेन्टिग्रेड है।

श्याम—गुरुजी, सूर्यका तापक्रम वैज्ञानिक कैसे माप सके हैं?

गुरुजी—यह सब रश्मि-चित्र मापक (Spectrometer) द्वारा सम्भव हो सका है। वैज्ञानिक सबसे पहले सूर्यके रश्मिचित्र (Spcetrum) का निरीक्षण करता है। रश्मिचित्रके निरीक्षणसे वह यह जाननेका प्रयत्न करता है कि रश्मिचित्र अविच्छिन्न (continuous) अथवा ज्योति-रेखामय (Bright-line) या पटरी (Band) की तरह है। यदि अविच्छिन्न है, तो उसमें जो धूमिल रेखायें (Dark lines) हैं, उनकी माप करता है। कतिपय गणित एवं भौतिकशास्त्रके सिद्धान्तों द्वारा, इन रेखाओंसे उसे ग्रह एवं स्वयं प्रकाशित तारोंके तापक्रमका ज्ञान होता है। इन रेखाओंकी तीव्रता (Intensity) भी तारोंके तापक्रमको जाननेमें सहायक होती है। इन सब बातों की जानकारीके लिये भौतिकशास्त्रके एक विशेष अंग, रश्मिशास्त्र (Spectroscopy) का अध्ययन करना चाहिए।

तो मैंने तुम्हें सूर्यका केवल बहिंतापक्रम ही बताया है। सूर्यका केन्द्र-तापक्रम (Central temperature) १.६×१०^६ डिग्री सेन्टिग्रेड है। ऐसे बहुतसे तारे हैं जिनका केन्द्र तापक्रम, भार एवं आकार सूर्यसे कहीं अधिक है पर बहुत दूर होनेके कारण हम उन्हें बिन्दु-सदृश ही पाते हैं। इनमेंसे किन्हींका बहिंतापक्रम तो ३००००° श एवं इससे भी अधिक है।

श्याम—गुरुजी, जिस तरहसे सूर्य सदैव एकसा चम-कता रहता है, क्या अन्य सब तारोंके लिये भी यही नियम लागू है?

गुरुजी—सूर्य सदैवसे ही एकसा नहीं रहा। अपने शिशुपनमें सूर्य एक अंधकारमय पिण्ड सदृश था। ज्यों-ज्यों इसने बाल्यावस्थामें पदार्पण किया, यह रक्तवर्ण होता गया। इस समय सूर्यका व्यास संकुचित होता जाता था एवं प्रकाश तथा तापके विकिरणकी मात्रामें वृद्धि होती

जाती थी। धीरे-धीरे सूर्य उसी स्थितिमें आ गया जिसमें हम उसे देख रहे हैं। सूर्यके जीवनका युवाकाल समाप्त हो चुका है और अब वह प्रौढ़ावस्थामें पदार्पण कर चुका है। क्रमशः सूर्य अधिक ज्योतिर्मय होगा और इसका व्यास और भी संकुचित होगा। यदि अकाल मृत्यु न हुई तो धीरे-धीरे व्यास संकुचित होकर यह भी अदृश्य (Invisible) हो जायगा।

मोहन—गुरुजी, क्या तारोंका जीवन भी मानव-जीवन-के सदृश होता है? क्या मैं सूर्यको एक तारेके रूपमें देखनेके लिये जीवित रहूँगा?

गुरुजी—वस्तुतः परिवर्तनको यदि जीवनका प्रतीक समझा जाये तो जीवधारियों एवं जड़पदार्थोंमें बड़ा सामंजस्य है। पर मोहन, यदि यह कल्पना भी कर ली जाय कि मनुष्यके आयुके अनुकूल परिस्थितियोंमें कोई सीमा नहीं है फिर भी कोई भी मनुष्य (इस पृथ्वी पर) सूर्यके बिन्दु सदृश अस्तित्वको देखनेके लिये जीवित न रहेगा, क्योंकि इससे पूर्व जीवधारियोंके अनुकूल परिस्थितियोंका लोप हो जायगा। सूर्यसे विकिरित भीषण ताप पृथ्वीको जर्जरित कर देगा।

श्याम—गुरुजी, समस्त ब्रह्माण्डकी क्या आयु है?

गुरुजी—यह एक विवादास्पद विषय है। वैज्ञानिकोंमें कुछ तो ब्रह्माण्डकी आयु १०० अरब वर्ष मानते हैं और कुछ इससे १०० गुनी अधिक। सापेक्षवादके सिद्धान्त (Theory of Relativity) के अनुसार तो पहली गणना उचित ठहरती है और नवीन खोजोंके आधार पर भी यही मत उचित ठहरता है। हमारी पृथ्वीकी आयु २ अरब वर्ष की है। तुम उत्सुक होगे कि किस तरह वैज्ञानिकोंने यह ज्ञान प्राप्त किया है। पृथ्वीकी आयुकी गणना तो चट्टानोंकी बनावट एवं रश्मि शक्तिक पदार्थोंकी उपस्थितिके आधार पर की गयी है। पर ब्रह्माण्डकी आयुका अनुमान तारोंकी विभिन्न अवस्थाओंको लक्ष्य कर एवं मैक्सवेलके शक्तिके सम विभाजन सिद्धान्तके आधार पर (Maxwell's "Equipartition of Energy" Law) किया गया है।

गोपाल—गुरुजी, इसके पूर्व क्या था एवं तारोंका जन्म किस प्रकार हुआ?

गुरुजी—सृष्टिकी उत्पत्तिके अवसर पर समस्त ब्रह्माण्ड में केवल गैसके अतिरिक्त कुछ न था। यह पदार्थ बहुत सूक्ष्म (Rarefied) अवस्थामें था। अणुओंकी गति (Molecular motion) के प्रभावसे कहीं-कहीं इस पदार्थका घनीकरण (Accumulation) सम्भव हो सका। इस घनीकरणके स्थायी होनेके लिये यह आवश्यक है कि इसका भार करोड़ों सूर्योंके बराबर हो। गणितके द्वारा प्रतिपादित इस विचारधाराके औचित्यका प्रदर्शन हमारे वृहत्समूह कर देते हैं (Galaxies)। इन वृहत्समूहोंका भार उतना ही है जिससे उनका घनीकरण सम्भव हो सकता था। समस्त ब्रह्माण्डमें इस तरहके अनेक समूहोंका सृजन हुआ। पारस्परिक प्रतिक्रियाओं (Reaction) के प्रभावसे इनमें परिभ्रमण गतिका संचार हुआ (Rotational motion)। क्रमशः गुरुत्वाकर्षणके सिद्धान्तके अनुसार इनके आयतन (Volume) में संकोच होने लगा एवं इन वृहत्समूहोंमें परिस्थितियाँ अधिक छोटे समूहों एवं तारोंके सृजनके अनुकूल हो गईं। इस तरहसे तारोंका सृजन हुआ। यही विचारधारा वृहत्समूहोंके आकार एवं तारोंके भारको सफल रूपसे समझा सकी है एवं और भी महत्वपूर्ण प्रसंगों पर प्रकाश डाल सकी है। ज्यों ज्यों इस वृहत्समूहके आकारमें संकोच होता जाता था त्यों-त्यों इसका आकार गोलेसे भिन्न होता गया एवं तरल सदृश होता गया।

गोपाल—गुरुजी, हमारा भी इन वृहत्समूहोंमें कोई अस्तित्व है कि नहीं।

गुरुजी इसके पूर्व मैं तुम्हें बतला चुका हूँ कि सूर्य आकाश-गंगाका एक तारा है। हमारी छोटीसी पृथ्वी सूर्यके चारों ओर चक्कर काटती है। पृथ्वी ही नहीं, बुध, शुक्र, मंगल, वृहस्पति, शनि, अरुण (Uranus), वरुण (Neptune), एवं प्लुत (Pluto) भी सूर्यके चारों ओर चक्कर काटते हैं।

इन सब ग्रहोंके सृजन होनेकी भी एक कहानी है। आजसे बहुत समय पहले [लगभग २ अरब वर्ष पहले] सूर्यके सदृश एक दूसरा तारा सूर्यके समीप आया। दो गतिशील तारोंके सामीप्यके कारण हमारे सूर्यके धरातल पर ज्वारभाटेके सदृश तरंगों (Tidal waves) का

उठना सम्भव हुआ। यह तरंग इतनी ऊँची उठी कि उसका सूर्यसे अलग अस्तित्व रखना सम्भव हो सका। यह सिगारके रूप (cigar shaped) का पदार्थ अस्थायी (Unstable) अवस्था में था। इसका टुकड़ोंमें विभक्त हो जाना स्वाभाविक था और इन्हीं टुकड़ोंने भिन्न-भिन्न ग्रहोंको जन्म दिया। इसी तरह उपग्रहों (Satellites) का सृजन हुआ।

मोहन—एक प्रश्नका उत्तर जाननेकी मुझमें अत्यधिक उत्सुकता है कि किस तरह मनुष्यने इस बिखरे हुए दूध सदृश बादल को असंख्य तारोंका समूह समझा, इन बिन्दु सदृश असंख्य तारों को इतना विस्तृत एवं उज्ज्वल समझनेकी विचारधारा को जन्म दिया और किस तरह मनुष्य यह कल्पना कर सका कि ब्रह्माण्ड (Universe) का केन्द्र हमारी पृथ्वी नहीं वरन् दूर क्षितिजमें कोई और तारोंका समूह है। मुझे यह सब बड़ा विचित्र प्रतीत होता है।

गुरुजी—वत्स, तुम्हारी शंकाओंका समाधान केवल गणित कर सकेगा पर इस गुत्थी को सुलझाने का थोड़ा प्रयत्न मैं भी करूँगा।

मानवताकी सृष्टिके प्रारम्भिक दिनोंमें मनुष्य समस्त ब्रह्माण्ड को स्वकेन्द्रित (Geo-entric) अनुभव करता था। नभके समस्त तारे उसे इस पृथ्वीका चक्कर काटते दिखलाई पड़ते थे। सूर्य एवं चन्द्र प्रकाश पिण्डके सदृश थे। उनके आकारसे मनुष्य अनभिज्ञ था।

धीरे-धीरे जब गणना (Calculation) एवं स्थिति-निरूपणका मनुष्यको ज्ञान हुआ तो ग्रहोंके अस्तित्वकी प्रतिष्ठा मनुष्यके ज्ञान क्षेत्रमें हुई। तब कुछ क्रमबद्ध ज्योतिशास्त्र (Astronomy) के सिद्धान्तोंका प्रतिपादन हुआ।

सूर्यग्रहण एवं चन्द्रग्रहणके अवसर पर कुछ शंकायें समाधान करनेका मनुष्यको कुछ अवसर मिला। प्रकाशके वेगका ज्ञान हो जाने पर सूर्यग्रहणके अवसर पर सूर्यकी दूरीका ज्ञान मनुष्य को हुआ और दूरीका ज्ञान होने पर उसके व्यासकी कल्पना मनुष्य कर सका। सूर्यके आकारने व्यक्तिकी स्वकेन्द्रित विश्वानुभूति को एक ठेस पहुँचाई और मनुष्य ने सूर्य को अखिल ब्रह्माण्डका केन्द्र समझा।

गणित एक पग और आगे बढ़ी। तारोंकी निरीक्षण (Observation) कलामें उन्नति हुई एवं रश्मि-चित्र विश्लेषण (Spectrum Analysis) का आश्रय ले मनुष्य विभिन्न तारों एवं तारक-दलोंकी गतिका अध्ययन करनेमें समर्थ हुआ। इस गतिने मनुष्य को गणित सिद्धान्तोंकी अकाट्य युक्तियों द्वारा यह मानने पर विवश किया कि इस बृहत्समूह (Milk-way galaxy) का केन्द्र सूर्य न होकर दूर कुछ तारोंका दल है। ज्यों ज्यों दूरदर्शक यंत्रकी निर्माणकलामें उन्नति हुई, त्यों-त्यों मनुष्यका ज्ञान क्षेत्र अधिक स्पष्ट एवं विस्तृत हुआ और नेत्रोंको दूधकी नाईं बिखरेसे पदार्थमें दूरदर्शक से असंख्य बिन्दुवत् तारे प्रतीत होने लगे।

सूर्यके आकार एवं व्यासके निश्चय हो जाने पर किस तरह सूर्यका भार ज्ञात हुआ, इसका उल्लेख ऊपर हो चुका है। अब विज्ञानने इस दिशामें और अधिक उन्नति की। पृथ्वीके परिक्रमा-पथ (Orbit) के दो दूरस्थित छोरों (Extreme points) को रेखा (Reference-line) मान कर कुछ समीपके तारोंकी [(Parallax Motion) की गणनाके आधार पर] दूरी ज्ञात हुई। इसने तारोंके बिन्दु अस्तित्वको विज्ञान चक्षुकी दृष्टिमें अत्यन्त विशाल एवं उज्ज्वल पिण्डोंका रूप दिया जो तुम्हें आश्चर्यमें डाल रहा है।

यह ज्यतिर्विदों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त जिसमें गणित-की अकाट्य युक्तियोंका संयोग भी है मानवोंके हृदयसे इस स्वकेन्द्रित सृष्टि भावनाके उन्मूलन करनेमें सफल हो सका यही विज्ञानकी सबसे बड़ी देन है।

भूगर्भशास्त्र

[लेखक—महिपति सिंह जैन, बी० एस-सी०]

आजसे पचास वर्ष पूर्वका मानव जब आधुनिक जगतको देखता है तो वह विस्मयसे सोचने लगता है कि आखिर यह क्या उलट-फेर हो गया। फिर वह कहने लगता है कि अहा! विज्ञान भी क्या है। आज संसार विज्ञानकी महती शक्तिको समझ रहा है। वह जानता है कि विज्ञानने उसको अपरिमित शक्ति प्रदान की है। वह उसके उत्थान व पतन का साधन भी बन सकता है। आज संसारमें जो दानवी विभीषिका प्रज्वलित है उसका कारण समझना बहुत ही सरल है। यह युद्ध सभ्यता या ऐसे ही किसी उच्च ध्येयके हेतु नहीं लड़ा गया है। इस युद्धके पीछे छिपी है राष्ट्रोंकी भूगर्भस्थ धातुओं व पदार्थोंके हड़पनेकी दानवी अभिलाषा, क्योंकि आजके जगतमें वही राष्ट्र उन्नतिशील हो सकता है या है जिसके पास खनिज पदार्थ हैं। वह उनका उपयोग अपने कल-कारखानोंमें कर संसारके अन्य देशों पर अपना व्यापारिक साम्राज्यवाद स्थापित कर सकता है। इस प्रकारसे हम देखते हैं कि किसी राष्ट्रके अंतर्राष्ट्रीय अस्तित्वके लिये ये भूगर्भस्थ पदार्थ कितने आवश्यक हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या हम पृथ्वीके गर्भमें छिपी हुई अतुल धन-राशिको पा सकते हैं? हम सहायताके लिये अपने विज्ञानकी ओर आशाप्रद दृष्टिसे देखते हैं।

भूगर्भ-शास्त्र क्या है?:—पृथ्वीके गर्भमें छिपे हुए पदार्थोंके पानेके लिये हमें भूस्तर-शास्त्रका पूर्ण ज्ञान प्राप्त होना चाहिये। आजसे प्राय: १०० वर्ष पूर्व इसका नाम भी बहुत कम मनुष्य जानते थे या यों कहिये कि तब वह एक समुचित वैज्ञानिक परिपाटी पर न था, क्योंकि इस शास्त्रके अध्ययनार्थ अन्य अनेकों वैज्ञानिक विषयोंका ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। रसायनशास्त्र, पदार्थविज्ञान, प्राणिविज्ञान, गणित, आदिके समुचित ज्ञान पुंजका संकलित संचय भूगर्भशास्त्रके समझनेके लिये अति आवश्यक है। भूगर्भशास्त्र वह विद्या है जिसके द्वारा भू-कवचकी रचना एवं उसके अंदरकी बनावट व उसपर पाई जानेवाली अनेकों वस्तुओंका ज्ञान प्राप्त होता है। कुछ मनुष्योंका अनुमान है कि भूस्तर शास्त्र केवल खनिज पदार्थ और भिन्न-भिन्न भाँतिकी चट्टानोंके वर्णन तक ही सीमित है, किन्तु यह केवल उनका भ्रम है। प्राचीन एवं अर्वाचीन कालमें पाये जाने वाले प्राणियों और वनस्पतियों का परिचय भी भूस्तर-शास्त्रके अंतर्गत है। हमारी पृथ्वी जिस पर हम निवास करते हैं कब, कैसे, किस युगमें बनी तथा उसके शैशव-कालमें उसकी क्या स्थिति थी, उसकी यह आकृति क्या आदिकालसे ही ऐसी थी या वह बादके किसी युगमें अनेकों प्राकृतिक शक्तियोंके परस्पर संघर्षसे ऐसी बनी? इसी प्रकारके पृथ्वी-सम्बंधित अनेकों प्रश्नों का समावेश भूगर्भ शास्त्रमें है और इन सबका उत्तर भी भूगर्भविद्याके ज्ञान द्वारा ही प्राप्त हो सकता है।

पृथ्वीकी आयु:—हमारी प्राचीन धार्मिक पुस्तकें व हमारे ग्रंथ हमें यह बताते हैं कि यह पृथ्वी अनादि कालसे इसी रूपमें है। न उसका कोई आदि है न अंत, वह सनातन है। और इसी कारण वश उसकी आयुकी ठीक गणना नहीं हो सकती है। परन्तु हमारे वैज्ञानिकोंने ऐसा स्वीकार करनेसे सर्वथा इनकार कर दिया है। उन्होंने अत्यंत परिश्रम करके इसकी आयुका पता लगाया है। आज हम पदार्थ-विज्ञानकी सहायतासे यह जानते हैं कि यूरेनियम (Uranium) एक बहुत ही भारी तत्व है। उसमें निहित अत्यधिक विद्युत शक्तिके कारण वह अस्थायी (unstable) है और इस तरहसे वह अनेकों शृंखलाओंमें विभक्त होता रहता है और अन्तमें विपन्न (disintegrate) होकर जस्तेके रूपमें परिणत हो जाता है। इस जस्तेका परमाणु भार (Atomic weight) साधारण जस्तेसे कुछ अधिक होता है। यूरेनियमसे प्राप्त जस्ता रेडियम-धर्मी, (Radioactive) कहलाता है। इसका परमाणु भार २०८ है। भूगर्भ-शास्त्रियोंने यह निर्विवाद रूपसे प्रमाणित कर दिया कि युरेनियम प्रकृतिमें

प्रायः सब चट्टानोंमें न्यून या अधिक मात्रामें पाया जाता है। यह पदार्थ वायुमण्डल, नदी, झरनों, झीलों व समुद्र आदिके पानीमें भी किसी-न-किसी रूपमें विद्यमान रहता है। न केवल चट्टानोंमें ही, पर इसके कई अन्य यौगिक भी मिलते हैं। सबमें मुख्य पिचब्लेंड (Pitchblende) है। यह काले व भूरे रंगका यौगिक है। इसका रासायनिक सूत्र ($2UO_3UO_2$) है। इसका कठोरपन ५.५ और आपेक्षिक घनत्व ६.४ से ९.७ तक रहता है। रवेदार (Crystalline) का घनत्व अधिक होता है। इस यौगिकके विपन्न होनेसे अतुल तापका प्रादुर्भाव होता है। साथ-साथ हीलियम गैस की सृष्टि भी होती रहती है जो कि चट्टानोंमें ही बन्द पड़ी रहती है। इस गैस की माप कर लेनेसे पता लग जाता है कि कितने समयमें कितना यूरेनियम विपन्न हुआ है। इस प्रकारसे किसी भी भूस्तर की शिलाओंके जन्मका समय सरलतासे निर्धारित किया जा सकता है। आजके प्रमुख भूगर्भ-शास्त्रियोंका अनुमान है कि पृथ्वीकी आयु २×१०^{९}) दो अरब वर्ष है। भूगर्भ-शास्त्र एक इतिहास है जिसकी अमर कहानी प्रकृतिके गर्भमें शिलाओं व पुराने अस्थिपंजरोंके रूपमें अत्यन्त सुगमतासे पढ़ी जा सकती है। परन्तु यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि यह हमारे उस इतिहाससे कहीं वृहत्तर है जो कि युगोंसे चली आनेवाली मानवकी ऐहिक तृष्णाओं व अशिष्ट व्यवहारों तथा उसकी दुर्बलताओं का वर्णन मात्र है। इसमें एक या दो शतब्दियोंका तो क्या ३० या ४० सहस्र वर्षोंकी कोई गणना नहीं क्योंकि पृथ्वीकी आयुके सामने यह नगण्य है। इस प्रकारसे भूगर्भ-शास्त्रको दो अरब शरद ऋतुओंका लेखा रखना पड़ता है।

पृथ्वीका अंतर्भाग :—प्रायः मनुष्योंका अनुमान है कि पृथ्वी जैसी कि ऊपर है वैसी ही अन्दर भी होगी। बात ऐसी नहीं है। पृथ्वीकी ऊपरी पपड़ी (Crust) की मोटाई अधिकसे अधिक ६० मील है। पृथ्वीके विषयमें कुछका मत है कि वह भीतरसे तरल द्रवके सदृश है, क्योंकि ज्यों ज्यों हम अन्दर गहराईमें जाते हैं तापमान बढ़ता जाता है। परन्तु यथार्थमें ऐसा नहीं है। औसत रूपसे प्रत्येक ६० फुट नीचे जाने पर तापक्रम एक डिगरी फारनहाईट बढ़ता है। जैसे-जैसे भीतरी तापक्रम बढ़ता है उसी प्रकार से ऊपरी भू-कवचकी चट्टानोंका दबाव भी बढ़ता जाता है। इस प्रकारसे तरल पदार्थ पर अत्यधिक दबाव रहता है और इस कारण वह सान्द्र (Viscous) रूपमें रहता है—न पूर्ण ठोस, न पूर्ण द्रव। परन्तु इसमें इन दोनों प्रकारके पदार्थोंके गुण विद्यमान हैं। वह अस्थायी (Unstable) दबाव व चोटके प्रहार पर एक लचीले (elastic) पदार्थके समान कार्य करता है। परन्तु स्थायी दबावके प्रभावसे तरल पदार्थकी भाँति हो जाता है और यदि दबाव अत्यधिक मात्रा व समय तक रहता है तो वह तरल द्रवकी तरह बहने भी लगता है। पृथ्वीके भीतरी भागकी तुलना ठोस तारकोल (Pitch) से की जा सकती है जिसमें ऊपर दिये हुए दोनों गुण हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि पृथ्वीके गर्भका भाग स्थिति-स्थापक नम्य (Elastico-Plastic) पदार्थके समान है। फिर ज्वालामुखी पर्वतोंसे लावा (lava) तरल रूपमें कैसे आता है? इसका कारण यह है कि ज्वालामुखीके विस्फोटके समय जब ऊपरी दबाव हट जाता है, तब पदार्थोंका द्रवांक घट जाता है। अतः ६० मीलकी गहराई पर तापक्रम लगभग ३,००० अंश होनेसे सभी चट्टानें द्रवीभूत हो जाती हैं, और ऊपर आया हुआ लावा तरल होता है। ज्यों-ज्यों हम नीचे जाते हैं, चट्टानोंका घनत्व दबावके कारण बढ़ता जाता है। भूकवचका औसत घनत्व २.७ – २.६ तक है और संपूर्ण पृथ्वीका औसत घनत्व ५.५ है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भीतरी चट्टानें बाह्य स्तरसे कहीं अधिक भारी हैं। इसका यह अर्थ है कि पृथ्वीके केन्द्र की ओर जानेसे भारी घनत्ववाले तत्त्व मिलेंगे और इस आधार पर ही यह कहा जाता है कि मूल्यवान भारी तत्व तो माताके गर्भमें ही चिर-विश्राम कर रहे हैं। ऊपरका स्तर तो हलके सिलिकेटों (Silicates) का बना हुआ है। जिस प्रकारसे कच्ची धातु (Ore) को गलानेमें शुद्ध धातु नीचे रह जाती है और ऊपरी सतह पर धातु-मैल Slag) आ जाता है ठीक उसी प्रकार पृथ्वीका बाह्य स्तर भी एक भीमकाय कीटके समान है जिसमें से धातुयें नीचे बैठ गई हैं। यह उस समय हुआ होगा जब कि पृथ्वी अत्यन्त ऊष्ण थी। अब तो वह पूर्णतया

सिद्ध हो गया है। कई विचारोंके मनन करने पर हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि पृथ्वीके अन्तर्भागके गुण भूस्तरके गुणोंसे भिन्न हैं, और उसे भारमंडल (Bary sphere) कहते हैं। पृथ्वीके घनत्वके आँकड़ोंसे यह सिद्ध होता है और यह निष्कर्ष निकलता है कि पृथ्वीका अंतर्भाग बहुत भारी है और भारमण्डलका घनत्व लोहे के घनत्वसे भी अधिक है।

भूकम्प जनित लहरोंसे प्राप्त ज्ञान :—भूकम्प जनित तरंगोंके गम्भीर अध्ययनसे हमारे भूगर्भ-विशारद इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि पृथ्वीका केन्द्रिक-अंतर्भाग इस्पातसे कई गुना अधिक दृढ़ (Rigid) है। हमारी पृथ्वी सेवके समान है जिसका अर्धव्यास ४००० मीलके लगभग है। और ऊपरकी पपड़ी ६० मीलसे अधिक मोटी है। भूकम्प लहरोंका लेखन संसारकी सब प्रयोग-शालाओंमें होता है। यह लेखन एक अत्यन्त सूक्ष्म यंत्रके द्वारा जिसको 'कंप लेखक' (Seismogram) कहते हैं होता है। इन्हीं यंत्रोंकी सहायतासे यह ज्ञात हो सका है कि पृथ्वी समकेन्द्रिक कवचों (Concentric Shells) में विभक्त हैं। इनकी गहराई व घनत्व तथा भौतिक गुणों की जानकारी हमको भूकम्प जनित तरंगोंसे प्राप्त होती है। भिन्न-भिन्न गहराई पर तरंगें अपने रूपमें व्यापक परिवर्तन दिखलाती हैं। उनकी गतिका वेग पदार्थों की स्थितिके साथ बदलता रहता है। इन तरंगोंसे न केवल गहराई व घनत्वका ही पता चलता है परन्तु यह भी ज्ञात होता है कि पृथ्वी भीतरसे ठोस है या द्रवीभूत। अभी हाल ही में अप्राकृतिक भूकम्पोंको पैदा करके वैज्ञानिकोंने एक ऐसी विधि निकाली है जिससे वे तेल आदिके कुओं तथा छिपी हुई चट्टानोंका पूर्ण पता लगा लेते हैं। इन अप्राकृतिक भूकम्प-लहरोंके वेग व समय का अध्ययन करते हैं।

समकेन्द्रिक भू-कवचोंकी रचना:—पृथ्वीके महाद्वीपोंके भूखण्डकी चट्टानोंको सायल (Sial) कहते हैं। इससे अर्थ यह है कि ये चट्टानें हलके सिलिकेटों की बनी हुई है जैसे कि एल्यूमिनियम सिलीकेट (Aluminium Silicates)। समुद्रके पेदेंकी चट्टानें महाद्वीपोंके भूखण्ड प्रदेशोंकी चट्टानोंसे अधिक भारी होती हैं। ये चट्टानें रासायनिक दृष्टिसे क्षारीय (basic) हैं और इनका घनत्व ३·१ है जब कि सायल चट्टानें अम्लीय (acidic) हैं और इनका घनत्व २·७ – २·६ है। इन क्षारीय चट्टानोंको सीमा (Sima) कहते हैं क्योंकि इनमें भारी सिलीकेट होते हैं जैसे कि मैगनीसियम सिलीकेट (Magnesium Silicates)। इनके बारेमें और बातें निम्न चित्रसे विदित हो जायँगी। यदि हम पृथ्वीके केन्द्रसे पपड़ीके परिच्छदको लें तो आधेसे अधिक भाग तक लोहा व निकिलका आधिक्य है। इसके साथ थोड़ी मात्रामें कोबाल्ट, स्वर्ण, प्लैटिनम आदि अन्य भारी धातुयें भी हैं। यही कारण है कि पृथ्वीके केन्द्रका भाग इस्पातसे अधिक कड़ा है। इस केन्द्रीय भागको 'नीफे' (Nife) कहते हैं। इसका घनत्व ८२ – १२·० तक है और यह केन्द्रसे ३४७८ किलोमीटर तक है। इसी लौह पिंडमें वह चुम्बन शक्ति निहित है जो आकाशीय वस्तुओं को पृथ्वीकी ओर आकर्षित करती है। केन्द्रसे ४१७८ किलोमीटर तक पैलासाइट भाग (Pallasite Zone) है। इसका घनत्व ६·० – ८·० तक है। इसमें मुख्यतः भारी सिलिकेट है, जिसमें मुख्यतः ऑक्सीजन, सिलिकन, लोहा, कैलसियम और मैगनीसियम आदि हैं। तीसरा भू-कवच केन्द्रसे ६३१८ किलोमीटर तक है। इसका घनत्व ३·१ – ६·० तक है इसमें पहले वाले तत्त्वोंकी अपेक्षा सोडियम और पोटैसियम भी थोड़ी मात्रामें पाये जाते हैं। इसमें 'सीमा' (Sima) का भी कुछ भाग सम्मिलित है, अतः कुछ हल्के सिलिकेट होते हैं। पृथ्वीकी पपड़ी का ९८ प्रतिशत भाग मुख्य नौ तत्वोंसे मिलकर बना है। इसकी मोटाई ६० किलोमीटर है तथा घनत्व २·७— २·६ तक है। यही अंतिम भू-कवच है। बाह्य स्तरोंमें ऑक्सीजन, हाइड्रोजन, लोहा, कैलसियम, मैगनीसियम, सिलिकन, एल्यूमिनियम, सोडियम तथा पोटैसियम आदि हैं। इन सबोंमें से अंतिम तीन तत्त्व अधिक मात्रामें पाये जाते हैं।

पृथ्वी व जीवकी उत्पत्ति :—ज्योतिषज्ञोंका मत है कि हमारी पृथ्वी सौरजगतका एक भाग है। एक मतके अनुसार बहुत काल पहले ब्रह्माण्डमें विचरते हुये दो भीमकाय तारोंके अधिक पार्श्वमें आनेके कारण उनके

गुरुत्वाकर्षणमें असाधारण परिवर्तन हुये जिसके परिणाम स्वरूप उनमें से एक तारेका एक भाग टूटकर अलग हो गया और वह ही अन्य अनेकों प्राकृतिक शक्तियोंकी क्रियाके बाद हमारी पृथ्वीके रूपमें अवतरित हुआ। परन्तु कैंट और लाप्लासका मत है कि हमारा सौरपरिवार नीहारिकाओं (Nebula) से उत्पन्न हुआ होगा। जब वाष्पयुक्त नीहारिका ठंढी हुई तो अधिकांश भाग इकट्ठा होकर गैसका पुञ्ज बन गया। बादमें यही हमारे सूर्यके रूपमें आया और इसके चारों ओरका शेष भाग फैल कर अन्य नक्षत्रोंके रूपमें उत्पन्न हुआ। उन्हींमें से हमारी पृथ्वी भी एक है। सृष्टिके आदिमें कुछ भी हुआ हो पर इतना तो स्वयं सिद्ध है कि पहले पृथ्वी बहुत ही ऊष्ण थी। ज्यों ज्यों समय व्यतीत होता गया पृथ्वी का ताप विकिरण (Radiation) से बाह्य जगतमें प्रसारित होता रहा। इस प्रकार कुछ काल बाद पृथ्वी ठंढी हो गई। ऊष्ण गैसोंके ठंढे होनेसे हमारा वायुमंडल बना। जब पृथ्वी ठंढी हुई तब उसपर एक पतली पपड़ी पड़ गई, जिस पर कि आज हम लोग निवास करते हैं। पृथ्वी ठंढी होने पर जीवकी उत्पत्तिके योग्य हो गई। सृष्टिके आदिमें जीव एक लसमय शीरे (Jelly) के रूपमें था। और बादमें अनेकों प्राकृतिक, रासायनिक, भौतिक संयोगोंके परस्पर द्वन्दोंके कारण उसमें बहुतसे रूपान्तर होते गये। इस आदि जीवको प्रोटोजुआ (Protozoa) कहते हैं और यही हमारा अत्यन्त प्राचीनतम पूर्वज हो सकता है। इसका वर्णन इतना सरल नहीं है। सहस्रों विद्वानोंके परिश्रम पर भी अभी पूर्ण ज्ञान नहीं प्राप्त हो सका है।

न्यस्तावशेष (Fossils) व इनकी भूगर्भ-शास्त्रमें उपयोगिता :—न्यस्तावशेषोंका भूगर्भ-शास्त्रसे वही सम्बन्ध है जो चोली और दामनका। ग्रैनाइट (Granite) प्रस्तरीभूत चट्टानोंका मूल है; और यदि यह मान लिया जाय कि येही उसका बाह्य स्तर है तो साथ-साथ भिन्न जलजन्य (Sedimentary Rocks) चट्टानोंमें पाये जानेवाले सेन्द्रिय पदार्थोंके अवशेषों और अन्य प्रमाणोंके आधार पर पृथ्वी पर पाये जाने वाले प्राणियों और वनस्पतियोंका समुचित ज्ञान हो सकता है। यहाँ यह बता देना उचित होगा कि न्यस्तावशेष क्या हैं और उनकी कितनी आवश्यकता है! किसी प्राणी या वनस्पति के प्राकृतिक कारणों द्वारा, मिट्टीके अन्दर दब जाने पर उनके अस्तित्वके चिह्न भू-कवचकी शिलाओंमें पाये जाते हैं, उन्हें 'न्यस्तावशेष' (Fossil) या 'उत्खात' कहते हैं। ये न्यस्तावशेष सेंद्रिय पदार्थों या पदचिह्नों या साँचेके रूपमें होते हैं। निर्बीज प्राणियोंकी हड्डियाँ, दाँत, पाषाण-रूपी-मल, पशु-पक्षी और कीड़ोंके पद चिह्न भी न्यस्तावशेष ही कहे जाते हैं। बहुतसे न्यस्तावशेष तो इतने सुन्दर व पूर्ण दशामें पाये जाते हैं कि उनमें अति कोमल पत्तों की नसें और रेखाओंके चिह्न तक ज्यों-के-त्यों बने मिलते हैं। कभी-कभी पाषाणीभवन की क्रियाके कारण असली पदार्थके स्थान पर सिलिका का बना हुआ उनका नमूना पाया जाता है। यह परिवर्तन इतनी उत्तम रीतिसे होता है कि पाषाणीभूत लड़कीमें उसकी बनावट जैसी-की तैसी पाई जाती है। इन्हींके प्रमाणके आधार पर भूस्तर-वेत्ताओं ने चट्टानोंको चार प्रमुख भागोंमें विभक्त किया है। निम्न सारिणीसे चट्टानों की आयु, इनका स्थूल वर्गीकरण, प्रकार और उस समयके प्राणि-जगतका ज्ञान प्राप्त होगा। अब तकके मानव शरीरके अस्थि पंजरोंके अध्ययनसे वैज्ञानिकोंका मत है कि अधिक से अधिक मनुष्यको इस पृथ्वी पर अवतरित हुए ४,०००,००० वर्ष व्यतीत हुए हैं। अब तक के न्यस्तावशेषोंसे अधिक प्राचीन अस्थि-पंजर यदि और पाये जायें तो मनुष्यके पुरातनत्वका अनुमान इससे भी अधिक हो सकता है।

नम्बर	युग व उसका काल (लाख वर्षों में)	युगों की चट्टानोंका वर्गीकरण तथा उनकी (सहस्र फुटों में) मोटाई		प्रत्येक युगके जीव	चट्टानोंका प्रकार
४	टरशरीके बाद १० नूतन प्राणी विशिष्ट युग ५००	प्लास्टोसीन प्लीयोसीन	} ६	मनुष्य स्तनधारी पशु	मुख्यतः जलज तहदार
३	मध्यम प्राणी विशिष्ट युग ५०००	क्रीटेशस जुरैसिक त्रियासिक	११ ४·५ २·२	रेंगनेवाले जानवर	
२	प्राचीन प्राणी विशिष्ट युग २०,०००	परमियन कारबोनीफेरस डेवोनियन सिलूरियन आरडोवीशियन कैम्ब्रीयन	३ १५ ६ ३०	भूमि व पानी पर चलने वाली मछलियाँ तथा रीढ़वाले जानवर	
१	निश्चैतन्य युग २१,०००	प्रोटिरोजोईक एरकियोजोईक	} ३६	रीढ़वाले जानवरोंकी उत्पत्ति आदि जीव अमीबाकी उत्पत्ति	स्तरीभूत स्फटिकमय मुख्यतः अग्निजन्य

यूरेनियम और भारत :—यूरेनियम ने तो आज वैज्ञानिकोंको अद्भुत शक्ति प्रदान की है। अखिल विश्वकी राजनीतिको खटाईमें डाल दिया है। आज विश्वके प्रत्येक बड़े राष्ट्र इस उधेड़-बुनमें तल्लीन हैं कि किसी भी प्रकारसे परमाणु बम बनानेकी विधि ज्ञात हो जाय जिससे यूरेनियमसे प्राप्त शक्तिको अनुशासनमें लाकर वह शक्ति अन्य उपयोगमें आ सके। अभी तो युद्धमें बमके रूपमें प्रयोगकी गई है। हो सकता है कि कुछ वर्षों बाद इस प्राप्त शक्तिसे हम अपने कल-कारखाने भी चला सकें। यूरेनियम एक भारी तत्त्व है और यह क्षारीय चट्टानों में अधिक पाया जाता है। क्रीटेशस युगके अंतमें भारतके दक्षिणी भाग अर्थात् भारतके अंतरद्वीपमें एक अत्यन्त भयंकर हलचल मच गई थी जिसके परिणाम-स्वरूप भारतके दक्षिणी-पश्चिमी भूभागका २५०,००० वर्ग मील ज्वालामुखीसे निकली हुई चट्टानों व लावासे आच्छादित हो गया। इनको भूगर्भ-शास्त्रमें डेकन ट्रैप कहते हैं। इन चट्टानोंमें यूरेनियम धातु पाई जाती है। हिसाब लगानेसे ज्ञात हुआ है कि ये चट्टानें ३० से ४० फुट तक मोटी हैं और कहीं-कहीं पर तो ये २००० फुट की ऊँचाई तक हैं। यदि इन चट्टानोंके ५० टनको रासायनिक क्रियाओं द्वारा शुद्ध किया जाय तो आधा पौंड से अधिक यूरेनियम मिलता है। इस प्रकारसे केवल डेकन ट्रैपसे ही २००० टन यूरेनियम प्राप्त किया जा सकता है। यह आश्चर्यजनक अवश्य प्रतीत होता है। इस प्रकारसे प्राप्त यूरेनियम बहुत ही कीमती होगा। परन्तु राष्ट्रकी सत्ताके हेतु यह मूल्य नहींके समान है। यही नहीं, हमारे देशमें पिचब्लेंड भी पाया जाता है। अभी डेढ़ वर्षकी बात है कि अमरीकासे वैज्ञानिकोंका एक दल आया था और उसने बिहार प्रांतके डालटनगंजके पास एक अभ्रककी खानकी जाँचकी थी। इस खानका नाम है "सिंगार अभ्रककी खान" (Singar Mica Mines)। इसीमें यूरेनियमका यौगिक पाया जाता है। भारतमें हमारे उपयोगकी सभी वस्तुएँ हैं।

———

राञ्जन किरणें और उनकी उपयोगिता

(लेखक—श्री कामेश्वरदेव शाण्डिल्य)

मनुष्य सदासे प्रकृतिके नियम मालूम करने तथा यथा सम्भव अपने लिए सुविधाओं को इकट्ठा करनेमें लगा हुआ है। हज़ारों वर्षोंसे वह इस बातकी खोजमें लगा हुआ है कि उसे किसी प्रकारसे यह पता लग जाय कि संसार वास्तवमें क्या है, कैसे बना है, इत्यादि। अनेक रोगोंसे पीड़ित होनेके कारण उसकी इच्छा यह भी सदा बनी ही रहती है कि किसी न किसी प्रकारसे रोगोंका शमन हो सके। रोगोंका शमन करनेके लिए उनका निदान परमावश्यक है। कई शताब्दी पहले मनुष्यको ऐसी किरणें निकालनेकी, जिनसे शरीरके अन्दरका ज्ञान प्राप्त हो सके, इच्छा हुई, क्योंकि इनसे रोगोंके निदानमें बड़ी सहायताकी सम्भावना थी।

अनेक प्रकारके प्रयोग किये जाने लगे। प्रसिद्ध वैज्ञानिक राञ्जन एक काँचकी नलीमें, जिसमेंसे लगभग सब हवा निकाल दी गई थी, बिजली की धारा भेज रहा था। नलीसे कुछ गज़की दूरी पर एक कागज, जिस पर बेरियम प्लेटिनो सायनाइडका पाउडर चिपक हुआ था, रक्खा था। एकाएक उसमें से नीली रोशनी निकलने लगी। बीचमें एक काले कागजका बहुत बड़ा टुकड़ा रक्खा था। अतः मामूली प्रकाश वहाँ तक नहीं पहुँच सकता था। राञ्जन ने इस रोशनीका कारण जानना चाहा। उसने भिन्न-भिन्न वस्तुओंको इधर-उधर रखकर देखा तब उसको उन चीजोंकी छाया उस बेरियम प्लेटिनो सायनाइड के कागज पर देख पड़ी। इस प्रकार उसने इस बातका पता लगा लिया कि रोशनी कहाँसे आरही थी। उसको ज्ञात हो गया कि कागजकी चमकका कारण नलीमें से आने वाली किरणें हैं। उसको इन किरणोंकी प्रकृति आदिका कुछ ज्ञान न था अतः उसने इनका नाम एक्स किरणें (अज्ञात किरणें) रख दिया। इन्हींको हम रांजन किरणें कहेंगे। उस दिन मनुष्य ने एक प्रकारकी किरणोंकी खोज कर ली जिनकी उसे बहुत दिनसे प्रतीक्षा थी।

इनकी खोज हो जाने पर वैज्ञानिकोंको इनकी प्रकृति ज्ञात करनेकी इच्छा होने लगी। शीघ्र ही यह मालूम हो गया कि एक्स किरणें लकड़ी, कागज आदि अनेक पदार्थों मेंसे, जिनमें से मामूली प्रकाश पार नहीं होता, पार हो जाती हैं। परन्तु लोहा, सीसा आदि घन पदार्थों में से पार नहीं हो पातीं। यदि आँखों पर यह किरणें पड़ें तो मनुष्य को कुछ नहीं दिखाई पड़ता। अतः प्रारम्भमें इनकी उपस्थिति देखनेका साधन एकमात्र बेरियम प्लेटिनो सायनाइडका कागज़ही था। सर विलियम क्रुक्सने देखा कि यदि ग्राफके प्लेटपर एक्स किरणें डाली जायँ और बादको प्लेट डेवेलप किया जाय तो वह काला हो जाता है।

हम ऊपर लिख आये हैं कि यह किरणें लकड़ी आदि हल्के पदार्थोंमें से पार हो जाती हैं। परन्तु इन किरणोंका प्रभाव वस्तुओंमें से पार होनेमें कुछ कम हो जाता है। प्रभाव (Intensity) की कमी भिन्न-भिन्न वस्तुओंके लिये भिन्न-भिन्न है। यदि यह किरणें लकड़ीमें प्रवेश करके बाहर निकलें तो इनके प्रभावमें बहुत कम कमी आती है परन्तु सीसेके बाहर आने पर इनका प्रभाव लगभग पूर्ण-

---

[७०वें पृष्ठ का शेष]

वायुमण्डलकी सूक्ष्म हवाएँ

मेंसे लाल तेज़ रोशनी निकलती है। लेकिन जब बिजली रुक-रुक कर या हिलती हुई (Intermittent) हो तो रोशनीका रंग नीला रहता है।

एक वैकुअम नलीमें भरी क्रुपटनके भीतरसे बिजलीकी धारा प्रवाहित करने पर पीली-बैंजनी रंगकी रोशनी निकलती है।

वैकुअम नलीमें भरी ज़ीननके अन्दर बिजलीकी धारा प्रवाहित करने पर आसमानी रंगकी रोशनी निकलती है। विद्युत चक्रमें लीडेन जार रख देने पर रोशनीका रंग हरा हो जाता है।

तथा नष्ट हो जाता है। इस प्रभावकी कमीको शोषण (absorption) कहते हैं।

यदि यह किरणें मनुष्यके हाथ पर डाली जायँ और हाथके पीछे एक फोटोग्राफीकी प्लेट रखदी जाय तो माँसमें से पार होने में उनका प्रभाव केवल थोड़ाही कम होगा परन्तु अस्थियोंमें से पार होनेमें प्रभावका बड़ा ह्रास हो जायगा। अतः फोटोग्राफी प्लेट को यदि डेवेलप किया जाय तो प्लेट काली हो जायगी, परन्तु हड्डियोंकी छाया उसके ऊपर आ जायगी। राञ्जनने इस प्रकार प्रथम बार मनुष्यके हाथकी हड्डीका फोटोग्राफ (Rontgenogram) लिया।

राञ्जन की जैसी नलीसे एक्स किरणें न तो काफ़ी तादादमें निकलती हैं और न तीव्रही होती (Intense) हैं। अतः वैज्ञानिकों को नलीमें परिवर्तन करना पड़ा। उन्नति धीरे धीरे हुई। परन्तु आजकल अधिकतर दो प्रकारकी नली काममें लाई जाती हैं।

उपयोगिता

एक्स किरणें आजकल अनेक कार्यों में मनुष्यकी सहायक सिद्ध हुई हैं। इनकी सहायतासे आजकल अनेक रोगोंका निदान तथा इलाजभी सम्भव हो गया है। शिल्पकलामें भी इन किरणोंकी सहायता से बहुत उन्नति हुई है। हालही में एक्स किरणोंका प्रयोग अपराधोंके पकड़नेमें भी किये जानेकी कोशिश की गई है और इसमें बहुत कुछ सफलताभी हुई है। एक्स किरणोंसे हम प्रकृति-के नियम जाननेमें भी बहुत सफल हुये हैं। परमाणुओंकी बनावटके बारेमें जो ज्ञान हमको इन किरणोंसे प्राप्त हुआ है वह अवर्णनीय है। हम इन भिन्न-भिन्न बातोंको एक-एक करके विस्तारपूर्वक लिखेंगे।

एक्स किरणोंका मनुष्य पर प्रभाव

एक्स किरणोंकी भेदन शक्तिके ऊपर किरणोंका प्रभाव निर्भर है। जिन किरणोंकी भेदनशक्ति (Penetrating power) अधिक होती है उनको हम कठोर किरणें (Hard rays) कहेंगे और जिनकी भेदन शक्ति कम है उनको नरम (Soft rays) कहेंगे। मनुष्यका रुधिर दो प्रकारकी कोषों (cell) से बना है—लाल और सफ़ेद। एक्स किरणें यदि मनुष्यके किसी अङ्ग पर पड़ें तो वहाँके रुधिरका लाल कोष मर जाता है। परन्तु यदि मनुष्य काफ़ी देर तक सूर्यके प्रकाश तथा स्वच्छ वायुमें रहे तो यह कमी पूरी हो जाती है। यदि ये कोष पर्याप्त संख्यामें मर जायँ तो हृदयस्थ छननोंके (जो रुधिर को छानते हैं) छेद इनसे भर जाते हैं और छाननेका काम खराब हो जानेसे रुधिर विकृत हो जाता है।

शरीरके किसी अङ्गपर कठोर किरणोंके अधिक समय तक पड़नेसे एक प्रकारके फफोले पड़ जाते हैं जिनको अच्छा करना बड़ा कठिन है। यदि पुरुष या स्त्रीके गुप्त अङ्गोंके ऊपर कठोर किरणें काफ़ी समय तक पड़ जायँ तो सन्तान उत्पन्न करनेकी शक्ति नष्ट हो जाती है। प्रारम्भमें जब एक्स किरणोंका आविष्कार हुआ ही था डाक्टर या वैज्ञानिक लोग इन किरणोंसे अपनेको बचानेके लिये कुछ-भी चिन्ता नहीं करते थे। अतः इसके कारण उनको बहुत हानि उठानी पड़ी।

हमारे शरीरमें अनेक प्रकारके कोष (cell) मौजूद हैं। भिन्न२ भेदन-शक्तिकी किरणोंका प्रभाव इन पर भिन्न-भिन्न होता है। कुछ कोष एक्स किरणोंके पड़नेसे बढ़ने लगते हैं और कुछ मर जाते हैं। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि कोषके ऊपर किरणें यदि थोड़ी देर तक पड़ें तो वे बढ़ती हैं पर अधिक देर तक पड़ने पर वे मरने लगती हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि एक्स किरणें हमारे शरीरके हानिकर कीटाणुओं को (Bacteria) मारनेमें बहुत कुछ लाभदायक सिद्ध हो सकती हैं। परन्तु थोड़ीसी भेदनशक्तिमें तबदीली आनेसे किरणोंके किसी एक प्रकारके कोषों परके प्रभावमें बहुत तबदीली आ जाती है। इस कारण कीटाणुओंको मारनेके लिये इन किरणों को काममें लानेमें अनेक अड़चनें हैं। परन्तु फिरभी इनका प्रयोग अनेक रोगोंके इलाजमें होता है। एक्स किरणोंसे इलाज करानेमें योग्य डाक्टर परमावश्यक है, अन्यथा हानिकी बहुत सम्भावना रहती है। एक्स किरणोंसे खुजलीका इलाज किया जाता है परन्तु यदि ठीक प्रकारकी किरणें काममें न लाई जायँ तो खालके भयंकर रोग उत्पन्न हो जाते हैं। अब एक्स किरणोंका प्रयोग शरीरके चीड़-फाड़के काममें भी किया जाता है।

इन किरणोंका सबसे अच्छा प्रयोग रोगोंके निदानमें होता है। जब शरीरमें अनावश्यक या दूषित पदार्थ इकट्ठा

हो जाते हैं तभी रोग उत्पन्न होते हैं। सर जेम्स मेकेन्ज़ी डेविसनने इन दूषित पदार्थोंके इकट्ठा होनेकी जगह आदि मालूम करनेका तरीक़ा बताया था। यदि शरीरकी हड्डी टूट जाय तो एक्स किरणकी मददसे बड़ी आसानीसे देखी जा सकती है। एक्स किरण उत्पन्न करनेकी विधिमें उन्नति होनेके कारण हम न केवल हड्डी जैसे पदार्थोंको ही देख सकते हैं, वरन् हृदय फेफड़े आदि अनेक हिस्सोंकी भलीभाँति परीक्षा कर सकते हैं। यही नहीं, वरन् भोजनके साथमें कुछ विशेष पदार्थ खिला कर हम पाचन क्रियाके विषयमें भी बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

शिल्पकलामें एक्सकिरणें

शिल्पकलामें एक्सकिरणोंका प्रयोग बहुत विस्तीर्ण है। गौल्फ़की गेन्दसे लेकर हवाई जहाज़ तक, चौकोलेटसे लेकर बड़ी-बड़ी मशीनगनों तक सबमें एक्सकिरणोंका प्रयोग किया जाता है। आजकल लोहे आदिकी बड़ी-बड़ी ढली हुई वस्तुओंकी एक्स किरणोंसे परीक्षा की जाती है। प्राचीन-कालमें ढली वस्तुओंकी त्रुटियाँ केवल पूरी तौरसे बन जानेके उपरान्त काममें लाये जाने पर ज्ञात होती थीं। ढली हुई वस्तुओंके अन्दर रन्ध्र रह जाते हैं। बहुतसी मशीनोंके अन्दर इस बात की आवश्यकता होती है कि भिन्न-भिन्न हिस्से एक दूसरेके अन्दर ठीक बैठ जायँ। यह केवल आँखसे देखनेसे पता नहीं लग सकता। यद्यपि हमने मशीन बनानेके काममें बहुत उन्नति की है तथापि कुछ न कुछ त्रुटियाँ रह जाना स्वाभाविक है। इन त्रुटियोंको ज्ञात करनेका साधन होना परमावश्यक है। प्राचीनकालमें गौल्फ़की गेन्द बनानेमें एक्स किरणोंका प्रयोग न होनेसे बड़ीही असुविधा होती थी। इसके अन्दर एक बिलकुल गोलाकार कोर रहती है। मढ़नेमें इसकी गोलाई बिगड़ जाती थी, परन्तु यह ज्ञात करना कि गोलाई बिगड़ी है या नहीं असम्भव था। परन्तु अब तो केवल गेन्द को बेरियम प्लेटिनो सायनाइड के पर्दे और एक्स किरणकी नलीके बीच घुमाना होता है और गेन्दकी छायासे एक दम पता लग जाता है कि कोर गोल है या नहीं। ढली हुई वस्तुओंको भी एक्स किरणकी नलीके सामने रख कर फोटोग्राफ लिया जाता है। यदि कोई स्थान खोखला रह गया है तो वहाँ की छाया अधिक काली हो जायगी और देखने वाले को एक दम पता लग जायगा कि कहीं खोखला है या नहीं। किन्हीं-किन्हीं वस्तुओंको ऊपरसे देखनेसे सन्देह होता है कि अन्दरसे ख़राबी होगी, परन्तु वास्तवमें खराबी नहीं होती। ऐसी दशामें इन किरणोंसे जो लाभ होता है उसको पाठक स्वयं समझ सकते हैं। एक्स नलीके सामने रखकर फोटोग्राफ लेतेही पता लग जाता है कि वस्तु वास्तवमें अन्दरसे खराब है या नहीं। प्राचीनकालमें भीतर खराबी होनेके सन्देहके कारण ढली हुई वस्तुयें वज़नी तथा बड़ी बनाई जाती थीं, परन्तु अब ढलाईकी परीक्षा की जानेके कारण वे हल्की-छोटी और सुन्दर बनाई जा सकती है।

यही नहीं कि हम केवल खोखले स्थानोंका पता लगा सकते हैं वरन हम उनकी लम्बाई चौड़ाई आदि सब बातों का पता लगा सकते हैं। स्टीलकी ढली हुई वस्तुओंमें कुल लम्बाईकी २% लम्बी खोल एक्स किरणोंकी सहायतासे देखी जा सकती हैं।

धातुओंकी जुड़ाईमें, जहाँ कि धातुको आक्सी हाइड्रोजन लपक (Oxyhydrogen flame) के अन्दर पिघलाकर जोड़ दिया जाता है, केवल एक्स किरणोंकी सहायतासे ही वस्तुको बिना खराब कराये इस बातका पता लगाया जा सकता है कि जोड़ ठीक बना है या नहीं। जुड़ाईका सबसे अधिक प्रयोग हवाई जहाज़ोंके बनानेमें होता है। यदि एरोप्लेनोंके जोड़ोंकी परीक्षा भलीभाँति न की जाय तो सदा जहाज़के धोखा देनेकी सम्भावना रहती है। हम एक्स किरणोंसे यह देख सकते हैं कि वास्तवमें जोड़ ठीक लगा है या नहीं।

कारतूस बनाकर उसकी परीक्षाभी एक्स किरणोंसे ही की जाती है। पिछले युद्धके अन्दर बाहरसे बनकर आये हुये गोलों आदिकी परीक्षामें जो काम एक्सकिरणोंने किया वह शायद दसगुना रुपया खर्च करने और मेहनत करने परभी उतनी अच्छी तरह न होता।

आजकल स्टील नलियोंके अन्दर पारेकी ऊँचाई नापने, काँच पिघलानेके काममें लाये जाने वाले मिट्टीके बरतनोंकी परीक्षा करने, बन्द बण्डलोंके अन्दर वस्तुओं को देखने, मोतियोंकी परीक्षा करने (वे असली हैं या नक़ली यह देखनेके लिये), रत्नोंकी जाँच करने (यह देखने के लिये कि ये पुराने हैं या नये) पेड़ोंकी परीक्षा करने

आदि अनेक कामोंके लिये एक्स किरणोंका प्रयोग हो रहा है।

अब हम एक्स किरणोंकी इन उपयोगिताओं को यहीं छोड़कर इनकी दूसरी प्रकारकी उपयोगिताओंकी ओर ध्यान देते हैं।

एक्सकिरणें और परमाणु

प्राचीनकालसे यह विश्वास चला आता है कि सम्पूर्ण वस्तुयें परमाणुके संगठनसे बनी हैं। रदर फोर्डने भिन्न-भिन्न प्रमाणोंके आधार पर परमाणुको स्वयं दो प्रकारकी वस्तुओंका बना माना था। एक केन्द्र पदार्थ—बीचमें स्थित वस्तु जोकि धन बिजलीसे भरा है—जिसे प्रोटान कहते हैं और दूसरा इलेक्ट्रन जो कि बीचमें स्थित वस्तु (Nucleus) के चारों ओर घूमते हैं।

मैण्डलीफ़ने परमाणुओंकी उनके आपेक्षिक भारों (Relative weights) के आधार पर एक सारिणी बनाई थी। किसी परमाणुकी इस श्रेणीके अन्दर क्रम संख्या इलेक्ट्रनकी संख्याके बराबर होती है। इसको परमाणु संख्या कहते है। जब किसी परमाणु के ऊपर एक्स किरणें पड़ती हैं तो इसके अन्दरसे भी एक दूसरे प्रकारकी किरणें (Flourescent rays) निकलती हैं जिनकी लहर लम्बाई (wave length) परमाणु संख्या पर निर्भर है। लहर लम्बाई निकालकर मूसलेकी की हुई खोजके आधारपर परमाणु संख्या निकाली जा सकती है। अतः एक्स किरणोंका प्रयोग वस्तुओंमें पमाणुओंके नाम मालूम करनेके लिएकिया जाता है। रासायनिक परीक्षासे यदि किसी वस्तुमें एक प्रकारके परमाणुकी संख्या कम है तो उसका मालूम करना असम्भव हो जाता है पर एक्स किरणोंसे बचकर जाना उसके लिये असम्भव है। नये तत्त्वोंकी खोज में रासायनिक विधियोंसे यह पता लगाना कहीं-कहीं असम्भव हो जाता है कि वास्तवमें अमुक परमाणु नये तत्त्वका है या किसी पुरानेका केवल बदला हुआ स्वरूप है। परन्तु एक्स परीक्षा करने पर परमाणु संख्या निकालकर एकदम यह पता चल सकता है कि परमाणु नये तत्त्वका है या नहीं।

यही नहीं परमाणुसे निकलनेवाली किरणोंकी लहर लम्बाई निकालकर यहभी पता लग सकता है कि केन्द्रके चारों ओर घूमते हुये इलेक्ट्रन किस प्रकार विभाजित हैं। इत्यादि :—

भिन्न वस्तुओंके रवों (Crystals) के ऊपर एक्स किरणें डालकर उनके परमाणुओंके बीचकी दूरी तथा उनका स्थान निकाला जा सकता है।

इन सब उपयोगिताओंके आधार पर प्राचीनकालके मनुष्यके इस कथन को, कि वैज्ञानिक खोज पर खर्च किया जाने वाला धन व्यर्थ जाता है इत्यादि, निमूर्ल कहना अनुचित न होगा। एक्स किरणोंकी उपयोगिता इस बात को बतलाती है कि वास्तवमें मनुष्यको वैज्ञानिक खोजकी ओर अधिक ध्यान तथा साहससे काम करना चाहिये। अभी एक्स किरणोंकी सब उपयोगितायें मालूम नहीं हैं। परन्तु जो कुछ मालूम हैं उनसे प्रतीत होता है कि वास्तव में एक्स किरणोंके आविष्कारसे मनुष्य का बड़ा उपकार हुआ है।

जानवरोंमें विद्युत् (electricity) का प्रभाव

[ले०—श्री कृष्ण बहादुर, रसायन विभाग, प्रयाग-विश्वविद्यालय]

जानवरोंमें विद्युत देखनेका सबसे अच्छा उदाहरण दक्षिणी अमरीकाकी एक प्रकारकी मछलियोंमें मिलता है। ये मछलियाँ अपने शत्रु पर विद्युतका आघात करती हैं। ये अपने शत्रुको इस प्रकारके आघातसे कुछ कालके लिये मूर्छित कर देती हैं। मछलियोंके शरीरका एक लम्बा चौड़ा भाग इस चलविद्युत (Dynamic electricity) के बनानेके काममें लगा रहता है। इसे विद्युत अंग (Electric organ) कहते हैं। इसमें बहुतसे उर्ध स्तम्भों (Vertical Column) में विद्युत अंग रहते हैं। इन हर स्तम्भोंमें कई सौ प्लेट एक दूसरे के पास रहती हैं। ये श्रेणी (Series) में लगाई गई विद्युत घटोंकी भाँति काम करती हैं। इन हर एक प्लेटका विद्युत वाहक बल करीब १/५० वोल्ट होता है। मछलियाँ पानीमें रहती हैं जो अच्छा चालक (Conductor) है, इसलिये यह विभवान्तर (Voltage) जो करीब ५० वोल्टके होता है मछलियोंको अपने शत्रुओंको मूर्छित करनेके लिये पर्याप्त होता है।

यद्यपि ऐसे जन्तु बहुत थोड़े हैं जिनमें शरीरके बाहर विद्युतका प्रवाह दिखलाई देता है पर लगभग उन सारे जानवरोंमें जिनके शरीरमें स्नायु मण्डल और पेशियां (Nervous system and muscles) हैं विद्युतका महत्व पूर्ण काम चलता रहता है। हर जानवरोंकी पेशियों और स्नायुओंमें जब वह काम करती हैं एक प्रकारकी बिजली पैदा हो जाती है। हम पहले स्नायुओं (Nerves) को ही लेंगे। प्रायः सभी ऊँचे श्रेणीके जानवरोंमें दो प्रकारके स्नायु होते हैं। एकको चेतना-स्नायु (Sensory nerves) कहते हैं। यह शरीरके प्रत्येक अंगसे सूचना ले जाकर मस्तिष्क (Brain) तक पहुँचाते हैं। दूसरे प्रकारके स्नायुओंको गति-स्नायु (Motor-nerves) कहते हैं जो मस्तिष्कसे सूचना या आज्ञा लेकर शरीरके प्रत्येक अंगको देते हैं और उनको काममें लगाते हैं। हर स्नायु तागेकी भाँति होते हैं जिनमें बालसे भी कई गुने पतले कई सौ तन्तु रहते हैं। यह हर तन्तु एक एक स्नायु कोष (Nerve cell) का होता है जो कि मस्तिष्क या सुषुम्ना नाड़ी (Spinal cord) में रहता है। इसका अंतिम छोर किसी पेशी-तन्तु (Muscle fibre) में या किसी विशेष चेतना-अंगमें बढ़ा रहता है या यह बहुत सी छोटी-छोटी शाखाओंमें बटा रहता है जो खालकी साधारण कोषोंमें फैले होते हैं।

हर स्नायु प्रायः कई सौ फिट लम्बे होते हैं। इनमें से सूचनाओंके चलनेकी गति लगभग ३ फिट प्रति १/१००० सिकंड होती है। जब कभी एक अंगको कुछ ज्ञात होता है तो इसकी सूचना कई स्नायुओं द्वारा एक साथ मस्तिष्क तक पहुँचती है। हर स्नायु-तन्तुमें सूचना की गति कुछ भिन्न होती है। इसलिये सब सूचनायें एक साथ ही मस्तिष्क में नहीं पहुँचतीं पर उनका अंतर इतना कम होता है कि साधारणतः यही मालूम होता है कि वे एक साथ ही आरही हैं।

जब यह सूचना स्नायु-तन्तुओंमें चलती है तो उसी समय उनमें एक विद्युत-प्रवाह भी चलने लगता है। जब स्नायु शान्त अवस्थामें रहता है तब उसके ऊपरी भागमें धन विद्युत (Positive electricity) और बीचके भागमें ऋण विद्युत (Negative elctricity) रहती है। बाहर और भीतरके केन्द्रके बीच करीब १/२० वोल्टका विभवान्तर (Potential difference) रहता है।

जब शरीरके किसी भागको बाहरसे कोई सूचना मिलती है तो उस जगह स्नायु तन्तु पर ऋण-विद्युत हो जाता है। यह ऊपरकी तरफ चढ़ने लगता है। यदि 'क' पर स्नायु ने कोई सूचना ग्रहणकी है तो कुछ समयमें यह सूचना स्नायु-तन्तुमें 'स' तक पहुँचेगी (चित्र १ देखिए) उस समय 'स' पर ऋण-विद्युत हो जायेगा। यदि

इस समय कोई धारा-मापक-यन्त्र (Galvanometer) 'ब' स्थान और 'स' स्थान से लगा दिया जाय तो 'स' से 'ब' की ओर प्रवाह जाता दिखलाई देगा। कुछ समयमें यह चेतना 'ग' पर पहुँचेगी। यदि पहिलेका गैल्वनो मीटर अभी तक लगा है तो उसमें 'स' से 'ग' की ओर प्रवाह बहेगा। इस प्रवाहको क्रिया-प्रवाह (Action Current) कहते हैं। यह चित्र २ में दिखाया गया है।
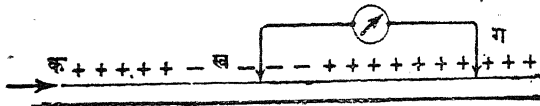
चित्र १
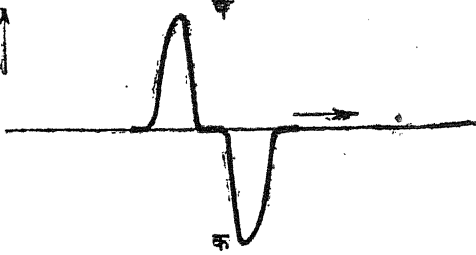
चित्र २—क्रिया-प्रवाह

इससे यह साफ प्रकट होता है कि 'क' और 'ख' के बीचका उतना ही समयका अंतर होगा जितना कि चेतना को 'स' से 'ग' तक जानेमें लगा होगा। इस तरह इस चालकी गति नापी जा सकती है। चेतनाको स्नायुके कोई जगहसे निकलनेमें एक सेकंडका कई हजारवाँ भाग लगता है।

सुन्दर सुन्दर दृश्योंका जब हम आनन्द लेते हैं तो हमारे मनमें यह कभी भी नहीं आता कि उसी दृश्यको देखनेके लिये हमारे शरीरमें एक बहुत ही विशाल यंत्र काम कर रहा है। वह दृश्य आँखके ताल द्वारा केन्द्रित (focus) होकर आँखकी रेटिना पर पड़ता है। यह रेटिनाके शलाकाकार (rods) और शंकुलाकार (cones) यंत्र पर पड़कर उसमें विद्युत प्रवाह पैदा करता है। यह प्रवाह स्नायु-तन्तुओंके सहारे हमारे मस्तिष्कमें पहुँचता है। यह प्रवाह परावर्त्तक प्रवाह (Alternate current) का बना होता है।

दृश्यको आँखके सामने आने और उसका ज्ञान होने में काफी समयका अंतर रहता है। पहिले उन प्रवाहों की, जो उस दृश्य द्वारा हमारे स्नायु तन्तुओंमें पैदा हो गये हैं, आवृत्ति (Frequency) कम रहती है, फिर धीरे-धीरे बढ़कर एक उच्च शिखर पर पहुँचती है और फिर कम होने लगती है। जैसे-जैसे यह आवृत्ति कम होती जाती है वैसे-वैसे ही हमें उस दृश्यकी चमक भी कम मालूम होने लगती है। इसका यदि प्रत्यक्ष प्रयोग करना हो तो यदि एक बहुत कम दिखता हुआ पदार्थ जो अँधेरेमें रक्खा हो यदि एक आँखसे देखा जाय और आँखकी स्थिति बदली न जाय तो लगभग २० सेकंडमें वह अदृश्य हो जायेगा। साधारण आँख घूम-घूम कर अपनी स्थिति बदलती रहती है, इसीसे हमें सब चीज़ें एक ही सी चमककी हरदम प्रतीत होती हैं।

इसी प्रकारका विद्युत प्रवाह हमारी पेशी-तन्तुओंमें भी होता है। जब हम कोई चीज उठाते हैं तो उन पेशियोंके हमारे हर पेशी-तन्तु जो उस काममें काम

(अ)

(ब)
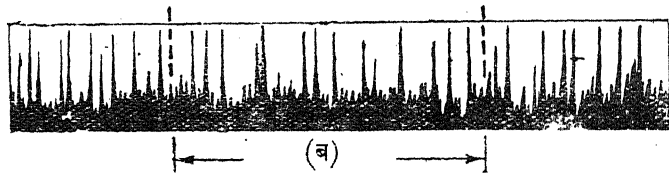
चित्र ३

(अ) बोझ कम होने पर विद्युत प्रवाहकी आवृत्ति कम रहती है।
(ब) बोझ अधिक होने पर विद्युत प्रवाहकी आवृत्ति ज्यादा हो जाती है।

करते हैं फैलने और सुकड़ने लगते हैं। इसकी आवृत्ति जितना बोझ अधिक होता है उतनी ही अधिक होती है, जैसा चित्र ३ में दिखाया गया है।

यद्यपि पेशी-तन्तु वजन उठाने पर फैलने और सुकड़ने लगते हैं तो भी हमको इसका ज्ञान नहीं होता। कारण यह है कि सब पेशी-तन्तु अलग-अलग समय पर फैलते और सुकड़ते रहते हैं और सामूहिक रूपसे कुछ भी ज्ञान नहीं होता। यदि वजन देर तक उठाये रक्खा जाय तो अवश्य यह प्रतीत होने लगेगा।

हृदयके पेशी-तन्तुओंमें भी यह क्रिया-प्रवाह होता है। हृदय एक ऐसा यन्त्र है जहाँसे खून फेफड़ेमें पम्प किया जाता है। वहाँ पर खूनका कार्बन डाइ आक्साइड हवामें मिल जाता है और हवाका आक्सीजन खूनमें मिल जाता है। यह आक्सीजन मिला हुआ लाल खून फिर हृदयमें आता है और वहाँसे पंप होकर सारे शरीरमें जाता है। हृदयके पेशी तन्तुओंमें यह विशेषता होती है कि वे सब अपने आप एक के बाद दूसरे बराबर समयके अंतरमें फैला और सुकड़ा करते हैं। इसके लिये उन्हें मस्तिष्क या सुषुम्ना नाड़ीसे आज्ञा मिलनेकी आवश्यकता नहीं। जब तन्तु सुकड़ते हैं तो उनमें ऋण-विद्युत हो जाता है। सब तन्तुओंका यह विद्युत-आवेश बिलकुल अनुशासनमें होनेके कारण प्रत्यक्ष देखा जा सकता है।

इसको देखनेके लिये एक मनुष्यका दायाँ हाथ और बायाँ पैर गरम नमकके पानीसे भरे बर्तनमें डाल देना चाहिये। और इस बर्तनोंको तारसे धारा-मापक यंत्रसे लगा देना चाहिये।

चित्र ४ अ में एक स्वस्थ मनुष्यके हृदयकी विद्युतका चढ़ाव-उतार दिखाया गया है।
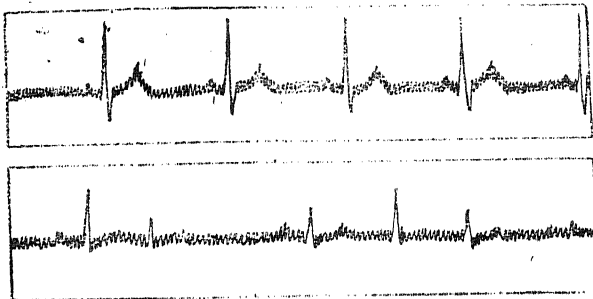
चित्र—४

'अ' में 'क' चढ़ाव आरिकिलके सुकड़नेको प्रगट करता है और ख' वेन्ट्रिकिल के सुकड़नेको। यह एक क्षणके कुछ भागके बाद होता है। 'ग' का चढ़ाव फिर पुरानी स्थिति पर पहुँचनेको प्रगट करता है। इसके बाद फिर बहुत देर तक हृदय आरामकी दशामें रहता है। इसमें वह अगली बार काम करनेकी शक्ति इकट्ठा करने में रहता है। चित्र ४ के (ब) भागमें एक रोगीके हृदय की दशा दिखाई गई है। इसको देखकर डाक्टर रोगी के हृदयके बारेमें विशेष ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

अभी तक हमने उसी विद्युतका हाल लिखा है जो हमारे ही शरीरमें है। अब इस बात पर भी विचार करना चाहिये कि जब बाहरसे हमारे शरीर पर विद्युत का प्रवाह डाला जाता है तो क्या परिणाम होता है।

स्थिर-विद्युतका शरीर पर कोई विशेष परिणाम नहीं होता। जब विद्युत-प्रवाह शरीरमें जाता है तो यह अवश्य पेशी-तन्तुओंको सुकोड़ता है। यदि यह बराबर एक ही शक्तिसे एक ही दिशामें बहे तो यह प्रभाव क्षणिक ही होगा। जब यह प्रभाव बन्द होगा तो फिर एक बार पेशी-तन्तु सुकड़ेंगे और झटका लगेगा।

यदि प्रवाह परावर्त्तक-प्रवाह है तो इसका हर एक उतार-चढ़ाव शरीरकी पेशी-तन्तुओंको फैलाये और सुकोड़ेगा। इसीलिये परावर्त्तक-प्रवाहका आघात ज्यादा भीषण होता है।

यह बताया जा चुका है कि स्नायु-तन्तुओंसे तभी कोई आवेश जा सकता है जब उसकी आवृत्ति कुछ संख्यासे नीचे हो। यदि उससे अधिक होगी तो स्नायु-तन्तुओंके द्वारा वह सूचना नहीं जा सकती। इसलिये यह बात प्रकट है कि यदि परावर्त्तक-प्रवाहकी आवृत्ति कुछ बढ़ा दी जाय तो उसका असर कुछ न मालूम पड़ेगा। यह देखा गया है कि यदि आवृत्ति कुछ हजारोंमें है तो आघात बहुत कम मालूम पड़ता है। यदि कुछ सौ हजारोंमें है तो उसका शरीरको पता भी नहीं लगता। अर्थात आप एक बहुत ज्यादा आवृत्तिके परावर्त्तक प्रवाहके स्विचको आसानीसे पकड़ सकते हैं पर यदि उसकी आवृत्ति कम हुई तो यह काम जीवनका अंत भी कर सकता है।

क्या अजगर मनुष्यको खा सकता है ?

[लेखक—श्री रामेशबेदी आयुर्वेदालङ्कार, हिमालय हर्बल इंस्टिट्यूट, बादामी बाग़, लाहौर ।]

यूनानका चिकित्सक मेगस्थनीज़ ईसासे तीन सौ साल पहले जब भारतकी यात्रा करने आया था तो उसने देखा था कि यहाँके अजगर हिरण, बकरी और बैल तकको निगल जाते हैं[1] । संस्कृत साहित्यके विद्यार्थी जानते हैं कि अगस्त्य मुनिके आश्रमको जाते हुये रामने मुँह बाये हुए अजगरोंके मुखमें हाथियोंको घुसते देखा था[2] । वैदिक ऋषियों ने बकरे (अज) को निगलते (गर-निगलना) देखकर ही इस साँपका नाम अजगर रक्खा था । उनकी पालतू भेड़ोंको भी यह अक्सर शिकार बना लेता था[3] ।

बचपनमें आपने सुना था कि अफ्रीकाके घने जंगलोंमें और हिमालयकी कन्दराओंमें बड़े-बड़े भीमकाय अजगर सालों सोए पड़े रहते हैं और उन पर घास उग आती है । जब उनकी नींद खुलती है तो पास या दूर चरने वाले किसी जानवरको वे अपनी साँससे ही खींच लेते हैं और देखते ही देखते शिकार उस भयङ्कर दानवके पेट में समा जाता है । आपने यह भी सुना था कि एक बार गौएँ चराते हुए एक चरवाहेको जब अजगरने साँससे खींचा तो वह हाथमें गौका रस्सा पकड़े हुए था । चरवाहा मुँहके अन्दर जाही रहा था कि गौने भागनेकी कोशिश की । चरवाहेने कस कर रस्सी पकड़ रखी थी । फिर भी उस दैत्यने अभागे चरवाहेको अन्दर पहुँचा ही दिया । कभी-कभीतो ऐसे हिम्मत वाले चरवाहे भी निकले जिन्होंने अन्दर जाकर अपनी जेबकी छुरीसे साँपका पेट चीर डाला और एक बार फिर खुली हवामें साँस लेनेके लिए बाहर आ गये । परन्तु विषसे उनका शरीर पीला पड़ चुका था इसलिए थोड़ी ही देरमें वे मर गये ।

पिछले दिनों, अखबारोंमें काश्मीरके जंगलोंका एक समाचार छपा था । अन्धेरी गुफ़ामें एक आदमीको कोई चीज़ घसीटे ले जा रही थी । जो लोग खोज करनेके लिए गये उन्होंने रिपोर्टदी कि गुफ़ामें रहने वाला अजगर उस आदमीको खा गया ।

बातचीतमें यदि साँपोंका विषय आ जाय तो इस प्रसंगमें कही गई हर बात पर लोग विश्वास कर लेते हैं, क्योंकि इस विषयका उनको साधारण ज्ञान तक नहीं होता । ऊपर कही गई अत्यन्त विस्मयजनक घटनाएँ क्या सचहो सकती हैं और क्या अजगर मनुष्यों और ऐसे-ऐसे बड़े जीवोंको खा सकता है ? इन प्रश्नोंका उत्तर जाननेसे पहले यह समझ लीजिये कि

अजगर कैसे खाता है

अजगरके दाँत सीखकी तरह नोकीले और पीछेकी ओर मुड़े होते हैं । हमारी तरह या अन्य जानवरोंकी तरह चपटे नहीं होते । ये शिकारको पकड़नेके लिए बने होते हैं, चबानेके लिए नहीं । पकड़ा गया शिकार छूटनेकी जितनी कोशिश करता है ये उसमें और अधिक गड़ते जाते हैं । साँप स्वयं भी उसे सुगमतासे बाहर नहीं निकाल सकता । दाँतोंकी नोकीली रचनाके कारण वह शिकार को चबा नहीं सकता और न निगलनेकी सुविधाके लिये वह उसके टुकड़े करके उसे छोटा कर सकता है । लाचारी में उसे पूराका पूरा जीव निगलना पड़ता है ।

शिकारको पेटमें पहुँचानेकी प्रक्रिया कौशलपूर्ण तथा परिश्रम साध्य है । इसमें शरीरको बहुत प्रयत्नशील होना पड़ता है । गला और मुख अविश्वसनीय चौड़ाई तक फैल जाते हैं । जिन हिरण, गीदड़ और बन्दरोंको मैंने अजगर

---

[1] देखें : ऐन्शिएण्ट इण्डिया; जे० डब्ल्यू मेक्क्रिण्डल, १९२६ ।

[2] तस्मिन् महापथधिया वदनं विगाह्य ।
निर्गन्तुमक्षमतया जठरे लुठद्भिः ॥
वन्यैर्गजैरजगरः पिशिताशनेभ्यो ।
वातापिदानवदशामुपदेशयन्ति ॥
चम्पू रामायण, अरण्यकाण्ड, १०।

[3] अजगर इवाविका ! ।
अथर्व०, का० २०, सू० १२९; १७ ।

द्वारा निगलते देखा है या निगले हुओंको अजगरका पेट चीर कर निकाला है वे मोटाईमें साँपकी मोटाईसे तीन चार गुने मोटे थे।

अजगरमें विष तो होता नहीं इसलिये वह शिकार को अपनी कुण्डलियोंमें भींचकर मारता है। कुण्डलियों में जकड़ जानेके बाद शिकार पहले प्रायः मुखके अगले सिरेसे पकड़ा जाता है। ऊपरके जबड़ेमें से एक हड्डी और उसके सामनेकी निचले जबड़ेकी हड्डी आगे आ जाती है। मुख फैला रहता है। मुड़े हुये दाँतोंको शिकारमें चुभाती हुई ये हड्डियां बन्द होती हैं और साथ ही सिरका यह पार्श्व प्राणीको मुखके जरा अन्दर खींचता हुआ पीछेकी ओर जाता है। सिरके दूसरे पार्श्वसे यह प्रक्रिया दोहराई जाती है। दोनों पार्श्व बारी-बारीसे कार्य करते हैं और शिकारको मुखके अन्दर खींचकर गलेमें जबर्दस्ती प्रविष्ट करा देते हैं। गला बहुत लचकीला होता है। फैलकर जीवका स्वागत करता है। ज्योंही शिकार गलेमें पहुँचता है, गरदनमें लहरोंकी सी बाह्यगति आरम्भ होती है, जैसे कि अटका हुआ प्राणी चूसा जा रहा हो। पूर्ण रूपसे फैले हुये जबड़ोंको इससे बहुत सहायता मिलती है। निचले जबड़ेकी हड्डियोंका पुली सदृश लटकता हुआ बन्धन निगरणकी इस अवस्था में अपनी साधारण स्थितिसे बहुत अधिक तन जाता है और यह सम्भव है कि निचला जबड़ा शिकारको कसकर पकड़ने और बाहर जानेसे रोके रखनेका काम करता हो और ऊपरका जबड़ा शिकारको अन्दर धकेलता हो जिसमें गरदनकी गतियाँ भी सहायता देती रहती हैं। जोर लगाने के कारण सांपकी आँखें बाहर निकल आती हैं। गरदन की खाल इतनी तन जाती है कि छिलकोंकी पंक्तियाँ बहुत दूर तक अलग-अलग हो जाती हैं। शिरायें फूल जाती हैं।

थोड़ी-थोड़ी देर बाद विश्राम करनेके अनन्तर सांप फिर जोर लगाता है। गलेमें प्राणीके अटका रहनेसे श्वासकी नलियोंमें सांसका आवागमन रुक जाता है। एक या दो लम्बी सांस लेनेके बाद फिर वही महान् वीरता का कार्य आरम्भ हो जाता है। अन्तमें गलेकी तरंगायित या सर्पण गतियाँ भारी शिकारको पेटमें पहुँचा देती हैं। सिर शीघ्र ही साधारण हालतमें आ जाता है। केवल खालकी कुछ ढीली तहें ही कुछ देर तक बनी रहती हैं जो अभी अभी की गई चकितकर देने वाली बहादुरीको सूचित करती हैं। एक या दो बार मुँहको पूरा खोलनेके बाद इस प्रदर्शनका कोई चिन्ह-शरीरके फूले हुये भागके अतिरिक्त शेष नहीं रह जाता। तरंगायित गतियों और अन्दरकी मांसपेशियोंके एक साथ इकट्ठा होकर अन्दर खींचनेकी गतियोंके एक साथ काम करनेसे शिकार धीरे-धीरे आमाशयमें धकेला सा जाता है।

निगलनेकी यह प्रक्रिया धीरे-धीरे होती है। पन्द्रह फुटके अजगरको पूरा हिरण निगलनेमें एक बार सोलह घण्टे लग गये थे। पेनके सावरसई जंगलकी एक घटना है। रातको गाँव वालोंने लगातार आती हुई भीतेकी आवाज सुनी। शब्द एक ही स्थानसे आता हुआ सा मालूम पड़ा। सुबह कुछ लोग उधर देखनेके लिए गये तो एक चीतेको अजगरके आवेसनमें परिवद्ध देखकर दंग रह गये। चीतेको पकड़नेके बाद अजगरने उसे पीछेसे निगलना आरम्भ किया था और गाँव वालोंके पहुँचने तक वह आधेसे अधिक निगल चुका था। मुक्त होनेकी जी तोड़ कोशिशोंमें चीते ने सामने ही जमीन पर अपने पंजोंको दो फुट तक गहरा गाड़ लिया था, पर उसके ये सब प्रयत्न व्यर्थ गये। उसे निगलनेकी प्रक्रिया चौबीस घण्टे तक जारी रही और अन्तमें सारा चीता अन्दर चला गया। बड़ा शिकार खानेमें इसको जो श्रम करना पड़ता है वह वस्तुतः इसकी शक्तिके बाहरकी बात है। इसमें गरदनके तन्तु तनकर टूट तक जाते हैं। इसीसे बड़ा शिकार खानेके बाद जंगलोंमें मैंने इन्हें प्रायः अर्द्धमूर्च्छित पाया है। ये इतने लाचार होते हैं कि जान बचानेके लिए भाग भी नहीं सकते, आदमी पर हमला करना तो दूर रहा। इस समय इन्हें पकड़ना या मारना कठिन नहीं होता। एक बड़े छिंकोरेको निगलनेके बाद शिवालिक अजगर को हमने खैरके घने कुञ्जमें अर्द्धमूर्च्छित पाया। हम दस-पन्द्रह आदमी कुछ दूरी हर खड़े उसे देखते रहे। उसने हमारे ऊपर हमला नहीं किया और न भागनेकी कोशिशकी। पहली गोली लगने पर वह ज़ोरसे झपटा, और दूसरी गोली ने उसका काम तमाम कर दिया। पेट

चीरकर छिकोरेको निकालनेके बाद मरे हुये अजगरका भार डेढ़ मन था और लम्बाई सत्रह फुट। यह अजगर अब गुरुकुल कांगरीके संग्रहालयमें रखा हुआ है। सिंगापुरमें सूअरोंकी फार्मसे एक दिन सूअरके दो बच्चे गुम हो गये। बहुत खोज करने पर कुछ दूरी पर एक अजगर मूर्च्छामें पाया गया। मार कर उसका पेट चीरा गया तो मालूम हुआ कि उन बच्चोंका चोर वही था। बच्चों का वज़न सवा मनके करीब था।

कितना बड़ा अजगर मनुष्यको मार सकता है?

दस-बारह फुटी अजगर मनुष्यकी बाँहों और गरदनके चारों ओर अपनी कुण्डलियोंको कस कर लपेट ले तो यह खतरनाक हो सकता है। आदमी अकेला है तो यह और भी खतरेकी बात है। क्योंकि जब यह ज़ोरसे कुण्डलियों को मींच लेता है तब इसको छुड़ानेका तरीका यही है कि दूसरा आदमी पूछको खींच कर खोलना आरम्भ कर दे। नहीं तो दस-बरह फुटका अजगर कुछ ही देरमें भीच कर उसके साँसको बन्द कर देगा।

यदि अजगर या किसी दूसरे बड़े साँपने कुण्डलियोंमें जकड़ लिया है तो मुक्त करानेके लिये साँपके बीचमें से शिकारको खींचनेकी कोशिश नहीं करनी चाहिए। सबसे पहले उसकी गरदन दबोचनी चाहिये जिससे वह काट न सके, फिर पूछ का सिरा पकड़ कर कुण्डलोंको खोलने लगना चाहिये। पीठके ऊपर, जहाँ रीढ़ पर पतली खाल का आवरण ही होता है, ज़ोरकी चोट करनेसे वह तुरन्त छोड़ देगा। तब इसे पकड़ा या मारा जा सकता है। सर्प-शालामें तेज़-भूखसे सताया अजगर हमला करके आदमी को मार सकता है। इसलिए दस फीटसे ऊपरकी लम्बाईके अजगरको भोजन खिलाते समय आदमीको अकेले कभी नहीं जाना चाहिए।

अठारह या बीस फुट लम्बा अजगर मारनेको उतारू हो जाय तो उसके लिए मनुष्यको मारना मामूली बात है। गरम देशोंमें जंगली अजगरों द्वारा बच्चोंको निगल जानेके विश्वसनीय उल्लेख मिल जाते हैं, लेकिन बड़े आदमियोंको निगलनेके नहीं। जवान आदमीके कन्धे इतने चौड़े होते हैं कि अजगरके मुँहके लिए इतना फैलना सम्भव नहीं दीखता। हाँ, यदि ऐसा प्रबन्ध कर लिया जाय कि कन्धे, पीठ और छातीकी हड्डियोंको कुचल कर चूरा कर लिया जाय और कन्धेकी चौड़ाई कम हो जाय तो दो ढाई मनकी साढ़े पाँच-छह फुट लम्बी लाशको वह निगल सकता है।

यह बात सच है कि अजगरमें इतनी अधिक शक्ति होती है कि शेर, गौ और मनुष्य भी इसके शिकार बन जाते हैं परन्तु स्पष्ट है कि इसका छोटा शरीर इन बड़े प्राणियोंको अपनेमें समा नहीं सकता। मेग-स्थनीज़ आदि ने बैलों और हाथियोंको निगलनेके जो विवरण दिये हैं वे निरी अतिशयोक्तियाँ हैं। शारीरिक दृष्टिसे सोचने पर यह सर्वथा असम्भव प्रतीत होता है। बड़े से बड़ा शिकार जो अजगर खा सकता है वह पूरी भेड़ समझा जा सकता है। इस सीमाको लाँघना इसके बससे बाहर है।

विज्ञान-परिषद्के ३२वें वर्षका वार्षिक विवरण

(अक्टूबर १६४४-सितम्बर १६४५)

विज्ञान-परिषद प्रयागका ३२वां वर्ष भी गत वर्षकी तरह सफलतापूर्वक समाप्त हुआ। इस वर्ष पुस्तकोंकी बिक्रीसे गत वर्षकी अपेक्षा १२०) के लगभग कम आय हुई और विज्ञानकी ग्राहक संख्या भी कुछ कम हुई। इसका मुख्य कारण यह जान पड़ता है कि कागज़के नियन्त्रणके कारण विज्ञानकी पृष्ठ संख्या कम हो गयी थी। नये सभ्यों और आजीवन सभ्योंकी संख्या भी कम बढ़ी।

कागज़ नियन्त्रणके कारण पुस्तक प्रकाशनका काम भी कमकर देना पड़ा। त्रिफलाका दूसरा परिवर्धित सस्करण गतवर्ष ही छप गया था। इस वर्ष फल-संरक्षण का दूसरा परिवर्धित संस्करण प्रकाशित हो गया है। 'रेडियो' का अभी आधा भाग छपानेको है जिसका प्रबन्ध लेखक महोदयके द्वारा ग्वालियरमें हो रहा है। सांपोंकी दुनिया भी इसी कारण पूरी नहीं हुई।

सरल विज्ञान सागर प्रथम भाग कुछ कठिनाइयोंके कारण अभी तक पूरा नहीं छप सका, चेष्टाकी जारही है कि दो महीनेमें वह प्रकाशित हो जाय। इस वर्ष हमें एक सज्जनसे बिना मांगे ५०) का दान मिला है इसलिये इसका मूल्य हमारी दृष्टिमें बहुत है। मैंने इनको लिखा कि आप अपने सबसे निकट रेलवे स्टेशनका नाम लिख भेजें तो परिषदकी प्रकाशित पुस्तकें सेवामें भेज दी जायँ परन्तु इसका कुछ उत्तर नहीं मिला। इससे जान पड़ता है कि आपका यह दान शुद्ध सात्विक दान है और परिषद्-को सहायतार्थ दिया गया है। आपका नाम पं० दुकालू-प्रसाद मिश्र है। आप मध्यप्रान्तके एक मालगुजार हैं। मैं यह रुपया स्थायी कोषमें विज्ञान-परिषद-भवन निधिमें रख देना उचित समझता हूँ।

इस वर्ष भी हमारे आजीवन सदस्य श्री बैंकटलाल ओझा ने परिषद्के काममें बीमार रहते हुये भी बराबर रुचि दिखलाई और आवश्यक सुझाव दिये जिसके लिये परिषद् सदा आभारी रहेगी।

सितम्बर १६४५ तक परिषद्के आजीवन सभ्योंकी संख्या ४१ और साधारण सभ्योंकी संख्या ११६ है। इस वर्ष नीचे लिखे सज्जन परिषद्के आजीवन सदस्य हुये—

१—श्री आर० एस० त्रिवेदी प्रोफेसर इंजीनियरिंग कालेज हिन्दू युनिवर्सिटी, काशी।

२—डा० ब्रजमोहन पी० एच-डी०, हिन्दू विश्व विद्यालय, काशी।

३—सभापति सायंस एसोसिएशन सेंट एंड्रूज कालेज गोरखपुर।

४—श्री हरिमोहनदास जी टंडन, रानीमंडी, इलाहाबाद।

नीचे लिखे सज्जन परिषदके सभ्य हुये—

(१) मंत्री श्रीकृष्ण पुस्तकालय, संभलपुर।
(२) हेडमास्टर एम० एच० स्कूल, वृन्दावन।
(३) श्री साधुशरण प्रसाद, सिवान।
(४) श्री सुरेशचन्द्र माथुर, शिकोहाबाद।
(५) श्री विजन चक्रवर्ती इलाहाबाद।
(६) श्री सुशीलकुमार श्रीवास्तव, इलाहाबाद।
(७) श्री रघुबरसिंह जी जिला मेरठ।
(८) श्री गोवर्धन जी पुरोहित, सवाई माधोपुर।
(६) श्री चन्द्रदेव सिंह, मुजफ्फरपुर।
(१०) मंत्री, हिन्दी प्रकाशन मंडल, हिन्दू विश्व विद्यालय, काशी।

वर्ष भरके आयव्ययका लेखा इस प्रकार है—

आय

आजीवन सभ्योंसे	४०५।–)
साधारण सभ्योंसे	३०६।)
पुस्तकोंकी बिक्रीसे	२५४४॥≡)
विज्ञानके ग्राहकोंसे	६६५॥।॥
ब्याजसे	२३५॥=)

*यह देरसे प्रकाशित हुई नहीं तो और बिकती।

स्थिर कोषसे	८४००)
दान	५०)
संयुक्त प्रान्तकी सरकारसे गतवर्षकी बाकी	६००)
” ” वर्तमान वर्षकी सहायता	६००)
गतवर्षकी रोकड़ बाकी	१०७६॥=)
	१४६२०॥।)॥।

व्यय

क्लार्क	२९५॥≡)॥
चपरासी	२१४)
दफ्तर और गोदामका किराया	२४०)
ब्लाक बनवानेमें	५८४।≡)॥।
विज्ञानकी छपाई	६४२॥।≡)
पुस्तक छपाई	४७४॥।)
डाकखर्च — विज्ञान १३१।)॥, पुस्तकोंमें १३६॥)॥, दफ्तर ३८॥≡)॥, सम्पादकके लिये १॥)	३०८=)
तांगा, इक्का, आदि	२९)
स्टेशनरी पैकिंग, आल्मारी	१६६॥-)
कागज़	२१॥।-)
बिक्रीकी पुस्तकें खरीदीं	२९९-)।
रेलभाड़ा	१२॥-)
जिल्द बंधाई	१९७॥≡)
साइकिलकी मरम्मत	२२।≡)।
इंसीडेंटल चार्ज	४-)
पेशगी लौटाया	४॥-)
मुकदमेमें खर्च	७९॥-)॥
प्रूफ दिखाई	१२।)
फुटकर खर्च	२७।)
रोकड़ बाकी	११२८३॥।≡)॥।
	१४६२०॥।)॥।

रोकड़ बाकीका ब्यौरा

७२००) का जुबिली फंड	६६३७॥)
पंजाब नेशनल बैंकके स्थिर कोषमें	२८००)
” ” सेविंग बैंकमें	९२९।≡)॥।
ट्रेडिंग ऐंड बैंकिंग कारपोरेशनमें	५७०।=)॥
हाथमें	३४१॥-)॥
टिकट बचा	५)
	११२८३॥।≡)॥।

विज्ञानके सम्बन्धमें आय व्ययका ब्यौरा इस प्रकार है—

आय

ग्राहकोंसे	६९३)॥।
सभ्योंसे (५४)	१३५)
सं० प्रा० गवर्नमेंटसे १९४४-४५ का	६००)
१९४५-४६ का	६००)
	२०२८)॥।

व्यय

कागज (३ फार्म ५०० कापियाँ × १२१८ रीम	२४८)
प्रूफ दिखाई	१२।)
ब्लाक बनवानेमें	२२०)
छपाई	६४२॥।≡)
डाक खर्च	१३२॥।)॥
क्लार्कका वेतन (कुलकी तिहाई)	९८॥-)
चपरासीका वेतन (कुलकी तिहाई)	७१।-)
गतवर्षके खर्च मध्ये	६००)
फुटकर खर्च	२≡)।
	२०२८)॥।

आगामी वर्षके लिये अनुमान पत्र—

आय

सं० प्रा० की सरकारसे	६००)
ग्राहकोंसे	९००)
सभ्योंसे	४००)
पुस्तकोंकी बिक्रीसे	२०००)
अन्य पुस्तकों पर कमीशन	५०)
गतवर्षकी रोकड़ बाकी	१३३९=)॥।
	५२८९=)॥।

व्यय

विज्ञानके लिये प्रतिमास ३२ पृष्ठकी ५५० प्रतियाँ २। रीम कागज	२७)
¼ रीम कवरका कागज	८)
४।। फर्मोंकी छपाई और बंधाई	९०।।)
ब्लाक	३०)
प्रूफ दिखाई	८)
सम्पादनके लिये पुस्तकें, पत्रिकायें आदि	१०)
सहायक सम्पादक	२०)
डाक-व्यय वी० पी० आदि	१२)
इक्केका किराया	१)
स्टेशनरी	१)
क्लार्क (एक तिहाई वेतन)	९।-)।
चपरासी ⅓ वेतन	६।=)।।।
मासिक खर्च	२२३।।) × १२
वार्षिक	२६८२)
अन्य मासिक खर्च—	
पुस्तकोंके लिए ब्लाक	३०)
स्टेशनरी पैकिंग आदि	४)
डाक व्यय	२२)
इक्का ठेला आदि	३)
रेलभाड़ा आदि	१।।)
साइकिलकी मरम्मत आदि	२।।)
इंसीडेंटल चार्ज	१)
दफ्तर और गोदामका किराया	१४)
क्लार्कका वेतन दो तिहाई	१८।।=)।।।
चपरासीका ,,	१३।-)
	१११) × १२
वार्षिक	१३३२)।
अन्य वार्षिक खर्च—	
जिल्द बंधाई	७००)
नयी पुस्तकोंकी छपाई	५७५=)।।।
	५२८९=)।।

यह बतलाना अनुचित न होगा कि वर्ष भरमें परिषद की कौन-कौन सी पुस्तकें कितनी बिकीं। इससे यह भी पता चलेगा कि जनतामें किस विषयकी पुस्तकोंकी अधिक माँग है। बिकी हुई पुस्तकोंकी संख्याके अनुसार यह सूची दी जाती है—

उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर	२४०
घरेलू डाक्टर	८८
व्यंग चित्रण	८३
फल संरक्षण*	६९
जिल्दसाजी	६४
मधुमक्खी पालन	६२
लकड़ी पर पालिश	६२
कलम पेबंद	६१
मिट्टीका बर्तन	५४
सूर्य सिद्धान्त (विज्ञान भाष्य)	५३
भारतीय चीनी मिट्टियाँ	३८
उद्योग व्यवसायांक	३६
चुम्बक	३५
मनोरंजक रसायन	३२
तैरना	२६
अंजीर	२४
वर्षा और वनस्पति	२४
सुवर्णकारी	१७
केदार बद्री यात्रा	१९
गुरुदेवके साथ यात्रा	१९
ताप	१९
वायु मण्डल	१८
विज्ञानप्रवेशिका	१५
त्रिफला	१४
रसायन इतिहास	१५
रजतजयंती अंक	११
बीज ज्यामिति	७
वैज्ञानिक परिमाण	३

इस समय कई पुस्तकें समाप्त हो गयी है और कई बरस डेढ़ वर्षमें समाप्त हो जायँगी। इसलिये उनका पुनः छपवाना आवश्यक है। घरेलू डाक्टर वर्ष भरमें ही समाप्त हो गया। सूर्य-सिद्धान्तका संशोधित संस्करण भी प्रकाशित करनेकी आवश्यकता है।

अन्तमें मैं उन मित्रोंको धन्यवाद देना अपना कर्तव्य समझता हूँ जिन्होंने अपने पूर्ण सहयोग द्वारा परिषदकी सेवा की। विज्ञानका सम्पादक डा० सन्तप्रसाद टंडन जी ने बड़े परिश्रमसे किया। डाक्टर गोरखप्रसादजी ने अस्वस्थ रहते हुये भी परिषद्के काममें सहायता की। डाक्टर रामदास तिवारी तथा डा० सत्यप्रकाशजी ने बड़े परिश्रम से काम किया इस लिये परिषद इन सज्जनोंका ऋणी है। परिषदके सभापति डा० श्रीरंजन और उपसभापति प्रो० सालगराम भार्गव जी ने हमारी बहुत सहायता की इसलिए हम इन सज्जनोंको धन्यवाद देते हैं।

महावीरप्रसाद श्रीवास्तव
प्रधान मंत्री

३२वें वार्षिक अधिवेशनका कार्य विवरण

विज्ञान परिषद्‌का ३२वां वार्षिक अधिवेशन सौर१६ मार्गशीर्ष संवत् २००२ विक्रमीय, ता० ५ दिसम्बर १९४५ ई०, बुधवारको तीन बजे शामको म्यूर सेंन्ट्रल कालेजके भौतिक विज्ञानके व्याख्यान-भवनमें हुआ। डाक्टर श्री रंजनके प्रस्ताव और मेरे अनुमोदनसे कर्नल हैदर खां ने सभापतिका आसन ग्रहण किया था। व्याखान भवन परिषद के सभ्यों, विश्वविद्यालयके अध्यापकों और विद्यार्थियोंसे भरा हुआ था। लखनऊ विश्वविद्यालयके वनस्पति विज्ञान विभागके प्रधान, डाक्टर बीरबल साहनी एफ० आर० एस० ने लगभग १ घंटे तक "शिलाजात और उसके गूढ़ार्थ" (Fossils and their significance) पर बड़ा ही मनोहर और गवेषणापूर्ण भाषण हिन्दी भाषामें दिया। आपने श्यामपट पर चित्र खींच खींच कर दिखलाया कि शिलाजातोंसे भूगर्भके विभिन्न प्रस्तरोंकी प्राचीनता कैसे जानी जा सकती है। व्याख्यानके बाद प्रो० सालगराम भार्गवने डाक्टर साहनी और कर्नल हैदरखां को धन्यवाद दिया।

इसके पश्चात् परिषद्‌के सभ्योंकी बैठक हुई।

डाक्टर श्रीरंजनके आवश्यक कामसे चले जानेके कारण प्रो० सालगराम भार्गवने सभापतिका आसन ग्रहण किया था।

१—गत वार्षिक अधिवेशनका कार्य विवरण स्वीकृत हुआ।

२—३२वें वर्षका वार्षिक विवरण, आय व्ययका लेखा और आगामी वर्षका अनुमानपत्र पढ़े गए और स्वीकृत हुए।

३—निश्चय हुआ कि अंतरंग सभा द्वारा प्रस्तावित निम्नलिखित सज्जन १९४५-४६ के लिये पदाधिकारी चुने जायँ—

सभापति डा० श्री रंजन

उपसभापति—(१) प्रो० सालगराम भार्गव

(२) डा० धीरेन्द्र वर्मा

प्रधानमंत्री—श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव

मंत्री—(१) डा० रामशरणदास

" —(२) डा० हीरालाल दुबे

कोषाध्यक्ष—डा० रामदास तिवारी

प्रधान सम्पादक—डा० सन्तप्रसाद टंडन

आय व्यय परीक्षक—डा० सत्यप्रकाश

स्थानीय अंतरंगी (१) प्रो० ए० सी० बनर्जी

(२) डा० बी० एन० प्रसाद

(३) डा० गोरखप्रसाद

(४) श्री रामचरण मेहरोत्रा

बाहरी अंतरंगी—श्री बेंकटलाल ओझा (हैदराबाद दक्षिण)

—श्री हीरा लाल खन्ना (कानपुर)

—श्री पुरुषोत्तमदास स्वामी (डूंगरपुर)

—श्री छोटू भाई सुथरा (आणद)

—डा० दौलतसिंह कोठारी (दिल्ली)

सभापति को धन्यवाद देनेके बाद सभा विसर्जित हुई।

प्रधानमंत्री

समालोचना

सोंठ—लेखक और सम्पादक श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालङ्कार, प्रकाशक भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, बनारस। पृष्ठोंका आकार ७"×५", पृष्ठ संख्या ५६, मूल्य ।।)

यह पुस्तिका हमारे पाठकोंके सुपरिचित लेखक श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालङ्कारकी लिखी हुई भारतीय द्रव्यगुण ग्रन्थमालाकी तीसरी पुस्तक है जिसकी प्रथम दो पुस्तकें 'त्रिफला' और 'अंजीर' प्रयागकी विज्ञानपरिषद्से प्रकाशित हुई हैं। सोंठ एक प्रसिद्ध औषधि है जिसका उपयोग हमारे घरोंमें बहुत होता है। अदरकके रूपमें तो यह प्रायः प्रतिदिन खायी जाती है। इस पुस्तिकामें इसी औषधिका वानस्पतिक वर्णन, इतिहास उत्पत्तिस्थान, क़िस्में, खेती करनेकी रीतियाँ, व्यापार तथा व्यापारिक महत्व, रासायनिक संघटन, मात्रा, मिलावट, गुण, योग और चिकित्सा संबंधी उपयोग दिये गये हैं। अपने कथनके समर्थनमें विद्वान् लेखकने प्रत्येक पृष्ठ पर आयुर्वेदके आचार्योंके संस्कृत उद्धरण प्रचुर मात्रामें दिये हैं जिनसे वैद्यों को विशेष लाभ पहुँच सकता है।

इस पुस्तकमें कुछ शब्द ऐसे प्रयुक्त हुए हैं जो हिन्दी भाषाभाषियोंमें कम प्रचलित हैं। पृष्ठ २७ पर 'द्रव-छटांक' किस मात्राके लिए उपयुक्त हुआ है समझमें नहीं आता। पृष्ठ ३३ पर 'बिल की गिरी शायद 'बिल्व' या बेलकी गिरीके लिए प्रयुक्त हुआ है। 'कोसा' शब्द कई स्थानों पर आया है, "जैसे अदरकके रसमें सेंधा नमक डालकर **कोसा** कर मुख में रखा जाता है" (पृष्ठ ३८, "चटनी बनाकर **कोसे** पानीके साथ देते हैं" (पृष्ठ ४०), "अदरक का **कोसा** रस कानमें डालते हैं" (पृष्ठ ५८), परन्तु इसका क्या अर्थ है यह समझमें नहीं आया। भाषा कहीं-कहीं शिथिल है। पृष्ठ ५३ का 'स्पञ्जी' शब्द जो शायद अंग्रेज़ीका नागरी रूपान्तर है, केवल हिन्दी भाषा जाननेवालोंकी समझमें नहीं आ सकेगा।

रेडियो—लेखक श्री रा० र० खाडिलकर बी० एस-सी०, प्रकाशक—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी; आकार ७"×५½"; पृष्ठ संख्या ८+४६, मूल्य ।।।)

यह पुस्तक श्री महेंदुलाल गर्ग विज्ञान-ग्रंथावलीकी दूसरी पुस्तक है जो स्वयं श्री महेंदुलाल गर्गकी पुण्य स्मृतिमें प्रकाशित की गई है। इनके सुयोग्य पुत्र कानपुर कृषि महाविद्यालयके वर्तमान आचार्य श्री प्यारेलाल गर्गने इस कार्यके लिये सभा को १०००) प्रदान किया है जिससे हिन्दीमें विज्ञानविषयक उत्तमोत्तम ग्रंथ प्रकाशित किये जायंगे और इनकी बिक्रीसे जो आय होगी वह भी ग्रंथावली की अभिवृद्धि और संपुष्टिमें ही व्यय की जायगी।

रेडियोका प्रचार आजकल बढ़ता जा रहा है परंतु साधारण जनको यह नहीं मालूम है कि रेडियो द्वारा एक जगह की बात दूसरी जगह कैसे पहुँच जाती है। इस पुस्तकके पढ़नेसे रेडियो संबंधी बहुत सी बातें जानी जा सकती हैं। विद्वान् लेखकने सरल भाषामें रेडियो यंत्रके विविध अंगोंका विवेचन किया है जिससे स्पष्ट हो जाता है कि इस यंत्रसे किस प्रकार काम लिया जाता है और यदि कोई गड़बड़ हो तो कैसे सुधारा जा सकता है। जिसके पास रेडियोका यंत्र हो उसके लिए यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी होगी। जो लोग जानना चाहते हों कि रेडियो क्या है और इससे खबरें किस प्रकार एक जगहसे दूसरी जगह पहुँचती है उनको भी यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए।

सम्पादकीय

औद्योगिक रसायनकी शिक्षा

देशकी राजनीतिक जाग्रतिके साथ साथ लोगोंका ध्यान शिक्षा सम्बन्धी प्रश्नकी ओर भी जाने लगा है। हमारी शिक्षाका क्रम किस प्रकारका हो जिससे हमारे देश व समाजकी उन्नति हो सके इस पर आजकल हमारे राजनीतिज्ञ तथा विद्वान् दोनों ही गम्भीरता-पूर्वक विचार कर रहे हैं। हमारे देशका प्रत्येक क्षेत्रमें अन्य देशोंसे इतना पिछड़ा होनेका मुख्य कारण हमारी शिक्षाका क्रम उचित न होना ही है। इसमें सन्देह नहीं कि बहुत अंशोंमें हमारी परतंत्रता ही इसकी उत्तरदायी है। स्वतंत्र देशोंमें शिक्षा के ऊपर सरकारी आयका एक बड़ा भाग खर्च किया जाता है। शिक्षाके विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिदिन नई खोजें होती हैं जिनका लाभ उठाकर उनके देश आगे उन्नतिके मार्ग पर अग्रसर होते हैं। इसके विपरीत भारतमें सरकारके लिए शिक्षाका विषय अब तक सबसे अधिक महत्वहीन समझा जाता रहा है और इस पर सरकारी आयका एक बहुत ही छोटा भाग व्यय किया जाता रहा है। कारण स्पष्ट है। विदेशी सरकार यह भली भाँति समझती है कि यदि भारत में शिक्षाकी उन्नति हुई तो देश उन्नति की ओर बढ़ेगा और उनके लिए इस पर शासन करना कठिन हो जायगा।

औद्योगिक रसायन आजके युगमें बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रखता है। देशके उद्योग-धंधोंकी उन्नति इसी पर निर्भर करती है। हमारे देशमें इसकी शिक्षाकी ओर सरकार तथा जनता दोनों ही ने अब तक उदासीनता दिखलाई है। औद्योगिक रसायनकी शिक्षाका लगभग अभाव होनेका ही यह परिणाम है कि हमारा देश रासायनिक उद्योग-धंधोंमें अन्य देशोंसे बहुत पिछड़ा हुआ है। रासायनिक उद्योग-धंधोंका महत्त्व संसारकी सभ्यताके साथ-साथ दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। आजके संसारमें वे ही देश उन्नतिशील माने जाते हैं जहाँ रासायनिक उद्योग-धंधोंका बाहुल्य है। इसी कारण प्रत्येक स्वतन्त्र देशमें औद्यौगिक रसायनकी शिक्षा का समुचित प्रबन्ध शिक्षणालयोंमें रहता है।

इस समय जब कि हमारे देशमें चारों ओर इस बात की चर्चा है कि हमारी शिक्षाका क्रम किस प्रकार देश और समयके अनुकूल किया जाय, इस बातकी बड़ी आवश्यकता है कि देशके विद्वान् औद्योगिक रसायनकी शिक्षा के प्रश्न पर भी विचार करें। शिक्षणालयोंमें औद्यौगिक रसायनकी शिक्षाका समुचित प्रबन्ध नये शिक्षा-विधानमें हो, इस बातका प्रयत्न हम सबको करना चाहिये। हमारे यहाँकी शिक्षा संस्थाओंमें बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय जैसी एक-दो ही संस्थायें ऐसी हैं जहाँ औद्यौगिक रसायन सम्बन्धी शिक्षाका प्रबन्ध है। बनारस विश्व-विद्यालयके औद्योगिक रसायन विभागने अपने साधनोंके सीमित होते हुये भी इस विषयकी शिक्षाका प्रसार कर देशकी बहुत सेवा की है। इस विभागमें शिक्षा प्राप्त करनेके बाद यहाँके विद्यार्थी भिन्न-भिन्न उद्योग-धंधोंको स्वतन्त्र रूपसे चलानेके योग्य हो जाते हैं। इससे यहाँकी शिक्षाका महत्त्व सिद्ध होता है।

औद्योगिक रसायनके अतिरिक्त बनारस विश्वविद्यालय में फार्मस्युटिकल रसायन (Pharmaceutical chemistry), तथा काँच और चीनी मिट्टीके बर्तन बनाने आदि की शिक्षाके विभाग भी हैं। ये विभाग भी उपयोगी कार्य कर रहे हैं। किन्तु यह विद्यालय अकेला इतने विशाल देशकी आवश्यकताकी पूर्त्ति नहीं कर सकता। अतः यदि हम चाहते हैं कि हमारा देश उन्नतिकी ओर अग्रसर हो तो यह आवश्यक है कि अन्य शिक्षणालयोंमें भी इन विषयोंकी शिक्षाका प्रबन्ध हो। आगे आने वाले शिक्षा के क्रममें औद्यौगिक रसायन, फार्मस्युटिकल रसायन आदि विषयोंको उचित स्थान देना चाहिए। देशके राजनीतिज्ञ तथा शिक्षाके विशेषज्ञ लोगोंको विशेषरूपसे इसका ध्यान रखना चाहिये और ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये कि प्रत्येक विश्व-विद्यालयमें इन विषयोंकी शिक्षा दी जाय।

वर्त्तमान सरकारसे हम यह आशा नहीं कर सकते कि वह इस प्रकारकी शिक्षाके प्रबन्धमें कुछ अधिक प्रयत्न करेगी। अंग्रेजोंका तो स्वार्थ ही इसीमें है कि भारत के उद्योग-धंधे पिछड़े रहें जिससे इंगलैंडके मालकी यहाँ खपत हो सके। अतः देशके धनी-मानी देशसेवकोंको इसके लिए अपनी ओरसे भी स्वतन्त्र रूपसे प्रयत्न करना चाहिए। जनताकी माँगसे बाध्य होकर सरकार इस सम्बन्ध में थोड़ा बहुत खर्च अवश्य करेगी किन्तु वह पर्याप्त नहीं होगा। अतः हमारे यहाँके धनी व्यक्तियोंको चाहिये कि वे इस कार्यको आगे बढ़ानेके लिये खुले हाथ रुपये खर्च करें। वे इस कार्यको दो प्रकारसे आगे बढ़ा सकते हैं—इन विषयोंकी शिक्षाके लिए स्वतन्त्र संस्थायें खोलकर या वर्त्तमान विश्व-विद्यालयोंमें इनके विभाग खोलनेमें आर्थिक सहायता पहुँचा कर। निकट भविष्यमें अधिकांश प्रान्तोंमें काँग्रेस मंत्रिमंडलके स्थापित होनेकी सम्भावना है। यदि ऐसा हुआ तो आशा है कि काँग्रेसकी प्रान्तीय सरकारें अवश्य ही शिक्षाके नये क्रममें औद्योगिक रसायन ऐसे विषयोंको उचित स्थान देंगी।

मुद्रक तथा प्रकाशक विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञान-परिषद्की प्रकाशित प्राप्य पुस्तकोंकी सम्पूर्ण सूची

१—विज्ञान प्रवेशिका, भाग १ – विज्ञानकी प्रारम्भिक बातें सीखनेका सबसे उत्तम साधन – ले० श्री रामदास गौड़ एम० ए० और प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी० ; ।)

२—चुम्बक—हाईस्कूलमें पढ़ाने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी०; सजि०; ।।=)

३—मनोरञ्जक रसायन– इसमें रसायन विज्ञान उपन्यासकी तरह रोचक बना दिया गया है, सबके पढ़ने योग्य है—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम० एस-सी० ; १।।),

४—सूर्य-सिद्धान्त—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान-भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखनेका सबसे सुलभ उपाय – पृष्ठ संख्या १२१४ ; १४० चित्र तथा नकशे—ले० श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; सजिल्द; दो भागोंमें; मूल्य ६) । इस भाष्यपर लेखकको हिन्दी साहित्य सम्मेलनका १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है ।

५—वैज्ञानिक परिमाण—विज्ञानकी विविध शाखाओंकी इकाइयोंकी सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहालकरण सेठी डी० एस-सी०; ।।।),

६—समीकरण मीमांसा—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य – ले० पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १।।), द्वितीय भाग ।।=),

७—निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य – ले० प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री बी० एस सी० ; ।।),

८—बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित—इंटरमीडियेटके गणितके विद्यार्थियोंके लिये—ले० डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी० ; १।),

९—गुरुदेवके साथ यात्रा—डाक्टर जे० सी० बोसकी यात्राओंका लोकप्रिय वर्णन ; ।=),

१०—केदार-बद्री यात्रा—केदारनाथ और बद्रीनाथके यात्रियोंके लिये उपयोगी; ।),

११—वर्षा और वनस्पति—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शङ्करराव जोशी; ।),

१२—मनुष्यका आहार—कौन-सा आहार सर्वोत्तम है—ले० वैद्य गोपीनाथ गुप्त; ।=),

१३—सुवर्णकारी—क्रियात्मक – ले० श्री गंगाशंकर पचौली; ।),

१४—रसायन इतिहास—इंटरमीडियेटके विद्यार्थियोंके योग्य – ले० डा० आत्माराम डी० एस-सी०; ।।।),

१५—विज्ञानका रजत-जयन्ती अंक—विज्ञान परिषद् के २५ वर्षका इतिहास तथा विशेष लेखोंका संग्रह; १)

१६—फल-संरक्षण—दूसरापरिवर्धित संस्करण-फलोंकी डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार आदि बनानेकी अपूर्व पुस्तक; २१२ पृष्ठ; २५ चित्र—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्रनारायण सिंह एम० एस-सी०; २),

१७—व्यङ्ग-चित्रण—(कार्टून बनानेकी विद्या)—ले० एल० ए० डाउस्ट ; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी, एम० ए०; १७५ पृष्ठ; सैकड़ों चित्र, सजिल्द; १।।)

१८—मिट्टीके बरतन—चीनी मिट्टीके बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा ; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र, सजिल्द; १।।),

१९—वायुमंडल—ऊपरी वायुमंडलका सरल वर्णन—ले० डाक्टर के० बी० माथुर; १८६ पृष्ठ; २५ चित्र, सजिल्द; १।।)

२०—लकड़ी पर पॉलिश—पॉलिशकरनेके नवीन और पुराने सभी ढंगोंका ब्योरेवार वर्णन । इससे कोई भी पॉलिश करना सीख सकता है—ले० डा० गोरखप्रसाद और श्रीरामयत्न भटनागर, एम०, ए०; २१८ पृष्ठ; ३१ चित्र, सजिल्द; १।।),

२१ – उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर – सम्पादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश; आकार बड़ा (विज्ञानके बराबर) २६० पृष्ठ ; २००० नुसखे, १०० चित्र; एक एक नुसखेसे सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं या हज़ारों रुपये कमाये जा सकते हैं । प्रत्येक गृहस्थके लिये उपयोगी ; मूल्य अजिल्द २) सजिल्द २।।),

२२—कलम पेवंद—ले० श्री शंकरराव जोशी; २०० पृष्ठ; ५० चित्र; मालियों, मालिकों और कृषकोंके लिये उपयोगी; सजिल्द; १।।),

२३—जिल्दसाजी—क्रियात्मक और ब्योरेवार। इससे सभी जिल्दसाज़ी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०; १८० पृष्ठ, ६२ चित्र; सजिल्द १॥),

२४—भारतीय चीनी मिट्टियाँ—औद्योगिक पाठशालाओं के विद्यार्थियोंके लिये—ले० प्रो० एम० एल मिश्र, २६० पृष्ठ; १२ चित्र; सजिल्द १॥),

२५—त्रिफला—दूसरा परिवर्धित संस्करण-प्रत्येक वैद्य और गृहस्थके लिये—ले० श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार, २१६ पृष्ठ; ३ चित्र (एक रङ्गीन); सजिल्द २।),

यह पुस्तक गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय की १३ श्रेणी के लिए द्रव्यगुणके स्वाध्याय पुस्तकके रूपमें शिक्षापटलमें स्वीकृत हो चुकी है।

२६. मधुमक्खी-पालन—ले० पण्डित दयाराम जुगड़ान, भूतपूर्व अध्यक्ष, ज्योलीकोट सरकारी मधुवटी; क्रियात्मक और ब्योरेवार; मधुमक्खी पालकोंके लिये उपयोगी तो है ही जनसाधारणको इस पुस्तकका अधिकांश अत्यन्त रोचक प्रतीत होगा; मधुमक्खियों के रहन-सहन पर पूरा प्रकाश डाला गया है। ४०० पृष्ठ; अनेक चित्र और नकशे, एक रंगीन चित्र; सजिल्द; २॥),

२७—तैरना—तैरना सीखने और डूबते हुए लोगोंको बचाने की रीति अच्छी तरह समझायी गयी है। ले० डाक्टर गोरखप्रसाद पृष्ठ १०४ मूल्य १),

२८—अंजीर—लेखक श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार-अंजीर का विशद वर्णन और उपयोग करनेकी रीति। पृष्ठ ४२ दो चित्र, मूल्य ॥),

यह पुस्तक भी गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालयके शिक्षा पटलमें स्वीकृत हो चुकी है।

२९—सरल विज्ञान सागर प्रथम भाग—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद। बड़ी सरल और रोचक भाषा में जंतुओंके विचित्र संसार, पेड़ पौधों की अचरज भरी दुनिया, सूर्य, चन्द्र और तारोंकी जीवन कथा तथा भारतीय ज्योतिषके संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। विज्ञानके आकार के ७५० पृष्ठ और ३२० चित्रोंसे सजे हुए ग्रन्थ की शोभा देखते ही बनती है। सजिल्द मूल्य ६),

हमारे यहाँ नीचे लिखी पुस्तकें भी मिलती हैं:—

१—विज्ञान हस्तामलक—ले०—स्व० रामदास गौड़ एम० ए० भारतीय भाषाओंमें अपने ढंगका यह निराला ग्रंथ है, इसमें सीधी सादी भाषामें अठारह विज्ञानोंकी रोचक कहानी है, सुन्दर सादे और रंगीन पौने दो सौ चित्रोंसे सुसज्जित है, आजतककी अद्भुत बातोंका मनोमोहक वर्णन है, विश्वविद्यालयोंमें भी पढ़ाये जानेवाले विषयोंका समावेश है, अकेली यह एक पुस्तक विज्ञानकी एक समूची लैब्ररी, है एक ही ग्रंथमें विज्ञानका एक विश्वविद्यालय है।

२—सौर-परिवार—लेखक डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० आधुनिक ज्योतिष पर अनोखी पुस्तक ७७६ पृष्ठ, ५८७ चित्र (जिनमें ११ रंगीन हैं) मूल्य १२) इस पुस्तक को काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा से रेडिचे पदक तथा २००) का छन्नूलाल पारितोषिक मिला है।

३—भारतीय वैज्ञानिक—(१२ भारतीय वैज्ञानिकोंकी जीवनियां) श्री श्याम नारायण कपूर, सचित्र और सजिल्द; ३८० पृष्ठ; ३)

४—यान्त्रिक-चित्रकारी—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा, ए० एम०आई०एल०ई०। इस पुस्तकके प्रतिपाद्य विषयको अँग्रेज़ीमें 'मिकैनिकल ड्राइंग' कहते हैं। ३०० पृष्ठ, ७० चित्र; ८० उपयोगी सारिणियां; सस्ता संस्करण २॥)

५—वैक्युम-ब्रेक—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा। यह पुस्तक रेलवेमें काम करने वाले फ़िटरों इंजन-ड्राइवरों, फ़ायरमैनों और कैरेज एग्ज़ामिनरोंके लिये अत्यन्त उपयोगी है। १६० पृष्ठ; ३१ चित्र जिनमें कई रंगीन हैं, २),

विज्ञान

प्रयागकी विज्ञान-परिषद्का मुखपत्र

भाग ६२, संख्या ४

सम्वत् २००२, जनवरी, १९४६

वार्षिक मूल्य ३)

एक संख्या का मूल्य ।)

प्रकाशक

विज्ञान-परिषद्,

४२, टैगोर टाउन, इलाहाबाद।

प्रयागकी

विज्ञान-परिषद्के मुख्य नियम

परिषद्का उद्देश्य

१—विज्ञान-परिषद्की स्थापना इस उद्देश्य-से हुई है कि भारतीय भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्यका प्रचार हो तथा विज्ञानके अध्ययनको और साधारणतः वैज्ञानिक खोजके कामको प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद्का संगठन

२—परिषद्में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमोंके अनुसार सभ्यगण सभ्योंमेंसे ही एक सभापति, दो उपसभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमंत्री, दो मंत्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे, जिनके द्वारा परिषद् की कार्य्यवाही होगी।

पदाधिकारियोंका निर्वाचन

१८—परिषद्के सभी पदाधिकारी प्रतिवर्ष चुने जायँगे। उनका निर्वाचन परिशिष्टमें दिये हुये तीसरे नकशेके अनुसार सभ्योंकी रायसे होगा।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्यको ५) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ ७०) रु० की रकम दे देनेसे कोई भी सभ्य सदाके लिये वार्षिक चन्देसे मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्योंको परिषद्के सब अधिवेशनोंमें उपस्थित रहनेका तथा अपना मत देनेका, उनके चुनावके पश्चात् प्रकाशित परिषद्को सब पुस्तकों, पत्रों, विवरणों इत्यादिके बिना मूल्य पानेका—यदि परिषद्के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धनसे उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्यमें मिलेंगी।

२७—परिषद्के सम्पूर्ण स्वत्वके अधिकारी सभ्यवृन्द समझे जायँगे।

परिषद्का मुखपत्र

३३—परिषद् एक मासिक-पत्र प्रकाशित करेगी जिसमें सभी वैज्ञानिक विषयोंपर लेख प्रकाशित हुआ करेंगे।

३४—जिन लेखोंको परिषद् प्रकाशित करेगी उनमें जो लेख विशेष महत्व और योग्यताके समझे जायँगे उनके लेखकोंको अपने अपने लेख की बीस प्रतियाँ बिना मूल्य पानेका अधिकार होगा।

विषय सूची

विज्ञान

विज्ञान-परिषद्, प्रयागका मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ।। तै० उ० ।३।५।

भाग ६२ | सम्वत् २००२ जनवरी १९४६ | संख्या ४

वायुमंडलकी सूक्ष्म हवायें

[ले०—डा० सन्तप्रसाद टंडन]

(गतांकसे आगे)

सूक्ष्म गैसोंके उपयोग

हीलियमके उपयोग:—हीलियमका सबसे अधिक उपयोग गुब्बारों और वायुयानोंके भरनेमें होता है। इसका हल्कापन और अदाह्य गुण इस कार्य-के लिये इसको बहुत उपयुक्त बनाते हैं। किन्तु इस कार्यमें इसका अधिक उपयोग न हो सकनेके दो मुख्य कारण हैं—इसके अधिक मात्रा-में मिलनेमें कठिनाई और इसके मूल्यका बहुत अधिक होना।

हल्केपनमें हाइड्रोजनके बाद हीलियम ही का स्थान है। किसी वस्तुको ऊपर उठानेकी इसकी शक्ति (Lifting power) हाइड्रोजनकी तुलनामें ९६.६ प्रतिशत है। इसका अर्थ यह है कि समान भारको ऊपर उड़ानेके लिए हीलियमके जहाजको हाइड्रोजनके जहाज़की अपेक्षा लगभग १० प्रतिशत बड़ा होना चाहिये। हाइड्रोजनसे तुलना करने पर हीलियममें हम यही कमी पाते हैं। किन्तु हीलियमके अन्य गुण उसकी इस कमीको पूरा कर देते हैं। अतः अन्य सब बातोंको देखते हुये हीलियम इस कार्यके लिए हाइड्रोजनसे श्रेष्ठ सिद्ध होती है। हीलियमके जहाज़की बनावट हाइड्रोजनके जहाज़की अपेक्षा अधिक गठित होती है। इस गठित बनावटके कारण हीलियमके वायुयानोंका सञ्चालन और नियंत्रण अधिक सफलता-पूर्वक किया जा सकता है। हीलियम-का अधिक मूल्य इसके इस कार्यके निमित्त उपयुक्त होनेमें सदा बाधक समझा जाता रहा है। किंतु आजकल हीलियमको शुद्ध करनेकी नई-नई विधियोंके मालूम हो जानेसे इसके अधिक व्ययका प्रश्न भी पहले जैसा नहीं रहा है। प्रारम्भमें तो अवश्य जहाज़के थैलोंको हीलियमसे भरनेके लिए हाइड्रोजनसे भरनेकी अपेक्षा अधिक खर्च करना पड़ता है। किन्तु बादमें इस जहाज़ में गैसके ऊपर हाइड्रोजनके जहाज़की अपेक्षा इतना कम व्यय होता है कि अंतमें सब खर्चों को जोड़ने पर हीलियमके जहाज़का खर्च हाइड्रो-जनके जहाज़की अपेक्षा कम बैठता है। गैसके थैलोंमें थैलेसे गैसका बहिःप्रसरण तथा बाहरसे

वायुका थैलेमें अंतःप्रसरण बराबर होता रहता है। इसप्रसरणक्रिया के कारण जब थलेकी गैस १५ प्रतिशतसे अधिक अशुद्ध हो जाती है तो वह जहाज़के कामको नहीं रहती। थैलेकी इस प्रकार अशुद्ध हुई हीलियमको (जिसमें हवा मिल जाती है) सरलतासे शुद्ध किया जा सकता है। यह शुद्ध की हुई हीलियम पुनः थैलेमें भरकर काममें लाई जा सकती है। इस प्रकार हीलियम के जहाज़में भरी हीलियम पुनः पुनः शुद्ध की जाकर इस्तेमाल होती रहती है। हर बार थैलेमें से उड़कर जो बहुत थोड़ी सी हीलियम वायुमंडलमें विलीन हो जाती है उसीको पूरा करने के लिए ही कुछ नई हीलियम मिलानी पड़ती है। किन्तु हाइड्रोजनके जहाज़में अशुद्ध हुई हाइड्रोजनको पुनः सरलतासे शुद्ध नहीं किया जा सकता। इस हाइड्रोजनमें वायुकी अशुद्धि रहती है। हाइड्रोजन और वायुका मिश्रण एक विस्फोटक पदार्थ है। अतः इसके शुद्ध करनेमें कठिनाई तथा भय रहता है। इसीलिए इस हाइड्रोजनको थैलेसे निकालकर उसमें नई हाइड्रोजन भरी जाती है। इस प्रकार हर बार नई हाइड्रोजन भरनी पड़ती है। इसीसे अन्तमें हीलियमके जहाज़की अपेक्षा हाइड्रोजनका जहाज़ महँगा पड़ता है।

व्ययको कम करनेके लिए शुद्ध हीलियमके स्थानमें हीलियममें २० प्रतिशत हाइड्रोजन मिला कर भी वायुयानमें भरी जाती है। इस मिश्रण में शुद्ध हाइड्रोजनकी तरह आग लगनेका डर नहीं रहता और यह शुद्ध हीलियमकी ही भाँति बिना किसी प्रकारके भयके व्यवहारमें लाया जा सकता है। इस मिश्रणमें भारको उठानेकी शक्ति हीलियमकी अपेक्षा अधिक रहती है।

हीलियमका उपयोग बहुत निम्न तापक्रम प्राप्त करनेमें भी किया जाता है। तरल हीलियम का क्वथनांक -२६८·७५° है। पदार्थोंको इस तापक्रम तक ठंढा करके उनके गुणोंकी परीक्षा करनेमें तरल हीलियमका उपयोग होता है।

समुद्रकी गहराईमें काम करनेवाले गोताखोरोंको तथा पृथ्वीकी गहराईमें सुरंग खोदने वालोंको साँस लेनेके लिये आक्सिजन और हीलियमका मिश्रण दिया जाता है। इन स्थानों में दबाव कई वायुमंडलके दबावके बराबर रहता है। हीलियमकी खोजके पहले इन लोगोंको साँस लेनेके लिए अधिक दबावमें रखी हुई साधारण हवा ही दी जाती थी। किन्तु इसमें कई प्रकारकी कठिनाइयाँ होती थीं। मनुष्य-शरीर हवाके साधारण दबावमें ही साँस लेनेके लिये बनाया गया है। अधिक दबावकी हवा इस्तेमाल करते समय हवाका दबाव एकदमसे नहीं बढ़ाया जा सकता; क्योंकि ऐसा करनेसे मनुष्यकी मृत्यु हो जानेका भय रहता है। इसीलिए हवाका दबाव धीरे-धीरे बढ़ाना पड़ता है जिससे शरीरके आँतरिक अङ्ग अपनेको इस बढ़े हुये दबावके अनुकूल बना लें। इसी प्रकार जब दबाव हटाना पड़ता है तो इसे धीरे-धीरे घटाते हैं; क्योंकि एक साथ दबाव घटा देने पर रक्तवाहिनियाँ फट जाती हैं। रक्तवाहिनियोंका फट जाना भयप्रद है और इसमें मनुष्यकी मृत्यु भी हो जाती है।

नाइट्रोजन गैस रक्तमें घुलनशील है। अधिक दबावकी हवामें साँस लेते समय इतना समय देना चाहिये कि रक्त नाइट्रोजनको उस दबावके अनुसार पूरी तौर से घुला ले। दबाव हटानेमें अधिक मात्रामें घुली हुई नाइट्रोजन बाहर निकलती है। यदि दबाव बहुत शीघ्रतासे हटाया जाता है तो नाइट्रोजन उतनी ही शीघ्रतासे रक्तसे बाहर नहीं निकल पाती और इसके फलस्वरूप बुल्लोंके रूपमें स्थान-स्थान पर एकत्रित हो जाती है जिससे 'बेन्डस्' (Bends) नामक रोग होता है। यह एक अत्यन्त कष्टदायक रोग है और इसमें प्रायः मनुष्यकी मृत्यु हो जाती है। हीलियम और आक्सिजनका मिश्रण उपयोगमें लानेसे इस

प्रकारकी कोई कठिनाई सामने नहीं आती। हवाकी अपेक्षा हल्का होनेके कारण, हीलियम और आक्सिजनके मिश्रणका प्रसरण रक्तमें अधिक तीव्रतासे होता है। अतः दबाव बढ़ाने पर यह मिश्रण शीघ्र ही रक्तमें मिल जाता है। हीलियम नाइट्रोजनकी अपेक्षा कम घुलनशील होनेके कारण रक्तमें कम घुलती है। अतः दबाव हटाते समय दबाव शीघ्र ही हटा दिया जा सकता है और 'बेन्डस्' का रोग भी नहीं होता।

हीलियम-आक्सिजनके मिश्रणसे एक दूसरा लाभ यह होता है कि हवाकी अपेक्षा इसके अधिक हल्के होनेसे इसके वायुमण्डलमें साँस लेते समय साँस द्वारा कार्बन-डाइ-आक्साइडको बाहर निकालनेमें अधिक सरलता होती है। इसके इसी गुणके कारण गोताखोर समुद्रकी गहराईमें, तथा सुरंग आदि बनानेवाले ज़मीन-की गहराईमें अधिक देर तक काम कर सकते हैं। उन्हें दम घुटता सा नहीं मालूम होता। हीलियम-आक्सिजनके मिश्रणकी सहायतासे ही हडसन नदीके नीचेकी नहर खोदी जा सकी थी और सन् १९३९ में समुद्रकी गहराईमें डूबा हुआ अमेरिकाका 'स्कालस्' नामक जहाज़ गोता-खोर ऊपर निकाल सके थे।

अपने हल्केपन और रक्तमें शीघ्रतासे प्रसरण होनेके गुणके कारण हीलियम और आक्सिजनके मिश्रणमें श्वास सरलतासे लिया जा सकता है। इसी कारण यह मिश्रण दमा आदि साँसके रोगोंके उपचारमें प्रयोगमें लाया जाता है। इस कार्यके लिए जो मिश्रण प्रयोगमें लाया जाता है उसमें ६५ से ८० प्रतिशत तक हीलियमका भाग रहता है। यह मिश्रण हृदयके कुछ रोगोंमें भी प्रायः लाभप्रद सिद्ध होता है।

सिगनलके अर्थ प्रयुक्त होनेवाले टंग्स्टन बल्बोंमें भरनेके लिए भी हीलियम बहुत उप-योगी सिद्ध हुई है। टंग्स्टन बल्बोंके अन्दर शून्य दबाव होनेसे रोशनी तो तेज रहती है किन्तु थोड़े दिनोंमें इनके अंदर टंग्स्टनके वाष्पीकरण होनेसे एक काली पर्त जम जाती है जिससे इनका प्रकाश धीमा पड़ जाता है। बल्बमें हीलि-यम भरी होने पर ऐसा नहीं हो पाता। इसका कारण यह है कि हीलियमकी उपस्थितिमें टंग्स्टनका वाष्पीकरण नहीं होता।

हीलियमके विद्युत् चाप (Arc) का प्रकाश दो रंगोंका होता है—गहरा लाल और पीला। गाइस्लर (Geissler) नलीमें हीलियमका प्रकाश किरण-प्रकाश-मापन (Spectro photometry) के प्रयोगोंके लिए आदर्श इकाई माना जाता है।

हीलियमके कुछ और भी उपयोग वैज्ञानिकोंने सोचे हैं। किन्तु इन उपयोगोंके लिए हीलियम तभी प्रयुक्त हो सकती है जब यह अधिक मात्रामें और सस्ते मूल्य पर मिल सके। इनमेंसे कुछ उपयोगोंका यहाँ केवल संकेत मात्र ही करना पर्याप्त होगा :—

(१) कच्ची धातुओंको साफ़ करनेमें उनके चारों ओर अक्रियाशील गैसका वायमंडल करनेके लिए। हीलियम पिघली हुई धातुओंमें अन्य गैसोंकी अपेक्षा बहुत कम घुलनशील है, अतः इसके वायुमंडलमें धातुओंका शोधन आदि अधिक सफलतापूर्वक होता है।

(२) भोजन-पदार्थोंके संरक्षणमें। इसकी उपस्थितिमें भोजन-पदार्थ जल्दी सड़ नहीं पाते।

(३) निम्न-तापक्रम नापने वाले थर्मामीटरोंमें भरनेके लिए।

नियनके उपयोग :—अपने वैद्युतिक गुणोंके कारण इसका उपयोग प्रकाशके सम्बन्धमें ही विशेष रूपसे होता है। इसका सबसे अधिक उपयोग विज्ञापन तथा सजावटके लिए प्रयुक्त होने वाले प्रकाश-बल्बोंमें होता है। किसी काँचकी नलीमें नियन, हीलियम, आँरगन या इनके मिश्रण भरकर उसमें विद्युत् धारा प्रवाहित कर रंगबिरंगे प्रकाश उत्पन्न किये जा सकते हैं। इन रंगबिरंगे प्रकाशोंको 'नियन-चिह्न' (Neon signs) कहते

हैं। नियन-प्रकाश सबसे पहले सन् १९१२ में पेरिसमें दिखलाया गया था। पिछले महायुद्धके समाप्त होने पर सन् १९२० के बादसे नियन चिह्नोंका व्यवहार बहुत अधिक हो गया है। नियन-चिह्नके लिए कड़े काँचकी सफेद नली प्रयोगमें लाई जाती है। प्रायः रंगीन काँचकी नली भी व्यवहारमें लाई जाती है जिससे भिन्न-भिन्न रंगके प्रकाश उत्पन्न होते हैं। साधारणतः १५ मिलीमीटर व्यासकी छोटी नलियाँ ही काममें लाई जाती हैं। बड़ी नलियोंसे प्रकाश बहुत अच्छा नहीं निकलता। नलियाँ गैस भरनेके पहले खूब अच्छी तरह साफ़ कर ली जाती हैं।

नली बनाते समय इस बातका अच्छी प्रकार ध्यान रक्खा जाता है कि किसी अन्य गैसकी किंचित् मात्रा भी अन्दर न रहने पाए। पहले नली की सब हवा पम्प द्वारा निकाल कर उसमें शून्य दबाव (Vacuum) कर दिया जाता है। इसके बाद १६००० वोल्टकी विद्युत् धारा प्रवाहित की जाती है। इस धाराके कारण एलक्ट्रोड (Electrode) में बिंधी हुई सब गैस बाहर निकल आती है जिसे पम्प द्वारा नलीसे बाहर खींच लिया जाता है। यह क्रिया दो-तीन बार करनेसे नलीके अन्दरकी तथा एलक्ट्रोडमें बिंधी हुई सारी गैस बाहर निकल जाती है। अन्तमें नली-को ठंढा कर इसमें नियन गैस भर दी जाती है। इस भरी गैसका दबाव बहुत कम रक्खा जाता है—साधारणतः ३ से ८ मिलीमीटर तक। गैस भर चुकनेके बाद नलीमें बहुत कम वोल्टकी धारा प्रवाहित की जाती है जिससे सब जगह गैसका घनत्व बराबर हो जाए और प्रकाश एक रंगका निकले।

नलीके लिए भिन्न-भिन्न जातिके काँचका प्रयोग, नलीमें पारेकी उपस्थिति या अनुपस्थिति तथा उसके अन्दरकी सतह पर फ्लोरसेन्ट पदार्थ के लगानेसे, और गैसोंके भिन्न भिन्न मिश्रणोंके उपयोगसे भाँति-भाँतिके रंगका प्रकाश प्राप्त किया जाता है। किस गैस, किस पदार्थ, किस काँचके संयोगसे कौनसे रंगका प्रकाश प्राप्त होता है यह नीचेकी तालिकामें दिया गया है।

रंग	गैस	अन्य पदार्थ	दबाव	काँच
गहरा लाल	नियन	×	१०—१८ मिलीमीटर	लाल और मुलायम
लाल	नियन	×	,, ,,	सफेद
पीला	हीलियम	×	३—४ ,,	Noviol
हरा	सब गैसोंका मिश्रण	पारा या निकिल	१०—२० ,,	यूरेनियम
हलका नीला	,, ,,	पारा	१८—२० ,,	सफेद
गहरा नीला	,, ,,	,,	,, ,,	हलका बैंजनी
स्वच्छ सफेद	हीलियम	×	३—४ ,,	सफेद

फ्लोरसेंट पदार्थोंका नलीमें व्यवहार किया जाना कुछ ही दिनोंसे प्रारम्भ हुआ है। इनकी एक बहुत पतली पर्त नलीके अन्दरकी सतह पर लगा दी जाती है। यह पर्त नलीके अन्दरकी पराकासनी (Ultraviolet) किरणोंसे खूब चमकती और प्रकाशवान होती है। अतः इन फ्लोरसेंट पदार्थोंके उपयोगसे अधिक प्रकाश प्राप्त होता है। अधिक प्रकाशके अतिरिक्त इनके द्वारा नये-नये आकर्षक रंग भी प्राप्त होते हैं।

'नियन-चिह्न' साधारण बल्बोंकी अपेक्षा अधिक दिनों तक चलते हैं। यह दो तीन हज़ार घंटों तक जलते हैं; साधारण बिजलीके बल्ब केवल एक हज़ार घंटों तक ही जलते हैं। 'नियन चिह्नों' में बिजलीका खर्च भी साधारण बल्बोंकी अपेक्षा बहुत कम होता है। अतः सब बातों पर ध्यान देने पर यह साधारण बल्बोंसे सस्ते पड़ते हैं और

साथ ही अधिक आकर्षक भी होते हैं। इसीसे इनका उपयोग दुकानों, स्टेशनों, सिनेमाघरों आदि-में बहुत होने लगा है।

'नियन-चिह्न' प्रकाश सिगनलके कार्यके लिए भी बहुत उपयुक्त हैं। इनकी तेज लाल रोशनी हवाई जहाजों तथा समुद्री-जहाजोंके प्रकाश-संकेतों (Beacon lights) के लिए भी बहुत उपयोगी है। इनका प्रकाश बहुत दूरसे दिखाई पड़ जाता है। अतः 'नियन चिह्न' कोहरे तथा आँधी-की दशामें जहाज़ोंके लिए विशेष उपयोगी सिद्ध होते हैं। समुद्रके घने कोहरेमें साधारण प्रकाश-चिह्न बिलकुल दिखलाई नहीं देते। नियन-प्रकाश-में कोहरेसे ढका हुआ समुद्रका किनारा लाल-सा दिखलाई देता है। अतः कोहरेकी दशामें जब कि प्रकाश-चिह्न स्वयं दिखलाई नहीं देते नियन-प्रकाशकी लालीसे किनारेका ज्ञान हो जाता है और जहाज किनारे पर पहुँच जाता है।

नियन-लैम्प ग्रीन हाउस (Green house) में पौधों और फूलोंकी वृद्धिको उत्तेजित करनेके लिए भी सफलतापूर्वक उपयोगमें लाये जाते हैं। इनमें विद्युत्-धाराका अधिकाँश भाग प्रकाश-किरणोंमें बदल जाता है। इन किरणोंकी लहर-लम्बाई (Wave length) पौधेके हरे रंग, 'क्लोरोफिल', को बनानेमें विशेष लाभदायक होती है। अतः इन किरणोंकी उपस्थितिमें क्लोरोफिल अच्छी मात्रामें बनता है जिसके फलस्वरूप पौधोंकी वृद्धि अधिक अच्छी होती है।

विद्युत्-धाराकी अवस्था (Potential) से तुरन्त प्रभावित होनेके गुणके कारण नियन लैंप कुछ अन्य कार्योंमें भी प्रयुक्त होते हैं। इन कार्योंमें विशेष महत्वके ये हैं—टेलीविजन, चित्रोंका तारों द्वारा भेजना, मोटरके इंजनोंमें चिनगारी न उठने-की गड़बड़ीकी परीक्षा करना।

आरगनके उपयोग :—बिजलीके बल्बोंमें भरने के लिए आरगन सबसे उपयुक्त गैस है, क्योंकि यह अक्रियाशील है और तापका बुरा चालक है। साथ ही इसका घनत्व भी काफी अधिक है जिसके कारण बल्बके भीतरके टंग्स्टनके तारोंका वाष्पीकरण रुका रहता है और बल्बोंका जीवन-काल बढ़ जाता है। आरगनके इन्हीं सब गुणोंके कारण टंग्स्टनके तार उन बल्बोंमें भी सफलता-पूर्वक उपयोगमें लाये जा सकते हैं जो अधिक तेज़ विद्युत् शक्तिके लिए बनाये जाते हैं। इस प्रकार आरगन गैससे भरे बल्ब वैकुअम बल्बके दोषोंसे रहित होते हैं। इसीसे इन बल्बोंका प्रचार अब अधिक हो गया है। आरगनसे पहले नाइट्रोजन गैस बल्बोंमें भरी जाती थी, किन्तु इन बल्बोंमें भी बहुत दोष थे। आरगनकी खोज होने-के बाद नाइट्रोजनका इस कार्यमें व्यवहार होना बिलकुल बन्द हो गया।

प्रायः बल्बोंमें विशुद्ध आरगन भरनेमें कुछ कठिनाईयाँ पड़ती हैं। आरगनको १०-१५ प्रतिशत नाइट्रोजनके साथ मिलाकर व्यवहारमें लानेसे अधिक सफलता प्राप्त होती है।

अकेली आरगन विज्ञापन सम्बन्धी प्रकाशों (नियन चिह्नों) के लिए प्रयोगमें नहीं आता, क्योंकि इसके प्रकाशका रङ्ग आकर्षक नहीं होता। इस कार्यके लिए इसका उपयोग अन्य सूक्ष्म गैसोंके मिश्रणके रूपमें ही होता है—विशेषकर नीले और हरे बल्बोंमें।

क्रूपटनके उपयोग—क्रूपटन अभी तक बहुत कम मात्रामें प्राप्त हो सकी है। इसका मूल्य भी बहुत अधिक है। अतः इसका किसी बड़े पैमाने पर उपयोग अभी नहीं किया जा सकता। नियन तथा अन्य सूक्ष्म गैसोंके मिश्रणके रूपमें इसका कुछ उपयोग नियन-चिह्नोंमें ही किया जाता है।

ज़ीननके उपयोग—क्रूपटनकी भाँति बहुमूल्य होनेके कारण इसका भी उपयोग अधिक नहीं हो सका है; केवल नियन-चिह्नोंमें अन्य सूक्ष्म गैसों के साथ इसका भी कुछ व्यवहार होता है। ज़ीनन विद्युत्का बहुत अच्छा चालक है और इसका यापन (Ionization) कम वोल्टकी विद्युत्-

सृष्टिकी उत्पत्ति*

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

[लेखक—श्री नत्थनलाल गुप्त, जगाधरी (अम्बाला)]

पिछले अध्यायोंमें हम सृष्टिके समस्त भागों, अर्थात् ग्रहों, तारों, पुच्छल तारों, उल्काओं तथा नीहारिकाओंका विस्तार-पूर्वक वर्णन कर चुके हैं। अब हम सृष्टि-उत्पत्ति और प्रलय पर विचार करना चाहते हैं। यह ऐसा विषय है जिसका सम्बन्ध मज़हब और विज्ञान दोनोंसे है। यहाँ मज़हबी लोगोंके मन्तव्योंसे हमें कोई मतलब नहीं है। हम तो केवल यह बताना चाहते हैं कि विज्ञान इस समस्याको कैसे सुलझाता है। यह याद रक्खो कि उत्पत्ति और विनाश (वा प्रलय) एक ही पदार्थकी दो भिन्न-भिन्न अवस्थाओंका नाम है। किसी पदार्थका पूर्ण नाश, अर्थात् भावका अभाव, विज्ञान माननेको तैयार नहीं। अर्थात्, दुनियामें कोई वस्तु भी अपने अस्तित्वको खो नहीं सकती और न कोई वस्तु अभावसे उत्पन्न ही हो सकती है। जब कोई वस्तु पैदा होती है तो वह उससे पहले भी किसी न किसी अवस्थामें उपस्थित होती है; अतः सृष्टिकी उत्पत्तिका भी तात्पर्य यह है कि यह सृष्टि इस रूपमें आनेसे पहले भी किसी न किसी अवस्थामें उपस्थित थी और नष्ट होनेके पश्चात् भी किसी न किसी अवस्थामें मौजूद रहेगी।

जब हम सृष्टि-उत्पत्ति और प्रलयकी चर्चा करते हैं तो हमारी मुराद सौर-साम्राज्यकी उत्पत्ति और प्रलयसे होती है। सौर-साम्राज्य विश्वमें एक इकाईके समान है। जो अवस्था एक इकाईकी होगी वही हाल समस्त अन्य इकाइयोंका समझ लो।

ज्योतिर्विदोंकी सामान्य सम्मति यह है कि हमारा सौर-साम्राज्य एक बहुत बड़ी नीहारिकासे उत्पन्न हुआ है। यह विचार पहले-पहल सन १७५० ई० में स्कॉटलैंडके ज्योतिषी जेम्स फर्ग्यूसन...(James Ferguson) ने अपने एक निजी पत्रमें प्रगट किया था। उसके पश्चात् जर्मनीके दार्शनिक काण्ट (Kant) ने इस विषय पर अपने विचार प्रगट किये, किन्तु इस विषयकी अधिक स्पष्ट व्याख्या हरशल (Herschel) और फ्रेंच ज्योतिषी लापलास (Laplace) ने (सन् १७९६ ई० में) की है। इन दोनों विद्वानोंने अलग-अलग रीतिसे इस विषय पर स्वतन्त्रता-पूर्वक विचार किया है। अर्थात् लापलासने तो गणितके द्वारा इस विषयकी खोज की है और हरशलने अपने बड़े दूर-दर्शक यन्त्रसे आकाशका अनुशीलन किया है और अन्तमें दोनों एक ही परिणाम पर पहुँचे हैं।

लापलासका नीहारिकावाद

लापलासने विचार किया कि सौर-साम्राज्यमें समस्त ग्रह सूर्यके गिर्द एक ही दिशामें, अर्थात् पश्चिमसे पूर्वको भ्रमण करते हैं और उनके चाँद भी अपने-अपने ग्रहके गिर्द उसी दिशामें घूमते हैं। कोई प्रगट कारण प्रतीत नहीं होता कि क्यों तमाम ग्रह और उनके चाँद

धारामें ही हो जाता है। यदि जीनन अधिक मात्रा में और कम मूल्य पर प्राप्त होने लगे तो यह अपने उक्त गुणोंके कारण बहुतसे कामोंमें उपयोगी सिद्ध हो सकती है। इसके मूल्यका अनुमान इस बातसे लग सकता है कि वर्तमान युद्धके पूर्व एक बल्बको जीननसे भरनेमें लगभग १७५) रुपये व्यय होते थे।

बिजलीके बल्बोंमें भरनेके लिए क्रुपटन तथा जीनन दोनों ही आरगनकी अपेक्षा अधिक उपयुक्त हैं। इनके बल्बोंमें ३३ प्रतिशत अधिक प्रकाश होता है और इन बल्बोंका जीवनकाल भी अधिक होता है। किन्तु इन दोनों गैसोंकी बहुमूल्यताके कारण इनका व्यवहार इस कार्यके लिए व्यापारिक रूपसे अभी तक नहीं किया जा सका है।

---

*हमारी अप्रकाशित पुस्तक खगोल-विज्ञानका अन्तिम परिच्छेद।

एक ही दिशामें घूमें और भिन्न-भिन्न दिशाओंमें न घूमें। दूसरी बात लापलासने यह देखी कि समस्त ग्रह और उपग्रह (चाँद) लगभग एक ही तलमें गति करते हैं और उनके ऐसा करनेके लिये भी उसे कोई पर्याप्त कारण प्रतीत नहीं हुआ। इससे उसने यह परिणाम निकाला कि, सूर्य, ग्रह और उपग्रह सबके सब द्रव्यके किसी एक ही अम्बारमेंसे उत्पन्न हुए हैं जो अपने अक्षके गिर्द पश्चिमसे पूर्वको गति कर रहा होगा।

अतः उसने यह अनुमान कर लिया कि आरम्भसे गर्म और चमकती हुई सूक्ष्म गैसका एक बहुत बड़ा ढेर था जो नेपच्यून (वरुण) की कक्षासे भी बाहरकी तरफ बहुत दूर तक फैला हुआ था; और यह नीहारिका अपने अक्षके गिर्द धीरे-धीरे उसी दिशामें घूम रही थी जिस दिशामें समस्त ग्रह और उनके उपग्रह अब सूर्यके गिर्द भ्रमण कर रहे हैं। केन्द्रीय आकर्षणके कारण यह गैसका अम्बार गोलाकार किन्तु, अक्ष-गतिके कारण ध्रुवों पर से कुछ-कुछ चपटा था। प्रत्येक गर्म पदार्थ अपनी गर्मीको निकालता रहता है। यह गैसका बड़ा गोला भी अपनी गर्मीको धीरे-धीरे बाहर निकाल रहा था और ठंडा हो कर सुकड़ता जा रहा था। किन्तु गैस जब सुकड़ती है तो उसका तापांश बढ़ जाता है। अतः ज्यों-ज्यों वह नीहारिका सुकड़ती गई उसका तापमान अधिक होता गया।

गतिविज्ञानका यह एक नियम है, कि यदि किसी पिंड पर कोई बाह्य शक्ति प्रभाव न डाल रही हो तो सुकड़नेसे उसकी अक्ष-गति तीव्र हो जाती है। अतएव नीहारिकाके सुकड़नेका एक परिणाम यह हुआ कि उसकी अक्ष-गति तीव्र हो गई। ज्यों-ज्यों उसकी गर्मी कम होती गई, वह सुकड़ता गया और उसकी अक्ष-गति तीव्र होती गई। इससे नीहारिकाकी मध्य रेखा परके द्रव्याणुओंकी केन्द्रपराङ्मुख शक्ति (Centrifugal force) बढ़ती चली गई यहाँ तक कि केन्द्रिक आकर्षण शक्ति (Centripital force) के बराबर हो गई। इससे वह द्रव्य, नीहारिकाकी केन्द्रिक आकर्षण शक्तिसे स्वतन्त्र हो गया और जब नीहारिका कुछ और सुकड़ गई तो वह द्रव्य एक गोल छल्लेकी आकृतिमें पीछे रह गया। यह छल्ला भी लगातार उसी दिशामें घूम रहा था जिस दिशामें सारी नीहारिका घूम रही थी। इसी प्रकारसे नीहारिका छल्लेके पीछे छल्ला छोड़ती चली गई। इन छल्लोंके टूटने और समस्त द्रव्याणुओंके एकत्रित हो जाने से ही प्रत्येक ग्रह बनता गया। इस प्रकारसे नेपच्यून (वरुण), यूरेनस (मित्र), शनि, बृहस्पति, मंगल, पृथ्वी, शुक्र और बुध तमाम ग्रह क्रमानुसार बन गये और नीहारिकाके सुकड़ते-सुकड़ते जो द्रव्य बीचमें शेष रह गया है उसे हम सूर्य कहते हैं। जिस प्रकार नीहारिकाने छल्ले छोड़े, उसी प्रकार प्रत्येक ग्रहने भी, जब वह गैसकी अवस्थामें थे, अपने गिर्द छल्ले बनाये और उन छल्लोंसे उनके उपग्रह (चाँद) बन गये। यही लापलासका नीहारिकावाद (Nebular theory) कहलाता है। इस वादके समर्थनमें बहुत-सी बातें उपस्थित की जा सकती हैं। लापलासने अपनी आँखोंसे कभी नीहारिका नहीं देखी थी। उसकी नीहारिका केवल काल्पनिक वस्तु थी। किन्तु विलियम हरशलने पहले-पहल अपने बड़े दूर दर्शक यन्त्रसे आकाशमें हजारों नीहारिकाओंका दर्शन किया और उनकी श्रेणियाँ भी बनाई। इससे नीहारिकावादके विरुद्ध एक बड़े आक्षेपका निराकरण हो गया। सरविलियम हरशल लिखते हैं कि यदि हम जंगलमें एक बड़े वृक्षको देखें तो केवल उसे देखकर हम यह नहीं कह सकते कि वह सदासे वहाँ इसी अवस्थामें उपस्थित नहीं था, वरन् क्रमशः इस अवस्थाको पहुँचा है, क्योंकि हमने उसे उगते और बढ़ते नहीं देखा। किन्तु उसी जंगलमें जब हम उगते हुए पौधे और तनावर वृक्षके मध्यकी समस्त अवस्थाओंको देखते हैं तो हम अनुमान कर सकते हैं कि इस वृक्षको भी विकासके इन तमाम दर्जोंमेंसे गुजरना पड़ा होगा। इसी प्रकार हमने इस सृष्टिको बनते नहीं देखा, किन्तु, आकाशमें प्रत्येक अवस्थाके उदाहरण मौजूद पाये जाते हैं जिससे हम अनुमान कर सकते हैं कि हमारी यह दुनिया वर्तमान अवस्थाको किस प्रकार पहुँची है। सबसे पहली अवस्था यह नीहारिका है जो अति क्षीण और अत्यन्त मध्यम प्रकाशसे चमकती हुई गैसका एक आकृति-शून्य ढेर-मात्र है और करोड़ों मीलोंमें फैला हुआ है। कालपुरुष (Orion) की नीहारिका इसी प्रकारकी है। दूसरे दर्जेका

उदाहरणं इन्द्रमेघा (Andromeda) की नीहारिका है जो पहले प्रकारकी नीहारिकाओंसे कुछ अधिक सघन है। उसके केन्द्र परका सघन गोला, जिसे अन्तमें सूर्य्य बनना है और उसके गिर्द गैसके छल्ले जिन्हें समय पाकर ग्रहोंका रूप धारण करना है, स्पष्ट दृष्टि आते हैं। इसके पश्चात् छल्लाकार नीहारिकाओंका नम्बर है। यह गैसके ढेर नहीं, किन्तु ठोस वा तरल द्रवाणुओंका ढेर है और समय पाकर ग्रहों वा छोटे-छोटे सूर्य्योंका रूप धारण कर लेंगे। जिस प्रकार एक छोटी नीहारिकासे एक सौर-परिवार बनता है उसी प्रकार बड़ी-बड़ी नीहारिकाओंसे बहुतसे सूर्यों वा सितारोंका जन्म होता है। प्रकाश-विश्लेषणसे हम जान सकते हैं कि नीहारिकाके तारे बन जानेके पश्चात् भी विकासका क्रम निरन्तर चालू रहता है। आकाशमें हर दर्जेके तारे देखे जा सकते हैं। प्रथम नीलापन लिये श्वेत रंगके तारे हैं जिनमें हीलियम (Helium) बहुतायतसे पाई जाती है। यह गैसोंके गोले हैं। दूसरे दर्जे पर श्वेत तारे हैं, जिनकी गैस कुछ गाढ़ी हो गई है। उसके पश्चात् पीत वर्णके तारोंका नम्बर है जो हमारे सूर्य्यके समान हैं और उसके पश्चात् रक्त वर्णके तारे हैं जो धीरे-धीरे ठंढे हो रहे हैं। इनमें बहुतसे परिवर्तनशील तारे भी सम्मिलित हैं। तुमने देखा होगा कि जब दीपक बुझने लगता है तो कभी तो मद्धिम पड़ जाता है और कभी तेज़ चमक उठता है। यही अवस्था उन तारोंकी है। उनका प्रकाश भी बदलता रहता है। वह कभी तो बिल्कुल फीके पड़ जाते हैं कि दृष्टि भी नहीं आते और फिर एकदम चमक उठते हैं। यह तारे शीघ्र ही बुझ जानेको हैं। आकाशमें बहुतसे बुझे हुए तारे भी पाये जाते हैं जो अपना प्रकाश और ताप खोकर हमारी पृथ्वीके समान ठंढे पड़ चुके हैं।

सौर-साम्राज्यकी रचनाकी व्याख्या बहुत हद तक लापलासके नीहारिकावादसे हो सकती है। अर्थात् समस्त ग्रहों तथा उपग्रहोंका एक ही दिशामें और लगभग एक तल पर भ्रमण करना और अपनी धुरीके गिर्द भी उसी दिशामें घूमना; ग्रहोंकी दूरियोंका एक विशेष नियमके साथ बढ़ना; बाह्यग्रहोंका आभ्यन्तर ग्रहोंकी अपेक्षा आकारमें बहुत बड़ा तथा हलके द्रव्यसे बना हुआ होना (चूंकि बाहरी छल्ले बड़े होते हैं इसलिये उनसे जो ग्रह बनेंगे वह बड़े होंगे और चूंकि भारी द्रव्य केन्द्रके निकट और हलके तल पर रहता है इसलिये बाहरी ग्रह हलके द्रव्यसे बने हुए होते हैं), और पृथ्वीके गर्भसे बड़े तापका पाया जाना, इत्यादि। इन समस्त बातोंका सन्तोषप्रद समाधान लापलासका नीहारिकावाद करता है। इसलिये यह वाद सत्यके बहुत निकट प्रतीत होता है।

शनिके गिर्द अब भी छल्ले पाये जाते हैं। ये किसी कारणसे उपग्रह नहीं बन सके। ऐसा प्रतीत होता है कि इन छल्लोंको देखकर ही लापलासके मनमें छल्ले छोड़नेका विचार उत्पन्न हुआ होगा। मंगल और बृहस्पतिके मध्यमें बहुतसे नन्हें-नन्हें ग्रह भ्रमण करते हैं। वे भी सम्भवतः एक छल्लेके टूट जानेसे पैदा हुए हैं। किसी अज्ञात कारणसे इस छल्लेका सारा द्रव्य एक केन्द्रके गिर्द इकट्ठा न हो सका, वरन् भिन्न २ केन्द्रों के गिर्द इकट्ठा होकर बहुतसे नन्हें-नन्हें ग्रहोंमें परिवर्तित हो गया।

प्रकाश-विश्लेषक यन्त्रसे भी इस बातका समर्थन होता है। यदि सूर्य्य और ग्रहोंका उद्भव स्थान एक ही है तो वह समान द्रव्यसे बने हुए होने चाहिये। प्रकाश-विश्लेषक हमें बतलाता है कि सूर्य्यमें भी वेही तत्त्व पाये जाते हैं जो पृथ्वी पर उपस्थित हैं। केवल इतना ही नहीं वरन् अन्य तारों और नीहारिकाओंमें भी वेही तत्त्व पाये गये हैं।

हमारी पृथ्वी के गर्भमें अब भी बहुतसी आग भरी हुई है। वह शताब्दियोंसे अपनी उष्णताको आकाश में फेंकती रही है और अब भी वह ताप वितरण करके ठंढी होती जा रही है। चन्द्रमा अपनी सारी उष्णताको नष्ट कर चुका है। बृहस्पति और शनि आदि बाह्य ग्रह अब भी इतने तप्त समझे जाते हैं कि उनसे जल वाष्पके रूपमें ही पाया जाता है। हमारी पृथ्वी भी भूतकालमें कभी बृहस्पति और शनिके समान ही गर्म होगी और उस पर भी समस्त जल, जो इस समय समुद्रोंमें भरा हुआ है, वाष्पके रूपमें उसके वायुमंडलमें उड़ता फिरता होगा। यदि हम और भी पुराने समयका विचार करें तो किसी ज़मानेमें सारी पृथ्वी ही गैसका ढेर होगी। और ऐसी ही अवस्था अन्य ग्रहोंकी होगी। सूर्य्य भी लाखों वर्षोंसे अपनी उष्णताको नष्टकर रहा है। वह भी कभी गैसका ही ढेर होगा और वह सारी गैस नैपच्यून (वरुण) की कक्षासे भी बाहर, दूर-दूर तक, एक बड़ी

नीहारिकाके रूपमें फैली हुई होगी। ग़रज़ हम भूतकालसे वर्तमानकालकी तरफ आयें वा वर्तमानसे भूतकालकी तरफ जायें हर सूरतमें एक ही निष्कर्ष निकलता है। अर्थात् यह कि इस सृष्टिका आरम्भ एक बड़ी नीहारिकासे हुआ है।

अब ज़रा भविष्यकी तरफ भी दृष्टि डालनी चाहिये। सूर्य्य अपनी उष्णता खोकर सुकड़ रहा है। अभी उसका बहुतसा भाग गैसकी अवस्थामें है, किन्तु एक दिन ऐसा आयगा कि उसमें और सुकड़नेकी गुंजाइश न रह जायगी। उस समय वह तरल अवस्थामें होगा। उसके पश्चात् और उष्णता निकालनेसे उसका तापक्रम कम होने लगेगा और अन्तमें वह अपनी समस्त उष्णता खोकर हमारी पृथ्वीके समान ठंढा और ठोस गोला बन जायगा। इस बातका उदाहरण आकाशमें बुझे हुए तारे उपस्थित करते हैं।

उस समय पृथ्वीकी क्या अवस्था होगी? वह सूर्य्यसे मिलने वाली जीवनदायिनी गर्मी और रोशनीसे वञ्चित हो जायेगी। उसके भीतर जो अपनी थोड़ी बहुत उष्णता उपस्थित है उसे भी वह उस समय तक खो चुकी होगी। इसलिये जमीनके ऊपरका सारा जल पृथ्वीके गर्भमें उतर चुका होगा (वाष्प बनकर उड़ चुका होगा)। उसका वायुमंडल भी, बहुत कुछ, आकाशमें बिखर चुका होगा। तब वह चन्द्रमाके समान एक बिल्कुल बेजान और सुनसान दुनिया रह जायगी। यही अवस्था अन्य ग्रहोंकी होगी।

लापलासके नीहारिकावादके विरुद्ध बहुतसे आक्षेप किये गये हैं। प्रो० मोल्टन (Pro. Molton) ने निम्नलिखित आक्षेप किये हैं:—

१—लापलासके विचारके अनुसार ग्रहोंको सूर्य्यके गिर्द बिलकुल एक ही तल पर भ्रमण करना चाहिये था, किन्तु ग्रह भिन्न-भिन्न तलों पर भ्रमण करते हैं।

२—ग्रहोंकी कक्षाएँ वृत्ताकार होनी चाहिये थीं, किन्तु वह दीर्घ वृत्ताकार हैं।

३—अवान्तर ग्रहोंमेंसे कुछकी कक्षाएँ परस्पर छेदन करती हैं। लापलासके वादके अनुसार ऐसा होना असम्भव है।

४—केन्द्रीय आकर्षण शक्ति और केन्द्रपराङ्मुख शक्तिके बराबर हो जानेके कारण जो गैसका छल्ला केन्द्रीय द्रव्यसे अलग हो जाता है वह फिर अपने स्थान पर स्थिर नहीं रह सकता और न उसका समस्त द्रव्य इकट्ठा होकर एक पिण्ड बन सकता है, क्योंकि गैसका स्वभाव आकाशमें फैल जानेका है। अतः छल्लेकी सारी गैस अनन्त आकाशमें छितरा कर नष्ट हो जानी चाहिये।

५—यूरेनस और नेपच्यूनके उपग्रह विलोम दिशामें (अर्थात् पूर्वसे पश्चिमको) भ्रमण करते हैं। यह भी लापलासके वादके विरुद्ध एक ज़बरदस्त आक्षेप है। इसी प्रकार यूरेनस और नेपच्यून अपनी धुरी पर भी उल्टी दिशामें घूमते हैं। लापलासके मतके अनुसार ऐसा होना असम्भव है।

इन आक्षेपोंके सामने लापलासवाद स्थिर नहीं रह सकता। किन्तु सौर-साम्राज्यके उत्पन्न होनेके समय उसकी क्या अवस्था थी और उसके पश्चात किन-किन कारणोंसे उसमें क्या-क्या परिवर्त्तन हो गये हैं यह कौन कह सकता है। हम पहले वर्णन कर चुके हैं कि ग्रह परस्पर एक दूसरेकी गति पर प्रभाव डालते हैं जिससे उनकी कक्षा-गति और अक्ष-गतिमें अनेक प्रकारके परिवर्त्तन हो सकते हैं।

इन शंकाओंके होते हुए भी लापलासके वादमें जो विशेष बात थी उसको कोई काट न सका। अर्थात् यह बात सबको स्वीकार कर लेनी पड़ी कि सौर-साम्राज्यका जन्म एक नीहारिकासे हुआ है। पीछेकी नई जानकारीके आधार पर लापलासके वादमें कुछ संशोधन कर लिये गये हैं। मिस्टर फ़े (Mr. Faye) ने छल्ले छोड़नेकी कल्पना को त्याग कर यह विचार प्रगट किया है कि आरम्भिक नीहारिकाकी गैस सब जगह समान रूपसे फैली हुई न थी, किन्तु उसमें किसी स्थान पर द्रव्य अति गाढ़ा था। वा यों कहिये कि नीहारिकाके बीच में जगह-जगह द्रव्यकी छोटी-बड़ी गाँठे सी थीं और वह गांठें भी नीहारिकाके साथ २ उसके केन्द्रके गिर्द घूम रही थीं। जब नीहारिका सुकड़ने लगी तो उसकी गाँठोंने भी अपने आस-पासका द्रव्य अपने गिर्द समेटना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार बीचका द्रव्य तो सुकड़ कर सूर्य्य बन गया और उन गाँठोंसे ग्रह और उपग्रह बन गये। उसका यह भी विचार था कि पार्थिव ग्रह बाह्य-ग्रहोंकी अपेक्षा अधिक पुराने हैं और पृथ्वी सूर्य्यसे भी अधिक पुरानी है।

प्रो० लोक्यार का उल्कावाद

प्रो० लोक्यार (Pro. Lockyer) का यह मत है कि आदिम नीहारिका गैसका बादल न थी, वरन् उल्का-कणों (ठोस द्रव्य-कणों) का एक बहुत बड़ा ढेर थी। उनके परस्पर संघर्षसे ताप और प्रकाशका प्रादुर्भाव हुआ। जो नीहारिकाएँ हमें अब दृष्टि आती हैं वे भी उल्का-कणोंके ढेर हैं। बहुत दूर होनेके कारण हमें वह गैसके बादलसे प्रतीत होते हैं। पहले उल्का-कण बहुत दूर-दूर होते हैं और बहुत कम आपसमें टकराते हैं इस कारण नीहारिका बहुत ही धुंधली प्रतीत होती है। किन्तु केन्द्रीय आकर्षणके कारण वह केन्द्रकी तरफ गिरते रहते हैं। इससे नीहारिकाका घनत्व बढ़ता जाता है और उल्का-कणोंके पास-पास आ जानेके कारण उनका परस्पर संघर्ष बढ़ता जाता है इसलिये ताप और प्रकाश भी अधिक होता जाता है। यहाँ तक कि उल्का कणोंका बहुतसा भाग पहले तरल और फिर गैस बन जाता है। इन उल्काओं और गैसके संयोगसे तारे बनते हैं। जब तक वह सुकड़ते रहते हैं उनका ताप और प्रकाश बढ़ता रहता है। किन्तु जब सुकड़नेकी गुंजाइश नहीं रहती तो वह अपना ताप निकाल कर ठंढे होने लगते हैं और अन्तमें बुझ जाते हैं। हमारी पृथ्वी और अन्य ग्रह भी इसी प्रकार उल्काओं-के संयोगसे बने हैं और आरम्भमें छोटे-छोटे तारोंके समान गर्म और प्रकाशित गोले थे, किन्तु अब वह अपना बहुतसा ताप बाहर फेंक कर ठंढे गोले बन चुके हैं। हमारे सूर्यकी भी एक दिन यही दशा होनी है।

लोक्यारका यह विचार रश्मिचित्रोंके निरीक्षणों पर अवलम्बित है। लापलास और लोक्यारके वादोंमें बड़ा भेद यह है कि लापलास तो आरम्भमें एक अत्यन्त तप्त और गैसीय द्रव्यसे बनी हुई नीहारिका की कल्पना करता है और उसके ठंढा होनेका कारण संकोचन क्रिया मानता है किन्तु लोक्यार आरम्भिक नीहारिकाको सर्द और ठोस द्रव्यकणोंका ढेर समझता है और केन्द्रीय आकर्षणके कारण उसका संकोचन मानता है। उसके मतानुसार नीहारिकाका तापमान पहले बढ़ता चला जाता है, यहाँ तक कि वह ठंढे और ठोस द्रव्यकण गैस बन जाते हैं। जब ताप अपनी पूर्णताको पहुँच चुकता है तो घटने लगता है और अन्तमें एक नमपूर्ण ठंढा गोला रह जाता है। इस वादके अनुसार आरम्भ सर्द, ठोस द्रव्यकणों से, और अन्त, सर्द, ठोस गोले पर होता है।

पृथ्वीका विकास

सृष्टिकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें और-और विचार भी प्रगट किये गये हैं, किन्तु उन सबको प्रगट करनेसे लेख बहुत लम्बा हो जायगा इसलिये उन सबको छोड़कर, अब हम इस बात पर विचार करते हैं कि नीहारिकोसे जुदा होनेके पश्चात् हमारी पृथ्वी पर क्या-क्या घटनाएँ घटी हैं और वह किस प्रकार वर्तमान अवस्थाको पहुँची है। यह कहानी बड़ी रोचक है। लापलासके विचारानुसार, जैसा कि हम पहले वर्णन कर चुके हैं, गैसका एक छल्ला नीहारिका-से जुदा हुआ और कुछ कालके पश्चात् छल्लेका तमाम द्रव्य एकत्रित होकर गैसका एक गोला बन गया जो अपने अक्षके गिर्द घूम रहा था। यह गैसका गोला भी अपनी उष्णता बाहर फेंककर सुकड़ने लगा और कुछ समयके पश्चात् उसने भी एक छल्ला छोड़ दिया जिसके द्रव्य-कणों के इकट्ठा हो जानेसे चन्द्रमा बन गया। किन्तु डारविन (Darwin) ने चन्द्रमाकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें एक नवीन विचार प्रगट किया है जिसका वर्णन हम चतुर्थ अध्यायके पंचम परिच्छेदमें कर चुके हैं।

ज्यों-ज्यों गोला सुकड़ता जाता था, उसका ताप और प्रकाश बढ़ता जाता था; यहाँ तक कि वह सूर्यके समान दीप्यमान हो गया। कुछ कालके पश्चात् उसका बीचका भाग तरल अवस्थाको प्राप्त हो गया और उसको चारों तरफसे गहरे वायुमंडलने घेर लिया। उस समयके वायुमंडलमें ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन, कार्बन और न मालूम क्या-क्या गैसें सम्मिलित थीं जब वाष्प तथा नमककी वाष्प भी हवामें लटक रही थी। हलकी गैसें ऊपर थीं और भारी नीचे। इसी अवस्थामें हजारों साल बीत गये। आखिर हमारी तरल पृथ्वीके ऊपरकी ऊपरी सतह कुछ ठंढी होने लगी और उसके ऊपर मलाईके समान स्तर भी जमने लगा। उधर वायुका तापमान कुछ कम हुआ तो पहले नमककी भाप जमनी आरम्भ हुई और बर्फके समान पृथ्वी पर गिरने लगी। जब तापक्रम और

कम हो गया तो जल-वाष्प ने गहरे बादलोंका रूप धारण किया और मूसलाधार वर्षा होने लगी। किन्तु पृथ्वी अभी तक इतनी गर्म थी कि पानीकी बूँद उसे छूने ही फिर वाष्प बन जाती थी। यह अवस्था शताब्दियों तक जारी रही। इससे पृथ्वीकी बहुत-सी गर्मी निकल गई और ऊपरका स्तर कुछ और मोटा और दृढ़ हो गया। पर तो भी वह स्थिर न रह सकता था। उस समय पृथ्वीके द्रव्यमें मानो उबाल आ रहा था। बड़े-बड़े आगके तूफ़ान उठते थे और ऊपरकी ठोस तहके टुकड़े-टुकड़े कर डालते थे। ठोस तह धीरे-धीरे मोटी होती गई और आगके तूफ़ानोंका ज़ोर भी कुछ कम हुआ, तो पानीका तूफ़ान आया। पानी बरसा और उसने समस्त पृथ्वीको ढक लिया। अब भी धरातल इतना गर्म था कि पानीमें उबाल आ रहा था। वाष्प उठती थी और आकाशमें छा जाती थी। दमके दममें फिर मूसलाधार वर्षा हो जाती थी। आकाशमें हर समय गहरे बादल छाये रहते थे इस कारण सूर्यकी किरणें पृथ्वी तक न पहुँच सकती थीं। उस समय न दिन-रातका कुछ भेद था न ऋतुएँ बदलती थीं। कभी-कभी थोड़ी देर-के लिये शायद धुँधली-सी रोशनी चमक जाती और फिर अँधेरा हो जाता था। सारी दुनियामें एक ही प्रकारका जलवायु था। कौन जानता है यह अवस्था कितनी मुद्दत तक रही। आखिर आकाश स्वच्छ होने लगा। मानो पृथ्वी-ने आँख खोली और बाहरी दुनिया (चाँद, सूर्य आदि) को देखना आरम्भ किया। सूर्यकी किरणें पृथ्वी पर पड़ने लगीं ; दिन-रातका क्रम आरम्भ हुआ, ऋतुएं भी बदलने लगीं और स्थान-स्थान पर जल वायुमें भी भेद पड़ गया। मानो युग ही पलट गया।

समुद्रके पानीकी गर्मी कम होती जा रही थी और उसके भीतर अनेक प्रकारके जल जीव और पानीकी वनस्पति उत्पन्न होनी आरम्भ हो गई थी। पहले क्षुद्र जीव पैदा हुए फिर पानीमें तरह-तरहकी मछलियाँ कुलेलें करती दृष्टि आने लगीं। पृथ्वीके भीतरकी अग्निने ज़ोर मारा और उसने ठोस तलके कुछ भाग पानीसे ऊपर उठा दिये। इस प्रकार पृथ्वी-तल, जल और स्थल, दो भागों में विभक्त हो गया। स्थल पर भी पहले क्षुद्र जातिकी वनस्पति उगनी आरम्भ हुई। फिर क्षुद्र जन्तु भी पैदा होने लगे। वायुमें कार्बानिक एसिड गैस (Carbonic acid gas) की बाहुल्यता थी। आकाशमें सूर्य्य चमकता था। पानीकी कमी न थी। वनस्पतिने खूब फैलना आरम्भ किया और सारा स्थल फर्नकी जातिके बड़े बड़े पौदों और क्षुद्र जातिकी वनस्पतिसे ढक गया। पहले ऐसे जानवर प्रगट हुए जो जल तथा स्थल दोनों जगह गुजारा कर सकते थे, जैसे मेंढक। फिर रेंगने वाले जानवरोंकी बाहुल्यता हुई। पक्षी भी पैदा हो गये। फिर चौपाये, और अन्तमें मनुष्योंका पृथ्वी पर प्रादुर्भाव हुआ। पहले बिना फूलके पौदे पैदा हुए थे, पश्चात् रंग-रंगके फूल भी प्रगट होने लगे और पृथ्वी हर रंगके फूलोंसे प्रफुल्लित हो उठी। इस सारे परिवर्तनका कारण सूर्य्यकी किरणें थीं।

बृहस्पति पृथ्वीकी अपेक्षा बहुत बड़ा पिंड है इसलिये ख्याल किया जाता है कि पृथ्वीकी भांति वह अभी तक ठंडा नहीं हो पाया है। अतः उसको ध्यान पूर्वक अध्ययन करनेसे पृथ्वीके भूतकालिक इतिहास पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ सकता है। बृहस्पतिको जब दूर-दर्शक द्वारा देखते हैं तो उसका तल बहुतसे कटिबन्धोंमें बँटा हुआ-सा प्रतीत होता है और उस पर बहुतसे दाग़ धब्बे भी दृष्टि आते हैं, जो बादलोंके समान प्रतीत होते हैं। सामान्य विचार यह है कि बृहस्पति अभी तक गहरे बादलोंसे ढका हुआ है। और चूंकि बहुत दूर होनेके कारण सूर्य्यकी काफ़ी गर्मी वहाँ तक नहीं पहुँच सकती इसलिये यह बादल बृहस्पतिकी अपनी गर्मीसे ही पैदा होते हैं। यही अवस्था शनि, यूरेनस और नेपच्यूनकी है। वह भी तप्त पिंड ख्याल किये जाते हैं और गहरे बादलोंसे घिरे हुए हैं। शुक्रकी अवस्था पृथ्वीसे मिलती-जुलती है। क्योंकि उसका आकार भी पृथ्वीके लगभग बराबर ही है। मंगल पृथ्वीकी अपेक्षा कुछ छोटा है इसलिये पृथ्वीकी अपेक्षा अधिक ताप नष्ट करके अधेड़ हो चुका है। चन्द्रमाको तो निर्जीव दुनिया ही ख्याल किया जाता है, क्योंकि न तो उसके अन्दर अग्नि ही शेष रही है और न पानी और हवा ही। हमारी पृथ्वीकी भी एक दिन यही अवस्था होनी है।

खाद्य और स्वास्थ्य

[ले०—डा० ओंकारनाथ परती, एम० एस-सी०, डी० फिल]

मनुष्यके लिये स्वास्थ्यकी बड़ी महत्ता है। मनुष्यका स्वास्थ्य अधिकतर उसके आहार पर निर्भर करता है। धनी और निर्धन दोनोंके समक्ष आहारका प्रश्न भिन्न-भिन्न रूपमें है। आहार कैसा और कितना होना चाहिये यह समस्या सभीके सामने है। इस प्रश्न पर विचार करनेके पहले यह समझ लेना आवश्यक है कि आहार का मनुष्यके शरीरमें क्या प्रयोजन है। आहारके दो कार्य हैं; पहला मांस पेशियों और हड्डियोंको बनाना और दूसरा मनुष्यको शक्ति प्रदान करना जिससे वह अपना कार्य कर सके।

मनुष्यके आहारमें विभिन्न खाद्य पदार्थ रहते हैं। सभी खाद्य पदार्थोंमें निम्न वस्तुयें विभिन्न मात्राओंमें रहती हैं :

१. प्रोटीन [Protein]
२. वसा [Fats]
३. कर्बोज या कार्बोहाइड्रेट [Carbohydrates]
४. खनिज लवण [Mineral salts]
५. विटैमिन या खद्योज [Vitamins]

प्रोटीन

खाद्य पदार्थोंमें नाइट्रोजन (Nitrogen) तत्त्व वाले यौगिकोंको प्रोटीन कहते हैं। प्रोटीनका अणु अमीनो अम्लके अणुओंसे बना होता है। प्रोटीनका आणविक संगठन बड़ा जटिल है। मनुष्यके शरीरमें प्रोटीनके दो कार्य हैं। पहला यह कि यह मांसपेशियोंको स्वस्थ रखता है और दूसरा यह कि शरीर इस पदार्थ को उत्पादनके लिए भी काममें ला सकता है।

यों तो प्रोटीन सभी खानेकी वस्तुओंमें होती है किन्तु इसकी मात्रा किसीमें कम और किसी में अधिक होती है। निम्नलिखित सारिणीमें कुछ खाद्य पदार्थोंकी प्रोटीनकी मात्रा दी हुई है।

खाद्य पदार्थ	प्रतिशत प्रोटीन
१—माँस आदि	
अंडा (मुर्गी)	१३·५
भेड़का मांस	१८·५
मछली	२१·५
सूअरका मांस	१८·७
गो-मांस	२२·६
२—दाल	
अरहर	२२·३
उरद	२४·०
चना	२२·५
मसूर	२५·१
मूँग	२४·०
सोयाबीन	४३·२
३—अनाज	
कोटू	१०·३
कोदों	८·३
गेहूँ (आटा)	१२·१
गेहूँ (मैदा)	११·०
चावल	
(१) घरका कुटा	८·५
(२) मिल का कुटा	६·९

ज्वार	१०·४
बाजरा	११·६
मकई	११·१
साँवा	६·२
४—अन्य पदार्थ	
दूध	
(१) गायका	३·३
(२) भैंसका	४·३
(३) बकरीका	३·७
(४) स्त्रीका	१·०
मूँगफली (भुनी हुई)	३१·५
बादाम	२०·८
पिस्ता	१९·८
अखरोट	१५·६
हरी तरकारी	१ से कम
फल	१ से ३ तक

इस सारिणीसे यह ज्ञात होता है कि जानवरों से प्राप्त खाद्य पदार्थोंमें प्रोटीनकी मात्रा अधिक होती है। इससे यह निष्कर्ष न निकालना चाहिये कि मनुष्यके लिए मांस खाना आवश्यक है। दाल और विशेषकर सोयाबीनकी थोड़ी ही मात्रा से पर्याप्त प्रोटीन मिल सकती है। साधारणतया भिन्न भिन्न अवस्थाओंमें कितनी प्रोटीन चाहिये इसको प्रदर्शित करनेके लिये निम्नलिखित तालिका दी जाती है :

आयु	ग्राम प्रतिदिन
बच्चा २ से ६ वर्ष	४०-५०
" ६ " ९ "	६०
लड़का १० " १७ "	८०
लड़की १० " १७ "	७०
पुरुष १८ से ६७ वर्ष	६५
स्त्री १८ ६० "	५५

इस सारिणीसे ज्ञात होता है कि वृद्धिकाल की अवस्थामें (१० से १७ वर्ष तक) मनुष्यको प्रोटीन अधिक मात्रामें दी जानी चाहिये। इस सारिणीसे यह अनुमान भी किया जा सकता है कि प्रत्येक मनुष्यको किस अवस्थामें कितनी प्रोटीन चाहिये और पहली सारिणीके आधार पर यह ज्ञात हो सकता है कि किन खाद्य पदार्थों को कितनी मात्रामें खानेसे पर्याप्त प्रोटीन मिल सकती है।

वसा

चर्बी, तेल, घी आदिको सामूहिक रूपसे वसा कहते हैं। वसासे शरीरमें तीन लाभ हैं। (१) यह शरीरकी मांसपेशियोंको कमज़ोर नहीं होने देती; (२) यह संगठित शक्तिका रूप रहती है; (३) यह शरीरमें ताप पैदा करती है। वसा भोजनमें अवश्य होनी चाहिये। शारीरिक परिश्रम करने वालोंके लिए यह बहुत आवश्यक है। खेदके साथ कहना पड़ता है कि भारतीय मज़दूरोंको वसा बहुत कम मिलती है और उसका फल यह होता है कि यहाँके मज़दूर कमज़ोर होते हैं। प्रौढ़ोंके भोजनमें प्रतिदिन पौन छटाँकसे एक छटाँक तक वसा अवश्य होनी चाहिये। निम्नलिखित सारिणीमें कुछ खाद्य पदार्थोंकी वसाकी मात्रा दी हुई है :

खाद्य पदार्थ	प्रतिशत वसा (ईथरमें घुलनशील)
अण्डा	१३·३
भेड़का माँस	१३·३

मछली	१·६
गो-माँस	२·६
सूअरका माँस	४·४
खोआ (भैंसके दूधका)	३१·२
दही (गाय ' ")	२९
दूध (गायका)	३·६
दूध (भैंसका)	८·२
दूध (स्त्रीका)	३·९
राई	३९·७
अखरोट	६४·५
काजू	४६·९
तिल	४३·३
पिस्ता	५३·५
बादाम	५८·९
मूँगफली	३९·८
हरी तरकारी और फल	१ प्रतिशतसे कम
सोयाबीन	१९·५
दाल	१ से २ प्रतिशत
चना	५·३

कर्बोज या कार्बोहाइड्रेट

खाद्य पदार्थोंका एक प्रधान अंश वे वस्तुएँ हैं जिन्हें रसायनज्ञ कार्बोहाइड्रेट कहते हैं। कार्बोहाइड्रेट हमारे शरीर को शक्ति और ताप देते हैं और प्रोटीन और वसाके पाचनमें सहायता देते हैं। निम्नलिखित सारिणीमें मुख्य खाद्य पदार्थोंकी कार्बोहाइड्रेटकी मात्रा दिखलाई गई है :—

खाद्य पदार्थ	कार्बोहाइड्रेटकी मात्रा (प्रतिशत)
चीनी, गुड़, शहद	९० से अधिक
सागू और टैपिओका [tapioca]	३२ से ४०
अनाज	
चावल, गेहूँ आदि	६० से ८५
सूखे फल	
बादाम, पिस्ता आदि	४० से ६५
दालें	५५ से ६५
सोयाबीन, सूखे बीज आदि	५ से २०
आलू, प्याज़ सकरकन्द आदि	२० से ३०
फल	१० से २५
हरी तरकारी	१८

इस सारिणीसे यह सरलतासे ज्ञात होता है कि मनुष्य कार्बोहाइड्रेट पर्याप्त मात्रामें आसानीसे खा सकता है। भारतमें खाद्य पदार्थोंमें कार्बोहाइड्रेटका उपयोग बहुतायतसे होता है। यदि कार्बोहाइड्रेट शरीरमें अधिक मात्रामें पहुँच जाय तो मनुष्यको पेटकी बीमारियाँ (अजीर्ण, दस्त आदि) हो जाती हैं। शारीरिक परिश्रम करनेवालोंको कार्बोहाइड्रेटकी अधिक आवश्यकता होती है, किन्तु मानसिक परिश्रम करनेवालोंको कार्बोहाइड्रेट अधिक मात्रामें न खाना चाहिये। ऊपर दी हुई सारिणीसे यह ज्ञात होता है कि मिठाइयोंमें कार्बोहाइड्रेटकी मात्रा सबसे अधिक होती है, अतः इनके खानेमें विशेष ध्यान देना उचित होगा।

खनिज लवण

स्वास्थ्यके लिये भोजनमें थोड़ी सी मात्रामें खनिज पदार्थोंका रहना अत्यन्त आवश्यक है। यह खनिज पदार्थ खाद्योंमें अति विषम रूपसे रहते हैं। यों तो भोज्य पदार्थोंमें कई खनिज लवण होते हैं किन्तु इनमेंसे मुख्य कैलसियम, फ़ासफ़ोरस, लोहा और आयोडीन हैं। नीचे

इन खनिज लवणोंका संक्षिप्त विवरण दिया जाता है।

कैलसियम—यह हड्डी बनाता है और दाँत मज़बूत करता है। कैलसियमकी कमीसे हड्डियोंमें कमज़ोरी आ जाती है। बच्चोंके भोजनमें कैलसियमका बहुत महत्त्व है। गर्भावस्थामें तथा दूध पिलानेके दिनोंमें स्त्रियोंको अधिक कैलसियमकी आवश्यकता होती है। कुछ डाक्टरोंके अनुसार एक जवान आदमीको प्रतिदिन ०·६८ ग्राम कैलसियमकी आवश्यकता होती है और बच्चेको १·० ग्राम कैलसियमकी। कैलसियम सबसे अधिक दूधमें होता है। पनीर और पत्तेवाले सागमें भी यह बहुतायतसे पाया जाता है। भारतवर्षमें लोग पानमें चूना खाते हैं किन्तु यह निश्चित रूपसे अभी नहीं कहा जा सकता कि चूनेका कितना भाग पच पाता है और पानके साथ चूना खाना शरीरके लिये कितना लाभदायक है।

फ़ॉसफ़ोरस—फ़ॉसफ़ोरस भी हड्डी बनाता और मज़बूत करता है। मनुष्यको एक ग्रामसे अधिक फ़ॉसफ़ोरस प्रतिदिन खाना चाहिए। कच्चे अनाजोंमें फ़ॉसफ़ोरस पर्याप्त मात्रामें रहता है। दूध, अंडा, सोयाबीन, दाल और हरी तरकारीमें फ़ॉसफ़ोरस काफी होता है।

लोहा—शरीरमें शुद्ध रक्त बननेके लिये भोजनमें लोहेका रहना परमावश्यक है। रक्तका लाल रङ्ग लोहेके कारण ही होता है। कोनूर (दक्षिणी भारत) की प्रयोगशालाके प्रयोगोंके फलस्वरूप यह निर्धारित किया गया है कि बढ़ते हुए बच्चों तथा प्रौढ़ मनुष्योंके भोजनमें २० मिली ग्राम लोहा होना चाहिये। लोहेके लवण लाल गोश्त, दाल, प्याज़, हरी तरकारी विशेषकर टमाटर, तरबूज़ आदिमें होते हैं। अनाज, दाल और गोश्तका लोहा शरीर आसानीसे पचा लेता है किन्तु शाक तरकारियोंका लोहा आसानीसे नहीं पचता। यह विभिन्नता लोहेके विभिन्न लवणोंके विभिन्न रासायनिक गठनके कारण है। गर्भावस्थामें स्त्रियोंको रक्ताल्पता रोग होनेका विशेष भय रहता है, अतः उनके भोजनमें लोहेके लवणोंकी मात्रा अधिक होनी चाहिये।

आयोडीन—मनुष्यको आयोडीनकी बहुत थोड़ी मात्रामें आवश्यकता होती है। आयोडीनकी कमीसे घेघे (गलगंड) की बीमारी हो जाती है। आयोडीन वसा और कैलसियमके पाचनमें सहायता करती है। यह हरी तरकारियों और फलोंमें पर्याप्त मात्रामें होती है। मछलीके तेल (Codliver oil) में यह विशेष रूपसे होती है।

इन मुख्य खनिज लवणोंके अतिरिक्त सोडियम और पोटैसियम लवण भी भोजनमें आवश्यक हैं। पोटैसियम दूध, फल और हरी तरकारीमें पर्याप्त मात्रामें होता है और सोडियम साधारण नमकके रूपमें हमारे शरीरमें पहुँचता है। अन्य खनिज लवण अत्यन्त विषम रूपसे स्वास्थ्यके लिये आवश्यक हैं। इन लवणोंका विवरण यहाँ इस कारणसे नहीं किया गया कि ये पर्याप्त मात्रामें साधारणसे साधारण भोजनमें भी होते हैं और सभी मनुष्योंको प्राप्य हैं।

आगे दी हुई सारिणीमें मुख्य लवणोंके कुछ आँकड़े दिये हुए हैं। इस सारिणीमें केवल उन्हीं खाद्य पदार्थोंका वर्णन है जिनमें खनिज लवण प्रचुर मात्रामें होते हैं।

खाद्य पदार्थ	मुख्य खनिज लवणोंकी मात्रा		
	प्रतिशत कैलसियम	प्रतिशत फॉसफोरस	प्रति १०० ग्राममें—लोहा—मि० ग्राम में
दूध (गाय)	०·१२	०·०६	०·३
दूध (बकरी)	०·१७	०·१२	०·३
दूध (भैंस)	०·२१	०·१३	०·२
दूध (स्त्री)	०·०२	०·०१	०·२
पनीर	०·७९	०·५२	२·१
अंडा	..	०·०६	०·२२
उरदकी दाल	०·२१	०·३७	९·२
मूँगकी दाल	०·१४	०·२६	८·४
अरहर की दाल	०·१४	०·२६	८·८
चना	०·०७	०·३१	८·९
अंगूर	०·०३	०·०२	०·४
अनार	०·०१	०·०७	०·३
अमरूद	०·०१	०·०४	१·०
आम (पक्का)	०·०१	०·०२	०·३
कमरख	०·१६	०·०६	९·१
केला	०·०१	०·०३	०·५
जामुन	०·०२	०·०१	१·०
नारंगी	०·०५	०·०२	०·१
सेब	०·०१	०·०१	१·७
पिस्ता	०·१४	०·४३	१३·७
काजू	०·०५	०·४५	५·०
बादाम	०·२३	०·४६	३·५
मूँगफली	०·०५	०·४४	०·३
अखरोट	०·१०	०·३८	४·८
आलू	०·०१	०·०३	०·७
गाजर	०·०८	०·०३	१·५
चुकन्दर	०·२०	०·०६	१·०
प्याज़	०·१८	०·०५	०·७
करेला	०·०२	०·०५	२·२
गोभी	०·०३	०·०६	१·३
परवल	०·०३	०·०४	१·७
बैंगन	०·०२	०·०६	१·३
भिंडी	०·०६	०·०८	१·५
मटर	०·०२	०·०८	१·५

यह कहा जा चुका है कि मनुष्यके भोजनमें और भी खनिज पदार्थ होते हैं। ये खनिज पदार्थ ये हैं—मैगनीसियम, ज़िन्क, कोबाल्ट, निकल, बोरोन, ब्रोमोन, सिलोकन, स्ट्रॉशियम, वनैडियम, अल्यूमीनियम, फ्लोरोन, क्लोरीन, और सिलीनीयम। ये पदार्थ अति सूक्ष्म मात्रामें खाद्य पदार्थोंमें होते हैं। इनमेंसे अधिकतरके विषयमें अभी पूर्ण रूपसे अनुसन्धान तक नहीं हुए हैं। हमारे शरीरमें इन खनिजोंका प्रयोग अभी पूर्ण रूपसे ज्ञात नहीं है।

विटैमिन या खद्योज

मनुष्यके खाद्य पदार्थोंमें कुछ विशेष पदार्थ अति अल्प मात्रामें होते हैं जिनकी स्वास्थ्यके लिये बड़ी महत्ता है। इन्हें खद्योज या विटैमिन कहते हैं। इनके नाम अङ्गरेज़ीके अक्षर ए, बी, सी, आदि पर रक्खे गए हैं। रसायनज्ञ प्रमुख विटैमिनोंको दो भागोंमें विभाजित करते हैं।

विटैमिन
- तेल या वसामें घुलनशील
  - ए
  - डी
  - ई
- पानीमें घुलनशील
  - बी
  - सी
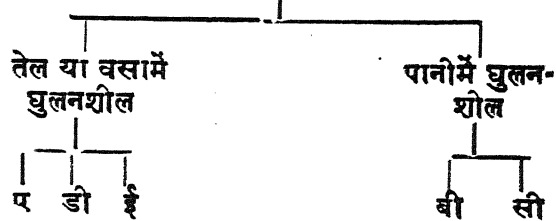
विटैमिन ए—सन् १९२५ में ताकाहाशीने विटैमिन ए को पूर्ण शुद्ध रूपमें अलग कर लिया किन्तु इसके बादके अनुसन्धान-कर्त्ताओंने ताकाहाशीके इस अनुसन्धानका विरोध किया। विज्ञानके इतिहाससे यह जान पड़ता है कि होम्स और कौरबेटने सन् १९३७ में स्टीरीओ लैपिस इशीनागी (Stereo lepis ishinagi) नामक मछलीके तेलसे सर्वप्रथम विटैमिन ए के रवे अलग किये। विटैमिन ए का रासायनिक रूप पूर्ण रूपसे ज्ञात हो गया है और कृत्रिम विधियोंसे यह तैयार की जा चुकी है। विटैमिन ए के अणुका संगठन नीचे दिया जाता है—

$$\begin{array}{l}
\quad\quad (CH_3)_2 \quad\quad\quad\quad\quad\quad\quad CH_3 \quad\quad\quad\quad\quad\quad\quad\quad CH_3 \\
CH_2—C—C—CH=CH—C=CH—CH=CH—C=CH—CH_2OH \\
CH_2—CH_2—C—CH_3
\end{array}$$
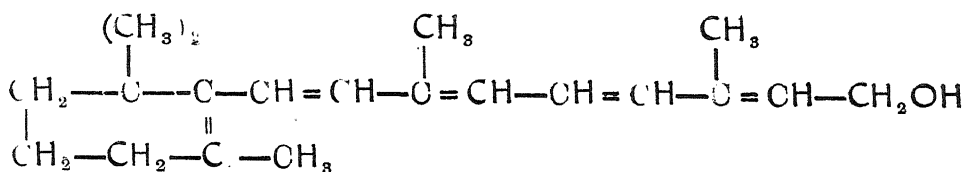
फ्यूसन और क्राइस्टने सन् १९३६ में और कूह्न और मौरिसने सन् १९३७ में दो विभिन्न कृत्रिम विधियोंसे विटैमिन ए के अणुका निर्माण संश्लेषण द्वारा किया।

आगे एक सारिणी दी जाती है जिसमें यह बताया गया है कि विटैमिन ए किन-किन खाद्य पदार्थोंमें किन-किन मात्राओंमें पाया जाता है।

विटैमिन ए

प्रचुर मात्रामें	पर्याप्त मात्रामें		अच्छी मात्रामें	
कॉड लीवर ऑयल	मक्खन	(१४००)	दूध	(६५)
हालीबुट " "	क्रीम	(१४००)	केकड़ा	(८५)
सालमन " "	पनीर	(१४००)	गोभी	(१५)
हाल ही में देखा गया है कि मद्रासके पास पाई जाने वाली शार्क मछलीके लीवर आयलमें यह विटैमिन कॉडलीवर आयल से बीस गुना अधिक होता है।	अण्डा	(५५०)	आलू	(१०)
	चुकन्दर	(६४०)	कद्दू	...
	टमाटर	(१७०)	खीरा	(१०)
	लैटूस	(१५०)	केला	(१००)
	आम	(८४०)	सन्तरा	(२०)
	खुमानी	...	अंगूर	(२०)
	यकृत (जिगर)	(२८००)	सेब	(१५)
			अञ्जीर	(१०)
			मटर (हरा)	(८५)
			खजूर	(८५)

इस सारिणीमें ब्रैकेटमें अन्तर्राष्ट्रीय इकाइयाँ दी हुई हैं। विटैमिन इतनी अल्प मात्र में होते हैं कि मिलीग्राम तकमें इनका आँकना सुगम नहीं है। इनके मापनेके लिये अन्तर्राष्ट्रीय इकाई प्रयुक्त होती हैं। इस सारिणीमें दिये गये पदार्थोंके अतिरिक्त हरे पत्ते वाली शाक-तरकारियों, जैसे पालक, मेथी, आदिमें भी विटैमिन ए की काफी मात्रा होती है।

भोजनमें विटैमिन ए की कमीसे मनुष्यमें बहुतसी बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं। इसकी कमीसे शरीर कमज़ोर हो जाता है, फोड़े फुन्सी निकलने लगते हैं, कानमें पीव पड़ जाती है, कभी जीभमें पीव पड़ जाती है, और रतौन्धी होने लगती है। विटैमिन ए अधिक मात्रामें भी नुकसान करता है।

शरीरको विटैमिन ए की कितनी आवश्यकता है इसमें अभी तक मतभेद है। कई डाक्टरों का मत है कि मनुष्यको प्रतिदिन ३००० अन्तर्राष्ट्रीय इकाईकी आवश्यकता होती है। यह आवश्यकता हरी शाक-भाजी खानेसे पूरी हो सकती है। उदाहरणके लिए डेढ़ छटाँक चौराईके सागमें ३००० अन्तर्राष्ट्रीय इकाई विटैमिन ए (कैरोटीनके रूप में) की रहती है। ऊपर दी हुई सारिणीके आधार पर हम सरलता से ज्ञात कर सकते हैं कि विटैमिन ए की आवश्यकता कैसे पूरी की जा सकती है।

विटैमिन बी—विटैमिन बी के अन्तर्गत छः पदार्थ हैं जिन्हें विटैमिन बी$_1$, बी$_2$, बी$_3$, बी$_4$, बी$_5$, और बी$_6$ कहते हैं। विटैमिन बी$_1$ को अमेरिका में थायामीन (Thiamin) और योरपमें एन्यूरीन

(neurin) भी कहते हैं । विलियम्स और क्लाइनने सन् १९३६ में विटैमिन बी$_1$ कृत्रिम रूपसे सर्वप्रथम तैयार करके इसका आणविक संगठन निश्चित किया। विटैमिन बी$_1$ का अणु निम्न संगठनका है—

```
                                          CH₂OH
                                            |
      N = C—NH₂. HCl     CH₃CH₂
      |      |                |     |
      |      |               C = C
      |      |                |     |
H₃C—C    C——CH₂——N Cl  |
     ||     ||                ||     |
     N—CH                CH—S
```
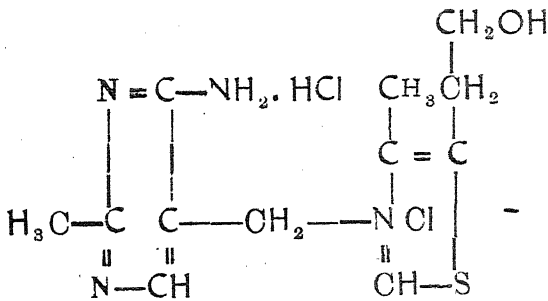
विटैमिन बी$_1$ गेहूँ (६३), पूर्ण अनाज (१०), दाल (१३), टमाटर (१५), आलू (५), मटर (७-८), सन्तरा (६), बीदाना अंगूर (२०-२५), ताजी अंजीर (१०), दूध (१०), अंडा (७), जिगर (७), केकड़ा (४२-५०), और सूखे फलों (२०-४०) में अधिकतर पाया जाता है। यह खाना पकानेकी प्रणालोमें नष्ट नहीं होता।

आहारमें विटैमिन बी$_1$ की कमीसे बेरी-बेरी रोग हो जाता है। मिलके साफ किये हुए चावल-में इस विटैमिनकी अधिक कमी हो जाती है और यही कारण है कि भारतवर्षके उन प्रान्तोंमें जहाँ चावल अधिक खाया जाता है बेरी-बेरीका रोग बहुतायतसे होता है। पुराने ढङ्गसे ढेकीमें कूटकर धानकी भूसी छुड़ाने पर चावलमें यह विटैमिन रह जाता है और इसलिये ऐसा चावल मिलके साफ किये चावलसे कहीं अधिक उप-योगी है।

मनुष्योंको प्रतिदिन लगभग ३०० अन्तर राष्ट्रीय इकाई मात्रामें इस विटैमिनकी आवश्य-कता होती है। चावल खाने वालोंके लिये एक डाक्टरके मतसे २ छटाँक मशीनसे न साफ किया गया अनाज, ३ छटाँक पत्तेवाली तथा अन्य तरकारियाँ, और १-१½ छटाँक दालमें विटमिन बी$_1$ की पर्याप्त मात्रा है, और यह खाद्य पदार्थ उन्हें इतनी मात्रामें प्रतिदिन अवश्य खाना चाहिये।

जिन मनुष्योंमें बेरी-बेरी रोगके लक्षण हों उन्हें ऐसे पदार्थ (पीछे दी हुई सारिणी देखिये) जिनमें विटैमिन बी$_1$ प्रचुर मात्रामें हो अवश्य खाना चाहिये।

विटैमिन बी$_2$ को कभी-कभी विटैमिन जी भी कहते हैं। विटैमिन बी$_2$ एक यौगिक नहीं है। सन् १९३४-३५ में कूहनने सर्वप्रथम एक रासाय-निक यौगिक रीबोफ्लैवीन (Riboflavin) कृत्रिम रूपसे बनाया। विटैमिन बी$_2$ का सबसे मुख्य भाग रीबोफ्लैवीन ही है। रीबोफ्लैवीनका अणु इस प्रकारका है :—

```
                      CH₂ (CHOH)₃ CH₂ OH
                         |
CH₃—C = CH—C—N—C = N——CO
      |            ||      ||         |
CH₃—C = CH—C—N = C—CO—NH
```
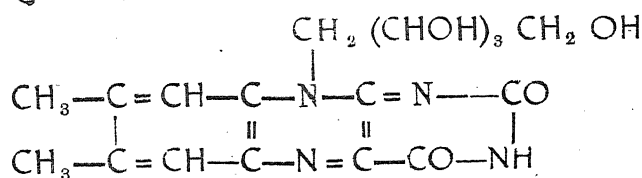
विटैमिन बी$_2$ गेहूँ, चुकन्दर (७१), गाजर (५७), करमकल्ला (१४-२५), गोभी (१४), टमाटर (६-७), केला (५६-५७), नासपाती (१४), सन्तरा ६-१८, सेब (६-७), खरबूज़ा और तरबूज़ (३), दूध (११-२७), अंडा (२८), गो यकृत (२२७-२८४) में बहुतायतसे पाई जाती है।

इस विटैमिनके अभावमें मुँहके कोनों पर घाव हो जाते हैं, जीभ पर छाले पड़ जाते हैं और पलैगरा (Pallegra) रोग हो जाता है। यह विटैमिन मनुष्यकी पाचन शक्तिको स्वस्थावस्थामें रखती है।

यह विटैमिन पत्तेवाले शाकों और अन्य तरकारियोंमें काफी होता है किन्तु फलोंमें इसकी मात्रा अधिक नहीं होती। मिल द्वारा साफ किये हुए चावल खानेवालोंको इस विटैमिनका अभाव प्रायः हो जाता है। इस विटैमिनका सबसे सस्ता रूप खमीरमें होता है। चावल खानेवाले यदि दो-तीन तोला सुखाया हुआ खमीर प्रतिदिन खा लें तो उनके भोजनमें इस विटैमिनका अभाव न होगा। खमीरमें २१३-२४५ तक अन्तर्राष्ट्रीय इकाई इस विटैमिनकी होती है।

विटैमिन बी$_3$ शब्दका कारटर और ओब्रायन ने सर्वप्रथम प्रयोग किया। सन् १९३५ में इन्होंने खमीरसे एक पदार्थ अलग किया जिसका नाम विटैमिन बी$_3$ रक्खा। कबूतरोंके भोजनमें विटैमिन बी$_3$ का अधिक महत्व है। मनुष्योंके भोजनमें इसका विशेष महत्व नहीं है।

विटैमिन बी$_4$ शब्दका प्रयोग सर्वप्रथम रीडरने सन् १९३० में किया था। विटैमिन बी$_1$ के साथ-साथ इसको महत्ता है। इसका रासायनिक अध्ययन अभी पूर्ण रूपसे नहीं हुआ है। कुछ अनुसन्धान-कर्त्ताओंका मत है कि इसके अभावसे पक्षाघात या लकवाकी बीमारी होती है। यह गेहूँ, दूध, खमीर, मांसपेशियोंमें पाया जाता है। भोजनमें इसकी महत्ता पर अभी मत-भेद है।

विटैमिन बी$_5$ शब्दका कबूतरोंके भोजनके अध्ययनमें सर्वप्रथम कारटरने सन् १९३० में प्रयोग किया। कारटरके बाद फिर किसीने इसका अध्ययन नहीं किया। इसके विषयमें अभी तक बहुत कम ज्ञात है और कदाचित् मनुष्यके भोजन में इसकी कोई महत्ता नहीं है।

विटैमिन बी$_6$ चावलकी भूसी, गेहूँ, दूध आदिमें पाया जाता है। इसके अभावसे पलैगरा रोग हो जाता है। सन् १९३८ से इस विटैमिन पर अनुसन्धान आरम्भ हुए। यह निरीक्षण किया गया कि इस विटैमिनके देनेसे चूहोंमें पलैगरा रोग अच्छा हो गया। इसका रासायनिक रूप अभी पूर्ण रूप से ज्ञात नहीं है। लैपकोवस्कीने सन् १९३८ में विटैमिन बी$_6$ से एक रवादार पदार्थ अलग किया। बादके अनुसन्धानोंसे ज्ञात होता है कि इसके अणुका संगठन $C_6H_{12}N_3OCl$ है। आशा है कि शीघ्र भविष्यमें ही इस विटैमिनके बारेमें अधिक ज्ञान हो जायगा।

विटैमिन सी :—विटैमिन सी का सर्वप्रथम वैज्ञानिक रूपसे अध्ययन करनेका श्रेय हंगरीके निवासी प्रो० जियोर्जीको है। इस विटैमिनका रासायनिक नाम एसकोर्बिक अम्ल है। एसकोर्बिक शर्करा समूहसे सम्बन्ध रखता है और इसका अणु गठन इस प्रकारका है—
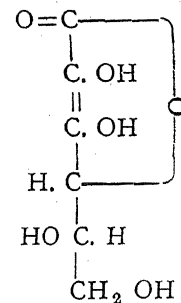
आगे एक सारिणी दी जाती है जिसमें यह बताया गया है कि विटैमिन सी मुख्यतर कहाँ पाया जाता है।

विटैमिन सी

प्रचुर मात्रामें		पर्याप्त मात्रामें		अच्छी मात्रामें	
मिर्च	(२५)	प्याज	(३)	चुकन्दर	(३)
टमाटर	(१५)	अन्ननास	(५)	गाजर	(५)
करमकल्ला	(२०)	रसभरी	(४)	आलू	(३)
हरे मटर	(१५)	मकोय	(१०)	सेब	(५)
अंगूर	(१५)	दूध	...	केला	(२)
नीबू	(१५)			हरे साग	...
सन्तरा	(१४)			खरबूजा	...
आँवला	...			तरबूज	...
				ककड़ी	...
				खीरा	...
				कद्दू	...

मनुष्यके भोजनमें विटैमिन सी की कमीसे स्कर्वी (Scurvy) का रोग हो जाता है, मसूड़े सूज जाते हैं, शरीरमें नीले चकत्ते पड़ जाते हैं और दुर्बलता जान पड़ती है। यह रोग बहुधा समुद्री नाविकों को होता है जो महीनों तक हरी तरकारी आदि नहीं खाते।

एक प्रौढ़ व्यक्तिके लिये प्रति दिन ३० से ५० मिलीग्राम विटैमिन सी की आवश्यकता होती है।

विटैमिन सी गर्मीसे नष्ट हो जाती है। अतः यदि हरी तरकारियोंको बहुत समय तक आग पर रक्खा जाय तो यह विटैमिन नष्ट हो जाती है। यह देखा गया है कि अंकुर निकले अनाजमें (गेहूँ,चना आदि) प्रति १०० ग्राममें १०से १५ मिलीग्राम तक विटैमिन सी रहता है। अंकुर निकला चना इसलिये विशेष लाभदायक है। आँवलेमें विटैमिन सी प्रचुर मात्रमें होता है। एक आँवले में डेढ़ दो सन्तरोंके बराबर विटैमिन सी रहता है। सन् १९४० में हिसारके दुर्भिक्षमें स्कर्वी रोग का बड़ा प्रकोप था। इस समय आँवलेके चूर्ण की टिकियाँ बड़ी लाभदायक ज्ञात हुई थीं।

विटैमिन डी :—सन् १९२४ में स्टीन बाक और हैसने सर्व प्रथम देखा कि जब रासायनिक यौगिक समूह स्टीरॉल (Sterols) पर पराकासनी (Ultraviolet) प्रकाश डाला जाता है तो लगभग ११ स्टीरालमें एक ऐसा रासायनिक परिवर्तन होता है जिससे उन पदार्थोंमें विटैमिन डीके गुण आजाते हैं। इनमेंसे चार पदार्थोंको विटैमिन डी$_1$, डी$_2$, डी$_3$, डी$_4$ कहते हैं। इनके अणु गठन इस प्रकार है—

```
                                   CH3              CH3 (CH3)2
                                    |                |     |
                              CH3  CH—CH=CH—CH—CH
                               |    |
                    CH2 —CH2 —C—CH—CH2
             CH3  |            |         |
              |   |            |         |
  CH2—CH2—C—  CH—C —— CH —— CH2
   |          |        ||
HO.CH—CH2 — C=CH—CH
```

विटैमिन डी१
(Ergosterol)

```
                                  CH3              CH3 (CH3)2
                                   |                |     |
                              CH3 CH—CH=CH—CH—CH
                               |   |
              CH2  CH2 —CH2 —C—C—CH2
              ||    |          |    |
  CH2 —CH2 —C     CH2 —C —— C—— CH2
   |          |            ||
HO.CH—CH2 —C=CH —— CH
```

विटैमिन डी२
(Calciferol)

```
                              CH3  CH (CH3)—CH2 —CH2 —CH2 —CH (CH3)2
                               |    |
              CH2 CH2 —CH2 —C — CH—CH2
              ||   |           |          |
  CH2 —CH2 —C    CH2 —C ——CH ——— CH2
   |          |           ||
HO. CH—CH2 —C=CH —— CH
```
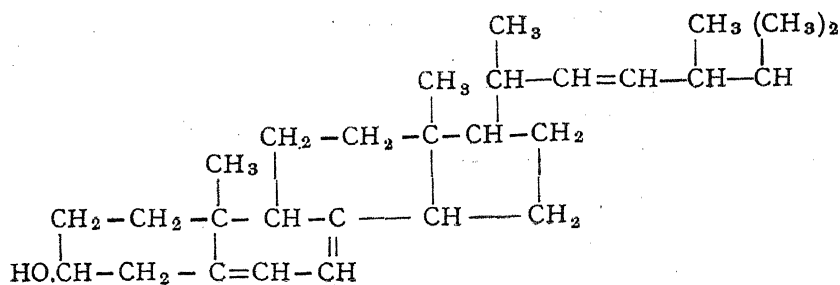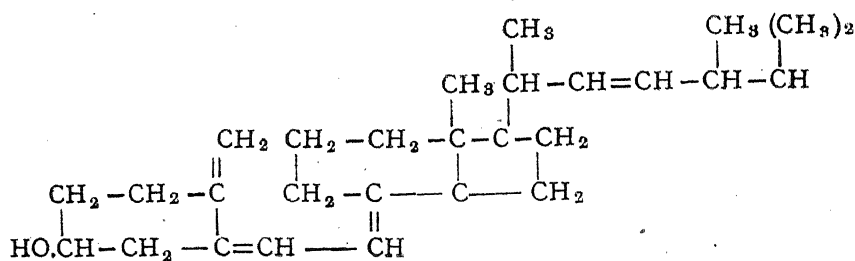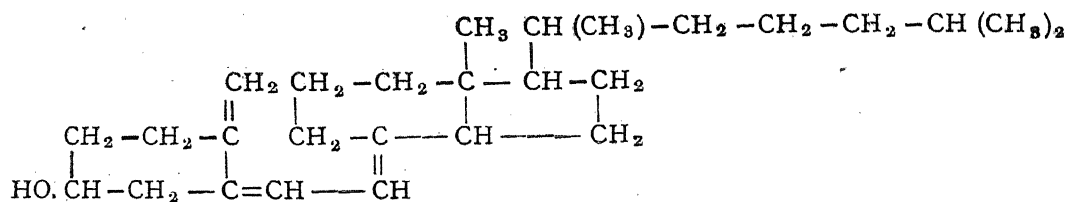
विटैमिन डी३
(Activated 7 - dihydrocholesterol)

```
                             CH3 CH (CH3)—CH2 —CH2 —CH (CH3)—CH (CH3)2
                              |    |
                CH2   CH  —CH2 —C  — C--CH2
                ||    |          |     |
  CH2—CH2—C      CH2—CH— CH—CH2
   |          |           |
HO. CH—CH2 — CH—CH2 — CH2
```
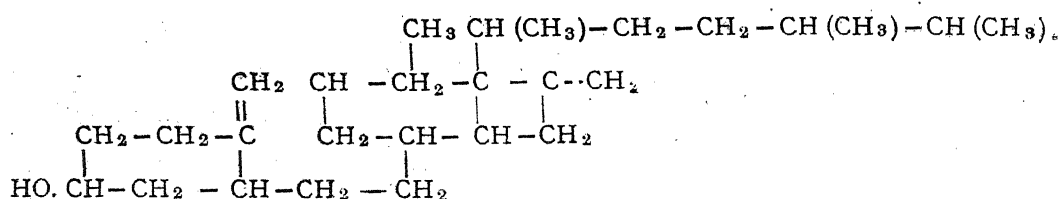
विटैमिन डी४
(Activated 22 - dihydroergosterol)

इन सब यौगिकोंको सामूहिक रूपसे विटैमिन डी कहते हैं।

आगे एक सारिणी दी जाती है जिसमें बताया गया है कि विटैमिन ड़ी मुख्यतर कहाँ पाया जाता है।

विटैमिन डी

प्रचुर मात्रामें	पर्याप्त मात्रामें	अच्छी मात्रामें
पराकासनी प्रकाश द्वारा उत्तेजित खमीर और अनाज काड लीवर आयल	दूध मक्खन अण्डा केकड़ा मछली	रोटी तरकारी हरी सब्जी

विटैमिन डी के अभावसे अस्थिदौर्बल्य (Rickets) का रोग हो जाता है। यह रोग बच्चोंमें अधिक होता है।

यह संतोषकी बात है कि मनुष्यकी त्वचामें सूर्य किरणोंके पड़ने पर विटैमिन डी उत्पन्न होता है। सूर्यकी किरणें हमारे लिये अति लाभदायक हैं। यही कारण है कि जो गरीब बच्चे अन्धेरेमें अधिक रहते हैं उन्हें अस्थिदौर्बल्य रोग हो जाने का अधिक डर रहता है। गर्भिणी स्त्रियों और बच्चों को विटैमिन डी की बहुत आवश्यकता होती है। विटैमिन डी बहुधा कॉड लीवर आयल के रूपमें दिया जाता है। आजकल कृत्रिम रूपसे बनाया हुआ विटैमिन डी भी मिलता है। यह अति सूक्ष्म मात्रामें दिया जाता है और इसकी मात्रा रोगीका निरीक्षण करके केवल डाक्टर ही बतला सकता है।

दो साल तकके बच्चोंके लिये लगभग ४०० अन्तर राष्ट्रीय इकाई मात्रामें विटैमिन डी की आवश्यकता होती है, किन्तु इस मात्राके मापमें मतभेद है। एक छोटे चम्मच कॉड लीवर आयल में लगभग ४०० अन्तर राष्ट्रीय इकाई मात्रा विटैमिन डीकी होती है। गर्भिणी स्त्रीके लिये लीग आफ नेशन्सकी स्वास्थ्य सभाके अनुसार कमसे-कम ३४० अन्तर राष्ट्रीय इकाई मात्रा विटैमिन डी की परमावश्यक हैं। अस्थि दौर्बल्यके रोगमें १००० से १५०० अन्तर राष्ट्रीय इकाई मात्रा विटैमिन डी की दी जाती है। प्रौढ़ व्यक्तिके लिये विटैमिन डी की कितनी मात्रा आवश्यक है यह अभी पूर्ण रूपसे ज्ञात नहीं है।

विटैमिन ई :—आधुनिक अनुसन्धानोंसे पता चलता है कि विटैमिन ई भी सामूहिक है। इसमें मुख्यतर α–, β– और γ– टोकोफिरॉल (Tocopherol) होते हैं जिनमें गुणके आधार पर α– टोकोफिरॉलकी सबसे अधिक महत्ता है। सन् १९३८ में करार (Kerrer) ने सर्व प्रथम α टोकोफिरॉल कृत्रिम रूपसे बनाया। इसका अणु इस प्रकारका है :

```
           CH3        CH        CH         CH3
           |          |         |          |
CH3 -C=C-C-O-C. (CH2) ·CH. (CH ) ·CH. (CH2) ·CH (CH8)2
       |   ||   |
HO  ·C=C-C-CH2CH2
       |___
```
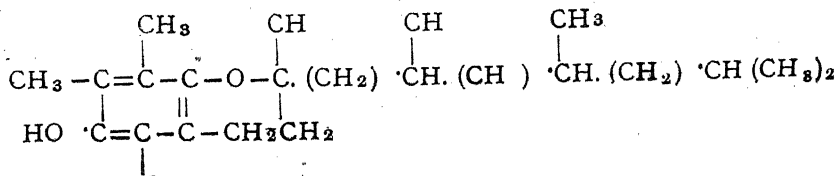
यह विटैमिन दूधमें नहीं होता। यह केले, बीजोंके तेल और मुख्यतर गेहूँके अंकुर तत्वके तेल (Wheat germ oil) में पाया जाता है।

चूहों पर इस विटैमिनके प्रयोग किये गये हैं। इन प्रयोगोंसे ज्ञात होता है कि इसके अभावमें सन्तान उत्पन्न करनेकी शक्ति (Reproductive power) का ह्रास हो जाता है। कदाचित् मनुष्योंमें भी इन प्रयोगोंका यही प्रभाव हो। अब तकके प्रयोगोंसे यह ज्ञात हुआ है कि जिन स्त्रियों को असमय गर्भपात हो जाता है उन्हें यदि यह विटैमिन दी जाय तो वह स्वस्थ रहती हैं। हाल में टामस और उनके साथियोंने यह देखा है कि मनुष्यमें भी सन्तान उत्पन्न करनेकी शक्ति इस विटैमिनके प्रयोग करनेसे बढ़ जाती है। अभी इस विटैमिन पर अनेक प्रयोग हो रहें हैं और आशा है कि भविष्यमें इसके विषयमें और भी ज्ञान हो जायेगा।

विटैमिन एफ :—सन् १९३४ में लेपकोवस्की और मर्फीने लिनोलईक (Linoleic) और लिनोलनिक (Linolenic) अम्लोंको विटैमिन एफका नाम दिया। यह तेल, घी आदिमें प्रचुर मात्रामें होती है। खाद्य पदार्थोंमें यह काफी मात्रामें होती है और इसका अभाव बहुत कम होता है।

विटैमिन जी :—विटैमिन जी को विटैमिन बी₂ भी कहते हैं। इसका वर्णन पहिले किया जा चुका है।

विटैमिन एच :—विटैमिन एचके गुण लगभग विटैमिन बी₁ को भाँति हैं। यह सब जानवरोंके ताजे गोश्तमें होता है। इस पर अभी अनुसन्धान हो रहे हैं और केवल इतना हो ज्ञात है कि यह अमीनो अम्ल समूहकी भाँति है।

विटैमिन के :—सन् १९३०से इस विटैमिन पर अनुसन्धान हो रहे हैं। यह विटैमिन सोयाबीनके तेल, चावल की भूसी, हरी तरकारियों और ताज़े माँसमें पाया जाता है। अनाजोंमें इसकी मात्रा कम होती है। अब तकके प्रयोगोंमें यह देखा गया है कि इस विटैमिनके अभाव से चूहे, खरगोश, सूअर आदि जानवरोंमें स्कर्वीकी तरहका एक रोग हो जाता है। रक्तके ठीक जमाव (Coagulation) पर इस विटैमिन का विशेष प्रभाव है। अभी तक मनुष्यों पर इस विटैमिनके कोई प्रयोग नहीं हुये हैं।

विटैमिनके क्षेत्रमें बड़ी प्रगतिसे अनुसन्धान हो रहे हैं। विटैमिन ए से के तक के अतिरिक्त और भी पदार्थ ज्ञात हैं जो विटैमिन के समान गुणकारी हैं। इन्हें अंगरेज़ीमें विटैमिन फैक्टर (Vitamin factor) कहते हैं। तीन चार ऐसे फैक्टर ज्ञात हैं, किन्तु इनके विषयमें अभी कुछ कहना शीघ्रता होगी।

पिछले पेजोंमें इस विषय पर विचार किया गया है कि भोजन में क्या क्या वस्तुएँ होती हैं और उनका मनुष्यके शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है। अब इस विषय पर विचार किया जायेगा कि भोजन को कितनी मात्रा की आवश्यकता हम लोगों को होती है। वैज्ञानिक रीति से भोजन की मात्रा नापने के लिये ताप नापनेकी इकाई कैलोरी (Calorie) काममें लायी जाती है। यह नाप इस आधार पर है कि मनुष्यका भोजन उसे शक्ति प्रदान करता है। कोई भोजन कितनी शक्ति प्रदान करता है यह हम कैलोरियाँ नाप कर ज्ञात कर सकते हैं। लीग ऑफ़ नेशन्स के आहार विज्ञानके विशेषज्ञों की सभाने यह बताया है कि किस प्रकार का काम करनेके लिये मनुष्य को कितनी कैलोरियाँ प्रति घंटा चाहिये।

[शेष अगले अङ्कमें]

स्ट्रैटॉस्फियरमें पहुँचनेके प्रयत्न

[ले०—श्री अजयकुमार बोस और श्री योगेश नारायण तिवारी, रसायन विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय]

जो कार्य कठिन और असम्भव ज्ञात होता है उसीका साधन करनेके लिये मनुष्य अपनी शक्ति लगाता है। यदि उस कार्यमें जीवनका डर रहता है तब भी वह पीछे नहीं हटता। कितने लोगोंने हिमालय पर चढ़नेके प्रयत्नमें अपना जीवन विसर्जन किया, कितनोंने समुद्रका रहस्य ज्ञात करनेके लिए आनन्द सहित मृत्युका वरण किया, कितने ही साहसी यात्री अफ्रिकाके घोर जंगलमें मर गये। गत २५ सालसे इस तरहके दुस्साहसका एक और नमूना मिला है। वह है बैलून द्वारा आकाश मंडलमें विचरण। परन्तु जो वैज्ञानिक बैलूनसे उड़ते हुए दुर्घटना वश मर गए, वे अपना शौर्य दिखलाने नहीं गए थे। वे गए थे वायुस्तर और व्योमरश्मि (Cosmic rays) के संबंधमें ज्ञान संचयके लिए। इस लेखमें इस तरहके दुस्साहसमय और आपत्तिसे भरे प्रयत्नोंका संक्षिप्त वर्णन किया जायगा।

पृथ्वके चारों ओर वायुस्तर है जो कमसे कम २०० मील ऊँचा है। गुणके अनुसार यह वायुमंडल कई स्तरों में विभक्त किया गया है। भूपृष्ठसे लगभग ७ मील तक जो वायुमंडल है उसमें धूलकण, जलकण, कार्बन डाइ ऑक्साइड (Carbon di-oxide) इत्यादि विभिन्न वस्तुएँ उपस्थित हैं। बादल भी इसी वायुस्तरके भीतर रहता है। इस स्तर को "ट्रोपोस्फियर" (Troposphere) कहते हैं।

इसके बाद "ट्रोपोपॉज" (Tropopause) नामक वायुस्तर है जो २ या ३ मील ऊँचा है। यह स्तर "ट्रोपोस्फियर" और "स्ट्रैटॉस्फियर को एक दूसरेसे अलग करता है। 'स्ट्रैटॉस्फियर" भूपृष्ठसे लगभग २० मील ऊपरसे आरम्भ होता है और ३० से ५० मीलकी ऊँचाई तक विस्तृत है। इस स्तरमें धूलकण इत्यादि कोई विजातीय पदार्थ नहीं है। इतना ऊँचा होने से इस स्तरकी वायु बहुत हल्की है।

"स्ट्रैटॉस्फियर" के बाद 'केनेली हेवीसाइड लेयर" (Kennely Heaviside layer) और "ऐपलटन लेयर" (Appleton layer) नामक दो स्तर हैं। प्रथम स्तरमें ऐसे बहुतसे कण हैं जिनमें विद्युत है। देखा गया है कि रेडियोंकी तरंगे (Radio waves) दो स्तरोंसे टकरा कर पृथ्वी पर लौट आती हैं। इन स्तरोंके बाद है महाशून्य या व्योम।

सन् १७८३ में बैलूनका व्यवहार शुरू हुआ और तभीसे लोगोंने इसकी सहायतासे ऊँचासे ऊँचा उड़नेका प्रयत्न आरम्भ किया। इनमें सर्वप्रसिद्ध है ग्लैशर और कौक्सवेलका बैलून द्वारा "स्ट्रैटॉस्फियर" में पहुँचनेका प्रयास। इन्होंने बैलूनके नीचे एक टोकरी बाँधी जिसमें दोनोंके बैठनेकी जगह थी और इसीमें विभिन्न यन्त्र भी रक्खे थे। बैलूनमें हाइड्रोजन गैस, जो हवासे १४ गुना हल्की है, भरी गई। कौक्सवेलने ऐसा प्रबन्ध किया था कि टोकरीमें बैठे ही बैठे केवल एक रस्सी खींचकर इच्छानुसार गैस निकाली जा सकती थी। गैस निकल जानेसे बैलून नीचे उतरना आरम्भ करता था।

ग्लैशर और कौक्सवेलका बैलून बहुत तेजीसे ४ मील ऊँचा उठ गया। पृथ्वीसे जितना ऊपर जाया जाये, उतनी ही हवा हल्की होती जायगी और वायुभार भी कम होता जायगा। वायु सूक्ष्म होनेसे श्वास लेनेमें कष्ट होता है—कभी-कभी तो चेतना लुप्त हो जाती है। वायुभार कम हो जानेसे कान, नाक और मुँहसे खून बहने लगता है। ऊपर तापक्रम भी बहुत कम रहता है।

सात मील ऊपर उठनेके बाद ग्लैशर, जो कि यन्त्रोंको देख रहा था, बेहोश हो गया। कौक्सवेलको भी यह मालूम पड़ा कि थोड़ी देर ही में उसकी भी चेतना लुप्त हो जायगी। उसने तुरन्त वाल्व (Valve) खोल कर गैस निकाल देनेका प्रयत्न किया, परन्तु दुर्भाग्यवश वाल्वकी रस्सी बैलूनकी रस्सीसे फँस गई। धीरे-धीरे तापक्रम इतना घट गया कि जैसे ही कौक्सवेल रस्सीको छुड़ा लेनेमें सफल हुआ, वैसे ही वह बेहोश हो गया। अब दोनों मनुष्योंका जीवन कौक्सवेल पर ही निर्भर था। बेहोश होते होते उसने दाँत

से रस्सीको पकड़ लिया और अचेत होकर गिर पड़ा। रस्सीमें झटका लगा, वाल्व खुल गया और बैलून नीचे उतरने लगा। जब बैलून काफ़ी नीचे आ गया तब गर्मी पाकर ग्लैशर और कौक्सवेलको फिर होश आया और वे बिना किसी दुर्घटनाके नीचे उतर आये।

इसके बाद बहुत दिनों तक बैलून द्वारा "स्ट्रैटॉस्फियर" चढ़नेका प्रयत्न बन्द था। वैज्ञानिक लोग छोटे-छोटे बैलूनोंमें यन्त्र रख कर उड़ाया करते थे। बैलूनके साथ एक रेडियो वार्ताप्रेरक (Radio transmitter) था जो कि उच्चता प्रदर्शक और तापमापक यंत्रसे संयुक्त था। व्योमरश्मिका अस्तित्व बतानेके लिये भी एक यन्त्र था। भूपृष्ठ पर स्थित रेडियो वार्ताग्राहक द्वारा बैलूनसे भेजी गई खबरें सुनी जाती थीं। मनुष्य-चालित बैलूनकी अपेक्षा यन्त्रचालित बैलून बहुत ऊँचा उठ सकता है। एक बार ऐसा ही एक बैलून २३ मील ऊपर तक चला गया था।

यन्त्र-परिचालित बैलूनसे केवल एकको छोड़कर सब काम चल सकता है। व्योम-रश्मिके विषयमें अन्वेषण करनेके लिये बैलूनको किसी विशेष ऊँचाई पर दो एक घंटे तक स्थिर रखना आवश्यक है। यह कार्य बिना मनुष्यकी उपस्थितिके नहीं हो सकता।

सन् १९००में व्योमरश्मिका पता चला था। यह एक्स किरण(X-ray) की तरह धातुकी पतली चद्दरके आरपार जा सकती है। व्योमरश्मिके संघात से गैसके परमाणु विद्युत् धारी (Ionised) हो जाते हैं। विलसन गृह (Wilson chamber) तथा एलेक्ट्रास्कोप (Electroscope) नामक यंत्रोंकी सहायतासे विद्युतधारी कणोंका पता लगता है, और इस तरह इन कणोंको उत्पन्न करने वाली व्योमरश्मिके विषयमें हमें ज्ञान होता है। वायुस्तरसे गुजरते समय व्योमरश्मिका कुछ अंश ध्वंस हो जाता है। यदि हम भूमंडल छोड़ कर काफी ऊपर जायें तो हमें उसी अनुपातसे अधिक व्योमरश्मि मिलेगी। इसी कारण इस बातकी आवश्यकता हुई कि मनुष्यचालित बैलून स्ट्रैटॉस्फीयरमें ऊँचेसे ऊँचा जा सके।

कौक्सवेल और ग्लैशर सात मील ऊपर गये थे। सन् १९२७ में अमेरिकाकी सेनाका कैप्टेन ग्रे (Captain Gray) आठ मील ऊपर गया। वह अपने साथ ऑक्सिजन ले गया था ताकि जब अधिक ऊँचाई पर वायु हल्की हो जाये तो विशेष कष्ट न हो। परन्तु बैलून जब सात मील की ऊँचाई पर था तब तापमान –४०° श हो गया और ग्रे धीरे-धीरे शीत से जमने लगा। वह बराबर नोटबुकमें लिख रहा था, परन्तु आठ मील ऊपर उठने पर वह बेहोश हो गया। थोड़े समयके उपरांत सब ऑक्सिजन समाप्त हो गई और शीत, वायुभारकी कमी और ऑक्सिजनके अभावसे इस वीरका देहान्त हो गया। जब बैलून नीचे आया तो उसमेंसे ग्रे का मृतशरीर और मूल्यवान यन्त्र आदि निकाले गये।

ग्रेकी मृत्युने यह शिक्षा दी कि स्ट्रैटॉस्फियरकी यात्रा करनेके लिये शीत और वायुकी कमीसे बचनेके लिये समुचित प्रबंध होना चाहिये। ब्रूसेल्स यूनिवर्सिटीके पदार्थ विद्याके अध्यापक पिकार्डने यह सिद्धान्त निकाला कि व्योमरश्मि व्योम (Inter stellar space) से आती है। इस सिद्धान्त को सिद्ध करनेके लिये यह आवश्यक था कि भूपृष्ठ और भूपृष्ठसे दस मील ऊपर व्योमरश्मिकी तीव्रता (Intensity) नापी जाये। पिकार्डने बैलून द्वारा ऊपर जानेका निश्चय किया और दस मील ऊपर जानेके लिये बैलूनकी क्या आकृति होगी यह पदार्थ-विज्ञान द्वारा ज्ञात किया। वायुभारकी कमीसे अपनेको बचानेके लिये उसने एक बड़ा आश्चर्यजनक प्रबन्ध किया। उसने $\frac{1}{6}$ इंच मोटी एल्यूमिनियमकी चादर का बल्बकी तरह बड़ा गोला बनवाया। इसे गंडोला कहते हैं। इसमें दो मनुष्यों के बैठने और आवश्यक यन्त्र रखने का स्थान था। गंडोला इस तरहसे निर्मित था कि उसके भीतरसे वायु नहीं निकल सकती थी, और इस तरहसे पृथ्वीसे १० मीलकी ऊँचाई पर गंडोलेके भीतर साधारण तापमान और वायु भार रखना सम्भव हुआ। साँस लेनेसे जो कार्बन डाइ-ऑक्साइड बनती थी उसे हटा कर हवाको साफ़ रखने के लिये "ड्रेगर" नाम का यन्त्रभी उस गंडोलेके भीतर था।

बैलून द्वारा उड़ान करनेके लिये यह आवश्यक होता है कि उस समय प्रकृति शान्त हो और हवा भी ज़ोरसे न चल रही हो। पिकार्डने छः महीने तक ऐसे समयकी प्रतीक्षा-

की, और अंततः एक दिन बैलूनमें गैस भरनेकी आज्ञा दी। परंतु जिस समय गैस भरी जा रही थी, अचानक वायु का वेग बढ गया और गंडोला गिर कर थोड़ा टूट गया। तब भी पिकार्डने उड़ने का संकल्प न छोड़ा और एक साथी को गंडोलेके भीतर लेकर उड़ान की तैयारी करने लगा। इतने में ग़ल्तीसे उसके सहायकोंने गैस भरे हुए बैलूनको मुक्त कर दिया और वह तेज़ीसे ऊपर उड़ने लगा। काम करते करते पिकार्डने जब शीशेकी खिड़कीसे झाँककर देखा तब उसे ज्ञात हुआ कि वह तो भपृष्ठ छोड़कर बहुत ऊपर उठ चुका है। दोनों वैज्ञानिक पहले तो आश्चर्य और भयसे भौचक्के रह गये, परंतु फिर शीघ्र ही वायु प्रवेशके सब रास्ते बन्द करने लगे। सब छेद तो बन्द हो गए परंतु एक इंच का एक छेद बन्द न हुआ। जब गंडोला वायुके वेगसे गिर कर थोड़ा टूट गया था तब इस छेदके आसपास की चद्दर टेढी हो गई थी, और इसी कारण छेद बन्द करने में पिकार्ड को कठिनाई हो रही थी। बैलून इतनी देर में तीन मील ऊपर उठ गया था, वायु हल्की हो गई थी, और गंडोलेकी हवा अब उसी छेदसे बाहर निकलने लगी। बड़ा ही कठिन समय था। आधे घंटे तक पिकार्ड और उनके साथी के निरन्तर प्रयत्न के बाद यह छेद बन्द हो सका। तब इन दोनोंकी जानमें जान आई, और वे शान्तचित्त होकर नीचे का दृश्य देखने लगे। सूर्य अभी उदय नहीं हुआ था। गंडोला लगभग ९ मीलकी ऊँचाई पर था और बादलोंके टुकड़े आकाश भरमें रूईकी भांति फैले हुए थे। आल्प्स पर्वत और राइन नदी खिलौनेकी भांति दिखाई देते थे। पिकार्ड और किफ़ार अब यन्त्रका व्यवहार करने लगे। सूर्योदयके बाद बैलून का जो भाग सूर्यकी ओर था वह बहुत गर्म हो गया। बैलूनको धीरे धीरे घुमानेका प्रबन्ध कर लिया गया था, परंतु अभाग्यवश बिजलीके एक तारके कट जानेके कारण अब बैलून को घुमाना असाध्य था। यद्यपि बाहर तापक्रम १००° फ था तथापि गंडोलेके भीतर १०४° फ़० (104°F) गर्मी थी। इनका पानी भी समाप्त हो गया था और भयानक गर्मीसे रबर गलने लगा। गंडोलेमें कुछ छेदोंसे वायु भी बाहर निकलने लगी। शाम को बैलून फिर ठंढा हुआ और नीचे उतरने लगा। अठारह घंटे आकाशमें रहनेके बाद वे दोनों वैज्ञानिक ९-३० बजे रात को पृथ्वी पर वापस आए। पिकार्डने तभी भविष्यवाणीकी थी कि भविष्यमें वायुयान स्ट्रैटॉस्फियरमे उड़ेंगे। यह भविष्यवाणी अभी हाल हीमें सत्य हुई है।

एक साल बाद सन् १९३२ में पिकार्ड और कज़िन्स दस मील उपर गए और बहुतसे तथ्य इकट्ठा करके लाये।

सन् १९३३ में रूसी सेना विभागके उद्योगसे एक बैलून उड़ाया गया। इसके गंडोलामें बहुतसे सुधार किये गए थे। यह बैलून ग्यारह मील ऊपर तक गया। तीन या चार महीनेके बाद अमेरिकाकी सेनाके अफ़सर सेटलने ११$\frac{1}{2}$ मीलकी ऊँचाई तक जाकर एक नया रेकार्ड स्थापित किया।

सन् १९३४ में रूसमें एक बैलून उड़ाया गया। इस बैलूनमें रेडियो से समाचार भेजने का प्रबन्ध था। रेडियो द्वारा प्राप्त समाचारसे ज्ञात हुआ कि १३ मीलकी ऊँचाई तक पहुँच कर बैलूनने नीचे उतरना आरम्भ कर दिया था। इसके पश्चात रेडियोसे बातचीत बन्द हो गई। बहुत खोजके बाद पता चला कि रस्सी टूट जानेसे गंडोला बैलून से छूट कर पृथ्वी पर गिर पड़ा और चूर चूर हो गया। गंडोलेमें जो तीन वैज्ञानिक थे वह भी मर गये।

अमेरिकाके सेना विभागकी सहायतासे १९३४ के जून महीनेमें एक और बैलून उड़ाया गया। यह बैलून इतना विशाल था कि सहजमें विश्वास नहीं होता। बैलून बनानेमें एक गज़ चौड़ा और सात मील लम्बा कपड़ा लगा था। यह कपड़ा ३५२० टुकड़ोंमें विभक्त करके रबर सोल्यूशन (Rubber solution) से जोड़ा गया। बैलून का वज़न लगभग ६० मन और परिधि २७५ फीट थी। गंडोला भी आकृति में बहुत बड़ा था। व्योमरश्मि आदि की परीक्षाके लिये बहुतसे यन्त्र थे। इसमें एक रेडियो वार्ताप्रेरक भी था। नेशनल ब्राडकास्टिंग स्टेशनने रेडियोसे भेजे गये समाचार को दुनिया भरमें भेजने का प्रबंध किया था। बैलूनके लिये स्ट्रैटाबौल (Stratabowl) नामक एक स्थान चुना गया। यहाँ तीन ऊँचे पहाड़ थे जिसके कारण वायु का वेग मन्द था। २८ जुलाई

१९३४ को ५ बजे प्रातःकाल बैलूनने आकाशमें अपनी यात्रा आरम्भ की।

गंडोलेमें आकाशकी फ़ोटो लेनेके लिये विशेष प्रकार का कैमरा था, और यदि किसी कारणवश बैलून फट जाये तो गंडोलेमें बैठे हुए वैज्ञानिकोंके पैराशूट द्वारा नीचे उतर आने का प्रबंध भी था। जब बैलून ११½ मील ऊपर पहुँचा तो ज्ञात हुआ कि उसकी थैली नीचेकी तरफ बुरी तरह फट गई है। रेडियो द्वारा यह खबर मिलते ही अमेरिका भरमें सनसनी फैल गई। ११½ मील की ऊँचाई से पैराशूट द्वारा उतरना भी संभव नहीं है क्योंकि बाहरकी ठंढ और वायुभारकी कमीसे मृत्यु निश्चित है। गंडोलेमें बैठे हुए तीनों वैज्ञानिक देख रहे थे कि बैलून का छेद बढ़ता जा रहा था। थोड़ी देरमें बैलून का नीचे का भाग फट कर अलग हो गया और ऊपर का हिस्सा पैराशूटकी तरह फूल कर धीरे-धीरे नीचे उतरने लगा। रेडियोसे फिर समाचार आने लगे। लोग श्वास रोके हुए रेडियो सुन रहे थे। अन्तमें बैलून इतने वेगसे नीचे उतरने लगा कि वैज्ञानिकोंने पैराशूट द्वारा कूदनेका निश्चय कर लिया। रेडियोसे समाचार आया, "बैलूनका थैला बुरी तरहसे फट गया है...बैलून बहुत तेजीसे नीचे उतर रहा है...अब हम..."

तीनो वैज्ञानिक पैराशूट लेकर कूद पड़े, परन्तु एकका पैराशूट ही नहीं खुला। थोड़े प्रयत्नके बाद जब वह खुला भी तो यह ज्ञात हुआ कि बैलूनका एक फटा हुआ टुकड़ा उसमें फँस कर पैराशूटको तेजीसे नीचे गिरा रहा है। उस मनुष्यका भाग्य प्रबल था। रामराम करके वह टुकड़ा अलग हो गया और तीनों सकुशल पृथ्वी पर वापस आ गये। गंडोला और उसके भीतरके सब यन्त्र गिर कर नष्ट हो गये।

इसके बाद बेलजियममें कज़िन्स (Cozyns) अमेरिकामें पिकार्ड (प्रोफेसर पिकार्ड का भाई) और श्रीमती पिकार्ड और रूसमें क्रिस्टोजिलेने स्ट्रैटॉस्फियरमें पहुँच कर बहुतसी नई बातोंका पता लगाया।

सन १९३५ में अमेरिकासे फिर एक विशाल बैलून उड़ाया गया। इसमें आराम के लिए और दुर्घटनासे बचावके लिये बहुत अच्छा प्रबंध था। यह बैलून १४ मीलकी ऊँचाई पर २½ घंटे तक रहा।

बैलून द्वारा जो तथ्य संग्रह किये गए हैं उनसे वायुमंडलके विषयमें हमारी धारणा ही बदल गई है और व्योमरश्मिके विषयमें भी बहुत ज्ञान बढ़ा है। इस लड़ाईमें जर्मनी ने राकेटमें बहुत सुधार किये हैं। संभव है कि निकट भविष्य में राकेटकी सहायतासे हम ५०-६० मील ऊपर तकके वायुमंडलकी परीक्षा कर सकें और इस प्रकार भगवानकी विचित्र सृष्टिको और अच्छी तरह समझ सकें।

वैज्ञानिक समाचार

(ले०—डा० ओंकारनाथ परती, एम० एस-सी०, डी० फिल)

कृत्रिम पेनीसिलन्

इङ्गलैण्ड में प्रोफेसर आई० एम० हाइल ब्रान और डाक्टर ए० एच० कुक कृत्रिम पेनीसिलन् बनानेके प्रयोग कर रहे हैं। अब तकके प्रयोगोंमें आशातीत सफलता प्राप्त हुई है। प्रोफेसर हाइलब्रान का कथन है कि शीघ्र ही प्रयोगशालामें कृत्रिम विधियोंसे बनाया हुआ पेनीसिलन् प्राप्त हो सकेगा। उन्हें यह भी आशा है कि अभी तक के किये गये प्रयोगोंके आधार पर यह सम्भव है कि ऐसी वस्तु भी प्राप्त हो जाय जो पेनीसिलन्से भी अधिक प्रभावशाली हो।

बेन्ज़ाइल पेनीसिलन्

न्यूयार्क की विनथ्राप केमिकल कम्पनीकी प्रयोगशाला में किये गये अनुसन्धानोंसे ज्ञात हुआ है कि पेनीसिलन् का बेन्ज़ाइल ऐस्टर (Benzyl penicillin G) साधारण सोडियम पेनीसिलन्से लगभग तिगुना उपयोगी है। गोलीके रूपमें खानेसे इसका प्रभाव उतना ही होता है जितना पेनीसिलन् का इन्जेक्शन देनेसे होता है। पेनीसिलन्में यह एक बड़ा अवगुण है कि यह कुछ समय बाद प्रभावहीन हो जाता है। बेन्ज़ाइल पेनीसिलन् शीघ्र प्रभावहीन नहीं होता। आशा है कि निकट भविष्य

में बेन्ज़ाइल पेनीसिलन्की गोलियाँ सर्वसाधारणको प्राप्त हो सकेंगी।

कापालॉय

संयुक्त राष्ट्र अमरीकाकी ओस कैप कम्पनी ने एकनई धातुका आविष्कार किया है। इसका नाम 'कापालॉय प्लैटीनम' रखा गया है। प्रयोगशालाओंमें यह धातु प्लैटीनमके स्थान पर प्रयुक्तकी जा सकती है। देखनेमें यह प्लैटीनमकी भाँति ही सफेद चाँदी सी लगती है। इसके भौतिक गुण भी प्लैटीनमकी तरह हैं। अम्ल और तापका इस पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है। इससे बनाई हुई घरिया (crucibles) प्लैटीनमकी घरिया (crucibles) के स्थान पर प्रयोगकी जा सकती हैं। इनके प्रयोगमें भी उसी सतर्कतासे काम लेना पड़ता है जो प्लैटीनमकी घरियाके प्रयोगमें है। इसका मूल्य प्लैटीनमसे बहुत कम है।

ग्रामोफोन संगीत

अमरीकामें हाल में ऐसे रिकार्ड बने हैं जिनसे ऐसा संगीत निकलता है कि मानो कोई सचमुच सामने बाजा बजा रहा हो। अभी तक साजोंकी कई ध्वनियाँ रिकार्डमें ठीक नहीं उतरती थीं। इस नये रिकार्डमें यह दोष नहीं है। लगभग बीस वर्ष पूर्व सर्व प्रथम विद्युत् रिकार्ड (Electrical recording) बने थे और यह साधारण रिकार्डोंसे बहुत उच्चकोटिके थे। जानकारोंका कथन है कि यह नये रिकार्ड विद्युत् रिकार्डोंसे बहुत उच्चकोटिके हैं।

मोटर साइकिल

युद्धकालमें इस मशीनमें बहुतसे अनुसन्धान हुये हैं जिससे इसकी उपयोगिता बहुत बढ़ गई है। इङ्गलैंडकी एक कम्पनीका, जिसने युद्धकालमें मित्र राष्ट्रों के लिये चार लाख मोटर साइकिलें बनाई थीं, कथन है कि भविष्य की मोटर साइकिल हल्की और मज़बूत होगी। इसमें टायर भी इस प्रकारके लगाये जायेंगे जिनमें पन्कचरकी सम्भावना न होगी। इनकी चाल भी तेज़ होगी। हाल ही में इस कम्पनी ने एक मोटर साइकिल बनाई है जिसका भार केवल पाँच मन है और जो ११० मील प्रति घण्टाकी रफ्तारसे चल सकती है। सर्वसाधारणके लिए हल्की मोटर साइकिल होगी जिसका वजन लगभग तीस सेर होगा और जो तीस मील प्रति घण्टाकी गति तक चल सकेगी।

पालूडरीन

पालूडरीन एक नवीन दवाका नाम है जो कदाचित् मलेरिया बुखारके लिये रामबाण हो। इंगलैंडके वैज्ञानिकों ने दो वर्षके परिश्रमके बाद इसको बनाया है। प्रयोगोंसे यह ज्ञात होता है कि यह कुनैनसे अधिक उपयोगी है। भारत-वर्षके लिये यह समाचार बड़ा महत्वपूर्ण है। इस देशमें प्रतिवर्ष लगभग १० करोड़ मनुष्योंको मलेरिया बुखार होता है और लगभग २० लाख प्राणी मृत्युके घाट उतर जाते हैं। इस देशमें प्रतिवर्ष लगभग ८० करोड़ रुपये मलेरिया बुखारके इलाजमें व्यय होते हैं। निकट भविष्यमें भारतवर्षमें प्रयोगके लिये इंगलैण्डसे पालूडरीन भेजी जायेगी। बम्बईके सूबेमें सर्वप्रथम इसका प्रयोग किया जायेगा और यदि सफलता मिली तो आशा है कि सन् १९४७ में यह सर्वसाधारण को मिल सकेगी।

राकेटसे पत्र भेजे जायँगे

हवाई डाक ४० मिनट में अमरीका पहुँचेगी

राकेट निर्माणकी दिशामें जर्मनीने जितनी उन्नति की है उसे अब ब्रिटिश वैज्ञानिक और आगे बढ़ा रहे हैं। 'डेली मेल' के संवाददाता श्री कोर्टने एडवर्डसका कहना है कि ब्रिटिश वैज्ञानिकोंका विश्वास है कि इस परमाणु युगमें 'राकेट पोस्ट' ५ ००० मील प्रति घंटेके हिसाबसे एक घंटेसे भी कम समयमें इंगलैंडसे अमरीका भेजा जा सकेगा।

वैज्ञानिकोंका जो दल हाल ही में 'वी-२' राकेटोंके सम्बन्धमें परीक्षण करनेके लिये जर्मनी गया था उसके नेता श्री कर्नल जी डब्ल्यू रेवो, सी० बी० ई० का भी यही खयाल है। 'इनका कहना है कि यह तो हो कर ही रहेगा कोरी राकेट पोस्टकी बात कल्पना नहीं है।"

ये राकेट प्राय: वैसे ही होंगे जैसे बी २। इनमें बारूदी सिरेकी जगह डाकके लिये स्थान होगा और सबसे पीछे पाइलटका कमरा होगा जो राकेटकी यात्राके अन्त में इस पर नियंत्रण रखते हुए इसे नीचे उतारेगा।

जर्मन 'ए-९' के नामसे भी एक राकेट बना रहे थे जिसकी रफ्तार प्रतिघंटा ५ हजार मील होती और यह आकाशमें ७० से ८० मील तक ऊपर पहुँचता। नीचे उतरते हुए इसकी गति केवल ९५ मील प्रतिघंटा रह जाती। जर्मन इसे अमरीका पर बम बरसानेके इरादेसे बना रहे थे।

कर्नल रेवोका कहना है कि लन्दनसे न्यूयार्क तक ३,००० मीलकी दूरी लगभग ४० मिनटमें तै की जा सकेगी और राकेटको उसी दिन फिर न्यूयार्कसे लन्दन भेजा जा सकेगा।

सम्पादकीय—

पं० विश्वम्भर नाथ कौशिकका स्वर्गवास

गत १० दिसम्बरको हिन्दी साहित्यने अपने एक अन्य महारथीको खो दिया। पं० विश्वम्भर नाथ कौशिककी गणना हिन्दीके श्रेष्ठ कहानी लेखकोंमें है। कहानी लेखन की नवीन धाराके चलानेका श्रेय भी बहुत कुछ इन्हींको है। जीवनके प्रति इनकी अपनी एक दार्शनिकता थी और उसीकी छाप इनकी कहानियोंमें दिखलाई देती है। उन्हें हर श्रेणीके मनुष्योंके दैनिक मनोविज्ञानका अच्छा ज्ञान था। इसीसे उनकी कहानियोंमें स्वाभाविकता पाई जाती है। राजा-रंक, स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध सबके भावों तथा विचारोंको वह ऐसी स्वाभाविकतासे लिखते थे कि एक-एक बात सत्य घटना प्रतीत होती थी। कहानीके अतिरिक्त यह शिक्षाप्रद व्यंग्यात्मक आलोचनायें लिखनेमें भी सिद्ध हस्त थे।

धनी परिवारमें जन्म लेकर भी धनियोंके दुर्गुणोंसे वह बचे हुये थे। वह कलाके प्रेमी थे। संगीतमें भी उनकी अच्छी पहुँच थी। शिकारी भी अच्छे थे। मनोरंजनमें भी काफी भाग लेते थे। उनके प्रिय खेलोंमें शतरंज और कैरम विशेष थे। बात-चीत करनेमें बड़े सज्जन प्रकृति थे। नया अनजान व्यक्ति भी उनके पास जाते ही मित्रता का आभास पाता था।

जीवनके विभिन्न क्षेत्रोंमें भाग लेते हुये भी वह पढ़ने-लिखनेके लिए काफी समय निकाल लेते थे। वह नित्य नियमपूर्वक कुछ पढ़ते और लिखते थे। उनकी इसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप आज उनके चले जाने पर भी उनकी इतनी कहानियाँ और हास्य लेख हमारे पास उनकी स्मृतिके रूप में रह गये हैं और हिन्दी प्रेमियोंके शोकाकुल हृदयोंको सान्त्वना प्रदान कर रहे हैं। कौशिकजी की रचनायें हिन्दी साहित्यकी अमर निधि हैं। भगवान उनकी दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करे, यही हम हिन्दी प्रेमियोंकी प्रार्थना है। कौशिकजी के परिवारके इस शोकमें हम हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं।

शब्दकी गतिसे भी तेज चलने वाले वायुयान

लड़ाकू वायुमान चलाने वाले शाही वायु सेनाके ऐसे चालकों को, जो शीघ्र ही विघटित नहीं किये जा रहे हैं, जेट संचालित वायुयान चलानेकी शिक्षा दी जा रही है। इन वायुयानोंके संचालनमें चालकोंको किसी कठिनाईका अनुभव नहीं करना पड़ता, क्योंकि इनमें बहुत थोड़े यंत्रोंसे काम लेना पड़ता है। पैट्रोलसे चलने वाले वायुयानोंकी अपेक्षा इसमें बहुत कम यंत्र हैं और चालक सफलता-पूर्वक ही इनका संचालन कर सकता है।

यह तो कहा नहीं जा सकता कि जेट संचालित वायु-यानोंके संचालनकी शिक्षा ग्रहण करते समय चालकोंकी मृत्यु ही नहीं होती, पर यह निश्चय ही कहा जा सकता है कि इसमें उससे अधिक हानि नहीं होती, जो अन्य किसी भी प्रकारके वायुयानके संचालनकी शिक्षा देते समय होती है। जेट-संचालित वायुयानोंके संचालनकी शिक्षा देनेसे पहले ऐसे चालकोंको, जिन्होंने केवल एक इंजन वाले लड़ाकू वायुयान चलाये हैं, दो इंजन वाले वायुयानोंको तेज रफ्तारसे चलानेकी शिक्षा दी जाती है। यही उनका विशेष शिक्षण है।

इधर जब कि चालक ५०० मील प्रति घंटासे अधिक की गतिसे चलने वाले वायुयानोंके संचालनमें अभ्यस्त हो रहे हैं, उधर वायुयान-निर्माता ऐसे वायुयानोंके नमूने बना रहे हैं, जो शब्दकी गतिसे भी तेज रफ्तारसे चलेंगे (७५० मील प्रति घंटा)।

विश्वकी सबसे तेज चलने वाली जेट संचालित मोटरें तो बनायी जा चुकी है, अब वायुयान भी बनाये जा रहे। हैं। यदि आप ब्रिटेनमें डिजाइन बनाने वाले दफ्तरोंको जाकर देखें तो आपको सब तरफ हवाको चीरते हुये जाने वाले वायुयानोंके रेखा चित्र दीख पड़ेंगे।

जेट-संचालित वायुयान भारी मात्रा में ईंधन खाते हैं और जब तक इनका यह दुर्गुण दूर नहीं होता, तब तक अन्य प्रकारके वायुयानोंका विद्यमान रहना अनिवार्य है, जो शाही वायुसेनामें काम आते रहेंगे।

समालोचना

भारतीय प्रत्यक्ष पंचांग

(विक्रम संवत् २००२)—संपादक अध्यापक हरिहर प्राणशंकर भट्ट, सहायक संपादक श्री मुनि श्री विकाशविजय जी (गणित) और न्यायरत्न पं० नारायण शास्त्री वाडीकर (धर्मशास्त्र और फलित ज्योतिष)—प्रकाशक उच्च अभ्यास और संशोधन विभाग, गुजरात वर्नाक्यूलर सोसायटी, अमदाबाद—आकार १०″×७″ पृष्ठ संख्या ५६, मूल्य ।)

सनातन धर्मके जितने पर्व और उत्सव मनाये जाते हैं सबका निश्चय पंचांगों द्वारा किया जाता है जो प्राचीन ज्योतिष सिद्धान्तोंके आधार पर बनाये जाते हैं। भारतवर्ष में जैसे अन्य बातोंमें भिन्न-भिन्न मत हैं वैसेही ज्योतिष सिद्धान्तमें भी, यद्यपि सब का मूल आकाश स्थित सूर्य, चन्द्रमा ग्रह और नक्षत्र हैं जिसके बारेमें किसी आचार्यने कहा है, "प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रं"। परन्तु दुःख है कि इस प्रत्यक्ष ज्योतिशास्त्र को भी लोगोंने तर्क, अनुमान और आप्त वाक्य प्रमाणका क्षेत्र बना रक्खा है। इसलिए भारतवर्षके भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें ही नहीं एक प्रान्तके एक नगरके ही बने हुए पंचांगोंमें भिन्नता देख पड़ती है। उदाहरणके लिए काशीके ही पंचांग ले लीजिए। इस दोष को दूर करनेके लिए कोई १०० वर्षसे पंचांग को शुद्ध शुद्ध बनानेके प्रयत्न हो रहे हैं जिस पर पुराने विचार के पंडितोंने तरह-तरहके आक्षेप भी किये हैं। परन्तु सुधार पक्षके लोग अपने निश्चय पर अटल रहे। अब धीरे-धीरे पुराने विचारके लोग भी समझने लगे हैं कि शुद्ध पंचांगका निर्माण करना आवश्यक है। अध्यापक हरिहर प्राणशंकर भट्ट तथा उनके कई सहयोगी अनेक वर्षोंसे इस प्रयत्नमें लगे हैं और यह हर्षका विषय है कि वे अपने उद्योगमें सफल हुए हैं। प्रस्तुत पंचांग गुजराती भाषामें उन्हींके उद्योगसे प्रकाशित हुआ है। हम निस्संकोच होकर कह सकते हैं कि ऐसा पंचांग इतने कम मूल्य पर पुस्तकाकार छापकर प्रकाशित करना बहुत ही प्रशंसनीय काम है। इसमें सबसे बड़ी विशेषता यह है कि दो पृष्ठोंमें आकाशके उस भागका चित्र दिया गया है जिसमें सूर्य, चंद्रमा, ग्रह आदिके मार्ग तथा विषुववृत्तके उत्तर और दक्षिण ५० अंश दूर तक स्थित नक्षत्र और प्रमुख तारे पड़ते हैं। इसकी सहायतासे कोई भी ध्यान देकर आकाश को देखने वाला नक्षत्रों और तारोंकी पहचान कर सकता है। गुजराती अंक और अक्षर नागरी लिपिसे बहुत कुछ मिलते हैं इसलिए नागरी जाननेवाले सज्जन भी थोड़े प्रयत्नसे इस पंचांगसे लाभ उठा सकते हैं।

प्रस्तावना में विद्वान् सम्पादक ने अच्छी तरह बतला दिया है कि यह पंचांग किस सिद्धान्त पर बनाया गया है और इसका आधार क्या है। भारतीय पंचांग का सबसे जटिल प्रश्न यह है कि नक्षत्र चक्रका आरंभ स्थान क्या माना जाय। प्राचीन सिद्धान्तोंसे इसका निश्चय करना असंभव है क्योंकि इन्हीं का आधार मानकर कोई कहता है कि चित्रा तारा आरंभ स्थानसे १८० अंश पर है और कोई कहता है कि यह १८३°२०′ पर है। महाराष्ट्रका केतकी पचांग पहले पक्षको सिद्ध करता है और तिलक पंचांग दूसरे पक्ष को। बंगालकी विशुद्ध सिद्धान्त पंजिका भी पहले पक्षका समर्थन करती है। इन दोनों पक्षोंके पंचांग महाराष्ट्रमें चलते हैं। बंगालमें पहले पक्षका पंचांग बंगला और अंग्रेजी दोनों भाषाओंमें निकलता है। परन्तु प्रस्तुत पंचांगके विद्वान् सम्पादक ने सूर्यसिद्धान्तके आधार पर छायार्क अर्थात् सूर्यकी स्पष्ट स्थितिसे इसका निश्चय इस प्रकार किया है कि गुजरात प्रान्तके संवत् २००१ वि० अथवा हमारे प्रान्त की संवत् २००२ विक्रमीयकी स्पष्ट मेष संक्रान्ति काल की गणना सूर्यसिद्धान्तसे करके उस समयका सूर्यका सायन भोगांश नाविक पंचांगसे निकाल कर और इसी को अयनांश मानकर आदि बिन्दुका निश्चय किया है। वर्षमान सूर्य सिद्धान्तके अनुसार न मान कर वेधसिद्ध ज्योतिषके अनुसार ३६५ दिन ६ घंटा ९ मिनट १२ सेकंड अथवा ३६५ दिन १५ घड़ी २३ पल का माना है। इस प्रकार अयनांश २२°५९′५७″ होता है जिसको पूरा २३° मानकर अयन चलनकी वार्षिक गति ५०। विकला स्थिर की है। इस प्रकार की गणनासे राशिचक्र का आरंभ स्थान स्थिर हो जाता है परन्तु यह भी अप्रामाणिक (Arbitrary) कहा जायगा क्योंकि जैसे २००२ वि० मेष संक्रान्तिका सायन सूर्य का भोगांश शुद्ध

अयनांश मान लिया है वैसेही किसी भूत या भविष्य संवत का सायन सूर्य भी माना जा सकता है। इससे तो अच्छा यही जान पड़ता है कि चित्रा तारेका भोग १८०° मानकर आरंभ स्थान स्थिर कर लिया जाय क्योंकि इस तारे का योग सूर्यसिद्धान्तके अनुसार भी इतनाही माना गया है और २३°से बहुत दूर भी नहीं है केवल ४॥ कलाका अंतर पड़ता है जिससे कोई विशेष हानि नहीं होती। यदि सब लोग सूर्यसिद्धान्तके नाम पर इसीको स्वीकार कर लें तो भी ठीक है। अब इस प्रश्न को बहुत दिन तक उलझाए रखना ठीक नहीं है।

यथार्थ पंचांगकी रचना इस प्रकार है:—प्रत्येक बायें पृष्ठ पर पूरे एक चान्द्रमास की तिथि, नक्षत्र, योग, करण अहमदाबादके सूर्योदयसे घड़ी पलमें देकर फिर इन्हें भारतीय प्रामाणिक काल (Indian Standard time) में दे दिया गया है जो भारतवर्षके किसी भी प्रान्तमें आसानीसे समझा जा सकता है क्योंकि यही रेलका समय होता है जिससे सब लोग परिचित होते हैं और घड़ियांभी इसीके अनुसार मिलायी जाती हैं। काशीके पंचांगोंमें यह सब बातें धूपघड़ीके अनुसार देकर आकार तो बहुत बड़ा दिया जाता है परन्तु वह काल्पनिक ही होता है क्योंकि धूपघड़ीके अनुसार कोई समय नहीं रखता और न जानता है। चंद्र-संचारभी इसी प्रामाणिक कालमें दिया गया है। इसके बाद अहमदाबादका सूर्योदय सूर्यास्त प्रामाणिक-काल में दिया गया है। फिर दिन मान, जैन तिथि, पारसी और मुसलमानी तारीखें दी गयी हैं। बार आरंभमें और अंग्रेजी तारीख आरंभ और अंत दोनों तरफ हैं। अंतिम खानेमें केवल सूर्योदय कालकी पाक्षिक कुंडलियां (ग्रह चक्र) दी गई हैं।

प्रत्येक दाहिने पृष्ठ पर अंग्रेजी महीनेकी प्रत्येक तारीख के ५॥ बजे प्रातःकाल सूर्य, चन्द्रमा, मगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, युरेनस, नेपच्यून और प्लूटो ग्रहोंकी दैनिक स्थिति शुद्ध गणनाके अनुसार तथा दैनिक लग्न-सारणी दी गयी है। यह क्रम हमारी समझमें बड़ा अच्छा है। इससे ग्रहोंकी स्थिति समझनेमें बड़ी सुविधा होती है। अंतमें एक पृष्ठपर प्रत्येक ग्रहके शर और क्रान्ति अंग्रेजी महीने की १ली और १६वीं तारीखके दिये गये हैं।

प्रत्येक मासके धार्मिक व्रत, पर्व, उत्सव और शुभाशुभ योगोंका विस्तारसहित विवरण स्वतंत्र पृष्ठोंमें तिथि, बार और तारीखके साथ दिया गया है। ये बातें साधारण पंचांगोंमें तिथि नक्षत्र योगोंके साथ एकही पृष्ठ पर देनेसे पृष्ठोंका आकार लंबाईमें इतना बढ़ जाता है कि पचांगको बिना मोड़े हुए नहीं रखा जा सकता है जिससे बड़ी असुविधा होती है।

इसके बाद ग्रहोंके निरयण तथा सायन राशि और निरयण नक्षत्रमें प्रवेश करनेके समय, उनका लोप दर्शन (उदयास्त) वक्र मार्गी होनेकी बातें दी गयी हैं। कौन ग्रह किस ग्रहसे किस समय युति करते हैं यह भी विस्तारके साथ दिया गया है जो उन लोगोंके बड़े कामका है जो पंचांगकी बातोंको आकाशके प्रत्यक्ष दर्शनसे भी मिलाकर देखना चाहते हैं। दो पृष्ठोंमें उदाहरणके साथ यह समझाया गया है कि अहमदाबादके सूर्योदयास्तकालसे अन्य स्थानोंका सूर्योदयास्तकाल तथा लग्न आदि कैसे जाने जा सकते हैं। यहाँ एक बातकी कमी है जो शायद काग़ज़की किफायतके कारण है। मैं आशा करता हूँ कि भविष्यमें भारतवर्षके प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्थानोंके देशान्तर और अक्षांश बतलानेकी सारणी भी जो दो पृष्ठोंमें हो सकती है जोड़ दी जायगी।

'कुछ उपयोगी बातों में' पंचांगके पांच अंगोंकी चर्चा, मकर संक्रान्ति काल, १८६८ का विंशोपक, आयव्यय, वर्षफल, विवाहके मुहूर्त, यात्राके मुहूर्त जाननेकी बातें चौघड़िया मुहूर्त, हरेक राशिवालोंकी दिनदिशा जाननेका चक्र, घात कोष्ठक तथा शुद्धि पत्रक है।

इस ढंगका सुन्दर और सस्ता पंचांग प्रकाशित करनेके लिए हम गुजरात वर्नाक्यूलर सोसाइटी अहमदाबादको बधाई देते हैं। यदि इसका हिन्दी संस्करण भी निकाला जाय तो हिन्दी भाषा जाननेवालेभी ऐसे शुद्ध और सस्ते पंचांगसे लाभ उठा सकते हैं। हिन्दी संस्करणमें अहमदाबाद की जगह उज्जैन या काशीके सूर्योदयसे गणना रहे तो और भी उत्तम और सुविधाजनक हो जाय।

—श्री महाबीरप्रसाद श्रीवास्तव

———

विज्ञान-परिषद्‌की प्रकाशित प्राप्य पुस्तकोंको सम्पूर्ण सूची

१—विज्ञान प्रवेशिका, भाग १—विज्ञानकी प्रारम्भिक बातें सीखनेका सबसे उत्तम साधन—ले० श्री रामदास गौड़ एम० ए० और प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी० ; ।)

२—चुम्बक—हाईस्कूलमें पढ़ाने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी०; सजि०; ।।=)

३—मनोरञ्जक रसायन—इसमें रसायन विज्ञान उपन्यासकी तरह रोचक बना दिया गया है, सबके पढ़ने योग्य है—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम० एस-सी० ; १।।),

४—सूर्य-सिद्धान्त—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान-भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखनेका सबसे सुलभ उपाय—पृष्ठ संख्या १२१४ ; १४० चित्र तथा नकशे—ले० श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; सजिल्द; दो भागोंमें; मूल्य ६) । इस भाष्यपर लेखकको हिन्दी साहित्य सम्मेलनका १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है ।

५—वैज्ञानिक परिमाण—विज्ञानकी विविध शाखाओंकी इकाइयोंकी सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहालकरण सेठी डी० एस सी०; ।।।),

६—समीकरण मीमांसा—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १।।), द्वितीय भाग ।।=),

७—निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री बी० एस-सी० ; ।।),

८—बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित—इंटरमीडियेटके गणितके विद्यार्थियोंके लिये—ले० डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी० ; १।),

९—गुरुदेवके साथ यात्रा—डाक्टर जे० सी० बोसकी यात्राओंका लोकप्रिय वर्णन ; ।=),

१०—केदार-बद्री यात्रा—केदारनाथ और बद्रीनाथके यात्रियोंके लिये उपयोगी; ।),

११—वर्षा और वनस्पति—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शङ्करराव जोशी; ।),

१२—मनुष्यका आहार—कौन-सा आहार सर्वोत्तम है—ले० वैद्य गोपीनाथ गुप्त; ।=),

१३—सुवर्णकारी—क्रियात्मक—ले० श्री गंगाशंकर पचौली; ।),

१४—रसायन इतिहास—इंटरमीडियेटके विद्यार्थियोंके योग्य—ले० डा० आत्माराम डी० एस-सी०; ।।।),

१५—विज्ञानका रजत-जयन्ती अंक—विज्ञान परिषद् के २५ वर्षका इतिहास तथा विशेष लेखोंका संग्रह; १)

१६—फल-संरक्षण—दूसरापरिवर्धित संस्करण-फलोंकी डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार आदि बनानेकी अपूर्व पुस्तक; २१२ पृष्ठ; २५ चित्र—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्रनारायण सिंह एम० एस-सी०; २),

१७—व्यङ्ग-चित्रण—(कार्टून बनानेकी विद्या)—ले० एल० ए० डाउस्ट ; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी, एम० ए०; १७५ पृष्ठ; सैकड़ों चित्र, सजिल्द; १।।)

१८—मिट्टीके बरतन—चीनी मिट्टीके बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा ; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र, सजिल्द; १।।),

१९—वायुमंडल—ऊपरी वायुमंडलका सरल वर्णन—ले० डाक्टर के० बी० माथुर; १८६ पृष्ठ; २५ चित्र, सजिल्द; १।।),

२०—लकड़ी पर पॉलिश—पॉलिशकरनेके नवीन और पुराने सभी ढंगोंका ब्योरेवार वर्णन । इससे कोई भी पॉलिश करना सीख सकता है—ले० डा० गोरखप्रसाद और श्रीरामयत्न भटनागर, एम०, ए०, २१८ पृष्ठ, ३१ चित्र, सजिल्द; १।।),

२१—उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश, आकार बड़ा (विज्ञानके बराबर) २६० पृष्ठ ; २००० नुसखे, १०० चित्र; एक एक नुसखेसे सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं या हज़ारों रुपये कमाये जा सकते हैं । प्रत्येक गृहस्थके लिये उपयोगी ; मूल्य अजिल्द २) सजिल्द २।।),

२२—कलम-पेबंद—ले० श्री शंकरराव जोशी, २०० पृष्ठ; ५० चित्र; मालियों, मालिकों और कृषकोंके लिये उपयोगी; सजिल्द; १।।),

२३—जिल्दसाज़ी—क्रियात्मक और ब्योरेवार। इससे सभी जिल्दसाज़ी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०; १८० पृष्ठ, ६२ चित्र; सजिल्द १॥),

२४—भारतीय चीनी मिट्टियाँ—औद्योगिक पाठशालाओं के विद्यार्थियोंके लिये—ले० प्रो० एम० एल मिश्र, २६० पृष्ठ; १२ चित्र; सजिल्द १॥),

२५—त्रिफला—दूसरा परिवर्धित संस्करण-प्रत्येक वैद्य और गृहस्थके लिये—ले० श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार, २१६ पृष्ठ; ३ चित्र (एक रङ्गीन); सजिल्द २।),

यह पुस्तक गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय की १३ श्रेणी के लिए द्रव्यगुणके स्वाध्याय पुस्तकके रूपमें शिक्षापटलमें स्वीकृत हो चुकी है।"

२६—मधुमक्खी-पालन—ले० पण्डित दयाराम जुगड़ान, भूतपूर्व अध्यक्ष, ज्योलीकोट सरकारी मधुवटी; क्रियात्मक और ब्यौरेवार; मधुमक्खी पालकोंके लिये उपयोगी तो है ही जनसाधारणको इस पुस्तकका अधिकांश अत्यन्त रोचक प्रतीत होगा; मधुमक्खियों के रहन-सहन पर पूरा प्रकाश डाला गया है। ४०० पृष्ठ; अनेक चित्र और नकशे, एक रंगीन चित्र; सजिल्द; २॥),

२७—तैरना—तैरना सीखने और डूबते हुए लोगोंको बचाने की रीति अच्छी तरह समझायी गयी है। ले० डाक्टर गोरखप्रसाद पृष्ठ १०४ मूल्य १),

२८—अंजीर—लेखक श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार-अंजीर का विशद वर्णन और उपयोग करनेकी रीति। पृष्ठ ४२ दो चित्र, मूल्य ॥),

यह पुस्तक भी गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालयके शिक्षा पटलमें स्वीकृत हो चुकी है।

२९—सरल विज्ञान सागर प्रथम भाग—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद। बड़ी सरल और रोचक भाषा में जंतुओंके विचित्र संसार, पेड़ पौधों की अचरज भरी दुनिया, सूर्य, चन्द्र और तारोंकी जीवन कथा तथा भारतीय ज्योतिषके संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। विज्ञानके आकार के ४५० पृष्ठ और ३२० चित्रोंसे सजे हुए ग्रन्थ की शोभा देखते ही बनती है। सजिल्द मूल्य ६),

हमारे यहाँ नीचे लिखी पुस्तकें भी मिलती हैं:—

१—विज्ञान हस्तामलक—ले०—स्व० रामदास गौड़ एम० ए० भारतीय भाषाओंमें अपने ढंगका यह निराला ग्रंथ है, इसमें सीधी सादी भाषामें अठारह विज्ञानोंकी रोचक कहानी है, सुन्दर सादे और रंगीन पौने दो सौ चित्रोंसे सुसज्जित है, आजतककी अद्भुत बातोंका मनोमोहक वर्णन है, विश्वविद्यालयोंमें भी पढ़ाये जानेवाले विषयोंका समावेश है, अकेली यह एक पुस्तक विज्ञानकी एक समूची लैब्रेरी, है एक ही ग्रंथमें विज्ञानका एक विश्वविद्यालय है।

२—सौर-परिवार—लेखक डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० आधुनिक ज्योतिष पर अनोखी पुस्तक ७७६ पृष्ठ, ५८७ चित्र (जिनमें ११ रंगीन हैं) मूल्य १२) इस पुस्तक को काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा से रेडिचे पदक तथा २००) का छन्नूलाल पारितोषिक मिला है।

३—भारतीय वैज्ञानिक—(१२ भारतीय वैज्ञानिकोंकी जीवनियां) श्री श्याम नारायण कपूर, सचित्र और सजिल्द; ३८० पृष्ठ; ३)

४—यान्त्रिक-चित्रकारी—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा, ए० एम०आई०एल०ई०। इस पुस्तकके प्रतिपाद्य विषयको अँग्रेज़ीमें 'मिकैनिकल ड्राइंग' कहते हैं। ३०० पृष्ठ, ७० चित्र; ८० उपयोगी सारिणियां; सस्ता संस्करण २॥)

५—वैक्युम-ब्रेक—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा। यह पुस्तक रेलवेमें काम करने वाले फ़िटरों इंजन-ड्राइवरों, फ़ोर-मैनों और कैरेज एग्ज़ामिनरोंके लिये अत्यन्त उपयोगी है। १६० पृष्ठ; ३१ चित्र जिनमें कई रंगीन हैं, २),

विज्ञान-परिषद्, ४२, टैगोर टाउन, इलाहाबाद

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

// विज्ञान

विज्ञान-परिषद्, प्रयागका मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ६२ | कुंभ सम्वत् २००२, फरवरी १९४६ | संख्या ५

वायु-विज्ञान

[ले०—प्रो० जगदेवसिंह बी० एस-सी० (आनर्स), एम० एस-सी०]

तापक्रम, दबाव, वायु-आर्द्रता इत्यादि वायु-विज्ञानके तत्व (Meteorological-elements) माने जाते हैं। तापक्रमके अनुसार वायु-मंडलके दो भाग किये गये हैं। नीचेका भाग, जिसमें ऊँचाईके अनुसार तापक्रम घटता जाता है 'ट्रोपोस्फियर' (Troposphere) कहा जाता है, और इसके ऊपरका भाग, जिसमें हम ज्यों-ज्यों ऊपर जाते हैं तापक्रम बढ़ता जाता है, 'स्ट्रैटोस्फियर' (Stratosphere) कहा जाता है। इन दो भागोंके बीचमें एक पतला ऐसा क्षेत्र होता है जिसमें तापक्रम एक ही रहता है। उस भागको 'ट्रोपोपाज़' (tropopause) कहते हैं। ट्रोपोस्फियर ऐसा भाग है जिसमें वायुका वेग ऊपर-नीचे होता रहता है। इसकी ऊँचाई पृथ्वीके धरातलसे क़रीब क़रीब ६ मीलसे लेकर १२ मील होती है। इसके ऊपर लगभग एक मील तक ट्रोपोपाज़ होता है। इसके ऊपर हमें स्ट्रैटोस्फियर ही मिलता है। इस भागमें वायुका वेग पृथ्वीकी सतहके समानान्तर होता है। इसका परिणाम यह होता है कि जलकी बूँदें, जो सदैव ही जलके धरातलसे उड़ा करती हैं, अधिकतर नीचे वाले भागमें ही रह जाती हैं। इसीलिये बादलका बनना तथा ऋतु परिवर्तनकी घटनायें सब नीचे वाले भागमें ही होती हैं।

किसी वस्तु-विशेषका तापक्रम मालूम करनेके लिये हम साधारणतः तापमापककी घुंडीको जिसमें पारा रहता है उस वस्तुमें रख देते हैं। परन्तु वायुका तापक्रम मालूम करनेके लिये हमें विशेष कष्ट उठाना पड़ता है। तापमापकोंको एक विशेष प्रकारके बने हुए ढक्कनमें, जिसकी दीवारें चुनी हुई होती हैं ताकि हवा उनसे होकर आ-जा सके, रख देते हैं। उसको हम स्टेवेन्सन साहेब का ढक्कन (Stevenson's Screen) कहते हैं। तापमापक, जो ऐसे ढक्कनमें रक्खे जाते हैं, चार प्रकारके होते हैं। एकसे केवल वायुका तापक्रम ज्ञात होता है। दूसरेकी घुंडीको भीगे कपड़ेसे ढक देते हैं। इस प्रकार जो तापक्रम मालूम होता है, उसको भीगी-घुंडीका तापक्रम (Wet-bulb temperature) कहते हैं। तीसरे प्रकारके तापमापकसे दिनका अधिकसे अधिक पहुँचा हुआ तापक्रम मालूम हो जाता है। और चौथेसे दिनका न्यूनतम तापक्रम मालूम हो जाता है। इस प्रकार वायुके तापक्रमके ज्ञानसे हम वायुकी बातोंका पता लगा लेते हैं। वायुके तापक्रम तथा उस समयकी भीगी घुंडी के तापक्रमसे हम यह ज्ञात कर सकते हैं कि वायुमें कितनी आर्द्रता है और कितनी शक्ति है। साथ-ही साथ यह भी पता चल सकता है कि उस शक्तिका कितना भाग साध्य है और कितना नहीं।

इस प्रकार पृथ्वीके धरातलके आस-पासकी वायुका तापक्रम सरलतासे मालूम हो जाता है। परन्तु जब हमें ऊपरकी वायुका तापक्रम जानना हो तो उसके लिये ताप-मापकको वायुयान अथवा गुब्बारेके साथ ऊपर भेज देते हैं। तापक्रम, दबाव, तथा आर्द्रता सब एक ही साथ मालूम हो जाते हैं। आज इन तीनोंको एक ही साथ ज्ञात करनेके लिये इतने हल्के यन्त्र बनाये गये हैं कि सब मिलकर उसका भार बीस ही ग्राम होता है। साधारणसे साधारण गुब्बारे भी लेकर उसे उड़ सकते हैं। आजकल इसके लिये बेतारकी तारबर्कीका भी प्रयोग किया जा रहा है। बेतारकी तारबर्कीमें विशेषकर दो ही भाग होते हैं। एकसे समाचार भेजते हैं और दूसरेसे उसको ज्ञात करते हैं। एक को ट्रांसमिटर (Transmitter—प्रेषक) कहते हैं और दूसरेको रिसीवर (Receiver-संग्राहक) कहते हैं। प्रेषकको गुब्बारे में बांधदेते हैं और 'रिसीवर' तापक्रम, दबाव तथा आर्द्रताको एक ही साथ कागज़ पर लिखता रहता है। आजकल इस विषयके ऊपर विशेष अनुसन्धान हो रहे हैं। वायुयान तथा गुब्बारे बहुत ऊँचाई तक नहीं जा सकते, क्योंकि ज्यों-ज्यों हम ऊपर जाते हैं, हवा का दबाव कम होता जाता है। गुब्बारे ऊपर जाने पर फैलना प्रारम्भ करते हैं। परिणामस्वरूप वे कुछ ऊँचाईके बाद फट जाते हैं। इस प्रकार हम ट्रोपोस्फियरके कुछ भाग तकका तापक्रम ज्ञात कर लेते हैं। इसके ऊपरी भागका तापक्रम हमें ऑक्सिजन-के कुछ गुण द्वारा ज्ञात होता है। जब हम प्रकाशको किसी त्रिकोण शीशे से होकर जाने देते हैं तो यह भिन्न-भिन्न रंगों में बँट जाता है। इसे हम रश्मिचित्र (Spectrum) कहते हैं। रश्मिचित्र या तो क्रमिक (Continuous) होता है, या रेखा (Line) सा होता है, या रेखाओंका समुदाय (Band) सा होता है। ऑक्सिजन (Oxygen) के रश्मिचित्रमें हमें एक रेखा मिलती है, जिसकी लहर लम्बाई आर्मस्ट्रांगकी इकाईके अनुसार ५५७७ है। इस रेखाकी ज्योति (Intensity) बहुत बदला करती है। अरोराके प्रकाशके रश्मिचित्रमें भी यह रेखा पाई जाती है। उस ज्योति तथा तापक्रमके मध्य एक सम्बन्ध स्थापित किया गया है। इस प्रकार वायुमंडलके ऊपरी भागका तापक्रम ज्ञात हो जाता है। हीलियम (Helium) एक तत्त्व है जो वायुमें पाया जाता है। वायुमें इसके अतिरिक्त और भी गैसें पाई जाती हैं, जैसे नाइट्रोजन, कारबन-डाई-ऑक्साइड, अमोनिया इत्यादि। हीलियमकी मात्रा भिन्न-भिन्न ऊँचाई पर भिन्न-भिन्न होती है। इसके इस गुणसे ऊपरी भागका तापक्रम मालूम किया गया है। इस प्रकार वायुमंडलके ऊपरसे ऊपर वाले भागका तापक्रम मालूम किया गया है। क़रीब-क़रीब यह तापक्रम उतना ही है जितना पृथ्वीके धरातलके समीपकी वायुका तापक्रम होता है। ट्रोपोस्फियर तथा स्ट्रैटोस्फियरकी ऊंचाई विषुवत् रेखा तथा ध्रुवों पर एक ही सी नहीं होती। विषुवत् रेखा पर ट्रोपोस्फियरकी ऊंचाई ६ मील है और ध्रुवों पर १२ मील। ऋतु-परिवर्तनका असर भी इस ऊँचाई पर पड़ता है।

यह पहले ही लिखा जा चुका है कि हम ज्यों-ज्यों ऊपर जाते हैं, त्यों-त्यों वायुका दबाव कम होता जाता है। ३०० फीट ऊपर जाने पर क़रीब एक इंच दबाव कम होता है। इस प्रकार वायुके दबावसे हम इसकी ऊँचाई ज्ञात कर लेते हैं। दबावका ठीक-ठीक ज्ञान हमें बैरोमीटर (Barometers—दबाव-मापकों) के द्वारा होता है। ये दो प्रकारके होते हैं। एक तो ऐसा होता है जिसमें हम पारे का प्रयोग करते हैं तथा दूसरा ऐसा होता है जिसमें किसीभी तरल पदार्थका प्रयोग नहीं करते। इस दबाव-मापक को अंगरेज़ीमें 'एनरत्रायड बैरोमीटर' (Aneroid-barometer) कहते हैं। यह दबाव-मापक बहुत हल्का बनाया जा सकता है, इस कारण इसका प्रयोग वायु-विज्ञानमें बहुत ही अधिक होता है। जब यह दबावको अपनेसे लिखता भी जाता है तो उस समय उसको बैरोग्राफ (Barograph—दबाव-लेखक) कहते हैं।

वायु-आर्द्रताके दो प्रकार हैं—पहला आपेक्षित (Relative-humidity) तथा दूसरा निरपेक्षित (Absolute-humidity)। निरपेक्षित आर्द्रतामें एक घनमीटर हवामें जलकी मात्रा मालूम की जाती है। आपेक्षित आर्द्रतामें यह ज्ञात किया जाता है कि किसी दिये हुए वायुमें जो जलकी मात्रा मौजूद है, तथा कमरेके तापक्रम पर अधिकसे अधिक जो जलकी मात्रा मौजूद हो

सकती है उनमें क्या सम्बन्ध है। आपेक्षित आर्द्रताको सदैव प्रति सैकड़े में लिखा जाता है।

वायुकी आर्द्रता ज्ञात करनेके लिये जिन यन्त्रोंका प्रयोग किया जाता है उन्हें अंगरेज़ीमें हाइग्रोमीटर (Hygrometer—वायु-जल-मापक) कहते हैं। हिन्दीमें उन्हें वायु-जल-मापक कहा जा सकता है। जब ये यन्त्र अपने ही से आर्द्रता को लिख डालते हैं तो उन्हें हाइग्रोग्राफ (Hygrograph) कहते हैं। हिन्दी में उन्हें वायु-जल-लेखक कह सकते हैं। वायु-जल-मापक चार प्रकारके होते हैं।

(१) ड्यू पाइंट हाइग्रोमीटर (Dew point hygrometer अर्थात् ओस-बिन्दु वायु जल-मापक)

(२) केमिकल हाइग्रोमीटर (Chemical hygrometer—रासायनिक वायु-जल मापक)

(३) हेयर्स हाइग्रोमीटर (Hair's hygrometer—केश-वायु-जल-मापक)

(४) वेट बल्ब एण्ड ड्राई बल्ब हाइग्रोमीटर (Wet bulb and dry bulb hygrometer—भीगी तथा सूखी घुंडी-वायु-जल मापक)

इन सब प्रकारके वायु-जल-मापकोंमें वायु-विज्ञानके लिये सबसे लाभदायक केश-वायु-जल-मापक ही होता है। इसके लिये ऐसे केश लिये जाते हैं जिनमें तेल का प्रयोग कभी नहीं किया गया हो। उसको पहले कास्टिक सोडा (Caustic soda) के घोलसे भली भाँति धो देते हैं, फिर अलकोहल (Alcohol) से धोकर उसे अच्छी तरह साफ़ कर लेते हैं। ऐसा केश वायु-आर्द्रता अधिक होने पर सिकुड़ जाता है और वायुमें जलकी मात्रा कम होने पर फैलकर बढ़ जाता है। केशके इस गुणको केश-वायु-जल-मापक बनानेमें प्रयोग करते हैं। इससे दूसरे वायु-जल-मापकोंकी अपेक्षा अधिक लाभ यह होता है कि यह अत्यन्त ही हलका होता है। इसका प्रयोग विशेषकर वायुके ऊपरी भागमें आर्द्रता ज्ञात करनेके लिये करते हैं। गुब्बारे इसे सरलतासे लेकर उड़ सकते हैं। ऐसा यन्त्र जिसमें ताप-लेखक, दबाव-लेखक तथा वायु-जल-लेखक सब साथ-साथ हों मीटियोरोग्राफ़ (Meteorograph—वायु-विज्ञान तत्त्व-लेखक) कहलाता है।

इसके पश्चात् हम बादलोंकी ओर अपनी दृष्टि ले जायेंगे। यों तो साहित्यमें इन्होंने दूतका काम भी किया है, परन्तु यहाँ उनकी वैज्ञानिक व्याख्या ही की जायेगी। ये आकाशमें जलकी बूँदें अथवा बर्फ़के रवे होते हैं। जब वायु गर्म होकर ऊपर उठती है तो धीरे-धीरे ठंढी होती जाती है। एक ऐसा बिन्दु आता है जब जलसे वायु पूरी भर जाती है। इसके पश्चात् वायुका जल गैससे द्रव होकर धूलके कणों पर जलकी बूँदोंमें अपनेको परिवर्तित करता है। यही जलकी बूँदें हमें बादलोंके रूपमें दिखलाई देती हैं। जब ये बादल और भी ऊपर जाते हैं तो धीरे-धीरे ठंढकके कारण जलकी बूँदें बर्फ़के रवेमें बदल जाती हैं। इस प्रकार उच्च घन पानीकी बूँदोंके नहीं बने होते, बल्कि बर्फ़के रवोंके बने होते हैं।

बादल कई प्रकारके होते हैं। ऊँचाईके अनुसार इनको तीन भागों में बाँटा गया है। (१) उच्च घन (High clouds) (२) मध्य घन (Medium clouds) और (३) निम्न घन (Low clouds)। उच्च घन ६ कीलोमीटर से ऊचे होते हैं। तीन से छै कीलोमीटर तककी ऊँचाई वाले बादलको मध्य घन कहते हैं। तीन किलोमीटर से नीचे वाले बादलको निम्न घन कहते हैं। उच्च घन तीन प्रकारके होते हैं। (१) सिरस (Cirrus) (२) सिरोस्ट्रेटस (Cirrostratus) (३) सिरो क्युमुलस (Cirro-cumulus)। उच्च घन सब बर्फ़के रवेके बने होते हैं। ये रवे सुन्दर षट-भुजाकार होते हैं। देखनेमें ये सब सफेद रंगके होते हैं। सिरस बादल बनावटमें पक्षियोंके पंखके आकारका होता है। सिरोस्ट्रेटसका यह गुण होता है कि इसके रहने पर चद्रमा के चारों ओर मडल (Halo) दिखलाई देता है। सिरोक्युमुलस लहरकी शक्लका होता है। मध्य घन दो प्रकार के होते हैं (१) अल्टो स्ट्रेटस (Alto stratus) तथा (२) अल्टो-क्युमुलस (Alto-Cumulus)। अल्टो-क्युमुलस भी लहरकी ही शक्लका होता है, परन्तु ये लहरें सिरो-क्युमुलस से बड़ी होती हैं। अल्टो-स्ट्रेटस फैले हुए चादरकी आकृति का होता है। यह बात जान लेनी चाहिये कि उच्च तथा मध्यघन हमें वर्षा नहीं दे सकते। इसके लिए हमें निम्न घनकी ही शरण लेनी पड़ेगी। ये पाँच प्रकारके

होते हैं—(१) कुमुलस (Cumulus) (२) स्ट्रेटस (Stratus), (३) स्ट्रेटो-कुमुलस (Strato cumulus) (४) निम्बो-स्ट्रेटस (Nimbo-stratus), (५) कुमुलो-निम्बस (Cumulo-nimbus)। इन बादलोंमें अंतिम दो बादल अर्थात् निम्बो-स्ट्रेटस तथा कुमुलो-निम्बस ही वर्षाके लिए मशहूर माने जाते हैं। निम्बो-स्ट्रेटस बहुत ही लम्बा चौड़ा बादल होता है। इससे जब वर्षा प्रारम्भ हो जाती है तो जल्द रुकती नहीं। वर्षा लगातार तथा खूब होती है। इसीलिये वैज्ञानिकोंने इसका नाम वर्षा कालका रुक्ष-घन (Ragged clouds of bad) weather) रक्खा है। कुमुलो-निम्बसको विद्युत-घन (Thunder-cloud) भी कहते हैं, क्योंकि इसमें सदैव ही बिजली पाई जाती है। ये बादल बहुत ऊँचाई तक चले जाते हैं। इनमें वायुका वेग ऊपरकी ओर बहुत ही अधिक होता है। वायुयान इनमें से होकर नहीं उड़ सकते। अधिकतर ये अपने साथ ओलों (Hailstone) को लिये रहते हैं। परिणाम-स्वरूप ये बादल बहुत ही भयंकर माने जाते हैं। यदि किसी ओलेको लेकर ठीक बीचसे उसके दो भाग कर दिये जायें तो उसमें कुछ पर्तें दिखलाई देती हैं। कुछ तो पार-दर्शक (Transparent) होती हैं तथा कुछ अर्ध-पारदर्शक (Translucent)। इनको गिन कर यह मालूम किया जा सकता है कि कितनी बार ये बेचारे निर्दयता-पूर्वक वायुके वेगसे ऊपर नीचे फेंके गये हैं।

वायुका वेग मालूम करनेके लिये जिस यन्त्रका प्रयोग किया जाता है उसे एनिमोमीटर (Anemometer—वायु-वेग-मापक) कहते हैं। यदि यह उसको साथ ही साथ लिखता भी जाता है तो उसको एनिमोग्राफ (Anemograph—वायु-वेग-लेखक) कहते हैं। आजकल जिस वायु-वेग-लेखक का प्रयोग किया गया है, उसके जन्मदाता डाइन साहेब है।

किसी स्थानके जल-वायुकी विद्याके दो विभाग किये गये हैं। एकमें पृथ्वीके धरातलसे दो मीटर ऊपर तककी बातोंका समावेश होता है, तथा दूसरेमें दो मीटरसे ऊपरकी बातोंका। अंग्रेजीमें पहलेको माइक्रो क्लाइमेटोलोजी (Micro-climatology) कहते हैं, तथा दूसरे को मैक्रो-क्लाइमेटोलोजी (Macro-climatology) कहते हैं। मैक्रो-क्लाइमेटोलोजीके अनुसार भारतवर्षमें सालके चार भाग किये गये हैं—

(१) शरद-ऋतु (North East monsoon)
(२) ग्रीष्म-ऋतु Hot weather period)
(३) वर्षा-ऋतु (South West monsoon)
(४) वर्षा ऋतुके हटनेका समय (Retreating period)

शरद ऋतु भारतवर्षमें दिसम्बरसे लेकर मार्च तक माना जाता है। इस समय बंगालकी खाड़ी और आस-पास के समुद्रोंमें वायुकी दिशा उत्तर-पूर्व होती है। इस कारण इसको उत्तर-पूर्व मानसून भी कहते हैं। इस मौसिममें भारतवर्षमें उत्तर-पश्चिम भागसे कुछ साइक्लोन आते हैं जिनको 'वेस्टर्न डिप्रेसन' (Western Depression) कहते हैं। ये अधिकतर दो प्रकारकी वायुके मिश्रणसे बने होते हैं। ऐसे साइक्लोन कर्क रेखा तथा मकर रेखाके बीच वाले भाग अर्थात् उष्ण कटिबन्ध में नहीं बनते। इस कारण ये इक्स्ट्रा-ट्रापिकल-साइक्लोन (Extra-tropical cyclone) कहे जाते हैं। ग्रीष्म ऋतु यहाँ अप्रैल तथा मईके महीनेमें माना जाता है। इस समय गंगाकी पेटीमें आँधियाँ खूब आती हैं। ये आँधियाँ दो प्रकारकी होती हैं। एक तो एकमात्र दबावके कारण पैदा होती हैं। इनको ग्रेडियन्ट-विन्ड (Gradient wind) कहते हैं। दूसरी ऐसी होती हैं जो वायुमें अस्थिरताके कारण पैदा होती हैं। ऐसी अस्थिरता भिन्न-भिन्न प्रकारके वायुके मिश्रणसे हो जाती है। इस प्रकारकी आँधियोंको अस्थिर (Instability wind) कहते हैं। इस मौसिममें बंगालमें कलबैसाखी (Norwerters) खूब आते हैं। ये एक प्रकारकी आँधियाँ हैं जो वायुमें अस्थिरताके कारण पैदा होती हैं। दोपहरके बाद वायु शांत हो जाती है। शामको एकाएक ज़ोरोंकी आँधी आती है, जो बहुत ही भयानक होती है। वर्षा ऋतु जूनसे लेकर सितम्बर तक माना जाता है। इस ऋतुमें वायुकी दिशा आसपासके समुद्रोंमें दक्षिण-पश्चिम होती है। इसलिये इसे दक्षिण-पश्चिम मानसून भी कहते हैं। इस मौसिममें बंगालकी

[शेष पृष्ठ १४५ पर]

रेलगाड़ियोंमें वैकुअम-ब्रेक (Vacuum Brake) का प्रयोग

(लेखक—श्री आनन्दमोहन, डिपटी-डायरेक्टर, रेलवे-बोर्ड, नई दिल्ली)

संसारकी समस्त रेल-कम्पनियाँ प्रायः । निम्न-लिखित दो प्रकारके ब्रेकों (Brakes) में से ही किसी एकका प्रयोग अपनी रेलगाड़ियों में करती हैं :—

(अ) वैकुअम-आटोमेटिक (Vacuum Automatic)

(ब) वैस्टिंग-हाऊस-आटोमेटिक (Westing House Automatic)

वैकुअम आटोमेटिक ब्रेकमें रेलगाड़ीके नीचे एक किनारेसे दूसरे किनारे तक लगे हुए ट्रेन-पाइप (Train Pipe) में से हवा निकाल लेने पर ब्रेक खुल जाते हैं और उसमें फिर साधारण दबावकी हवाके पहुँचा देनेसे ब्रेक लग जाते हैं। वैस्टिंग-हाऊस-आटोमेटिक ब्रेक में इसका उलटा रहता है। ट्रेन-पाइपमें अधिक दबावकी हवा (air under pressure) भरनेसे ब्रेक हट जाते हैं और साधारण दबावकी हवा हो जानेसे ब्रेक लग जाते हैं। दोनों तरहके ब्रेकोंमें यदि अकस्मात् ट्रेन दो भागोंमें विभक्त हो जाय, तो ट्रेनके दोनों भागोंके ट्रेन-पाइपोंमें साधारण दबावकी हवा हो जानेके कारण ब्रेक लग जाते हैं और इसीलिए दोनों भाग अपने आप ही रुक जाते हैं।

यूरोप और अमेरिकामें केवल वैस्टिंग-हाऊस-आटोमेटिक ब्रेक ही काममें आता है। वैकुअम-आटोमेटिक ब्रेक ब्रिटिश-आइल्स में अधिकतर काममें आता है। यही भारतमें भी अधिकतर प्रयोगमें लाया जाता है। इस कारण । इस लेखमें वैकुअम-ब्रेकका ही कुछ अधिक विस्तारके साथ वर्णन किया जायगा।

वैकुअम-आटोमेटिक-ब्रेक

चित्र १ में दिखलाया गया है कि वैकुअम-आटोमेटिक-ब्रेकमें साधारण तौर पर कैसा प्रबन्ध रहता है। इंजिन और रेलगाड़ीके प्रत्येक डिब्बेके नीचे लोहेका एक नल 'ब' जिसे ट्रेन-पाइप कहते हैं लगा रहता है। जब रेलके डिब्बोंको एक दूसरेसे जोड़कर पूरी ट्रेन बना दी जाती है तब उनके नीचेके नलोंको भी रबर तथा कैनवसके बने हुए नलोंके टुकड़ोंके द्वारा जोड़ दिया जाता है। इन टुकड़ोंको होज़-पाइप (Hose pipe) कहते हैं। अन्तिम डिब्बेके ट्रेन-पाइपका जो सिरा बच जाता
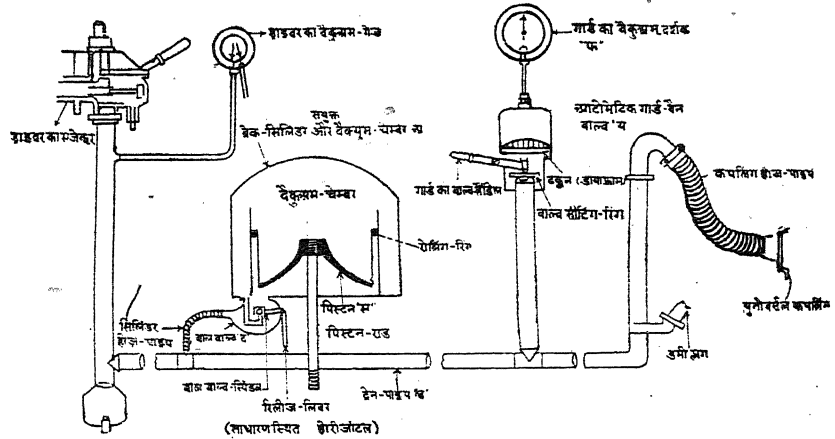
चित्र १

है उसको एक होज़-पाइपके द्वारा उस डिब्बेके पीछे लगे हुए एक लट्टू (Dummy plug) के ऊपर कस दिया जाता है जिससे इस तरफ़से हवा तक भी ट्रेन-पाइपके अन्दर नहीं घुस सकती। अब रह गया सबसे आगेके डिब्बेके ट्रेन-पाइपका सिरा। सो यह गाड़ीमें इंजिन लगनेके बाद इंजिनके नीचे लगे हुए ट्रेन-पाइप के एक सिरेसे जोड़ दिया जाता है। इंजिनके ट्रेन-पाइप-का दूसरा सिरा इंजिनके अन्दर लगे हुए एक यंत्रसे जुड़ा रहता है। इस यंत्रको एजेक्टर (Ejector) कहते हैं। इस एजेक्टरसे भाप द्वारा सब गाड़ियोंके नीचे लगे हुए

और एक दूसरेसे जुड़े हुए ट्रेन-पाइपोंमेंसे हवा बिलकुल निकाल ली जा सकती है। चूंकि अन्तिम गाड़ीके ट्रेन-पाइपका सिरा लट्टू (Dummy Plug) के द्वारा बन्द रहता है और उसमें हवा नहीं घुस सकती, इसलिए एजेक्टर द्वारा हवा निकल जानेके बाद ट्रेन-पाइपमें हवा नहीं घुस सकती जब तक जान-बूझ कर कहींसे हवा घुसने का कोई रास्ता न खोल दिया जाय। इंजिनमें अधिकतर दो एजेक्टर होते हैं—एक बड़ा, दूसरा छोटा। जब हवा शीघ्रतासे निकालनी होती है, तो बड़े एजेक्टरको काममें लाते हैं। छोटा एजेक्टर गाड़ीके चलते रहते समय भी चालू रक्खा जाता है। थोड़ी थोड़ी हवा इधर-उधरसे ट्रेन-पाइपमें घुसती रहती है। ट्रेनपाइपोंके जोड़मेंसे या होज़-पाइपोंमें कहीं बहुत छोटे छिद्रों द्वारा इस हवाको छोटा एजेक्टर हर समय चालू रह कर निकालता रहता है जिससे ट्रेन-पाइपमें गाड़ीके चलते रहनेके समय अधिक हवा एकत्रित नहीं हो सकती।

प्रत्येक डिब्बेके नीचे एक संयुक्त-ब्रेक-सिलिंडर और वैकुअम चैम्बर "अ" (चित्र १) (Combined Brake Cylinder and Vacuum Chamber) लगा होता है। यह एक खोखला ढोलके समान गोल सन्दूक है। इसके अन्दर एक पिस्टन (Piston) "स" (चित्र १) फिट रहता है और सिलिंडरके अन्दर ऊपर नीचे चल सकता है। सिलिंडर और पिस्टनकी दीवारोंके बीचमें एक रबरकी रिंग फँसी रहती है (चित्र २)। जब पिस्टन चलता है तो यह
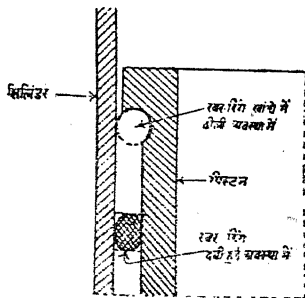
चित्र २—सिलिंडर-रोलिंग-रिंग दबी हुई अवस्थामें

रिंग पिस्टन तथा सिलिंडरके बीचमें घूम-घूमकर चलती है और हर समय ऐसी फिट रहती है कि सिलिंडर और पिस्टन-के बीचमें ज़रा भी घर्षण या रगड़ नहीं होती। इस रिंगके कारण पिस्टनके नीचेकी जगहकी और पिस्टनके ऊपर सिलिंडरके वैकुअम चेम्बर (चित्र १) के भीतरकी हवाओंमें एक दूसरेसे कोई सम्बन्ध इधरसे होकर नहीं हो सकता। जिस समय ट्रेन-पाइपमेंसे हवा निकाल ली जाती है, ब्रेक का पिस्टन नीचे चला आता है और उस समय वह रिंग सरक कर ऊपर वाले बने हुए खाँचेमें बैठ जाती है और वहाँ पहुँचने पर काफ़ी ढीली हो जाती है। वास्तवमें यहाँ पर आकर उसके तने रहनेकी आवश्यकता भी नहीं है क्योंकि इस समय पिस्टनके ऊपर भी और नीचे भी (जैसा आगे बतलाया जायगा) वैकुअम होता है और एक सी ही स्थिति होती है। इस कारण रिंगके ढीले होनेसे कोई हानि नहीं है। खाँचेमें रिंगके ढीले पड़ जानेका एक लाभ यह भी है कि सरकते-सरकते रिंगमें यदि बल पड़ गये हों तो वे बल इस खाँचेमें रिंगके पड़ने पर खुल जायँ तथा रिंग सदा ही दबी-दबी रहकर गोलकी जगह चपटी न हो जाय।

पिस्टनमें एक डंडा या पिस्टन-राड (Piston rod) जुड़ा रहता है (चित्र ३)। यह सिलिंडरकी नलीमें
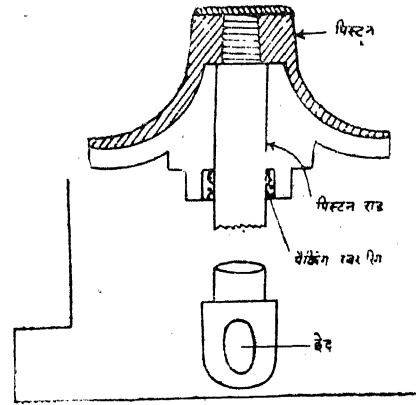
चित्र ३—पिस्टन राड

बने हुए एक गोल छेदमेंसे होकर सिलिंडरके नीचे निकलता है। पिस्टन-राड पीतलसे मढ़ा हुआ होता है। जिस जगह पिस्टन-राड सिलिंडरकी नलीमेंसे निकलता है वहाँ उसके और सिलिंडरके बीचमें एक पैकिंग-रबर-रिंग फिट रहती है जिसमेंसे होकर हवा इधर-उधर नहीं आ-जा सकती। यह पिस्टन-राड सूखे कपड़ेसे साफ़ रक्खा जाता है और इसमें तेल या चर्बी नहीं व्यवहारमें लाई जाती क्योंकि तेल या

चर्बीसे पैकिंग-रबर-रिंग, जिसमेंसे होकर पिस्टन-राड गुज़रता है, नष्ट हो जानेका डर है। पिस्टन-राडके नीचेके सिरेमें एक छेद (eye) बना रहता है जिसमें ब्रेक-लिवर (Brake-lever) पड़ा रहता है। यह छेद (eye) ज़रा लम्बा होता है। इसका प्रयोजन यह है कि ब्रेक चलनेके पहले पिस्टन $\frac{1}{2}$ इंच ऊपर उठ जाय जिससे पिस्टन और सिलिंडरके बीचमें सरक-सरक कर चलने वाली रबर-रिंग खाँचेमेंसे निकलकर सिलिंडर और पिस्टनके बीचमें आसानीसे आ जाय और दब जाए जिससे उस स्थान पर बिलकुल ठीक टाइट-ज्वायंट बन जाय और रबर-रिंगके पाससे गुज़र कर हवा न निकल सके।

सिलिंडरके नीचे एक बाल-वाल्व (Bae Valve) 'द' लगा रहता है चित्र १)। इस बाल-वाल्व को चित्र ४ में विस्तारसे दिखाया गया है। बाल-वाल्वकी
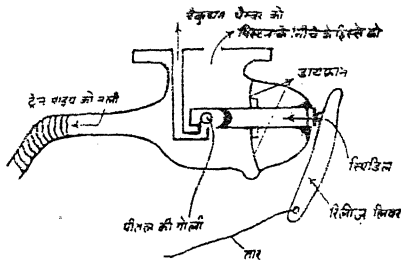
चित्र ४—बाल-वाल्व

नली एक होज-पाइप द्वारा डिब्बेके नीचेके ट्रेन-पाइपसे जुड़ी होती है। बाल-वाल्वकी बनावट बहुत सादी है। उसमें एक खड़ा (Vertical) पाइप होता है जो एक तरफ़ तो सिलिंडरके वैकुअम-चेम्बरसे जुड़ा होता है और दूसरी तरफ़ उसके मुँहके ऊपर एक छोटी पीतलकी गोली बैठी रहती है और इस तरह साधारण अवस्थामें खड़े पाइपका यह रास्ता बन्द किये रहती है। चित्र १ और ४ से पाठक यह भी देखेंगे कि ट्रेन-पाइपकी हवाका सिलिंडरके अन्दर चलने वाले पिस्टनके नीचेकी जगहकी हवासे सीधा संबन्ध रहता है पर पीतलकी गोली और खड़े पाइपके कारण वैकुअम-चेम्बरकी हवासे नहीं रहता। बाल-वाल्व एक घेरेमें रहती है जो एक स्पिंडेल (Spindle) से जुड़ा होता है। स्पिंडिलमें एक रिलीज़-लिवर (Releave lever) लगा होता है। रिलीज़-लिवरके सिरेमें एक छेद (Eye) होता है जिसमें एक तार पड़ा रहता है। इस तारको हाथसे खींचने पर बाल-वाल्व खड़े पाइपके मुँह परसे ज़रा-सा हटाई जा सकती है और उसे हटा कर वैकुअम-चेम्बर, पिस्टनके नीचे, तथा ट्रेन पाइप सबमें संबन्ध करके तीनों जगहकी हवा एक-सी कर दी जा सकती है। स्पिंडिल एक हवा बन्द (Air-tight) ढक्कन (Diaphragm) से जुड़ा रहता है। जब तारसे स्पिंडिल खींचा जाता है, तो यह भी उसके साथ खिंच जाता है। पर जब फिर अन्दर वैकुअम पैदा किया जाय तो ढक्कन बाहरी हवाके दबावके कारण अपने आप स्पिंडिल समेत अपनी साधारण स्थितिको चला जाता है तथा पीतलकी गोली भी पूर्ववत् खड़े पाइपके मुँह पर जाकर बैठ जाती है।

सिलिंडर और बाल-वाल्वकी कार्य-विधि इस प्रकार है (चित्र ५ देखिए)। जब गाड़ीको चलानेके लिए
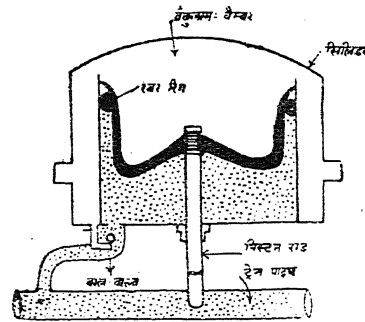
चित्र ५—वैकुअम-ब्रेककी कार्य-विधि

ड्राइवर गाड़ीके ब्रेक खोलना चाहता है, तो वह अपने एजेक्टर (Ejector) द्वारा ट्रेन-पाइपमेंसे हवा निकालने लगता है। ट्रेन-पाइपसे सब डिब्बोंकी बाल-वाल्व जुड़ी होती हैं। इसलिए ट्रेन-पाइपकी हवाके खिंचनेके साथ ही साथ बाल-वाल्व द्वारा सिलिंडरमें पिस्टनके नीचेकी हवा भी निकल जाती है। उसके बाद चूँकि बाल-वाल्वमें पीतलकी गोलीके एक ओर (अर्थात वैकुअम-चैम्बरकी तरफ़) तो हवाका साधारण दबाव है और दूसरी ओर (अर्थात् पिस्टन के नीचेकी हवाकी तरफ़) हवाका अभाव है, इसलिये पीतलकी गोली वैकुअम-चैम्बरकी ओरकी हवाके दबावके कारण अपनी जगहसे ऊपर उठ जाती है और वैकुअम-चैम्बरको जाने वाले खड़े पाइपका मुँह खुल जाता है।

फलतः ट्रेन-पाइप और पिस्टनके नीचेकी हवाके निकलनेके प्रायः साथ ही साथ पिस्टनके ऊपर वैकुअम-चैम्बरकी हवा भी निकल जाती है। अब पिस्टनके न नीचे हवा रहती है न ऊपर। इसलिये पिस्टन अपने बोझसे नीचे आ जाता है और उसके पिस्टन-राडसे लगे हुए ब्रेक पहियोंसे अलग हो जाते हैं। यही हाल हरेक गाड़ीमें होता है अर्थात् सारी गाड़ीके ब्रेक करीब-करीब एक साथ खुल जाते हैं तब गाड़ी आगे चलाई जा सकती है। अब जब ड्राइवर गाड़ी रोकने के लिये ब्रेक लगाना चाहता है, तो वह ट्रेन-पाइपमें अपने इंजिनमेंसे एक रास्तेके द्वारा हवाको ट्रेन-पाइपमें जाने देता है। यदि गाड़ी धीरेसे रोकनी हो, तो हवाको धीरे-धीरे अन्दर जाने देता है। और यदि गाड़ी एकदम और जल्दी से रोकनी हो, तो बहुत-सी हवा एकदम ट्रेन-पाइपमें घुसने देता है। ट्रेन-पाइपमें हवा घुसते ही, बाल-वाल्व द्वारा हवा डिब्बोंके सिलिंडरोंमें पिस्टनोंके नीचे भी चली जाती है। पर यह हवा पिस्टनके ऊपर वैकुअम-चेम्बरमें नहीं जाने पाती क्योंकि जब हवा बाल-वाल्वमें घुसती है तो पीतल की गोलीको वैकुअम-चेम्बरको जाने वाले पाइपके मुँह पर और भी जोरसे दबाकर बैठा देती है और पाइपका मुँह इस तरह बिलकुल बन्द हो जानेके कारण हवा इस पाइपमें घुसकर वैकुअम-चेम्बरमें नहीं जा सकती। फल यह हुआ कि हवा पिस्टनके नीचे तो पहुँच गई पर पिस्टनके ऊपर नहीं जा सकी। इसलिए हवाका दबाव पिस्टनको ऊपर उठानेके लिये लगता है। यह इतना काफ़ी होता है कि पिस्टनके बोझको सँभाल कर उसे ऊपर चढ़ा देता है और पिस्टनके चढ़नेके साथ ही साथ उसके पिस्टन-राडमें लगे हुए ब्रेक पहियों पर जाकर लग जाते हैं और गाड़ीकी गति को रोकने लगते हैं। यही हाल प्रत्येक डिब्बेमें होता है और इस तरह सारी गाड़ीमें ब्रेक करीब-करीब एक साथ लगने लगते हैं। जितनी जोरसे हवा घुसती है उतनी ही जल्दी और जोरसे ब्रेक लगते हैं। इस प्रकार ड्राइवर मन चाहे ब्रेक लगा कर ट्रेन की गतिमें हेर-फेर कर सकता है तथा जब चाहता है बिलकुल रोक देता है।

उपरोक्त वर्णन द्वारा पाठकोंको यह भी पता चल सकेगा कि आटोमेटिक-वैकुअम-ब्रेकका मुख्य लाभ यह है कि यदि किसी समय चलते-चलते ट्रेनके दो डिब्बोंके बीच का जोड़ टूट जाय तो एक डिब्बेके नीचेका ट्रेन-पाइप दूसरे डिब्बेके नीचेके ट्रेन-पाइपसे अलग हो जावेगा और ट्रेनके दोनों भागोंमें ट्रेन-पाइपोंमें हवा भर जानेसे दोनों भागोंमें ब्रेक आपसे आप लग जावेंगे और ट्रेनके दोनों भाग रुक जावेंगे। इस प्रकार खतरोंसे बचानेके लिए आटोमेटिक-वैकुअम-ब्रेक अत्यन्त उपयोगी है।

१०—गार्ड वैन-वाल्व (य-चित्र १) और वैकुअम-दर्शक (Vacuum Gauge)

जब गाड़ी चल रही हो और गार्डको कोई विपदा दिखाई दे, तो उसको गाड़ीको रोक सकनेके लिए गार्डके डिब्बेमें एक यंत्र लगाया जाता है। इसको गार्ड-वैन-वाल्व कहते हैं। इसका दूसरा उद्देश्य एक यह भी है कि जब ड्राइवर अपने एजेक्टर (Ejector) के द्वारा गाड़ीमें जल्दी से ब्रेक लगावे, तो उस समय यह वाल्व भी अपने आप खुल जाय जिससे ट्रेन-पाइपमें हवा इस सिरेसे भी प्रवेश कर सके और जल्दी रोकनेमें ड्राइवरकी सहायता हो। गार्ड-वैन-वाल्व डिब्बेके नीचेके ट्रेन-पाइपमें जुड़ा रहता है (चित्र ५)। गार्ड-वैन-वाल्वका सबसे मुख्य हिस्सा उसमें
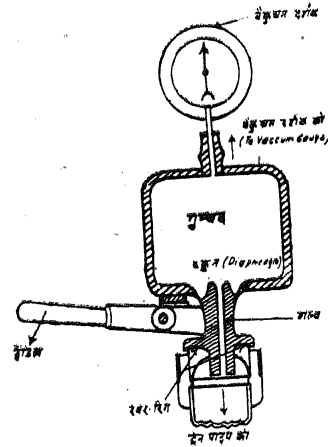
चित्र ६—गार्ड वैन-वाल्व

लगी एक वाल्व है (चित्र ५)। वाल्वके बीचमें एक बहुत पतला छेद रहता है। वाल्व ऊपर एक ढक्कन (Diaphragm) द्वारा एक गुम्बदमें जुड़ी होती है और नीचे एक रबर-रिंग पर बैठी रहती है। यह रबर-रिंग ट्रेन-पाइपको

जाने वाले खड़े पाइपके मुँह पर होती है और इसलिए जब वाल्व इस रबर-रिंग पर सटकर बैठी रहती है तब इधरसे हवा वाल्वमें या ट्रेन-पाइपमें नहीं घुस सकती। जब ड्राइवर ब्रेक हटानेके लिए ट्रेन-पाइपमेंसे हवा निकाल लेता है तब वाल्वके बीच वाले छेदके द्वारा गुम्बदमें भरी हुई हवा भी निकल जाती है। इस समय वाल्व अपनी साधारण स्थितिमें अर्थात् रबर-रिंग पर सटकर बैठी रहती है। अब यदि गार्ड गाड़ीको रोकना चाहे, तो वह हैंडिल (चित्र ५) को दबाता है। इससे वाल्व रबर-रिंग परसे उठ जाती है और वाल्व और रिंगके बीचमें होकर हवाको अन्दर जानेका रास्ता मिल जाता है। हवा अन्दर जाकर ट्रेन-पाइपमें चली जाती है जिससे डिब्बोंके ब्रेक लग जाते हैं तथा ड्राइवरको अपने यंत्रसे पता चल जाता है कि गाड़ीको रोकनेके लिए हवा ट्रेन-पाइपमें घुसाई गई है, तो वह भी अपनी तरफ़से ट्रेन-पाइपमें हवा घुसने देता है और इस प्रकार गाड़ीको जल्दी रोक देता है।

जब ड्राइवर किसी कारणसे गाड़ी को शीघ्रतम रोकनेके लिए जल्दीसे ब्रेक लगाता है और इसलिए अपने किनारेके ट्रेन-पाइपमें शीघ्रतासे हवा घुसाता है, तब यह हवा ट्रेन-पाइपमें होकर गार्डकी वैन-वाल्वमें भी पहुँती है परन्तु वहाँ वाल्वके बीचका छेद अति सूक्ष्म होनेके कारण हवा उसमेंसे होकर जल्दी गुम्बदमें नहीं घुस सकती इस कारण थोड़ी देर तक स्थिति यह रहती है कि वाल्वके ऊपर गुम्बदमें तो वैकुअम और नीचे ट्रेन-पाइपमें हवाका दबाव। इस दबाव के कारण वाल्व अपने आप ही आप ऊपर उठ जाती है और इस कारण जैसे पहले बतलाया गया है इधरसे भी हवा शीघ्रता से ट्रेन-पाइपमें घुसने लगती है। इस तरह ड्राइवर को शीघ्रतया गाड़ी रोकनेमें गार्डकी वैन-वाल्व अपने आप ही सहायता पहुँचाती है। थोड़ी देरके बाद वाल्वके छेदके द्वारा हवा ऊपर गुम्बदमें भी पहुँच जाती है और तब वाल्व के दोनों ओर हवाका दबाव एक सा हो जाता है। इस अवस्थाके आ जाने पर वाल्व अपने बोझसे फिर नीचे आ जाती है और अपनी साधारण अवस्थाको प्राप्त हो जाती है।

गार्ड-वैन-वाल्व से ही जुड़ा एक यंत्र होता है जिसे वैकुअम-दर्शक (Vacuum Gauge) कहते हैं। यह ट्रेन-पाइपमें हवाका दबाव कितना है यह दिखलाता है। इसमें एक सुई है जो एक स्केल पर, जो तीस भागोंमें विभक्त रहती है, घूमती है। और इसकी स्थितिसे ट्रेम-पाइपकी हवाके दबावका पता चलता है। ज्यों-ज्यों ट्रेन-पाइपमें हवाका दबाव हवा निकाल लेनेके कारण घटता जाता है, त्यों-त्यों सुई आगे बढ़ती जाती है। जब सुई शून्य पर होती है, उस समय ट्रेन-पाइपमें साधारण हवाका दबाव जो कि लगभग १५ पौंड प्रति वर्गइंच है, होता है। जब सुई निशान २, जिसे २ इंच बोलते हैं, पर आती है, तो इस समय ट्रेन-पाइपमें साधारण दबावसे १ पौंड प्रति वर्गइंच दबाव कम होता है। इसी तरह जब सुई ३० इंचके निशान पर होती है, तो उस समय ट्रेन-पाइप में हवाका दबाव कुछ नहीं रहता अर्थात् उस समय ट्रेन-पाइप में हवा बिलकुल नहीं रहती और पूरा वैकुअम होता है। मामूली तौर पर यह स्थिति कभी नहीं हो पाती और २५ इंचसे ज्यादा वैकुअम पैदा करना बहुत ही कठिन है। औसतन २० इंच ही रहता है। २० इंच वैकुअमका अर्थ यह हुआ कि ट्रेन-पाइपमें हवाका दबाव १० पौंड प्रति वर्ग इंच घट गया है अर्थात् दबाव सिर्फ ५ पौंड प्रति वर्ग इंच ही रह गया है। इस समय बाल-वाल्वके द्वारा पिस्टन के ऊपर सिलिंडरके वैकुअम-चेम्बरमें भी यही ५ पौंड प्रति वर्गइंचका दबाव रह जाता है। अब जब गाड़ी रोकनेके लिए ड्राइवर ट्रेन-पाइपमें साधारण दबावकी हवा का प्रवेश कराता है, तो ट्रेन-पाइप और पिस्टनके नीचे तो दबाव १५ पौंड प्रतिवर्ग इंच हो जाता है, पर बाल वाल्वके कारण पिस्टनके ऊपर सिलिंडरके वैकुअम-चेम्बरमें वही ५ पौंड प्रतिवर्ग इंचका दबाव ही रहता है। फलतः इनके अन्तर अर्थात् १० पौंड प्रति वर्ग इंचकी शक्तिसे पिस्टन ऊपर चढ़ जाते हैं और ब्रेक लग जाते हैं। अर्थात् जितना अधिक वैकुअम ड्राइवर गाड़ीके चलते समय रख सकेगा, उतनी ही अधित्र शक्ति ब्रेक लगानेके लिए उसके हाथमें रहेगी। इस तरह वैकुअम-दर्शकसे गार्डको गाड़ी की खुलनेकी शक्तिका पूरा ज्ञान रहता है। ऐसा ही एक वैकुअम-दर्शक ड्राइवरके ज्ञानके लिए इंजिनमें लगा होता है। दर्शकमें गाड़ी चलनेके समय कमसे कम १५ इंच वैकुअम होना चाहिये और यदि किसी समय भी जब

गाड़ी चलती हो, यह १५ इंचसे कम हो जाय तो गाड़ीको रोककर गार्ड और ड्राइवरोंको देखना होता है कि क्या बात है, कहाँ खराबी है, और उसको ठीक करके आगे बढ़ना होता है। पैसैंजर-गाड़ियोंके प्रत्येक डिब्बेमें दोनों तरफ

पैसैंजर-कम्यूनिकेशन-वाल्व

(Passenger ommunication Valve)
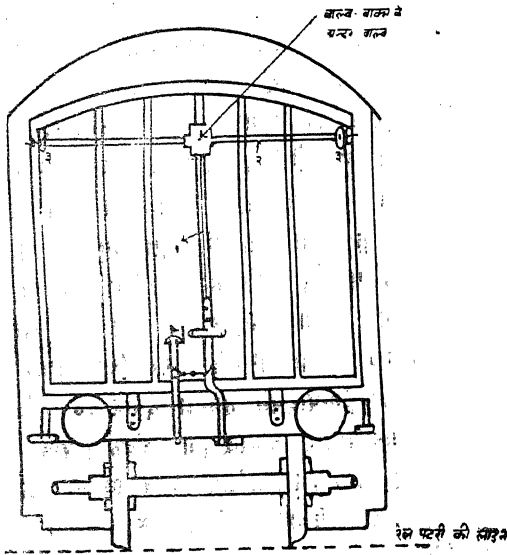
चित्र ६—पैसैंजर-डिब्बेका किनारेका दृश्य जिसमें पैसैंजर-कम्यूनिकेशन वाल्वका प्रबन्ध दिखाया गया है।

विपदाके समय खींचकर गाड़ी रोक लेनेके लिए जंजीर लगी होती है। इन जंजीरोंका सम्बन्ध एक वाल्वसे होता है जिसे पैसैंजर इन्टर-कम्यूनिकेशन-वाल्व कहते हैं। यह वाल्व प्रत्येक डिब्बेके पीछेके किनारेके बीचमें लगाया जाता है जैसा चित्र ६ में दिखलाई पड़ेगा। यह वाल्व डिब्बेके नीचे जाने वाले ट्रेन-पाइपसे एक खड़े पाइप नं० १ के द्वारा सम्बन्धित रहता है। इस पाइपके अन्दरके छेदका व्यास करीब ½ इंच रहता है। चित्र ७ में इस वाल्वके अन्दर का प्रबन्ध दिखलाया है। इस वाल्वके बीचमें एक तरफसे दूसरी तरफको जाता हुआ एक डंडा नं० २ होता है जिसे एकच्वेटिंग-राड (actuating rod) कहते हैं। यह वाल्व इस प्रकार लगा होता है कि एकच्वेटिंग-राडके दोनों कोनों पर लगी हुई गोल घुंडियाँ नं० ३ डिब्बोंके किनारोंके ठीक नीचे आ जाती हैं। जब ट्रेन-पाइप मेंसे हवा निकाल ली जाती है, तो इस वाल्वके खड़े पाइप मेंसे भी हवा निकल जाती है। इस पाइपके ऊपरका मुँह एक छपके (नं० ४) (Metal Flap) के द्वारा जिसके नीचे चमड़े या रबड़की एक टोपी नं० ५ लगी होती है, बन्द रहता है और उसमें हवा नहीं घुस सकती।
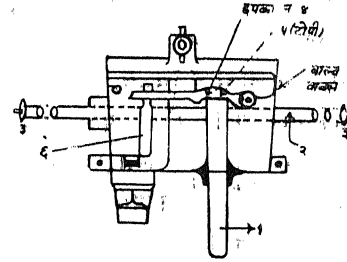
चित्र ७—पैसैंजर कम्यूनिकेशन वाल्व

खड़े पाइपमें से हवा निकल जाने पर यह छपका मुँह को औरभी ज़ोरसे चिपककर बन्द किये रखता है। पर जब एकच्वेटिंग राड (नं०२) घूमता है तब एक लिवर (नं०६) के द्वारा छपकेका एक किनारा ऊपर को उठ जाता है और खड़े-पाइप का मुँह खुल जाता है। एकच्वेटिंग राड और उसके किनारों पर लगी हुई घुंडियां डिब्बोंके अन्दर जाने वाली जंजीरोंसे जुड़ी रहती हैं। जब कोई यात्री डिब्बेके अन्दर जंजीर खींचता है तो उससे एकच्वेटिंग राड घूम जाता है और उसके द्वारा जैसे ऊपर बताये खड़े पाइपके ऊपरके छपके का भी एक किनारा उठ जाता है। इसके उठ जानेसे थोड़ी-थोड़ी हवा वाल्वके वर्टीकल पाइपमें घुसकर ट्रेन-पाइपमें जाने लगती है और डिब्बोंके ब्रेक लगने आरंभ हो जाते हैं। इसके साथही साथ ड्राइवर और गार्डको अपने-अपने वैकुअम-दर्शकसे पता चल जाता है कि किसीने जंजीर खींची है। तब ड्राइवर अपने एजेक्टर द्वारा ट्रेन-पाइप में अधिक हवा जाने देकर पूरी तरहसे ब्रेक लगाकर गाड़ी को रोक देता है। एकच्वेटिंग-राडके दोनों तरफ़ लगी

[शेष पृष्ठ १३९ पर]

खाद्य और स्वास्थ्य

[ले०—डा० ओंकारनाथ परती, एम० एस-सी०, डी० फिल]

[गतांगसे आगे]

हलका परिश्रम	७५ कैलोरियाँ प्रति घंटा	
साधारण "	७५-१५०	" " "
कठिन "	१५०-३००	" " "
अति कठिन "	३०० अधिक	" "

मनुष्य को कैसा कार्य करने के लिये कितनी कैलोरियाँ प्रतिदिन आवश्यक हैं इस विषय पर मतभेद है। यह जिस स्थान पर मनुष्य काम करता है वहाँ के जलवायु पर निर्भर है; फिर भी मोटे हिसाब से यह निर्धारित किया जा सकता है। मनुष्य को किस आयुमें कितनी कैलोरियाँ प्रतिदिन चाहिये यह आगे दिया हुआ है :

आयु	कैलोरियाँ प्रतिदिन
४ से ५ साल	१०००
६ से ७ साल	१३००
८ से ९ साल	१६००
१० से ११ साल	१८००
१२ से १३ साल	२१००
स्त्री १४ साल से अधिक	२१००
पुरुष १४ साल से अधिक	२६००
गर्भवती स्त्री	२४००
अलवाँतो (दूध पिलानेवाली)	३०००

यह संख्यायें मोटे हिसाब से हैं। पहले कहा जा चुका है कि कैलोरियों की मात्रा कार्य और जलवायु पर निर्भर है। पीछे दी हुई सारिणीसे और लीग ऑफ़ नेशन्स की दी हुई संख्यायोंके आधार पर कैलोरियों की मात्रा निर्धारित की जा सकती है। यहाँ इस बात को ध्यानमें रखना चाहिये कि लीग ऑफ नेशन्स की दी हुई संख्यायें ठंढे देशके निवासियों के लिये हैं और भारत जैसे ऊष्ण प्रदेशके लिये इन संख्यायोंमें दस प्रतिशत कमी कर देनी चाहिये। उदाहरणके लिये प्रतिदिन छः घंटा साधारण काम करने वाले भारतीय को २६०० कैलोरियाँ चाहिये। आगे दी गई सारिणी से यह ज्ञात हो सकता है कि किस खाद्य के भोजन से हमें कितनी कैलोरियाँ प्राप्त हो सकती हैं।

[पृष्ठ १३८ का शेष]

रेलगाड़ियोंमें वैकुअम-ब्रेक का प्रयोग

घुंडियाँ लाल रंगी होती हैं और अपनी साधारण स्थितिमें पट रहती हैं। पर जब जंजीर खिंचती है, तो वह खड़ी स्थितिमें हो जाती है जिसको देखनेसे गार्डको मालूम हो जाता है कि किस डिब्बेमें से जंजीर खींची गई है। जब फिर घुंडियोंके हाथसे घुमा दिया जाता है तो छपका (नं४) अपने स्थान पर वापिस चला जाता है, वाल्व-पाइप-का मुँह फिर बन्द हो जाता है, और गाड़ी ट्रेन-पाइपमें वैकुअम कर देने पर फिर आगे बढ़ सकती है। वाल्व-पाइप-का व्यास जानकर छोटा रक्खा जाता है जिससे जंजीर खिंचने पर थोड़ी हवाही अन्दर घुस सके और गाड़ी एकदम पूरी न रुक जाय पर ड्राइवर को पता चल जाय जिससे वह अपने यंत्र द्वारा गाड़ी को रोके। यदि जंजीर खिंचनेसे गाड़ी फौरन रुक जाती, तो इससे कभी-कभी बड़ी अड़चन हो जाती—जैसे ढाल पर, यह पहाड़ोंकी सुरंगोंमें। ड्राइवरों को यह आज्ञा है कि जब उन्हें पता चले कि जंजीर खींची गई है तब वह शीघ्रसे शीघ्र परन्तु उचित स्थान परही गाड़ी को रोकें और फिर मामलेकी जांच करें।

खाद्य का नाम	कैलोरियाँ प्रति आधी छटाँक	खाद्य का नाम	कैलोरियाँ प्रति आधी छटाँक
कोदू	९२	ज़मींकन्द	२२
कोदो	८७	प्याज़	१४
गेहूँ (आटा)	१००	मूली	६
गेहूँ (मैदा)	९९	शकरकन्द	३७
चावल	९९	साबूदाना	४५
जौ	९५	आम (कच्चा)	११
ज्वार	१०१	कटहल	१४
बाजरा	१०२	करेला	७
मकई (आटा)	१०१	कुम्हड़ा	८
साँवा	८७	गोभी	११
अरहर	९५	टमाटर	८
उरद	९९	टिंडा	८
चना	१०३	तरोई	५
मटर (सूखा)	८९	परवल	५
मसूर	९८	बैंगन	१०
मूँग	९५	भिंडी	१२
लोबिया	९८	मटर (हरा)	३१
सोयाबीन	१२३	लौकी	४
करमकल्ला	९	शलजम	१०
चौराई	१३	सेम	१७
धनिया	१३	अखरोट	१९५
बथुआ	११	काजू	१६९
मेथी	१९	नारियल (सूखा)	१२६
सलाद	७	तिल	१६०
सरसों (साग)	१५	अलसी	१५१
अरुई	२९	पिस्ता	१७८
आलू	२८	बादाम	१८६
गाजर	१३	मूँगफली	१५६
चुकन्दर	१८	अंगूर	१३
अलूचा	११	अंजीर	२१
आड़ू	११	अनन्नास	१४
अमरूद	१९	अनार	१८

खाद्य का नाम	कैलोरियाँ प्रति आधी छटाँक	खाद्य का नाम	कैलोरियाँ प्रति आधी छटाँक
आम (पका)	१४	ईख का रस	११
केला	३०	काडलिवर तेल	२५६
खजूर	८०	गुड़	१०९
जामुन	२४	पान	१२
तरबूज़	५	सुपारी	७०
संतरा	१४	मखाना	९९
पपीता	११	पापड़	८२
नीबू (खट्टा)	१७	केक (अंडे से)	११२
नीबू (मीठा)	१६	बिस्कुट	१०७
रसभरी	१६	शहद	८१
सेब	१६	संदेस (मिठाई)	१२४
अंडा (मुर्गी)	४९	अजवायन	१०८
केकड़ा	१७	अदरक	१९
गोमाँस	३२	इमली	८२
भेड़ का माँस	[illegible]५	इलायची	६५
मछली	२७	काली मिरच	८७
सूअर का माँस	३२	जायफल	१३४
खोआ (भैंस)	१२०	जावित्री	१२४
दूध (गाय)	१८	जीरा	१०१
दूध (भैंस)	२४	धनिया	८२
दूध (बकरी)	३३	मिरचा (सूखा)	७०
दूध (स्त्री)	१९-२०	मिरचा (हरा)	१२
पनीर	९९	मेथी	९५
मट्ठा	४	राई	१५४
घी	२२३	लहसुन	४०
चर्बी	२३९	लौंग	८३
तेल (तिल)	२५२	हल्दी	९९
तेल (अलसी)	२५२	हींग	८४
मक्खन	[illegible]१६	चाय	...
मारजरीन	२१४	चपाती	१००
वनस्पति घृत	२५२	पराठा घी का बना	११५
अरारोट	९५		

समतुलित भोजन

समतुलित भोजन उस भोजनको कहते हैं जिसमें मनुष्यके शरीरको स्वस्थ रखनेके लिए भोजनके सब मुख्य अंश पर्याप्त मात्रामें हों। एक प्रौढ़ व्यक्तिके लिये, एक समतुलित भोजनका उदाहरण :—

	छटाँक
चावल (ढेकीका छाँटा) या गेहूँ	५
बाजरा या गेहूँ	२½
दूध	४
दाल	१½
साग (पत्तोवाला)	२
अन्य तरकारी (भिंडी, सेम आदि)	३
तेल या घी	१
फल	१

मोटे हिसाबसे इस समतुलित भोजनका विश्लेषण किया जा सकता है। यह विश्लेषण पहले दी जा चुकी सारिणीओंके आधार पर है:

प्रोटीन	७३ ग्राम
वसा	७४ ,,
कारबोहाइड्रेट	४०८ ,,
कैलसियम	१·०२ ,,
फ़ॉसफ़ोरस	१·४७ ,,
लोहा	४४ मिली ग्राम
अन्य लवण	पर्याप्त मात्रा में
विटैमिन ए	७००० अन्तरराष्ट्रीय इकाईसे अधिक
विटैमिन बी	४०० अन्तरराष्ट्रीय इकाईसे अधिक
विटैमिन सी	१७० मिली ग्राम
अन्य विटैमिन	पर्याप्त मात्रा में

कुल कैलोरी = २५९०

ऐसा समतुलित भोजन खाने वालेके शरीरकी सब आवश्यकतायें पूरी हो जाती हैं।

गर्भवती स्त्रियोंके लिए आहार

पेटके भीतर बच्चा माँ के आहारसे ही पोषित होता है और इसलिये उस समय माँके लिये प्रोटीन, विटैमिन और खनिज पदार्थोंकी आवश्यकता बढ़ जाती है। पहले एक समतुलित भोजनकी सारिणी दी जा चुकी है, अब एक सारिणी दी जाती है जिसमें गर्भवती स्त्रीके भोजन में प्रतिशत वृद्धि बतायी गई है:

	आवश्यकतामें प्रतिशत वृद्धि
कुल कैलोरियोंमें	२५
प्रोटीन	५०
वसा	१०
कैलसियम	१००
फ़ॉसफ़ोरस	५०
लोहा	५०

इसके अतिरिक्त गर्भवती स्त्रीकी विटैमिनोंकी आवश्यकता भी बढ़ जाती है।

बच्चोंके लिये आहार

नीचे एक तालिका दी जाती है जिसमें यह बताया गया है कि मोटे हिसाबसे बच्चोंकी आवश्यकता क्या है—

पहला सप्ताह	२००	कैलोरियाँ	प्रतिदिन	
पहला महीना	२४०	,,	,,	,,
दूसरा ,,	४००	,,	,,	,,
तीसरा ,,	४५०	,,	,,	,,
पाँचवाँ ,,	६००	,,	,,	,,
आठवाँ ,,	७००	,,	,,	,,
बारहवाँ ,,	८००	,,	,,	,,

भारतमें इस विषय पर वैज्ञानिक रीतिसे पूरी जाँच नहीं हो पायी है। ऊपर दी हुई संख्यायें योरपीय बच्चोंकी संख्यायोंसे २०-२५ प्रतिशत कम करके दी गई हैं। भारतमें बच्चोंके लिये यह संख्यायें लगभग ठीक हैं।

बच्चोंके लिए स्तन-दूध ही सबसे उत्तम खाद्य है। पहले दी गई सारिणीसे यह ज्ञात है कि प्रति छटाँक स्त्रीके दूधसे ४० कैलोरियाँ प्राप्त होती हैं। अब यह स्पष्ट हो जाता है कि छठे महीनेसे केवल माँके दूधसे बच्चेका पूर्ण पोषण

नहीं हो सकता। छठे महीनेसे बच्चेको लगभग ६०० कैलोरियाँ चाहिये और इसके लिये १५ छटाँक स्त्री का दूध चाहिये। बहुत कम ही स्त्रियों को १५ छटाँकसे अधिक दूध प्रतिदिन होता है।

छठे महीनेसे बच्चेको गाय या बकरीके दूधमें पानी मिलाकर देना चाहिये। पानी मिलाना इसलिये आवश्यक है कि इन दूधोंमें माँके दूधको अपेक्षा प्रोटीन अधिक रहता है और अधिक प्रोटीन बच्चेको पच नहीं पाती। इसी समयसे बच्चोंको संतरा या टमाटरका रस और फलोंका रस थोड़ा थोड़ा देना चाहिये। भारतमें बच्चोंमें बाल-अस्थि-दौर्बल्य (रिकेटस) का रोग बहुतायतसे होता है। इससे बचनेके लिये कॉड लीवर ऑयल यदि थोड़ी मात्रामें दिया जाय तो वह बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। लीग आफ नेशन्सके विशेषज्ञोंके अनुसार बच्चेको नौ महीने तक विशेषकर माँके दूध पर रहना चाहिये। दसवें महीनेसे गायका दूध बच्चेका मुख्य आहार होना चाहिये। दसवें महीनेसे बच्चेको थोड़ा-थोड़ा ठोस आहार भी दिया जा सकता है। यह आहार अंडेकी ज़र्दी, रोटी, दाल, हरी तरकारी, फलके रूपमें होना चाहिये। बच्चोंको स्टार्च (Starch) पचानेमें विशेष कठिनता होती है और अनाजोंमें विशेष अंग स्टार्चका होता है, अतः बच्चोंको अनाज देनेमें सतर्कता रखनी चाहिये और धीरे-धीरे ही अनाजकी मात्रा बढ़ानी चाहिये।

यहाँ पर इवैपोरेटेड मिल्क (Evaporated milk) या दुग्ध चूर्ण (Powdered or dried milk) के विषयमें कुछ कहना आवश्यक है। बच्चोंके लिये ऐसा दूध अधिक लाभदायक नहीं है। ऐसा दूध साधारणतः गाय या बकरीके दूधके हिसाबसे भी कम स्वास्थ्यप्रद और अत्यधिक महँगा होता है। माँके दूधके सामने तो ऐसा दूध अति हेय है। ऐसा दूध बच्चोंको तभी देना चाहिये जब और किसी प्रकारका दूध प्राप्त न हो सके। ऐसे दुग्ध चूर्णोंमें माल्टेड मिल्क (Malted milk) विशेष परिस्थितियोंमें उपयोगी सिद्ध हो सकता है किन्तु इसके उपयोगके लिये सदैव एक डाक्टरकी राय ले लेनी आवश्यक है।

प्रौढ़ व्यक्तिका भोजन

इस लेखमें जो एक समतुलित भोजनका उदाहरण दिया गया है वह एक प्रौढ़ व्यक्तिके लिये पर्याप्त है। विद्यार्थियों और मानसिक परिश्रम करने वालोंको दूध, दही, मलाई, घृत आदिका अधिक सेवन करना चाहिये। इन्हें अधिक कार्बोहाइड्रेट खाकर अपना पेट भारी न कर लेना चाहिये। इसके विपरीत शारीरिक परिश्रम करने वालों को अपेक्षाकृत कार्बोहाइड्रेटकी अधिक आवश्यकता पड़ती है।

वृद्धावस्थामें भोजन

भोजन-विज्ञानके विशेषज्ञोंका मत है कि तीस पैंतीस वर्षकी आयुके बाद मनुष्यको आहारकी मात्रा कुछ कम कर देनी चाहिये। पैंतालिस वर्षकी आयुके बाद आहारकी मात्रा और भी घटा देनी चाहिये। साठ वर्षकी आयुमें आहारकी आवश्यकता दस-बारह वर्षके बच्चेके आधेसे भी कम हो जाती है।

अन्तमें, रोगियोंके आहारके सम्बन्धमें केवल डाक्टरकी राय पर ही प्रबन्ध करना चाहिये। यह लेख स्वस्थ मनुष्योंके आहारके विषयमें है, अतः यहाँ पर रोगियोंके उचित आहारका वर्णन नहीं दिया गया है।

आहारमें वनस्पति और मांस

मांस वाला आहार और वनस्पति वाले आहारमें कौन श्रेष्ठ है इस विषय पर बहुत मतभेद है। माँस खाना आवश्यक नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि जन्तु-जगतसे प्राप्त प्रोटीन अधिक पचनशील होती है। डाक्टर एकरॉयडने अपनी खोजोंसे आहार पदार्थोंके प्रोटीनोंका मूल्य संख्याओंमें आँका है:

पदार्थ	प्रोटीनका मूल्य	पदार्थ	प्रोटीनका मूल्य
अंडा	९४	तिल	६७
अरहर	७४	दूध (गाय	८५
आलू	६७	बाजरा	८३
उरद	६४	बैंगन	७१
करमकल्ला	७६	भिंडी	८२
कलेजी	७७	मसूर	४१
काजू	७५	मूँग	५१
गेहूँ (आटा)	६६	माँस	९८
चना	७६	मूँगफली	५६
चावल	८०	लोबिया	६१
जौ	७१	शकरकन्द	७२
ज्वार	८३	सोयाबीन	५४

इस सारिणीसे पता चलता है कि मांसकी जगह पर दूध, दही पनीर आदि खाकर प्रोटीन पर्याप्त मात्रामें प्राप्त की जा सकती है। सच तो यह है कि मनुष्यके आहारमें एक तिहाई प्रोटीन प्राणिवर्गीय होनो चाहिये, शेष वनस्पति वर्गीय रह सकती है। इन विचारोंसे यह सरलतासे ज्ञात हो सकता है कि मांस खाना परमावश्यक नहीं है।

पचनशीलता

स्वास्थ्यके लिये आहारकी पचनशीलता पर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है। यदि भोजन पचेगा नहीं तो मनुष्य स्वस्थ नहीं रह सकता। नीचे एक सारिणी दी जाती है जिसमें विभिन्न खाद्य पदार्थोंके पचनेका समय दिया हुआ है—

खाद्य पदार्थ	पचनेका समय घं०	मि०
बीफ (रोस्ट किया हुआ)	३	०
जौ (उबाला हुआ)	२	०
रोटी	२	३०
मक्खन	३	३०
गोभी	४	३०
मुर्गी (माँस)	२	०
अंडा (कच्चा	१	३०
अंडा (थोड़ा उबाला)	२	०
अंडा (पूरा उबाला)	२	३०
मछली	२	४५
दूध (कच्चा)	२	१५
दूध (उबाला हुआ)	२	०
माँस	३	०
आलू (भूना हुआ)	२	३०
आलू (उबाला हुआ)	३	३०
चावल (उबाला हुआ)	१	०
साबूदाना (उबाला हुआ)	१	३०

तेल या घीमें तली हुई वस्तुएँ देरमें पचती हैं। मनुष्यको ऐसा ही भोजन करना चाहिये जो सरलतासे पच सके। इस विषयमें जलकी विशेष महत्ता है। जब प्यास लगे तब पानी पीना चाहिये किन्तु यदि हो सके तो भोजनके तुरन्त पहले, भोजनके साथ, या भोजनके तुरन्त बाद अधिक जल न पीना चाहिए। ऐसा करनेसे पाचन रसोंकी शक्ति क्षीण हो जाती है और भोजन देरमें पचता है।

भोजन धीरे-धीरे चबाकर खाना चाहिए। भोजनके समय उत्तेजित रहना अच्छा नहीं। एक बार उतना ही खाना चाहिये जितना सुगमतासे पच सके। भोजन बँधे समय पर करना उचित है। एक बार भोजन करनेके बाद कमसे कम चार घंटा बीत जाने पर दूसरी बार भोजन करना चाहिए। पाँच, साढ़े पाँच घंटे पर भोजन किया जाय तो और अच्छा है।

भारतीयोंका स्वास्थ्य

भारतीयोंके स्वास्थ्य पर मैके, मैककैरीसन और एकरॉयड ने अनुसन्धान किये हैं। इन अनुसन्धान कर्त्ताओंका मत है कि भारत निवासियोंका स्वास्थ्य इसलिए अच्छा नहीं है कि इनका भोजन समतुलित एवं पूर्ण नहीं है। उनके विचारसे वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे भारतवर्षमें सर्व श्रेष्ठ भोजन पंजाबके निवासी अधिकतर सिक्खों

का है। नीचे इस प्रकारके एक भोजनका उदाहरण दिया जाता है :—

भोजन २४ घंटों में :—

आटा (गेहूँ)	६	छटाँक
चावल (घरका कुटा	३	,,
बकरेका गोश्त	१	,,
दूध	१०	,,
तैल	१/२	,,
घी	३/४	,,
तरकारियाँ (आलू आदि)	४	,,
तरकारियाँ (पत्ती वाली	४	,,
फल	१	,,
दाल	१	,,

इस भोजनके मूल अवयव हैं :—

प्रोटीन	१०५·५०	ग्राम
वसा	९६·४२	,,
कार्बोहाइड्रेट	४८४·२	,,

कुल कैलोरियाँ = ३२२१

यह कठिन परिश्रम करने वालोंके लिए उचित भोजन है। इसका फल यह है कि पंजाबके निवासियोंका स्वास्थ्य भारतवर्षमें सबसे अच्छा है।

भारतवर्षमें चावल खाने वालोंका भोजन असमतुलित और अपूर्ण है। इसका फल यह होता है कि इनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि भारतवासियों के स्वास्थ्यमें समतुलित आहार द्वारा उन्नतिकी जा सकती है। बात यह है कि लोग अपनी आदतसे मजबूर हैं। भारतनिवासियोंको चाहिए कि वे अपने आहारमें उचित परिवर्तन करें। गरीबोंके लिये तो सरकारकी ओरसे समतुलित भोजनका प्रबन्ध होना चाहिये।

हमारे यहाँ बाज़ारमें बिकने घृत वाले तैल आदि में बहुधा मिलावट रहती है। सरकार की ओर से इस विषय पर और भी कड़ा नियन्त्रण होना चाहिए।

यह हर्षकी बात है कि भारतवर्षकी सरकार सचेत हो रही है। भारतवासियोंके भोजनके विषयमें कई परामर्श हो चुके हैं। आशा है कि इस महायुद्धके समाप्त होने पर भारतवासियों के आहारमें बहुत कुछ सुधार होना सम्भव होगा।

———

[पृष्ठ १३२ का शेष]

वायु-विज्ञान

खाडीसे साइक्लोन खूब आते हैं। इनका नाम ईस्टर्न डिप्रेसन (Eastern depression) रक्खा गया है। इनका यह नाम इसलिये रक्खा गया है कि ये आँधियाँ पूर्वसे आती हैं। यह पता लगाया गया है कि ये आँधियाँ तीन प्रकारके वायुके मिश्रणसे बनी होती हैं। इस ऋतुके हटनेका समय अक्टूबर तथा नवम्बर माना जाता है। पहले यह उत्तर-पश्चिम भागसे हटना प्रारम्भ होता है। पूर्वी घाटमें इसी समय पानी बरसता है।

———

श्वास-क्रिया और फर्मेंनटेशन*

(ले०—श्री अनन्तप्रसाद मेहरोत्रा, एम० एस-सी०, वनस्पति विभाग प्रयाग, विश्वविद्यालय)

श्वास-क्रिया और ओषदीकरण क्रियाकी समानता

परिवर्तन जीवनका तत्त्व है। इसका यह अर्थ है कि प्रत्येक कोष (cell) में, चाहे वह जितना भी सूक्ष्म हो, प्रतिक्षण परिवर्तन होता रहता है। सुप्त बीजके हर एक कोषमें प्रतिक्षण परिवर्तन होता रहता है, परन्तु यह परिवर्तन इतना सूक्ष्म है कि उसे पहचानना लगभग असम्भव है। दूसरी ओर एक क्रियाशील (meristematic) कोषके अन्दर उग्र परिवर्तन होना सम्भव है। अवस्थामें कुछ भी परिवर्तन होनेके लिए ओज (energy) की आवश्यकता होती है, क्योंकि बिना ओजके जड़त्व आ जायगी। इसलिए केवल निर्जीव कोषमें, जहाँ कि आन्तरिक परिवर्तन बन्द हो गये हैं, ओजका प्रयोग नहीं होता।

सब ओषदीकरण (oxidation) प्रक्रियाएँ बाह्य-तापिक (exothermal) होनेके कारण ओज निकालती हैं। यह ध्यान रखना चाहिए कि ओषदीकरण और अनोषदीकरण अभिन्न परावर्तनीय प्रक्रियाएँ नहीं होतीं। ओषदीकरण एक कोषमें किसी एक समय व स्थानमें हो सकता है, तथा अनोषदीकरण किसी दूसरे समय व स्थानमें हो सकता है।

श्वास-क्रिया ओषदीकरण प्रक्रियाओंका एक बड़ा समूह है, तथा फरमेनटेशन ओषदीकरण प्रक्रियाओंका एक दूसरा बड़ा समूह है। श्वास-क्रिया तथा फरमेनटेशन दोनों ओषदीकरण प्रक्रियाएँ हैं तथा दोनों हो तन्तु क्रियाओं (metabolism) में काम देती हैं।

श्वास क्रिया वह प्रक्रिया है जो कि प्रत्येक जीवित कोषमें होती रहती है और इससे ओज निकलता रहता है। श्वास-क्रिया एक ओषदीकरण प्रक्रिया इसलिए मानी जाती है कि इसके द्वारा अन्तमें पानी व कार्बन-डाइऑक्साइड बनती है। यही वस्तुएँ ऐन्द्रिक (organic) पदार्थोंके हवामें दाह्य होनेसे प्राप्त होती हैं। श्वास-क्रियाके बारेमें सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि ओषदीकरण प्रक्रिया कमरे के साधारण तापक्रममें होती रहती है, परन्तु कोषके बाहर ओषदीकरण प्रक्रियाके लिए बहुत अधिक तापक्रम की आवश्यकता होती है।

ओजके उत्पत्ति-स्थान

वे ऐन्द्रिक पदार्थ जो उद्भिद् द्वारा पैदा किए जाते हैं, ओजके मुख्य मूल हैं। उद्भिद् द्वारा निर्माणित आहारमें हरी पत्तियों द्वारा इकट्ठा किया हुआ सुप्त रूपमें सौर ओज रहता है। ओषदीकरण होने पर यह ओज मुक्त होता है और गयात्मक ओज (Kinetic energy) का रूप धारण करता है। यह गयात्मक ओज फिर उद्भिद् द्वारा जीवन क्रियाओंके लिए प्रयोग किया जाता है। जहाँ तक जीवन-क्रियाओंका सम्बन्ध है उद्भिद् की तुलना एक ऐसे कारखानेसे की जा सकती है जिसमें इंजिनको काममें लानेके लिए कोयलेकी आवश्यकता होती है। कोयला स्वयं बीते हुए युगोंके उन पेड़ोंका अंश है जिनमें उन दिनों सूर्य का ओज एकत्रित किया गया था। उसके बाद वे पेड़ पृथ्वीकी सतहके नीचे गड़ गये तथा कोयलेके रूपमें बदल गये। यह कोयला, जिसके अन्दर सुप्त ओज है, ओषदीकरण होने पर

---

*डा० श्रीरंजन द्वारा लिखित पुस्तक 'A Text-Book of Plant Physiology for Underaduates' के आधार पर।

गयात्मक ओज देता है, जिससे कारखानेके इंजिन चलाए जाते हैं। परन्तु एक कारखाने और एक उद्भिद् में यह अन्तर है कि कारखानेमें सुप्त ओज कृत्रिम रूपसे दिया जाता है, परन्तु उद्भिद् इसे स्वयं एकत्रित करता है।

डीसास्यूरने यह सबसे पहले दिखलाया था कि जीवोंकी भाँति उद्भिद्में भी श्वास क्रिया होती है। परन्तु बादमें इस बातमें सन्देह होने लगा, क्योंकि प्रकाशमें प्रकाश-संश्लेषणकी प्रक्रियाके कारण श्वास क्रिया प्रत्यक्ष रूपमें नहीं मालूम देती। सैक्सने यह बतला कर कि प्रकाशमें दोनों प्रक्रियाएँ एक दूसरे से स्वतंत्र होती हैं, इस रहस्यको स्पष्ट कर दिया। उन्होंने यह भी दिखलाया कि अन्धकारमें आहारके दहन होनेके कारण उद्भिद् भारमें कम हो जाते हैं।

श्वास क्रियाकी साधारण दशामें आक्सीजन शोषणकी जाती है तथा कार्बन डाईऑक्साईड और पानी मुक्त होता है। निम्नलिखित साधारण सूत्रसे यह प्रतिक्रिया स्पष्टकी जा सकती है।

$C_6H_{12}O_6 + 6CO_2 \rightarrow 6CO_2 + 6H_2O +$ energy (ओज)

ऐसी दशा में श्वास-गुणक (Respiratory coefficient) जो कि कार्बन डाईऑक्साइड तथा आक्सीजनका अनुपात ($\frac{CO_2}{O_2}$) है, इकाई होता है। इस श्वास-गुणक को प्रायः RQ लिखते हैं।

विभिन्न प्रकारकी श्वास क्रियाएँ

प्रत्येक स्थान पर साधारण श्वास क्रिया (Normal respiration) नहीं होती। इस लिये इन दृष्टान्तोंमें RQ इकाईसे या तो कम होता है या अधिक। उद्भिद्में होने वाली विभिन्न प्रकारकी श्वास क्रियाओंमें से कुछ नीचे दी जाती हैं—

(१) आक्सीजनकी उपस्थितिमें श्वास क्रिया—

(अ) कार्बोहाइड्रेट (पूर्ण ओषदीकरण)

$C_6H_{12}O_6 + 6O_2 = 6CO_2 + 6H_2O +$ 674 Kg. calories

(ब) वसा (Fats) (पूर्ण ओषदीकरण)

$C_{57}H_{104}O_6 + 80O_2 \rightarrow 57CO_2 + 52H_2O$ + 8,064 Kg. cal.
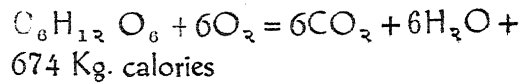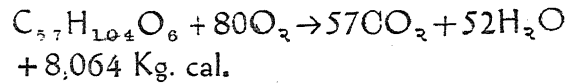
(स) क्रैसूलेसी (Crassulaceae) की विशेष श्वास-क्रिया—
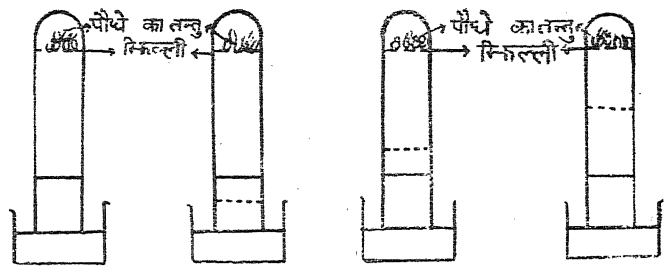
चित्र—१. विभिन्न पौधोंके तन्तुओंमें RQ. दिखलानेका ढंग। मोटी रेखा प्रारम्भिक सतह है। दूसरी प्रयोगके बाद की

$2C_6H_{12}O_6 + 3O_2 = 3C_4H_6O_5$ (malic acid) $+ 3H_2O$

(२) आक्सीजनकी अनुपस्थितिमें श्वास क्रिया—

$C_6H_{12}O_6 \rightarrow 2CO_2 + 2C_2H_5OH +$ 21 Kg. cal.
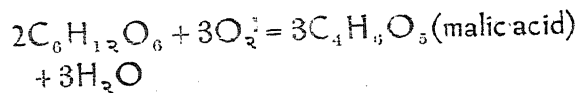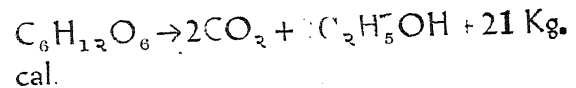
(३) आक्सीजन की अनुपस्थितिके बाद आक्सीजनकी उपस्थितिमें श्वास क्रिया—

$2C_2H_5OH + 6O_2 = 4CO_2 + 6H_2O +$ 653 Kg. cal,
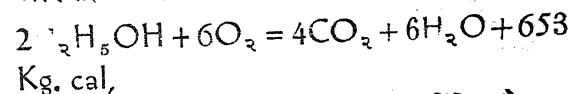
इन सब दृष्टान्तोंमें RQ भिन्न होंगे। जैसा कि चित्र (१) में दिखलाया गया है एक साधारण प्रयोग द्वारा यह बात स्पष्टकी जा सकती है। चार टेस्ट ट्यूब अलग-अलग पारेकी रकेबी। पर उलट कर रख दिये जाते हैं। उस ट्यूबमें जिसमें

गेहूँ रखा है, RQ इकाई है तथा बाकीमें RQ भिन्न हैं।

साधारण श्वास-क्रिया बहुत सी प्रतिक्रियाओं-की अंशात्मक है। सम्भवतः पहली प्रतिक्रिया आक्सीजन-रहित है परन्तु बाद को ऑक्सीजनकी उपस्थितिमें मध्यवर्ती पदार्थ, कार्बन-डाईऑक्साइड और पानीमें पूर्ण रूपसे ओषदोमान हो जाते हैं।

चूंकि आक्सीजनयुक्त श्वास-क्रियाके लिए आक्सीजनकी आवश्यकता है इसलिए इस गैस को पत्तियोंमें प्रवेश करना पड़ता है। इसी प्रकार प्रश्वासित कार्बन-डाइऑक्साइड को बाहर निकलना होता है। एक विशेष तन्तुमें प्रवेश करनेके बाद इस गैस को शीघ्रही इस तन्तुके प्रत्येक कोषके पास पहुँचना होता है। उद्भिद् तन्तुओंके कोषोंके बीचके खाली स्थानों द्वारा यह गैस शीघ्र अन्दर फैल कर बाहरी वायुमंडलके साथ सम्बन्ध स्थापित कर देती है। तनेकी बनावट बहुत मोटी होती है इसलिए उसमें गैसके प्रसारमें दिक्कत पड़ती है। परन्तु पत्तियोंकी अपेक्षा तनेके कोषों की क्रियाशीलता बहुत कम होती है। तनेमें केवल 'कैम्बियम' ही क्रियाशील है। इसी कारणसे इसमें गैसके प्रसारके लिए पत्तियोंकी अपेक्षा कम प्रभावकारी उपायोंकी आवश्यकता है। तनेमें भी कोषोंके मध्यस्थित स्थान लेन्टीसेलोंसे सम्बन्धित रहते हैं। मेडुलरी रेज़में भी रिक्त वायुस्थान बहुत अच्छी तरह विकसित रहते हैं और इनके द्वारा आक्सीजन, कैम्बियममें प्रसार करती है।

जड़ोंके अन्दर भी हवा जाने की आवश्यकता होती है। यदि मिट्टी जलसे ओत-प्रोत (Water logged) हो तो आक्सीजन का उसके अन्दर जाना बन्द हो जाता है और फलस्वरूप जड़ें मर जाती हैं। प्रत्येक पानीके पेड़में नलाकार वायुस्थान की बहुत अच्छी विकसित प्रणाली होती है।

उन पेड़ोंमें जो साधारणतः जमलय भूमि में पैदा होते हैं वायुवीय जड़ें विकसित हो जाती हैं। ऐसी भूमिके ऊपर खुली जड़ों की सतह पर लेन्टीसेल पाये जाते हैं। इन लेन्टीसेलोंके द्वारा गैसका प्रसार आसानीसे हो सकता है।

श्वास-क्रियाकी अवस्थाएँ

जैसा पहले कहा जा चुका है श्वास-क्रिया एक जीवन सम्बन्धी क्रिया है और इसलिए इसका मूलरसके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है, क्योंकि मूलरस जीवनका भौतिक आधार है। इसलिए जिस प्रकार मूलरस की तीन अवस्थाएं हैं, उसी प्रकार श्वास-क्रियाकी भी तीन अवस्थाएँ हैं। ये अवस्थाएँ निम्नलिखित हैं :—

(१) भ्रूण अवस्था :—पूर्वार्द्ध भ्रूण अवस्थामें श्वास-क्रिया धीमी होती है, क्योंकि अपरिपक्व मूलरसमें अभी तन्तुक्रियायें (Mataboliom) उच्च शिखर पर नहीं पहुँची हैं। परन्तु उत्तरार्द्ध भ्रूण अवस्थाके शुरू होने तक श्वास-क्रियाकी गति बहुत तेजीसे बढ़ने लगती है, क्योंकि इस अवस्थामें उद्भिद्में सबसे अधिक क्रियाशीलता होती है।

२) प्रौढ़ अवस्था :—इसमें श्वास-क्रिया लगभग शिखर को पहुँच जाती है और श्वास-क्रियाकी गति मूलरसकी अवस्थाके अनुसार धीरे-धीरे गिरने लगती है।

३—जरोन्मुख अवस्था—इस अवस्थाको भी पूर्वार्द्ध जरोन्मुख अवस्था व उत्तरार्द्ध जरोन्मुख अवस्थामें विभाजित कर सकते हैं। पूर्वार्द्ध जरोन्मुख अवस्थामें श्वास-क्रियाकी गति धीरे-धीरे शिखरको पहुँचती है। इसी समय उत्तरार्द्ध जरोन्मुख अवस्था शुरू होती है और श्वास-क्रियाकी गति कुछ अधिक तेज़ीके साथ गिरने लगती है।

अनाहारजनित पत्तीकी श्वास-क्रिया

ब्लैकमैन ने चेरी-लारेलकी पत्तियों पर कार्य करके यह दिखलाया कि जब पत्तियाँ पेड़से तोड़ कर अन्धकारमें रक्खी जाती हैं तब उनकी श्वास-क्रियाकी गति. जो कि शुरूमें ऊँची रहती है. समयके साथ गिरने लगती है। कुछ दिनों बाद श्वास क्रियाकी यह गति गिर कर प्रारम्भिक गतिकी एक चौथाई हो जाती है। परन्तु एक बार साम्यावस्था आ जाने पर फिर यह गति और आगे नहीं गिरती वरन् यह साम्यावस्था कई दिनों तक स्थिर रहती है। श्वास-क्रिया के उस पहले भागको जहाँ तक उसकी गति नीचे गिरती रहती है ब्लैकमैन ने 'फ्लोटिंग रेसपिरेसन' (Floating respiration) अर्थात् "अस्थिर श्वास क्रिया" कहा है और धीमे साम्यावस्था वाले भागको 'प्रोटोप्लाज़मिक रेसपिरेसन' (protoplasmic respiration) अर्थात् "मूलरस-श्वास-क्रिया" कहा है।

श्वास क्रियाकी गतिका कम हो जानेका वास्तविक कारण अभी रहस्यमय है. क्योंकि यह दिखलाया जा चुका है कि एक सप्ताह तक अन्धकारमें रहनेके बाद भी पत्तियोंमें काफी कार्बोहाइड्रेट रहता है तदापि निम्न-श्रेणीके कार्बोहाइड्रेटकी मात्रा कम हो जाती है। रंजन ने यह दिखलाया है कि प्रकाशके अभावके कारण श्वास-क्रियाकी गति गिर जाती है और जब पत्तियोंको साम्यावस्था वाली दशामें प्रकाश दिया जाता है तब श्वास-क्रियाकी गति बढ़ जाती है।

प्रकाश संश्लेषणकी श्वास-क्रिया भी कई आन्तरिक व बाह्यिक कारकों द्वारा प्रभावित होती है। इनमेंसे क) आक्सीजन और (ख) तापक्रम प्रमुख हैं। ये दोनों बाह्यिककारक हैं। (ग) शर्करायें और (घ प्रवर्तक आन्तरिक कारक हैं।

आक्सीजन

चूँकि श्वास-क्रिया धीमो ओषदीकरण प्रक्रिया है, इसलिए निसन्देह श्वास-क्रिया की गति आक्सीजनकी मात्रा पर निर्भर है। आक्सीजनकी मात्रा अधिक होनेके साथ श्वास क्रियाकी गति भी बढ़ती है तथा गैसकी मात्रा कम होनेके साथ श्वास-क्रियाकी गति कम हो जाती है। जब आक्सीजनकी मात्रा एक निश्चित सीमासे भी कम कर दी जाती है तब कुछ आक्सीजन रहित श्वास-क्रिया शुरू हो जाती है।

तापक्रम

चूँकि श्वास-क्रिया एक भौतिक रासायनिक घटना (phenomenon है, इसलिए यह भौतिक रासायनिक नियमोंका पालन करती है। पहले यह सोचा जाता था कि एक निश्चित तापक्रम के नीचे श्वास-क्रिया नहीं हो सकती। इसी प्रकार एक ऊँचा तापक्रम माना जाता था जिसके ऊपर कोष झुलस कर अन्तमें मर जाता है, तथा एक इष्ट (optimum) तापक्रम है जिसमें श्वास-क्रियाकी गति सबसे अधिक है।

अब यह प्रमाणित किया जा चुका है कि वैन्ट हाफका Q_{10} नियम श्वास-क्रियाके लिए भी उपयुक्त है। इसके यह माने हैं कि प्रत्येक १०° तापक्रम बढ़नेसे श्वास-क्रियाकी गति दोगुनी हो जाती है। यह नियम केवल कम तापक्रमके लिए ठीक है क्योंकि अधिक तापक्रममें उद्भिद्के आन्तरिक संगठनके कारण वैन्ट हाफ नियम साधारण रूपसे नहीं प्रमाणित किया जा सकता।

आहार

श्वास-क्रिया जारी रखनेके लिए नियमित आहार प्रदान करनेकी आवश्यकता है। श्वास-क्रियामें यह आवश्यक है कि पदार्थका ओषदीकरण किया जावे। पैलाडीन ने यह दिखलाया है कि साधारण दशामें श्वास-क्रियाके लिए कार्बोहाइड्रेट ओषदीकरण किये जाते हैं। केवल जब कार्बोहाइड्रेट नहीं मिल सकता तभी प्रोटीन प्रयोग की जाती है। श्वेतसारकी भाँति पालीसैकराइड भी ओषदीकरणके पहले मोनोसेज़में बदल दिये जाते हैं।

इसलिए अन्य बातोंके समान होनेके कारण श्वास-क्रिया मोनोसेज़की मात्रा पर निर्भर करती है। श्वेतसारका उदलेषण hydrolysis) जितना शीघ्र होगा उतनी ही श्वास-क्रिया तेज होगी। सब मोनोसेज़ बराबरसे श्वास-क्रियामें नहीं प्रयोगकी जातीं। यह प्रमाणित किया जा चुका है कि ग्लूकोज़ सबसे अधिक सरलतासे श्वास-क्रियामें प्रयोगकी जाती है। इसलिये इसे कैटाबोलिक शर्करा कहते हैं।

श्वास-क्रियाकी विधि

श्वास-क्रियाके पहले क्रममें श्वेतसारके उदलेषण होनेसे शर्कराएँ बनती हैं। इस प्रतिक्रियामें पानी और श्वेतसारका रासायनिक संयोग होता है। फलस्वरूप ग्लूकोज़ बनती है। उसके बादकी प्रक्रियामें ग्लकोज़ खंडित होती है और उसके आधे कार्बन परमाणु वाले यौगिक बनते हैं। इन मध्यवर्ती पदार्थोंका फिर अन्तमें ओषदीकरण होता है।

श्वेतसार
↓
शर्कराएँ
↓
शर्कराओंके आधे कार्बन परमाणु वाले मध्यवर्ती पदार्थ
↓
कार्बन डाइआक्साइड और पानी

उद्भिद्के अन्दर वास्तवमें किस प्रकार यह ओषदीकरण होता है यह नहीं मालम है, परन्तु जीवरसायन शास्त्र ने उद्भिद् फिजियोलाजी (प्राण विद्या) के इस दृष्टिकोण पर बहुत प्रकाश डाला है।

वायुमंडलकी आक्सीजन वास्तवमें आक्सीजन युक्त श्वास-क्रियामें बहुत प्रयोजन रखती है। यह परीक्षित बात है कि आक्सीजनकी क्रियाशीलता उसकी अवस्थाके अनुसार भिन्न होती है। अणुकी अवस्थामें यह इतनी क्रियाशील नहीं होती और यह इसी अवस्थामें वायुमण्डलमें रहती है। शुष्क अवस्थामें भी यह बहुत कम क्रियाशील होती है। पानीमें से यदि हाइड्रोजन निकाल दी जावे तो उसकी आक्सीजन बहुत क्रियाशील हो सकती है। इसलिए यदि हाइड्रोजन पानीसे निकाल दी जावे तो परमाणुके रूपमें आक्सीजन मुक्त होगी, और वह बहुत क्रियाशील होगी।

पैलेडियम उन पदार्थोंमें से है जो पानीमें से हाइड्रोजन निकाल कर स्वयं अनोषदीमान हो जाता है।

प्रतिक्रिया निम्नलिखित है :—

(१) $Pd + H_2O \rightarrow \quad Pd\,H_2 + O$

(२) $Pd\,H_2 + O_2 \rightarrow \quad Pd + H_2O_2$

(३) $H_2O_2 \rightarrow \quad H_2O + O$
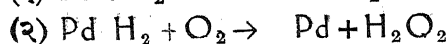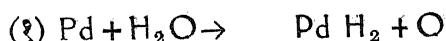
समीकरणमें स्वतंत्र परमाणु आक्सीजनकी मुक्तिके लिए हाइड्रोजन उद्भिद्की किसी वस्तुसे संयुक्त होता है। यह वस्तु समीकरण में लिखे पैलेडियमकी भाँति होगी। इस प्रक्रियाको आक्सीडो-रिडकसन कहते हैं, क्योंकि इस अनोषदीकरणके द्वारा, एक ही समयमें, ऊपर लिखी हुई योजनाके अनुसार आक्सीजन मध्यवर्ती पदार्थोंका ओषदीकरण करता है और साथ ही साथ पानीका हाइड्रोजन जो इस प्रकार मुक्त होगा वह उद्भिद्के किसी पदार्थके साथ

संयुक्त होकर उसका अनोषदीकरण करेगा। पैलाडीन ने यह दिखलाया है कि उद्भिद्में "रेस-पिरेटरी पिगमेन्ट" होते हैं और ये रेसपिरेटरी पिगमेन्ट' ऊपर समीकरणमें लिखे हुए पैलेडियम की भाँति कार्य करते हैं।

आक्सीजनकी अनुपस्थितिमें श्वास-क्रिया

जानवरोंकी अपेक्षा उद्भिद् बहुत समय तक आक्सीजनके सम्पूर्ण अभावमें रह सकते हैं। परीक्षा ने यह दिखलाया है कि कुछ सेवके फल कई दिनों तक लगातार आक्सीजनके पूर्ण अभाव में रह सकते हैं। पहले यह सोचा जाता था कि जब उद्भिद्की श्वास क्रिया आक्सीजनके अभावमें होती है तब आक्सीजन किसी प्रकार से मूलरसके किसी चीज़में परिणत होनेकी क्रियासे निकलता होगा। इसलिए आक्सीजनके अभावमें जो श्वास-क्रिया होती है उसे "इन्ट्रा-मालीकुलर रेसपिरेसन" कहते थे। किन्तु अब यह प्रमाणित किया जा चुका है कि इस प्रकार की श्वास-क्रियामें आक्सीजनकी बिलकुल भी आवश्यकता नहीं होती और इस श्वास क्रियाका नाम बदलकर आक्सीजन-रहित श्वास-क्रिया (anaerobic respiration) कर दिया गया है।

अल्कोहलिक-फरमेनटेशन

अलकोहलिक फरमेनटेशनकी जानकारी मनुष्यको कबसे है इसका इतिहाससे कुछ पता नहीं चलता। अति पूर्वकालसे मानव जाति इसको जानती रही है। इसकी चर्चा वेदोंमें भी आई है और वेदोंकी उत्पत्ति शायद ईसासे ३००० सदी पूर्वमें हुई है। हम लोगोंको इस प्रक्रियाका ज्ञान वास्तवमें पास्तूर (१८६६) के उच्चकोटिके अन्वेषणोंके बाद हुआ है। पास्तूर ही पहले पहल इस प्रक्रियाका जीव तत्त्वसे संबंध दिखलानेमें सफल हुए और यह प्रमाणित किया कि फरमेनटेशन ईस्टकी क्रियाशीलताके कारण होता है।

ईस्टकी गणना जीनस (Genus) सैकरोमाइसिटीस (saccharomycetes) में की जाती है। इन जीवोंमें केवल एक कोष होता है और ये कलियों (budding) द्वारा बहुत जल्दी-जल्दी बहु-गुणित होते हैं। उद्भिद्के साधारण कोषके प्रतिकूल ईस्टके कोषके मूलरसमें कोई वैकुओल (Vacuole) नहीं होता, परन्तु प्रत्येक ईस्ट कोषके मूला-बिन्दुमें ही एक बड़ा वैकुओल होता है। इसके अतिरिक्त ईस्टकी कोषभित्तिक शृङ्ग द्रव्यकी बनी होती है, जो कि जानवरोंकी विशेषता है। शिलीन्ध्रकी भाँति ईस्टमें हरित द्रव्य नहीं होता और इसलिये ये अपने आहारके लिए दूसरे उपायों पर निर्भर करते हैं। प्राकृतिक अवस्थामें ईस्ट अंगूरोंके ऊपर पाये जाते हैं। यदि अंगूर ऊपर छिल गया हो तो ईस्ट अन्दरके शर्कराओं के रस पर तत्काल ही अपनी क्रिया आरम्भ कर देते हैं और अलकोहलिक फरमेनटेशन शुरू हो जाता है। यह अलकोहलिक फरमेनटेशन नीचे लिखे हुये समीकरण द्वारा दिखलाया जा सकता है।

$$C_6 H_{12} O_6 \rightarrow 2CO_2 + 2C_2H_5OH + 28 \text{ Kg. cal.}$$
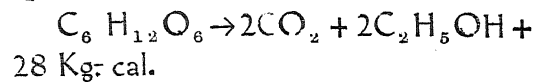
बुकनरने यह निश्चयरूपसे दिखलाया कि फरमेनटेशन, ईस्ट कोषकी जीवन-क्रियाओंके बिना भी हो सकता है। उन्होंने ईस्टको बालूके साथ पीसा और फिर ३००-४०० वायुमंडलके दबावमें रखा। इसके फल स्वरूप एक पारदर्शक रस निकलता है। यह रस जब शर्कराओंमें मिलाया जाता है तब फरमेनटेशन आरम्भ हो जाता है। इस रसमें प्रवर्त्तक होते हैं जिन्हें जाइमेज़ कहते हैं। आधुनिक अन्वेषणों द्वारा यह दिख-लाया जा चुका है कि जाइमेज़ एक सादा प्रव-

र्त्तक नहीं है परंतु यह कई प्रवर्त्तकोंका अंशात्मक है। फरमेनटेशन क्रिया इतनी सरल नहीं है जैसा कि ऊपर लिखे हुए रासायनिक समीकरण द्वारा दिखलाया गया है। इसके अतिरिक्त फरमेनटेशन से केवल कार्बन-डाइऑक्साईड और पानी ही नहीं बनता परन्तु इससे फ्यूसेल आयल (Fusel oil) ग्लोसोरोल (Glycerol) और सकसीनिक अम्ल (Succinic acid) भी कुछ मात्रामें बनते हैं। यह विचित्र बात है कि ईस्टके प्रवर्त्तक केवल कुछ प्रकारकी शर्कराओं पर अपनी क्रिया कर सकते हैं, उदाहरण स्वरूप (d glucose) डी-ग्लूकोज़, डी-द्राक्षाशर्करा (d-fructose), डी-मैन्नोज (d-mannose) और डी-गैलक्टोज़ (d-gallactose) और यही शर्कराएं ही श्वास-क्रियामें भी प्रयोगकी जाती हैं। यल-विभाग (l-series) वाली शर्कराएं उद्भिद द्वारा नहीं प्रयोगकी जातीं।

आक्सोजनकी उपस्थितिमें अलकोहलिक फरमेनटेशन घट जाता है परन्तु बिलकुल नहीं रुक जाता। आक्सीजनको उपस्थितिमें सम्पूर्ण अलकोहलके ओषदीकरण न होनेके दो कारण हैं –

(१) ईस्टमें ओषदीकारक प्रवर्त्तकोंकाअभाव।

(२) अलकोहलकाकोषके बाहर शीघ्र ही प्रसारित हो जाना।

लगभग १६ प्रतिशतके अलकोहलके घोलमें ईस्ट मर जाते हैं।

हार्डेन और यंग (Harden and young) तथा अन्य लोगोंके अन्वेषणोंने यह दिखला दिया है कि फरमेनटेशन कई अशांत्मक प्रतिक्रियाओं द्वारा होता है और इसमें फासफेट प्रवर्त्तक सहायक' (Co-enxymes) के तौर पर प्रयोग किये जाते हैं। प्रतिकियाके पहले क्रममें फासफेट शर्कराओंके साथ मिल कर हेक्सोज़ फासफेट बनाते हैं। यह हेक्सोज फासफेट कई मध्यवर्त्ती पदार्थोंमें बदलता हुआ फास्फो पाइरूविक अम्लमें परिणत होता है। फिर यह फास्फोपाइरूविक अम्ल उदलेषित होकर पाइरूविक अम्लमें परिणत हो जाता है और फासफेट फिर इसी प्रकारकी प्रतिक्रियाओंमें प्रवेश करता है। इन प्रतिक्रियाओंके अन्तिम क्रममें, पाइरूविक अम्ल, कार्बन डाइऑक्साईड व ऐसीटालडीहाइड में बदल जाता है। ऐसीटालडीहाइड अन्तमें अलकोहलमें बदल जाती है और यह अलकोहल इकट्ठा हो जाता है।

अपर्य्याप्त आक्सीडेज़ प्रणालो, फासफेटका प्रयोग होना तथा अलकोहलिक फरमेनटेशनके अन्तिम पदार्थ, ये सब यह स्पष्ट करते हैं कि आक्सीजनरहित श्वास क्रिया और फरमेनटेशन में घनिष्ठ सम्बन्ध है परन्तु फिर भी दोनों एक नहीं हैं। निम्नलिखित सारिणीमें तीनों प्रकारके ओषदीकरणका तुलनात्मक दिग्दर्शन कराया गया है।

[शेष अगले अंकमें]

सब्ज़ियाँ ठीक तरह बनाइये

[ले०—श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालङ्कार, हिमालय हर्बल इंस्टिट्यूट, बादामीबाग़, लाहौर ।]

आपके भोजनमें साग-सब्ज़ियोंका क्या स्थान होना चाहिए, और क्या आपकी पत्नी बढ़िया सब्ज़ी बनाना जानती हैं ? मेरा ख्याल है, दोनों बातोंका ठीक जवाब आप नहीं जानते। ख़ूब मिर्च मसाले और ढेर सारे घीमें भूनकर बनाई गई और ख़ुशबू छोड़ी हुई सब्ज़ियां आपकी बिगड़ी ज़बानको ज़रूर भली लगती हैं, परन्तु वे आपका पूरा पोषण नहीं करतीं। उन्हीं सब्ज़ियोंको उतने ही पैसेमें और उतनी ही मेहनतमें आपकी पत्नी ऐसा बना सकती हैं कि आप उनसे कई गुना अधिक लाभ प्राप्त करने लगें। इसके लिए आपको और आपकी पत्नीको ये बातें मालूम रहनी चाहिए।

ताज़ीसे ताज़ी सब्ज़ी खरीदनेकी कोशिश कीजिये। घरमें पड़े रहने देकर इन्हें बासी मत कीजिये। जब आपको ज़रूरत हो तभी सब्ज़ी खरीदें और उसे तुरन्त इस्तेमाल कर लें। रोज़ ताज़ी सब्ज़ी लें।

बाज़ार या खेतसे लाते हुए इन्हें कुचलने मत दीजिये। बहुत बार अगले समयका काम हलका करनेके लिए रसोईकी स्वामिनी दोनों समयकी सब्ज़ियोंको एक समय ही काट कर रख छोड़ती हैं। पकानेसे बहुत देर पहले इन्हें काटकर मत रख छोड़िये। कटी हुई, चोट खाई हुई, कुचली हुई या सड़ी हुई सब्ज़ियोंमें एक प्रकारके खमीर (Enyzmes) पैदा हो जाते हैं जो खाद्योजोंको नष्ट कर देते हैं।

सूखी और गरम जगह पर सब्ज़ियाँ पड़ी रहें तो गरमी खमीरोंकी प्रक्रियाको बढ़ाती है जिससे इनमें सड़ाँद तेज़ीसे होने लगती है। इसलिए सुबहकी खरीदी हुई सब्ज़ीको यदि शामको बनाना हो और इतने समयके लिए पानीमें भिगोनेकी ज़रूरत हो तो उसे सादे पानीमें न भिगो छोड़ें। ठण्डे नमकीन पानीमें (बारह छटाँक पानीमें दो चायके चम्मच भर नमक) रखें। सब्ज़ियोंमें विद्यमान खाद्योज (विटामिन) जलमें विलेय हैं इसलिए सादे पानीमें घुल कर वे नष्ट हो जायँगे परन्तु नमकीन पानी उनकी रक्षा करेगा।

सब्ज़ियोंके पत्ते मत फेंकिये। मूली, शलजम, हरा प्याज़ आदिके कोमल पत्तोंको भी अवश्य खाना चाहिए। सब्जियाँ उबाल कर उनका पानी फेंकना ठीक नहीं क्योंकि इससे पानीमें घुले हुए खाद्योज सब्ज़ियोंमेंसे नष्ट हो जायँगे और ये सारहीन हो जायँगी। सोडा, बेकिंग पाउडर आदि डालकर सब्ज़ियाँ न पकाइये इससे खाद्योज नष्ट हो जाते हैं।

खाद्योजों और खनिज लवणोंको अधिकसे अधिक परिमाणमें प्राप्त करनेके लिए सब्ज़ियोंको पकानेकी विधि यह है—

सब्ज़ीमें जितना पानी और नमक डालना हो उसे अलग पतीलेमें लेकर चूल्हे पर रखें। पानी उबल जाने पर काटी हुई सब्ज़ीको उसमें छोड़ दें। इसे पकनेके लिए कमसे कम जितने समयकी ज़रूरत होती है उससे अधिक देर तक न पकाएँ। अगर पानी ज़्यादा पड़ गया है तो उसे फेंके नहीं, दूसरी सब्ज़ीको पकानेमें बरत लें, अथवा रसेदार सब्ज़ीकी तरह इसे खालें। पकानेसे पहले पानीमें जो नमक मिलाया था उसका उद्देश्य यह था कि खाद्योज सी को कमसे कम हानि पहुँचे। यह खाद्योज पानीमें घुलनशील है और गरमीसे नष्ट हो जाता है। यह नाश इस बात पर निर्भर करता है कि इसे कितनी देर तक गरमी दी गई थी और यह गरमी कितनी अधिक या कम थी। इसलिए अनावश्यक आगके सम्पर्कमें रखकर खाद्य पदार्थोंको ख़राब मत कीजिये।

पकानेके बाद साग सब्ज़ियोंको देर तक न पड़ा रहने दें। तुरन्त परोस लें। घरोंमें, आश्रमोंमें और होस्टलोंमें प्रायः देखा जाता है कि बहुधा भोजन करनेके समयसे बहुत पहले ही साग-सब्जियाँ बना कर रख दी जाती हैं। ठण्डी न हो जायँ इसलिए इन्हें आगके पास टिका दिया जाता है। फिर भी यदि ये ठण्डी हो गई हैं तो परोसनेसे पहले इन्हें दुबारा गरम कर लेते हैं या घीमें छौंक लेते हैं। हरी सब्ज़ियाँ या पकाये हुए आलू गरम रखे रहने दिये जायँ तो इनमेंसे बहुत काफ़ी खाद्योज नष्ट हो जाते हैं। आलू-

[शेष पृष्ठ १५४ पर]

सृष्टिकी उत्पत्ति और प्रलय

[श्री नत्थनलाल गुप्त]

(जनवरी १६४६के अंकसे आगे)

प्रलय

यहाँ तक हमने सृष्टिकी उत्पत्तिकी कथा लिखी है, किन्तु जो चीज़ पैदा हुई है उसका विनाश अवश्यम्भावी है। दुनियामें किसी पदार्थ को भी स्थिरता प्राप्त नहीं है। प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील है और यही परिवर्तन उत्पत्ति तथा विनाशका कारण है।

यहाँ प्रलयका तात्पर्य केवल हमारी पृथ्वी वा हमारे सौर-परिवारका विनाश है। अन्यथा सर्वतोभाव: सारा विश्व कभी एकदम विनाशको प्राप्त नहीं होता। जिस प्रकारसे हमारी पृथ्वी पर हजारों जीव प्रतिदिन मरते और उनकी जगह नये उत्पन्न होते रहते हैं उसी प्रकारसे विश्व में सौर-सम्प्रदायके समान हजारों सम्प्रदाय विनष्ट होते और उनकी जगह नये सम्प्रदाय पैदा होते रहते हैं। और यह प्रवाह अनादि और अनन्त है। अत: हमें केवल यह विचारना है कि यह दुनिया, जिसे हम अपनी दुनिया कहते हैं, कभी विनष्ट होगी या नहीं और यदि होगी तो किस प्रकारसे।

किसी वस्तुका नाश दो प्रकारसे हो सकता है। एक तो उसकी नैसर्गिक मौत है, दूसरी आकस्मिक मौत। एक मनुष्य अपनी पूरी आयु भोगकर, बूढ़ा और निर्बल होकर, मर जाता है तो यह उसकी प्राकृतिक मौत है, किन्तु यदि वह अच्छा हट्टा-कट्टा और बलिष्ट हो और अकस्मात ही किसी घटनासे, जैसे पानीमें डूबकर या आगमें जलकर या मकानके नीचे दबकर, मर जाये तो वह उसकी आकस्मिक मृत्यु होगी। हमारी दुनियाके नष्ट होनेकी भी दो सूरतें हो सकती हैं. एक आकस्मिक, दूसरी नैसर्गिक।

१—हम ज्वारभाटा* के वर्णनमें बता चुके हैं कि हमारा चन्द्रमा अब तो हमसे दिन प्रतिदिन-दूर होता जा रहा है किन्तु कुछ समयके पश्चात् वह हमारी तरफ गिरने लगेगा और किसी दिन हमारी पृथ्वीसे आ टकरायेगा और उस टक्करसे हमारी पृथ्वी और चन्द्रमा दोनोंका अन्त हो जायेगा।

२—ग्रह परस्पर एक दूसरेको अपनी तरफ खींचते हैं। इससे ग्रह-कक्षाएँ बदलती रहती हैं। अर्थात्, ग्रह अपने नियत मार्ग को छोड़ कर, थोड़ा इधर-उधर होकर भ्रमण करने लगते हैं। पहले विचार किया जाता था कि इस परस्परके आकर्षणके कारण, सौर-सम्प्रदाय नष्ट हो सकता है और ग्रह आपसमें टकराके चूरचूर हो सकते हैं। किन्तु

*ज्वार-भाटाका हाल हमारी पुस्तक "खगोल" विज्ञानके चतुर्थ अध्यायके ५वें परिच्छेदमें वर्णन किया गया है। विज्ञान के किसी और अंकमें हम वह वर्णन पाठकोंकी भेट करेंगे।

सब्ज़ियाँ ठीक तरह बनाइये

[पृष्ठ १५३ का शेषांश]

को छिलके समेत उबालिये। यह खाद्योजोंको नष्ट होनेसे बचाता है।

आपकी आवश्यकता

आपके भोजनमें हरी साग-सब्ज़ियोंका जितना परिमाण होना चाहिए उतना शायद आप नहीं खाते। शरीरकी आवश्यकता पूरी करनेके लिए जवान आदमीको समतुलित भोजनमें पत्तेवाली सब्जियोंका परिमाण प्रतिदिन दो छटांक तो अवश्य रहना चाहिए। पत्तेवाली हरी सब्ज़ियोंसे हमारा अभिप्राय पालक, मेथी, पत्ता गोभी, सलाद, मूली-की पत्तियाँ, प्याज़के पत्ते, सरसों, चौलाई, बथुआ, करम, पोई, कुल्फा आदिके साग वगैरहसे है। बिना पत्तों वाली ताज़ी सब्जियाँ इस दो छटाँकके अलावा हैं। ये भी रोज़ तीन छटाँक तो ले लेनी चाहिए। ऐसी कुछ सब्जियोंके नाम ये हैं—गाजर, शलजम, मूली, चुकन्दर, आलू, चिरु आदि कन्द, बैंगन, करेला, तोरी, घीया, टींडा, खीरा, ककड़ी, परवल, टमाटर आदि फल और सेम, मटर, लोबिया, गवार आदि फलियाँ।

अब यह बात सिद्ध हो चुकी है कि ग्रह-कक्षाओंका परिवर्तन एक ही दिशामें जारी नहीं रहता। अर्थात्, यह परिवर्तन स्थायी नहीं, सामयिक है। कुछ समयके पश्चात् कक्षाएँ फिर अपनी पहली अवस्था पर लौट आती हैं। इसलिये इस परिवर्तनसे सौर-सम्प्रदायका विनष्ट हो जाना सम्भव नहीं है।

३—आकाशमें पुच्छल तारे समय-समय पर दृष्टि आते रहते हैं। पिछले समय में लोग इससे बहुत भय खाते थे। उन्हें यह डर रहता था, कि यदि कोई पुच्छल तारा हमारी पृथ्वीसे आ टकराया तो उसकी टक्करसे हमारी पृथ्वी टुकड़े-टुकड़े हो जायेगी और सम्भव है इस टक्करसे इतना ताप उत्पन्न हो जाये कि सारी पृथ्वी जल उठे। किन्तु आजकलके ज्योतिषियोंने पुच्छल तारोंकी हक़ीक़तको अच्छी तरह जान लिया है और इस प्रकारके हादसेकी अब कोई सम्भावना नहीं रही है।

४—जमीनके पेटमें बहुतसी आग भरी हुई है जो कभी-कभी ज्वालामुखी पर्वतोंसे फूट निकलती है। कुछ लोगों-का विचार है कि सम्भव है यह अग्नि किसी समय इतने ज़ोरसे भड़क उठे कि हमारी जमीनके टुकड़े-टुकड़े हो जायँ। किन्तु लॉर्ड कैल्विन (Lord Kelvin) ने यह सिद्ध कर दिया है कि पृथ्वीका ऊपरका ठोस छिलका इतना मोटा और भारी है कि वह भीतरकी आगको दबाये रखता है और इस दबावके कारण पृथ्वीका आन्तरिक भाग इतना गर्म होते हुए भी फौलादकी तरह ठोस और कठोर है। और यह अग्नि दिन-प्रतिदिन कम होती जा रही है इसलिये इस प्रकारकी किसी घटनाकी सम्भावना नहीं है जिसके कारण हमारी दुनियाका अन्त हो जाये।

ऊपर हमने आकस्मिक प्रलयकी कुछ सूरतें वर्णन की हैं। अब हम नैसर्गिक प्रलय पर विचार करते हैं। हमारी पृथ्वी अपने आन्तरिक तापको दिन-प्रतिदिन नष्ट कर रही है। ज्यों-ज्यों ताप कम हो रहा है उतना ही पानी पृथ्वीके भीतर उतरता जा रहा है। एक दिन सारा पानी पृथ्वीके पेटमें समा जायेगा और पृथ्वीतल सूखा और बंजर रह जायेगा। पृथ्वी अपने वायुमण्डलको भी धीरे-धीरे नष्ट कर रही है। अन्तमें एक दिन ऐसा आयेगा कि सारा वायु-मंडल असीम आकाशमें छितरा जायेगा। उस समय तक यदि कुछ जल पृथ्वीतल पर शेष रह जायेगा, तो वह वायुभारके हट जानेसे वाष्प बनकर उड़ जायेगा और अनन्त आकाशमें फैलकर नष्ट हो जायेगा। इस प्रकार जब पृथ्वी वायु और जलविहीन रह जायेगी तो कोई प्राणी पृथ्वी पर जीवित न रह सकेगा। ऐसी ही अवस्था अन्य ग्रहोंकी होगी।

हमारा सूर्य्य भी अपने उत्तापको खोकर सिकुड़ता जा रहा है। अभी तक उसका बहुतसा भाग वायव्य (Gas) अवस्थामें है, किन्तु एक दिन ऐसा होगा कि उसमें और सिकुड़नेकी गुंजाइश न रह जायेगी। उसके पश्चात् और गर्मी निकालनेसे उसका तापमान कम होने लगेगा और अन्तमें वह, हमारी पृथ्वीके समान, प्रभाहीन होकर ठंडा और ठोस गोला बन जायेगा। इस प्रकार हमारी पृथ्वी सूर्य्यसे मिलने वाली जीवनदायिनी गर्मी और रोशनीसे वंचित रह जायेगी। अनुमान किया गया है कि सूर्य्य को पृथ्वीके समान ठंडा होनेके लिये कमसे कम १ करोड़ २० लाख वर्ष दरकार होंगे। किन्तु पृथ्वी इससे पहले ही मुर्दा दुनिया बन चुकी होगी। इसलिये उस अवस्था को देखने-का किसी प्राणी को सौभाग्य (वा दुर्भाग्य) प्राप्त न हो सकेगा।

मृत सूर्य्य फिर भी अपने जीवन रहित ग्रहोंको साथ लिए हुए आकाशमें गति कर रहा होगा और न मालूम कितने काल तक लगातार इसी प्रकार भ्रमण करता रहेगा। अकस्मात ही उसकी किसी अन्य मृत सूर्य्य से टक्कर हो जायेगी। उस टक्करसे इतनी उष्णता पैदा होगी कि हमारा सूर्य्य और उसका ग्रह-परिवार एकदम धायँ-धायँ करके चिता के समान जल उठेगा और गैस बन जायेगा। इस प्रकार हमारा सौर-सम्प्रदाय फिर एक नीहारिकाका रूप धारण कर लेगा। यह नीहारिका बहुत मुद्दत तक, शायद करोड़ों साल तक, आकाशमें एक धुँधले बादलके समान चक्कर काटती रहेगी और समय पाकर उससे फिर नूतन सौर-सम्प्रदायकी सृष्टि होगी।

यह बात तो निर्विवाद ही है कि यह सारी सृष्टि द्रव्य और शक्ति ही का खेल है। द्रव्य न कभी उत्पन्न हुआ है और न कभी उसका विनाश होगा। वह केवल रूप

बदलता रहता है। इस बातको यूँ भी कह सकते हैं कि द्रव्य नियत परिमाणमें अनादिसे चला आता है। उसमें न कभी न्यूनता होती है न वृद्धि। इसी प्रकार शक्ति भी निश्चित परिमाणसे अनादि और अनन्त है और उसमें भी घटा-बढ़ी सम्भव नहीं है। वह भी भिन्न-भिन्न रूपोंमें प्रगट होती रहती है। कभी वह उष्णताका रूप धारण कर लेती है और कभी प्रकाशका, कभी विद्युत् के रूपमें प्रगट होती है और कभी आकर्षणके; कभी गतिमें परिणित हो जाती है और कभी स्थिरतामें, इत्यादि, किन्तु है वह एक ही चीज। शक्ति सदैव द्रव्यमें रहती है, अलग वह नहीं* रह सकती और उसीकी सहायतासे द्रव्य रूप बदलता है। द्रव्य और शक्तिके सम्बन्धमें जो बातें ऊपर कही गई हैं। विज्ञान उनसे इंकार नहीं कर सकता।

सूर्य्य, ताप, प्रकाश और आकर्षण आदिके रूपमें जो शक्ति बाहर निकलती है उसका बहुत थोड़ा भाग पृथ्वी और अन्य ग्रहोंके काममें आता है। शेष सब अनन्त आकाशमें छितरा जाता है। आकाश असीम है और शक्ति भी नष्ट होने वाली चीज़ नहीं, अतः यह कहना पड़ेगा कि शक्तिकी किरणें, चाहे वह किसी रूपमें सूर्य्यसे निकलें, अनन्त काल तक आकाशमें आगे ही आगे बराबर बढ़ती रहती हैं। क्योंकि यदि ऐसा न होता तो जो तारे हजारों प्रकाश-वर्षोंके अन्तर पर उपस्थित हैं वह हमें कभी दृष्टि न आ सकते।

सूर्य्यसे जो शक्ति निकल जाती है वह फिर वापिस नहीं लौटती, वरन् आकाशमें आगे ही आगे बढ़ती चली जाती है। अब प्रश्न यह पैदा होता है कि जब सूर्य और ग्रहोंकी सारी शक्ति असीम आकाशमें छितरा जायेगी तब उस द्रव्यसे दूसरी बार सृष्टि बनानेके लिये शक्ति कहाँसे आयेगी? क्या वह अभावसे उत्पन्न हो जायेगी? किन्तु यह बात तो विज्ञानके मन्तव्यके विरुद्ध है।

इसके अतिरिक्त दूसरी कठिनाई यह है कि जब मृत सूर्य्य परस्पर टकराते हैं तो जो शक्ति उन दोनोंको गति दे रही थी वह तो उष्णतामें परिणत हो जाती होगी और दोनोंकी गैसोंके मिलनेसे एक ही नीहारिका बन जाती होगी। अब जब उस नीहारिकासे नूतन सूर्य्य-सम्प्रदाय पैदा होगा तो वह सम्प्रदाय द्रव्यकी अधिकताके कारण अधिक बड़ा और शानदार होगा। इसी प्रकार से प्रत्येक चक्रके पश्चात् द्रव्यका परिमाण बढ़ता और शक्तिका घटता चला जायेगा और अन्तमें शक्तिहीन द्रव्य शेष रह जायेगा और सृष्टिका सिलसिला समाप्त हो जायेगा।

हमारा विचार ऐसा है कि शक्ति द्रव्यमें सर्वदा उपस्थित रहती है। न तो वह उसमेंसे खारिज हो सकती है और न कहीं से आकर उसमें प्रवेश करती है, किन्तु वह अव्यक्त और व्यक्त अवस्थाओंमें तबदील होती रहती है। जब शक्ति व्यक्त अवस्थामें होती है तो वह ताप, प्रकाश, गति और आकर्षण, आदिके रूपमें प्रकट होती है और वह प्रायः अपने प्रभावसे आस-पासके द्रव्य की अव्यक्त (Potential energy) को व्यक्त (Kinetic) अवस्थामें लाकर स्वयं अव्यक्त हो जाती है। इसे हम कहते हैं कि शक्ति एक पिण्डसे दूसरे पिण्डमें चली गई। यह बात उदाहरणों द्वारा भली प्रकार समझाई जा सकती है। लोहेका एक गर्म गोला पृथ्वी पर पड़ा है। वह अपनी गर्मीसे पृथ्वी और आस-पासकी वायुको गर्मी पहुँचा रहा है, सामान्यतः यह समझा जाता है कि गोला अपनी उष्णता उन पदार्थों को दे रहा है किन्तु हम इसकी व्याख्या यों करते हैं कि गोलेकी व्यक्त शक्ति आस-पासके पदार्थोंकी अव्यक्त शक्ति को व्यक्त करके स्वयं अव्यक्त अवस्थामें परिणत हो रही है। विद्युत्‌की अवस्थामें भी ऐसा ही होता है। यदि एक विद्युतसे प्रभावित पिण्ड, दूसरे पिण्डके, जो विद्युत से प्रभावित न हो, निकट लाया जाय तो वह दूसरा पिण्ड भी विद्युत्-युक्त हो जाता है। एक चुम्बकको किसी फौलादके टुकड़े—छुरी, चाकू आदि पर रगड़ दें तो वह भी चुम्बक बन जाता है, और ऐसा करनेसे उस चुम्बक-की शक्तिमें भी कोई कमी नहीं आती। इससे स्पष्ट है कि फौलादके टुकड़ेमें जो शक्ति अव्यक्त अवस्थामें थी अब वह चुम्बक शक्तिके रूपमें व्यक्त हो गई है, यदि पहले चुम्बकसे फौलादके टुकड़ेमें चुम्बक शक्ति आ जाती तो चुम्बकमें वह शक्ति न रहनी चाहिये थी, किन्तु

*और यदि रहती हो तो इसे जान नहीं सकते।

ऐसा नहीं होता। पहला चुम्बक भी उसी प्रकार चुम्बक बना रहता है। एक चुम्बकसे हम, उसकी शक्तिको नष्ट किये बिना, हजारों चुम्बक बना सकते हैं। इससे यह भी ज्ञात हुआ कि बाज़ सूरतोंमें तो एक पिंडकी व्यक्त शक्ति दूसरे पिंडकी अव्यक्त शक्तिको व्यक्त करके स्वयं अव्यक्त हो जाती है, किन्तु कुछ अवस्थाओं में एक व्यक्त शक्ति दूसरी शक्तिको व्यक्त करके स्वयं भी व्यक्त बनी रहती है।

बस सूर्य्य भी अपनी शक्तिको आकाशमें फेंक नहीं रहा है, किन्तु सूर्य्य की व्यक्त शक्ति आस-पासके ईथरकी अव्यक्त शक्तिको व्यक्त कर देती है, और ईथरकी शक्ति व्यक्त होकर अपने प्रभावसे आस-पासके और ईथर-कणों की शक्तिको व्यक्त कर देती है। यही क्रम बराबर जारी रहता है यहाँ तक कि वह प्रभाव हमारी पृथ्वी तथा अन्य ग्रहों तक पहुँच जाता है और उसीसे ताप और प्रकाश उत्पन्न होता है। आकाशमें यह प्रवाह अनन्त समय तक चलता रहता है। इसीको हम यूँ कहते हैं कि सूर्य्यका ताप और प्रकाश आकाशमें फैलता जा रहा है। किन्तु, वास्तवमें, सूर्य्यकी शक्ति अपना प्रभाव दूसरे द्रव्य-कणोंकी अव्यक्त शक्ति पर डाल कर स्वयं अव्यक्त हो जाती है। अतः जिस समय सूर्य्य बिल्कुल ठंडा और प्रभाहीन हो जायेगा उस समय भी उसके द्रव्यकी समस्त शक्ति उसके अन्दर ही मौजूद होगी किन्तु वह अव्यक्त अवस्थामें होगी। ताप और प्रकाशकी भाँति अन्य शक्तियाँ, अर्थात् . गुरुत्व आकर्षण और संसक्ति (सयोजक शक्ति) आदि भी अपना कार्य छोड़ कर अव्यक्त अवस्थामें चली जायेंगी। तब सूर्य्य में न कोई गति रहेगी न आकर्षण, वरन् संसक्तिके नष्ट (अव्यक्त) हो जानेके कारण उसके द्रव्याणुओंका परस्पर गठन भी नष्ट हो जायेगा और वह सबके सब अलग-अलग होकर बिखर जायेंगे और सूर्य्य और समस्त ग्रह सर्द और निर्जीव द्रव्याणुओंका एक ढेर रह जायेंगे। सब प्रकार-की शक्ति नष्ट (अव्यक्त) हो जानेके कारण द्रव्याणु भी परमाणुओं (Atoms) में और परमाणु ऐलेक्ट्रोन (Electrons) में परिणत हो जायेंगे। ऐलेक्ट्रोन भी टूट-फूट जायेंगे और द्रव्य सूक्ष्मताकी सीमाको पहुँच जायेगा। वह ऐसी अवस्था होगी जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता और उसके भाव (अस्ति) और अभाव (नास्ति) में भी भेद जानना कठिन है। वह ईथरके समान इन्द्रियातीत होगा। करोड़ों वर्षों तक वह इस अवस्था में रहेगा। उसके पश्चात् उसकी शक्ति फिर जाग उठेगी। पहले ऐलेक्ट्रोन बनेंगे, फिर परमाणु उत्पन्न हो जायेंगे, इस प्रकार प्रभाहीन नीहारिका बन जायेगी; फिर परमा-णुओंमें थरथराहट पैदा हो जायेगी; वह परस्पर टकरायेंगे; इससे ताप और प्रकाश प्रगट होगा, अर्थात् , प्रभाहीन नीहारिका प्रभायुक्त (प्रकाशित) नीहारिका बन जायेगी और अपने केन्द्रके गिर्द घूमने लगेगी; इससे पहलेके समान सौर-सम्प्रदायका जन्म हो जायेगा। यही चक्र बराबर जारी रहेगा।

प्रो० लोक्यार (Pro. Lockyer) ने भी नीहा-रिका बननेसे पूर्वकी प्रकृतिकी अवस्थाके वर्णन करनेका प्रयत्न किया है। उन्होंने बतलाया है कि वह प्रकृतिकी ऐसी अवस्था होती है जिसको कोई रासायनिक * नाम नहीं दिया जा सकता। वह कुछ स्थूल होकर हाईड्रोजन वा हाईड्रोजन जैसी अत्यन्त क्षुद्र चीज़ वा चीज़ोंमें परिणत हो जाती है। इन क्षुद्र पदार्थोंके कुछ और स्थूल होनेसे एक प्रकारकी निहायत उम्दा बारीक धूल-सी बन जाती है, जिससे मैगनेशियम (Magnesium), कार्बन (Carbon), ऑक्सीजन (Oxygen), लोहा (Iron), सिलीकन (Silican) और गंधक (Sulpher) आदि तत्वोंके परमाणु पैदा होते हैं। इन्हीं परमाणुओंके संयोगसे उल्का-लोह और उल्का-पत्थरके नन्हें-नन्हें कण बन जाते हैं जिनके परस्पर टकरानेसे ताप और प्रकाश पैदा होता है। केन्द्रिय-आकर्षणके कारण उल्का-कणोंका यह ढेर अपने केन्द्रके गिर्द घूमने लगता है और उससे सृष्टि-उत्पत्तिका कार्य आरम्भ हो जाता है।

लोक्यारकी उल्का-कणोंसे बनी हुई नीहारिकाओंकी व्याख्या केवल इसी प्रकारसे हो सकती है, अन्य प्रकारसे नहीं।

---

*हमारे शास्त्रोंने भी उसको "अव्यक्त" नाम दिया है।

कीटाणुनाशक डी० डी० टी०

[लेखक—श्री जोगेश्वर दयाल वैश्य, एम० ए०, बी० एस-सी०, इन्सपेक्टर आफ़ स्कूल्स, बीकानेर]

दूसरे महायुद्धकी एक अजीब देन डी० डी० टी० है। अब यह साधारण जनताके हाथोंमें पहुँचने लगा है। इसके बारेमें बहुतसी बातें तो इतनी विचित्र सुननेमें आती हैं कि यह एक जादूभरी वस्तु मालूम होती है। जैसे, द्वीप भरके सारे मच्छर और मक्खियोंको मार देना, ऐसे स्थानोंको जो बीमारीके घर समझे जाते हैं स्वास्थ्यवर्द्धक स्थान बना देना। नैपिल्समें टाईफ़ायडका ज़ोर इसके कारण हलका पड़ गया।

इस विचित्र दवाके बारेमें अभी तक जो बातें ज्ञात हुई हैं वह नीचे दी जा रही हैं—

यह क्या है?

यह एक बिना रंग व गंधकी रवेदार ठोस वस्तु है। यह चूर्ण अथवा तरल दोनों प्रकार काममें लायी जा सकती है। रासायनिक दृष्टिसे यह डाईक्लोरो-डाईफिनाईल-ट्राई-क्लोरोइथेन है।

क्या यह नवीन है?

नहीं, ऐसा नहीं है। यह सन् १८७४ ई०में प्रथम बार बनाया गया था। इसके छः वर्ष बाद स्विट्ज़रलैंडकी एक कम्पनीने यह मालूम किया कि यह एक अच्छा कीटाणु-नाशक है। अमेरिकाको यह सर्वप्रथम १९४२में भेजा गया था।

यह किस प्रकार काम करता है?

यह कीटाणुके स्नायु संस्थान पर आक्रमण करता है। इसके लगने पर मक्खियाँ और मच्छरोंमें एक प्रकारकी बेहोशी आने लगती है जो कि फिर लकवेके रूपमें प्रकट होती है। मक्खियाँ और मच्छर प्रायः आध घंटेमें मर जाते हैं, खटमल कुछ घंटे में।

यह घरमें कैसे काममें लाया जा सकता है?

१—मक्खियाँ और मच्छर नष्ट करनेके लिये।

२—पिस्सू और खटमल नष्ट करनेके लिये।

क्या यह मनुष्योंके लिये हानिकारक है?

अमेरिका के फौजी विभाग, स्वास्थ्य विभाग और कृषि विभाग जिनके द्वारा यह हजारों टन देश और विदेशोंमें काममें लाया गया है रिपोर्ट करते हैं कि मनुष्य जीवनको इससे कुछ हानि नहीं होती है, यदि यह उचित मात्रामें सावधानीसे प्रयोगमें लाया जाय।

डी० डी० टी०के योग खाने योग्य नहीं हैं। बिना ढके हुए खानेके सामानके पास यह न छिड़के जायँ। उन शाक सब्ज़ियों पर न छिड़के जायँ जो खानेके काममें आने वाली हों।

क्या डी०डी०टी० कपड़ों, परदे, फरनीचरको हानि पहुँचाता है?

नहीं। यदि यह किसी हानिकारक घोलके साथ काममें लाया जाय तो अवश्य हानि हो सकती है। बिना गंध वाले मिट्टीके तेल या नैप्थाके घोलमें बिना हानिके डरके काममें लाया जा सकता है। यदि पानीका घोल पालिश वाली या काले रंगकी वस्तुओंपर छिड़का जाता है तो उस पर कुछ निशान रह जाते हैं लेकिन यह गीले कपड़ेसे आसानीसे हट जाते हैं।

क्या यह कपड़ोंको कीड़ेसे बचानेके काम आ सकता है?

हाँ। ऊनी कपड़े, खालके कपड़े ५ प्रतिशत डी० डी० टी० चूर्ण या ५ प्रतिशत नैप्थाका घोल छिड़कनेसे कीड़ोंसे बचाये जा सकते हैं। यह कपड़े खाने वाले कीड़ोंके लार्वा-को फ़ौरन नष्ट कर देता है। अंडोंपर इसका प्रभाव अवश्य कुछ नहीं होता लेकिन ज्योंही उनमेंसे लार्वा उत्पन्न होते हैं वह फ़ौरन मर जाते हैं। दरियोंमें जो एक विशेष प्रकारका कीड़ा लग जाया करता है उसको भी मारनेमें डी० डी० टी० बहुत सफल हुआ है।

क्या डी० डी० टी० दीवारों पर पेन्टके साथ लगाया जा सकता है?

यह पानीके घोलके साथ यदि दीवारों पर लगाया जाय तो लगभग ६ माह तक कीटाणुनाशक गुण दिखलाता है। तेलके पेंटोंके साथ इसका प्रभाव बहुत ही कम हो जाता है।

[शेष पृष्ठ १६० पर]

वैज्ञानिक समाचार

[ले०—डा० ओंकारनाथ परती, एम० एस-सी०, डी०फिल०]

नोबेल पुरस्कार

भौतिक विज्ञान : सन् १९४४का भौतिक विज्ञानका पुरस्कार स्विट्ज़रलैण्डके निवासी प्रो० वूल्फैंग पालीको मिला है । आजकल आप संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाकी प्रिंसटन यूनीवर्सिटीमें हैं । आपका "पाली-सिद्धान्त" भौतिक विज्ञानकी महत्वपूर्ण खोजोंमें उच्च स्थान रखता है ।

रसायन-विज्ञान : सन् १९४४का रसायन-विज्ञानका पुरस्कार जर्मनीके निवासी प्रो० ओटो हॉनको मिला । समाचारपत्रोंसे ज्ञात होता है कि आप भी आजकल संयुक्त राष्ट्र अमेरिकामें हैं । आपकी खोजोंने परमाणु-बम बनानेमें बड़ी सहायता की ।

सन् १९४५का रसायन विज्ञानका पुरस्कार फिनलैण्डके प्रो० आरतूरी आई० विरतानन्को मिला । आप बायो केमिकल इन्स्टीट्यूट, हेलसिन्कीमें प्रोफेसर हैं । आपने पेड़ोंमें नाइट्रोजनका अध्ययन किया है । आपने सर्वप्रथम यह दिखलाया कि चनेकी श्रेणीके पेड़ोंकी जड़ोंकी गाँठों (Legume root nodules) का लाल रंग उसी हीमोग्लोबीन (Haemoglobin) के कारण है जो मनुष्यके रक्तका रंग लाल बनाये रखती है ।

चिकित्सा-विज्ञान : चिकित्सा-विज्ञानका पुरस्कार (सन् १९४५ का) सर एलक्जैण्डर फ्लेमिंग, सर टावर्ड फ्लोरी और डा० ई० बी० चेनको इकट्ठा मिला है । इन वैज्ञानिकोंने संसारको एक अद्भुत दवा, पेनीसिलन्, दी है । पेनीसिलनकी समस्त खोजका श्रेय मुख्यतर इन्हीं वैज्ञानिकोंको है ।

शान्ति : सन् १९४४का शान्ति-पुरस्कार (Peace Prize) जिनेवाके अन्तर्राष्ट्रीय रेडक्रासको मिला है । सन् १९४५ का पुरस्कार संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाके श्री कॉर-डल हल को मिला है ।

मोटरके टायरमें हवाके स्थानमें पानी

अमेरिकामें किये गये प्रयोगोंसे पता चलता है कि यदि मोटरके टायरमें हवाके स्थान पर कैलसियम क्लोराइड का घोल भरा जाय तो मोटर चलानेमें अधिक सुविधा होती है । एक मोटर कम्पनीका कथन है कि ऐसा करनेसे टायर भी कम घिसता है । बार-बार टायरमें हवा भरनेके झंझटसे भी छुट्टी मिल जाती है ।

भारतीय वैज्ञानिक जर्मनी जायेंगे

भारतीय सरकारके प्लैनिंग और डिवेलपमेंट विभागके अनुरोधसे अंगरेजी सरकारने जर्मनी जानेवाले वैज्ञानिकोंमें पाँच भारतीय वैज्ञानिकोंका रखना मंजूर कर लिया है । ये वैज्ञानिक जर्मनीमें जाकर वहाँके उद्योग व्यवसाय एवं अनुसन्धानोंका अध्ययन करेंगे । अभी तक यह नहीं ज्ञात हुआ है कि कौनसे वैज्ञानिक इस कामके लिये चुने जायेंगे ।

पेशावरमें चीनीके लिये चुकन्दरकी खेती

उत्तर-पश्चिम सरहदी सूबेके कृषि-सम्बन्धी खोजके डाइरेक्टरने यह बतलाया है कि पेशावरकी घाटीमें चुकन्दरकी खेती सुगमता एवं सफलतापूर्वक हो सकती है । इस विषय पर सन् १९१२-१३से विचार किया जा रहा था किन्तु सन् १९३५से इस खोजमें अधिक ध्यान दिया जाने लगा । इन खोजोंसे पता चला है कि प्रति एकड़ विलमोरिन (Vilmorin) नामक चुकन्दर सबसे अधिक उपजता है किन्तु सबसे अधिक रस Z. Z. जरमन (Z. Z. German) नामक चुकन्दर बोनेसे मिलता है । चुकन्दर काटनेका समय अप्रैलसे सितम्बर तक है और इन दिनों गन्नेसे चीनी निकालनेकी फैक्टरियाँ प्राय: बन्द रहती हैं । यह अनुमान लगाया गया है कि लगभग ४ लाख रुपये खर्च करने पर ४०० टनकी गन्नेसे चीनी निकालनेवाली एक फैक्टरी चुकन्दरसे चीनी निकालने वाली फैक्टरीमें बदली जा सकती है । हमारे देशमें चीनी अधिकतर गन्नेसे ही निकाली जाती है किन्तु सम्भव है कि अब चुकन्दरका भी प्रयोग होने लगे । इससे हमारे देशकी गन्नेसे चीनी निकालने वाली फैक्टरियों पर क्या प्रभाव पड़ेगा यह कहना अभी कठिन है ।

संसारमें सबसे तेज़ वायुयान

इस महायुद्धमें वायुयान सम्बन्धी अनेक आविष्कार हुए किन्तु सबसे महत्वपूर्ण कदाचित् टरबाइन जेट इंजनका प्रयोग है। एक यही इञ्जन है जो ४०,००० फीटकी ऊँचाई पर भी सरलतासे चलता है और हवाई जहाज़ चला सकता है। इंगलैण्डके ग्रूप कैप्टेन विलसन्ने आर० ए० एफ० के मीटियोर ४ (Meteor IV) नामक जहाज़ पर जिसमें इसी सद्धान्त पर बनाये गये इञ्जन लगे थे एक घंटेमें ६०६ मील तककी गतिसे उड़ान की है। जानकारोंका कथन है कि अब वह दिन दूर नहीं है जब लंडनसे मौन-ट्रियल तक (लगभग ३००० मील) छः घंटेमें सवारीके वायुयान जा सकेंगे। उनका विचार है कि दो तीन वर्षमें ही यह सम्भव हो सकेगा।

वातूमल छात्रवृत्ति

वातूमल छात्रवृत्तिके प्रबन्धकर्ताओंने सन् १९४६-४७ में दस छात्रवृत्ति देने का विचार किया है। इसके लिये स्त्री और पुरुष दोनों ही निवेदनपत्र भेज सकते हैं। यह छात्र-वृत्ति केवल यूनीवर्सिटीके अध्यापकोंके लिये होगी। अध्यापकोंको यह स्वीकार करना होगा कि इस छात्रवृत्तिके समाप्त होने पर वह कमसे कम तीन वर्ष तक अपनी जगह पर अर्थात् जहाँ अब अध्यापक हैं काम करेंगे। यह छात्रवृत्ति संयुक्त राष्ट्र अमेरिकामें उच्च अध्ययन एवं अनुसंधान करनेके लिये है। प्रार्थना-पत्र यूनीवर्सिटीके वाइसचासलरों द्वारा अथवा यूनीवर्सिटीके डीन द्वारा भेजा जाना चाहिये। अधिक विवरणके लिये इस पते पर लिखिये—मिस्टर जे० वातूमल, फोर्ट रोड, हैदराबाद, सिंध।

कीटाणुनाशक डी० डी० टी०

[पृष्ठ १५८ का शेषांश]

क्या डी० डी० टी० कुत्तों और बिल्लियों पर काममें लाया जा सकता है?

सेलखड़ीके साथ मिला कर इसका ५ प्रतिशत डस्टिंग पाउडर कुत्तोंको मक्खियों और चिचड़ियों से बचावेगा। कुत्ते अक्सर नहाते हैं अथवा वर्षामें भीग जाते हैं इस-लिए यह पाउडर समय समय पर लगाते रहना चाहिये। बिल्लियोंके सिर और गर्दन पर बहुत हलके हाथसे छिड़कना चाहिये क्योंकि बिल्लियाँ अपनी खालको चाटती रहती हैं।

बाग़ में डी० डी० टी० किस काम आ सकता है?

यह पेड़ोंके अनेक शत्रुओंको आसानीसे मार सकता है। इसका प्रयोग कृषिविभागके सुझावोंके अनुसार ही करना चाहिये क्योंकि कभी-कभी यह ज़हरीला माद्दा छोड़ देता है।

क्या शरीर और कपड़ोंकी जुएँ भी इससे मर जाती हैं?

हाँ। १० प्रतिशत पाउडर शरीर और कपड़ों पर छिड़कना काफ़ी है। सिरमें डालने पर सिरकी जुएँ नष्ट हो जाती हैं लेकिन अंडों पर कुछ प्रभाव नहीं होता। यदि यह पाउडर सिरमें लगा छोड़ दिया जाय तो ज्योंही अंडोंमेंसे बच्चे पैदा होंगे त्योंही वह मर जायँगे।

विषय सूची

विज्ञान

विज्ञान-परिषद्, प्रयागका मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ।। तै० उ० ।३।५।

भाग ६२ | मीन सम्वत् २००२, मार्च १९४६ | संख्या ६

श्वास-क्रिया और फर्मेनटेशन*

(ले०—श्री अनन्तप्रसाद मेहरोत्रा, एम० एस-सी०, वनस्पति विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय)

(गतांकसे आगे)

आक्सीजनयुक्त	आक्सीजनरहित	अल्कोहलिक फ़रमेन्टेशन
डी-अंशात्मक कार्बोहाइड्रेट ↓ ग्लूकोज़ ↓ ३ कार्बन परमाणुके यौगिक ↓ कार्बन डाइऑक्साइड और पानी	अशांत्मक कार्बोहाइड्रेट ↓ ग्लूकोज़ ↓ ३ कार्बन परमाणुके यौगिक ↓ अलकोहल, कार्बन डाइऑक्साइड तथा कुछ और पदार्थ	ग्लूकोज़ या द्राक्षाशर्करा ↓ ३ कार्बन परमाणुके यौगिक ↓ अशांत्मक मध्यवर्ती प्रतिक्रियाएँ ↓ अलकोहल, ग्लिसेरोल तथा सकसीनिक अम्ल

जीवाणु श्वासोच्छ्वास

आक्सीजनकी उपस्थितिमें जीवाणुकी क्रियाएं उन्नत पेड़ोंकी भाँति नहीं होतीं अन्यथा प्रकृतिमें विभिन्न प्रकारके रासायनिक यौगिकोंका बनना सम्भव न होता।

ऐसिटिक अम्ल जीवाणु (Mycoderm acidi) अलकोहलका ओषदीकरण करके उसे ऐसिटिक अम्लमें परिणत कर देते हैं। हम लोगोंको सिरका इस जीवाणुके क्रियाशीलताके ही कारण मिलता है।

$$C_2H_5OH + O_2 \rightarrow CH_3COOH + H_2O$$
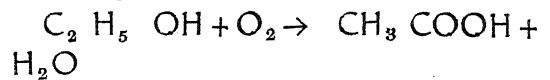
इसी प्रकारसे सा[illegible] जीवाणु (Sorbose bacteria) सारबाईट (So[illegible]te) (जो कि एक

प्रकारका अल्कोहल है) को निम्नलिखित समीकरणके अनुसार, सारबोस (Sorbose) में परिणत कर देते हैं—

$$2C_6H_{14}O_6 + O_2 \rightarrow 2C_6H_{12}O_6 + 2H_2O$$

Sorbite ← Sorbose
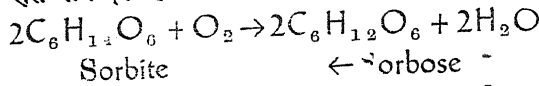
प्रयोग (१)—उद्भिद्‌की साधारण श्वास क्रिया में कार्बन डाइ ऑक्साईडकी उत्पत्ति।

इसका उपकरण उसी प्रकार लगाया जाता है, जैसा कि चित्र २ में प्रदर्शित किया गया है। गमलेमें एक हरे पौधेको एक शीशेके प्लेट पर एक 'बेल-जार' से ढक कर रख देते हैं। वैसलीनकी मददसे बेल-जार को शीशेकी प्लेटके साथ वायुरोध कर देते हैं। बेल-जार को काले कपड़ेसे ढक देते हैं। V—ट्यूबमें सोडा लाइम भर देते हैं। बेल जारके दोनों तरफ वाली दूसरी बोतलोंमें बेरियम
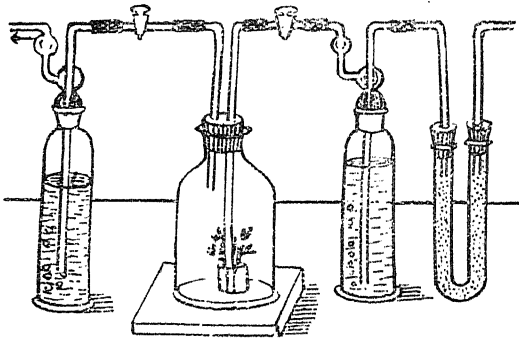
चित्र २—पौधे द्वारा कार्बन डाइऑक्साइ निकलना दिखलानेका ढंग काले कपड़े द्वारा पौधा अन्धकारमें कर दिया जाता है।

हाइड्राक्साइडका घोल रख देते हैं। एक ऐसपिरेटर द्वारा उपकरणमें से हवा खींची जाती है। सोडा लाइम परसे होकर जानेमें हवा कार्बन डाइऑक्साइड रहित हो जाती है। यह इस बात से प्रत्यक्ष है कि V ट्यूबके बाद वाली बोतलका बेरियम हाइड्राक्साइड गन्दला (सफेद) नहीं होता। बेल जार के दूसरी तरफ वाली बोतलका बेरियम हाइड्राक्साइड गन्दला (सफेद) हो जाता है। इससे यह प्रमाणित होता है कि उद्भिद्‌से श्वास-क्रिया द्वारा कार्बनडाइऑक्साइड निकलती है।

प्रयोग (२)—जड़ोंमें श्वास-क्रिया द्वारा कार्बन डाइआक्साइडकी उत्पत्ति।

ऊपर लिखा हुआ प्रयोग जड़ोंके लिए दुहराया जाता है और उसी प्रकारके परिणाम मिलते हैं।

प्रयोग (३)—पोटाश (Potash) द्वारा कार्बन डाइआक्साइडका शोषण।

एक शीशीमें कुछ अंकुरित बीज रखे जाते हैं। पोटैसियम हाइड्राक्साइडका तेज़ घोल एक टेस्ट ट्यूब में रखा जाता है। शीशीके पार्श्वस्थ ट्यूबसे एक शीशेका ट्यूब जोड़ा जाता है। इस शीशेके ट्यूबका सिरा एक बीकरमें रखे हुए पारेमें डूबा रहता है। जैसे-जैसे श्वास क्रिया द्वारा उत्पन्न कार्बन डाइऑक्साइड, पोटेसियम-हाइड्राक्साइड द्वारा शोषितकी जाती है वैसे ही वैसे बीकरका पारा उसके ट्यूबमें चढ़ता जाता है।

प्रयोग (४)—श्वास-क्रियामें आक्सीजनका शोषण दिखलाने तथा श्वासोच्छ्वास गुणक (Respiratory Coeffcient) RQ (Co_2/O_2) निश्चित करनेका ढंग।

प्रयोगमें दिखलाये हुए ढंगकी भाँति उपकरण लगाया जाता है। बेल जार (Bell Jar) के अन्दर शीशेकी प्यालीमें पोटेसियम हाइड्राक्साइडका तेज़ घोल रखा जाता है। बाहरी शीशेके पात्रमें (case) जिसमें उपकरण रखा है पानी भरा जाता है। इससे उपकरणका तापक्रम समान रहता है। अंकुरित बीजोंकी श्वास-क्रियाके द्वारा आक्सीजन शोषितकी जाती है और कार्बन डाइऑक्साइड बाहर निकाली जाती है। पारेकी सतह जितनी उठी है उससे यह मालूम होता है कि कितनी आक्सीजन बीज द्वारा शोषितकी गयी है। इसी प्रकार पोटैसियम हाइड्राक्साइड को तौलनेसे यह पता लगता है कि कितनी कार्बन डाइऑक्साइड निकली है। इन मालूमकी हुई

बातोंसे RQ निश्चित किया जाता है।
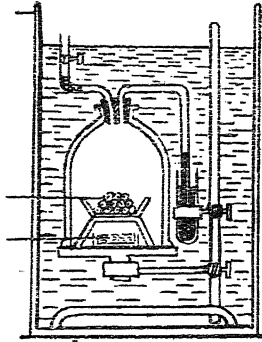
चित्र ३—RQ मालूम करनेका ढंग

प्रयोग ५)-श्वासमापक यंत्र (Respirometer) द्वारा श्वासोच्छ्वास निश्चित करनेका ढंग।

रेसपिरोमीटरके बल्बमें कुछ अंकुरित
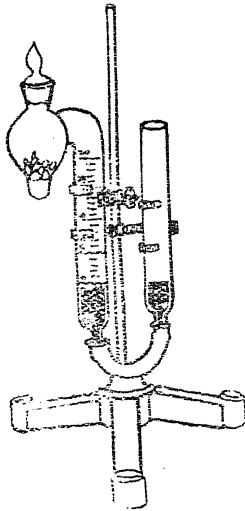
चित्र ४—रेसीपिरोमीटर

(germinated) बीज रखे जाते हैं। चूँकि इस दृष्टान्तमें RQ इकाई है इसलिए पारेकी सतह ऊपर नहीं उठती।

प्रयोग (६)—साधारण श्वास-क्रियामें कार्बन डाइआक्साइडकी उत्पत्ति।

दो ट्यूबमें अंकुरित बीज रखे जाते हैं। उन ट्यूबके सिरे बीकरमें पानीके नीचे डूबे रहते हैं। एक ट्यूबमें एक दूसरा छोटा ट्यूब रखा जाता है जिसमें पोटेसियम हाइड्राक्साइड का घोल है। इस ट्यूबके बीकरमें डूबे वाले भाग में पानी चढ़ आता है, परन्तु दूसरे ट्यूबमें नहीं।

प्रयोग (७)—आक्सीजनरहित श्वास-क्रिया।

कुछ अंकुरित बीज एक उल्टे हुए ट्यूबमें, जो कि पारेसे पूरा भरा है, रखे जाते हैं। कुछ समय बाद आक्सीजन रहित श्वास-क्रिया द्वारा उत्पन्न कार्बन डाइऑक्साइडके कारण पारेकी सतह कुछ नीचे गिर जाती है।

प्रयोग (८)—आक्सीजनयुक्त और आक्सीजन रहित श्वास क्रियाको तुलना।

दो शीशियों में कुछ अंकुरित (germinated) बीज रक्खे जाते हैं। एक शीशीमें पाइरोगैलिक अम्लका एक ट्यूब रखा जाता है और दूसरीमें शीशीमें क्षार द्वारा रंगा हुआ फेनाफथेलीनके घोल का ट्यूब। शीशियोंके कार्कमें जो शीशेकी नली है वह हर एक शीशीमें इन्हीं ट्यूबोंमें डूबी रहती हैं। कुछ समय बाद यह देखा जाता है कि फेनाफथेलीनका रंग कार्बनडाइआक्साइडके शोषणके कारण उड़ जाता है। दूसरी शीशीमें सब आक्सीजन, पाइरोगैलिक अम्लमें शोषित हो जाती है। इसके कारण आक्सीजन रहित श्वास-क्रिया शुरू हो जाती है और कार्बनडाइऑक्साइडकी उत्पत्ति के कारण पाइरोगैलिक अम्लकी सतह ट्यूबमें ऊँची उठ जाती है।

प्रयोग (९)—उत्सेकमें कार्बनडाइऑक्साइड की उत्पति।

एक शीशीमें रखे हुये अंगूरकी चीनीके घोल में कुछ ईस्ट मिलाया जाया है। उत्सेकके द्वारा जो कार्बनडाइऑक्साइड निकलती है वह दूसरी शीशीमें रखे हुए बराइटा वाटरको दूधिया रंगका (गन्दला) कर देती है।

विभिन्न तन्तुओंमें श्वास-क्रिया

प्रयोग (१०)—एक टेस्ट ट्यूबमें थोड़ा बराइटा वाटर रखा जाता है। इसी ट्यूबमें थोड़ी रुई इस प्रकार रखी जाती है कि यह बराइटा वाटरकी सतहके जरा ऊपर रहे, परन्तु बराइटा वाटरको छूने न पावे। इस रुई पर कुछ हरी पत्ती रखी जाती है और फिर इस टेस्ट ट्यूबको लगभग पन्द्रह मिनट तक धूपमें रख जाता है। यह देखा जायगा कि बराइटामें कुछ भी गन्दलापन नहीं आता। अब इस टेस्ट ट्यूबको थोड़ी देर अन्धेरे में रखा जाता है। अब यह देखा जायगा कि कार्बनडाइऑक्साइडकी उत्पत्तिके कारण बेरियम कार्बोनेट बनता है और वह गंदला हो जाता है।

प्रयोग (११)-ऊपर लिखा हुआ प्रयोग अलग-अलग (अ) अंकुरित (germinated) बीज, (ब) कैकटस (Cactus) और (स) ब्रायोफिलम (Bryophyllum) के साथ दुहराया जाता है।

प्रयोग (१२)-उद्भिदका श्वासोच्छ्वास गुणक (Respiratory coefficient) निम्नलिखित बातोंको दिखलानेके लिये प्रयोग किये जाते हैं।

(क) मटरके अंकुरित (germinated) बीज पारेकी सतहमें कोई परिवर्तन नहीं है। इसलिए यहाँ RQ इकाई है।

(ख) वसाजातीय बीज :—पारे की सतह उठ जाती है। इससे यह दिखलाया जाता है कि कार्बनडाइआक्साइडकी उत्पत्तिकी अपेक्षा आक्सीजन अधिक शोषणकी जाती है, इसलिये यहाँ RQ इकाईसे कम है।

(ग) कैकटस (Cactus)—इस दृष्टान्तमें पारा बहुत ऊँचा उठ जाता है। इससे यह प्रकट होता है कि आक्सीजन तो शोषितकी जाती है परन्तु कार्बनडाइआक्साइडकी उत्पत्ति नहीं होती। वास्तवमें इस दृष्टान्तमें ओषदीकरणके फलस्वरूप अम्ल बनते हैं।

प्रयोग (१३)—पत्ती व तनेका T. S. काटकर पत्तियोंमें व तनेकी मेडुलरी रेज़ में कोशोंके बीचमें खाली स्थान देखो। यह ध्यान करो कि पत्तियों तथा तनेमें गैसके बाहर भीतर आने जाने के लिए अच्छा अवकाश है।

प्रयोग (१४)—कन्डेलिया की जड़ की श्वासोच्छ्वास प्रणालीका अध्ययन करो। उनसे सम्बन्ध रखने वाले लेन्टोसेल और वायु स्थानों को देखो। कार्टेक्स (Cortex) काफी मोटा है।

प्रयोग (१५)—श्वास क्रिया पर तापक्रमका प्रभाव।

एक शीशीमें कुछ अंकुरित बीज रखे जाते हैं। कार्बन डाइआक्साइड रहित हवा
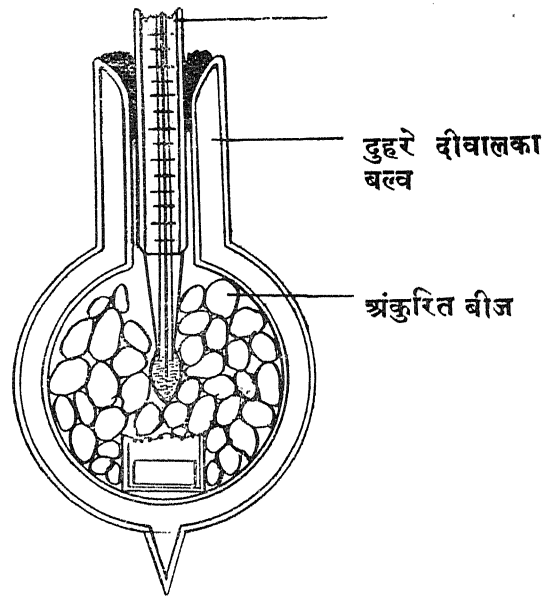
चित्र ५ श्वास-कियामें तापक्रम बढ़ना दिखलाने का ढंग।

इस शीशीमें से होती हुई, बराइटा वाटरकी शीशीमें खींची जाती है। कुछ समय बाद बराइटा का गन्दलापन ध्यानपूर्वक देख लिया जाता है। फिर इस शीशीको गरम पानीमें रखा जाता है और गन्दले बराइटाको बदल कर उतना ही नया बराइटा भरा जाता है। इस बार पहलेको

अपेक्षा गन्दलापन अधिक है। इससे तापक्रममें वृद्धि प्रकट होती है।

प्रयोग (१६) आक्सीजनका श्वास-क्रिया पर प्रभाव।

दो शीशियोंमें अंकुरित बीज रखे जाते हैं। सोडा लाइम पर पाइरोगैलिक अम्ल परसे होती हुई कार्बनडाइऑक्साइड और आक्सीजन रहित वायु उन दोमेंसे एक शीशीमेंसे जाती है तथा दूसरी शीशीमेंसे केवल आक्सीजन रहित हवा जाती है। यह देखा जायगा कि बाद वाली दशामें बराइटा अधिक गन्दला है। अतएव आक्सीजनकी उपस्थितिमें श्वास-क्रिया बहुत अधिक होती है।

प्रयोग (१७)—आहार प्रदानका श्वास-क्रिया पर प्रभाव।

प्रकाशमें रखी हुई पत्तीका तथा २४ घंटे अंधकारमें रख कर अनाहारजनित पत्तीकी श्वास-क्रियाकी तुलना बराइटाके गन्दलेपनके ढंगके द्वाराकी जाती है। यह देखा जायगा कि प्रकाशमें रखी हुई पत्तीकी श्वास-क्रियाकी गति, दूसरेकी अपेक्षा बहुत अधिक है, क्योंकि अधिक आहार प्रदानके कारण श्वास-क्रियाकी गति अधिक होती है।

प्रयोग (१८)—श्वास-क्रियाके कारण तापक्रम का बढ़ना।

दो ऐसे बल्ब लिये जाते हैं जिनकी दीवार दुहरी रहती है, (चित्र ५) तथा दोनों दीवारोंके बीचका स्थान वायु रहित रहता है। एक बल्बमें कुछ बीज रखे जाते हैं तथा दूसरा खाली रखा जाता है। हर एक बल्बमें एक तापमापक रखा जाता है। कुछ समय बाद यह देखा जायगा कि जिस बल्बमें अंकुरित बीज हैं उसके अन्दर का तापक्रम बढ़ रहा है।

रेडरका नया प्रयोग

न्यूज क्रानिकलने बतलाया है कि जहाजरानीमें सहायताके रूपमें पहली बार रेडार ब्रिटेनके तट प्रदेशोंमें चलने वाले एक व्यापारिक जहाजमें लगाया गया है।

इस जहाजका नाम अटलांटिक कोस्ट है, जो मोटरसे चलता है। इसी जहाज पर इस नये यंत्रके सम्बन्धमें शीघ्र ही परीक्षण किये जाने वाले हैं। जहाजके वर्तमान यंत्रका कार्यक्षेत्र १०० गजसे लेकर २० मील तक है। रेडारके पर्देपर समुद्र तट एक बलखाती हुई चमकदार रेखासी प्रतीत होता है और उससे चट्टान आदि बाधाओंका पता लगानेमें बड़ी सहायता मिलती है।

वैज्ञानिकों और सरकारी विभागोंके प्रतिनिधियोंके एक सम्मेलनने साधारणतः व्यापारिक जहाजोंमें काममें आने वाले एक रेडार सेटका ढाँचा तैयार करके व्यापारियों और जहाजी कंपनियोंको उनके पथ-प्रदर्शनके लिए भेजा है।

इसी बीचमें नौसेना विभाग नये सेटोंके तैयार होने तक बहुतसे सेट अपनी ओरसे दे रहा है।

व्यावहारिक मनोविज्ञान

एकाग्रता

(ले०—राजेन्द्रविहारी लाल, एम० एस० सी० इण्डियन स्टेट रेलवेज़)

१. मानसिक दक्षताका आवश्यक अंग

मानसिक दक्षता प्रधानतः दो बातों पर अवलम्बित है, एक तो मनुष्यकी शक्तियोंकी प्रबलता दूसरे यह कि कितनो एकाग्रता से वह काम में लाई जाती हैं। एक व्यक्ति चाहे कैसा ही कुशाग्र-बुद्धि क्यों न हो पर यदि वह अपने मन को इधर उधर भटकने या भरपूर जोरसे काम न करनेकी आदत पड़ जाने देता है, तो वह दुनियामें अधिक कार्य न कर सकेगा। दोनों दशाओंमें मानसिक शक्तिका ह्रास होगा और दिमागी एंजिनसे उतना पूरा-पूरा बल न मिल सकेगा जितना पैदा करने की उसमें योग्यना है। अगर आप एक तेज़ बुद्धि वाले व्यक्ति हैं तो एकाग्रता आपकी बुद्धिको और भी सहारा देगी और प्रखर बनायेगी। अगर आपका जन्मप्राप्त दिमाग उतना अच्छा नहीं है जितना कि आप चाहते हैं, तब तो यह और भी आवश्यक है कि आप अपनी कमीको तन्मयता द्वारा पूरा करें। आपकी मानसिक शक्तियोंकी प्रबलता कुछ भी हो एकाग्रता उनकी उपयोगिता में आश्चर्यजनक वृद्धि कर सकती है। एक विद्वानने बहुत ख़ूब कहा है कि एक अद्भुत प्रतिभा वाले व्यक्तिका वह विशेष गुण, जो और बातोंसे अधिक उसे जन साधारणसे अलग करता है, उसके अवधानकी शक्ति ही है, जिसके द्वारा वह किसी पदार्थको अपने मनके सामने उस समय तक रख सकता है जब तक वह उस पर पूर्ण अधिकार प्राप्त नहीं कर लेता। शायद एक सूक्ष्म बुद्धि वाले मनुष्य (genius) का सब से बड़ा लक्षण यही है कि वह किसी चुने हुये विषय पर देर तक ध्यानको लगाये रखनेकी क्षमता रखता है। मनको एकाग्र करनेकी योग्यता ही से सफलता और असफलता, अपूर्व सिद्धि और सामान्यताका अन्तर पड़ जाता है।

२. अवधानका अर्थ

यह समझानेकी शायद ही कोई आवश्यकता हो कि अवधानका क्या अर्थ है, क्योंकि यह तो सभी जानते हैं कि किसी वस्तु अथवा विचार पर ध्यान देना किसे कहते हैं। ध्यान देनेका अर्थ है अपने चुने हुये पदार्थ पर मनकी शक्तियोंको कुछ समय तक लगाना और उन्हें दूसरी चीज़ोंसे हटा लेना। अवधानके प्रभावसे हमारे मनकी सामर्थ्य हमारे सोचनेकी महत्वपूर्ण और बारीक बातों पर एकत्रित हो जाती है, ठीक उसी प्रकार जैसे एक आतशी शीशा सूरजकी किरणोंको किसी अभीष्ट बिन्दु पर केन्द्रित कर देता है। चेतना तमाम क्षेत्र पर समान रूपसे नहीं फैली रहती, बल्कि रुचि, आवश्यकता या उमंगके अनुसार कभी एक विषय पर कभी दूसरे पर इकट्ठी हो जाती है। इसका यह अर्थ है कि साधारण चेतनामें मनुष्य सदा किसी न किसी चीज़ पर ध्यान देता रहता है। हमारी चेतनाके क्षेत्रमें कोई न कोई पदार्थ हमेशा हमारा ध्यान अपनी ओर खींचनेकी चेष्टा करता रहता है; और एक चीज़ पर ध्यान देनेका मतलब है ध्यान को बहुत-सी दूसरी चीज़ोंसे हटा लेना जिन पर कि ध्यान टिक सकता है। अवधान चेतना प्रवाह मेंसे कुछ विशेष पदार्थोंको चुन लेता है और उन्हीं पर ज़ोर देता है और विचार करता है। अवधान ही इस बातका निर्णय करता है कि क्षण क्षण के बाद हमारी मानसिक शक्ति किन चीज़ों पर केन्द्रित होगी।

ऊपरकी बातोंसे यह स्पष्ट हो गया होगा

कि अवधान में दो क्रियाओंका समावेश रहता है, एक तो मानसिक किरणोंको किसी एक पदार्थ पर एकत्रित करना और दूसरे चेतना क्षेत्रके दूसरे तमाम पदार्थों को अन्धकारमय (Block out) कर देना। जितनी पूर्णतासे यह दोनों क्रियायेंकी जायेंगी उतना ही गहरा अवधान होगा।

३. एकाग्रतासे लाभ

(क) एकाग्रता मानसिक दक्षताको बढ़ाती है।

नियत्रित (Controlled) अवधानका पहला और सब से स्पष्ट लाभ यह है कि यह मानसिक क्रियाओंको अपनी चरम सीमा तक उन्नति करने में सहायक होता है। दूसरे उपायोंसे अधिक एकग्रता ही मनकी गुप्त शक्तियोंको अभिव्यक्त करती है और उसकी परोक्ष क्षमताको प्रत्यक्ष कर देती है। हममें से बहुतोंकी याद होगा कि किस तरह बचपनमें हम एक उन्नतोदर ताल द्वारा कागजके छोटे छोटे टुकड़ोंको जलाया करते थे। जब सूरजकी किरणें सीधे ही पर कागज़ पड़ती हैं तो घंटोंमें भी कोई विशेष प्रभाव नहीं पैदा कर पातीं है, सिवाय इसके कि काग़ज़ शायद कुछ गर्म हो जाता था। पर जब सूरजकी रोशनी की उतनी ही मात्रा एक आतशी शीशे द्वारा एक विन्दु पर एकत्र कर दी जाती है तो काग़ज़ शीघ्र ही जल उठता है। जो काम सूरजकी छितरी हुई किरणें घण्टों शायद युगों में भी न कर पातीं वह उनको एक बिन्दु पर केन्द्रित कर देनेसे कुछ ही क्षणोंमें सम्पूर्ण हो जाता है। इसी तरह यदि मनकी शक्तियाँ बहुत-सी बातों पर फैली रहें तो वे शायद ही कुछ कर सकें। अगर हम किसी पृष्ठ या प्रश्नको लिये ऊँघते रहें तो कदाचित एक घंटे या एक दिनमें भी कुछ न कर पावें। इसके विपरीत, अगर हम मनको इधर-उधर भटकनेसे रोक लें और कमर कस कर पूरी शक्तिसे उसे काममें लगावें और अपने विचारोंको दूसरी हर चीज़से हटा कर केवल उसी काममें निमग्न हों जिसे कि हाथमें ले रक्खा है, तो हम देखेंगे कि जो कार्य पहले घंटोंमें नहीं हो पाता था वह इस प्रकार दत्त चित्त होनेसे अब मिनटोंमें हो जाता है, यही नहीं बल्कि बहुतसे काम जो पहले बिलकुल नहीं हो सकते थे अब सम्भव हो जाते हैं।

मनकी तुलना भापके एक अचल एंजिन से करके यही बात एक दूसरे ढंगसे समझाई गई है। इंजिनकी रचना इस प्रकार होती है कि वह भापके विशेष दबाव पर ही जैसे १५० पौंड प्रति वर्गइंच पर अपना अधिकांश काम करता है। शायद कोई यह ख़याल करे कि जब १५० पौंड का दबाव कारखाने की सारी कलोंको चला सकता है तो ७५ पौंड के दबाव पर वह एंजिन वहाँ की आधी कलों को अवश्य ही चला सकेगा, कमसे कम हलकी कलोंको। ऐसा ख़याल करना ग़लत होगा क्योंकि ७५ पौंड के दबाव पर वह बलशाली एंजिन शायद अपने पहियों को भी मुश्किल से घुमा सके और जो काम उसे करना है उसे तो बिल्कुल भी न कर सकेगा। जो काम एंजिन १५० पौंड के दबाव पर करता है उसका आधा काम वह तभी कर पावेगा जब भाप का दबाव बढ़ते-बढ़ते कोई १०० पौंड तक पहुँच जावे। यही हाल हमारे मनके छोटेसे भूरे एंजिन का है। चूँकि यह अपना सबसे उत्तम कार्य एक विशेष दर्जेकी एकाग्रता पर ही कर सकता है, इस लिए यह उतने ही समयमें आधे ध्यानसे आधा काम नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त बहुधा सा काम ऐसा भी है जिसे वह उस समय तक बिलकुल भी न कर सकेगा जब तक कि वह पूरे जोरके साथ काम न करे। शायद यह कहने में अत्युक्ति न होगी कि यदि अवधान की मात्रा समानान्तर श्रेढीमें बढ़े तो मानसिक दक्षता गुणोत्तर श्रेढी (Geometeicel progression) में बढ़ जायगी। ज्यादातर एकाग्रता की शक्तिमें अन्तर ही के कारण एक व्यक्ति मानसिक

निपुणता और सफलताके शिखर पर पहुँच जाता है जब कि दूसरा उसका विनीत अनुयायी ही बना रह जाता है। किसीने यह बहुत ही ठीक कहा है कि अद्भुत प्रतिभा (genius) केवल देर तक एकाग्रचित रहनेकी शक्तिका ही नाम है।

(ख) एकाग्रता यथार्थ ज्ञान प्राप्त करा देती है।

अवधान अपने लक्ष्य को स्पष्ट और निश्चित कर देता है और इस प्रकार यथार्थ ज्ञान प्राप्त करा देता है। कोई पदार्थ जिस पर अवधान केन्द्रित किया जाय वह चेतना में चमकदार बन जाता है और साफ साफ दिखाई देने लगता है। इन्द्रियाँ, जिनके ज़रिये से हमें वाह्य जगतका बोध होता है, अपनी निपुणताके लिये उस एकाग्रताकी श्रेष्ठता पर ही निर्भर करती हैं जिसे वह प्रमेयों (phenomenon) के निरीक्षणमें उपयोग करती हैं। हमारी इन्द्रियों के संकलन किये हुये संस्कार (Impressions) तभी यथार्थ सम्पूर्ण और विश्वास योग्य होंगे जब कि इन्द्रियाँ गहरे ध्यानसे काममें लाई-जायँ। चाहे आँखोंके सामने बहुत से दृश्य हों या कानोंके सामने आवाज़, पर अवधानके बिना न तो आँखें देख सकेंगी और न कान सुन सकेंगे। अगर ध्यानको किसी दूसरी जगह लगा दिया जाय तो यह सम्भव है कि मनुष्य दुखते हुये दाँत या किसी दूसरी शारीरिक पीड़ा के इन्द्रिय ज्ञान (Sensation) को बिलकुल ही भूल जाय। इसी प्रकार अगर मन ध्यान न दे, तो हमारा सोचना छिछला, दुर्बल और अस्पष्ट होगा। जब तक हम विकृतियों (phenomena) पर ध्यान न दें हम उन्हें जान नहीं सकते क्योंकि अवधान दिमागको Spot-light है जो अध्ययनके विषयको प्रज्ज्वलित करता है और उसकी बहुत सी बारीक बातोंको प्रकाश करता है, जो बिना उसके अन्धकार में रह जातीं।

हममें से अधिकांश लोग किसी न किसी चीजमें निपुण बन सकते हैं और इसका रहस्य है यही एकाग्रतासे काम करनेकी आदत। ज्ञानके किसी क्षेत्रमें, चाहे वह कितना ही छोटा क्यों न हो—पंडित बन जानेसे मनुष्यको मानसिक आत्मसम्मान प्राप्त हो जाता है। विलोमतः यदि आप किसी विषयमें पारंगत बननेका आदर्श अपने सामने रक्खे तो देखेंगे कि एकाग्रताकी आदत सुगमतासे पड़ जाती है।

(ग) एकाग्रता स्मृतिको सहायता देती है।

नियंत्रित अवधानका तीसरा लाभ यह है कि यह मन पर अधिक गहरे छाप बनाता है और इस कारणसे धारणा (Retention) में सहायता देता है। अवधानका अर्थ है स्मृति। अगर पहली छाप (Original Impression) धुँधली है तो उसे पुनरुज्जीवन करने (Recall) के प्रयत्नका फल भी धुँधला ही होगा। जितना गहरा अवधान होगा उतनी ही टिकाऊ छाप मन पर बनेगी। एक विद्वान ने तो यहाँ तक कहा है कि अवधान ही स्मृतिकी जननी है।

(घ) एकाग्रता मौलिकतामें सहायता देती है।

एकाग्रताका चौथा लाभ यह है कि यह कल्पनाको उत्तेजित करती है और इस तरहसे मौलिकता और अनुसन्धानमें सहायक होती है। एकाग्रता उल्लास (Inspiration) की एक आवश्यक शर्त है। कोई भी ऐसे विषयमें नये विचार नहीं पैदा कर सकता जिसके सम्बन्धमें उसने थोड़ा ही सोचा है और जिसके बारेमें उसको जानकारी कुछ नहीं के बराबर है। एकाग्रता ही उत्पादक शक्तिको पूरा सुअवसर प्रदान करती है। इससे यह अभिप्राय न निकालना चाहिये कि नव कल्पनाके लिये एकाग्रता ही अकेली या काफी शर्त है या यह कि इससे नये विचारोंकी एक बढ़िया फ़सलके रूपमें तुरन्त ही फल मिल सकता है। इसके विपरीत, अनुभव तो यही बताता है कि नये विचार अचानक ही आ जाते हैं, शायद

ऐसे समय पर जब कि मन एक बिलकुल ही दूसरे काममें लगा हो। साथ-साथ यह भी सच है कि यदि पहलेसे विषय पर गहरा ध्यान न दिया जाय तो नये विचार कदाचित् पैदा ही न हों।

४. अवधानकी प्रकृति

अवधान निश्चलता नहीं है।

जन-साधारणमें यह विश्वास प्रचलित है कि यदि किसी मनुष्यका अवधान समुचित रूपसे शिक्षित है तो उसमें यह योग्यता होनी चाहिये कि घंटे आध घंटे तक निरा पलक मारे अपनी नाकके सिरे या एक आलपीनकी नोकको घूरता रहे। अवधानका ऐसा अर्थ लगाना बिलकुल गलत है। एक आलपीनकी नोकको आध घंटे या अधिक देर तक देखते रहनेकी क्षमता उच्च कोटि की सराहनीय एकाग्रता भले ही हो, पर मानसिक उन्नतिके विचारसे ऐसी क्रिया बिलकुल निरर्थक होगी, क्योंकि आलपीनकी नोकके सम्बन्धमें हमें कुछ नई बात बतानेके बजाय इसका नतीजा केवल इतना ही होगा कि या तो हमारी दृष्टि धुँधली पड़ जायगी या हम एक बनावटी निद्रा की (Hypnotism) अवस्थामें पहुँच जायँगे।

इससे मिलती जुलती यह धारणा है कि एकाग्रतामें मनको एक समयमें केवल एक ही विचारसे भर लेना चाहिये; जैसे यदि आपको रेलके एक एंजिन पर ध्यान देना है तो आपके दिमागमें सिवाय रेलके एंजिनके और कुछ भी न होना चाहिये। चलना सीखनेके समय एक बच्चा भी ऐसा ही करता है। एक कदमके आगे दूसरा कदम रखनेके सिवाय वह और किसी बातके बिचारको मनमें नहीं ला सकता। इसका नतीजा यही होता है कि वह बहुत दूर नहीं चल पाता क्योंकि उसका चलना अत्यन्त ही भौंड़े प्रकारका होता है। वास्तवमें चलनेका अर्थ इससे कहीं अधिक है। इसका मतलब है सारे शरीरको साधना और साथ ही साथ आगे बढ़ते जाना।

इसी तरह एकाग्रताके यह माने नहीं कि ध्यानको किसी पदार्थ पर जमा दिया जाय या यह कि मानसिक Spot light को किसी एक वस्तु पर केन्द्रित कर दिया जाय, बल्कि इसका अर्थ तो यह है कि मानसिक spot light को इच्छानुसार घुमाया जाय जिससे कि विषय या पदार्थके विभिन्न पहलू बारी-बारीसे प्रकाशित हो जाय। विभिन्नतामें एकता ही एकाग्रताकी सच्ची व्याख्या है। एकाग्रताके यह माने नहीं कि दिमागके भीतर केवल एक वस्तु को रख कर दूसरी और सब चीज़ोंको बाहर निकाल दिया जाय, बलिक इसका अर्थ तो यह है कि क्रमानुसार उन सब भिन्न-भिन्न बातों पर विचार किया जाय जो ध्यानके लक्ष्यसे सम्बन्ध रखनेके कारण एक हैं। इसका अर्थ है विषयके चारों ओर ज़ोरके साथ और सक्रिय ढंगसे सोचना। या यों कहिये कि दिमागको विषयके चारों ओर चलाना जिससे वह उसे हर दिशा से देख लेता है अथवा विषयके बारेमें सोचना और जितने अधिक विचार हो सकें उनको जोड़ लेना। अवधानका असली मतलब यही है और इस प्रकारका अवधान विषयको भीतरसे बाहर तक तथा चारों ओरसे समझ लेनेमें सहायक होता है।

एकटक घूरनेके समानवाला अवधान न केवल मानसिक क्रियाकी हैसियतसे बिलकुल बेकार होगा, बलिक सच तो यह है कि ऐसा अवधान असम्भव है, क्योंकि मनोविज्ञानकी खोजोंसे पता चलता है कि ध्यान किसी एक वस्तु पर कुछ सेकण्डोंसे अधिक देर तक नहीं जमाया जा सकता। अवधानको टिकाये रखने के लिये यह आवश्यक है कि या तो विषय अथवा लक्ष्य (object) में परिवर्तन हो, जैसा कि एक सिनेमाके पर्दे पर चलती हुई तसवीरोंमें होता है, या विषय-धारक subject) के मनमें परिवर्तन हो ताकि वह विषयको बारम्बार उलट

पलट कर देखता रहे और उसके विभिन्न पहलुओं और सम्बन्धों पर विचार करता रहे। सच तो यह है कि जब हम किसी काममें लवलीन हो जाते हैं और देर तक उसमें ध्यानावस्थित रहते हैं तो भी हमारा ध्यान थोड़े थोड़े समयके बाद उचटता रहता है और हमें विषय के किसी पहलूको खींचकर मनके सामने वापिस लाने और वहाँ उपस्थित रखनेकी बार-बार कोशिश करनी पड़ती है। ऐसा करनेसे ध्यान का विषय बढ़ता और फैलता जाता है। वह जीता-जागता, चलता-फिरता और परिवर्तनशील बन जाता है न कि निश्चल या निर्जीव।

एकाग्रता क्रियाशील है न कि निष्क्रिय

ध्यान देनेका उचित तरीका यह है कि विषय को इस तरह व्यवस्थित किया जाय कि वह क्षण क्षण के बाद एक नये प्रकाशमें प्रकट होता रहे। मान लीजिये कि आप रेखागणितके एक साध्य (Theorem) पर मनको एकाग्र करनेकी कोशिश कर रहे हैं ताकि उसे अच्छी तरह हृदयंगम कर लें। ऐसी हालतमें आप उसे बार-बार पढ़ने अथवा दोहराने पर ही मत निर्भर रहिये। इससे कहीं अच्छा तरीका यह है कि साध्य (Theorem) को एक बार भली भाँति समझ लेनेके बाद उसके विभिन्न सम्बन्धोंके बारेमें सोचा जाय; जो युक्ति उसको साबित करनेमें प्रयोग की गई है उसे उसके मुख्य खंडोंमें तोड़ लिया जाय और उनके बीचमें जो तार्किक सम्बन्ध हैं उनको समझ लिया जाय। कौनसे पहलेके साध्य उसको सिद्ध करनेमें उपयोग किये गये और कौनसे दूसरे साध्य या अभ्यास या तो अकेले या दूसरे साध्योंकी सहायता लेकर उससे निकाले जा सकते हैं, अगर उपपत्तिकी कोई विकल्प विधि है तो दोनों विधियोंकी तुलना करनी चाहिये और देखना चाहिये कि उनके (Mode of Approach) दृष्टिकोण और तर्क (Line of Argument) में क्या अन्तर है। आवश्यक बात यह है कि जिस चीज पर ध्यान जमाना है उसके साथ कुछ न कुछ कार्य किया जाय। केवल इसी तरह आप उसे अपने ध्यानके केन्द्रमें रख सकेंगे। मनको बिलकुल स्थिर रखनेका प्रयत्न करनेसे अवधान नहीं प्राप्त हो सकता बल्कि उसे चलाते रहनेसे और तत्सम्बन्धित विचारोंके वृत्तके अन्दर सोचते रहनेसे। विचारके किसी विषय पर देर तक ध्यान जमाये रहनेकी परमावश्यक शर्त यह है कि हम उसे मनके अन्दर लगातार उलट-पलट करते रहें और बारी-बारीसे उसके विभिन्न पहलुओं और सम्बन्धों पर मनन करते रहें।

एकाग्रता और मनका भटकना

जब हम किसी विषय पर ज़ोर के साथ ध्यान देते हैं तो इसका यह मतलब नहीं होता कि हमारी चेतना विचार शून्य होकर उस विषय पर घूरती रहती है बल्कि यह कि उस विषयको विचारका केन्द्र बनाकर उससे सम्बन्ध रखने वाली बातों पर विचार करती है।

इसका हम यहाँ एक उदाहरण देते हैं। मान लीजिए आपके सामने प्रश्न, जिस पर आपको ध्यान देना है, यह है कि क्या आप अपनी गर्मी की छुट्टी बितानेके लिए मसूरी जायँ? यह प्रश्न का हृदय है, यानी प्रश्न ख़ुद। प्रश्न पर मनको एकाग्र करनेमें यह न तो आवश्यक है न उचित कि आप ध्यानको सवालके केन्द्र पर गाड़कर जमा दें। बार-बार यह सोचने या रटनेसे कि क्या आप मसूरी जायँ आप उसके हलके ज़रा भी समीप नहीं पहुँच सकते। करना तो यह चाहिये कि आप बारी-बारीसे अपने विचारको प्रश्नके सम्बन्धित भागों पर केन्द्रित करें, अथवा यात्राका खर्च मसूरीमें ठहरने और खाने पीनेका प्रबन्ध, रेलके सफ़रकी कठिनाइयाँ, मसूरीमें घूमने फिरने

और मनोरंजनके साधन इत्यादि बातों पर, जो कि आपके प्रश्नके मुख्य अंग हैं, बारी बारीसे विचार करें। जब तक आप इन बातों और दूसरी सम्बन्धित बातों पर विचार करते रहेंगे तब तक आप अपने प्रश्न पर ध्यान देते रहेंगे कि क्या छुट्टीको मंसूरीमें व्यतीत करना ठीक होगा। लेकिन अगर आप रेलके सफ़रका ख़याल करते-करते अपने विचारोंको गाड़ियोंमें सर्वव्यापी भीड़ और तब उस भीड़के कारण अथवा फ़ौजी माल और फ़ौजोंका आना-जाना, उससे लड़ाईके कारण, लीग ऑफ नेशन्स (League of Nations) का विफल होना और फिर स्वर्गीय प्रेसीडेन्ट विल्सन इत्यादि पर चले जाने दें तो आपका अवधान भंग होकर वाह्य मामलों पर भटक गया होगा।

४. एकाग्रताकी कमीका अर्थ

एकाग्रताकी कमी दो मुख्य रूपोंमें प्रगट होती है। एक तो मनका भटकना और दूसरे (Intensity) तेज़ीकी कमी।

मनके भटकनेके माने हैं कि वह किसी एक पदार्थ पर एकाग्र नहीं होता। वह किसी एक चीज़ पर देर तक अपनी शक्तियोंको केन्द्रित नहीं कर सकता बल्कि उचंग और झकके आदेशानुसार इधउधर घूमता रहता है। चेतना-प्रवाहमें बेमतलबके अललटप्पू विचार उठते रहते हैं और अवधानको अपने लक्ष्यसे विचलित कर ऐसी बातों पर खींच ले जाते हैं जिनका कि लक्ष्यसे कोई लगाव नहीं रहता। हममेंसे अधिकांश लोग समय-समय पर विक्षेप (Mind Wandering) के दोषी होते हैं। हमें ऐसे कितने मौक़े याद होंगे जब हमने सोचना तो एक प्रश्न पर शुरू किया पर थोड़ी ही देरमें अपनेको उससे मीलोंकी दूरी पर पाया, या जब एक सफ़हेको पढ़ चुकने पर हम दूसरे पर पहुँचे तो हमें पता चला कि पिछले सफ़हे पर हमने जो कुछ पढ़ा था उसमेंसे हम कुछ भी नहीं जानते, क्योंकि यद्यपि आँखें शब्दों और वाक्यों पर पड़ती जाती थीं, हमारा ध्यान भटक कर कहीं और ही जा पहुँचा था। एक दिमाग़ी काम करने वाला, चाहे उसकी बुद्धि कितनी ही तीव्र क्यों न हो, जिसे विक्षेपकी बान पड़ गई है और जो एक निर्दिष्ट दिशामें देर तक नहीं सोच सकता, सदा एक कच्चा और अयोग्य काम करने वाला बना रहेगा, जब कि एक दूसरा व्यक्ति जिसकी बुद्धि चाहे साधारण ही हो पर जो कि बिना बुलाये आने वाले विचारोंको रोक सकता है और अपने निर्वाचित विषयमें देर तक तल्लीन रह सकता है, उस तीव्र बुद्धि वाले विचारकसे कहीं अधिक अच्छा काम कर सकेगा जिसकी मानसिक गाड़ी सदा उन भूले-भटके विचारोंसे चक्कर खाकर नष्ट भ्रष्ट होती रहती है जो उसके रास्ते में घुस आते हैं।

अनवधानका दूसरा रूप वह है जिसमें मनुष्य ध्यान तो ठीक बातों पर देता है लेकिन काफ़ी ज़ोरसे नहीं सोचता। उसमें मानसिक दबावकी कमी रहती है जिसके फलस्वरूप उसका मानस यंत्र अपनी पूरी शक्तिका अल्पांश ही उत्पन्न कर पाता है और तदनुसार ही वह निम्न श्रेणीका काम भी देता है। वह इधर-उधरके विचारोंको मनसे दूर रखनेमें चाहे सफल हो जाता हो, मगर प्रश्न पर प्रबलताके साथ आक्रमण नहीं करता। उसके चेतना-प्रवाहकी धारा बहुत धीरे-धीरे बहती है, वह अपनी मानसिक शक्तियोंको इकट्ठा करके अपने सामनेके विषय पर काफ़ी दृढ़तासे नहीं केन्द्रित करता। उसके विचार चाहे यथेष्ट मात्रामें एकाग्र भले ही हों, मगर वे दुर्बल निस्तेज और मन्द होनेके कारण आग लगानेमें विफल होते हैं। यह ऐसा ही है कि जैसे सूरजकी किरणोंको ग्रहणके समय एक काग़ज़ पर केन्द्रित किया जाय। उनमें शक्तिकी कमी रहती है और वे काग़ज़को न जला पायेंगी

चाहे वे एक ताल द्वारा एक विन्दु पर ही एकत्रित क्यों न करली जायँ। इस प्रकारके अवधानका अर्थ होता है मानसिक आलस्य; शक्तिका ह्रास, अयोग्यता और असफलता।

६. अवधानके भेद

हममेंसे सभी ने ऐसो रोचक कहानियाँ पढ़ी होंगो, ऐसे तेज़ मुकाबलेके खेल देखे होंगे और ऐसी हृदयग्राहो बातचीत या व्याख्यान सुने होंगे, जिन्होंने हमारे ध्यानको ज़ोरसे पकड़ लिया और दूसरी सब बातोंको इस तरह दूर हटा दिया कि हमें मुश्किलसे यह चेत रह गया कि हमारे चारों ओर क्या हो रहा है। इसके विपरीत हम एक दूसरे प्रकारके अवधानसे भी परिचित हैं जब कि हम एक नीरस कहानी पढ़ते हैं, या एक सुस्त खेलको देखते हैं. या ऐसे व्याख्यान या बातचोत को सुनते हैं जो अरुचिकर या जो उबा देने वाला हो। हम इन चीज़ों पर ध्यान तो देते हैं मगर प्रयासके साथ और ऐसा जान पड़ता है कि हमारे मनकी शक्ति और सभी ओर आकर्षित होती है सिवा उस मामलेके जिस पर कि ध्यान देना है। बाहरसे सैकड़ों पदार्थ हमें प्रलोभन देते हैं और अक्सर हमें एक झटका देकर ध्यानको अपने लक्ष्य पर वापिस लाना पड़ता है। और जब हम उसे अपने प्रश्न पर लौटा लाने हैं तो भी हम इस बातको महसूस करते रहते हैं कि हमारा मन पुनः स्वतन्त्र हो जानेके लिये निरन्तर खींचातानो कर रहा है।

उपरोक्त कथनसे इस बातका पता चलेगा कि हर दशामें अवधान चेतनाकी एक सक्रिय या गत्यात्मक (Dynamic) अवस्थाको प्रकट करता है और उसको जातियोंमें विभाजित नहीं किया जा सकता। मगर एकाग्रताके विषयको अच्छी तरह समझनेके लिये हम अवधानको दो कक्षाओं में वर्गीकरण करेंगे। इस वर्गीकरणका आधार वह कारण है जो ध्यानको प्रेरित करता है, या वह तरीका जिससे कि अवधान उत्पन्न होता है। अवधानका एक भेद अनैच्छिक (Spontareous) अवधान है जो बिना किसी इरादे या कोशिशके पैदा हो जाता है और तबीयतके झुकाव या कमसे कम रुकावटके मार्गका अनुसरण करता है। दूसरे प्रकारके अवधानको हम सक्रिय या ऐच्छिक (Voluntary) कह सकते हैं। इस प्रकारका अवधान इच्छा-शक्ति या अनुशासित प्रयास (directed Effort) के कारण उत्पन्न होता है और उसे बहुधा मनके किसी दूसरे विषयकी ओर झुक जाने, या केवल इधर उधर घूमने, की इच्छाके विरुद्ध काम करना पड़ता है।

जिन पदार्थोंमें हमें रुचि होती है वे खुद हमारे अवधान पर अधिकार कर लेते हैं, और इस प्रकारके अवधानको हम सुविधाके लिये अनैच्छिक या निष्क्रिय (Passive Attention) कहेंगे। पर जब हमें किसी ऐसी बात पर ध्यान होता है जिससे हमें स्नेह नहीं, तो हमें निरन्तर अपनी इच्छाशक्तिको अवधान को दूसरी चीज़ों पर भटकनेसे रोकनेके लिये प्रयोग करना पड़ता है। इस प्रकारके अवधानका नाम हम सक्रिय या ऐच्छिक अवधान रक्खेंगे।

अनैच्छिक अवधानका आधार रुचि है। जिन चीज़ोंको हम पसन्द करते हैं, जिन्हें करने या पानेकी हम आशा करते हैं, जिन बातोंमें हमारा जी लगता है, ये ही वे चीज़ें हैं जो हमारे ध्यान पर स्वतः अधिकार कर लेती हैं। उन पर ध्यान देनेमें कोई प्रयास नहीं करना पड़ता, बल्कि प्रयास तो ध्यानको उन मनोहर चीज़ोंसे हटा लेनेमें करना पड़ेगा। यदि अवधानको अपने ही पर छोड़ दिया जाय तो वह केवल प्राकृतिक नियमोंका पालन करेगा और कमसे कम प्रतिरोध (Resistance) के मार्गको ग्रहण करेगा। निष्क्रिय अवधानमें हमेशा विचारधारा स्वभावतः उन चीज़ोंकी ओर मुड़ जाती है जो सबसे

अधिक आकर्षक हैं। हमारे अवधानका अधिकांश भाग इसी प्रकार होता है।

सक्रिय अवधानका प्रयोग उस समय किया जाता है जब हम जान-बूझकर अपने मनको एक पदार्थकी ओर मुड़नेके लिये मजबूर करते हैं जब कि उसका झुकाव दूसरी ही ओर होता है। सक्रिय अवधानमें या तो प्रयास और रुचि या प्रयास और मानसिक आलस्यके बीच द्वन्द रहता है, और उसको जीते बिना हम ध्यानपूर्वक विचार नहीं कर सकते। सक्रिय या ऐच्छिक अवधानका रहस्य तो व्यवसाय (Will) ही है। अगर हम ऐच्छिक अवधानको देर तक किसी विषय पर लगाये रखना चाहते हैं तो हमें बार-बार व्यवसायके प्रयत्न द्वारा उस विषयको मनके सामने वापिस लाना पड़ेगा। यह मुमकिन है कि शुरूमें अवधान किसी पहलेसे मौजूद रुचिकी वजहसे पैदा हो जाय, मगर यह न समझना चाहिये कि केवल उस दिलचस्पी ही के सहारे अवधान बराबर कायम रक्खा जा सकेगा। बहुधा परिश्रमकी आवश्यकता होती है और इस उद्देश्यसे हमको संघर्ष पर विजय प्राप्त करने और विपरीत भावनाओंको दूर करने के लिये तैयार रहना चाहिये। सारांश यह कि हमें अपनी इच्छाशक्तिको काममें लाना चाहिये।

७. रुचि और इच्छा शक्ति

अवधान रुचि और व्यवसायकी युगल जोड़ी पर अवलम्बित है। इसलिये इन पर थोड़ा और विस्तारके साथ विचार कर लेना आवश्यक है।

अवधानका मूल आधार रुचि है। अगर आप रुचिको जाग्रत करने और क़ायम रखनेके प्रश्नको हल कर लें तो अवधानका प्रश्न आप ही आप हल हो जायगा। जिस विषयका आप अध्ययन करने चले हैं यदि उसमें आपका जी लगता है तो अवश्य ही उसमें आपका ध्यान भी लगेगा। अगर आप किसी विषय पर अपने मन को एकाग्र करना चाहते हैं तो उसमें आपको दिलचस्पी पैदा करनी चाहिये। बिना इस शौक या दिलचस्पीके विषय शीघ्र ही जी उबा देने वाला बन जाता है। और ज्योंही आपका जी ऊब उठता है त्योंही आप अनजानमें विषयके विरुद्ध एक संरक्षक प्रतिक्रिया (Protective reaction) उपस्थित कर देते हैं जो आपको उसके आगे और अधिक ध्यान देनेसे बिलकुल ही रोक देती है।

यदि अवधान रुचि पर अवलम्बित है, तो यह प्रश्न उठता है कि एक व्यक्ति ऐसे काम पर किस प्रकार ध्यान जमावे जिसमें कि उसको बिलकुल ही रुचि नहीं है?

अधिकांश लोगोंकी ऐसी धारणा रहती है कि रुचि पदार्थमें रहने वाला ही कोई गुण है। वास्तवमें रुचि तो मनुष्य-मात्रका गुण है न कि मनुष्यके बाहरकी वस्तुओंका। स्वयं वस्तुओंमें कोई रोचकता नहीं होती, बल्कि रोचकता तो हम लाकर उनमें पैदाकर देते हैं। वास्तवमें रुचि तो मनका एक भाव (Attitude) है, पदार्थोंकी ओर देखनेका एक ढंग। जब हम यह कहते हैं कि अमुक पुस्तक रोचक है तो हमारे कहनेका अभिप्राय केवल इतना होता है कि हमें उस पुस्तकमें दिलचस्पीका बोध हो रहा है। यह आवश्यक नहीं कि रुचि पुस्तकका कोई अन्तरस्थ स्वभाव हो, क्योंकि वही पुस्तक शायद एक दूसरे पाठकको रोचक न जान पड़े। गुल्ली डंडे का खेल एक बच्चेके लिये अत्यन्त चित्ताकर्षक होता है पर एक ज्यादा उमरके व्यक्ति पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अनपेक्ष (Absolute) अर्थमें तो कोई भी चीज रोचक नहीं होती, मगर आपेक्षिक अर्थमें—एक व्यक्ति विशेषके लिए—कोई भी चीज़ रोचक या चित्ताकर्षक हो सकती है। रुचि एक विषयीगत (subjective) वस्तु होती है न कि विषयात्मक (objective)।

हमने देख लिया कि रुचि व्यक्ति ही का एक गुण है। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात जो ध्यान देने योग्य है वह यह है कि कोई व्यक्ति जन्मसे ही कुछ विशेष रुचियोंसे युक्त और कुछसे विहीन पैदा नहीं होता बल्कि वह रुचियोंमें बहुत बड़ी सीमाओंके भीतर परिवर्तन कर सकता है। बल्कि सच तो यह है कि मनुष्यकी उत्कृष्ट रुचियों में से अधिकांश अर्जित होती हैं न कि प्राकृतिक या स्वाभाविक, और यह अर्जित रुचियाँ ही जीवनमें प्रभुत्व रखती हैं। विलियम जेम्सका कहना है कि एक युवा पुरुषकी अधिकांश रुचियाँ कृत्रिम होती हैं। वह धीरे धीरे बनकर तैयार होती हैं। मूलतः मनुष्यके व्यवसाय सम्बन्धी पदार्थ ज्यादातर अरुचिकर होते हैं न कि आकर्षक। मगर जब उनका लगाव ऐसी स्वभावतः उत्तेजित करने वाली बातोंसे हो जाता है, जैसे व्यक्तिका निजी हित-साधन या उसकी सामाजिक जिम्मेदारियाँ, और विशेषकर अभ्यास पड़ जानेके कारण, वे दिलमें ऐसी जगह कर लेते हैं कि मनुष्यको उनके सिवा दूसरी बातोंका मुश्किलसे ही शौक़ रह जाता है।

रुचियाँ किस तरह पैदाकी जाती हैं

रुचियोंके प्रश्न पर थोड़ा और विचार करना और यह देखना कि शौक़ किस तरह पैदा किया जाता है, शिक्षाप्रद होगा। उदाहरणतः ऐसा क्यों होता है कि एक विद्यार्थीका जी गणितमें खूब लगता है, पर वह इतिहाससे घृणा करता है, जब कि उतनी ही बुद्धि वाला और वैसी ही शिक्षा पाये हुए एक दूसरा विद्यार्थी इतिहाससे प्रेम करता है पर गणितसे घबराता है?

इस अन्तरके कारणका पता लगानेके लिए हमें उन दोनोंके समस्त पिछले अनुभवके प्रारम्भ की जाँच करनी चाहिये और उनके तमाम मानसिक संगठनका विश्लेषण करना चाहिये। हम यह विचार कर सकते हैं कि मनके भीतर जो कुछ है, अथवा हमारी सभी पूर्व संचित अनुभूति, वह मानो परस्पर सम्बद्ध और भावना मिश्रित ज्ञानके बहुतसे समूहों (complexes) से मिलकर बनी है। इन जटिल समूहों ने अपना जीवन छोटे छोटे केन्द्रकों (nuclei) की अवस्थासे आरम्भ किया था, पर सम्बन्धित विचारोंको सोख कर और पचा कर और अपने शरीरसे एककार करके वह धीरे धीरे बढ़ते गये। जितने बड़े वे समूह हो जाते हैं उतनी ही तीव्र उनकी पाचन शक्ति भी हो जाती है और उतना ही अधिक वे नये खानेके लिये लालायित भी रहते हैं। भौतिक पिण्डोंकी नाईं ये ज्ञानके विषम ढेर भी, जो कि अन्तःक्षोभ (Emotion) से आविष्ट (charged) होते हैं, रुचिके संगठित व्यूहों (System) की तरह कार्य करते हैं अथवा समान विचारोंको आकर्षित करते हैं और असम्बन्धित, असंगत या विपरीत विचारोंको हटा देते हैं।

यह आकर्षण या अपकर्षणकी शक्ति आकर्षण करने वाले समूहके आकारके अनुपातमें ही बदलती रहती है और यह रुचि की प्रबलता है जिसका वर्णन हम कर रहे हैं। जब हम किसी नये विषयका अध्ययन आरम्भ करते हैं उस समय उसके सम्बन्धमें हमारा ज्ञान नहींके बराबर होता है और उसी के अनुरूप उसकी रुचि की तेज़ी भी कम होती है—जिसका अर्थ यह है कि वह बहुत कम अवधानको उत्तेजित करता है। ज्यों-ज्यों नया समूह पहलेसे जमे हुए दूसरे समूहोंकी तुलनामें बढ़ता जाता है, त्यों त्यों उससे सम्बन्ध रखने वाले विचारोंके मार्गका प्रतिरोध भी उत्तरोत्तर घटता जाता है, और उसकी आकर्षण शक्ति अथवा रुचि भी उसी अनुपातमें तीव्र होती जाती है। तात्पर्य यह कि जैसे जैसे किसी विषय के बारेमें हमारी जानकारी बढ़ती जाती है वैसे ही उसमें हमारी रुचि भी बढ़ती जाती है। जब

हमारा विद्याभ्यास उन्नति कर जाता है, तो ज्यादातर यह देखनेमें आता है कि जिस विषय में हमारी अभिज्ञता अधिक होती है उसीमें हमारी रुचि भी अधिक होती है बनिस्बत एक दूसरे मज़मूनके जिसमें हमारा विचार भण्डार अपेक्षाकृत न्यून है। इससे स्पष्ट हो जायगा कि यदि आत्महित या किसी दूसरी प्राकृतिक प्रेरणा द्वारा यथेष्ट उत्तेजन मिले तो एक मनुष्य इतिहास प्रेमी होनेके साथ साथ गणितज्ञ भी बन सकता है, और एक गणितज्ञ एक इतिहासज्ञ बन सकता है। जिन दिमागों ने विशिष्ट प्रकारकी शिक्षा पायी है (specialised minds), उनमें कोई विशेष समूह (complex) सारे व्यक्तित्व पर शासन करने लगता, एक वकीलके दिमाग पर कानूनका गणितज्ञ के मनपर गणितका और वैद्यके मन पर चिकित्सा शास्त्रके समूहका प्रभुत्व हो जाता है। प्रत्येक समूह बहुत से छोटे-छोटे समूहों से मिल कर बना होता है और उसकी तमाम रचना बड़ी पेचीदा होती है। अगर एक अच्छी तरह जमे हुये समूहके प्रभुत्वके विपरीत किसी अल्पकार समूह (complex) को बढ़ाना हो तो व्यवसाय (will) को काममें लाना पड़ेगा ताकि वह उस छोटे समूहकी रक्षा उसके बलवान प्रतियोगीके विरुद्ध कर सके। इच्छाशक्ति ही अभीष्ट दिशामें प्रारम्भिक आवेग (Impetus को पैदा करती है शुरूके प्रतिरोधको पराजित करती है और ऐसा कर लेनेके बाद मनुष्यको उन सब मनो-वृत्तियोंका विरोध करनेमें सहायक होती हैं जो दूसरी दिशाओंसे घिर कर आती रहती है और हमारी रुचिको और अधिक प्रबलतासे आकृष्ट करनेका प्रयत्न करती रहती हैं। व्यवसाय (will) सन्तरीके समान खड़ा होकर बिना बुलाये हुए चुपकेसे घुस आने वाले विचारोंको रोकता है और ज्योंही ये बेमतलबके विचार चेतनाके द्वार पर दिखाई देते हैं, त्योंही उन्हें हटाकर दूर कर देता है।

जैसे जैसे नया समूह पुराने समूहोंके मुकाबलेमें प्रबल होता जाता है, वैसे ही प्रतिरोध भी धीरे धीरे घटता जाता है जिसका परिणाम यह होता है कि अभ्यास और अनुशासन द्वारा कुछ समय बाद एक व्यक्ति इस बातकी आशा कर सकता है कि सूखी से सूखी दिखाई देने वाली सामग्रीमें भी उसे आनन्द मिलने लगेगा और इस प्रकार वह उसे अपने ध्यानके केन्द्र पर इच्छानुसार कायम रख सकेगा।

सक्रिय अवधान किस प्रकार निष्क्रिय अवधानमें परिणत हो जाता है

अब हमने देख लिया कि निष्क्रिय अवधान रुचिसे पैदा होता है पर एक रुचि भी ऐसी होती है जो अवधानसे उत्पन्न होती है और फिर अवधानको सहारा देती है। हमारी अर्जित रुचियोंमें से अधिकांशके सम्बन्धमें यही बात लागू होती है। शुरूमें एक मनुष्यको एक नये काम या नये विषयसे चाहे अनुराग न हो और उस पर ध्यान देनेमें चाहे उसे कठिन परिश्रम करना पड़े, लेकिन शुरूमें की हुई मेहनतसे शीघ्र ही थोड़ा ज्ञान और थोड़ी निपुणता प्राप्त हो जाती है और धीरे धीरे जैसे जानकारी और निपुणता बढ़ती जाती है मनुष्य उतना ही काममें अधिकाधिक दिलचस्पी लेने लगता है। इस तरह धीरे धीरे रुचि बढ़ने लगती है और इसके साथ ही साथ काम पर ध्यान देनेमें उत्तरोत्तर कम परिश्रम करना पड़ता है, यहाँ तक कि अन्तमें उस पर ध्यान आप जमने लगता है। यद्यपि आरम्भमें अवधान ने रुचिको उत्पन्न किया किन्तु बादमें वही अर्जित रुचि अवधानको स्थिर रखती है, और यह बात एक नियमके रूपमें लिखी जा सकती है कि ऐच्छिक या निष्क्रिय अवधानकी प्रवृत्ति यही रहती है कि वह अन्तमें अनैच्छिक अवधानमें परिणत हो जाय। बहुतसे विद्यार्थी अपने निजी अनुभवसे ही इस नियमके दृष्टान्त दे सकेंगे कि किस

प्रकार बीजगणित और भौतिक विज्ञान जैसे विषय जो शुरूमें बड़े सूखे और कठिन दीख पड़ते थे बादमें इतने आसान और रुचिकर हो गये कि उन्हींमें इन विद्यार्थियों ने जो पहले उनसे डरते थे, पुरस्कार और प्रतिष्ठा प्राप्तकी। एक ओर रुचि और दूसरी ओर विज्ञता और निपुणतामें सीधा संबंध है। ये दोनों एक दूसरेको प्रोत्साहित करते हैं।

८. एकाग्रतामें बाधाएँ

एकाग्रतामें बहुत सी बाधायें आती हैं जिनमें कुछ तो आन्तरिक या विषयगत (Subgective) होती हैं और कुछ बाह्य होती हैं। यहाँ पर हम कुछकी चर्चा करेंगे, जैसे—स्वाभाविक आलस्य या कठिन परिश्रमके प्रति अनिच्छा, मन का चंचल होना या मनके भटकनेकी ओर स्वाभाविक झुकाव, चिन्ता और घबराहट, थकावट, उत्तेजनासे प्रेम या रुचियोंकी बहुतायत।

स्वाभाविक आलस्य या मनकी अस्थिरताको सुधारनेके लिये व्यवसाय (will) को काममें लाना चाहिये। घबराहट, चिन्ता व भय तीनों ही रुचि, अवधान और स्मृतिको शिथिल कर देते हैं। व्यग्रता और व्याकुलताको हटा कर उनकी जगह पर साहस, आशा, आत्मविश्वास और ईश्वरमें श्रद्धाके भावोंको भर देना चाहिये। इसके अतिरिक्त इस बातको भी अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि चिन्ता और घबराहटसे, कोई परिस्थिति सुधारी नहीं जा सकती बल्कि और भी बिगड़ जाता है। भय, चिन्ता और मन की चंचलता जैसे दोष बहुधा आत्म सूचना (Auto Suggestion) के अभ्यास द्वारा दूर किये जा सकते हैं। आत्म सूचनाका अर्थ है कि आप अपने आपको जानबूझ कर सचेत रूपसे इन दुर्बलताओंको पराजय करनेके लिये आदेश दें। रात को सोनेसे जरा पहले ही आत्म-सूचनाका अभ्यास करनेके लिये सबसे उत्तम समय है।

जब मन थका हुआ हो उस समय उसे जबरदस्ती किसी काम पर एकाग्र करना बड़ी भूल है। शक्ति-क्षयके बाद शक्ति-संचयकी बारी आनी चाहिये और मनकी वास्तविक थकावटके लिए मानसिक विश्राम अत्यावश्यक है।

बहुत सी रुचियोंके रखनेका स्वभावतः यह परिणाम होता है कि दिमाग इधर-उधर भटकता रहता है क्योंकि ऐसी अवस्थाओंमें अवधानको अपने आप एक बहुत बड़े क्षेत्र पर फैला देने की आदत पड़ जाती है और मन सदा ही एक वस्तुसे दूसरी पर कूद फाँद करनेका अभ्यस्त हो जाता है। कोई भी मनुष्य बहुतसे विषयों पर ध्यान देकर उन सबमें सिद्धहस्त नहीं बन सकता। अपनी मानसिक शक्तियोंसे सबसे उत्तम ढङ्गसे काम निकालनेके लिये यह आवश्यक है कि अवधानके विस्तारको छोटा करके उसके केन्द्रके तेजको बढ़ाया जाय।

इनके अलावा एकाग्रताके मार्गमें बहुत सी बाहरी अड़चनें भी उपस्थित हो सकती हैं जैसे शोर गुल, अनुपयुक्त प्रकाश इत्यादि। एकाग्रताके लिये सबसे उत्तम वातावरण प्राप्त करनेके लिये ऐसी बाधाओंको बिलकुल दूर कर देना आवश्यक है। पढ़नेकी कुर्सी ऐसी होनी चाहिये जिसमें बैठनेमें आसानी हो और बैठनेका ढङ्ग भी आराम का होना चाहिये जिससे कि उन मांसपेशियों पर जो शरीरको थामे हुये हों कमसे कम ज़ोर पड़े। किताबको इस प्रकार रखना चाहिये कि उसको पकड़नेमें कमसे कम परिश्रम करना पड़े। रोशनी बायें कन्धेके ऊपरसे आनी चाहिये, विशेष कर लिखते समय जिससे कि लिखने वालेकी परछाईं लिखावट पर न पड़े। आँखोंको कभी कभी क्षण भरके लिये बन्द कर देना चाहिये जिससे कि उनकी मांसपेशियोंको विश्राम मिलता रहे और थकावटकी प्रगतिमें रुकावट पड़े। इस तरह शरीरकी थकानको कम करनेके लिये कभी कभी बैठनेकी स्थितिको बदल देना, या उठकर चलना

फिरना लाभदायक सिद्ध हो सकता है। कपड़े ढीले होने चाहिये जिससे खूनके दौरेके लिये काफ़ी जगह रहे। वायुमंडल स्वास्थ्यप्रद होना चाहिये और उसमें शोरगुल या अन्य तरहकी आवाज़ोंकी बाधायें भी न होनी चाहिये। भर पेट भोजनके बाद तुरन्त ही ऐसे काममें न लग जाना चाहिए जिसमें एकाग्रताकी आवश्यकता हो। ऐसे समयको तो हलके प्रकारकी पुस्तकोंके पढ़ने या तथ्योंके संग्रह करने या ऐसे काममें ही लगाना चाहिये जिसमें दिमाग़की ज्यादा आवश्यकता न हो।

९. दत्तचित्तताकी उन्नति करना

यद्यपि अवधान निस्सन्देह ही कुछ हद तक एक प्राकृतिक देन है फिर भी शायद मनकी कोई दूसरी क्रिया ऐसी नहीं है जिसमें शिक्षा द्वारा अवधानसे अधिक उन्नतिकी जा सके। और जैसा कि शरीर और मनकी दूसरी शक्तियोंके लिये भी सत्य है, अवधानकी उन्नतिका रहस्य उसका उपयुक्त प्रयोग ही है। इसी बातको दूसरे शब्दोंमें यों कह सकते हैं कि ध्यान देना ही अवधानको शिक्षित करनेका एकमात्र उपाय है। अवधानकी प्रकृति और नियमोंके बारेमें चाहे कितना ही वाद-विवाद किया जाय, चाहे उनको कितनी ही अच्छी तरह क्यों न समझ लिया जाय पर उससे कोई लाभ नहीं हो सकता जब तक कि एकाग्रचित्तसे काम करनेका अभ्यास न किया जाय।

एकाग्रताकी आदत

किसी निपुणतामें सुगमता और मितव्ययता तभी प्राप्त हो सकती है जब कि उद्योगको एक आदतमें परिवर्तित कर लिया जाय। जितना ही अधिक किसी कामको एक ढर्रे पर डाल दिया जायगा उतना ही अवकाश मनको आगेका काम करनेके लिये मिलेगा। जब मानसिक अनुशासन यंत्रवत, या आप ही आप काम करने वाला, बन जाता है तो मनुष्यको बड़ा लाभ होता है; क्योंकि इससे शक्तिकी बड़ी बचत होती है। हर विद्यार्थी को अपनी अधिकसे अधिक दिमागी ताकतोंको इस तरह संगठित करनेकी कोशिश करनी चाहिये जिससे उनको ऐसी आदत पड़ जाय कि आवश्यकता पड़ने पर वे स्वतः काम कर सकें।

इसी तरह अवधान की शिक्षा देनेमें हमारा उद्देश्य यह होना चाहिये कि मन और ज्ञानेन्द्रियों को तन्मयतासे काम करनेकी आदत डाली जाय और यह अभ्यास केवल इसी तरह रोपित किया जा सकता है कि जहाँ और जब भी ध्यान देनेकी जरूरत हो वहां पर हम एकाग्र चित्तसे ध्यान दें। चाहे काम करना हो चाहे खेलना, किताब पढ़ना हो या किसी अभ्यागतसे बातचीत करना, एक कठिन पाठ को पढ़ना हो या एक नीरस व्याख्यान या बातचीत को सुनना हो; लेकिन यदि उन पर ध्यान देना ही है तो हमारे लिये उचित है कि उन पर एकाग्र मन और सम्पूर्ण हृदयसे ध्यान दें—हमेशा न कि ठहर-ठहर कर उचंगके साथ—क्योंकि यदि कोई काम करने योग्य है तो उसे भली भाँति ही करना चाहिये। इसके अलावा जो कोई भी जान बूझ कर ऐसा अभ्यास डालेगा उसे बहुधा यह पता चलेगा, जैसा कि हम ऊपर लिख आये हैं, कि नीरस और अरोचक काम भी रोचक बन जाता है। पर यदि वह कभी रोचक न भी बन पावे तो भी ऐसा व्यक्ति कम से कम आत्म अनुशासनकी आदत डाल रहा है जो उसके तमाम जीवनमें अमूल्य सिद्ध होगी। इसके विपरीत एक मनुष्य जो कभी ध्यान नहीं देता और कभी मन को जमा कर काम नहीं करता सिवाय ऐसे अवसरोंके जब उसकी रुचि उत्तेजित हो गई हो और जो कभी अवधानको बलपूर्वक लगानेकी कोशिश नहीं करता, वह एक ऐसी आदत डाल रहा है जिससे उसकी मानसिक शक्तियोंका विनाश हो जायगा।

———

सरल विज्ञान

(ले०—श्रीमती रानी टंडन एम० एड०)

पेड़ों की बातें

आम

तुम सब ने आम खाये होंगे और तुममें से बहुतों ने आम के पेड़ को देखा भी होगा।

(१) आम का पेड़ मामूली तौर से एक बड़े आदमी की ऊँचाई से दुगना होता है।

(२) पेड़ का तना देखो। उसकी

चित्र १—आम का पेड़

मोटाई और छाल की जाँच करो। छाल मोटी और खुरदरी होती है।

जैसे जैसे तना ऊपर को बढ़ता है उसमें से शाखायें निकलती हैं। शाखायें पुरानी होकर मोटी होती हैं और इनमें से फिर और दूसरी शाखायें निकलती हैं। इस तरह एक के बाद एक शाखा निकलती जाती है और पेड़ फैलता जाता है। ऊपर की शाखायें पतली तथा नरम होती हैं क्योंकि ये नई रहती हैं। पतली तथा नरम शाखाओं पर ही पत्तियाँ रहती हैं। शाखाओं के खूब फैलने तथा उनपर घनी पत्तियों के होने से आम का पेड़ छायादार होता है।

(३) आम की पत्ती चिकनी, लम्बी और नोकदार होती है। बीच में एक मोटी नस रहती है। इस मोटी नस के दोनों तरफ छोटी छोटी पतली नसें फैली रहती हैं।

चित्र २—आम की पत्ती

(४) एक पत्ती को हाथ से मसल कर सूँघो। कैसी महक है? क्या इससे तुम पत्ती की पहचान कर सकते हो?

(५) बरसात में आम की गुठली मिट्टी में गाड़ देने से आम का पौधा निकलता

है। इस पौधे की पत्तियाँ देखो। कितनी नरम होती हैं। इनका रंग भी हलका बैंगनी होता है।

(६) फरवरी तथा मार्च में आम में बौर आता है। ये महीने बसन्त ऋतु के हैं। बौर आम का फूल है। इसमें भीनी सुगन्ध होती है। आम फूलने के दिनों में किसी आम के बाग में जाओ तो कितनी अच्छी महक मालूम होती है।

(७) बौर आने के १५-२० दिन बाद ही आम लगना शुरू हो जाते हैं। शुरू में आम मटर के दाने से भी छोटे होते हैं। धीरे धीरे बढ़ कर ये बड़े हो जाते हैं। पकने पर इनका छिलका पीला या लाल हो जाता है।

(८) कच्चे आम की गुठली शुरू में बड़ी मुलायम होती है। जैसे जैसे आम बड़ा होता है और पकता है गुठली कड़ी पड़ती जाती है। गुठली आम का बीज है।
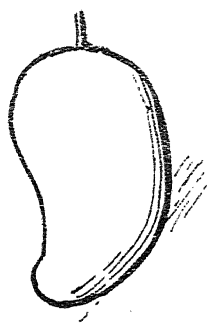
चित्र २—आम

(९) कच्चे आम खट्टे होते हैं। पकने पर मीठे हो जाते हैं।

(१०) जाड़े के बाद फरवरी-मार्च में पतझड़ होता है। उसके बाद नई पत्तियाँ निकलती हैं और बौर आता है।

आम के पेड़ के बारे में जो बातें तुमने पढ़ी हैं उन्हें संक्षेप में नीचे की तरह लिखा जाता है।

आम का पेड़

१—पेड़ की ऊँचाई ?	आदमी की ऊँचाई का दुगना
२—तना कैसा है ?	काफ़ी मोटा और ठोस
३—छाल कैसी है ?	मोटी और खुरदुरी
४—पत्ती का आकार ?	लम्बी नोकदार और चिकनी। बीच में एक मोटी नस रहती है और इसके दोनों ओर पतली नसें रहती है।
५—फूल किस महीने में लगते हैं ?	फरवरी या मार्च में
६—फल कब लगते हैं ?	अप्रैल या मई में
७—फल कब पकते हैं ?	जून-जूलाई में
८—अन्य विशेष बातें ?	पेड़ का तना ज़मीन के पास अधिक मोटा होता है और ऊपर की तरफ

पतला होता जाता है। पत्ती में अच्छी महक रहती है। पत्तियाँ घनी और सायादार होती हैं। मार्च में पतझड़ होता है और उसके बाद ही नई पत्तियाँ निकलती हैं।

पीपल

पीपल के पेड़ में नीचे लिखी बातें कापी में खाना खींच कर भरो!

१—पेड़ की ऊँचाई। छाया कैसी है? ... ...

२—तना कैसा है? ... ...

३—छाल कैसी है? ... ...

४—पत्ती का आकार तथा पहचान? नसों का फैलाव। ... ...

५—फूल किस महिने में लगते हैं? ... ...

६—फल कब लगते हैं? फल की पहचान। ... ...

७—अन्य बातें। ... ...

पीपल का पेड़ बहुत ऊँचा और सायादार होता है। तना मोटा और ठोस होता है। तने से मोटी और लम्बी डालें चारों ओर फैली रहती हैं। इन मोटी डालों पर पतली शाखायें होती हैं जिन पर पत्ते लगे रहते हैं। छाल मोटी और खुरदरी है। पत्ते का आकार पान की तरह होता है किन्तु पान की तरह यह मुलायम नहीं होता बल्कि मोटा होता है। मार्च के महीने में पतझड़ होता है। उसके बाद नये पत्ते निकलते है जो शुरू में मुलायम होते हैं किन्तु धीरे धीरे कड़े पड़ जाते हैं। मार्च में फूल लगते हैं और अप्रैल में फल लग आते हैं। जून में फल पक जाते हैं। ये फालसे से कुछ बड़े होते हैं और इनके अन्दर गूलर की तरह बहुत से छोटे छोटे बीज होते हैं। इन बीजों से ही पीपल के नये पेड़ निकलते हैं।
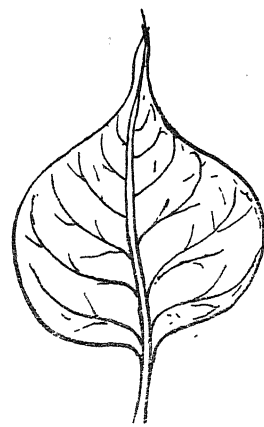
चित्र ४—पीपल का पत्ता

चिड़ियाँ इन फलों को खूब खाती हैं। पीपल के बीज चिड़ियों की बीट में प्रायः मौजूद रहते हैं। चिड़ियाँ जगह जगह बीट करती हैं। इसी लिए पीपल के बीज जगह जगह पहुँच जाते हैं और वहीं पीपल के नये पेड़ निकल आते हैं।

सरल और संयुक्त पत्तियाँ

जो पेड़ तुमने पढ़े हैं उनसे नीम और इमली की पत्ती भिन्न प्रकार की होती है। नीम और इमली में वास्तव में वह पूरा डंठल, जिस पर दोनों ओर छोटी छोटी पत्तियाँ सी लगी होती हैं, एक पत्ती है। इन छोटी पत्तियों को पत्रक कहते हैं। नीम और इमली की किस्म की

चित्र ५—नीम की पत्ती
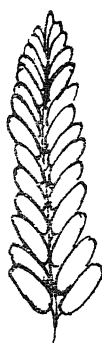
चित्र ६—इमली की पत्ती

पत्तियों को जो कई पत्रकों के मिलने से बनती हैं संयुक्त पत्तियाँ कहते हैं। आम, पीपल, अमरूद, बरगद आदि की हर एक पत्ती एक पत्ती है। इन्हें सरल पत्तियाँ कहते हैं।

नीम

नीम का पेड़ ऊँचा और छायादार होता है। तना मोटा और ठोस है। छाल मोटी और खुरदरी है। पत्तियाँ संयुक्त किस्म की हैं। प्रत्येक पत्रक के किनारे आरी की धार के समाने दाँत होते हैं। पत्तियों में एक कड़वी सी महक होती है और खाने में भी वे कड़वी होती हैं। फरवरी-मार्च में पतझड़ होता है। मार्च-अप्रैल में बौर आता है। बौर में हल्की सुगन्ध होती है। बौर के झड़ने पर फल लगते हैं जो जून-जूलाई तक पक जाते हैं। ये खिन्नी की तरह पीले लम्बे होते हैं। इन्हें निमकौली कहते हैं। खाने में ये कुछ मीठे होते हैं।

इमली

इमली का पेड़ ऊँचा और छायादार होता है। तना मोटा और ठोस होता है। पत्तियाँ संयुक्त किस्म की होती हैं। पत्तियों में कुछ खट्टापन रहता है। छाल मोटी और खुरदरी होती है। पतझड़ फरवरी-मार्च में होता है। सितम्बर-अक्टूबर में फूल लगते हैं। दिसम्बर में फल लग जाते हैं। इसका फल इमली है जो तुम अक्सर

चित्र ७ इमली

खाने हो। अप्रैल में इमली पक जाती है। कच्ची इमली खट्टी होती है पकने पर खटमिट्ठी होती है। इमली के अन्दर काले कड़े बीज होने है जिन्हें चियाँ कहते हैं।

अमरूद

अमरूद का पेड़ ६-७ फीट ही ऊँचा होता है। पत्तियाँ घनी और छायादार होती हैं। पत्तियों को हाथ में मसल कर सूँघो तो अमरूद की सी महक आती है। तना मामूली मोटा होता है। इसकी
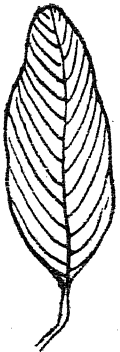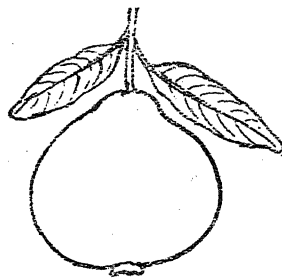
चित्र ८—अमरूद की पत्ती चित्र ९—अमरूद

छाल पतली और चिकनी होती है और आप से आप उचल कर गिर जाती है। पतझड़ फरवरी -मार्च में होना है। फूल जूलाई-अगस्त में लगते हैं। फल अगस्त में लग जाते हैं और नवम्बर-दिसम्बर तक पक कर तैयार होते हैं।

बरगद

बरगद का पेड़ पीपल से कम ऊँचा होता है किन्तु आम और अमरूद से अधिक ऊँचा होता है। यह खूब फैला रहता है। इससे इसमें छाया बहुत होती है। इसकी छाल खुरदरी होती है। इसके पत्तों तथा डंठलों के तोड़ने से दूध की तरह सफेद रस निकलता है। बरगद का दूध दवा के काम में आता है। बरगद में ऊपर से जटायें लटकी रहती हैं। पतझड़ फरवरी-मार्च में होता है। फूल मार्च में निकलते हैं। फल अप्रैल में लग जाते हैं और जून-जूलाई तक पकते हैं। इसके फल पीपल के फल से बहुत कुछ मिलते हैं।
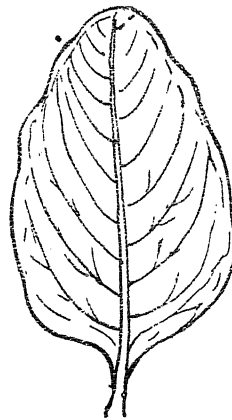
चित्र १०—बरगद का पत्ता

ऊपर के सब पेड़ों का हाल आम के पेड़ की भाँति खाने खींच कर लिखो।

पौधों की बातें

पौधों में भी हम लोगों की तरह जीवन है। तुम्हें अपने जीवन के लिए कौन कौन सी चीज़ों की ज़रूरत पड़ती हैं। क्या बिना पानी, भोजन, और हवा

के तुम रह सकते हो ? पौधों को जीवन के लिए पानी, भोजन, हवा तथा सूर्य की रोशनी आवश्यक है। इनके बिना वे जीवित नहीं रह सकते।

पेड़ों के लिए पानी आवश्यक है

प्रयोग १—दो गमलोंमें अच्छी मिट्टी लो और दोनों में एकही किस्मके पौधे लगा दो। एक गमलेमें पेड़को रोज पानी दो, किन्तु दूसरे गमलेमें पानी बिल्कुल मत दो। कई दिनों बाद देखो। दोनों गमलोंके पेड़ोंमें क्या अन्तर है ? जिस गमले में तुमने पानी नहीं दिया था वह क्यों सूख कर मर गया ?

पेड़ ज़मीन से अपनी खुराक पानी में घुलाकर लेते हैं। जब खुराक पानी में घुल जाती है तो जड़ों द्वारा वे इसे चूस लेते हैं। पानी यदि पेड़ों को न मिले तो वे ज़मी अपनी खुराक नहीं ले सकते। इसीलिए पानी से सिंचाई करना खेती तथा बागों की अच्छी पैदावार के लिए ज़रूरी है। खेतों और बागों को वर्षा से काफ़ी पानी मिल जाता है। गर्मी के दिनों में जब मिट्टी बहुत सूख जाती है तब बागों और खेतों की सिंचाई कर देना चाहिए।

पेड़ों के लिए भोजन आवश्यक है

प्रयोग २—दो गमले लो। एक में केवल बालू भरो और दूसरे में बालू के साथ गोबर की अच्छी खाद मिला कर भरो। अब दोनों में एक ही किस्म के पौधे लगा दो। रोज पानी देते रहो। कुछ दिनों बाद बालू वाले गमले का पौधा क्यों मुरझा कर गिर गया और खाद वाले गमले का पौधा क्यों हरा-भरा बना रहा ?

खाद में पौधों का भोजन रहता है। पानी में घुलने के बाद यह जड़ों द्वारा पेड़ के अन्दर पहुँच जाता है। पहले गमले में जिसमें केवल बालू थी पौधे को कोई भोजन नहीं मिला। इसीलिए पौधा कुछ दिनों बाद मुरझा कर मर गया। दूसरे गमले में खाद थी जिससे पौधे को खुराक मिलती रही। इसीलिए पौधा बढ़ता रहा।

पौधे अपना भोजन दो चीज़ों से प्राप्त करते हैं

(१) मिट्टी में मौजूद खाद से और
(२) हवा से।

खाद—मिट्टी में खाद हमेशा मौजूद रहती है। पत्ती, गोबर, लीद आदि सभी चीज़ों के सड़ने से खाद तैयार होती है। ये सब चीज़े मिट्टी में हमेशा गिरती और मिलती रहती हैं और सड़ कर खाद हो जाती हैं। जिस मिट्टी में खाद की कमी होती है वहाँ पौधे ठीक से नहीं उगते। इसीलिए खेतों तथा बागों में अक्सर खाद मिलानी पड़ती है।

हवा—हवा में कई गैसें रहती हैं। इनमें से दो गैसें ऑक्सिजन और कार्बन डाइ-ऑक्साइड हमारे तथा पेड़ों के अधिक काम की हैं।

हवा में जब हम और जानवर

साँस लेते हैं तो हवा की ऑक्सिजन गैस ले लेते हैं। ऑक्सिजन हमारे गंदे खून को साफ़ करती है। साँस बाहर फेंकते समय हम तथा जानवर अपने शरीर के अन्दर की ज़हरीली गैस कार्बन डाइ-ऑक्साइड बाहर निकाल देते हैं जो हवा में मिल जाती है। इस तरह हमारे तथा जानवरों के साँस लेने से हवा की ऑक्सिजन खर्च होती रहती है और उसमें ज़हरीली कार्बन डाइ-ऑक्साइड मिलती रहती है। यदि यह क्रिया ऐसे ही कुछ दिनों चलती रहे तो हवा की सारी ऑक्सिजन थोड़े दिनों में समाप्त हो जाय और हवा में कार्बन डाइ-ऑक्साइड ही बहुत सी इकट्ठा हो जाय। उस समय हमरा और जानवरों का हवा में साँस लेना कठिन हो जायगा। किन्तु ईश्वर ने ऐसा प्रबन्ध कर रक्खा है कि यही कार्बन डाइ-ऑक्साइड गैस जो हमारे तथा जानवरों के लिए ज़हरीली है पौधों के लिए भोजन का काम करती है। पौधे हवा से इस गैस को दिन के समय सूर्य की रोशनी में पत्तियों द्वारा चूस लेते हैं और इसकी जगह हवा में ऑक्सिजन डाल देते है। इस प्रकार पौधे हवा से अपनी खुराक लेते हैं और साथ ही हवा को शुद्ध कर देते हैं।

हवा से अपना भोजन बनाने के लिए कार्बन डाइ-ऑक्साइड लेने के अलावा पौधे हवा में हम लोगों की तरह साँस भी लेते हैं। साँस लेने की क्रिया में वे हमारी तरह ऑक्सिजन गैस हवा से लेते हैं और कार्बन डाइ-ऑक्साइड हवा में मिलते हैं। यह हवा से खुराक लेने की क्रिया का ठीक उल्टा है।

इस तरह तुम देखते हो कि पौधों को दो कामों के लिए हवा चाहिये

(१) अपनी खुराक के लिए और

(२) साँस लेने के लिए।

बिना हवा के कोई पौधा अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सकता। नीचे के प्रयोग से यह बात तुम देख सकते हो।

प्रयोग ३—दो गमले लो। इसमें बाग की अच्छी मिट्टी भर कर दो पौधे लगा दो। अब एक को हवा में खुला रक्खो और दूसरे के ऊपर एक शीशे का ढकना (बेल-जार) ढक दो जिससे हवा अन्दर न जा सके।
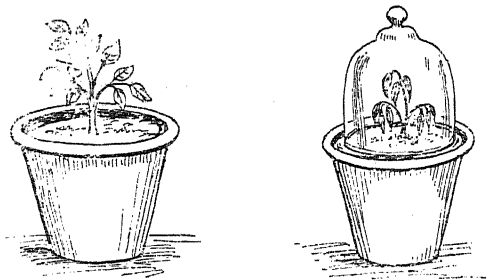
चित्र ११— बेलजार से ढके गमले का पेड़ हवा न मिलने से मुरझा गया है।

तुम देखोगे कि उस गमले का पौधा जो बेलजार से ढक दिया गया था दो चार दिनों बाद सूख कर मर जाता है क्योंकि इसे हवा नहीं मिली।

पेड़ के लिए रोशनी आवश्यक है

प्रयोग ४—दो गमलों में बाग की अच्छी मिट्टी लो। मिट्टी को पानी से नम करने के बाद उसमें सेम या चने के दाने बो दो। जब अंकुर निकल आयें तब एक गमले को कमरे के अन्दर बन्द कर अंधेरे में रख दो और दूसरे को बाहर रोशनी में रहने दो। कई दिनों बाद देखो किस गमले का अंकुर ठीक से बढ़ा है। अँधेरे में रक्खे गमले का अंकुर ठीक से क्यों नहीं बढ़ा?
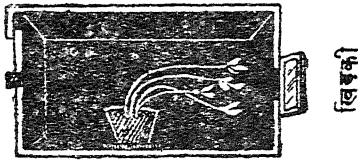
चित्र १२

प्रयोग ५—एक गमले में लगे पौधे को गमले सहित एक अँधेरे कमरे में रख कर एक खिड़की को जरा सा खोल दो जिसमें इस खिड़की की तरफ से कुछ रोशनी अन्दर पहुँचे। दो तीन दिनों बाद तुम देखोगे कितने तथा शाखाओं के सिरे मुड़कर खिड़की की ओर हो जाते हैं (चित्र १२)।

ऊपर के प्रयोगों से तुम्हें मालूम हुआ कि पौधों के लिए सूर्य की रोशनी भी आवश्यक है। बिना रोशनी के इनकी बाढ़ ठीक नहीं हो पाती। यह बात तुमने देखी होगी कि किसी बड़े पेड़ की छाया में दूसरे छोटे पेड़ ठीक नहीं उग पाते क्योंकि उन्हें अच्छी तरह रोशनी नहीं मिलती।

पौधों में तना तथा पत्तियों को ही रोशनी की ज़रूरत पड़ती है और वे हमेशा रोशनी की तरफ बढ़ते है जैसा कि तुमने प्रयोग ५ में देखा है। जड़ों को रोशनी की ज़रूरत नहीं पड़ती। वे रोशनी के उल्टी तरह बढ़ती हैं।

रोशनी में पत्तियाँ कार्बन डाइ-ऑक्साइड से अपना भोजन बनाती हैं। इसी काम के लिए ख़ास तौर से रोशनी की ज़रूरत होती है।

बीज और उनका उगना

बीजों के उगने पर पौधे निकलते हैं। इस बात का समझने के लिए कि बीज कैसे उगते हैं हम सेम, चना तथा गेहूँ के बीज चुनते हैं। परीक्षा के लिए चुने बीजों को एक या दो दिनों तक पानी में भिगा देना चाहिए। इससे बीज मुलायम पड़ जाता है और तब उसके हर एक भाग की जाँच सरलता से हो जाती है।

सेम का बीज

एक पानी में फुलाये हुये सेम के बीज को लो। इसका आकर गुर्दे की तरह है। बीज के एक किनारे पर एक सफ़ेद धारी है। इस धारी के एक तरफ कुछ दबा हुआ चिन्ह है। इसी जगह बीज सेम की छीमी में जुड़ा रहता है। इस चिन्ह को हाइलम कहते है। हाइलम के सामने एक बहुत छोटा छेद है। इसे माइक्रोपाइल कहते हैं। फूले हुये बीज को धीरे से दबाओ तो इस छेद से पानी

रखता हुआ तुम्हें दिखलाई देगा।

बीज का छिलका टेस्टा कहलाता है। टेस्टा को चाकू से निकालने पर तुम देखोगे कि इसकी दो पर्त हैं। एक
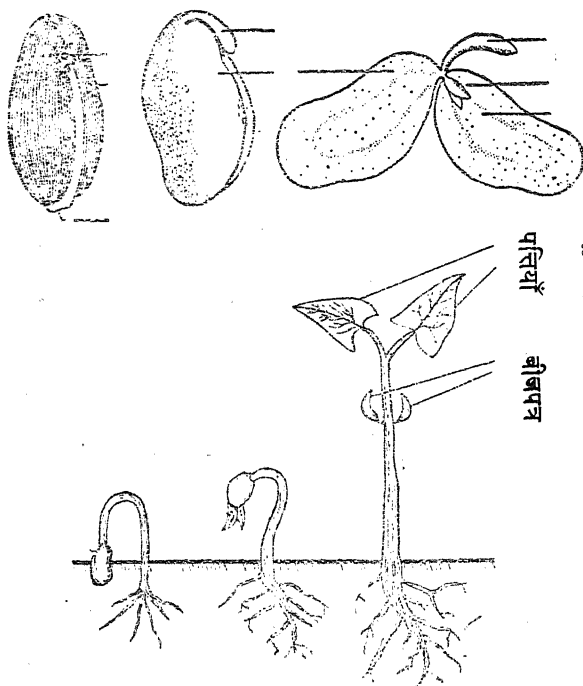
चित्र १३—सेम का अंकुरण

बाहर की कड़ी पर्त और दूसरी अन्दर की पतली सफ़ेद झिल्ली।

अन्दर के भाग

टेस्टा निकाल देने के बाद तुम्हें एक सफ़ेद चीज़ मिलती है जिसे अंकुर या गर्भ कहते हैं। गर्भ के दो भाग हैं—(१) दो सफ़ेद मोटी दालें जिन्हें बीजपत्र कहते हैं और (२) एक पतली लम्बी चीज़ जिससे दोनों बीज पत्र जुड़े रहते हैं। इस लम्बी चीज़ का एक किनारा जो माइक्रोपाइल की तरफ़ रहता है कुछ नुकीला है और बीजपत्र के कुछ बाहर निकला रहता है। इस किनारे को बीजमूल या रैडिकिल कहते हैं। दूसरी तरफ़ का किनारा बीजपत्रों के बीच में रहता है और इसमें दो छोटी पत्तियाँ सी रहती हैं। इस किनारे को बीजप्रांकुर या प्लूमूल कहते हैं। आगे चल कर तुम देखोगे कि बीज के उगने पर बीज मूल से पौधे की जड़ और बीजप्रांकुर से तना तथा पत्तियाँ निकलती हैं। बीजपत्रों में भोजन रहता है जो बीज के उगते समय काम में आता है।

सेम, चना, मटर आदि बीजों को जिनमें दो दालें होती हैं दो दाल वाले बीज कहते हैं।

सेम के बीज का उगना

एक गमले में अच्छी मिट्टी लो और इसे नम कर लो सेम के पानी में फुलाये कुछ बीजों को इसमें उगने के लिए रख दो। एक एक दिन छोड़ कर दो दो बीजों को निकाल कर उनके उगने की दशा तथा विधि देखो (चित्र १३)।

(१) बीज सब से पहले माइक्रोपाइल द्वारा पानी सोखता है और मुलायम पड़ जाता है।

(२) इसके बाद बीजमूल बढ़ता है और छिलके को तोड़कर माइक्रोपाइल के छेद द्वारा बाहर निकल आता है। यह मुड़ कर नीचे को बढ़ता है और जड़ें बनाता है। बीज चाहे जैसे रक्खा जाय बीजमूल हमेशा मुड़कर नीचे को ही जायगा। यह बात ध्यान देने की है कि जड़ हमेशा तने से पहले निकलती है जिससे पौधा ठीक से जम जाय।

(३) अब बीजपत्रों के ठीक नीचे का भाग एक मेहराब की शक्ल बनाता है। यह मेहराब बढ़ कर मिट्टी से बाहर निकल आता है और अपने साथ बीजपत्रों को भी घसीट लाता है। धीरे धीरे मेहराब सीधा हो जाता है।

(४) बीजप्रांकुर बीजपत्रों के बीच में बढ़ता रहता है और बाद में बाहर निकल कर तना तथा पत्तियाँ बनाता है।

(५) शुरू में सब भाग सफ़ेद रहते हैं। बाद में तना तथा पत्तियों के भाग हरे हो जाते हैं।

(६) पहले एक जोड़ी पत्तियाँ सामने निकलती हैं।

(७) जब तक हरी पत्तियाँ नहीं निकलतीं तब तक अंकुर को बीजपत्रों में इकट्ठा रक्खा हुआ भोजन पदार्थ खुराक के लिए मिलता है। बीजपत्र शुरू में मोटे तथा फूले रहते हैं किन्तु जैसे-जैसे अंकुर बढ़ता है और उनका भोजन खर्च होता जाता है वे सिकुड़ने जाते हैं। जब उनका सारा भोजन समाप्त हो जाता है तब वे सूख कर झड़ जाते हैं।

गेहूँ का बीज

एक-दो दिनों तक पानी में भिगोये गेहूँ के दानों को लो और नीचे लिखी बातें देखो।

(१) एक बात पहले समझ लो। गेहूँ का दाना वास्तव में सेम की तरह बीज नहीं है बल्कि एक फल है। बीज इसके अन्दर रहता है। गेहूँ में फल तथा बीज के छिलके इस तरह आपस में जुड़ जाते हैं कि उनको अलग अलग पहचानना कठीन है।

(२) गेहूँ के चौड़े किनारे के पीछे तुम्हें एक छोटा सा भाग दिखलाई देगा। इसी भाग में गर्भ रहता है। बाकी सारे भाग में केवल भोजन इकट्ठा रहता है। भोजन वाले सारे भाग को एण्डोस्पर्म कहते हैं।

(३) गेहूँ में सेम की तरह दो दालें नहीं हैं। केवल एक पतला बीजपत्र होता है जो गर्भ के चारों ओर चिपका रहता है। इसका पहचानना भी कठिन है। सेम के बीजपत्र इसलिए मोटे होते हैं कि उनमें

भोजन इकट्ठा रहता है। गेहूँ के बीजपत्र में भोजन इकट्ठा नहीं रहता।

उगना

एक गमले में कुछ गेहूँ के दानों को उगने के लिए छोड़ दो। बीच बीच में दानों को निकाल कर इनकी परीक्षा करो।

(१) गर्भ वाले भाग से पहले बीजमूल नीचे बढ़ कर जड़ बनाता है।

(२) बाद में बीजप्रांकुर ऊपर को सीधा बढ़ता है और सेम की तरह मेहराब नहीं बनाता। इससे तना तथा पत्तियाँ निकलती हैं।

(३) कुछ दिनों बाद बीजमूल द्वारा बनी जड़ सूख जाती है और दूसरी नई जड़ें निकलती हैं। सेम में तुमने देखा था कि बीजमूल द्वारा बनी शुरू की जड़ें ही बराबर बनी रहती हैं।

पत्तियों और फूलों का सोना

जिस तरह रात में तुम अपनी थकावट दूर करने के लिए सोते हो पेड़ भी सोते हैं। लेकिन पेड़ों का सोना तुम्हारी तरह लेट कर नहीं होता। जब वे सोते हैं तो उनकी पत्तियाँ मुड़ कर बंद हो जाती हैं और ढीली हो कर लटकने लगती हैं। सूर्य डूबने के बाद अंधेरा होने पर किसी मटर के पेड़ की पत्तियों को देखो। पत्तियाँ मुड़ कर बंद हो गई हैं और लटक रही हैं। सुबह सूर्य निकलते ही ये फिर खुल कर सीधी खड़ी हो जायँगी। यही पत्तियों का सोना है।

कुछ फूल भी रात के समय बन्द हो जाते हैं और सुबह के समय खिल जाते हैं। यह फूलों का सोना है।

आस पास के कुछ जानवर

अपने आस पास के रहने वाले कितने ही जानवरों को तुम जानते हो। हम यहाँ इनमें से कुछ जानवरों का हाल तुम्हें बतलाते हैं।

गिलहरी

गिलहरी तुमने अवश्य देखी होगी। यह बड़ी फुर्तीली होती है। बड़ी जल्दी से पेड़ पर चढ़ जाती है।

(१) गिलहरी की पीठ पर रोयें होते हैं और तीन काली धारियाँ होती हैं।

(२) गिलहरी की पूँछ गोल तथा मोटी होती है और लगभग बदन की लम्बाई के बराबर होती है। पूँछ पर घने रोयें होते हैं।

(३) गिलहरी बहुत तेज़ भागती है। एक छलाँग में १०-१३ फीट तक कूद जाती है। इसके पिछले पैर लम्बे और मज़बूत होते हैं। इसका बदन लचीला

होता है। इन बातों से इसे कूदने में मदद मिलती है।

(४) यह एक डाल से दूसरी डाल पर तथा एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर बड़ी आसानी से कूद जाती है। इसके पंजे में ५ अंगुलियाँ अलग अलग हैं। कूदने में इन अंगुलियों की सहायता से यह पतली डालों तथा पत्तियों के झुरमुट को मज़बूती से पकड़ लेती है।

(५) दुम से भी इसे कूदने में मदद मिलती है। दुम इसको सहारा दिये रहती है और कूदने में इसे इधर उधर गिरने नहीं देती।

(६) पेड़ों पर चढ़ने में इसके नाखून इसकी ख़ास मदद करते हैं। नाखून लम्बे तथा तेज़ होते हैं जो तने की कड़ी छालों में धँस जाते हैं। यह इन नाखूनों को तने में धँसाती हुई तेज़ी से पेड़ पर चढ़ जाती है। इसके चढ़ने की बराबरी कोई दूसरा जानवर नहीं कर सकता।

रहने का स्थान—गिलहरी अधिकतर जंगलों में पेड़ों पर रहती है। यह अपना घर पेड़ के मोटे तने, में जहाँ से एक या दो डालें फूटती हैं, बनाती है। ऐसा स्थान इसलिए चुनती है कि जिससे आफ़त के समय यह डालों पर चढ़कर भाग सके और अपना बचाव कर सके। अपने घर के ऊपर घनी छावनी कर देती है जिससे पानी तथा आँधी से बचाव रहे। इसके घर के मुख्य मार्ग का छेद हमेशा नीचे की ओर रहता है जिससे इसको निकल कर भागने में सुभीता रहता है। मुख्य मार्ग के अलावा तने में आस पास कई छेद और कर देती है जिससे यदि मुख्य द्वार पर कोई शत्रु आ जाय तो यह दूसरे रास्तों से निकल कर भाग सके।

चित्र १४—गिलहरी

रात में गिलहरी अपने घर में आराम से सोती है।

भोजन—गिलहरी शाकाहारी है। यह केवल फल, मेवा, अनाज, तरकारी तथा अन्य वनस्पतियों पर ही रहती है। माँस बिल्कुल नहीं खाती। जंगलों में जहाँ यह रहती है वहाँ के पेड़ों के फल, उनके बीज, मुलायम डालें तथा पेड़ की छाल आदि ही इसका ख़ास भोजन हैं।

इसके आगे के दाँत बड़े पैने होते हैं। सब चीज़ों को यह आगे के दोनों दाँतों से पकड़ लेती है और पिछले हिस्से के सहारे बैठ कर दाँतों से कुतर कुतर कर खाती है। इसके दाँत इतने पैने होते हैं कि यह अखरोट तथा बादाम के कड़े छिलकों को भी कुतर कर फेंक देती है और अन्दर का बीज निकाल कर खाजाती है। मुँह में दोनों ओर चबाने के लिए डाढ़ें रहती हैं जिससे यह अपना भोजन अच्छी तरह चबा कर खाती है।

वैज्ञानिक समाचार

[लेखक—डा० ओंकार नाथ परती डी० फिल्]

हवाई जहाज़के लिये कागजके पुर्जे

लन्दनके "एयरोनौटिक्स" नामक पत्रिकामें यह खबर छपी है कि हवाई जहाज़के बहुतसे पुर्जे साधारण कागजसे तैयार किये जा रहे हैं। यह कागज मिलोंमें विशेष रूपसे तैयार किया जाता है। लकड़ी या प्लास्टरके फर्मोंमें उसकी तहें एक दूसरेके ऊपर चिपका कर बैठा दी जाती हैं। जब यह सूख जाता है तो सैंड पेपरसे पालिश करके उस पर कपड़ा चढ़ा दिया जाता हैं। सूख जाने पर इसे "पाइट्रम" कहते हैं। टेढ़ी-मेढ़ी घुमाव-फिराव वाली वस्तुएँ बनानेके लिये "पाइट्रम" एक आदर्श वस्तु सिद्ध हुआ है। यह बहुत हलका होता है और उष्ण-देशोंकी परिस्थितियोंका इस पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। यह बहुत सस्ता पड़ता है और हवाई जहाज़ोंकी घरघराहटका भी इस पर कोई असर नहीं पड़ता है।

सुखाई हुई तरकारियाँ

हालमें नई दिल्लीमें सूखी तरकारियोंके व्यापारियों की एक मीटिंग हुई। इस मीटिंगमें सूखी तरकारियोंके व्यापारको बढ़ाने पर विचार किया गया। सरकार के केन्द्रीय भोजन विभागकी ओरसे श्री लोबो प्रभुने इन व्यापारियोंको सहायता देनेका बचन दिया है। अभी तक सुखाई हुई तरकारियोंका उपयोग अधिकतर फौजमें ही होता था किन्तु अब यह सर्व साधारणके लिये तैयार की जायेंगी। गत वर्ष भारतकी १८ फैक्टरियों ने ३,३५० टन सुखाई हुई तरकारियाँ फौजके लिये बनाई थीं। सुखाई हुई तरकारियोंकी एक विशेषता यह है कि यह बहुत समय तक सुरक्षित रक्खी जा सकती हैं। आजकल जब भारतमें सर्वत्र अनाजकी कमी है सुखाई हुई तरकारियाँ इस कमी को कुछ सीमा तक पूरी कर सकती हैं।

छात्रवृत्ति

भारतकी इम्पीरियल टोबैको कम्पनी ने तम्बाकूकी खेतीके विषयमें उच्च अध्ययनके लिये दो छात्रवृत्ति देनेका विचार किया है। यह छात्रवृत्ति ५०० पौंड सालाना की होंगी और दो सालके लिये दी जायेंगी। यह छात्रवृत्ति भारत सरकारकी इंडियन सेंट्रल टोबैको कमेटी द्वारा सम्पादितकी जायेंगी।

देहरादूनकी वन्य अनुसंधान शालाका कार्य

देहरादूनकी वन्य अनुसंधान शालाकी सन् १९४३-४४ की वार्षिक रिपोर्टमें बतलाया गया है कि इस वर्ष भी अनुसंधानशालाका कार्य पूर्णतः युद्धकी माँगोंसे ही प्रभावित रहा। रिपोर्ट हाल ही में प्रकाशित हुई है। अनुसंधान शालाकी उपयोग और रसायन तथा गौण वस्तुओंकी शाखाएँ उन समस्याओंका समाधान करनेमें पूर्णतः व्यस्त थीं जो या तो युद्धसे प्रत्यक्ष रूपसे संबद्ध थीं या युद्धके परिणामोंसे उत्पन्न हुई थीं।

अनुसंधानशाला ने भारतीय और अमरीकी सैन्यदलों को जो युद्ध संबंधी सहायताएँ प्रदानकी उनमें एक सहायता अनुसंधानशालाकी वनारोपण शाखाकी पुस्तकोंमें लिखी जानकारीमेंसे तथा उसके १५,००० फोटो चित्रोंके संग्रह मेंसे विभिन्न विषयों पर ज्ञातव्य बातें सूचित करना था। इन विषयोंमें हवाई अड्डों पर वायुयानोंके उड़ान लेने के मार्गों पर उगने वाली अवांछित घास, जंगलकी लड़ाई, वायुयानोंसे लिये गये जंगलके फोटो-चित्र तथा जिस प्रदेश

और जिन क्षेत्रोंमें लड़ाई करनी थी उनका स्वरूप सम्मिलित था।

परतदार लकड़ीमें सुधार

परतदार लकड़ीके उद्योगकी जाँचपड़ताल अनुसंधान-शालाकी उपयोगशाखाके विशेष कार्योंमेंसे एक कार्य था। खोज करते हुए यह ज्ञात हुआ है कि युद्धसे पहले चाय के डिब्बे विदेशोंसे आते थे किन्तु अब विदेशी डिब्बे उपलब्ध नहीं हैं। संतोषजनक परीक्षाएँ कर लेनेके बाद भारतीय चाय व्यवसायियोंको आश्वासन दिया गया कि अब चायकेअच्छे डिब्बे भारतमें ही बनाये जा सकते हैं। शाखा ने आर्डनेन्स ब्रांच (गोला बारूद शाखा) के मास्टर जनरलके अफसरके सहयोगसे परतदार लकड़ीकी किस्मका विवरण तैयार किया। यदि यह स्वीकृत हो गया तो सम्राटके सैन्यदलों तथा नागरिकोंके उपयोग के लिये एक ही प्रकारकी परतदार लकड़ी तैयारकी जायगी। अनुसंधानशालाके दो विशेष अधिकारी परतदार लकड़ीके भारतके सब कारखानोंका दौरा कर रहे हैं और आशा की जाती है कि सभी कारखानोंमें परतदार लकड़ी में सुधार करनेके लिये एक योजना बनायी जायगी। इस शाखा ने आर्डनेन्स और मिलिटरी इंजीनियरिंग सर्विसके कर्मचारियोंको, भट्ठी पर काम करनेवालों और परतदार लकड़ी बनाने वाले कारीगरोंको, मिलिटरी इंजीनियरिंग स्कूलके विद्यार्थियोंको तथा साधारण नागरिक शिक्षार्थियों को शिक्षा देनेमें बहुत-सा समय लगाया।

व्यापारिक लकड़ोंके आदर्श नमूनोंकी प्राप्ति

अनुसंधानशालाके लकड़ी विज्ञान विभाग (वुड टेक्नोलोजी सेक्शन) ने इमारती लकड़ियोंके आदर्श नमूने प्राप्त करनेका काम जारी रखा। स्थलसेना, जलसेना, और वायुसेना ने इमारती लकड़ीके जो बहुतसे नमूने भेजे उनकी पहचानका काम भी आलोच्य वर्षमें किया गया। इन नमूनोंकी संख्या २,००० थी।

युद्ध छिड़नेके बादसे इस सेक्शन ने ११,००० नमूनों की जाँचकी है। युद्धसे पहले इसने जितने नमूनोंकी जाँच की थी उसकी अपेक्षा यह संख्या ५॥ गुनी अधिक है। आजकल यह सेक्शन एक सालमें उतने ही नमूनोंकी जाँच करता है जिनकी वह युद्धसे पहले साधारणतः पाँच सालमें करता था। टिम्बर टेस्टिंग सेक्शन ने अपने नियमित कार्य के रूपमें बहुतसे परीक्षण किये हैं, विशेषतः शाही वायुसेनाके लिये। ये परीक्षण वायुयानोंके पेचों और भारतीय लकड़ी के पंखोंके सम्बन्धमें थे। एक बहुत ही दिलचस्प परीक्षण 'लाल आबनूस' पर किया गया है और पता लगा है कि यह समस्त प्राकृतिक लकड़ियोंमें सबसे कड़ी लकड़ी है और 'लिग्नम वीटे' नामक लकड़ीके बदले अच्छा काम दे सकती है।

लकड़ी पकानेकी वैज्ञानिक विधि

आलोच्य अवधिमें लकड़ी पकाने वाले सेक्शनका मुख्य कार्य वैज्ञानिक विधिसे लकड़ी पकानेकी प्रक्रियाको लोकप्रिय बनाना रहा। इस सेक्शनके कार्यके परिणाम स्वरूप लकड़ी पकानेके कारखानोंकी संख्या बढ़ गयी है। १९३० में भारतमें ऐसे कारखानोंकी संख्या ८ थी जो युद्ध छिड़नेके समय तक १४ हो गयी थी और अब बढ़ कर ३३ हो गयी है। वृद्धिका यह क्रम शीघ्रतापूर्वक जारी है। सेक्शन ने सूती मिलोंके लिये ढरकी, अटेरन आदिके सम्बन्धमें भी अपना काम जारी रक्खा। परीक्षणोंसे ज्ञात हुआ है कि ढरकियोंके लिये आबनूस लकड़ीके हलके रंग के बाहरी परत सबसे अच्छे होते हैं।

लकड़ी संरक्षण सेक्शन ने भी एक दिलचस्प आविष्कार किया है। उसने पता लगाया है कि नारियलके खोल से निकलने वाली रालमें फैनोल या कार्बोलिक तत्त्व

प्रचुर परिमाणमें होते हैं जिनसे वैज्ञानिक राल तैयारकी जा सकती है। इस सेक्शन ने केसीन, वैज्ञानिक रालों और परतदार लकड़ियोंके सम्बन्धमें भी प्रयोग किये।

नक्शोंके लिए कागज

कागज लुगदी सेक्शन ने ६२ टन कागज बनाया है। युद्धकी दृष्टिसे सबसे दिलचस्प समस्या यह थी कि नक्शों के लिए ऐसा कागज किस प्रकार तैयार किया जाय जो गीले कपड़ों और गीली जमीनके संसर्गसे खराब न हो और जिस पर गिरने वाले खून, पानी और कीचड़ को पोंछ कर साफ किया जा सके और नक्शा भी खराब न हो। इसके लिये रालसे बनाये गये, मोमके प्रयोगसे तैयार किये गये कड़े कागजका प्रयोग किया गया और यह समस्या हल हो गयी।

विदेशों से आने वाली कुछ औषधियोंके विकल्पके लिये प्रयोग किये गये और होलरहेना एंटी डाइसेंटरिका से प्राप्त होने वाली औषधिको प्रामाणिक बनानेके प्रयत्न किये गये। यह औषधि अमीबा अतिसारकी चिकित्साके लिये व्यापक रूपसे प्रयुक्त होती है। यह भी मालूम किया गया है कि अमरीकी या मेंथलहीन जापानी पिपरमिंट तेलकी जगह मेंथापिपरीटाका तेल प्रयुक्त हो सकता है। मेंथापिपरीटा देहरादूनमें अपने आप उगता है और इसकी खेती भी की जाती है। वैज्ञानिक कपूर बनाने के लिये भी उपयोगी कार्य पूरा किया जा चुका है। रेंडी के तेलसे तैयार किये गये रबड़के घोलसे रबड़के पहननेके गुणोंमें वृद्धि हुई है।

अन्वेषणोंके परिणामस्वरूप इमलीके बीज बहुत उपयोगी प्रमाणित हुये हैं। इसकी गिरीसे एक ऐसा पदार्थ प्राप्त हुआ है जिससे कपड़े पर माँड़ी लगायी जाती है और रबड़में पीलापन पैदा किया जाता है। इमलीके बीजों पर जो प्रयोग किये गये हैं उनसे पता लगा है कि इनमें १० से १२ प्रतिशत तक लाल रंग होता है और २३ से २५ प्रतिशत तक टैनिन जो बहुत मोटे चमड़े पर रंग चढ़ानेके काम आ सकता है।

समालोचना

भाई-बहिन—मासिक पत्रिका, जनवरी १९४६, संपादक श्री रतनलाल जोशी, प्रकाशक मनोरंजन प्रेस, जयपुर सिटी, वार्षिक मूल्य ५)।

जनवरी १९४६ से इस मासिक पत्रिका ने हिन्दी साहित्यमें पदार्पण किया है। हम इसका स्वागत करते हैं।

बच्चोंके पढ़ने योग्य यह छोटी-सी मासिक पत्रिका बहुत सुन्दर है। इसकी छपाई अच्छी है और रंगीन स्याहियोंका प्रयोग और रंगीन चित्र बच्चोंके मनको आकर्षित करनेके लिये बहुत उपयुक्त हैं। इसके लेख और कवितायें भी बच्चोंके समझने योग्य हैं। हम आशा करते हैं कि भविष्यमें भी यह बराबर इसी सजधजके साथ निकलती रहेगी और हमारे बाल-साहित्यकी पूर्तिमें सहायक होगी।

रानी टंडन एम० एड०

विषय सूची

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञान

विज्ञान-परिषद्, प्रयागका मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ।। तै० उ० ।३।५।

भाग ६३ | मेष, सम्वत् २००३, अप्रैल १९४६ | संख्या १

स्पलैनज़ानी अणुजीव-खोजक

[ले०—श्री० डा० सन्तप्रसाद टंडन, डी० फिल०]

ल्यूवेनहुककी मृत्युसे रॉयल सोसाइटीके सदस्यों तथा अन्य वैज्ञानिकोंको बहुत शोक हुआ । उन लोगोंकी दृष्टिमें ल्यूवेनहुक इतनी उच्च कोटिका वैज्ञानिक था कि उसके स्थानकी पूर्ति होना सहज नहीं था । ल्यूवेनहुककी मृत्युके कुछ ही दिनों पश्चात् सन् १७२९ में, इटलीके उत्तरी भाग-के स्कैण्डियानो (Scandiano) नामक स्थानमें एक दूसरा विद्वान् अणुजीव-खोजक उत्पन्न हुआ । इसका नाम लेज़ारो स्पलैनज़ानी (Lazzaro Spallanzani) था ।

इसका स्वभाव बचपनसे ही विचित्र था । वह आरम्भ-से ही कीड़ों-मकोड़ों पर तरह-तरहके प्रयोग किया करता था । घरमें बैठकर अपने माता-पितासे परियों आदिकी कहानियाँ सुननेके बजाय उसे चारों ओर घूम कर सृष्टिके जीवित प्राणियोंका अध्ययन करनेमें अधिक आनन्द प्राप्त होता था । वह कीड़ों-मकोड़ोंके पैरों और पंखोंको निकाल कर यह देखनेका प्रयत्न किया करता था कि यह सब अंग किस प्रकार कार्य किया करते हैं । उसकी बचपन-की इन मनोवृत्तियोंसे यह स्पष्ट पता लगता है कि उसे प्रारम्भसे ही जीव-जगतके संबंधमें जानकारी प्राप्त करनेकी रुचि थी ।

ल्यूवेनहुककी भाँति स्पलैनज़ानी भी अपने माता-पिता-की इच्छाके विरुद्ध अपने खोजके कार्यको करता रहा । उसके पिता वकील थे और उन्होंने बड़ा प्रयत्न किया कि स्पलैन-ज़ानी भी उसी व्यवसायमें लगे, किन्तु स्पलैनज़ानीका मन कानूनी पुस्तकोंके पढ़नेमें नहीं लगता था । संध्या समय वह ज़बरदस्ती पुस्तक पढ़नेके लिये बैठाया जाता था । किन्तु जैसे ही उसका पिता वहाँसे हटता था वह पढ़ना बन्द कर अपनी खिड़कीके बाहर सिर निकाल कर आकाश-के तारोंका निरीक्षण करने लगता था और दूसरे दिन अपने साथियोंको इस विषयके अपने अनुभव बतलाता था । छुट्टी-के दिन वह जंगलकी ओर निकल जाता था और किसी सोतेके किनारे पहुँच कर वह घंटों उसका निरीक्षण किया करता था और घर आने पर भी यही सोचा करता था कि यह सोते कैसे उत्पन्न होते हैं । लोगोंसे उसने यह सुन रखा था कि यह सोते पुराने समयमें उन सुन्दर कन्याओं के आँसुओंसे उत्पन्न हुए थे जो जंगलोंमें खो गई थीं । स्पलैनज़ानी अपने पिताका आज्ञाकारी पुत्र था । वह इन किम्वदन्तियोंके विरुद्ध अपने पिता तथा अन्य घरके बड़ोंसे बहस नहीं करता था, किन्तु वह अपने मनमें ऐसा अवश्य समझता था कि यह सब किम्वदन्तियाँ झूठ हैं । और उसका यह विश्वास था कि वह एक दिन यह अवश्य पता लगा सकेगा कि यह सोते कहाँसे और कैसे पैदा होते हैं ।

स्पलैनज़ानीकी यद्यपि पूरी रुचि विज्ञानकी ओर थी, फिर भी वह अपने पितासे यह कहनेमें हिचकता था कि उसकी कानूनमें रुचि नहीं है और वह उसका अध्ययन

नहीं करेगा। अतः वह ऊपरी मनसे कानूनका अध्ययन तो करता रहा किन्तु साथ ही वह अपने अवकाशमें वैज्ञानिक विषयोंका भी अध्ययन तथा प्रकृति-निरीक्षणका कार्य भी करता रहा। एक दिन वह प्रसिद्ध वैज्ञानिक 'वैलिस नियरी' (Vallis Nieri) के पास गया और उसको बतलाया कि उसने विज्ञानका क्या-क्या अध्ययन किया था। वैलिस नियरीने उसे सलाह दी कि उसे कानूनी पुस्तकों पर अपना समय नष्ट नहीं करना चाहिए किन्तु विज्ञानकी ओर आना चाहिए। स्पलैनज़ानीने उससे बतलाया कि उसका पिता जबरदस्ती उसे कानूनकी ओर लगाना चाहता है। इस पर वैलिस नियरीने स्पलैनज़ानीके पिताके पास जाकर उसे समझाया कि वह अपने पुत्रकी प्रतिभाको कानूनकी पुस्तकों पर व्यर्थमें नष्ट करवा रहा है। उसने उसके पिता से यह भी कहा कि स्पलैनज़ानी एक प्रसिद्ध आविष्कारक होगा और गैलीलियोकी भांति विज्ञान-जगतमें उसका एक उच्च स्थान होगा। वैलिस नियरीके समझानेसे उसके पिता पर प्रभाव पड़ा और उसने स्पलैनज़ानीका कानूनका अध्ययन बन्द करवा कर उसे विज्ञानका अध्ययन करनेके लिए 'रेजियो' (Reggio) के विश्व-विद्यालयमें भर्ती करा दिया।

इन दिनों विज्ञानके प्रति लोगोंके मनमें घृणाका वह भाव नहीं था जो ल्यूवेनहुक और गैलीलियोके समयमें था। प्रत्येक देशमें वैज्ञानिक संस्थायें खुल चुकी थीं और उनके द्वारा विज्ञानका प्रचार हो रहा था। कुछ देशोंमें तो कुछ संस्थायें गवर्नमेंटकी संरक्षतामें ही खोली गई थीं। अब अन्धविश्वासोंके प्रति आवाज उठाना कोई अपराध नहीं था। दार्शनिकों तथा तत्त्व-वेत्ताओंको भी विज्ञानके आविष्कारमें आनन्द आने लगा था। इन दिनों विज्ञानकी प्रत्येक दिशामें लोग इतनी रुचि लेने लगे थे कि उनको अब प्रकट रूपसे अपने धर्म तथा अपने देशके प्रचलित पुराने विचारोंके विरुद्ध आवाज़ उठानेमें कोई हिचक नहीं होती थी। लेकिन इससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि लोगोंमें इस समय कोई अन्धविश्वास रह ही नहीं गया था। अब भी बहुत से दोषपूर्ण सिद्धान्त मान्य थे। यहाँ तक कि रॉयल सोसाइटीके सदस्य भी कुछ ऐसे सिद्धान्तों पर विश्वास रखते थे। ऐसे ही समयमें स्पलैनज़ानीने विज्ञानके क्षेत्रमें पदार्पण किया। वह विज्ञानकी प्रत्येक बात स्वयं प्रयोगों द्वारा देखने और समझनेका प्रयत्न करता था। वह किसी भी सिद्धान्तको चाहे वह कितने ही बड़े आदमी द्वारा मालूम किया गया हो तब तक नहीं मानता था जब तक कि स्वयं उसकी सत्यताकी परीक्षा नहीं कर लेता था।

ल्यूवेनहुककी भाँति स्पलैनज़ानी चुपचाप बिना किसीको बतलाये काम करने वाला आदमी नहीं था। २५ वर्षकी अवस्थामें उसने पुराने कवियोंकी पुस्तकोंका अनुवाद किया और इटली भाषामें अनुवादित होमर (Homer) के ग्रन्थोंकी कड़ी समालोचना की। उसने अपनी चचेरी बहिन लारा बेसी (Lara Bessi) के साथ जो रेजियोमें गणितकी प्रोफेसर थी, गणितका अध्ययन किया। इन्हीं दिनों उसने पानीमें पत्थर फेंक कर उसके उछलनेकी क्रियाका वैज्ञानिक निरीक्षण किया और इस संबंधमें एक लेख लिखा। अपना अध्ययन समाप्त करनेके पश्चात् वह पादरीके पद पर नियुक्त हुआ। यद्यपि उसका धर्म पर कोई विश्वास नहीं था, फिर भी उसने यह पद इसलिये स्वीकार किया था कि जिससे इसकी ओटमें वह कुछ स्वतंत्रतापूर्वक प्रचलित अंध-विश्वासोंकी समालोचना कर सके। उसने अपने ऊँचे अधिकारियोंको भी सदा प्रसन्न रखा जिससे उसकी समालोचनाओंके कारण वे लोग उसके विरुद्ध न हो जायें। ३० वर्षकी अवस्थामें वह प्रोफेसर नियुक्त हुआ। यहीं उसने अणुजीवों पर कार्य करनेका श्रीगणेश किया।

क्या जीवित पदार्थ बिना बीजके स्वयं उत्पन्न होता है?

अणुजीवोंके संबंधमें उन दिनों एक विवादास्पद प्रश्न खड़ा हो गया था जिसके कारण वैज्ञानिकोंका इस ओर विशेष झुकाव था। वह प्रश्न यह था "क्या, जीवित पदार्थ बिना माता-पिताके अचानक उत्पन्न हो सकता है?" "क्या अब भी ईश्वर नये जीवित पदार्थोंको बिना उनके माता-पिताके उत्पन्न कर देता है?" यह प्रश्न बहुत दिनों तक विवादास्पद रहा और इसीके कारण अणुजीवों पर बहुत खोज हुई। यदि यह प्रश्न सामने न आया होता तो संभव है कि अणुजीवोंका महत्त्व बहुत दिनों तक प्रकट न हो पाता।

इस समय इस प्रश्नके सम्बन्धमें दो मत थे। एक मत यह मानता था कि जीवन बिना किसी अन्य जीवित पदार्थकी सहायताके आपसे आप स्वतंत्र रूपसे उत्पन्न हो सकता है। दूसरा मत यह था कि कोई भी जीवित पदार्थ बिना किसी जीवित पदार्थके आधारके कभी नहीं उत्पन्न हो सकता। पहले मतके मानने वाले उस समय अधिक लोग थे। उनका यह विश्वास था कि अणुजीव स्वयं ही उत्पन्न होते हैं; उनके कोई माता-पिता नहीं होते। अपने मतकी पुष्टिके लिए वे यह उदाहरण दिया करते थे कि यदि एक मरे हुए बैलको ज़मीनमें इस प्रकार गाड दिया जाय कि उसकी सींग बाहर निकली रहें और फिर कुछ समय पश्चात् उसकी सींग उखाड़ी जायें तो यह स्पष्ट दिखलाई देगा कि सींगके उखड़नेके स्थानसे बहुत सी मक्खियाँ उड़कर निकल रही हैं। उनके मतके अनुसार ये मक्खियाँ आपसे आप स्वतंत्र रूपसे बिना माता-पिताके ही उत्पन्न होती हैं।

यह विश्वास केवल साधारण लोगों तक ही सीमित नहीं था, वरन् उन दिनोंके वैज्ञानिक भी यही विश्वास करते थे। छोटे जीवोंके अतिरिक्त कुछ बड़े जीवोंके सम्बन्ध-में भी यही धारणा थी कि वे भी बिना किसी माता-पिताके ही उत्पन्न होते हैं। चूहोंके लिये भी यही समझा जाता था और इस मतके समर्थनमें यह उदाहरण दिया जाता था कि नील नदीकी कीचड़में असंख्य चूहे आपसे आप बिना माता-पिताके उत्पन्न होते हैं।

स्पलैनज़ानीने यह सब किस्से सुन रक्खे थे। उसका इस मतमें बिलकुल विश्वास नहीं था कि जीव बिना माता-पिताके भी उत्पन्न हो सकते हैं। यद्यपि उसके पास उस समय इस मतको दोषपूर्ण सिद्ध करनेके लिये कोई प्रमाण नहीं था फिर भी स्वभावतः उसके मनमें यह बात बैठ गई थी कि यह मत ग़लत है और इसका आधार अन्ध-विश्वास है। उसका विश्वास था कि प्रत्येक जीव माता-पितासे किसी नियमके अनुसार ही उत्पन्न होता होगा। वह अपने मतको सत्य सिद्ध करनेके लिये सदैव प्रमाण व साधन मालूम करनेके लिये चिन्ता किया करता था। एक दिन रातमें वह एक पुस्तक पढ़ रहा था जिससे उसे एक सरल उपाय मालूम हुआ जिसके द्वारा यह देखा जा सकता था कि जीव कैसे पैदा होते हैं। इस पुस्तकमें लेखकने प्रयोग द्वारा यह बतलाया था कि मक्खीके अंडे-बच्चे कैसे पैदा होते हैं। उस समय तक लोगोंमें यह विश्वास था कि मक्खी के अंडे-बच्चे मांसके सड़नेसे उसमें आप से आप उत्पन्न हो जाते हैं। इसी बातको उस पुस्तकमें निराधार सिद्ध करनेका प्रयत्न किया गया था और यह दिखलाया गया था कि नये अंडे-बच्चे मक्खियों द्वारा ही उत्पन्न होते हैं—आपसे आप नहीं। यह पुस्तक रेडी (Redi) की लिखी हुई थी। पुस्तकमें मक्खीके अंडों-बच्चोंकी उत्पत्तिके सम्बन्ध-में निम्न प्रयोग दिया था :—

शीशेके दो बर्तनोंमें (Jars) थोड़ा मांस लिया गया। एक बर्तनको खुला रक्खा गया और दूसरेको महीन कपड़ेसे ढक दिया गया। यह देखा गया कि खुले बर्तनमें मक्खियाँ जा-जाकर मांस पर बैठती रहीं और थोड़े समयमें उसमें अंडे-बच्चे उत्पन्न हो गये। जो बर्तन महीन कपड़ेसे ढका था उसमें मक्खियाँ नहीं जा सकीं और इस कारण नई मक्खियाँ भी उसमें उत्पन्न नहीं हुईं। इस प्रयोगसे रेडीने यह बतलाया कि जब मांस पर मक्खियाँ बैठती हैं तब वहीं अंडे देती हैं जिनसे नई मक्खियाँ उत्पन्न होती हैं। अतः यह सिद्ध हुआ कि नई मक्खियाँ आपसे आप नहीं पैदा होतीं, इनको पुरानी मक्खियाँ, जो इनके माता-पिता हैं—उत्पन्न करती हैं।

स्पलैनज़ानीको यह पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने कहा कि जिस बातको लोग इतने दिनों तक सिद्ध नहीं कर सके थे उसे कितनी सरल विधिसे रेडीने सिद्ध कर दिया है।

यद्यपि इस बातको लोगोंने मान लिया था कि मक्खियाँ अंडे देती हैं और इन्हींसे नई मक्खियाँ उत्पन्न होती हैं, किन्तु अणुजीवोंके बारेमें अब भी यही विश्वास था कि वे बिना माता-पिताके उत्पन्न होते हैं। स्पलैनज़ानी-ने दूसरे ही दिनसे इस बातका प्रयत्न शुरू किया कि वह अणुजीवोंके बारेमें उसी प्रकारका प्रयोग करे जैसा कि रेडीने मक्खियोंके साथ किया था।

स्पलैनज़ानीने अणुवीक्षण यन्त्रका प्रयोग करना सीखा और अणुजीवोंको उत्पन्न करनेका प्रयत्न किया।

इसी बीचमें इंगलैंडमें नीडहम (Needham) नामक एक पादरीने यह बतलाया कि उसके प्रयोगोंसे यह सिद्ध

होता है कि अणुजीव आपसे आप बिना किसी माता-पिताके उत्पन्न होते हैं। अपने प्रयोग उसने रॉयल सोसाइटीको लिख भेजे। रॉयल सोसाइटीके सदस्य नीडहमके प्रयोगोंसे बहुत प्रभावित हुये।

नीडहमने अपने प्रयोगमें बकरेके मांसके गर्म रसको एक बोतलमें भरकर काग द्वारा खूब कस कर बन्द कर दिया जिसमें कोई जीव उसमें घुस न सके और हवासे उड़कर किसी जीवके अंडे बोतलमें न जा सकें। इसके बाद बोतलको पुनः गर्म राखमें रखकर उसने गर्म किया। नीडहमने बतलाया कि इतना गर्म करनेके बाद बोतलके अन्दर कोई भी अणुजीव या अंडा जीवित न रह सका होगा। इसके बाद उसने कई दिनों तक बोतलको एक स्थानमें पड़ी रहने दिया। बादमें बोतल खोल कर अन्दरके रसकी परीक्षा अणुवीक्षण यन्त्रमें की। उसे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि बहुत से अणुजीव उसमें तैर रहे थे।

नीडहमने रॉयल सोसाइटीको लिखा कि ये अणुजीव केवल रससे ही आपसे आप उत्पन्न हुये होंगे। रॉयल सोसाइटीके सदस्य नीडहमके इस मतके विरोधमें कुछ नहीं कह सकते थे और सब ही यह समझने लगे कि सम्भवतः नीडहमकी बात ही सत्य है। किन्तु स्पलैनज़ानीको नीडहमके प्रयोगमें विश्वास नहीं हुआ। उसने कहा कि यह अणुजीव बिना अन्य अणुजीवोंके, जो उनके माता-पिता हो, नहीं उत्पन्न हो सकते। स्पलैनज़ानीने अपने मतको सिद्ध करनेके लिये अधिक लगनसे प्रयत्न करना शुरू किया।

इस विषय पर चिन्तन करते हुए एक दिन उसके मनमें अचानक एक विचार उठा, जिससे उसने अनुभव किया कि नीडहमके प्रयोगकी त्रुटि का पता उसे अनायास ही लग गया है। उसने सोचा कि नीडहमकी बोतलमें अणुजीवोंके उत्पन्न होनेका कारण यह हो सकता है कि उसने बोतलको काफी देर तक गर्म न किया हो तथा ठीकसे बन्द भी न किया हो। अपने विचारकी सत्यता मालूम करनेके लिये तुरन्त प्रयोगशालामें जाकर उसने प्रयोग किये। अपने प्रयोगके लिये उसने पतली गर्दन वाले कुछ बड़े फ्लास्क लिये। इन्हें खूब साफ़ किया। कुछ फ्लास्कोंमें विभिन्न प्रकारके बीज डाले तथा कुछमें मटर और बादामके। प्रत्येकमें थोड़ा पानी भी डाला। इन्हें उसने कागसे बन्द नहीं किया क्योंकि उसको डर था कि कहीं ऐसा न हो कि कागके छिद्रों द्वारा अणुजीव भीतर चले जायें। सब फ्लास्कोंके मुखोंको आग पर गर्म करके उसने शीशेको गलाकर बन्द कर दिया। इसके बाद उसने इन सब फ्लास्कोंको उबलते हुए पानीमें रखकर गर्म किया। कुछ फ्लास्कोंको उसने केवल कुछ मिनट ही गर्म किया और कुछ को कई घंटे। इनके अलावा उसने कुछ अन्य फ्लास्कोंमें सब चीज़ें पहलेकी भाँति रखकर उनका मुख कागसे बन्द किया और उन्हें पानीमें गर्म किया। गर्म करनेके बाद उसने सब फ्लास्कोंको कई दिनों तक एक जगह रखा रहने दिया।

कई दिनोंके बाद उसने इन फ्लास्कोंके पानीकी परीक्षा की। सबसे पहले उसने उन फ्लास्कोंको लिया जिनके मुख काँच गलाकर बन्द किये गये थे। जो फ्लास्क एक घंटे तक उबलते पानीमें गर्म किये गये थे उनके जलमें उसे कोई अणुजीव दिखलाई न दिया। जो फ्लास्क केवल कुछ मिनट ही गर्म किये गये थे उनके जलमें कुछ अणुजीव इधर-उधर तैरते हुए दिखलाई दिये। उसने सोचा कि चूंकि फ्लास्कके मुँह काँच गलाकर बन्द किये गये थे अतः उनमें बाहरसे कोई भी अणुजीव अन्दर नहीं पहुँच सकता था। इस कारण ये अणुजीव वे होंगे जो गर्म करने पर भी नहीं मरे थे और फ्लास्कके अन्दर आरम्भ से ही थे। इस प्रकार उसने यह मालूम किया कि कुछ अणुजीव ऐसे भी हैं जो उबलते हुए पानीमें कुछ मिनट तक जीवित रह सकते हैं।

इसके बाद उसने उन फ्लास्कोंको लिया जिनके मुख काग द्वारा बन्द किये गये थे। प्रत्येक फ्लास्कके पानीकी उसने अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा परीक्षा की। हर एकके जलमें अणुजीव एक बड़ी संख्यामें विद्यमान थे। काग द्वारा बन्द किये गये फ्लास्कोंमेंसे वे फ्लास्क भी जो एक घंटे तक उबलते पानीमें रखकर गर्म किये गये थे, अणुजीव-रहित नहीं थे। इनमें भी अणुजीव हज़ारोंकी संख्यामें मौजूद थे। इससे यह स्पष्ट था कि इन फ्लास्कोंमें अणुजीव बाहर से कागके मार्ग द्वारा पहुँचे थे।

स्पलैनज़ानीके लिये यह दिन बड़े महत्त्वका था। उसने अपने प्रयोगोंसे यह सिद्ध कर दिया कि नीडहमका सिद्धान्त कि अणुजीव स्वयमेव बिना अन्य जीवके उत्पन्न होते हैं ग़लत

है। स्पलैनज़ानीने यह सिद्ध किया कि प्रत्येक जीवका कोई जनक जीव होता है। उसने बतलाया कि यदि एक फ्लास्क-के मांसका रस भरकर उसके मुखको काँच गलाकर बन्द कर दिया जाय और फिर इस फ्लास्कको काफी देर तक उबलते हुए पानीमें गर्म किया जाय जिससे सारे जीव मर जायें तो इसे अनन्त काल तक रखने पर भी इसमें कोई जीव उत्पन्न नहीं होगा। अपने प्रयोगोंके परिणाम देते हुये उसने एक लेख छपवाया जिसमें उसने नीडहमके प्रयोगों तथा उनके परिणामोंको एकदम ग़लत सिद्ध किया। उसके लेखसे वैज्ञानिक जगतमें एक हलचल मच गई। लोग सोचने लगे कि क्या नीडहमका सिद्धान्त ग़लत था?

स्पलैनज़ानी और नीडहमके सिद्धान्तोंका परस्पर विरोध केवल वैज्ञानिक संस्थाओं तक ही सीमित नहीं रहा, सभी जगह पढ़े-लिखे लोगोंके बीच बड़ी चर्चा होने लगी। उन दिनों अधिकांश जनता नीडहमके सिद्धान्तको सत्य मानती थी, किन्तु स्पलैनज़ानीके प्रयोगोंकी सत्यतामें कोई भी त्रुटि दिखलाना असंभव था।

इस बीचमें नीडहम भी चुप नहीं बैठा था। उसने पेरिसमें जगह-जगह व्याख्यान द्वारा अपने सिद्धान्तका समर्थन किया। पेरिसके प्रसिद्ध काउन्ट बफ़्फन (Buffan) को अपना मित्र बना कर उसके द्वारा भी अपने मतके प्रचार-में सहायता ली। इन दोनोंने मिलकर "जीवन कैसे उत्पन्न होता है?" इस सम्बन्धमें एक नया सिद्धान्त रक्खा। बफ़्फनने लिखा कि मांसके रसमें आपसे आप जीव उत्पन्न होनेमें एक वानस्पतिक शक्ति (Vegetative Force) काम करती है। इस वानस्पतिक शक्ति द्वारा जीव उत्पन्न होते हैं। बफ़्फनके कारण इस मतका प्रचार बहुत काफी हुआ और उन दिनों प्रत्येकके मुखसे इसी वानस्पतिक शक्तिकी चर्चा सुनाई पड़ती थी।

रॉयल सोसाइटी पर भी नीडहमका प्रभाव बना रहा और वह इस सोसाइटीका सदस्य चुन लिया गया। पेरिस वैज्ञानिक ऐकेडमीने भी उसे अपना सदस्य बनाया। इन सब बातोंसे नीडहमका नाम बहुत बढ़ गया। नीडहमको इतना महत्त्व दिये जानेसे स्पलैनज़ानीको बहुत क्रोध आया। उसने कहा कि इससे विज्ञानकी बड़ी हानि है। प्रयोगके सत्यसे लोग जान-बूझकर आँख बन्द किये हुये हैं।

स्पलैनज़ानी अब यह सोचने लगा कि किस प्रकार वह अपने प्रयोगोंके सत्यको लोगोंको समझाये। नीडहम और बफ़्फन स्पलैनज़ानीके प्रयोगोंमें कोई भी त्रुटि नहीं निकाल सके थे। वे केवल शब्दोंका जाल रचकर लोगोंको भुलावेमें डाले हुए थे। नीडहमके वानस्पतिक शक्तिके सिद्धान्तको स्पलैनज़ानी निःस्सार समझता था। उसे यह स्पष्ट मालूम हो रहा था कि इस सिद्धान्तसे जीव-विज्ञानको हानि पहुँच रही थी।

एक अवसर पर नीडहमने स्पलैनज़ानीके एक प्रयोगके बारेमें कुछ सन्देह उपस्थित किया। नीडहमका कहना था कि जब फ्लास्क बहुत गर्म किया जाता है तब वानस्पतिक शक्ति नष्ट हो जाती है और इस कारण फ्लास्कमें अणुजीव उत्पन्न नहीं हो सकते। नीडहमको उत्तर देनेके लिये स्पलै-नज़ानीने दूसरा प्रयोग शुरू किया। उसने कई स्वच्छ फ्लास्क लिये और उनमें कई प्रकारके बीजोंके मिश्रणसे बनाया हुआ यूष (Soup) भरा। इन फ्लास्कोंको उसने (कुछ मिनटोंसे लेकर दो घंटे तक) विभिन्न समय तक गर्म किया। इसके बाद इनके मुखोंको काग द्वारा बन्द करके इन्हें कुछ दिनों तक एक ही स्थानमें रक्खा रहने दिया।

स्पलैनज़ानीने सोचा कि यदि नीडहमका विचार सत्य है तो उन फ्लास्कोंमें जो केवल कुछ मिनटों तक ही गर्म किये गये हैं अणुजीव रहेंगे, किन्तु जो एक या दो घंटे गर्म किये गये हैं अणुजीव नहीं रहेंगे। उसके प्रत्येक फ्लास्कके कार्कको हटाकर उसके रसकी अणुवीक्षण यंत्र द्वारा परीक्षा की। उसने देखा कि जो फ्लास्क केवल कुछ मिनट ही गर्म किये गये थे उनकी अपेक्षा उन फ्लास्कोंमें जो अधिक देर तक गर्म किये गये थे अणुजीव अधिक संख्यामें मौजूद थे। इस प्रयोगके आधार पर स्पलैनज़ानीने सिद्ध किया कि नीडहमकी 'वानस्पतिक शक्ति' केवल कल्पना-मात्र है; उसका कोई अस्तित्व नहीं। यूषको चाहे जितने समय तक गर्म किया जाये उसमेंसे वानस्पतिक-शक्ति या इसी प्रकारकी अन्य कोई शक्ति बाहर नहीं निकलती। यूशके ठंडा होते समय यदि वायुमें उपस्थित अणुजीवोंको इस

तक पहुँचनेका मार्ग मिल जायेगा तो अणुजीव अवश्य इसमें आकर एकत्र होंगे और पनपेंगे।

इस प्रकार स्पलैनज़ानीने अपने सिद्धान्तको सत्य सिद्ध किया। स्पलैनज़ानीके इन प्रयोगोंसे नीडहमके विचारोंकी असत्यता लोगों पर प्रकाशित हो गई। इसी बीचमें स्पलैनज़ानीके मनमें यह विचार उठा कि नीडहमकी धारणा कि 'वानस्पतिक-शक्ति' नामक एक शक्ति बीजोंमें रहती हो और बीजोंको गर्म करनेसे यह नष्ट हो जाती हो निर्णय करें। इसका निर्णय करनेके लिए उसने एक दूसरा प्रयोग किया। बीजोंको उसने आग पर खूब भूना। जब वे जल कर कोयला हो गये तब उन्हें चूर करके और उनमें स्रवित जल डालकर और हिलाकर उनके रसको छानकर कई फ्लास्कोंमें भर दिया और सबमें काग लगा दिया। कई दिनों बाद परीक्षा करने पर उसने देखा कि प्रत्येक फ्लास्कमें पुनः अणुजीव उत्पन्न हो गये थे। इस प्रयोगसे यह स्पष्ट हो गया कि नीडहम द्वारा बतलाई गई वानस्पतिक-शक्ति ऐसी कोई शक्ति नहीं है। स्पलैनज़ानीका यह सिद्धान्त कि बिना माता-पिताके जीव उत्पन्न नहीं होते अब सर्वमान्य हो गया। सारे योरपमें स्पलैनज़ानी अब प्रसिद्ध हो गया।

इसके बाद उसने क्रमसे 'भोजनकी पाचन-क्रिया' तथा 'जीव कैसे उत्पन्न होता है' इन प्रश्नों पर प्रकाश डालनेका प्रयत्न किया। जीव उत्पन्न होनेकी क्रियाको समझनेके लिये उसने छोटे तथा बड़े दोनों ही प्रकारके जीवों पर अपने प्रयोग किये। उसने मेढककी उत्पादन क्रियाका विशेष रूपसे निरीक्षण किया।

अपनी खोजके लिये उसने जन्तुओं पर बड़ी निर्दयतापूर्वक प्रयोग किये। स्वयं अपने ऊपर भी उसने कई कठोर प्रयोग किये। पाचन-क्रिया पर कार्य करते समय उसने स्वयं खोखले लकड़ीके टुकड़ोंको जिनके अन्दर मांस भरा था निगला। इसके बाद कृत्रिम उपाय द्वारा कै करा कर इन लकड़ीके टुकड़ोंको पुनः अपने पेटसे बाहर यह देखनेके लिये निकाला कि उनमें भरे हुए मांसका पेटमें क्या परिवर्तन हुआ।

योरपके सभी वैज्ञानिकोंसे पत्र द्वारा स्पलैनज़ानीका परिचय हो गया था। प्रसिद्ध वैज्ञानिक वॉल्टेयरसे (Voltaire) भी स्पलैनज़ानीकी बड़ी मित्रता हो गई थी। स्पलैनज़ानीके प्रयोगोंने वॉल्टेयर तथा अन्य सब प्रसिद्ध वैज्ञानिकोंको नीडहमकी वानस्पतिक-शक्तिका विरोधी बना दिया था। किन्तु नीडहमने पुनः अपने सिद्धान्तकी पुष्टिमें यह कहा कि वानस्पतिक शक्ति ऐसी एक शक्ति अवश्य है, किन्तु यह संभव है कि बहुत गर्म करने पर भी, जैसा कि स्पलैनज़ानीने किया था, यह शक्ति नष्ट न होती हो। वानस्पतिक-शक्तिके लिये सबसे आवश्यक वायुका लचीलापन (Elasticity) है। गर्म करनेसे हवाका लचीलापन नष्ट हो जाता है, इसी कारण उसमें अणुजीव उत्पन्न नहीं होते।

नीडहमके इस कथनके उत्तरमें स्पलैनज़ानीने पूछा कि क्या स्वयं नीडहमने यह प्रयोग द्वारा देखा है कि गर्म करनेसे हवा कम लचीली हो जाती है? नीडहमने इस प्रश्नका कोई उत्तर नहीं दिया। स्पलैनज़ानीने तब स्वयं ही इस कथनकी सत्यता मालूम करनेका निश्चय किया। कई फ्लास्कोंमें उसने बीज डाले। उसने इनके मुखोंको गर्म करके बन्द कर दिया। फिर इन्हें उसने एक घंटे तक उबलते पानी में गर्म किया और फिर कुछ दिनों तक एक जगह रखा रहने दिया। एक दिन जब उसने एक फ्लास्कका मुख तोड़कर खोला तो उसे हवाकी सरसराहटकी आवाज़ सुनाई दी। उसने कहा या तो फ्लास्कमें हवा जाती है या उसमेंसे बाहर निकलती है। एक आगकी लौ फ्लास्कके मुख पर लाने पर उसने देखा कि लौ फ्लास्कके अन्दर झुकती थी। इससे यह ज्ञात हुआ कि हवा फ्लास्कके अन्दर बाहरसे जाती है। उसने विचार किया कि इससे यह जान पड़ता है कि फ्लास्कके अन्दरकी हवा बाहरकी हवासे कम लचीली है और यह संभव हो सकता है कि नीडहमका कथन ही सत्य हो।

[शेष फिर]

सितारे वा दूर फ़ासलेके सूर्य्य

[श्री नत्थन लाल गुप्त]

अब तक हम ऐसे आकाशीय पिण्डोंका वर्णन करते रहे हैं जो हमारे सूर्य्यके साथ विशेष सम्बन्ध रखते हैं। ग्रह, उपग्रह, पुच्छल तारे और उल्कापिण्ड, यह सब सूर्य्यके आकर्षणकी रज्जुसे बँधे हुए उसके गिर्द भ्रमण करते हैं और उसीके प्रकाशसे चमकते हैं। किन्तु, अब हम उन आकाशीय पिंडोंकी कहानी सुनाना चाहते हैं जो हमारे सूर्य्यके अधिकारसे बाहर हैं और उनके साथ बराबरीका, वरन कुछ तो उनमेंसे उससे श्रेष्ठ होनेका, दावा रखते हैं। वह पिंड सितारे वा नक्षत्र कहलाते हैं।

इस पुस्तकके आरम्भमें हम सितारोंके सम्बन्धमें बहुत कुछ लिख चुके हैं। हम बता चुके हैं, कि सितारे अपनी चमक-दमकके विचारसे कई श्रेणियोंमें विभक्त हैं; और यह भी वर्णन कर चुके हैं, कि तमाम सितारे अलग-अलग झुण्डोंमें, जो तारामण्डल कहलाते हैं, बाँटे गये हैं और उन झुण्डोंके अलग-अलग नाम रक्खे गये हैं; तथा उनमेंसे कुछ बड़े-बड़े झुण्डों और कुछ प्रसिद्ध सितारोंकी रीति भी हम वहाँ बता चुके हैं। यहाँ हम सितारोंके सम्बन्धमें कुछ और मनोरंजक बातें वर्णन करना चाहते हैं।

जब आकाश स्वच्छ होता है तो लगभग ३००० सितारे एक समयमें खाली आँखसे देखे जा सकते हैं। किन्तु, एक समयमें केवल आधा आकाश ही देखा जा सकता है, इसलिये आकाश पर छः वा सात हजार सितारे ऐसे हैं, जो खाली आँखसे देखे जा सकते हैं। एक छोटी-सी दूर-बीनसे, जिसे ओपेरा ग्लास (Opera glass) कहते हैं, उनकी संख्या बीस गुना अधिक हो जाती है और तीन इंच व्यासके मुख्य ताल (Object glass) वाली दूरबीन-की सहायतासे उनकी संख्या एक सौ गुना बढ़ जाती है। किन्तु वेधशालाओंमें तो बहुत ही बड़ी-बड़ी दूरबीनें होती हैं, जैसे शिकागो (Chicago) विश्वविद्यालयमें एक ऐसी दूरबीन लगी हुई है जिसके मुख्य तालका व्यास ४०″ है। उस दूरबीनसे जब हम आकाशकी सैर करते हैं तो हमें लाखों नहीं वरन् करोड़ों सितारे दृष्टि आने लगते हैं। जौन हरशलने सितारोंके निरीक्षणके लिये जो दूरबीन बनाई थी उससे दस करोड़ सितारे देखे जा सकते थे; और लार्ड रौस (Lord Rosse) की दूरबीनसे तो उससे भी अधिक सितारे दृष्टि आ सकते हैं।

किन्तु मत समझो कि समस्त सितारे देखे और गिने जा चुके हैं। जब हम किसी बड़ी दूरबीनकी सहायतासे आकाशके किसी भागका फोटो लेते हैं, तो बहुतसे नये सितारे जो बड़ी-बड़ी दूरबीनोंमें भी दिखाई नहीं देते फोटोके प्लेट पर अपना धुँधला-सा निशान छोड़ जाते हैं, और वह प्लेट जितना अधिक शीघ्र प्रभाव ग्रहण करने वाला होता है, उतने ही अधिक निशान बनते हैं। इससे सिद्ध है कि अभी असंख्य तारे ऐसे हैं जो हमारी बड़ी-से-बड़ी दूरबीनोंसे भी नहीं देखे जा सकते।

सितारे देखनेमें प्रकाशके नन्हे-नन्हे विन्दुसे प्रतीत होते हैं। और जब हम उनको दूरबीनसे देखते हैं तब भी वह प्रकाशके विन्दुसे ही प्रतीत हुआ करते हैं। ग्रह भी खाली आँखसे तो सितारोंके समान प्रकाशके विन्दु ही प्रतीत होते हैं, पर दूरबीनमें उनका छोटा सा बिम्ब दृष्टि आने लगता है और इससे तत्काल पता लग जाता है कि वह सितारा नहीं, ग्रह है। सितारे बड़ी-से-बड़ी दूरबीनमें भी केवल विन्दु ही दिखलाई पड़ते हैं जिसका कारण उनकी अनन्त दूरी ही है, अन्यथा, वास्तवमें तो वे हमारे सूर्य्यके समान वरन् उससे भी बड़े-बड़े अग्नि-पिण्ड हैं।

सर विलियम हरशल (Sir William Herschel) ने पहले पहल सितारोंका नियमित रूपसे निरीक्षण आरम्भ किया था और उनके सम्बन्धमें बहुतसी नवीन और अद्भुत बातें खोज निकाली थीं जिससे उनकी प्रतिष्ठा सारे संसारमें फैल गई थी। इससे दूसरे ज्योतिषियोंमें भी सितारोंके निरीक्षणका उत्साह पैदा हो गया और बहुतसे नवयुवक ज्योतिषिके नये-नये यंत्रोंसे लैस होकर सितारोंके निरीक्षणमें तत्पर दिखाई देने लगे। सितारोंकी दूरी जाननेके लिये बहुतसे प्रयत्न किये गये किन्तु बहुत समय तक निराशाके सिवा और कुछ हाथ न आया। सं० १८३५ ई० में जर्मन ज्योतिषी स्ट्रूव (Struve) रोशन सितारा वेगा (Vega)

(अभिजित् नक्षत्र) का फासला मालूम करनेमें कृतकार्य हो गया। और १८४० ई० में बैसल (Bessel) नामी एक और जर्मन ज्योतिषीने ६१ राज हंस (61 Cygnus) नामके एक पांचवीं श्रेणीके धुँधले सितारेका अन्तर मालूम कर लिया और रायल अस्ट्रोनोमीकल सोसायटी (ज्योतिषिक राज्यसभा) ने बैसलको एक स्वर्ण पदक भेट किया। उसी समय स्कॉटलैंडके प्रसिद्ध ज्योतिषी थोमस हैन्डर सन* (Thomas Henderson) ने, जो उस समय आशा अन्तरीपकी वेधशालामें राज्य ज्योतिषीके पद पर नियुक्त था अल्फा सेन्टोरी (A Centouri) नामसे एक प्रकाशित तारेका, जो दक्षिणी गोलार्द्धमें है, फासला नाप डाला जो २५ बिलियन मीलके लगभग है। यह ऐसा फासला है जो सुगमतासे ध्यानमें नहीं लाया जा सकता। हमारे सौर साम्राज्यका व्यास ५००० मिलियन मील है। किन्तु २५ बिलियन मीलके सामने यह क्या है। हजार गुणा हजार (१०००×१०००) को मिलियन कहते हैं और मिलियनका बिलियन गुणा (१००००००×१००००००) बिलियन कहलाता है। अर्थात् एक पर बारह बिन्दु रखनेसे बिलियन बनता है। इस अन्तरको तुम यूं समझो कि एक मिलियन सेकण्ड ११½ दिनके बराबर होते है, किन्तु एक बिलियन सेकण्डोंके ३० हजार सालसे अधिक बनते हैं। पृथ्वी और सूर्य्यका मध्यान्तर ९३०००००० मील है किन्तु अल्फा सेन्टोरीका फासला इस फासले से २७५००० गुणा अधिक है। तो भी यह सबसे पासका सितारा है। इससे तुम अनुमान लगा सकते हो कि सितारोंके फासले कितने महान है।

आगे चलनेसे पहले हम यहाँ सितारोंका फासला नापनेकी रीति पर कुछ प्रकाश डालना चाहते हैं। पिछले अध्यायोंमें हम दिखला चुके हैं कि ग्रहों तथा सूर्य्यका फासला नापनेमें कितनी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है। तब सितारोंका फासला मालूम करना तो और भी कठिन कार्य होगा। किन्तु जो रीति हमने ग्रहोंका फासला नापनेकी बतलाई थी, वही रीति सितारोंका फासला नापनेमें भी काम आती है। भेद केवल इतना है कि ग्रह चूंकि निकट हैं, इसलिये उनका फासला नापनेके लिये छोटी सी आधार रेखा (Base line) से काम चल जाता है किन्तु सितारोंका फासला नापनेके लिये बहुत बड़ी आधार रेखाकी जरूरत पड़ती है। पृथ्वी पर बड़ी से बड़ी आधार रेखा पृथ्वीके व्यासके बराबर ली जा सकती है। किन्तु सितारोंकी दूरीके मुकाबलेमें पृथ्वीका व्यास एक बिन्दुसे अधिक महत्त्व नहीं रखता इसलिये जब हम किसी सितारेको पहले भू-व्यासके एक सिरेसे (अर्थात् जब वह उदय हो) और फिर दूसरे सिरेसे (अर्थात् जब वह अस्त होने लगे) देखते हैं तो दोनों अवस्थाओंमें उसकी स्थितिमें कुछ भी भेद प्रतीत नहीं होता। किन्तु हमारी पृथ्वी सूर्य्यके गिर्द एक ऐसे दीर्घ वृत्त पर भ्रमण करती है, जिसका मध्य व्यास १८६०००००० मील है। बस यदि इस फासलेको, जो कि भू-व्यास से २३½ हजार गुना बड़ा है, हम आधार रेखा बना लें तो उसके दोनों सिरोंसे देखनेसे कुछ सितारोंकी स्थितिमें कुछ थोड़ासा अन्तर प्रतीत होता है और उसी अन्तरके आधार पर हम उन सितारोंका फासला मालूम कर लेते हैं।

चित्र सं० १ में मान लो "सि" कोई सितारा "सू" सूर्य्य और "क ख ग घ" भू-कक्षा है। "क" "ग" का अन्तर १८६०००००० मीलके बराबर है। जब पृथ्वी "क" स्थान पर होगी तो सितारा आकाश तल पर "क सि" रेखाकी सीधमें "का" स्थान पर दृष्टि आयेगा और छः मास पीछे जब पृथ्वी "ग" स्थान पर पहुँच जायगी तो सितारा "ग सि" रेखाकी सीधमें "गा" स्थान पर दिखाई देगा। इस प्रकारसे उसकी स्थिति में "का सि गा" कोणके बराबर भेद पड़ जायेगा। यदि हम उस सितारेको सूर्य्यके केन्द्र परसे देख सकें तो वह हमें "सू सि" रेखाकी सीधमें "सु" बिन्दु पर दृष्टि पड़ेगा। और यही सितारेकी वास्तविक स्थिति समझी जाती है। "सु सि का" कोण, जो "गा सि का" कोणका आधा है, सितारेका वार्षिक लम्बन (Annual Parallax) कहलाता है।

यदि "सु सि का" कोण एक विकलाके बराबर हो तो

---

*हैन्डरसनने अल्फा सेन्टोरीका लम्बन ०″.९१३८७ मालूम किया था जो पीछे ०″.७५ नापा गया।

चूंकि १ विकला $\frac{1}{206265}$ रेडियन (Radian) के* बराबर होती है इसलिये सितारेका फासला "सू सि क" कोणके सामनेकी रेखा "सू क" से २०६२६५ गुणा होगा। "सू क" भू-कक्षाका अर्द्धव्यास है, इसलिये सितारा "सि" का फासला भू-कक्षाके अर्द्धव्यास (पृथ्वी और सूर्य्यके मध्यान्तर) से २०६२६५ गुणा अधिक होगा। अर्थात् किसी सितारेका फासला

$$= \frac{(\text{भू - कक्षा का अर्द्धव्यास}) \times २०६२६५}{\text{सितारेका वार्षिक लम्बन (विकलाओंमें)}}$$

अब तक केवल थोड़ेसे सितारोंका वार्षिक लम्बन नापा जा सका है और वह किसीका भी १″ से अधिक नहीं है। निकटतम सितारा अल्फा सेंटोरीका वार्षिक लम्बन ०·७५वि० है और उसका फासला २५ बिलियन मीलके लगभग है। अतः आकाश पर कोई भी सितारा ऐसा नहीं है, जिसका फासला २५ बिलियन मीलसे कम हो।

पृथ्वी और सूर्य्यके बीचमें जो अन्तर है, उसको ज्योतिर्विद फासलेकी इकाई मानते हैं। सितारोंका फासला प्रगट करनेके लिये यह इकाई कुछ अधिक उपयोगी प्रतीत नहीं होती, क्योंकि निकटतम सितारेका अन्तर ऐसी २७५००० इकाइयोंके बराबर है; अतः इस कामके लिये एक और इकाई तजवीज़की गई है जो इस इकाईसे लगभग ६३०० गुणा बड़ी है। हम पीछे वर्णन कर चुके हैं कि प्रकाश आकाशमें १८६००० मील प्रति सेकण्डके वेगसे गति करता है और १ वर्षमें लगभग ६० खर्व मील चलता है। एक वर्षमें प्रकाश जितना फासला तै करता है, उसको प्रकाशवर्ष (Light year) कहते हैं। और यही इकाई सितारोंकी दूरी प्रगट करनेके लिये उपयोगी ख्याल की जाती है। यदि किसी सितारेका वार्षिक लम्बन एक विकला (१″) हो, तो प्रकाश उस दूरीको ३·२६२ वर्षोंमें तै करता है। अतः प्रकाश वर्षोंमें किसी सितारेका फासला मालूम करनेका सूत्र निम्न प्रकार है: —

किसी सितारेका फासला प्रकाश वर्षोंमें

$$= \frac{३\cdot२६२}{\text{सितारे का वार्षिक लम्बन}}$$

सूर्य्यका प्रकाश सूर्य्यसे चलकर लगभग ८ मिनटमें हमारे पास पहुँच जाता है किन्तु, सबसे समीपके सितारे अल्फा सेन्टोरीसे प्रकाशको हम तक पहुँचनेमें चार वर्ष और चार मास (४·३५ वर्ष) लग जाते हैं। इसका तात्पर्य यह है, कि यदि किसी समय यह सितारा बुझ जाये, तो चार वर्ष और चार मास तक हमें इस घटना का कुछ भी ज्ञान न हो सकेगा; क्योंकि उसका प्रकाश बराबर हमारे पास आता रहेगा। ६१ राजहंसकी दूरी लगभग ५३ बिलियन मील है और इतनी दूरीको पार करनेमें प्रकाशको लगभग ७ वर्ष लग जाते हैं। लुब्धक (Sirius) जो आकाशमें अत्यन्त चमकीला सितारा है, हमसे ५८ बिलियन मीलकी दूरी पर है और उसके प्रकाशको हम तक पहुँचनेमें ८½ वर्ष (ठीक ८·५६ वर्ष) लगते हैं। अभिजित (Vega) से प्रकाश २० वर्षमें आता है; ब्रह्महृदय (Capella) से ३१½ वर्षोंमें और ध्रुव तारेसे ३६ वर्षोंमें। आकाशमें, ऐसे तारे भी हैं जिनका प्रकाश १०० वर्ष, ५०० वर्ष बल्कि हजारों वर्षोंमें हम तक पहुँचता है। ख्याल किया जाता है कि बहुतसे तारे ऐसे भी होंगे जिनका प्रकाश सृष्टिके आरम्भसे बराबर हमारी तरफ आ रहा है पर अभी तक हमरे पास नहीं पहुँच सका।

*किसी वृत्तके केन्द्रपर जो कोण उसकी त्रिज्याके समान परिधि खंडके सम्मुख बनता है उसे रेडियन कहते हैं। यह २०६२६५ विकलाके समान होता है।

इससे तुम्हारी समझमें आ गया होगा कि सितारे हमसे बहुत ही दूर हैं और सौर-साम्राज्यके हर तरफ़-ऊपर नीचे, दायें, बायें करोड़ो मील तक अन्धकारसे पूर्ण खाली आकाश ही फैला हुआ है। ऐसा होना आवश्यक भी है। क्योंकि यदि सितारे इतनी दूर-दूर न होते, तो उनके आकर्षणसे सौर साम्राज्यमें गड-बड पैदा हो जाती; और हमारे दिन रात तथा ऋतुओंके नियममें भी फ़र्क पड़ जाता, तथा उन सितारोंसे आने वाला प्रकाश और ताप हमारे लिये बवाले जान हो जाता और यह भी सम्भव था कि ग्रह आपसमें टकरा जाते और सौर-साम्राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो जाता।

प्रायः ऐसा समझा जाता है कि जो सितारे अधिक प्रकाशित हैं, वह हमारे अधिक निकट हैं और जो धुँधले हैं, वे अधिक दूर हैं। साधारणतया तो यह विचार ठीक ही समझा जाता है किन्तु मापनेसे ऐसा प्रतीत हुआ है कि यह नियम सब सितारों पर ठीक नहीं बैठता, क्योंकि लुब्धक (Sirius) आकाशमें इस श्रेणीका अत्यन्त चमकीला सितारा है पर जब उसकी दूरी नापी गई तो वह ६१ राजा हंस (Cygnus) से, जो पाँचवी श्रेणीका सितारा है, अधिक फासले पर पाया गया। इसी प्रकारसे स्वाती नक्षत्र (Arcturus) की जो कि एक बड़ा चमकीला सितारा है, दूरीकी जब ठीक-ठीक जाँच की गई तो वह इतने बड़े फासले पर पाया गया कि सितारेके प्रकाशको हम तक आनेमें लगभग २०० वर्ष लग जाते हैं। विचार तो करो कि वह सितारा कितना महान होगा जो इतने महान अन्तर पर होते हुए भी इतनी शानदार चमक दमक रखता है।

लुब्धक (Sirius) तारेकी बाबत हिसाब लगाया गया है कि यदि यह मान लिया जाय कि लुब्धक तारेका तल भी सूर्य्यके तलके समान ही प्रकाशित है तो उसका व्यास सूर्यके व्याससे १२ गुणा (ठीक १२·०६ गुणा) अधिक बड़ा होगा। चूंकि सूर्य्यका व्यास ८८२००० मील लम्बा है, इसलिये लुब्धकका व्यास १०६६३३८० मीलसे कम नहीं हो सकता इसी प्रकारसे स्वाती नक्षत्र (Arcturus) का व्यास ६२ मिलियन मील लम्बा अनुमान किया गया है। यदि हमारे सूर्य्यको उसके पास ले जाकर रख दिया जाय तो वह उसका एक नन्हा बच्चा सा प्रतीत होगा। कालपुरुष वा मृगशिरा (Orion) नामके तारा मण्डलमें रीजल (Regel) नामका एक सुन्दर चमकीला तारा है। सर डेविड गिल्ल (Sir David Gill) ने उसका अन्तर मालूम करनेका प्रयत्न किया, पर अकृतकार्य रहा। उर्गा (Auriga) नामके नक्षत्र-मण्डलमें ब्रह्महृदय (Capella) नामक एक बड़ा तारा है जिसका व्यास मिस्टर गोर (Mr. Gore) की सम्मतिके अनुसार लगभग १४ मिलियन मील है और घनफलमें वह हमारे चार सहस्र सूर्य्योंके बराबर है।

हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं कि बड़ी-से-बड़ी दूरबीनमें भी किसी सितारेका बिम्ब दृष्टि नहीं आता इसलिये ठीक अर्थोंमें तो हम किसी सितारेका व्यास नाप नहीं सकते और न घनफल मालूम कर सकते हैं। अस्तु, जब हम यह कहते हैं कि अमुक सितारा सूर्य्यसे इतने गुणा बड़ा है, तो उससे हमारा यह तात्पर्य होता है, कि यदि हमारे सूर्य्यको हमसे उतने ही अन्तर पर ले जाकर रख दिया जाय, जितनी दूरी पर वह सितारा है तो उस अवस्थामें उस सितारेकी चमक हमारे सूर्य्यकी चमकसे इतने गुणा अधिक होगी। अब ऐसा दो अवस्थाओंमें हो सकता है—एक तो यह कि उस सितारेका तल सूर्य्य तलकी अपेक्षा अधिक चमकीला हो; दूसरे जब कि वह सितारा वास्तवमें उतने ही गुणा बड़ा हो।

ऐसे यन्त्र बनाये गये हैं जिनके द्वारा हम आकाशीय पिण्डोंके प्रकाशोंकी ठीक-ठीक तुलना कर सकते हैं। वे यन्त्र फोटोमीटर (प्रकाशमापक) वा अस्ट्रोमीटर (सितारामापक) (Photometer या Astrometer) कहलाते हैं। यहाँ पर हम एक ऐसे यन्त्रका संक्षेपसे वर्णन करते हैं, जो प्रिकार्डका फाने वाला फोटोमीटर (Pritchard's wedge Photometer) कहलाता है। इसकी बनावट इस प्रकार है, कि दूरबीनके चक्षुताल (Eye piece) के साथ काले शीशेका एक फाना लगा हुआ होता है जो पाँच वा छः इंच लम्बा और कोई ¼ इंच मोटा होता है। दूरबीनका मुख सितारेके सामने करके फ़ानेको धीरे-धीरे आगेकी तरफ़ सरकाते जाते हैं, ज्यों-ज्यों फानेका मोटा भाग सितारेके सामने आता जाता है, सितारा धुँधला होता जाता है और अन्तमें बिलकुल दिखाई देनेसे रह जाता है। उस

समय यह मालूम कर लेते हैं कि फानेको कितना सरकाया गया है। इससे सितारेके प्रकाशकी ठीक-ठीक नाप हो जाती है।

ऐसे ही यन्त्रोंकी सहायतासे सर जान-हरशलने पता लगाया था कि पूर्ण चन्द्रमाके प्रकाश और प्रथम श्रेणीके सितारे अल्फा सेन्टोरीके प्रकाशमें २७४०८ और १ का अनुपात है; अर्थात् यदि २७४०८ ऐसे सितारे इकट्ठे किये जायें जिनका प्रकाश अल्फा सेन्टोरीके प्रकाशके समान हो तो उन सबका प्रकाश मिलकर पूर्ण चन्द्रमाके प्रकाशके बराबर होगा। डा० वॉल्स्टन (Cr. Wallaston) ने चाँद और सूर्य्यके प्रकाशोंका मुकाबला करके मालूम किया था कि सूर्य्यका प्रकाश पूर्ण चन्द्रमाके प्रकाशसे ८०१०७२ गुना अधिक है। जॉन हरशल और डा० वॉल्स्टनके निरीक्षणोंके परिमाणोंको इकट्ठा करनेसे मालूम होता है कि सूर्य्यका प्रकाश अल्फा सेल्टोरी के प्रकाशसे (२७४०८ × ८०१०७२) गुणा अधिक है, अर्थात् सूर्य्य, अल्फा सेन्टोरोकी अपेक्षा, लगभग २१६५६ मिलियन गुणा अधिक प्रकाश देता है।

प्रकाशकी मात्रा दूरीके वर्गके विलोममानानुसार होती है। अर्थात् यदि कोई प्रकाशित पिंड पहलेकी अपेक्षा दो गुनी दूरी पर चला जाय, तो उससे आने वाले प्रकाशकी मात्रा पहलेसे $\frac{१}{४}$, और यदि तिगुनी दूरी पर चला जाय, तो $\frac{१}{९}$ रह जायेगी। अब हिसाब लगाना चाहिये कि हमारे सूर्य्यको हमसे कितनी दूर हटाया जाय कि उसका प्रकाश अबकी अपेक्षा २१६५६ मिलियन गुणा कम रह जाय, अर्थात् सूर्य्य भी अल्फा सेन्टोरीके समान एक सितारा प्रतीत होने लगे। ऊपरके नियमके अनुसार हमें २१६५६ मिलियनका वर्गमूल मालूम करना चाहिये जो १४८१७५ है। अतः मालूम हो गया कि यदि सूर्य्य उपस्थित फासलेसे १४८१७५ गुणा अधिक फासले पर चला जाय तो उसका प्रकाश अल्फा सेन्टोरीके प्रकाशके बराबर रह जायेगा।

किन्तु, अल्फा सेन्टोरीका फासला पृथ्वी और सूर्य्यके मध्यान्तरसे २७५९२० गुणा अधिक है। अतः यदि सूर्य्य उपस्थित फासलेसे २७५९२० गुणा फासला पर चला जाय तो उसका प्रकाश अल्फा सेन्टोरीके प्रकाशके मुकाबलेमें $\frac{(१४८१७५)^2}{(२७५९२०)^2} = \frac{२२}{५१}$ रह जायेगा। अब यदि हम यह मान ले कि सूर्य्य और अल्फा सेन्टोरीके पृष्ठतलोंके समान क्षेत्रफलोसे समान प्रकाश निकलता है, तो हमें यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि अल्फा सेन्टोरीके पृष्ठतलका क्षेत्रफल हमारे सूर्य्यके पृष्ठतलके क्षेत्रफलसे $\frac{५१}{२२}$ वा २$\frac{१}{३}$ गुणा अधिक है और उसका व्यास सूर्य्यके व्याससे लगभग ड्योढ़ा है*।

सर जॉन हरशल (Sir J. Herschel) ने पता लगाया था कि लुब्धक तारे (Sirius) की चमक अल्फा सेन्टोरीकी चमक से चार गुणा अधिक है, और अल्फा सेन्टोरीका प्रकाश सूर्य्यके प्रकाशसे २१६५६ मिलियन गुणा कम है, इसलिये लुब्धकका प्रकाश सूर्य्यके प्रकाशसे $\frac{२१६५६}{४}$ = ५४८९ मिलियन गुणाका हुआ। लुब्धकका फासला सूर्य्यके फासलेसे ८९६०८७ गुणा अधिक है। अतः सूर्य्य यदि हमसे इतने ही फासले पर चला जाय जितने फासले पर लुब्धक है तो उसका प्रकाश अबकी अपेक्षा $(८९६०८७)^2$ गुणा वा ८०२९७२ मिलियन गुणा कम रह जायेगा; किन्तु मौजूदा अवस्थामें लुब्धकका प्रकाश सूर्य्यके प्रकाशसे केवल ५४८९ मिलियन गुणा कम है इसलिये यदि सूर्य्य इतनी दूर चला जाये जितनी दूर लुब्धक है तो लुब्धकका प्रकाश सूर्य्यके प्रकाशसे $\frac{८०२९७२}{५४८९}$ = १४६$\frac{१}{४}$ गुणा अधिक होगा। अब, यदि यह मान लें कि लुब्धकका पृष्ठतल सूर्य्यके सम पृष्ठतलसे अधिक प्रकाश नहीं निकालता, तो उसके पृष्ठतलका क्षेत्रफल सूर्य्यके पृष्ठतलके क्षेत्रफलसे १४६$\frac{१}{४}$ गुणा अधिक, और उसका व्यास सूर्य्यके व्याससे १२.०१ गुणा अधिक होगा*। (क्रमशः)

*Popular astronomy by D Lardner D. C. L.

साबुनका व्यवसाय

[ले०—डा० ओंकारनाथ परती, डी० फिल०]

प्रत्येक देशके रहन-सहनसे उस देशकी सभ्यताका कुछ अनुमान किया जा सकता है। मनुष्य अपने तन और कपड़ोंकी सफाईके लिये साबुनका प्रयोग करते हैं। साबुन-का आविष्कार कब और किसने किया यह ठीक रूपसे ज्ञात नहीं है। जहाँ तक ज्ञात होता है साबुनका सर्वप्रथम प्रयोग चौदहवीं या पन्द्रहवीं शताब्दीसे प्रारम्भ हुआ है। इससे पूर्व और बहुत-सी वस्तुएँ सफाईके लिये प्रयुक्त होती थीं। प्राचीन कालसे मिश्र, बैबीलोन और भारत वर्ष में जैतूनके तेलका प्रयोग शरीरकी सफाईके लिये बहुता-यतसे होता था। कपड़े साफ करनेके लिये रेह मिट्टीका प्रयोग भी अत्यन्त प्राचीन है। रेह मिट्टीमें क्षार (Alkali) होता है जिससे चिकनाईके दाग या धब्बे आसानीसे छूट जाते हैं। साबुन तेल और क्षारके मिश्रणसे बनता है। वह कौन-सा वैज्ञानिक था जिसने सर्वप्रथम तेल और क्षार के मिश्रणका प्रयोग किया, ज्ञात नहीं है। यहाँ एक बात विशेष महत्त्वकी है। पुरानी इंजील (Old Testament) में सोप (Soap) शब्द कई बार प्रयोगमें आया है, किन्तु वहाँ पर सोपके अर्थ आधुनिक रूपमें (अर्थात् साबुन) नहीं हैं। सोपसे अभिप्राय वनस्पति राखसे है जिसमें क्षार होता है।

साबुनके व्यवसायका श्रेय दो फ्रांसीसी रसायनज्ञोंको है, ली ब्लैंक (Lie Blanc) जिसने सर्वप्रथम बड़े परिमाण पर "सोडा" बनाना प्रारम्भ किया और शेवरूल (Chevreul) जिसने सर्वप्रथम यह दिखलाया कि साधारण तेल वसा-अम्ल (Fattyacids) और ग्लिस-रीनके रासायनिक मिश्रणसे बने हुए यौगिक हैं।

साबुनका रासायनिक रूप

यह पहले बताया जा चुका है कि तेल और क्षारके मिश्रणसे साबुन बनता है। तेल तीन प्रकारके होते हैं— (१) खनिज तेल (Mineral oil) जो पृथ्वीसे निकलते हैं, जैसे पेट्रोल, मिट्टीका तेल आदि, (२) उड़नशील तेल (Essential oil) जो रखने पर उड़ जाते हैं, जैसे लौंग, नींबू, चन्दन, खस इत्यादिके तेल; (३) स्थिर तेल (Fixed oil) जो रखने पर उड़ते नहीं हैं और साधारणतः दो प्रकारके पदार्थोंसे प्राप्त होते हैं, जानवरोंसे और वनस्पतियोंसे। साबुन बनानेमें केवल स्थिर तेलका प्रयोग होता है। जानवरोंसे प्राप्त स्थिर तेलों-को चर्बी भी कहते हैं। इस लेखमें तेल शब्दसे अभिप्राय स्थिर तेलसे है।

रासायनिक दृष्टि-कोणसे तेल या चर्बी (fat) में कोई अंतर नहीं है। अन्तर केवल भौतिक गुणका है और वह यह है कि साधारण तापक्रम पर चर्बी ठोस रूपमें तथा तेल द्रव रूपमें होते हैं। चर्बी या तेल वसा-अम्ल (Fatty acids) और ग्लिसरीनके आपसमें एस्टर (Ester) रूपमें मिलनेसे बने हैं। इन यौगिकोंको ग्लिसराइड (Glyceride) कहते हैं। वनस्पति तेलोंके ग्लिसराइडमें पाये जाने वाले मुख्य वसाअम्ल ये हैं— लारिक (Lauric), मिरिस्टिक (Myristic), पामिटिक (Palmitic), स्टीयरिक (Stearic), बहेनिक (Behenic), लिगनोसेरिक (Lignoceric), ओलीक (Oleic), लिनोलिक (Linoleic) और लिनोलेनिक (Linolenic)।

वसा अम्लोंके सोडियम (Sodium) अथवा पोटैसि-यम (Potassium) लवण (Salt) को साबुन कहते हैं। साबुन बनानेमें तेल अथवा वसा-अम्लोंके ग्लिसराइड-का उपयोग होता है। तेलमें कास्टिक सोडा (Caustic Soda) जिसका रासायनिक रूप NaOH है अथवा कास्टिक पोटाश (Caustic Potash) जिसका रासाय-निक रूप KOH है, मिलाकर साबुन बनाया जाता है। इस क्रियामें ग्लिसराइडसे ग्लिसरीन अलग हो जाती है और वसा अम्लोंका सोडियम अथवा पोटैसियम लवण (साबुन) बन जाता है। उदाहरणके लिये यदि हम ट्राइपामीटीन (Tripalmitin) नामक ग्लिसराइड लें तो रासायनिक क्रिया इस प्रकार होगी :

$$\begin{array}{l} CH_2.OOC.C_{15}H_{31} \\ | \\ CH.OOC.C_{15}H_{31} \\ | \\ CH_2.OOC.C_{15}H_{31} \end{array} + 3NaOH \rightarrow \begin{array}{l} CH_2OH \\ | \\ CH\ OH \\ | \\ CH_2OH \end{array} + 3Na.OOC.C_{15}H_{31}$$

ट्राइपामीटीन [ग्लिसराइड] + कास्टिक सोडा → ग्लिसरीन + साबुन
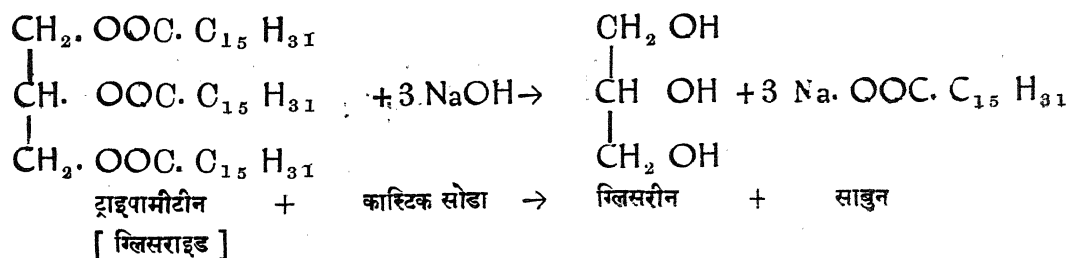
साबुन बनानेकी विधिमें सबसे प्रमुख रासायनिक क्रिया यही है।

साबुन बनानेके लिये आवश्यक वस्तुयें

साबुन बनानेके लिये आवश्यक वस्तुयें हैं तेल या चर्बी और क्षार। चर्बियोंमें मुख्य टैलो (Tallow), लार्ड (Lard), हड्डीकी चर्बी (Bone fat) और खालकी चर्बी (Skin grease) हैं और तेलोंमें मुख्य गरीका तेल, बिनौलेका तेल, मकईका तेल (Maize oil), चावलका तेल, सोयाबीनका तेल, जैतूनका तेल, अलसीका तेल (Lin seed oil) और रेंडीका तेल है। साबुन कई तरहके कामोंमें प्रयुक्त होता है। विशेष कामके लिये विशेष गुण वाले साबुनकी आवश्यकता होती है। इस सम्बन्धमें जिस तापक्रम पर तेल या चर्बीके वसा-अम्ल ठोस हो जायँ इसकी बड़ी महत्ता है। इसको "टाइटर" (Titre) कहते हैं। कड़े साबुनके लिये ४८-४६° श टाइटरके वसा-अम्ल समूह वाले तेल सबसे उपयोगी हैं। ऐसे साबुन अधिकतर हजामत करते समय बाल मुलायम करनेके लिये प्रयोगमें लाये जाते हैं। ४२-४५° श टाइटर-के वसा-अम्ल समूह वाले तेलोंसे सबसे अच्छे नहानेके साबुन (Toilet soap) तैयार किये जाते हैं। ४०-४२° श टाइटरके वसा-अम्ल समूह वाले तेलोंसे साधारण नहाने-के और कपड़ा धोनेके साबुन बनाये जाते हैं।

टैलो अथवा लार्डसे बनाये गये साबुन बहुत कड़े होते हैं। इसलिये इनमें और तेलोंकी उचित मिलावट करके साबुन बनाया जाता है। हड्डीकी चर्बी अधिकतर घरेलू काम और कपड़े धोनेके साबुन बनानेमें प्रयुक्त होती है। इसमें कभी-कभी कैलसियम फास्फेट [Calcium phosphate] अथवा अन्य कैलसियमके लवणोंकी मिला-वट होती है जिससे साबुन खराब हो जानेका डर रहता है। इस मिलावटको निकालनेके लिए चर्बीको पहले नमक के अम्ल और फिर पानीसे खूब अच्छी तरह धोना चाहिये। खालकी चर्बी घरेलू कामके साबुन बनानेके काम में आती है।

हमारे देशमें नारियल या गरीके तेलका बहुत प्रयोग होता है। इस तेलसे बढ़िया नहानेके साबुनसे लेकर साधारण घरेलू साबुन तक बनाये जाते हैं। नारियलका तेल पूर्ण साबुनमें नहीं बदला जाता। तेलका केवल २१ प्रतिशत भाग साबुन बना कर जमा दिया जाता है अन्यथा ऐसा साबुन त्वचा पर हानिकारक होता है। गरीके तेलके साबुनमें एक विशेषता यह है कि यह नमकके घोलमें आसानीसे घुल जाता है अतः सामुद्रिक नाविकोंके लिए बनाये गये साबुनोंमें इसका प्रयोग बहुतायत से होता है। इस तेलकी एक और विशेषता है कि यह बड़ी आसानीसे साधारण तापक्रम पर क्षारसे रासायनिक रूपसे मिल जाता है। घटिया या बढ़िया साबुन बनानेके लिए क्रमसे घटिया या बढ़िया तेलका प्रयोग किया जाता है। बिनौलेका तेल कुछ भूरे रंगका होता है। पहले इसका रङ्ग रासायनिक क्रिया द्वारा उड़ा दिया जाता है। इस तेलसे बनाया गया साबुन मुलायम होता है। मकईका तेल कभी-कभी मुलायम साबुन बनानेके लिए प्रयोगमें आता है। चावल तथा सोयाबीनके तेल भी मुलायम साबुनके लिए प्रयोगमें लाये जाते हैं। जैतूनके तेलमें यदि थोड़ा सा गरीका तेल मिलाकर साबुन बनाया जाय तो बहुत बढ़िया साबुन बनता है जो विशेषकर मुलायम त्वचा वालों अथवा बच्चों के लिए सबसे अच्छा है। जैतूनके तेलके साबुनमें एक विशेषता यह है कि इसमें कोई स्वाद नहीं होता, अतः दाँतके मंजनोंमें मिलानेके लिए इसी साबुनका प्रयोग होता है। तिल्लीके तेलसे अधिकतर मुलायम साबुन बनाये जाते हैं और मुलायम साबुन बनानेके लिए यह

सबसे उपयुक्त है। साधारण तेलको अम्ल द्वारा साफ करके प्रयोगमें लाया जाता है। रेंड़ीका तेल महँगा होने के कारण बहुत कम प्रयुक्त होता है। कभी-कभी और तेलोंमें थोड़ा सा रेंड़ीका तेल मिलाकर बढ़िया साबुन बनाये जाते हैं। रेंड़ीके तेलके साबुन समपारदर्शी होते हैं। द्रव साबुन अथवा शीघ्र धुलनशील साबुन बनानेमें रेंड़ीके तेलका बहुतायतसे प्रयोग होता है। रेंड़ीके तेल का बना साबुन पानीमें सबसे अधिक घुलनशील है।

आजकल बनस्पति घी से भी साबुन बनाये जाते हैं। तेलमें विशेष क्रियासे रासायनिक रूपसे हाइड्रोजन मिलानेसे एक प्रकारकी वसा तैयार हो जाती है जिससे साबुन बनाया जा सकता है। इस प्रकारकी वसा टैलोके स्थानमें सब जगह प्रयुक्त की जा सकती है। विशेषज्ञोंका कथन है कि इस प्रकारकी वसासे अच्छे साबुन कठिनतासे तैयार होते हैं।

रोज़ीन [Rosin] या राजन भी साबुनमें कभी-कभी मिलाया जाता है। इससे घटिया साबुन भी पानीमें शीघ्र घुलनशील हो जाता है। अधिक राजन मिलानेसे साबुन खराब हो जाता है। नहानेके साबुनमें राजन कभी मिलाना नहीं चाहिए। कपड़े धोनेके साबुनमें भी यदि राजन अधिक हो जाय तो कपड़े खराब हो जायेंगे। राजन मिलानेमें सतर्कतासे काम लेना चाहिए।

साबुन बनानेमें दूसरी मुख्य वस्तु क्षार है। यह पहले बताया जा चुका है कि रासायनिक दृष्टिकोणसे साबुन वसा-अम्लोंका लवण है। तीन प्रकारके लवण साबुनके रूपमें प्रयुक्त होते हैं। सोडियम, पोटैसियम और अमोनियम। इनमें मुख्य हैं सोडियम और पोटैसियम लवण। सन् १९१४ तक कड़े साबुन सोडियम लवण और मुलायम साबुन पोटैसियम लवणके रूपमें होते थे। सन् १९१४-१८ के महायुद्धमें पोटासकी कीमत बहुत बढ़ गई इससे साबुन बनाने वालों ने नवीन अनुसंधानों की ओर अधिक ध्यान दिया। यह देखा गया कि यदि उचित तेल या चर्बी या उनके उचित मिश्रणसे सोडियम लवण बनाया जाय तो मुलायम साबुन तैयार हो सकता है। इस खोजसे साबुन बनानेके व्यापारमें बड़ी उन्नति हुई। आजकल तेल या चर्बी अथवा इनके मिश्रणसे सोडियम या पोटैसियम अथवा इनके मिश्रणके लवण नाना प्रकारके साबुनोंके रूपमें बाजारमें बिकते हैं। कपड़े धोने के साबुनमें यदि पोटैसियम लवण अधिक हो तो अच्छा होता है। अमोनियम लवण धातु पालिशोंमें प्रयुक्त होते हैं और उनके साधारण साबुन नहीं बनाये जाते।

उपर्युक्त कथनसे यह ज्ञात होता है कि सोडियम और पोटैसियम क्षार ही साबुन बनानेमें सबसे अधिक इस्तेमाल किये जाते हैं। सोडियमके क्षारोंमें प्रमुख कास्टिक सोडा और सोडियम कारबोनेट है। इनमें से कास्टिक सोडा ही अधिकतर प्रयोगमें लाया जाता है। सोडियम कारबोनेटसे त्वचा पर हानि होती है। अच्छा साबुन बनाने के लिए जिस कास्टिक सोडाका प्रयोग किया जाय उसमें दो प्रतिशतसे अधिक सोडियम कारबोनेट न होना चाहिये। कभी-कभी सस्ता साबुन बनानेके लिए सोडियम सिलीकेट मिला दिया जाता है। इस तरहके साबुनमें पानी अधिक रह जाता है और यह साबुन शीघ्र गल जाता है। पोटैसियमके क्षारोंमें मुख्य कास्टिक पोटास और पोटैसियम कारबोनेट है। यह अधिकतर मुलायम साबुन अथवा हजामतके साबुन बनानेमें प्रयोग किए जाते हैं। पोटैसियमके क्षारोंका मूल्य सोडियमके क्षारोंसे अधिक होता है, अतः पोटैसियमके क्षारोंको मोल लेते समय यह देखना चाहिये कि उसमें कहीं सोडियमके क्षार तो मिले हुए नहीं हैं।

क्षार और तेलके मिश्रणसे बनाये गये साबुनमें अच्छी गन्ध नहीं होती है। अतः साबुनमें सुगन्धि मिलानी पड़ती है। आजकल केवल घरेलू और बहुत सस्ते साबुनों में सुगन्धि मिलाई जाती है। सुगन्धिसे दो लाभ होते हैं, एक तो तेल, चर्बी इत्यादिकी गन्ध मिट जाती है और दूसरे साबुनकी सुगन्धिको लोग बहुत पसन्द करते हैं। कई प्रकारकी सुगन्धियाँ साबुनोंमें प्रयुक्त होती हैं उदाहरण के लिए प्राकृतिक सुगन्धियाँ जैसे उड़नशील तेल (खस, लौंग, इलायची आदिके तेल), सुगन्धित गोंद, राजन, कस्तूरी आदि। आजकल तो नाना प्रकारके कृत्रिम इत्र इस काममें इस्तेमाल होते हैं।

साबुन बनानेकी विधि

साबुन रूप गुणके अनुसार कई विभागोंमें विभाजित

किया जा सकता है। विभिन्न प्रकारके साबुन बनानेकी अनेक विधियाँ हैं। साबुन बनानेकी सबसे प्रमुख विधियाँ दो हैं। पहली साधारण तापक्रम वाली विधि (Cold process) और दूसरी "खौलते" तापक्रम वाली विधि (Boiling proccss)। साबुन इन्हीं दो विधियोंसे मुख्यतर तैयार किया जाता है।

साधारण तापक्रम वाली विधि :—इस विधिमें साबुन साधारण तापक्रम पर बनाया जाता है। इस काम के लिये गरीका तेल अथवा टैलो सर्वोत्तम है। तेल या चर्बी एक लोहेके तसलेमें पिघला ली जाती है। यहाँ इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि तापक्रम १००° फा० से अधिक न होना चाहिये अन्यथा साबुन अच्छा नहीं जमता। अब कास्टिक सोडाका घोल जिसे लाई (lye) कहते हैं इसमें धीरे-धीरे मिलाया जाता है। लाई मिलाते समय तेल या चर्बी को खूब अच्छी तरह हिलाते रहना चाहिये। बड़े परिमाण पर काम करनेके लिये मशीनोंका प्रयोग करना उत्तम होगा। लाईकी पर्याप्त मात्रा ही छोड़नी चाहिये। लाईकी मात्रा पहले एक छोटे परिमाण पर प्रयोग करके ज्ञात की जाती है। जब सब लाई छोड़ दी जाय तो तसलेके द्रवको खूब हिलाना चाहिये। लगभग आधे घंटेमें यह द्रव काफी गाढ़ा हो जायेगा। साबुनमें यदि कोई रंग अथवा सुगन्धि देनी हो तो वह भी इसी समय मिलानी चाहिये। इसके बाद इस गाढ़े द्रव को लकड़ीके फर्मोंमें डाल देना चाहिये। दो तीन दिन तक इसे पड़ा रहने देना चाहिये। फर्मोंमें साबुन जम जायेगा और काट कर निकाला जा सकता है।

इस विधिकी यह विशेषता है कि साबुन आसानीसे बन जाता है। पारदर्शी या समपारदर्शी साबुन बनानेमें इस विधिका बहुत प्रयोग होता है। यह प्रत्यक्ष है कि इस विधिसे साबुन बनानेके लिये तेल, लाई इत्यादि बढ़िया होनी चाहिये अन्यथा सब मिलावट साबुनमें रह जायगी। इस तरहके साबुनमें सबसे बड़ा दुर्गुण यह है कि उसमें कुछ क्षार और कुछ वसा-अम्ल यों ही रह जाते हैं। यह देखा गया है कि साबुन बनानेकी क्रियामें जब तक क्षार अधिक मात्रामें न हो तब तक सब वसा-अम्ल लवणके रूपमें परिवर्तित नहीं होते। इस विधिमें क्षार अधिक छोड़नेसे साबुनमें भी क्षार आ जाता है जिससे वह त्वचा के लिये हानिकारक होता है। अतः नहानेके साबुन बनाने के लिये यह विधि अच्छी नहीं है।

"खौलते" तापक्रम वाली विधि :—संसारमें सबसे अधिक साबुन इसी विधिसे बनाये जाते हैं। इस विधिको चार भागोंमें विभाजित किया जा सकता है : (१) प्रारम्भिक क्रिया, (२) ग्लिसरीन पृथक करना, (३) गरम करना, (४) अन्तिम क्रिया। यह विधि इस प्रकार है।

प्रारम्भिक क्रिया लोहेके बर्तनोंमें की जाती है। यह बर्तन ५ से १०० टन तक किसी भी मापके हो सकते हैं। इनमें भापके पाइप लगे रहते हैं। पेंदीमें एक नल लगा रहता है। यह गोलाकार या चतुर्भुजाकार रूपमें होते हैं। तेल या चर्बी इनमें डाल दी जाती है। भाप द्वारा इतना गरम किया जाता है कि तेल या चर्बी द्रव रूपमें हो जाती है। प्रारम्भमें हलकी लाई (लगभग ७ प्रतिशत कास्टिक सोडाका घोल) का प्रयोग किया जाता है। अब भापके पाइप द्वारा कुलको गरम किया जाता है यहाँ तक कि द्रव खौलने लगता है। रासायनिक क्रिया प्रारम्भ करनेके लिये कुछ साबुनके टुकड़े इसमें डाल दिये जाते हैं। रासायनिक क्रिया प्रारम्भ हो जानेके बाद द्रवको खौलाते रहते हैं और लाईका कुछ गाढ़ा घोल मिलाते रहते हैं। थोड़ी-थोड़ी देर बाद एक बूँद द्रव निकाल कर यह देखते हैं कि सब चिकनाई मिट गई या बाकी है। जब सब चिकनाई मिट जाती है तो लाईका डालना बन्द कर दिया जाता है।

अब इसमें तेलकी मात्राके अनुसार ५ प्रतिशत नमक का घोल लेकर मिलाया जाता है। साबुन अधिकतर (केवल गरीके तेलके साबुनको छोड़कर) नमकके घोलमें घुलनशील नहीं है। नमकका घोल मिलानेके बाद द्रव को फिर खौलाया जाता है। साबुन ऊपर उतराने लगता है और ग्लिसरीन और नमकका घोल नीचे रहता है। गरीके तेलके साबुनमें या पौटैसियम साबुनमें नमकके घोलकी जगह कास्टिक पोटाशका गाढ़ा घोल प्रयोग किया जाता है। इससे साबुन ऊपर आ जाता है और ग्लिसरीन कास्टिक पोटाशके घोलमें नीचे रह जाती है। जब सब

साबुन अलग हो जाता है तो नीचेका नल खोलकर सब द्रव निकाल लिया जाता है और बर्तनमें केवल साबुन रह जाता है। इस द्रवमें लगभग ४ से ८ प्रतिशत ग्लिसरीन रहती है और यह अन्य रासायनिक क्रियाओं द्वारा पृथक कर ली जाती है। बचा हुआ साबुन अब फिर भाप द्वारा गरम किया जाता है और हिलाकर एक गाढ़े द्रव या लेई-के रूपमें कर लिया जाता है।

साबुनमें अब थोड़ासा लगभग १४½ प्रतिशत कास्टिक सोडाका घोल मिलाया जाता है। कुलको बन्द भापके पाइपोंसे फिर खौलाया जाता है। यह काम बहुत सतर्कता-से किया जाता है और जल्दबाज़ीसे काम नहीं लिया जाता। इस क्रियाका अभिप्राय यह है कि बचे हुए वसा अम्लोंको भी लवणमें परिवर्तित कर लिया जाय। जब ऐसा हो जाता है तो फिर रात भर उसे ठंढा होने देते हैं। दूसरे दिन साबुन ऊपर उतरा आता है और नीचे एक द्रव रहता है जिसका विश्लेषण लगभग इस तरह है—कास्टिक सोडा ५-६ प्रतिशत, सोडियम कारबोनेट ३ प्रतिशत, नमक ४-६ प्रतिशत बाकी ग्लिसरीन और पानी। यह द्रव नीचेके नलको खोलकर निकाल लिया जाता है और स्वच्छ साबुन बर्तनमें रहने दिया जाता है।

साबुनको अब बन्द भापके पाइपों द्वारा गरम किया जाता है। इससे बचा हुआ द्रव पदार्थ भी साबुनसे अलग हो जाता है। यह द्रव नल खोलकर फिर निकाल दिया जाता है। अब साबुनमें पर्याप्त मात्रामें पानी मिलाकर उसे खौलाया जाता है। इससे साबुन खूब फूल जाता है। फूला हुआ साबुन जमनेके लिये छोड़ दिया जाता है। कई दिन तक पड़े रहनेके बाद साबुन चार सतहमें जम जाता है। सबसे ऊपरकी सतहमें सबसे बढ़िया और सबसे नीचे-की सतहमें सबसे घटिया साबुन होता है।

उपरोक्त विधिसे बनाये गये अच्छे साबुनमें लगभग ६२-६४ प्रतिशत वसा अम्ल, ८ प्रतिशत क्षार और ३० प्रतिशत पानी होता है।

साबुन बनानेके पहले कभी-कभी तेलोंका रंग उड़ा दिया जाता है जिससे तैयार साबुन सफेद रहे। सफेद साबुन फिर इच्छित रंगमें रंगा जा सकता है। तेलोंका रंग उड़ानेके लिये सोडियम हाइड्रोसलफाइट, अमोनिया, सोडा और पोटासके सलफेट तथा ओज़ोन युक्त हवा आदि का प्रयोग किया जाता है। कभी-कभी साबुनमें क्षार कम करनेके लिये स्टीयरिक एसिड, बोरिक एसिड आदिका भी प्रयोग किया जाता है।

आजकल अनेक प्रकारके साबुन बाज़ारोंमें बिकते हैं। यह साबुन इन मुख्य भागोंमें विभाजित किये जा सकते हैं (१) Mottled साबुन, (२) घरेलू साबुन, (३) दवाई वाले घरेलू साबुन, (४) सामुद्रिक नाविकोंके लिये साबुन, (५) पारदर्शी साबुन, (६) नहानेके साबुन, (७) हजामतके साबुन, (८) दवाईके साबुन, (९) द्रव साबुन, (१०) साबुन का चूर्ण, (१०) साबुनके टुकड़े या फ्लेक्स (Flakes), (१२) सूखी सफाईके लिये साबुन। नीचे इन प्रकारके साबुनोंका संक्षिप्त विवरण दिया गया है।

Mottled साबुन घटिया तेल या चर्बीसे बनाये जाते हैं। इनमें कौपरास, अल्ट्रामैरीन अथवा मैंगनीज़ डाइऑक्साइड इच्छित मात्रामें मिलाकर इच्छित गुण दिये जाते हैं।

घरेलू साबुन खौलते तापक्रम वाली विधिसे तैयार किये जाते हैं। हमारे यहाँ इस कामके लिये घटिया तेल प्रयुक्त होता है, किन्तु योरप आदि देशोंमें यह अधिकतर टैलोसे बनाये जाते हैं। तेल या चर्बीमें १५ से २५ प्रति-शत राजन भी कभी-कभी मिलाया जाता है। इनमें कभी-कभी सोडियम सिलीकेट भी छोड़ा जाता है जिससे यह और सस्ते तैयार किये जा सकते हैं। घटिया बढ़िया सभी तरह-के घरेलू साबुन होते हैं।

दवाई वाले घरेलू साबुन साधारण घरेलू साबुनसे तैयार किये जाते हैं। साधारण घरेलू साबुनको क्रियोज़ोट ऑयलमें गूँध लिया जाता है और फिर साँचोंमें जमा दिया जाता है। साधारणतया इनमें ३ से ४ प्रतिशत कारबो-लिक एसिड होती है, किन्तु विशेष कामके लिये ६ से ८ प्रतिशत कारबोलिक एसिड वाले साबुन भी तैयार किये जाते हैं।

सामुद्रिक नाविकोंके लिये साबुन गरीके तेलसे तैयार किये जाते हैं। यह बहुधा साधारण तापक्रम वाली विधिसे बनाये जाते हैं। इनमें थोड़ा सोडियम सिलीकेट भी

मिलाया जाता है। ऐसे साबुनोंमें पानीकी मात्रा अधिक होती है कभी-कभी तो ६० से ७० प्रतिशत तक।

पारदर्शी साबुन बनानेमें कई पदार्थ मिलाये जाते हैं जिनसे वसा अम्लोंके लवण रवेदार नहीं हो पाते, वरन् कलोद (Colloid) के रूपमें रहते हैं। इस कामके लिये चीनी, अल्कोहल, रेंडीका तेल, ग्लिसरीन तथा राजन इत्यादिका प्रयोग किया जाता है। इन साबुनोंको बहुधा गाढ़े रंगका बनाते हैं जिससे इनके और अवगुण आसानी से छिपाये जा सकें।

नहानेके साबुन दोनों विधिसे तैयार किये जाते हैं। अधिकतर यह खौलते तापक्रम वाली विधिसे ही बनाये जाते हैं। जब साबुन तैयार हो जाता है तो उसे थोड़ा गीला करके डंडाकार रूपमें बना लेते हैं। अब इसे मशीन द्वारा चूर्ण कर लेते हैं। इस चूर्णमें इच्छानुसार रंग और सुगन्धि मिलाई जाती है। यह काम भी मशीन से होता है। जब सब अच्छी तरह मिल जाता है तो एक मशीन द्वारा दबाकर फिर डंडाकार रूपमें कर लिया जाता है। साबुन इतना दबाया जाता है कि उसमें हवा तक नहीं रह जाती है। इस डंडाकार साबुनसे ठप्पे काटने वाली मशीनसे साबुन काट लिए जाते हैं। इस रीतको मिलिंग (Milling) या फ्रेंच रीति कहते हैं।

हजामतके साबुन ऐसे होने चाहिए कि जो त्वचा पर हानिकारक न हों और जिनकी झाग देर तक रह सके। यह साबुन सोडा और पोटाश साबुनके मिश्रणसे तैयार किये जाते हैं। इनमें थोड़ा स्टीयरिक एसिड भी छोड़ा जाता है। सुन्दर क्रीम रङ्ग देनेके लिए इनमें थोड़ा गरी का तेल, थोड़ा रेंड़ीका तेल और थोड़ा पैराफीन मोम भी मिलाया जाता है। इनमें थोड़ा पानी मिलाकर यह मंजनकी तरह ट्यूब में भर कर भी बेचे जाते हैं और इस रूपमें यह शेविंग क्रीमके नामसे बिकते हैं।

दवाई वाले साबुन भी नहानेके साबुनोंकी तरह तैयार किये जाते हैं। साबुनके चूर्णमें दवा मिला दी जाती है और फिर मशीनसे दबाकर नहानेके साबुनोंकी तरह ठप्पेसे टुकड़े काट लिये जाते हैं। कोलटार साबुन, कारबोलिक साबुन, बोरिक एसिड साबुन, नीमका साबुन इत्यादि इसी तरह तैयार किये जाते हैं।

द्रव साबुनका चलन आजकल अधिक होता जा रहा है। होटल इत्यादिमें तो इनकी बड़ी माँग है। द्रव साबुन वास्तवमें पानीमें साबुनके घोलको कहते हैं। इस काम के लिये सबसे अधिक घुलनशील पोटास साबुनका ही प्रयोग किया जाता है। अस्पतालोंके लिए ऐसे साबुनमें दवाइयाँ भी मिला दी जाती है।

साबुनका चूर्ण कपड़े धोनेके काममें आता है। यह खौलते तापक्रम वाली विधिसे तैयार किये गये साबुनका चूर्ण होता है। इसमें थोड़ा सोडियम कारबोनेट मिला दिया जाता है जिससे मैल छुड़ानेमें आसानी होती है। इनके प्रयोगमें सतर्कतासे काम लेना चाहिये क्योंकि यदि सोडियम कारबोनेट अधिक होगा तो कपड़ा कमजोर हो जायेगा और फट भी सकता है।

साबुनके टुकड़े या फ्लेक्स खूब अच्छी तरह सुखाये हुए साबुनके टुकड़े हैं। इनमें केवल ४ प्रतिशत पानी होता है। कपड़े धोनेके लिए यह सर्वोत्तम है।

सूखी सफाई वाले साबुन वास्तवमें बेनज़ीन इत्यादि घोलकोंमें साबुनके घोलको कहते हैं। यह घोलक आसानी से उड़नशील होते हैं। यह साबुन मुख्यतर पोटास साबुन होता है। यह अधिकतर ओलयिक अम्लसे तैयार किया जाता है।

उपसंहार

हमारे देशमें साबुनका व्यापार अब काफी बढ़ गया है। गाडरेज, मैसूर संदल, हिमानी, बंगाल केमिकल, मोदी सोप, लीवर ब्रदर्स, टाटा इत्यादि कई बड़ी कम्पनियाँ साबुन बनानेका काम करती हैं। इस महायुद्धके पहले भारतमें काफी साबुन विदेशोंसे आता था। नीचे कुछ आँकड़े दिये हुए हैं जिनसे साबुनके व्यापार की उन्नतिका अनुमान सरलतासे हो सकता है।

वर्ष	भारतमें साबुन बना (हंडरवेटमें)	विदेशी साबुन भारतमें आया (हंडरवेट में)	विदेशी साबुनका मूल्य (रुपयोंमें)
सन् १९०६-७	२१२,०००	१८३,९९८	३२,२८,१५६
,, १९१६-१७	४४०,३९५	३८०,१६१	१,००,९६,६८०
,, १९२६-२७	५२४,२७३	४०२,४७५	१,५२,४१,२७८
,, १९२९-३०	५७३,७५४	४४७,९३९	१,६६,६८,४०६
,, १९३०-३१	६५४,३७८	३३२,३२२	१,११,९८,२३५
,, १९३१-३२	६९७,९८८	३०९,७८४	८८,७२,१५२
,, १९३२-३३	७५८,६७६	२९६,३४१	८२,६२,८७२
,, १९३३-३४	८८६,४९३	३०३,२१३	७८,३७,३६२
,, १९३४-३५*	१,०००,०००	२००,०००	६१,००,०००
,, १९३५-३६*	१,१२०,०००	६०,०००	३४,६०,०००

इस सारिणीसे यह ज्ञात होता है कि सन् १९३० से भारतवर्षमें साबुनके व्यापारकी लगातार उन्नति होती रही है। सन् १९३६ के बादसे विदेशी साबुन इस देशमें दिन-प्रति-दिन कम होता गया। इस महायुद्धमें विदेशी साबुन हमारे देशमें बहुत कम आया। आजकल तो विदेशी साबुनकी खपत नहींके बराबर है। हमारे देशमें साबुन तो अब पर्याप्त मात्रामें बनने लगा है किन्तु अभी बहुत बढ़िया साबुन कम बनता है। जैसा पहले कहा जा चुका है साबुन बनानेके लिये मुख्यतर तेल या चर्बी अथवा क्षारकी आवश्यकता होती है। तेल या चर्बी तो हमारे देशमें पर्याप्त मात्रामें हैं किन्तु क्षार अभी तक विदेशोंसे ही आता है। यदि हमारे देशमें क्षार सस्ता बनने लगे तो साबुन और सस्ता बनाया जा सकता है।

हमारे देशमें साबुन बनानेके लिये जानवरोंकी चर्बी-का बहुत कम प्रयोग होता है। लोग धार्मिक तथा अन्य कारणवश चर्बीका प्रयोग अच्छा नहीं समझते। ऐसा विचार केवल अन्धविश्वासके कारण है। रासायनिक दृष्टि कोणसे चर्बी या तेलमें विशेष अन्तर नहीं है। बहुतसे बढ़िया विदेशी साबुन चर्बी और तेलके मिश्रणसे तैयार किये जाते हैं। हमारे देशमें भी यदि चर्बीके प्रयोगसे घृणा हट जाय तो हमारे यहाँ भी बढ़ियासे बढ़िया साबुन सरलतासे बनाया जा सकता है।

---

*लगभग संख्यायें।

जिपसम

[लेखक — श्री मकरंद ढौंडियाल, शुभ्रशैलनिवासी]

आनेवाले स्वतन्त्र भारतको छोटेसे बड़े सभी उद्योग-धन्धे स्वयं करने होंगे। उसको अपनी उत्पादनकी श्रेष्ठता संसारमें स्थापित करनी होगी और अपने यहाँकी प्रत्येक वस्तुका उद्योग-धन्धे द्वारा ऐसा उपयोग करना होगा कि मिट्टीसे सोना बन जाय—तभी इतनी विशाल जनसंख्या वाली भूमिका कल्याण हो सकेगा।

विज्ञानकी इस विकसित अवस्थामें यह बड़ी बात नहीं है। असंख्य वस्त्रोंको सिलाने के लिये छोटी सुईकी ही आवश्यकता पड़ती है, बड़े सब्बलकी नहीं। इसलिए जहाँ स्वतन्त्र भारतको जिपसम और प्लास्टर आफ पेरिस की आवश्यकता होगी वहाँ अपनी राष्ट्रभाषामें लिखित यह लेख उपयोगी सिद्ध होगा—यह विश्वास है।

'जिपसमके उपयोग' वाले अध्यायमें कुछ बातें संकलित हैं यदि कहीं मात्रा आदिमें हेरफेरकी आवश्यकता जान पड़े तो सहर्ष किया जा सकता है।

जिपसम (चीनियाँ पत्थर)

किसी भी राष्ट्र और देशको समृद्धिशाली बनानेके लिए उद्योग-धन्धे अत्यन्त आवश्यक हैं। विज्ञानकी प्रगतिशीलता उद्योग-धन्धों पर ही निर्भर है। मानव चैतन्य सदैव क्रियाशील है। वह सदा कुछ करनेके लिए आकुल रहता है और अपनी वृद्धिके लिए कुछ न कुछ उपाय सोचा करता है। यद्यपि सफलता और असफलता उसके चुने हुए पथकी अनुकूलता, उसकी क्रियाशील बुद्धिके विकासके साथ होने और न होने पर निर्भर रहती है जिसमें परिस्थितिका भी हाथ होता है तथापि उद्योग करना मनुष्य का मानवीय धर्म है।

उद्योग धन्धे बहुत प्रकारके हैं जिनमें से खनिज संबंधी धन्धे अतीव मूल्यवान गिने जाते हैं। इस खनिज धन्धेकी भी कई किस्में हैं जिनमेंसे निम्नलिखित मुख्य हैं :—

(१) बहुमूल्य खनिज पदार्थ—हीरा और अन्य अमूल्य रत्न, सोना, चाँदी, प्लेटिनम और रेडियम। अब यूरेनियम भी बहुमूल्य पदार्थोंमें सम्मिलित हो जायेगा क्योंकि यह विनाशकारी कलाके लिए वर्तमान समयमें सबसे उपयोगी धातु है। अबरक भी बहुमूल्य खनिज वस्तु है।

(२) मध्यम श्रेणीके खनिज पदार्थ—नं० १ के लोहा, ताँबा, सीसा, जस्ता, गन्धक, शोरा आदि। नं० २ के ग्रेफाइट, कोयला, जिपसम (Gypsum) आदि।

(३) निम्न श्रेणीके खनिज पदार्थ—स्लेटी पत्थर, चकमक पत्थर, चीना मिट्टी, बंगला मिट्टी आदि।

इनमेंसे किसी भी खनिजका यदि वैज्ञानिक ढंग द्वारा धन्धा किया जाय तो श्रेणीके अनुसार लाभ अवश्य होता है।

इस छोटेसे लेखमें आज हम मध्यम श्रेणीके खनिज पदार्थोंमेंसे नं० २ वाले जिपसम अर्थात् चीनियाँ पत्थर का उद्योग-धन्धेकी दृष्टिसे कुछ विवरण देनेका प्रयास कर रहे हैं। सब प्रकारके खनिज पदार्थोंका विवरण ऐसे छोटे से लेखमें देना असम्भव है और सब खनिज पदार्थों पर हमारा अधिकार भी नहीं है।

जिपसम अँग्रेजी शब्द (Gypsum) है, गप्सो (Gupsos) यूरोपके पुराने जमानेमें खनिज पदार्थका द्योतक शब्द है और उसीसे जिपसम शब्दकी उत्पत्ति हुई है। हिन्दीमें इसे चीनियाँ पत्थर कहते हैं—यह इसलिये नहीं कि यह चीनकी वस्तु है, वरन् इसलिये कि चीनी मिट्टीके बर्तनोंका रङ्ग बहुत सफेद होता है और यह भी उसी तरहका एक अतीव सफेद रङ्गका पत्थर खानोंसे निकलता है इसलिये रङ्गमें समानताके आधार पर इसे चीनियाँ पत्थर कहते हैं।

जिपसम चूनेके वर्गका खानोंसे निकलने वाला पत्थर है जो बड़ी राशिमें एक ही स्थान पर भूमिके अन्दर पड़ा मिलता है। इसकी खानोंकी पहिचान यह है कि जलसे मिट्टीके धुल जाने पर या भूकंपके कारण भूमिके उलट-पलट जाने पर चूनेके काले पत्थरों पर जिपसमके टुकड़े एक निराले ही रूपमें अपनी सफेद छटा दिखाते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। और एक ही नहीं कई पत्थरों पर

ऐसे दृश्य दिखलाई देते हैं। चूँकि यह खनिज जलका प्यारा है इसलिये इसकी खानें सदा किसी नदी या स्रोतके आस-पास पड़ी रहती हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रत्येक नदी और स्रोतके आस-पास यह खनिज मिल जाय; विपरीत इसके यह बहुत ही कम स्थानोंमें मिलता है। भारतवर्षमें यह पंजाबके खेड़ामें, दक्षिणके विन्ध्याचल के आस-पास दो एक स्थानोंमें, और संयुक्त प्रान्तके नैनीताल जिलेमें नैनीताल शहरसे १४ मील पश्चिम ओर पटवाड़ांगर होते हुए धापला गाँवमें नदीके पार पुराने पुलके लगभग, देहरादून जिलेमें मझेड़ा गाँवमें श्री महन्तजी की रियासत में चुङ्गीके पास ही नदीके किनारे, थोड़ा थोड़ा सहस्र धारा के गन्धकके पानीके ऊपरके पाखानमें, नागला गाँवके आस-पास, गढ़वालके जिलेमें गरुड़ चट्टीके ऊपर और गरुड़ चट्टी और लछमन झूलाके बीचके पहाड़ पर कुछ-कुछ मात्रामें और गंगाके किनारे गौचरके समीप जिपसम मिलता है। ऐसे तो मैंने गढ़वालकी पहाड़ियोंमें थोड़ी थोड़ी मात्रामें कई एक स्थानोंमें देखा है, परन्तु यातायातके अभावके कारण और मात्रा भी थोड़ी होनेके कारण यह व्यापारिक धन्धेके लिए सर्वथा निरर्थक है।

इन खानोंमेंसे सबसे बड़ी और बढ़िया राशिके जिपसमकी खान मझेड़ा गाँव वाली है। यह खान श्री महन्त जी की रियासतमें होनेके कारण उन्हींकी मिल्कियत है और आजकल शायद किसी सज्जनके पास किराये पर (On lease) है। इस खानका पत्थर बहुत ही सफेद और अधिक कैलशियम (Calciem) वाला है।

जिपसम एक यौगिक खनिज है—एक तत्त्व नहीं। वैज्ञानिक विश्लेषणसे पता चला है कि यह तीन तत्त्वोंसे बना है—(१) चूना (Lime) (२) गन्धकाम्ल (Sulphuric acid) और (३) जल (Water) जिपसममें इन तत्वोंके अनुपातके विषयमें कुछ मतभेद हैं परन्तु मोटी तौरसे यह कहा जा सकता है कि चूना ३३ भाग, गन्धकाम्ल ४७ भाग और जल २० भागके मिलनेसे जिपसमका उद्भव होता है।

यह कैसे बनता है? पृथ्वीमें स्वयं कुछ हलचलें प्राकृतिक रूपसे शाश्वत होती चली आ रही हैं। यद्यपि पृथ्वीकी बाहरी सतह ठण्डी हो चुकी है तथापि उसके अन्दर अभी पर्याप्त मात्रामें गर्मी मौजूद है और उस उष्णताके कारण भूगर्भमें अनेक रासायनिक क्रियायें प्राकृतिक रूपसे हुआ करती हैं। मिट्टी आदि पृथ्वी तत्त्वमें अनेक या यों कहिए कि सभी रसायन वर्तमान हैं। गंधक भी उनमेंसे एक है जो पृथ्वीमें अनेक स्थानोंमें और बहुधा पहाड़ोंकी तलेटीमें पाया जाता है। ऐसे ही स्थानोंमें भूकम्प आया करते हैं क्योंकि गन्धक शीघ्र ज्वलनीय वस्तु है और भूगर्भकी अग्निसे जब यह भभक उठता है तो ज्वालामुखी फूट पड़ते हैं जिसके कारण भूकम्प हो जाता है। इसी गन्धकसे रासायनिक क्रिया द्वारा उत्पन्न गन्धकाम्ल चूनेसे जा मिलता है और भूगर्भकी उष्णतासे एक बिना जलका जिपसमके समान पदार्थ बन जाता है जिसमें जल को आकर्षण करनेकी शक्ति होती है। तत्पश्चात् जलके मिल जानेसे और भूगर्भकी उष्णताके कारण इसमें कठोरता और पारदर्शिता आ जाती है और यही रूप जिपसमका है। जो चूनेके पत्थर भूपृष्ठके समीप रहते हैं उन पर यह क्रिया पूरी तरहसे नहीं होने पाती है इसीलिए जिपसमकी खानके ऊपर ये अधकचे रूपमें जिपसम और काले पत्थरका मिश्रण दिखलाई देता है।

चूँकि जिपसम एक किस्मकी खाद भी है इसलिए इसके आसपास हरियाली दीख पड़ती है। अबरखकी भाँति यह वनस्पतियोंका शत्रु नहीं है। पानी इसका मित्र है, इसलिए पानीमें तो नहीं परन्तु उसके आस-पास रहता है।

खनिज शास्त्री खनिजोंको उनकी बिल्लौरी शक्ल आदि के अनुसार कितने ही वर्गोंमें विभाजित करते हैं जिनका यहाँ विस्तार-पूर्वक वर्णन करना अनावश्यक है। केवल जिपसमके सिलसिलेमें कहना यथार्थ होगा।

जिपसम बिल्लौरी (Crystal) वर्गकी वस्तु है जो तोड़ देने पर टूटी जगहमें काँचकी कान्तिकी तरह चमकता है, परन्तु वातावरणके कारण कुछ काल बाद यह चमक धीमी पड़ जाती है। इसके बिल्लौर बहुधा त्रिधुरी आधार के होते हैं। त्रिधुरी आधारको अंग्रेजीमें मोनोक्लिनिक सिस्टम (Monoclinic System) कहते हैं और शक्ल में आमतौरसे जिपसमके बिल्लौर ओगलनुमा होते हैं। ओगल नाम पर्वतोंमें होने वाले एक अनाजके बीजसे

लिया गया है। यह हर तरह तिकोनी शक्ल का बीज होता है जैसा कि अंग्रेजी शब्द Prism (प्रिज्म) से अर्थ ध्वनित होता है। यह एक घन △ ऐसी तिकोनी शक्ल की वस्तु है और चूँकि जिपसमके बिल्लौर भी ऐसे ही ओगलनुमा होते हैं इसलिए अंग्रेजीके शब्द प्रिज्म (Prism) के स्थान पर ओगलनुमा शब्द कहा जायगा। जिपसमके टुकड़ेको तोड़नेसे बहुधा ओगुलनुमा टुकड़े मिलते हैं जिससे सिद्ध होता है कि जिपसमकी शिलायें ओएलनुमा टुकड़ोंसे मिलकर बनी हुई होती हैं। ये शिलायें प्रत्येक त्रिधुरी आधारकी होती हैं। ये त्रिधुरी आधार कहीं तो कुन्द नोकके समद्विवाहु वर्गकी यरह मिलते हैं और कहीं तीरके नोककी तरह पैने नोकके दो त्रिकोण आपसमें जुड़े हुए मिलते हैं जिनकी शक्ल [illegible] भिन्न भिन्न रूपमें मिलती है।

किसी-किसी सिल्लीसे तोड़ने पर अबरखकेसे छिलके निकल आते हैं। ये मुड़ तो जाती हैं पर लसदार नहीं होती हैं जैसी कि अबरखकी पतली चद्दरें हुआ करती हैं।

जिपसमकी किस्में—जिपसम ईटनुमा सिल्लियों में, पतली चादरी चुरे टुकड़ोंमें, दानेदार शक्लमें और रेशेदारकी किस्ममें मिलता है। इन किस्मोंको खास कर दो नाम दे देते हैं, (१) रेशमी रेशेदार और (२) बारीक दानेदार। पहलेको अंग्रेजीमें satin spar साटिन स्पार और दूसरेको alabaster एलाबस्टर कहते हैं। नं० दो का जिपसम सब तरहसे अच्छा समझा जाता है।

रङ्ग—जिपसम बिलकुल सफेद होता है जिसमें किसी अन्य रङ्गका मेल नहीं होता है। परन्तु कहीं-कहीं हरी आभा वाला, हलका पीला, गुलाबी लाल और भूरी छाया लिये हुए मिलता है।

शुद्ध जिपसम काँचकी तरह पारदर्शक तो कहा जा सकता है परन्तु सत्य ही काँचकी तरह उच्च पारदर्शक नहीं है, वरन् निम्न श्रेणीका पारदर्शक है।

अन्य बाहरी पदार्थोंकी मिलावटसे जिपसम अपारदर्शक हो जाता है।

चमक—सतह और टूटे स्थान मोतीकी तरह खूब चमकदार होते हैं। बाकी हिस्सा कुन्द काँचकी तरह चमकदार और चिकना होता है। मिलावट वाला जिपसम चमकदार नहीं होता है, बल्कि मिट्टीकी तरह अपारदर्शक और भुरभुरा होता है।

रेशेदार किस्मका जिपसम रेशमी चमकका होता है और इसके रेशे अधिक चमक दिखलाते हैं।

टूटनेकी धार सफेद चमकदार मिलती है।

कठोरता—यह नाखून या किसी भी चाकूकी धार या नोकसे खुरचा जा सकता है और वैज्ञानिक शब्दों में इसमें १ से २ तककी कठोरता मिलती है। इस हल्की कठोरताके कारण यह दोहरा टूटता है।

घनत्व—लगभग २·५ तक पहुँचता है।

खानें—भूगर्भमें जिपसम बड़ी-बड़ी खानोंमें मिलता है; जितनी गहराई पर जिपसम मिलेगा उतनी ही अच्छी राशिका होगा। इसकी खानोंमें अन्य किस्मके जो पत्थर मिलते हैं वे या तो चूनेके होते हैं या एक किस्मका लाल भूरे रङ्गका कठोर पत्थर मिलता है जिसको जला कर ईंट आदि चुननेके लिये चूना बनाया जा सकता है। चकमक पत्थर इसकी खानों सर्वथा सम्भव है।

ज्वालामुखी पर्वतोंके समीप भी जिपसम मिलता है। समुद्रके किनारोंमें भी जिपसम मिलता है परन्तु इसमें मिलावट अधिक होनेसे उपयोगी नहीं होता है। नमककी खानोंके पास भी जिपसम मिलता है परन्तु नमककी लाग होनेसे ऐसा जिपसम अच्छा नहीं समझा जाता।

गन्धकका भी मेल जिपसममें होता ही है।

तपन से प्रभाव—एक बन्द काँचकी ट्यूबमें रख कर जब आगसे गर्म किया जाता है तो इससे पानी अलग हो जाता है और यह अपारदर्शक मिट्टीकी तरह एक बहुत ही सुफेद वस्तु रह जाती है।

सीधे अग्निमें या उसकी लौ पर रखनेसे यह टूट जाता है और शीघ्र ही सफेद हो जाता है।

(२)

जिपसमकी खानोंकी खुदाई—व्यावहारिक कार्य के लिये जब जिपसम खानोंसे निकाला जाता है तो उसमें

खास किस्मकी खुदाईकी आवश्यकता होती है। खुदाईके लिये निम्नलिखित चीज़ोंकी आवश्यकता होती है : —

(१) दो सब्बलें

(२) चार हथौड़े (दो छोटे, दो बड़े)।

(३) एक दर्जन छोटे-बड़े छेनी-छेनियाँ।

(४) फावड़े।

(५) घन।

(६) कुछ कुदालें।

पहले कुदालसे आस-पासकी मिट्टी खोद कर फावड़ेसे साफ कर दो। तब कुछ दोयम नम्बरका मिश्रित जिप्सम दीख पड़ेगा। इसको सब्बलोंसे तोड़कर ऐसे अलग स्थान पर जमा कर दो जिसकी तरफ खानकी सीम नहीं जाती है। ये पत्थर बहुधा चूनेके होते हैं। इसलिये इनमेंसे चूनेके पत्थर इकट्ठा करनेका अर्थ यह है कि इनको फूँक कर चूना बनाया जा सकता है।

तब इस नं० दो के जिप्समकी तहके बाद अच्छा जिप्सम मिलना आरम्भ होता है। इस तरह जितना नीचे जाओगे अच्छा जिप्सम मिलता जायगा। इस जिप्समर्में कुछ क्या, आधेसे ज्यादा ऐसा जिप्सम मिलेगा जिसके साथ कुछ टुकड़े तो विशुद्ध, उत्तम और मूल्यवान जिप्समके चिपके होंगे और शेष टुकड़े दोयम जातिका जिप्सम होगा। इस उत्तम किस्मके जिप्समको छेनी और हथौड़े के सहारे अलग कर दो और इस तरह जिप्समके दो अलग-अलग ढेर कर दो। एक उत्तम जातिके जिप्समका ढेर और दूसरा दोयम जातिके जिप्समका ढेर।

उत्तम जातिके जिप्समको अच्छी जगह पर पानी हवासे बचाकर रखना चाहिये।

दोयम जातिके जिप्समर्मेंसे छाँटकर जो टुकड़े रद्दी जँचे उन्हें चूने वाले पत्थरोंके साथ शामिल कर दो।

इस तरह जिप्समकी एक खानमें आपको तीन प्रकारके कामके पत्थर मिलेंगे।

यद्यपि यह दशा सब खानोंकी नहीं होती है जैसे देहरादूनके मक्केड़ा गाँव वाली खानमें केवल नं० १ और नं० २ के जिप्समके अलावा चूनेका पत्थर नहीं नजर आता है तथापि बहुधा जमीनके अन्दर जाने वाली खानोंमें ये तीन प्रकारके व्यावहारिक पत्थर मिलते ही हैं। जो जिप्सम पाषाणों पर मिलता है उसमें चूनेके पत्थरके बदले चकमक पत्थरोंकी प्रचुरता रहती है। यह चकमक पत्थर भी चीनी मिट्टीके बर्तनोंके बनानेके काममें लाया जाता है परन्तु मूल्यवान न होनेसे फेंक देनेके काबिल होता है।

इस तरह खानोंके कामसे परिचित करानेके बाद यह भी लिख देना उचित होगा कि एक खानमें दससे बारह आदमी तक बड़े मजेमें काम कर सकते हैं। ज्यादे आदमियोंकी इसलिये जरूरत नहीं लिखी गई है कि जितने जिप्समका मैदा वक्तसे बनाया जा सके उतना ही खानसे बाहर निकालना चाहिये। ज्यादा निकाल कर यदि बाहर ढेर में रख दिया जाय तो खराब हो जाता है इसलिये जितनेको प्लास्टर आफ पेरिसका रूप दिया जा सके उतना ही निकालना उचित है। प्लास्टर आफ पेरिसके विषयमें आगे लिखा जा रहा है।

यह खानके विषयमें संक्षिप्त वर्णन किया गया। व्यावहारिक रूपके लिये एक जानकार मनुष्यकी देख-रेखमें ही यह काम करवाना चाहिये। ऐसे उद्योग-धन्धोंको चलानेके लिये उद्यमशील, परिश्रमी, ईमानदार और मितव्ययी मनुष्यकी आवश्यकता होती है। मुझे मालूम है कि एक सज्जनने जिप्समके खानकी लीज़ (Lease) ली और काम आरम्भ करवाया। उस सज्जनने कुलियों पर निकालनेका काम छोड़ दिया और स्वयंभी कभी भी उधर देखने न गये। इस दशामें उस सज्जनको इस व्यवसायमें नुकसान उठाना ही स्वाभाविक था और फल यह हुआ कि नुकसानके साथ काम बन्द हो गया और (Lease) लीज छीन ली गई। ऐसी बातोंसे जन-समाज पर बुरा असर पड़ता है और ऐसे "मिट्टीसे सोना" वाली वस्तुओंके व्यवसायके लिये लोगोंकी यह धारणा होती है कि "अमुक व्यवसाय हानिकारक है, अमुक मनुष्यने आरम्भ किया था बड़ी हानि उठानी पड़ी।" इस तरहसे अन्य उत्साही मनुष्य भी हतोत्साह हो जाते हैं।

उन लोगोंसे जिनकी ऐसी धारणा हो गई है मेरा यह कहना है कि ऐसी ही वस्तुयें जो हमारे देशमें प्रचुरतासे पाई जाती हैं जब विदेशोंसे हमारे देशमें आकर सुन्दर सस्ते भाव पर बिक जाती हैं तब क्या वे लोग हानि उठा कर इतने दूर देशमें लाकर हमारे हाथ उन चीजोंको यों

ही शौकीनीसे बेच जाते हैं और एक ही समय नहीं लगातार उनका यह व्यवसाय जारी है। क्या वे हानि ही उठाने के लिये यह कार्य करते हैं? कदापि नहीं। वे अवश्य इन व्यवसायोंसे लाभ प्राप्त करते हैं। प्लास्टर आफ पेरिसको ही लीजिये—भारतमें बाहरसे बहुत परिमाणमें आता है और अच्छी जातिका मिलता है। फिर क्या कारण है कि भारतमें यह बहुत मिलता है और फिर भी लोग इससे फायदा नहीं उठा सकते? और यदि कहीं मिलता भी है तो निकृष्ट जातिका मिलता है। कारण मैं ऊपर लिख आया हूँ कि पूँजीपति लोग उद्योगशील, उत्साहित और ईमानदार मैनेजरोंको अधिक वेतन देनेके बदले सस्ते अयोग्य मनुष्योंकी देख-रेखमें ऐसे काम चालू करवाते हैं जिससे कि ऐसे व्यवसाय शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं और व्यवसायकी उपयोगिताको बदनाम करवाते हैं।

प्लास्टर आफ पेरिस—खानोंसे जिपसम खोदकर निकालना, उसकी किस्मोंके अनुसार उसको छाँटना, पुन: अलग-अलग ढेरमें लगाना और वायु तथा जलसे सुरक्षित स्थानोंमें रखना—ये सब बातें संक्षेपमें पहले बतलाई गई हैं। इसको जिपसमका कच्चा-माल (Raw material) कहना चाहिये। यह कोई विशेष मूल्य लाने वाला माल नहीं है। परन्तु इससे जो प्लास्टर आफ पेरिस बनता है और जिसका वर्णन इस तीसरे अध्यायमें किया जा रहा है वह बड़े कामकी वस्तु है और अपने व्यवसायीको बहुत अच्छा मूल्य लाकर देती है।

प्लास्टर आफ पेरिस ही व्यवसायकी वस्तु है इसलिए इसके बनानेकी विधि बतलानेके पहले मैं इसके तैयार किये जानेके स्थान, रखनेके भण्डार और अन्य सुविधाओंका वर्णन करूँगा।

सबसे पहले यह देखना चाहिये कि रेल का स्टेशन अथवा मोटर का स्टेशन इसके बनानेके स्थानसे समीप ही पड़े। कच्चा माल खास कर उत्तम और मध्यम श्रेणीके जिपसमोंको उस नियत स्थान पर ढुलवा लेना चाहिये और चूँकि निकृष्ट श्रेणीका जिपसम चूनेके पत्थरोंके साथ मिला दिया जाता है इसलिये चूनेके पत्थरों और उसको खानके समीप ही जहाँ लकड़ीकी सुविधा हो सके चूनेका भट्ठा बना कर फुँकवा कर चूना तैयार कर लेना चाहिये और तब बने बनाये चूनेको उसी नियत स्थान पर मँगा कर एक अलग भण्डारमें जमा कर लेना चाहिये।

यह स्थान ऐसा चुनना चाहिये जहाँ लकड़ी या पत्थरका कोयला जिपसमको पकानेके लिये सरलता-पूर्वक सस्ते भावमें मिल सके। हो सके तो कोयला यदि फूँका हुआ मिल सके तो अच्छा है जैसे बहुधा रेलके इंजिनमें जला हुआ कोयला बाजारोंमें आम तौरसे बिकता है, क्यों कि इसमें कारबन बहुत कम होता है। लकड़ी भी दो प्रकार की होती हैं—पोली और भारी। पोली लकड़ी भभक के साथ जलती तो है परन्तु इसकी आँच कमजोर होती है और चीड़ जैसी लकड़ी तो गैस भी बहुत देती है। इसलिये जहाँ तक हो सके भारी लकड़ीका प्रयोग करना चाहिये, क्योंकि इसकी आँच काफी तेज़ होती है इसलिये कम लकड़ीमें ही काम बन जाता है।

प्लास्टर आफ पेरिस रखनेके लिये भण्डार
नियत स्थान पर हवा, पानी, सीलन आदि से बचनेके लिए एक ऐसा कमरा होना चाहिये जिसकी फर्श और दीवालों पर सिमेंट लगी हो। यदि ऐसा कमरा किराये पर न मिल सके तो बोरियाँ या काठके सन्दूक बनवा लेनी चाहिये। प्लास्टर आफ पेरिसको इनमें रखनेसे पहले इनको खूब साफ धो-पोंछ डालना चाहिये जिससे उनमें किसी तरहकी धूल और मैल न रहने पावे। अब ये किसी भी सूखे और साफ मकानमें रखे जा सकते हैं। यदि यह स्थान किसी बस्तीके बाहर चुना गया है तो उस स्थान पर एक दो पक्के छप्पर ऐसे बनवा लेने चाहिये जिनके अन्दर ये बोरियाँ अथवा सन्दूक़ हवा, पानी और सीलनसे बचे रहें और चौकीदार भी वहाँ आरामसे रह सके।

भंडारोंकी लम्बाई चौड़ाई और संख्या जिपसमके कारोबार पर निर्भर करती है। यदि कारोबार बड़ा हुआ तो बड़े स्थानकी जरूरत पड़ेगी और यदि कारोबार छोटा हुआ तो छोटे स्थानसे ही काम चल जायगा।

हाँ, ऊपर काठके सन्दूक और बोरियोंके बनानेकी बात कही गई। काठके सन्दूक कोई उत्तम ढङ्गके बनानेकी आवश्यकता नहीं है। ये सस्तेसे सस्ते बनवाने चाहिये। बोरियाँ भी सस्ती ही हों, परन्तु खूब घनी बुनी हुई हों

जिससे मैदा रूपी जिपसम बाहर न गिरता रहे। यदि इन दोनों चीजोंसे कनस्टर सस्ते पड़ते हों तो वे सबसे बढ़िया हैं। नं० १ जिपसमके लिए साफ किए कनस्टरों का उपयोग लाभदायक है। नं० २ के लिए बोरियोंसे काम लेना अच्छा होगा। यह कोई खास बात नहीं है कि जिपसमका मैदा बोरियों, सन्दूकों और कनस्टरोंमें ही रखा जाय। अन्य कोई भी चीजें इसको रखनेके लिए काम में लाई जा सकती हैं। ये बातें तो केवल इस संकेतमात्र के लिये लिखी गई हैं कि जिपसमका मैदा इस ढङ्गसे भण्डार स्थानमें रखा जाय कि हवा, पानी, गर्मी और सीलनसे वह बचा रहे जिससे मालिककी हानि न होने पावे।

प्लास्टर आफ पेरिस (जिपसम-मैदा) बनाने की विधि।

इसके लिए निम्नलिखित वस्तुओंकी आवश्यकता है :—

(१) बड़े कड़ाह।
(२) बड़ी कर्छियाँ।
(३) सेंटीग्रेड थर्मामीटर।
(४) लकड़ी अथवा कोयला। (इनका वर्णन पहले किया जा चुका है।)
(५) चूल्हा या भट्ठी।
(६) कुछ चक्कियाँ या मैदा पीसनेकी मेसिङ्ग-मशीनें।
(७) थर्मामीटरका तापमान जानने वाला आदमी।
(८) जल और उसके रखनेके बर्तन।

बड़े कड़ाह और कर्छियाँ शुद्ध और साफ हों। यदि कलई किये हुए हों तो बहुत ही अच्छा है। कड़ाहके बाहर कलई करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

चूल्हा अथवा भट्ठी इस ढंगसे बनाई जाय कि अग्नि की उष्णता कड़ाहके चारों ओर एक समान रूपसे लगे। ऐसा न हो कि गर्मी कड़ाहके किसी भागमें अधिक और किसीमें कम पहुँचे। ऐसी गलतीसे प्लास्टर आफ पेरिस बिगड़ जायगा। हलवाईके चूल्होंको कुछ वैज्ञानिक सुधार देनेके बाद वे समान रूपसे चारों ओर गर्मी पहुँचाने वाले हो सकते हैं। हलवाईके चूल्हेका मुँह कम चौड़ा होता है जिससे कड़ाहके नीचे ही भागमें अधिक गर्मी पहुँचती है। यदि इस चूल्हेके मुखका भाग इतना चौड़ा कर दिया जाय कि कड़ाहका कुछ भाग इनमें समा सके तो काम ठीक चल जायगा। परन्तु एक बात स्मरण रखनी चाहिए कि इस चौड़े किये हुए मुख पर तीन या चार ऐसी ईंटें या आगसे न टूटने वाले पत्थर स्थित कर देने चाहिये जिससे कड़ाह कुछ ऊपर उठा रहे और आगकी लपट उन छिद्रोंसे बाहर निकल कर कड़ाहके चारों ओर बराबर पहुँचती रहे। कड़ाहको चूल्हे पर चढ़ाकर स्थिर कर लो।

अब नं० १ जिपसमके हथौड़ोंसे छोटे छोटे कँकरीट बना लो। इन ककरीटोंको कड़ाहमें डाल दो परन्तु कड़ाह को पूरा न भरो। कुछ खाली रहने दो। चूल्हेमें खूब आग प्रज्वलित करो। जिपसम कड़ाहमें गर्म होने लगेगा। कर्छियोंसे चलाते जाओ ताकि कँकरीटें ऊपरसे नीचे और नीचेसे ऊपर होकर समान रूपसे पकती जायँ। अब कँकरीटें गर्मी पाकर पकनी आरम्भ होती हैं और कुछ उबलती-सी जान पड़ेंगी क्योंकि उसमें से जलकी मात्रा भाफ बन कर उड़ने लगी है और ऊष्णताके कारण उसमें उलट फेर होकर रासायनिक क्रियायें हो रही हैं। यह उबलनेका समय अतीव सावधानी रखनेका समय है। कर्छियोंसे खूब चलाओ। कोई टुकड़ा कच्चा न रहने पावे।

थर्मामीटर लगाकर बार बार उष्णताका मान लेते रहो। एक समय ऐसा आयेगा कि थर्मामीटर अपने तापमानको १२० अंश दिखलायेगा। इस तापमान पर जिपसम को लगभग पका हुआ समझ लो। हाथकी उँगलियोंमें थोड़ा सा लेकर पीसकर जाँच करो। मक्खनकी भाँति लस कर पिस गया तो प्लास्टर आफ पेरिस तैयार हो गया। चूल्हेकी आँच ठण्डी कर दो अथवा कड़ाहको एकदम उतार डालो। परन्तु यदि उँगली पर पीसनेमें लसके साथ कुछ कच्ची टुकड़ियाँ लगे तो तापमानके १२०° और १३०° के बीच उस तापमान अंश तक बढ़ने दो जहाँ पर वे कच्ची टुकड़ियाँ भी पक जाती हैं। अब जिपसम मैदाके लिए बिलकुल तैयार हो गया। परिपक्वका यह तापमान १३०° अंतिम सीमा है। इससे अधिक तापमानमें जिपसम बिगड़ जायगा।

बात यह है कि प्लास्टर आफ पेरिस में जिपसमके परिपक्व होने पर भी जिपसमके २० भाग जलमेंसे तीन भाग जलका रहना परम आवश्यक है; तभी यह उत्तम प्लास्टर आफ पेरिसका रूप बन सकता है। शेष जल भागमें जिपसम पककर तैयार होता है और वह भाफ बनकर उड़ जाता है।

यदि पकनेकी क्रियामें असावधानीकी गई और जिपसममें से यह तीन भाग जल उड़ गया तो जिपसमका शेष चूरा भाग कुछ कामका नहीं रहता—वह केवल साधारण चूना हो जाता है अथवा खड़िया मिट्टीके समान हो जाता है। इस प्रकारके बिगड़े जिपसमको जलहीन चूना (Anhydrite) कहते हैं। वह कोई कीमती चीज नहीं है। इसलिए थर्मामीटरसे तापमानको बराबर देखते रहना परमावश्यक है और इसके लिए—उत्तम थर्मामीटरकी आवश्यकता है।

इस तरह कारोबारके अनुसार दो, चार, छ कड़ाहों से एक ही बार काम लिया जा सकता है।

अब इस परिपक्व जिपसमको ठंडा होने दो और ठण्डा होने पर मेसिङ्ग मशीनमें डालकर पीस डालो। मशीन जितने मेस (Mess) की होगी उतना ही बारीक यह मैदा भी बनेगा और जितना बारीक यह मैदा होगा उतना ही उत्तम प्लास्टर आफ पेरिस समझा जायगा।

जिपसमके कारोबारमें इस मेसिंग मशीनका लगाना ही अधिक व्ययकारी है। यदि कारोबार बड़ा है तो मशीन लगाना आवश्यक हो जाता है—चाहे वह बिजलीसे चलने वाली हो अथवा भाप से। या छोटेसे कारोबारमें हाथसे चलाई जाने वाली हो। यदि कारोबार छोटा ही है तो चक्कियोंसे भी काम लिया जा सकता है। ये चक्कियाँ हाथसे घुमानेवाली हों अथवा पनचक्कियाँ हो। परन्तु चक्की प्लास्टर आफ पेरिसका मैदा उतना महीन नहीं पीस सकती जितना मशीनें। परन्तु प्लास्टर आफ पेरिस जितना महीन होता है उतना ही उत्तम होता है। फिर भी यदि पीसनेके लिये मशीने न लगाई जा सकें तो चक्की ही से काम लिया जाय।

मेसिङ्ग मशीनें कई नम्बरकी होती हैं। कोई २० मेसकी तो कोई ४०, ५०, ६० इत्यादि मेसकी होती हैं। मैदा ४० और ५० के बीचका मेस होता है। मेस अंग्रेजी का शब्द 'Mess' है जिसका अर्थ है 'बारीकीका मान' यह बिजलीसे अथवा भाप आदिसे चलने वाली मशीनें होती हैं। मैदा, आटा इत्यादि महीन चूर्ण इन्हीं मशीनों से पीसा जाता है। यह सभी जानते हैं कि दो भारी गोल पत्थरके पाटोंको एक बुडली अथवा लूती, एक कोयली, एक कील, एक पाटी और पाटीको ऊपर नीचे उठाने वाली चाँपरीके सहारे मिलाकर पीसनेवाली सीधी-सादी चक्की तैयार कर देते हैं। चाँपरीको ऊपर नीचे कर देनेसे मेसिङ्ग का मान घटता बढ़ता है। उठानेसे चक्की मोटा पीसने लगती है और नीचा करनेसे महीन पीसने लगती है।

चक्की लगानेमें एक बातका अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि चक्कीके पाट ऐसे पत्थरके नहीं लेने चाहिये जो नरम हो और खुद ही पिसता रहे। पाटोंके घिसनेसे जो महीन बालू रेत निकलती है वह प्लास्टर आफ पेरिस के पीसनेके वक्त उसमें मिल जाती है और तमाम प्लास्टर आफ पेरिसको सर्वथा खराब कर देती है। इसलिये कठोर पत्थरोंसे बने हुए पाटोंको इसके लिए इस्तेमाल करना चाहिये। काममें लाये हुये पाट मिल सकें तो बहुत अच्छा है क्योंकि नये बने हुए पाट आपसमें अवश्य घिसते हैं और बालू देते हैं। नई चक्कीके पिसे हुए आटेमें आपको रेत अवश्य मिलेगी। इसलिए काममें आये हुए घिसे पाट अच्छे लाभदायक सिद्ध होंगे।

चाहे मशीनें लगी हों और चाहे चक्कियोंसे काम लिया जाय परन्तु वे जिस स्थानमें लगाई जायँ वह स्थान साफ और सुथरा होना चाहिये। हो सके तो पीसनेके पश्चात् जहाँ प्लास्टर आफ पेरिस गिरता है वहाँ सब पक्की फर्श हो ताकि जब वह बटोरा जाय तो उसके साथ बाहरी धूल, गर्द, कंकर और मिट्टी मिलकर न आ सके। ऐसा भी साधन हो कि हवा या अन्य किसी कारणसे बाहरसे उड़कर ये चीज़ें जिपसमके मैदेमें आकर न मिल सकें।

जिपसमके मैदेकी भी विविध भाँतिके बहुतसे कामोंमें आवश्यकता होती है, इसलिये उसकी खपत दिन-प्रति दिन अधिक हो रही है। परन्तु भारतवर्षमें प्रर्याप्त खानोंके होते हुए भी और प्लास्टर आफ पेरिसके कुछ कारोबार होते हुए भी क्या बात है कि यहाँ विदेशोंसे आये हुए

जिपसमकी अधिक माँग और खपत है ? कारण मैं स्वयं ऊपर लिख चुका हूँ। भारतवर्षमें बने जिपसमके मैदेमें कई तरहकी खराबियाँ पायी जाती हैं जैसे बालू, मिट्टी, चूना, गर्द आदिका मेल; और ये बातें कर्मचारियोंकी असावधानीके कारण होती हैं।

इसलिए भारतके जिपसमके व्यवसायियोंको राष्ट्र-उन्नति-के नाते पर उत्तम प्लास्टर आफ पेरिस तैयार करनेका यत्न करना चाहिये। प्लास्टर आफ पेरिसकी खपत भारतमें काफी मात्रामें है, इसलिये अब इसकी ओर अधिक लापरवाही करनेसे बड़ी हानि होगी।

अब हम नं० २ के जिपसमके विषयमें कहेंगे। इसे व्यावसायिक जिपसम (Commercial Gypsum) कहते हैं। इसमें कुछ अंश अन्य खनिज पदार्थोंका भी मिला हुआ मिलता है, इसलिये मकानोंकी सफेदी आदिके कामके सिवा अन्य सूक्ष्म कामोंमें जैसे औषधिके काममें नहीं आ सकता है।

इस व्यावसायिक जिपसमके बनानेकी भी वही तरकीब है जो नं० १ जिपसमके लिये लिखी गई है, परन्तु इसका परिमाण अत्यधिक होनेके कारण कड़ाहोंमें पकानेमें समय बहुत लगेगा इसलिये इसको भट्टे बनाकर उनमें भी पका सकते हैं। स्मरण रखिये चूना फूँका जाता है परन्तु जिप-सम पकाया जाता है। इसको पकानेके लिये जिन भट्टोंकी जरूरत होती है उनकी बनावट चूनेके भट्टोंके समान होने पर भी कुछ ठीक ढंगसे सुधरे हुए होने चाहिये जैसे भट्टे चीनी मिट्टीके बर्तन पकानेके लिये बनाये जाते हैं वैसे ही यह भी होने चाहिये ताकि उस पर थर्मामीटर लगाया जा सके। चीनी मिट्टीके भट्टे कीमती ईंटोंसे मजबूत बनाये जाते हैं, परन्तु इस भट्टे में कीमती ईंटोंकी जगह साधारण ईंटों या पत्थरके टुकड़ोंको इस्तेमाल करना चाहिये और कच्चे ढंगसे चुन लेना चाहिये। यह भट्टा बड़े पीपेकी तरह गोल बनाना चाहिये। पहले नीचे फर्शको खूब कूट लेना चाहिये और उस पर पका हुआ चूना बिछा कर खूब दबा देना चाहिये। तब कुछ चुन कर एक खिड़की-सी आग लगानेके लिये बना लेनी चाहिये। भट्टा मुँहकी तरफ चुन कर ऐसा लाना चाहिये कि उसका मुँह तलकी अपेक्षा कुछ कम चौड़ा पड़े।

अब नीचे तल पर लकड़ी बिछा दो। उस पर जिपसम-के कुछ टुकड़ोंकी एक तह बिछा दो। फिर लकड़ी रखो और उस पर दूसरी तह जिपसमकी बिछा दो। इस तरह एक तह लकड़ी और उस पर जिपसमकी तह बिछा बिछाकर भट्टे के मुँह तक लाकर आखीर लकड़ीकी तहको पत्थरोंसे दबा दो। छोड़ी हुई खिड़कीका मुँह हवाके रुखकी तरफ होना चाहिये ताकि आग सुलगनेमें देर न लगे। भट्टे पर थर्मामीटर लगा दो। बाहर १०७° ताप मान होने पर भट्टेको ठण्डा करने लगो। भीतरका तापमान उस समय लगभग १२०° के होगा। जिपसम इस गर्मीमें पक जाता है। निकालकर चक्की या मशीनमें डालकर पीस डालो—बस व्यावसायिक प्लास्टर आफ पेरिस तैयार हो गया।

चाहे वह नं० १ का हो और चाहे नं० २ का जिपसम को इस प्रकार पकाना चाहिये कि उसमें ३ अंश जलका रह जाय। इस तीन अंश जलके न रहने पर यह सादा चूना हो जाता है जिसको खरिया (chalk) कहते हैं और इससे स्कूल के स्याह पटों पर लिखने के लिये चाक स्टिक (chalk stick) बनती है जो आजकल बहुत बिकती हैं।

पीसनेके पश्चात् बारीक छेदकी चलनीसे प्लास्टरको छान लेना चाहिये और छाने हुए जिपसमके मैदेको बोरों और सन्दूकोंमें रख देना चाहिये। बहुत हो तो सिमन्ट किये हुए कमरेमें रखना चाहिये।

नं० १ के जिपसमको शुद्ध और साफ किये हुए कन्सटरोंमें रखना चाहिये जिससे कि वह खराब न होने पावे।

(४)

रसायन-शास्त्रको परिभाषायें और विश्लेषण-

रसायनशास्त्री जिपसमको कैलशियम सल्फेट कहते हैं जिसको वे अपने संकेतोंमें यों लिखते हैं—$Ca\ SO_4$, $2H_2O$ जिससे प्रकट होता है कि यह कैलशियम गन्धक और आक्सिजनका यौगिक है जिसमें दो अणु जलका भी होता है। परन्तु जब यह पकाकर प्लास्टर आफ पेरिस बनाया जाता है तो इसका संकेत हो जाता है $(Ca\ SO_4)$ $2H_2O$ जिसमें जल स्वाके जलके रूपमें नहीं रहता। जब पानीका भाग सब उड़ जाता है तो वह खड़िया मिट्टी

(chalk) $CaSO_4$ ही रह जाता है।

विश्लेषण करने पर इस प्लास्टर आफ पेरिसमें कभी-कभी नीचे लिखी चीज़ें मिलती हैं :—

एलूमिना, लोहा, सिलिकेट, कारबन, दूसरे किस्मका चूना, फिटकरी, सुहागा, नमक इत्यादि।

परन्तु नं० १ के जिपसम मैदेमें इन मिश्रणोंका प्रायः अभाव होता है और यदि होता भी है तो एक दो चीजोंके अलावा अन्य नहीं मिलते और वे भी बहुत कम अंशमें जिसके कारण जिपसम मैदेके गुणोंमें कोई परिवर्तन नहीं होता है।

किसी भी खानके जिपसमके प्लास्टर आफ पेरिसका विश्लेषण रसायनके किसी भी पटु शास्त्रीसे कराया जा सकता है। धनबाद माइनिङ्ग स्कूल ऐसे विश्लेषणोंके लिये पटु हो सकती है। अथवा बनारस ज्योलौजिकल डिपार्टमेन्ट जो बनारस विश्वविद्यालयका अपना निजी है ऐसे विश्लेषणोंको यथार्थ रूपसे कर सकता है। इसलिये जिपसमकी खानके और उससे निकलने वाले मालके व्यवसायियोंको विश्लेषण कराये बिना कार्य आगे न बढ़ाना चाहिये। यदि जिपसमकी किस्म बिलकुल ही रद्दी है तो वह लाभके बदले हानि ही पहुँचायेगा।

सबसे बढ़िया जिपसम वह है जिसमें कैलशियम सलफेट ८० और ९९ प्रतिशतके बीचमें हो। मध्यम श्रेणीका जिपसम वह है जिसमें यह ६० और ८० प्रतिशतके बीचमें मिले और इससे नीचे मात्रामें मिलने वाले कैलशियम सलफेटको निम्न श्रेणीका जिपसम कहते हैं। इस निम्न श्रेणीके जिपसमकी किस्में कभी-कभी सङ्गमरमरसे मिलती हैं और सङ्गमरमरकी खानोंमें कुछ-कुछ ऐसा जिपसम पाया जाता है।

नं० २ के जिपसममें मिश्रण मिलते हैं परन्तु इन मिश्रणोंसे इसकी उपयोगितामें कुछ अन्तर नहीं आता है। केवल फिटकरी, नमक और सुहागेकी मात्रा यदि कुछ भी बढ़ी तो इसके ढालने या पालिश करने या फर्श, दीवाल आदिको पक्की चिकनी सुफेदी करनेमें ठीक सफलता नहीं होती है। इन चीजोंकी उपस्थिति जिपसमको ठीक तरहसे बैठने (सेट होने) नहीं देती है। इसीलिये तो नमककी खानोंके साथ निकलने वाला जिपसम सेट होनेमें बेकार-सा होता है।

(५)

जिपसम और जिपसम मैदाके उपयोग

(१) शुद्ध और साफ प्लास्टर आफ पेरिस औषधि वर्गमें सम्मिलित किया गया है। इसकी पट्टियाँ कई रोगोंमें इस्तेमालकी जाती हैं। यह शुद्ध जिपसम नं० १ वाले जिपसमसे प्राप्त किया जाता है और इसीलिये इसके बनानेमें उतनी शुद्धताका ध्यान रखना आवश्यक है जितनी प्लास्टर आफ पेरिसके बनानेके अध्यायमें लिखी गई हैं।

इसलिये औषधिके लिये जो प्लास्टर आफ पेरिस तैयार किया जाता है वह नं० १ के जिपसमसे अति शुद्धतापूर्वक बनाना चाहिये और पीसनेकी मशीनको धो पोछकर तब मैदा पीसना चाहिये। पीसनेके समय किसी प्रकारकी धूल, गर्द, मिट्टी आदिका कोई अंश नहीं मिल जाना चाहिये। मैदेको साफ डब्बोंमें चाहे वे टिनके हों अथवा कागजके पट्टोंसे बने हों—वायुबद्ध (air tight) बन्द कर देना चाहिये। इन डब्बोंका परिमाण आधा सेर, सेर भर, दो सेर, पाँच सेरसे अधिक नहीं बनाना चाहिये। अधिक बड़ा बनानेसे औषधालयोंको बाँटने, इस्तेमाल करने या इधर-उधर ले जानेमें कठिनता होती हैं। दूर भेजनेके लिये अथवा किसी औषधि निर्माण करने वाली कम्पनीको भेजनेके लिए बड़े-बड़े ड्रमों (Drums) में यह मैदा बन्द कर भेजा जा सकता है।

जिपसम-मैदाकी पट्टियाँ लड़ाईके उन घायलोंके काममें लाई जाती हैं जिनकी हड्डियाँ टूट गई हों या जो बड़े-बड़े घावोंसे पीड़ित हों। इन टूटी हुई हड्डियोंके स्थान पर बाहरसे एक खास कारीगरीसे इसके मैदेकी पट्टियाँ बनाकर बाँधी जाती हैं। जिपसम मैदाको एक खास तरहसे जिसको अभ्यस्त चिकित्सक अच्छी तरह जानते हैं, भीगी पट्टियों पर बिछाकर हल्के तौरसे लिटा देते हैं और तब धीरेसे उनको पानीके बर्तनमें डुबाकर भिगा लेते हैं। यह जिपसम-मैदा पानीमें भीग कर उस पट्टी पर ठीक बैठ जाता है, बस पट्टी बन जाती है। इस पट्टीको हड्डी टूटे (Fracture) स्थानमें बाँध देते हैं। इस उपायसे टूटी हड्डियाँ स्थिर रहनेसे जुड़ जाती हैं। शरीरके अलग-अलग अङ्गोंके लिये अलग-अलग ढाँचेकी पट्टियाँ बनाई जाती हैं। ये काम चिकित्सकोंके हैं और हमारे विषयसे बाहर हैं।

जिपसम मैदेकी क्रीम (Cream) बनाकर गद्दियाँ (Pads) तैयारकी जाती हैं और घावों पर बाँध दी जाती हैं। घाव आराम हो जाते हैं। बात यह है कि कैलशियममें कृमिनाशक शक्ति है और वह घावोंमें कृमि पैदा नहीं होने देता है इसलिये घाव आराम हो जाते हैं।

इस युद्धमें प्लास्टर आफ पेरिसका प्रयोग युद्धके घायलोंकी चिकित्सामें बहुतायतसे किया गया था।

प्लास्टर आफ पेरिस हड्डीके क्षय रोगमें एक खासी अच्छी दवा है। इस रोगमें हड्डी पहले सूज कर मोटी होने लगती है। साथ ही दर्द भी होने लगता है। तत्पश्चात् हड्डी पर घाव बन जाते हैं चाहे वे भीतरको मुँह बनाये या बाहर की ओर। यह बीमारी मनुष्यके प्राण हर लेती है। अंगुल हाड़ा इसका एक उदाहरण है। जब ऐसी बीमारी उत्पन्न हो जाती है तो उसका तुरन्त इलाज कराना चाहिये। डाक्टर बहुधा ऐसे हड्डीके क्षय रोगके स्थान पर प्लास्टर आफ पेरिसकी ही पट्टियाँ बाँधते हैं। क्षय रोगके निवारणमें कैलशियमका बहुत हाथ होता है, इसलिये इस रोगमें ऐसी जिपसम पट्टियाँ अधिकतर लाभदायक सिद्ध होती हैं। इसके साथ साथ कैलशियम खानेको भी दी जाती है। परन्तु यह खानेका कैलशियम और किसी विशुद्ध ढंगका बना होता है।

जिपसम मैदासे एक प्रकारकी लेप (Cream) बना कर अन्य छोटे मोटे घावों पर इस्तेमाल करते हैं।

विदेशी ऐन्टी फ्लोजिस्टिन और स्वदेशी ऐन्टी फ्लेमिन लोगोंने देखा ही होगा। निमोनियाके और बहुत किस्म के सूजन, बिना रक्त बहने वाली चोटें आदिमें इन औषधियोंका बहुत प्रयोग होता है। इसी ऐन्टी-फ्लोजिस्टिन के किस्मकी औषधि जिपसम-मैदा द्वारा तैयारकी जा सकती है जिनकी सामग्री (Ingredients) का निश्चय चिकित्सक करते हैं और कर सकते हैं। परन्तु इस लेप में जलके बजाय तेल मिलाया जाता है। मैंने स्वयं कुछ कठ-वैद्योंको इस प्रकारका घरेलू ऐन्टी फ्लोजिस्टिन बनाते देखा है और मैंने भी दो चार बार इसकी परीक्षा की है जो ठीक ही उतरा है। इस लेपके बनानेमें जिपसम-मैदा एक खास वस्तु है। बच्चोंके पेट जब फूल जाते हैं तो उस फूले हुए पेट पर गुनगुना करके एक महीन कपड़े पर फैलाकर पट्टी सा बाँध देते हैं। इस प्रकार सात आठ पट्टियाँ बाँधनेके बाद बच्चेका फूला हुआ पेट ठीक हो जाता है। इन पट्टियोंके लगाने पर बच्चेके पेटमें एक खास क्रिया होती है जिससे उन दिनों बच्चेको खूब दस्त उतरते हैं। इस लेपको फूले हुए ग्लैंड पर गर्म करके लगानेसे वे आराम हो जाते हैं। कहनेका अर्थ यह है कि यह लेप ऐन्टी फ्लोजिस्टिनसे अच्छा काम कर सकता है। इस प्रकार जिपसम-मैदा लेप आदिके रूपमें तैयार कर बाह्य प्रयोगोंके लिये औषधिके रूपमें प्रयोग होता है। जहाँ खानेकी औषधि-रूपमें प्रयोग करनेका प्रश्न आता है वहाँ केवल लाइम वाटर याने चूनेका पानी के सदृश कैलशियम-जल इस जिपसम मैदासे भी तैयार किया जा सकता है जो निस्संकोच इस्तेमाल किया जा सकता है। परन्तु ऐसे जलके बनानेके लिए बहुत ही शुद्ध जिपसम प्रयोगमें लाना चाहिये और यह चिकित्सकों के द्वारा बनाया जाना चाहिये जो इसका तोल, परिमाण ठीक जान सकें न कि जन-साधारणके द्वारा।

रंग, पालिश—जिपसम-मैदाका दूसरा उपयोग रङ्ग और पालिश बनानेमें होता है। सफेदा सबने देखा है। यह जिपसम मैदा ही है। लोहेकी बनी चीजों पर जैसे पलंग सेफ आदि पर जिपसम-मैदाके सफेदेका रजत रङ्ग लगाया जाता है और बहुत ही सुन्दर लगता है। इस सफेदेमें कोई भी अन्य रङ्ग मिलाकर धातु, काठ मिट्टी आदिकी कोई भी चीज बड़े मजेमें रङ्गी जा सकती है जो अच्छा टिकाऊ होता है और वह चीज भी शीघ्र चीता आदि लगनेसे बचकर दीर्घजीवी बन जाती है। बहुत प्रकारके बोर्डों (तख्तियों) को आपने सफेद रङ्गा हुआ देखा होगा जिनपर अन्य रङ्गोंसे कई नमूनेके अक्षर लिखे जाकर इच्छानुकूल साइन बोर्ड बनाकर जन-साधारणको किसी विशेष बातको बतानेका विज्ञापन दिया जाता है। अथवा किसी काले रँगे तख्ते पर सुफेद अक्षरोंकी विभिन्न सूरतें साइन बोर्डके रूप सब ही रोज देखते हैं। ये सब रङ्गना, पालिश करना और लिखना जिपसम-मैदा द्वारा ही किया जाता है।

बढ़िया चीनी मिट्टीके बर्तनों पर और मिट्टी की बनी हुई मूर्तियों या अन्य कोई भी मिट्टीकी ढाली हुई वस्तुओं

पर जो कट्टर और सफेद रङ्ग आपने देखा होगा वह बहुधा जिपसम-मैदासे ही बनता है। यह एक किस्मका खास पालिश बनाया जाता है जो इन चीजों पर पालिश किया जाता है और चूँकि जिपसमका गुण है शीघ्र बैठकर कट्टर हो जाना। इसलिये यह पालिश शीघ्र सेट (Set) होकर वस्तुओंको अग्निमें एक हलकी सी पुट दे देते हैं, बस सफेद पालिश चढ़ गई।

कदाचित कुछ काँच बनानेके कारखाने काँच बनानेमें इसका प्रयोग करते हैं। यह नहीं कहा जा सकता है कि वह कैसा प्रयोग है। काँचकी बनी चीजोंके अन्दर जो रङ्ग बिरङ्गी पँखुड़ियाँ दिखाई देती हैं उसमें जिपसम-मैदाके रङ्गकी सहायता ली जाती है।

जिपसम-मैदासे मकानों की दीवालें और फर्श पक्की तरहसे पालिश किये जाते हैं जो चूनेकी पुताईकी तरह रगड़ खानेसे शीघ्र उखड़ नहीं जाता है। इसके लिये नं० २ का जिपसम उपयोग किया जाता है। कोई यदि नं० १ का जिपसम इस कामके लिये प्रयोग कर सके तो वह पालिश काँचकी तरह चमक सकता है परन्तु इसमें व्यय अधिक है। कहते हैं कि रोम नगरमें प्रत्येक भव्य मन्दिर पर इसी प्रकारका पालिश किया जाता था। मकानों पर इस प्रकारका चमकदार और पक्का पालिश या तो सफेद ही हो सकता है या किसी भी किस्मका रङ्ग उसमें मिला कर रंगीन किया जा सकता है। चतुर कारीगर दीवालों और फर्शोंको इसके द्वारा अनेक किस्मके बेल बूटे बनाकर सजा देते हैं।

मकानके कमरोंमें सजावटके लिये इससे कई प्रकारके उभरे हुए चित्र बनाये जा सकते हैं जो रङ्ग-बिरङ्गे अथवा केवल सफेद ही बनाये जा सकते हैं।

सिमेंटमें जिपसमका प्रयोग होता है इसके मिलानेसे सिमेंटमें अधिक चमक और चिपकपन आ जाती है।

नं० ३ का जिपसम चूना साधारण चूनेसे कई गुना उत्तम होता है। अवश्य साधारण चूनेसे इसमें व्यय अधिक बैठता है परन्तु कहावत है कि सस्ती रोवे बारम्बार और मँहगी रोवे एक बार। सस्ते चूनेके बार बार खर्चसे इसके एक बारका मँहगा खर्च अधिक सुखदाई होगा। दूसरी बात यह है कि जिपसम चूनेमें सुफेदी और चिपकपन साधारण चूनेसे अधिक होती है।

प्लास्टर आफ पेरिसको जलके साथ गूँधकर जो लेई बनती है वह सूखने पर कठोर और दृढ़ हो जाती है और उस पर हवा पानीका कम असर होता है। इसलिये उससे वे मूर्तियाँ ढाली जाती हैं और आपने बहुधा बागों या किसी गिरजाघरके आस-पास रखी देखी होगी।

ईंट—कुछ खनिज ऐसे हैं जो कई सौ अंशके ताप-क्रम पर गलते हैं जैसे लोहा। इन खनिजोंको गलानेके लिये ऐसे भट्टोंकी आवश्यकता होती है जो उस बड़ी आँच-को सह सकें और जिन ईंटोंसे वह बना हुआ है वे ईंटें गल न सके। इसलिये ऐसी ईंटें प्लास्टर आफ पेरिससे बनाई जाती हैं। यद्यपि इन ईंटोंके बनानेमें प्लास्टरके साथ कुछ अन्य चीज़ें भी मिला देते हैं, परन्तु असल चीज़ प्लास्टर आफ पेरिस ही है। ये ईंटें बड़ी मँहगी मिलती हैं। इसलिये ऐसे भट्टोंके तैयार करवानेमें काफी खर्च बैठ जाता है। चीनी मिट्टीके बर्तन, बोताम आदि मिट्टीके चमकदार बर्त्तनोंके पकानेके लिये भी ऐसे ही भट्टे बनाये जाते हैं।

दाँतके डाक्टर जो नकली दाँत बनाते हैं वे इसी प्लास्टर आफ पेरिससे बनाते हैं और इसीसे बने मसालेमें दाँतोंको चिपकाकर लगाते हैं।

जिपसम-चूनेसे कई प्रकारकी स्लेटें बनाई जाती हैं जो फर्श पर बिछाई जा सकती हैं और मेजके तख्तोंका काम भी देती हैं। बिछानेकी इस सुन्दर तख्तियोंको 'टाइल' कहते हैं। चायके होटल अब बहुधा ऐसी ही तख्तियोंके मेज बनाकर इस्तेमाल करते हैं क्योंकि चाय अथवा पानीके गिरनेसे लकड़ीके तख्ते खराब हो जाते हैं परन्तु इसकी बनी तख्तियाँ धो डालने पर सुन्दर स्वच्छ हो जाती हैं। फर्शों पर ये टाइलें बिछाई जाकर जो फर्श बनते हैं उनको भी मैला होने पर पानीसे साफ धोया जा सकता है।

जिपसमके प्राकृतिक टुकड़ोंको छेनीसे काट-काटकर और खोदकर लोग बर्तन भी बनाते हैं जैसे प्यालियाँ, कटोरी आदि। कोई-कोई इनको ढाल कर कितने ही प्रकारकी सजावटकी सुन्दर वस्तुएँ तैयार कर देते हैं।

[शेष पृष्ठ ३२]

डारविन और उनका 'विकासवाद'का सिद्धान्त

विश्व-विख्यात वैज्ञानिकके चरित्र पर एक दृष्टि-निक्षेप

[ले० प्रोफेसर ए० एम० लो द्वारा]

समस्त संसारको अपने मतसे प्रभावित करने वाले विद्वानोंमें, चार्ल्स राबर्ट डारविनका स्थान सबसे ऊँचा है। वैज्ञानिक प्रगतिके इतिहास पर दृष्टि निक्षेप करनेसे पता चलता है कि उनके 'विकासवाद'के सिद्धान्तके प्रकाशमें, प्रायः सारे विज्ञान एक-दूसरेसे सम्बद्ध पाये गये और जीवन-श्रृङ्खलाकी अन्य कड़ियोंके लिये अधिक तीव्रतासे अनुसंधानकार्य आरम्भ हुआ है।

शताब्दियोंसे धर्म-ज्ञानियों तथा वैज्ञानिकोंका यह अटल विश्वास चला आता रहा था कि सब जीवोंके वंश (नसलें) स्थिर तथा अपरिवर्तनशील है। किन्तु १८वीं शताब्दीके तीक्ष्ण विचारकोंने इस विश्वासमें संदेह करना आरम्भ किया और प्रकृतिके उनके प्रत्यक्ष पर्यवेक्षणसे, विकासवाद सम्बन्धी प्रथम विचारोंका प्रादुर्भाव हुआ। परिवर्तनशील विचारोंके इसी कालमें, शुजबरीके एक जन-प्रियचिकित्सकके घरमें १८०६ में चार्ल्स राबर्ट डारविनका जन्म हुआ था।

बाल्यावस्थासे ही चार्ल्स डारविनमें पौधों तथा कीटाणुओंके संकलन एवं अध्ययनका प्रेम और तत्सम्बन्धी परीक्षणके लिए जिज्ञासा विद्यमान थी। एडिनबरा और कैम्ब्रिज में स्कूल तथा कालेजके अपने जीवनसे ही प्रकृति निरीक्षक बननेकी उनकी प्रबल इच्छा थी। किन्तु उनके माता-पिताने उन्हें धार्मिक वृत्ति (चर्च) में लगानेका निश्चय किया।

जीवनका एक बड़ा सुअवसर

कुछ दिनके बाद चार्ल्स डारविनको, जीवनका सबसे बड़ा सुअवसर मिला और वे 'बीगल' नामक सरकारी जहाजमें प्रकृति-निरीक्षक (नेचरेलिस्ट) के पद पर नियुक्त किये गये। यह जहाज दक्षिण अमरीकाके पर्यवेक्षणका विस्तार करने तथा काल-निर्धारण सम्बन्धी जाँच-पड़ताल का काम पूरे विश्वमें सम्पन्न करनेके लिये नियुक्त किया गया था।

२७ दिसम्बर १८३१ को 'बीगल' जहाज ने इंग्लैंडसे प्रस्थान किया। ५ वर्षोंके उसके यात्रा-कालमें चार्ल्स डारविन ने बड़े अध्यवसायके साथ पर्यवेक्षणका अपना कार्य जारी रखा। यात्रामें जो वस्तुएँ भी उन्हें देखनेको मिलीं उनका, वनस्पतियों तथा पशुओंकी विभिन्न नसलोंका, विशद विवेचन उन्होंने अपनी 'पत्रिका'में बादमें किया।

वंशोंकी अपरिवर्तनशीलताका विश्वास मिथ्या

संकलित वस्तुओंके अधिकाधिक परीक्षणके साथ, उनका आश्चर्य भी अधिक बढ़ता गया। अनेक प्रश्न उनके मस्तिष्कमें उत्पन्न होते और उन्हें बेचैन किये रहते थे। एक ही नसलके अनेक व्यक्तियोंमें इतना अन्तर क्यों है? क्या प्रत्येक व्यक्ति पृथक निर्मित होता है? एक ही नसलके कई व्यक्तियोंमें पूर्ण सादृश्य क्यों नहीं पाया जाता? इस प्रकारके प्रश्न उन्हें विश्राम न लेने देते थे। पाँच वर्षों तक चार्ल्स डारविन ने बड़े परिश्रमके साथ सोच-विचार किया और अपने कार्यमें डटे रहे। उसके बाद उन्होंने नसलोंकी अपरिवर्तनशीलताका प्राचीन विश्वास त्याग दिया।

१८३६ में 'बीगल' इंग्लैण्डको वापस आया और चार्ल्स डारविन ने अपने पर्यवेक्षणके अनुभव पत्रिकाके रूपमें प्रकाशित किये। तब, लोगों ने विज्ञानके अन्तर्गत उनका स्थान स्वीकार किया।

इसके कुछ वर्ष बाद चार्ल्स डारविन विवाहित होकर लंदनसे चले गये और केंटके डाउन नामक गाँवमें रहने लगे। वहाँके निस्तब्ध एवं शांति-पूर्ण ग्राम्य वायु-मंडलमें उन्होंने व्यवस्थित रूपसे अपना कार्य जारी रखा और स्वास्थ्य गिर जाने पर भी वंशोंकी उत्पत्तिके प्राकृतिक कारणों का अनुसंधान नहीं छोड़ा।

अस्तित्व कायम रखनेकी लड़ाई

प्रकृतिके गूढ़ातिगूढ़ रहस्योंके सूक्ष्म निरीक्षणमें वे तन्मय हो गये। गाँव-गाँवका और खेत-खेतका वे चक्कर लगाते, किसानों तथा प्राणि-शास्त्रके जानकारोंसे परामर्श करते और संसारके विभिन्न देशोंके कार्यकर्ताओंसे लिखा-पढ़ी करते रहे। अन्तमें वे, प्रकृतिके इस निगूढ़ नियमका पता लगानेमें सफल हुए कि अस्तित्व कायम रखनेकी कठिन लड़ाईमें, सर्वाधिक, योग्य नसल ही जीवित बचती है। इस लड़ाईमें प्रत्येक पौधे, कीटाणु तथा पशुके लिये आवश्यक है कि वह अपने को वातावरणके अनुकूल बनाये अथवा समाप्त हो जाय। जो नसलें परिवर्तित वातावरणमें इस प्रकार अपनेको बदल सकती है, वे ही जिन्दा रहती है। और इस प्रकार एक निश्चित प्रक्रियाके बलसे, एक वंशमें शनैः शनैः परिवर्तन होनेके कारण एक नये वंशका विकास सम्भव होता है।

वैज्ञानिक समाचार

आवाज़की गतिसे चलनेवाला विमान

वैज्ञानिक उन्नतिके वर्तमान जगत्के सम्मुख आज एक समस्या यह उपस्थित है कि मनुष्यकी सवारीके काम आनेवाले यांत्रिक यानों—रेलों, मोटरों तथा विमानों—को अधिक तीव्र-गति-गामी किस प्रकार बनाया जा सकता है। युद्धोत्तरकालमें, आकाश-मार्गसे यातायातमें अत्यधिक वृद्धि होनेकी संभावनासे, विमानके सम्बन्धमें यह समस्या विशेष महत्वके साथ उपस्थित है। प्रायः सभी बड़े देशोंमें, विमान विशेषज्ञ तथा इंजीनियर इस गुरुतर समस्याके अध्ययन एवं अनुसंधान में दत्तचित हैं।

भावी आकार-प्रकार

भावी विमान निर्माताओंके सम्मुख एक बड़ा प्रश्न यह उपस्थित होगा कि शब्दकी गतिके समान तेज उड़ सकनेके लिए, वर्तमान विमानके आकार-प्रकारमें क्या परिवर्तन करने होंगे। उन्हें उस बातका भी स्मरण रखना चाहिये, कि इन विमानोंमें मनुष्य बैठेंगे अतएव उनके गति विस्तार का क्रम ऐसा होना चाहिए, जिसे मनुष्यका शरीर सहन कर सके।

वास्तवमें विमानकी गतिके अत्यधिक तेज होनेसे इतना खतरा नहीं है, जितना गति-विस्तारके क्रम अर्थात् 'एक्सलरेशन'के अधिक तेज हो जानेसे है। बैठनेवाला तो विमानकी कोठरीमें चारों ओर से बन्द रहता है, और उसे इस बातका कुछ भी पता नहीं रहता कि जिस विमानसे वह यात्रा कर रहा है, वह मील अथवा ८,००० मील प्रति घंटेकी रफ़तारसे उड़ा जा रहा है।

किन्तु गति-विस्तार-क्रमके सम्बन्धमें स्थिति ऐसी नहीं है। उसमें एक निश्चित सीमासे आगे वृद्धि होने पर, यात्रीको धक्का लगेगा और वह पीछेकी ओर दबेगा। इसी प्रकार यदि गति विस्तार-क्रम बढ़ानेके बजाय अत्यधिक कम किया गया, तो यात्री आगेकी ओर दबेगा। वह उसी प्रकारके दबावका अनुभव करेगा जो किसी तेज मोटर-गाडीसे सफ़र करनेवाले यात्रीको गाड़ीके एकाएक धीमी पड़नेसे महसूस होता है।

इनके अतिरिक्त एक और समस्या, विमानके उड़ान भरने तथा भूमि पर उतरनेके समय मशीनको नियंत्रणमें रखनेकी है। प्रत्येक विमानका आकार इन दोनों बातोंको समान रूपसे ध्यानमें रखकर निर्धारित किया जाता है कि निश्चित ऊँचाई पर पहुँच कर निश्चित अधिकतम गतिसे उड़नेमें वह बाधक न हो। यदि विमानका आकार केवल भूमि से उड़ने अथवा भूमि पर उतरनेकी सुविधाओंके ही ख्यालसे आदर्श बनाया जाय, तो उच्चाकाशमें ७०० मील प्रति घंटेकी रफ्तारसे उड़ने पर, विमानका ढाँचा वायु-प्रतिरोधके कारण प्रायः लाल, गर्म लोहेके समान तप उठेगा।

इस समस्याको हल करनेके लिए, विमानके पंख इस प्रकार बनानेकी तरकीब सोची जा रही है, जो विमानके भूमिसे उड़नेके समय तथा कुछ बाद तक तो फैले रहें, पर बादमें टूटकर विमान की दोनों बगलोंमें सट जायँ। ऐसी दशामें विमान पंखहीन दिखाई देगा और उसका आकार एक लम्बे उड़ते जाते बमके समान हो जायगा। किन्तु इसमें भी अनेक कठिनाइयाँ हैं और इंजीनियरोंको इस बातका खयाल रखना है कि उपर्युक्त प्रकारसे टूट सकने वाले पंख, विमानोंको कहीं कमजोर तो न कर देंगे।

ये ही अनेक समस्याएं हैं, विमान-विशेषज्ञों तथा इंजीनियरोंको जिन्हें आगेके लिए हल करना है। इस दृष्टिसे हम कल्पना कर सकते हैं कि भावी शब्द-गति-गामी विमान आजके विमान की तुलनामें, शायद आकार-प्रकारमें एकदम भिन्न होगा।

अलुमिनियम से नीलम और लाल

जवाहरात उद्योग एक नया उद्योग है, जिसने युद्धकाल-में बड़ी उन्नतिकी है। ये रत्न नकली या झूठे रत्नोंकी तरह नहीं होते, बल्कि वास्तवमें सच्चे रत्न होते हैं।

इन वस्तुओंकी आजकल बड़ी माँग है। ठीक ठीक मापने वाले यंत्रोंके वेयरिंगों, छुरी-चाकुओंके किनारों और मापक यंत्रोंके लिए इनकी बड़ी आवश्यकता रहती है। उक्त वस्तुओंकी युद्धकालीन तथा युद्धोत्तर कालीन उन्नति और उनका विस्तार उद्योगके लिए शुभ चिह्न है।

ऐश्वर्य और विलासकी वस्तुओंके रूपमें काममें आने वाले नीलम और लाल को आज रासायनिकोंने इतना गिरा दिया है कि इसे केवल अलुमिनियम ओक्साइ कहने लगे हैं अर्थात् अल्यूमीनियमकी भस्म।

युद्धजन्य परिस्थितियोंके कारण ही ब्रिटेन को इस उद्योगको अपनाना पड़ा है। उससे पूर्व प्रायः जर्मनी, स्विट्ज़रलैंड और फ्रांसमें ही नकली जवाहरात बनते थे। परंतु युद्धकालमें उन्हें प्राप्त करना कठिन हो गया। इस समय ब्रिटेनमें कई भट्टियाँ हैं जहाँ ये जवाहरात बनाये

जा रहे हैं। व्यापारके लिए बनाये जाने वाले ये नकली रत्न बहुत कड़े होते हैं सिर्फ असली हीरा ही इनसे अधिक कड़ा होता है।

हवाई जहाजोंका पथप्रदर्शक यंत्र

रेडारका नया उपयोग

यदि आप एक गैस् मीटरको पढ़ सकते हैं तो आप आसानीसे हवाई जहाज भी चला सकते हैं।

पिछली ३ जनवरी, १९४६ को साउथ किंगस्टनमें फिजिकल सोसाइटीकी ओर से एक प्रदर्शिनीका आयोजन किया गया था। इस अवसर पर गैस मीटरके सम्बन्धमें भी एक प्रदर्शन किया गया था, जिसे देखनेके लिए लोगोंकी भारी भीड़ वहाँ जमा हो गई थी।

यह मोटर रेडियोसे चलता है और बहुत साधारण होता है। मीटरमें तीन यंत्र होते हैं—एक संचालक और दो संचालित जिनकी उपमा एक "मालिक" और दो "नौकरों"से दी जा सकती है—जो संकेत भेजते रहते हैं। उड़नेसे पूर्व चालक लाल और हरे रंग वाली रेखाओंके नक्शेकी ओर देखता है। वह अपने मार्गके ऊपर एक दूसरे को काटने वाली लाल और हरी रेखाओं के अंकोंका पता लगाता है। उसके सामने वाले यंत्रमें दो सूचक रहते हैं "लाल" और "हरा"। इनके तीन भाग—इकाई, दहाई और शतक होते हैं। इन पर भी वही अंक आ जाते हैं, जिनका चालकके मार्गको काटने वाली रेखाएं निर्देश करती हैं। इन घड़ियोंका संचालन बेतारके तार द्वारा किया जाता है। चालकको केवल यही करना होता है कि वह उस समय तक अपना हवाई जहाज चलाता रहे जब तक कि उसके अंक ठीक ठीक न बैठ जाएँ।

इस तरकीबका प्रयोग पहली बार नारमंडीके आक्रमण के समय किया गया था।

प्रदर्शिनी में सूक्ष्मातिसूक्ष्म बातोंका पता लगाने वाले इस प्रकारके और भी बहुत-से यंत्रोंका प्रदर्शन किया गया। प्रयोशालाओं और औद्योगिक उन्नतिमें रेडारकी कार्य-पद्धति (टेक्नीक) का प्रयोग, विद्युत अणु (इलेक्ट्रोन) सूक्ष्म वीक्षण यंत्र, जो वस्तुओंके आकारको ५०,००० गुना तक बढ़ा देता है, गर्म करनेके ऐसे शक्तिशाली यंत्र जिनके द्वारा एक इंचके १०,००,००० वें भाग को भी ठीक-ठीक नापा जा सकता है—तथा स्वचालित नियंत्रण पद्धति जैसी वैज्ञानिक उन्नति जो गत छः वर्षोंकी रहस्यपूर्ण अवधिमें अत्यन्त विस्तृत रूपमें की गई है।

जिपसम

[पृष्ठ २९ शेषांश]

छोटे टुकड़ोंमें मिलने वाला जो जिपसम है वह काँच की तरह चमकदार होता है इसलिये उसको कारीगर लोग औजारोंसे ऐसा काटकर ढालते हैं कि उनसे बनी चीजें अत्यधिक चमकदार होती हैं। इससे बहुधा माला आदि के दाने बनाये जाते हैं जिनको लोग पत्थरके दाने कहते हैं।

जिपसमको लोग खादके काममें लाते हैं।। जो भूमि उर्वरा नहीं होती है उस मिट्टीको ईटवा मिट्टी कहते हैं। ऐसी मिट्टीमें कोई अनाज उत्पन्न नहीं होता है। इसलिये उस भूमिको उर्वरा बनानेके लिये जिपसमका चूना खाद की तरह उस भूमिमें डाल देते हैं। पृथ्वीकी रासायनिक क्रियाओंके द्वारा वह चूना उस ईटवा मिट्टीको भुरभुरा बनानेमें समर्थ होता है और ;फलतः भूमि उपजाऊ बन जाती है।

(६)

मेरे देखनेमें नहीं आया है परन्तु पुस्तकोंके ज्ञान और कुछ लोगोंके कथनानुसार लिखा जाता है कि ऐसे जिपसमकी खानें भी मिलती है जिसमें जलका अभाव रहता है। यह जिपसमकी तरह सफेद तो होता है पर पकने पर कठोर और ठोस नहीं बनता है क्योंकि इसमें नमकका कुछ भाग होता है। यह जिपसमसे अधिक कठोर होनेके कारण सजावटकी वस्तुओंके बनानेके काममें आता है।

विषय-सूची

विज्ञान

विज्ञान-परिषद्, प्रयागका मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ६३ | वृष, सम्वत् २००३, मई १९४६ | संख्या २

रसायन और चिकित्साशास्त्र

(लेखक—श्री अजयकुमार बोस, एम० एस-सी० और श्री योगेश नारायण तिवारी एम० एस-सी०)

रसायन और चिकित्साशास्त्रमें बड़ा निकट संबन्ध है। योरपीय ढङ्गकी चिकित्सा (Allopathic treatment) का जन्म रसायनशास्त्र ही से हुआ है। मध्यकालीन रासायनिकोंकी धारणा थी कि ऐसी कोई दवा बन सकती है जो सब रोगों पर रामबाण हो। इस 'जीवन-सुधा' (Elixir of Life) को बनानेके लिये उन लोगोंने भाँति-भाँतिके रासायनिक पदार्थोंकी औषधि रूपमें परीक्षा की और परीक्षा धीरे-धीरे आधुनिक चिकित्साशास्त्रमें परिणत हो गई।

फ्रांसीसी वैज्ञानिक लुई पास्तूरने यह मालूम किया कि बहुत सी बीमारियाँ अणुजीवों द्वारा होती हैं। यदि इन अणुजीवोंका प्रसरण रोक दिया जाय तो बीमारी भी रुक जायगी या अच्छी हो जायगी। और यदि हम किसी प्रकार रोगीके शरीरमें अवस्थित अणुजीवोंको नष्ट कर दें तो मनुष्य शीघ्र अच्छा हो जायगा। लार्ड लिस्टरने खोज करके यह ज्ञात किया कि कार्बोलिक एसिड आदि रासायनिक पदार्थों द्वारा अणुजीवोंको नष्ट किया जा सकता है। इस खोजके पहले आपरेशन (शल्यचिकित्सा) में बहुत मनुष्य मर जाते थे। इसका कारण यह था कि घावमें अणुजीवों द्वारा ज़हरबाद हो जाता था और फिर रोगी अधिकतर अच्छा नहीं हो पाता था। लेकिन आजकल अणुजीव ध्वंसकारी औषधिका व्यवहार किये बिना कोई आपरेशन नहीं होता, और इसका ध्यान रक्खा जाता है कि घावमें किसी प्रकारसे कोई गंदी वस्तु न छू जाये। इस प्रकार अब आपरेशनमें मृत्युकी संख्या लगभग नहींके बराबर है।

२०० साल पहले आपरेशन कराना कोई आसान काम न था। मरीज़के हाथ-पैर बाँध दिये जाते थे, और बेचारेकी जानकारी में ही छुरी चलाई जाती थी। ज़रा सोचिये तो कि कितनी असह्य वेदना होती होगी; बहुधा पीड़ासे ही मरीज़ मर जाता था। आजसे लगभग २०० वर्ष पहले सिम्पसन (Simpson) ने ढूँढ़ निकाला कि क्लोरोफ़ार्म (Chloroform) नामक एक रासायनिक-पदार्थको सूँघनेसे मनुष्य अचेत हो जाता है। पिछले सौ सालके अन्दर कई और बेहोश करने वाली दवाएँ बनाई गई हैं। आजकल हम मरीज़को इच्छानुसार पूरा बेहोश कर सकते हैं, अथवा छोटे-मोटे आपरेशनके लिये शरीरके किसी भी अंगको थोड़ी देरके लिये अचेत कर सकते हैं। इन बेहोश करने वाली दवाओंके द्वारा मनुष्य जातिको जो

आराम मिला है वह सर्वविदित है। बहुत सी निरर्थक पीड़ाका निवारण हो गया और अब आपरेशन करना आसान और वेदना रहित हो गया है।

रसायनके विद्वानोंके निरन्तर प्रयत्नसे साधारण मनुष्यको उसके शरीरके विषयमें बड़ी जानकारी हो गई है। खाद्य-प्राण (Vitamins) की खोज और परीक्षाके बाद ही स्कर्वी (Scurvy), रतौंधी (Night blindness), रिकेट्स (Rickets) और बेरी बेरी (Beri-beri) की चिकित्सा सम्भव हुई। आजकल रसायनज्ञ रसायनशालाओंमें भी बहुत बड़ी मात्रामें तरह-तरहके खाद्य-प्राण बनाते हैं। हमारे शरीरमें बहुत सी ग्रन्थियाँ हैं जो ग्रन्थि-रस (Hormones) बनाती हैं। ये ग्रन्थिरस हमारे शरीर और मस्तिष्क पर बड़ा प्रभाव डालते हैं। एड्रीनेलीन (Adrenaline), थाइराक्सिन (Tyroxin) आदि ग्रन्थिरस वैज्ञानिकों द्वारा प्रयोगशालमें बनाये जा चुके हैं, और इस क्षेत्रमें अब भी बहुत काम हो रहा है। अब यह बिलकुल निश्चित हो चुका है कि एक जाति-विशेष ग्रन्थिरसों द्वारा मनुष्यके यौन-व्यवहारका नियन्त्रण होता है। यह यौन-ग्रन्थिरस (Sex hormones) कहलाते हैं। इनके विषयमें अब भी खोज बराबर जारी है और इनके व्यवहारसे कई यौन-रोगोंका इलाज संभव हुआ।

कुछ रासायनिकोंका विश्वास है कि रासायनिक पदार्थों द्वारा हर प्रकारके अणुजीव नष्ट किये जा सकते हैं। इसी विश्वासके साथ खोज करते करते एहरलिख (Ehrlich) ने सालवरसन (Salvarsan) का आविष्कार किया। यह औषधि आतशक (गरमी, Syphillis) रोग की सबसे अच्छी दवा सिद्ध हुई है। सर उपेन्द्रनाथ ब्रह्मचारी ने यूरिया स्टिबेमीन (Urea Stibamine) नामक एक औषधि बनाई है जो कालाज़ारके कीटाणुको नष्ट करती है।

पिछले २० सालके अन्दर सल्फ़ा-जातिमें बहुत सी ऐसी दवाइयाँ बनीं जो विभिन्न जातीय अणुजीवोंको शीघ्र नष्ट कर डालती हैं। Mand B 693, सल्फ़ापिरीडीन, सल्फ़ानिलएमाइड आदि आजकल प्रसिद्ध और सुपरिचित औषधियाँ हैं। सल्फ़ादवाओंके व्यवहारसे घावको सड़ाने वाले तरह-तरहके कीटाणु, निमोनिया (Prneumonia), सुज़ाक (Gonorrohea), गर्दनतोड़ बुख़ार (Cerebro spinal meningitis) आदि भयंकर रोगोंके अणुजीव नष्ट हो जाते हैं।

पिछली लड़ाईके समय पेनीसिलीन (Penicilin) नामकी एक कीटाणुनाशक दवा बनी है जिसने लाखों मनुष्योंको जीवनदान दिया है। पेनीसिलीन नोटाटम नामक एक उद्भिद्कण (mould) से यह दवा तैयार होती है। Gram positive जातिके सब कीटाणु पेनीसिलीनसे मर जाते हैं। विश्वास किया जाता है कि जब वैज्ञानिकों को इसकी बनावट आदिका पूरा पूरा ज्ञान होगा तब लैबोरेटरीमें पेनीसिलीनसे भी अधिक शक्तिशाली पदार्थ तैयार होंगे। उस समय तो निश्चय ही कीटाणु जनित रोगोंसे मरने वालोंकी संख्यामें आश्चर्यमय कमी होगी।

कुछ ही दिन हुए समाचार मिला है कि अमेरिकामें स्ट्रेप्टोमाइसिन (Strepto mycin) नामक नई दवासे तपेदिक़, मियादी बुख़ार और हैज़ा इत्यादि रोग भी जीते जा सकेगें। अभी तो इस दवाकी परीक्षा हो रही है, परंतु वह दिन दूर नहीं जब मनुष्य इस नई दवा द्वारा अपने प्रबल और दुर्दान्त शत्रु तपेदिक़ पर विजय प्राप्त करेगा।

दुनिया भरमें रासायनिक और चिकित्सक एक दूसरे की सहायतासे रोगों पर विजय प्राप्त करनेका प्रबल प्रयत्न कर रहे हैं। यह सत्य है कि मनुष्य स्वाभाविक मृत्यु कभी नहीं रोक सकता, परंतु वह निरंतर चेष्टा कर रहा है कि कोई मनुष्य रोगसे न मरें। तरह-तरहके रोगोंसे पीड़ित मनुष्यजाति उस शुभ दिनकी प्रतीक्षा कर रही है जब रोगों पर हम पूर्णतया विजय प्राप्त कर लेंगे।

स्पलैनज़ानी अणुजीव-खोजक

[ले०—श्री० डा० सन्तप्रसाद टंडन, डी० फिल०]

[गताङ्कसे आगे]

स्पलैनज़ानीके मनमें यह भय हुआ कि यदि नीडहमका कथन सत्य निकला तो इतने वर्षोंका उसका सारा प्रयत्न व्यर्थ हो जायगा। कई दिनों तक वह इसी विचारमें डूबा रहा। इन दिनों अपने विद्यार्थियोंके प्रति भी उसका व्यवहार कुछ शुष्क रहा। अपने मनको शान्त करनेके लिये उसने दान्ते (Dante) और होमर (Homer) के ग्रन्थों का अध्ययन शुरू किया। किन्तु किसी भी प्रकार उसका मन स्थिर नहीं हो सका। अब उसके मनमें यह विचार उठा कि संभव है कि फ्लास्कमें हवाका जाना हवाके लचीलेपनसे कोई सम्बन्ध न रखता हो। तब उसने यह मालूम करनेका निश्चय किया कि फ्लास्कमें हवा क्यों जाती है। इसका एक कारण उसने सोचा और उसे अपने इस विचार पर इतना विश्वास हो गया कि वह बिना प्रयोग किये हुए भी इस कारणको बिल्कुल ठीक समझने लगा। उसने कहा कि उसके फ्लास्क कम चौड़े मुखके थे, अतः इस कारण इनके मुखोंको गर्म करनेमें उसे फ्लास्कोंको काफ़ी देर तक गर्म करना पड़ा था जिससे फ्लास्कोंकी बहुत-सी हवा बाहर निकल गई होगी। अतः बादमें फ्लास्कोंका मुख खोलने पर बाहरसे इनमें हवा का घुसना स्वाभाविक था। नीडहमका यह कथन कि उबलता हुआ पानी, जिसमें रखकर फ्लास्क गर्म किये जाते हैं, फ्लास्कोंके अन्दरकी हवाको कम लचीला कर देता है, स्पलैनज़ानीको सारहीन मालूम हुआ।

अपने विचारकी पुष्टि वह किस प्रकार प्रयोग द्वारा करे, स्पलैनज़ानी यही बराबर सोचता रहा। किस प्रकार वह अपने फ्लास्कके मुखको बन्द करे कि जिससे उसके अन्दरसे हवा बाहर न निकलने पाये। उसको एक विधि सूझी। उसने एक फ्लास्क लिया और उसके अन्दर कुछ बीज और पानी भर दिया। फ्लास्कके मुखको उसने आग पर इतना गर्म किया कि उसके मुखका छेद बहुत ज़रा सा रह गया। अब फ्लास्कको उसने ठंडा होने दिया। इस समय फ्लास्कके अन्दर पूरी हवा थी क्योंकि फ्लास्कका मुख कुछ खुला हुआ था जिससे हवा भीतर आ जा सकती थी। अब उसने बहुत होशियारीसे एक छोटी लौ द्वारा फ्लास्कके इस ज़रासे खुले छेदको भी बन्द कर दिया। ऐसा करते समय उसने इस बातका ध्यान रखा कि फ्लास्क गर्म न होने पाये और उसकी हवा बाहर न निकले। इसके बाद उसने फ्लास्कको उबलते पानीमें एक घंटे तक गर्म किया। कई दिनों तक फ्लास्क एक स्थान पर रखा रहने दिया गया। इसके बाद उसने फ्लास्कके मुखको तोड़कर खोला और उसके मुखके पास मोमबत्तीकी लौ रखी। फ्लास्क खुलने पर हवाकी सरसराहटकी आवाज़ हुई, किन्तु लौ इस बार मुखसे बाहरकी ओर झुकी, जिससे यह मालूम हुआ कि फ्लास्कके अन्दरसे हवा बाहर निकली थी।

इतने घंटे गर्म करनेके बाद भी अन्दरकी हवाका लचीलापन कम नहीं हुआ था, किन्तु इसके विपरीत अधिक हो गया था। नीडहमके कथनानुसार अधिक लचीली हवा वानस्पतिक शक्तिके लिये लाभदायक थी। किन्तु ऐसा होने पर भी फ्लास्कके अन्दरके पानीमें कोई भी अणुजीव दिखलाई नहीं पड़ा। स्पलैनज़ानीने अपना यह प्रयोग प्रकाशित किया। इसे पढ़कर नीडहम चुप होकर बैठ रहा। योरुपके सब ही वैज्ञानिक अब स्पलैनज़ानीके कथनकी सत्यता मान गये। इस प्रकार स्पलैनज़ानीने अब पूर्ण रूपसे यह सिद्ध कर दिया कि प्रत्येक अणुजीव एक दूसरे अणुजीव द्वारा उत्पन्न होता है जो उसी जातिका होता है। जिस प्रकार मनुष्यके बच्चे मनुष्य ही होते हैं उसी प्रकार अणुजीवों द्वारा उत्पन्न हुए अणुजीव उन्हींके समान जातिके होते हैं। स्पलैनज़ानीने यह बतलाया कि यदि सृष्टिमें यह नियम प्रचलित न होता और नीडहमका 'वानस्पतिक-शक्ति' का सिद्धान्त सत्य होता, तो जीव-जगतकी सृष्टि एक विचित्र ही ढंग की होती। 'वानस्पतिक-शक्ति' के सिद्धान्तके अनुसार कभी तो यह शक्ति अणुजीवोंको उत्पन्न करती, कभी मेढ़क, कभी गाय, कभी आदमी आदि। स्पलैनज़ानी ने

अपने प्रयोगों द्वारा नीडहमके इस सिद्धान्तको कि अणुजीव स्वयं बिना जनकके उत्पन्न हो सकते हैं, सदाके लिये असत्य सिद्ध कर दिया।

स्पलैनज़ानीकी प्रसिद्धि इस समय सारे योरपमें हो गई थी। उसका नाम प्रथम श्रेणीके वैज्ञानिकोंमें लिया जाने लगा था। जर्मन सम्राट् फ्रेडरिकने उसे स्वयं बर्लिन ऐकेडमीका सदस्य बनाया। आस्ट्रियाकी महारानी मेरिया थेरेसा (Maria Theresa) ने लोम्बार्डीके विश्वविद्यालय-में प्रोफेसरका पद स्वीकार करनेके लिये स्पलैनज़ानीसे स्वयं विनय की। स्पलैनज़ानीकी स्वीकृति प्राप्त करनेके लिये उसने अपने मंत्रियों और कौन्सिलके सदस्योंको स्पलैनज़ानी-के पास भेजा। अन्तमें स्पलैनज़ानीने इस विश्वविद्यालयमें प्राकृतिक विज्ञानके प्रोफेसर तथा पेवियाके अजायबघरके क्यूरेटरका पद स्वीकार किया। स्पलैनज़ानीके आनेके पहले अजायबघरके प्राकृतिक विज्ञान विभागकी सारी आलमा-रियाँ खाली पड़ी थीं। उसने जगह जगहसे भिन्न-भिन्न प्रकारके पशुओं और पौधोंको मँगवाकर अजायबघरमें रखा। उसने बड़े परिश्रमसे अपने अजायबघरमें चीजें एकत्र कर उसे उन्नति पर पहुँचाया।

व्याख्यान देनेमें भी स्पलैनज़ानी निपुण था। वह सदा अपने व्याख्यानोंमें अच्छे प्रयोगोंको दिखलाता था जिससे उसके प्रयोगोंका अच्छा प्रभाव पड़ता था।

अजायबघरके कार्य तथा व्याख्यानके कार्यसे अवकाश मिलने पर वह अपनी प्रयोगशालामें पहुँचकर अपने प्रयोगों-में संलग्न हो जाता था। वह इस बातको सिद्ध करनेका प्रयत्न कर रहा था कि अणुजीव प्राकृतिक नियमोंका पालन उसी भाँति करते हैं जिस भाँति मनुष्य तथा अन्य उच्च श्रेणीके जन्तु। इसके लिये उसने अणुजीवोंको एक शीशे-के टुकड़े पर रक्खा और उन पर तम्बाकूका धुँआ छोड़ा। यह देखकर कि धुँयेंके प्रभावसे बचनेके लिये अणुजीव तेज़ीसे इधर-उधर भाग रहे थे उसे बड़ी खुशी हुई। विद्युत् चिनगारी छोड़ने पर उसने देखा कि अणुजीव चक्कर खाकर बेहोश हो गये और अन्तमें मर गये। अतः उसने सिद्ध किया कि अणुजीवों पर भी प्राकृतिक बातोंका उसी प्रकार प्रभाव पड़ता है जैसे बड़े जीवों पर। यह सर्वमान्य है कि प्रत्येक जन्तुके लिये हवा आवश्यक है। स्पलैनज़ानीने अपने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया कि इसी प्रकार अणुजीवोंके लिये भी हवा आवश्यक है और वायुकी अनुपस्थितिमें उनकी मृत्यु हो जाती है। यह सिद्ध करनेके लिए उसने एक पतली नलीमें अणुजीव रखे। नली-का एक सिरा गर्म करके बन्द कर दिया और दूसरे सिरेमें वैक्यूमपम्प लगाकर नलीके अन्दरकी सारी हवा निकाल दी। वह आशा करता था कि हवा निकल जाने पर नलीके अणुजीव धीरे-धीरे शिथिल होकर मर जायँगे। किन्तु उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि हवा निकलनेका अणुजीवों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वे नलीके भीतर पहलेकी भाँति बराबर जीवित रहे। उसने सोचा कि यह असंभव है कि अणुजीव हवाकी अनुपस्थितिमें जीवित रहें। अतः कई बार उसने इसी प्रयोगको दोहराया किन्तु प्रत्येक बार उसने यही देखा कि हवा निकल जाने पर भी अणुजीव जीवित रहे। उसने इस बातकी चर्चा अपने एक मित्रको पत्र लिखते समय इस प्रकारकी है।—"कुछ अणुजीवोंकी प्रकृति विचित्र होती है। वे हवाकी अनुपस्थितिमें भी सारे काम इस प्रकार करते हैं जैसे हवामें। अभी तक हम लोग यही विश्वास करते थे कि बिना हवाके कोई भी जीवित नहीं रह सकता। किन्तु यह अणुजीव अपवाद मालूम देते हैं।"

पेवियामें कुछ साल रहनेके बाद उसके मनमें प्राचीन ट्राय (Troy) के स्थानका निरीक्षण तथा वहाँके गुलामों आदिके बारेमें जानकारी प्राप्त करनेकी इच्छा हुई। इस कार्यको भी वह प्राकृतिक विज्ञानका एक अंग समझता था। इस कार्यके लिये आस्ट्रियाके शासक जोजेफने उसे एक वर्षकी छुट्टी कुस्तुनतुनिया जाकर खोज करनेके लिये दी। स्पलैनज़ानी अपने विद्यार्थियोंसे दुःखित मनसे विदा लेकर भूमध्यसागरके मार्गसे कुस्तुनतुनियाके लिये चल पड़ा। यात्रामें उसे समुद्रीय रोगने काफी कष्ट पहुँचाया और साथ ही जहाज़के टकराकर टूटनेसे बहुत कष्ट झेलना पड़ा। लेकिन इस समय भी जब कि उसका जहाज़ टकरा कर डूब रहा था वह अपनी मार्गमें संग्रह की हुई चीज़ोंको बचाना न भूला। कुस्तुनतुनिया पहुँचने पर वहाँके सुलतान-ने उसका आदर-पूर्वक स्वागत किया और उसे टर्कीके रीति-रवाजोंके अध्ययन करनेकी अनुमति दी। तुर्कोंके सम्बन्धमें

स्पलैनज़ानीने लिखा है कि वे लोग शिल्पकार्यमें बड़े निपुण होते हैं और अतिथियोंका सत्कार भली भाँति करते हैं। इस प्रशंसाके साथ ही उसने तुर्कोंकी गुलामी प्रथाकी बड़ी निन्दा भी की है। अपना कार्य करनेके बाद वह कई महीनों बाद स्थलके मार्गसे विएना लौटा।

जब स्पलैनज़ानी अपनी यात्रामें था, पेवियामें उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रचा जा रहा था। स्पलैनज़ानीकी ख्याति तथा विद्यार्थियोंमें उसके प्रभावके कारण पेवियाके अन्य प्रोफेसर उससे ईर्ष्या करते थे। इन लोगोंने उसकी अनुपस्थितिमें उसको लोगोंकी दृष्टिमें गिरानेके लिये षड्यन्त्र रचा। स्पलैनज़ानीने पेवियाके अजायबघरके लिये बड़े परिश्रमसे जगह-जगहसे लाकर सामान एकत्रित किया था। उसका यह अजायबघर सारे योरपमें प्रसिद्ध हो गया था। पेवियाके अजायबघरके साथ ही साथ उसने अपने पुराने निवास-स्थान स्कैण्डियानोमें भी एक छोटा सा अपना अजायबघर बना रक्खा था। जिन दिनों स्पलैनज़ानी अपनी यात्रामें था उन्हीं दिनों एक दिन वोल्टा, जो उससे शत्रुता रखता था, स्कैण्डियानो पहुँचा और चालाकीसे स्पलैनज़ानीके निजी अजायबघरमें घुस गया। इस अजायबघरकी सब चीज़ों पर उसने पेवियाके विश्वविद्यालयका छपा हुआ काग़ज चिपका हुआ पाया। इसी बातके आधार पर वोल्टा तथा दो अन्य प्रोफेसरने मिलकर स्पलैनज़ानीके विरुद्ध यह दोषारोपण किया कि उसने विश्वविद्यालयका सामान चुराकर अपने अजायबघरमें रक्खा है। स्पलैनज़ानीको जब यह बात मालूम हुई तो उसे बहुत दुःख हुआ। स्पलैनज़ानीने कहा कि इस बातकी जाँच करनेके लिये एक कमेटी नियुक्त होनी चाहिये। कमेटी नियुक्त हुई। इसी समय वह पेविया लौटा। जो लोग पहले उसके प्रशंसक थे उन लोगोंने उसके लौटने पर कोई उत्साह प्रदर्शित नहीं किया। किन्तु उसके विद्यार्थियोंने उसका उत्साह-पूर्वक स्वागत किया और वचन दिया कि वे उसका बराबर साथ देंगे। कमेटीकी जाँचमें स्पलैनज़ानी निर्दोष सिद्ध हुआ। इन सब झगड़ोंके शांत होने पर स्पलैनज़ानीने पुनः अणुजीवोंकी खोजका कार्य आरम्भ किया।

स्पलैनज़ानीको आरम्भसे ही यह जाननेकी उत्सुकता थी कि अणुजीवोंकी उत्पादन क्रिया किस प्रकार होती है। अपने निरीक्षणमें उसनें कई बार तो अणुजीवोंको एक दूसरेसे चिपका हुआ पाया था। इस सम्बन्धमें उसने अपने मित्र बोनेटको लिखा था कि जब दो जीवको हम लोग चिपका हुआ देखते हैं तब स्वभावतः हमारे मनमें यह विचार उठता है कि वे उत्पादन-क्रियामें संलग्न होंगे। किन्तु क्या अणुजीवोंके लिये यह बात सत्य है?

बोनेटने स्पलैनज़ानीकी यह बात डि सोसरे (de Saussure) को बतलाई। उसने तुरन्त अणुजीवोंकी उत्पादन-क्रियाका निरीक्षण किया और इस संबंधमें एक लेख लिखा। उसने बतलाया कि जब दो अणुजीव आपसमें चिपके हुए दिखलाई देते हैं तो ऐसा नहीं समझना चाहिये कि वे उत्पादनके हेतु चिपके हैं! वास्तवमें वे दोनों एक ही अणुजीवके विभाजित होनेसे उत्पन्न हुए दो अणुजीव हैं, जो विभाजनके बाद अभी तक अलग नहीं हो पाये हैं। डि सोसरेने बतलाया कि अणुजीवोंकी वृद्धि इसी विभाजन क्रिया द्वारा होती है, उनमें लिंगोत्पादन नहीं होता।

डि सोसरेका लेख पढ़कर स्पलैनज़ानीको पहले इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। किन्तु बादमें अणुवीक्षण यन्त्रसे अणुजीवोंकी विभाजन-क्रियाका निरीक्षण करने पर उसे डि सोसरेके कथनकी सत्यता मालूम हुई। उसने डि सोसरेको उसके इस कार्यके लिये पत्र द्वारा बधाई दी।

एक अंग्रेज सज्जन ऐलिस (Ellis) ने लिखा कि डि सोसरेका यह निरीक्षण कि अणुजीव दोमें विभाजित होकर वृद्धि करते हैं गलत है। ऐलिसने यह स्वीकार किया कि कभी-कभी अणुजीव दोमें विभाजित हो जाते हैं, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वह अपनी वृद्धि इसी रीतिसे करते हैं। इसका अर्थ केवल यह है कि एक अणुजीव जो तेज़ीसे तैर रहा है दूसरे अणुजीवके पास पहुँच कर उसे दो टुकड़ोंमें विभाजित कर देता है। ऐलिसने कहा कि अणुजीव भी उसी प्रकार पैदा होते हैं जिस प्रकार बड़े जीव अपनी माँके गर्भसे। उसने इस बातका दावा किया कि अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा अणुजीवोंके अन्दर उसने छोटे बच्चोंको देखा है।

स्पलैनज़ानीने कहा कि यह सब गलत है। यह बात निश्चय रूपसे सिद्ध करनेके लिये कि अणुजीवोंका उत्पादन केवल विभाजन द्वारा होता है, यह आवश्यक है कि एक

अणुजीवको अलग प्राप्त कर उसका निरीक्षण किया जाय। निरीक्षण करनेसे यह स्पष्ट मालूम हो जायगा कि वह दो में विभाजित होता है या नहीं। किन्तु अब प्रश्न यह था कि एक अणुजीवको अलग प्राप्त कैसे किया जाय। स्पलैन-ज़ानी ने एक अणुजीवको अलग प्राप्त करनेकी विधि मालूम की। उसका यह कार्य बहुत महत्वका है और इससे उसकी प्रयोग करनेकी कुशलता और उसके मस्तिष्ककी मौलिकता प्रकट होती है।

उसने एक फ्लास्कमें कुछ बीजोंको पानीके साथ पीस कर डाला और फ्लास्कको अलग रख दिया। जब उसमें अणुजीव उत्पन्न हो गये तो उसकी एक बूँदको शीशेकी स्लाइड पर रखा। फिर एक बालके समान पतली काँचकी नली द्वारा एक बूँद स्रवित जल, जिसमें एक भी अणुजीव नहीं था, उसी स्लाइड पर पहली वाली बूँदके पास रखा। फिर एक पतली सुई द्वारा उसने फ्लास्क की बूँदसे पानी की बूँद तक दोनोंको मिलाने वाली एक छोटी नहर-सी बना दी। अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा वह बराबर निरीक्षण करता रहा। जैसे ही एक अणुजीव इस नहर द्वारा पानी-की बूँदमें पहुँचा उसने तुरन्त एक ब्रुश द्वारा नहर तथा फ्लास्कके बूँदको पोंछ डाला जिससे कोई दूसरा अणुजीव पानीकी बूँदमें नहीं पहुँच सके। इस प्रकार एक अणुजीव-को उसने अलग कर लिया। अणुवीक्षण यन्त्रके नीचे इस अणुजीवको वह बराबर एकाग्र मनसे देखता रहा। कुछ देर के निरीक्षणके बाद उसे एक विचित्र बात दिखलाई दी। वह अणुजीव जो एक पतले डंडेके आकारका था बीचसे पतला होने लगा और अन्तमें बहुत पतला होकर उसी स्थानसे दोमें विभक्त हो गया। यह दोनों विभक्त हुए टुकड़े पुनः तैरने लगे। इस प्रकार एकसे दो अणुजीव उत्पन्न हो गये। थोड़ी देर बाद यह दोनों पुनः उसी प्रकार विभाजित हुए और अब चार अणुजीव हो गये। अपने इस प्रयोगके आधार पर उसने ऐलिसकी कठोर शब्दोंमें आलोचना की।

सन् १७९९ के प्रारम्भमें स्पलैनज़ानीको (Epiplexy) का आक्रमण हुआ। अपनी बीमारीके दिनोंमें बिस्तर पर पड़े-पड़े अपने मित्रोंको होमर आदिकी कवितायें सुनाया करता था। किन्तु उसको क्या मालूम था कि यह उसके अन्तिम दिन थे। कुछ ही दिनों बीमार रहनेके बाद उसकी मृत्यु हो गई।

ईजिप्टके बादशाह अपना नाम इस संसारमें चिरस्थायी रखनेके लिये अपने मृत शरीरको सुरक्षित रखवा जाते हैं। यही सुरक्षित मृत शरीर ममीसके नामसे प्रसिद्ध हैं। स्पलैनज़ानीने अपना नाम चिरस्थायी दूसरी विधिसे किया। पेवियाके अजायबघरमें उसकी एक छोटी मूर्ति है और इसके पास ही उसका मूत्राशय (urinary bladder) सुरक्षित रखा है। स्पलैनज़ानी मूत्राशय रोगसे आक्रांत था। मरते समय उसने कह दिया था कि उसका मूत्राशय निकाल कर अजायबघरमें रख दिया जाय क्योंकि संभव है उससे मनुष्यके लाभकी कोई नई बात मालूम हो सके। इससे अधिक अच्छा स्मारक किसी वैज्ञानिकके लिये और क्या हो सकता है! स्पलैनज़ानीके इस कथनमें उसके मन-की भावना प्रदर्शित होती है। नई बातें खोज निकालना ही उसके जीवनका ध्येय रहा। उसकी खोजोंने उसका नाम चिरस्मरणीय कर दिया है।

बादल

(ले०—प्रो० जगदेवसिंह, बी० एस-सी० (आनर्स) एम० एस-सी०)

बादल आकाशमें जलके कण अथवा बर्फके रवे होते हैं। ये अधिकतर ट्रापोस्फेयर (Troposphre, निम्न वायुमंडल) में ही बनते हैं, क्योंकि इसी भागमें वायुका वेग ऊपर नीचे रहता है। इस भागको सम्वाहक प्रवाह का क्षेत्र (region of convective equilibrium) कहते हैं।

जलके धरातलसे इसके कण भाप बनकर सदैव उड़ा करते हैं। ये कण भापके रूपमें इतने छोटे होते हैं कि आँखोंसे दिखलाई नहीं देते। वायुके साथ साथ ये भी आकाशमें ऊपर चले जाते हैं। ज्यों-ज्यों हम आकाशमें ऊपर जाते हैं, जलकी मात्रा कम होती जाती है। इसी लिये उच्च घन बहुत ही पतले और हल्के होते हैं। इसके बाद 'मध्य-घन' इनसे कुछ घने होते हैं। 'निम्न-घन' बहुत ही घने होते हैं। यही तो कारण है कि वर्षाके लिए हमें इन्हीं निम्न-घनोंकी शरण लेनी पड़ती है। फिर जब ये ही बादल हमसे सबसे नजदीक हैं तो हम आशा ही किससे कर सकते हैं? उच्च-घन अथवा मध्य-घन हमें सुन्दरता भले ही दिखला लें, वे पानी नहीं दे सकते, परन्तु इनके विषयमें इतना कहा जा सकता है कि साइक्लोन के समय जब निम्नघन घोर वर्षा कर अपनी नीचताका परिचय देने लगते हैं तो सबसे पहले इसकी सूचना हमें उच्च-घन ही देते हैं; इसके बाद मध्य-घन तथा अन्तमें निम्न-घन। इस प्रकार ये अपनी उदारताका परिचय देते हैं।

जब हम वायुके किसी भागको ऊपर ले जाते हैं, तो ऊपरी भागमें दबाव कम होनेके कारण यह फैलना प्रारम्भ करता है। परिणाम-स्वरूप वायु ठंडी होती जाती है। इस तरीकेसे ठंडा करनेको अंगरेजीमें 'अडायेबेटिक कूलिंग' (Adiabtic cooling) कहते हैं। यह वह तरीका है जिसमें न तो बाहरकी गर्मीको उस वस्तुमें जाने देते हैं और न उसकी गर्मीको बाहर ही आने देते हैं। यदि वायु बिलकुल सूखी हो तो एक कीलोमीटर ऊपर जाने पर करीब-करीब दस डिग्री सेंटीग्रेड ताप गिर जाता है; यदि वायु जलसे परिपूर्ण हो तो एक कीलोमीटर ऊपर जाने पर छः डिग्री सेंटीग्रेड ताप गिर जाता है। यदि वायु न तो एकदम सूखी हो और न जलसे परिपूर्ण ही, तो एक कीलोमीटर ऊपर जाने पर ताप छः और दसके मध्यमें कम होता है। जलकी मात्रा तापके गिरनेमें एक बहुत बड़ा काम करती है। ऊँचाई के साथ-साथ तापकी इस कमीको अंगरेजीमें लैप्स रेट (Lapse rate) कहते हैं। यदि वायुके किसी भागको ऊपर ले जाकर छोड़ दिया जाये और यह नीचे उतरनेकी कोशिश करे तो उसको 'स्थिर-वायु' (Stable) कहते हैं; यदि यह ऊपर जानेकी कोशिश करे तो उसको 'अस्थिर-वायु' (Unstable air), और यदि वह वहीं रह जाये जहाँ उसको छोड़ते हैं तो उसको 'तटस्थ-वायु' (Neutral air) कहते हैं। यदि ऊपर ले गये वायुका ताप वही हो जाता है, जो उसकी आस-पास वाली वायुका होता है, तब तो वह वहीं पर रह जाती है; यदि वह वायु आस-पास वाली वायुसे ठंडी होती है, तो भारी होनेके कारण नीचे गिर कर वहीं आ जाती है, जहाँ उसका और आस-पास वाली वायुका ताप एक ही होता है; तथा यदि वह वायु आस पास वाली वायुसे गर्म होती है तो हल्की होनेके कारण और ऊपर चली जाती है और वहाँ जाकर रुकती है, जहाँ दोनों वायुओंका ताप एक हो जाता है। इससे पता चल जाता है कि वायुकी स्थिरतामें जलकी मात्राका कितना बड़ा हाथ होता है। ऊपर ले गये हुए वायुको 'अस्थिरताकी तह' (Layer of instability) तथा आस पास वाली वायुको 'अस्थिरता का क्षेत्र' (Region of instalility) कहते हैं। इस बातका पता लगानेके लिए कि कौन वायु कहाँ अस्थिर हो जायगी, एक विशेष प्रकारके चित्रका प्रयोग किया जाता है। उस चित्रको अंगरेजीमें टी-फाई-ग्राम ((Te-Fi-gram) कहते हैं। उसमें भीगी तथा सूखी घुण्डीके ताप

को ऊँचाईके साथ साथ अंकित करते हैं। उस चित्रसे यह भी पता लगाया जाता है कि वायुकी कितनी शक्ति साध्य है और कितनी नहीं; अर्थात् उसकी शक्तिका कितना भाग हमें मिल सकता है और कितना नहीं। इस प्रकार अस्थिरता को दो भागोंमें बाँटा गया है।
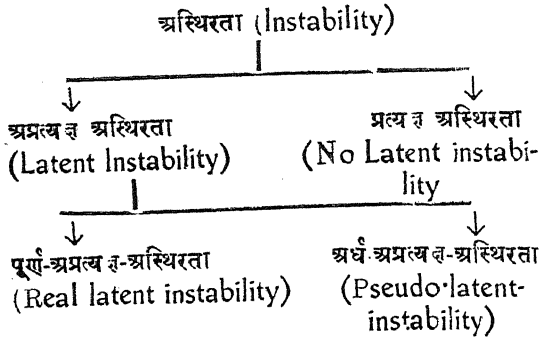
जैसा ऊपर बतलाया गया है, यह विभाग एकमात्र शक्ति पर अवलम्बित है। जब वायुसे मिलने वाली शक्ति, उस शक्तिसे अधिक होती है, जो वायुको दी जाती है, तो उस समय वायुमें 'पूर्ण-अप्रत्यक्ष-अस्थिरता' होती है, तथा जब इसके विरुद्ध होता है, तो उसमें 'अर्ध-अप्रत्यक्ष-अस्थिरता' होती है। अस्थिरता भिन्न-भिन्न प्रकारके वायुओंके मिश्रणसे, जिनके ताप, दबाव तथा आर्द्रता सब भिन्न-भिन्न होते हैं बन जाती है।

वायुकी शक्तिको कार्यान्वित करनेके लिये पहले उसमें कुछ शक्ति लगानी पड़ती है। जो वस्तु उस शक्तिको देती है उसको अंगरेजीमें ट्रिगर (Trigger) कहते हैं। उसके उस कामको 'ट्रिगर-ऐक्शन' कहते हैं। जिस प्रकार बन्दूक में ट्रिगरको दबानेसे गन-पाउडरकी शक्ति कार्यान्वित होती है, अर्थात् उसकी शक्तिको कार्य रूपमें परिणत करनेके लिए ट्रिगरकी शक्तिका प्रयोग किया जाता है, उसी प्रकार वायुकी शक्तिको काममें लानेके लिये 'ट्रिगर' का प्रयोग करते हैं। सूर्यकी गर्मी (Solor insolation) अथवा पहाड़से नीचे उतरती ठंडी वायु अथवा ऐसी ही कोई वस्तु ट्रिगरका काम करती है। 'ट्रिगर' के कारण नीचेकी वायु ऊपर उठना प्रारम्भ करती है। उसका ताप घटता जाता है। एक ऐसा ताप आता है जब ऊपर उठती हुई वायु जलसे परिपूर्ण हो जाती है। उस तापको ओस-विन्दु कहते हैं। इसके बाद उसका जल बूँदोंके रूपमें परिणत होना प्रारम्भ होता है। इसके इस काममें धूलके कण बहुत ही सहायक होते हैं, क्योंकि बिना इनके बादलका बनना असम्भव ही हो जाता। ओस-विन्दु पहुँचनेके बाद भी यदि वायुमें धूलके कण न हों तो वायुका जल भाप ही के रूपमें रह जाता है।

बादल निम्नलिखित कारणोंसे अधिकतर बना करते हैं—

(१) ठंडी पृथ्वीके धरातल पर चलनके कारण गर्मीमें कमी (Loss of heat by conduction to a cold surface)।

(२) वायुसे विकिरणके कारण गर्मीमें कमी (Loss of heat by radiation from air)।

(३) दो भिन्न भिन्न प्रकारके वायुका मिश्रण।

(४) वायुके ऊपर जानेसे अडायबेटिक कूलिंग (Adiabatic cooling due to vertical ascent)।

(१) जब पानीसे भरी हुई वायु किसी ठंडी भूमि पर पहुँच जाती है, तब अपनी गर्मी धीरे धीरे पृथ्वीको दे देती है। परिणाम-स्वरूप ओस-विन्दु पहुँच जाता है और जल की बूँदें धूलके कणों पर जमा होना प्रारम्भ हो जाती हैं। इस प्रकार बादल बन जाते हैं। पहले इससे कुहरा बनता है और फिर यही कुहरे ऊपर जाकर बादल बन जाते हैं।

(२) दिनमें जो गर्मी सूर्यसे पृथ्वी पर गिरती है, उसका कुछ भाग पृथ्वी सोख लेती है। इस प्रकार इसका ताप बढ़ जाता है। यही गर्मी वहन तथा विकिरण द्वारा निकलती रहती है। वहनके कारण वायुमें छोटी-छोटी धारायें पृथ्वीके धरातलके समीप बहने लगती हैं। इन्हें अंगरेजीमें टरबुलेंस (turbulence) कहते हैं। रेडियेशन यों तो दिन रात हमेशा ही होता रहता है, परन्तु रात में सूर्यसे गर्मीका आना बन्द हो जाता है। पृथ्वी धीरे धीरे अपनी गर्मी खो देती है। इस प्रकार इसके धरातलके आस-पासकी वायु ठंडी हो जाती है। ओस विन्दु पहुँचने पर नन्हीं-नन्हीं बूँदें बनना प्रारम्भ

हो जाती है जो पहले कुहरेके रूपमें और फिर बादलके रूप में परिणत हो जाती है।

(३) जब दो प्रकारके वायु दो भिन्न-भिन्न स्थानोंसे होकर आते हैं तो उनके ताप, दबाव तथा वायु-आर्द्रता सब एक ही नहीं होते। जब दो ऐसी वायु एक दूसरेसे मिलती हैं, तो एक ऐसा पतला क्षेत्र बन जाता है, जिससे दोनों ओर एक एक प्रकारकी वायु होती है। ऐसे क्षेत्र को अँगरेजीमें फ्रांट (Front) कहते हैं। 'फ्रांट' ही बादलोंके इस ड्रामाका स्टेज बन जाता है। 'फ्रांट' नारवे निवासी जर्कनीज महोदयका अन्वेषण किया हुआ वह क्षेत्र है, जहाँ भिन्न प्रकारके वायु मिलकर अपनी राम कहानी एक दूसरे को सुनाते हैं। परिणाम स्वरूप बादलों का वह अश्रुपात होता है, जिसको हम बूँदोंके रूपमें देखते हैं। ऐसे 'फ्रांट' दो प्रकारके होते हैं। एक तो ऐसे हैं, जिनमें गर्म वायु ठंडी वायुको हटाती बढ़ती जाती है। ऐसे फ्राटको 'गर्म फ्रांट' (Warm Front) कहते हैं। दूसरे ऐसे फ्रांट होते हैं, जिनमें ठंडी वायु गर्म वायुको हटाती बढ़ती जाती है। उसको ठंडा-फ्रांट (Cold Front) कहते हैं। प्रत्येक फ्रांट पर विशेष प्रकारके बादल होते हैं। ये फ्रांट विशेषकर एक साइक्लोनमें बहुत ही महत्व रखते हैं। इनके सहारे यह बतलाया जा सकता है कि कोई साइक्लोन चौबीस घंटेमें किस ओर जायेगा, तथा कौन सा ऐसा भाग होगा जहाँ वर्षा विशेष रूपसे होगी।

(४) वायु ऊपर जानेसे ठंडी हो जाती है। ओस-विन्दु पहुँचने के बाद बादल बनना प्रारम्भ हो जाते हैं। ऐसी सम्वाहकधारायें चार भागोंमें बाँटी गई हैं।

(१) छोटी-छोटी अनियमित धारायें (Irregular current of small dimensions)

(२) आस पासकी पहाड़ीका प्रभाव (Local arographic effect)

(३) विस्तृत सम्वाहक धारायें (Large effect convection current)

(४) वायुका किसी प्रकार विस्तृत क्षेत्रमें ऊपर उठना (General ascent over wide areas)

ऊँचाईके अनुसार बादलोंके तीन भाग किये गये हैं। (१) उच्च-घन (२) मध्य-घन तथा (३) निम्न-घन। उच्च-घन छः किलोमीटरसे (लगभग ४ मील) ऊपर होते हैं, मध्य-घन तीन और छः कीलोमीटरके बीचमें तथा निम्न-घन तीन कीलोमीटर (२ मील) से नीचे होते हैं। फिर प्रत्येक की आकृतिके अनुसार कई एक भाग किये गए हैं। उच्च-घन तीन प्रकारके होते हैं :

(१) केश घन (cirrus)

(२) केशस्तर घन (cirro-stratus)

(३) केशढेर घन (cirro-cumulus)

मध्य-घन दो प्रकारके होते हैं :—

(१) ढेरमध्य घन (Alto-cumulus)

(२) स्तरमध्य घन (Alto-stratus)

निम्न घन पांच प्रकारके होते हैं :—

(१) ढेर घन (Cumulus)

(२) स्तर घन (Stratus)

(३) स्तरढेर घन (Strato-cumulus)

(४) ढेर विद्युत घन (Cumulo-Nimbus)

(५) विस्तृत विद्युत घन (Nimbo-Stratus)

उच्चघन सब बर्फके रवोंके बने होते हैं। ये रवे सफेद सुन्दर षट्भुजाकार होते हैं। 'केश घन' सफेद बकुलेके पंखकी शकलका होता है। इन बादलोंके नाम जो अंगरेजी भाषामें रक्खे गये हैं उनमें विशेषकर हमें कुमुलस, स्ट्रेटस तथा निम्बस तीन ही प्रधान शब्द मिलते हैं। कुमुलसका अर्थ 'ढेर' से होता है; 'स्ट्रेटस' का अर्थ 'स्तर' की भाँति फैलनेसे होता है, तथा निम्बसका अर्थ ऊपर उठनेसे होता है। इनके नामोंको देखनेसे ज्ञात होता है कि जिन बादलों के नाम सिरससे प्रारम्भ होते हैं, वे उच्च-घन होते हैं, जिनके नाम अल्टोसे प्रारम्भ होते हैं वे मध्य-घन होते हैं और जिनके नाममें न तो सिरस होता है और न अल्टो ही, वे निम्न-घन होते हैं। प्रयत्न यह किया गया है कि हिन्दीके नाममें भी ऐसी ही कुछ समानता पाई जाये, क्योंकि बादलोंका यही अन्तर्राष्ट्रीय विभाजन है, और सब विज्ञानवेत्ता उन नामोंसे सहमत हैं। 'केश स्तर-घन' फैले हुए चादरकी शकलका होता है। इसके होने पर चन्द्रमाके चारों ओर मंडल दिखलाई देता है। इस बादलकी यही खास पहिचान होती है। इसका एक

गुण और यह होता है कि यह अधिकतर अपने साथी बादल 'केश घन' (Cirrus) के साथ साथ उपस्थित होता है। इस प्रकार इसे स्तर-मध्य-घन (Alto-stratus) से, जो देखनेमें ऐसा ही होता है, सरलतासे पहिचान लिया जाता है। 'केशढेर घन' (cirro-cumulus) देखनेमें लहरोंकी शकलका होता है। ये लहरें छोटी छोटी और समीप समीप दिखलाई देती हैं। जिस प्रकार पानीके बहनेसे नदीके किनारे रेतीली भूमि पर लहरें बन जाती हैं। 'स्तर-मध्य-घन', 'केशस्तर-घन' से बहुत ही घने होते हैं। सूर्य इससे होकर बहुत ही धुँधला दिखलाई देता है। 'ढेर-मध्य-घन' भी 'केशढेर-घन' की भाँति लहरोंकी ही आकृतिका होता है। दोनोंमें केवल अन्तर यह होता है कि मध्य-घन उच्च-घनकी अपेक्षा बहुत घना हो जाता है और इसकी लहरें बड़ी-बड़ी हो जाती हैं। 'ढेर-घन' फूल गोभीकी आकृति का होता है। इसमें नीचेका भाग चौड़ा फैला होता है तथा ऊपरका भाग फूल गोभीकी भाँति निकला हुआ होता है। ये ही बादल बादमें 'ढेरविद्युत-घन' बन जाते हैं। 'स्तर-घन' फैले चादर-के से होते हैं। जब कुहरे सम्वाहक-प्रवाहके कारण ऊपर चले जाते हैं और धीरे धीरे पृथ्वीके समानांतर फैलना प्रारम्भ करते हैं तो अन्तमें 'स्तर-घन' बन जाते हैं। जब ढेर-घन Cumulus पृथ्वीके धरातलके समानान्तर फैल कर चादरकी शकलके बनने लगते हैं, तो उन्हें 'स्तर ढेर-घन' कहते हैं। इस समय इसकी शकल वैसी ही होती है जैसे धुनी हुई रूईको फैलाकर रख देनेसे हो जाती है। इस बादलसे होकर आकाश दिखलाई पड़ता है। जब कभी यह क्षितिजके समीप होता है तो यह एक ऐसे लम्बे छड़ सा दिखलाई पड़ता है, जिसके बीचका भाग मोटा तथा दोनों ओरका भाग पतला हो। 'ढेरविद्युत-घन' बहुत ऊँचा बादल होता है। इसके बीचमें सम्वाहक-प्रवाह बहुत वेगसे ऊपरकी ओर बहता रहता है। इसके ऊपर का भाग निहायकी भाँति फैलकर चौड़ा हो जाता है। जब कभी इस बादलमें वायुयान पड़ जाते हैं तब उनका निकलना बहुत कठिन हो जाता है। ओले विशेषकर इसी बादलमें पाये जाते हैं। यदि ओलोंके भाग किये जायँ तो उनमें हमें पारदर्शक तथा अर्ध-पार-दर्शक वृत्त दिखलाई पड़ेंगे। उनको गिनकर यह पता लगाया जा सकता है कि कितनी बार इन बेचारोंने गुलामीकी इस जंजीरके ऊपर जाने का प्रयत्न किया और कितनी बार ये उस कारागारमें नीचे लाये गये। विस्तृत-विद्युत घन बहुत लम्बा चौड़ा बादल होता है। इसको वर्षाकालका रुक्ष-घन (Ragged clouds of bad weather) भी कह सकते हैं। वर्षा देते समय ये लगातार पानी देते हैं और कई दिन तक पानी देते रहते हैं। इन भागोंके अतिरिक्त और भी छोटे छोटे भाग किये गये हैं। कभी-कभी पहाड़ों पर ताल (Lens) की आकृतिके बादल पाये जाते हैं। इनमें एक ओरसे वायु आती रहती है तथा दूसरी ओर से जाती रहती है, परन्तु यह बादल एक स्थान पर स्थिर रहता है।

पाँच तत्त्वोंका वाद

[लेखक—श्री लक्ष्मणराव घोडगांवकर]

१—पाँच तत्त्वोंका सिद्धान्त दार्शनिकोंका है और ९२ तत्त्वोंका वैज्ञानिकोंका। दार्शनिक ९२ तत्त्वोंके सिद्धान्त को अपूर्ण समझते आ रहे हैं और कहते हैं जहाँ वैज्ञानिकोंका ज्ञान समाप्त होता है वहाँसे वेदान्तका आरंभ होता है। वैज्ञानिकोंने भी पाँच तत्त्वोंको झूठ सिद्ध कर दिखलाए और बदला लिया। किन्तु संसारसे पाँच तत्त्वोंका प्रभाव रत्तीमात्र भी घटा नहीं न ९२ तत्त्वोंकी उपयोगिता कम हुई। वास्तविक शास्त्रोंकी नींव सर्वव्यापी अटल अनुभवों पर रखी जाती है। अनुभवोंकी मुख्य सामग्री पदार्थमय संसार, क्रिया, व्यवहार व आत्मा (Consciousness), दार्शनिक व वैज्ञानिक, दोनों शास्त्रज्ञोंके लिये-एकसा ही है। न दार्शनिक का संसार अलग है न वैज्ञानिककी सृष्टि भिन्न। ऐसी अवस्थामें भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण ही भिन्न-भिन्न शास्त्र निर्माण होनेका कारण हो सकते हैं। शास्त्र झूठ होना तो सम्भव नहीं। वैज्ञानिक निसर्गके नियमोंके आधार से अपने सिद्धान्त स्थापित करते हैं तो दार्शनिक उन नियमोंको छोड़कर एक कदम भी नहीं चल सकते। प्रयोगातीत बातोंका विचार दोनोंको बुद्धि द्वारा ही करना पड़ता है, जो बुद्धि वैभव दोनोंके पास एक रकम है। अन्तःप्रेरणाशक्ति दोनोंके पास एक है। सत्यता व सिद्धान्तकी कसौटी अथवा परख, के लिए जो आत्मा है वह दोनोंके पास एक ही है। खोजका विषय जो सत्य, है वह दोनोंका एक है। इस अवस्थामें परिणाम भिन्न निकल नहीं सकते। प्रस्तुत परिणाम भिन्न जो दिख रहे हैं उसका कारण दृष्टिकी कोताही है। कहनेको कह सकते हैं कि सत्यकी खोज भिन्न-भिन्न स्थानमें हो रही है, इसीसे भेद दिख रहा है।

२—अनुभवके मुख्य दो अंग हैं। एक वह जिसमें अनुभव लेने वाला रहता है, जो अनुभवका कर्त्ता है। दूसरा वह जिसमें अनुभव की क्रिया की घटना होती है, जो अनुभवका विषय कहलाता है। दिखानेको दोनों अत्यन्त विजातीय हैं, एक ज्ञानरूप चैतन्य है, दूसरा ज्ञानहीन जड़ है। किन्तु दोनोंका साहचर्य इतना अटल है कि, दोनोंका संयोग हुए बिना न अनुभव है, न ज्ञान है, न सत्य है, न सत्य की खोज है। चैतन्यका प्रादुर्भाव होनेके पहले गर्भस्थ जीवपेशी अचैतन्य अथवा जड़ ही रहती है। इस अनुभवके आधार पर यह मानना अनिवार्य हो जाता है कि संसारमें जीवोत्पत्ति होनेके बहुत पहले से जड़सृष्टि का अस्तित्व था। अर्थात् चैतन्य बिना जड़का अस्तित्व रहना संभव है किन्तु बिना जड़के आश्रयके चैतन्यका अस्तित्व अनुभवमें आना संभव नहीं। चैतन्य इतना जड़ावलम्बी है तो भी यह अनुभव भुलाया नहीं जा सकता कि जीवोत्पत्ति के पूर्व जड़के अस्तित्वको सिद्ध माननेका अधिकार एकमात्र चैतन्य का है। चैतन्यका प्रादुर्भाव होनेके पश्चात् ही यह निश्चित हो सकता है और वह चैतन्य ही करता है, कि चैतन्य बिना जड़का अस्तित्व था। इससे यह अर्थ निकलता है कि चैतन्यको व्यक्त करनेके लिये ही जड़ का अस्तित्व हुआ था, चैतन्यके बसनेके लिये वह घर बना था उसमें चैतन्यका प्राधान्य था, चैतन्य उसका मालिक था। घरके मालिकका अस्तित्व घरके बननेके पहले था, किन्तु था अव्यक्त।

३—यदि मान लें कि, संसारमें प्रतीत होनेवाली ज्ञान कला ही चैतन्य है, तो इसी संसारमें अत्यन्त विशाल प्रतीत होने वाले जड़से वह बहुत अधिक विशाल प्रतीत होता है। किन्तु वह सारी प्रचीति एक ऐसे बिन्दुमें व्यक्त होती है, जिसका अस्तित्व तो है, किन्तु परिमाण (लंबाई, चौड़ाई, मोटाई) कुछ नहीं है। इसलिये इस बिन्दुमात्र प्रचीतिको "अणोरणीयान् महतो महीयान्" मानते हैं। यही बिन्दु ज्ञानकलाका केन्द्र है। इस केन्द्रका अनुभव मैंपनकी प्रचीतिके साथ है। यही जीवत्व है। पुरुषकी ज्ञान प्रचीति इसी में है। मैंपनका अनुभव यही ज्ञान प्रचीतिका रूप नहीं है। बुद्धिका प्रभाव भी इसी केन्द्रमें अनुभूत होता है। अतएव पुरुषका, मानवका आत्मा इसी केन्द्रमें रहता है, ऐसा माना जाता है। लेकिन मैंपनका अनुभव और बुद्धिवैभवकी प्रचीति यह इस आत्माकी ज्ञान शक्ति है; आत्माका अन्तस्थ शुद्ध स्वरूप इससे भिन्न है, और गूढ है। व्यवहारमें यह केन्द्र अत्यन्त क्षणभंगुर

प्रतीत होता है तथापि अनन्त सातत्य (Continuity) के भावकी उत्पत्ति, परख और सिद्धिका अनुभव इसीमें मिलता है। इस पर से यह पाया जाता है कि ज्ञानकला अथवा ज्ञानशक्ति यह चैतन्य का बाह्य तथा व्यक्त रूप है, इसके अंदरका रूप कुछ और है।

४—इस विचार धारामें हम यह पाते हैं कि, चैतन्य वस्तुत्त्व विहीन ज्ञानकला है और जड़ ज्ञानशक्ति विहीन वस्तुत्त्व है, एक दूसरे बिना अपूर्ण है और एक दूसरेके पूर्तिके लिये निर्मित है। यह विश्व जड़ चैतन्यका कर्दम है, जिसमेंसे धूल और पानी पृथक-पृथक करना असंभव-प्राय है। तथापि अनुभव में दोनों का पृथकत्व प्रतिक्षण प्रतीत होता है। चैतन्य नित्यकर्ता (Subjective entity) के स्थानमें और वस्तुत्त्व नित्य विषय (Objective entity) के स्थानमें प्रतीत होता है। दार्शनिकोंने सत्यकी खोज कर्ताके स्थानमें की और वैज्ञानिकोंने वही खोज विषय स्थानमें करनेका बीड़ा उठाया।

५—वैज्ञानिकोंके खोजका विषय वस्तुत्त्व अर्थात् जड़ पदार्थ होनेसे उनके लिये प्रत्येक वस्तुका प्रथम विश्लेषण करना अवश्य हुआ। उसके लिये प्रयोगशाला ही निश्चित हुई, यह स्वाभाविक ही है। विश्लेषणके परिणाम स्वरूप परमाणु सिद्धान्त पर पहुँच कर ९२ मूलभूत तत्त्वोंका आविष्कार हुआ। परन्तु ९२ मूलभूत तत्त्वोंसे सृष्टिकी रचना अपनेआप होना संभव नहीं था। उसके लिये सृष्टि-कर्ता व सृष्टि रचना करनेका कारखाना अवश्य चाहिये था उनका कहीं पता न मिला। इतना ही नहीं, पता मिलनेकी आशा तक गायब होने लगी। जहाँ-तहाँ और नित्यसृष्टिकार्य अपनेआप हो रहा है, यह देख कर सृष्टि का उपादान कारण एकसे अधिक होना संभव नहीं यह मानना अनिर्वाय हो बैठा। इधर प्रयोगशालामें परमाणुओं का भण्डाफोड़ होकर विद्युत् कण तथा आकाश किरण विखर गये। इन किरणोंके घूमनेफिरनेके लिये आधार-स्वरूप माध्यमकी आवश्यकता हुई और सर्वव्यापी व प्रवाहरूप ईथरको मानना भी अनिवार्य हो गया, यद्यपि प्रयोगशालामें अभीतक ईथर का कोई स्थान नहीं है।

६—सत्य वह है जिसमें अखण्ड सातत्य (Continuity) है। कर्ताके स्थानसे विषयके स्थानमें सातत्य अधिक प्रतीत होता है। तथापि दार्शनिकों ने सत्यकी खोज कर्ता-स्थानमें करनेका निश्चय इस लिये किया कि, सत्यकी परख करनेका सामर्थ्य एक मात्र कर्ता-स्थानमें पाया जाता है। कर्ताके स्थानमें आत्मा स्वयं आत्म प्रचीति कर सकता है, अहंभावनाका अनुभव करता है, भिन्न-भिन्न कल्पनाओंको तथा भावनाओंको धारण करता है और उनका संचालन करता है, विश्लेषण करता है, समन्वय भी करता है। बुद्धिवाद करके यही सिद्धान्तोंको निश्चित करता है। इसके सिवा इस आत्माका और एक लक्षण विशेष ध्यानमें रखने योग्य है। क्लोरोफ़ार्म सुंघाने मात्रसे नष्ट होनेवाली आत्मा अपने आपका अभाव कभी प्रतीत कर सकती है, ऐसा माननेको बुद्धि तैयार नहीं होती। अर्थात् इस क्षणभंगुर अहंभावनाको सातत्यका आधार होना अवश्य पाया जाता है। इसी लिये दार्शनिकोंने सत्यकी खोज आत्मस्थान में की।

७—दार्शनिकों ने अनुभव किया कि, यद्यपि जड़ पदार्थ सारे विश्वका आधार है, तथापि विश्वकी प्रगतिका एक मात्र कारण अनुभव है। इन अनुभवोंका संचालन, विश्लेषण, समन्वय, व उपयोग उसी स्थानमें होता है जहाँ अहम्भावना प्रतीत होती है। संसारके सारे कर्तृत्व का अधिकार, सारे पराक्रमोंका उद्गमस्थान इसी स्थानमें पाया जाता है। अर्थात् समस्त अनुभवोंका, समस्त ज्ञान का यही केन्द्र है। इस केन्द्रमें संसारके समस्त अनुभव केवल पाँच ही इंद्रियों द्वारा अनुभूत किये जाते हैं। इन पाँचोंके सिवा अन्य एक भी द्वार उपलब्ध नहीं है जिसके ज़रिये विश्वका ज्ञान प्राप्त हो सके। ऐसी अवस्थामें विचार करनेकी बात है कि, दार्शनिक किस आधार पर पाँचसे कम अथवा अधिक तत्त्वोंका अनुमान कर सकते हैं? अहम्भावनाकी विश्लेषण पूर्वक प्रचीति भूमितिशास्त्रके बिन्दुके समान अर्थात् बिना परिमाणके अस्तित्व मात्र पाई जाती है, इस लिये दार्शनिकोंने परमाणुवाद भी स्वीकृत किया है। किन्तु दार्शनिकोंका यह परमाणुवाद वैज्ञानिकोंके परमाणुवादके समान सृष्टिरचनाके रहस्यका शोध करनेके लिये स्वीकृत नहीं हुआ। दार्शनिकोंने परमाणु-वादको मान्यता दी वह केवल "सत्य" के अस्तित्वकी भावनाका रूप निश्चित करनेके लिए, और यह निश्चय

किया कि, "सत्" का अस्तित्व "अणोरणीयान् महतो महीयान्" अर्थात् परमाणुसे भी सूक्ष्म तथा महान्से महान् है। दार्शनिक वैज्ञानिकोंके समान परमाणुवादका उपयोग करते तो अवश्य वे भी सर्व आधुनिक वैज्ञानिक शोधका पता लगा लेते। परन्तु ऐसा होना इसलिये असंभव हुआ कि, दार्शनिकोंने इस सृष्टिके अस्तित्वका रूप पहले ही केवल कल्पना मात्र अतएव मिथ्या निश्चित कर दिया था।

८—कर्ता-स्थानमें जो आत्मप्रचीति का अनुभव होता है वह भी वास्तवमें केवल भावना अर्थात् कल्पना मात्र है। कारण उसमें उदय व अस्त किंवा व्यक्ति व अव्यक्तिकी उपाधि लगी रही है। यह उदयास्त इतने शीघ्र गतिसे प्रतीत होते हैं कि, इस आत्मप्रचीतिमें कुछ भी सातत्य होने की भावना करना कठिन मालूम होता है। इसलिए इस आत्म-प्रचीतिको दार्शनिकोंनें वास्तविक ज्ञानकला माना है। अथात् आत्म-प्रचीतिको सत्यका पद प्राप्त नहीं हो सकता। इस प्रकार विषयस्थानमें तथा कर्तास्थानमें केवल ज्ञानकला का ही अस्तित्व पाया गया। साथ ही यह भी पाया गया कि, यह ज्ञानकला केवल गुण अथवा सत्ता किंवा शक्ति मात्र है। इसका अधिष्ठान बिना अस्तित्व नहीं। इस अधिष्ठान की खोजमें दार्शनिकोंनें विशेषतः वेदान्तदर्शननें-"ब्रह्म" को पाया। इस ब्रह्मकी सिद्धि दार्शनिक प्रयोगशालामें नहीं कर पाए, क्योंकि उन्हें प्रयोगशालाकी आवश्यकता नहीं पड़ी थी। तथापि ब्रह्म अनुभव-सिद्ध होनेका दावा दार्शनिक अवश्य करते हैं जैसाकि उपनिषद में लिखा है—"आत्मा वा द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मंतव्यो निदिध्यासितव्यः"।

९—अब वैज्ञानिकों का "ईथर" और दार्शनिकोंके "ब्रह्म" के लक्षणोंकी तुलना देखें। ईथर अत्यंत स्थिति-स्थापक—एक स्थानसे दुसरे स्थान पर नहीं जा सकने वाला अत्यन्त दृढ़, अत्यन्त चपल, ऐसा एक प्रवाही पदार्थ है, जो निरुपाधिक तथा अविभाज्य भी है और सर्वत्र, सर्व रिक्त स्थानोंमें वास करनेवाला तथा सर्व घन व द्रव पदार्थोंमेंसे आर पार जानेवाला है। इस प्रकार ईथरका वर्णन पाया जाता है। दार्शनिकोंका ब्रह्म निर्गुण, निराकार, निश्चल, निरपेक्ष तथा सर्वव्यापी बतलाया गया है। यह भी वर्णन पाया जाता है कि, दोनों अद्वितीय हैं अर्थात् इसके सिवाय अन्य कोई भी पदार्थ संसारमें नहीं है। यह वर्णन ही बता रहा है कि, वैज्ञानिकोंने ऐसे ही एक पदार्थको सत्य माना है, जिसे दार्शनिकोंनें अनुभव द्वारा सत्य होना बताया है। दोनों एक ही परिणाम पर पहुँचे हैं।

१०—सत्यकी खोजमें यद्यपि दार्शनिक और वैज्ञानिक दोनों एक परिणाम पर पहुँचे हैं तो भी विश्वरचनाकी उपपत्तिके विषयमें दोनोंकी एक-वाक्यता नहीं हुई। कारण यही है कि, वैज्ञानिकोंका सत्य केवल तर्क-सिद्ध है और दार्शनिकोंका अनुभव-सिद्ध। वैज्ञानिकोंनें विश्वरचना ९२ तत्त्वोंसे होना माना और दार्शनिकोंने पांच। तत्त्वोंकी संख्या की यह भिन्नता विश्वरचनाकी दोनों पद्धतियोंमें कोई अड़चन इस लिये नहीं पैदा कर सकी क्योंकि, प्रकृति-सिद्धान्त दोनोंको मान्य है। दोनों की मान्यतामें फरक इतना ही है कि, ईथर जड़ है, ज्ञानवान नहीं है, तथा प्रकृति स्वयंपूर्ण है, उसके संचालनके लिये किसी अन्यकी गरज नहीं है, ऐसा वैज्ञानिकोंका कहना है; दार्शनिक ब्रह्म-को ज्ञानवान तथा प्रकृतिका संचालन करनेवाला मानते हैं। ईथरको जगदाधार मान लेनेके पश्चात् प्रकृति क्या वस्तु है इस बातका निश्चय वैज्ञानिकोंनें अभी तक किया नहीं है। यदि मानलें कि, प्रकृतिका अर्थ नियम-बद्धता है, तो वह स्वयंपूर्ण हो नहीं सकती क्योंकि नियम बद्धता एक गुण है, शक्ति है, एक कार्यवाही है और उसका बिना अधिष्ठानके अस्तित्व नहीं है। नियमबद्धताके अर्थमें प्रकृतिका संचालन यदि ईथरको सौंपते हैं तो उसे ज्ञानवान होना अत्यन्त अवश्य है। वेदान्तने अपने ब्रह्मको ज्ञानवान ही पाया। यहां एक बात विशेष विचारणीय है कि ब्रह्मकी इस ज्ञान-वत्ता-ज्ञानसत्ता-मेंही उदयास्तकी उपाधि लगी हुई है। अथवा यूं कहिये कि, इस ज्ञानवत्तामें उदय और अस्त होना-व्यक्त और अव्यक्त होना-यह गुण अर्थात् शक्ति है। इसी कारण जब ज्ञानसत्ताका उदय होता है, तो संसार और संसारका आधार ब्रह्म दोनों व्यक्त होते हैं, और जब ज्ञानसत्ताका अस्त होता है तो दोनों अव्यक्त अवस्थामें हो जाते हैं। यह अव्यक्तावस्था मृत्युरूप किंवा अभावरूप नहीं है, किन्तु निरुपाधिक वा अनिर्वचनीय है। जन्म-मरण किंवा भाव-अभाव यह तो संसारके उदित अवस्थाके अनुभव

है। ब्रह्म नित्यही इस निरुपाधिक व अनिर्वचनीय अवस्थामें एक रूप रहता है। ब्रह्ममें ज्ञानसत्ताका उदय होने पर, तथा अभयदि संसार व्यक्त होने पर भी, उसकी निरुपाधिक व अनिर्वचनीय अवस्था भंग नहीं होती। इसी लिये यह अनिर्वचनीय ब्रह्म सत्य है—उसमें निरंतर सातत्य है। ब्रह्मकी यह अनिर्वचनीय अवस्था इस लिये संभव है कि, वेदान्त-सिद्धान्तके अनुसार ब्रह्म में संसारका व्यक्त होना केवल ज्ञानवत्ता है, एक समझ है, सारे संसारका अस्तित्व कल्पना मात्र है, वस्तुत्व बिलकुल नहीं। वैज्ञानिकोंका ईथर भी तो इसी प्रकार ज्ञान-विहीन, निरुपाधिक तथा अनिर्वचनीय ऐसा एक प्रवाही पदार्थ है?

११—अब दार्शनिकोंके प्रकृति-सिद्धान्तकी ओर ध्यान दीजिये। जहाँ वैज्ञानिकोंकी प्रकृति वस्तुतः क्या पदार्थ है इसका अभी तक पता नहीं, वहाँ दार्शनिकोंकी प्रकृति वस्तुतः केवल कल्पना है। कल्पना वस्तुतः ज्ञानरूपज्ञान-शक्ति है। इसमें वस्तुत्व हो नहीं सकता। एक ब्रह्म मात्र दार्शनिकोंकी वस्तु है। कल्पना अथवा ज्ञानशक्तिका अस्तित्व केवल ब्रह्मके आश्रयमें ही है। इस कल्पनाका आविर्भाव अत्यन्त नियमबद्ध होनेसे इसको प्रकृति कहा जाता है। प्रकृति शब्द का सर्व साधारण अर्थ भी स्वभाव किंवा आदत है। हमारी संध्योपासनामें उद्धृत अघमर्षण सूक्त में सृष्टिकी उत्पत्तिका अनुक्रम बताकर—"सूर्याचन्द्रमसौ-धाता यथा पूर्वमकल्पयात्" अर्थात् ब्रह्माजीने सूर्यचन्द्रादिकों की पूर्वके अनुसारही कल्पना की ऐसा उल्लेख किया है। इसमें "अकल्पयत्" शब्द विशेष ध्यान देने योग्य है। इसमें "निर्माण" शब्दकी योजना न करते "कल्पना की" ऐसी शब्द योजना की है।

१२—प्रकृतिका प्रथम और सर्वव्यापी नियम है--"सत्वरजस्तमसाम् साम्याऽवस्था प्रकृतिः।" अर्थात् सत्व, रज और तम इन तीन गुणोंकी समानता प्रकृति है। प्रकृतिके प्रत्येक आविर्भावमें सत्त्व, रज और तमका समान अस्तित्व है, प्रकृति का व्यक्त होना इन तीन गुणों करके होता है। क्या वैज्ञानिक और क्या दार्शनिक सर्व शास्त्रोंका और सिद्धान्तोंका मूल जो अनुभव है उससे भी ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान यही तीन अंग अनिवार्यतः पाये जाते हैं। ज्ञाता नित्य अहं के रूपमें प्रतीत होता है, ज्ञान शक्ति अथवा कलाके रूपमें और ज्ञेय पदार्थके रूपमें। इस त्रिगुणात्मक अनुभवमें समस्त जड़ चैतन्य—स्थूलसूक्ष्म जगत्का समावेश है। अनुभवके 'अहं' अंगमें मन, चित्त, बुद्धि, कल्पना, भावना, समझ, संवेदना, इत्यादि सूक्ष्म आध्यात्मिक प्रचीति होती है। इन सूक्ष्म कल्पनाओंको पुनराऽवृत्तियोंकी गति मिलने पर संसारमें वाचा, प्रकाश, विद्युत, गति, शक्ति, भार, इत्यादिकी प्रचीति मिलती है। यही गति जब अत्यन्त तीव्र और सतत होती है तो कल्पनाएँ स्थूल और स्थिर भासने लगती हैं—जिस प्रकार तीव्र गतिसे चक्कर खाने वाला भँवरा गतियुक्त होते हुए स्थिर भासता है। यही जड़ अर्थात् अनुभवके तीसरे अंगकी प्रचीति है। इस सिद्धान्तको वैज्ञानिक भी मानते हैं कि, समस्त जड़ पदार्थ भार रूप अर्थात गति व शक्तिरूप है। यहाँ यह बात विशेष ध्यानमें रखनेकी है कि, शब्द की प्रचीति गतिका ही व्यापक रूप है। इसीलिए प्रत्येक जड़ पदार्थके साथ शब्दकी प्रचीति अनिवार्य है। और इस लिये पदार्थके सूक्ष्म व जड़ रूपके बीच में उसका मध्यम रूप शब्द है। प्रत्येक पदार्थ तीन रूपोंमें प्रतीत होता है—एक भावना, संवेदना, कल्पना रूप दूसरा शब्द रूप, तीसरा भौतिक पदार्थ रूप। यही अनुक्रमसे सत्त्व, रज व तम की प्रचीति है। इस विचार सरनीके अनुसार प्रत्येक भौतिक पदार्थ मूलमें कल्पना मनस्वरूप है और अंतमें जड़ व स्थिर भासता है, तो भी वास्तवमें वह है कल्पना ही। अर्थात समस्त प्रकृति मूलमें कल्पना है जो मनस्तत्त्वके अन्दर प्रतीत होती है।

१३—वैज्ञानिक कहता है कि यह मनस्तत्व मानव देहमें उत्पन्न होने वाला भौतिक पदार्थोंका विकास मात्र है। और इसका यह प्रमाण हैकि, मनस्तत्त्वमें किसी पदार्थकी कल्पनाकी प्रचीति तब मिलती है जब इन्द्रिय द्वारा उस पदार्थका प्रथम अनुभव मिलता है। अर्थात् प्रत्येक कल्पना केवल इन्द्रिय द्वारा ही मनस्तत्त्वमें प्रवेश करती है। यह नित्यका अनुभव अमान्य नहीं किया जा सकता। तथापि उसका उपयोग, जड़ पदार्थको जगत्का उपादान सिद्ध करनेका पुराना बनानेके लिये कर नहीं सकते। कारण भौतिक पदार्थका अस्तित्व केवल शक्ति-रूप है, ऐसा मान लिया गया है। इसलिये वह किसीका

आश्रय स्थान बन नहीं सकता। मानव देह समस्त ज्ञानकला व्यक्त होने का प्रधान कार्यालय है। इसमें विचारकी दो मुख्य धाराएँ बहती हैं—एक व्यतिरेक अथवा विश्लेषण कारक दूसरी समन्वय कारक। एक धारा में परमाणुवाद प्रगट हुआ, दूसरी में अद्वैत। व्यतिरेक धारामें आत्म केन्द्रका पता मिलता है, समन्वय धारामें ब्रह्म सिद्धान्त स्थापित होता है। व्यतिरेक-धारा वृत्तसे केन्द्रकी ओर बहती है और समन्वय-धारा ब्रह्ममें समाती है। मनुष्य-जीवन का मुख्य व अन्तिम हेतु सत्य प्रगट करनेका होनेसे, सत्यकी खोजमें मानव देहमें प्रथम व्यतिरेक-धारा ही बहती है। यह धारा वृत्तसे केन्द्रकी ओर बहनेकी इसकी प्रकृति होनेसे मानव देहमें प्रथम इन्द्रिय द्वारा भौतिक रूपका ज्ञान होता है, उसके पश्चात् मनस्तत्त्वमें उसका कल्पना रूप प्रतीत होता है। यह प्रकृति भौतिकसे कल्पनाका विकास होनेका प्रमाण नहीं हो सकता।

१४—प्रकृति वस्तुतः कल्पना मात्र है। कल्पनाकी प्रचीति उस स्थानमें होती है जहां अहं भावनाकी प्रचीति होती है। कल्पनाकी प्रचीतिमें ज्ञाता-ज्ञेय-ज्ञान पूर्वक त्रैगुण्य (सत्व, रज, तमकी समानता) प्रतीत होता है, और प्रतीत होती है कल्पनाकी क्षणभंगुरता—उत्पति होतेही लय, उदय होतेही अस्त। परंतु त्रैगुण्यमेंका ज्ञाता अथवा कर्ता उस कल्पनाको पुनः पुनः धारण करता है, पुनः पुनः उसका लय होता है। कल्पनाकी इन पुनरावृत्तियोंके क्षणभंगुर कल्पनामें सातत्यका भास होता है। कर्तामें वह कल्पना धारण करनेकी आदत पड़ जाती है। कल्पनामें सातत्यका आभास बढ़ता जाता है। क्षणभंगुर व सूक्ष्म कल्पना सत्य व स्थूल भासने लगती है। कल्पना स्थूल हो जाने पर उसको धारण करने वाले धर्ता (आत्मा) से वह भिन्न होकर ज्ञाता व ज्ञेय यह द्वैत बन जाता है—एकके दो हो जाते है। दो हुए तो भी दोनोंका आश्रय एकही ब्रह्म है, जो विस्तृत सत्य है। ज्ञेयके अस्तित्वसे आत्माका अस्तित्व भिन्न हो जाने पर वह दूसरी कल्पना धारण करके उसको स्थूलत्व तक पहुँचा देता है, फिर तिसरी कल्पना निर्माण करता है। इस प्रकार असंख्य कल्पनाओंका स्थूल निर्माण होकर यह भौतिक जगत बना है और इसको बनानेवाला आत्मा भी इससे भिन्न व स्वतंत्र रूपसे बना रहा है। मालाके मणियोंसे बीचका सूत्र जिस प्रकार सब मणियोंका एकही आधार है उसी प्रकार समस्त आत्माएँ और स्थूल कल्पनाओंका एक मात्र आश्रयजो "ब्रह्म" वह सारे जगतमें सापेक्षता जनाता है—अनेकतामें ऐक्य प्रचीति बनाता है। प्रगट रूपसे जगतका निर्माण-कर्ता आत्मा है। परंतु आत्मप्रचीति प्रकृति मात्र है और प्रकृतिका आश्रय "ब्रह्म है। इस लिये निर्माण-शक्ति वास्तवमें ब्रह्मकी है। और भौतिकतामें वास्तविकता केवल कल्पना है। यह है सृष्टिके उत्पत्तिकी वेदान्त दर्शनकी उपपत्ति। इसके लिये जीता जागता प्रमाण है मनुष्यकी स्वप्नाऽवस्थाका अनुभव। ब्रह्मकी प्रकृतिसे यह भौतिक जगत उसी प्रकार बना है जिस प्रकार मनुष्यकी प्रकृतिसे स्वप्नसृष्टि बनती है। यह कौन नहीं जानता कि जो स्वप्नसृष्टि वास्तवमें कल्पना मात्र है वही स्वप्नाऽवस्थामें भौतिक रूपमें भासती है ?

१५—अब वैज्ञानिक भी कहने लगे हैं कि, सत्यकी अंतिम स्थिति मानसिक है, और हक्स्ले, स्पेन्सर सरीखे कट्टर भौतिकवादियोंका जमाना अब नही रहा। "(देखिये जनरल अध्यक्षीय भाषण जो सन् १९३६ ई० में भारतीय सायन्स कांग्रेसके २३वे अधिवेशनके समय सर ब्रह्मचारीजी ने दियाथा)। अर्थात् मनस्तत्व, जानकारी, ज्ञान यही सत्य का एक मात्र स्वभाव अथवा गुण है। अभी हिंदीसाहित्य संमेलनके २३वे उदयपुर अधिवेशनमें श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तवजी ने भी कहा है की आधुनिक विज्ञानसे इतना तो सिद्ध हो गया है कि, पदार्थ मूलमें जड़ नहीं है बरन शक्तिका पुंज है। यह सिद्ध करना अब रह गया है कि, यह शक्ति अंधी नही है, इसमें चेतनता भी है।" इस प्रकार वैज्ञानिक जिस बातकी अपेक्षा कर रहे है वही वेदान्त दर्शनने पहलेही सिद्ध कर रखी है।

१६—वेदान्त दर्शनके प्रकृतिके दो अंग है। इसे प्रकृति पुरुषवाद कहते हैं। एक है पुरुष जो आत्मप्रचीतिके रूपसे प्रगट है। दूसरा अंग है प्रकृति, जिसमें कल्पनाओं की पुनरावृत्तियों द्वारा भौतिक जगतका निर्माण होता है। पुनराऽवृत्तियोंमें अत्यन्त नियमबद्धता है, इस लिये नियमबद्धता प्रकृतिका रूप है। प्रकृतिका निर्माण

[शेष ४८वें पृष्ठ पर]

औद्योगिक योजनायें*

[अनुवादक—श्री ओंकारनाथ शर्मा]

(१) परत वाली कागज़ के रेशे की दफ्ती का निर्माण।

गुण और उपयोग :—इस प्रकारकी दफ्तीमें अकसर निम्नलिखित गुणोंके होनेकी आशा की जाती है-लचीलापन, चिमड़ापन, सख्ती, मज़बूती, ताप और विद्युत अवरोधन शक्ति, जलजितता और अग्निजितता इत्यादि। किस दफ़्तीमें कौन कौनसे गुण कितनी कितनी मात्रामें हों, यह बात उसके उपयोग पर निर्भर करती है, जिसके लिये वह बनाई गई है। साथही, वह जिस विधिसे बनाई जाती है, उसमें जिस जातिके कागजका उपयोग किया जाता है और उन्हें आपसमें चिपकानेके लिये जिस प्रकार के चेप वाले पदार्थका व्यवहार किया जाता है उससे भी उसके गुणोंमें अन्तर पड़ जाता है।

रेशे की दफ्ती कई कामों में आती है, यथा :—वैद्युत पृथक्न्यासीकरण, ब्रेकोंके अस्तर (linings), पैकिंग के बकस, सूटकेस, जूट और रुई की मिलों में सूत रखने के लिये रकाबियाँ और डोलियाँ इत्यादि बनाने के लिये। इसके अतिरिक्त यह और भी अनगिनत कामों में आती है। भारतीय कच्चे माल से बनाई हुई दफ़्तियाँ विलायती दफ़्तियोंसे मिलती जुलती ही बन जाती हैं जिनके खपतकी बहुत आशा है।

संक्षिप्त निर्माण विधि :—गंधाबिरौज़ा A, B के घोलोंको जुदा जुदा तैयार करके पहिलेको दूसरेमें ८० फा० से ९० फा० तकके तापक्रम पर मिलाया जाता है, फिर उसमें जैसा भी रंग मिलाना हो वह और गंधाबिरौजा C डालकर सारे मिश्रणको मथने वाली मशीनके जरियेसे खूब मिलाकर एकसा कर लिया जाता है। फिर कागके पूरे थानोंको, यदि वे रुलेकी शकलमें मिल जावें तो, विशेष प्रकार की मशीनों द्वारा इस मिश्रणमें खूब तर करके सुखा लिया जाता है, अन्यथा उन्हें हाथसे ही तर करके बादमें हवामें सुखा दिया जाता है। फिर जितनी भी मोटी दफ़्ती बनानी हो उसके अनुसार आवश्यक परतोंमें रंग सोखे हुए काग़जोंको

*भारत सरकारके व्यापारिक विभागके अन्तर्गत "बोर्ड आफ साइन्टिफिक एण्ड इंडस्ट्रियल रिसर्च" द्वारा किये गए अनुसंधानों पर प्रकाशित सूचनाओंका अनुवाद।

[४७वें पृष्ठ का शेष]

पाँच तत्त्वोंका वाद

और संचालन पुरुष करता है। अर्थात् प्रकृतिमें परिवर्तन करनेका अधिकार भी पुरुषमें है। इसी कारण प्रकृतिके नियमोंमें यत्रतत्र अपवाद पाए जाते हैं। तथा प्रकृतिमें नियमबद्धताके साथ नूतनताका भी अनुभव मिलता है। इस प्रकार प्रकृतिमें पुरुषका प्रधान अंग है। विश्वका व्यक्त होना पुरुषके ही हाथमें है। जब विश्वका प्रगटीकरण पांच ही इन्द्रियों द्वारा होता है तो पांच तत्त्वोका निश्चित होना साहजिक है, युक्ति संगत है, अनिवार्य है। वैज्ञानिकोंके ९२ तत्त्वोंका ज्ञान मिथ्या तो है ही नहीं, व्यवहारमें अत्यन्त उपयुक्त ठहरा है, लेकिन विश्वरचनाकी समस्या सुलझानेमें वह असमर्थ मालूम हुआ। उलटे वेदान्त दर्शनकी पांच तत्वकी प्रकृति उसे सुलझानेमें सफल हुई है। विशेषतः वेदान्त दर्शनका त्रैगुण्यवाद ही इस सफलताका मुख्य कारण है। तत्त्वोंकी संख्या पांचहो,९२ हों अथवा कितनीभी हो, कोई बाधा नहीं आती। वाद है तत्त्वोंके संचालन के उपपत्तिका। आधुनिक वैज्ञानिकोंके विकासवाद, सापेक्षतावाद, परमाणुवाद, क्वान्टमथिअरी, इत्यादि वादोंमें वेदान्त दर्शनका यह प्रकृति सिद्धान्त बाधकतो है नहीं, उलटा पूरक ही सिद्ध होने वाला है, यदि वैज्ञानिक इसका अध्ययन करें।

१७—यह विचार-सरनी सद्‌गुरु श्री छोटे साहेब महाराज कानवन निवासीने अपने जीवन कालमें कथन की थी। उसीके अनुसार लेखकने लिखा है। लेखकका भी यही मत है।

———

लेकर, गरम-गरम हालतमें उन्हें, आधा टन प्रति वर्ग इन्चके दबावसे दबा दिया जाता है। इस क्रियाके बाद, दबी हुई दफ्तीको गरम हवाकी अंगीठीमें फिर तपाया जाता है।

कच्चे मालकी कीमतका अंदाज़ा नीचे दिया जाता है:—

गंधाबिरौजा (रेजिन) A......	५०) प्रति हंडरवेट।*
गंधाबिरौज़ा (रेजिन) B......	॥=) प्रति पौंड
अमोनिया	१=) प्रति गैलन
अलूमिनम-स्टीरेट	१।) प्रति पौंड, जो थोड़ीही मात्रा में काम आता है।
क्राफ्ट पेपर "२६ × ४४"	२०) प्रति रीम
वेनीशियन रेड	६) प्रति हंडरवेट
क्रोमग्रीन	५४) प्रति हंडरवेट

०·०५ इंच (१/२० इंच) मोटी, प्रतिवर्ग फुट तैयार दफ्तीके पीछे कच्चे मालका खर्च लगभग ≡)॥ पड़ता है।

आवश्यक वस्तुएं:—इस दफ्तीके निर्माणके लिये जिन वस्तुओंकी आवश्यकता होगी वह निम्नलिखित चार भागोंमें बांटी जा सकती हैं।

१--घोल तैयार करनेके लिये— घोल तैयार करनेका प्रयोग एनेमल किये हुए लोहेके बरतनोंमें किया गया था। इनकी जगह लकड़ीकी नाँदोंका भी उपयोग किया जा सकता है जो बहुत सस्ती बन सकती हैं। लकड़ीकी नाँदोंमें घोलको गरम करनेका काम डुबोकर गरम करने वाले बिजलीके हीटरोंसे किया जा सकता है। इन नादोंमें ही आवश्यक प्रकारकी यांत्रिक मथानियां भी लगाई जा सकती हैं।

२--कागज़को तर करनेके लिये—हाथसे—(क) ४"×३०"×३" नामकी एनेमलकी हुई कुछ नाँदें जिनकी कीमत लगभग ६०) प्रति दर्जन पड़ेगी। (ख) ऐसी जगहमें जहाँ हवाके झोके न आते हों, दो खंभोंके बीच लोहेके तारकी अरगनियाँ जिनकी लम्बाई कुल मिला कर काफी हो, लगाकर उनमें लकड़ीकी चुटकियाँ लगा देनी चाहिये, जिनमें पकड़ कर मसालेके घोलमें तर किया हुआ कागज सुखाया जा सके।

(ग) जस्त चढ़ी हुई लोहेकी चद्दरकी कुछ नांदें जिनमें अरगनी पर सुखाये हुए कागजोंसे झरा हुआ मसालेका घोल इकट्ठा किया जा सके।

(३) दबानेकी क्रियाके लिये:— जिस नापकी दफ्तियां बनाई जावें उसीके अनुसार नापका और आवश्यक दबाव दे सकने वाले एक हाइड्रालिक प्रेसकी जरूरत पड़ेगी। प्रेसमें कई प्लेट लगे होने चाहिये जिससे एक बेरमें ही कई दफ्तियां एक साथ दबाई जा सकें। दफ्तियों को गरम करनेकी क्रिया वाष्पके द्वारा होगी अतः एक बायलरकी भी आवश्यकता पड़ेगी। दफ्तियोंको ठंडा करनेकी क्रिया पानीके द्वारा होगी जिससे जल्दी और अच्छा काम हो सके अतः इस क्रियाके लिये भी आवश्यक सरंजाम लगाना होगा। उपरोक्त सरंजामोंकी लागतका अंदाजा नहीं बताया जा सकता, क्योंकि उनकी लागत उनके डिजाइन, नाप, आवश्यकताओं और प्राप्ति आदि पर निर्भर करती है।

(४) तपानेकी क्रियाके लिये:— एक साधारणसा गरम हवाका चूल्हा जो गैसके द्वारा तपाया जाता हो, काफी होगा, क्योंकि इससे उचित तापक्रमके ५°श ऊपर या नीचे तक आसानीसे नियंत्रण रखा जा सकता है। जिस नापकी दफ्तियाँ उसमें तपाई जावेंगी, उस नापके अनुसार ही चूल्हेकी नाप होगी और उसीके अनुसार उसके दाम होंगे। उदाहरणके लिये:—

१८"×१८" नापका १२ खानेवाला चूल्हा लगभग ६०), ३०"×३०" नापका १२ खानेवाला चूल्हा लगभग १३०)

कच्चे मालकी लागत बताते समय जिस प्रकारकी तैयार दफ्तीकी कीमत ≡)॥ प्रति वर्ग फुट बताई गई थी उसीकी कीमत यदि वजनके हिसाबसे लगावें तो वह लगभग १) प्रति पौंड पड़ेगी। इसीसे मिलती जुलती विलायती दफ्ती १॥) पौंडकी दरसे बिकती है। यह जरूर फर्क है कि विलायती दफ्तीका आपेक्षिक गुरुत्व इस योजनाके अनुसार बनी दफ्तीसे कुछ अधिक होता है जिससे देशी दफ्ती क्षेत्रफलके हिसाबसे काफी सस्ती पड़ जाती है। साथ ही कागजके दाम जो इस योजनामें बताये गये हैं, फुटकर बाजार भावके हैं, जो थोक मालसे काफी मंहगे पड़ते हैं, अतः अधिक मात्रामें कागज खरीदे जावेंगे तो सस्ता कागज होनेके कारण, इस योजनाके अनुसार बना माल स्वभावतः और अधिक सस्ता पड़ेगा।

---

* १ हंडरवेट लगभग ५४ सेरके बराबर होता है।

परिवर्तनशील तारे

(लेखक—डा० हरिकेशव सेन, गणित विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

तारोंका परिचय

हमें पहले ज्ञात होना चाहिये कि ज्योतिर्विदके दृष्टि-कोणसे तारे कौन-सी वस्तु हैं। तारे गैससे भरे हुए बहुत भारी गोलक हैं, जो स्वतः प्रकाशमान हैं। हमारा सूर्य भी एक तारा है। देखनेमें तो यह प्रकांड मालूम होता है, परन्तु तारकमंडलोंमें यह एक मध्यवित्त सदस्य (middle-class citizen) है। सूर्यसे प्रति सेकंड हमें इतना प्रकाश और ताप मिलता है जिसका दाम करोड़ों रुपये है। कुछ भीमकाय (giant) तारे ऐसे हैं जो सूर्यसे सहस्र गुना अधिक मात्राकी शक्ति विकिरण करते हैं।

प्रश्न यह है कि तारे इतनी शक्ति कहाँसे पाते हैं। अधिकांश तारे करोड़ों वर्ष तक एकरस प्रकाशमान रहते हैं। हमारी आयु इतनी कम है कि हम अपनी जीवितावस्था में इन तारोंके प्रकाशमें अंतर नहीं पा सकते। तारोंके अंदर ऐसी कोई क्रिया होती होगी जो इनको प्रकाशके लिये शक्ति देती रहती है। वैज्ञानिक कहते हैं कि यह क्रिया परमाणुओंका आंतरिक परिवर्तन (nuclear transformation) है। तारेकी सतहका तापक्रम और घनत्व बहुत थोड़ा होता है। इसकी सतहका तापक्रम २३००—२३०००° है। यद्यपि यह पृथ्वीकी वस्तुओं के साधारण तापक्रमकी अपेक्षा अधिक है, तथापि यह तारेके केंद्रीय तापक्रम (central temperature) की तुलनामें कुछ भी नहीं है। तारेका केंद्रीय तापक्रम लगभग २०,०००,०००° है।

तारे दो जातिके होते हैं—भीमकाय (giant) और वामन (dwarf)। भीमकाय तारे प्रकांड, उज्ज्वल और सूक्ष्म (rarefied) होते हैं। वामन तारे छोटे, अस्पष्ट और घने (dense) होते हैं। हमारा सूर्य एक वामन तारा है। यह बात हमें लगेगी तो बहुत आश्चर्यजनक, पर है बिल्कुल ठीक। प्रायः सब तारे जो खाली आँखोंसे दिखलाई देते हैं भीमकाय तारे हैं। यह तारे सूर्यकी अपेक्षा उतने ही बड़े हैं जितनी कि छोटी फुटबाल राईके दानेकी अपेक्षा (व्यासमें लगभग २०० गुने)। एक भीमकाय तारेको तो हम एक जलता हुआ साबुनका बुलबुला (fiery soap bubble) कह सकते हैं, परन्तु इसमें भरी हुई गैसका घनत्व बुलबुलेके अंदरकी वायुके घनत्वसे कहीं कम है। कुछ भीमकाय तारोंकी गैसका घनत्व इतना कम है कि हम उसे शून्य (vacuum) ही मान ले सकते हैं।

तारे यदि इतने बड़े हैं तो वे क्यों बिंदु-से प्रतीत होते हैं? यह प्रश्न स्वतः ही मनमें उठता है। इसका कारण यह है कि वह हमसे बहुत दूर हैं। इसीलिये वे आकाशमें एक ही जगह स्थित दिखलाई देते हैं। सबसे निकटवाला तारा भी इतना दूर है कि हम उसकी दूरीका अनुमान नहीं कर सकते। यदि हम रेलसे सूर्य तक जावें तो २०० वर्षमें पहुँचेंगे। सबसे निकटवाले तारे तक पहुँचनेके लिये हमें ५,५०,००,००० वर्ष लगेंगे। इतनी बड़ी दूरीको छोटी-सी संख्यामें लिखनेके लिये ज्योतिर्विद एक इकाई व्यवहारमें लाते हैं जिसे प्रकाशवर्ष कहते हैं। हम जानते हैं कि प्रकाश एक सेकंडमें १८६,००० मील जा सकता है। एक वर्षमें प्रकाश जितना दूर जा सकता है उसीको एक प्रकाशवर्ष कहते हैं। सबसे निकट वाला तारा हमसे ४·३ प्रकाशवर्षकी दूरी पर है, अर्थात् उस तारे-से चला हुआ प्रकाश हमारे पास ४-३ वर्षमें पहुँचता है।

हम पहले कह चुके हैं कि कोई मनुष्य अपनी जीविता-वस्थामें तारेके प्रकाशमें कोई अंतर नहीं पा सकता। आकाश की ओर देखनेसे हमें यह बात सत्य नहीं मालूम होती। तारे आकाश-वस्त्रमें छोटी-छोटी चुमकीसे दीखते हैं। इनमें यदि कुछ अदृश्य भी हो जायं तो हमारे लिये यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं। वस्तुतः अनभिज्ञ लोग उल्का (Meteor) पातको नक्षत्रपातकी दृष्टिसे देखते हैं। परन्तु ज्योतिर्विद तारेको एक स्थायी प्रकाशमान गोलपिंड मानते हैं। यह इतना प्रकाश विकिरण करते हैं कि यदि इनके अंदर शक्तिका कोई संग्रह न हो तो यह बहुत जल्दी ही ठंढे हो जायँगे।

लोग पहले समझते थे कि सूर्य (यह भी एक तारा

है, जैसा हम पहले कह चुके हैं) एक भारी जलता हुआ कोयलेका चूल्हा है। यदि सूर्य कोयलेका बना होता और फैरो (Pharaoh, इजिप्टका राजा) के समयसे जलता होता तो अब तक वह जलकर राख हो जाता। लेकिन हम जानते हैं कि सूर्य करोड़ों वर्षसे एक-सी ही मात्राका प्रकाश दे रहा है। कोई रासायनिक प्रक्रिया (Chemical reaction) भी इसके लिये यथेष्ट नहीं है। इसका कारण केवल परमाणुओंका आभ्यन्तरिक परिवर्तन (nuclear transformation) ही हो सकता है। अमेरिकाके दो वैज्ञानिक बेटे (Bethe) और गैमो (Gamow) कहते हैं कि तारोंके अंदर प्रचंड उत्तापके कारण हाइड्रोजेन (hydrogen) गैस हीलीयम (helium) गैसमें बदल जाता है जिससे इतनी शक्ति उत्पन्न होती है जो तारों की रोशनीको करोड़ों वर्ष तक कायम रख सकती है। अधिकांश तारोंका प्रकाश स्थायी होनेका यही कारण मान लिया गया है।

वैज्ञानिकको ठीक मालूम नहीं कि यह परमाणविक परिवर्तन (nuclear transformation) किस प्रकार होता है, यद्यपि वह इसको जाननेके लिये यथेष्ट चेष्टा कर रहे हैं। इस क्रियाको हम तारोंके ही द्वारा जान सकते हैं, क्योंकि पार्थिव रसायनागारमें हम वह अवस्था नहीं पैदा कर सकते जो तारोंमें स्वतः ही पाई जाती है। यह बड़ी खुशीकी बात है कि ज्योतिर्विद और भौतिक शास्त्रविद पूरे सहयोगके साथ सांसारिक ज्ञानभांडारको बढ़ा रहे हैं। भौतिक शास्त्र (physics) के बहुतसे तथ्य ज्योतिष (astronomy) के काममें लाये गये हैं। तारों तक जाना तो हमारे लिये असंभव है, परन्तु तारोंसे चले हुए प्रकाशसे हम भौतिक शास्त्र और गुरुत्वाकर्षण (gravitation) की बहुत-सी ज्ञातव्य बातें मालूम कर सकते हैं जिससे हम अपनी अवस्थाको अत्युन्नत कर सकते हैं। तारे अपने प्रकाशसे हमें बहुत-सी बातें बतला रहे हैं जिन्हें समझनेकी हमें चेष्टा करनी चाहिये।

परिवर्तनशील नक्षत्रोंका प्रकारभेद

हम पहले कह चुके हैं कि अधिकांश तारे एकरस प्रकाशमान हैं। परन्तु कुछ तारे ऐसे हैं जिनका प्रकाश किसी नियमसे घटता बढ़ता है। ये "परिवर्तनशील" या "घटने बढ़ने वाले नक्षत्र" (variable stars) कहलाते हैं। रसेल (Russell) के हिसाबसे संभवतः प्रतिशत पाँच नक्षत्र परिवर्तनशील हैं। ये नक्षत्र ज्योतिर्विदोंके लिए अत्यन्त चित्ताकर्षक हैं, क्योंकि कुछ घंटों, दिनों, या वर्षोंमें वह परिवर्तन दीखता है जो अधिकांश तारोंमें करोड़ों वर्षमें संभव नहीं। इन नक्षत्रोंके विषयमें हम क्या जानते हैं एवं कितना अधिक हम इनसे शिक्षालाभ कर सकते हैं, इसका वर्णन इस लेखमें किया जायगा। इस प्रसंगमें हम उस बातका उल्लेख कर सकते हैं जिसको सर आर्थर एडिंगटन ने लुब्धक (Sirius) के एक सहचर (जिसको "श्वेतवामन" white dwarf कहते हैं) तारेके विषयमें कहा है—"जिन तारोंका रश्मिचित्र (spectrum) प्रकाशमात्रा (luminosity) के नियम का उल्लंघन करता है, उनका अध्ययन अन्ततोगत्वा उन तारोंकी अपेक्षा जो इस नियमका पालन करते हैं, अधिक महत्वपूर्ण और शिक्षाप्रद है।"

नाना प्रकारके परिवर्तनशील तारोंका वर्गीकरण नीचे किया जाता है।
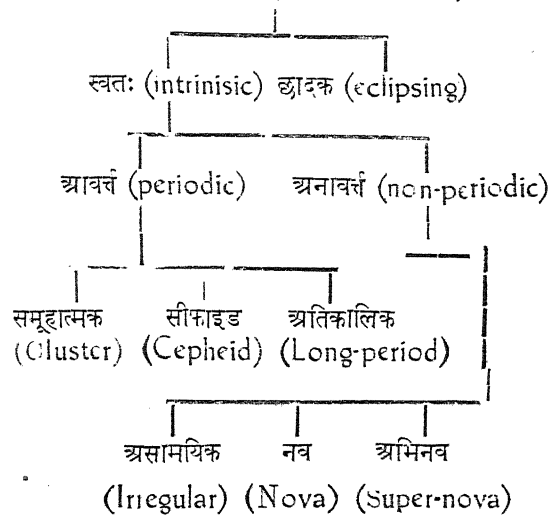
छादक परिवर्तनशील तारे (eclipsing variables)

छादक परिवर्तनशील तारे ऐसे दोहरे तारे हैं

जिनमें से एक तारा समय समय पर दूसरे तारेके आलोक को ढक देता है। यदि तारेके आनेवाले प्रकाशका वक्र बनाया जाये तो वह एक सीधी रेखा होगी जो ग्रहणोंके समय अचानक टूटी हुई होगी। स्पेक्ट्रास्कोप (Spectroscope) के द्वारा यह बात मालूम हुई है कि छादक परिवर्तनशील तारे वास्तवमें दोहरे तारे हैं। परन्तु सब दोहरे तारे छादक और परिवर्तनशील नहीं होंगे। इनमें वही होंगे जिनका कक्षातल (orbital plane) पृथ्वीके बहुत पाससे होता हुआ गुजरता हो। जब दोनों तारे प्रायः सम प्रकाशमान होते हैं तो प्रकाश दो बार घटता है। दोहरे तारे ज्योतिर्विदों की दृष्टिसे महत्वपूर्ण हैं इसलिये कि इनके आयतन, घनत्व और इनकी उज्वलता हम कभी-कभी यथेष्ट निश्चयताके साथ मालूम कर सकते हैं। परन्तु यह भली भाँति मालूम होना चाहिये कि छादक परिवर्तनशील तारोंका प्रकाश किसी आभ्यंतरिक कारणसे तो नहीं घटता बढ़ता। इनमें परसीउस तारकमंडली (Perseus constelletion) में स्थित अलगोल (Algol) नामका तारा सबसे प्रसिद्ध है।

आवर्त्त परिवर्तनशील तारे
(Periodic Variables)

छादक परिवर्तनशील तारों से वह तारे बिलकुल अलग हैं जिनका प्रकाश भीतरी कारणोंसे घटता-बढ़ता है। छादक परिवर्तनशील तारे तो केवल पृथ्वी ही से परिवर्तनशील मालूम होते हैं। परन्तु स्वतः परिवर्तनशील तारे हर तरफसे परिवर्तनशील मालूम होंगे। इनमेंसे बहुत से ऐसे हैं जो आवर्त्त परिवर्तनशील हैं। नीचे मुख्य मुख्य आवर्त्त परिवर्तनशील तारोंकी एक तालिका दी जाती है।

नाम	आवर्त्तकाल	संख्या	आलोकसीमा
समूहात्मक Clnster)	०·५६ दिन	६२०	२·५
सीडाइड (Cepheid)	५·६ दिन	२८७	२·२
अतिकालिक	२८० दिन	२१४४	३३·

यह मालूम होना चाहिये कि परिवर्तनशील तारे तीन प्रकारके होते हैं—अल्पकालिक (Short-period), मध्यकालिक या सीफाइड (Cepheid) और अतिकालिक (long-period)। इनके बीचमें और आवर्त्तकाल क्यों नहीं हैं, इसका कारण हमें मालूम नहीं। समूहात्मक परिवर्तनशील तारे (Cluster Variables), जो गोल समूहों (globular clusters) में पाये जाते हैं, अल्पावर्त्तकालके हैं, मध्यावर्त्तकालके तारे सीफाइड (Cepheid) कहलाते हैं और अतिकालिक तारोंका आवर्त्तकाल सबसे अधिक है।

समूहात्मक या आर. आर. लीरो परिवर्तनशील तारे
(Cluster or R. R. Lyrae Variables)

ये तारे दिनमें लगभग दो बार अत्यधिक उज्ज्वलता को प्राप्त करते हैं। इनमेंसे कोई भी इतना उज्ज्वल नहीं है कि खाली आँखों से दिखलाई दे; इसलिये लोग इन्हें अधिक जानते नहीं। हमारी तारक-मंडलीमें यह बड़ी तेजीसे दौड़ते हैं—यहाँ तक कि एक सेकंडमें २०० मील तक चले जाते हैं। इनकी आलोकमात्रा (luminosity) में परिवर्तनके साथ साथ गतिमें भी परिवर्तन होनेके कारण यह समझा जाता था कि यह बहुत छोटे कक्षातलों (orbital planes) में बहुत तेजीके साथ घूमते हैं; परन्तु यह मत अब भ्रांत समझा जाता है। यह अधिक संभव है कि इन तारोंकी सतहोंका स्पंदन उनकी उज्ज्वलताके घटने बढ़नेका कारण है। इनका मुख्य दृष्टांत आर. आर. लीरी (R. R. Lyrae) नामक तारा है, जिससे इन परिवर्तनशील तारोंका नाम दिया गया है।

सीफाइड परिवर्तनशील तारे
(Cepheid Variables)

यह तारे पहले वर्णन किये गये तारोंसे कुछ सादृश्य रखते हैं, परन्तु इनका आवर्त्तकाल लगभग छः दिन है, जो समूहात्मक परिवर्तनशील तारों (Clnster Variables) के आवर्त्तकालका लगभग दशगुना है। इनकी सतहें भी स्पंदनशील हैं, परन्तु यह तारे हमारी तारकमंडलीमें बहुत धीरे धीरे चलते हैं—समूहात्मक तारोंकी तरह दौड़ते नहीं। यह ज्योतिर्विदोंके लिये एक बड़ी भारी समस्या

है। इस समूहके मुख्य तारेका नाम डेल्टा सीफाई (S. Cephei) है, जो उत्तरस्थित सीफी नामक तारकमंडली (cephei constellation) में खाली आँखों से दिखलाई देता है। गुडरिक (Goodrick) ने सन् १७८४ में इसे परिवर्तनशील पाया। सीफाइड तारे "विश्वके मानदंड" (Yardsticks of the Universe) कहलाते हैं। इनके द्वारा हमारी तारकमंडलीमें दूरस्थित तारे और उसके बाहर स्थित कुण्डलीकृत नीहारिकाओं (extra-galactic spiral nebulae) की दूरी मालूम की गई है। इसका वर्णन हम आगे करेंगे।

अतिकालिक परिवर्तनशील तारे

(Long-period Variables)

परिवर्तनशील तारोंमें यही तारे संख्यामें अधिक हैं और अच्छी तरह देखे गये हैं। यह तारे बहुत भारी होते हैं और इनका रंग पीला या लाल होता है। इनके आवर्त्तकाल सीफाइड तारोंके आवर्त्तकालसे बहुत अधिक (लगभग २८० दिन) होते हैं। अतिकालिक तारोंमें नियत आवर्तन सीफाइड तारोंकी अपेक्षा कम प्रकट है। परिवर्तनकी मात्रा (amplitude) भी अतिकालिक परिवर्तनशील तारोंमें अत्यधिक होती है। एक तारेकी परम उज्ज्वलता (maximum luminosity) उसकी निम्नतम उज्ज्वलता (minimum luminosity) का १०,००० गुना पाई गई है। हमारा सूर्य भी यदि इस अवस्थाको प्राप्त हो जाय तो हमारी अवस्था कल्पनातीत हो जाय! इनमेंसे एक प्रसिद्ध तारेका नाम "मीरा" (Mira, अनोखा) है। फेब्रीसीयस (Fabricius) ने सन् १५९३ में दूरदर्शकके अविष्कारके २४ वर्ष पहले इसे खोज निकाला। परम उज्ज्वलता प्राप्त करने पर यह खाली आँखोंसे ही दिखलाई देता है, परन्तु निम्नतम उज्ज्वलता प्राप्त करने पर यह खाली आँखोंसे नहीं दीखता।

अतिकालिक परिवर्तनशील तारोंकी खोज प्रधानतः उन ज्योतिर्विदोंके द्वारा हुई है जो पेशेवर (professional) नहीं है। संभवतः और कोई ज्योतिषिक गवेषणा नहीं है जिसमें इतने लोग काम करते हों।

अनावर्त्त परिवर्तनशील तारे

(Non-periodic Variables)

अनावर्त्त परिवर्तनशील तारे वह हैं जिनका आलोक किसी निश्चित समय पर नहीं घटता बढ़ता। इनमेंसे कुछ तो असामयिक परिवर्तनशील (irregular variables) हैं। नवतारे (novae) उन तारोंको कहते हैं जो साधारणतया धुँधले रहते हैं परन्तु अचानक उज्ज्वल आलोक देते हैं और अभिनव तारे (Supernovae) ऐसे नवतारे हैं जो अचानक अत्यन्त उज्ज्वल हो जाते हैं।

परिवर्तनशील तारोंका प्रकारभेद हम उनका आलोक वक्र (light-curve) अध्ययन करके ठीक ठीक समझ सकेंगे। इसके लिए बहुत दिनों तक इनका अध्ययन करना चाहिये। थोड़े दिनोंका यह काम नहीं है। सन् १५९६ में "मीरा" (Mira) की खोज होनेके बाद बहुत दिनों तक (लगभग दो शताब्दी) परिवर्तनशील नक्षत्रों की ठीक-ठीक खोज नहीं हुई। इन तारोंकी रोशनीके घटने बढ़नेके वक्र इस तरह खींचे जाते हैं। एक सीधी समतल (horizontal) रेखा पर समय दिखलाया जाता है और किसी भी समय पर तारेकी उज्ज्वलता एक बिंदुसे दिखलायी जाती है जिसकी दूरी समय दिखलानेवाली रेखासे उस उज्ज्वलताके अनुपातमें हो। तारेका प्रकाश यदि स्थिर रहे तो उसका वक्र एक समतल सीधी रेखा (horizontal straight line) होगी। प्रकाशके घटनेसे वक्र नीचेकी ओर जायेगा और बढ़नेसे ऊपरकी ओर। प्रकाशके घटने बढ़नेकी गति (rate) वक्रके ढाल (Steepness) से मालूम होगी। यदि प्रकाश एकाएक बढ़ जाय तो वक्र एक ऊर्ध्व (vertical) रेखा होगा।

तारेकी प्रकाशमात्रा (luminosity) गणना करने के लिये ज्योतिर्विदोंने एक नियम निकाला है। पुराने ज्योतिर्विदोंने खाली आँखोंसे दीखने वाले तारोंको ६ श्रेणीमें विभक्त किया था—जिनकी उज्ज्वलता सबसे अधिक वह प्रथम श्रेणीके, उसके बाद द्वितीय श्रेणीके, इत्यादि। यह मालूम होना चाहिये कि तारोंकी उज्ज्वलता उनकी श्रेणीके व्युतक्रम अनुपात (inverse proportion) में है। तारेकी श्रेणीकी संख्या जितनी अधिक होगी

उसकी उज्ज्वलता उतनी ही थोड़ी होगी। आधुनिक ज्योतिर्विदोंने इस श्रेणी विभागको पक्का (rigorous) कर दिया है, क्योंकि पुराने नियमसे जिन तारोंकी उज्ज्वलता किसी दो लगातार श्रेणियोंके बीचमें हो वह तारे वर्गाभुक्त नहीं हो सकते। इसलिये एक ही तारेकी संख्या भिन्न ज्योतिर्विदोंके मतमें भिन्न होती थी।

सन् १८३० में सर जान हार्शेल (Sir John Herschel) ने मालूम किया कि प्रथम श्रेणीके नक्षत्र षष्ठ श्रेणीके नक्षत्रोंसे लगभग सौगुना अधिक उज्ज्वल होते हैं। सन् १८५० में पागसन (pagson) ने कहा कि इसीके द्वारा तारेकी प्रकाशमात्राकी गणना की जाय। इसके अनुसार दो लगातार श्रेणियोंकी उज्ज्वलताका अनुपात २·५१२ होगा। साधारणतया जिस नियमसे हम वस्तुओंको नापते हैं उससे यह नियम तो विभिन्न है, परन्तु इसके बहुतसे गुण हैं। तारोंकी उज्ज्वलतामें भेद अत्यन्त अधिक है, उसकी गणना करनेके लिये यह नियम बहुत ही सुविधाजनक है। सबसे उज्ज्वल तारा सबसे अनुज्ज्वल तारेसे करोड़ों गुना अधिक प्रकाश देता है। साधारण नियमसे उनकी उज्ज्वलताकी गणना करनेसे हमें बड़ी असुविधा होगी।

जिस मान (scale) से ज्योतिर्विद तारोंकी प्रकाशमात्राकी गणना करते हैं उसे लघुरिक्थीय (logarithinic) माप कहते हैं। इसकी एक बड़ी भारी सुविधा यह है कि यह तारोंकी उज्ज्वलताके हमारे स्वाभाविक अनुभवके अनुपातमें है। उज्ज्वलताकी मात्राका घटना बढ़ना जो हम अनुभव कर सकते हैं वह तारेकी स्वाभाविक उज्ज्वलता पर निर्भर है। एक अनुज्ज्वल तारेकी उज्ज्वलता थोड़ी सी ही बढ़नेसे हमें मालूम हो जाता है, परन्तु एक अत्युज्ज्वल तारेकी उज्ज्वलता यदि उतनी ही बढ़ जाये तो हमें कुछ भी मालूम नहीं होगा। इस बातकी सत्यता पहले फेकनर (Fechner) ने मालूम की थी और इस विषयमें यह नियम (Fechner's law) दिया था जो उनके नामसे प्रसिद्ध है—"किसी अनुभवका घटना बढ़ना जिसे हम प्रत्यक्ष कर सकते हैं उस अनुभवके अनुपातमें होता है।"

घटने बढ़ने वाले नक्षत्रोंकी उज्ज्वलता प्रायः पासके उन नक्षत्रोंकी तुलनामें मालूमकी जाती है जिनकी उज्ज्वलता हमें मालूम है। अतिकालिक परिवर्तनशील नक्षत्रोंकी ज्योतिकी गणना प्रायः खाली आँखोंसे की जाती है। यह मालूम किया जाता है कि परिवर्तनशील नक्षत्रकी उज्ज्वलता दो उपमेय नक्षत्रोंकी उज्ज्वलताके अंतरका कितना अंश है।

हमने आवर्त्त परिवर्तनशील तारोंका वर्णन करते समय उनकी एक तालिका दी है। उससे मालूम होगा कि अतिकालिक परिवर्तनशील नक्षत्र लगभग २८० दिन में अपने परिवर्तनका आवर्त्तकाल पूरा करते हैं। इतने समयमें एक समूहात्मक परिवर्तनशील नक्षत्र जिसको आर. आर. लीरी भी कहते हैं ५०० आवर्तन करता है और एक सीफाइड (Cepheid) ५० आवर्तन करता है। एक अतिकालिक नक्षत्रकी परम उज्ज्वलता (maximum luminosity) उसकी निम्नतम उज्ज्वलता (minimum luminosity) का ६३ गुना है, जब कि सीफाइडके लिये यह अनुपात केवल २·१ है।

यह हमें मालूम हो चुका है कि परिवर्तनशील नक्षत्रोंके मुख्यतः तीन आवर्त्तकाल होते हैं। अतिकालिक तारे सबसे अधिक पाये जाते हैं, परन्तु आजकल समूहात्मक घटने-बढ़ने वाले तारोंकी संख्या बढ़ रही है। सीफाइड तारे सबसे कम पाये जाते हैं। तारोंकी संख्या और आवर्त्तकालके वक्र (graph) से यह बात स्पष्ट मालूम होती है। इससे प्रतीत होता है कि परिवर्तनशील नक्षत्रोंके जो तीन विभाग हमने किये हैं वे ठीक हैं, ज्योतिर्विदोंकी घटने-बढ़ने वाले तारोंकी खोज करनेकी पद्धतिमें कोई भूल रहनेके कारण यह बात नहीं हुई है। क्योंकि छादक परिवर्तनशील तारे वक्रके उसी स्थानमें सर्वाधिक संख्यामें पाये जाते हैं जहाँ समूहात्मक और सीफाइडके बीचमें परिवर्तनशील तारे क़रीब-क़रीब गायब हैं इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि जो परिवर्तनशील तारे पाये नहीं गये हैं वह यदि आकाशमें रहते तो ज्योतिर्विद अवश्य उन्हें खोज निकालते।

यह प्रश्न स्वतः मनमें उठता है कि समूहात्मक तारे बहुतसे हैं जिनका आवर्त्तकाल अर्धदिवस है और सीफाइड भी यथेष्ट पाये जाते हैं जिनका आवर्त्तकाल चारसे आठ दिन तक है, परन्तु एक, दो या तीन दिनके आवर्त्तकालके

तारे क्यों नहीं पाये जाते ? वक्रसे यह भी मालूम होता है कि ३० से लेकर ५०० दिन तक आवर्त्तकाल वाले तारोंकी संख्या अत्यन्त अधिक है, परन्तु २० से लेकर ६० दिन तक आवर्त्तकाल वाले तारे बहुत कम पाये जाते हैं। ऐसा क्यों होता है? क्या प्रकृतिके कारखानेमें परिवर्तनशील तारे बनानेके यन्त्र ऐसे ही हैं जैसे कि हम एक, दो इत्यादि पौंड के पैकेट बनाते हैं? सवा पौंडके पैकेट मिलते नहीं क्योंकि वह बनते ही नहीं। या तो तारे इन तीन आवर्त्तकालोंको ही स्पंदनके लिये सुविधाजनक पाते हैं। इस प्रश्नका अभी कोई समाधान नहीं हुआ है। जब होगा तब हमें तारे और उनके विकास (evolution) के विषयमें बहुतसे तथ्य मालूम होंगे जो अभी मालूम नहीं हैं।

प्रकाशवक्र (light curve) बनानेके लिये ज्योतिर्विद कितनी मेहनत करते हैं वह हमें ज़ाई सीगनी (X Cygni) नामक एक अतिकालिक परिवर्तनशील तारेके विवरणसे मालूम होगा। कर्च (kirch) ने सन् १६८६ में इस तारेको खोज निकाला और अपने परिवारवर्गके साथ सन् १७३८ तक इसके आलोकका अवलोकन करता गया। सन् १६०५ के बाद इसका प्रकाशवक्र पूरी तौरसे तैयार होने लगा। इस तारेकी परम उज्ज्वलता इसकी निम्नतम उज्ज्वलताका २०,००० गुना है। यदि जाई सीगनीके चारों ओर हमारी पृथ्वी जैसा कोई ग्रह घूमता रहता तो उस ग्रहके अधिवासियोंकी क्या दुर्दशा होती यह बात सोचने योग्य है। हमारी जीवनयापन प्रणाली उन अधिवासियोंके लिये बहुत ही साधारण होगी।

अतिकालिक नक्षत्रोंके प्रकाशका घटना बढ़ना बहुत आसानीसे मालूम हो सकता है। इसके लिए एक छोटे से दूरदर्शक यंत्रकी आवश्यकता है। इसलिए बहुतसे स्वान्तः सुखाय (amateur) ज्योतिर्विद इस कामको करते हैं हम पहले कह चुके हैं कि 'ज्योतिषशास्त्र की और बातोंकी गवेषणाकी तुलनामें इस काममें सबसे अधिक लोग लगे हैं। इनमें "ब्रिटिश ज्योतिष परिषद" (British Astronomical Association) के परिवर्तनशील-नक्षत्र-विभाग और परिवर्तनशील नक्षत्र दर्शियोंकी अमेरिकन परिषद (American Association of Variable Star Observers) विशेष उल्लेखनीय हैं। कोई स्वान्तः सुखाय ज्योतिर्विद यदि उपयोगी काम करना चाहें तो उन्हें चाहिये कि किसी वेधशाला (oberatory) को लिखकर उनकी सहायतासे घटने बढ़नेवाले नक्षत्रोंका अवलोकन करें।

परिवर्तनशील तारे तीन शताब्दीसे भी अधिक समय तक देखे गये हैं और लगभग ६५ वर्ष इनकी भली भाँति गवेषणाकी गई है। इनके विषयमें जो बातें देखी गई हैं उनसे बहुत तर्क वितर्क और मतोंका उद्भव हुआ है। परन्तु प्रकाशके परिवर्तन होनेका कारण केवल छादक परिवर्तनशील तारोंके विषयमें ही ठीक-ठीक जाना गया है। दूसरी श्रेणियोंके कुछ तारोंके विषयमें महत्वपूर्ण मत दिये गए हैं, जिसका उल्लेख हम आगे करेंगे।

तारोंका घटना बढ़ना जनसाधारणके लिये अत्यन्त हृदयग्राही है। अधिकांश तारोंके स्थिर रहते हुये एक तारा एकाएक चमक उठा और कुछ सप्ताह तक आसपास के सब तारोंसे उज्ज्वल रहकर फिर अदृश्य हो गया— इसको देखकर कौन नहीं आश्चर्य मानेगा? ज्योतिर्विद भी जितनी ही इन तारोंकी गवेषणा करते हैं उतनी ही समस्या की जटिलतासे आकृष्ट होते हैं।

खोज और तालिकायें

हमको यह नहीं मालूम कि प्राचीन तथा मध्यकालके ज्योतिर्विद परिवर्तनशील तारोंके विषयमें विचार करते थे या नहीं, क्योंकि उस समयके वर्णनोंमें नवतारों (novae) के अतिरिक्त और तारोंका वर्णन नहीं है। हिपार्कस (Hipparchus, ईसासे १३० वर्ष पूर्व) के समयमें अचानक एक नवतारा दिखाई दिया था और यह विश्वास किया जाता है कि नक्षत्र-तालिकाओंकी आवश्यकता मनुष्यों को उसी समय विदित हुई। लंबे आवर्त्तकालवाले लगभग २० तारे हमें अब मालूम हैं जो सर्वोच्च कोटिकी उज्ज्वलता पर पहुँचने पर खाली आँखोंसे ही दिखाई देते हैं। इनके विषयमें हम जितना जानते हैं उस हिसाबसे इनमें केवल एक ही ऐसा तारा है—जिसका नाम "मीरा" है— जिसको दूरदर्शक यन्त्रके आविष्कारके पहले ही फैबरीसीयसने सन् १५८६ में खोज निकाला था। और तारोंके विषयमें भी कुछ बातें जानी गई होंगी, पर उनके विषयमें कोई वर्णन नहीं मिलता। नक्षत्रोंकी उज्ज्वलताके विषयमें ठीक-ठीक खोज आर्गेलांडर (Argelander, सन् १७८६-

१८७४) के समयमें प्रारंभ हुई। १९वीं शताब्दीके अंत तक परिवर्तनशील तारे आकाशके साधारण निरीक्षणके समय या नक्षत्र तालिकायें बनाते समय खोज निकाले गये। आजकल आलोकचित्र (photography) तथा रश्मिचित्र दर्शक (spectroscope) नामक यन्त्रसे ज्योतिर्विद् बड़ी सुगमतासे परिवर्तनशील तारे खोज निकालते हैं। इस शताब्दीमें बहुत शीघ्र काम हो रहा है, और विशेष कर अमेरिकामें इन तारोंको खोजनेके लिये जो सभा, परिवर्तनशील तारोंके दर्शकोंकी अमेरिकन परिषद (American Association of variable star observers) बनाई गई है। वह उल्लेखनीय है।

यह तो स्पष्ट है कि तारेकी उज्ज्वलताका परिवर्तन जितना धीरे और अधिक हो उतनी ही आसानीसे हम उसे प्रत्यक्ष कर सकते हैं। इसलिये लंबे आवर्त्तकालवाले अतिकालिक परिवर्तनशील तारे सबसे अधिक पाये गये हैं। आधुनिक वैज्ञानिक परिवर्तनशील तारे कैसे खोज निकालते हैं उसका थोड़ा-सा उल्लेख हम अब करेंगे। परिवर्तनशील तारे तीन प्रकारसे खोज निकाले जाते हैं।

(१) प्रत्यक्ष देखने से—

सबसे पहले आविष्कृत परिवर्तनशील तारे अचानक ही पाये गये थे, क्योंकि वह उज्ज्वल हैं और उनकी उज्ज्वलतामें भी यथेष्ट परिवर्तन होता है। इस लिये उनमें नवतारे (novae, जैसा कि सन् १५७२ में टाइको, Tycho द्वारा आविष्कृत नवतारा), अतिकालिक परिवर्तनशील तारे जैसा कि 'मीरा" जिसको सन् १५८६ में फबरीसीयस, ने खोज निकाला) और छादक परिवर्तनशील तारे जैसा कि एलगोल (algol) है जो सन् १६६७ में खोज निकाला गया। परन्तु संभवतः इसके भी कई शताब्दी पूर्वमें अरब लोगों ने इसको परिवर्तनशील पाया था)। आजकल प्रत्यक्ष दर्शनसे मुख्यतः उज्ज्वल नवतारे आविष्कृत होते हैं। आकाशके साधारण निरीक्षण के समय भी कुछ तारे अचानक परिवर्तनशील पाये जाते हैं—जैसेकि कोई तारा जिसका नाम प्रत्यक्ष देखे हुये नक्षत्रतालिका (visual star-catalogue) में है, अब आकाश में नहीं दीखता है, या जो तारा अब आकाशमें दीखता है उसका नाम तालिकामें है ही नहीं।

प्रत्यक्ष देखकर परिवर्तनशील नक्षत्रोंका आविष्कार करनेमें कोई कौशल (technique) नहीं है। ऐतिहासिक दृष्टिसे इस प्रकार जो परिवर्तनशील तारे आविष्कृत हुये हैं वह उज्ज्वल हैं और अचानक ही पाये गये हैं। इसमें सफलता पानेके लिये आकाशमें नक्षत्रोंकी स्थिति का संपूर्ण ज्ञान चाहिये, और यह ज्ञान बहुत अध्ययन और समयसापेक्ष है।

(२) फोटोग्राफके द्वारा—

फोटोग्राफी ने ही परिवर्तनशील नक्षत्रोंकी खोजको उन्नत अवस्था तक पहुँचाया। इस तरहकी खोजके मुख्यतः तीन प्रकार हैं—प्रथम, एक ही प्लेट (photographic plate) पर थोड़े-थोड़े समयके अंतरसे कई फोटोंका खींचना, दूसरे, भिन्न समयों पर समानावस्थामें लिये हुये फोटोंकी तुलना करना, तीसरे आकाशके एकही स्थानका एकही यन्त्रसे भिन्न-भिन्न समय पर लिये हुये एक पोजिटिव (positive) की एक नेगेटिव (negative) से तुलना करना। अंतिम प्रकार, जो द्वितीय प्रकारका ही एक भिन्न रूप है, सबसे अधिक सफलताका कारण है। इसकी सहायतासे थोड़े परिश्रमसे अधिक आविष्कार किये गये हैं और अधिक शुद्धता (accuracy) पाई गई है। तीनों प्रकारमें यह मुख्य बात है कि प्लेट पर एकाएक बहुतसे तारोंकी समानावस्थामें फोटो खिंच जाती है जिससे परिवर्तनके अतिरिक्त अन्य बातें भी जानी जा सकती हैं।

आरम्भमें परिवर्तनशील नक्षत्र फोटोग्राफी द्वारा पहली रीतिसे देखे जाते थे। इसमें यन्त्र स्वयं-संचालित (automatic) बनाया गया है और देखनेकी प्रक्रिया ने बड़ी सूक्ष्मता प्राप्त की है। परन्तु यह रीति उन्हीं तारों को देखनेके लिए सुविधाजनक है जिनका आवर्तकाल एक दिनसे कम है, जैसे समूहात्मक परिवर्तनशील तारे, या बहुत जल्दी एक आध घंटेके अन्दर ही घटने बढ़ने वाले तारे जैसे छादक और नवतारे।

अंतिम दोनों रीतियोंमें से प्रथम रीति उन्हीं तारोंके लिए सुगम है जिनका आवर्त्तकाल बहुत ही थोड़ा है—घंटोंमें गिना जा सकता है। ऐसे तारे बहुत कम पाये जाते हैं। इनकी खोज करनेमें व्यर्थ परिश्रम लगेगा और कठिनाइयोंका सामना करना पड़ेगा।

फोटोग्राफीके द्वारा परिवर्तनशील तारोंकी खोजमें सफलता पानेके लिये तारेके आवर्त्तकाल से "परिदर्शन" (exposure) का समय कम होना चाहिये, नहीं तो उज्ज्वलतामें परिवर्तन नहीं मालूम होगा। इसी कारण स्वल्पावर्त्तकालके अनुज्ज्वल नक्षत्रोंका दर्शन करना कठिन है। इसलिए अत्यन्त स्वल्पावर्त्तकालके समूहात्मक परिवर्तनशील तारोंकी खोजमें सफलता प्राप्त करना कोई विशेष यन्त्रके उद्भावनके बिना संभव नहीं मालूम होता।

प्रथमोक्त प्रकारका अवलोकन अतिशीघ्र परिवर्तनशील नवतारोंके लिए भी उपयोगी है। परंतु इसकी सबसे अधिक उपयोगिता उन छादक तारोंके लिये है जिनका निम्नतम कोटिकी उज्ज्वलता प्राप्त करनेका काल उनके आवर्त्तकालके अनुपातमें बहुत कम है। यह रीति अत्यन्त शीघ्र परिवर्तनशील छादक, समूहात्मक और नव तारोंके अध्ययनके लिये अमूल्य है।

परिवर्तनशील तारोंकी खोजके लिये अंतिम दो रीतियाँ हीं प्रधान हैं—भिन्न समयों पर लिये हुये प्रकाश-चित्रोंकी तुलना करना, समयका अंतर और "परिदर्शन" के समयके तारतम्यके अनुसार किसी विशेष प्रकारके परिवर्तन शील तारोंकी खोज करना सुगम है। इसका वर्णन हम आगे और करेंगे।

(३) "फोटोइलेक्ट्रिक" (photoelectric) खोज।

यह मालूम है कि फोटोइलेक्ट्रिक सेल (photo-electric cell) फोटोग्राफिक प्लेट (photographic plate) की तुलनामें आलोकमात्राका सूक्ष्मतर विचार कर सकता है। परन्तु अत्यन्त कम उज्ज्वल तारोंका अवलोकन इससे अभी नहीं हो सकता। सम्भव है इस यंत्रके सुधार करने पर इसकी पहुँच बहुत बढ़ जावे। उपर्युक्त रीतियोंके समान फोटोइलेक्ट्रिक रीति भी आविष्कृत परिवर्तनशील नक्षत्रके अध्ययन करनेके लिए बहुत उपयोगी है।

इस बातकी पहचान खोजमें बड़ी सहायता करती है कि किन तारकसमूहोंमें परिवर्तन सम्भव है। दोहरे तारोंमें कुछ ऐसे हैं कि जिनके दो तारे बहुत पास पास होनेके कारण दूरदर्शकसे अलग अलग नहीं मालूम पड़ते। उनका अध्ययन रश्मिचित्रदर्शकके द्वारा किया जाता है और वह रश्मिचित्रदर्शक युगलतारे (Spectroscopic binaries) कहलाते हैं। इनमें जो सचमुच युगल तारे हैं (true binaries) वह फोटोइलेक्ट्रिक सेल (photo-cletrie cell) की परीक्षामें अपेक्षाकृत पास पास स्थित अल्प "अग्रा" (amplitude) के छादक तारे मालूम होंगे। और इनमें वह तारे, जिनकी त्रिज्यात्मक गति (radial velocity) युगल-तारा-वाद (binary star hypothesis) पर नहीं स्पष्ट होती, प्रायः सीफाइडकी तरह प्रतीत होंगे। जिन तारोंके परिवर्तनका आवर्त्तकाल स्थिर नहीं है वह अल्पावर्त्तकालके असामयिक परिवर्तन-शील तारे प्रतीत होते हैं।

रश्मिचित्रमें परिवर्तनसे परिवर्तनशील तारोंकी खोज हो सकती है। जिन तारोंके रश्मिचित्रमें परिवर्तन होता है उन सब तारोंकी प्रकाशमात्रामें भी परिवर्तन होता है या नहीं इसकी परीक्षा होनी चाहिये। इस प्रकारसे खोज निकाले हुए परिवर्तनशील तारोंके उदाहरण स्वरूप हम बीटा डोरेडस (B. Doradus) और फाइ परसाइ (Persei) का नाम ले सकते हैं।

रश्मिचित्र द्वारा वर्गीकृत किये हुए तारोंमें कुछ ऐसे हैं जिनकी प्रकाश-मात्रामें परिवर्तन होना बहुत ही सम्भव है। एम वर्ग (Spectral class M) के तारे जिनके रश्मिचित्रमें उज्ज्वल रेखायें (bright lines) हैं प्रायः अतिकालिक परिवर्तनशील तारे होते हैं और इनमें अनेक तारोंका आविष्कार पहले उनके रश्मिचित्रसे ही हुआ है। एन (N) और आर (R) वर्गके अधिकांश तारे परिवर्तनशील हैं—यद्यपि यह असामयिक परिवर्तन-शील हैं। जिन तारोंके रश्मिचित्रमें उज्ज्वल रेखायें हैं उन सबोंका परिवर्तनशील होना सम्भव है और इनमें कुछ ऐसे हैं जो अत्यन्त विस्मयकारक है।

यह भली भाँति विदित है कि गोल तारक-समूहोंमें परिवर्तनशील तारे पाये जाते हैं जो समूहात्मक कहलाते हैं और आकाश-गंगा (milky way) के पासके स्थानों में दूसरे स्थानोंसे अधिक परिवर्तनशील नक्षत्र मिलते हैं, यद्यपि अंतिम स्थानोंका अध्ययन हमारे नक्षत्र-मंडलीकी बनावट (galactic structure) सम्बन्धी ज्ञानमें अधिक

सहायता करता है। जिन स्थानोंमें अंधकार या उज्ज्वल नीहारिका (nebulosity) विद्यमान है, उनका अध्ययन बहुत ही आवश्यकीय हैं। इनमें परिवर्तनशील तारे तो अधिक नहीं पाये जाते, परन्तु जो तारे पाये जाते हैं वह बहुत ही विचित्रतापूर्ण हैं।

परिवर्तनशील नक्षत्रोंकी नियमित खोजमें हार्वार्ड कालेजकी वेधशाला ने बड़ी सहायता की है। प्रत्येक परिवर्तनशील नक्षत्रकी खोजका इतिहास एक वृहत पुस्तकमें दिया गया है जो "एस्ट्रोनोमिशे गेसेलशफट" (Astronomische Gesellschaft) की संरक्षणतामें जी मुलेर (G. Muller) और इ हार्टवेग (E. Hartwig) द्वारा लिखित है। इसका नाम है "गशिक्टे उंड लिटरेटुर डे लिक्टमेक्सेलस डेर बिस उंडे १९१५ अलस सिकेर फेरेंडरलिक अनेरकंटेन स्टेर्ने निब्सट आइनेम काटालोग डेर एलिमेंटे इहरेस लिक्टमेक्सेलस" (Geschichte und Literatur des Lichtwrehsels der bis Ende 1915 als Sicher veiandertich anerkannten Sterne nebst einem Katalog der Elemente ihres Lichtwechsels सन १९१५ ई० के समाप्त होने तक जो तारे परिवर्तनशील निश्चित हो गये हैं उनकी प्रकाशमात्रामें परिवर्तनका इतिहास और पुस्तक परिचय (bibliography) और उनके परिवर्तन अंकोंकी तालिका) लाइपजिग (Leipzig) ने सन् १९२८ में प्रकाशित किया। आर० प्रागे (R. prager) द्वारा लिखित इसका दूसरा संस्करण जिसमें कि सन् १९१६-१९३३ में किये हुये कामका वर्णन है आंशिक तैयार हुआ है। किसी विशेष परिवर्तनशील नक्षत्रके संपूर्ण इतिहासके जिज्ञासुके लिये यह दोनों किताबें अत्यन्त आवश्यकीय हैं।

आजकल परिवर्तनशील नक्षत्रोंकी तालिकामें उज्ज्वलतर नक्षत्र प्रायः सभी पाये जाते हैं। अनुज्ज्वल परिवर्तनशील नक्षत्रोंका अध्ययन बहुत ही थोड़ा हुआ है, यद्यपि ऐसे नक्षत्र अनेक होंगे जो कि आविष्कारकी अपेक्षा कर रहे हैं।

साधारण दृष्टिमें अनुज्ज्वल (faint) परिवर्तनशील नक्षत्रोंकी खोज आवश्यक नहीं प्रतीत होती। परन्तु वस्तुतः यह अत्यन्त आवश्यक है। यह सच है कि रश्मि चित्र अवलोकन (spectroscopy) और फोटोग्राफीसे उज्ज्वल नक्षत्रोंका ही ब्योरेवार अध्ययन सुगम है और जो परिवर्तनशील तारे आजतक आविष्कृत हुये हैं उन पर इस तरहका काम बहुत हो सकता है। किन्तु यह संभव है कि भविष्यमें कोई विशेष या आकर्षक नक्षत्र आविष्कृत हो, जिनका आवर्त्तकाल (period) या प्रकाशकी पहुँच (light-range) अद्यावधि आविष्कृत तारोंसे अधिक हो। नये आविष्कृत अतिकालिक नक्षत्रमें से कुछ ऐसे हो सकते हैं जिनकी सतहकी ताप-मात्रा अब तक अध्ययन किये हुये तारोंसे कम हो। यदि ऐसे अत्यंत शीतल तारे विद्यमान हों तो उनका अध्ययन नाक्षत्रिक विकास (stellar evolution) के दृष्टिकोणसे अत्यन्त आवश्यक है।

हम पहले कह चुके हैं कि परिवर्तनशील नक्षत्रोंकी खोज आज एक विशेष विषयमें सहायता दे रही है— अत्यन्त दूरस्थित वस्तुओंकी दूरी निकालना, जैसे कि आकाशगंगामें स्थित मेघ (Miky way clouds), तारकासमूह (star clusters) और कुण्डलीकृत नीहारिकायें (spiral nebulae) जिनकी दूरी लंबन विधि (parallax method) से नहीं मालूम हो सकती। इस प्रकारसे दूरीका अध्ययन परिवर्तनशील नक्षत्रों के आवर्त्तकाल और प्रकाशमात्रामें सम्बन्ध (period-luminosity relation) पर निर्भर है। अनुज्ज्वल नक्षत्र संभवतः अधिक दूर होनेके कारण उनका अध्ययन अधिक आकर्षक है। डा० शापले (Dr. Shapley) ने इस प्रकारसे आकाश-गंगामें स्थिति तारकामेघ (Star clouds) की दूरी और डा० हबल (Dr. Huble) ने हमारी तारकमंडली (galaetic system) के बाहर स्थित कुण्डलीकृत नीहारिकाओं (Spiral nebulae) की दूरी मालूम की है। सीफाइड तारे विषयक अध्याय (५७) में हम इसका विस्तृत विवरण देंगे।

खेती संबंधी सुधार

राज परिषद्में कृषि परिस्थिति की समीक्षा

२१ मार्च, १९४६ को राज परिषद्में खाद्य परिस्थिति पर विचार करनेके प्रस्ताव पर भाषण करते हुए भारत सरकारके कृषि सदस्य माननीय सर जोगेन्द्रसिंहने कहा:

इस प्रस्ताव पर भाषण करते हुए मुझे कुछ संकोच हो रहा है, क्योंकि इस अवसर पर मुझे समृद्धि बढ़ानेकी नीतिका समर्थन करते हुए बड़ी प्रसन्नता होती । मेरा विश्वास है कि निरंतर प्रयत्न करने पर हम भारतके उत्पादनका मान उसकी जन-संख्याकी आवश्यकताके अनुरूप बढ़ा सकते हैं ।

कृषि-सम्बन्धी सम्पूर्ण परिस्थितिकी समीक्षा करने पर हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि कृषिकी तीन मुख्य आवश्यकताएं हैं, जिनकी पूर्त्तिके विना फसलोंको तैयार नहीं किया जा सकता । यदि खेती का काम अच्छी तरहसे किया जाय तो कृषिकी अन्य प्रधान आवश्यकताएं, अच्छे बीज, पर्याप्त मात्रामें खाद तथा आवश्यक मात्रामें जलकी उपलब्धि है। प्रान्तों को इन आवश्यकताओं की पूर्त्तिके लिए हमने ५ करोड़ रुपयेके ऋणोंकी रकमोंकी मंजूरी दे दी है । मैं कह सकता हूँ कि अभी जितनी भूमिमें सिंचाईका प्रबंध है केवल उसी भूमिमें अच्छे बीज, अच्छा खाद और जल उपलब्ध करनेके लिए सार्वजनिक व्यक्तियों तथा सरकार दोनों हीको पर्याप्त नेतृत्व और प्रयत्नोंकी आवश्यकता पड़ेगी । जानकारी रखने वाले लोग गांवोंको छोड़ कर शहरों में बस रहे है । भूमिसे कर वसूल करनेकी प्रणालीमें परिवर्तनकी उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी कृषिकी इन आवश्यकताओंको परा करानेके लिए नेतृत्वकी है।

बीज तैयार करनेकी योजना

जहां तक बीजोंका सम्बन्ध है, हमने २५३ लाख अर्थात् २½करोड़ रुपये ऋणोंके रूपमें और ८८लाख रुपये सहायताको रकमोंके रूपमें दिये हैं । आशा की जाती है कि इसके परिणामस्वरूप ७००००० टन अतिरिक्त नाजका उत्पादन प्रतिवर्ष होगा । हम अभी तक बीज उगानेका उचित प्रबन्ध नहीं कर पाये हैं । बीज उगानेका उचित प्रबन्ध होने पर उसके तीन विभाजन करने पड़ेंगे : (१) मूल बीज उगाने वाला फार्म, (२) मूल बीजों से भारी परिमाण पर बीज तैयार करनेके सरकारी फार्म और (३) उचित प्रबन्ध में चलाये जाने वाला फ़ार्म । प्रत्येक गांवमें कुछ भूमिमें केवल बीज उगाये जायंगे और इस कार्यकी देख-रेख एक ट्रेनिंग पाया हुआ व्यक्ति करेगा । मेरे विचारमें विघटित सैनिकोंको गाँव वालोंसे किराये पर लेकर बीज उगानेके लिए भूमि दी जा सकती है । जब तक प्रत्येक गांवमें बीज तैयार करनेका फार्म नहीं खुलेगा तब तक सम्पूर्ण प्रदेश के लिए बीज उपलब्ध करना कभी सम्भव न होगा। मेरे विचारमें सबसे अच्छा तरीका प्रोफेसर हिलको सूझ है कि भारत भरमें २०,०००से लेकर ३०,००० जुट स्थापित किये जायं और प्रत्येक जुटमें एक केन्द्र भी रहे। प्रत्येक जुटमें लगभग १०-१० गांव अथवा ५,००० व्यक्तियोंका क्षेत्र

रहे। पहले पहल ये जुट ८ करोड़ एकड़की उस भूमिमें बनाये जायं, जो जल मिलते रहने के कारण पांच वर्ष तक अधिकतम नाज उपजावेगो। इस कार्यके लिए विघटित सैनिकों तथा विशेषकालीन कमीशन वाले अफसरोंसे काम लिया जा सकता है।

मिलवाँ खाद तैयार करनेकी व्यवस्था

इसके बाद भारतको सबसे बड़ी आवश्यकता खादकी है। किन्तु मेरा ख्याल है कि यदि हम देशमें उपलब्ध सारी खादका उपयोग कर सकें तो सिंचाईसे होने वाली अधिकांश खेतीके लिये हम खादकी समुचित सप्लाई कर सकते हैं। इस सिलसिलेमें हम प्रान्तोंका ध्यान ग्राम्य जंगलोंको ओर आकृष्ट करते आये हैं। ये जंगल गांवोंके लिए आवश्यक ईन्धनकी पूर्त्ति कर सकते हैं और पशुओंका गोबर (जो जला दिया जाता है) खादके काममें लाया जा सकता है। कुछ कस्बोंके कूड़ों से मिलवां खाद तैयार करनेकी व्यवस्था हमने की है और हमारा इरादा इस व्यवस्थाका विस्तार छोटे-बड़े प्रायः ५,००० कस्बोंमें करनेका है। अब तक हम कस्बोंके कतवारसे तैयारकी गयी प्रायः ३,२०,००० टन ऐसी खाद वितरित कर चुके हैं और आशा है कि कुल कस्बोंके लिए व्यवस्था लागू हो जाने पर लगभग २०,००००० टन मिलवा खाद प्रति वर्ष तैयार की जा सकेगी, जो करीब ५,००,००० एकड़ भूमिके लिये पर्याप्त होगी। हमने इस खादके ढोये जानेका भी प्रबन्ध किया है। इन दिनों इस कोशिशमें हैं कि यह खाद गांवोंमें ले जायी जाय, ताकि गांव वाले इसके उपयोगको अच्छी भांति समझ सकें। इसके अतिरिक्त, परस्पर सहयोगके आधार पर गांव के कतवारसे खाद तैयार करानेकी एक नयी योजना भी हमने हालमें ही शुरूकी है। गांवों की सफाई तथा गंदे पानीको निकासी आदिमें सुधार होनेके अतिरिक्त, हमें आशा है, कि इस योजना से ५ करोड़ टन खाद और प्राप्त की जा सकेगी, जो लगभग करोड़ सवा करोड़ एकड़ भूमिके लिए पर्याप्त होगी।

गांवोंमें "कामदार" इन दिनों किसानोंको पशुओं के पेशाबके सदुपयोग द्वारा अच्छी किस्म की खाद तैयार करनेका तरीका बता रहे हैं। इस कार्यसे हमें बड़े अच्छे परिणामकी आशा है क्योंकि यदि पशु-मूत्रका सदुपयोग खाद तैयार करनेके लिए अंशतः भी किया जा सका, तो उसके द्वारा खादमें नाइट्रोजनका भाग दूना हो जायगा। हम सभी जानते हैं कि खादमें नाइट्रोजनका आधिक्य खेतीके लिए कितना लाभ दायक है। इस व्यवस्थासे भूमिको खादके साथ प्रायः दस लाख टन नाइट्रोजन अधिक प्राप्त हो सकेगी। बङ्गालमें एक प्रकारकी दरियाई घाससे खाद तैयार करनेके सम्बन्धमें भी हम प्रयोग कर रहे हैं। यदि यह प्रयोग सिद्ध हुआ तो बङ्गालके धानके खेतोंके लिये पर्याप्त खाद प्राप्त हो सकेगी। किन्तु हमें घासके बीजकी जीवनी शक्ति को नष्ट कर देना होगा। इस घासका बीज, घास को सड़ा कर खाद तैयार कर लेनेके बाद भी प्रायः जीवित रहता है और खेतोंमें उग कर घास पैदा कर सकता है। फिर भी, इस कठिनाईको दूर करने के निमित्त छानबीन जारी है।

कृत्रिम खादके कारखाने

कृत्रिम खादके सम्बन्धमें स्थिति यह है कि जहाँ गत वर्ष हमें कुल ८०,००० टन ऐसी खाद प्राप्त हो सकी थी, १९४५-४६ वर्षमें हमें वह १,५४,००० टन प्राप्त होने को है। बिहारके सिंदरी नामक स्थानमें यह खाद तैयार करनेका एक कारखाना खोलनेकी योजना बनाई जा चुकी है और शीघ्र ही उसकी इमारत बनवानेका काम शुरू किया जाने वाला है। ट्रावंकोरमें ऐसा ही दूसरा कारखाना खोला गया है। किन्तु कृत्रिम खादका समुचित उपयोग करनेके सम्बन्धमें, किसानोंको बहुतेरी बातें समझानेकी जरूरत है। यहाँ मैं बता देना चाहता हूँ कि यद्यपि मिलवां तथा कृत्रिम खादोंके उत्पादनमें काफी वृद्धि हुई है, फिर भी अभी वे खादें इतनी कम हैं कि सींची जाने वाली हमारी सारी भूमिको आवश्यकताकी पूर्त्ति नहीं कर सकती। ऐसा तभी हो सकता है, जब खाद उत्पादनमें कमसे कम २५ से ५० प्रतिशत तक वृद्धि हो।

खलीके सम्बन्धमें स्थिति यह है कि प्रायः २,६२,०८० टन खली वितरित की जा चुकी है। किन्तु मुझे आशा है कि देशका सारा तेलहन देशमें ही पेरने और केवल तेलके निर्यातकी अनुमति देनेसे, देशमें खलीकी सप्लाईमें काफी वृद्धि की जा सकेगी।

दिल्ली प्रान्तमें तरकारीकी खेती

२१ मार्चको केन्द्रीय असेम्बलीमें प्रश्न पूछे गये कि सरकार द्वारा दिल्ली प्रान्तमें सभी उपलब्ध भूमिको तरकारी अथवा अन्य खाद्योंकी खेती में लगानेके लिए क्या उपाय किये गये हैं।

कृषि विभागके सेक्रेटरी सर पी० एम० खरेघाट ने उत्तर देते हुए बतलाया कि आर्थिक सहायताके आधार पर ५०० पक्के कुएं बनवाने तथा ओखला से बदली तक खाद पहुँचानेके लिए २० मोटर-ठेलोंका प्रबन्ध करनेकी योजनाएं मंजूरकी गयी है। यह खाद खाद्यफसलें तथा तरकारी तैयार करने वालोंको रियायती मूल्य पर दिया जायगा। इन सब उपायोंसे लगभग १०००टन अतिरिक्त खाद्य उत्पन्न होगा।

सर फीरोज ने यह भी कहा कि केन्द्रीय सेक्रेटेरियेटके सामने वाली ६० एकड़ भूमिमें तरकारी की खेती करने का प्रबन्ध किया गया है और उसके कुछ भागमें खुदाई भी हो चुकी है। लोगोंसे अनुरोध किया गया है कि वे अपने हाते की अधिकाधिक भूमिमें तरकारी की खेती करें। घरों में जाने और लोगोंको परामर्श देनेके लिए विशेष कर्मचारियोंकी नियुक्ति की गयी है, जो बतलावेंगे कि कौन-सी तरकारियाँ, कहाँ और कब बोई जायें। वह बीज तथा खाद्य इत्यादिकी उपलब्धि के सम्बन्धमें भी परामर्श देंगे। अधिकांश स्थानों पर मुख्य कठिनाई जलकी है। अभी यह अनुमान करना सम्भव नहीं है कि इस प्रदेशसे कितनी अतिरिक्त तरकारी बिकनेको भेजी जायगी, किन्तु आशा की जाती है कि हातोंमें तरकारी उगाने वाले स्वयं ही उसका उपयोग करेंगे। यदि पर्याप्त जल उपलब्ध हुआ और योजना के अनुसार अन्य सभी बातें हुईं तो उत्पादनमें ५००टन वृद्धिकी आशाकी जाती है।

———

समालोचना

चंद्रसारणी—लेखक डाक्टर गोरखप्रसाद डी० एस० सी० (एडिन०), रोडर, गणित विभाग, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी; प्रकाशक, काशी नागरी प्रचारिणी सभा; आकार विज्ञानकासा, "१०× ७½," पृष्ठ संख्या ६४; मूल्य २)

ज्योतिष शास्त्र वेदका अंग है क्योंकि इसीके द्वारा वैदिक कर्मकांडके यज्ञों, पर्वों और उत्सवोंके समयका निश्चय किया जाता है। इसीलिए भारतवर्षमें ज्योतिष शास्त्रका अध्ययन बहुत प्राचीन कालसे हो रहा है और इस पर सैकड़ों ग्रन्थ लिखे गये हैं। प्राचीन ग्रन्थोंके अध्ययनसे यह भी विदित होता है कि इस शास्त्रमें समय समय पर आवश्यक सुधार भी होते रहे हैं। परन्तु लगभग ३०० वर्षोंसे इस संबंधमें बड़ी शिथिलता हो गयी है। ज्योतिष शास्त्रके दो एक आचार्योंके यह लिख देनेसे कि सूर्यसिद्धान्त नामक ज्योतिष ग्रन्थमें जो गणना दी गयी है उसमें बिना कुछ संशोधन किये ही व्रतों और पर्वोंका निश्चय करना चाहिए, लगभग ६० वर्षोंसे एक बड़ा वितंडावाद उठ खड़ा हुआ है। प्राचीनताके प्रेमी कहते हैं कि धार्मिक कृत्योंका निश्चय प्राचीन सिद्धान्तोंके ही अनुसार करना चाहिए, केवल ग्रहण, शुक्रोदय शुक्रास्त आदि प्रत्यक्ष होने वाली बातोंका निश्चय शुद्ध रीतिसे करना चाहिए; परन्तु सुधारवादी कहते हैं कि यह ठीक नहीं है, इसमें प्राचीन काल में भी समय समय पर सुधार होता रहा है और अब भी करना चाहिए क्योंकि ज्योतिष शास्त्र प्रत्यक्ष शास्त्र है और सूर्य, चन्द्रमा तथा ग्रहोंकी गतियों पर अवलंबित है। इस प्रकार भारतवर्षके सभी प्रान्तोंमें दो दल हो गये हैं। महाराष्ट्र, गुजरात, मद्रास और बंगालमें दोनों तरहके पंचांग बनते हैं। संयुक्त प्रान्तमें भी स्वर्गीय बापूदेव शास्त्रीका चलाया हुआ पंचांग शुद्ध गणनाके अनुसार बहुत दिनोंसे छप रहा है परन्तु इसका चलन उतना नहीं हुआ जितना होना चाहिए।

इस प्रान्तके अन्य पंचाग प्रायः मकरन्द सारणी के अनुसार बनते हैं। काशी का विश्व विद्यालय पंचांग शुद्ध सूर्यसिद्धान्तकी गणनाके आधार पर छपता है जिसमें प्रत्यक्ष गणनासे बहुत अंतर पड़ जाता है। इसलिए साधारण जनता अच्छे और शुद्ध पंचांगके, अभावमें कभी कभी बड़े असमंजसमें पड़ जाती है। कुछ ज्योतिषियोंकी बातचीतसे पता चलता है कि वे शुद्ध पंचांग निकालनेके पक्षमें हैं परन्तु उनके लिए सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि ज्योतिषकी गणना करनेके लिए कोई सरल और उपयुक्त सारणी नहीं है। बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात आदि प्रान्तोंमें तो ऐसे कई ग्रन्थ हैं जिनके आधार पर शुद्ध पंचांग बनाये जा सकते हैं परन्तु युक्तप्रान्तमें इसका नितान्त अभाव था।

यह सौभाग्यकी बात है कि इस ओर अर्वाचीन ज्योतिष और गणितके आचार्योंका ध्यान गया है जिसके फल स्वरूप यह चन्द्र-सारणी प्रस्तुत की गयी है। इसके लेखक विज्ञानके प्रसिद्ध सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसादजी हैं जिन्होंने बड़े

परिश्रमसे ब्राउनकी बड़ी सारणीको संक्षिप्त करके ऐसा बना दिया है कि केवल जोड़ने, घटाने और गुणा करनेकी रीतियोंसे चन्द्रमाकी गणना इतनी शुद्धताके साथ कर सकते हैं कि ५ विकलासे अधिक अंतर नहीं पड़ सकता। यह याद रखना चाहिए कि प्राचीन भारतीय गणनासे चन्द्रमाके स्थानमें तीन तीन चार चार अंशका अंतर पड़ जाता है जो ५ विकलाका प्रायः तीन हज़ार गुना होता है जिससे तिथि, नक्षत्रोंमें पांच-पांच छः छः घंटोंका अंतर हो जाता है।

प्रारंभमें सारणीका संक्षिप्त परिचय देकर विस्तृत उदाहरणके साथ समझाया गया है कि चन्द्रमाकी गणना सारणीके द्वारा कैसे करनी चाहिए। इसके बाद १२०० ईसा पूर्व सन्‌से २१०० ईस्वीकी प्रत्येक शताब्दीके प्रारम्भके उपकरणोंका मान जाननेके ५७ स्तम्भ दिए गये हैं। इसके बाद वर्तमान बीसवीं शताब्दीके प्रत्येक वर्षके आरम्भके उपकरणोंके तथा प्रति ३० दिन की वृद्धिके मानोंके उतनेही स्तम्भ दिये गये हैं। इसके बाद उपकरणोंके चक्रकाल तथा ६२ सारणियां दी गई हैं जिनसे चन्द्रमाके भोगांश, शर और लंबनकी, गणना पर्याप्त शुद्धताके साथ की जा सकती है।

ऐसी उपयोगी सारणी तैयार करनेके लिए हम डाक्टर साहबको धन्यवाद देते हैं और उस दिनकी राह देखते हैं जब सूर्य-सारणी भी प्रकाशित हो जायगी।

पुस्तकमें छापेकी भूलें कहीं कहीं है जिनको विचारशील पाठक स्वयं ठीक कर सकते हैं परन्तु यदि डाक्टर साहब शुद्धि पत्र छपवा कर पुस्तकमें लगवा दें तो गणकों का काम बहुत सुगम हो जायगा।

इस उपयोगी सारणीके दूसरे संस्करणमें चन्द्रमाका विषुवांश और क्रान्ति जाननेकी भी सारणी बढ़ा दी जाय तो इसकी उपयोगिता और भी बढ़ जायगी।

हर्षकी बात है कि काशीकी नागरी प्रचारिणी सभाने ऐसे ग्रन्थोंके प्रकाशनका भार लिया है। आशा है कि काशीकी यह प्रसिद्ध संस्था भारतीय ज्योतिष-शास्त्रके पुनर्निर्माणमें पूरा भाग लेगी और ऐसे उपयोगी ग्रन्थोंका प्रकाशन करके हिन्दी साहित्यका भंडार भरेगी।

हिमालय—(मासिक-पुस्तक)-सम्पादक श्री शिवपूजन सहाय तथा श्री रामवृक्ष बेनीपुरी; प्रकाशक—पुस्तक भंडार, हिमालय प्रेस, पटना; वार्षिक मूल्य १०)। इस मासिक पुस्तकके दोनों अनुभवी सम्पादक हिन्दी संसारमें प्रसिद्ध हैं। उच्चकोटिका ठोस मासिक साहित्य प्रकाशित करनेका यह ढंग बहुत ही प्रशंसनीय है। हिन्दी संसारका कर्तव्य है कि घर बैठे हिमालयका दर्शन अधिकसे अधिक संख्यामें करके गंगा यमुना और त्रिवेनी रूपी सत्साहित्यका प्रचार करें। इससे हिन्दीका साहित्यही नहीं, गौरव भी बढ़ेगा।

प्रथम अंकसे देशरत्न डा० राजेन्द्र प्रसाद की जीवनी उन्हींकी कलमसे लिखी बहुत ही सरल भाषामें प्रकाशित हो रही है। इससे बाल वृद्ध और युवक सभी लाभ उठा सकते हैं। आचार्य नरेन्द्रदेव, दिनकर आदिके लेख और कवितायें भी उच्चकोटिकी हैं।

यदि हिमालयके भीतर हृदय और बुद्धिको शुद्ध करने वाली सामग्री है तो बाहरका आवरण भी नयनाभिराम है। पाठकोंको बड़ी सुविधा यह होगी कि पढ़नेके बाद वे इसे जिल्दबंधी पुस्तक की तरह सुरक्षित रख सकते हैं।

हम चाहते हैं कि घर-घर इसका प्रचार हो।

कर्मयोग—गीता मन्दिर आगराका पाक्षिक मुख पत्र, सम्पादक श्री हरिशङ्कर शर्मा, प्रकाशक गीता मन्दिर आगरा; वार्षिक मूल्य ४)।

जिस प्रकार महाभारतीय युद्धमें महावीर अर्जुन विभिन्न भावनाओंके चक्करमें पड़कर किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये थे और भगवान् कृष्ण के कर्मयोगका सिद्धान्त समझाने पर युद्ध करने में तत्पर होकर सफलता प्राप्त की, उसी प्रकार वर्तमान भारतवर्षके अधिकांश नवयुवक विभिन्न विचारों और वादोंके चक्करमें पड़ गये हैं। ऐसी दशामें प्राचीन कर्मयोगको वर्तमान् विचारों और अनुभवोंको पुटके साथ फिरसे हमारे सामने दुहराने की आवश्यकता है जिसकी शिक्षासे हम अपनी दशा सुधार कर उन्नत राष्ट्रोंके समकक्ष ही न बने वरन् उनके भी आदर्श हों।

'कर्मयोग' को ऐसे लेखकोंका सहयोग प्राप्त है जो स्वयं अनुभवी, कर्तव्यपरायण, और विचारशील कर्मयोगी हैं। इसलिए हमें विश्वास है कि उचित मार्ग दिखाकर यह हमारा पथ-प्रदर्शक होगा।

हम इसकी दिन-दिन उन्नति चाहते हैं।

विषय-सूची

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञान

विज्ञान-परिषद्, प्रयागका मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ६३ | मिथुन, सम्वत् २००३, जून १९४६ | संख्या ३

मनुष्यकी अस्थियाँ

[श्रीमती रानी टंडन एम० एड०]

मनुष्यके शरीरका ढाँचा मज़बूत हड्डियोंका बना हुआ है। यदि शरीरके भीतर यह ढाँचा न होता तो मनुष्य-शरीरका वर्तमान रूप न होता। उस दशामें मनुष्य माँसका एक लोंदा मात्र होता। न उसका कोई सुन्दर रूप होता और न वह हिल-डुल सकता। अस्थिपिंजर केवल शरीरका आकार ही नहीं बनाता, इसके अन्य भी उपयोग हैं। यदि मनुष्य शरीर केवल माँसका बना होता तो मनुष्यके लिए सीधा खड़ा होना, चलना आदि संभव नहीं होता। तब मनुष्य भी बिना हड्डी वाले कीड़ोंकी भाँति पृथ्वी पर रेंगता। अतः अस्थिपिंजर हमारे शरीरके कार्योंके लिए भी आवश्यक है। अस्थिपिंजरका एक और भी लाभ है। यह हमारे शरीरके कोमल अंगों—मस्तिष्क, हृदय, आमाशय आदि—को अपने भीतर सुरक्षित रखता है तथा बाहरी झटकों और चोट आदि से उनकी रक्षा करता है।

हड्डी दो प्रकारके पदार्थोंसे बनी है—एक कड़ा पदार्थ जो हड्डी कहलाता है और दूसरा मुलायम पदार्थ जो कार्टिलेज कहलाता है। बालककी हड्डियाँ अधिक मात्रामें कार्टिलेजसे बनी होती हैं। कार्टिलेज कोमल और लचीला होता है। यही कारण है कि बच्चोंकी हड्डी जल्दी टूटती नहीं वरन् मुड़ जाती है। धीरे-धीरे हड्डियोंमें परिवर्तन होता जाता है और बालकके बढ़नेके साथ-साथ यह भी कड़ी बनती जाती हैं।

हड्डियाँ कई आकारकी होती हैं—लम्बी, चपटी आदि। बाहों तथा टाँगोंकी हड्डियाँ लम्बी होती हैं। खोपड़ीकी हड्डियाँ चपटी हैं। कूल्हेकी हड्डियों का अलग ही रूप होता है। सब ही हड्डियाँ बीचसे खोखली होती हैं। इस खोखले भागमें एक पीले रंगका पदार्थ होता है जो 'मज्जा' कहलाता है। इस भागमें रुधिरकी छोटी-छोटी नलियाँ भी होती हैं।

हड्डीके सिरों पर कार्टिलेजका भाग अधिक होता है। यह सिरे कुछ-कुछ स्पंजकी तरह होते हैं। इन स्थानों पर मज्जाका रंग लाल होता है। सिरों पर हड्डियाँ एक दूसरीसे

जुड़ती हैं अतः इन स्थानों पर कार्टिलेज अधिक होनेसे जोड़ ठीक रहता है।

चित्र १—अस्थिपिंजर

संपूर्ण अस्थिपिंजरको हम तीन भागोंमें बाँट सकते हैं—

(१) खोपड़ी (Skull)

(२) धड़ (Trunk)

(३) भुजायें और टाँगें (Upper and lower limbs)

खोपड़ी (Skull)

यह १२ भिन्न-भिन्न हड्डियोंसे मिल कर बनी हुई है। इसे हम पुनः दो भागोंमें बाँट सकते हैं— मस्तिष्कघर (Cranium) तथा चेहरा (Face)।

मस्तिष्कघर आठ हड्डियोंसे मिल कर बना है। यह आठों हड्डियाँ चपटी और बहुत ही मज़बूत हैं। ये आपसमें इस प्रकार जुड़ी हुई हैं कि देखनेसे एक ही मालूम पड़ती हैं। इस प्रकार मज़बूतीसे जुड़ कर यह एक सन्दूक-सा बना लेती हैं। इसी में मस्तिष्क सुरक्षित रखा रहता है।

चेहरे (Face) में कुल मिला कर १४ हड्डियाँ हैं। इनमें नाक, कानकी हड्डियाँ तथा दोनों जबड़े (Jaw bones) शामिल हैं। दोनों जबड़े आपसमें इस प्रकार जुड़े रहते हैं कि ऊपर नीचे हिल-डुल सकें।

खोपड़ीका पिछला भाग नीचेकी ओर रीढ़की हड्डीसे जुड़ा हुआ है। इसी से खोपड़ी धड़के ऊपर सीधी खड़ी रहती है।

धड़ (Trunk)

इस भागमें गर्दनसे लेकर जाँघों तकका भाग शामिल है। धड़के मध्यमें एक माँसपेशी होती है जो इसे दो लगभग बराबर भागोंमें बाँटती है। यह माँसपेशी वक्षोदरमध्यस्थपेशी (Diaphragm) कहलाती है। वक्षोदरमध्यस्थपेशी के ऊपरी भागमें बहुत सी हड्डियाँ हैं। सामनेकी ओर बीचमें छातीकी हड्डी (Breast bone) होती है। पीछे पीठकी ओर बीचमें रीढ़की हड्डी होती है। यह पूरे धड़की लम्बाईकी होती है। छाती-की हड्डीके दोनों ओर पसलीकी हड्डियाँ हैं। ये दोनों ओर १२-१२ होती हैं। पसलियोंका आकार कुछ अर्द्ध-चन्द्राकार होता है। ये सब पीठकी ओर रीढ़की हड्डीसे जुड़ी रहती हैं। ऊपरकी प्रत्येक तरफकी सात पसलियाँ सामनेकी ओर छातीकी हड्डीसे जुड़ती हैं। इनके दोनों ओर तीन पसलियाँ आपसमें एक दूसरेसे जुड़ कर

फिर ऊपरकी सातवीं पसलीसे जुड़ जाती हैं। शेष दो पसलियाँ दोनों ओर आगेकी तरफ किसीसे जुड़ती नहीं वरन् यों ही लटकती रहती है। इसीसे ये लटकने वाली पसलियाँ (Floating ribs) कहलाती हैं।
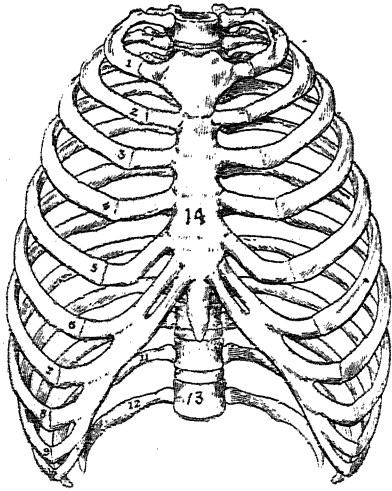
चित्र २—पसलियाँ
[१-१२ पसलियाँ, १३ रीढ़की हड्डी, १४ छातीकी हड्डी]

गर्दनके पास छातीकी हड्डीके दोनों ओर एक एक छोटी हड्डी और होती है। यह एक ओर छातीकी हड्डी से और दूसरी ओर कंधेकी हड्डीसे जुड़ी रहती हैं। यह हड्डी हँसलीकी हड्डी (Collor bone) कहलाती है। कंधेकी हड्डी दोनों ओर एक एक होती है। यह चपटी और तिकोने आकारकी होती है। इसे स्कंध-अस्थि (Shoulder blade) कहते हैं।

वक्षोदरमध्यस्थपेशी (Diaphragm) के पिछले भागमें पीठकी ओर रीढ़की हड्डी ही चली आती है। इसके अतिरिक्त इसमें नितम्ब-अस्थि (Hip girdle) है। पीछेकी ओर यह रीढ़की हड्डीसे तथा सामने नीचेकी तरफ टाँगोकी हड्डियोंसे जुड़ी हुई है।

धड़के अस्थि-पिंजरके अन्दर हमारे शरीरके प्रायः सब ही कोमल तथा आवश्यक अंग स्थित हैं। पसलियोंके बीचमें हृदय और फेफड़े स्थित हैं तथा नितम्ब-अस्थि के ऊपर आमाशय, यकृत, अँतड़ियाँ आदि स्थित हैं। ये कोमल अंग अस्थि-पिंजरके भीतर छिपे रहनेसे बाहरी झटकों चोटों आदिसे सुरक्षित रहते हैं।
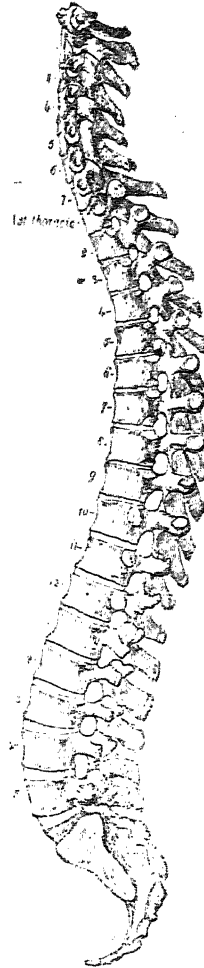
चित्र ३—रीढ़की हड्डी

रीढ़की हड्डी—इसकी बनावट अन्य सब हड्डियों से भिन्न है। यों तो गर्दनसे लेकर जाँघों तक यह एक सीधी हड्डी मालूम पड़ती है पर वास्तवमें ऐसा नहीं है। यह पूरी एक ही हड्डी नहीं है वरन कई छोटी छोटी हड्डियों से मिल कर बनी है। यह छोटी छोटी हड्डियां कशेरूका

(वरटिब्रा) कहलाती हैं । कशेरूकायें एक दूसरे के ऊपर रखी हुई हैं । इनके बीचमें कार्टिलेज होता है । इनका जोड़ बहुत मजबूत है और इसकी विशेषता यह है कि जोड़ होते हुए भी हड्डी मुड़ सकती है । इसीसे इधर उधर झुकने या मुड़नेसे भी यह सीधी लम्बी हड्डी टूटती नहीं । एक दूसरा लाभ यह है कि किसी प्रकारके धक्के या चोटका प्रभाव दिमाग़ तक नहीं पहुँचता ।
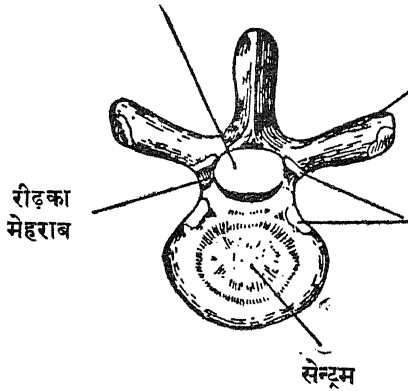
चित्र ४—छातीका एक कशेरूका

कशेरूकायें बीचसे खोखली होती हैं । ये आपसमें इस प्रकार जुड़ी रहती हैं कि इनके बीच एक पतली नली
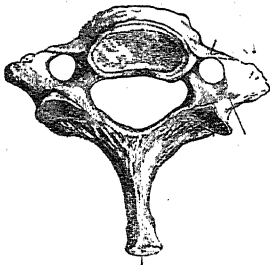
चित्र ५—छातीकी सातवीं कशेरुका

बनती है जिसे रीढ़-नली (Neural canal) कहते हैं । इसमें सुषुम्ना (spinal cord) रहती है ।

सबसे ऊपर अर्थात् गर्दनके पासकी दो कशेरूकायें एटलस (Atlas) और एक्सिस (Axis) कहलाती हैं । एटलस शिरको सभालता है । सिरकी हड्डी और एटलस
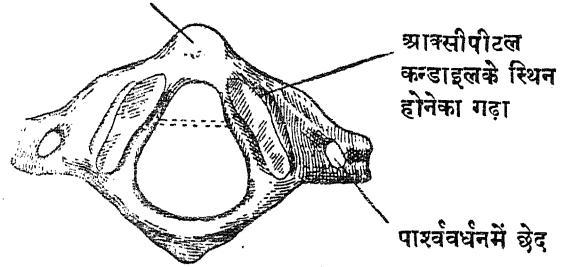
चित्र ६—ऐटलस

कशेरूकाके बीचका जोड़ पिवट जोड़ (Pivot joint) है । शिर इसीके सहारे घूमता है । इस जोड़की विशेषता यह है कि यह सब ओर घूम सकता है ।

कुल २६ कशेरूकायें होती हैं । सबसे नीचेकी दो कशेरूकाएं सैक्रम (Sacrum) और काक्कस (Coccyx) कहलाती हैं । सैक्रम (Sacrum) पाँच छोटी कशेरूकाओंसे मिलकर बना है तथा दोनों कूल्हों (hips) के बीच स्थित है । काक्कस (Coccyx) में भी चार छोटी कशेरूकायें होती हैं । इसी कारण कशेरूकाओंकी गिनती बहुधा ३३ भी बतलाई जाती है । काकस (Coccyx) के सम्बंधमें विचार है कि यह प्राचीन कालकी पूँछकी निशानी है ।

रीढ़की हड्डीको जब हम सामने या पीछेसे सीधे खड़े होने पर देखें तो सीधी मालूम पड़ती है पर बाईं या दाहिनी तरफ़से देखने पर यह सीधी न दीखकर इधर-उधर झुकी हुई दीखती है । इसमें चार झुकाव (Curve) हैं—गर्दनका झुकाव (Cervical), कंधेका झुकाव (Dorsal), कमरका झुकाव (Lumber), सैक्रम (Sacrum) । इन झुकावोंका विशेष लाभ यह है कि पैरोंके बल कूदने या गिरने पर ये झटके और चोटको दिमाग तक नहीं पहुँचने देते । ये झुकाव मनुष्यको सीधा खड़े होनेमें भी सहायक होते हैं ।

जन्मके समय बालकके शरीरमें केवल कंधेका झुकाव (Dorsal curve) होता है। जब बालक गर्दन उठाना सीखता है तो गर्दनका झुकाव (Cervical curve) दीखने लगता है। जब बालक चलने लगता है तब कमरका झुकाव (Loin or Lumber curve) बनता है और तब ही (Sacrum Curve) भी दिखलाई पड़ने लगता है।

किसी भी झुकावका अधिक बड़ा या छोटा होना या झुकावोंका गिनतीमें अधिक होना इस बातका द्योतक है कि प्रारम्भसे ही उठने-बैठने या चलने-फिरनेका ढंग ठीक नहीं रहा है। एक ही ओर अधिक देर तक झुके रहनेसे झुकाव बढ़ जानेका डर रहता है।

भुजाओंकी हड्डियां—संपूर्ण भुजाको हम तीन भागोंमें बाँट सकते हैं—ऊपरी बाहु (Upper arm), अग्रबाहु (Fore arm) तथा हाथ (Hand)।

ऊपरी बाहुमें कंधेसे कोहनी तक एक ही लम्बी हड्डी है। यह प्रगंड (Humerus) कहलाती है। अग्रबाहुमें दो हड्डियां होती है जो प्रगंड अस्थिसे कुछ कम लम्बी और पतली होती हैं। अंगूठेकी ओर वाली हड्डी रेडियस (Radius) तथा कनिष्टिका अंगुलीकी ओर वाली अलना (Ulna) कहलाती है।

हाथ (hand) को फिर तीन भागोंमें बांटा जा सकता है—कलाई (Wrist) हथेली (Palm) तथा अंगुलियां (Fingers)।

कलाईमें ८ छोटी-छोटी हड्डियां होती हैं। यह कारपस (Carpus) कहलाती हैं। यह आठों हड्डियां ४-४ की दो कतारोंमें लगी रहती हैं। इनका आकार घनाकार (Cubical) होता है। कलाई की ऊपरी पंक्ति रेडियस तथा अलनासे जुड़ी हुई है तथा निचली पंक्ति हथेलीकी हड्डियोंसे।

हथेली में ५ छोटी तथा सीधी हड्डियां होती हैं। यह मेटाकारपस (Metacarpus) कहलाती हैं।

प्रत्येक अंगुलीमें ३-३ छोटी हड्डियां होती है। इस प्रकार सब अंगुलियाँ १४ छोटी हड्डियोंसे मिलकर बनती हैं। यह हड्डियां फैलन्जस (Fhalanges) कहलाती हैं। अंगुलियोंके किनारे पर, जो सिरे (Tips) कहलाती हैं, नाखून होते हैं। यह अंगुलियोंके कोमल सिरोंकी रक्षाका प्राकृतिक विधान है।

भुजाओं की भाँति टाँगे भी तीन भागों में बांटी जा सकती है—जांघ (Thigh), पग दंड (Shank) तथा पैर (Foot)।

जांघ की हड्डी—जांघसे घुटने तक एक ही लम्बी हड्डी है। यह बेलनाकार हड्डी है और उर्वस्थि (Fumer) कहलाती है।

पगदण्डमें दो हड्डियां होती हैं। यह उर्वस्थि (Fumer) से कुछ कम लम्बी तथा पतली होती हैं। अंगूठे की ओर वाली हड्डी टिबीया (Tibia) तथा दूसरी फेबूला (Fefula) कहलाती है।

पैर को हम फिर तीन भागोंमें बाँट सकते हैं—एड़ी (Heal), प्रपाद या तलुआ, तथा अंगुलियां (Toes)।

एड़ी (Heal) में सात हड्डियां होती हैं। ये हड्डियां टारसल (Tarsuls) कहलाती हैं। इनमें एक हड्डी बड़ी होती है और एड़ी बनाती है। शेष छः छोटी हड्डियां मिल कर टखना (Ankle) बनाती हैं।

प्रत्येक तलुऐ में ५ सीधी लम्बी हड्डियां होती है। यह हड्डियां मेटाटारसल (Meta Tarsuls) कहलाती हैं।

प्रत्येक अंगुली में ३ तथा अंगूठे में २ छोटी हड्डियां होती हैं। इस प्रकार हाथ की अंगुलियों की भांति प्रत्येक पैर की अंगुलियों में भी १४ छोटी हड्डियां होती हैं और यह पोर (Phalanges) कहलाती हैं।

जोड़ या संधि (Joint).

हमारे शरीरके भिन्न-भिन्न अंगोंकी हड्डियां आपसमें

एक दूसरेसे जुड़ी हुई हैं। यदि ऐसा न होता तो हमारे लिए कोई भी काम करना संभव नहीं होता और न ही शरीरका कोई सुचारु रूप होता। यदि हमारी ऊपरी बाहुकी हड्डी, प्रगंड अस्थि, स्कंध अस्थिसे जुड़ी न होती तो हमारी बांह बेकार निर्जीव सी लटकती रहती। हम उसे घुमा फिरा या ऊपर नीचे उठा न सकते। ऐसी दशामें हम हाथसे कोई काम नहीं कर सकते। अतः शरीरकी हड्डियोंका आपसमें एक दूसरेसे जुड़ा होना अत्यन्त आवश्यक है।

प्रत्येक स्थानके जोड़से भिन्न प्रकारका काम निकलता है; या यों कहिए कि प्रत्येक अंगके कार्यकी सुविधानुसार प्रकृति ने उस अंगके जोड़को बनाया है।

जिस स्थान पर दो हड्डियोंकी संधि होती है वहां पर दोनों ही हड्डियोंमें कार्टिलेजकी मात्रा अधिक रहती है। कार्टिलेज कोमल पदार्थ है अतः जोड़ पर इसके रहनेसे जोड़में सुविधा रहती है। दोनों हड्डियोंको बांधने वाले बंधक तन्तु कैप्सुलर लिगामेन्टस (Capsular ligaments) कहलाते हैं। यह तंतु लचीले (Elastic) होते हैं और खिंचनेसे टूटते नहीं। जोड़ पर हड्डियां एक दूसरे पर घूमती हैं अतः रगड़को बचानेके लिए इन स्थानों पर किसी चिकने तरल पदार्थकी आवश्यकता रहती है। अतः प्रत्येक संधि पर ऐसी गिल्टियां (Glands) होती हैं जिनसे एक प्रकारका चिकना तरल पदार्थ (Lubricating sticky fluid) निकलता रहता है। इससे संधि सुरक्षित रहती है।

जोड़ दो श्रेणियोंमें विभाजित किऐ जा सकते हैं—चल या चेष्टावन्त (Moveable), अचल या स्थिर (Immoveable)।

चल या चेष्टावन्त संधि (Moveable joint)—इन संधियोंकी विशेषता यह है कि संधिके स्थान पर गति होती है अर्थात् उस अंगको हम अपनी इच्छानुसार घुमा-फिरा सकते हैं। यदि हमारे शरीरके अंगोंके बीच इस प्रकारकी संधियां न होतीं हमारे शरीरमें कोई गति ही न होती। समस्त शरीर पत्थरकी मूर्तिकी भाँति अचल होता।

सब चेष्टावन्त संधियों में एक सी ही गति नहीं होती है। गति के प्रकार और मात्रा दोनों ही में अन्तर होता है। उसी के अनुसार संधियों के भिन्न भिन्न नाम हैं।

गेंद और प्यालेनुमा जोड़ (Ball and socket joint)—यह जोड़ कंधे व जांघमें पाया जाता है। इसमें क्रमसे कंधे व कूल्हेकी हड्डियोंमें प्यालेनुमा छिद्र बना रहता है। प्रगंड अस्थि (ऊपरी बाहुकी हड्डी) और जांघकी हड्डी (Fumer) के ऊपरी सिरे गोलेनुमा रहते हैं। गोलेनुमा हड्डी प्यालेनुमा छिद्रमें घुसी रहती है और उसहीके भीतर सब ओर घूम जाती है। इस ही से हम अपनी बांह व जाँघको चारों ओर घुमा सकते हैं।

कब्जेनुमा जोड़ (Hinge joint)—कोहनी व घुटने पर हड्डियां इस प्रकार जुड़ी रहती हैं कि हम अग्रबाहु (Fore arm) तथा पगदण्ड (Shank) को दरवाजे की भाँति एक ही ओर घुमा सकते हैं दूसरी ओर नहीं। इसीसे इसे कब्जेदार जोड़ कहा जाता है। अंगुलियों व कलाई का जोड़ भी इसी श्रेणीका है।

खूँटीदार जोड़ (Pivot joint)—यह जोड़ रीढ़की हड्डीकी सबसे ऊपरी कशेरुका (Atlas) तथा शिरकी हड्डी के बीच पाया जाता है। इसकी विशेषता यह है कि इस पर हड्डी सब ओर घूम व मुड़ सकती है। इसीसे सिरको हर दिशामें घुमा फिरा सकना संभव है।

अचल या स्थिर संधि (Immoveable joint)—इनमें किसी भी प्रकार की गति संभव नहीं है जैसे सिर की हड्डियों की संधि। पसलियों की हड्डियों की छाती की हड्डी तथा रीढ़ की हड्डी से संधि भी इसी श्रेणीकी

हैं। ऐसी संधियों में हड्डियां एक दूसरी से सटी रहती हैं बीच में रिक्त स्थान नहीं रहता है। इसी से इनमें किसी प्रकार की गति संभव नहीं होती।

'मांसपेशियाँ और उनके कार्य'

हमारे शरीर के अस्थिपिंजर के ऊपर मांस मढ़ा हुआ है। यह शरीरके रूपको सुन्दर और सुडौल बनानेके अलावा शरीर के कार्यों में भी सहायता देता है। समस्त शरीर मांस का एक ही लोंदा नहीं है। हर स्थान पर मांस के भिन्न भिन्न आकारके टुकड़े हैं। मांस के यह टुकड़े मांस पेशियां या पुट्ठे कहलाते हैं। यह मांसपेशियां हड्डियों से बंधक-तन्तुओं द्वारा बँधी हुई हैं। किसी संधि (जोड़) पर जो बधक-तन्तु मांसपेशियों को बाँधते है वह टेन्डन (Tendons) कहलाते हैं।

मांसपेशियां शरीर के भिन्न भागों में भिन्न आकार और रूप की होती हैं, कोई लम्बी, कोई चपटी और कोई मोटी—बाहु व टाँग की मांसपेसियां लम्बी होती हैं, अंगुलियों की छोटी।

मांसपेशियां लचीली होती हैं और उनमें संकोचन तथा विमोचन (Cantraction and Relaxation) होता है। इसी से मांसपेशियां हमें कार्य करने में सहायता पहुँचाती है। जब मस्तिष्कसे नाड़ियाँ (nerves) किसी कार्यका संदेशा किसी मांसपेशी तक पहुँचाती हैं, उस मांसपेशी में संकोचन होता है। इससे उसमें गति उत्पन्न होती है। इसी गतिसे उस मांस पेशीसे सम्बन्धित अंगों का कार्य होता है। इसी प्रकार संकोचनकी क्रिया द्वारा शरीर के सब कार्य होते हैं।

इसके अलावा कुछ ऐसे भी कार्य है जो इच्छा न करने पर भी होते हैं जैसे रक्त-संचालन, पाचन क्रिया आदि। इस प्रकार के कार्य करने वाली मांस पेशियाँ स्वाधीन मांसपेशियाँ (Involantary muscles) कहलाती हैं। ये आमाशय, अँतड़ियों, हृदय, फेफड़े, आँख आदि में पाई जाती हैं। जो मांसपेशियां इच्छानुसार काम करती हैं
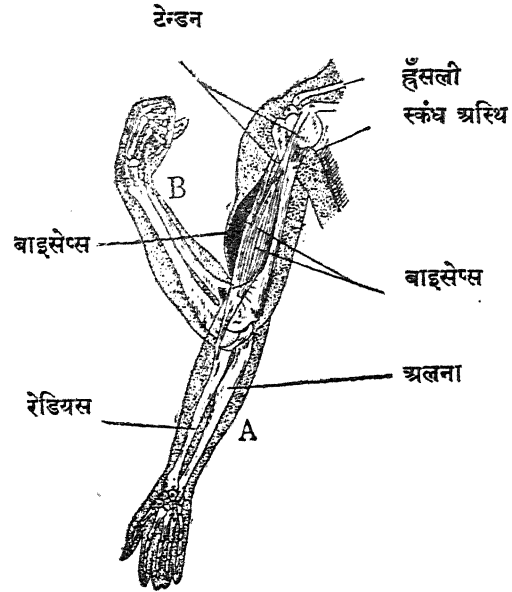
चित्र ७—भुजामें बाइसेप्स माँसपेशी
[A बाइसेप्सकी साधारण अवस्थामें भुजा सीधी है; B बाइसेप्सकीके संकोचनसे भुजा मुड़ी है]

वह आधीन मांस पेशियां (Voluntary muscles) कहलाती हैं। आधीन मांस-पेशियोंके कार्योंका पूरा नियन्त्रण मस्तिष्क द्वारा होता है। हर एक मांसपेशी हर प्रकार का काम नहीं कर सकती। कौन मांसपेशी किस प्रकार का काम करती है यह उसकी गठन और उसकी तथा अन्य मांसपेशियों और हड्डियोंकी संधि पर भी निर्भर है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मांसपेशियों का हमारे जीवन में एक मुख्य स्थान है। इनको स्वस्थ रखना हमारे लिए अत्यन्त आवश्यक है। इनकी स्वस्थता के लिए यह आवश्यक है कि इनसे बराबर काम लिया जाए। काम न लिए जाने से यह शक्तिहीन हो जाती हैं और तब किसी भी प्रकार का काम करने में असमर्थ हो जाती

हैं। काम करते रहने के साथ साथ मांसपेशियों में शुद्ध रक्त का संचार होना भी आवश्यक है। हमारे शरीर के अंग अपना भोजन रूधिर से ही पाते हैं। यदि शुद्ध रूधिर मिलेगा तो मांसपेशियों को अपनी आवश्यकतानुसार भोजन मिल सकेगा अथवा नहीं। यदि उचित भोजन नहीं मिलेगा तो स्वाभाविक रूप से उनकी शक्ति घट जाएगी और वह ठीक से कार्य नहीं कर सकेंगी। अतः अपने भोजन पर ध्यान देना चाहिए। भोजन उचित होने पर हमारा स्वास्थ्य ठीक रहेगा। स्वास्थ्य ठीक होने पर रूधिर भी शुद्ध और शक्तिवर्द्धक स्वभावतः ही होगा।

उक्त दोनों बातों के साथ साथ मांस पेशियों को विश्राम की भी आवश्यकता है। जैसे कार्य न करने से यह शक्ति हीन हो जाती हैं वैसे ही लगातार अपनी शक्ति से अधिक कार्य करते रहने से भी इनकी शक्ति घट जाती है। इसका कारण यह है कि जब कोई मांसपेशी काम करती है तो उसमें कुछ अशुद्ध पदार्थ (Waste Matter) एकत्रित हो जाता है। उस समय यह आवश्यक होता है कि उसको हटाकर उसके स्थानपर शुद्ध पदार्थ लाया जाय। यदि मांस पेशी को कुछ समय कार्य करने के बाद आराम नहीं मिलता तो यह अशुद्ध पदार्थ बहुत अधिक मात्रा में एकत्र हो जाता है। तब इसके हटाने में अधिक समय और शक्ति खर्च होती है। साथ ही जितनी देर तक यह उस स्थान पर रहता है मांसपेशीको हानि ही पहुँचाता है। कोई काम करने पर जब हम थकान मालूम करें तो हमें समझना चाहिए कि शरीरके उस अंग विशेष में अशुद्ध द्रव्य (Waste Matter) काफी मात्रा में एकत्र हो चुका है और अब उस अंग को विश्राम की आवश्यकता है। इस बात पर ध्यान न देने से अपने ही शरीर को कष्ट होता है। यह एकत्रित अशुद्ध पदार्थ उस अंग विशेष में पीड़ा (Muscular pain) उत्पन्न कर देता है। उस दशा मे बहुत अधिक विश्राम की आवश्यकता पड़ती है। अतः बाद में कार्य की अधिक हानि करने की अपेक्षा यह अधिक अच्छा है कि जब थोड़ी थकान मालूम हो तब ही थोड़ा सा आराम शरीर को देदिया जाय। ऐसा करने से मांसपेशियां सदा स्वस्थ दशा में बनी रहेंगी।

औद्योगिक योजना

[अनु० श्री ओंकार नाथ शर्मा लोको फोर मैन]

(भारत सरकारके व्यापारिक विभागके अन्तर्गत बोर्ड आफ साइन्टिफिक एण्ड इन्डस्ट्रियल रिसर्च द्वारा प्रकाशित सूचनायोंका अनुवाद)

सूखी सेलों का निर्माण

बिजलीकी टार्चों, रेल, डाक और तार विभागोंके टेलीफोनों, तारयंत्रों, छोटे टेलीफोनके प्रबन्धों, बैटरीसे काम करने वाले रेडियोके सेटों और कई प्रकारके वैज्ञानिक यंत्रों और औजारोंमें बिजलीकी धारा प्राप्त करनेके लिए सूखी सेलोंका प्रयोग किया जाता है। भारतमें यह विदेशोंसे मँगवाई जाती हैं; पिछले कुछ वर्षोंसे थोड़े प्रकारकी सेलें यहाँ भी बनाई जाने लगी हैं। भारतके भिन्न-भिन्न शहरोंमें इस समय करीब आठ या नौ कारखाने हैं जो कई प्रकारकी सूखी सेलें सफलता पूर्वक बनाकर बेच रहे हैं; फिर भी लगभग २२ लाखसे २५ लाख रुपये तककी सेलें प्रतिवर्ष विदेशोंसे मँगवाई जाती है। इतना ही नहीं बल्कि सेलोंका निर्माण करने वाले मौजूदा कारखाने, सेलें बनानेका सब कच्चा सामान भी विदेशोंसे ही मँगवा रहे हैं। यह कच्चा माल विदेशोंसे प्रतिवर्ष कितनेका आता होगा ठीक तो नहीं बताया जासकता, फिर भी उसका योग अवश्य ही दस लाख रुपयेसे कम न होगा।

कच्चा मालः—सेलोंके ध्रुवोंको अनाच्छादित (Depolarise) करनेके लिये मैंगनीज़ डाइ-आक्साइडका उपयोग किया जाता है, जो स्वयं सेलकी कुल तौलका आधाभाग होता है। युद्धके पहिले तक भारतीय कारखानोंमें शुद्ध किया हुआ मैंगनीज़ डाइ-आक्साइडका खनिज, काकेशस, जावा और अफ्रीका से मँगवाया जाता था। सरकारी प्रयोग-शालाओं में अनुसंधान करने पर मालूम हुआ कि भारत वर्ष की भिन्न भिन्न छः खानों से प्राप्त किया हुआ खनिज मैंगनीज़ प्राकृतिक अवस्था में भी सूखी सेलों के निर्माण में काम आ सकता है। यह खनिज उचित संस्कारों द्वारा यदि शुद्ध कर लिया जाय तो इस की सक्रियता (Activity) और भी बढ़ जावेगी, अतः इस के शुद्ध करने के प्रयोग भी अभी चालू हैं।

प्राकृतिक मैंगनीज़ डाइ आक्साइड की सक्रियता बढ़ाने और उसकी उत्तमता का दरजा एक सा बनाये रखने के लिये बनावटी मैंगनीज़ डाइ-आक्साइड भी खनिज द्रव्य के साथ उचित मात्रा में मिला दिया जाता है। भारतीय सेल निर्माता इस बनावटी मैंगनीज़ को भी विदेशों से मँगवाया करते हैं। इसका खर्च बहुत थोड़ी मात्रा में होने के कारण अधिक नहीं मँगवाना पड़ता। मिश्रण करने के लिये कौन कौन से भौतिक और रासायनिक गुणों वाला मैंगनीज़ डाइ-आक्साइड प्राप्त किया जाय, इसका निर्णय करने के लिये भी काफी अनुसंधान करने की आवश्यकता है; अतः यह काम कई प्रयोगशालाओं में चालू है।

ध्रुव अनच्छादिकरण द्रव्य में ग्रैफाइट ही मुख्य वाहक पदार्थ होता है। युद्ध के पहिले यह भी विदेशों से ही मँगवाया जाता था। भारत में भी कई जगह यह थोड़ी-थोड़ी मात्रा में खनिज़ रुप में पाया जाता है, लेकिन इस का पूरा उपयोग अभीतक नहीं किया गया है। केवल लंका का ग्रैफाइट ही, जो अपनी उत्तमता के लिये प्रसिद्ध है, अभी तक इस प्रयोग में काम आता रहा है। बनावटी

ग्रैफाइट अकेले ही अथवा एक नियत मात्रा में प्राकृतिक ग्रैफाइट के साथ मिलाकर काम में लाया जा सकता है। रिसर्च बोर्ड की योजनाओं के अनुसार बनावटी ग्रैफाइट निर्माण करने के प्रयत्न भी भारत में हो रहे हैं।

एसिटिलीनका धुआँ और काजल भी अकसर ध्रुव-अनच्छादिकरण द्रव्यके साथ उसकी सुषिरता (Porosity) बढ़ानेके लिये मिला दिये जाते हैं। भारतमें यह द्रव्य भी अभी विदेशोंसे ही मँगवाये जाते हैं।

कार्बनकी छड़ें भी, जो सूखी सेलमें एक सुचालक ध्रुवका काम करती हैं, भारतमें नहीं बनाई जातीं। सूखी सेल निर्माण करने वाला केवल एक ही भारतीय कारखाना निजू खर्चके लिये इनके निर्माण करनेका दावा करता है। अन्य संस्थायें इन्हें विदेशोंसे ही मँगवाती हैं। कार्बनकी छड़ोंके निर्माण विषयक अनुसंधानका कार्य "डाईरेक्टर आफ़ साइन्टिफ़िक एण्ड इन्डस्ट्रियल रिसर्च" की प्रयोगशालाओंमें चालू है। इन्हें बनाने योग्य कच्चा माल भारतमें बहुतायतसे मिल सकता है।

जस्तेकी चद्दर और जस्तेके डिब्बे भी विदेशों से ही मंगवाये जाते हैं और उन्हीं पर सेल निर्माणका वर्तमान भारतीय उद्योग निर्भर करता है, लेकिन उसका अधिकांश भाग भारत में ही जस्तेकी चद्दरें तैयार करवा कर पूरा किया जा सकता है।

सूखी सेलोंके लिये विद्युत्—विच्छेद्य घोल (Electrolyte solution) तैयार करनेमें मुख्यतया अमोनियम क्लोराइड और जिंकक्लोराइड ही काममें आता है। कैल्शियम क्लोराइड, मैगनीशियम क्लोराइड और मरक्यूरिक क्लोराइड भी उसमें थोड़ी-थोड़ी मात्रामें मिलाया जाता है। यह सब द्रव्य अधिकांशमें विदेशोंसे ही मँगवाये जाते हैं; केवल जिंकक्लोराइड और मैगनीशियम क्लोराइड थोड़ी थोड़ी मात्रामें कुछ भारतीय संस्थायें भी बनाती हैं।

विद्युत् विच्छेद्य घोलको जिलेटिनाइज़ करनेके लिए स्टार्च काममें लाया जाता है जो आजकल भारतीय बाज़ारमें मिलता है। लपेटनेके लिये कपड़ा, सुतली (ट्वाइन), काग़ज, पुट्ठा और खाम लगानेका चपड़ा आदि भी बाजार-से मिल सकता है। टोपियां बनानेके लिये पीतलकी चद्दर और जस्तेकी डिबिया और संयोजक (Terminal) आदिकों को झालनेके लिये टांका भी, जो थोड़ी ही मात्रामें चाहिये, बाजार से मिल सकता है।

यंत्र और औजार :—इस उद्योग में लगे हुए कारखाने आवश्यक यंत्र और उपकरण अधिकतर विदेशों से ही मँगवाते रहे हैं। डाइरेक्टर आफ साइन्टिफिक एण्ड इन्डस्ट्रियल रिसर्च ने अपनी प्रयोगशाला में ही कुछ यंत्रोंका निर्माण कराया है जो अच्छे सिद्ध हुये हैं, और दो वर्षसे अधिक समय से संतोष-प्रद काम कर रहे हैं। लगभग ८००० सेल प्रतिदिन बनाने वाले मध्यम दर्जे के कारखानों के लिये निम्नलिखित यंत्र और उपकरण आवश्यक होंगे।

(क)—जस्ते की डिबिया बनाने के लिये :—
कैंची मशीन, बेलन मशीन, पत्ते (ब्लैंक) काटने का प्रेस, झाल लगाने का जिग और खांचा ढालने की मशीन।

(ख)—पीतल की टोपी और पुट्ठे के वाशर काटने के लिये :—
अलग अलग साँचों के ज़रिये से उपरोक्त मशीनों द्वारा ही काम हो सकता है।

(ग)—डोली बनाने के लिये :—
चक्की (ग्राइन्डिंग) मशीन, मिश्रण यंत्र, यांत्रिक चलनियां और डोली दबाने के यंत्र।

(घ)—इलेक्ट्रोलाइट :—
मिश्रण यंत्र, लेई के साथ विद्युत विच्छेद्य घोल को पकाने के लिये बर्तन।

८००० सेल प्रतिदिन तैयार कर सकने वाले कारखाने की प्रारंम्भिक लागत और चालू खर्चे का अंदाजा नीचे दिया जाता है। यंत्र और औजारों, कच्चे माल और मज़दूरी का तखमीना युद्ध पूर्व के भाव के अनुसार है और वह भी कुछ ऊँचा ही रखा गया है।

प्रारंभिक लागत

१—कारखानेकी इमारत-३०० वर्गफुट क्षेत्रफल २००००)

२—चालू खर्च-(चार महीनेके लिये कर्मचारियोंका वेतन और कच्चे मालकी कीमत आदि} ४८०००)

३—यंत्र और औजार आदि..............२८०००)

योग ९६,०००)

कर्मचारियोंका वेतन

१—एक विशेषज्ञ मैनेजर...........२५०)रु० प्रतिमास

२—एक रसायनज्ञ.................१००) ,, प्रतिमास

३—एक लेखक....................४०) ,, प्रतिमास

४—छः कारीगर...................२४०) ,, प्रतिमास

५—पचास कुली..................१०००) ,, प्रतिमास

६—एक चपरासी....................२०) ,, प्रतिमास

योग रु० १६५०) ,, प्रतिमास

वार्षिक खर्च

१—मलूधन पर ५°/० ब्याज..............५०००) रु०

२—चुंगी और कर इत्यादि.................२५०) रु०

३—छीजन

(क) इमारत.........दर ५°/०.....१०००) रु०

(ख) यंत्र और औजार...दर १०°/०.....२८००) रु०

(ग) प्रयोगशाला और दफ्तरके उपकरण} दर १०°/०......४८०) रु०

(घ) मरम्मतके उपकरण...दर १°/०......२००) रु०

योग......४४८०) रु०

४—कर्मचारियोंका वेतन................१९८००) रु०

५—बीमा...........................१०००) रु०

६—शक्ति और प्रकाश आदि.............१२००) रु०

७—फुटकर...........................१०००) रु०

कुल योग ३२७३०) रु०

उत्पादन खर्च

वार्षिक उत्पादन..............२४०००००) सेल

१—कच्चे माल का वार्षिक खर्च रु०

११००० × १२ १३२०००)

२—वार्षिक (उत्पादन) खर्च ३२७३०)

योग रु० १६४७३०)

अतः एक सेलकी कीमत १·१ आना

एक ग्रोस सेलोंकी कीमत ९·९ रु०

अथवा १० रु०

सेलों की लागत का यह अंक बहुत तेज भाव पर समझना चाहिये क्यों कि लागतका अनुमान बैठाते समय पूँजी, कच्चे माल और मज़दूरीके काफी ऊँचे अंक लिये गये थे। अच्छी जातिकी सेलोंकी "कारखानेकी दर" १२) से १५) रु० प्रति ग्रोस तक होती है। यदि १२) रु० प्रति ग्रोस पर भी सेलें व्यापारियोंको बेची जावें तो भी निर्माण कर्त्ताओंको एक लाखकी वार्षिक पूँजी पर लगभग ३३०००) रुपये, अर्थात् ३३°/० का फायदा होजायगा।

युद्धके कारण बाजार भावमें काफी उलट पलट हो चुका है अतः इस समयका सही अंदाजा देना असम्भव है।

ग्लेज़ (Glazes)

[ले०—डा० सन्तप्रसाद टंडन, रसायन विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय]

ग्लेज़ शब्द का व्यवहार चीनी मिट्टी के बर्तनों के सम्बन्धमें ही विशेष रूपसे होता है। काँच की तरह चिकनी और चमकने वाली उस पर्तको ग्लेज़ कहते हैं जो चीनी मिट्टीके बर्तनों पर होती है।

चीनी मिट्टीसे बहुत तरहके बर्तन बनाये जाते हैं। गरम करने पर चीनी मिट्टी कड़ी पड़ जाती है किन्तु इसमें रन्ध्र (Pores) रह जाते हैं। अतः केवल चीनी मिट्टीका बना पदार्थ सान्ध्र (Porous) होने के कारण बहुत शीघ्र पानी सोख लेता है और नरम होकर टूट जाता है। ऐसे बर्तन घरोंके कार्यमें अधिक नहीं आ सकते। अतः यदि विभिन्न कार्योंमें इन बर्तनों को इस्तेमाल करना है तो यह आवश्यक है कि इनके ऊपर एक ऐसी पर्त चढ़ाई जाय जो चिकनी हो और जिसमें रन्ध्र न हों जिससे अन्दर पानी न घुस सके। ग्लेज़ इसी उद्देश्यसे इन बर्तनों पर चढ़ाई जाती है। सतह को एकदम रन्ध्र रहित करनेके अतिरिक्त यह उसे चमकीला भी बनाती है जिससे बर्तनका सौन्दर्य भी बढ़ जाता है।

आजकल ग्लेज़ शब्दका व्यवहार चमकीली पर्तके अतिरिक्त महीन पिसे हुये उन मिश्रणोंके लिए भी प्रयुक्त होता है जो इस प्रकारकी चमकीली सतह प्राप्त करनेके लिए काममें आते हैं। हम इसी अर्थमें ग्लेज़ शब्दका व्यवहार यहाँ करेंगे।

ग्लेज मिश्रण दो रूपमें व्यवहार में आते हैं—(१) सूखे पाउडरके रूपमें या (२) पानीके साथ बने इमलशन (Emulsion) के रूपमें। इन्हें क्रमशः सूखा ग्लेज़ (Dry glaze) और स्लाप ग्लेज़ (Slope glaze) कहते हैं। छोटे पैमाने पर काम करने वाले चीनी मिट्टीके कुम्हारोंको साधारणतः ग्लेज़ मिश्रण किसी बड़ी फैक्टरीसे बने बनाये मिल जाते हैं। थोड़ी मात्रामें इनको बनानेसे आर्थिक दृष्टिसे कोई विशेष लाभ नहीं होता।

मोटे तौरसे ग्लेज़ तीन कक्षाओंमें रक्खे जा सकते हैं :—(१) पारदर्शक (Transparent), (२) अपारदर्शक (Opaque), और (३) रंगीन (Coloured)। सभी ग्लेज़ोंमें नीचे लिखे गुण होना आवश्यक है :—

(१) इतना कड़ा हो कि रगड़से शीघ्र न घिसे।

(२) घरमें जो बर्तन इस्तेमाल होने हैं उनके ग्लेज़ों पर साधारण अम्लोंका कोई प्रभाव न पड़े।

(३) ग्लेज़ इतना गलनशील (Fusible) हो कि जिससे बर्तनके ऊपर मज़बूतीसे चिपक जाय और बर्तनके आकारमें कोई अन्तर न आने दे। यदि ग्लेज़ बहुत ऊँचे तापक्रम पर गलने वाला होगा तो बर्तन पर ग्लेज़ चढ़ानेके लिए उसे इस तापक्रम पर गरम करने पर बर्तनके आकारमें अन्तर आ जायगा और 'बिस्कुट' (Biscuit) के टूटनेका भी डर रहेगा। इसके साथ ही यह ऐसा गलनशील भी न हो कि साधारण तापक्रमों पर बर्तन को

गरम करनेसे यह गल कर निकल जाय।

(४) इसका प्रसार-गुणक (Coefficient of expansion) बर्तनके पदार्थके प्रसार-गुणकके लगभग बराबर होना चाहिए, नहीं तो बर्तनमें 'पपड़ी' निकलनेका दोष आ जायगा।

(५) बर्तनको रंगनेके लिए जो रंगीन धातुओं-की आक्साइड व्यवहारमें आती हैं उनको अपनेमें घुला सकनेका गुण ग्लेज़में होना चाहिए।

(६) बर्तन के ऊपर पेंटिंग करनेके लिए जो रंग इस्तेमाल हों उनको अपने में बहुत अधिक घुला सकनेका गुण ग्लेज़में नहीं होना चाहिए नहीं तो पेंटिंगका रंग ठीक नहीं चढ़ पायेगा।

ऊपरके आवश्यक गुणोंको ध्यानमें रख कर ग्लेजका चुनाव करना पड़ता है। ग्लेज़का चुनाव बर्तनके पदार्थ, उसके साथ मिलानेकी विधि तथा बर्तन की फुँकाई-इन तीन मुख्य बातों पर निर्भर करता है। किसी विशेष बर्तनके लिए किस प्रकारका ग्लेज़ चुना जाय यह कार्य काफी कठिन है। इसके लिए ग्लेज़ सम्बन्धी सिद्धान्तों की तथा ग्लेज़ उत्पन्न करने वाले पदार्थोंके गुणों की पूरी जानकारी पहलेसे होनी चाहिए।

काँचकी चिकनाहट तथा चमक देख कर यह अनुमान होता है कि यह ग्लेज़ के लिए अच्छा पदार्थ होगा। किन्तु जब बर्तनके ऊपर ग्लेज़के रूपमें इसे लगाकर बर्तनको गरम किया जाता है तो बर्तन चटका हुआ प्राप्त होता है; काँचको तरह चिकना नहीं। अतः ग्लेज़ ऐसा होना चाहिए जो काँचकी भाँति चिकना और चमकदार तो हो किन्तु उसमें काँचके दोष न हों। साधारण काँच सिलीका, सोडा, चूना और सीसे (Lead) के मिश्रणसे बनता है। अतः यह सम्भव है कि इन्हीं पदार्थोंके विभिन्न मिश्रणों को प्रयोग करने पर कोई ऐसा मिश्रण प्राप्त हो सके जो ग्लेज़के अर्थ प्रयुक्त होने योग्य हो। इसी संकेतके सहारे खोज करने पर चीनी मिट्टी के विशेषज्ञों ने विभिन्न प्रकारके ग्लेज़ मालूम किये हैं।

ग्लेज़ों के संगठन (Composition) में एक दूसरे से बहुत अन्तर होता है। प्रत्येक ग्लेज़का संगठन निम्न बातों पर निर्भर करता है:—

(१) तापक्रम जिस पर बर्तन को गरम करना है,

(२) बर्तन की फुँकाईमें लगनेवाला समय,

(३) बर्तनके वास्तविक पदार्थके गुण। प्रत्येक ग्लेज़के गलनेका तापक्रम (Fusion point) उसमें मिश्रित पदार्थों पर तथा उन पदार्थोंके परस्परके अनुपातों पर निर्भर करता है। विशेषकर द्रवणांक इनके क्षारीय और अम्लीय पदार्थोंके पारस्परिक अनुपातों तथा एल्यूमिनाकी मात्रा पर निर्भर करता है। सभी ग्लेज़ोंको उनके भौतिक गुणोंके आधार पर काँचकी कक्षामें रक्खा जा सकता है।

सूत्रों द्वारा संगठन प्रदर्शित करना

इनके संगठनको सूत्रों द्वारा सुविधासे प्रकट किया जाता है। इन रासायनिक सूत्रों द्वारा तुरन्त इनके भिन्न-भिन्न आक्साइडोंके अणुओं का अनुपात मालूम हो जाता है। इन सूत्रोंमें एल्यूमिना (Alumina), सिलीका (Silica) और बोरिक एसिड (Boric acid) को अलग अलग लिखा जाता है।

साधारण रीतिसे सूत्रमें सब दो संयोगशक्ति (Bivalent) वाले क्षारीय आक्साइडों (Basic oxides) को संगठित रूपसे RO लिखा जाता

है। इसके बाद एल्यूमिनाको लिखकर अन्तमें सिलीका और बोरिक अम्लोंको लिखते हैं। नीचे के उदाहरणसे सूत्र लिखनेकी विधि समझमें आ जायगीः—

सफेदा — २५८ भाग
(White lead, $Pb(OH)_2 . 2PbCO_3$)

चीनी मिट्टी — ५२ भाग
(China clay, $Al_2O_3, 2SiO_2, 2H_2O$)
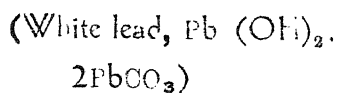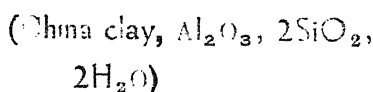
फ़्लिन्ट — ८१ भाग
(Flint, SiO_2)
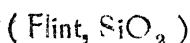
इन पदार्थोंके अणुभार इस प्रकार हैं—

सफ़ेदा — ७७५ अणुभार
चीनी मिट्टी — २५८ ,,
फ़्लिन्ट — ६० ,,

अतः ग्लेज़का सूत्र निम्न होगा—

$PbO. 0{\cdot}2\ Al_2O_3, 1{\cdot}75\ SiO_2$
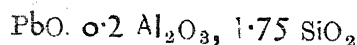
परिपक्व होने (Maturing) का तापक्रम

ऊपर उदाहरणमें दिया हुआ ग्लेज़ अपेक्षाकृत कम तापक्रम पर परिपक्व हो जायगा (लगभग ९००° श)।

मोटे तौरसे ग्लेज़के परिपक्व होनेका काल और तापक्रम निम्न बातों पर निर्भर करता है :—

(१) अम्लों और क्षारोंके अनुपातों,

(२) एल्यूमिनाकी मात्रा,

(३) सिलीका और बोरिक एसिडके परस्परके अनुपात।

ग्लेज़में जितना अधिक सिलीका होता है उतने ही ऊँचे तापक्रम पर वह गलता है और इसीके अनुसार ग्लेज़के परिपक्व होनेका तापक्रम भी ऊँचा होता है। अतः सिलीकाकी मात्रा घटाने-बढ़ानेसे ग्लेज़के गलनेका तापक्रम नियन्त्रित किया जा सकता है।

साधारण रीतिसे भिन्न-भिन्न पदार्थोंके लिए व्यवहार में आने वाली ग्लेज़ोंके सूत्र नीचे लिखी सीमाओंके भीतर होते हैं—

साधारण सस्ते बर्तन (Common pottery) की ग्लेज़ :—

$RO: 1{\cdot}5\ SiO_2$ से $RO: 3\ SiO_2$ तक
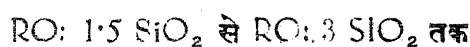
अचारोंके बर्तन, पाइप आदि की ग्लेज़ः—

(Earthinware, Bone china and Stoneware)
$RO: 0{\cdot}25\ Al_2O_3, 2{\cdot}5\ SiO_2$ से $RO: 0{\cdot}4\ Al_2O_3, 4{\cdot}5\ SiO_2$ तक

पोरसिलेन (Porcelain) की ग्लेज़ :—

$RO: 0{\cdot}5\ Al_2O_3, 5\ SiO_2$ से $RO: 1{\cdot}25\ Al_2O_3, 12\ SiO_2$ तक
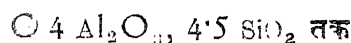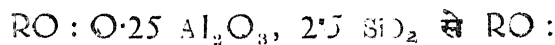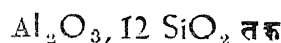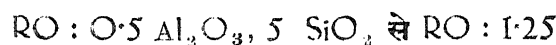
इन सब प्रकारकी ग्लेज़ोंके परिपक्व होनेका तापक्रम ९००° से १४५०° श के बीचमें रहता है।

ग्लेज़ोंके विभाग

संगठनके आधार पर ग्लेज़ें निम्न चार कक्षाओं में रक्खी जा सकती हैं—

(१) क्षारीय (Alkaline)—इसमें मुख्यतः क्षार (Alkali) तथा क्षारीय (Alkaline) धातुओं के सिलीकेट रहते हैं।

(२) लौह (Felspathic)—इसमें सिलीका, एल्यूमिना और क्षारके साथ काफ़ी मात्रामें लौह (Felspar) या इसी कक्षा की कोई चट्टान रहती है।

(३) सीसे वाली ग्लेज़ें (Lead glazes)—इसमें मुख्यतः ये पदार्थ रहते हैं—क्षार और क्षारीय धातुओंके सिलीकेट, बोरो सिलीकेट, कुछ एल्यू-

मिना, कुछ सीसे की आक्साइड और कुछ बोरिक एसिड।

(४ इनेमेल या अपारदर्शक ग्लेज़ (Enamels or Opaque glazes)—इनका रासायनिक संगठन भी साधारणतः ग्लेज़ोंकी भाँति ही होता है। अन्तर केवल इतना ही होता है कि कोई अपारदर्शक बनाने वाला पदार्थ जैसे राँगेको आक्साइड, संखिया आदि और इसमें मिला दिया जाता है।

क्षारीय ग्लेज़ें (Alkaline glazes)

साधारण नमक ग्लेज़ (Salt glazes) इस कक्षा का सर्व परिचित उदाहरण है। नमक ग्लेज़ कड़े बर्तनों (Stoneware) के लिए अधिक व्यवहारमें आता है। पहले नरम बर्तनों (Earthenware) के लिए भी इसका उपयोग काफ़ी होता था, किन्तु आज कल इन बर्तनों के लिए इसका उपयोग नहींके बराबर ही होता है। फुँकाईके बाद इससे जो ग्लेज़ बर्तन पर आती है वह प्रधानतया क्षारीय एल्यूमिनम सिलीकेट की रहती है। नमक ग्लेज़ चढ़ानेकी विधि यह है। फुँकाई करते समय जब बर्तन काँचकी सी अवस्था (Vitrifying point) में आ जाता है तब भट्टीमें नमक डाल दिया जाता है। नमक वाष्पीभूत होता है। इस अवस्थामें पानीकी भाप द्वारा, जो भट्टीमें मौजूद रहती है, यह विश्लेषित हो जाता है और इसके स्थानमें सोडियम आक्साइड और हाइड्रोक्लोरिक एसिड बन जाते हैं। सोडियम आक्साइड तुरन्त बर्तन के सिलीका, एल्यूमिना तथा उसमें वर्तमान अन्य क्षारीय तत्त्वोंसे संयोजित होकर सोडियम एल्यूमिनम सिलीकेट बनाता है। इसमें सिलीका बहुत रहता है और काँचकी भाँति यह चिकना और चमकीला होता है।

बर्तन पर चढ़े हुए नमकके ग्लेज़को सूत्र द्वारा इस प्रकार दिखलाया जा सकता है:—

$$RO : 0{\cdot}5\ Al_2O_3,\ 4{\cdot}0 \text{ to } 8{\cdot}0\ SiO_2$$
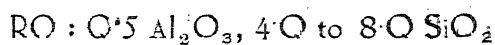
इस ग्लेज़में केवल सोडियम आक्साइड नमक से प्राप्त होती है; बाकी अन्य चीजें बर्तनके पदार्थ से प्राप्त होती हैं।

एक अच्छा नमक ग्लेज़ प्राप्त करनेके लिए यह आवश्यक है कि बर्तनके पदार्थमें एल्यूमिना और सिलीकाके अनुपात उचित सीमाके अन्दर हों नहीं तो ग्लेज़ टिकाऊ नहीं होगा। बर्तनके पदार्थमें गलाने वाला (Flux) तत्त्व इतना होना चाहिए कि जिससे बर्तन उचित तापक्रम पर काँचकी दशामें आ जाय। ऐसी अवस्थामें आने पर ही बर्तनका पदार्थ जो पहले सान्ध्र (Porous) होता है रन्ध्रहीन (Non-porous) हो जाता है। यदि बर्तनकी सान्ध्र अवस्थामें भट्टीमें नमक डाल दिया जाय तो सोडियम आक्साइडका धुआँ बर्तनके रन्ध्रोंमें घुस जायगा और सतह पर कोई ग्लेज़ नहीं बन पायेगी।

चीनी मिट्टीका रासायनिक संगठन क्या हो जिससे इस पर एक अच्छा नमक ग्लेज़ चढ़े, इस बात पर बहुत खोजकी गई है। अमेरिका के एक रसायनज्ञ बैरिनजर (Barringir) ने सिद्ध किया है कि मिट्टीमें एल्यूमिना-सिलीका का अनुपात एक निर्दिष्ट सीमाके भीतर होने पर ही अच्छा नमक ग्लेज़ चढ़ता है। उसने अच्छे ग्लेज़ चढ़े हुए बर्तनकी मिट्टी तथा उस पर चढ़े ग्लेज़का रासायनिक विश्लेषण कर उनके तत्त्वोंकी मात्रायें मालूमकी हैं जो नीचे दी जाती हैं—

मिट्टीका विश्लेषण::—

सिलीका (SiO_2)	६३·११
एल्यूमिना (Al_2O_3)	२३·३०
लोहेकी आक्साइड (Fe_2O_3)	२·२३५
चूना (CaO)	०·७२५
मैगनीसिया (MgO)	०·९७०
सोडियम आक्साइड (Na_2O)	०·४९०
पोटैसियम आक्साइड (K_2O)	०·९३०
सल्फर ट्राइ आक्साइड (SO_3)	०·२४०
पानी (H_2O)	७·८१०

सूत्र रूपमें

०·०५६ CaO ०·१०५ MgO ०·०३४ Na_2O ०·०४२ K_2O	१·० Al_2O_3 ०·०६ Fe_2O_3	४·६०५ SiO_2

+ १·९५ H_2O
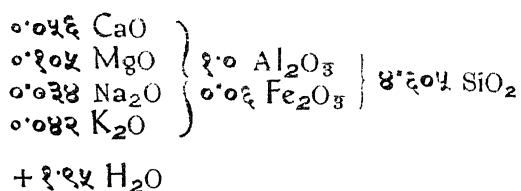
ग्लेज़ का विश्लेषण—

सिलीका	५५·४७५
एल्यूमिना	२१·३४०
लोहेकी आक्साइड	२·६४०
चूना	३·५००
मैगनीसिया	०·०४०
सोडियम आक्साइड	१८·२१०
पोटैसियम आक्साइड	०·०८०

सूत्र रूप में—

०·८१२ Na_2O ०·०७२ K_2O ०·५८२ CaO ०·००२ MgO	०·६१२ Al_2O_3 ०·०४८ Fe_2O_3	२·७०४ SiO_2

RO = ०·९९८
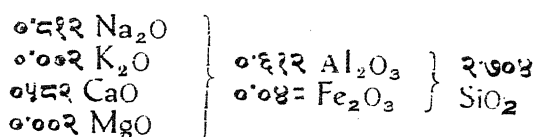
ऊपरके सूत्रोंसे यह ज्ञात होगा कि मिट्टीका सूत्र लिखनेमें एल्यूमिनाको इकाई कर लिया जाता है और ग्लेज़में क्षार पदार्थोंका योग इकाई किया जाता है। ऊपरकी मिट्टीमें एल्यूमिना और सिलीकाका अनुपात १ : ४·६ है। प्रयोगों द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि यह अनुपात १ : १० तक रहने पर भी नमकका अच्छा ग्लेज़ प्राप्त होता है।

नेल (Knell) ने ग्लेज़ चढ़नेकी रासायनिक प्रक्रिया पर प्रकाश डालनेका प्रयत्न किया है। उसके अनुसार नमकका वाष्प मिट्टीके एल्यूमिनम और लोहेके मिश्रित सिलीकेट पर प्रक्रिया करता है। फलस्वरूप लोहेकी क्लोराइड तथा सोडियम एल्यूमिनम सिलीकेट बनते हैं। लोहेकी यह क्लोराइड पानीके वाष्पसे मिलकर लोहेकी आक्साइड तथा हाइड्रोजन क्लोराइड गैस बनाती है। पूरी प्रक्रिया नीचे सूत्रोंमें दी जाती है—

$$(Al\,Fe)_2O_3 + SiO_2 + NaCl = (Al\ Na_3)_2O_3 + SiO_2 + Fe_2Cl_6$$

$$Fe_2Cl_2 + 3\ H_2O = Fe_2O_3 + 6HCl.$$
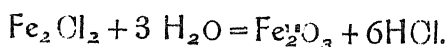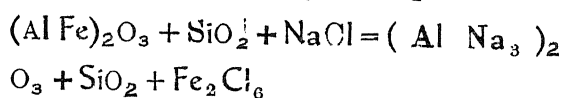
नेलका प्रक्रिया सम्बन्धी यह मत बहुत कम मान्य है, क्योंकि मिट्टीके उस भाग में, जो नमकके वाष्पके संसर्गमें आता है, लोहेकी मात्रा इतनी कम होती है कि उसके आधार पर ग्लेज़की जो मात्रा सम्भव है वह बर्तनके ग्लेज़के लिए बहुत कम है। फिर भी यह तो स्पष्ट है कि नमकके वाष्पकी सिलीका और एल्यूमिना पर होने वाली प्रक्रिया पर मिट्टीमें मौजूद लोहेकी मात्राका प्रभाव पड़ता है। भट्टीमें नमक डालते समय आँच कैसी है इस बातका भी प्रभाव ग्लेज़ पर पड़ता है। आँच अनोषदीकारक (Reducing) हुई तो लोहा अनोषदीकरण होकर फेरस् (Ferrous) दशामें हो जायगा और जो फेरस् यौगिक बनेगा उससे ग्लेज़का रंग बहुत गहरा हो जायगा। यदि आँच

ओषदीकारक (Oxidising) हुई तो ग्लेज़का रंग कम गहरा होगा।

यद्यपि आजकल नमक ग्लेज़ विशेषरूपसे कड़े मिट्टीके बर्तनों (Stoneware) के लिये ही प्रयुक्त होता है, १८वीं सदीके प्रारम्भमें यह अच्छे नरम मिट्टी (Earthen ware) के पदार्थों पर बढ़िया सफेद ग्लेज़के लिए इस्तेमाल होता था। सीसेके ग्लेज़ोंके मालूम होनेके बादसे नमकके ग्लेज़का व्यवहार इन बर्तनों (Earthen ware) के लिए बिलकुल बन्द हो गया है।

नमक ग्लेज़का सबसे प्रधान गुण यह है कि इसके ऊपर तेज़ अम्ल पदार्थोंका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अतः यह रासायनिक उद्योग-धंधोंमें इस्तेमाल होने वाले बर्तनोंके लिए बहुत उपयुक्त है।

नमक ग्लेज़ देनेकी विधि

नमक ग्लेज़ चढ़ानेकी एक विधि यह है। बर्तनको भट्टीमें इस प्रकार रक्खा जाता है कि वह सतह, जिस पर ग्लेज़ चढ़ानी है, भट्टीके वायुमंडलमें ऊपरकी ओर रहे। भट्टी का तापक्रम जब उस अंश पर पहुँचता है जिस पर मिट्टी काँचकी सी दशामें बदल जाती है और आँच एकदम साफ धुआँ रहित होती है तो भट्टीके छेदों द्वारा भट्टीमें नमक फेंक दिया जाता है। भट्टीकी आँचमें नमक वाष्पीभूत होकर विश्लेषित होता है। इस क्रियामें भट्टीका तापक्रम भी लगभग १००°श तक घट जाता है। आँचको पुनः उचित तापक्रम तक बढ़ाया जाता है। पुनः नमक भट्टीमें फेंका जाता है और पुनः आँच ठीककी जाती है। इस प्रकार तीन चार बारमें नमककी आवश्यक मात्रा भट्टीमें डाल दी जाती है। सारा नमक डाल चुकनेके बाद आँचको खूब तेज करते हैं—लगभग १२५०°श तापक्रम तक। कुछ देर इस तापक्रम पर रखनेके बाद भट्टीको धीरे-धीरे ठंढा करते हैं।

दूसरी विधि यह है। ७५ भाग मिट्टीमें २५ भाग नमक मिलाकर मिश्रणको महीन पीस कर पानीके साथ पतले इमलशनके रूपमें कर लिया जाता है। इस इमलशनको स्लिप (Slip) कहते हैं। बर्तन जब एक आँच देनेके बाद बिस्कुटके रूपमें हो जाता है तो बर्तनको इस स्लिपमें डुबाकर सुखा लेते हैं। इसे फिर भट्टीमें लगभग ११५०°श तापक्रम पर गरम करनेसे ग्लेज़ तैयार हो जाता है। इस विधिसे भी ग्लेज काफी अच्छा प्राप्त होता है। स्लिपमें कुछ रंग मिलाकर ग्लेज़को रंगीन भी कर सकते हैं।

लौहकक्षाकी ग्लेज़ें—ब्रिसटल ग्लेज़ (Bristol glazes) के नामसे प्रचलित प्रायः सभी ग्लेजें इस कक्षामें हैं। ये ग्लेजें ऊँचे तापक्रम पर परिपक्व होती हैं—१२५०° से १३००°श। इनकी दो किस्में हैं—(१) पारदर्शक और (२) अपारदर्शक। इनका व्यवहार अधिकतर कड़े बर्तनों (Stoneware) और ईंटोंके लिये होता है। इस कक्षाकी पारदर्शक ग्लेज़का एक उदाहरण सूत्र रूपमें नीचे दिया जाता है :

$$\left.\begin{matrix} ०\cdot१८\ K_2O \\ ०\cdot३३\ CaO \\ ०\cdot४४\ ZnO \end{matrix}\right\} ०\cdot२१\ Al_2O_3,\ १\cdot६१\ SiO_2$$
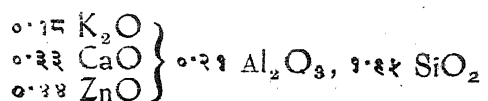
इस ग्लेज़के बनानेमें साधारणतः ये पदार्थ इस्तेमाल होते हैं—फेल्सपार (Felspar), सफेद खड़िया (Whiting), चीनी मिट्टी (China clay), और फ्लिंट (Flint)। अपारदर्शक ग्लेज़में इन पदार्थोंके अतिरिक्त

राँगेकी आक्साइड, (Tin oxide), ज़रकोनिया (Zirconia), संखिया (Arsenious oxide), हड्डीकी राख (Bone ash) आदि कोई ऐसा पदार्थ भी मिलाया जाता है जिससे अपारदर्शकता आती है।

इस कक्षाकी ग्लेज़ें सस्ती होती हैं किन्तु इनमें चमक अच्छी नहीं होती।

इस कक्षाकी एक तीसरी किस्म भी है जिसमें वे सब ग्लेज़ सम्मिलित हैं जिनमें मुख्यतः सिलीकेट और बोरो सिलीकेट, कुछ एल्यूमिना तथा कुछ सीसेकी आक्साइड (Lead oxide) रहती हैं। सीसेकी आक्साइड ग्लेज़ को नरम करनेका कार्य करती है। इंगलैंडमें साधारण चीनी मिट्टी के बर्तनों (Earthen ware) की ग्लेज़ और अधिकाँश पोरसिलेनके ऊपरकी ग्लेज़ यही होती है। इस किस्मकी एक अच्छी ग्लेज़का सूत्र नीचे दिया जाता है:—

$$\left.\begin{matrix} ०·३० \ KNaO \\ ०·४० \ CaO \\ ०·३० \ PbO \end{matrix}\right\} ०.२५ \, Al_2O_3 \quad \left\{\begin{matrix} २·५०—३·० \, SiO_2 \\ ०·४० \, B_2O_3 \end{matrix}\right.$$
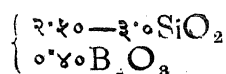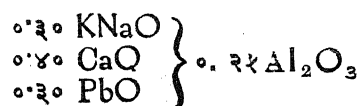
यह ११५०° श पर परिपक्व होती है और एक स्वच्छ पारदर्शक ग्लेज़ देती है।

इन सब ग्लेज़ों में साधारणतः एक ऐसा मिश्रण भी मिलाया जाता है जिसे फ्रिट (Frit) कहते हैं। फ्रिट सुहागा (Bovax), खड़िया (Whiting), फ्लिंट (Flint), फेल्सपार (Felspar) और चीनी मिट्टी (China clay) का मिश्रण है। फ्रिट के मिश्रण की पिसाई के समय इसमें कुछ सफ़ेदा (White lead), फेल्सपार, चीनी मिट्टी और फ्लिंट और मिला दिया जाता है और ग्लेज़ तैयार हो जाती है। नीचे फ्रिट द्वारा बनी एक ऐसी ग्लेज़ का उदाहरण दिया जाता है—

फ्रिट (Frit)

सुहागा	३७·७
खड़िया	१८.८
कोर्निश पत्थर (Cornish stone)	१८·८
फ्लिंट	१८·८
चीनी मिट्टी	५·६
ग्लेज़	
फ्रिट	३६·८
कोर्निश पत्थर	३१·८
फ्लिंट	१०.२
सफेदा	२१.२

फ्रिट क्रिया (Fritting)—ग्लेज़ के उपयुक्त पदार्थ केवल थोड़े से ही हैं। इस कारण विभिन्न प्रकार के बर्तनों के लिए उपयुक्त ग्लेज़ का चुनाव करने में काफ़ी कठिनाई पड़ती है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए फ्रिट की क्रिया का व्यवहार किया जाता है जिसके कारण बहुत से अन्य पदार्थ भी, जो साधारणतः ग्लेज़ के लिए अनुपयुक्त हैं, ग्लेज़ के काम में इस्तेमाल किये जा सकते हैं। फ्रिट क्रिया के मुख्य तीन लाभ हैं—

(१) घुलनशील पदार्थ को अघुलनशील पदार्थ में बदलना

(२) उड़नशील और व्यर्थ के पदार्थों को बाहर निकाल फेंकना

(३) धातुओं की रंगीन आक्साइडों को ग्लेज़ में मिश्रित होने में सहायक होना। बिना फ्रिट के ये आक्साइड ग्लेज़ में ठीक से एक सा मिश्रित नहीं होतीं।

फ्रिट क्रिया के समय कुछ खास नियमों का ध्यान रखना पड़ता है। ये नियम ये हैं—

(१) फ्रिट में अम्लों और क्षारों के अनुपात ऐसे होने चाहिए जिससे फ्रिट आसानी से गल जाय। इसके लिए यह आवश्यक है कि अम्लों के अणु क्षारों के अणुओं से तिगुने से अधिक न हों और न ही क्षारों के एक तिहाई से अधिक कम हों।

(२) फ्रिट क्रिया की सब से अधिक आवश्यकता दो मुख्य पदार्थों को विशेष रूप से होती है—(१) पहला दाहक क्षार (Alkalis) जिनके लगभग सब नमक घुलनशील हैं और (२) दूसरा बोरिक एसिड, क्योंकि वह स्वयं भी घुलनशील है और इसके बहुत से नमक भी घुलनशील होते हैं।

दाहक क्षारके सिलीकेट घुलनशील होते हैं। अतः ग्लेज़के लिए इनका व्यवहार नहीं हो सकता क्योंकि ग्लेज़का काम वही पदार्थ दे सकता है जो अघुलनशील सिलीकेट बनाये। यदि इनके साथ ऐसा क्षार पदार्थ, जैसे चूना, सीसा, जस्ता, एल्यूमिना आदि, जिसके सिलीकेट अघुलनशील होते हों, मिलाया जाय तो दाहक क्षारके सिलीकेट इनकी उपस्थितिमें अघुलनशील हो जायँगे और तब वे ग्लेज़ के अर्थ प्रयुक्त हो सकेंगे। बोरिक एसिडके लिए एल्यूमिना तथा कोई और क्षारीय पदार्थ मिलाया जाता है।

(३) दाहक क्षार (Alkalis) और बोरिक एसिडके अनुपात फ्रिटमें वही हों जो तैयार ग्लेज़में हों, नहीं तो दाहक क्षार या बोरिक एसिडके लिए कोई दूसरा पदार्थ ग्लेज़में मिलाना पड़ेगा।

(४) फ्रिटमें दाहक क्षार तथा अन्य पदार्थोंका परस्पर अनुपात उससे कम नहीं होना चाहिए जितना ग्लेज़में हो; यदि अधिक हो तो कोई हानि नहीं।

फ्रिटका तैयार करना

फ्रिटके सब पदार्थोंको खूब महीन पीस कर मिलाना चाहिए। फ्रिटमें पदार्थ जितना अच्छी तरह एकदिल होकर मिले रहेंगे उतनी ही आसानीसे मिश्रण गलेगा और समय की बचत होगी।

फ्रिटकी भट्टी (Frit Kiln)

अधिकतर व्यवहारमें आने वाली भट्टी रिवरबरेटरी (Reverberatory furnace) भट्टी है। भट्टीका आँवा (Hearth) अग्निमें ठहरने वाली ईंटों (Fire clay bricks) का बना रहता है।

किलनके बाहरका मार्ग अग्निमें ठहरने वाली ईंट द्वारा बंद रहता है। जब पदार्थ किलनमें गल कर इकट्ठा हो जाता है तो ईंट हटाकर मार्ग खोल देते हैं। इसी मार्गसे गला हुआ फ्रिट निकल कर एक पानीके तालाबमें, जो इस मार्गके ठीक नीचे रहता है, चला जाता है। इस तालाबका पानी खाली करने के बाद फ्रिट निकाल लिया जाता है और एक गोदममें इकट्ठा किया जाता है। इस गोदामसे फ्रिटको आवश्यकतानुसार ग्लेज़के पदार्थोंके साथ मिलानेके लिए निकालते हैं।

सीसे वाली ग्लेज़ें (Lead Glazes)

भिन्न भिन्न चीनी मिट्टीके बर्तनोंके लिए भिन्न भिन्न प्रकारके ग्लेज़का व्यवहार होता है। कोई एक ग्लेज़ सब ही प्रकारके बर्तनोंके लिए इस्तेमाल नहीं हो सकता। ग्लेज़ोंको उनके सीसेकी मात्राओंके अनुसार कुछ मुख्य कक्षाओंमें विभाजित किया जाता है।

लाल बर्तन (Red ware)

यह सबसे सरल और सस्ता ग्लेज़ युक्त मिट्टीके बर्तनोंका वर्ग है। इन बर्तनोंको प्रायः केवल अकेली साधारण मिट्टीसे ही बना लेते हैं जैसे ईंटें। इनकी फुँकाई अपेक्षाकृत नीचेके तापक्रम पर होती है—लगभग ९००° श। इस वर्गके वर्तन, साधारण प्याले, चायके बर्तन आदि हैं। इनके ग्लेज़ क्षारीय कक्षाके होते हैं। प्रायः ग्लेज़के लिए केवल सीसेकी आक्साइडका इमलशन ही अकेला इस्तेमाल होता है। एक ऐसे तैयार ग्लेज़का सूत्र नीचे दिया जाता है:—

$$PbO \left\{ \begin{matrix} ०.०१\ Al_2O_3 \\ ०.०३\ Fe_2O_3 \end{matrix} \right\} 1\cdot4\ SiO_2$$
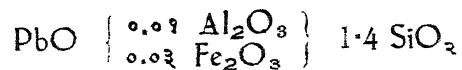
इन क्षारीय ग्लेज़ों के अम्लों के प्रभाव से खराब हो जाने का डर रहता है, अतः ये गृहस्थी में खाने पीने की

चीज़ों के लिए इस्तेमाल होने वाले बर्तनों के लिए उपयुक्त नहीं हैं।

एक अधिक अच्छे किस्म का लाल बर्तन होता है जिसे "राकिनघम" (Rockingham) कहते हैं। यह अधिक अच्छी किस्म की लाल मिट्टी (Red clay) का बना होता है। इसमें प्रायः कुछ चीनी मिट्टी (China clay) और फ़्लिट भी मिला दी जाती है। रंग इच्छानुसार लाने के लिए चीनी मिट्टी की मात्रा कम या अधिक रक्खी जाती है। इन बर्तनों की फुंकाई पहले ११००° श की आँच पर करते हैं। इस फुंकाई में ये 'बिस्कुट' के रूप में हो जाते हैं। बिस्कुट के ऊपर ग्लेज का इमलशन लगा कर फिर दुबारा फुंकाई करने पर बर्तन तैयार हो जाता है। इसके लिए साधारणतः सीसे वाला ग्लेज़ इस्तेमाल होता है जो सफेदा, कोरनिश पत्थर, चीनी मिट्टी, फ़्लिट तथा कुछ मैंगनीज़ डाइ-आक्साइड के उचित अनुपातों को मिला कर बनाया जाता है। इस ग्लेज़ का सूत्र यह है—

$$\left.\begin{matrix} ०.८० \; PbO \\ ०.२० \; KNaO \end{matrix}\right\} \; ०.२० \; Al_2O_3 \; \Big] \; २.० \; SiO_2$$

तथा लगभग १०% MnO_2
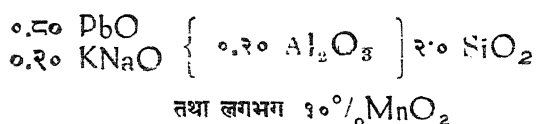
राकिनघम ग्लेज़ से मिलता जुलता एक दूसरा ग्लेज़ है जिसे 'जेट ग्लेज़' कहते हैं। यह भी उन्हीं लाल बर्तनों पर दिया जाता है जिन पर राकिनघम। इस ग्लेज़ में मैंगनीज़ डाइ-आक्साइड के स्थान में कोबाल्ट आक्साइड इस्तेमाल किया जाता है जिससे गहरा काला ग्लेज़ प्राप्त होता है।

अधिक सीसे का एक ग्लेज़ (High lead glaze) जो पहले बहुत इस्तेमाल होता था 'मैजोलिका' ग्लेज़ (Majolica glaze) है। यह ग्लेज़ फूलदान, छाता खड़ा करने के बर्तन आदि में बहुत इस्तेमाल होता था। जिन बर्तनों पर यह ग्लेज़ इस्तेमाल होता था वे सस्ती मिट्टी के मसाले के बने होते थे। इस ग्लेज़ का सूत्र नीचे दिया जाता है—

$$\left.\begin{matrix} ०.२५ \; Na_2O \\ ०.२५ \; CaO \\ ०.५० \; PbO \end{matrix}\right\} \; ०.२० \; Al_2O_3 \; \left\{\begin{matrix} २.५ \; SiO_2 \\ ०.५ \; B_2O_3 \end{matrix}\right.$$
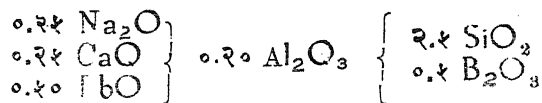
जैसा कि ऊपर के सूत्रों से ज्ञात हुआ होगा, ऊपर के चारों ग्लेज़ों में सीसे की मात्रा काफ़ी अधिक होती है—४० से ५० प्रतिशत तक सीसेकी आक्साइडके रूप में। किन्तु ये सब साधारण मिट्टी के बर्तनों पर इस्तेमाल होते हैं। सीसे के ग्लेज़ 'सफ़ेद बर्तनों' (White ware bodies) पर भी इस्तेमाल होते हैं। सफ़ेद बर्तनों में साधारण मिट्टी के बर्तनों से लेकर ऊँची जाति के पोरसिलेन सभी सम्मिलित हैं।

साधारण मिट्टी के बर्तन
(Common Earthen ware)

इस कक्षा के बर्तन सस्ती किस्म की चीनी और गोला मिट्टी (Ball clay) से बनते हैं। मिट्टी में कुछ कोरनिश पत्थर और कुछ फ्लिंट भी मिलाया जाता है। साधारणतः इन बर्तनों के बनाने में नीचे लिखे अनुपात में पदार्थों का मिश्रण इस्तेमाल होता है।

गोला मिट्टी (Ball clay)	३४ प्रतिशत
चीनी ,, (China clay)	२६ ,,
फ़्लिट (Flint)	२५ ,,
कोरनिश पत्थर (Cornish Stone)	१५ ,,

इन बर्तनोंके लिए जो ग्लेज़ पहले इस्तेमाल होता था वह यह है :—

सफेदा (White lead)	५६ प्रतिशत
कोरनिश पत्थर	३१.७ ,,
फ्लिंट	९३ ,,

किन्तु जबसे फ्रिट वाली ग्लेज़ें इस्तेमालमें आने लगी हैं तबसे ऊपरके ग्लेज़का व्यवहार बंद हो गया है। आज

कल जो ग्लेज़ें इस्तेमाल होती हैं उनमेंसे एक सूत्र रूपमें नीचे दी जाती है :—

$$\left.\begin{array}{l} ०·३३\ KNaO \\ ०·३३\ \ CaO \\ ०·३३\ \ PbO \end{array}\right| ०·२५ Al_2O_3 \left\{\begin{array}{l} २·५\ SiO_2 \\ ०·३३\ B_2O_3 \end{array}\right.$$
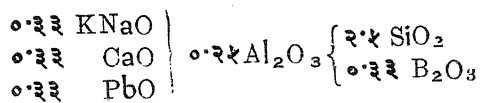
इस कक्षाके ऊँची किस्मके बर्तन अच्छी किस्मकी मिट्टी और कोरनिश पत्थरके मेलसे बनाये जाते हैं। इनमें मिट्टीकी मात्रा अपेक्षाकृत कम होती है और फ्लिंट और कोरनिश पत्थरकी मात्रायें अपेक्षाकृत अधिक होती हैं जिससे बर्तनोंका रंग अच्छा प्राप्त होता है। इन बर्तनों में पदार्थोंकी मात्रायें नीचे लिखी होती हैं—

गोला मिट्टी (Ball clay)	३० प्रतिशत
चीनी मिट्टी (China clay)	२० ”
फ्लिंट (Flint)	३३ ”
कोरनिश पत्थर (Cornish Stone)	१७ ”

बर्तनोंमें अधिक सफेदी लानेके लिए थोड़ा कोबाल्ट आक्साइड मिलाया जाता है।

इन अच्छे बर्तनोंके लिए कम घुलनशील वर्ग (Low Solubility) की ग्लेज़ इस्तेमाल होती है जिसमें सीसा लगभग १८ प्रतिशत आक्साइडके रूपमें रहता है। एक ऐसी ग्लेज़का सूत्र नीचे दिया जाता है :—

$$\left.\begin{array}{l} ०·०६६\ K_2O \\ ०·२६०\ Na_2O \\ ०·३८३\ CaO \\ ०·२८८\ PbO \end{array}\right\} ०·२१\ Al_2O_3 \left\{\begin{array}{l} २·८\ SiO_2 \\ ०·५\ \ B_2O_3 \end{array}\right.$$
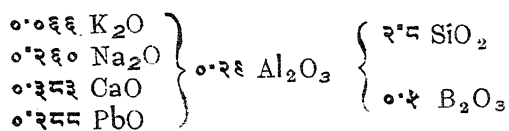
फर्श पर जड़ी जाने वाली सफेद टाइल (Tiles) में भी सीसेकी ग्लेज़ें इस्तेमाल होती है। टाइलमें फ्लिंटकी मात्रा बहुत अधिक होती हैं—लगभग ४५ प्रतिशत। ऐसे बर्तनोंकी ग्लेज़ोंमें सीसेकी मात्रा अधिक रखनकी पड़ती है—२५ प्रतिशतसे ४० प्रतिशत तक आक्साइडके रूपमें।

सीसा रहित ग्लेज़ (Leadless glazes)

सीसेका व्यवहार हानिकारक होनेके कारण विभिन्न सरकारोंने अपने अपने देशोंमें इसके इस्तेमालमें प्रतिबन्ध लगा रक्खा है। इस प्रतिबन्धके कारण लोगोंको बाध्य होकर सीसा रहित ग्लेज़ मालूम करनेके प्रयत्न करने पड़े तथा इस दिशामें खोज करनी पड़ी। इन प्रयत्नों और खोजोंके फलस्वरूप बहुतसे ऐसे ग्लेज़ मालूम हुये जिनमें सीसेका अंश बिल्कुल नहीं होता। काफी सन्तोषजनक होते हुये भी सीसे वाली ग्लेज़ोंकी तुलनामें ये बहुत घटिया हैं। इनमें वह चमक नहीं आती जो सीसे वाली ग्लेज़ोंमें होती है। इन ग्लेज़ोंमें एक दोष और भी है। इनके साथ बहुत तरहके रंग भी नहीं मिलाये जा सकते क्योंकि सीसेकी अनुपस्थितिमें बहुतसे रंगोंकी चमक नष्ट हो जाती है। अतः भिन्न भिन्न सुन्दर रंगोंके जितने ग्लेज़ सीसेकी उपस्थितिसे प्राप्त होते हैं इन ग्लेज़ोंमें नहीं प्राप्त होते।

सीसा रहित एक ग्लेज़ जो प्रारम्भमें मालूम की गई थी वह है।—

फेल्सपार	४७·०	प्रतिशत
सुहागा	३०·०	”
बालू	६·५	”
चीनी मिट्टी	५·५	प्रतिशत
शोरा	५·५	”
सोडा ऐश	५·५	”

इसकी पिसाई के समय ५ प्रतिशत सुहागा और मिलाया जाता है।

इस ग्लेज़ में सब से बड़ा दोष यह है कि यह सुन्दरता के लिए मिलाये गये रंगो की चमक बहुत अधिक खराब कर देता है। बोरिक एसिड की अधिक मात्रा होने के कारण इसका पानी के साथ अच्छा सस्पेनशन भी नहीं बनता और इस कारण बर्तन के 'बिस्कुट' को इसके सस्पेनशन में डुबा कर ग्लेज़ चढ़ाना अच्छे ढंग से नहीं हो पाता। इन दोषों के कारण इस ग्लेज़ का व्यवहार आज कल नहीं होता। आजकल जो ग्लेज़ व्यवहार में आती हैं

उनमें से एक नीचे दिया जाता है—

सुहागा	२७०·	घिसाई के समय २½ प्रतिशत चीनी मिट्टी और मिलाई जाती है।
फ़्लिंट	२०·०	
खड़िया (Whiting)	१२·७	
फेलसपार	२२·५	
चीनी मिट्टी	१८·५	

अन्य सीसा रहित ग्लेज़ जो विभिन्न नामों से प्रचलित हैं नीचे दी जाती है—

स्लिप ग्लेज़ (Slip glazes)—ये मुख्यतः उन कड़े बर्तनों (Stone ware) के लिए इस्तेमाल होती हैं जो केवल एक बार ही गरम किये जाते हैं। प्रायः ये केवल शीघ्र गलने वाली मिट्टी होती हैं जो गरम करने पर स्वयं ही एक चिकना ग्लेज़ देती हैं। मिट्टी के ग्लेज़ का सब से अच्छा उदाहरण 'अलबेनी स्लिप' (Albany slip) है जो अमेरिका में अधिक इस्तेमाल होता है। इसकी फुंकाई १२५०° श पर होती है और यह एक गहरे भूरे रंग का ग्लेज़ देता है। इस ग्लेज़ का सूत्र यह है—

०.१९५४ K_2O ⎫ ०.६०८ Al_2O_3
०·४५१२ CaO ⎬ ३.९६५ SiO_2
०·३५५४ MgO ⎭ ०·८१० Fe_2O_3
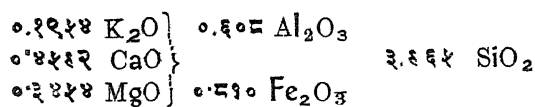
इस ग्लेज़ का रंग बहुत कार्यों के लिए ठीक नहीं है। अतः बर्तन बनाने वाले फेलसपार, खड़िया और फ़्लिंट तथा कभी कभी बेरियम आक्साइड के बने सफेद ग्लेज़ को इस्तेमाल करते हैं। एक ऐसे ग्लेज़ का सूत्र नीचे दिया जाता है—

०·३६ $KNaO$ ⎫ ⎧ ४·४१ SiO_2
०·४८ CaO ⎬ ०·५६ Al_2O_3 ⎨
०·१५ BaO ⎭ ⎩ ०·०३ B_2O_3
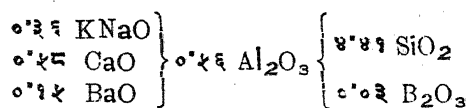
एक सरल सा स्लिप ग्लेज़ नीचे के पदार्थों को मिलाने से बन सकता है—

कोरनिश पत्थर	७५ प्रतिशत
फेलसपार	१५ "
खड़िया	१० "

इसकी फुंकाई १२५०° श पर की जाती है।

रंगीन ग्लेज़ (Coloured glazes)

इस कक्षा में वे ग्लेज़ हैं जिनमें रंग के लिए धातुओं की आक्साइड मिली रहती हैं। बर्तनों के 'बिस्कुट' के ऊपर कोई रंग पेंट करने से जो रंग प्राप्त होता है वह रंगीन ग्लेज़ के द्वारा प्राप्त रंग से भिन्न रहता है।

इन ग्लेज़ों का व्यवहार अधिकतर टाइल आदि में ही होता है; केवल कभी कभी ही कड़े बर्तनों (Stoneware) पर इस्तेमाल होता है। अच्छा रंग प्राप्त करने के लिए ग्लेज़ के साथ धातु की रंगीन आक्साइड को खूब अच्छी तरह महीन पीस कर एकसा कर लिया जाता है। अधिक अच्छा यह है कि निम्न दो चीज़ें अलग अलग तैयार की हुई रक्खी रहें—(१) एक साधारण पारदर्शक ग्लेज़ और (२) दूसरा एक रंगीन ग्लेज़ जिसमें रंगीन आक्साइड एक बड़ी मात्रा में हो। इन दोनों को भिन्न अनुपातों में मिलाने से भिन्न भिन्न चमक के रंग प्राप्त किये जा सकते हैं। इन दोनों को मिला कर ग्लेज़ के लिए व्यवहार में लाया जा सकता है।

मैट ग्लेज़ (Matt glazes)

कुछ दिनों से इन ग्लेज़ों का काफ़ी प्रचार हो गया है, क्योंकि ये बर्तनों को सुन्दर भी बनाते हैं। इनका व्यवहार अधिकतर टाइल तथा सौन्दर्य प्रदर्शन के हेतु इस्तेमाल में होने वाले बर्तनों में ही विशेष रूप से होता है। किसी पारदर्शक ग्लेज़ में कोई मैट का मिश्रण मिला देने से ये ग्लेज़ तैयार हो जाते हैं। मैट मिश्रण के पदार्थों का चुनाव तथा अनुपात इस बात पर निर्भर करता है कि किस रंग तथा किस चमक का ग्लेज़ बनाना है। एल्यूमिना, चूना या मैगनीशिया को कुछ जस्ते की आक्साइड के साथ ग्लेज़ में मिलाने से मैट प्रभाव प्राप्त हो जाता है। सीधे मौलिक पदार्थों के मेल से भी मैट ग्लेज़ बनाये जा सकते हैं। एक ऐसा ग्लेज़ नीचे दिया जाता है—

सीसे की लाल आक्साइड (Red lead)—४२.० प्रतिशत

खड़िया	(Whiting)	६.४	,,
फेल्सपार		१६.०	,,
चीनी मिट्टी		२१.५	,,
फ़्लिट		१०.६	,,
जस्ते की आक्साइड		३.५	,,

यह ग्लेज़ १०८०° श तापक्रम पर पकता है।

चूने का मैट ग्लेज़ किसी कम तापक्रम पर गलने वाले पारदर्शक ग्लेज़ में खड़िया की लगभग २५ प्रतिशत मात्रा मिलाने से प्राप्त हो जाता है। रंगीन मैट ग्लेज़ प्राप्त करने के लिए रंगीन ग्लेज़ों में मैट मिश्रण मिलाना पड़ता है। मैट मिश्रण का चुनाव काफ़ी महत्व रखता है। भिन्न भिन्न रंगों के साथ भिन्न भिन्न मैट मिश्रण व्यवहार में लाये जाते हैं।

ताप सहन शील ग्लेज़ (Fire clay glazes)

ताप सहन शील मिट्टी के बर्तनों (Fire clay) का रंग जो फुंकाई के बाद प्राप्त होता है साधारणतः हलका भूरा होता है। यदि इनपर कोई पारदर्शक ग्लेज़ चढ़ाया जाय तो मिट्टी का हलका रंग दिखलाई देता रहेगा। ताप सहन शील मिट्टीके सस्ते बर्तनों के लिये यह रंग हानिकर नहीं समझा जाता, किन्तु अच्छे बर्तनों के लिए लोग सफ़ेद रंग अधिक पसन्द करते हैं। रंग को ढकने के लिए एक मिश्रण का व्यवहार किया जाता है जिसे इनगोब (Engobe) कहते हैं। इसकी एक पर्त बर्तन की सतह और ग्लेज़ के बीच में रहती है। इनगोब बनाने की साधारण विधि यह है कि जिस बर्तन पर इनगोब देना हो उसी के पदार्थ के साथ किसी निश्चित अनुपात में सफ़ेद चीनी मिट्टी मिला कर मिश्रण तैयार किया जाय। अच्छे बर्तनों में इनगोब की कई पर्त दी जाती हैं जिससे ताप सहन शील मिट्टी का रंग बिल्कुल ढक जाय। जब कई पर्त दी जाती हैं तो प्रत्येक ऊपर की पर्त में सफेद मिट्टी की मात्रा बढ़ाते जाते हैं। इनगोब की अन्तिम ऊपरी पर्त के ऊपर ग्लेज़ चढ़ाया जाता है।

सजावट वाली ग्लेज़ (Decorative glazes)

ग्लेज़की बहुत सी किस्म सजावटके अर्थ उपयुक्त होती हैं। स्टूडियो या सजे हुये ड्राइंग रूम में रक्खे सुन्दर चीनी मिट्टी के बर्तनों को देख कर यह अनुमान किया जा सकता है कि रंगीन ग्लेज़ों को विभिन्न अनुपातों में मिलाने से कितने भाँति भाँति के रंगों की सुन्दर वस्तुयें तैयार की जा सकती हैं। सजावट वाली ग्लेज़ साधारणतः मैजोलिका (Majolica) किस्म की होती हैं और इनमें एक ग्लेज़ के ऊपर दूसरा ग्लेज़ चढ़ा कर तब फुंकाई की जाती है। रङ्ग विकरण का प्रदर्शन भी सरलता से किया जा सकता है। इसके लिए पहले स्पंज से एक रङ्ग बर्तन पर चढ़ा दिया जाता है और फिर एक दूसरे रङ्ग के ग्लेज़ के इमलशन में पदार्थ को डुबाकर फुंकाई करते हैं।

इस कक्षा के ग्लेज़ों में रवे वाले ग्लेज़ (Crystalline glazes) वैज्ञानिक दृष्टिसे महत्त्व के हैं। ये ग्लेज़ अति-संपृक्त घोल (Super-saturation) के सिद्धान्त पर आश्रित हैं। इन ग्लेज़ों में ऐसे पदार्थ डाले जाते हैं जो अति-संपृक्त घोल की अवस्था में रहते हैं और ठंढा पड़ने पर धीरे धीरे रवे के रूप में अलग हो जाते हैं। अभी तक केवल ज़िंक सिलीकेट के रवे ही ग्लेज़ में सफलता पूर्वक बन सके हैं। इसके लिये ग्लेज़ में ज़िंक आक्साइड मिलाया जाता है। एक ऐसे ग्लेज़ का नुसख़ा नीचे दिया जाता है—

सिलीका	५७.४६	प्रतिशत
एल्यूमिना	११.६८	,,
चूना (CaO)	६.७२	,,
सोडियम पोटैसियम आक्साइड	६.१२	,,
ज़िंक आक्साइड (ZnO)	१८.०	,,

रॉयल कोपिनहेगन फैक्टरी (Royal Copenhagen

Factory) ने इस प्रकार के ग्लेज़ बनाने में प्रसिद्धि प्राप्त की है। वहाँ ऐसा ग्लेज़ दो फुंकाई द्वारा प्राप्त किया जाता है। पहला ग्लेज़ कड़ा पोरसिलेन वाला चढ़ाया जाता है जिसकी फुंकाई १४५०° श पर होती है। इस ग्लेज़ के ऊपर फिर एक दूसरा नरम ग्लेज़ चढ़ाते हैं जिसमें ज़िंक आक्साइड की मात्रा बहुत अधिक होती है। इस दूसरे ग्लेज़ की फुंकाई १३५०° श पर की जाती है।

चटके ग्लेज़ (Crackled glazes)

ग्लेज़ों में एक बड़ा दोष यह होता है कि ये चटक जाते हैं और इसके कारण सतह पर धारियाँ दिखाई देने लगती हैं। यद्यपि यह एक दोष है फिर भी चीन और जापान में इसे जान बूझ कर बर्तनों में उन्हें सुन्दर बनाने के लिए उत्पन्न करना सबसे पहले प्रारम्भ हुआ। आजकल सजावट वाले बर्तनों में ऐसे ग्लेज़ काफ़ी मात्रा में व्यवहार होते हैं। साधारणतः ग्लेज़में सिलीका और क्षार की मात्रा बढ़ाने तथा चूना और मैगनीसिया की मात्रा घटाने से एक नरम पोरसिलेन के बर्तन पर बहुत सुन्दर चटकी धारियों वाला ग्लेज़ प्राप्त किया जा सकता है। एक ऐसा उदाहरण नीचे दिया जाता है जिसमें साधारण ग्लेज़ को चटके ग्लेज़ में बदला गया है—

साधारण ग्लेज़	चटका ग्लेज़
सिलीका—६६.१८	७१·४२
एल्यूमिना—१४·५५	११·८६
चूना (CaO)—१५·६०	२.८८
क्षार— ३.५५	५·८१

इन ग्लेज़ों की फुंकाई साधारण ग्लेज़ों की अपेक्षा अधिक ऊँचे तापक्रम पर की जाती है।

सुनहरे रवेदार ग्लेज़ (Adventurine glaze)

इस ग्लेज़ में सुनहरे चमकते हुए टुकड़े या रवे लाल ज़मीन पर दिखलाई देते हैं। यह भी सजावट के अर्थ उपयुक्त होता है। इसमें सीसा बिल्कुल नहीं होता। लोहे की आक्साइड लगभग २·५ प्रतिशत रहती है। इसी आक्साइड का अधिक भाग ठंढा होने पर रवे के रूप में अलग हो जाता है और यही सतह को सुनहरा चमकीला बनाता है।

चीनी लाल ग्लेज़ (China Red)

यह ग्लेज़ सब से पहले चीन में मालूम किया गया था इसीसे इसका नाम चीनी लाल ग्लेज़ पड़ा है। इसमें रङ्ग के लिए ताँबे की आक्साइड मिली रहती है। तैयार ग्लेज़ का रङ्ग ग्लेज़ की किस्म, उसके पदार्थों के मिश्रण के ढङ्ग तथा ग्लेज़ के इस्तेमाल करने की विधि और फुंकाई में आँच की किस्म पर निर्भर करता है। एक ऐसे ग्लेज़ का नुसखा नीचे दिया जाताहै

सिलीका	७३·६०	प्रतिशत
एल्यूमिना	७·०	,,
लोहे की आक्साइड	२.१	,,
चूना	७·३	,,
पोटैशियम आक्साइड	३·०	,,
सोडियम आक्साइड	६·१	,,
ताँबे की आक्साइड	४·६	,,

ऊपरके ग्लेज़को पोरसिलेन पर चढ़ा कर अनोषदीकारक (Reducing) आँच में फुंकाई करने पर बड़ा सुन्दर लाल ग्लेज़ प्राप्त होता है।

ग्लेज़ों की त्रुटियाँ (Defects of glazes)

ग्लेज़ों का वर्णन करने के बाद अब ग्लेज़ों में रह जाने वाले दोषों की चर्चा कर देना उचित है। बर्तनों पर चढ़े ग्लेज़ों में दो प्रकार के दोष देखे जाते हैं—(१) ग्लेज़ पर धारियाँ पड़ना (Crazing) और (२) ग्लेज़ का पत्तर के रूप में उतरना (Peeling)। पहले दोष में बर्तन की सतह पर चटक जाने की सी धारियों का एक जाल सा उत्पन्न हो जाता है। दूसरे दोष में ग्लेज़ पत्तर के या छिलके के रूप में उचलता दिखलाई देता है।

मोटे तौर से दोनों ही दोषों का कारण एक ही माना जाता है। जब बर्तन के पदार्थ और ग्लेज़ के पदार्थ के प्रसार-गुणक (Coefficient of expansion) में बहुत अन्तर रहता है तभी ये दोनों दोष उत्पन्न होते हैं। ठंढा होने पर यदि ग्लेज़ बर्तन के पदार्थ की अपेक्षा अधिक सिकुड़ता है तो बर्तन में चटकने की सी धारियाँ पड़ जाती हैं; यदि ग्लेज़ कम सिकुड़ता है और बर्तन का पदार्थ अधिक तो ग्लेज़ छिलके के रूप में उचलने लगता है। इन मुख्य कारणों के अतिरिक्त और भी कई छोटे कारण हैं जो इन दोषों के उत्पन्न होने में सहायक होते हैं।

धारियाँ पड़ने का दोष बर्तन के पदार्थ में सिलीका की मात्रा बढ़ाने से दूर हो जाता है और ग्लेज़ उचलनेका दोष सिलीका की मात्रा कम करने से। साधारण रीति से ग्लेज़ के पदार्थों के अनुपात में कोई अन्तर नहीं किया जाता; केवल बर्तन के मिश्रण में ही सिलीका की मात्रा आवश्यकतानुसार घटाई या बढ़ाई जाती है। यदि ग्लेज़ के पदार्थों की मात्राओं में अन्तर किया जाय तो ग्लेज़ के गुण में बहुत अन्तर आ जाने की सम्भावना रहती है।

इनेमेल (Enamels)

साधारणतः इनेमेल शब्दका प्रयोग काँचके ऊपर किसी रंगीन आक्साइडका लेप चढ़ाकर उसे अपारदर्शक बना देनेकी क्रियाके लिये होता है, किन्तु चीनी मिट्टीके कार्यमें इससे उन नरम ग्लेज़ोंका बोध होता है जिनमें रंगीन आक्साइड मिली रहती हैं और जो एक बारके ग्लेज़ किये हुये बर्तन पर सुन्दरताके लिए चढ़ाये जाते हैं। इन्हें साधारण भाषामें इनेमेल रंग कहते हैं।

इनेमेलमें दो चीज़ें रहनी आवश्यक हैं—एक तो रंग देने वाला पदार्थ और दूसरा गलाने वाला पदार्थ (Flux)। रंगके लिए या तो केवल धातुकी कोई रंगीन आक्साइड इस्तेमाल होती है या किसी धातुका रंगीन सिलीकेट, बोरेट या एल्यूमिनेट। गलाने वाले पदार्थका चुनाव इस बात पर निर्भर करता है कि कौन सी रंगीन आक्साइड ली गई है और बर्तन पर पहलेसे चढ़ा ग्लेज़ क्या है। इनेमेलका रंग इन दो बातों पर बहुत निर्भर करता है।

रंगीन आक्साइड और गलाने वाले पदार्थका चुनाव हो जानेके बाद इन दोनोंकी उचित मात्रायें एक साथ खूब महीन पीस कर मिला दी जाती हैं। इनेमेलकी फुँकाई लगभग ७६०—८४०° श के बीचमें होती है।

इनेमेलमें नीचे लिखे गुणोंका होना आवश्यक है—

(१) ग्लेज़के ऊपर मजबूतीसे लगा रह सके ;

(२) इतना गलनशील (Fusible) हो कि आसानीसे बर्तनके कुछ भीतर तक फैल जाय।

(३) इसका प्रसार-गुणक (Coefficient of expansion) बर्तनके पदार्थके अनुरूप हो जिससे ग्लेज़के उचलने तथा ग्लेज़में धारियाँ पड़ने आदिके दोष न आने पायें।

गलाने वाले पदार्थ (Flux) तथा कुछ तैयार इनेमेलके नुसख़े नीचे दिये जाते हैं—

गलाने वाला पदार्थ (Flux)

सीसेकी लाल आक्साइड	३०	भाग
सुहागा	२०	”
फ्लिंट	१०	”

सफेद इनेमेल

राँगेकी आक्साइड	२०	भाग
फेल्सपार	१०	”
गलाने वाला पदार्थ	२०	”

रंगीन इनेमेल भिन्न भिन्न रंगीन आक्साइडोंको उचित गलाने वाले पदार्थके साथ मिलानेसे बनते हैं। नीले इनेमेलके लिए कोबाल्ट, हरेके लिए ताँबा या क्रोमियम, भूरेके लिए मैंगनीज़, पीलेके लिए ऐन्टीमनी या यूरेनियम,

लालके लिए लोहा, कालेके लिए इरीडियम या कोबाल्ट और मैंगनीज़का मिश्रण इस्तेमाल होता है।

ग्लेज़के नीचे झलकने वाले रंग
(Under Glaze Colours)

ये रंग 'बिस्कुट' पर चढ़ाये जाते हैं और बादमें ग्लेज़ हो जाने पर ऊपरसे झलकते हैं। रंग इन बातों पर निर्भर करता है —

(१) भट्टी का तापक्रम

(२) भट्टी का वायुमंडल

(३) बर्तन के पदार्थ

(४) ग्लेज़

ग्लेज़ करनेके लिए चूँकि ऊँचे तापक्रम पर फुंकाई करनी पड़ती है इस कारण केवल थोड़ेसे रंग ही ऐसे हैं जो ग्लेज़के नीचे इस्तेमाल किये जा सकते हैं। रंग भी धातुओंकी रंगीन आक्साइड और गलाने वाले पदार्थके मेलसे तैयार किये जाते हैं।

एक नीले रंगका नुसखा नीचे दिया जाता है—

कोबाल्ट आक्साइड १ भाग, जस्तेकी आक्साइड ४ भाग और फ्लिंट २ भाग मिलाकर लगभग १२५०° श पर गरम किया जाता है और फिर महीन पीस कर रख लिया जाता है। इस चूर्ण में नीचे लिखा गलाने वाला पदार्थ भिन्न अनुपातोंमें मिलाकर कई तरहके रंग प्राप्त किये जाते हैं—

गलाने वाला पदार्थ (Flux)

फ्लिंट	१२	भाग
कोरनिश पत्थर	१२	"
खड़िया	५	"
सुहागा	४	"

मनुष्यके शरीरमें रक्त परिभ्रमण और उसकी उपयोगिता

ले० श्री जीवन प्रकाश, बी० एस-सी०

रुधिर जीवनका रस है। जब तक शरीरमें रुधिरका संचार है तब ही तक जीवन है। अतः रुधिर और उससे सम्पर्क रखने वाले अँगों की देख भाल अत्यन्त आवश्यक है।

रुधिर लाल रंगका एक तरल पदार्थ है। यदि सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा देखा जायतो मालूम होगा कि साधारण दृष्टि हीसे यह लाल रंगका दिखलाई पड़ता है; वास्तवमें यह पीले रंगका एक तरल पदार्थ है जिसे रक्तवारि या प्लाज़मा (Plasma) कहते हैं। इस रक्तवारिमें लाल और सफ़ेद रंगों के छोटे छोटे कण (Corpuscles) होते हैं। लालकण गोल चपटे (disc) आकारके होते हैं। ये बीचमें पतले तथा चारों ओर मोटे होते हैं। इनमें हीमोग्लोबिन (Hœmoglobin) नामक एक पदार्थ होता है जो हमारे शरीरकी भलाईके लिए अपने अन्दर ऑक्सीजन (Oxygen) खूब मात्रामें एकत्र कर लेता है। श्वेत कण लाल कणोंकी अपेक्षा बड़े होते हैं पर इनका कोई निश्चित रूप नहीं होता। ये संख्यामें भी लाल कणोंकी अपेक्षा कम होते हैं। इनकी सबसे बड़ी उपयोगिता यह है कि ये बाहरी कीटाणुओं को, जो किसी प्रकार शरीरमें पहुँच जाते हैं, नष्ट कर देते हैं। इनसे हमारे जीवनकी रक्षामें सहायता मिलती है।

प्लाज़मा अपने साथ शरीरके सब अंगोंको भोजन पहुँचाता है। उन स्थानों पर जो अशुद्ध पदार्थ (Waste product) रहता है उसे अपने साथ लाकर विसर्जन संस्थानके विभिन्न अंगों (Excretory organs) तक पहुँचाता है।

यह तो हुआ रक्तका संगठन (Composition) और उसकी उपयोगिता। अब हमें यह भी जानना चाहिए कि रुधिर शरीर के किस अंगमें रहता है और किस प्रकार यह हमारे समस्त शरीर में पहुँच कर शरीर के विभिन्न अंगों को भोजन पहुँचाता है तथा वहाँ की गन्दगी दूर करता है।

रक्त संस्थानका मुख्य अंग हृदय है। हम जानते हैं कि हमारी पसलियाँ आगे की ओर छाती की हड्डीसे तथा पीछेकी ओर रीढ़ की हड्डीकी कशेरूकाओंसे मिलने पर एक सुरक्षित कोष्ठ बनाती हैं। इस सुरक्षित स्थानमें छाती की हड्डी के पीछेके मध्य भागमें हृदय स्थित है। बीच में होते हुए भी यह बाईं ओर कुछ अधिक झुका हुआ है।

हृदयके अतिरिक्त इस स्थान पर छाती की हड्डीके दोनों ओर हृदय की अपेक्षा कुछ ऊपर दो फेफड़े (Lungs) स्थित हैं।

हृदय का आकार कुछ कुछ नाशपाती का सा होता है। इसका चौड़ा भाग ऊपर की ओर तथा पतला भाग नीचेकी ओर रहता हैं। हृदय दोहरी झिल्लीके बने थैले में, जो पेरीकारडियम (Pericardium) कहलाता है, सुरक्षित रहता है। इस दोहरी झिल्लीके बीचमें एक प्रकारका तरल पदार्थ सदा मौजूद रहता है जो हृदयकी हर प्रकारके झटके व

चोट आदि से रक्षा करता है।

हृदय लम्बाईसे एक झिल्ली द्वारा दो भागोंमें विभक्त है। वह झिल्ली पतली पर बड़ी मज़बूत होती है और किसी भी प्रकार रुधिर के धक्के से टूटती नहीं। इस झिल्ली के बाईं ओर शुद्ध रुधिर और दाईं ओर अशुद्ध रुधिर रहता है। बाईं ओर का शुद्ध रक्त वाला कोष्ट एक कड़ी झिल्ली द्वारा फिर दो भागों में विभक्त होता है। इस झिल्ली के बीचमें एक कपाट (Valve) बना रहता है। इस मार्गसे ऊपरके भागका रुधिर नीचे के भाग में आ सकता है, पर नीचे का रुधिर ऊपर नहीं जा सकता। इन कपाटों (Valves) की विशेषता ही यह है कि ये एक ओर ही खुलते हैं, और जिस ओर ये खुलते हैं उस ओर ही इनसे होकर कोई वस्तु निकल सकती है, दूसरी ओर नहीं। यही कारण है कि नीचेके कोष्टका रुधिर कोष्ट के भर जाने पर भी ऊपरकी ओर वापस नहीं जा सकता। ऊपर का कोष्ट ऑरिकिल (Auricle) तथा नीचे का वेन्ट्रिकिल (Ventricle) कहलाता है। इसी प्रकार दाहिनी ओर का कोष्ट भी दो भागोंमें बँटा है। इसमें भी ऊपर का कोष्ट ऑरिकिल तथा नीचे का वेन्ट्रिकिल कहलाता है। दोनों ओर ऑरिकिल से रुधिर वेन्ट्रिकिल में जा सकता है, इसके विपरीत नहीं। इस प्रकार हृदय के चार भाग हुए, बांया ऑरिकिल, बांया वेन्ट्रिकिल, दायां ऑरिकिल, दायां वेन्ट्रिकिल।

शरीर भर में भ्रमण करने के बाद जब रुधिर गंदा हो जाता है तो हृदय के नीचे के भाग का रक्त इन्फीरियर वेना केवा (Inferior Vena Cava) द्वारा तथा हृदय के ऊपरी भाग और बांहों का अशुद्ध रक्त सुपीरियर वेना केवा (Superior Vena Cava) द्वारा दाहिने ऑरिकिलमें पहुँचता है। इस प्रकार इन दो मुख्य शिराओं (Veins) द्वारा [illegible]र समस्त अशुद्ध रक्त दाहिने आरिकिल में एक[illegible]ता है। जब यह भर जाता है तो इसके तथा दाहिने वेन्ट्रिकिलके बीचका कपाट खुल जाता है और रुधिर उसमें भरने लगता है। दाहिने ऑरिकिलके भरने पर भी रुधिर इन्फीरियर तथा सुपीरियर वेना केवा में वापस नहीं जा सकता क्योंकि शरीर की समस्त धमनियों (Arteries) तथा शिराओंमें ऐसे कपाट (Valve) लगे रहते हैं जिनसे रुधिर का प्रवाह एक ही ओर हो पाता है। रक्त परिभ्रमणकी क्रियामें हृदयकी संकोचन तथा विमोचनकी क्रिया से सहायता मिलती है। जब दाहिना ऑरिकिल तथा दाहिना वेन्ट्रिकिल दोनों ही भर जाते हैं, तब हृदयके संकोचनके साथ दाहिने वेन्ट्रिकिल से अशुद्ध रक्त पलमानेरी धमनी (Pulmanory artery) द्वारा बाहर निकलता है। हृदय से कुछ आगे चलने पर यह पलमानेरी धमनी दो भागों में विभक्त हो जाती है। एक शाखा दाहिने फेफड़ेमें तथा दूसरी बायें फेफड़े में रुधिर पहुँचाती है।

फेफड़ोंमें पहुँच कर रुधिर वहाँ की छोटी छोटी नलियों तथा केशिकाओं (Capillaries) में पहुँचता हो है। श्वास के साथ आई हुई वायु से जब फेफड़ों में रुधिर का साथ होता है तो वह वायु की ऑक्सिजन अपने अन्दर ले लेता है। ऑक्सिजन के प्रभाव से (Oxidation) अशुद्ध रक्त तो शुद्ध हो जाता है। पर उसकी गन्दगी पाकर वायु अशुद्ध हो जाती है। यह गन्दी वायु श्वास द्वारा शरीरके बाहर चली जाती है। शुद्ध रक्त एकत्र होकर पलमानेरी शिरा (Pulmanory Vein) द्वारा बायें ऑरिकिल में पहुँचता है। बायें ऑरिकिल के भर जाने पर इसके और बाये वेन्ट्रिकिल के बीच का कपाट खुल जाता है और रुधिर उसमें भरने लगता है। बायें वेन्ट्रिकिलसे मूल धमनी (Aorta) द्वारा शुद्ध रक्त हृदय के बाहर आता है।

कुछ आगे बढ़ कर मूल धमनी (Aorta) से शाखाऐं प्रशाखाऐं निकलती हैं और यह सारे शरीर में शुद्ध रक्त

पहुँचाती हैं। हृदय से कुछ ही आगे बढ़ने पर मूल धमनी दो भागों में बंट जाती है, एक भाग ऊपर की ओर और दूसरा नीचे की ओर जाता है। ऊपर की ओर जाने वाला भाग थोड़ी दूर बाद फिर तीन शाखाओं में बँट जाता है। दो शाखाऐं दोनों बाँहोंमें जाती हैं और एक सिर की ओर। ये धमनियें बाँहों व सिर में पहुँच कर शाखा-प्रशाखाओं में बँटती बँटती बिल्कुल पतली पतली हो जाती हैं। यह पतली नलियाँ केशिकायें (Capillaries) कहलाती हैं।

मूलधमनी की जो शाखा नीचे की ओर जाती है वह भी शाखा-प्रशाखाओं में बँट कर समस्त धड़ को रुधिर पहुँचाती है। इसी की एक एक शाखा दोनों टाँगों में जाती है। यह सब धमनियें भी छोटी छोटी केशिकाओं में विभाजित होकर शरीर के प्रत्येक भाग में फैली हुई हैं। समस्त शरीर में इन केशिकाओं का जाल सा बिछा हुआ है।

भ्रमण करते समय रुधिर शरीर के अंगों की गन्दगी अपने अन्दर ले लेता है और उन अंगों को भोजन देता है। इस प्रकार गंदगी एकत्र करते हुए रुधिर अशुद्ध हो जाता है, और ये अशुद्ध रक्त वाली नलियाँ शिरायें (Veins) कहलाती हैं। ये शिरायें हृदय की ओर अशुद्ध रक्त ले जाती हैं। हृदय के पास पहुँचते पहुँचते निम्न भाग की सब शिरायें मिल कर एक शिरा बन जाती है जो इन्फीरियर वेनाकेवा है तथा ऊपरके भागकी शिरायें एक होने पर सुपीरियर वेनाकेवा कहलाती है। इन दोनोंसे फिर अशुद्ध रक्त हृदयके दाहिने ऑरिकलमें पहुँचता है। इस प्रकार रक्त परिभ्रमण का एक चक्र पूरा होता है।

रक्तपरिभ्रमण का क्रम सदा अटूट गति से चलता रहता है, यह नहीं कि एक क्रिया के होते समय दूसरी क्रिया रुकी रहे। रक्त का शरीर में भ्रमण, उसका हृदय में पहुँचते रहना, उसकी फेफड़ों में सफ़ाई होना, फिर फेफड़ोंसे वापस आकर मूलधमनी द्वारा शरीर भरमें पहुँचते रहना, सब कार्य अपने अपने स्थान पर सदा अविरामगति से होते रहते हैं।

शिरा और धमनी के रक्त में अन्तर रहता है। धमनी का रक्त शुद्ध होने से लाल और चमकीला होता है तथा झटकेके साथ बहता है जैसे किसी फव्वारे से जल का प्रवाह हो रहा हो। इनमें ऐसे कपाट होते हैं कि रुधिर सदा हृदय से विरुद्ध दिशा की ओर ही बहता है। शिराओं में रुधिर धीरे धीरे शांति से प्रवाहित होता रहता है। इनमें स्थित कपाटों की सहायता से रुधिर सदा हृदय की ही ओर बहता है। शिराओं का रक्त धमनियों के रक्त की अपेक्षा गाढ़ा और गहरे लाल रंग का होता है तथा इसमें चमक नहीं होती। जब किसी घाव से रक्त का प्रवाह होता है तो इन ही बातोंसे हम पहचानते हैं कि शिरा कटी है या धमनी; तथा फिर उसी के अनुसार उपचार करते हैं।

नाड़ी स्पन्दन—जिन स्थानों पर धमनियाँ त्वचा के इतने समीप हैं कि उन्हें अनुभव किया जा सकता है। नाड़ी स्पन्दन स्थान (Pressure points) कहलाते हैं। इन स्थलों पर अंगुली दबाकर रखनेसे हम उस स्थलकी धमनीमें होने वाले रुधिरके प्रवाह को अनुभव कर सकते हैं। हृदयसे रुधिर झटके के साथ निकलता है जैसे पम्प (Pump) करने पर कोई चीज़ निकलती है। इसी से धमनियों में भी रुधिर उसी ढंग से बहता है और इसी से धमनी ऊपर नीचे उठती बैठती मालूम पड़ती है। इन स्थानों पर हाथ रख कर धमनियों की इस गति को गिना जा सकता है। यह गति एक स्वस्थ मनुष्य में १ मिनिट में ७२ बार होती है। इसके कम या अधिक होने का सम्बन्ध शरीर की अस्वस्थ दशा से रहता है। इसी से डाक्टर लोग इसे गिन कर मनुष्य के स्वास्थ्य और उसके हृदयकी गति का अनुमान लगा लेते हैं। इसी को नब्ज़ या नाड़ी (Pulse) गिनना कहते हैं। हृदय पर हाथ रखने से भी इसी प्रकार की गति, धड़कन, मालूम होती है।

नाड़ी स्पन्द अनुभव करने के स्थान हमारे शरीर में १४ हैं।

बाइक्रोमेट उद्योग

(लेखक—वि० सा० विद्यालंकार)

गत १९१४-१८ के महायुद्धमें भारतमें भिन्न भिन्न उद्योग पनपे, परन्तु सरकारी संरक्षणके अभावसे और विदेशी प्रतियोगितामें न टिक सकनेके कारण अधिकांश उद्योग लड़ाईकी समाप्तिके साथ नष्ट हो गये। इस बारके महायुद्धमें भी यहाँ भिन्न भिन्न नये उद्योगोंने सिर उठाया है। पिछले अनुभवके आधार पर इस बार सरकारसे उद्योगोंको संरक्षण देनेकी माँग की जा रही है। इन नये पनपे हुए उद्योगोंमें एक बाइक्रोमेट उद्योग भी है। इस उद्योगको पनपानेमें सरकारी विभागोंने निजू कम्पनियोंकी सहायता की है, यह सत्य है। परन्तु भारत सरकार एक ओर तो इस उद्योगको सहायता देनेका प्रचार करती रही, दूसरी ओर १९४२ से १९४४ तक २५०० टनसे भी अधिक बाइक्रोमेट भारतमें बाहरसे मँगवाया गया। बादमें इसका भारतीय पूँजीपतियोंने घोर विरोध किया।

युद्धसे पूर्व सम्पूर्ण बिक्रोमित विदेशोंसे ही यहाँ आता था। आश्चर्यजनक बात यह थी कि इस पदार्थको बनानेके सभी साधन यहाँ उपलब्ध होते हुए भी इसे यहाँ नहीं बनाया गया था। इसका मुख्य कच्चा पदार्थ क्रोम ओर (Chrome ore) खनिज पदार्थ है। इसका प्रतिवर्ष भारतवर्षसे २६००० टनसे २८००० टन तक विदेशोंको निर्यात होता है। इस खनिजसे विदेशोंसे बिक्रोमित बनकर यहाँ लौटता है। १९३३ से १९३९ तक अमेरिका, जापान, जर्मनी तथा ब्रिटिश राज्य समूहसे प्रतिवर्ष लगभग ५८७० हण्डरवेट पोटाशियम बिक्रोमित और १८५०० हण्डरवेट सोडियम बिक्रोमित आया, जिसका लगभग मूल्य क्रमशः १,५२,६६०, रुपये तथा ४,२२,३६५ रुपये था।

जब यहाँ प्रारम्भमें बिक्रोमित बनाया गया तो अनुभव किया गया कि जितनी मात्रामें कच्चे पदार्थोंका उपयोग किया जाता था, उसके अनुसार प्राप्त पदार्थ थोड़ा होता था और इस कारण उसकी लागत बहुत अधिक होती थी। तब इस पर यहाँ अनुसन्धान कार्य आरम्भ किया गया और देखा गया कि बहुधा भट्टियोंकी खराबीके कारण ही ऐसा होता है। इस ओर सबसे अधिक ध्यान बम्बई गवर्नमेन्टके औद्योगिक विभागके वैज्ञानिक डा० दामलेने दिया। इसकी सम्पूर्ण विधिको उन्नत करनेका सर्वाधिक श्रेय इन्हीं सज्जनको है। इन्होंने भट्टियोंमें सुधार करवाये तथा सम्पूर्ण विधिमें बहुतेरे संशोधन किये। इन सब कारणसे अब हम इस स्थितिमें पहुँच गये हैं कि हमारा यह उद्योग व्यावसायिक ढंगसे पनप सकता है। इसके निर्माणमें जहाँ चतुर वैज्ञानिकोंकी देख-रेखकी आवश्यकता है वहाँ कच्चे पदार्थोंकी ओर विशेष ध्यान देना आवश्यक है।

कच्चे पदार्थ—बिक्रोमित बनानेके लिये निम्न कच्चे पदार्थोंकी आवश्यकता होती है।

१ क्रोम खनिज—यह खनिज पदार्थ भारतमें उड़ीसा, बिहार, मद्रास और बलूचिस्तानमें पाया जाता है। बलूचिस्तानका खनिज संसारमें सम्भवतः सबसे अधिक अच्छा समझा जाता है। इसका औसत विश्लेषण निम्न प्रकार होता है :—

$क्र_2$ $ओ_3$	(Cr_2O_3)	५६.४ प्रतिशत
लो ओ	(FeO)	१२.५ ”
मैं ओ	(MgO)	१४.७ ”

स्फ$_2$ ओ$_3$	($Al_2 O_3$)	११.२	"
शै ओ$_2$	($Si O_2$)	११.	"

२. **चूना**—चूनेका पत्थर भारतमें बहुत स्थानों पर पाया जाता है। चूनेकी उपयोगिता इसमें उपस्थित खट ओषिद (Calcium oxide) के कारण होती है। इसकी मात्रा जितनी अधिक होगी उतना ही चूना अधिक उपयोगी होगा। सोडियम विक्रोमित बनानेमें चूनेका उपयोग इस लिये होता है कि क्रोम खनिज सोडियम कर्बनितके साथ मिलकर द्रवित (Fuse) होने पर डलेका रूप न बना ले। इसका औसत विश्लेषण इस प्रकारसे है :—

ख ओ	($Ca O$)	६२.०	प्रतिशत
मै ओ	($Mg O$)	१.६	"
शै ओ$_2$	($Si O_2$)	३.८	"
लो$_2$ ओ$_3$	($Fe_2 O_3$)	०.६	"
ज्वलन पर भारमें कमी		३.०	"

३. सोडा ऐश—इसमें सोडियम कर्बनित (Sodium Carbonate) नामक लवण रहता है। हमारे देशकी कई कम्पनियाँ आजकल इसे तैयार कर रही हैं।

४. गन्धकाम्ल—(Sulphuric acid) इस अम्ल के भी अब स्थान स्थान पर कारखाने खुल गये हैं।

५. पोटाशियम हरिद-(Potassium Chloride) अपने देशमें पर्याप्त तैयार होता है।

निर्माण विधि—प्रत्यावर्तन भट्टी (Reverberatory furnace) में क्रोम खनिज, सोड़ा ऐश, और चूनेको मिला कर १०५०° से ११००° शतांश तापमान पर गरम करते हैं। इस क्रियामें चूना स्वयं कोई भाग नहीं लेता। केवल मात्र पदार्थके गरम होकर द्रवित होने पर उसे डलेके रूपमें परिवर्त्तित नहीं होने देता तथा सम्पूर्ण पदार्थको सछिद्र (Porous) बनाये रखता है जिससे उपचयन (Oxidation) अच्छा होता है। इस प्रकार जलमें घुलनशील सोडियम क्रोमित (Sodium chromate) पदार्थ तैयार हो जाता है। क्रिया निम्न प्रकारसे होती है :—

४ लो ओ क$_2$ ओ$_3$ + ८ सो$_2$ क ओ$_3$ + ७ ओ$_2$
→ २ लो$_2$ ओ$_3$ + ८ सो$_2$ क ओ$_4$ + ८ क ओ$_2$

इस प्राप्त पदार्थका गरम पानीके साथ आटोक्लोव में निष्कर्षण (Extraction) करते हैं। सोडियम क्रोमित तो पानीमें घुल जाता है, पर लोहिक ओषिद (Ferric oxide) तथा अन्य अशुद्धियाँ पीछे रह जाती हैं। इस घोलको छानकर इसमें गन्धकाम्ल मिलाते हैं। अम्लकी क्रियासे सोडियम क्रोमित सोडियम बिक्रोमित (Sodium Bichromate) में परिवर्त्तित हो जाता है।

३ सो$_2$ क ओ$_4$ + उ$_2$ ग ओ$_4$ → सो$_2$ क$_2$ ओ$_7$
+ सो$_2$ ग ओ$_4$ + उ$_2$ ओ

सोडियम गन्धित (Sodium Sulphate) और सोडियम क्रोमितको केवल मात्र स्फटिकी करण द्वारा अलग कर सकना सम्भव नहीं है, क्योंकि दोनों लवण (Salts) समावयवी (Isomorphous) हैं, इस लिये क्रोमितको बिक्रोमितमें बदलनेकी आवश्यकता होती है।

अम्लीकरणके बाद प्राप्त घोलको ६७° बामेकी घनता (Density) होने तक गरम किया जाता है तथा कुछ देर तक स्थिर छोड़ दिया जाता है। इस बीच सोडियम गन्धित आदि अशुद्धियाँ नीचे बैठ जाती हैं। आवश्यकतानुसार इसे और भी गरम किया जा सकता है। यदि स्फटिकी करण प्रारम्भ होनेसे पूर्व छान लिया जाय तो अच्छा है। स्फटिकोंको केन्द्रापसारक यन्त्र (Centifugal Machine) द्वारा पृथक कर लिया जाता है तथा लोहेके ड्रमोंमें भर दिया जाता है।

पोटाशियम विक्रोमित (Potassium Bichromate) ऊपर प्राप्त अम्लीकृत सोडियम विक्रोमितके सान्द्र

गरम घोलमें पोटाशियम हरिद मिलाया जाता है, इस बीच घोल को निरन्तर हिलाते रहते हैं। पोटाशियम हरिद थोड़ी सी अधिक मात्रा में मिलाया जाता है। पोटाशियम द्विक्रोमित सोडियम लवण की अपेक्षा कम घुलनशील होनेसे स्फटिक रूपमें पृथक् हो जायेगा। इसे केन्द्रापसारक यन्त्र द्वारा पृथक् कर लेते हैं।

$$सो_2 क्र_2 ओ_7 + २ पोह \rightarrow पो_2 क्र_2 ओ_7 + २ सोह$$

उपर्युक्त विधि से प्राप्त पदार्थ की शुद्धताका विश्लेषण द्वारा अवश्य पता लगाना चाहिये, तथा गणनाओं द्वारा यह भी मालूम कर लेना चाहिये कि खनिज पदार्थ पूर्ण रूपसे सोडियम क्रोमितमें परिवर्त्तित हो गया था या नहीं? यदि यह प्रतीत हो कि १ प्रतिशत खनिज पदार्थ भी अपरिवर्त्तित रूप में रह गया है तो अपनी सम्पूर्ण क्रियाका सावधानीसे अन्वेषण करना आवश्यकहै। सम्भव हो सकता है कि खनिज पदार्थ अच्छा न हो, अथवा उसका परिमाण ठीक न लिया गया हो। यह भी सम्भव हो सकता है कि भट्टीकी बनावट ठीक न होनेके कारण तापमान ठीक न रहा हो। इसलिये भट्टी की बनावट पर विशेष रूपसे ध्यान देना चाहिये। यदि भट्टी में खनिज आदिके मिश्रण को प्रति १५ मिनट बाद लोहेके छड़ोंसे अच्छी प्रकार हिलाते रहें तो उपचयन अधिक अच्छा होगा।

यह ध्यान रखना चाहिये कि द्विक्रोमितका त्वचा पर बहुत प्रभाव होता है, इसलिये इस कामको करने वालों-को दस्ताने दे देने चाहिये तथा यथासम्भव सभी प्रक्रियाएँ यान्त्रिक रखनी चाहिये। लगातार द्विक्रोमित भट्टियों पर काम करनेसे फेफड़ोंको भी हानि होती है।

उपयोग—द्विक्रोमितका उपयोग चमड़ों के कारखानों-में, पिगमेण्ट (Pigment)—लैमनक्रोम, क्रोमयैलो आदि—रूपमें, रंगाई आदिमें होता है।

इस समय हमारे देशमें इसका प्रति वर्ष २८०० से ३००० टन तक उत्पादन है, जो कि हमारे देशकी माँग के लिये पर्याप्त है। इस समय ६८ से ७५ रुपये प्रति हन्डरवेटकी लागत आती है। यदि सरकारने इस व्यवसाय को संरक्षण देकर पनपने दिया तो आशा है कि इसकी लागत ३५ से ३८ रुपया प्रति हण्डरवेट हो जायेगी।

जितने तथ्योंका हम वर्णन कर चुके हैं उनकी व्याख्या अभी तक पूर्ण नहीं हुई है। सबसे अधिक उल्लेखनीय बात यह है कि लगभग २०० दिन आवर्त्तकालके तारे द्रुतगतिवाले होते हैं और आकाशके एक विशेष स्थानमें पाये जाते हैं। इससे मालूम होता है कि अतिकालिक नक्षत्र दो प्रकारके हो सकते हैं। मेरिलके मतानुसार यह बात तारोंके विकासके दृष्टिकोणसे तथ्यपूर्ण है।

अतिकालिक तारोंके रश्मिचित्रमें उज्ज्वल रेखाओंका रहना अतिशय रहस्यपूर्ण है। इनमेंसे हाइड्रोजन गैसकी रेखायें बहुत उज्ज्वल हैं। मेरिलके मतानुसार तारोंकी सतह इतनी गरम नहीं है कि उज्ज्वल रेखायें उत्पन्न कर सकें। इस विषयमें कई मत हैं, परन्तु इस समस्याका समाधान अभी तक नहीं हुआ है।

कुछ अतिकालिक नक्षत्र ऐसे हैं जो आकाशमें अकेले स्थित नहीं हैं। एक्स ओफिउकाइ (X Ophiuchi) नामका नक्षत्र एक दोहरे तारे (double star) में दूसरा तारा है, जिनका एक दूसरेसे अंतर ०·२२ सेकेंड है। दूसरा तारा संभवतः परिवर्तनशील नहीं है।

आर एक्वाराइ (R Aquarii) नामका तारा और भी अनोखा (Typical) है जिसके रश्मिचित्रमें तीन तारे पाये जाते हैं—(१) अतिकालिक नक्षत्र, (२) नैहारिक (nebular) रश्मिचित्र और (३) अति उत्तप्त नीला तारा।

"मीरा"का भी एक सहचर है, अतिकालिक तारोंका सहचर-संबद्ध होना, कोई असाधारण बात नहीं है। कई ऐसे तारे हैं जिनके उच्चतापमात्राके सहचर हैं। परिवर्तनशील नक्षत्रकी नीहारिकामें स्थिति भी कोई असाधारण बात नहीं है। परन्तु यदि नीहारिकामें कोई उत्तप्त तारा स्थित न हो तो वह सहजमें नहीं दीख सकता।

कई अतिकालिक नक्षत्रोंके सहचर-संबद्ध होनेसे यह प्रतीत होता है कि यह बात बहुत साधारण है और यह मत प्रस्तुत किया गया है कि उच्चतापमात्राके तारेके निकट रहनेसे अतिकालिक नक्षत्रोंमें उज्ज्वल रेखाओंका उद्भव होता है। परन्तु मेरिलके मतानुसार कुछ अतिकालिक नक्षत्रोंके रश्मिचित्रकी निम्नतम कोटिसे किसी भी सहचरका पास होना प्रतीत नहीं होता।

प्रकाशवक्रके विषयमें हम जो कुछ जानते हैं वह अधिकतर प्रत्यक्ष अवलोकनसे ही जाना गया है। हार्वार्ड वेधशालामें जो अतिकालिक नक्षत्रोंके प्रकाशवक्रोंका संग्रह है उसका विषय चार-पांच सौ अतिकालिक तारे हैं जिनका अवलोकन "अमेरिकन एसोसियेशन आव वेरियेब्ल स्टार अवज़र्वर्स" ने किया है। सभी अतिकालिक तारे निर्धारित समय पर उच्चतम कोटिकी उज्ज्वलताको प्राप्त नहीं होते और प्रकाशवक्र बार-बार एक ही तरह नहीं होता।

कई अतिकालिक नक्षत्रोंके प्रकाशवक्रमें कूबड़ (Humps) भी दीखते हैं। इससे उन अतिकालिक नक्षत्रोंका, जिनके प्रकाशवक्रमें कूबड़ हो, एक विभिन्न वर्ग ही स्थिर हुआ है।

हम कह चुके हैं कि अतिकालिक नक्षत्रोंका प्रकाशवक्र एकसा नहीं रहता है। अतिकालिक नक्षत्रोंके आवर्त्तकालमें परिवर्तन होता है या नहीं इस विषय पर बहुत गवेषणा हो चुकी है। पहले यह प्रतीत हुआ था कि कुछ अतिकालिक नक्षत्रोंके आवर्त्तकाल संभवतः बदल रहे हैं। परन्तु अब स्टर्न और कैंवेल (Sterne, Campbell) के मतानुसार यह सिद्धांत है कि ऐसे तारे विरले हैं जिनका आवर्त्तकाल सचमुच बदलता है। दो तारे अवश्य हैं, जिनका नाम आर हाइड्री (R Hydrae) और आर एक्ुइली है, जिनके आवर्त्तकाल बदल रहे हैं।

यह बात ध्यानमें रखने योग्य है कि परिवर्तनशील नक्षत्र भीमकाय वर्गके होते हैं, अर्थात् बहुत बड़े, उज्ज्वल

तारे होते हैं और उनके सतहका तापक्रम कम होता है। इनका घनत्व बहुत थोड़ा होता है। एक वामन तारेको बहुत बड़ा बना दीजिये और वह एक भीमकाय तारेकी नक़ल करेगा। परिवर्तनशील नक्षत्रोंका घनत्व अधिक नहीं हो सकता। भीमकाय तारोंमें भी, जो तारा जितना अधिक बड़ा है वह उतना अधिक परिवतनशील भी है। इससे मालूम होता है कि परिवतनशील होनेके लिये तारेका घनत्व कम होना चाहिये। घनत्व कम होनेसे तारेके परिवतनशील होनेकी संभावना केवल बढ़ती है—अनेक कम घनत्ववाले तारे हैं जो परिवतनशील नहीं हैं। परिवतनशीलता फूले हुए तारोंका एक रोग है। इस रोगका प्राबल्य तारोंके आयतनके अनुपातमें बढ़ता है।

यहाँ हम परिवर्तनशील तारों पर विभिन्न मतोंका थोड़ा-सा उल्लेख करेंगे। यह बात हमको पहले ही मान लेनी चाहिये कि ज्योतिर्विद अल्पाधिक अवश्य जानते हैं कि तारेमें परिवर्तनशीलता किस ढंगकी होती है—किन्तु तारे क्यों घटते-बढ़ते हैं इसका ज्ञान उन्हें बहुत ही थोड़ा है। यों हम तारोंके विकासके विषयको बहुत ही अल्प जानते हैं। इसलिये परिवतनशील नक्षत्रके अन्दर क्या होता है इसकी कल्पना हमारे लिये बहुत ही आवश्यक है, यद्यपि हमें इस समय यह मालूम न हो पावे कि परिवतन किस कारण आरम्भ हुआ और किस लिये अब तक स्थिर है।

पुराने मतोंमें अधिकांश इस भ्रांत मतका पोषण करते हैं कि घटने-बढ़नेवाले तारे गैस या तरल पदार्थ हैं। परन्तु हम जानते हैं कि यह तारे बहुत कम घनत्वके गैस (Gas) के बने हुये हैं। इसलिये उन सब मतोंका उल्लेख हम नहीं करेंगे। केवल ऐतिहासिक दृष्टिकोणसे रहस्यपूर्ण होनेके कारण दो एक पुराने मतोंका हम यहाँ उल्लेख करेंगे। सर विलियम हर्शेल कहते हैं 'मापर्टियस' (Maupertius) परिवर्तनशील नक्षत्रोंका यह कारण निर्देश करते हैं कि वह शनि-वलय (Sarurnsring) के समान चपटे हैं और जब उनकी कोर (edge) हमारी ओर होती है तो वह अदृश्य हो जाते हैं।' कील (Keill) कहते हैं, "यह सम्भव है कि 'मीरा'का अधिकांश भाग कलंक (Spots) से ढका, हुआ है और थोड़ासा अंश उज्ज्वल है, और ज्यों ज्यों यह घूमता है त्यों-त्यों कभी हमें इसका उज्ज्वल अंश दीखता है और कभी इसका कलक। यह मत बहुत कृत्रिम मालूम होता है, क्योंकि एक तारेमें, जो बहुत पतला जलता हुआ गैसका गोलक है, उज्ज्वल और अंधकार अंशोंके एक विशेष समावेशका स्थिर रहना सम्भव नहीं मालूम होता। सर जेम्स जीन्स (Sir James Jeans) कहते हैं कि एक नासपाती जैसी वस्तुके घूमनेके कारण तारेकी ज्योति घटती-बढ़ती है। किन्तु ज्योतिर्विद ऐसे मतोंको नहीं मानते हैं क्योंकि परिवर्तनशील नक्षत्र सर्वदा और सब तरफसे एक ही सा दीखता है, इसलिये तारेके घटने-बढ़नेमें देखनेवालेकी स्थितिके साथ परिवर्तन नहीं होगा। एडिंगटन भी कहते हैं कि तारेका घूमना उसकी ज्योतिमें परिवर्तन होनेका कारण नहीं हो सकता है, इसलिये कि तारेकी चक्ती (disc) के विभिन्न अश विभिन्न गतिसे घूमनेके कारण तारेके रश्मिचित्रकी रेखायें अस्पष्ट हो जायेंगी।

तारेका घूमना उनकी ज्योतिमें परिवर्तनका कारण नहीं हो सकता है। परन्तु सतहके नीचे गैसके चलने फिरनेका प्रभाव तारेके ऊपर गम्भीर हो सकता है। बर्जर्कनीस (Bjerknes) ने सूर्यके कलंक और उसकी सतहके नीचे गैसके चलने फिरनेके सम्बन्धके ऊपर जो गवेषणाकी है वह सर्वजनविदित है। रोसेलें, (Rosse'and) कहते हैं कि परिवर्तनशील तारोंका भी हाल ऐसा ही होना संभव है। रोसेलैंडका मत तारोंका स्पंदन (Pulsation) और घूर्णन (rotation) सम्बन्धी मतोंके बीचमें है।

तारेकी ज्योतिका नियतकालिक (Periodically) परिवर्तन होना और सूर्यके कलंकका ११सालके अन्तर पर लौट आना, इन दोनों बातोंकी तुलनासे संबन्ध रखने वाला मत बहुत ही पुराना है, परन्तु अतिकालिक तारे और सूर्यकलंक संबन्धी घटनाओंमें बहुत अन्तर है इसलिये इन दोनोंकी तुलना गंभीर नहीं हो सकती, और यह मत अधिक सफल न होनेके कारण क्रमशः छोड़ दिया गया है।

आधुनिक मत यह है कि अल्पावर्त्तकालिक तारोंकी ज्योतिमें परिवर्तन होनेका कारण उनकी सतहका स्पंदन है – इसको स्पंदनसंबंधी मत (Pulsation hypothesis) कहते हैं। तारा एक गैसका गोलक समझा जाता है जिसके अंदर दो विपरीत शक्तियोंका कार्य होता है। एक शक्ति, जो गैस और प्रकाश (Radiation) के दबाव (Pressure) से उत्पन्न होती है, तारेको फुलाये रखती हैं, दूसरी शक्ति जो कि अणुओंकी गुरुत्वाकर्षणशक्ति है तारेको छोटा करनेकी चेष्टा करती है। अधिकतर तारोंमें जिनकी प्रकाशमात्रामें कोई परिवर्तन नहीं होता यह दोनों, शक्तियाँ समतुलित हो जाती हैं। यदि ऐसे किसी एक तारेका आयतन थोड़ासा घटा दिया जाये (किसी प्रकार दबावसे) और फिर वह छोड़ दिया जाये, तो क्या होगा? आंतरिक दबाव (Internal pressure) तारेका आयतन बढ़ावेगा। यद्यपि तारेके अपना पहला आयतन प्राप्त होने पर दोनों विरुद्ध शक्तियाँ बराबर हो जायँगी, तथापि तारेकी सतहमें गति होनेके कारण उसका आयतन बढ़ता ही जावेगा जब तक गुरुत्वकर्षणशक्ति उस गतिवेगको न रोक देवे। अब तारेका आयतन स्वाभाविकसे बड़ा होनेके कारण गुरुत्वाकर्षणशक्ति प्रबल होगी और तारा छोटा होना आरंभ होगा। तारेके अपने स्वाभाविक (Original) आयतन प्राप्त करने पर फिर दोनों शक्तियाँ बराबर हो जावेंगी, परन्तु सतह सिकुड़ती ही रहेगी, और इस तरह तारा स्पंदन करता रहेगा। इसे हम अपनी घड़ीके लंगर या दोलक के स्पंदनसे तुलना कर सकते हैं। वैज्ञानिक इसे "सिंप्ल हारमोनिक मोशन" (Simple Hamonic Motion) कहते हैं।

यदि यह मत ठीक हो तो तारेकी प्रकाश-मात्रामें परिवर्तनके आवर्त्तकालका कारण कोई बाहरी शक्ति नहीं हो सकती—तारेका स्वाभाविक स्पंदन ही इसका कारण है। सीफाइड तारे (Cepheids) को गैसका एक गोलक समझकर इसका आवर्त्तकाल गणित द्वारा मालूम किया गया है। यह प्रत्यक्ष देखे हुए आवर्त्तकालके अनुरूप है।

परन्तु सीफाइड तारोंके विषयमें एक रहस्यपूर्ण बात है जिसका उल्लेख हम आगे और भी करेंगे। ऐसा तो प्रतीत होता है कि सीफाइड तारा अधिकतम उज्ज्वल होगा जब कि यह संपूर्ण सिकुड़ जावेगा और अधिकतम तप्त हो जावेगा। परन्तु देखा गया है कि सीफाइड तारा उच्चतम कोटिकी उज्ज्वलताको तब प्राप्त करता है जब वह अपने स्वाभाविक आयतनको प्राप्त कर लेता है और उसकी सतहकी गति हमारी तरफ सबसे अधिक हो। अतिकालिक तारे उच्चतम कोटिकी उज्ज्वलताको तब प्राप्त करते हैं जब उनकी सतहकी गति हमारे विमुख सबसे अधिक हो। यह बातें तारोंके प्रकाशचक्र और रश्मिचित्रके अध्ययनसे मालूम हुई हैं। इन रहस्योंका अभी तक उद्घाटन नहीं हुआ है।

सीफाइड तारेके विषयमें स्पंदन-संबंधी मत सफल होनेके कारण यह प्रश्न स्वतः मनमें उदित होता है कि अत्यंत कम घनत्वके अतिकालिक नक्षत्रोंके स्पंदनके आवर्त्तकाल क्या होंगे? वैसे मालूम होता है कि आवर्त्तकाल लंबा होगा और गणित द्वारा यह अनुमान ठीक मालूम होता है। एडिंगटनने इस प्रश्नको उलट कर देखा है और एक ३०० दिन आवर्त्तकालवाले तारेका, जिसका द्रव्यमान

सूर्यसे दशगुना है व्यास निकाला है। व्यासका परिमाण दूसरे प्रकारोंसे निकाले हुए, व्यासके परिमाणोंसे मिलता है। इसलिये वह यह सिद्धांत निकालते है कि "तारेका आयतन इस मतका पोषण करता है कि ३०० दिनका आवर्त्तकाल तारेके स्वाभाविक स्पंदनका आवर्त्तकाल है।" अतिकालिक तारोंके प्रकाशवक्र और रश्मिचित्र सीफाइड तारोंके प्रकाशवक्र और रश्मिचित्रसे एकदम इतने भिन्न हैं कि जो लोग दोनों प्रकारके तारोंके परिवर्तनका एक ही प्रकारका कारण निर्देश करेंगे उनको इस बातका पक्का प्रमाण देना होगा। तथापि यह असंभव नहीं है कि तारेकी सतहके नीचे कोई ऐसी क्रिया होती होगी, जो दोनों प्रकारके तारोंके लिये एक ही है।

आदि कारण जो भी हो, नक्षत्रकी उज्ज्वलतामें परिवर्तन जिन कारणोंसे होता है, उनके अध्ययनकी चेष्टा हमें करनी चाहिये। इन कारणोंमें सबसे प्रधान चार हैं—(१) सतहकी तापमात्राका परिवर्तन, (२) आयतनका परिवर्तन, (३) पट्टी शोषण (Band absorption) का परिवर्तन, और (४) आवरणका होना (Veiling) या सतहके वायु-मंडल, मेघकी सृष्टि होना।

(१) सतहकी तापमात्राका परिवर्तन

कदाचित् यह सबसे अधिक उल्लेखनीय है। सीफाइड तारोंमें तापक्रम लगभग ५३००श० से ४६०० श० तक बदलता हैं अतिकालिक तारोंमें २३००श० से १८००श० तक।

(२) आयतनका परिवर्तन

प्रकाशमात्रा पर इसका प्रभाव संभवतः अधिक नहीं है और इसलिये इसका स्थान गौण कारणोंमें हो सकता है।

(३) पट्टी शोषण (band absorption) में परिवर्तन—

एम वर्ग (class M) के अतिकालिक नक्षत्रोंके अधिकांश प्रकाशको टिटेनियम अक्साइड (Titanium oxide) की प्रबल शोषण पट्टियाँ (Strong absorption bands) रोक लेती हैं और तारा निम्नतम कोटिकी प्रकाशमात्रा प्राप्त करने पर इसके अधिक गभीर हो जानेके कारण यह प्रकाशमात्रामें परिवर्तनको बढ़ा सकते हैं।

(४) आवरणका होना

जिन अतिकालिक नक्षत्रोंकी प्रकाशमात्रामें अधिक परिवर्तन होता है, जैसे कि विशेषतया एस वर्ग (S-Type) के तारे उनके परिवर्तनके लिये कारण नं० (१), (२) और (३) यथेष्ट नहीं हो सकते। इनके लिये यह कहा गया है कि तारेकी सतहके ऊपर किसी कारणसे मेघकी सृष्टि होती है और इस आवरणके नीचे उत्ताप संचित होता है जब तक कि वह मेघ हट न जाय, मेघके हटनेके साथ ही संचित उत्ताप और प्रकाश निकल पड़ते है। तारेके आवर्त्तकालमें असामयिकता (Irregularities) का यह एक कारण हो सकता है, किन्तु रसेलके मतानुसार तारेकी सतहके उपर वायुमंडल इतना हलका है कि उसका इस तरह अपारदर्शक होना संभव नहीं है। वह कहते हैं कि "दोनों मतों (स्पंदन और आवरण संबंधी) मेंसे कोई भी मत तारेके रश्मिचित्रकी उज्ज्वल रेखाओं (Bright spectral lines) और उनके विचित्र परिवर्तनका समाधान नहीं कर सका, और यह हो सकता है कि असली कारण इन दोनोंमेंसे कोई भी न हो।"

वैज्ञानिक वार्ता

नये प्रयोग और आविष्कार

युद्धसे जहाँ जन-धनकी भारी हानि होती है, वहाँ उसके कारण उद्योग-धन्धोंके विस्तार, विविध अनुसंधान-कार्य तथा भाँति-भाँतिके आविष्कारोंको प्रोत्साहन भी प्राप्त होता है। गत महायुद्धके परिणाम-स्वरूप भी यही हुआ। विगत यूरोपीय विजय-दिवसके बादसे अनेक नवीन वस्तुओं तथा उत्पादनकी नयी-नयी प्रणालियोंकी जो घोषणाएँ समय-समय पर ब्रिटेनमें होती आई हैं, इस कथनका प्रत्यक्ष प्रमाण है। वस्त्र तथा इंजीनियरीके क्षेत्रमें कुछ नवीन खोजों तथा वस्तुओंका उल्लेख हम नीचे करेंगे।

कपड़ा या मकड़ी का जाला

लीड्सके कुछ अनुसंधान-कर्त्ताओंने ऐसी प्रणाली निकाली है, जिसके द्वारा अत्यन्त महीन ऊनी कपड़ा अब बड़ी आसानीसे तैयार किया जा सकता है। इसके लिये समुद्री नरकुलके रेशेसे तैयार किये गये एक विशेष प्रकारके धागेसे काम लिया जाता है। बुनाईकी सुविधाके लिये ऊनके बारीक तागेको पहले नरकुली रेशेके धागेके साथ बटा जाता है। यह नरकुली धागा केवल बुनाईकी सुगमताके लिये काममें लाया जाता है। कपड़ा तैयार हो जाने पर, उसे हलके क्षार-युक्त एक विशेष घोलमें भिगोते हैं। नरकुली रेशा इस घोलमें गल जाता है और मकड़ीके जालेके समान महीन तथा मुलायम ऊनी वस्त्र शेष रह जाता है। कहते हैं कि इस प्रकारके बारीक ऊनी वस्त्रके एक गजका वजन आधी छटाँकसे अधिक नहीं होता है।

इसी प्रकार, खेल-कूदके शौकीनोंके लिये नये प्रकारका एक बहुत ही आकर्षक ढंगका कपड़ा तैयार किया गया है। इसकी बुनाई गोलाकार मशीनों द्वारा एक विशेष प्रणाली के अनुसार की जाती है। यह भी ऊनसे ही तैयार किया जाता है और खेल-कूदके परिधानोंके लिये स्त्रियोंमें इसका प्रचार भी आरम्भ हो गया है।

नया मुलायम प्लास्टिक

एक ब्रिटिश फर्म इन दिनों 'ड्यूराइट' नामक एक नया मुलायम प्लास्टिक तैयार करने में लगी है। इस प्लास्टिकसे कपड़े, गृहस्थी की वस्तुएँ तथा शौकीनीकी तरह-तरहकी चीजें तैयार की जा रही हैं। तमाखू रखनेके इसके बटुए तो बहुत ही पसंद किये जा रहे हैं।

कागजका मोमजामा

ब्रिटिश रासायनिकोंने कागज तथा कपड़े पर 'पोलीथीन' नामक एक द्रव्यकी परत चढ़ाकर पैकिंग आदिके कामका एक बहुत ही सुन्दर कपड़ा तैयार किया है, जिस पर पानी का बिल्कुल असर नहीं होता। खाद्य वस्तुओं, दवा-दारू आदिके पार्सलोंके लिये यह बड़े कामका है। इस कागजके बने मोमजामेका चलन अभी बहुत बढ़ेगा, इसकी पूरी आशा है।

धोबीकी ज़रूरत नहीं

बिना पानीकी धुलाईके लिये नये प्रकारकी एक बहुत ही अच्छी मशीन तैयार की गयी है। यह अपने आप ही चलती है। मशीनके एक सिरे पर लगे डिब्बेमें अपने कपड़े रख दीजिए और दूसरे सिरेके डिब्बेमेंसे धुले-धुलाए साफ और स्वच्छ कपड़े निकाल लीजिए। धोबीकी कोई ज़रूरत नहीं। कहते हैं कि कपड़े धोनेकी दुकानोंके अलावा, बड़ी-बड़ी फैक्टरियों तथा यात्री-जहाजोंके लिये भी इनकी आवश्यकता प्रतीत होने लगी है। चूँकि मशीनें छोटी, बड़ी कई साइजकी हैं, इसलिये वे सब लोगोंके काम आ सकती हैं।

यही नहीं, कपड़ों पर लोहा करनेकी एक नई छोटे साइजकी 'इस्त्री' भी तैयार की जा रही है। यह बिजली और भाप, दोनोंके प्रयोगसे काम करेगी। हम लोग जानते हैं कि हमारे धोबी लोहा करनेसे पहले कपड़ोंको कुछ भिगो लिया करते हैं, ताकि लोहेकी गर्मीसे कपड़ा झुलस न जाय। नई इस्त्रीमें इस बातकी भी व्यवस्था बड़े अच्छे ढंगसे की गयी है। इस्त्रीके एक भागमें एक बंद कटोरीमें पानी भरा रहता है और बिजलीकी गर्मीसे पानीकी भाप बनती

और कपड़े पर फैल कर उसे तर तथा मुलायम करती रहती है। लोहा करनेके इस यंत्र (इस्त्री) का नाम 'साइलेक्स' है।

बिना ढरकीका करघा

अब ब्रिटेनमें एक ऐसा करघा निकला है जो बिना ढरकीके काम करता है। अस्बेस्टोस अर्थात् वह रेशा जो आगमें नहीं जलता, इस करघे पर बड़ी आसानीसे बुना जा सकता है। समुद्री-स्वकुलके रेशेका कपड़ा भी इस नयी मशीन पर बुना जाने लगा है। मशीनकी विशेषता यह है कि अन्य करघोंकी तरह, उसके चलानेमें ढरकियोंकी खटा-खट नहीं होती, सारी मशीन बिना किसी प्रकारकी आवाज़-के चुप-चाप काम करती है और घंटों कपड़ा बीनती रहती है। केवल एक मिस्त्री ऐसी दो दर्जन मशीनें एक साथ चलाने तथा उनकी देखरेख रखनेके लिये काफी है। बीचमें रोके बिना इस मशीनने अब तक कुल आठ घंटे तक काम किया है, किन्तु ख्याल है कि विशेष प्रकारके तानेका उप-योग करनेसे वह २४ घंटे तक बराबर काम दे सकती है।

पेटके दर्दका नहीं सजावटका चूर्ण

अब सूत अथवा नकली रेशमसे, सजावटके कामके लिये स्प्रेटेक्स नामक एक ऐसा रेशा तैयार किया गया है जो चूर्णके रूपमें होता है और किसी भी प्रकारके तलको सजानेके लिये उस पर बुरकाया जा सकता है। कमरेकी भीतरी दीवारें, परदे, दरवाजेके चौखटे तथा शो. रूमकी सजावटके लिये, यह बड़े कामकी चीज है। यह रेशा १६ रंगोंमें तैयार किया जाता है और अब बिजलीके लैम्पोंके शेडों, खुशनुमा बक्सों और प्लेस्टिकसे तैयारकी गयी चीजों-की सजावटके काममें आने लगा है।

बिजलीकी चाय गाड़ियाँ

और सुनिए। ब्रिटेनकी सदर्न रेलवे बिजलीसे चलने वाली एक नये प्रकारकी ठेलागाड़ी ट्राली निकाल रही है, जिसमें अपने आप चाय तैयार हुआ करेगी, किसी बावर्ची या खिदमतगारकी ज़रूरत न पड़ेगी। ट्रालीमें तीन-तीन गेलनकी चार टंकियाँ रहेंगी, जिनमें बिजलीके जरिये पानी गर्म होगा और गर्म बना रहेगा। इन टंकियोंमें ऐसे हत्थे भी लगे रहेंगे जो उनमें नपी हुई मात्रामें चाय, चीनी और दूध भी डाल दिया करेंगे। बिजली बैटरियोंसे मिलेगी, जो एक बार चार्ज किये जाने पर बराबर पाँच दिन तक काम देगी। एक ट्रालीमें ३०० प्याली चाय तैयार हो सकेगी।

जुड़ाईकी मशीन

पायरोज नामकी एक ऐसी बिजलीकी मशीन तैयार की गयी है जो धातुकी जुड़ाईके लिये बहुत अच्छा काम देती है। इसके द्वारा धातुके उस भाग पर जहाँ जुड़ाई करनी है एक साथ बहुत ज्यादा गर्मी पैदा की जा सकती है और इस प्रकार सोल्डरिंग के काम में बहुत सुभीता रहता है।

राखसे सम्पत्ति

आजकल लंदनमें पराकासनी (अल्ट्रा वायोलेट) किरणों तथा कई गुप्त वैज्ञानिक प्रणालियोंकी सहायतासे उन सहस्रों नष्ट-प्राय उत्तराधिकार पत्रों, सर्टीफिकेटों, ऋण-पत्रों तथा साम्पत्तिक हस्तान्तरणके अन्य कागजोंकी छानबीन की जा रही है, जो युद्धके दिनोंमें शत्रुकी बमवर्षासे बैंकोंकी तिजोरियों अथवा सालिसिटरोंकी अलमारियोंमें ही झुलस कर खराब हो गये थे। केवल लंदनसे ही नहीं बल्कि ब्रिटेन के अन्य ध्वस्त नगरोंसे भी ऐसे कागज काफी संख्यामें प्राप्त किये गये हैं और वैज्ञानिक ढंगसे उनके मजमूनोंका पता लगाया जा रहा है। कागज के प्रामाणिक सिद्ध होने पर उसके सम्बन्धके देने-पावनेकी व्यवस्था कानूनके अनुसार की जाती है। वाह रे विज्ञान, जिसकी सहायतासे इन जले हुए कागजोंसे भी सम्पत्ति प्राप्त की जा सकी।

फसलकी रक्षाके लिये टिड्डी-विरोधी युद्ध

ईरान, भारत तथा कुछ अन्य पूर्वी देशों में टिड्डियों का संकट प्राचीन कालसे चला आता है। किसानोंकी हरी-भरी फसलको टिड्डियोंके दल जो हानि पहुँचाते हैं, साधारण नहीं। इनके आक्रमणसे देशोंको सुरक्षित रखने-के लिये मध्य पूर्वमें अब एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाकी स्थापना हुई है, जिसके द्वारा टिड्डी-संकटके निवारणके लिये सम्बद्ध

देशोंके प्रतिनिधि आपसी विचार-विनिमयके बाद योजनाएँ बनाने और उन्हें कार्यान्वित करनेकी व्यवस्था करते हैं।

इसमें संदेह नहीं कि विमानोंकी सहायतासे टिड्डी विरोधी लडाईमें अब बड़ी सुविधा हो गयी है। विमानोंसे उन स्थानोंका पता लगाया जाता है, जहाँ टिड्डियोंके दल जमा होते और अंडे-बच्चे देते हैं। इसके बाद विमानों से टिड्डियोंसे भरे स्थानों पर, उन्हें मारने वाले जहरीले पदार्थके छिड़कावका भी काम लिया जाता है। देखा गया है कि छोटी अवस्था में टिड्डियोंको मारना अधिक आसान होता है। इस अवस्थामें उनके पंख उड़ने लायक नहीं होते और वे फुदक-फुदक कर चलती हैं। अतएव, उस समय जमीन पर अथवा विमान द्वारा उन्हें नष्ट कर देनेमें बड़ा सुभीता होता है। जमीन पर, उनके बढावके मार्गमें खाइयाँ खोद दी जाती हैं और टिड्डियोंके दल फुदक-फुदक कर उनमें गिर जाते हैं और खाइयाँ तुरन्त ही तोप दी जाती हैं।

किन्तु जहाँकी जमीन कड़ी होती है वहाँ तथा अन्य स्थानोंमें, टिड्डियाँ मारनेका काम विमानसे लिया जाता है। गत वर्ष बिलोचिस्तान, ईरान तथा मध्य-पूर्वके इलाकों में, टिड्डियोंके जमघट ढूँढ निकालनेमें विमानोंसे बड़ी सहायता मिली। उक्त इलाके कई भागोंमें विभक्त कर दिये गये और जगह-जगह चौकियाँ कायम कर दी गयीं। आकाशमें विमान उड़ते और जमीन पर से चौकीदार झंडियोंकी सहायतासे उन्हें टिड्डियोंके स्थानोंका संकेत करते थे।

गहरी घाटियोंके बीच

सबसे खतरनाक स्थान वे थे जहाँ विमानोंको, दीवारोंकी तरह खड़े ऊँचे पहाड़ोंके बीचमें से गुजरना होता था। प्रकाशकी कमीके कारण बहुधा ऐसे स्थानोंमें विमानोंको जमीनसे कुल १०० फुटकी ऊँचाईसे उड़ना होता था, ताकि उन गहरी घाटियोंकी तलहटीमें टिड्डियोंके होने अथवा न होनेका पता लगाया जा सके। प्रायः विमानको ऐसी खड़ी चट्टानोंके बीचसे गुजरना होता था कि उसके अगल-बगल दोनों ओर कुछ ही गज स्थान छूट पाता था। यदि विमानका रुख तनिक भी गलत हो जाता तो विनाशके सिवा कुछ न था। किन्तु साहसी उड़ाकोंने कर्तव्य समझ कर इस कठिन कार्यको भी पूरा किया।

कई वर्षोंके अनुभवके बाद अब मालूम किया जा चुका है कि भारत और ईरानमें टिड्डियोंका उग्र संकट मोटे तौर पर पाँच-पाँच वर्षके लिये समयान्तरसे उपस्थित हुआ करता है। वर्तमान संकट कालसे पहले टिड्डियोंका प्रकोप १९२६ में उत्पन्न हुआ था, जो १९३१ तक कायम रहा। वर्तमान संकट काल १९४० में प्रारम्भ हुआ था। किन्तु इसमें संदेह नहीं कि अन्तर्राष्ट्रीय-मध्यपूर्वी-टिड्डी-संगठनके उद्योगसे उसका प्रकोप बहुत कुछ रोका जा चुका है।

परमाणुके सम्बन्धमें अनुसंधान

परमाणुके सम्बन्धमें अधिक जानकारी प्राप्त करनेके उद्देश्यसे ब्रिटिश सरकारने बरमिंघम विश्वविद्यालयके प्रोफेसर श्री एम० एल० ओलीफेंट और ग्लासगो विश्वविद्यालयके प्रोफेसर पी० आई० डी० को विशाल यंत्र दिये हैं।

प्रोफेसर ओलीफेंटको सरकारसे १,४१,००० पौंड और प्रो० डी को ५०,००० पौंडकी आर्थिक सहायता मिलती है। यह रकम उन विशाल यंत्रोंमें सुधार करनेमें खर्च की जाती है जो नकली परमाणु कण उत्पन्न करते हैं। वास्तवमें न तो ये यंत्र परमाणु शक्ति उत्पन्न करते हैं और न परमाणु बम। ये तो केवल अनुसंधानके यंत्र हैं।

ये अनुसंधान बरमिंघम और ग्लासगो में किये जा रहे हैं। अनुसंधानमें सफलता मिलने पर बरमिंघमका यंत्र तीव्रगतिसे कण उत्पन्न कर सकेगा। ग्लासगोका यंत्र ३,००,००,००० वोल्टकी शक्ति उत्पन्न करनेका प्रयत्न करेगा।

इन अनुसंधानोंका प्रधान उद्देश्य परमाणुके कणोंका अध्ययन तथा कण-केन्द्रके सम्बन्धमें छानबीन करना है। ये यंत्र कास्मिक रश्मियोंके बहुतसे प्रभाव उत्पन्न कर सकेंगे।

राडर यन्त्र द्वारा कास्मिक रश्मियोंका पता लगाना, पृथ्वीसे चन्द्रमाका अन्तर आदि विषयोंके सम्बन्धमें प्रोफेसर ब्लेकेट अनुसंधान कर रहे हैं। केम्ब्रिजमें श्री रेटक्लिफको भी रेडियोके सम्बन्धमें अनुसंधान करनेके लिये सरकारी सहायता दी जा रही है।

समालोचना

भोजनविधि अर्थात् रोग और पथ्यापथ्य—लेखक केदारनाथ पाठक रासायनिक: प्रकाशक प्रोफेसर उमेदीलाल वैश्य, श्यामसुन्दर-रसायनशाला, काशी, मूल्य २)।

भोजन मनुष्य-जीवनके लिये अति आवश्यक है। किन्तु इसके विषयमें अत्यन्त सावधान रहनेकी आवश्यकता होती है। भोजनके प्रकार पर ही मनुष्यका स्वास्थ्य निर्भर करता है। पाठक जी ने अपनी इस पुस्तकमें विभिन्न रोगोंमें क्या भोजन करना चाहिये, कौन सी चीज पथ्य और कौन सी अपथ्य है बड़े विस्तारसे बतलाया है। हिन्दी जनता इस पुस्तक से पथ्य-अपथ्यका ज्ञान प्राप्तकर रोगोंसे मुक्ति व स्वास्थ्य लाभ कर सकेगी ऐसी आशा है। इस दृष्टिसे पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है।

टोटका-विज्ञान—संकलन-कर्ता केदारनाथ पाठक रासायनिक, प्रकाशक प्रो० उमेदीलाल वैश्य, श्याम-सुन्दर-रसायनशाला, काशी: मूल्य ।=)।

भारतमें टोटके, झाड़-फूँक आदि द्वारा विशेष रोगों की चिकित्सा करानेमें जनताका दृढ़ विश्वास है। बच्चों की नजर उतारना, चेचक आदिमें झाड़-फूँक इसके साधारण उदाहरण हैं। पाठक जी ने इस पुस्तकमें बताया है कि यह केवल अंधविश्वास ही नहीं है, वरन् इसमें कुछ तथ्य भी है।

उनका कथन है कि प्राचीन कालसे ही इनका हमारे यहाँ प्रचलन है। हाँ, आजकल टोटके अपने विकृत रूपमें पाये जाते हैं। बहुतसे टोटके तो पाठकजीके अनुसार विज्ञानकी कसौटी पर भी ठीक उतरते हैं। टोटकों द्वारा चिकित्सामें विश्वास करने वालोंके लिए यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है।

ग्राम्य चिकित्सा—अनुवादक केदारनाथ पाठक रासायनिक, प्रकाशक प्रो० उमेदीलाल वैश्य, श्यामसुन्दर-रसायनशाला, काशी, मूल्य ।=)।

साधारण फलों, तरकारियों व अन्य बनस्पतियों द्वारा विभिन्न रोगोंकी चिकित्सा कैसी की जा सकती है यही पाठकजीने इस पुस्तकमें बतलाया है। सभ्यताके इस युगमें जब छोटे-छोटे रोगोंके लिए लोग डाक्टरों और वैद्यों द्वारा चिकित्सा करानेमें सैकड़ों रुपये फूँकते, भारतकी निर्धन जनताके लिए यह पुस्तक एक अमूल्य रत्न है। इस पुस्तक के अनुसार चिकित्सा करके बड़ी सरलतासे और बिना अधिक धन व्यय किए ही रोग से मुक्ति पाई जा सकती है।

संगम—मासिक पत्रिका, जुलाई १९४६; वर्ष ५; अंक ७; संरक्षक और सन्देशवाहक श्री स्वामी सत्यभक्त; सम्पादक स्वामी कृष्णानन्द सोखता व सूरजचन्द्र सत्य-प्रेमी; प्रकाशक रघुनन्दन प्रसाद विनीत; मुद्रक स्वामी सत्यभक्ति सत्येश्वर, छा० वर्धा; वार्षिक मूल्य तीन रुपया, एक अंकका चार आना।

संगम एक छोटी सी मासिक पत्रिका है और लगभग ५ वर्षोंसे सफलतापूर्वक प्रकाशित हो रही है। इस पत्रिका का उद्देश्य सीधे सरल ढंगसे सत्य, अहिंसा आदि गुणों का प्रचार करना है। अतः इसे हम नैतिकशास्त्रकी पत्रिका कह सकते हैं। इसके लेख, कहानियाँ आदि सब सरल ढंगसे सत्य व चरित्रबल आदिके उपदेश देती हैं। आदर्श-विहीन निकृष्ट साहित्यके युगमें इस प्रकारकी पत्रिका अपना विशेष मूल्य रखती है। युवक, युवतियों तथा बाल, वृद्ध सबके पढ़ने योग्य यह पत्रिका भविष्यमें भी सफलता-पूर्वक प्रकाशित होती रहे, यही हमारी कामना है।

विज्ञान

विज्ञान-परिषद्, प्रयागका मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ६३ | मिथुन, सम्वत् २००३, जूलाई १९४६ | संख्या ४

परिवर्तनशील तारे

(लेखक—डा० हरिकेशव सेन, गणित विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

छादक दोहरे तारे (Eclipsing binaries) छादक तारोंका वर्णन हम परिवर्तनशील नक्षत्र सम्बन्धी इस लेखमें इसलिये करेंगे कि ज्योतिषशास्त्रके व्यावहारिक कामोंमें इन दोनोंमें कोई भेद नहीं है। इनके प्रकाशवक्र (light curve) या गतिवक्र (velocity curve) के अध्ययनसे ही हम मालूम कर सकते हैं कि यह दोहरे तारे हैं या नहीं। बहुतसे तारों के लिये गतिवक्रका अवलोकन तो होता ही नहीं। कई बार ऐसा हुआ है कि जो तारा पहले परिवर्तनशील समझा जाता था, बादमें दोहरा पाया गया। वैसे ही कुछ तारे जो पहले छादक (eclipsing) समझे जाते थे, बादमें परिवर्तनशील पाये गये।

ज्योतिर्विदोंके लिये छादक तारोंका महत्त्व अधिक है क्योंकि इनके द्वारा हम तारों सम्बन्धी अनेक तथ्योंका उद्घाटन कर सकते हैं। इसलिये इस अध्यायमें हम इनका थोड़ा-सा उल्लेख करेंगे।

सन् १६६७ में मंटेनारी (Montanari) ने प्रथम छादक तारेका आविष्कार किया जिसका नाम आलगोल (Algol) है। सन् १९३७ तक लगभग १६०० तारों-का अध्ययन हुआ है। इनमेंसे ३५ ऐसे हैं जिनमें प्रत्येक तारेका भार, अर्धव्यास और घनत्व मालुम किया गया है।

छादक तारे प्रकाश वक्रकी प्रकृतिके अनुसार दो वर्गों में विभक्त हैं, आलगोल तारे (Algol) और बीटा लीरी (β Lyrae) तारे। आलगोल तारे निम्नतम कोटिकी (minima) उज्ज्वलता प्राप्त करने के पूर्व और पश्चात् समप्रकाशमान रहते हैं। बीटा लीरी तारोंकी प्रकाशमात्रा क्रमशः बदलती रहती है। परन्तु इस बातका स्मरण रखना चाहिये कि यह वर्गीकरण सुदृढ़ भित्ति पर प्रतिष्ठित नहीं है। बहुत से तारे ऐसे हैं जो किसी विशेष वर्ग में नहीं रक्खे जा सकते।

आलगोल और बीटा लीरी तारोंकी संख्या ३०:६० के अनुपातमें है। गोल (non-elliptical) तारों की

संख्या चपटे (elliptical) तारोंकी संख्यासे दूनी है। यह बात विश्व के क्रम विकास (cosmic evolution) सम्बन्धी समस्याओं पर प्रकाश डालती है।

छादक तारों में केवल लगभग ८ प्रतिशत ऐसे हैं जिनका आवर्त्तकाल १० दिन से अधिक है। छादक तारों में यू—एक्स उर्सा मेजोरिस (U X Ursae Majoris) नामक तारे का आवर्त्तकाल सब से काम है। इस का अध्ययन बेलजास्की (Beljawsky) ने सन् १९३३ में किया है। तीन या चार परिवर्तनशील नक्षत्र खोज निकाले गये हैं, जिनका आवर्त्तकाल और भी कम है। यद्यपि एक्स उर्सा मेजोरिसका आवर्त्तकाल ५ घंटेसे भी कम है, इनके तारोंमें चपटापन (ellipticity) नहीं दीखता। ७ घंटेसे कम आवर्त्तकाल वाले और जितने छादक तारे हैं वह सब यथेष्ट चपटे हैं। छादक तारोंमें सबसे अधिक आवर्त्तकाल वाला एपसाइलन औरीजी (E Aurigae) नाम का तारा है—जिसका कि आवर्त्तकाल लगभग २७ वर्ष है।

५५ छादक तारे ऐसे हैं जिनका कि आवर्त्तकाल १४ दिनसे कम नहीं है। इनमें अधिकांश अत्यंत प्रकांड और ज्योतिष्मान होनेके कारण दैत्य (giant) या "अतिदैत्य" (Supergiant) कहलाते हैं। उनका अध्ययन अभी संपूर्ण नहीं। इनका अध्ययन अत्यंत हृदयग्राही और फलप्रद होगा।

छादक तारोंका आवर्त्तकाल प्रायः स्थिर रहता है, यद्यपि ऐसे तारे बहुत कम हैं जिनका अध्ययन आवर्त्तकाल-में परिवर्तन पानेके लिये बहुत दिनों तक हुआ हो। इनका अवलोकन स्पेक्ट्रास्कोपी (Spectroscopy) और फोटोमेट्री (photometry) दोनोंके द्वारा हो सकता है। आजकल इसकी गवेषणा लैटन (Luyten), डूगान (Dugan) और कुमारी राइट (Miss Wright) ने की है। कुछ तारोंके आवर्त्तकालमें परिवर्तन पाया गया है।

खाली आँखोंसे देखनेके योग्य केवल १५ छादक तारे हैं, और इनमेंसे भी सभी खाली आँखोंसे आविष्कृत नहीं हुए हैं। पहले छादक तारोंका अध्ययन खाली आँखसे ही होता था। आजकल अधिकतर फोटोग्राफीके ही द्वारा होता है। १६ वर्ष पूर्व केवल जाने हुये छादक तारोंमें दश प्रतिशतका अध्ययन फोटोग्राफीके द्वारा हुआ था। आज इनका नम्बर ७० प्रतिशत है। तारोंकी उज्ज्वलता जितनी घटती जाती है, उनका अध्ययन उतना ही कष्टसाध्य होता है। इसलिये इनके सम्बन्धमें हमारा ज्ञान इनके आ-विष्कारके अनुपातमें नहीं बढ़ सकता। छादक तारोंके रंगकी गवेषणा उनके रश्मिचित्रके ज्ञानके स्थानमें काम आ सकती है और भविष्यमें इसकी उपयोगिता बढ़ेगी। प्रायः सभी कम उजले छादक अल्पकालिक पाये गये हैं।

छादक तारोंकी उज्ज्वलतामें परिवर्तनकी मात्रा प्रधानतः इन बातों पर निर्भर है—(१) तारोंके अर्द्ध-व्यासोंका अनुपात, (२) उनकी सतहोंकी उज्ज्वलताका अनुपात, (३) ग्रहण लगे स्थानका क्षेत्रफल, (४) तारों का चपटापन (ellipticity), (५) कक्षाका झुकाव (ellipticity of orbit), (६) तारेकी मेखलाका काला पड़ जाना (darkening at the limb), (७) कक्षाकी उत्केंद्रता (eccentricity of orbit) (८) और तारोंकी प्रकाश बिंबित करनेकी शक्ति। इनमेंसे प्रथम तीन कारण प्रधान हैं। आर वी एपोडिस (R V Apodis) नामके तारेकी उज्ज्वलतामें सबसे अधिक परिवर्तन पाया गया है।

कोई छादक तारा ऐसा नहीं है जिसके दोनों तारे अल्पाधिक उज्ज्वल न हों। इन तारोंमें ग्रहण तीनों प्रकारके होते हैं—खंड, वलय (annular) और पूर्ण। एस

एक्स नार्मी (S X Normae) नामके छादक तारेका दृष्टांत चित्ताकर्षक है। इनकी उज्ज्वलतामें परिवर्तनसे इनके अर्द्धव्यास (radius) का अनुपात ०.१६ पाया गया है जिससे स्वतः हमारे मनमें अपने सूर्य और बृहस्पति (Jupiter) का विचार आ जाता है। परन्तु यहाँ भी बड़े तारेसे छोटेका ग्रहण (जो कि छादक तारोंके लिये साधारण बात है) होता है। इसलिये इन तारोंकी समष्टि हमारे ग्रहमंडल जैसी नहीं समझी जा सकती। इस असीम विश्वमें अपने ग्रहमंडल जैसा और कोई ग्रहमंडल है या नहीं, इस चित्ताकर्षक समस्याका समाधान हम आगे करेंगे।

जिन छादक तारोंका आवर्त्तकाल दस दिनसे अधिक है उनका ग्रहण अधिकांश पूर्ण होता है। अल्प आवर्त्तकालके तारोंमें खंड ग्रहण अधिक पाया जाता है। परन्तु इस बातका विचार रखना चाहिये कि ऐसे तारे बहुतसे हैं जिनमें खंड ग्रहण होता है परन्तु उनका आविष्कार अभी तक नहीं हुआ है।

तारेके आवर्त्तकाल (period) और ग्रहणकाल (duration of eclipse) में एक निश्चित संबंध है। आवर्त्तकाल घटने पर ग्रहणकाल बढ़ता जाता है। कक्षाका झुकाव (inclination of orbit) लगभग ८०°—९०° पाया गया है।

छादक तारोंका उनके रश्मिचित्रके अनुसार वर्गीकरण करना (spectral classification) इन तारोंके लिये दूसरे परिवर्तनशील नक्षत्रोंसे अधिक उपयोगी है, क्योंकि अब तक दूसरे परिवर्तनशील नक्षत्रोंसे अधिक छादक तारोंके भौतिक गुणों (physical characteristics) का अध्ययन हुआ है। १ फरवरी सन् १९३८ तक ३५२ छादक तारोंका अध्ययन हुआ है। इनमें २७१ छादक तारे हार्वर्ड (Harvard) में उनके रश्मिचित्र द्वारा वर्गीकृत हुए हैं। बाकी ९२ छादक तारे अनेक प्रकारसे वर्गीकृत किये गये हैं। यह सच है कि वर्गीकृत करनेके नियम सब वेधशालाओंमें एक नहीं है।

जिन रश्मिचित्रोंका अध्ययन किया गया है, उसमें-से ४० प्रतिशतसे अधिक 'ए' वर्गके हैं, २० प्रतिशत 'बी' वर्गके, लगभग २५ प्रतिशत 'एफ' वर्गके और शेष 'जी' 'ओ' 'के' या 'एम' वर्गों के हैं। इस रश्मिचित्र के अनुसार वर्गीकरणका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। अन्त में जी. जी. कारिणी (G. G. Carinae) और आर वाइ स्कूटी (R. Y. Scuti) नाम के दो तारे हैं जिनके रश्मिचित्रमें उज्ज्वल रेखाओंका प्राधान्य है।

छादक तारोंमें सबसे भारी ६ तारे हैं जो कि 'ओ' वर्गके हैं। गतिकी गणनासे जिन तारोंका द्रव्यमान निकाला गया है उनमेंसे यह तारे सबसे भारी हैं। इन तारोंमें दीर्घवृत्तता बहुत कम है।

बी. एम. ओरिओनिस (B. M Orionis) नामके एक छादक तारे का इतिहास बहुत ही चित्ताकर्षक है। संभवतः यह तारा भी टी. वाइ. कोरोनी औस्ट्रीनी (T. Y. Coronae Austrinae) तारेकी तरह है जो पहले छादक तारा समझा जाता था लेकिन अब मालूम किया गया है कि यह नीहारिका (nebulosity) में स्थित एक असामयिक परिवर्तनशील नक्षत्र है।

छादक तारोंमें 'ए' या 'बी' तारे अधिक पाये जाते हैं। इसका कारण उनकी उज्ज्वलता है। प्रत्युत यह समझना चाहिये कि दूसरे वर्गों के तारे ही अधिक हैं, परन्तु कम उज्ज्वल होनेके कारण बहुधा दीखते नहीं।

जो तारे अधिक उज्ज्वल हैं उनमेंसे प्रथम तारेके रश्मिचित्र का अध्ययन सीधे ही हो सकता है। ६२ छादक तारोंके लिये—जो आविष्कृत छादक तारोंकी संख्याके अनुपातमें ८ प्रतिशत हैं—दूसरे सहयोगी तारोंके रश्मिचित्रका भी अध्ययन हुआ है। यदि प्रथम तारेके रश्मिचित्रका अध्ययन किया गया हो और दोनों

ग्रहणोंकी निम्नतम कोटिकी उज्ज्वलताकी मात्रा भी निश्चित पाई गई हो, तो द्वितीय तारे का रश्मिचत्र उनकी सतहोंकी उज्ज्वलताके भेदसे मालूम हो सकता है। जिन छादक तारोंके रश्मिचित्रका प्रत्यक्ष अवलोकन हम कर सकते हैं, उन तारोंके लिये यह विधि बहुत ही फलप्रद है।

यह बात मालूम होनी चाहिये कि रश्मिचित्र में भेदके अनुसार ग्रहणका प्रकार भेद होता है। इसका कारण तारोंके आयतनका भेद है। अर्द्धव्यासमें भेदके अनुसार रश्मिचित्रका प्रकार भेद होता है।

तारेके वर्णचित्र और आवर्त्तकालमें कोई सरल सम्बन्ध नहीं पाया गया है : परन्तु वर्णचित्र, आवर्त्तकाल और द्रव्यमान (mass), परस्पर एक सरल सम्बन्ध द्वारा आबद्ध हैं।

छादक तारोंके आवर्त्तकाल और रश्मिचित्र दर्शन के द्वारा उनके द्रव्यमान मालूम करनेके बाद उनके दोनों तारोंके आयतन निकाले जा सकते हैं। ग्रहणकालसे भी यह बात मालूम हो सकती है। राश्मिचित्र-दर्शनके द्वारा ३१ छादक तारोंके द्रव्यमान यथेष्ट निश्चितताके साथ मालूम किये गये हैं परन्तु २५० से भी अधिक तारों के द्रव्यमान आगे लिखी रीतिसे निकल सकते हैं।

अर्द्धव्यास मालूम करने के और भी उपाय हैं। एक उपाय, जिसे लुंडमार्क (Lundmark) ने निकाला है, तारेके द्रव्यमान और अर्द्धव्यासके सम्बन्ध पर निर्भर है। क्राइकेन (Kreiken) ने एक दूसरा उपाय निकाला है, जिसमें तारेके द्रव्यमान और प्रकाशमात्राके सम्बन्ध (mass-luminosity relation) का व्यवहार होता है।

छादक तारोंमें सबसे बड़ा आयतन वी. वी. सीफाइ (V. V. Cephei) के लाल तारे का है, जो सूर्य से २४०० गुना बड़ा है। सबसे छोटा यू एक्स सप्तर्षि (U X Ursae Majoris) है, जो सूर्यका ०.३ गुना है। इन दोनोंके आयतनका अनुपात ७०००:१ है।

कोई भी रश्मिचैत्रिक वर्गके तारे आयतनमें एक से नहीं हैं। 'बी' वर्गके तारे 'ओ' वर्गके तारों से यथेष्ट छोटे हैं और प्रधान श्रेणीके तारे (Main Sequence Stars) आयतन में लगातार घटते गये हैं।

छादक तारोंके द्रव्यमान उतनी ही निश्चितताके साथ मालूम किये गये हैं जितना कि खाली आँखोंसे देखने वाले दोहरे तारों (visual binaries) के द्रव्यमान, परन्तु छादक तारोंके द्रव्यमानमें भेद द्वितीय प्रकारके तारोंकी अपेक्षा अधिक है, इसलिये द्रव्यमान सम्बन्धी अध्ययन में इनका महत्व अधिक है।

छादक तारों के द्रव्यमान और अन्य गुणोंमें सम्बन्ध निकालनेकी चेष्टा कई बार हो चुकी है, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं। इस प्रकारका थोड़ा सा उल्लेख हम यहां करेंगे। छादक तारोंमें सर्वथा यह तीनों सम्बन्ध पाये जाते हैं—केप्लरका तृतीय नियम, स्टीफान और बोलज़मानके रश्मिविकिरणका नियम (Stefan-Boltzmann law of radiation) और एडिंगटन (Eddington) के द्रव्यमान और प्रकाशमात्राका नियम। इन तीनोंके द्वारा एक सम्बन्ध ऐसा निकाला गया है, जिससे केवल आवर्त्तकाल, रश्मिचित्र और प्रकाशवक्रके ज्ञानसे हीं छादक तारोंका द्रव्यमान मालूम किया जा सकता है। इस प्रकारसे ३५ छादक तारोंके द्रव्यमान यथेष्ट निश्चितताके साथ निकाले गये हैं।

२८ छादक तारे ऐसे हैं जिनमें बड़ा आयतनवाला तारा अधिक भारी है। द्रव्यमानके निर्णयमें आयतनके निर्णय की अपेक्षा निश्चितता अधिक है। भिन्न भिन्न प्रकाशवक्रसे निकाले हुए द्रव्यमानमें अन्तर अल्प ही पाया जाता है, परन्तु अर्द्धव्यासोंमें अन्तर लगभग ५०

प्रतिशत तक हो जाता है।

उपर्युक्त प्रकारसे निकाले हुए द्रव्यमान प्रत्यक्ष देखे हुए द्रव्यमानसे लगभग मिलते-जुलते हैं। परन्तु यह बात उल्लेखनीय है कि जिन तारों का गुरुत्व अच्छी तरह नहीं देखा गया है उन तारों में यह एकता अधिक है और जिन तारोंके गुरुत्वमें निश्चितता अधिक है उन्हीं में भेद भी अधिक पाया गया है। विशेषकर हालमें आविष्कृत तारा जी ओ सीगनी (G O Cygni) में सबसे अधिक भेद पाया गया है। निकाला हुआ द्रव्यमान प्रत्यक्ष देखे हुये द्रव्यमानसे चौगुनेसे भी अधिक है।

इस भेद के कारण कई हो सकते हैं। यह सच है कि तारे जो कुछ विशेष बातों में समानधर्मी हैं. दूसरे विषयों में विरुद्धधर्मी हो सकते हैं, चाहे हम इसको कितना ही असम्भव क्यों न समझते हों। अवलोकनमें भ्रम और तापक्रम का ठीक मान न प्राप्त करनेसे भी भेद हो सकते हैं। राश्मिचैत्रिक वर्गीकरणमें भी प्रमाद हो सकता है। "फोटोमेट्री" (photometry) के द्वारा अर्द्ध-व्यासका निकालना अनिश्चितता पूर्ण हो सकता है।

उपर्युक्त प्रकारका प्रयोग दोनों विषयोंमें हो सकता है--(१) यदि आवर्त्तकाल, रश्मिचित्र और प्रकाशवक्र मालूम हों तो दोनों तारोंके द्रव्यमान मालूम हो सकते हैं; और (२ यदि द्रव्यमान आवर्त्तकाल और प्रकाशवक्र मालूम हों, तो तापक्रम निकल सकता है। रश्मिचैत्रिक श्रेणीमें आगे बढ़नेसे छादक तारोंका द्रव्यमान लगातार बढ़ता जाता है।

तारेके द्रव्यमान और अर्द्धव्यास मालूम होनेके बाद उसका घनत्व मालूम करना सहज है। प्रो० रसेल (Prof. Russell) ने एक तरकीब निकाली है जिससे तारेके प्रकाशवक्र और आवर्त्तकालसे उसका घनत्व निकल सकता है। यदि तारे का मध्यम घनत्व का एक वक्र बनाया जावे तो यह रसेलके वक्रचित्र (Russell-diagram) का अनुयायी होगा।

छादक तारों के तापक्रम निकालने के दो प्रकार हैं। प्रथम प्रकारसे तारेकी दूरी और उसके अर्द्धव्यास जानने पर, उसका तापक्रम निकल सकता है। परन्तु तारेकी दूरी निकालनेमें अनिश्चितता होनेके कारण, यह रीति कठिन है। म्यू वृश्चिक (M Scorpii) नामका तारा इस प्रकार का बहुतही उपयोगी है, क्योंकि इसका लंबन, प्रकाशवक्र इत्यादि अच्छी तरह मालूम किये गये हैं। द्रव्यमानसे भी तारेका तापक्रम निकल सकता है, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं।

भेदक तारोंमें सबसे उज्ज्वल २० वृहत् श्वान (29 Canis Majoris) नामका तारा है। इससे अधिक उज्ज्वल बहुत कम ही तारे हैं, जैसे एस. डोरेडस (S Doradus) और सर्वोच्च कोटिकी उज्ज्वलताको प्राप्त करनेपर कुछ नवतारे। सबसे कम उज्ज्वल तारा कास्टर सी (Castor C) है; और सम्भवतः यू एक्स सप्तर्षि (U X Ursae Majoris) भी उतना ही कम उज्ज्वल है। भेदक तारोंकी उज्ज्वलतामें तारतम्य २१ लाखगुना है। अर्द्धव्यासमें तारतम्य; पाठकको याद होगा, ७ हज़ार है।

भेदक तारे प्रकाशगंगा या हमारी तारक-मंडली (Galactic System के किसी विशेष स्थान में स्थित नहीं हैं। वह साधारण तारोंकी तरह ही तारक-मंडलीमें ही पाये जाते हैं।

भेदक तारे ज्योतिर्विदोंकी गवेषणामें बहुत सहायता दे सकते हैं। एडिंगटनने ही पहले पहल भेदक तारोंकी सहायतासे तारोंके आंतरिक विवरण Stellar interior) का अध्ययन किया। उन्होंने तारेका द्रव्यमान और प्रकाश-

मात्राके नियम (Mass-luminosity law) को दृढ़ (Confirmed) किया।

भेदक तारोंका द्वितीय उपयोग स्ट्रैमग्रेन (Stromgren) ने किया जिससे उन्होंने दिखलाया कि तारेकी बनावटके लिये "हाइड्रोजन" (Hydrogen) गैस अत्यन्त आवश्यक है। रसेल वक्रचित्र (Russell-diagram) के अनुसार दो तारोंके द्रव्यमान एक होने पर भी उनके अर्द्धव्यास विभिन्न हो सकते हैं। स्ट्रैमग्रेनके मता- नुसार ऐसे दो तारों में हाइड्रोजन गैसका परिमाण बराबर नहीं है—बड़े तारों में हाइड्रोजन कम है।

भेदक तारोंका तृतीय उपयोग चन्द्रशेखर (Chandrasekhar) ने किया है, जिससे उन्होंने एडिंगटन के मतानुसार तारेके केंद्रीय घनत्व (Central Condensation) का अनुमान किया है। गैपोष्किन (Gaposchkin) ने और भेदक तारे लेकर ऐसी गवेषणा की है और वह चन्द्रशेखरके इस सिद्धान्त का पोषण करते हैं कि भारी तारे हलके तारोंकी अपेक्षा अधिक स्थिर घनत्ववाले (homogeneous) हैं। बहुत भारी भेदक तारे जैसेकि २६ बृहत् श्वान (29 Canis Majoris) बहुत ही स्थिर घनत्ववाले हैं।

अन्तमें हमें इस बातका विचार करना चाहिये कि तारेके वातावरण (atmosphere) के अध्ययन में भेदक तारे बहुत ही सहायता दे सकते हैं। अब तक केवल ज़ाइ औरिजी (G Aurigae) पर ही यह गवेषणा हुई है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि और भी तारों पर इसका प्रयोग हो सकता है, जैसा कि वी. वी. सीफाइ (V. V. Cephei)।

अतिकालिक परिवर्तनशील तारे

(Long period Variables)

अतिकालिक तारे अधिकतर "मीरा तारे" कहलाते हैं क्योंकि इनमें मीरा (Mira) नामक तारा, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, विशेष उल्लेखनीय है। इनकी परिभाषा देना कठिन है, क्योंकि इनके प्रकाशवक्र या त्रिज्यात्मक गति (radial velocity) का अभी तक संपूर्ण अध्ययन नहीं हुआ है। लुडेनडार्फ, टाउनले, कानन और कांबेल (Ludendorff, Townley, Cannon, Campbell) ने कई लक्षण दिये हैं। परन्तु कोई एक लक्षण यथेष्ट नहीं है, यद्यपि सबको मिलाकर हम एक अतिकालिक तारे को पहचान सकते हैं।

इस लेखमें हम अतिकालिक परिवर्तनशील नक्षत्र उस तारे को समझेंगे जिसका आवर्त्तकाल ४० दिनसे ऊपर हो, जो छादक (eclipsing) या सीफाइड परिवर्तन, शील तारा न हो, जिसका रश्मिचित्र परिवर्तनशील और जी वर्ग (type) या उससे भी बादका (later) हो, भीमकाय तारोंके रश्मिचित्रके अनुसार हो, और प्रायः, यद्यपि सर्वदा नहीं, उज्ज्वल रेखांकित (bright lines) हो। अतिकालिक और सीफाइड परिवर्तनशील तारोंमें भेद रखना सर्वदा संभव नहीं, क्योंकि आवर्त्तकाल और रश्मिचित्र दोनों हिसाबसे, इन दोनों वर्गोंके कुछ तारे एक दूसरेसे मिल जाते हैं। १०० दिनसे कम आवर्त्तकालवाले कई अतिकालिक नक्षत्र हैं और ५० दिनसे अधिक आवर्त्तकालवाले कई सीफाइड हैं। आवर्त्तकाल और रश्मिचित्रमें भेद सर्वदा विद्यमान न रहने पर भी, अतिकालिक और सीफाइड तारे परस्पर सबन्ध रखनेवाले दो वर्गके तारे समझने चाहियें—यह एक सातत्य श्रेणी (Continuous series) के नहीं हैं।

लुडेनडार्फने "हाडबुक डेर आस्ट्रोफिज़िक, ११२८" Handluch der Astrophysik 1928) नामक किताब में और इसके बाद बनायी हुई और एक सूची (list) में अच्छी तरह देखे हुए अतिकालिक नक्षत्रों

को वर्गीकृत किया है और इनके प्रकाशवक्रोंका वर्णन दिया है। इनमें केवल अपेक्षा-कृत उज्ज्वल नक्षत्रों का, जिनका प्रकाशवक्र और रश्मिचित्र जाना हुआ है, वर्णन है। इससे अधिक संपूर्ण हार्वार्ड से प्रकाशित अतिकालिक नक्षत्रोंकी तालिका (Harward catalogue of Long period Variables) है जिसमें सन् १९२८ तक खोज निकाले हुए सब अतिकालिक तारे हैं।

सन् १९३६ में प्रकाशित एक किताबमें (प्रागेज़ "काटालोग उंड एफेमेरीडेन" फार १९३६) (Prager's "Katalog und Ephemeriden for 1936) २०२१ अतिकालिक नक्षत्र हैं जिनके आवर्त्तकाल मालूम किये गये हैं। इसके अधिकांश तारे कम उज्ज्वल हैं और फोटोग्राफीके द्वारा इनका अल्पाधिक अवलोकन (limited observation) हुआ है। इनके विस्तृत अनुसंधानके लिये "गशिक्ट उंड लिटरेटुर, (Geschichte und Literature) नामक ग्रंथ देखना चाहिये। परन्तु लगभग ४००-५०० अतिकालिक नक्षत्र ऐसे हैं जिनका यथेष्ट अध्ययन स्पेक्ट्रास्कोपी और फोटोमेट्रीके द्वारा हुआ है। इन तारों के प्रकाश के घटने बढ़नेके संबन्धका ज्ञान हमें अधिकतर 'स्वांतः सुखाय ज्योतिर्विद समाज (amateur astronomical society) के द्वारा हुआ है। ऐसे बड़े-बड़े ९ समाज हैं, जिसमेंसे 'अमेरिकन सोसैटी आव वेरियेब्ल स्टार अबज़र्वर्स उल्लेखनीय है। इनमें कई समाजोंके सभ्य पृथ्वीमें सर्वत्र हैं, जिससे कि आकाशके उत्तर और दक्षिण दोनों दिशाओंमें स्थित तारोंका अध्ययन होना संभव हुआ है।

इन तालिकाओंमें दिये हुये तारोंकी संख्या अत्यधिक है, परन्तु प्रायः प्रत्येक तारेके विषयमें उसका आवर्त्तकाल और परम प्रकाशमात्रा ही मालूम है। इससे छोटी तालिका अधिक उपयोगी होगी, जिसमें केवल वही तारे दिये हों जिनका अवलोकन भली भाँति हुआ हो। ऐसी तालिका गैपोशकिन (Gaposchkin) लिखित "परिवर्तनशील नक्षत्र" (Variable Stars) नामक ग्रंथमें दी है।

अतिकालिक तारोंकी संख्या अधिक होनेके कारण इनको वर्गीकृत करनेकी कई चेष्टायें हुई हैं। प्रकाशवक्रके द्वारा ही वर्गीकृत करना सहज है। इनमें लुडेनडार्फ और कांबेल की रीतियाँ उल्लेखनीय हैं। वर्गीकरण प्रकाशवक्रकी आकृतिके अनुसार होता है जैसे वक्रकी चढ़ने या उतरनेकी गति (Speed of rise and fall) उच्चतम या निम्नतम कोटिकी उज्ज्वलता स्थिर रहने का समय, और प्रकाशवक्रमें एक कूबड़ (hump) का रहना।

अतिकालिक तारोंका, अन्य सब परिवर्तनशील तारोंसे अधिक, अध्ययन हुआ है, और इनके ध्रुवांक (data) इतने अधिक हैं कि उनका सारांश देना भी इस लेखमें संभव नहीं है। मेरिल ने एक पुस्तकमें ("परिवर्तनशील नक्षत्रोंकी प्रकृति" मैकमिलेन, १९३८, "The Nature of Variable Stars", Mac Millan, 1938) इन बातोंका अच्छा उल्लेख किया है।

हम किसी विशेष दृष्टिकोणसे इन बातोंका अध्ययन करेंगे। हमारा दृष्टिकोण परिवर्तनशील नक्षत्रोंका एक दूसरेसे सम्बन्ध होगा। तारोंकी प्रकाशमात्रा क्यों बदलती रहती है यह बात मालूम करनेके लिये हमें इस बातका ज्ञान होना आवश्यक है कि अतिकालिक और सीफाइड तारे एक ही तारेकी विकसित अवस्थायें हैं या वह एक दूसरेसे मिलते जुलते हैं या बिलकुल ही अलग हैं।

हम आगे देखेंगे कि सीफाइड तारोंके आवर्त्तकाल और रश्मिचित्रमें एक सम्बन्ध है। अतिकालिक तारोंके लिये भी यह सम्बन्ध वर्तमान है किन्तु सीफाइडके लिये सम्बन्ध सहज है। अतिकालिक तारोंके आवर्त्तकाल,

रश्मिचित्र और प्रकाशमात्राकी सीमा (range) में सम्बन्ध इस तरहका है कि आवर्त्तकालके बढ़नेसे रश्मिचित्र लाल (red) की तरफ बढ़ता है और सीमा भी बढ़ती है। इससे मालूम होता है कि अतिकालिक तारों का वर्ग अनोखा ही है। किन्तु ऐसा समझना ठीक नहीं है, जैसा कि हम आगे देखेंगे।

यदि अतिकालिक और सीफाइड दोनों तारोंके लिये उनके आवर्त्तकाल और रश्मिचित्रमें सम्बन्धोंकी तुलना की जाय तो मालूम होगा कि यह एक दूसरेकी विकसित अवस्था भी हैं और अलग भी हैं। जिन सीफाइड तारों-के आवर्त्तकाल अधिक हैं वह अतिकालिक तारोंसे नहीं मिलते—इससे यह मालूम होता है कि सीफाइड तारोंमें भी एकाधिक वर्ग हो सकते हैं। विकासके रहने-से उनका भी कहना ठीक मालूम होता है जो सीफाइड और अतिकालिक तारोंके लिये परिवर्तनका होना (variation) एकही तरह (type) का समझते हैं।

अतिकालिक तारोंके लिये भी सीफाइडकी तरह उनके प्रकाशवक्र और आवर्त्तकालमें एक सम्बन्ध है। किन्तु सीफाइडके सम्बन्धसे अतिकालिक तारोंके लिये सम्बन्ध बिलकुल अलग है। दोनों तारोंमें प्रकाशवक्रकी सीमा का विभिन्न होना इसका एक कारण हो सकता है।

अतिकालिक तारोंकी प्रकाशमात्रा और आवर्त्तकाल के (period-luminosity relation) का ज्ञान हमें प्रत्यक्ष अवलोकनसे नहीं हुआ। हमारी तारकमंडली (galactic system) के बाहर कोई अतिकालिक नक्षत्र नहीं मिला है—मैगेलनिक मेघ (Magellanic clouds में भी नहीं। यह नहीं हो सकता है कि वह हैं ही नहीं। इतनी दूरी पर उनकी उज्ज्वलताका अत्यधिक ह्रास होना उनके न दीखने का कारण हो सकता है।

गोलसमूहोंमें (globular clusters) और आकाशगङ्गाके केन्द्र (galactic centre) की तरफ अतिकालिक तारे पाये गये हैं। इनकी प्रकाशमात्रा और आवर्त्तकालमें कोई विशेष सम्बन्ध नहीं पाया जाता और इस सम्बन्धका वक्र सीफाइड तारोंके वक्रसे नीचे ही रहता है। शैपले (Shapley) के मतानुसार अतिकालिक तारोंके कई वर्ग हो सकते हैं। ऐसा होना बहुत ही सम्भव है। अतिकालिक तारे सजातीय वर्ग (homogeneous group) के न होनेके कारण इनकी प्रकाश-मात्राओंमें विभिन्नता यथेष्ट हो सकती है।

आकाशगङ्गाके सन्निकट अतिकालिक नक्षत्र यथेष्ट पाये जाते हैं। इसका यह भी कारण हो सकता है कि इन जगहोंमें अतिकालिक नक्षत्रोंकी खोज अधिक हुई है। खगोल (celestial sphere) के चतुर्थ अंशमें अति-कालिक नक्षत्र अधिक पाये जाते हैं और तृतीय अंशमें कम। सीफाइड तारे उसी अंशमें पाये जाते हैं जहाँ अति-कालिक नक्षत्र कम पाये जाते हैं—इस विषयमें भी दोनों प्रकारके तारे एक दूसरेसे मिलते नहीं।

२५० दिनसे अधिक आवर्त्तकालके अतिकालिक तारे खगोलमें लगभग सभी जगह पाये जाते हैं—अवश्य तृतीय अंशमें कम पाये जाते हैं, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं। क़रीब २०० दिनके आवर्त्तकालके अतिकालिक नक्षत्र आकाशगङ्गाके केन्द्र (galactic centre) की तरफ अधिक पाये जाते हैं। इससे मालूम होता है कि अति-कालिक नक्षत्र दो प्रकारके हैं।

मेरिलने (Marrill) अतिकालिक नक्षत्रोंकी गतियोंकी गवेषणा की है। उनके मतानुसार अल्पगति तारोंके आवर्त्त-काल कुछ भी हो सकते हैं, परन्तु द्रुतगति तारोंके आवर्त्तकाल १५०–२५० दिन हैं। आवर्त्तकालके बढ़नेसे गतिका ह्रास होता है।

विज्ञान

विज्ञान-परिषद्, प्रयागका मुख्य-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ६३ | सिंह, सम्वत् २००३, अगस्त १९४६ | संख्या ५

तुलसी

[ले० श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालङ्कार,]

लोकमें इस पौदे का सबसे अधिक प्रचलित नाम तुलसी है। यह नाम बहुत पुराना नहीं है। चरक, सुश्रुत आदि संहिताओंमें हम इस नामको नहीं देखते। उस समय इसे सुरस और अपेतराक्षसी कहा जाता था। चरक संहितामें प्रायः अकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द सुरसका प्रयोग हुआ है और सुश्रुत संहितामें आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द सुरसाका। सुश्रुतका टीकाकार उल्लण सुरसाका अर्थ 'तुलसी इति लोके' लिखता है। इसका मतलब है कि उल्लण के समय (१०६०–१२६० के बीच) में इस पौदेको लोकमें तो अवश्य तुलसी कहने लग गये थे। संस्कृत साहित्यमें इस नामका उल्लेख हमें पहले पहल मध्यकालमें लिखे गये पुराणोंमें मिलता है। फिर बादके बने द्रव्य-गुणके ग्रन्थोंमें इस नामका समावेश कर लिया गया। पुराणोंमें इसका अति प्रसिद्ध एक नाम वृन्दा है। आयुर्वेदके चिकित्सा ग्रन्थोंमें और द्रव्य-गुण के निघण्टुओंमें भी यह नाम कहीं नहीं आया। चरक सुश्रुत के सुरस और अपेतराक्षसी नाम पौराणिक साहित्यमें नहीं उपलब्ध होते।

संस्कृतके नाम[1]

उत्पत्ति बोधक नामः ग्राम्या, सुलभा (गाँवोंमें भी सब जगह सुगमतासे मिल जाती है)।

परिचय ज्ञापक संज्ञाः रम्या (रमणी), सुरभि, सुगन्धा (सुगन्धित पौदा); सुरस, सुरसा (पत्ते रसमय होते हैं, अथवा सुगन्धित रसवाला); बहुपत्री (बहुत पत्तों वाला); स्वादुगन्धच्छदा (जिस पर फूल समूहों-वृन्द में लगते हैं, अथवा एक पौराणिक गाथा के अनुसार विष्णु

---

१ क तुलसी सुभगा तीव्रा पावनी विष्णुवल्लभा ।
सुरेज्या सुरसा ज्ञेया कायस्था सुरदुन्दुभिः ॥
सुरभिर्बहुपत्री च मञ्जरी सा हरिप्रिया ।
अपेतराक्षसी श्यामा गौरी त्रिदशमञ्जरी ।
भूतघ्नी भूतपत्री च ज्ञेया चैकोनविंशतिः ॥
रा० नि०, करवीरादि० ; १२०—१२१ ।

ख तुलसी सुरसा ग्राम्या सुलभा बहुमञ्जरी ।
अपेतराक्षसी गौरी भूतघ्नी देवदुन्दुभिः ॥
भा० प्र०, पुष्प०, ६२ ॥

भगवान् से अभिशप्त वृन्दा नाम की एक सती स्त्री विष्णु पर पूजार्थ चढ़ाई जाने के लिए भूलोक में तुलसी पौदे के रूप में बन गई); मञ्जरी (मञ्जरियों वाला पौदा); सुमञ्जरी (ये मञ्जरियाँ सुन्दर लगती है); बहुमञ्जरी (बहुत मञ्जरियों वाला); त्रिदशमञ्जरी (मञ्जरियों वाला यह पौदा देवों—त्रिदश—को प्यारा है); भूतेष्टा, भूतप्रिया (सबप्राणियों का प्यारा है); सुरेज्या [देवताओं से पूजा जाने वाला, अथवा देवों पर पूजामें चढ़ाया जानेवाला] ; वैष्णवी फैल जाने वाला, बीजोंसे इसका विस्तार आसानीसे सब जगह हो जाता है; अथवा विष्णु पर पूजार्थ चढ़ाया जाने वाला अथवा वैष्णवोंका प्रिय पौदा); विष्णुवल्लभा, विष्णु-प्रिया,हरिप्रिया (विष्णु देवका प्रिय); कृष्ण प्रिय (श्रीकृष्णका-प्रिय पौदा); तुलसी (पौराणिक गाथाकी एक पतिव्रता स्त्री, जिसके सौन्दर्यकी तुलना न हो सकनेसे उसका नाम तुलसी पड़ा और बादमें नारायणके वरसे वह शालिगरामकी पूजाके लिए तुलसी पौदेके रूपमें पैदा हो गई)[१]

गुणप्रकाशक नामः सुरसा (जो मुखमें खूब लाला—रस—ला दे); भूतघ्नी, दैत्यघ्नी, अपेतराक्षसी, (राक्षस रूप रोग-कृमियोंको भगा देने वाली); पापघ्नी (रोग रूप पापका नाशक); तुलसी (रोगादियोंका संहार करनेमें जिसकी तुलनामें और कोई न हो, तुल्यं सादृश्यं स्यति नाशयति अथवा इस पौदेके प्रभावसे मृतप्राय व्यक्ति–तु–भी दीप्तिको लसति—प्राप्त करता है)[२]; पूतपत्री (पत्रोंका प्रयोग शरीर-को पवित्र करता है); पावनी (सारे पौदेमें ही पवित्र कर-नेका गुण है, इसलिए); सुभगा (यह कल्याणकारी पौदा है); कायस्था (शरीरको स्थिर करता है); तीव्रा (तेज़ीसे गुण करनेवाले); सरला (चिकित्सामें सरलतासे उपयोग किये जानेवाले); सुरदुन्दुभि, देवदुन्दुभि (इस पौदेमें देव श्रेष्ठ गुण—बसते हैं यह देवों—श्रेष्ठगुणोंका नगारा है)।

दूसरी भाषाओंके नाम

हिन्दी—तुलसी, वृन्दा, विन्दरा, विन्दरावनी, सफेद तुलसी काली तुलसी।

मराठी—तुलसा, तुलसीचे झाड़।

तामिल—तुलशी, अलंगाई।

तेलगु—गग्गेरा, गग्गेर चेट्टु। वृन्दा, इयुलसी, कृष्ण तुलसी, कुक्क तुलसी, तुलसी चेट्टु, नल्ला तुलसी, नल्ला गगेरा।

कर्णाटकी—खरेड तुलसी।

सिंहाली—यउरूटला, मुड्डुरूदुल्ला।

वर्मी—लुन।

पुर्तगाली—मंगेरिकाग्गे।

फिलिपीनी—अल्वहक।

फारसी—रहाँ, रेहान्।

अरबी—तुलसी बद्रूत, शाहशफरम।

अंग्रेज़ी—होली बेसिल (Haly basil), सेक्रेड बेसिल (Sacred basil), मॉन्क्स बेसिल (Monk's basil), रफ़ बेसिल (Rough basil)।

फ्रेंच—बेसिलिक सेण्ट (Basilic saint)।

ग तुलसी सुरसा गौरी पापघ्नी विष्णुवल्लभा।
मयूरा सरला कृष्णा भूतेष्टा देवदुन्दुभिः॥
भूतप्रिया नागमाता चक्रपर्णी सुमञ्जरी।
स्वादुगन्धच्छदा भूतपतिश्चापेतराक्षसी॥
कै० दे० नि०, क्षे० ब०; ११२४-११२५।

घ तुलसी सुरसा गौरी भूतघ्नी बहुमञ्जरी।
म० पा० नि०, कर्पूरादि०; ७।

ङ अलसा तुलसी रम्या सुरसा बहुमञ्जरी।
कृष्णप्रिया सदा वृन्दा दैत्यघ्नी देवदुन्दुभिः॥
गौ० त०। तुलसी माहात्म्य।

१ क नरा नार्यश्च तां दृष्ट्वा तुलनां दातुमक्षमाः।
तेन नाम्ना च तुलसीं तां वदन्ति पुराविदः॥
ब्रह्मवैवर्त पुराण, प्रकृति खण्ड, अ० १५; १४।

ख शापान्नारायणस्यैव कलया दैवयोगतः।
भविष्यसि वृक्षरूपा त्वं पूता विश्वपावनी॥
प्रधाना सर्वपुष्पाणां विष्णुप्राणाधिका भवेत्।
त्वया विना च सर्वेषां पूजा च विफला भवेत्॥
वृन्दावने वृक्षरूपा नाम्ना वृन्दावनीति च।
त्वत्पत्रैर्गोपिका गोपाः पूजयिष्यन्ति माधवम्॥
ब्र० वै० पु०, प्र० ख० अ० १५; ३५-३७।

२ तकारो मरणं प्रोक्तं तद्योगः स्यादुकारतः।
मृता लसति सेत्येवं तुलसीत्येवं गीयते॥
वृन्दर्म पुराण, अ० ७; ६३।

लैटिन—ओसिमम सैंक्टम (Ocimum sanctum lim)
नैसर्गिक वर्ग—लिबिएटी (Libiatae)।

नयी तथा पुरानी फ्रेंच और ग्रीक भाषाओंमें बेसिलको 'शाही' अथवा 'राजाके सदृश' कहते हैं। इसलिए तुलसी के अंग्रेजी और फ्रेंच नामोंका अर्थ हुआ। "पवित्र शाही पौदा" या 'पुरोहितका शाही पौदा' अथवा 'सन्त जनोंका शाही पौदा'। लैटिन नाम भी पवित्रताका सूचक है। इन नामोंके अनुसार, यूरोपमें भी यह पौदा उसी तरह पूज्य और सम्मानित रहा है जैसे भारतमें।

पंजाबी आदि बहुत सी प्रान्तीय भाषाओंमें तुलसीके नामोंमें विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। आवश्यक विस्तार हो जानेके भयसे उन नामोंको यहाँ नहीं दिया गया।

भेद

सफेद और काली दो क़िस्में देखी जाती हैं। दोनोंमें मुख्य अन्तर पत्तों और शाखाओंके रंगका है। काली क़िस्ममें इनका रंग ज़रा काला-सा होता है। आयुर्वेदिक ग्रन्थोंमें भी ये दो भेद लिखे हैं, और दोनोंको एक ही सीधे नामके अन्दर वर्णन किया गया है। काली क़िस्मके लिए एक अलग नाम श्यामा है और सफेदके लिए गौरी। शेष नाम दोनोंके लिए एक समान ही प्रयुक्त हुए हैं दूसरी भाषाओंके जो नाम पहले दिये गये हैं उनमें दोनों भेदोंके नाम आ गये हैं।

चरकने सामान्यतया सुरस नामसे दोनों भेदोंका ग्रहण किया है। परन्तु कुछ नुस्खोंमें वह स्पष्टतया सफेद[1] और कुछमें काली[2] क़िस्म लेनेके लिए निर्देश देता है। इसलिए यह मानना चाहिए कि चरक इसके काले और सफेद भेदों को अलग-अलग जानते थे। सुश्रुतने भी ये दो भेद दिखाये हैं।[3]

१ सारागद में—
.........शुक्लसुरसमञ्जरी............।
च०, चि०, अ० २३; १०० ।

२ ....सुरसास्यासितस्य च ।
च०, चि०, अ० १८; ११६ ।

३ सुरसाऽश्वेतसुरसा................।
सुरसादि गणये ह्येष............।
सु०। सू०। अ० ३८; १६-१७ ।

कैयदेव (१४५० ईस्वीके लगभग) ने तुलसीके ये तीन भेद लिखे हैं—काली तुलसी, सफेद तुलसी और कर्पूर तुलसी[1]। इस लेखकने सफ़ेद भेदके निम्नलिखित नाम अलग गिनाये हैं—गौरी, श्वेता (सफ़ेद रंग वाली); राजसी (रजोगुण वाली अथवा राजाओंसे सम्मानित); श्रीमञ्जरी (सुन्दर कल्याणकारी मञ्जरियों वाली); सुरभि मञ्जरी (मञ्जरियोंमें सुगन्ध होती है), भूरि मञ्जरी (पौदे पर बहुत सारी मञ्जरियाँ निकलती हैं; शक्रपत्नी (इन्द्रकी पत्नी ?)।

कपूर तुलसीकी बेल होती है, पौदा नहीं। अनुमान होता है कि यह एक पृथक जाति (Species) है जिसमेंसे कपूरकीसी गन्ध आती है। भूतवेश्या इसका एक पर्याय है। कैयदेवने तीनोंके गुणोंमें भेद नहीं दिखाया।

सदाशिव बताते हैं कि तुलसीकी सफ़ेद और काली क़िस्मोंको भिन्न-भिन्न समझना ठीक नहीं।[2] भावमिश्रकी सम्मतिमें दोनों भेदोंके गुणोंमें कोई अन्तर नहीं और दोनों क़िस्में एक समान ही गुणवती हैं।[3]

मेरा अनुभव इन विद्वानोंसे ज़रा भिन्न है। काली तुलसीमें सुगन्ध अधिक होती है और यह अधिक तेज़ होती है। मेरी सम्मतिमें यह औषध प्रयोगमें सफ़ेदकी अपेक्षा अधिक गुणकारी है।

भारतीय घरोंमें अधिकतर सफ़ेद तुलसी लगाई जाती है। मेरी रायमें काली किस्मको रोपनेका प्रचार बढ़ना चाहिए। तीव्रताके कारण इससे मच्छर अपेक्षाकृत अधिक दूर रहेंगे। रोधक (prophylactic) और शामक (curative) दोनों चिकित्साओंमें हमें कालीको ही चुनने

१ अपरा राजसी गौरी श्वेता सुरभिमञ्जरी ।
श्रीमञ्जरी बसाग्रस्था भूतघ्नी भूरिमञ्जरी ॥
शक्रपत्नी नागनामा कायस्था वृत्तसाग्रसी ।
भूतवेश्या लता चान्या कर्पूरतुलसी स्मृता ॥
कै० दे०, ओ व०; ११२६-२७ ।

२ शुक्लकृष्णेति भेदं तु यः करोति विमूढधीः ।
स याति नरकं घोरं सत्यं सत्यं वरानने ॥
गौरीतन्त्र, तुलसी माहात्म्य; ६ ।

३ शुक्ला कृष्णा च तुलसी गुणैस्तुल्या प्रकीर्त्तिता ।
भा० प्र०, पुष्प; ६३ ।

में झुकाव होना चाहिए। हाँ, जहाँ पर तुलनामें कम तीव्र पदार्थकी आवश्यकता हो वहाँ सफ़ेद तुलसी बरती जानी चाहिए।

जातियाँ

वनस्पतिशास्त्रके विद्वानोंने तुलसी (Ocimum) गण (genus) में साठ जातियों (species) के पौदों को ढूँढ निकाला है। ये जातियाँ भारत, अफ्रीका, अरब और ब्राज़ील आदि गरम प्रदेशोंमें मिलती हैं। पुनर्वसु आत्रेयने अपने ग्रन्थमें नौ जातियोंके चिकित्सामें उपयोग लिखे हैं। इनके नाम ये हैं—सुमुख, सुरस, कुठेरक, अर्जक, अरण्डीर, कालमालक, पर्णास, श्रवक और फणिज्झक।[१]

तुलसीगणमें तीव्र सुगन्ध वाले क्षुप या छोटी झाड़ियों के सदृश पौदे होते हैं। इनमें पत्ते सादे, एक दूसरेके सामने और ग्रन्थियोंसे युक्त होते हैं। फूल छोटे और चक्र में लगते हैं। एक चक्रमें छहसे दस तक फूल हो सकते हैं। एक लम्बी सीख पर बहुतसे चक्र लगकर वह रचना बनाते हैं जिसे मञ्जरी कहते हैं।

इस गणकी जातियाँ उत्तेजक, दीपक, आमवातहर, स्वेदजनक और ज्वर-नाशक हैं। भूमण्डल पर निम्न-लिखित जातियाँ औषध प्रयोगमें इस्तेमाल होती हैं—

यूरोपमें—बर्वरी (Ocimum basilicum Linn) और राम तुलसी (O. gratinimum Linn)

चीन और हिन्दचीनमें—बर्वरी।

जापान और मलायामें—ओसिमम क्रिस्पम (O. crispum thumb)।

फ़िलिपाइन द्वीपोंमें - तुलसी, बर्वरी और राम तुलसी।

गायना में—ओसिमम माइक्रेन्थम (O. micranthum willd.)।

ब्राज़ील में—राम तुलसी, अर्जक (O. canum-sims.) और ओसिमम माइक्रेन्थम।

ला री यूनियन में—बर्वरी और राम तुलसी।

इथोपिया और एबिसीनियामें—राम तुलसी।

गिनी और गोल्ड कोस्टमें—बर्वरी, अर्जक और ओसिमम विरिडे (O. Viride willd.)।

[१] देखें : च०, वि०, अ० ८; १४१।

सीरा लिगोनि और लाइबेरियामें—ओसिमम विरिडे।

दक्षिण अफ्रीकामें—अर्जक और ओसिमम विरिडे।

तुलसीमें और इस गणके बर्वरी आदि पौदोंके रासायनिक संघटन, गुण, घरेलू तथा चिकित्सामें उपयोग आदिमें बहुत साम्य है। आयुर्वेदिक लेखकोंने और आधुनिक अन्वेषकोंने भी इनके गुणों और उपयोगोंको प्रायः एक जैसा लिखा है। इसलिए इन जातियोंको इस पुस्तकमें सम्मिलित न करनेसे यह पुस्तक अधूरी रह जाती। वनस्पतिशास्त्रके परिशीलकों द्वारा पता की गई तुलसीकी सब जातियोंका इसमें समावेश करना तो अभीष्ट नहीं हो सकता, क्योंकि वे सब जातियाँ इस देशवासियोंके लिए इतनी महत्वकी नहीं। हमारे लिए जो जातियाँ अधिक लाभदायक हो सकती हैं ऐसी मुख्य जातियोंका ही इस पुस्तकमें समावेश किया गया है।

प्राप्ति-स्थान

भारत, ब्रह्मदेश और श्रीलङ्कामें सब जगह तुलसी पायी जाती है। भारतमें हिमालय पर आठ हज़ार फुटकी ऊँचाई तक मिलती है। धार्मिक कार्योंमें उपयोग करनेके लिए हिन्दू इसे बहुत बोते हैं। जंगलोंमें भी प्रायः स्वयं उगी हुई मिलती है। श्रीयुत वाटका यह कथन गलत प्रतीत होता है कि 'यह पौदा भारतकी मूल उपज है या नहीं इसमें सन्देह।'[१]

अत्यन्त पवित्र पौदा माना जानेसे इसे बोनेका रिवाज़ इतना बढ़ गया है कि अब यह प्रत्येक हिन्दूके बगीचेमें, घरमें और मन्दिरोंके आस-पास आसानीसे देखा जा सकता है। भारतमें प्रायः हर यूरोपियनके गृहउद्यानमें भी यह गमलोंमें या ज़मीनमें बोया हुआ मिल जाता है।

श्रीयुत पार्करको पञ्जाबमें किसी जगह यह जंगलोंमें स्वयं उगा हुआ नहीं मिला। पञ्जाबमें सदा बोया हुआ ही मिलता है इसलिए इस प्रान्तमें सम्भवतः यह निसर्गमें नहीं उगता।[२]

पश्चिमीय एशिया और अरबसे मलय द्वीपपुंज आस्ट्रेलिया और प्रशान्तके द्वीपों तक इस पौदेका विस्तार है।

[१] डिक्शनरी ऑफ़ दि इकानोमिक प्रॉडक्ट्स आफ इण्डिया।

[२] ए फॉरेस्ट फ़्लोरा फार दि पञ्जाब।

बोनेसे लाभ

हिन्दू देवियाँ और भक्त लोग तुलसीको सदा घरोंमें रोपते हैं। जब घर बन रहे होते हैं तो उनमें तुलसीके लिए अलग स्थान रख लिया जाता है। बड़े घरोंमें तो एक बड़े चबूतरेमें इसे लगाते हैं। इस स्थानको तुलसी वृन्दावन कहते हैं। भक्तजन नियमसे इन पौदोंको सींचते हैं। वे हमेशा इस बातका ध्यान रखते हैं कि इनकी बाढ़ तो ठीक हो रही है। जिसके घरमें कई पौदे रहते हैं पालक उनके पास झुका हुआ उनकी देख-भालमें बहुधा व्यस्त रहता है।

इस तरह सेवा करनेसे घरोंमें पौदे ख़ूब पनप जाते हैं और इनकी जड़ें ज़मीनमें फैलती चली जाती हैं। जब तक पौदे लगे रहते हैं घरके लोग उनका उपयोग करते हैं। यह उनको सदा नीरोग रखती है। उनके घरमेंसे बहुत पुरानी बीमारियाँ भी निकल जाती हैं। भगवान्‌की कृपासे वहाँ सदा सुख रहता है।[1]

तुलसी बोनेका प्रचार बढ़े तथा उचित देख-रेखमें पौदे ख़ूब फूलें फलें और घरवालोंको स्वस्थ रखें इस दृष्टिसे इसकी सुव्यवस्थित खेती भी धर्मका अंग बना दी गई जिससे कर्त्तव्य समझकर इसे हर घरमें अवश्य बोया जाया करे। अच्छा फल मिलनेकी आशासे मनुष्यको कार्य करनेमें उत्साह होता है। इसलिए ब्राह्मणों ने धर्मग्रन्थोंमें लिखा है—

तुलसीकी जड़ोंमें उग आनेवाले घास पातको निलाई करके चुनने वालेसे हो गई ब्रह्महत्याको भी विष्णु भगवान क्षमा कर देते हैं। गरमियोंमें ठण्डे सुगन्धित पानीसे तुलसीको सींचने वाला मोक्षको प्राप्त करता है। विशेषतः गरमियोंमें तुलसीको छायामें ठण्डी जगह पर रखकर बचाने वाला सब पापोंसे छूट जाता है। वैशाखमें तुलसीको रोज़ सींचने वाला अश्वमेधके फलको पाता है, और जो मनुष्य कभी-कभी दूधसे भी इसे सींच लेता है उसके घरमें लक्ष्मी स्थिर होकर वास करती है। तुलसीके नीचे गोबरका लेप करने वाला और झाड़ूसे बुहारकर रोज़ सफ़ाई करनेवाला सदा प्रसन्न रहता हुआ ब्रह्माके साथ रहता है।[1]

इस विवरणको पढ़कर पाठक ब्राह्मणोंकी सद्भावनाओंका ठीक तरह अनुमान कर सकते हैं।

वानस्पतिक वर्णन

अति सुगन्धित, मृदु, अनेक सालों तक जीवित रहने वाला (perennial), सीधा, बहुत शाखाओं वाला एक-से तीन फ़ुट ऊँचा पौदा है। अच्छे पाले-पोसे हुए पाँच-छः साल पुराने कुछ पौदे मैंने छः फ़ुट तक ऊँचे देखे हैं। इनका फैलाव पाँच-छः फ़ुटमें होगा। इनका तना अच्छा मोटा और कठीला (woody) हो जाता है। इसे खराद कर मालाके मनके बनाते हैं।

---

१ क दृष्टा स्पृष्टा तथा ध्याता कार्तिके नमिताऽर्च्चिता।
रोपिता सेचिता नित्यं पापं हन्ति युगार्जितम्॥
अष्टधा तुलसी यैस्तु सेविता द्विजसत्तम।
युगकोटिसहस्राणि ते वसन्ति हरेर्गृहे॥
रोपिता तुलसी यावत् कुरुते मूलविस्तृतिम्।
तावद् युगसहस्राणि तनोति सुकृतं हरिः॥
रोपिता तुलसी यावद् वर्द्धते वसुधातले।
तावत्कल्पसहस्राणि विष्णुलोके महीपते॥
पद्म पुराण, उत्तर खण्ड।

ख तुलस्या रोपणात्सेकात्पातकानि महान्त्यपि।
संक्षयं यान्ति देवेशि! तमः सूर्योदये यथा॥
गौ० त०, तु० मा०; ३०।

१ छिन्दन्ति तृणजातानि तुलसी मूलजानि वै।
तद्‌हस्था ब्रह्महत्याश्चिनोति तत्क्षणाद्धरिः॥
ग्रीष्मकाले द्विजश्रेष्ठ! सुगन्धैः शीतलैर्जलैः।
तुलसीसेचनं कृत्वा वरो निर्वाणमाप्नुयात्॥
चन्द्रातपं वा छत्रं वा तुलस्यै यस्तु यच्छति।
विशेषतः निदाघेषु स मुक्तः सर्वपातकैः॥
वैशाखेऽक्षतधाराभिरद्भिर्यस्तुलसी जनः।
सेचयेद्योऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति नित्यशः॥
कदाचित्तुलसीं दुग्धैः सेचयेद् यो नरोत्तमः।
तस्य वेश्मनि विप्रर्षे! लक्ष्मीर्भवति निश्चला॥
गोमयैस्तुलसीमूले यः कुर्यादनुलेपनम्।
सम्मार्जनञ्च कुरुते तस्य पुण्यफलं श‍ृणु॥
रजांसि तस्य यावन्ति दूरीभूतानि जैमिने।
तावत्कल्पसहस्राणि मोदते ब्रह्मणा सह॥
प० पु०, क्रियायोगसार।

शाखाएँ गोल, एक दूसरेके सामने, सीधी, ऊपरकी ओर जाती हुई तथा फैली हुई रहती हैं। पत्ते समाकार (oblong), वृन्तशिख (obtuse) या तीक्ष्णाग्र (acute), एकसे ढाई इञ्च लम्बे, आधार तंग, पत्तोंकी धार अखण्डित या कुछ-कुछ उन्नतदन्त (subsenate), पत्तोंके दोनों पृष्ठ रोमश और बहुत सूक्ष्म धब्बों युक्त पत्तोंका वृन्त आधेसे एक इञ्च तक लम्बा होता है। फूलोंके साथ जो पत्ते लगते हैं वे वृन्तरहित, अण्डाकृति-मालाकार होते हैं।

फूलोंकी मञ्जरी शाखाओंके सिरों पर लगती है। फूल साल भर खिलते रहते हैं। मञ्जरी पर फूल चक्रोंमें लगते हैं। तुलसीमें ये चक्र पास-पास होते हैं। मञ्जरी बहुत कोमल, पन्द्रहसे बीस सेंटीमीटर लम्बी; वृन्त-पत्र (bracts) पतले, पुष्पछद (calyx) से प्रायः छोटे, चौड़ाई लिए हुए अण्डाकार या हृदाकृति-अण्डाकार दीर्घतीक्ष्ण (acuminate); वृन्त (pedicles) पतले, पुष्पछदके समान या ज़रा अधिक लम्बे; पुष्पछद छोटा ⅛ से ⅙ इञ्च लम्बा; नीचेके दो ओष्ठ बहुत लम्बे, ऊपरके चौड़े समाकार ओष्ठसे अधिक लम्बे; पार्श्वीय दोनों ओष्ठ चौड़े अण्डाकार और निचलेकी अपेक्षा छोटे होते हैं। पुष्पदल समूह (corolla) बहुत छोटा, ⅛ इञ्च लम्बा, जामनी लाल रंगका और पुष्पछदकी अपेक्षा मुश्किलसे लम्बा होता होगा। इसके ऊपरके ओष्ठका पृष्ठ रोमश होता है। परागदण्ड ओष्ठोंमेंसे बाहर निकले हुए दीखते हैं। परागदण्डों (stamens) के ऊर्ध्व युगलके दण्डों (filaments) के आधार पर एक छोटा रोमश अवशेष होता है। बीज अर्द्धघण्टाकृति (subglobase) या चौड़ाई लिए समाकार, ज़रासे दबे हुए, प्रायः चिकने, पीले लाल भूरेसे होते हैं।

पत्ते, शाखा आदि प्रत्येक भागमेंसे एक रुचिकर प्रिय गन्ध आती है। शाखाओं और पत्तोंके पृष्ठ पर बिखरे हुए छोटे ग्रन्थियुक्त (glandular) रोओंमेंसे स्रवित हुए एक उड़नशील तेलकी उपस्थितिके कारण यह सुगंध होती है। इस तेलके अधिक भागको पौदा छोटे-छोटे खानोंमें इकट्ठा करके रख लेता है। पौदेकी तेज़ बाढ़के समय जब उसे भोजनकी अधिक जरूरत होती है यह काम आता है। ऐसा प्रायः तब होता है जब पौदेमें बीज लगते हैं और प्रत्येक बीजको अधिक पोषक भोजनकी अवश्यकता होती है। फूलने और फलनेके समय यह देखा जा सकता है कि पौदेमें गन्ध अपेक्षाकृत कम हो जाती है।

छायामें उगनेवाले पौदोंकी अपेक्षा खुले स्थानोंमें उगने वाले पौदोंमें यह उड़नशील तेल बहुत कम होता है। छाया पौदेको पत्तोंकी वृद्धि करनेके लिए प्रेरित करती है और इसलिए ऐसी अवस्थामें खाद्य पदार्थकी भी अधिक जरूरत होती है जिससे भविष्यके लिए यह ज्यादा जमा नहीं हो सकता। इसलिए ऐसे पौदे खुले स्थानोंके पौदोंकी अपेक्षा जल्द नहीं फूलते।

ग्रन्थियुक्त रोओंके अतिरिक्त पौदेका सम्पूर्ण पृष्ठ ऊन जैसे मुलायम, सूक्ष्म, सफेद भूरेसे रंगके रोओंसे ढका रहता है। खुली वायुके सम्पर्कमें आए हुए पत्तोंके पृष्ठसे होने वाले वाष्पीभवनको बालोंकी यह स्तर कम करती हैं।

रासायनिक संघटन

तुलसीके पत्तोंमें पीलेसे हरे रंगका एक उड़नशील तेल होता है। कुछ समय तक रखा रहनेसे यह स्फटिकाकार हो जाता है। तब इसे तुलसी कपूर (Basilcamphor) कहते हैं। उड़नशील तेलमें एक तार्पीन (terpene) होता है।

उपयोगी भाग

पत्ते, मूल, फूल और बीज प्रायः पौदेका प्रत्येक भाग चिकित्सामें काम आता है। हरा पौदा न मिल सकता हो तो उसे काटकर छायामें सुखाकर रख लेते हैं। इसे कषाय, बटी, तेल आदि विविध भागोंमें अकेला या अन्य द्रव्योंके साथ उपयोग करते हैं।

धर्म-कर्ममें पत्ते, मञ्जरियाँ और पौदेकी जड़की मिट्टी काम आती है। बृन्दावनमें एक प्रकारकी चिकनी मिट्टी होती है जिसे घिस कर चन्दनकी तरह लेप किया जाता है। जब यह मिट्टी (गोपीचन्दन) न हो तो तुलसी की जड़की मिट्टीका लेप करनेसे भी वही लाभ कहा जाता है।[१]

१ यो गोपीचन्दनाभावे तुलसीमूलमृत्तिकाम्।
मुमुक्षुर्धारयेन्नित्यमपरोक्षात्मसिद्धये॥
वासुदेवोपनिषद्।

संग्रह

अच्छी तरह सुखाए पौदेको बन्द कनस्तरोंमें सूखे स्थान पर रखना चाहिए। नमी और कीड़ोंसे बचानेके लिए कभी-कभी निरीक्षण करते रहना चाहिए। आवश्यक हो तो एक धूप दिखा सकते हैं।

पहले यह विश्वास रहा है कि तुलसीके तीन-काल पुराने सूखे पत्ते भी क्यों न हो विष्णु पर चढ़ाये हुए पानीमें धोनेसे वे शुद्ध हो जाते हैं और श्राद्ध, व्रत, दान तथा पूजामें बरते जा सकते हैं।[२] हमारी सम्मतिमें यह अशक्योपदेश है और इसका अभिप्राय यह है कि जब ताजे और अच्छे पत्ते मिलने संभव न हो तो पूजामें सूखे पत्तों से भी काम चलाया जा सकता है। औषध प्रयोगमें पुराने पत्तोंको नहीं लेना चाहिए क्योंकि ये निर्वीर्य हो जाते हैं।

ऐतिहासिक विवेचन

वेदों, आरण्यकों तथा ब्राह्मण ग्रन्थोंमें तुलसीका उल्लेख नहीं मिलता और न सर्वमान्य प्राचीन बारह उपनिषदोंमें ही किसीमें। शंखलिखितके धर्मशास्त्रमें एक जगह तुलसीपत्र खानेका उपदेश मिलता है। यह धर्मशास्त्र अब तक मूल रूपमें नहीं मिला। इधर-उधर बिखरे हुए अंशोंको संग्रह करके भण्डारकर इंस्टिट्यूटने इसे छपवाया है। इसकी प्राचीनता प्रामाणिक मानी जाय तो स्वीकार करना पड़ेगा कि बहुत देरसे तुलसी व्यवहारमें आ चुकी थी। शङ्खलिखितने तुलसीदल खानेके साथ-साथ चक्र आदिके चिह्न धारण करना भी लिखा है।[१] ये सब वैष्णव सम्प्रदायकी बातें हैं जिनका उद्गम हम बहुत प्राचीन नहीं खोज पाते। धर्मशास्त्रका काल तो प्राचीन है परन्तु मूल रूपमें न मिल सकनेसे संकलित करके

२ त्रिकालं तुलसीपत्र शुष्कं पर्युषितं सति।
श्राद्धे व्रते वा दाने वा प्रतिष्ठायां सुरार्चने॥
भूगतं तोयपतितं यद्दत्तं वैष्णवे सति।
शुद्धन्तु तुलसीपत्रं चालनादन्यकर्मणि॥

१ शङ्खचक्राद्यङ्कनं च तुलसीदलभक्षणम्।
यः कुर्यान्नियतं भक्त्या स याति परमां गतिम्॥
धर्मशास्त्र, शंखलिखित; पृ० १२४।

छपाये गये धर्मशास्त्रकी प्रामाणिकतामें सन्देह पैदा होता है।

अथर्ववेदीय परिशिष्टमें काली राईके प्रकरणमें एक स्थल पर तुलसीभू शब्द आया है।[१] पाणिनिके सूत्रोंमें तुलसी या इसका पर्यायवाची कोई शब्द नहीं। गण पाठोंमें भी तुलसी शब्द तो नहीं परन्तु सुरस[२] शब्द आया है इसका अर्थ तुलसी किया जाय तो इस समय यह पौदा उपयोगमें रहा होगा।

समस्त वैदिक वाङ्मय तुलसीके सम्बन्धमें मौन है। चिकित्साशास्त्रकी प्रारम्भिक संहिताओंमें इस पौदेको तुलसी से भिन्न नामोंके अन्दर पहले-पहल वर्णन किया गया। पुराणोंमें, और त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषद्, सामरहस्योपनिषद्, रामरहस्योपनिषद्, वासुदेवोपनिषद् आदि वैष्णव उपनिषदोंमें तुलसी नामसे इस पौदेकी स्तुतिकी गई। तुलस्युपनिषद् नामसे एक छोटी-सी उपनिषद् ही अलग मिलती है जिसमें इस पौदेकी महिमा, तोड़नेकी रीति, पानी देना और पूजा पाठमें इसे बरतनेके बारेमें निर्देश दिये गये हैं। शरीरको स्वस्थ रखनेके लिए और रोगोंको नष्ट करनेके लिए इसका उपयोग किया जा सकता है इस बातकी ओर भी तुलस्युपनिषद् कुछ संकेत देती है।[३]

१ तुलसीभूर्महादेवी भूर्णस्पृष्टस्तथा वशी।
राजाभयं सुरेश्वरी मार्जनाद् धारणात् तथा॥
अ० वे० प०, परिशिष्ट ३५, ख० २, १०।

२ देखें: पाणिनीयाष्टक, अ० ४, पा० २, सू० ८०।

३ श्यामां श्यामवपुर्धरां त्रृक्स्वरूपां यजुर्मनां ब्रह्माथर्वप्राणां कल्पहस्तां पुराणपठितायमृतोद्भवामममृतरसमञ्जरीमनन्तामनन्तरसभोगदां वैष्णवीं विष्णुवल्लभां मृत्युजन्मनिवर्हणीं दर्शनात्पापनाशिनीं स्पर्शनात्पावनीमभिवन्द्नाद्रोगनाशिनीं सेवनान्मृत्युनाशिनीं वैकुण्ठार्थिनाद्धिपद्हन्त्रीं भक्षणाद् वपुनप्रदां प्रदक्षिणाद् दारिद्रय नाशिनीं य एवं वेद स वैष्णवो भवति।
अमृतेऽमृतरूपासि अमृतत्वप्रदायिनी।
त्वं मामुद्धर संसारात क्षीरसागरकन्यके॥
श्रीसखि! त्वं सदानन्दे मुकुन्दस्य सदा प्रिये।
वरदाभयहरन्ताभ्यां यां विलोक्य दुर्लभे॥

पुराने धार्मिक साहित्यमें और आयुर्वेदिक शास्त्रमें तुलसीका उतना महत्व नहीं जितना साधारण जनता आजकल इसे दे रही है। वैद्योंमें तो आजकल भी इसका विशेष उपयोग किया जाता हुआ नहीं दिखाई देता। बहुत कम ऐसे वैद्य मिलेंगे जिनके औषधालयमें ऐसी कोई दवा होगी जो मुख्यतया तुलसीसे बनाई जाती हो। लाहौरके किसी भी धर्मार्थ औषधालयमें मुख्यतः तुलसीसे बनी एक भी औषध नहीं है। देशकी बड़ी बड़ी फार्मेसियोंमें देशी चायके अतिरिक्त और कोई दवा नहीं जिसमें तुलसी प्रधान घटक हो। धातुओंकी भस्म बनानेमें और विभिन्न प्रकारकी वटी या रसवटियोंमें भी इसके पत्तोंके रससे बहुत कम भावनाएँ दी जाती हैं।

चरक और सुश्रुतने जिन सात-आठ सौ वनस्पतियोंके उपयोग लिखे हैं उनमें एक यह भी है। दूसरी वनस्पतियोंकी तुलनामें जब हम इस पर विचार करते हैं तो मालूम होता है कि ऐसे पौदोंकी संख्या बहुत काफ़ी है जिन्हें भारत के आदि चिकित्सकोंने तुलसीकी अपेक्षा कहीं अधिक उपयोगी पाया था। जिन आयुर्वेदिक ग्रन्थोंमें वनस्पतियोंके कल्प लिखे मिलते हैं उनमें किसी भी ग्रन्थमें इसका कल्प (विस्तृत विवेचन) नहीं मिलता। कालकी दृष्टिसे जो नये ग्रन्थ लिखे गये हैं, जैसे चक्रदत्त संहिता, शार्ङ्गधर संहिता, भैषज्य-रत्नावली आदि, उनमें भी इसका विशेष वर्णन नहीं। कुछ ग्रन्थोंमें तो इसका नाम तक नहीं, जैसे अर्कप्रकाशमें।

हमारे दैनिक जीवनमें इसे स्थान मिलनेसे रोगोंसे बचनेकी सम्भावनाएं कितनी बढ़ सकती हैं, यह पहले पहल पुराणकारोंने अनुभव किया। रोधक और शामक दोनों चिकित्साओंमें जनताके स्वास्थ्य को उन्नत करके नीरोग रहने की सम्भावनाएँ यह पौदा बढ़ा सकेगा इन विचारोंने इसके व्यापक प्रयोग किये जानेके लिए पुराणकारोंको जो प्रेरणा दी उसके फलस्वरूप ही हम पुराणोंके पन्नेके पन्ने तुलसीकी महत्ता प्रचारित करनेमें भरे देखते हैं। विशिष्ट गुणोंको देखकर ही धर्माचार्योंने इसे उच्च स्थान पर आरूढ़ किया और भारतका यह जातीय पौदा बन गया था, जो न केवल हिन्दुओंमें पूज्य रहा है परन्तु दूसरे धर्मावलम्बियोंमें भी इसके लिए पूज्य भाव रहे हैं।

एक सुन्दर बगिया का स्वामी दिन-रात अपनी बगिया को सजानेमें लगा रहता था। धर्म-कर्ममें इसका मन नहीं था। सिक्खोंके धर्मगुरुने उसे उपदेश किया था। पुण्यफल देने वाली तुलसी माला को धारण करके राम नाम जपा कर।'[1] पाँचवें गुरु श्री अर्जुनदेव जी ठीक बताते हैं कि 'जब मन पवित्र नहीं तो तुलसी माला क्या करेगी?'[2]

पौराणिक गाथाएं

यह पौदा इतना अधिक पवित्र और विशिष्ट गुणों वाला क्यों समझा जाने लगा इस बात पर प्रकाश डालने वाली बहुत सी गाथाएँ भारतीय पुराणोंमें मिलती हैं। तुलसीकी उत्पत्तिके सम्बन्ध में ब्रह्मवैवर्त पुराण, प्रकृतिखण्ड के तुलस्युपाख्यानमें बारह से इक्कीस अध्यायोंके अन्तर्गत बड़े विस्तारसे एक कथा है जो अगले अंकमें संक्षेपमें दी जायगी।

[शेष फिर]

अवृत्तवृत्तरूपासि तुलाकोटिविभेऽजरे ॥
अतुले त्व तुलायां हि हरिरेकोऽस्ति नान्यथा।
त्वमेव जगतां धात्री त्वमेव विष्णुवल्लभा ॥
त्वमेव सुरसंसेव्या त्वमेव मोक्षदायिनी।
त्वच्छायायां वसेल्लक्ष्मीस्त्वन्मूले विष्णुरव्ययः
समन्ताद्देवताः सर्वाः सिद्धचारणपन्नगाः।
यन्मूले सर्वतीर्थानि यन्मध्ये ब्रह्मदेवताः ॥
यदग्रे वेदशास्त्राणि तुलसीं तां नमाम्यहम्।
तुलसि ! श्रीसखि शुभे पापहारिणि पुण्यदे ॥
नमस्ते नारदनुते नारायणमनः प्रिये।
ब्रह्मानन्दाश्रुसंजाते वृन्दावननिवासिनि ॥
सर्वावयवसम्पूर्णे अमृतोपनिषद्रसे।
त्वं मामुद्धर कल्याणि महापापाब्धिदुस्तरात ॥
सर्वेषामपि पापानां प्रायश्चित्तंत्वमेव हि।
देवानां च ऋषीणां च पितृणां त्वं सदा प्रिये ॥
तुलस्युपनिषद्।

---

१ सालग्राम विप पूज मनावो सुकृत तुलसी माला।
रामनाम जप बेड़ा बांधो दया करहु दयाला ॥
आदिगुरु ग्रन्थसाहिब, रागवसन्त, महल्ला १, शब्द ६, तुक १।

२ ना सुचि संयम तुलसी माला। मारु १६।

शरीरमें भोजनका पाचन और मल पदार्थोंका विसर्जन

[ले०—श्री रामकुमार जैन]

पोषक संस्थानमें कई अंग शामिल हैं—मुख, भोजन-नली (Gullet), आमाशय, अँतड़ियाँ व रेक्टम (Rectum)। इनके अतिरिक्त जिगर और तिल्ली (Liver and spleen) भी भोजन पचानेकी क्रियामें सहायता देते हैं। पाचन-क्रियाकी विधि जाननेके पूर्व हमें इस क्रियामें भाग लेने वाले विभिन्न अंगोंकी रचना तथा उनकी कार्य प्रणाली भली प्रकार जानना चाहिये।

मुख—पोषक-संस्थानके अन्तर्गत अंगोंमें मुखका एक विशेष स्थान है। यह अन्न पचानेमें चक्कीका काम करता है। जैसे चक्की में पिसकर साबित अनाज चूर-चूर हो जाता है वैसे ही मुखमें दाँतों द्वारा चबाये जाने पर खाया हुआ भोजन बारीक टुकड़ोंमें तोड़ा जाता है। जितना ही अच्छी तरह अपने दाँतोंसे हम भोजनको चबाते हैं उतना ही महीन वह पिस जाता है और उतनी ही आसानी व शीघ्रतासे पचता है। दाँत मसूड़ोंमें कस कर जकड़े हुये रहते हैं। मुखके ऊपरका हिस्सा तालुआ (Palate) कहलाता है। जीभ (Tongue) भोजनको मुखमें एक ओरसे दूसरी ओर हटानेमें तथा गलेके नीचे ले जानेमें सहायता देती है। जीभके ऊपर नन्हें नन्हें दाने (Papillae) होते हैं। इन्हींके द्वारा स्वादका अनुभव होता है। गलेमें तथा दाँतोंके पीछे मुखमें तीन जोड़ी ग्रन्थियाँ (Glands) होती हैं, जिनसे राल (Saliva) निकलती है। जब हम दाँतोंसे भोजनको चबाते हैं तो ये राल ग्रन्थियाँ भी क्रियाशील हो उठती हैं और उनसे निकल कर राल भोजन में मिल जाती है। रालमें टायलिन (Ptyalin) नामक एक फर्मेंट होता है जो स्टार्चको शक्करमें बदल देता है।

दाँतोंसे भोजन चबाया जाता है, अतः दाँत बड़े आवश्यक और उपयोगी हैं। बच्चा जब जन्म लेता है तब उसके मुखमें एक भी दाँत नहीं रहता और यही कारण है कि बालक कोई भी ठोस पदार्थ नहीं खा सकता। दूध या अन्य तरल पदार्थ जैसे फलोंका रस, जिनमें चबानेकी कोई आवश्यकता नहीं रहती, उसका भोजन होते हैं। जब बालक छः या सात मासकी आयुमें पहुँचता है तब उसके दाँत निकलने आरम्भ होते हैं, तथा दो वर्षकी आयु तक पूरे २८ दाँत निकल आते हैं। सच बात यह है कि दाँत इस अवस्था पर शरीरमें कहींसे अचानक नहीं आ जाते। जन्मसे ही ये मसूड़ोंके अन्दर मौजूद रहते हैं और धीरे-धीरे वहीं पर बढ़ते रहते हैं और समय आने पर
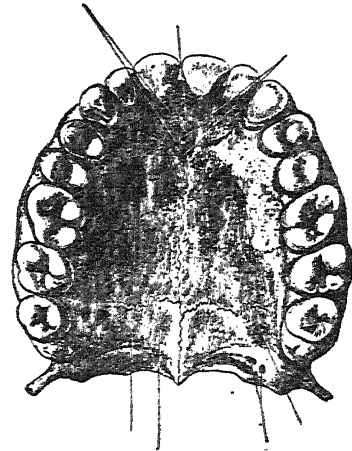
चित्र १—एक जबड़ेके दाँत

मसूड़ोंके बाहर निकल आते हैं। ये दाँत दूधके दाँत कहलाते हैं। दूधके दाँतों के नीचे मसूड़ोंके भीतर स्थायी दाँतों (Permanent teeth) की जड़ें आरम्भसे ही मौजूद रहती है, और ये वहीं पर धीरे-धीरे बढ़ते और मजबूत होते रहते हैं। जब बालक लगभग छः वर्षका होता है उस समय तक कुछ स्थायी दाँत आवश्यकतानुसार बढ़ चुकते हैं, और तब ये दूधके दाँतोंको आगे की ओर ठेलते हैं। परिणाम स्वरूप दूधके दाँतोंकी जड़ें कमजोर पड़ जाती हैं और छः वर्षकी आयुसे दूध के दाँत गिरने आरम्भ हो जाते हैं। जब कोई दूध का दाँत गिर जाता है तब उसके नीचेका स्थायी दाँत कुछ ही दिनों बाद उसके स्थान पर बाहर निकल आता है। इस प्रकार होते-होते १२ से १४

तककी आयुमें सब दूधके दाँत गिर जाते हैं और उनकी ह स्थायी दाँत निकल आते हैं। लगभग बीस वर्षकी यु तक स्थायी दाँत २८ ही रहते हैं। उसके बाद ऊपर ा नीचेके जबड़ोंमें दोनों तरफ एक-एक डाढ़ और निक- ती है। ये बुद्धि डाढ़ (अक्ल डाढ़ या Wisdom eth) कहलाती हैं। इस प्रकार युवावस्थामें पहुँचने दाँतोंकी संख्या ३२ हो जाती है। कभी-कभी लोगों एक, दो या तीन ही बुद्धि दाँत निकल कर रह जाते । उस दशामें दाँतोंकी संख्या कम रहती है।

प्रत्येक जबड़ेके दाँतोंको हम चार समूहोंमें बाँटते हैं। ामनेके चार दाँत छेदक दन्त (Incisors) कहलाते । ये भोजनको पकड़कर काटनेका काम करते हैं। इनके नों ओर एक-एक दाँत होते हैं जो सुआ (Canine eth) कहलाते हैं। ये नुकीले तथा अन्य दाँतोंकी पेक्षा लम्बे होते हैं। ये भी काटनेका काम करते हैं। नके बाद दोनों तरफ चार-चार डाढ़ें होती हैं। पहली ो डाढ़ें अग्रचर्वणक दन्त (Premolars) तथा पिछली ो चर्वणक दन्त (Molars) कहलाती हैं। बुद्धिदाँत ी इस ही श्रेणी (चर्वणक दन्त) में आते हैं। अतः नके निकलने पर चर्वणक दन्त संख्यामें प्रत्येक ओर तीन- ीन हो जाते हैं।

दाँतकी बनावट—दाँतका जितना भाग हम देखते ैं, लगभग उतना ही, वरन् उससे भी अधिक भाग मसूड़ों े अन्दर छिपा रहता है। इस पूरे दाँतको हम तीन ागोंमें बाँट सकते हैं—शिखर (Crown), ग्रीवा (Neck) और मूल (Root)। मसूड़ेके ऊपर दाँतका जो भाग हम देखते हैं वह शिखर कहलाता है। मसूड़ेके अन्दर दबा हुआ भाग ग्रीवा कहलाता है। ग्रीवाके नीचेका सिरा दाँतकी जड़ या मूल है। जबड़ेकी हड्डीके बीचमें दाँतोंके लिये स्थान बने रहते हैं और उन्हींमें दाँत मजबूतीसे जकड़े रहते हैं। जबड़े की हड्डीके इन गड्ढोंको एलवियोली (Alveoli) कहते हैं। दाँत जिस पदार्थसे बना रहता है वह डेनटाइन (Dentine) कहलाता है। अन्दरसे दाँत खोखला होता है, और इसमें एक प्रकार का गूदा (Pulp) भरा रहता है, इसीसे इस खोखले भागको (Pulp Cavity) कहते हैं। इस ही भागमें रक्त नलियाँ तथा नाड़ियाँ रहती हैं। दाँतकी जड़के पास के भागमें डेनटाइनके ऊपर एक कड़े पदार्थ की पर्त रहती है जो सीमेन्टम (Cementum) कहलाता है। दाँतको ग्रीवा (Neck) और शिखर (Crown) पर सीमेन्टम का पर्त न होकर इनेमेल (Enamel) का पर्त रहता है। यह भी कड़ा होता है, और यही दाँतको सफेदी देता है। इनेमेल- का पर्त ग्रीवा पर पतला रहता है पर शिखर पर मोटा हो जाता है और दाँतकी रक्षामें सहायता करता है।

कोई खाद्य सामग्री दाँतोंके बीचमें फँसी रह जानेसे सड़ने लगती है और धीरे धीरे उसका विष दाँतों पर असर करने लगता है। इससे ऊपरका इनेमेल खराब होकर हटने लगता है और दाँत देखनेमें खराब लगने लगते हैं। साथ ही इनेमेलके कड़े पर्त के (जो भीतरी दाँतकी रक्षाका साधन है) हट जानेसे विष अन्दर आसानी से पहुँच जाता है और फिर वहाँके गूदे (Pulp) को सड़ाने लगता है। गूदेके खराब होनेसे दाँत खोखला होकर बेकाम हो जाता है और शीघ्र ही टूट जाता है। इतना ही नहीं, मुखमें स्थित यह विषैला पदार्थ भोजनमें भी मिल जाता है और फिर भोजनके साथ आमाशयमें पहुँच कर पाचनशक्तिको भी खराब करता है और इसका प्रभाव सारे शरीर पर पड़ता है। अतः मुख और दाँतोंके सम्बन्धमें बहुत ही सावधान रहनेकी आवश्यकता है।

भोजन-प्रणाली (Alimentary canal)—मुखसे रेक्टम तक एक नली है जिसे भोजन-प्रणाली कहते हैं। इसकी दीवार दो पर्तोंकी बनी हुई है। बाहरी पर्त कड़ी और मजबूत है। इसमें मांसपेशियाँ रहती हैं। इन मांस- पेशियोंके ऊपर एक पतली झिल्लीका पर्त चढ़ा है जो पेरीटो- नियम कहलाता है। भीतरकी ओर एक दूसरी पर्त है जो श्लैष्मिक झिल्ली (Mucus membrane) कहलाती है। यह मुलायम और चिकनी होती है। ये दोनों पर्तें बन्धक तन्तुओं द्वारा आपसमें एक दूसरेसे बँधी रहती हैं।

भोजन-नली (Gullet) गलेसे आमाशय तक है। गलेसे उतरकर भोजन इस नलीसे होता हुआ पेटमें पहुँचता है। पेट या आमाशय नाशपातीके आकारका एक थैला सा है। इसका चौड़ा सिरा बायीं ओर रहता है।

यहाँ पर श्लैष्मिक झिल्ली लम्बी पर्तोंके रूपमें पाई जाती है। आमाशय के चारों ओर की दीवारोंमें आड़ी, पड़ी तथा तिरछी छोटी छोटी मांसपेशियाँ होती हैं। जब आमाशयमें भोजन भरा रहता है तो श्लैष्मिक झिल्लीकी लम्बी पर्तें खिंचकर बराबर हो जाती हैं। आमाश खाली रहने पर ये अन्दरकी ओर उभड़ी हुई रहती इनके बढ़े रहनेके कारण भोजननलीका छिद्र दबा मालूम पड़ता है। भोजननलीसे भोजनके आने पर उ
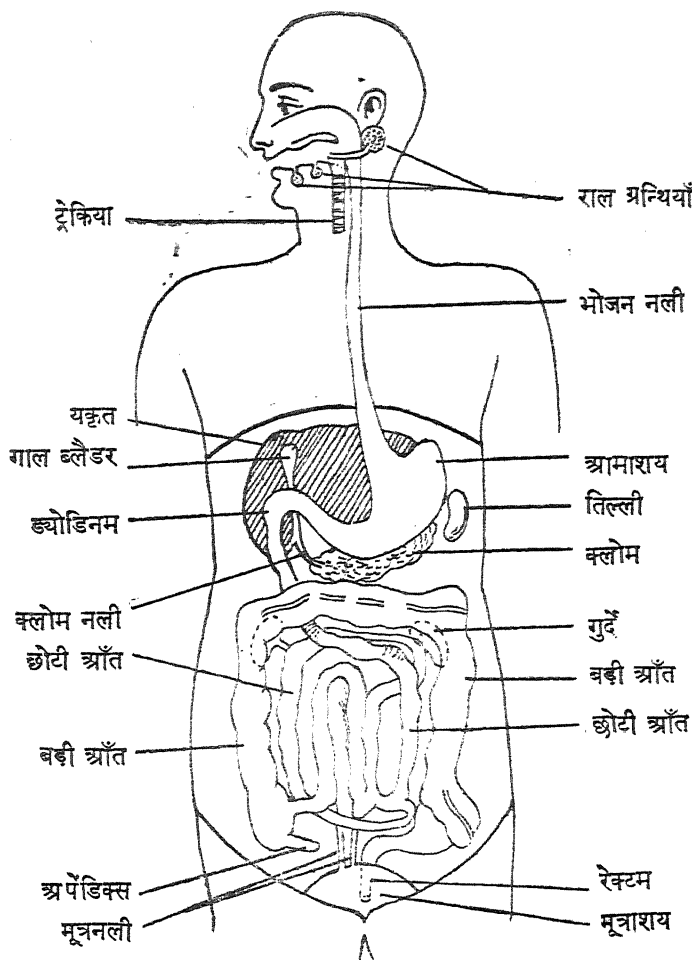
चित्र २—मनुष्यका पोषक संस्थान

हुआ हिस्सा खिंचकर फैल जाता है और नलीका छिद्र खुल जाता है। भोजननली और आमाशयके मिलनेका स्थान कारडिया (Cardia) कहलाता है। इस स्थान पर श्लैष्मिक झिल्लीकी लम्बी पर्तें बहुत ही कम हैं और इससे थोड़ा ही हट कर बिलकुल गायब हो जाती हैं। आमाशयके समाप्त होने पर जहाँ ड्योडिनम (Duodenum) आरम्भ होता है आमाशयका वह सिरा पाइलोरस (Pylo कहलाता है। आमाशयके बाद भोजनप्रणाली इस स्था एकदम बहुत पतली हो जाती है। अतः यहाँ पर श्लै झिल्लीकी पर्तें बड़ी घनी हैं। यहाँ पर मांसपेशियों पर्तें भी बहुत कड़ी है। आमाशय की श्लैष्मिक झिल पर्तोंमें छोटी छोटी ग्रन्थियाँ (Glands) होती हैं

गैस्ट्रिक रस (Gastric Juice) निकलता है। यह एक पाचक रस है। इसमें हाइड्रोक्लोरिक एसिड (Hydrochloric acid) तथा रेनिन (Renin) और पेपसिन (Pepsin) नामक दो फरमेंट होते हैं जिनसे भोजनके पचनेमें सहायता मिलती है।

ड्योडिनमके समाप्त होते ही छोटी आँत शुरू होती है और एक गेंडुली (Coil) बनाती है। इसकी मांस-पेशियाँ भी छोटी तथा आड़ी व पड़ी दो प्रकारकी होती हैं। यहां भी श्लैष्मिक झिल्लीकी पर्तें उभरी हुई रहती है। श्लैष्मिक झिल्लीकी पर्तमें छोटी छोटी ग्रन्थियाँ (Glands) होती हैं जिनसे पाचन क्रियाके समय एक प्रकारका पाचक-रस निकलता है जो अंत्र रस (Intestinal Juice) कहलाता है।

छोटी आँतके समाप्त होते ही बड़ी आँत आरम्भ हो जाती है। बड़ी अँतड़ी लगभग ५ फीट लम्बी है। यह दाहिनी ओर नीचेकी तरफ शुरू होती है। पहले कुछ दूर ऊपरकी ओर जाती है फिर आमाशयके नीचे शरीरमें दाहिनी ओरसे बाईं ओर चली जाती है। बाँयीं ओर आकर यह फिर नीचेकी ओर मुड़ती है। इसके नीचे का भाग रेक्टम (Rectum) कहलाता है। रेक्टमसे मलद्वार तक एक छोटी नली रहती है जिसे मलनली (Cloaca) कहते हैं। इसीके द्वारा मल बाहर निकलता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मुख से रेक्टम तक भोजन प्रणाली एक ही नली है। इनके उक्त अंगोंके अतिरिक्त शरीरके अन्य अंग भी पाचनक्रियामें सहायता पहुँचाते हैं। जिगर (Liver), तिल्ली (Spleen) तथा क्लोम (Pancreas) तीनों ही पाचनक्रियामें समान रूपसे मुख्य भाग लेते हैं।

जिगर—जिगर पेटके दाहनी ओर स्थित हमारे शरीरकी सबसे बड़ी गिल्टी है। इसमें पीले रंगका पित्त (Bile) नामक एक पाचक रस बनता है। यह पित्त जिगरसे एक छोटी नली द्वारा छोटी आँत में पहुँचता है। आँत में भोजन के पचनेमें इससे बड़ी सहायता मिलती है। बचा हुआ पित्त गाल ब्लैडर में एकत्रित होता रहता है। गॉल-ब्लैडर जिगरके नीचे की ओर स्थित एक छोटी सी थैली है। पित्तनली में किसी प्रकारका दोष हो जाने से पित्त आँतों में न पहुँचकर जिगरमें ही लौट आता है और वहाँ से रुधिरमें मिलकर समस्त शरीरमें फैल जाता है। इस दशामें समस्त शरीर का रंग पीला हो जाता है। इसे पीलिया या पीलेका रोग (Jaundice) कहते हैं।

पित्त बनानेके अतिरिक्त जिगर हमारे भोजनके कुछ भागको ग्लाइकोजन (Glycogen) नामक स्टार्च में बदलनेका काम भी करता है। यह ग्लाइकोजन जिगरकी सेलोंमें एकत्रित होता रहता है और जब शरीरके किसी भागको इसकी आवश्यकता पड़ती है तब रुधिरके साथ जिगर इसे भी वहाँ भेज देता है।

जिगरमें रुधिरकी केशिकाओंका एक जालसा बिछा रहता है। पेट, तिल्ली आदिका अशुद्ध रक्त शिराओं द्वारा आकर यहाँ एकत्रित होता है और फिर यहाँसे पोरटल (Portal) शिरा द्वारा हृदयमें जाता है। धमनियों द्वारा शुद्ध रक्त भी जिगरमें पहुँचता है।

क्लोम—पेटके कुछ नीचे पीछेकी ओर स्थित यह भी एक गिल्टी है। यह भी शरीरके दाहिने भागमें स्थित है। इसमें क्लोम रस (Pancreatic Juice) बनता है जिसमें तीन भिन्न फरमेंट (Ferment) होते हैं जो प्रोटीन (Protein), स्टार्च (Starch) और चर्बी (Fat) को पचानेमें सहायक होते हैं। क्लोमरस क्लोमसे निकलने वाली नलीसे होकर जिगरसे निकलने वाली नलीमें होता हुआ छोटी आँतमें पहुँचता है और वहाँ भोजन पचानेमें सहायता पहुँचाता है।

उक्त वर्णनसे हमें उन सब अंगोंका परिचय प्राप्त हो गया जो हमारे शरीरमें भोजन पचानेका कार्य करते हैं अथवा भोजनके पचने में सहायता देते हैं। अब हमें देखना है कि भोजन पचता कैसे है। भोजन का पचना मुखसे शुरू हो जाता है और आँतके अन्तिम भाग तक बराबर होता रहता है। मुखमें दाँतों से चबाने पर भोजन काफ़ी महीन हो जाता है और उसमें लार मिलती है। मुख में पीछे की तरफ़ तीन जोड़ी लार ग्रन्थियाँ हैं। लार इन्हींसे निकल कर मुख में पहुँचती है। लार भोजन के स्टार्च को घुलनशील शक्कर में बदल देती है।

भोजन मुखसे भोजन नली द्वारा आमाशयमें पहुँचता है। हमारी भोजन नली छल्लेदार मांसपेशियोंकी बनी हुई

है। इसमें भोजन पहुँचतेही इसकी मांसपेशियोंमें संकोचन विमोचनकी क्रियायें होने लगती हैं। इससे भोजन की खूब पिसाई होती है और इस प्रकार पिसता हुआ भोजन हमारे आमाशयमें पहुँचता है। आमाशयमें पहुँचकर इससे गैस्ट्रिक नामक पाचक रस मिल जाता है। यह भोजनकी प्रोटीनको पेप्टोनमें बदल देता हैं। पेटकी दीवारों (झिल्ली) में स्थित केशिकायें उसके इस पेपटोनको चूस लेती हैं। जब ड्योडिनमसे होता हुआ भोजन छोटी आँतोंमें पहुँचता है और वहाँ जिगर तथा क्लोमसे आये हुए पित्त व क्लोम रस उसमें मिलते हैं भोजनकी पाचन क्रिया जारी रहती है। आँतोंकी गिल्टियोंसे निकला हुआ रस भी भोजन में मिलकर उसे पचानेमें सहायता पहुँचाता है। ये पाचक रस चर्बी (Fat) तथा अन्य बचे हुए भाग को पचानेमें सहायता देते हैं। चर्बीका भाग अमीनोअम्लमें बदल जाता है और तबही रुधिरमें मिलने योग्य होता है। भोजनके चूसने का क्रम छोटी आँतों तथा बड़ी आँतोंमें चलता है। इस प्रकार भोजनका समस्त पाच्य (Digestible) भाग केशिकायें चूस चूस कर हमारे रुधिरमें मिला देती हैं। जो भाग पचने योग्य नहीं होता वह मल रूपमें मलद्वारसे बाहर निकल जाता है।

भोजन पचनेकी इस पूरी क्रियामें कम से कम आठ-दस घंटे लगते हैं। अतः जल्दी जल्दी भोजन करना स्वास्थ्य को हानि पहुँचाता है। पेटमें पचनेकी क्रिया समाप्त होनेमें ही ३-४ घंटे लग जाते हैं। अतः पेट अवश्य चार घंटे बाद खालीहो जाता है। किन्तु इसके अर्थ यह नहीं कि हमें फिर ३-४ घंटे बाद ही भोजन कर लेना चाहिए। यदि हम ऐसा करेंगे तो हमारे पेटमें भी पाचनक्रिया होती रहेगी और आँतोंमें भी। इस प्रकार हमारे शरीर पर हमारी मांसपेशियों, नाड़ियों व केशिकाओं पर बहुत अधिक काम बढ़ जायगा। अतः दिनमें दो बार भरपेट भोजन करना ५-६ बार थोड़ा थोड़ा करके खानेसे अच्छा होता है। इन दो बारके बीचमें कुछ फल या दूध लिया जा सकता है। अतः भोजनका निम्न प्रबन्ध रखना अधिक स्वास्थ्यकर है—प्रातःकाल ७-७½ बजे दूध, दोपहरमें १०-११ बजे भर पेट भोजन जिसमें दाल चावल, रोटी, तरकारी सम्मिलित हों, ४ बजेके लगभग कुछ फल, संध्याको ७-७½ बजे भर पेट भोजन और यदि हो सके तो रात मे फिर दूध अन्यथा इसकी भी कोई विशेष आवश्यकता नहीं।

यह विचारणीय बात है कि हमारे देशकी अधिकांश जनता इतनी गरीब है कि उससे दूध और फलकी बात करना मानो उसकी हँसी करना है।

उन बेचारोंको दुधमुँहे बच्चे के लिए भी दूध नहीं मिलता, बड़ोंकी कौन बात। ऐसी परिस्थिति वाले लोगोंको भी कमसे कम अपने खाने के समय का तो ध्यान रखना चाहिये। रात में सोने से कुछ समय पूर्व ही भोजन कर लेना स्वास्थ्यप्रद होता है। इन लोगों को भी चाहिए कि प्रातः काल से रात तक दस बार खाने की आदत अपने बच्चों में न डालें। प्रातः काल थोड़ा सा भीगा हुआ चना दे सकते हैं और दो बार पूरा भोजन।

स्वास्थ्यकर भोजन को नियमित रूप से खाकर हम अपना स्वास्थ्य बनाये रख सकते हैं।

विसर्जन संस्थान

विसर्जन संस्थान का कार्य हमारे शरीर की गन्दगी तथा अन्य अवाञ्छनीय द्रव्यों को शरीर के बाहर निकालना है। यह कार्य हमारे फेफड़े, गुर्दे (Kidneys), मलाशय (Rectum) तथा हमारी त्वचा करती हैं। अतः ये सब अंग विसर्जन संस्थान के भाग हैं।

फेफड़े—फेफड़ों का वर्णन हम रक्तसंस्थान व श्वासोच्छ्वास संस्थान के अन्तर्गत पढ़ चुके हैं। हम पढ़ चुके हैं कि किस प्रकार फेफड़े हमारे रुधिर की गन्दगी बाहर करने में सहायता पहुँचाते हैं। विसर्जन कार्य की दृष्टिसे इस अंग का बड़ा महत्त्व है।

गुर्दे—गुर्देका आकार सेमके बीजकी भाँति होता है। उदर के पिछले भाग में दोनों ओर एक एक गुर्दा रहता है। गुर्दे अन्दर से ठोस होते हैं। इनका भीतरी भाग पतली पतली नलिकाओं और केशिकाओं के घने जाल से बना होता है और ठोस मालूम पड़ता है। नाड़ियों का भी इसके अन्दर जाल बिछा रहता है। गुर्दे में शुद्ध रक्त पहुँचाने वाली मुख्य धमनी रीनल धमनी (Renal artery) और वहाँ से अशुद्ध रक्त हृदय को ले जाने वाली शिरा, रीनल शिरा (Renal vein) कहलाती हैं।

गुर्दे की पतली नलिकायें तथा रुधिर की केशिकायें समीप ही समीप रहती हैं। ये नलिकायें केशिकाओंके रुधिर का अनावश्यक पानी और यूरिक अम्ल (Uric acid), यूरिया (Urea) तथा कुछ खनिज नमक (Mineral Salts) अपने में चूस लेती हैं। माँस तथा प्रोटीन में यूरिया और यूरिक अम्ल बहुत अधिक मात्रा में होते हैं। अतः भोजन में माँस और प्रोटीन की मात्रा अधिक होने से गुर्दों का काम अधिक बढ़ जाता है।

द्वार कहलाता है। जब मूत्राशय काफी भर जाता है तो इसी नली द्वारा होकर मूत्र मूत्रद्वार से बाहर निकलता है।

मूत्र में ९६ प्रतिशत पानी व ४ प्रतिशत यूरिक अम्ल खनिज नमक तथा अन्य मल पदार्थ होते हैं। साधारणतया एक मनुष्य के मूत्र की मात्रा २½ पाइण्ट के लगभग प्रति दिन होती है। भोजन के प्रकार और ऋतु के प्रभाव के अनुसार इसकी मात्रा में अन्तर होता है। अधिक तरल द्रव्य या रसीले फल खानेसे इसकी मात्रा बढ़ जाती है।
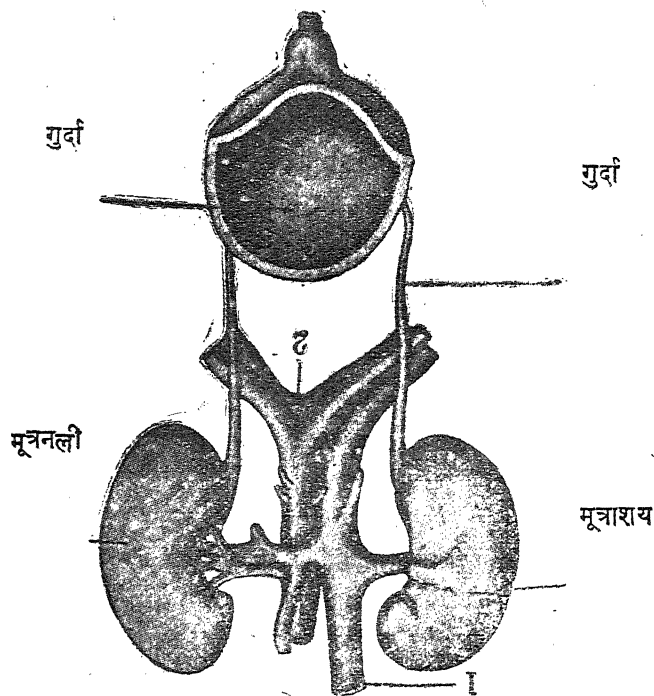
चित्र ३—गुर्दे और उनसे सम्बन्धित अंग (१) ऑरटा धमनी, (२) निम्न महाशिरा

प्रत्येक गुर्दे की छोटी छोटी नलिकायें आपसमें मिलकर एक बड़ी नली बनाती हैं। ये दोनों नलियाँ गुर्दों में एकत्र मूत्र को मूत्राशय में ले जाती हैं। मूत्राशय हमारे पेड़ू के निचले भाग में स्थित है। गुर्दों की नलियों से आकर मूत्र इसमें एकत्र होता रहता है। मूत्राशय से एक छोटी सी नली निकलकर हमारे शरीर की सतह तक पहुँचती है। इसे मूत्रनली (Urethra) कहते हैं। सतह पर बना हुआ इसका छिद्र मूत्रछिद्र या मूत्र

गर्मीमें जब पसीना खूब निकलता है तो हमारे शरीरका का पानी पसीने द्वाराही बाहर निकल जाता है और फलस्वरू मूत्रकी मात्रा घट जाती है। इसके विपरीत शीत ऋतु जब पसीना बहुत ही कम निकलता है, मूत्रकी मा बढ़ जाती है।

मलाशय—यह हमारी बड़ी आँतों का अन्तिम भाग है। हम पढ़ चुके हैं कि भोजन पचनेके पश्चात् उसका जो अपाच्य व अवाञ्छनीय भाग बचता है व मलाशय (Rectum)

में पहुँच जाता है। यहाँ से यथासमय मलनलीसे होकर मलद्वार द्वारा बाहर निकलता है। इस प्रकार भोजनके बचे हुये व्यर्थ भागको शरीरसे बाहर निकालनेका काम मलाशय करता है।

त्वचा—हमारे शरीरका सबसे ऊपरी पर्त जो हम देख पाते हैं त्वचा कहलाती है। हमारी हड्डियाँ व माँस आदि इसके नीचे स्थित हैं। हमारे समस्त शरीर पर त्वचाका पर्त रहता है। यह केवल शरीरको सुन्दर बनानेके लियेही नहीं है वरन् इसके अन्य भी उपयोग हैं। त्वचाकी बनावट, इसकी स्पर्शशक्ति आदिका वर्णन हम यथा स्थान पढ़ेंगे। यहाँ हम केवल इसके विसर्जन कार्यका वर्णन करेंगे।

शरीरका पसीना बाहर निकालना इसका एक मुख्य काम है। पसीना हमारे शरीरकी गन्दगी है। इसमें ९८प्रतिशत पानी और २ प्रतिशत अन्य गन्दगी होती है। यह पसीना स्वेदग्रन्थियोंमें बनता है। स्वेदग्रन्थियाँ चर्म या डारमिसमें फैली हुई कोशिकाओंके सम्पर्कमें आती हैं। ये उनके रुधिरका अनावश्यक पानी तथा यूरिया, खनिज नमक तथा अन्य अनावश्यक द्रव्य अपनेमें चूस लेती हैं। स्वेद-ग्रन्थियोंके छिद्रसे होकर स्वेद इपीडरमिसके ऊपर आजाता है। गर्मीकी ऋतुमें तथा व्यायाम या अन्य शारीरिक परिश्रम के समय पसीना खूब निकलता है। शीत ऋतुमें तथा विश्राम की अवस्थामें पसीनकी मात्रा बहुत कम रहती है।

पसीना कुछ चिपचिपा (Sticky) होता है। यह हमारे शरीर पर चिपका रहता है अतः इसे छुड़ाना आवश्यक है। इसके लिए यह आवश्यक है कि प्रतिदिन स्नान किया जाय। स्नान करनेका अर्थ दो चार लोटा पानी अपने शरीर पर डाल लेना ही नहीं होता। शरीर को खूब रगड़कर काफ़ी पानीसे नहाना चाहिए। यदि प्रतिदिन स्नान न किया जाय तो प्रतिदिन का पसीना हमारी त्वचा पर जमता जायगा और थोड़ेही दिनों में हमारी त्वचा पर गंदगीकी मोटी पर्त जम जायगी। इससे शरीरसे पसीनेकी खूब दुर्गन्ध निकलने लगेगी और त्वचाके अनकों रोग भी अपना प्रभाव दिखलाने लगेंगी। धीरे-धीरे गन्दगीकी यह पर्त इतनी बढ़ जायगी कि त्वचाके छिद्र एकदम बन्दहो जायेंगे और अन्दरका नया पसीना बाहर न निकल पायगा। पसीना न निकल सकनके कारण विसर्जन कार्य करने वाले अन्य अंगों पर अत्यधिक काम पड़ जायगा। वे इस कार्यको पूरा नहीं कर पायेंगे तो शरीरके भीतर बहुतसी गन्दगी बची रह जायगी और फिर शरीर रोगोंका घर बन जायगा। अतः अपने स्वास्थ्यको बनाये रखनेके लिए त्वचाकी सफाई रखना अत्यन्त आवश्यक है।

तरकारियोंके गुण तथा उनके उचित प्रयोग

[लेखिका—श्रीमती शान्ती गुही और श्रीमती शकुन्तला वर्मा]

अपनी पिछली बातचीतमें मैं आपको मौसमी फलोंके विषयमें बतला चुकी हूँ। आज मैं आपको यह बतलाना चाहती हूँ कि जो तरकारियाँ हम नित्य खाते हैं उनके क्या गुण हैं और उनका हम किस प्रकार प्रयोग करें जिससे पूर्ण लाभ प्राप्त कर सकें।

स्वस्थ और निरोग रहना कौन नहीं चाहता ? यह भी निश्चित ही है कि स्वास्थ्यका बनना-बिगड़ना बहुत कुछ आहार पर ही निर्भर है। शरीरको पानीके अतिरिक्त ये पाँच प्रकारकी वस्तुएँ भोजनके साथ मिलनी चाहिये—

कर्बोदेत (Carbohydrates), प्रत्यामिन (Proteins), चर्बी (Fat), खनिज नमक (Minerals), और खाद्योज (Vitamins)। कर्बोदेत तो हमें अधिकतर अनाजों और शक्करोंमें मिलते हैं, प्रत्यामिन गोश्त, मछली, अंडा, दाल तथा कुछ तरकारियोंसे प्राप्त होते हैं। चर्बी घी, तेल, दूध, मक्खन, मलाई जैसी चीज़ोंमें मिलती है। नमक अधिकांश फलों और तरकारियोंमें ही होते हैं। यदि आप अपने शरीरकी बनावटसे भली भाँति परिचित हैं तो आपको विदित होगा कि जिस प्रकार पेशियों और तन्तुओं (Muscles and Tissues) के लिये कर्बोदेत और प्रत्यामिन आवश्यक हैं उसी प्रकार रक्तका खारापन (Alkalinity) स्थिर रखनेके लिये खनिज नमक और कार्बनिक अम्ल भी अत्यन्त आवश्यक हैं। भोजनमें जब खार बनाने वाली चीज़ोंकी न्यूनता हो जाती है तो रुधिरका खारापन भी कम हो जाता है और उसमें अम्लता (Acidity) आ जाती है जो अनेकों बीमारियोंकी जड़ है। खारी द्रव्य जीवनकी रक्षा करने और उसकी शक्ति बढ़ानेमें सहायता करते हैं। ये द्रव्य वनस्पतियोंके प्रत्येक भाग, पत्ते, जड़, बीज़ और फलमें पाये जाते हैं और सब जीवोंके मांस, रक्त, हड्डी तथा भीतरी अंगों, उनके दूध और अंडोंमें होते हैं। वनस्पतियाँ खनिज नमक पृथ्वीसे खींचती हैं और हम उन्हें सब्जियोंके द्वारा ही प्राप्त कर सकते हैं। खनिज नमकोंमें आयोडीन (Iodine), कैलशियम, चूना (Calcium), लोहा (Iron), सोडियम (Sodium), पौटेशियम (Potassium), फ़ॉस्फ़ोरस (Phosphorus), मैगनेशियम (Magnesium) और गन्धक (Sulphur) ही अधिक आवश्यक हैं।

सब्जियोंमें भोजनके वे आवश्यक अंश भी अधिकतासे प्राप्त होते हैं जिन्हें विटामिन, खाद्योज या प्रत्यामिन कहते हैं। विटामिन है क्या यह बतलाना तो कठिन है किन्तु यह जानना आवश्यक है कि वे हमारी शरीर रूपी मशीनको चलानेमें आवश्यक भाग लेते हैं। यदि किसी मनुष्य या पशुको ऐसा खाना दिया जाय जिसमें विटामिन न हो तो उनके शरीरके पुर्जोंका चलना शीघ्र ही रुक जायेगा। नर्म और ताज़ी सब्जियोंमें, विशेषकर फलोंमें विटामिन खूब होते हैं।

चूँकि सब्जियोंमें भोजनके नमक और विटामिन जैसे ज़रूरी भाग होते हैं इसीलिये उन्हें रक्षा करने वाले खाने (Protective food) कहते हैं। बालकोंको आरम्भसे ही कच्ची तरकारी खानेकी आदत डाल देनी चाहिये जिससे वे सदा तन्दुरुस्त बने रहें।

खनिज पदार्थोंमें से कैलशियम या चूना, आयरन या लोहा, आयोडीन या और फ़ॉस्फ़ोरस या स्फुर ही भोजनके विचारसे ज्यादा ज़रूरी हैं। कैलशियमकी न्यूनतासे हड्डियाँ और दाँत निर्बल नहीं होते बल्कि अन्य बीमारियाँ भी उत्पन्न हो जाती हैं। कैलशियम शरीरको शक्तिशाली रखता है और तपेदिक तथा सूखा जैसे भयंकर रोगोंसे बचाये रहता है। पालक, काहू (Lettuce) मूली, प्याज़, शलजमके ऊपरी भाग ही कैलशियमके अच्छे ज़रिये हैं।

लोहेकी कमीसे एनीमिया या रक्त-हीनताका रोग हो जाता है। यह रोग विशेषकर स्त्रियोंमें होता है क्योंकि उन्हें मासिक धर्म और गर्भावस्थामें रक्तको अधिक मात्रामें

बनानेके लिये अधिक लोहेकी आवश्यकता होती है। शरीर में जितने लोहेकी आवश्यकता होती है उसमेंसे ७० प्रतिशत रुधिरमें रहता है और शेष ३० प्रतिशत समस्त शरीर के कोषों (Cells) में फैला रहता है। लोहेके द्वारा रक्त ओक्सिजनको प्रति स्थान पहुँचाता है। इसीलिये हमारे भोजनमें अगर इसकी मात्रा पर्याप्त न हो तो हम स्वच्छ वायुका भी पूरा लाभ नहीं उठा सकते। लोहा तरकारियोंके हरे पत्तोंमें मुख्यतासे मिलता है। जैसे लेटूस, पालक, चनेका साग, करमकल्ला, सिलेरी, हरी मटर, सलजम, सेम आदि। अगर उपर्युक्त सब्जियाँ नित्य ठीक तौरसे और काफ़ी खाई जायें तो एमीनियाके इतने रोगी दृष्टि न आयें जितने आजकल दिखाई पड़ते हैं।

फ़ौस्फ़ोरस भी कैलशियमकी भाँति हड्डी, दाँतोंकी बाढ़ तथा शक्तिके लिये आवश्यक है। दिमाग़, नाड़ियों और पेशियोंको भी फ़ौस्फ़ोरस और पोटेशियमकी आवश्यकता होती है। तरकारियोंमेंसे मटर, सेम और गोभीमें भी फ़ौस्फ़ोरस विशेषकर पाया जाता है और पोटेशियम सभी तरकरियोंमें काफ़ी मात्रामें होती है।

साधारणतः थोड़ी ही सी आयोडीनकी हमको आवश्यकता होती है। वह Thyroid तथा दूसरी ग्रन्थियों के काममें आवश्यक है। Thyroid का रस शरीरकी बाढ़को वशमें रखता है और अग्निवर्द्धक पदार्थोंके पाचनको ठीक रखता है। इसकी कमीसे गलेमें घेघाका रोग हो जाता है। कुछ ज़िलोंमें इस रोगके अधिक होनेका कारण यह है कि वहाँकी भूमिमें आयोडीनकी न्यूनता हो जानेसे तरकारियोंमें भी उसकी कमी रहती है। समुद्री पौधों और समुद्र तटकी तरकारियोंमें आयोडीन सबसे अधिक होता है किन्तु थोड़ा बहुत सभी सब्जियों, फलों और दूध व मछलीमें रहता है।

विटामिनोंमें से 'ए' 'सी' 'डी' तरकारियोंमें विशेषकर पाये जाते हैं। सब्जियाँ ही विटामिन 'ए' का प्रारम्भिक स्रोत है। गाजरका रस तो उसका भण्डार है। पालकके रसमें भी वह गाजरके रससे कम नहीं होता लेकिन पीनेमें उतना अच्छा नहीं लगता। पालकके रसको टमाटरके रसके साथ मिलाकर पीना चाहिये। विटामिन 'ए' शरीरके भीतरी भागों की श्लैष्मिक कला और ऊपरी खालको उचित अवस्थामें रखती है तथा भोजनमें जो शरीरको बनाने वाली सामग्री हम खाते हैं उसका उचित उपयोग करती है। बाल्यकालमें इसकी आवश्यकता इसीलिये अधिक होती है। विटामिन 'ए' शरीरको हानि पहुँचानेवाली कृमियोंको दूर करनेके लिये भी लाभप्रद है। वह हमें सर्दी, जुकाम, इन्फ्लुयेन्जा, ब्रोन्काइटिस, निमोनिया आदिसे बचाती है। इसी कारण शीतकालमें मछलीका तेल, मक्खन, हरी तरकारियोंका और भी अधिक प्रयोग करना चाहिये। रतौंधी भी इस विटामिन से रुक जाती है। मुँहासे, खालकी खुश्की, बालोंका गिरना तथा अन्य चर्मरोग पालक, गाजर, लेटूस और फलोंके न खाने या कम खानेसे हो जाते हैं। आप हरे और पीले रंग वाली तरकारियाँ और फल जितने खाते हैं उससे भी ज्यादा खाइये फिर देखिये आपकी खाल कैसी नर्म, चिकनी, और सुन्दर हो जाती है।

विटामिन, 'डी' भी विटामिन 'ए' के साथ मिला करती है किन्तु यह सूर्यकी किरणोंमें बहुत होती है। विटामिन 'ए' की तरह यह आँच या गर्मी से ख़राब नहीं होती। इसके अभावसे शरीर कैलसियम और फ़ौस्फ़ोरसको उचित ढंगसे हजम नहीं कर सकता। बालकोंमें सूखा का रोग भी इसी विटामिन और कैलशियमकी कमीके कारण होता है। यह भी हरी तरकारियोंमें मिलती है।

विटामिन 'बी' रक्त, हृदय और नाड़ियोंको ठीक रखनेके लिये अनिवार्य है। वह भूख और दाँतोंकी क्रियाको भी दुरुस्त रखती है। इसकी कमीसे नाड़ियोंमें सूजन, झनझनाहट, सुई की सी चुभन मालूम पड़ने लगती है। भूख कम हो जाती है, दिल बड़ा हो जाता है और उसमें भी सूजन आ जाता है। कब्ज़ और बदहजमी भी इसकी कमी से हो जाती है। विटामिन 'ए' की तरह यह शरीरमें जमा नहीं रहती इसलिये यह भोजनके साथ शरीरमें पहुँचती रहनी चाहिये। किन्तु यह विटामिन हरे पत्तोंमें बिल्कुल नहीं होती। आलू, हाथी चक, चुक़न्दर इत्यादिमें थोड़ी-थोड़ी मिलती है लेकिन मटर सेम और दालोंमें प्रचुर होती है। यह विटामिन साधारणतः पकाये जाने पर नष्ट नहीं होती।

विटामिन 'सी'का प्रभाव रुधिर और उसकी रगों पर होता है और वह रोगोंकी छूतसे भी शरीरको रक्षा करता है।

इसकी न्यूनतासे दाँत, हड्डियों और खून की रगों पर बुरा प्रभाव पड़ता है, बच्चोंके दाँत देरमें निकलते हैं और बड़ोंके शीघ्र घिसने लगते हैं। भोजनमें इसकी ज्यादा कमीके कारण स्कर्वी रोग हो जाता है। यह विटामिन हमें सबसे अधिक और सबसे सहजमें तरकारियों और नीबूकी जाति वाले फलोंसे मिल सकती है। बिना गर्म किये हुए दूधमें भी यह रहती है। सब्ज़ियोंमें पालक, करमकल्ला, कादू हलीम (Cress), हरीमटर और किसी-किसी जातिकी शलजममें बहुतायतसे मिलती है। यह विटामिन गर्म करने पर बहुधा ख़राब हो जाती है।

अब मैं आपको रोज़ाना काममें आनेवाली तरकारियोंके गुण और अवगुण अलग-अलग बतलाती हूँ। सारी तरकारियाँ मुख्य रूपसे चार भागोंमें विभाजित की जा सकती हैं:—

(१) जड़वाली तरकारियाँ, (२) पत्तोंवाली तरकारियाँ, (३) फलवाली तरकारियाँ और (४) फूलवाली तरकारियाँ।

जड़वाली तरकारियों में कर्बोदेत यानी शक्कर और श्वेतसार (Starch) का ही भाग अधिक होता है।

आलू—यह एक लोकप्रिय हरदिल अज़ीज तरकारी है। भारतवर्षमें ही नहीं, संसार भरके लोग अन्य तरकारियों की अपेक्षा इसको ही अधिक खाते हैं। इसके इतना लोकप्रिय होनेका कारण यह है कि बहुत दिनों तक रक्खे रहने पर भी यह अच्छा बना रहता है और दूसरा यह कि आलू में संवर्द्धक शक्ति (Nutritive value) और तरकारियोंके मुक़ाबलेमें बहुत ज्यादा है। मनुष्य केवल थोड़ेसे ही आलू घी, या मक्खनके साथ खाकर कई सप्ताह तक जीवित रह सकता है और साथ ही साथ अपना रोज़का काम और मज़दूरी भी कर सकता है। आलू सबसे पहिले अमरीकामें होता था। अमरीकाकी खोज के बाद यह योरपमें आया और वहाँ से ही दुनियाके अन्य भागोंमें फैला। आलू जड़ वाली तरकारियोंमें गिना अवश्य जाता है, किन्तु वास्तवमें यह जड़ नहीं है। पौधेके तनेके जो सूत निकलते हैं वे मिट्टी में दबा दिये जाते हैं और उन्हींमें आलू लगता है। छीलकर आलू खानेसे उसका ३१ प्रतिशत लाभ जाता रहता है। इसका पूरा लाभ प्राप्त करनेके लिये छिलके सहित ही खाना चाहिये। आलू में 'ए', 'बी', और 'सी' तीनों विटामिन होते हैं। आलू में पानीको छोड़कर स्टार्च ही सबसे ज्यादा होता है। खनिज नमकोंमें कैलशियम, लोहा, पोटेशियम, सोडियम हीं इसमें मिलते हैं। यह देरमें तो अवश्य पचता है किन्तु नाज़ुकसे नाज़ुक मेदे वाले भी इसे पचा लेते हैं। प्रत्येक बच्चेको आलू बहुत पसन्द होता है लेकिन उन्हें आलू अधिक न खाने देना चाहिये और जब कभी वे आलू खायें भी तो उसके साथ हरी सब्ज़ी अवश्य खिलाना चाहिये। अत्यधिक आलू खानेसे बच्चोंकी आँतोंमें कीड़े पड़ जाते हैं। गठिया और रक्त की न्यूनतामें आलू खाना लाभ पहुँचाता है। खानेके अतिरिक्त भी आलू के कई गुण हैं। जल जाने पर कच्चा आलू पीसकर लगानेसे जलन नहीं होती और छाले भी नहीं पड़ते। जिस पानीमें आलू उबाले गये हों उसीमें आप चाँदीकी मैली चीजें रात भर पड़ी रहने दीजिये और प्रातः काल किसी ब्रुश से रगड़ दीजिये। ऐसा करने पर वे फिर नई की तरह चमकने लगेंगी।

घुइया—यह एक भारतीय तरकारी है। भारतवर्षके बाहर इसका प्रचार नहीं है। आलूकी भाँति यह भी बहुत दिनों तक रक्खी जा सकती है। इसमें भी 'ए' और 'बी' व 'सी' विटामिन होते हैं किन्तु 'बी' ही प्रधान है और 'सी' तो केवल नाममात्रके लिये पाया जाता है। नमकोंमें लोहा, कैलशियम, फौसफोरस भी पाया जाता है। यह बादी होती है और हज्म भी कठिनाईसे होती है इसीकी एक और जाति है जो बंडाके नामसे प्रसिद्ध है। यह घुइयासे बहुत बड़ा होता है और शेष गुण वही है।

रतालू—यह भी कई प्रकारका होता है लेकिन इसकी दो जातियाँ—सफ़ेद और सुर्ख ही ज्यादातर मिलती हैं। इसमें सिर्फ़ थोड़ी-सी विटामिन 'बी' होती है और विटामिनें इसमें नहीं होतीं। कैलशियम और फ़ौसफ़ोरस तो केवल नाममात्रके लिये ही होते हैं। लोहा अवश्य इसमें अधिक होता है पर वह भी बहुत नहीं। आमतौर पर तो रतालू फुट डेढ़ फुट लम्बे होते हैं किन्तु अलीगढ़के एक निजी बाग़ (Private garden) में ३२ सेर वजनका रतालू पैदा हुआ था जो आदमक़द था। इस रतालूको नुमाइशमें इनाम भी दिया गया था। रतालूकी तरकारी बहुत ही स्वादिष्ट होती है।

जमीक़न्द—इसको कुछ लोग सूरन भी कहते हैं। यह कई क़िस्मका होता है। बम्बईका जमीक़न्द सबसे अच्छा समझा जाता है। इसकी विशेषता यह है कि वह परपराता बिल्कुल ही नहीं है। वहाँका जमीक़न्द होता भी बहुत बड़ा है। एक-एक गाँठ १०-१२ सेर वज़न तककी होती है। जो तत्त्व रतालूमें पाये जाते हैं वे ही इसमें मौजूद हैं। इसकी तरकारी बवासीरमें फायदा करती है। बवासीरमें जमीक़न्दको सुखाकर और पीसकर दूध या पानी के साथ खानेसे बहुत लाभ होता है। इसका अचार भी बनाया जाता है।

चुकन्दर—लाल-लाल शलजमकी तरह होता है। इसमें 'बी' और 'सी' दो ज़रूरी विटामिन होते हैं तथा लोहा, कैलशियम, फ़ौसफ़ोरस और सोडियम भी थोड़ी-थोड़ी मात्रामें मिलते हैं। यह खून बढ़ाता है इसलिये बहुत ही लाभप्रद गिना जाता है। इसे सलादकी तरह काटकर कच्चा भी खाते हैं। इसका हलवा स्वादिष्ट बनता है जो शक्तिदायक होता है। इसमें शक्कर बहुत होती है। यूरोपमें यह बहुत होता है और वहाँ इसकी शक्कर भी काममें लाई जाती है।

हाथीचक—इसका प्रचार हमारे देशमें अंग्रेज़ोंके आनेके बाद ही हुआ है। इसकी असली जन्मभूमि उत्तरी अमरीका है। आलूकी तरह इसके तनों पर मिट्टी चढ़ाई जाती है। इसमें 'ए' और 'बी' विटामिन होती है तथा लोहा जैसा गुणकारी तत्त्व भी यथेष्ट मात्रामें मिलता है। कुछ कैलशियम, फ़ॉसफ़ोरस और सोडियम इसमें पाया जाता है। इसकी तरकारीका स्वाद भी अच्छा होता है।

गाजर—हमारे देशमें हर जगह बोई जाती है। इसकी काली-पीली दो जातियाँ होती हैं। लाभकी नज़रसे काली गाजर ज्यादा अच्छी समझी जाती है। गल्लेकी कमी होने पर किसान इसीसे अपना गुजारा करते हैं। गाजरमें 'ए', 'बी' और 'सी' तीनों ही विटामिन होते हैं। 'ए' का मानों यह खजाना है। विटामिनोंके अलावा कैलशियम, फॉसफ़ोरस, पोटाश और सोडियम इत्यादि भी इसमें काफ़ी मात्रामें रहते हैं। गाजरमें अनेक गुण हैं। सबसे बड़ा फ़ायदा इसका यह है कि इसके खानेसे शुद्ध रक्त बनता है। 'एनीमियरा' या खूनकी कमीके रोगियोंके लिये अत्यन्त लाभदायक है। छूतसे लगने वाले रोगोंसे भी रक्षा करती है। बच्चोंकी आँतोंमें जो कीड़े (चुन्ने) हो जाते हैं वे भी गाजरसे मर जाते हैं। कच्ची गाजर खानेसे चर्म रोगोंमें भी लाभ होता है, चेहरा भी साफ़ और रौनकदार हो जाता है। पाश्चात्य देश की स्त्रियोंका कहना है कि ताज़ी गाजरोंके टुकड़े अपने चेहरे पर रखकर १५-२० मिनटों तक लेटे रहनेसे खालकी अशुद्धियाँ दूर हो जाती हैं और रंग भी निखर आता है। गाजरका हलवा स्वादिष्ट तो होता ही है साथ ही दिमागको भी ताकत पहुँचाता है। विद्यार्थियोंके लिये अत्यन्त गुणकारी है। जाड़ेमें इसका अचार भी पड़ता है जो हाज़मा ठीक रखता है। पंजाबमें काली गाजरोंसे एक ख़ास तरहका पानी तैयार किया जाता है जो भोजनके बाद पीनेसे हाज़मा करता है। देखनेमें वह बिल्कुल 'शेरी' नामक अंग्रेज़ी शराब जैसा ही लगता है। गाजर का रस या कच्ची गाजर रतौंधीमें भी उपयोगी सिद्ध हुई है।

मूली—इसकी भी कई किस्में होती हैं। कुछ मूलियाँ शलजम-सी गोल होती हैं और उनके रंग भी बड़े खूबसूरत होते हैं—कोई लाल, कोई सुनहली, कोई बैंजनी, कोई दोरंगी इत्यादि। मूलीके मुख्य विटामिन 'बी' और 'सी' हैं लेकिन थोड़ा-थोड़ा 'ए' भी मिलता है। कैलशियम, लोहा, फॉसफोरस, सोडियम वग़ैरह ज़रूरी नमकों की उसमें कमी नहीं है। मूली का सबसे बड़ा गुण पाचन-क्रियाकी सहायता करना है। कुछ लोग इसके पत्तों को बेकार समझकर फेंक देते हैं लेकिन यह उनकी गलती है। पत्तोंमें मूलीसे अधिक कैलशियम होता है इसीलिये मूलीके पत्तों को अवश्य खाना चाहिये। इसके पत्तों की भाजी भी हमारे यहाँ खाई जाती है। मूली का रस बहुत-सी दवाओं-में काम आता है।

शलजम—गाजर और मूलीकी भाँति शलजमकी गणना भी फ़ायदेमन्द सब्जियोंमें की जाती है। शलजम भी कई तरहके होते हैं किन्तु सफ़ेद शलजम ही अधिक प्रचलित है। इसमें 'बी' और 'सी' विटामिनोंकी प्रधानता है। खनिज नमकोंमें से कैलशियम, लोहा, फॉसफोरस, सोडियम, पोटैशियम पाये जाते हैं। अधिकांश घरोंमें देखा गया है कि शलजमकी गांठ की तरकारी बना ली जाती है

और उसके पत्तों तथा ऊपरी भाग काट कर फेंक दिये जाते हैं लेकिन यह भारी गलती है। जितनी भी हरी तरकारियाँ हैं उन सबसे अधिक कैलशियम शलजमके पत्तोंमें होता है। बालकोंको पत्तोंका रस पिलाना चाहिये। इसके रसमें गाजरका रस मिला देनेसे उसका फ़ायदा और भी बढ़ जाता है। स्वाद भी अच्छा हो जाता है। शलजम खून बढ़ाता है और मधुमेह (diabetes) में लाभ पहुँचाता है।

प्याज़-लहसुन—हमारे देशमें प्याज़-लहसुन ज़्यादातर मसालेकी तरह ही काममें लाये जाते हैं लेकिन ये भी स्वास्थ्यकी दृष्टिसे बड़े लाभदायक हैं। प्याज़में तीनों ही विटामिन पाये जाते हैं पर 'बी' सबसे अधिक होता है। लहसुनमें 'ए' और 'बी' तो होते ही है नहीं केवल 'सी' होता है। प्याज़ और लहसुनमें कैलशियम लोहा फॉसफ़ोरस, सोडियम, पोटेशियम, मैग्नेशियम, ताँबा, गन्धक आदि अनेक तत्वोंकी भरमार है। प्याज़ व लहसुन के तत्त्व एकसे ही हैं केवल अन्तर इतना है कि प्याज़में एक प्रकारका तेल होता है जिसकी वजहसे ही उसे खानेके बाद मुँहसे बड़ी देर तक महक आती रहती है और आँखोंमें झरप लगती है। प्याज़की महक कम करनेका भी उपाय है। चूल्हेकी सारी आग बुझा देनेके बाद गर्मराखमें उसकी गाँठें दबा दीजिये और लगभग घंटे भरके बाद उन्हें निकाल लीजिये। इस तरहसे प्याज़के गुण भी नष्ट नहीं होते और उसकी नागवार महक भी चली जाती है और वह नर्म भी हो जाते हैं। गर्मीके दिनोंमें हमारे देशमें गर्म हवाओं या लू लग जानेसे कितने ही प्राणियोंकी जानें जाती हैं। प्याज़ उनसे हमारी रक्षा करता है। गर्मीमें यदि घरके बाहर जाना हो तो प्याज़की गाँठ अपने पास अवश्य रख लीजिये। इसकी महक लू नहीं लगने देती है। इसके अतिरिक्त खाँसी, सर्दी, कब्ज, गठिया और जिगरकी तकलीफोंके लिये भी यह एक अनुपम वस्तु है। प्याज़ ख़ूनको साफ़ करता है, चेहरेके सौन्दर्यको बढ़ाता है। गुर्देके रोगियोंको प्याज़ नुकसान भी करता है। लहसुनको नीबूके रस और नारियलके साथ देनेसे टी-बीमें भी आश्चर्यजनक लाभ होता है

पत्तोंवाली तरकारियाँ—ये तरकारियाँ और तरहकी अपेक्षा अधिक फ़ायदेमन्द होती हैं। इनमें कैलशियम, लोहा और विटामिन 'सी' खूब होती है।

पालक—पत्तोंवाली तरकारियोंमें पालकका ही स्थान प्रमुख है! गुणकारी तत्वोंका तो यह भंडार है। इसमें 'ए', 'बी' 'सी' और 'डी' चारों विटामिन यथेष्ट मात्रामें होते हैं किन्तु विटामिन 'ए' सबसे ज़्यादा होता है। इसमें लोहा और कैलशियम खूब मिलता है किन्तु इनके अतिरिक्त आयोडीन, सोडियम, पोटैशियम फौसफ़ोरस और गन्धक जैसे नमकोंकी भी कमी नहीं। लोहा खूब होनेकी वजहसे खूनकी कमी और एनीमियाके लिये एक लाजवाब चीज़ है। गुर्देकी तकलीफोंमें भी पालक बड़ा असर करता है। इसको खूब खानेसे चेहरेका रंग भी निखर आता है और उस पर चमक भी आ जाती है। थोड़ेसे पानीमें पालकके दो-चार पत्ते भिगो दीजिये और २-३ घंटेके बाद पत्तोंको फेंककर उसी पानीसे मुँह धो डालिये। कुछ दिनों तक लगातार ऐसा करनेसे आपको आश्चर्यजनक परिवर्तन मालूम पड़ने लगेगा।

चौलाई—यह भी पालकसे किसी बातमें कम नहीं। इसमें 'ए', 'बी', 'सी' और 'डी' चारों विटामिन होते हैंजिसमें 'ए' तो बहुतही ज़्यादा होता है। 'बी' और 'डी' थोड़ेही पालकसे कम होते हैं और 'सी' पालकसे ज़्यादा होता है। लोहा व कैलशियम भी पालककी अपेक्षा चौगुने मिलते हैं। शेष खनिज नमक जो पालकमें होते हैं वही इसमें भी प्राप्त होते हैं।

मैथी—इसमें अन्य नमकोंकी अपेक्षा लोहा ही अधिक रहता है किन्तु कैलशियम, फौसफ़ोरस, सोडियम आदिका भी प्रभाव कम नहीं है, 'ए' विटामिन अधिक मिलती है और कुछ 'बी' भी पायी जाती है। इसके सागमें हल्की कड़वाहट होती है।

सरसों—यह साग जाड़ेके दिनोंमें भारतवर्षमें खूब खाया जाता है। इसके मुख्य नमक कैलशियम, फोसफोरस और लोहा हैं। विटामिनोंकी अभी खोज नहीं की गई है।

बथुआ—इसके विटामिनोंकी भी अभी खोज नहीं की गई है। लोहा, कैलशियम, फोसफोरस आदि नमक इसमें मिलते हैं। यह कब्जको दूर करता है। भाजी बड़ी स्वादिष्ट होती है।

करमकल्ला—करमकल्लेका स्थान भी पत्ते वाली तरकारियोंमें ऊँचा है। हालाँकि गुणोंमें पालक और चौलाईकी समता नहीं कर सकता लेकिन फिर भी इसका यह मतलब नहीं है कि इसका खाना व्यर्थ है। इसमें 'ए' 'बी' 'सी' तीनों विटामिन होते हैं। कैलशियम, लोहा, फौसफोरस, सोडियम, गन्धक इत्यादि नमक भी इसमें बहुत थोड़े पाये जाते हैं। करमकल्ला शक्तिवर्धक Tonic है। इसे ज्यादा नहीं खाना चाहिये क्योंकि हज्म देरमें होता है। मन्दाग्नि में यह पेटमें तकलीफ पैदा कर देता है। करमकल्ला कई प्रकारका होता है। हरेकी अपेक्षा बैजनी रंगका अधिक अच्छा होता है क्योंकि उसमें लोहा और कैलशियम ज्यादा होते हैं।

काहू—(Lettuce) यह करमकल्ला वर्गकी ही एक सब्जी है। हमारे देशमें इसका इतना प्रचार नहीं है जितना पाश्चात्य देशोंमें है। इसके हरे-हरे नर्म पत्ते कच्चे ही खाये जाते हैं। कुछ लोग इसकी तरकारी भी पकाकर खाते हैं लेकिन न तो इसमें स्वाद ही होता है और न उतना फायदा ही करती है। इसका खास विटामिन तो 'ए' है परन्तु 'बी' और 'सी' भी काफी मात्रामें मिलते हैं। कैलशियम, फौसफोरस, सोडियम आदि नमकोंकी अपेक्षा अधिक होता है। लोहा ही अधिक होनेके कारण एनीमियाके रोगियोंके लिये लाभदायक है।

सलाद और सिलेरी—लेटूसकी तरह यह भी योरोप अमरीकामें ही अधिक खाये जाते हैं। इनके हरे पत्ते प्याज, खीरा, गाजर, टमाटर आदि और तरकारियोंके साथ काटकर खाना खानेसे पहिले खानेसे भूख बढ़ाते हैं। इनके खानेसे खून भी बढ़ता है। इसमें 'ए' और 'सी' विटामिन विशेष रूपसे पाये जाते हैं। नमकोंमेंसे लोहा ही ज्यादा होता है वैसे तो कैलशियम और फौसफोरस भी मिलते हैं।

फलवाली तरकारियाँ—ये तरकारियाँ दो तरहकी होती हैं। एक गूदेदार और दूसरी रेशेदार। गूदेदार तरकारियोंमें लौकी, ककड़ी, टिन्डे, परवर इत्यादि शामिल हैं और भिन्डी, सेम, कटहल आदि रेशेदार सब्जियाँ कहलाती हैं।

लौकी-टिन्डे-तरोई-चिचिन्डा-ककड़ी-खीरा—ये सब तरकारियाँ आपसमें मिलती-जुलती हैं। इनमें गुण और तत्व भी बहुत कुछ एक ही है। इन सभीमें विटामिनोंका अभाव है अथवा यों कहिये कि यह तत्व बहुत कम ही मिलते हैं। कैलशियम, लोहा, फाँसफ़ोरस, सोडियम, पोटैशियम, मैगनेशियम, गन्धक आदि तत्व होते हैं। ककड़ी-खीरेमें पोटैशियम खूब होता है और 'बी' तथा 'सी' विटामिन भी थोड़े मिलते हैं। चिचिंडेमें केवल 'ए' विटामिन होता है। तरोई दो प्रकारकी होती है—घिया और नसैली। इनमें 'ए', 'बी' विटामिन थोड़े-थोड़े होते हैं। लौकी और टिन्डेमें विटामिन बहुत ही कम होते हैं। ये सभी सब्जियाँ शीघ्र हज़्म हो जाती हैं। ठंडी होती हैं और पेशाब भी लाती हैं। ककड़ी और खीरेका रस अगर गाजरके रसके साथ पिया जाय तो गठियामें बहुत आराम पहुँचाता है। गाज़रकी तरह खीरेके टुकड़े काटकर चेहरे पर कभी-कभी लगा लेनेसे खुरखुरी व फटी हुई खाल चिकनी और कोमल हो जाती है। लौकीका रस टी-बीके रोगियोंके लिये लाभदायक है।

काशीफल—इसे कद्दू या कुम्हड़ा भी कहते हैं। ये सस्ती तरकारियोंमेंसे है और कच्चा-पक्का दोनों तरह का खाया जाता है। इसका मुख्य विटामिन 'बी' है। इसमें खनिज नमक बहुत कम होते हैं। यह बादी होता है इसलिये देरसे हज़्म होता है। यह कुछ-कुछ दस्तावर भी होता है। ज़्यादा खानेसे दस्त आने लगते हैं।

परवर—ये अधिकतर पूर्वी यू. पी. बिहार और बंगाल में होता है। यह बड़ी ही लाभदायक तरकारियोंमें गिना जाता है। इसमें विटामिन नहीं होते किन्तु कैलशियम और लोहा जैसे आवश्यक नमक यथेष्ट मात्रामें होते हैं। परवर हज़्म जल्दीसे हो जाते हैं। इसी कारण रोगीकी दशामें इसका रस बहुत दिया जाता है। परवर खून शुद्ध करता है और फुन्सियोंकी बड़ी अच्छी औषधि है।

बैगन यह कई तरहके होते हैं—हरे बैजनी, सफ़ेद आदि। इसे बहुत से लोग अधिकतर देहाती कच्चा ही खाते हैं। 'ए', 'बी', 'सी' तीनों विटामिन थोड़े-थोड़े मिलते हैं। कैलशियम, लोहा व फोसफोरसमेंसे लोहा ज़्यादा होता है। भारतवर्षमें बैगनकी तरकारी कई ढंगोंसे बनाई जाती हैं। इसका अधिक खाना हानिकारक है क्योंकि यह बादी

होता है।

टमाटर—यह फल और तरकारी दोनों ही है। और साथ ही बहुत लाभदायक भी है। विलायती बैंगन के नामसे पुकारा जाता है। टमाटर सबसे पहिले केवल अमरीकामें होता था। वहाँसे योरपमें और उसके बाद धीरे-धीरे अन्य देशोंमें बोया जाने लगा। ये कई रंग और भिन्न-भिन्न प्रकारकी शक्लके होते हैं। टमाटर तो विटामिनोंकी खान है। 'ए', 'बी', 'सी' और 'डी' सभी विटामिन खूब होते हैं लेकिन 'ए' की मात्रा सबसे अधिक होती है। टमाटर में लोहा भी काफ़ी होता है। इसके अतिरिक्त कैलशियम फौसफोरस, सोडियम आदि तत्वोंकी भी कमी नहीं है। इसे कच्चा ही खूब खाना चाहिये। पकाकर खानेसे इसके बहुमूल्य विटामिन नष्ट हो जाते हैं। टमाटर खानेसे खून साफ़ होता है और गुर्दों को भी उत्तेजना मिलती है। बच्चोंके सूखा रोगकी यह अनुपम औषधि है। मधुमेह (Diabetes) में भी आराम पहुँचाता है। एनीमिया वालोंको इसके प्रयोगसे बहुत लाभ होता है। विटामिन 'ए' की अधिकता होनेके कारण त्वचा पर टमाटरका प्रभाव पड़ता है। बिना पकाये हुए टमाटर खानेसे मुखड़े पर कान्ति छा जाती है और रंग भी खुल जाता है। इसके टुकड़े काटकर कुछ देर तक लगाये रहनेसे भी रंग साफ हो जाता है। चेहरेकी झुरियाँ भी कम हो जाती हैं। वस्त्रों पर स्याहीके धब्बे टमाटरके रस लगानेसे साफ हो जाते हैं। इसकी चटनी बड़ी ही स्वादिष्ट होती है।

हरी मटर—कई तरहकी होती है कच्ची ही खानेसे अधिक लाभ होता है। 'ए', 'बी' और 'सी' तीनों विटामिन होते हैं। लोहा भी इसमें अच्छी मात्रामें मिलता है। कैलशियम, पेटिशियम, मैंगनेशियम, फौसफोरस भी प्राप्त होते हैं। मटर शीघ्र ही हज़्म हो जाती है।

सेम—यह सब्ज़ी बहुत फायदेमन्द है। इसकी कई जातियाँ होती है। एक सफ़ेद और चपटी होती है, दूसरी हरी और गोल होती है, तीसरी हरी चपटी और नर्म तथा चौथी गहरी हरी होती है। इनके अलावा भी कई और तरहकी सेम होती है। भारतवर्षमें इसकी तरकारी बहुत खाई जाती हैं। इसके विटामिनोंमें केवल 'सी' ही उल्लेखनीय है। लोहा, कैलशियम और फौसफोरस भी साधारणतया अच्छी मात्रामें होते हैं।

बोड़ा, ग्वारकी फली—ये सेमकी ही जातिकी चीजे हैं। इनमेंसे बोड़ा तो नर्म होता है लेकिन ग्वारकी फली जिसे बनसिसिया भी कहते है कड़ी होती है। इसकी तरकारी देरसे गलती है और पचती भी देरमें है। जो तत्व सेममें होते है वे ही इनमें भी मिलते है किन्तु मात्रामें कम होते है इसी वजह से ये सब्जियाँ सेमके मुकाबलेमें कम लाभदायक होती है।

भिन्डी—इसमें 'ए', 'बी' और 'सी' तीनों विटामिन थोड़े-थोड़े होते हैं। लोहा, कैलशियम, फौसफोरस जैसे खनिज नमक भी इसमें मौजूद हैं। ताजी भिन्डी कच्ची खाने पर फायदा करती है। यह हज़्म भी जल्दी हो जाती है। जोरकी खाँसी आनेसे गलेमें जो खराश पड़ने लगती है वह भिन्डी खानेसे कम हो जाती है।

सैजन—इसकी तरकारी बहुत लाभदायक होती है। बंगालियोंकी तो यह प्रिय वस्तु है। वास्तवमें इसमें बहुतसे गुणकारी तत्व रहते हैं। 'बी' विटामिन इसमें नहीं होती लेकिन 'ए' और 'सी' दोनों ही खूब होती हैं। लोहेकी भी इसमें भरमार है। कैलशियम, फौसफोरस, सोडियम आदि नमक भी इसमें पाये जाते हैं। इसमें रेशे बहुत होते है इसलिए सैजन कब्जको भी दूर करता है। इसकी तरकारी स्वादिष्ट होती है तथा जड़ औषधिकी तरह बहुतसे रोगोंमें दी जाती है।

कटहल—भारतवर्षकी यह एक प्रसिद्ध तरकारी है। गुणोंका विचार रखते हुए तो इसे ऊँचा स्थान नहीं दिया जा सकता है किन्तु फिर भी हमारे देशमें तरकारीके अलावा कबाब, पुलाव, अचार जैसी बहुतेरी भोजनकी वस्तुए बनाई जाती हैं। इसमें विटामिन नहीं होते और नमक भी बहुत कम होते हैं। बादी होता है इसलिये कमजोर मेदा वालोंको नहीं खाना चाहिये।

करेला—यह एक भारतीय सब्ज़ी है। इसका स्वाद कड़वाहट लिये हुए होता है इसलिये ज़्यादातर बच्चे इसे नहीं खाते लेकिन यह गर्मीके दिनोंकी बड़ी लाभदायक तरकारियोंमें से है। दिलके रोगोंको शान्त करती है। जिगर बढ जानेमें भी बहुत फ़ायदा करती है।

फूल वाली तरकारियाँ—इस प्रकारकी तरकारियाँ

बहुत थोड़ी-सी हैं।

गोभी—फूल वाली तरकारियोंमें गोभी ही सबसे पहिले आती है। जाड़े की तरकारियोंमें से बहुत जायकेदार समझी जाती है। भारतवर्षमें ही नहीं अन्य देशोंमें भी खूब खायी जाती है। इसमें 'बी' विटामिन अधिक होता है और 'ए' तथा 'सी' कम होते हैं। लोहा, कैलशियम, फ़ौसफ़ोरस भी इसमें अच्छी मात्रामें मौजूद रहते हैं। कच्ची गोभी खानेमें अच्छी लगती है इसलिये कच्ची ही खूब खानी चाहिये। इसका अचार और तरकारी भी बनती है। पत्ते गोभीके फूलसे अधिक लाभदायक होते हैं इसलिये इनकी भाजी अवश्य खाना चाहिये।

कचनार—इसके फूल और कलियोंकी तरकारी बनाई जाती हैं। इसकी कलियाँ खाँसी और बवासीरमें आराम देती हैं। इसकी छाल और पत्तियाँ भी बहुत-सी दवाओंके काम आती हैं।

इनके अतिरिक्त काशीफलके फूल, अगस्तके फूल, केलेके फूल तथा और भी अनेक प्रकारके फूलोंकी तरकारियाँ बनाई जाती हैं।

भिन्न-भिन्न प्रकारकी तरकारियोंके गुण और उनकी उपयोगिताके विषयमें तो आप सुन चुकीं। अब आप यह और समझ लीजिये कि सब्जियोंको किस भाँति पकाना चाहिये जिससे हमें उनका पूरा लाभ हो सके। तरकारियाँ सदैव मन्द आँच पर पकाना चाहिये। तेज आँच पर उनके कुछ विटामिन खराब हो जाते हैं। सब्जियोंको विशेषकर हरे साग और गोभीको पकानेके पूर्व बिना छीले लगभग एक घंटे तक पानीमें भिगोये रहना चाहिये। इससे उनके कीड़े बाहर पानीमें निकल आते हैं। कुछ लोग पानीमें नमक डाल देते हैं किन्तु यह ठीक नहीं क्योंकि उसके कारण कीड़े तरकारियोंसे निकलकर बाहर पानीमें नहीं आ सकते और भीतर ही मर जाते हैं। तरकारियोंमें पकाते समय उनका रंग कायम रखनेके लिये कुछ लोग सोडा डाल देते हैं परन्तु यह भी विटामिनोंको विशेषकर 'ए' और 'सी' को नष्ट कर देता है। जो तरकारियाँ उबालकर पकाई जाती हैं उन्हें उतने ही पानीमें उबाले जितना जल सके। अधिक पानीमें उबालनेसे तरकारियोंके बहुतसे तत्त्व पानीमें घुल जाते हैं जो पानीके साथ फेंक दिये जाते हैं। इसलिये जिन तरकारियोंके छिलके नर्म होते हैं उन्हें तो उनके छिलके समेत पकाना चाहिये और जिनके कड़े हों उन्हें छीलकर छिलकोंको एक पोटलीमें बाँधकर तरकारीके साथ ही उबाल लेना चाहिए; इससे इसके आवश्यक तत्त्व तरकारीके रसमें ही घुल जाते हैं। तरकारी पक जानेके बाद पोटलीको निकालकर फेंक देना चाहिये। इसी कारण तरकारियोंको ठीक अथवा विधिपूर्वक पका कर खानेसे ही उनका पूर्ण लाभ मिल सकता है।

हिरोशिमा और नागासाकीमें परमाणु बमका सर्वनाशकारी प्रभाव

(ब्रिटिश मिशनकी रिपोर्ट)

विद्वान् वैज्ञानिकोंका एक संघ हिरोशिमा और नागासाकी में परमाणु बमके परिणाम अध्ययन करनेके लिए वहाँ गया था। इस संघमें गृह विभागके कुछ वैज्ञानिक, प्रो० डबल्यू एच० टामसकी अध्यक्षतामें तथा एक भौतिक शास्त्र व इंजीनियरिङ्गके प्रमुख विद्वान् जिन्होंने १९३९ में वायुयानोंके आक्रमणसे रक्षा करनेके लिए वैज्ञानिकोंका एक संघ बनाया था, थे। इनके अतिरिक्त संघमें नौका विभाग, युद्ध विभाग, वायु मंत्रि-मंडल, वायुयान निर्माण मंत्रि-मंडल तथा भारत सरकारके प्रतिनिधि भी थे। भारत सरकारके प्रतिनिधि श्री डा० पारथासारथी थे। इस संघने प्रत्येक पहलूसे इन स्थानोंके ध्वंसावशेषोंका अध्ययन करने का प्रयत्न किया। अध्ययन समाप्त करने पर मिशनने जो विस्तृत रिपोर्ट लिखी है उसीका कुछ अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है। इस विवरणको पढ़नेसे परमाणु बमके भयंकर विनाशकारी प्रभावका अनुमान लग सकता है।

रिपोर्टकी भूमिकामें कहा गया है कि इस विस्तृत रिपोर्ट को छापनेका उद्देश्य यह है कि इसे पढ़नेसे आक्रमणके इस नवीन यंत्रके भयंकर परिणामोंको जान कर संयुक्त राष्ट्र संघ (United Nation Organisation) इस विनाशकारी परमाणु शक्तिके नियंत्रण और ऐसे जनसंहारक यंत्रोंके प्रयोगको रोकनेका प्रयत्न करेगा।

रिपोर्टमें कहा गया है कि हिरोशिमा और नागासाकी जैसे घनी आबादी वाले उन्नतिशील नगरोंके ध्वंसोको देखने से अनुमान होता है कि ये नगर क्षण भरमें ही परमाणु बम द्वारा नष्ट भ्रष्ट हो गये।

हिरोशिमामें १० वर्गमीलसे भी अधिकके घेरे पर बम विस्फोट का प्रभाव हुआ था। वह समस्त भाग आबाद था और वहाँ सब मकान लकड़ीके बने हुये थे। ये सब पहले तो विस्फोटके धड़ाकेसे ही गिरे और बादमें आगसे जलकर भस्म हो गये।

६ अगस्त १९४५ को जब हिरोशिमा पर बम गिरा वहाँ लगभग ३२०,००० मनुष्य थे। इनमेंसे ८०,००० मरे थे।

नागासाकी की एक व्यावसायिक घाटीमें तथा उसके समीप की बस्ती पर बम गिरा था। सम्पूर्ण स्थान नष्टभ्रष्ट हो गया। नागासाकीकी आबादी २६०,००० थी। ९ अगस्तको जब नागासाकीकी व्यावसायिक घाटी पर बम गिरा, उस घाटीमें लगभग १००,००० मनुष्य थे, जिनमें से लगभग ४०,००० मरे थे।

आरम्भमें वस्तुओंकी क्षति तथा मृत्युयें बमके विस्फोट, गर्मीकी लहरों तथा रेडियो-किरणोंके प्रभाव (Radio Actiity) के कारण हुईं। संघका अनुमान है कि यदि ब्रिटिश बस्ती पर ऐसा ही विस्फोट हुआ होता तो उसका प्रभाव अपेक्षाकृत काफी कम होता। विस्फोटके केन्द्रसे लगभग १००० गज दूर तकके मकान एकदम धराशायी होजाते। एक मील तकके मकान मरम्मत न कराने योग्य हो जाते, डेढ़ मील तकके मकान बिना बहुत सी मरम्मत करवाये रहने योग्य न हो पाते, तथा बिना कुछ आवश्यक मरम्मत करवाये रहने योग्य २-२½ मील तक के मकान भी न रहते।

मिशन ने अपनी रिपोर्टमें यह भी कहा है कि यद्यपि जापानी रक्षागृह ब्रिटिश रक्षागृहोंकी भाँति उत्तमकोटिके नहीं थे, फिर भी प्रायः सभी नष्ट होनेसे बच गये, केवल थोड़ेसे रक्षागृह जो नागासाकीमें विस्फोट केन्द्र से कुछ सौ गज की दूरीके अन्दर ही थे, नष्ट हुये। अतः संघका अनुमान है कि इस प्रकारके विस्फोटोंमें आदर्श ब्रिटिश रक्षागृह तो विस्फोट-केन्द्र पर भी धराशायी नहीं होते। संघके विचारसे पृथ्वी के नीचे बने हुये ब्रिटिश रक्षागृह तो पूर्णरूपसे रक्षा करनेमें समर्थ होते।

बमोंकी गर्मीका प्रभाव

इन बमोंकी गर्मीके प्रभावका वर्णन करते हुये संघ ने कहा है कि विस्फोट होते ही एक पलके लिए तो प्रकाश की एक तीव्र किरण दिखलाई पड़ी, उसके बाद उसकी गर्मी चारों ओर फैली जिससे काफी दूर तककी वस्तुयें एकदम झुलस गईं। उस समय वहाँ पर उपस्थित दर्शकोंका कथन है कि जो लोग खुले स्थानों में काम करनेके कारण विस्फोट के प्रभावमें अधिक थे, उनकी त्वचायें तो इतनी जल गई थीं कि तुरन्त ही एकदम काली या भूरी पड़ गईं। ऐसे लोग कुछ ही मिनिटोंमें मर गये। केवल कुछ ही लोग ऐसे रहे होंगे जो २–४ घन्टों के बाद मरे हों।

त्वचाके खुले भागोंका जलना विस्फोट केन्द्र से १२०० गज तक बड़ा तीव्र था। उसके बाद २–२½ मील तक साधारण रूपसे लोग जले। इस प्रकारकी किम्बदान्तियाँ कि हिरोशिमामें श्वेतवर्ण लोगों पर विस्फोट का कोई प्रभाव नहीं हुआ और पीतवर्ण जापानी घातक रूपसे जले, सारहीन हैं। महीन से महीन कपड़े पहने हुए लोग इस प्रकार जलनेसे काफी बच गये। हाँ कभी-कभी स्वय कपड़ोंमें ही आग लग गई जो और भी भयङ्कर सिद्ध हुई।

अपनी रिपोर्टमें संघने यह भी बतलाया है कि सड़कोंकी एस्फाल्ट (Asphalt) सतह पर ताप विकिरण (Heat radiation) का मेकाबर परिणाम (Mecabre result) ऐसा पड़ा कि सड़कोंकी सतहों पर उस समय चलने-फिरने वाले लोगोंके छायाचित्र बन गये।

संघका कथन है कि दोनों नगरोंमें अलग-अलग सहस्रों स्थानों पर आग लगी थी। इनमेंसे बहुतसे स्थानोंकी आग तो बिजलीकी गड़बड़ीसे या गैसोंके निकलनेसे लगी थी। कहीं-कहीं ताप विकिरणके प्रभावसे ही आग लगी। ऐसा तो केन्द्र से लगभग एक मीलके लगभग तक ही हुआ।

रेडियो-किरणों का प्रभाव

विस्फोट किरणोंके बाद रेडियोंके प्रभावसे युक्त कुछ लहरें उत्पन्न हुईं जिनकी रूपरेखाके सम्बन्धमें पूरी जाँच नहीं हो पाई। ये गामा किरणें (Gama rays) कहलाती हैं। ये गामा किरणें लोगोंकी त्वचामें इस प्रकार प्रवेश करती थीं, कि उनकी त्वचा पर कोई प्रभाव नहीं दिखलाई पड़ता था। देखनेसे वे लोग बिल्कुल स्वस्थ लगते थे किन्तु लगभग २४ घन्टे बाद ही इन लोगोंको जी मिचलाना कै आना और बुखार आदिका कष्ट होने लगा।

गामा किरणों का प्रभाव

गामा किरणोंका प्रभाव मनुष्यों पर अपरोक्ष रूपसे पड़ता था। वे उनकी हड्डियोंकी मज्जाको नष्ट कर देती थीं जिससे रुधिरके संघ बनने बन्द हो जाते थे। इस प्रकार उनके लिये पुरानी क्षय हुई सेलों की पूर्ति करना कठिन था जो उनके जीवनके लिये घातक सिद्ध होता था। यह सभी जानते हैं कि लाल सेलोंके न बननेसे मनुष्यमें रुधिरका प्रभाव कम हो जाता है और शीघ्र ही वह पीलिये (Anemia) का रोगी बन जाता है। प्लेटलैटस (Platlets) की कमी-से रुधिर पतला हो जाता है और त्वचाके नीचे व आँखकी रेटिनामें भीतर ही भीतर रुधिरका प्रवाह होने लगता है, और पीलिया बड़ी शीघ्रतासे बढ़ता है। श्वेत रक्तकणोंके न बनने से मनुष्यकी सहन शक्ति कम हो जाती है और वह प्रायः छूतसे फैलने वाले रोगोंका शिकार हो जाता है।

संघके विचारमें विस्फोट के न्द्रसे आधा मीलकी दूरी तकके घेरेमें जो लोग पूर्ण रूपसे गामा किरणोंके सम्मुख पड़े, उनमेंसे प्रायः सभी मर गये। उन्हें इस बातका भी प्रमाण मिला है कि केन्द्रसे ¾ मील पर बचनेकी आशा ५० प्रतिशत तक थी। केन्द्रसे १-१½ मील परबालोंका उड़ना आदि साधारण प्रभाव दिखलाई पड़े, तथा रेडियो किरणोंसे उत्पन्न साधारण रोग तो इससे कुछ और दूर तक भी हुये।

सुदृढ़ पक्की इमारतोंको भेदकर भी गामा किरणोंने अपना प्रभाव दिखलाया। अतः इन मकानोंके अन्दर रहनेसे भी गामा किरणोंसे कोई रक्षा न हो सकी। उदाहरणतः सीमेन्टके बने एक पक्के मकानमें २३ मनुष्य थे। उनमेंसे कोई भी घायल नहीं मालूम पड़ता था, किन्तु केवल उन दो मनुष्यों-को छोड़कर जो नीचे की मंजिलमें थे, शेष सब तीन सप्ताहके भीतर ही मर गये।

हिरोशिमामें केन्द्रसे १००० गजके घेरेके भीतर जो गर्भवती स्त्रियाँ जीवित बचीं उन सभीका असमयमें गर्भपात हो गया। जो बालक जीवित दशामें उत्पन्न हुये भी, वे भी शीघ्र ही मर गये। इससे आगे २: मीलके घेरे तक भी

लगभग एक तिहाई गर्भवती स्त्रियों के बच्चे ही स्वस्थ बालक हुये। विस्फोटके दो महीने बाद गर्भपातकी संख्या साधारण समयकी अपेक्षा पाँचगुनी अधिक और कुछ प्रसवोंकी एक चौथाई थी।

विस्फोट केन्द्रसे पौन मीलके घेरे तक पुरुषोंके उत्पादक अंगों पर भी कुछ प्रभाव पड़ा।

अपने इस अध्ययनके आधार पर संघका अनुमान है कि ब्रिटेनके किसी बड़े शहर पर परमाणु बम गिरनेसे लगभग ५०,००० मनुष्य मरेंगे, जब कि जर्मनीके प्रत्येक V–रॉकेटसे १५ मनुष्यके मरनेका औसत आता था।

बमके विस्फोटसे ३०,००० मकान या तो एकदम धराशायी ही हो जायेंगे या इतने टूट जायेंगे कि उनकी मरम्मत ही न हो सके। ३५,००० मकानोंमें बहुत अधिक मरम्मतकी आवश्यकता होगी तथा ५०,००० से १००,००० मकानों तक की दशा ऐसी रहेगी कि कुछ मरम्मतके बाद उनमें रहा जा सकेगा।

इस प्रकार लगभग ४००,००० मनुष्य कुछ समयके लिये गृहविहीन निराश्रित बन जायेंगे। इनमेंसे लगभग आधे मनुष्य अपने मकानोंकी आवश्यक मरम्मत करा कर उनमें रहने लगेंगे। शेष २००,००० में से लगभग ५०,००० मर चुकेंगे या दो महीनेके भीतर मर जायेंगे। काफी संख्यामें मनुष्योंको अस्पतालोंमें जाकर काफी समय तक उपचार करवानेकी आवश्यकता पड़ेगी। इस प्रकार लगभग १००,००० ऐसे स्वस्थ मनुष्य बचेंगे जिनके रहनेके लिए मकानोंकी समस्या होगी।

इसी प्रकारकी एक विस्तृत रिपोर्ट संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाके संघ द्वारा भी वाशिंगटनमें इस रिपोर्टके साथ ही साथ प्रकाशित हुई है।

परिवर्तनशील तारे

(लेखक—डा० हरिकेशव सेन, गणित विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

सीफाइड परिवर्तनशील नक्षत्र
(Cepheid Variables)

सीफाइड तारे कहने से वह तारे समझना चाहिये जिनका प्रतिनिधि डेल्टा सीफाई (S Cephei) नाम का तारा है जो प्रायः सब बातों में इस वर्ग के तारों से मिलता जुलता है। अतिकालिक नक्षत्रों की तरह सीफाइड तारों की भी परिभाषा सहज नहीं है, और बहुत से तारे इन दोनों वर्गों के बीच में पड़ते हैं। इस अध्याय में हम उन तारों को सीफाइड कहेंगे जिनका आवर्त्तकाल १०० दिन से कम हो, अर्थात् परिवर्तनशील नक्षत्र जिसके वह रश्मिचित्र में परिवर्तन हो और परिवर्तन आवर्त्त से हो और जो अतिकालिक नक्षत्रके वर्गमें न हो। अधिक और अल्प आवर्त्तकाल के सीफाइड तारों को (अर्थात् जिनके आवर्त्तकाल एक दिन से अधिक हो या कम हो) हम एक ही वर्ग में रक्खेंगे, यद्यपि ऐसा करना अधिकांश लेखकों के मत के विरुद्ध होगा। परन्तु जब अधिक आवर्त्त-के सीफाइड तारे भी संभवतः एक वर्ग में नहीं रक्खे जा सकते, तो अल्प आवर्त्तकाल के सीफाइड तारों को एक वर्ग में रखना ठीक नहीं। इस अध्याय में जिन तारों का अध्ययन किया गया है वह आपस में बहुत ही मिलते जुलते हैं और इनका वर्ग परिवर्तनशील तारों में जितने वर्ग हैं उन सब में स्वाभाविक है।

लगभग ६०० सीफाइड तारे देखे गये हैं। इनमें से अधिकांश तारे इतने धुंधले हैं कि उनके केवल आवर्त्तकाल ही मालूम किये गये हैं और कुछ तारों के प्रकाशवक्र। बहुत कम सीफाइड तारों का विशेष अध्ययन हुआ है। अतिकालिक नक्षत्रों के तो प्रकाशवक्र उनके रश्मिचित्र से अधिक मालूम हैं ('स्वांतःसुखाय' ज्योतिर्विदों के परिश्रम का यह फल है) परन्तु सीफाइड तारों के रश्मिचित्र का अध्ययन उनके प्रकाशवक्र से अधिक हुआ है।

अतिकालिक नक्षत्रों के समान सीफाइड तारों के विषय में भी इतनी बातें मालूम हैं कि इनमें से थोड़ी विशेष बातों का ही उल्लेख हम यहाँ कर सकते हैं। सीफाइड तारों के ही लिये आवर्त्तकाल और रश्मिचित्र में संबंध सबसे अच्छा मालूम हैं और सबसे अधिक स्पष्ट भी है। आवर्त्तकाल और रश्मिचित्र में संबंध सीफाइड और अति-कालिक तारों में निकटतम संबंधसूत्र है। संभवतः यह तारे के आवर्त्तकाल और घनत्त्व में संबंध का ही फल है—यह आवर्त्तकाल और घनत्व में संबंध स्पंदन-संबंधी मतोंकी विशेषता है। सब तारे कोई एक संबंध के अधीन नहीं हैं, इसलिये सीफाइड तारों के कई वर्ग किये जा सकते है। यह बात अतिकालिक तारों के लिये भी सत्य है।

हार्टस्प्रंग (Hertzsprung) ने दिखलाया है कि सीफाइड तारे के प्रकाशवक्र में कूबड़ का होना इसके आवर्त्तकाल से संबंध रखता है। सीफाइड तारोंके प्रकाशवक्रोंके अध्ययन से यह बात ठीक मालूम होती है। यह बात बहुत दिनोंसे मालूम हैं कि समूहात्मक तारों के प्रकाशवक्र के आकार और उनके आवर्त्तकाल में निकट संबंध है—सबसे कम आवर्त्तकाल तारे का प्रकाशवक्र सबसे अधिक समसंगत (Symmetrical) है। परन्तु प्रकाशवक्र आवर्त्तकाल के बढ़ने से लगातार विषमसंगत (unsymmetrical) नहीं हो जाता, इसलिये राबिन्सन (Robinson) ने कहा है कि आवर्त्तकाल और प्रकाशवक्र में यदि संबंध है भी तो वह अत्यन्त कम है।" परन्तु कुकार्किन और परानेगो (Kukarkin, paranego) ने सीफाइड तारों के प्रकाशवक्र और आवर्त्तकाल में सम्बन्ध निकाला है, जिससे सीफाइड कम से कम तीन वर्गों में विभक्त हो सकते हैं। हमारे नक्षत्रमंडल (Galaxy) के सीफाइड तारों में भी यह संबंध पाया गया है।

अब हम सीफाइड तारों के आवर्त्तकाल और

प्रकाशमात्र के संबंध का वर्णन करेंगे जो अन्य सब संबंधों की अपेक्षा अच्छी तरह प्रमाणित है और बहुत ही तथ्यपूर्ण और उपयोगी है। दक्षिण के आकाशमें आकाशगंगा की तरह जो तारों के बादल हैं (Star clouds) उनको मैगेलानिक क्लाउडस (Magellanic Clouds) कहते हैं। इनमें परिवर्तनशील नक्षत्र बहुत से हैं। हार्वार्डकी कुमारी लिआविट (Miss Leavitt) ने इनमें लगभग १८०० तारोंका पता लगाया है। पासमें परिवर्तनशील तारे बहुत कम हैं, इसलिये इस बादलमें जितने पाये गये हैं वह प्रायः सब बादलोंके हैं। इनमेंसे अपेक्षाकृत जो छोटा बादल (Smaller cloud) है उनमेंसे सौ से अधिक तारोंके आवर्त्तकाल और प्रकाशवक्र मालूम किये गये हैं। आवर्त्तकाल १५ घंटेसे लेकर १०० दिनसे भी अधिक तक हैं। १५ घंटेसे भी कम आवर्त्तकाल के तारे पाये गये हैं, परन्तु उनकी प्रकाशमात्रा अभी तक ठीक-ठीक मालूम नहीं है। इनके प्रकाशवक्र बिलकुल सीफाइड तारोंके प्रकाशवक्रोंकी तरह हैं। इनकी प्रत्यक्ष प्रकाशमात्रा (apparent luminosity) और आवर्त्त-कालमें बहुत ही निकट संबंध है। जिन तारोंके आवर्त्तकाल बराबर हैं उनकी प्रत्यक्ष प्रकाशमात्रा भी बराबर हैं और उनकी निरपेक्ष प्रकाशमात्रा (absolute luminosity) भी समान होगी। गोलसमूहों (globular clusters) के परिवर्तनशील नक्षत्रोंके लिये भी ऐसा किया गया है। इन सब तारों को मिला कर एक आवर्त्तकाल-प्रकाशमात्रा सम्बन्धी वक्र खींचा गया है जिससे विभिन्न आवर्त्तकालके सीफाइड तारोंकी आपेक्षिक प्रकाशमात्रा (relative luminosity) बहुत ठीक-ठीक मालूम कर सकती है।

ऐसा सम्बन्ध क्यों पाया जाता है इसका कारण अभी मालूम नहीं, किन्तु इस सम्बन्धकी सत्यताके विषयमें कुछ भी संदेहका स्थान नहीं। अब यदि कोई भी एक (या एक छोटेसे बादलके सब) सीफाइड तारेकी निरपेक्ष प्रकाशमात्रा मालूम हो तो सीफाइडके आवर्त्तकाल-प्रकाशमात्रा सम्बन्धी वक्र से किसी भी सिफाइडकी निरपेक्ष प्रकाशमात्रा मालूम हो सकती है, जिसका आवर्त्तकाल मालूम हो। कुछ सीफाइड तारोंकी जो बहुत ही उज्ज्वल हैं निरपेक्ष प्रकाशमात्रा उनकी गति (proper motions) से मालूम है।

लंबे आवर्त्तकालके सीफाइड तारे बहुत ही उज्ज्वल होते हैं। १०० दिन आवर्त्तकालका सीफाइड हमारे सूर्यसे २०,०००गुना अधिक उज्ज्वल होगा।

यद्यपि सीफाइडके आवर्त्तकाल और उसकी प्रकाशमात्रा में जो सम्बन्ध है उसका कारण अभी तक मालूम नहीं तो भी इस सम्बन्धका उपयोग बहुत ही हुआ है। इसके द्वारा जितने सीफाइड और समूहात्मक परिवर्तनशील नक्षत्र (cluster variables) हमें मालूम हैं उन सब की दूरी और आकाशमें उनकी स्थिति मालूमकी गई है। शैपले (Shapley) ने इसमें बहुत परिश्रम किया है। सीफाइड तारे आकाशगंगाके निकट ही अवस्थित हैं परन्तु समूहात्मक तारे आकाशगंगासे दूर भी पाये जाते हैं।

एक और भी चित्ताकर्षक उपयोग यह है कि हमारे तारकमंडल (galactic system) के बाहर यदि कोई सीफाइड तारे मिलें, तो उनकी भी दूरी हम निकाल सकते हैं। हबल (Hubble) ने इस प्रकारसे हमारे तारक-मंडलके बाहर स्थित नीहारिकाओं (extra-galactic nebulae) की दूरी मालूम की है।

जिन सिफाइड तारोंका आवर्त्तकाल एक दिनसे अधिक है वह आकाशगंगाके बहुत निकट अवस्थित हैं। अतिका-लिक तारे सीफाइडसे इस बातमें बिलकुल भिन्न हैं, क्योंकि वह आकाशगंगाके पास एकत्र(Concentratred)नहीं है। सीफाइड तारे अत्यधिक उज्जवल होने के कारण संभवतः आकाशगंगाके पास एकत्र होना इनका एक स्वभाव (tendency) है। आकाशमें स्थितिके विषयमें लंबे आवर्त्त-कालके सीफाइड तारे अतिकालिक नक्षत्रोंसे विभिन्न हैं। हम कह चुके हैं कि समूहात्मक तारे भी (Cluster type-variables) आकाशगंगासे दूर पाये जाते हैं।

आकाशपथमें गतिके दृष्टिकोणसे सीफाइड तारे दो वर्गोंमें विभक्त हो सकते हैं। प्रथम वर्गके सीफाइड तारोंका आवर्त्तकाल एक दिनसे अधिक है और इनकी गति अपेक्षाकृत कम है। द्वितीय वर्ग के सीफाइड तारोंका आवर्त्तकाल एक दिनसे कम है, और इनकी गति अपेक्षाकृत अधिक है। परंतु अतिकालिक नक्षत्रों की गति अधिक है, और आवर्त्तकालके घटनेसे गति बढ़ती है। परिवर्तनशील नक्षत्रों की गतियोंमें ऐसा तारतम्य होनेका अभी तक कोई कारण निर्देश नहीं हुआ। मेरिल (Merill) कहते हैं, "आधुनिक ज्योतिविदोंके लिये यह एक बड़ी भारी समस्या है कि तारे की गति और उसके भौतिक गुणोंमें क्या संबंध है। कुछ तारों की गतियाँ ऐसी अनोखी हैं कि तारोंके विकास (Stellar evolution) संबंधी मत को इस बात की तरफ ध्यान देना चाहिये।"

वैज्ञानिक वार्ता

अंधकार में जहाज़ निर्विघ्न यात्रा कर सकेंगे

अभी हाल में लंदन में एक असाधारण महत्व का सम्मेलन समाप्त हुआ है, जिसमें २२ देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। सम्मेलन में जिस विषय पर विचार किया था वह यह था कि जहाज़ों के संचालन और मार्ग-दर्शन में रेडार द्वारा किस प्रकार सहायता ली जा सकती है। यद्यपि रेडार के युद्धकालीन प्रयोग अपनी वर्तमान अवस्था में उपयोगी नहीं पाये गये, फिर भी यह प्रकट हो गया कि सम्मेलन के परिणाम भविष्य के लिए असाधारण महत्व के सिद्ध हो सकते हैं और अनुसंधान करके रेडार से शान्तिकामें जहाजकी यात्रामें सहायता ली जा सकती है। सम्मेलन में यह भी निश्चय किया गया कि रेडार की जो प्रणालियाँ जहाज़ चलानेके काम की निकाली जायँ वे संसार भर में समान स्तर पर रखी जायँ।

असीम संभावनाएं—जहाज संचालन तथा मार्ग-दर्शन में रेडार की सम्भावनाएं असीम हैं। रेडार द्वारा किसी जहाज की ठीक स्थिति किसी भी समय जानी जा सकती है। परन्तु इसके लिए जहाज पर एक विशेष यंत्र का रहना आवश्यक है। सर्वोत्तम व्यवस्था तो किनारे पर रेडार केन्द्र स्थापित करना होगा, जिससे समुद्र में १,५००० मील तक की दूरी के जहाजों की स्थिति का पता लगाया जा सकेगा। परन्तु जब तक वर्ती गयी प्रणाली और यंत्रों की समानता के विषय में कोई समझौता नहीं किया जायगा तब तक इन केन्द्रों से कोई लाभ नहीं होगा। सौभाग्यवश व्यापारिक जहाजों के संचालन में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग की परम्परा पहले ही से वर्तमान है, इसलिए रेडार सम्बन्धी अनुसन्धानों को समान स्तर पर रखने की आशा भली भांति की जा सकती है।

लंदन के सम्मेलन में प्रतिनिधियों को रेडार सम्बन्धी वे सभी तरकीबें बता दी गयीं, जिन्हें एक वर्ष पूर्व बड़ी सावधानी से गुप्त रखा जाता था। उन्होंने वे सभी यंत्र भी देखे, जिनके विकसित रूप भविष्य में समुद्र में जहाज-संचालन-कलामें क्रान्ति कर देंगे। उन्होंने उन तरकीबों के प्रारम्भिक रूप भी देखे, जिनसे समुद्र यात्रा के संकट अतीत की कहानी मात्र रह जायँगे।

एक प्रयोग को तो कार्यान्वित भी किया जाने लगा है। मान लीजिये कि एक जहाज अंधकार तथा बहुत बुरे मौसम में किसी बन्दरगाह में प्रवेश कर रहा है। जहाज का चालक रेडियो टेलीफोन द्वारा किनारे के केन्द्र से सम्बन्ध स्थापित करता है और केन्द्र को अपने आगमन की सूचना देता है। यदि जहाज का मार्ग किसी अन्य जहाज़ से टकराता है तो रेडार के पर्दे के सामने बैठा हुआ कर्मचारी इसकी सूचना तुरन्त चालक को दे देता है। इस तरकीब से केवल खतरा ही नहीं घटता, बल्कि समय की बचत भी होती है। अब जहाजों को कुहरे के समय बन्दरगाह के बाहर लंगर डाले प्रतीक्षा न करनी पड़ेगी। लंदन और साउदेम्पटन में शीघ्र ही यह प्रणाली जारी की जायगी।

भविष्य के व्यापारिक जहाज—भविष्य में व्यापारिक जहाजो में कई रेडार यंत्र होंगे, जिससे कि जहाज हर मौसम में तेजी से और बिना किसी खतरे के यात्रा कर सकेंगे। कठिनाई केवल यही है कि रेडार यंत्र मंहगे बहुत पड़ते हैं। इसीलिए और भी आवश्यक है कि रेडार यंत्रों की बनावट के विषय में अनुसन्धान करके एक स्वीकृत प्रणाली निकाली जाय।

गति के नाप का नया उपाय

मनुष्यने अपनी यात्राके लिये अब ऐसे द्रुतगामी वाहन निकाल लिये हैं कि उनकी गति नापनेके पुराने ढंगके यंत्र बेकारसे पड़ गये हैं। सभी जानते हैं कि गत महायुद्धमें एक ऐसा विमान निकला है, जो प्रज्वलन-शक्ति द्वारा चलता है और जिसकी रफ्तार आवाज की रफ्तारके बराबर अर्थात् लगभग ७६० मील प्रति घंटा होती है। स्पष्ट है कि हमारी मोटर गाड़ियों, रेलों अथवा जहाज़ों और यहाँ तक कि पुरानी चालके विमानोंमें काम देने वाले गति-मापक यंत्र इतनी तेज रफ्तारको नापने का काम नहीं दे सकते। साथ ही आवश्यक है कि जेट बिमान अर्थात् प्रज्वलनसे चलने वाले यंत्रके चालक को मालूम रहे कि उसका वाहन कितनी

रफ्तारसे जा रहा है। यह जानना आवश्यक रहता है कि उसका विमान ठीक शब्द की गतिसे जा रहा है अथवा उससे कम गतिसे। एक जटिलता यह भी है कि शब्द की गति ऊँचाईके हिसाबसे घटती और बढ़ती रहती है। उदाहरणार्थ, यदि समुद्र की सतह पर शब्द की गति ७६० मील प्रति घंटा रहती है तो ४०,००० फुट की ऊँचाइ पर वह ६६० मील प्रति घंटा हो जाती है, जिसका कारण ऊँचाई में तापमान की कमी है। इस कारण जेट-विमानके चालक को यह हिसाब लगाना होता है कि वह कितनी ऊँचाई पर उड़ रहा है, ताकि वह जान सके कि उतनी ऊँचाई पर शब्द की गति क्या होगी। इस प्रकार जो हिसाब निकलता है वह जेट-विमान की गति समझी जाती है। अब बृटिश वैज्ञानिकोंने 'मैकामीटर' नामक एक ऐसा यंत्र निकाला है जो उक्त हिसाब अपने आप निकाल कर चालकको बताता रहता है कि उसका जेट-विमान किस गतिसे उड़ रहा है।

जेट-शक्ति से चलने वाला प्रथम जलयान

बृटिश वायुयान कम्पनीने जल पर चल सकने वाला एक ऐसा विमान तैयार किया है, जो जेट शक्ति से संचालित होगा। यह संसारका इस प्रकारका पहला यंत्र है। इसकी विस्तृत बातें अभी गुप्त रखी गयी हैं, किन्तु हालमें ही इसका एक नमूना लन्दन की एक इंजन प्रदर्शनीमें रखा गया था। कहते हैं कि यह यंत्र ७ से १० हज़ार की अश्व-शक्ति तकके दो विशेष इंजनोंसे चलेगा और इसकी रफ्तार प्रायः ४०० मील प्रति घंटा से अधिक होगी जबकि अब तक के जल-यानों की गति २०० मील प्रति घंटासे अधिक नहीं होती।

बिना चिकनाई का साबुन

संसारमें खाद्य पदार्थों की कमी के कारण, आज एक प्रश्न यह भी उपस्थित है कि क्या ऐसा साबुन तैयार किया जा सकता है जिसमें खानेके काम आनेवाले तेलोंका खर्च न हो। बृटेनके एक रासायनिक श्री वाब एडवर्ड्सका कहना है कि ऐसा सम्भव है। उन्होंने बताया है कि द्रव, बारीक हल्के टुकड़ों तथा टिकियोंके रूपमें ऐसा साबुन तैयार किया जा सकता है और तेल-मिलों की अखाद्य वस्तुओं तथा तारकोलसे निकलने वाली बेकार चीजोंके योग्यसे भी अन्य साबुन तैयार किया जा सकता है और इस प्रकार खाद्य तेलों की भारी बचत की जा सकती है।

उद्योग धंधों में काम आने वाले रंग

कपड़ा तैयार करने वाली जो बृटिश फर्में युद्ध से पहले प्रायः एक हज़ार से अधिक रंगों का प्रयोग किया करती थीं, अब केवल ४० रंगोंके ही मेलसे भांति भांति के अच्छे रंग तैयार करनेमें सफल हुई हैं। युद्ध-काल के परिवर्तनों तथा अनेक वस्तुओं की कमी के कारण ही रंग तैयार करनेके उक्त सीधे-सादे तरीके निकाले जा सके हैं और बृटेन की 'रंग परिषद्' ने उनका समर्थन किया है। परिषद् शीघ्र ही रंगोंका एक ऐसा 'कोष प्रकाशित करने वाली है, जिसमें प्रायः ३५० रंगों का विवरण होगा और ये रंग उद्योग-धंधोंके सभी कामों के लिये पर्याप्त होंगे। 'बृटिश रंग परिषद् के आर्ट-डाइरेक्टर श्री राबर्ट विलसनने हालमें ही प्रदर्शन करके बताया है कि रंगोंके मेलसे बहुत अच्छे रंग तैयार किये जा सकते हैं।

मजूरोंके लिए नये प्रकारका रोगन

बहुतेरे उद्योग धंधे ऐसे होते हैं जिनमें मजूरोंके हाथों की चमड़ी कामसे खराब हो जाती है और बीमारीका भी डर रहता है। हालमें ही बृटेनमें नये प्रकारका एक ऐसा रोगन तैयार किया गया है, जिसे कामसे पहले हाथोंमें लगा लेनेसे उक्त धंधोंके मजूर अब अपनी रक्षा पूरी तरह कर सकेंगे। बृटिश रासायनिकों ने बड़ी मेहनत और खोजके बाद यह रोगन निकाला है।

बृटिश सरकारके श्रम विभाग ने हालमें ही एक पुस्तिका प्रकाशित की है, जिसमें इस रोगनकी ११ किस्मों का विस्तृत विवरण दिया है और बताया गया है कि किस प्रकारके कामके मजूरको कौनसी किस्मका रोगन इस्तेमाल करना चाहिये। उदाहरणार्थ, इञ्जनोंका काम करने वाले मजूरोंके हाथोंकी कालिख मिटानेके लिये दूसरे तरहका रोगन है और तारकोलका काम करने वाले मजूरोंके लिये दूसरी तरहका। इस प्रकार तेज तेजाबों और क्षार-युक्त पदार्थोंसे काम करने वाले मजूरोंके लिये अन्य प्रकारका रोगन तैयार किया गया है।

किन्तु अभी ये रोगन सर्व साधारणको प्राप्त नहीं है, बल्कि कारखानों में केवल मजूरोंके हाथोंकी रक्षाके लिये ही उपयोगमें लाये जा रहे हैं। कहा जाता है कि उत्तेजक

पदार्थों से, विभिन्न उद्योगोंमें काम करने वाले मजूरोंके हाथोंको जो क्षति पहुँचा करती थीं, उससे अब वे पूर्णतया सुरक्षित रहेंगे। काम करनेके बाद साबुन और पानीसे हाथ धोने पर रोगन छूट जाता है और हाथ साफ हो जाते हैं। अन्य तीक्ष्ण पदार्थ तैयार करने वाले मजूरोंके लिये, यह रोगन बड़ा लाभदायक सिद्ध हो रहा है। उसके प्रयोग द्वारा अनेक बीमारियोंसे भी, जो हाथोंमें छाले आदि पड़ जानेसे पैदा होती थीं, मजूरोंकी रक्षा हो सकेगी।

नये प्रयोग और आविष्कार

बृटेनमें 'रेसिपास्कोप' नामका एक ऐसा यंत्र तैयार किया गया है, जिसकी सहायतासे घने कोहरेमें दूर तक देख सकनेमें बड़ी सुविधा मिलती है। समुद्री यात्राके लिये यह यंत्र बड़ा उपयोगी है। कहते हैं कि उसकी मददसे दिनके समय घने कोहरेमें, मनुष्यकी दृष्टिमें २५ प्रतिशत वृद्धि हो जाती है। यंत्रका आकार एक छोटे बक्सका-सा है, जिसका वजन २३ औंस (लगभग ३ पाव) के होता है। यंत्रका मूल्य ६ पौंडके लगभग बैठेगा। आशा है कि शीघ्र ही यह यंत्र बृटेनसे बाहरी देशोंके लिये भेजा जा सकेगा।

न उलटने वाली नौका

बृटेन ने जहाज़ों पर रहने वाली विशेष प्रकारकी एक ऐसी रक्षा-नौका तैयारकी है जिसके उलटनेका बहुत कम डर रहता है और जो बोझ भी काफी लाद सकती है। बृटिश तथा अमरीकन अधिकारियों द्वारा कराई गई परीक्षा में यह नौका पूर्णतया सफल निकली है। नाव पर ६० आदमियोंके वजनके बराबर बालूसे भरी बोरियाँ लाद दीं गयीं किन्तु वह फिर भी न डगमगायी। यही नहीं, लगभग ७५ आदमियोंके बराबरका वजन नावमें एक ही ओर रखा गया, किन्तु फिर भी नाव चलती रही और उसके उलटने का तनिक भी खतरा नहीं पैदा हुआ।

व्यापार पोतोंके 'लिये रेडार'

रेडारका एक ऐसा रूपान्तर तैयार किया गया है जो तिजारती जहाजोंके बड़े काम का है। उसके विषयमें हाल ही में सरकारकी ओरसे एक पुस्तिका भी प्रकाशित हुई है, जिसके अन्दर रेडार सम्बन्धी अनेक बातोंका उल्लेख है। इसमें संदेह नहीं कि रेडार आज अनेक कार्योंके लिये अति उपयोगी सिद्ध हो रहा है।

समालोचना

नया हिन्द, मासिक पत्रिका; जुलाई १९४९; सम्पादक—डा० ताराचन्द, श्री भगवानदीन, श्री मुज़फ्फ़र हसन, श्री विशम्भरनाथ, तथा श्री सुन्दरलाल, प्रकाशक—हिन्दुस्तानी कलचर सोसाइटी, इलाहाबाद, वार्षिक मूल्य ६) एक प्रति ॥=)।

मैंने हिन्दुस्तानी कल्चर सोसाइटी, इलाहाबाद, की मासिक पत्रिका "नया हिन्द" ध्यान पूर्वक पढ़ी। पत्रिकाके जन्मदाताओंका कहना है कि वे इस पत्रिका द्वारा ऐसी सरल हिन्दुस्तानी भाषाका प्रचार करना चाहते हैं जिसे भारतकी सौ फी सदी जनता समझ सके। पर मेरे विचारसे इस पत्रिकाकी भाषाको मुसलमान भाइयों तथा अरबी फारसी युक्त उर्दू जानने वाले कुछ हिन्दू भाइयोंके अतिरिक्त साधारण जनता नहीं समझ सकती। इसकी भाषा सरल हिन्दुस्तानी नहीं वरन् देवनागरी व उर्दू लिपिमें लिखी गई अरबी-फारसी मिश्रित उर्दू है। उदाहरणके लिए तामीर, तहज़ीब, रहबरों, गहवारा, रस्मख़त आदि शब्दोंको कितने लोग समझ सकते हैं? पृष्ठके बाद पृष्ठ, पढ़ते हुये यही विश्वास बढ़ता जाता है कि किसी ने हिन्दी लिपिमें उर्दू साहित्यको लिख दिया है। क्या ऐसी भाषा सर्वप्रिय हिन्दुस्तानी हो सकती है? जिस भाषाको देशके लगभग ७०-८० प्रतिशत लोग समझ ही न सकें, वह सरल और सर्वप्रिय राष्ट्रभाषा होनेका दावा नहीं कर सकती। यदि इस पत्रिकाके संचालक वास्तवमें एक ऐसी भाषाका प्रचार करना चाहते हैं तो उन्हें सरल और सबके समझने योग्य भाषाको अपनाना चाहिए। हिन्दीको सरल बनानेके नाम पर उसमें उर्दू, अरबी और फारसीके शब्दोंको भरनेसे तो भाषा अधिकांश जनताके लिए और भी कठिन हो जाएगी।

विज्ञान परिषद् प्रयागका मुखपत्र

भाग ६३ | कन्या, संवत् २००३ सितम्बर सन् १९४६ | संख्या

प्रकाशक

विज्ञान-परिषद्,

४२, टैगोर टाउन, इलाहाबाद ।

वार्षिक मूल्य ३)]

[एक संख्याका मूल्य

प्रयागकी

विज्ञान-परिषद्‌के मुख्य नियम

परिषद्‌का उद्देश्य

१—१९७० वि० वा १९१३ ई० में विज्ञान परिषद्‌की स्थापना इस उद्देश्य से हुई कि भारतीय भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञानके अध्ययनको और साधारणतः वैज्ञानिक खोजके कामको प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद्‌का संगठन

२—परिषद्‌में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमोंके अनुसार सभ्यगण सभ्योंमेंसे ही एक सभापति, दो उपसभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमंत्री, दो मंत्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे, जिनके द्वारा परिषद्‌की कार्यवाही होगी।

पदाधिकारियोंका निर्वाचन

१८—परिषद्‌के सभी पदाधिकारी प्रतिवर्ष चुने जायँगे। उनका निर्वाचन परिशिष्टमें दिये हुये तीसरे नकशेके अनुसार सभ्योंकी रायसे होगा।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्यको ५) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश-शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ ७० रु० की रकम दे देनेसे कोई भी सभ्य सदाके लिये वार्षिक चन्देसे मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्योंको परिषद्‌के सब अधिवेशनोंमें उपस्थित रहनेका तथा अपना मत देनेका, उनके चुनावके पश्चात् प्रकाशित, परिषद्‌की सब पुस्तकों, पत्रों, विवरणों इत्यादिके बिना मूल्य पानेका—यदि परिषद्‌के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धनसे उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन-चौथाई मूल्यमें मिलेंगी।

२७—परिषद्‌के सम्पूर्ण स्वत्वके अधिकारी सभ्यवृन्द समझे जायँगे।

परिषद्‌का मुखपत्र

३३—परिषद् एक मासिक-पत्र प्रकाशित करेगी जिसमें सभी वैज्ञानिक विषयोंपर लेख प्रकाशित हुआ करेंगे।

३४—जिन लेखोंको परिषद् प्रकाशित करेगी उनमें जो लेख विशेष महत्व और योग्यताके समझे जायँगे उनके लेखकोंको अपने अपने लेख की बीस प्रतियाँ बिना मूल्य पानेका अधिकार होगा।

विषय-सूची

विज्ञान

विज्ञान-परिषद्, प्रयागका मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ६३ | कन्या, सम्वत् २००३, सितम्बर १९४६ | संख्या ६

कर्ण

(लेखक—डा० राजेन्द्रनाथ मिश्र एम० बी०, एम० एस०, डी० एल० ओ०, कर्ण-नासिका ग्रीवा-रोग विशेषज्ञ, लेक्चरर कर्ण-नासिका-ग्रीवा-विभाग, किंग जार्ज मेडिकल कालेज, अस्पताल, लखनऊ)।

मनुष्यके कान केवल सुननेके लिए ही काममें नहीं आते, शरीरको समतुल रखनेमें भी बहुत सहायता देते हैं। आँख बन्द करके भी मनुष्यको ऊँची नीची भूमि अथवा दिशाका ज्ञान होता है। यह क्रिया कान द्वारा सम्पादित होती है। वास्तवमें जीवधारियोंमें मछली इत्यादि कानोंसे श्रवणका कार्य नहीं लेतीं। उनको जलमें अपने शरीरकी स्थिति, दिशा इत्यादिका ज्ञान पूर्ण रूपसे कानोंसे ही होता है। मछलियोंके उपरान्त प्राणियोंके कर्ण यन्त्रमें एक पेंच सदृश घूमे हुये भागका प्रादुर्भाव हुआ जो श्रवण शक्तिका उत्पादक है। इसे काकलियर कहते हैं। अतएव अब कर्ण यन्त्रके दो उपयोग हो गये जिसमें हम लोगोंके लिये शब्द-ज्ञान ही अत्यन्त उपयोगी है। वर्णन की सुविधा के लिए कर्ण यन्त्र तीन भागोंमें विभक्त किया जाता है—(१) बाह्य (२) मध्य तथा (३) आन्तरिक। बाहरी भाग शिरकी हड्डियों के बाहर रहता है। अन्य दो भाग कपालकी शंखास्थि (Temporal bone) में स्थित रहते हैं। बाहरी भागमें सीपाकार (Pinna) तथा भीतर जानेवाली नली कर्ण कुहर है (External auditory meatus)। मध्य भागमें जिसे कर्ण कन्दरिका (Tympanic cavity) कहते हैं तीन सूक्ष्म अस्थियां जो शृङ्खला बद्ध होती हैं एक ओर कानके पर्दे और दूसरी ओर भीतरी कर्ण भागसे संलग्न रहती हैं। इसी मध्यभागीय कन्दरिका में यूस्टेशियन ट्यूब (Eustachian tube) का जो इसके आविष्कारक के नाम से प्रसिद्ध है, एक ओर मुख खुलता है। इसका दूसरा मुख कंठमें तालूके उपर खुलता है। इस नलिकाके कारण कानके भीतर और बाहरकी वायुका दबाव समान बना रहता है। इससे कानकी झिल्ली की रक्षा होती है। कानके तीसरे या भीतरी भागमें पेंचकी तरह घूमी हुई कॉकलिया (Cochlea) है और तीन सूक्ष्म समान अर्धगोलाकार नलिकायें हैं। मस्तिष्क से कानके अवयवों का सम्बन्ध कराने वाली मज्जातन्तु भी इसीमें स्थित है। कानका पर्दा बाह्य और मध्यवर्ती कर्ण भागोंके बीचमें होता है, आकार में प्रायः गोलाकार है और तर्जनी अंगुलीके नाखूनके लगभग बड़ा, उतना ही मोटा, मुक्तावर्ण सूक्ष्म चर्म खण्डका बना होता है। मृदङ्ग पर जैसे चमड़ा कसकर चढ़ा होता है उसी प्रकार यह झिल्ली भी तनी रहती है

और शब्द तरंगोंके आघातसे वह कम्पायमान होकर शब्दको मध्य भागवर्तिनी अस्थिश्रृङ्खला द्वारा काकालिया तक पहुँचा देती है। शब्दके सूक्ष्म विवेक के लिए यह पर्दा अत्यावश्यक है। यद्यपि बिना पर्देके भी सुना जा सकता है तो भी इस प्रकार सुननेमें कुछ न कुछ त्रुटि रहती है। वैसे तो शब्दका अनुभव कपालकी हड्डियों द्वारा भी होता है। यदि आप एक छोटी-सी कलाईकी घड़ीको दांतोंके बीच दबावें तो उसका शब्द आपको सुनाई देगा। कुछ प्रकारकी बधिरता में विद्युद्यन्त्र द्वारा जो शंङ्खास्थिके मैसट्वायड प्रोसेस (Mastoid process) में लगा दिया जाता है इसी नियमके अनुसार सुनाई पड़ता है।

संक्षेप में शब्द-ज्ञानका कार्य यों सम्पादित होता है। शब्द पहले बाहरी सीपीके आकारवाले भाग में आकर गिरता है। इसका कार्य शब्दकी लहरोंका इकट्ठा करना है। चौपाये अपने कानका संचालन कर सकते हैं और जिधरसे शब्द आता है उधर ही अपने कानको सुगमतासे घुमाकर शब्दको बटोर लेते हैं। हम लोग बहुधा अपने हाथ को गहराकर कानके पीछे लगा लेते हैं इससे शब्द लहरें एकत्रित हो जाती हैं और सुननेमें सहायता मिलती होती है। बाह्य कर्णकुहर (External auditory meatus) के द्वारा शब्द कर्णके पर्दे या झिल्ली पर आघात करके उसे कम्पायमान कर देता है। कानकी तीन क्षुद्रास्थियां जो एक दूसरे से जुड़ी हुई होती हैं और जिनमें बाहरवाली घनास्थि (Malleus) कर्ण-झिल्ली से संलग्न है इस शब्दाघात से चलायमान हो जाती है और शब्द को काकलिया तक स्टेप्स (Stapes) नामकी अस्थि द्वारा पहुँचा देतो है। काकलिया में पहुंचकर शब्दका पृथक पृथक स्वरों में विश्लेषण होता है और अन्तमें प्रत्येक स्वर कर्णके मज्जा-तन्तु द्वारा ज्ञानके रूपमें परिणत होता है। कानकी रचनाके सम्बन्धमें महत्वकी बात है उसके पार्श्ववर्ती अवयव। व्यावहारिक रूप से भी यह बात ध्यान रखने की है। जैसा पहले कहा जा चुका है कानका विशेष भाग कपाल की शंखास्थि में स्थित रहता है। अतएव मस्तिष्क से इसका अत्यन्त निकटवर्ती सम्बन्ध है। इन दोनों के बीच केवल एक पतली सी हड्डी है तथा धमनी और शिराओं (Blood vessels) द्वारा इन दोनोंमें पारस्परिक सम्बन्ध रहता है। इससे यह स्पष्ट है कि कर्ण रोग किसी किसी दशामें कपालके भीतर फैलकर मस्तिष्क की बीमारीका उत्पादक हो सकता है जिसका परिणाम अत्यन्त विषम होता है। दूसरा पार्श्ववर्ती अवयव मैस्ट्वायड प्रोसेस (Mastoid process) है जिसका उल्लेख ऊपर आ चुका है कानके भीतर पीब पड़ जानेसे इस अस्थि खंडमें भी बहुधा मवाद पहुँच जानेकी सम्भावना रहती है। इसका मैस्टवाडाइटिस् (Mastoiditis) नाम बहुत परिचित है। तीसरा महत्वका अवयव (Lateral venus sinus) पार्श्ववर्ती रुधिर कुण्ड है जो कपाल से नील वर्ण रक्तको शुद्ध करनेके लिए हृदयकी ओर भेजता है। वास्तवमें वह एक मोटी रुधिर धमनी है और कर्णके सन्निकट है। मैस्टाबडके जीर्णपूयित प्रदाह (Chronic suppurative mastoiditis) में इस रक्त कुण्ड में पीब पड़ जानेका भय रहता है और यह दशा अत्यन्त कष्टसाध्य हो जाती है। कान और गले की ग्रन्थियां (Glands) भी बढ़ जाती हैं और पीड़ा देने लगती हैं। कर्ण रोग से पीड़ा और बधिरत्व तो साधारण सी बातें हैं पर ऊपर जैसा कहा जा चुका है इससे यदा कदा प्राणान्त व्याधियां भी उठ खड़ी हो सकती हैं। अतएव कर्ण रोगकी ओर असावधानता हानिकर है। इसकी सूचना भी पहलेसे मिल जाती है कारण इसका प्रायः प्रारम्भिक लक्षण है कर्ण शूल है।

कर्ण नाद (Tinnitus)

किसी बाहरी शब्दकी अनुपस्थितिमें कानमें स्वतः शब्द होना कर्णनाद कहलाता है। ये शब्द विविध प्रकारके होते हैं। कभी-कभी तो ऐसे शब्द चक्कीकी घड़घड़ाहटके समान, मशीन चलनेकेसे शब्द, सीटी या भोंपूके सदृश या झिल्लीकी झङ्कारके समान होते हैं। यहाँ तक कि प्रमाद या उन्मादकी अवस्थामें बाघ अथवा आदमीकी बोली भी सुनाई पड़ती है। विशेषतः रात्रिके समय सन्नाटेमें ये शब्द तीव्रतामें बढ़ जाते हैं। दिनमें या किसी कार्यमें संलग्न रहनेमें रोगीका ध्यान उधर नहीं रहता अतएव कर्णनादका अनुभव नहीं हो पाता। कर्णनाद स्वयं कोई रोग नहीं है। यह अन्य रोगोंका लक्षण है। पर कभी कभी रोगके लक्षणोंमें सबसे अधिक दुःखद यही होता है। कानमें अविरल एक प्रकारके शब्द होते रहने से मानसिक क्लेश बहुत होता

है। यहाँ तक कि कभी-कभी रोगी इस दशासे अत्यन्त पीड़ित हो जाता है। कर्णनाद बहुत कारणोंसे होता है। कर्णशूलकी नाईं यह आवश्यक नहीं है कि मूल रोग कान ही में हो परन्तु यह निश्चित है कि कारण कोई भी हो, यथार्थमें कर्ण से स्नायु प्रदेश (Cochlea वा Nerve) में किसी अंशमें प्रदाह होनेसे दो विविध प्रकारके शब्द सुनाई पड़ने लगते हैं। कर्णनादके कारणोंकी गणना इस प्रकार है।

(१) कर्ण रोग—कानमें मैल, फोड़ा फुंसी, प्रदाह इत्यादि। इन सब दशाओंमें कर्णनाद अनिवार्य नहीं, पर सम्भव है।

(२) कर्ण स्नायुमें रोग जैसे प्रदाह (Neuritis) वा गुल्म (Tumour)।

(३) यूस्टेसियन ट्यूब (Eustac hian tube) कानसे कण्ठ तक जाने वाली नाली के मुखद्वारका अवरोध अथवा इसमें प्रदाह।

(४) मस्तिष्कके गुल्म (Brain Tumours)

(५) रुधिर सम्बन्धी विकार यथा रुधिरका अत्यधिक वा अल्प दबाव (High or low bloob pressure) व रुधिर न्यूनता (anaem ia)

(६) रुधिर दोष (Sepsis) दांत वा नाकमें पीब पड़ जाना।

(७) शरीरमें विषाक्त द्रव्यका होना। बहुत तम्बाकू खानेसे या अधिक क्विनीन खानेसे।

(८) आन्तरिक कर्णमें (Internal ear) किसी कारणसे रक्त स्राव (Haemorrhage) कर्णनादका एक असाधारण रूप भी होता है। साधारणतया कर्णनादमें रोगीको ही शब्द सुनाई देता है पर एक आध ऐसे भी रोगी देखनेमें आये हैं जो स्वयं भी शब्द सुनते हैं और अन्य व्यक्ति भी उसे सुन सकता है। यह शब्द प्रायः घड़ी की टिक टिक जैसा होता है। इसका कारण यह कहा जाता है कि ये शब्द कानकी भीतरी सूक्ष्म मांस पेशियोंके संकोचसे होते हैं।

चूंकि कर्णनाद स्वयं रोग नहीं है, इस लिये इसकी चिकित्सा इसके कारणों पर निर्भर है। क्विनीन, तम्बाकू इत्यादिसे पैदा हुआ कर्णनाद इन वस्तुओंको त्याग देनेसे जाता रहता है। किन्तु यदि और किसी कारणसे है तो पता लगा कर कारण दूर करना चाहिये। यों १०-१५ ग्रेन अमोनियम ब्रोमाइडसे (Ammonium bromide) तात्कालिक आराम मिल जाता है।

कर्णशूल—कदाचित ही कोई कानकी पीड़ासे बचा हो। पर यह जानने योग्य बात है कि कर्णशूलका मूल कारण बहुधा कानमें विद्यमान नहीं होता वरन दूसरे आस-पासके अवयवोंमें मूल रोग होता है और कानमें उसके कारण पीड़ा होती है। अतएव कर्णशूलके कारणोंको दो भागोंमें विभक्त कर सकते हैं। यथा।

(१) वे कारण जिनमें मूल रोगका स्थान कानके अतिरिक्त कोई पार्श्ववर्त्ती अथवा स्नायु द्वारा कर्ण सम्बन्धी किसी दूसरे अवयवमें हो। इनकी गणना निम्नलिखित है।

(क) साधारण जुकाम या श्लेष्मा।

(ख) नाकमें किसी अन्य कारणसे उत्पन्न प्रदाह (Inflammation)

(ग) नाकमें कृमि, जो नस्यपूति, रुधिरस्राव, प्रदाह और व्रण उत्पन्न करते हैं।

(घ) नस्य गुल्म जैसे नासिका अर्श (Nasal polypus) तथा अन्य साधारण व दुष्ट (Malignant) मांस गुल्म उदाहरणार्थ कैन्सर (Cancer) और सारकोमा (Sorcana)।

(ङ) नाकके भीतरकी हड्डियोंकी वृद्धि।

(च) नासिकाके समीपवर्त्ती अस्थि विवर (Paranasal sinus) में किसी प्रकारका प्रदाह व मांस गुल्म।

(छ) नाकके पीछे ऊर्ध्वकण्ठ (Nasopharynx) में प्रदाह अथवा मांसवृद्धि या व्रण। बाल्यावस्थामें एडिनवायड (Adenoids) ऊर्ध्वकण्ठमें स्थित मांस ग्रन्थियां।

(ज) कण्ठ, तालु, पिंडिका (Tonsils) कण्ठ नाड़ी (Laryux) वा घांटीमें प्रदाह, वृद्धि, फोड़ा व व्रण जैसे विशेषतः उपदेश या क्षयके घाव अथवा दुष्ट व्रण (Cancer)

(झ) दंत रोगमें—कर्ण और दंत रेखामें स्नायु सम्बन्ध होनेके कारण। दोनोंमें त्रिशाखा स्नायुके (Trigeminal nerve) तन्तु प्रसारित होते हैं।

(ञ) जिह्वा परके घाव इत्यादि।

(ट) स्नायु पीड़ा (Neuralgia)

(ठ) मस्तिष्कमें प्रदाह जैसे (Meningitis) मेनिन-

जाइटिस व गुल्म (Brain Tumour)

(ड) मानसिक विकार जनित (Hysterical) कर्ण-शूल।

वे कारण जिनमें रोगका मूल स्थान कानका कोई भाग हो। इसकी गणना इस प्रकारकी जा सकती है।

(क) बाह्य कर्णमें रोग। उदाहरणार्थ चोट,चपेट, प्रदाह। उकवत (Eczema), फोड़ा, फुंसी, कृमि, कर्णमलके अत्यन्त कठोर होनेसे त्वचा में घाव। अथवा पानी पड़नेसे उसका फूल जाना। इसमें फुंसी अथवा चोट, चपेट पीड़ाके कारण होते हैं।

(ख) कानका दुष्ट व्रण (Cancer) बहुत कम देखा जाता है।

(ग) कानमें अतिशीतके कारण 'पाला मारना' (Frost bite)

(घ) नाड़ी संकोच जनित पीड़ा (arteriospasm)। रक्त स्राव अति न्यून होने के कारण कानमें तीव्र पीड़ा होती है। यह असाधारण रोग है और बहुधा नहीं होता।

(ङ) कर्ण कुहरमें घाव बहुधा कुरेदने इत्यादिसे हो जाता है या फुंसीसे जो साधारणतया निकलती हैं।

(च) कानमें फफूँदी (otomyeosis) प्रायः बरसात में होती है। कर्ण त्वचामें घाव करके प्रदाह उत्पन्न करती है।

(छ) कानमें कोई बाहरी वस्तु पड़ जाना। बहुधा बच्चे फलके बीज, नाजका दाना, मोती इत्यादि खेलमें कानमें डाल लेते हैं।

(ज) कर्ण झिल्लिका प्रदाह। कीटाणु जनित व चोट इत्यादिसे या असावधानीसे कानके भीतर कोई तीक्ष्ण रसायन जैसे कारबोलिक एसिड इत्यादि गिर जानेसे।

(झ) कानमें अर्धाङ्गीके (Herpes) छाले पड़ जानेसे बहुत पीड़ा होती है।

(ञ) कर्णके मध्य भागमें प्रदाह (Middle ear inflammation) यह बहुसंख्यामें होता है। बच्चोंमें प्रायः कर्णशूलका यह मुख्य कारण होता है।

(ट) मध्य भागमें मांस गुल्म कैंसर (Cancer) इत्यादि।

(ठ) कानके आन्तरिक भाग में (Internal ear) सूजन इत्यादि या मवाद पड़ जाना।

(ड) कर्ण स्नायु गुल्म (Tumour of auditory nerve) या अन्य मस्तिष्कमें मज्जा गुल्म (Brain Tumour)।

कर्णशूलका निदान—ध्यान रखने योग्य बात है कि कानमें पीड़ा होनेसे यह न निश्चय कर लेना चाहिये कि रोग कान ही में है। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, कानके पार्श्ववर्त्ती अवयवोंमें रोगके स्थानकी सम्भावना हो सकती है। साधारण रूपसे श्लेष्मा (जुकाम सर्दी), गलेमें सूजन या दंत पीड़ासे कानमें पीड़ा होती है। बाहरी कानमें रोग होनेसे पीड़ाका मुख्य लक्षण यह है कि कानको छूनेसे अथवा धीरेसे दबानेसे बहुत पीड़ा होती है। साथ ही साथ मुँह चलानेसे पीड़ा बन्द हो जाती है। इसमें ज्वर अधिक नहीं होता। साधारण हरारत हो सकती है। यद्यपि बच्चोंमें ज्वरका १००°–१०१° तक तापमान हो सकता है। कानके मध्यभागका प्रदाह प्रायः ज्वर युक्त होता है। पहलेसे जुकाम या गला खराब होनेके लक्षण होते हैं, शिर और शरीरमें पीड़ा होती है। कानमें टपकनका अनुभव होता है। श्रवण शक्ति कम पड़ जाती है। कानमें बोझ ऐसा प्रतीत होता है। कानको छूने व दबानेसे पीड़ा नहीं होती और न चबानेसे। साधारण रूपसे ज्वर १००–१०१° होता है। बच्चोंमें १०२° या कभी-कभी १०४° तक ज्वर हो जाता है। कानमें स्वतः शब्द होने लगते हैं। मशीनके चलनेकी तरह या झींगुरके झङ्कार ऐसा शब्द सुनाई पड़ता है। ये कर्ण पीड़ाके साधारण और प्रारम्भिक लक्षण हैं। अन्य कारणोंका निदान बिना कानकी अच्छी प्रकार परीक्षाके नहीं हो सकता अतएव उनका उल्लेख व्यर्थ है। आकस्मिक उठा हुआ शूल प्रारम्भिक गृह चिकित्सासे संभवतः दबाया जा सकता है परन्तु उन उपचारोंका उल्लेख करनेके पहले यह बता देना आवश्यक है कि क्या क्या बातें नहीं करनी चाहिये।

१. कर्णशूलकी अवहेलना उचित नहीं है। यदि तात्कालिक साधारण उपायोंसे पीड़ा कम न हो तो उसी दिन चिकित्सकसे परीक्षा करा लेनी चाहिये। (२) कानमें स्वयं पिचकारी इत्यादि नहीं लगाना चाहिये। (३)

हाइड्रोजन पराक्साइड (Hydrogen Peroxide) का प्रयोग प्रायः रोगी स्वयं कर लिया करते हैं। यह ठीक नहीं है। (४) अनाड़ी पुरुषसे कान नहीं साफ कराना चाहिये (५) कानमें तीक्ष्ण या निकृष्ट द्रव्य न डालना चाहिये, जैसा कभी-कभी देखनेमें आता है कि रोगीने स्वयं ही पीड़ाका उपचार पीनेकी तम्बाकूके कोयलेसे, पानकी पीक इत्यादिसे कर ली है। इन बातोंको न करनेसे रोग वृद्धिकी आशंका नहीं रहती है। प्रारम्भिक उपचारमें प्रथम तो कानमें सेंक लगानी चाहिये। गर्म पानीकी बोतल (रबरके) तकियेकी तरह लगा कर लेट जावे। यदि यह समय पर उपलब्ध न हो तो बिजलीके जलते बल्बको कपड़ेमें लपेट कर सेंक लगावे। या कपड़े या रुईकी गद्दीसे सेंक करे। सेंक एक एक या दो दो घंटे पर करना चाहिये। ग्लिसरीन (Glycerine) यदि उपलब्ध हो तो उसको गरम कर कानमें ४-५ बूंद टपकाना चाहिये। इसके न मिलने पर साधारण तिल्लीका तेल या नारियलके तेलसे काम चल जावेगा पहले इसे एक चम्मचमें खूब गरम कर लीजिये और जितना सह्य हो उतनी गर्मी तक ठंढा करके कानमें थोड़ा सा टपकाना चाहिये। पीड़ा निवारणके हेतु कोई एसपीरिन (aspirin) या कैफी एसपीरिन (Caffiaspirin) की टिकियाका सेवन उचित है। परन्तु दो एक टिकियासे अधिक नहीं। कानमें ठंढी वायु नहीं लगने देना चाहिये। इस हेतु थोड़ी-सी रूई रख कर रूमालसे बांध दें। सर्दी जुकाम यदि हो तो उसके लिये हलका सा रेचक खानेसे कानका प्रदाह कम होगा। एक चम्मच फ्रूट साल्ट (Fruit salt) थोड़ेसे जलमें पर्याप्त होगा। यदि उन उपायोंसे ४-६ घंटेमें पीड़ा जाती न रहे तो अपने चिकित्सकके पास शीघ्रातिशीघ्र जाइये।

हम साँस कैसे लेते हैं ?

(ले०—श्री० ब्रजेश बी० एस-सी०)

हमारे जीवन के लिये वायु सबसे आवश्यक वस्तु है। भोजन व जल भी हमारे जीवन के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं, परन्तु हवा की महत्ता इन सबसे अधिक है। बिना भोजन व पानी के मनुष्य कुछ समय तक जीवित रह सकता है, किन्तु बिना वायु कुछ क्षण भी जीवित रहना असंभव है।

वायु हमारे शरीरमें श्वासके साथ जाती है। श्वासके बाहर निकलने पर वायु फिर बाहर निकल आती है। इस प्रकार हमारे शरीरमें वायुके अन्दर आने और बाहर निकलनेकी क्रिया बराबर होती रहती है। इस क्रियाको श्वासोच्छ्वास क्रिया कहते हैं। इस क्रियामें भाग लेने वाले अंग ये हैं नाक, मुख, श्वासनली (Wind pipe or Trachea) और फेफड़े!

श्वास लेनेका मुख्य अंग नाक है। बहुतसे लोग मुखसे भी साँस लेते हैं परन्तु यह उचित नहीं है क्योंकि इससे अनेक प्रकारके रोग हो जाते हैं। नाकका भीतरी सिरा (Nose-cavity) श्वास-नलीके ऊपरी सिरेसे मिला हुआ है। यह श्वासनली छातीकी हड्डीके पीछे और भोजन-नली (Gullet) के आगे स्थित है। यह साढ़े चार इंच लम्बी एक नली है। इसका ऊपरी सिरा गलेके पास है। यहीं पर नाकसे आई हुई वायु इसमें प्रवेश करती है। इसका गलेके पासका भाग चौड़ा है और लैरिंक्स (Larynx) कहलाता है। जब हम बोलते हैं तो आवाज यहींसे आती है। भोजन-नली श्वासनलीके पीछे है, अतः भोजन मुखसे भोजन-नली में जाते समय श्वासनलीके ऊपर होकर जाता है। भोजन श्वासनली में न चला जाय इस हेतु श्वासनलीके सिरे पर एक पर्दा (Flap) लगा हुआ है जो हर बार भोजनके निकट आने पर श्वासनलीको ढक देता है और भोजनके भीतर चले जाने पर खुलकर वायुके प्रवेशके लिये मार्ग बना देता है। ऐसा प्रबन्ध होने पर भी कभी-कभी जल्दी-जल्दी भोजन करते समय अथवा भोजन करते समय अधिक बोलनेसे भोजन श्वासनलीमें पहुँच जाता है। ऐसा

होने पर बड़ा कष्ट मिलता है। बाहर की ओर ज़ोर-ज़ोर से श्वास छोड़ने पर यह भोजन बाहर निकलता है।

श्वासनली नीचे के सिरेके पास दो शाखाओंमें विभाजित होती है। ये शाखायें वायुनली (Bronchial Tubes) कहलाती हैं। प्रत्येक वायुनली अपनी ओरके फेफड़ेमें जाती है। फेफड़ोंमें पहुँचकर दोनों वायुनलियाँ अनेक छोटी-छोटी शाखाओं-प्रतिशाखाओंमें बँट जाती हैं। अन्तमें वहाँ पर छोटी-छोटी शाखाओंके झुण्डसे बन जाते हैं। इन छोटी शाखाओंके अन्तमें इनके सिरे नन्हें-नन्हें थैलोंका रूप ग्रहण कर लेते हैं। इन थैलों को वायु-कोष (Air-sacs) कहते हैं। इन्हीं नन्हीं-नन्हीं शाखाओं और थैलियों के झुण्डों के कारण फेफड़ोंकी बनावट स्पंज जैसी रहती है। प्रत्येक नन्हें थैले (Air-sac) की दीवार में बहुतसी रक्त-केशिकायें होती हैं जो वहाँ तक रुधिर लाती हैं।

प्रत्येक फेफड़ा एक दोहरी झिल्लीके थैलेमें सुरक्षित रहता है। यह थैला प्लूरा (Pleura) कहलाता है। इसकी दोनों झिल्लियोंके बीचमें एक प्रकारका तरल पदार्थ रहता है, जो किसी भी प्रकारकी रगड़, झटके, या चोटसे फेफड़ोंकी रक्षा करता है।

श्वासोच्छ्वास क्रिया—श्वास अन्दर खींचने पर बाहरकी हवा नाककी नलीसे होकर श्वासनली और वायुनलियों से होती हुई फेफड़ोंसे वायुकोषोंमें पहुंचती है। वायुकोषों की दीवारें बहुतही पतली होती हैं और ठीक इन दीवारों के नीचे और इनसे सटकर रक्त-केशिकाओंकी असंख्य नलियाँ फैली रहती हैं। इन रक्त-केशिकाओंकी दीवारें भी बहुत पतली झिल्लीकी बनी होती हैं। हृदयसे आया हुआ अशुद्ध रक्त इन रक्त केशिकाओंमें से होता हुआ धीरे-धीरे प्रवाहित होता है। रक्त-केशिकाओं में जिस समय अशुद्ध रक्त धीरे-धीरे प्रवाहित होता रहता है उस समय इस अशुद्ध रक्त और वायुकोषोंमें भरी शुद्ध हवाके बीच केवल दो पतली दीवारों का ही अन्तर रहता है। इन पतली दीवारोंके भीतरसे होकर गैसें एक ओरसे दूसरी ओर आ-जासकती हैं। केशिकाओंमें पहुँचे अशुद्ध रक्तमें आक्सिजन की मात्रा बहुत कम रहती है और कार्बन डाइ-आक्साइडकी बहुत अधिक। अतः वायुकोषोंमें भरी शुद्ध हवासे, जिसमें आक्सिजन गैस बहुत रहती है, आक्सिजन वायुकोषों और केशिकाओंकी दीवारोंके भीतरसे छन कर रक्त-केशिकाओंके रक्तमें पहुँचकर घुल जाती है, और अशुद्ध रक्तकी कार्बन डाइ-आक्साइड गैस केशिकाओं और वायुकोषोंकी पतली दीवारोंसे होकर वायुकोषोंमें बची हवामें मिल जाती है। अशुद्ध रक्तमें आक्सिजन पहुँच जानेसे और कार्बन डाइ-आक्साइड निकल जाने से यह शुद्ध हो जाता है। इस तरह अशुद्ध रक्त की सफाई फेफड़ों में होती है और फिर वह शुद्ध रक्त हृदयमें पहुँच जाता है।

केशिकाओंके रक्त और वायुकोषों में भरी हवाके बीच जब आक्सिजन और कार्बन डाइ-आक्साइड गैसोंका परस्पर आदान-प्रदान हो चुकता है तो वायुकोषों की बची हवामें कार्बन डाइ-आक्साइड की मात्रा बहुत हो जाती है। यह हवा अशुद्ध हवा कहलाती है क्योंकि अब इसमें आक्सिजन कम हो जानेके कारण यह अशुद्ध रक्तकी सफ़ाई के योग्य नहीं रहती। साँस बाहर फेंककर इस अशुद्ध हवाको हम बाहर निकाल देते हैं और दूसरी शुद्ध हवा फिर अन्दर खींच लेते हैं। हवा अन्दर फेफड़ों में ले जाने को श्वास क्रिया और अन्दरकी हवा बाहर निकालनेको प्रश्वास क्रिया कहते हैं। श्वास और प्रश्वास दोनों सम्मिलित क्रियाओं को श्वासोच्छ्वास क्रिया कहते हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि जो हवा साँस के साथ अन्दर जाती है तथा जो साँसके द्वारा बाहर आती है, उन दोनों में बड़ा अन्तर होता है। अन्दर जाने वाली वायुमें आक्सिजन की मात्रा अधिक होती है। इस वायुमें २१ प्रतिशत आक्सिजन, ७८ प्रतिशत नाईट्रोजन तथा ०.०३ प्रतिशत कार्बन गैस होती है। इनके अतिरिक्त कुछ जलकण तथा आरगन (Argon) आदि कुछ अन्य गैसें भी थोड़ी मात्रामें होती हैं। शहरों तथा गन्दे स्थलों पर उक्त चीजोंके अतिरिक्त धुँआ, कोयले की गैस, धूल आदि भी वहाँ को हवा में मिले रहते हैं।

जिस समय यह शुद्ध हवा हमारे फेफड़ों में पहुँचकर वहाँ पर एकत्रित अशुद्ध रक्तके समीप पहुँचती है उस समय इसमें परस्पर गैसों का आदान-प्रदान होता है। इसके सम्बन्धमें हम पहले कह चुके हैं। प्रश्वासके साथ निकली हुई वायुमें केवल १६ प्रतिशत ही आक्सिजन रह जाती है

पर साथ ही कारबन डाइ-आक्साइड की मात्रा ३-५ प्रतिशतसे लेकर ४ प्रतिशत तक हो जाती है। इस प्रकार आक्सिजन लगभग ५ प्रतिशत कम हो जाती है और कार्बन डाइ-आक्साइड ४ प्रतिशत के लगभग अधिक। इसके सिवा इस हवामें रुधिरकी अन्य गन्दगियाँ (Waste products and organic impurities) भी मिल जाती है। रुधिर के सम्पर्कमें आनेसे इस वायुमें वाष्पकी मात्रा और गर्मी भी बढ़ जाती है। इसी कारण बाहर निकली हुई वायु हमारे समीप के वायुमंडलमें मिल जाती है। वायुमें सदा गति होती रहती है। अतः गन्दी वायु एक ही स्थल पर स्थिर नहीं रहती, वरन् गतिशील वायुमंडलमें मिल जाती है। इस प्रकार काफी मात्रामें अशुद्ध वायु हर घड़ी वायुमंडलमें मिलती रहती है। इस अशुद्ध वायुको शुद्ध करनेका कार्य मुख्यतः पेड़-पौधोंकी हरी पत्तियाँ करती हैं। पत्तियाँ हवामेंसे कार्बन गैस खींच लेती हैं और उससे अपना भोजन तैयार करती हैं। भोजन
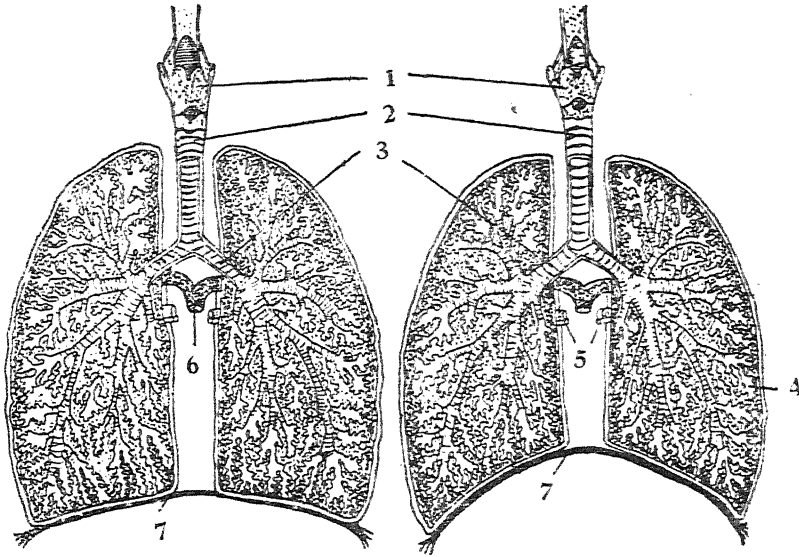
चित्र १—मनुष्यका श्वासोच्छ्वास; बायीं ओर श्वास अन्दर लेनेकी दशामें फेफड़े हैं और दाहिनी ओर प्रश्वासकी दशामें; (१) लैरिंक्स, (२) श्वास नली, (३) वायुनलियाँ, (४) वायुकोष, (५) शिरा, (६) धमनी, (७) डायाफ्राम।

प्रश्वास द्वारा बाहर आई हुई वायु कुछ गर्म तथा नम भी होती है। नाइट्रोजनकी मात्रा में कुछ भी अन्तर नहीं होता है।

यदि कोई मनुष्य बराबर एक ही हवा में साँस लेता जाय तो धीरे-धीरे कुछ ही क्षण में उस हवाकी सब आक्सिजन समाप्त हो जायगी और उसके स्थान में कारबन गैस बढ़ जायगी। ऐसी आक्सिजन-रहित वायु में साँस लेनेसे उस मनुष्य का प्राणांत हो जायगा। इसी लिये बन्द स्थानों में रहना तथा बन्द कमरोंमें सोना स्वास्थ्यके लिये हानिकर है।

पृथ्वी पर प्रत्येक क्षण इतने जीव श्वास लेते और शुद्ध वायुको अशुद्ध बनाते हैं, फिर भी वायु शुद्ध ही बनी रहती है। इसका कारण क्या है ? प्रकृतिने वायुकी शुद्धिका प्रबन्ध कर रक्खा है। जब हम साँस छोड़ते हैं तो बनानेकी इस क्रियामें पत्तियाँ कार्बन डाइ-आक्साइड से अक्सिजन गैस अलग कर देती हैं जो हवामें फिर मिल हवासे कार्बन-डाइ-आक्साइड खींच कर तोड़ देती हैं; जाती है। इस तरह पत्तियाँकार्बनको पचा लेती हैं, और अक्सिजन हवाको दे देती है। इस तरह हवाकी शुद्धि हो जाती है।

मनुष्य एक मिनिटमें १४ से १८ बार तक साँस लेता है। अधिकतर मनुष्य एक मिनिटमें १७ बार साँस लेते हैं छोटे बच्चे १ मिनिटमें २० से २८ बार तक साँस लेते हैं। इसका कारण यह है कि एक तो वे लोग अधिक गहरी साँस नहीं लेते हैं जिससे हवा जल्दी-जल्दी आ जा सकती है। दूसरे बच्चे बड़े चंचल होते हैं और उनके शरीरकी क्रियायें शीघ्रतासे होती है। इसके फलस्वरूप

उनके शरीरमें रक्त संचालन भी अधिक तीव्र गतिसे होता है जिससे उन्हें साँस भी जल्दी-जल्दी लेनेकी आवश्यकता होती है। आमाशय या यकृतकी किसी प्रकारकी बीमारी, ऐडिनौयड (Adenoids), प्लुरिसी (Pluerisy), ब्रौंनकाइटिस (Bronchitis) तथा किसी भी प्रकारके ज्वरमें भी श्वासोच्छ्वास क्रियाकी गति बढ़ जाती है।

मुख से साँस लेना हानि पहुँचाता है। हमारी नाकमें चारों ओर छोटे-छोटे रोयें होते हैं। वायुमें धूल आदिके जो कण मिले रहते हैं वे इन रोयोंमें लग कर नाकमें ही रह जाते हैं और फेफड़ों तक नहीं पहुँच पाते। मुखसे साँस लेनेमें इन धूलके कणोंसे फेफड़ोंकी रक्षाका कोई साधन नहीं है। अतः धूलके कण वायुके साथ फेफड़ों तक पहुँच जाते हैं।

नाकमें जो श्लेष्मा (Mucous) रहती है वह कीटाणु नाशक (Disinfectant) का काम करती है और इस प्रकार वायुके सब कीटाणु नाकमें ही नष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त नाकसे होकर भीतर जानेमें इसकी श्लेष्माके सम्पर्कमें आनेसे ठंढी वायु गर्म और गर्म वायु ठंढी और नम भी हो जाती है। अतः नाकसे साँस लेनेमें वायु गर्म या ठंढी, नम तथा धूल व कीटाणु रहित होकर फेफड़ोंमें पहुँचती है। इसके विपरीत मुखसे श्वास लेने पर वायु ठंढी, सूखी तथा धूल व कीटाणु युक्त ही फेफड़ोंमें पहुँचती है। इसीसे मुखसे साँस लेनेसे गलेके रोग (Sore-throat), टॉन्सिल बढ़ना (Enlarged tonsils) ब्रौंकाइटिस, तपेदिक, दाँतके रोग, डिपथीरिया (Diptheria), स्कारलेटज्वर (Scarlet fever) तथा बहरापन (Deafness) जैसे रोगोंके होनेकी संभावना रहती है। अतः स्वास्थ्यकी दृष्टिसे मुखसे साँस लेना अत्यन्त हानिकर है। इसलिये मुखसे श्वास न लेकर नाकसे ही श्वास लेना चाहिए, इससे स्वास्थ्यको ठीक रखनेमें बहुत सहायता मिलती है।

परिवर्तनशील तारे

(लेखक—डा० हरिकेशव सेन, गणित विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

[गतांकसे आगे]

अब हम आगे उन समस्याओंका उल्लेख करेंगे जिनसे हमें मालूम होगा कि सीफाइड तारे ज्योतिर्विदोंके लिये क्यों इतने हृदयग्राही हैं। हम पहले कह चुके हैं कि सीफाइड तारोंके द्वारा हमारी तारकमंडलीसे बाहर स्थित नीहारिकाओं (extra-galactic nebulae) की दूरी हबल ने मालूमकी है। सीफाइड तारोंकी सहायता बिना दूरस्थित तारोंकी दूरी निकालना एक प्रकार असंभव था। अब हमारे लिये विश्व पहलेसे बहुत बढ़ गया है और साथ ही साथ सृष्टिकर्त्ताका सृष्टिकौशल हृदयंगम करनेके लिये हमारा सामर्थ्य भी। एक दृष्टांतसे बात स्पष्टहो जायगी। एंड्रोमिडा नीहारिका (Andromeda Nebula) से प्रकाश यहाँ तक ८७०,०० वर्षमें आता है। यह नीहारिका अन्य नीहारिकाओंसे अपेक्षाकृत हमारे निकट है और इसकी दूरी सीफाइडकी सहायतासे निकाली गई है। यह नीहारिका हमसे इतनी दूर है कि जिस प्रकाशसे हम अब इसको देखते हैं वह इसके पाससे तब चला था जब हम इस दुनियामें थे ही नहीं। इस लिए हम दृढ़ताके यह नहीं कह सकते कि यह नीहारिका अब भी वहीं है जहाँ पर हम उसे देख रहे हैं या वास्तवमें इस समय उसका अस्तित्व है भी या नहीं।

सीफाइड तारोंका एक और भी प्रधान गुण है—इसका आवर्त्तकाल इसके घनत्वके वर्गमूल (Squar root) के विलोम अनुपात (inverse ratio) में है। सीफाइड तारेका आवर्त्तकाल जितना ही बढ़ेगा, उसका घनत्व उतनाही कम होता जावेगा। एडिंगटन (Eddington) ने इस बातका एक बड़ा ही सुन्दर उपयोग किया है। हम जानते हैं कि हमारा सूर्य २०० करोड़ वर्ष से भी अधिक समय से हमें प्रकाश दे रहा है। सूर्य यदि

कोयलेका बना होता तो दो तीन सहस्त्र वर्षमें ही जल कर खाक हो जाता। अन्य किसी प्रकारकी रासायनिक प्रतिक्रिया सूर्यका प्रकाश स्थिर रखनेके लिये यथेष्ट नहीं है। हमारा सूर्य भी एक तारा है। तारे करोड़ों वर्ष तक कैसे एकसा प्रकाश देते रहते हैं यह ज्योतिर्विदोंके लिये एक बड़ी भारी समस्या है। हेल्मोज् और केल्विन (Helmholtz-Kelvin) ने यह मत प्रकट किया था कि तारे सिकुड़ रहे हैं और उनका गुरुत्वाकर्षण सामर्थ्य (Gravitational energy) प्रकाश में परिणत हो रही है। यदि यह मत सत्य हो तो एडिंगटन (Eddington) ने दिखलाया है कि डेल्टा सीफाई (δ. Cephei) नामके परिवर्तनशील नक्षत्रके आवर्त्तकाल में प्रति वर्ष ४० सेकेंडका परिवर्तन होना चाहिये, किन्तु इसके आवर्त्तकालमें परिवर्तन बहुत ही कम पाया गया है। इस लिये हेल्मोज—केल्विन मत (Helmholtz-Kelvin hypothesis) ठीक नहीं हो सकता। संभव है कि विश्वसृष्टिके आदिमें तारे सिकुड़ कर अपनी प्रकाश देने की शक्तिको अर्जन करते होंगे, किन्तु उनका प्रकाश स्थिर रखनेके लिये यह कारण यथेष्ट नहीं है। आधुनिक मत यह है, जिसके अविष्कर्त्ता बेठे और गैमो (Bathe, Gamow) हैं, कि तारोंके प्रकाशका उद्गम उनकी आभ्यंतरिक परमाणविक प्रक्रिया (Nuclear transformation) है जिससे कार्बन (Carbon) के द्वारा हाइड्रोजन (hydrogen) हीलियम (Helium) गैसमें परिणत होता है।

तारे क्यों परिवर्तनशील होते हैं इसके विषयमें विभिन्न मतोंका उल्लेख हम इसके पूर्व अध्याय ("अतिकालिक परिवर्तनशील तारे" शीर्षक) में कर चुके हैं। आधुनिक मत यह है कि तारा गैस से भरा हुआ एक पिंड है जो स्पंदन करता है। सबसे पहले रीटर (Ritter) ने ही गैस भरे हुए गोलकके स्पंदनका विचार किया था—उनका उद्देश्य था कि इसका उपयोग परिवर्तनशील तारोंके विषयमें करेंगे। प्लमर (Plummer) ने ही पहले दिखलाया कि परिवर्तनशील तारे दोहरे छादक तारे (Eclipsing binaries) नहीं हो सकते और शैपले (Shapley) ने उनके मतका समर्थन किया और तारेकी ज्योतिमें परिवर्तन होनेका कारण उनकी सतहका स्पंदन बतलाया। एडिंगटन (Eddington) ने स्पंदन-संबंधी मत (Pulsation theory) को गणितकी सुदृढ़ भित्ति पर स्थापित किया। उन्होंने डेल्टा-सीफाई (δ Cephei) तारेका आवर्त्तकाल और उसके आवर्त्तकाल और घनत्वका संबंध गणितके द्वारा निकाला। उन्होंने तारेका आवर्त्तकाल उसके प्रत्यक्ष देखे हुये (Observed) आवर्त्तकालका लगभग आधा पाया। एडगर और श्वार्टशिल्ड (Edgar. Schwarg schild) ने तारेके कई उच्चक्रमों (overtones) के मान गणित द्वारा निकाले हैं।

यह तो निस्संदेह है कि स्पंदन-संबंधी मत और सब मतोंसे श्रेष्ठ है, परन्तु अभी तक इसने सब समस्याओंका समाधान नहीं किया है। एडिंगटन (Eddington) के मतानुसार अब भी तीन अपूर्त्त समस्यायें हैं:—

(१) तारे के स्पंदन को स्थिर रखना।

उत्तापके बहिःप्रवाहसे शक्तिका क्षय (Dissipation of energy) होता है, और एडिंगटन ने दिखाया है कि इस कारण तारेका स्पंदन केवल ८००० वर्ष तक स्थिर रह सकता है। इसलिये तारेका स्पंदन स्थायी रखनेके लिये बाहरी शक्तिकी आवश्यकता है।

(२) घटबढ़ (Phase) का आवर्त्तकालके एक चौथाई पीछे रहना (Quarter-period retardation of phase)।

यों तो तारा जब पूरा सिकुड़ जाता है तब ही अधिकतम गरम हो जाता है और तभी उससे ज्योति सबसे अधिक निकलनी चाहिये। परंतु वास्तव में देखा गया है कि तारा सबसे अधिक प्रकाशमान इससे थोड़ी देर (उसके आवर्त्तकाल का एक चौथाई हिस्सा) बाद होता है जब कि देखने वाले की तरफ इसकी गति अधिकतम हो। और भी आश्चर्यका विषय यह है कि अतिकालिक तारेकी सतह जब द्रष्टा (Observer) से अधिकतम गतिसे दूर चली जाती है तभी इसका प्रकाश अधिकतम होता है।

(३) तारेके आवर्त्तकाल और इसकी प्रकाशमात्रामें सम्बन्ध (Period-luminosity relation)।

इसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं।

एडिंगटनके मतानुसार यह तीनों समस्यायें परस्पर संबद्ध हैं और इनका समाधान वह इस तरह करते हैं कि

तारे की सतहके नीचे हाइड्रोजन गैसकी एक पर्त (layer) है जिसका तारेके स्पंदनके साथ आयनीकरण और अनायनीकरण (Ionisation and deionisation) होता है।

किन्तु गैमो का मत भिन्न है। उनके मतानुसार भीमकाय (Giant, बहुत बड़े और उज्ज्वल) तारोंके प्रकाशका कारण हल्के तत्त्वों—लीथीयम (lithium), बोरन (boron), बेरीलीयम (beryllium), जैसी धातुओंका परमाणविक परिवर्त्तन (Nuclear transformation) है। जब हलके तत्त्व समाप्त होने लगते हैं, तब तारा अपना प्रकाश स्थिर रखने के लिये सिकुड़ना आरंभ करता है। इस मध्यावस्थामें स्पंदन की उत्पत्ति होती है और तारा दोनों प्रकारों से—सिकुड़न और हल्के तत्त्वोंका परमाणविक परिवर्तन—अपना प्रकाश स्थिर रखता है। ग्रीनफील्ड (Greenfield)ने दिखलाया है कि इस मतानुसार तारे रसेल-वक्रचित्र (Russell-diagram) के उसी अंश में अधिक पाये जावेंगे जहाँ वास्तवमें वह पाये जाते हैं। इस मतानुसार सभी तारे कभी न कभी सीफाइड बनेंगे या रह चुके हैं।

शिंजो और जीन्स (Shinjo-Jeans) ने एक और प्रकार की आपत्ति स्पंदन-सम्बन्धी मत (Pulsation theory) के विरुद्ध उठाई है। उनका कहना है कि परिवतनशील नक्षत्र यदि स्पंदन करता हो तो उसके गतिवक्र (Velocity curve) में कई आवर्त्तकाल होने चाहिये, परन्तु वास्तव में एक ही आवर्त्तकाल पाया जाता है। एडिंगटन (Eddington) कहते हैं कि वोल्ज़े (Woltzer) ने गणित द्वारा दिखलाया है कि उच्चक्रम (overtone) तारेकी सतहके पास अधिक शक्ति शाली होंगे, और तारेकी सतहके पास शक्तिका क्षय भी अधिक होता है, इसलिये वह पाये नहीं जाते। परंतु स्टर्न (Sterne) का मत है कि कुछ तारों में उच्चक्रम पाये जाने चाहिये। स्टर्न और स्वार्टशिल्ड (Schwarzhild) ने कुल अल्पकालिक परिवर्तनशील नक्षत्रों (Short-period variables) में हाल में उच्चक्रम पाये हैं।

स्पंदन-सम्बन्धी मतके विरुद्ध सबसे युक्ति युक्त आपत्ति प्रोफेसर ए० सी० बनर्जी ने उठाई है। एडिंगटन (Eddington) ने अपनी गणनामें स्पंदनकी मात्रा (Amplitude) अल्प ली है और उसके वर्ग (Square) को छोड़ दिया है उन्होंने स्वयं ही इस बातको स्वीकार किया है कि ऐसा करना ठीक नहीं, क्योंकि स्पंदन की मात्रा (Amplitude) तारेके अर्द्धव्यास का १/१२ तक पहुँचती है। तारेके स्पंदन की मात्रा का वर्ग स्वीकार करने से उसका गतिवक्र (Velocity-curve) वैसा ही होगा जैसा कि वास्तव में पाया जाता है—यह एडिंगटन ने दिखलाया है। वस्तुतः तारेका गतिवक्र एक सीधा ज्या-वक्र (Simple sine-curve) नहीं है, वह बहुत जल्दी चढ़ता है और धीरे धीरे उतरता है और उतरते समय एक कूबड़ सा प्रतीत होता है। इस बात से अच्छी तरह प्रमाणित होता है कि तारेके स्पंदन की मात्रा के वर्ग को भी गणना में लेना चाहिये। बनर्जी ने दिखलाया है कि ऐसा करने से तारेका स्पंदन स्थायी नहीं रह सकता—वस्तुतः तारा टूट जावेगा। उन्होंने ग्रहमंडल के जन्म के सम्बन्ध में (Origin of the planetary system) एक अतीव हृदयग्राही और नवीन मत भी दिया है। इस मत का वर्णन हम अंतके अध्याय ("ग्रहमंडलके जन्म वृतांत" शीर्षक) में करेंगे।

बनर्जीके शिष्य इन पंक्तियोंके लेखक ने दिखलाया है कि एक समजातीय (Homogeneous) तारेके लिये ही स्पंदन स्थिर रह सकता है। इस आधार पर उन्होंने दोहरे तारों और कुँडलीकृत नीहारिकाओं (Binary stars spiral nebulae) के जन्मविषयक मत दिये हैं। इसका वर्णन भी अंतिम अध्यायमें किया गया है। यह द्रष्टव्य है कि ज्योतिर्विदोंका भी यही मत है कि सीफाइड तारेका केंद्रीय घनत्व (Central condensation) कम होना चाहिये। कोपाल (Kopal) कहते हैं "डेल्टा-सीफ़ाई एफ-५ (δ Cephei F-5) तारे लगभग समजातीय घन हैं।" चंद्रशेखर कहते हैं, "सीफाइड और समूहात्मक (Cluster-type) परिवर्तनशील तारे जो कि हार्टस्प्रंग-रसेल वक्रचित्र (Hertzspring Russell diagram) के 'सुपर जायंट' (Supergiant) अंशमें स्थित हैं वह मुख्य-श्रेणीके (main-scines) तारोंकी अपेक्षा बहुत कम केंद्रीय घनत्व के हैं। एडिंगटनने जोर दिया है कि साधारण तारोंसे सीफाइड तारेका अधिक समजातीय (Homogeneous) होना आवश्यक है।" लेखक ने डेल्टा-सीफाई तारे को समजातीय समझ कर

उसका आवर्त्तकाल निकाला है और प्रत्यक्ष देखे हुये आवर्त्तकालसे इसकी समता (Agreement) पाई है।

लेखकने जीन्स (Jeans) और रोशे (Roche) के अनुयायी तारेको एक समजातीय गैसका ऐसा गोलक, जो कि बहुत पतली हवाके आवरण (Envelope) से आवृत है मान कर, उसके स्पंदनकी गवेषणा की है। लेखकने दिखलाया है कि पूरे तारेका अधिक से अधिक प्रतिशत ३० केंद्रिकांश (Nucleus)का आयतन हो सकता है और तारेके स्पंदनका एकही आवर्त्तकाल हो सकता है। यह गवेषणा शिंजो (Shinjo) और जीन्स (Jeans) की आपत्तिकी पूर्त्ति करती है, जिसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। बनर्जी और राय ने दिखलाया है कि तारेके मुख्य आवर्त्तकाल (Fundamental mode) की स्थिरताके लिये सबसे कम शक्तिकी अवश्यकता है, इस लिये इसी आवर्त्तकालका प्राधान्य होगा। लेखकने कुंडलीकृत नीहारिकाओंके जन्मके संबंधमें एक मत दिया है, जिसका वर्णन अन्तिम अध्यायमें किया जायगा।

यह देखा गया है कि तारे स्थिर नहीं है, किन्तु अल्पाधिक घूमते हैं। घूमते हुये तारोंकी गवेषणा, मिलने (Milne), फोन ज़ाइपेल (Von Zeipel), चंद्रशेखर और भटनागर ने की है। इन्होंने एमडे और एडिंगटन की गवेषणाओंको आगे बढ़ाया है। परन्तु घूमते हुये स्पंदनशील नक्षत्रोंका विचार लेखकने ही प्रथम किया है। उन्होंने दिखलाया है कि बहुत थोड़े घूर्णन (Rotation) का प्रभाव तारेके स्पंदन पर अत्यल्प है। परन्तु घूर्णन बढ़नेसे तारेके स्पंदनमें अंतर पड़ता है जिससे स्पंदन एक निर्दिष्ट मात्रा तक पहुँच कर आगे बढ़ नहीं सकता। हम पहले कह चुके हैं कि ज्योतिर्विदों के लिये यह एक बड़ी भारी समस्या है कि तारेका स्पंदन स्थिर कैसे रह सकता है? यह भी एक बड़ी भारी समस्या है कि तारेका स्पंदन उत्तरोत्तर बढ़ते बढ़ते तारा फट क्यों नहीं जाता? इस गवेषणामें लेखकने इस समस्याका समाधान करनेकी चेष्टा की है। बनर्जीका उत्तर है कि तारेके स्पंदनकी मात्रा बढ़ जाने पर उसका स्पंदन स्थिर नहीं रह सकता और तारा टूट जायगा। एडिंगटन इसका कारण तारेकी सतहके नीचे हाइड्रोजेन गैसकी एक पर्तकी स्थिति समझते हैं। रसेलके मतानुसार इस समस्याका समाधान अभी नहीं हो सकता। यह उल्लेखनीय बात है कि कोई भी सीफाइड तारा ऐसा नहीं पाया गया है जो तेज़ीसे घूमता हो।

एक और बातका उल्लेख करके हम इस विषयको समाप्त करेंगे। यह देखा गया है कि तारेके स्पंदनकी मात्रा इतनी अधिक है कि उसके वर्ग को नहीं त्यागना चाहिये। किन्तु वर्गको लेकर तारेका स्पंदन कैसे स्थिर रह सकता है, इस बातका विचार अभी तक किसीने नहीं किया है। इस विषयमें लेखकने ही प्रथम चेष्टा की है। हम पहले कह चुके हैं कि उन्होंने एक तारेके स्पंदनका विचार किया है जो समजातीय गैसका एक गोलक हो और चारों तरफ बहुत पतली हवा से आवृत हो। तारेके स्पंदनका वर्ग स्वीकार करके उन्होंने दिखलाया है कि तारेका केन्द्रांश मुख्य आवर्त्तकाल (Fundamental mode) से और उसका आवेष्ठन (Envelope) उच्चक्रम (overtone) से स्पंदन करेगा। तारेके केंद्रांश (Nucleus) और आवेष्ठनका अनुपात भी उन्होंने निकाला है। उन्होंने यह भी दिखाया है कि गैमो (Gamow) के मतानुसार तारेका स्पंदन पारमाणविक परिवर्तन के द्वारा स्थिर रहने के कारण और तारेकी सतहके पास शक्तिक्षय होनेसे तारेके स्पंदनमें घटबढ़ (phase) के आवर्त्तकालका एक चौथाई पीछे होना स्वाभाविक है। उन्होंने इसकी तुलना घड़ीके लंगर के स्पंदनसे की है।

ज्वालामुखी और उनकी उत्पत्ति

(ले०—पं० सुरेश चन्द्र अवस्थी)

पृथ्वी प्रकृतिका अजायब घर है। इसमें एक दो नहीं अगणित वस्तुएं हैं। कहीं पर यदि हिम चट्टानें हैं तो कहीं पर खौलते हुए पानी के फ़ौवारे, कहीं पर उर्वरा भूमि है तो कहीं पर मरुस्थल। इस लेखमें आग उगलने वाले पहाड़ों का वर्णन किया गया है। भूमध्यसागरमें स्थित लिपारी द्वीपों में एक द्वीपका नाम वोलकेनो है। उसीके आधार पर ज्वालामुखीका नाम अंग्रेजीमें वोलकैनो (Volcano) रख दिया गया। ज्वालामुखी सदैव पर्वत हो यह बात नहीं है, वास्तवमें ज्वालामुखी उस छेद को कहते हैं जिसके द्वारा पृथ्वीके भीतर तथा बाहरकी क्रियाओंका समागम होता है। ज्वालामुखी आन्तरिक आग्नेय क्रियाओंका बाह्य स्वरूप है। यह बाह्य क्रिया उस आन्तरिक क्रिया की तुलना में तुच्छ तथा नगण्य है लेकिन भूगर्भ तत्ववेत्ताके लिये बड़ी महत्वपूर्ण है। उसके लिये वह निर्देशक है जिससे वह भूगर्भका अनुमान लगाता है। पृथ्वीका वर्तमान स्वरूप तथा नभमण्डल के सितारोंसे उसका सम्बन्ध इन्हीं ज्वालामुखियोंके द्वारा ही मालूम होता है। इतना होने पर भी अभी यह विषय बहुत अज्ञात है। आशा है स्वतन्त्र भारतके नवयुवक इस पर और भी गहरा अनुसंधान करेंगे।

इन विचित्र रहस्यों का अध्ययन करने वालोंमें इटलीके विद्वान स्पालेन्जेनीका नाम विशेष उल्लेखनीय है। सन् १७८८ ई० में इसने इटलीके तमाम पर्वतों का निरीक्षण करके उनका हाल छपवाया था। इसके अतिरिक्त फ्रान्सीसी डोलोमिऊ, अंग्रेज सर विलियम हैमिल्टन, जरमन फोन बुक, हम्बोल्ट्ट तथा आबिकका नाम भी उल्लेखनीय है। इस विषयका जो कुछ भी ज्ञान हमारे पास है वह इन्हीं व्यक्तियोंके कारण है। ज्वालामुखीका आन्तरिक ज्ञान तथा आर्थिक महत्व बताने वाला पाउलेट स्क्रोप है जिसका ग्रन्थ 'Cosiderations on Volcanoes' आज भी महत्वपूर्ण माना जाता है।

उद्गारका क्रम—आश्चर्य है कि इतने भयानक तथा भयावह ज्वालामुखियोंका उद्गार कभी कभी बिना किसी संकेतके एकाएक हो जाया करता है। एक नहीं इस प्रकारके अनेक उदाहरण हैं जहाँ पर भीषणसे भीषण उद्गारका पहलेसे कुछ पता ही न था। इसका बहुत कुछ कारण लावा (Lava) की तरलता तथा गैसोंके निकलने में लावा द्वारा बाधा पर निर्भर है। परन्तु कभी कभी इन उद्गारोंका पता पहलेसे लग जाता है। विसूवियस ज्वालामुखीके उद्गार का पता प्रायः पहलेसे लग जाता है। उद्गारसे पहले वहाँ पर आस पासके कुएँ तथा झरने सूख जाते हैं। पृथ्वीके अन्दर घरघराहटकी आवाज सुनाई पड़ने लगती है तथा पृथ्वी स्वयं धीमे धीमे काँपने लगती है जो बढ़ते बढ़ते भूकम्पका रूप धारणकर लेता है। ज्वालामुखीसे गैसें तथा भाप बड़ी तेजीसे निकलने लगती हैं। कभी कभी तरल चट्टानें बाहर निकलनेसे पूर्व ही जम जाती है और गैसोंका रास्ता अवरुद्ध करने लगती हैं। परिणाम यह होता है कि जब कभी भी गैसोंको मौका मिलता है वह भयानक विस्फोट के साथ चट्टानों को तोड़कर उन्हें ऊपर लाकर चारों ओर बिखेर देती हैं। कभी कभी तो यह विस्फोट इतना भीषण होता है कि पूरा पहाड़ का पहाड़ बिल्कुल साफ़ हो जाता है तथा जलते हुए पत्थर और धूल द्रुत गति से दूर दूर बिखर जाते हैं। लावा फूटे हुए पर्वतसे निकलकर एक नदीकी भाँति बहने लगता है। प्रारम्भ में तो यह पिघले हुए लौहके समान होता है परन्तु कुछ दूर बहने पर वह कुछ ठोस तथा ठण्डा पड़ जाता है। इसके साथ ही साथ पर्वत-मुखसे तथा बहते हुए लावासे भापके बादल उठने लगते हैं ! ज्वालामुखी की क्रियाका प्रत्येक अंश दूर से ही इन गैसों तथा भापके बादलों के द्वारा मालूम पड़ जाता है। यह बादल कभी कभी दो मीलसे भी अधिक ऊँचाई में एक दीवाल की भाँति ज्वालामुखीके ऊपर दिखाई पड़ते हैं। शनैः शनैः ज्वालामुखीकी प्रत्येक क्रिया ठण्डी पड़ने लगती है और कुछ समय उपरान्त जो कि कुछ घण्टों से लेकर कुछ वर्षों तक हो सकता है, वह पूर्ण शान्त हो जाती है।

भीषण उद्गारों में निकलने वाली गैसें प्रायः विद्युत-मय होती हैं जिनके कारण उनके अन्दर भयानक आवाज तथा बिजलीकी चमक दिखाई पड़ती है। कभी कभी तो चमक इतनी तेज़ होती है कि उसे देखा ही नहीं जा सकता। डाक्टर केर्न्रने २६ मई सन् १६०२ में मौन्ट पिलीके उद्गार की चर्चा करते हुए कहा है कि "बराबर चमकते हुए सितारे ज्वालामुखी से उठने वाली गैस में दो मीलसे भी अधिक ऊँचाई तक दिखलाई पड़ते थे तथा ज्वालामुखीसे सात मील की दूरी पर पूर्वकी ओर भी विद्युत सितारे चमक रहे थे।" बिजलीके अतिरिक्त ज्वालामुखीसे निकलने वाली भाप की मात्रा इतनी अधिक होती है कि ठण्ढी होने पर वह वर्षाका रूप धारण कर लेती है। यह वर्षा कभी कभी इतनी बढ़ जाती है कि चारों ओर भयानक बाढ़ आ जाती है। पुरातन कालीन व्यक्ति ग्रहणको भी उद्गारका निर्देशक बताते थे परन्तु आजकल यह निश्चित रूपसे सिद्ध किया जा चुका है कि ग्रहण तथा उद्गार में कोई सम्बन्ध नहीं है।

एक उद्गार से दूसरे उद्गार के बीचका समय प्रायः शक्तिके संग्रहका सूचक है। उद्गारमें जो शक्ति क्षीण होती है तथा जो स्थान रिक्त होता है वह लावाके धीरे धीरे ऊपर उठने से पूर्ण होती है। कहीं पर उद्गार एक क्रमसे ठीक समय पर होते हैं जैसे कि स्ट्रामबोली में तीन या चार मिनट से लगभग १० मिनट तकके अन्दर एक के बाद दूसरा उद्गार होता है। हवाई द्वीपके किलउआमें भी इसी प्रकार अनुशासित क्रम दिखाई पड़ता है तथा डानाके मतानुसार यह समय ८ या ९ वर्षका होता है। इतना समय ४०० फुट गहरी खाई को लावासे भरनेमें लग जाता है। कहीं कहीं पर तो यह समय कुछ शताब्दियों लम्बा होता है।

उद्गार और परिस्थितियाँ—ज्वालामुखीके उद्गार के ऊपर वायुके दबावका बड़ा असर पड़ता है। ज्वालामुखी के ऊपर दबाव सूचक यंत्र (Barometor) में २ इंचका अन्तर पड़ जाना कोई नई बात नहीं है। इस दो इंचके अन्तर का अर्थ होता है प्रति वर्ग मील बीस लाख टनके वजन का अन्तर पड़ना। इतने बड़े परिवर्तन का प्रभाव न पड़ना असम्भव सा प्रतीत होता है। कुछ वैज्ञानिकोंके मतानुसार जाड़ा तथा हेमन्त ऋतु में वर्षाकी अधिकताका प्रभाव उद्गार पर भी होता है। कोएनके कथनानुसार सन् १८६८ ई० में हवाइयन द्वीप में होने वाले उद्गारसे पूर्व वहाँ पर असाधारण वर्षा होने लगी थी। जापानमें उद्गार प्रायः शीतकालमें ही होते हैं। इसका कारण यह बतलाया जाता है कि ग्रीष्म की अपेक्षा शीतकाल में वायु के दबाव में अन्तर अधिक रहता है तथा उत्तरी भाग में हिम के दबाव के कारण आभ्यन्तरिक खिंचाव उत्पन्न हो जाता है जिसके कारण पृथ्वीके कमजोर भाग शीतकाल में टूट कर ज्वालामुखी के उद्गार में सहयोग देते हैं।

प्रोफेसर पालमियरी के अनुसार चन्द्रमा तथा ज्वालामुखी के उद्गारों में कुछ सम्बन्ध अवश्य है। क्रुग ने अगस्त मास में उद्गारों की अधिकता पर ध्यान दिलाते हुए आपस में कुछ सम्बन्ध निर्धारित करने की चेष्टा की है परन्तु अभी कोई यथेष्ट प्रमाण नहीं मिले हैं। विभिन्न उद्गारों तथा विस्फोटों के अध्ययन के उपरान्त यह पाया गया है कि—

(१) दीर्घकालीन सुषुप्तावस्था में रहने वाला ज्वालामुखी का उद्गार या तो भीषण होगा या लम्बा होगा।

(२) लम्बे या भीषण उद्गार प्रायः बहुत दिनों तक शान्त रहते हैं।

(३) छोटे तथा साधारण उद्गार प्रायः जल्दी-जल्दी होते हैं।

(४) उद्गार की भीषणता सुषुप्तावस्था के विपरीत होती है।

उत्पत्ति

प्रकृतिके किसी भी कार्य में 'क्यों' का कोई उत्तर नहीं है। "क्या" और "कैसे" का ही उत्तर है। ज्वालामुखी का उद्गार क्यों होता है इसके उत्तर में तो यही कहा जा सकता है कि प्रकृति चाहती है इसलिये होता है। परन्तु ज्वालामुखी क्या है तथा कैसे उत्पन्न होता है इसका उत्तर मनुष्य दे सकता है तथा दिया है। पृथ्वी के अन्दर रहने वाली तरल चट्टानों को मेगमा (Magma) कहते हैं तथा वही जब ऊपर सतह पर आ जाता है तो उसे लावा (Lava) के नाम से पुकारते हैं। ज्वालामुखी के फूटने तथा लावा निकलने का क्या कारण है? इसका अध्ययन करने के लिये सब से पहले यह देखना है

कि मेगमा आता कहाँ से है। यह तो निश्चित ही है कि मेगमा पृथ्वीके अन्दरसे आता है परन्तु उसका भण्डार परिमित है या अपरिमित इस पर वैज्ञानिकों में मतभेद है। डेविड फोर बेस, डाना आदि वैज्ञानिकोंके मातानुसार पृथ्वी का भीतरी भाग तरल है तथा ऊपरी भाग जिसमें कि हम लोग रहते हैं उस तरल पर एक खाल की तरह चढ़ा हुआ है। पृथ्वी की उत्पत्ति नीहारिका (Nebula) से मानने वाले ज्योतिषी भी पृथ्वी का भीतरी भाग तरल मानते है। लेकिन जे० पी० इडिंग का कहना है कि "भिन्न-भिन्न समय पर एक ही ज्वालामुखी से समान पदार्थों का निकलना इस बात का निर्देशक है कि मेगमा एक ही जगह से आता है तथा इस आधार पर फोन वाल्टर हाउसेन का मत कि पृथ्वी उपर से ठण्ढी हो कर ठोस हो रही है परन्तु भीतर अभी तरल है बिल्कुल गलत मालूम होता है। मिल्ने के अनुसार भूकम्पों की गति से यह सिद्ध होता है कि ३० मील की गहराई तक ही पृथ्वी के पदार्थ चट्टानों की भाँति रहते है। तथा उसके बाद उनका घनत्व तथा दृढ़ता लगभग दूनी हो जाती है।

इन बातोंको ध्यानमें रखते हुए पृथ्वीके ऊपरी भाग को चिपड़ 'crust' कहना ही अनुचित है। इडिंग तथा कुछ अन्य वैज्ञानिकोंके अनुसार पृथ्वी ऊपरसे लेकर मध्यतक ठोस पदार्थोंकी बनी हुई है लेकिन मध्य भागका ताप इतना अधिक है कि वह केवल दबावके कारण ही ठोस बना है। मध्य भाग देखने में तो ठोस है लेकिन शक्तिमें तरलकी भाँति है। दबावकी कमी होते ही वह फौरन तरल हो जाता है तथा फूट पड़ता है। कहनेका तात्पर्य यह है कि कुछ वैज्ञानिक पृथ्वीका मध्य भाग तरल मानते हैं और कुछ ठोस और इसीके अनुसार ज्वालामुखीकी उत्पत्ति सिद्ध करते हैं।

दूसरा प्रश्न है लावाके तापका। कुछ वैज्ञानिक उसे पृथ्वीकी आन्तरिक तापका कारण मानते हैं परन्तु वास्तव में यह संशययुक्त बात है। जे० पी० इडिंगके अनुसार "उद्गारके समयकी लम्बाई इस बातको मानने से इनकार करती है कि उद्गार किसी जगह विशेषमें ताप तथा रासायनिक प्रतिक्रियाका फल है! उसका ताप पृथ्वीके आन्तरिक तापके कारण है"। लेकिन हालेमाऊमाउमें किलाउआ नामक ज्वलामुखी में लावा का ताप सतह पर १००° शतांश अधिक है बनिस्बत २० फुट नीचेके तापके। वर्तमान वैज्ञानिकोंने अब तापका कारण रेडियम धर्मी तत्त्व (Radio Active Elements) रसायनिक प्रतिक्रियातथा मेगमाके अन्दर रहने वाली गैसोंको माना है।

मेगमाके भण्डार तथा ताप का प्रश्न छोड़ने पर तीसरा प्रश्न यह सामने आता है कि मेगमा ऊपर सतह पर किस प्रकार निकल आता है। इस विषय पर भी वैज्ञानिकोंमें मतभेद है। कुछ तो मेगमाको पृथ्वीके अन्दर भरे हुए कीचड़के सदृश बिना किसी क्रियाके मानते हैं परन्तु कुछ उसे क्रियाशील मानते हैं! अक्रिय मानने वालोंमेंसे जे० पी० इडिंगका मत है कि "ज्वालामुखीका उद्गार पृथ्वीके बड़ी परिधिमें उथल पुथलका परिणाम है!" आरचीबाल्ड गीकीका कथन है कि पृथ्वीकी उथल पुथल के कारण ज्वालामुखीका उद्गार होता है इसमें कोई शक कर ही नहीं सकता। ज्वालामुखी प्रायः उन्हीं जगहों पर पाये जाते है जहाँ पर कि पृथ्वी काफी टूटी फूटी रहती है;" इडिंगका मत है कि "मेगमाका ऊपर धरातल पर आना पृथ्वीकी तह पर होने वाली दरारों पर निर्भर है। तरल चट्टानें शायद अक्रिय हैं, उनमें क्रिया कभी हो ही नहीं सकती।" कुछ वैज्ञानिकोंका मत है कि तरल चट्टान (Magma) स्वयं क्रियावान् है। उसके अन्दर जो गैसें रहती हैं वहही उसे क्रिया प्रदान करती हैं। गैसें उसीके अन्दर रहती हैं तथा दवावके कम होते ही निकलने लगती हैं। रासायनिक प्रतिक्रिया तथा रवोंका बनना भी गैसोंके निकलनेमें मदद करता है। जब इन निकलने वाली गैसोंका दबाव अधिक बढ़ जाता है तब वे भयानक विस्फोटके साथ धरातल पर आ जाती हैं और रास्तेमें जो कुछ भी पड़ता है उसे ढकेलते हुए ऊपर ले आती हैं। वैज्ञानिक मोरेन इसी मतके मानने वाले हैं। इतना होते हुए भी ज्वालामुखीका उद्गार तरल चट्टानोंके दबाव, घनत्व, तरलता तथा दृढ़ता आदि पर निर्भर है।

कुछ वैज्ञानिकोंने ज्वालामुखीके उद्गारका कारण सामुद्रिक जल बताया है। उनका कहना है कि जब पानी पृथ्वीके गरम भागमें पहुँच जाता है तब वह एकाएक भाप बन कर ऊपरकी ओर निकलनेका प्रयत्न करता है। रास्तेमें बाधा पड़ने पर वह भयानक विस्फोटके साथ धरातलको तोड़ फोड़ कर ऊपर आता है। क्रामातु हुआके उद्गारका यहीं कारण माना जाता है परन्तु अभी इस मतके समर्थक बहुत कम वैज्ञानिक हैं।

औद्योगिक योजना*

अनुवादक—श्री ओंकारनाथ शर्मा

बैरोज़ा सोखी हुई लकड़ी

कोई भी साधारण लकड़ी जब बैरोज़ाके घोलको सोख लेती है तब वह उसके रंध्रों और रेशोंमें समाकर उसकी मज़बूती और उसके भौतिक गुणोंको इतना बढ़ा देती है कि उसका उपयोग कई उद्योग धंधोंमें बहुत बढ़ जाता है अर्थात् उसे ऐसे कामोंमें भी लिया जाने लगता है जहाँ साधारण लकड़ी अनुपयुक्त समझी जाती है। उदाहरणके लिये, वे हलकी और मुलायम लकड़ियाँ जिनमें सख्ती और मज़बूती नहीं होती केवल दियासलाई और पेंसिलोंके जैसे उद्योग-में ही काम आ सकती हैं, लेकिन जब इन्हीं लकड़ियोंको बैरोजाका घोल खूब पिला दिया जाता है तब वे भी काफी सख्त, मज़बूत और चिमड़ी हो जाती हैं जिससे इनका और भी अच्छा उपयोग हो सकता है।

इस देशमें हलकी लकड़ियाँ तो बहुतायतसे मिलती हैं लेकिन उनमें मज़बूती नहीं होती। यदि उन्हें बैरोज़ाका उपयुक्त प्रकारका घोल खूब पिला दिया जाय तो औद्योगिक क्षेत्रमें उनकी उपयोगिता बहुत बढ़ जाय। कई बार देखा जाता है कि किसी विशेष कामके लिये किसी विशेष प्रकार-की लकड़ीकी जरूरत पड़ती है, तो वह आवश्यक मात्रामें उपलब्ध नहीं होती, अतः यदि किसी साधारण जातिकी लकड़ीको उचित प्रकारसे बैरोज़ा पिलाकर उसमें आवश्यक गुण पैदा कर दिये जायँ तो घटिया लकड़ीसे ही बहुत काम निकल सकता है।

इस प्रकारके विशेष उपयोगोंके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं। बन्दूकोंके कुन्दे और हथियाँ बैरोज़ा सोखी हुई सस्ते मेलकी लकड़ियोंसे जो यहाँ बहुतायतसे पैदा होती हैं, बनाये जा सकते हैं। अखरोटकी लकड़ी जिसका अकसर इन कामोंमें उपयोग होता है भारतमें बहुत थोड़ी पैदा होती है। सन और रुई की मिलोंमें भी बॉबिन और शटल, जिन पर काफी झटके और घिसाई पड़ती है, यदि बैरोज़ा सोखी सस्ती लकड़ीके बनाये जायँ तो उनकी उमर काफी बढ़ सकती है। जिन उद्योगोंमें हवासे सूखी और नम होनेके कारण लकड़ीके सामानका सिकुड़ना और फूल जाना अनिश्चित होता है वहाँ भी लकड़ीको इस प्रकारसे संस्कारित करना उपयोगी होगा। बैरोज़ेका घोल सोखी हुई लकड़ीमें तेजाबके असरको सहनेका एक विशेष गुण पैदा हो जाता है जिस कारण उसका रासायनिक उद्योगोंमें भी उपयोग हो सकता है। उदाहरणके लिये—विद्युत संग्राहक घटों (Electric Accumulators) के निर्माण करनेमें नाँद, बकस, और प्लेटोंको जुदा रखने वाले परदों (Plate separators) इत्यादिके बनानेमें काम आ सकती है। इसके अतिरिक्त औजारोंके दस्ते बनानेमें भी, जिन पर कि बहुत झटके पड़ा करते हैं काम आ सकती है। औजारोंके दस्तोंमें झटकोंकी सहनशीलता (Resistance) के अतिरिक्त हल्कापन भी आवश्यक होता है जो इस प्रकार-की संस्कारित लकड़ीसे प्राप्त हो सकता है। सस्ते मेलकी लकड़ीको संस्कारित करके इमारत और फर्नीचर बनानेके काममें भी लाया जा सकता है।

बैरोजेके घोलसे संस्कारित करने पर लकड़ीमें निम्न-लिखित गुण पैदा किये जा सकते हैं—

१—त्वचा (ऊपरी सतह) में सख्ती।

२—शहतीरी मज़बूती (Beam strength)

३—चिमड़ापन।

४—हवाके नम और सूखा होनेके कारण लकड़ीके फूलने और सिकुड़ने की अयोग्यता।

५—तेज़ाबके असरको सहनेकी योग्यता।

६—संस्कार करने पर लकड़ीकी ऊपरी सतह पर अच्छी पालिश और सफाई आनेकी योग्यता।

आवश्यक उपकरण—

एक पम्प जो आवश्यकतानुसार दबाव पर हवा देस के

*भारत सरकारके व्यापारिक विभागके अन्तर्गत बोर्ड आफ साइन्टिफिक ऐण्ड इन्डस्ट्रियल रिसर्च द्वारा प्रकाशित सूचनाओंका अनुवाद।

और शून्य भी कर सके, इसका सम्बन्ध उपयुक्त प्रकारकी एक टंकीसे होना चाहिये जिसमें तीन रास्ते हों। पहिला रास्ता वह जिसमेंसे टंकीके भीतरकी हवा पम्प द्वारा निकालकर बाहर की जा सके जिससे उसके भीतर शून्य हो जाय। दूसरा रास्ता वह जिसमेंसे बैरोज़ेका घोल टंकीमें भरा जा सके और उसी रास्तेसे खालीभी किया जा सके, तीसरा रास्ता वह हो जिसमेंसे होकर टंकी में हवा भरकर दबाव पैदा किया जा सके। इस टंकी पर एक संयुक्त गेज अथवा दो अलहदा अलहदा गेज लगे हों जो क्रमशः दबाव और शून्य प्रदर्शित करें। इस टंकीके चौगिर्द "वाष्पकी खोल" (Steam jacket) भी लगी होनी चाहिये और साथ ही एक अंगीठी (Heating chamber) भी। इनमें ताप अवरोधक स्तर (Lagging) भी लगा होना चाहिये जिससे टंकीके भीतर भरे हुए बैरोज़के घोलका तापक्रम लगभग १००° श० रखा जा सके। अंगीठीसे सम्बन्धित उचित प्रकारकी एक चिमनी भी होनी चाहिये जिसकी सहायतासे अंगीठीमें हलकी और सुव्यवस्थित ताप-परिवाहक धाराएँ (Convection currents) चालू रह सकें। इस टंकीके दूसरे रास्तेसे सम्बन्धित एक संग्राहक हौज़ (Reservoir tank) भी होना चाहिये जिसमें बैरोज़ेका घोल संचित रह सके।

उपकरण की लागत—कितने और किस नापकी लकड़ीके टुकड़े प्रतिदिन संस्कारित किये जावेंगे, इस बात पर, इस प्रकारके उपकरणको तैयार करनेकी लागत, निर्भर करती है।..................घनफुट लकड़ी संस्कारित करनेकी क्षमतावाला नमूनेका उपकरण (Pilot plant) जो कि प्रयोगोंके लिये बनाया गया था, उस पर युद्धके जमानेमें...........रु० खर्चा पड़ा।*

बैरोज़के घोलको तैयार करनेका सभी कच्चा माल इस देशमें मिल जाता है। भिन्न-भिन्न प्रकारकी लकड़ियोंमें विशेष विशेष प्रकारके गुण उत्पन्न करनेके लिये कई प्रकारके घोलोंका प्रयोग कर देखा गया है जिससे अनुभव हुआ है। कि लकड़ियोंमें भिन्न भिन्न प्रकारके गुणोंका विकास करनेके लिये भिन्न-भिन्न प्रकारके घोलों का उपयोग करना चाहिये। अतः किसी विशेष जातिकी लकड़ीमें किसी विशेष गुणका विकास करनेके लिये उस लकड़ीके उपयुक्त ही घोल बनाना चाहिये। घोल बनानेमें कितना खर्चा पड़ता है उसका अंदाज़ा नीचे दिया जाता है, लेकिन यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि यह अनुमान केवल कुछ विशेष प्रकारकी लकड़ियों पर किये गये प्रयोगोंके आधार पर ही है। कौन-सी लकड़ी कितना कम ज्यादा घोल सोखती है यह बात उसकी प्राकृतिक बनावट पर निर्भर करती है।

*मूल योजनामें पात्रता और खर्चेके अंक नहीं दिये गये हैं।

लकड़ीको संस्कारित करनेका खर्चा—

नमूनेके उपकरण पर अभी प्रयोग चालू है* अतः भिन्न भिन्न लकड़ियोंको संस्कारित करनेमें क्या खर्चा पड़ेगा यह ठीक तौर पर नहीं बताया जा सकता, फिर भी कहा जा सकता है कि बैरोज़ेका सबसे सस्ता घोल जिसके आधार पर अनुमान लगाया जायगा, लगभग १) प्रति गैलन पड़ता है जिससे लगभग २½ घन फुट लकड़ी संस्कारित की जा सकती है।

खर्चेका अनुमान लगानेके लिये यहाँ एक और अंदाज़ा दिया जाता है। पारसलोंके खोखे बनानेके लिये एक सस्ती प्रकारकी लकड़ी छाँटी गई लेकिन उसमें ऐब यह था कि वह ठोकी हुई कीलोंको पकड़ नहीं सकती थी अर्थात् तैयार पारसलको इधर उधर ले जानेसे कीलें ढीली पड़ जाती थीं और पारसल बिगड़ जाता था, अतः बैरोज़ेके घोलसे संस्कारित करके लकड़ीकी कील पकड़नेकी योग्यताको बढ़ानेकी कोशिश की गई जिससे वह लकड़ी भी सागवानकी लकड़ी जैसी कीलोंको पकड़ने लग गई। सागवानकी लकड़ीका बाजार भाव लगभग ७) घनफुट है लेकिन वह घटिया किस्मकी लकड़ी जिसका बाजार भाव २) प्रति घनफुट था संस्कारित होने पर ३) प्रति घनफुटकी हो गई। इस अनुमानमें प्रतिबंध खर्च नहीं शामिल किया गया है।

*योजनाके प्रकाशित होनेकी तरीख ३-५-४१

समुद्र की गहराईमें रहनेवाले जीव

(ले०—श्रीमती रानी टंडन, एम० एड०)

सभी जानते हैं कि द्रवोंमें भी दबाव होता है। जितनी अधिक गहराई द्रवकी होती है उतना अधिक दबाव तली पर रहता है।

हमें यह भी ज्ञात है कि हवा भी दबाव डालती है। हम लोगोंके शरीरके ऊपर हवाका यह दबाव १५ पौंड प्रतिवर्ग इंच है। इतना दबाव होने पर भी हमें इससे कोई कष्ट नहीं होता। इसका कारण यह है कि हमारे शरीरके अन्दर खूनका दबाव रहता है जो इस हवाके दबावको साधे रहता है।

अब हम कुछ उन जन्तुओंका हाल बतलाना चाहते हैं जो समुद्रकी बड़ी गहराई में रहते हैं और जिनके शरीर पर पानीका बहुत भारी दबाव रहता है। इन जन्तुओंका हाल पढ़कर हम समझ सकेंगे कि दबावका जीवों पर कितना प्रभाव पड़ता है।

पहले लोगोंका यह अनुमान था कि समुद्र में १००० या २००० फुटकी गहराईसे नीचे जन्तु नहीं रह सकते क्योंकि अधिक गहराईके पानीका दबाव इतना अधिक होता है कि जन्तुओंके लिये इस दबावको साधना असम्भव हो जाता है, किन्तु अब हमें यह मालूम है कि समुद्रकी बड़ी गहराईमें भी जन्तु रहते हैं। हमें ७००० मीटर (४½ मील) गहराई तकके जानवरोंका हाल मालूम है। इससे अधिक गहराईके जानवरोंका हाल अभी हमें नहीं मालूम हो सका है।

६००० तथा ७००० मीटरकी समुद्रकी गहराईमें पाये जानेवाले जन्तुओंमें मछलियाँ तथा अन्य बहुत सी जातियोंके जीव हैं। इस गहराईमें रहनेवाले सब जन्तु ऊपर सतहके पास रहने वाले अपनी जातिके अन्य जन्तुओंसे बहुत भिन्न हैं। गहराईमें रहनेके कारण उनके शरीर तथा अंगोंमें बहुत परिवर्तन हो गया है। इन जन्तुओंको भोजन अपनसे ऊपरकी सतहमें रहने वाले जन्तुओंके मरे हुए शरीरसे प्राप्त होता है। ऊपरकी सतहके जन्तु जब मर जाते हैं तब इनके मुर्दा शरीर नीचेकी सतहमें पहुँचते हैं और इन्हींको खाकर नीचेकी गहरी सतहके जानवर अपना पेट भरते हैं। मामूली तौरसे इतनी गहराईमें भोजनकी बहुत कमी रहती है। इसी कारण समुद्रकी गहराईमें अधिक बड़े जन्तु नहीं रहते। ६००० मीटरकी गहराईमें रहने वाली भारी मछलियाँ १ फुटसे कम ही लम्बी होती हैं, लेकिन छोटे होते हुए भी ये जन्तु बड़े खूँखार होते हैं और इनके जबड़े इतने बड़े होते हैं कि ये अपनेसे भारी मरे जीवको भी निगल जाते हैं।

हममेंसे बहुतसे यह सोचेंगे कि समुद्रकी इतनी गहराईमें रोशनी तो कुछ होती ही नहीं है, फिर यहाँके जानवरोंको दिखलाई कैसे देता होगा। हमारा यह सोचना बहुत कुछ ठीक है। इतनी गहराईमें सदा घना अंधकार बना रहता है। लेकिन थोड़ीसी रोशनी ये जन्तु स्वयं पैदा करते हैं। इन जन्तुओंमें कुछ अंग होते हैं जो ज्योति पैदा करते हैं। इन अंगोंको फॉसफोरेसेन्ट (phosphorescent) अंग कहते हैं। आपने रातमें जुगनूको चमकते देखा होगा। जुगनूकी ही भाँति इन जानवरोंके फॉसफोरेसेन्ट अंगोंसे चमक निकलती है। ये अंग भिन्न-भिन्न जन्तुओंमें भिन्न-भिन्न तरहके रहते हैं। कुछमें ये सिरके ऊपर या सामने इस प्रकार लगे रहते हैं जिससे इन जानवरोंके आगे उजाला रहता है और ये अपना मार्ग देखते हैं। इन जन्तुओंकी ये रोशनियाँ इन्हें इनके शिकार पकड़ में भी मदद देती हैं। छोटे छोटे दूसरे जन्तु जिन्हें ये पकड़ कर खाते हैं इनके पास इन रोशनियोंसे ललच कर स्वय आते हैं और फिर ये इन्हें पकड़कर खा जाते हैं। कुछ जन्तु अपने मुँहसे ज्योतिका धुआँ उगल कर अपने शत्रुकी आँखोंको चकाचौंध कर देते हैं और स्वयं बचकर भाग जाते हैं। इस प्रकार इन ज्योतिर्मय अंगोंकी सहायतासे ये अपनी रक्षा भी कर लेते हैं।

बहुत गहराईमें रहनेवाले जन्तुओं में या तो आँखें बहुत बड़ी और तेज़ होती हैं या फिर बिल्कुल ही नहीं होतीं। बड़ी आँखें होनेके कारण ये गहराईकी कम रोशनी-

में भी कुछ देख सकते हैं। जिनमें आँखें बिल्कुल नहीं होतीं उनमें छूने, सूँघने तथा सुननेकी इन्द्रियाँ बहुत तेज़ रहती हैं।

अब आप ज़रा यह सोचें कि गहरे समुद्रके इन जानवरों पर पानीका कितना दबाव रहता है। प्रयोगोंसे हमें यह मालूम है कि प्रत्येक १० मीटर गहराईमें जानेसे पानीका दबाव एक वायुमंडलके बराबर बढ़ जाता है। इस प्रकार हिसाब लगानेसे हम यह देखते हैं कि ६००० मीटरकी गहराई पर पानीका दबाव लगभग ३ टन (८४ मन) प्रति वर्ग इंच होगा। यदि हमारे शरीरके ऊपर कोई ३ टनका बोझ रख दे तो हमारी हड्डी पसली चकनाचूर हो जाय। लेकिन आपको यह जानकर अवश्य आश्चर्य होगा कि इस गहराईके जन्तुओंके शरीर पर इतना दबाव होते हुए भी उन्हें इसका उसी प्रकार कुछ पता नहीं लगता जैसे हमें हवाके १५ पौंड दबावका। कारण यह है कि इन जन्तुओंके खून तथा शरीरके अन्य तरल पदार्थों में खुद एक बड़ा दबाव होता है और यह दबाव पानीके ३ टनके दबावको साध लेता है। हम भी हवाके प्रति वर्ग इंच १५ पौंड दबावको अपने खूनके दबाव द्वारा ही साधते हैं। अब आप स्वयं यह समझ सकते हैं कि इन जन्तुओंके शरीरके अन्दर खून आदिका कितना अधिक दबाव रहता है। क्या आप बतला सकते हैं कि ये जन्तु यदि पानीकी सतह पर लाये जायँ तो इन पर क्या प्रभाव पड़ेगा? सतह पर केवल हवाका दबाव रहता है और हमें मालूम है कि यह दबाव ६००० मीटर गहराईके दबावके मुकाबलेमें कुछ भी नहीं है। अतः सतह पर आने पर इन जन्तुओंके शरीर पर बाहरी दबाव बहुत कम हो जाता है। लेकिन इनके अन्दरका दबाव जैसे कि हम देख चुके है बहुत अधिक है जो ३ टन पानीके दबावसे सधता है। अब सतह पर इस अन्दरके दबावको साधनेके लिये दबाव काफ़ी नहीं है। नतीजा यह होता है कि अन्दरके दबावके कारण भीतरकी हवा आदि फैलती है और इस फैलावको न रोक सकनेके कारण जन्तुओंके शरीर फटकर टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं।

आपने यदि कभी साइकिलका ट्यूब बर्स्ट होते देखा होगा तो आप इस बातको अच्छी तरह समझ सकते हैं। ट्यूबके अन्दर हवाका जितना दबाव रहता है वह बाहरी दबावसे सधा रहता है। जिस समय ट्यूबके अन्दर हवा अधिक भर देनेसे या हवाके फैलनेसे दबाव बाहरी दबावकी अपेक्षा अधिक हो जाता है तो ट्यूब फट जाता है। बस यही कारण है जिससे गहराईके जन्तुओंके शरीर सतह पर लानेसे फट जाते हैं।

इतनी गहराईमें रहनेवाली मछलियों के अन्दर एक हवाका थैला रहता है। जब ये मछलियाँ सतह पर लाई जाती हैं तो बाहरी दबावके कम हो जानेके कारण इस थैलेकी हवा फैलती है और थैला ज़ोरसे फटता है जिससे मछलियोंका शरीर टुकड़े टुकड़े हो जाता है।

लेकिन इनमें ह्वेल आदि कुछ ऐसे जन्तु भी हैं जिनके शरीरमें कुछ ऐसा प्रबन्ध रहता है जिसके कारण वे बाहरी दबावके घटने बढ़नेके अनुसार अपने अन्दरके दबावको घटा-बढ़ा लेते हैं। ये जानवर अधिक गहराईसे ऊपर आने या ऊपरसे नीचे गहराईमें जानेसे मरते नहीं।

केशों की रंगाई

(ले०—डा० सन्त प्रसाद टंडन)

नई सभ्यतामें बालोंका रंगना भी एक फैशनमें माना जाने लगा है। कुछ वर्ष पहले यह असभ्य तथा अनपढ़ लोगोंमें ही सीमित था। किन्तु फैशनको अन्य चीज़ोंकी वृद्धि के साथ साथ बालोंकी रंगाईका चलन भी वर्त्तमान कालमें काफ़ी वृद्धि को प्राप्त हुआ है। विशेषकर जबसे कार्बनिक पदार्थोंका इस कार्य में उपयोग होने लगा है तबसे इस फैशनकी भी ख़ूब वृद्धि हुई है।

बालोंके रंगनेकी प्रथा बहुत प्राचीन है। इसकी चर्चा फ़ारस, हिब्रू तथा रोमके प्राचीन साहित्यमें मिलती है। प्राचीन ईजिप्टमें भी इस प्रथाका काफ़ी प्रचलन था। भिन्न भिन्न प्राचीन भाषाओंके साहित्यका अवलोकन करनेसे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि इस कार्यके लिए खनिज रंगीन पदार्थों तथा वानस्पतिक रंगों (जैसे मेंहदी) का व्यवहार कई हज़ार वर्षों पहलेसे होता आ रहा है।

बालोंको रंगनेमें कई प्रकारकी कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। कोई पदार्थ रंग तभी ग्रहण करता है जब उसका रंगके प्रति कोई आकर्षण या खिंचाव होता है। जिस पदार्थका जिस किसी रंगके लिये जितना अधिक आकर्षण होगा वह उस रंग द्वारा उतनी ही अच्छी तरह रंगा जा सकेगा। पिकरिक अम्ल (Picric acid) के घोलमें यदि आप सूती कपड़ेके एक टुकड़ेको डुबायें तो रंग बहुत ही हल्का चढ़ेगा और पानी कपड़े पर डालते ही रंग घुलकर निकल जायगा। किन्तु यदि इसी पिकरिक अम्लके घोलमें आप एक रेशमी टुकड़ा डुबायें तो उस पर अच्छा चमकीला पीला रंग चढ़ेगा और पानीसे धोने पर भी रंग नहीं निकलेगा। इसका कारण यह है कि रेशम और पिकरिक अम्लके बीच में एक आकर्षण रहता है जो पिकरिक अम्लको रेशमसे संयोजित कर रेशमके रंगनेका कारण होता है। सूती कपड़े और पिकरिक अम्लके बीच ऐसा कोई आकर्षण नहीं होता। अतः पिकरिक अम्ल सूती कपड़े को रंगनेमें असमर्थ होता है।

यद्यपि बालोंका रासायनिक रूप लगभग ऊनके समान ही है, इसका रंगोंके प्रति आकर्षण ऊनकी अपेक्षा बहुत कम है। इसी कारण वे सब रंग जो ऊनको आसानीसे रंग देते हैं मनुष्यके बालोंको रंगनेमें व्यर्थ सिद्ध होते हैं। एक दूसरी कठिनाई यह है कि जीवित मनुष्यके बालोंका रंगाई सम्बन्धी गुण मरे मनुष्य के बालोंसे भिन्न होता है। अतः प्रयोग करनेमें कठिनाई उपस्थित होती है। इसके अतिरिक्त एक अन्य कठिनाई यह भी है कि केवल वे ही पदार्थ बालोंकी रंगाईके लिए प्रयुक्त हो सकते हैं जो ३७° शतांश तापक्रम पर या इसके नीचे ही बालोंको रंग सकें, क्योंकि जीवित मनुष्य इससे अधिक ऊपरके तापक्रमको सह नहीं सकता। साथ ही वे सब रंग जिनका रासायनिक गुण तेज़ अम्ल या तेज़ चारका सा हो इस कार्यमें नहीं आ सकते क्योंकि इनके व्यवहारसे मनुष्य शरीरको हानि पहुँचेगी।

बालोंके रंग मुख्य तीन प्रकारके हैं :—

(१) खनिज रंग जिन्हें पिगमेंट (pigments) भी कहते हैं; (२) वानस्पतिक रंग वाले पदार्थ; और (३) वे पदार्थ जो ओषदीकरण होने पर रंग उत्पन्न करें।

खनिज रंग (पिगमेंट)—इस कक्षामें सबसे प्राचीन पदार्थ कोह्ल (Kohl) है। कोह्ल शब्द बहुतसे काले पिगमेंटके लिए प्रयुक्त होता है। कोह्ल शब्दके अन्दर कोयला और गैलिना (galena) के विविध रूप भी आ जाते हैं। यह आजकल बहुत ही कम व्यवहारमें आता है। केवल कभी कभी नाटकोंके पात्रोंके लिये ही उपयोगमें लाया जाता है। इसको व्यवहारमें लानेकी विधि यह है कि इसे गोंद या जिलेटीनके साथ मिलाकर लेईके रूपमें कर लिया जाता है।

आजकल बालोंको रंगनेके लिये सीसेके यौगिक काफी व्यवहरा में आते हैं। ये पदार्थ केशवर्धक माने जाते हैं। सीसेके यौगिकोंमें लेड ऐसीटेट इस कार्यके लिये सबसे अधिक व्यवहारमें आता है। लेड ऐसीटेटको गंधकके किसी

यौगिक के साथ मिलाकर ग्लिसरीन और तेल द्वारा इमल शनके रूप में कर लिया जाता है। गंधकके यौगिकोंमें या तो गंधकका क्लोद या सोडियम-थायोसल्फेट या इन दोनोंका मिश्रण प्रयोगमें लाया जाता है। इन मिश्रणोंमें लेड ऐसीटेट और गंधककी मात्रा साधारणतः बराबर रहती है (लगभग ३ प्रतिशत)। इन मिश्रणों का बालों पर धीरे धीरे प्रभाव पड़ता है और बालोंके ऊपर एक भूरी या काली पर्त चढ़ जाती है। यह पर्त लेड सल्फाइड की होती है। इस पर्तका कुछ भाग केशोंके रेशोंमें जम जाता है और जल्दी नहीं छूटता। अतः बालों पर काफी दिनों तक रंग बना रहता है। इन मिश्रणोंकी बालों पर क्या रासायनिक प्रक्रिया होती है और किस प्रकार होती है यह ठीकसे ज्ञात नहीं है किन्तु ऐसा अनुमान है कि संभवतः पहले गंधक बालों पर जमता है और बादमें सीसे से संयुक्त होकर लेड सल्फाइड बनाता है। सीसेके यौगिकोंमें कभी कभी सीसेकी आक्साइड भी इस कार्यके लिये प्रयुक्त होती है।

एक दूसरे वर्गके रंग बनाने में चाँदीके यौगिक उपयोग में आते हैं। इन केश-रंगोंमें जिनमें चाँदीके यौगिकोंका व्यवहार होता है दो अलग-अलग घोल बनाने पड़ते हैं। एक घोलमें चाँदीका नाईट्रेट और कुछ अमोनिया रहता है और दूसरे में क्षारीय सल्फाइड (Alkaline sulphide) या पाइरोगैलाल (Pyrogallol) का घोल रहता है। सल्फाइड वाले चाँदीके घोल केशोंको हल्का भूरा रंग प्रदान करते हैं किन्तु पाइरोगैलाल वाले चाँदीके घोल बालोंको काला रंग देते हैं।

बिस्मथके यौगिक (Bismuth compounds) भी बहुत दिनोंसे केश-रंग में इस्तेमाल होते आ रहे हैं। इसके लिए साधारणतः बिस्मथ साइट्रेट पानी अलकोहल और ग्लिसरीन के सम्मिश्रणके साथ उपयुक्त होता है। एक केश रंग कोलेस्टेरल (Cholestrol), गंधक, और एलब्युमिन के मिश्रणसे भी बनता है। सीसे वाले केश-रंगोंकी भाँति ही बिस्मथ वाले रंगोंकी भी प्रक्रिया केशों पर होती है और बिस्मथ सल्फाइडकी एक काली पर्त केशों पर जम जाती है। कोलेस्टेरल और एलब्युमिनका इस प्रक्रिया में क्या भाग रहता है इस सम्बन्ध में कई विचार रखे गये, किन्तु अभी तक ऐसा कोई प्रमाण प्राप्त नहीं हो सका है जिससे इनका प्रक्रिया में भाग लेना सिद्ध हो सकता। निकिल, कोबल्ट, लोहा, मैंगनीज और ताँबेके यौगिकोंसे बने केशरंगोंकी चर्चा प्राचीन ग्रंथों में पाई जाती है। किन्तु इन धातुओंसे बने केशरंग साधारणतः प्रचलित नहीं हैं। इनका उपयोग मेंहदी तथा अन्य वानस्पतिक द्रव्यके साथ मिला कर भी किया जा सकता है; पाइरोगैलाल के साथ भी इन धातुओंके यौगिक केश रंग बनाने में व्यवहार में लाये जा सकते हैं। केश-रंगों में पाइरोगैलालके रहनेसे केशों पर अच्छा काला रंग चढ़ता है।

वानस्पतिक रंग

इस कक्षाके केश रंगों में मुख्य वानस्पतिक रंग यह हैं:— मेंहदी (Henna), अखरोट, और नील। कथा तथा कुछ अन्य टैनिन (Tannin) वाले पदार्थ भी थोड़ा बहुत व्यवहार में आते हैं। मेंहदीका रंगनेका गुण एक कार्बनिक पदार्थ (HydroxyNaphtha Quinone) के कारण है। मेंहदी में यह पदार्थ १ से १५ फी सदी तक रहता है। इसकी प्रक्रिया अम्लीय रंगोंकी भाँति होती है। अम्लकी उपस्थिति में इसका रंग हल्का पीला होता है, और यह केशोंको चटकीले नारंगी रंग में रंग देता है। खनिज दर्श वेधक (mordant) की उपस्थिति में रंग (shade) में काफी अन्तर आ जाता है। मेंहदीके इस्तेमाल करनेकी विधि यह है। लगभग पाँच औंस पत्तियोंके चूर्णको गरम पानीके साथ लेईके रूपमें कर लिया जाता है। इस लेईको बालोंमें लगभग १५ मिनट तक लगा रखनेके बाद पानीसे धो दिया जाता है। प्रायः बाजारमें बिकने वाले केशचूर्णमें मेंहदीके साथ कुछ अन्य पदार्थ भी मिले रहते हैं। इन पदार्थोंमें ताँबेके यौगिक, पाइरोगैलिक अम्ल तथा पैरा-फेनीलीन डाइअमीन (p-phenylene diamine) मुख्य हैं। इनके कारण रंग कुछ अधिक गहरा चढ़ता है। नील भी मेंहदीके साथ प्रायः व्यवहारकी जाती है। दो भाग नील और एक भाग मेंहदीके मिश्रणसे भूरा रंग प्राप्त होता है। नीलका अनुपात और अधिक बढ़ानेसे रंग और गहरा हो जाता है।

अखरोटका तना तथा उसकी पत्तियाँ भी केश रंगनेके कार्यमें आती हैं। इनका गुण भी मेंहदीकी ही भाँति है। अखरोट में हाइड्राक्सीनैफथाकुनोन (5-Hydroxynaph-

thaquinone) नामक रासायनिक पदार्थ रहता है जिसे जुग्लोन (Juglone) कहते हैं। अखरोटकी पत्तियों आदिके रंगनेका गुण इसी पदार्थके कारण है। यह बालोंको गहरे भूरे रंगमें रंगता है। इसका रंग धीरे धीरे कुछ समयमें चढ़ता है। अखरोटसे रंग प्राप्त करनेकी दो विधियाँ हैं। एक विधिमें अखरोटके तनेको छोटे छोटे टुकड़ोंमें काटकर पानीके साथ अच्छी प्रकार उबाला जाता है और उबालनेके बाद पानीको छानकर इस्तेमाल किया जाता है। दूसरी विधिमें अखरोटकी पत्तियोंके चूर्णको गरम पानीके साथ लेईके रूपमें कर के इस्तेमाल किया जाता है। अखरोटकी पत्तियोंके चूर्णके साथ मेंहदीकी पत्तियोंका चूर्ण भी मिलाया जा सकता है। अखरोटके तनेका पानीके साथ प्राप्त हुआ रस ताज़ा ही इस्तेमाल किया जाता है। रखनेसे वह खराब हो जाता है।

लागवुड (Logwood) को केश रंगनेके लिए इस्तेमाल करनेका बहुत प्रयत्न किया गया है किन्तु अकेले इसको इस्तेमाल करनेमें रंग अच्छा नहीं प्राप्त होता। सन्तोषजनक रंग प्राप्त करनेके लिए इसको स्टार्च, चेस्टनट या मेंहदीके मिश्रणके रूपमें व्यवहारमें लाया जाता है।

कैमोमाइल (Chamomile) फूल भी केश रंग प्राप्त करनेके लिए उपयोगमें आता है। इन फूलोंमें एक हलका रंग वाला पदार्थ रहता है जिसका नाम एपीजेनिन (Apigenin) है। यह फ्लैवोन (Flovone) वर्गका एक यौगिक है। फूलोंके चूर्णमें थोड़ी फुलर्स मिट्टी (Fullers' earth) या मिट्टी (Kaolin) मिलाकर गरम पानीके साथ लेईके रूपमें कर लिया जाता है। इस लेईका बालों पर लेप चढ़ाकर लगभग आध घंटा तक लगा रहने दिया जाता है। इसके बाद लेप निकालकर बालोंको पानीसे धो दिया जाता है। ऊपरके मिश्रणसे बालों पर चमकीला भूरा रंग चढ़ता है। यदि फूलोंमें मेंहदी या अखरोट का चूर्ण थोड़ा-सा मिला दिया जाय तो रंग अधिक गहरा प्राप्त होता है। कैमोमाइलके फूलोंका चूर्ण अधिकतर केश-धावन मुख-धावन के अर्थमें ही इस्तेमाल किया जाता है। बालोंको रंगनेके लिए बहुत ही कम उपयोगमें आता है।

ओषदीकरणसे प्राप्त रंग इस तीसरी कक्षामें वे सब कार्बनिक रंग हैं जो प्रयोगशालामें संश्लेषित किये जाते हैं। सन् १८८८ में अर्डमैन (Erdmann) ने पैरा-फिनाइलीन डाइअमीन (p. phenylene diamine) नामक कार्बनिक पदार्थका प्रयोग केशोंकी रंगाईके लिये प्रथम बार किया। इसी समयसे इस दिशामें विशेष उन्नति प्रारम्भ हुई। सन् १८८८ के बादसे बहुतसे पदार्थ लोगों ने भिन्न-भिन्न नामोंसे पेटेन्ट कराये। इन पदार्थोंको बनानेवाले लोगोंने इनके संबंधमें विशेष विशेष गुण बतलाये। पैरा-फिनाइलीन-डाइ-अमीनमें एक दोष यह होता है कि त्वचा पर जलन (Irritation) पैदा करता है। इसी कारण इसका उपयोग केश रंगनेके लिये अच्छा नहीं समझा जाता। अन्य पदार्थ, जो लोगोंने पेटेन्ट कराये, उनके सम्बन्धमें यह दावा किया गया कि उनमें जलन उत्पन्न करनेवाला दोष नहीं है। इन पेटेन्ट रंगोंमें साधारणतः दो चीज़ें रहती हैं—

(१) रंगवाले पदार्थका क्षारमें बना घोल जिसमें साबुन और कोई इत्र भी मिला रहता है।

(२) हाइड्रोजन-पराक्साइडका घोल या यूरिया-पराक्साइडकी टिकियाँ। व्यवहार करते समय इन दोनों घोलों को तुरन्त मिलाकर एक ब्रुश द्वारा अच्छी प्रकार साफ़ किये गये बाल पर लगा दिया जाता है। क्षारीय घोलमें पैरा-फिनाइलीन डाइ अमीनका ओषदीकरण होता है, और बैन-ड्राउस्की (Bandrawski) नामक पदार्थ बनता है। वह फिर संघठित होकर संकीर्ण ऐज़ाइन (Azine) बनाता है जो बालोंके रेशों पर जम जाता है।

जब पैरा-फिनाइलीन-डाइ-अमीन अकेला ही उपयोगमें लाया जाता है तो केवल कुछ थोड़ेसे रंग ही बालों पर उत्पन्न किये जा सकते हैं—हलका भूरा, हल्का स्लेटी, और काला। पदार्थका अपव्यय भी काफी होता है। अधिक प्रकारके रंग प्राप्त करनेके लिये तथा सुनहरा (Aubern) और गहरा भूरा रंग प्राप्त करनेके लिये पैरा-फिनाइलीन-डाइ अमीनके साथ एक डाइ-हाइड्रिक-फीनोल (Dihydric Phenol) मिला दिया जाता है। डाइहाइड्रिक फीनोलमें साधारणतः रिसार्सिनाल (Resorcinol) या कैटीचाल (Catechol) उपयोगमें लाया जाता है। किन्तु अन्य बहुतसे डाइ-हाइड्रिक फीनोल भी उपयोगमें लाये जा सकते हैं। फिनोलकी उपस्थितिमें रासायनिक प्रक्रिया दूसरी तरहसे होती है। बैनड्राउस्की

पदार्थ नहीं बनता। इसके स्थानमें लाल या भूरे रंगके इंडो-फीनोल बनते हैं। यह इंडो-फीनोल पुनः संगठित होकर बालों पर ऑक्साजोन्स (oxazones) बनाते हैं, और तरह-तरहके सुन्दर रंग उत्पन्न करते हैं।

इन मिश्रणोंकी लोकप्रियता बहुत अधिक है। अनुमान किया जाता है कि केवल यूरुपके एक देशमें इसके लगभग १०० लाख पैकेट प्रतिवर्ष बिक जाते हैं। केशोंके रंगके रूपमें उपयोग करनेमें पैरा-फिनाइलीन डाइ अमीनमें एक दोष भी है। वह यह कि यह कुछ अधिक कोमल-प्रकृति लोगोंमें चर्म रोग (Dermatitis) उत्पन्न करता है। इसी कारण इसे विषकी कक्षामें रक्खा जाता है। पैरा-फिनाइलीन डाइअमीनके मिथाइल व इथाइल यौगिक केश रंगनेके लिए अच्छे पदार्थ हैं लेकिन जहाँ तक ज्ञात हो सका है ये भी पैरा-फिनाइलीन डाइअमीनकी तुलना में कुछ कम जहरीले नहीं हैं।

केश रङ्गोंमें अमाइनोफीनोल (Aninophenols), अमाइनो-एनीसोल (Anino anisoles) और अमाइनो फेनीटोल (Aminophenetoles) भी व्यवहार में आते हैं। पैरा-अमाइनो फीनोल भी अच्छा भूरा रङ्ग उत्पन्न करता है। डाइ-अमाइनोफीनोल (2 : 4 Diaminophenol) भी केश-रङ्गोंके लिए उपयोगी है।

नाइट्रो-अमीन कक्षाके यौगिक भी प्रचुर मात्रामें बालोंके रङ्ग बनानेमें इस्तेमाल किये जाते हैं। नाइट्रो-अमीन में २-नाइट्रो ४-अमाइनो तथा २-अमाइनो ४-नाइट्रो फीनोल और नाइट्रो-पैरा-फिनाइलीन डाइअमीन (Nitro-p-phenylene diamine) अधिक व्यवहारमें आते हैं। बालोंके ऊपर इन पदार्थोंका ओषदीकारण किस प्रकार होता है, यह अभी तक ठीकसे ज्ञात नहीं हो सका है।

डाइफिनाइल (Diphenyle) के बहुतसे यौगिक भी केश-रंगोंमें काममें आते हैं। इनमें पैरा-अमाइनो-डाइ-फिनाइल अमीन (p-Amino-diphenylamine) पैरा-पैरा डाइ अमाइनो डाइफिनाइल अमीन (pp-Diami-nodiphenyl amine) और इनके अन्य डाइअमीन (Niphthalene diamine) मुख्य हैं। इन पदार्थोंमें डाइ हाइड्रिक फीनोलकी मात्रा मिलानेसे इच्छानुसार तरह तरह के रङ्ग उत्पन्न किये जा सकते हैं। बाजारमें बिकने वाले केश-रंगोंमें साधारणतः ऊपर बतलाये हुये कार्बनिक यौगिकोंके विभिन्न मिश्रण रहते हैं।

ऊपरके वर्णनसे यह भली भाँति स्पष्ट हो गया होगा कि विश्लेषणकी कोई ऐसी सरल विधि नहीं बतलाई जा सकती जो इन सब पदार्थोंके लिए ठीक हो। ऊपर बतलाये हुये पदार्थोंके अतिरिक्त केशरङ्गोंके मिश्रणोंमें कुछ अन्य पदार्थ भी रहते हैं—किसी भिगोने (Wetting) वाले पदार्थकी उचित मात्रा, अमोनिया, साबुन, इत्र, और कभी कभी ग्लिसरीन या तेल। अतः इनको जाँचने(Test) के पहले यह आवश्यक है कि इनके मिश्रणमें वर्तमान पदार्थों को अलग किया जाय। यदि मिश्रणके यौगिकों को अलग किये बिना पूरे मिश्रणका एक घोल बना कर जाँच आरम्भ की जायगी तो मिश्रणमें मौजूद यौगिकोंको मालूम करनेमें सफलता नहीं प्राप्त हो सकती, क्योंकि यदि मिश्रणमें कोई डाइ-अमीन और कोई डाइ-हाइड्रिक फीनोल मौजूद है तो ये दोनों घोलमें संयुक्त होकर भिन्न भिन्न पदार्थ बनायेंगे और फिर प्रारम्भमें मौजूद पदार्थका मालूम करना कठिन हो जायगा। इसी कारण मिश्रणको घोलकर उन्हें उन जाँचों द्वारा देखना, जिनमें रङ्ग उत्पन्न होते हैं और उन्हींके आधार पर निष्कर्ष निकालना, कभी ठीक और विश्वसनीय नहीं हो सकता।

मिश्रणके पदार्थोंको अलग करनेमें सफलता मिलना घोलकके ठीक चुनाव पर निर्भर करता है। पेट्रोलियम अम्लीय मिश्रणमें से चर्बी या वसा अलग कर देता है। इसके बाद ईथर मिलानेसे अधिकांश डाइ-हाइड्रिक फीनोल उसमें घुलकर निकल जाते हैं। किसी साधारण अनोषदी-करण पदार्थ (Reducing agent) की उपस्थिति में कास्टिक पोटाश मिलानेसे डाइ-अमीन इसमें घुलकर निकल जाती है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न घोलकोंकी सहयतासे भिन्न-भिन्न वर्गके पदार्थ अलग-अलग किये जा सकते हैं।

साधारण रूपसे वे रङ्ग जो कपड़ों के लिये उपयोगी होते हैं बालों को रँगनेमें अच्छे सिद्ध नहीं होते, क्योंकि बालोंका इन रङ्गोंके प्रति आकर्षण बहुत कम होता है।

बालोंके लिये व्यवहारमें आने वाले रङ्गोंके लिये यह आवश्यक है कि वे शुद्ध हों और उनमें कोई ऐसा पदार्थ न हो जिससे बाल या सिर की त्वचा पर कोई हानिकारक प्रभाव पड़ने की संभावना हो।

अबरक

"अबरक असाधारण महत्व का खनिज है और यह भारत के विभिन्न प्रान्तों तथा रियासतोंमें होता है। इस सम्बन्ध में हमें सम्पूर्ण भारतके हितोंका ध्यान रखते हुए ही नीति निर्धारित करनी चाहिये," ये शब्द अबरक-जांच-समितिकी- उस रिपोर्टमें आये हैं, जो भारत सरकार ने अक्टूबर, १९४४ में जस्टिस डी० ई० रयूबेनकी अध्यक्षतामें नियुक्त की थी। समितिके सदस्य श्री गुरुशरण लाल और श्री एम० मोहम्मद इस्माइल और सेक्रेट्री श्री आर० एच० प्रसाद थे।

अबरक के उत्पादक के रूप में भारत

अबरकके उत्पादकके रूपमें भारतका महत्व इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि संसार भरमें ७० प्रतिशत कच्चा अबरक भारतसे आता है १९४०-४३ कालमें परिष्कृत प्रकारके अबरकके उत्पादनका औसत १,४०,०००से १,८५,००० हंडरवेटतक था।

भारतके अबरक-क्षेत्रोंमें बिहारका क्षेत्र सबसे पुराना और महत्वपूर्ण है। अबरककी सबसे उत्तम जाति जिसे बंगाल रूबी माइका कहा जाता है, अधिकांशमें बिहारकी खानोंसे आती रही है, जो हजारीबाग तथा गया जिलोंमें १९ से २० वर्ग मीलके क्षेत्रमें फैली हुई है। मद्रासका अबरक कुछ घटिया कोटिका होता हैं और युद्धके कालमें राजपूतानेमें अबरकका उत्पादन बढ़नेके परिणाम स्वरूप मद्रासका नम्बर अबरक उत्पादन क्षेत्रोंमें तीसरा हो गया है।

अबरकको परिष्कृत करनेकी क्रियाको तीन भागोंमें विभाजित किया जा सकता है: हंसिया द्वारा परिष्कार कक्षा-निर्धारण और छटायी। अबरक मुख्यत: तीन रूपोंमें बाहर भेजा जाता है: ढोकोंके रूपमें, परतके रूपमें और रद्दी अबरक।

बिहारमें अबरकका कारबार करनेके लिए लाइसेंस प्रणाली है और इसी लिए अबरक निकालने तथा उसका व्यापार करने दोनों ही के लिए लाइसेंस लेना पड़ता है। १९४४ में अबरक निकालनेके २३० तथा उसका व्यापार करनेके ५५० लाइसेंस बिहार में जारी थे।

अबरक के व्यापार का महत्व

अन्य देशोंके साथ भारतके व्यापारमें अबरक का कितना महत्वपूर्ण स्थान है यह इस बातसे प्रकट होता है कि १९४४ में इस देशसे २,७३,०१,४५८ रुपयेके अबरकका निर्यात हुआ था। युद्धकालमें अमरीका ने अबरकके जितने टुकड़े बाहरसे मंगाये थे उनका ८० से ९० प्रतिशत भाग भारत ने दिया था। भारतके लिए अमरीका अबरकका सबसे बड़ा खरीदार था। १९४३ में अमरीका ने भारतसे १,४२,४७,९६४ पौंड अबरकके टुकड़े मंगाये थे, जिनका मूल्य ३८,८८,०८१ डालर था। भारतका दूसरा महत्वपूर्ण खरीदार ब्रिटेन है, जो युद्धसे पूर्वके वर्षोंमें औसतन ४७,०९५ हंडरवेट अबरकके ढोके और टुकड़े प्रतिवर्ष मंगाता था और जिनके लिए वह ४५,६८'५६३ रुपयेका मूल्य चुकाता था।

अबरकको टुकड़ा करनेके उद्योगमें भारतको जो प्राधान्य प्राप्त है उसका कारण यह है कि एक तो यहाँ मजदूरी सस्ती है और दूसरे इन मजदूरों ने अपने कामका विशेष अनुभव प्राप्त कर लिया है। युद्धके दिनोंमें जंगी कामोंके लिए ब्राजीलके अबरकका अधिकाधिक उपयोग किया गया था। इस अबरकको टुकड़ोंके रूपमें परिणत करनेके लिए मेक्सिकोके सस्ते मजदूरोंका उपयोग किया जाता था। युद्ध समाप्त होनेके उपरान्त भी ब्राजील भारत की स्पर्धामें अबरकका उत्पादन करता रहेगा अथवा नहीं यह एक ऐसा प्रश्न है जिसके सम्बन्धमें समिति निश्चयात्मक रूपसे प्रकाश नहीं डाल सकती।

युद्धकालमें अबरककी गैर सैनिक मांगकी उपेक्षाकी गयी थी, परन्तु अब सम्भावना उत्पन्न हो गयी है कि अबरकके ढोकों तथा टुकड़ोंकी बहुत बड़ी मात्रामें गैर

सैनिक तथा पुनर्निर्माण सम्बन्धी कार्योंके लिए आवश्यकता पड़ेगी। चूंकि अबरकके उत्तम टुकड़ों तथा घटिया मालके लिए भारत ही एक मात्र उद्गम स्थान है, इस लिए निकट भविष्यमें भारतका यह व्यापार अधिक मात्रामें होनेकी सम्भावना नहीं है फिर भी हमें पहलेकी अपेक्षा ब्राजीलकी अधिक जोरदार स्पर्धाका सामना करनेके लिए तैयार रहना चाहिये। कहा जाता है कि रूससे भी अबरक मिल सकता है। यद्यपि अबरकका स्थान लेनेके लिए अभी तक कोई पदार्थ नहीं मिल सका है फिर भी इसके लिए अनुसंधान कार्य जारी हैं। रिपोर्टमें इस खतरेकी तरफ भी ध्यान आकर्षित किया गया है।

संरक्षण

रिपोर्टके अनुसार भारतमें अबरकके साधनोंके समाप्त हो जानेकी कोई आशंका नहीं है। यदि यह काम उचित ढंग पर किया जाय तो इन साधनोंका भविष्य बहुत अच्छा प्रतीत होता है। यह बताया गया है कि यदि अबरककी खानों को बहुत गहरायी तक और विस्तृत पैमाने पर खोदा गया तो राजपूतानमें उत्तम कोटिका अबरक प्राप्त होनेकी संभावना है। समितिने इस बात पर जोर दिया है कि संरक्षणके काममें वास्तविक खतरा अनुचित प्रकारके तरीकोंको काममें लानेसे है। भूमिके नीचेकी प्राकृतिक अवस्थाकी जांच-पड़ताल लाभदायक हो सकती है, परन्तु इस उद्योगकी भावी उन्नतिके लिए, हमें उन लोगोंकी सहायता की भी आवश्यकता है, जिन्हें इस विषयकी ट्रेनिंग नहीं मिली है। उन पर बहुतसे प्रतिबन्ध लगाकर उन्हें इस काम से निरुत्साह नहीं करना चहिये। रिपोर्टमें इस बात पर जोर दिया गया है कि गहरी खानोंमें क्रमबद्ध खुदायीको अनिवार्य बना देना चाहियें। रिपोर्टमें यह सिफारिश भी की गयी है कि भारतीय खनिजको परित्यक्त खानों और भावी खानोंके आवश्यक आंकड़े भी रखने चाहिए। यह सुझाव उपस्थित किया गया है कि अबरक खान निरीक्षण शाखा द्वारा खनिकोंको टेक्निकल सहायता देनेकी व्यवस्था की जा सकती है और खानोंमें योग्यता प्राप्त मैनेजरोंकी नियुक्ति अनिवार्य कर दी जाय। खानोंको समय से पूर्व बन्द कर देनेके परिणाम स्वरूप होने वाली हानिसे बचनेके लिए वैधानिक रूपसे यह नियम बनाया जा सकता है कि उस खानको छोड़ कर, जिसे अबरक खानोंके प्रधान निरीक्षककी अनुमतिसे बन्द किया गया हो—अन्य खानोंमें ऐसा मार्ग खुला रखना चाहिये, जो खानोंके नीचे उस केन्द्र तक पहुँचता हो जहां गहरी खुदायीकी गयी हो।

समिति ने अबरककी खानोंके लिए एक पृथक् निरीक्षण शाखा स्थापित करने और अबरक का कम गहरी अथवा उन खानोंको छोड़ कर जिनमें २० या उससे काम मजदूर काम करते हों—शेष सभी खानों लिए खान सम्बन्धी कानूनको लागू करनेका प्रस्ताव रखा है। समितिने खान सम्बन्धी कानूनके अन्तर्गत पेचीदा नियमोंकी जांच पड़ताल और उनके संशोधन तथा छोटी खानोंके सम्बन्धमें उनमें नरमी करनेकी सिफारिशकी है।

खान सम्बन्धी अधिकारों और सरकारी तथा निजी भूमियोंमें खानक्षेत्रोंको पट्टे पर देनेके सम्बन्धमें विचार करते हुए समितिने कहा है कि अबरकके संरक्षणकी दृष्टि से खानिक पर चाहे वह मालिक हो अथवा उसे खान पट्टे पर दी गयी हो तथा सरकारके ऊपर चाहे उसे खान सम्बन्धी अधिकार हो अथवा न हो, नियन्त्रण अवश्य रहना चाहिये।

पिसा अबरक

अबरकके रद्दी और छोटे-छोटे टुकड़ोंको पीसकर उनसे अग्नि-निरोधका काम लिया जाता है। दीवारका कागज, रंग और रबड़के उद्योग और टायरोंकी लचक बढ़ानेमें चिकने पदार्थके रूपमें भी इसका उपयोग होता है। विभिन्न उद्योगोंमें पिसे अबरकके और भी कितने ही उपयोग हैं। रिपोर्ट में बताया गया है कि इस देश में पिसे अबरकका बहुत कम उपयोग होता है किन्तु बाहरसे मंगाया बहुत जाता है। सिर्फ १९४०–४३ में अमेरिकासे लगभग १,७५,००० पौंड पिसे अबरकका आयात हुआ था।

समिति ने अनेकों विशेषज्ञोंके उन वक्तव्योंका उल्लेख किया है जिसमें कहा गया है कि रद्दी अबरकसे ब्वाएलरों के लिए तापनिरोधक अबरक बनाये जा सकते हैं और मकानोंके निर्माणमें भी इनका उपयोग हो सकता है। समितिकी इच्छा है कि न केवल अबरकको उपयोग करनेके नये तरीकोंसे सम्बन्ध रखने वाले मौलिक शोधके विषयमें छानबीन होनी चाहिये बल्कि इस सम्बन्धमें भी कि विदेशों में किन किन कामोंके लिए उपयोग होता है। इस सम्बन्ध में रिपोर्टमें इस बात पर जोर दिया गया है कि बिजलीके इंजीनियरोंको अबरक उत्पादकोंका सहयोग करनेको प्रोत्साहित करनेके लिए प्रचार किया जाना चाहिये।

नाड़ी-संस्थान

ले०—श्रीमती नीरा

हमारे शरीरमें नाड़ी-संस्थानका एक विशेष स्थान है। हमारा नाड़ी-संस्थान हमारे शरीरके सब अंगोंकी क्रियाओं पर नियंत्रण रखता है। यदि किसी अंग की नाड़ियाँ चोट, रोग या अन्य किसी कारण से शिथिल पड़ जायँ और अपना कार्य न करें तो वह अंग एकदम निर्जीव सा हो जाय और कोई भी काम न कर सके।

नाड़ी-संस्थानकी उपमा किसी शहरमें फैले हुए तारोंके जालसे दी जा सकती है। जिस प्रकार शहर में फैले हुये तारोंका एक केन्द्र स्थान होता है जहाँ शहर के विभिन्न भागोंसे समाचार आते हैं और जहाँसे दूसरे स्थानों पर समाचार भेजे जाते हैं, उसी प्रकार शरीरमें विभिन्न अंगोंके समाचार नाड़ियों द्वारा मास्तिस्कमें पहुँचते हैं और मस्तिष्क अपने आदेशों को इसी प्रकारकी नाड़ियों द्वारा शरीरके अंगोंको भेजता है। इस प्रकार मस्तिष्क शरीरमें तारघरके समान समाचार प्राप्त करने और भेजनेका कार्य करता है।

नाड़ी-संस्थानमें सूत्रके समान नाड़ियाँ एक प्रधान केन्द्रसे निकलकर समस्त शरीरमें जालके रूपमें फैली हुई हैं। इन नाड़ियों द्वारा शरीरके विभिन्न अंगोंका सम्बन्ध नाड़ी-संस्थानके केन्द्रसे स्थापित रहता है। नाड़ियाँ दो प्रकारकी होती हैं—ज्ञानवाही (Sensory or Afferent) और गतिवाही (Motor or Efferent)। ज्ञानवाही नाड़ियाँ वे हैं जो इन्द्रियोंसे अनुभवका ज्ञान प्राप्त कर केन्द्र तक पहुँचाती हैं। गतिवाही नाड़ियाँ वे हैं जो केन्द्रके आदेशोंको इन्द्रियों तक पहुँचाती हैं।

नाड़ी-संस्थान के विभाग

नाड़ी-संस्थानको तीन भागोंमें विभाजित किया जाता है—(१) परिधीय नाड़ी मंडल (Peripheral nervous system), (२) केन्द्रीय नाड़ी मंडल (Central nervous system) तथा स्वतंत्र नाड़ी मंडल (Autonomic nervous system)।

परिधीय नाड़ी मंडल

यह नाड़ी मंडल ज्ञानवाही और गतिवाही नाड़ियोंसे बना हुआ है। इन नाड़ियोंका सम्बन्ध एक ओर तो शरीरकी विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों तथा मासपेशियोंसे और दूसरी ओर सुषुम्ना या मस्तिष्कसे रहता है।

नाड़ियाँ नाड़ी-सेलों और नाड़ी सूत्रों से मिलकर बनती हैं। नाड़ीसेलें मस्तिष्क, सुषुम्ना और नाड़ियोंके स्थान-स्थान पर फूले हुये भागोंमें रहती हैं। मुख्य नाड़ियाँ तथा उनकी शाखायें मुख्यतः नाड़ी-सूत्रोंसे ही बनी रहती हैं। वास्तवमें नाड़ी-सूत्र नाड़ी-सेलोंके ही भाग हैं जो नाड़ी-सेलोंसे ही निकल कर शरीरके सब अंगोंमें तारके समान फैले रहते हैं।

नाड़ी-सेलों के मध्यमें एक मुख्य केन्द्र होता है और उसमेंसे चारों ओर शाखायें निकलती हैं। इनमेंसे एक शाखा सबसे मोटी और लम्बी होती है तथा सेलकी धुरीके स्थान पर मानी जाती है। वह अक्षतन्तु (Axon) कहलाती है। शेष छोटी शाखायें विभाजित होकर बहुत सी महीन शाखाओंमें बँट जाती हैं। छोटी छोटी शाखाओंका यह समूह डेन्ड्राइटिस (Dendritis) कहलाता है। मस्तिष्क और सुषुम्नामें एक सेलके अक्षतन्तुके सिरे दूसरे सेलके डेन्ड्राइटिसकी शाखाओंसे उलझे रहते हैं। इन स्थानोंको, जहाँ ये दोनों उलझे रहते हैं, साइनाप्स (Synopse) कहते हैं। हमारे अनुभवका धारा प्रवाह नाड़ी-सूत्रसे होता हुआ मस्तिष्क या सुषुम्नामें स्थित नाड़ी-सेल तक पहुँचता है। यहाँ ज्ञानसेलसे इस धाराको गतिसेलमें पहुँचना होता है। अतः ज्ञानसेलके अक्षतन्तुसे यह धारा बाहर प्रवाहित होकर गतिसेलके डेन्ड्राइटिसकी ओर बढ़ती है। किस डेन्ड्राइटिस द्वारा इसे अन्दर प्रवेश करना है वह मस्तिष्क या सुषुम्ना निश्चित करते हैं। एक बार जिस डेन्ड्राइटिससे होकर यह धारा प्रवाहित होती है दुबारा उसी अनुभवके प्राप्त होने पर स्वभावतः अपने पुराने मार्गसे प्रवाहित हो जाती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रथम बार किसी कार्यको करनेमें देर क्यों लगती है और बादमें वह क्यों सरलता पूर्वक किया जा सकता है।

केन्द्रीय नाड़ी मंडल

तारोंके समान समस्त शरीरमें फैले हुए परिधीय नाड़ी मंडलके नियंत्रणका कार्य तारघरके समान केन्द्रीय नाड़ी मंडल करता है। इस नाड़ी मंडलके दो मुख्य अंग हैं—मस्तिष्क और सुषुम्ना।

मस्तिष्क

मस्तिष्ककी उपमा हम एक फैक्टरीके इंजीनियरसे दे

सकते हैं। जिस प्रकार फैक्टरीके विभिन्न विभागोंके कामोंमें सामञ्जस्यता स्थापित करनेके लिए एक इञ्जीनियर होता है, उसी प्रकार हमारे शरीर के विभिन्न अंगोंके कार्योंमें सामञ्जस्यता लानेके लिए मस्तिष्क है। हमारे सब कार्य मस्तिष्क द्वारा ही नियंत्रित होते हैं। आँखों पर तीव्र प्रकाश पड़ते ही हम आँखें बन्द कर लेते हैं या उन्हें हाथसे ढक लेते हैं। प्रकाश अनुभव करनेकी क्रिया तथा उसके अनुसार आँखें बन्द करने या हाथ आँखोंके सामने ले जाने की क्रिया किस शक्ति द्वारा संचालित होती है? हमारे शरीरमें मस्तिष्ककी चेतन शक्ति (मन) ही वह शक्ति है जो हमारी नाड़ियों द्वारा बाह्य वस्तुओंका ज्ञान प्राप्त करती है और उन्हींके अनुसार शरीरके विभिन्न अंगोंको कार्य करनेके लिए प्रेरित करती है।

है। इसमें रक्त केशिकाओंका जाल बिछा रहता है जिनसे मस्तिष्कको भोजन प्राप्त होता है। दोनों झिल्लियों के बीच में एक रहता है जो बाहरी चोटों व धक्कोंसे मस्तिष्ककी रक्षा करनेमें सहायक होता है।

मस्तिष्कका भीतरी भाग जो गूदे या मज्जाके समान होता है, दो प्रकारके पदार्थोंसे बना है। मध्यमें श्वेत रंगका पदार्थ होता है और उसके चारों ओर भूरे पदार्थकी पर्त रहती है। भूरे पदार्थकी सतहमें खूब झुर्रियाँ सी, पड़ी रहती हैं। जैसे जैसे हम मस्तिष्कसे काम लेते हैं उसकी ऊपरी सतह पर गहरी रेखायें पड़ती रहती हैं। इन रेखाओंके स्थान पर मस्तिष्क कुछ नीचा हो जाता है और शेष भाग ऊँचा हो जाता है। इसी कारण समस्त सतह पर झुर्रियाँ मालूम पड़ती हैं। बुद्धिमान मनुष्यमें यह रेखाये
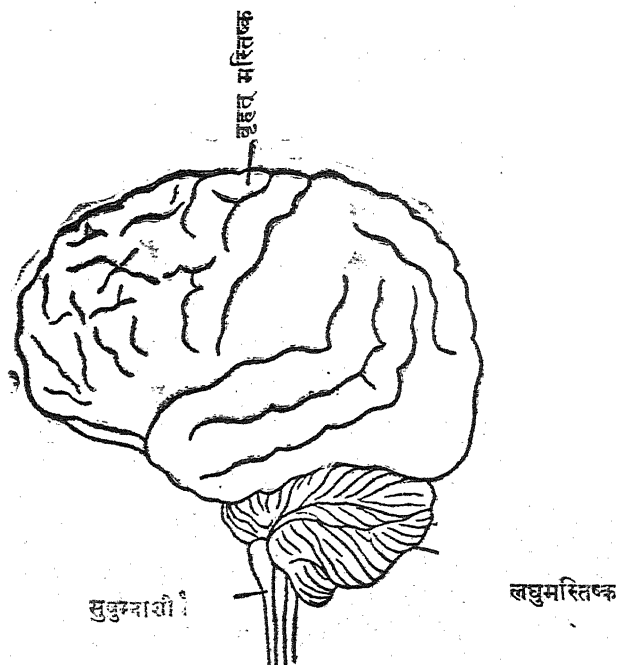
चित्र १—मनुष्य का मस्तिष्क

हमारा मस्तिष्क खोपड़ीकी मजबूत हड्डियोंसे बने किलेमें, जो मस्तिष्क-घर (Cranium) कहलाता है, सुरक्षित रहता है। मस्तिष्क दो झिल्लियोंसे घिरा रहता है। बाहरकी झिल्ली डूरामेटर (Duramater) कहलाती है। यह कुछ कड़ी और मोटी होती है। अन्दरकी पतली और कोमल झिल्ली पायामेटर (Piamater) कहलाती

अधिक गहरी और संख्यामें भी बहुत अधिक होती हैं।

मस्तिष्कके मुख्य तीन भाग होते हैं—बृहत मस्तिष्क (Cerebrum), लघु मस्तिष्क (Cerebellum) तथा सुषुम्नाशीर्ष (Medulla Oblangata)।

बृहत् मस्तिष्क—मस्तिष्कका ऊपरी भाग बृहत् मस्तिष्क कहलाता है। यह समस्त मस्तिष्कका लगभग

ई भाग होता है।

बृहत् मस्तिष्क दरारके समान एक गहरी रेखा द्वारा दो बराबर भागोंमें बँटा रहता है। ये भाग दायाँ गोलार्द्ध और बायाँ गोलार्द्ध कहलाते हैं। ये दोनों गोलार्द्ध अनेक छोटे छोटे अंगोंमें विभाजित रहते हैं। प्रत्येक खंड शरीरके किसी एक अंग विशेषसे संबंधित रहता है और उसके सब चेतन कार्योंको संचालित करता तथा अपने नियंत्रणमें रखता है। मस्तिष्कके खंडों और शरीरके अंगोंका सम्बन्ध नाड़ियों द्वारा ही स्थापित रहता है। यदि बृहत् मस्तिष्कका कोई खंड विशेष चोट या रोग के फलस्वरूप शिथिल पड़ जाय तो उससे सम्बन्धित अंग भी कोई कार्य न कर सके। यह मस्तिष्क का सबसे महत्व पूर्ण भाग है चेतनशक्ति मस्तिष्कके इसी भागमें उत्पन्न होती है। पिछली बातोंको स्मरण रखने की शक्ति तथा हर एक चीजका पूर्ण ज्ञान भी इसी भागमें केन्द्रित रहता है। हमारे सब चेतन कार्य इसी के द्वारा संचालित होते हैं। बृहत् मस्तिष्क मस्तिष्कके अन्य भागोंके कार्यों पर भी नियंत्रण रखता है। हम अपने प्रति दिनके जीवनमें तरह-तरहकी चीजें देखते हैं और बातें सुनते हैं, और उनके अनुसार मनमें तरह-तरहके कार्य करने की इच्छायें उत्पन्न होती हैं। किन्तु इन इच्छाओं पर नियंत्रण रखकर बृहत मस्तिष्क उन सब ही इच्छाओं-को कार्य रूपमें परिणित नहीं होने देता। बृहत् मस्तिष्ककी यह नियंत्रण शक्ति बहुत महत्वकी है। इसके अभावमें हमें कोई भी बुरा से बुरा काम करनेमें हिचक नहीं होती। शराब या अन्य मादक चीजोंके नशेकी दशामें ऐसा ही होता है। उस समय बृहत मस्तिष्क शिथिल पड़ जाता है। इसी कारण शराबी मनुष्यमें अपने कार्योंके अच्छे या बुरे प्रभाव को समझनेकी शक्ति नहीं रह जाती।

बृहत्-मस्तिष्कमें जब किसी प्रकारकी चोट लग जाती है या किसी रोगके कारण उसकी शक्ति क्षीण हो जाती है तब हमारी चेतन शक्ति लुप्त हो जाती है। इसी अवस्था को अचेतनावस्था या मूर्छावस्था कहते हैं। ऐसी दशामें हमारे शरीरके अन्य अंग भी निर्जीव पड़ जाते हैं और कोई कार्य नहीं कर सकते।

लघु मस्तिष्क—लघु मस्तिष्क बृहत्-मस्तिष्कके नीचे स्थित है और उससे तथा मेडुला ओबलाँगाटा से जुड़ा हुआ है। हमारे शरीरकी गतियोंको यही संचालित करता है और उनमें सामञ्जस्य रखता है। चलना-फिरना, श्वास लेना आदि जितने भी ऐसे कार्य हैं जिन पर चेतन रूपसे ध्यान देनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती, उनपर लघु मस्तिष्क ही का नियंत्रण रहता है। जब कभी कारण वश इन कार्यों पर भी ध्यान देनेकी आवश्यकता पड़ती है तब बृहत्-मस्तिष्क ही लघुमस्तिष्ककी सहायता करता है। इसके अतिरिक्त शरीरका समतुलन बनाये रखना भी लघु मस्तिष्क का ही काम है। दौड़ते समय यदि शरीरका एक भाग एक तरफ झुकता है तो तुरन्त लघुमस्तिष्क अपने प्रभावसे पुनः शरीरमें समतुलन ला देता है और शरीरको गिरने से बचा लेता है। जब गतिसम्बन्धी कोई आदेश बृहत् मस्तिष्क शरीरके किसी अंगको देता है तो साथ ही लघुमस्तिष्कको भी उसकी सूचना मिल जाती है। तब वह सतर्क होकर उस क्रियाके समय शरीरका समतुलन बनाये रखनेको तैयार हो जाता है।

लघु मस्तिष्कमें कुछ ऐसे नाड़ी सूत्र होते हैं जिनके सिरे कानकी अर्द्धचन्द्रकार नली के तरल द्रव्यमें उतराते रहते हैं। इनका शरीर के समतुलन से गहरा सम्बन्ध रहता है। जब इनमें किसी प्रकारकी चोट पहुँचती है। तब हमें चक्करसे आने लगते हैं और हम शरीरका समतुलन रखनेमें कठिनाई अनुभव करने लगते हैं। चोट अधिक होनेसे मूर्छा भी आ जाती है।

सुषुम्नाशीर्ष—यह वास्तवमें सुषुम्नाका सबसे ऊपरी सिरा है। यह सूक्ष्म नाड़ियों द्वारा बृहत् व लघु मस्तिष्क, सुषुम्ना तथा शरीर के अन्य अंगोंसे सम्बन्धित है। इसीके द्वारा सुषुम्नाकी सूचनायें मस्तिष्क तक पहुँचती हैं और मस्तिष्ककी सुषुम्ना तक। यह शरीरके उन कार्योंमें सामञ्जस्यता लाता है जो इच्छा शक्तिके अधीन नहीं रहते। हृदयके संकोचन और विमोचनकी क्रिया, श्वासोच्छ्वास क्रिया तथा पाचनक्रिया आदि इच्छा शक्तिकी परिधिके बाहरकी क्रियायें हैं और सुषुम्नाशीर्ष द्वारा संचालित होती हैं। बृहत्मस्तिष्क इसके काममें कोई विशेष हस्तक्षेप नहीं करता। कभी कभी विशेष आवश्यकता पड़ने पर यह अवश्य इसके कामों पर नियन्त्रण करता है। किसी दुर्गन्धियुक्त स्थानमें साँस रोकनेकी क्रिया

सुषुम्नाशीष आदेशसे नहीं रुकती वरन् वृहत् मस्तिष्कके आदेशसे रुकती है। सुषुम्नाशीर्ष शरीरकी भीतरी क्रियाओंको संचालित तो करती है पर इसमें चेतन शक्ति नहीं है जो परिस्थितियोंके अनुसार कार्य कर सके। अतः ऐसी परिस्थितियोंमें वृहत् मस्तिष्क आदेश देकर परिस्थितिके अनुसार कार्य करवाता है। शरीर के निरन्तर कार्य करने वाले मुख्य अङ्गों हृदय और फेफड़े का संचालन भी सुषुम्ना-शीर्ष करता है, अतः यह जीवन के लिये बहुत ही आवश्यक अंग है। इसमें किसी भी प्रकार की चोट पहुँचना मृतक प्रभाव डालता है।

सुषुम्ना

सुषुम्ना रीढ़ की हड्डी के अन्दर सुरक्षित रूप से स्थित है।

सुषुम्ना का आकार कुछ-कुछ बेलनाकार और रस्सी के सदृश्य होता है। वह भी मस्तिष्क की भाँति भूरे और श्वेतपदार्थ से बना है, किन्तु इसमें भूरा पदार्थ अन्दर और श्वेत पदार्थ बाहर की ओर रहता है। सुषुम्ना में अन्दर स्थित नाड़ी सेलों से ३१ जोड़ी नाड़ियाँ निकलती हैं। प्रत्येक नाड़ी की सुषुम्ना में दो जड़ें होती हैं, एक वहाँ समाचार लाने वाली (ज्ञानवाही) और दूसरी वहाँ से समाचार ले जाने वाली (गति वाही)। सुषुम्ना से बाहर निकलने के तुरन्त बाद ही दोनों सिरे मिल जाते हैं। देखने में यह एक नाड़ी हो जाती है लेकिन इसमें ज्ञानवाही तथा गतिवाही सूत्र बराबर अलग रहते हैं और अलग अलग अपना काम भी करते हैं। आगे बढ़ कर ये नाड़ियाँ विभाजित होती हुई समस्त शरीर में फैल कर एक जाल-सा बिछा देती हैं। सुषुम्ना से निकलने वाली ये नाड़ियाँ मस्तिष्क को छोड़ कर शरीर के शेष सब भागों पर नियंत्रण रखती है। वृहत् मस्तिष्क यों तो सुषुम्ना को स्वतंत्र रूप से भी कार्य करने देता है पर परिस्थिति के अनुसार सुषुम्ना के कार्यों को भी संचालित करता है।

जब हमारी ज्ञानवाही नाड़ियाँ किसी बाह्य वस्तु के अनुभव का समाचार सुषुम्ना तक पहुँचाती हैं तब सुषुम्ना तुरन्त उस समाचार को वृहत् मस्तिष्क के पास भेज देता है मस्तिष्क गतिवाही नाड़ियों द्वारा अनुकूल आदेश हमारी इन्द्रियों तक भेजता है। किन्तु कुछ ऐसे भी आवश्यक काम आ पड़ते हैं जिनमें सुषुम्ना मस्तिष्क के आदेश की प्रतीक्षा न करके स्वयं ही गतिवाही नाड़ियों द्वारा अनुकूल आदेश दे देता है। जिस समय पैर में काँटा चुभता है और उसका समाचार ज्ञानवाही नाड़ियों द्वारा सुषुम्ना को मिलता है, वह तुरन्त गतिवाही नाड़ियों द्वारा पैर की माँसपेशियों तक अपना आदेश पहुँचाता है और हम अपना पैर हटा लेते हैं। इस आदेश को पैर के पास पहुँचाने के साथ साथ सुषुम्ना मस्तिष्क तक भी काँटा चुभने का समाचार भेज देता है। सुषुम्ना के आदेश से तो हम यंत्रचालित की भाँति अपना पैर ही हटाते हैं और कुछ अनुभव नहीं करते। किन्तु मस्तिष्क में इसका समाचार पहुँचने पर हमें वास्तव में यह ज्ञान होता है कि हमारे पैर में काँटा चुभा है और मस्तिष्क के आदेश से ही हम उसे निकालने के लिए हाथ बढ़ाते हैं। ये सब क्रियायें इतनी शीघ्र होती हैं कि हमें इनका कुछ अभास ही नहीं मिलता। काँटा चुभते ही हम पैर हटाते और साथ ही उसे दूर करने का विचार करके हाथ बढ़ाते हैं। हम यह नहीं जान पाते हैं कि पल भर के बीच में हमारे शरीर में क्या क्या क्रियायें हुई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कुछ आवश्यक क्रियाओं में सुषुम्ना स्वयं भी आदेश दे देता है। दैनिक जीवन के बहुत से कामों को जिन्हें हम साधारणतः आदतों में सम्मिलित करते हैं सुषुम्ना ही संचालित करता है। इसके अतिरिक्त सुषुम्ना शरीर के विभिन्न अंगों और मस्तिष्क के बीच भी सम्बन्ध स्थापित करता है।

स्वतंत्र नाड़ी मंडल

सुषुम्नाशीर्ष के निचले भाग से दो पतली-पतली भूरे रंग की नाड़ियाँ निकलती हैं। ये दोनों नाड़ियाँ बहुत ही कोमल होती हैं और रीढ़ की हड्डी के समानान्तर दोनों ओर एक-एक हैं। ये दोनों नाड़ियाँ सिम्पैथेटिक (Sympathetic) नाड़ियाँ कहलाती हैं। इन में से अनेकों सूक्ष्म शाखायें निकल कर शरीर के सब भीतरी अङ्गों में जाती हैं और उनके कार्यों का नियंत्रण करती हैं।

सिम्पैथेटिक नाड़ियों में स्थान स्थान पर फूले हुये गोल स्थान होते हैं। इन गोल स्थानों को गंड (Ganaglion)

सर जेम्स जीन्स

[ले०—श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव]

सर जेम्स हॉपउड जीन्सका जन्म ११ सितम्बर सन् १८७७ ई० में हुआ था। आप बड़े प्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता, उच्चकोटिके ज्योतिर्विद् तथा विचारक थे। दुःख है कि आपकी मृत्यु गत १७ सितम्बरको ६९ वर्षकी अवस्थामें हो गयी। यह और भी दुःखकी बात है कि गत दो वर्षों में इंगलैंडके दो प्रमुख ज्योतिर्विद् और गणिताचार्य कराल कालके गालमें चले गये। इनमेंसे प्रथम थे सर आर्थर एडिंगटन।

आपने इङ्गलैंडके प्रसिद्ध विश्व-विद्यालय केम्ब्रिज के ट्रिनिटी कालेजमें शिक्षा पायी थी और सन् १८९८ ई० में उसके द्वितीय रेंगलर (गणितके सर्वोच्च उपाधिधारी) हुए। १९०० ई० में आपको स्मिथ पारितोषिक मिला। १९०५ से १९१० ई० तक आपने संयुक्तराज्य अमेरिकाके प्रिन्स्टन विश्व विद्यालयके व्यावहारिक गणितके अध्यापकके पदको सुशोभित किया। आपका सबसे पहला निबन्ध १९०४ ई० में प्रकाशित हुआ जिसका शीर्षक था गैसोंका गतिविज्ञान सम्बन्धी विचार (Dynamical theory of gases)। केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में आपको सर ऐज़क निउटन छात्रवृत्ति सन् १९०१ ई० में प्राप्त हुई जहाँ आप सर जार्ज डार्विनके प्रमुख शिष्य हुए। सर जार्ज डार्विन प्रसिद्ध डार्विन के पुत्र थे जिनका नाम वैज्ञानिक-संसारमें डार्विन सिद्धान्त के कारण अमर हो गया है। सर जार्ज डार्विन एक प्रसिद्ध गणितज्ञ थे और उन्होंने समुद्रके ज्वार-भाटा और ग्रहोंके आकारके सम्बन्धमें विशेष अध्ययन किया था। १९०१ में इन्होंने फ्रांसके प्रसिद्ध गणितज्ञ प्वाइंकारके सहयोगसे दो बहुत ही रोचक निबन्ध लिखे जिनमें इस विषय पर विचार किया गया था कि जब तरल पदार्थों के पिंड घूर्णन करते हैं तब साम्यावस्था में उन पिंडों का आकार नासपातीके फलके सदृश हो जाता है जो, इनके विचारसे, उस समय भी स्थायी रहता है जब उनका घूर्णन अत्यन्त अधिक हो जाता है। परन्तु सर जेम्स जीन्सने जो उस समय केवल एक विद्यार्थी ही थे इसका विरोध किया और बतलाया कि पदार्थों की भौतिक दशा यथार्थमें ऐसी नहीं होती। इन्होंने सिद्ध किया कि घूर्णन की गति बढ़ने पर न दबने वाले पदार्थका पृष्ठ हल चले हुए खेतकी तरह विषम हो जाता है उनका आकार नासपातीके सदृश हो जाता है और उसके दो भाग हो जाते हैं। परन्तु घूर्णन करते हुए दब जाने वाली गैसों के पिंड घूर्णनकी गति तीव्र हो जाने पर फैल जाते हैं और बीच से दो भागों में बँट जाते हैं। जीन्सका अनुमान था कि निकटवर्ती युगल तारों (binary star) की रचना पहली तरह होती है और कुंडलीकार नीहारिका की रचना दूसरी तरह। बहुत सी नीहारिकाओंमें जो घूर्णन देख पड़ता है उसकी भी उपपत्ति इसी प्रकार समझायी गयी।

तत्वदर्शियों में कान्टका नाम प्रसिद्ध है। लाप्लास एक प्रसिद्ध गणितज्ञ और ज्योतिर्विद्

कहते हैं। शरीर के सब अनैच्छिक कार्य करने वाले अङ्गों से मस्तिष्क या सुषुम्ना की जो नाड़ियाँ सम्बन्धित हैं वे इन सिम्पैथेटिक नाड़ियों के गंडों से होकर ही जाती हैं। अतः मस्तिष्क का इन अनैच्छिक कार्य करने वाले अङ्गों (हृदय, फेफड़े यकृत आदि) पर नियंत्रण इन्ही के द्वारा होता है। शरीर का स्वास्थ्य, शरीर की वृद्धि तथा अंतःक्षोभों (Immotious) का उद्वेग आदि भी इसी नाड़ी मंडल पर बहुत अंशों में आश्रित हैं।

सहज क्रियायें

कुछ ज्ञाननाड़ियों और गतिनाड़ियों में जन्मजात सम्बन्ध भी होता है। इन ज्ञान नाड़ियों के उत्तेजित होते ही इनसे सम्बन्धित गति नाड़ियाँ अपना काम स्वयमेव करने लगती हैं। इस प्रकार की क्रियायें सहज क्रियायें कहलाती हैं। छींकना, खाँसना, आँखों की पलक गिरना आदि सहज क्रियायें हैं।

था। दोनोंने नीहारिकाओंके सम्बन्धमें एक मत स्थिर किया था जिस पर पीछेके वैज्ञानिकोंने बहुत विचार किया और उसकी सत्यता गणित से सिद्ध करने का प्रयत्न किया। सर जेम्स जीन्सने भी स्वभावतः इस पर विचार किया और इस परिणाम पर पहुँचे कि हमारे सौर परिवारके सम्बन्धमें तो यह मत शायद् लागू नहीं हो सकता।

जीन्सके इस मतके विरुद्ध दो आपत्तियाँ की जा सकती हैं। अमेरिकाके प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् रसलने गणितसे सिद्ध किया कि जीन्सकी लहर संबंधी मतके माननेमें एक कठिनाई तब पड़ती है जब हम पास से जानेवाले तारे, सूर्य और ग्रहोंके कोणात्मक वेगों (Angula momenta) पर विचार करते हैं। यदि वह तारा उसी आकार और द्रव्यमानका था जैसा हमारा सूर्य तो सूर्य से इसकी निकटतम दूरी दस लाख मीलसे बहुत अधिक न रही होगी। रसेलने गणित से सिद्ध किया कि ग्रहों के लिए मध्यम कोणात्मक वेग प्रति इकाई द्रव्य के लिए तारेके वेगकी अपेक्षा दस गुना होता है इसलिए यह अचिंत्य है कि पाससे जाने वाले तारेके कारण झटकेसे निकले हुए पिंडमें इतना वेग हो। दूसरी आपत्ति यह है कि स्थितिविज्ञानके अनुसार यह असम्भव है कि दो तारे एक दूसरेके इतने निकट आ जांय कि उनमें लहरें उत्पन्न हो जांय। ऐसी प्रलयकारी घटनाएं बहुत कम संभव हैं और यदि हमारे ग्रह इसी प्रकार उत्पन्न हुए हैं तो इसे प्रकृति की विचित्रता ही समझनी चाहिए और अरबों तारोंमें दो ही चार तारे ऐसे होंगे जिनमें ग्रहों की उत्पत्ति हुई होगी। परन्तु क्या ग्रहों की संख्या विश्वमें इतनी कम हो सकती है? इसलिए जीन्सका यह सिद्धान्त न तो सन्तोषजनक है और न तर्कसे ही ठीक जान पड़ता है।

सौभाग्यसे सर जीन्सने स्वयम् ही अपने पहले मत को सन् १९४२ में बदल दिया। इन्होंने कहा कि ऐसे बहुत से तारे हो सकते हैं जिनमें ग्रहों की उत्पत्ति हुई हो। जीन्स अब कहने लगे कि अरबों वर्ष पहले जब सूर्य सिकुड़ रहा था इसका आकार वर्तमान आकारका हजारों गुना रहा होगा, उस समय इसकी दशा नीहारिकाओंके सदृश रही होगी, उसी समय ग्रहोंकी उत्पत्ति हुई होगी। परन्तु इस मतके माननेमें भी कई आपत्तियाँ हैं जिनकी ओर हमारे प्रयाग विश्वविद्यालयके गणिताचार्य प्रो० ए० सी० बनर्जी ने ध्यान आकर्षित किया है।

जीन्सने नक्षत्र-भौतिक विज्ञान (Astrophysics) में भी बहुतसे आविष्कार किये। तारों के विकिरण की साम्यावस्था (equilibrium) के संबंधमें इनका और एडिंगटन का बहुत दिनों तक वादविवाद चलता रहा। नाक्षत्रिक गतिविज्ञान (Steller Dynamics) पर भी इन्होंने गवेषणाएं कीं। इस विज्ञानमें यह बतलाया जाता है कि दूसरे तारोंके आकर्षणके कारण तारोंकी निजी गतिमें क्या अंतर पड़ जाता है। जीन्सने गणना करके दिखा दिया कि दूसरे पिंडों के अचानक आगमनसे तारोंकी गतिमें कितना अंतर पड़ जाता है। इस प्रकार इन्होंने बतलाया कि कुछ चलते हुए नीहारिका गुच्छ किस प्रकार चपटे हो गये। ऐसे नीहारिका गुच्छ सप्तर्षि पुंजमें हैं।

सर जीन्स रायल ऐस्ट्रॉनामिकल सोसाइटीके सेक्रेट्री १९२५ से १९२७ रहे। १९३४ में यह ब्रिटिश एसोसिएशन फार ऐडवान्समेंट आफ सायन्सके सभापति रहे। सन् १९३५ से यह रायल इन्स्टीटयूशनके ज्योतिर्विज्ञानके अध्यापक रहे और लार्ड रथरफोर्डके एकाएक मर जाने पर इन्डियन सायन्स कांग्रेसके रजतजयन्ती के अवसर पर सभापति के आसन को कलकत्तेमें सुशोभित किया था। आपने सन् १९३८ में रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ बेंगाल का पदक भी प्राप्त किया था।

सर जेम्स जीन्समें सबसे बड़ी प्रशंसनीय

बात यह थी कि यह गूढ़ से गूढ़ वैज्ञानिक तथ्यों को ऐसी सुन्दर और रोचक भाषामें व्यक्त कर सकते थे कि साधारण पढ़ा लिखा आदमी भी उसको आसानीसे समझ सकता है। इनकी दो पुस्तकें मिस्टीरियस यूनिवर्स (रहस्यमय विश्व) तथा दि स्टार्स इन देयर कोर्सेज (तारोंकी वातें) ऐसी ही पुस्तकें हैं। इन को साधारण गृहस्थ भी पढ़कर लाभ उठा सकता है, और गूढ़ वैज्ञानिक तत्वोंकी जानकारी कर सकता है। यह कोरे गणितज्ञ और ज्योतिर्विद ही नहीं थे, दर्शनशास्त्र में भी रुचि रखते थे और उसका गहरा अध्ययन किया था। अर्वाचीन विज्ञानके तथ्योंका दर्शन-शास्त्रके सिद्धान्तों पर क्या सूक्ष्म प्रभाव पड़ता है इससे भी यह खूब परिचित थे।

ऐसी महान् आत्माओंका स्वर्गवासी होना किसको नहीं खलेगा? भगवान् इनकी आत्माको शान्ति दे।

भारतीय समाचार

समुद्री तार भेजने के लिये नई प्रणाली

मालूम हुआ है कि रेडियो चित्र-प्रेषण विधि (टेलीविजन) के आविष्कारक स्वर्गीय जे० एल० बेयर्ड हालमें ही बृटेन में हुई अपनी मृत्यु से पहले, विद्युत-कणीय (एलेक्ट्रानिक) कुछ ऐसी वैज्ञानिक प्रणालियों की छानबीन में व्यस्त थे, जिनकी पूर्ण सफलता भविष्यमें बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है। इन प्रणालियोंमें एक ऐसी विधि भी थी, जिसके अनुसार समुद्री तार न केवल अति तीव्र गति से भेजे जा सकेंगे, वरन् उन्हें भेजने के वर्तमान तरीके में ही आमूल परिवर्तन हो जायगा। इसका परिणाम वह होगा, जिसकी हम आज शायद कल्पना भी नहीं कर सकते। आज कल समुद्री तार द्वारा प्रतिमिनट लगभग १२० शब्द भेजे जा सकते हैं। परन्तु स्वर्गीय बेयर्डकी नयी प्रणालीके अनुसार प्रति मिनट कम से कम ७,५०,००० शब्द भेजे जा सकेंगे। सम्भव है कि ऐसी दशा में चिट्ठियाँ न भेज कर, समुद्री सन्देशों का भेजना ही लोग अधिक सुविधा-जनक और कम खर्चीला समझें।

क्या आप जानते हैं कि सम्वाद-प्रेषण की ऐसी युगांतरकारी प्रणाली क्या है? आगे की पंक्तियोंमें हम इसे संक्षेप में समझाने का प्रयत्न करेंगे।

शब्द-प्रेषणकी प्रणाली

वैद्युत् सम्वाद प्रेषण विज्ञान का मूल सिद्धान्त अब तक यही रहा है कि लिखित शब्दों को अथवा उनकी ध्वनि को हम अन्य सुगम रूपों में परिवर्तित कर सकें और परिवर्तित रूप विद्युत् वाही तारों द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान को सुगमता से भेज सकें। तार अथवा टेलीफोन द्वारा सम्वाद भेजनेके लिये इसी सिद्धान्तसे काम लिया जाता है। तारमें वर्ण-संकेतको और टेलीफोनमें शब्द-ध्वनिको हम, विद्युत प्रवाह में बदल देते हैं, और इस प्रकार हमारा सम्वाद एक स्थानसे दूसरे स्थानको पहुँच जाता है। सम्वाद-प्रेषण की इस प्रथा के चालू होने के बाद से, उसमें अनेक संशोधन हो चुके हैं, जिनके कारण आज लाइन द्वारा सम्वाद बड़ी तीव्र गतिसे भेजे जा सकते हैं। किन्तु सम्वाद प्रेषण का मूल सिद्धान्त आज भी वही है, जो पहले था, अर्थात् आज भी हम वर्ण-संकेत अथवा ध्वनि ही भेजते हैं, जो तार की लाइन के दूसरे सिरे पर कानों द्वारा सुनी जाती है। तारों में गट्ट गर-गट्ट-गर की ध्वनि लाइन द्वारा दूसरे सिरे पर पहुँचती है और टेलिफोन में बोले जाने वाले शब्दों की ध्वनि हर दशा में आवाज ही जाती है। इसे हम आवाज् भेजने की अर्थात् शब्द प्रेषण की प्रथा कह सकते हैं।

चित्र प्रेषण प्रणालीका उपयोग

स्वर्गीय बेयर्ड की नयी प्रणाली इस शब्द प्रेषण की जगह चित्र-प्रेषण की प्रथा से काम लेने के सिद्धान्त पर आश्रित है। रेडियो-चित्र अथवा टेलिविजनमें आकाशके माध्यम द्वारा एक स्थानसे दूसरे स्थानको चित्र भेजने की प्रथा पहलेसे ही चालू है। अब इस विधि को समुद्री तारों के लिये काम में लाने का प्रयत्न किया जा रहा है और स्वर्गीय बेयड इस दिशा में काफी छानबीन कर गये हैं। यद्यपि तार द्वारा चित्र भेजने की एक प्रणाली और भी मौजूद है, किन्तु बहुत धीमी गति की होने के कारण, वह अधिक उपयोगी नहीं है। स्वर्गीय बेयर्डने टेलिविजन सिद्धान्तके आधार पर जो नयी प्रणाली सुझायी है, उसके द्वारा सन्देश बड़ी ही तेजी के साथ भेजे जा सकेंगे। रेडियो द्वारा जो चित्र भेजे जाते है टेलिविजन के रिसीवर (ग्राहक) पर उसका पूर्ण बिम्ब एक सेकेंड के भीतर प्रायः २५ बार बनता है। दूसरे शब्दों में, एक सेकेंड में २५ विभिन्न चित्र भेजे जा सकते है। इन चित्रोंकी जगह यदि लिखे हुये शब्दों के चित्र अर्थात् सन्देश भेजे जायँगे। तो एक सेकंड में अत्यधिक सन्देश भेजे जा सकेंगे। यदि एक एक चित्र ५-५ शब्दों का हो, तो इस प्रकार हम एक मिनट के भीतर ७,५०,००० शब्द चित्र भेजे सकेंगे। अर्थात् एक मिनट में, छपे हुये समाचार-पत्रों के बीसियों पृष्ट अथवा कई पूरे के पूरे उपन्यास, एक स्थान से सैंकडों मील दूर के स्थानों को भेजे जा सकेंगे।

सफलता के मार्ग की दो बाधाएं

किन्तु इस नया प्रणालीकी पूर्ण सफलता के मार्ग में अभी दो बड़ी बाधाएँ भी है। एक तो यह कि जो चित्र लाइन के दूसरे सिरे पर पहुँचें, वे स्थिर किये जा सकें अर्थात् दिख कर मिट न जायं और दूसरी यह कि ये चित्र काफ़ी दूरवर्ती स्थानों तक भेजे जा सकें। ख्याल है कि ५०-५० मीलकी दूरी पर अति लघु लहरोंके स्टेशन स्थापित करके और इन अड्डों पर बिजलीके क्षीण प्रवाहको पुनः प्रबल करके, दूसरी कठिनाई दूर की जा सकती है। आशा है कि प्रयोगके लिये ऐसे कुछ स्टेशन शीघ्र स्थापित करनेका यत्न किया जायगा। अगले दस वर्षोंके भीतर, संदेश भेजनेकी उक्त प्रणाली, वर्तमान व्यवस्था में शायद घोर परिवर्तन कर देनेमें समर्थ हो सकती है।

अन्धोंकी दृष्टि

विगत महायुद्धके दिनोंमें विद्युत्कणीय विज्ञानमें काफी अनुसंधान हुआ है और बृटिश सूक्ष्म यंत्र रेडारकी प्रणाली को लेकर, वैज्ञानिक आज विद्युतकणीय प्रेषणकी ऐसी विधि खोज निकालनेके प्रयत्नमें हैं, जिससे अन्धोंको भी दृष्टि प्राप्त हो सके। इसके लिये वे ऐसे उपाय की खोज में हैं, जिसके द्वारा आँखोंसे देखी जा सकने वाली दृश्य वस्तु, कानोंसे सुनी जा सकने वाली ध्वनिमें परिवर्तित की जा सके। इस सिलसिलेमें पहले कई विधियाँ निकाली भी जा चुकी हैं। किन्तु वे इतनी अच्छी नहीं हैं। आज अनेक बृटिश आविष्कारक इस यत्नमें हैं कि चलते समय अन्धोंकी राहमें जो अड़ंगे पड़ें उनकी और उनकी दूरी तथा दिशाकी पूरी सूचना अंधे व्यक्तिके कानोंको मिल सके। यह कार्य रेडारकी प्रणालीसे काम लेकर पूर्ण किया जा सकता है। शत्रुके दूरस्थ बिमानोंका पता जिस प्रकार रेडार द्वारा मिल सकता है, उसी प्रकार मार्गकी बाधाओंकी सूचना नये यंत्र द्वारा नेत्रहीन व्यक्ति को मिलती रहेगी और उनसे बचने के लिये वह मुड़ जाया करेगा। रेडारमें उक्त सूचना, उच्च शक्ति संवेग, (हाई एनर्जी इम्पल्सेज) के, मार्गविरोधी वस्तुसे परावर्तित होने के कारण प्राप्त होती है। इसी प्रकार नये यंत्रसे अन्धे व्यक्तिको भी आवश्यक सूचना प्राप्त होती रहेगी। रेडार ५० गजकी दूरी के भीतरकी वस्तुका पता नहीं दे सकता, किन्तु नये यंत्रमें यह कठिनाई निकाल देनेका यत्न किया जा रहा है। वाह रे विज्ञान !

विज्ञान

प्रयाग की विज्ञान-परिषद् का मुखपत्र

प्रधान संपादक

डाक्टर सन्तप्रसाद टंडन, डी० फिल्०

विशेष संपादक

डाक्टर श्रीरंजन — डाक्टर विशंभरनाथ श्रीवास्तव

डाक्टर सत्यप्रकाश — श्री श्रीचरण वर्मा

डाक्टर गोरखप्रसाद — डाक्टर रामशरणदास

भाग ६२

तुला--मीन संवत् २००२

अक्टूबर १९४५-मार्च १९४६

प्रकाशक

विज्ञान-परिषद, इलाहाबाद।

औद्योगिक रसायन

चिकित्सा शास्त्र

जीवन विज्ञान

जीवनी

ज्योतिष

भूगर्भ विज्ञान

भौतिक विज्ञान

मनोविज्ञान

रसायन

साधारण विज्ञान

विज्ञान

प्रयाग की विज्ञान-परिषद् का मुखपत्र

भाग ६३

मेष—कन्या संवत् २००३

अप्रैल १९४६—सितम्बर १९४६

प्रकाशक

विज्ञान-परिषद्, इलाहाबाद।

विज्ञान परिषद् प्रयागका मुखपत्र

भाग ६४ | तुला, वृश्चिक, धनु सम्वत् २००३, अक्टूबर, नवम्बर, दिसम्बर, १९४६ | संख्या १, २, ३

प्रकाशक

विज्ञान-परिषद्,

४२, टैगोर टाउन, इलाहाबाद।

वार्षिक मूल्य ३)]

[एक संख्याका मूल

प्रयागकी

विज्ञान-परिषद्के मुख्य नियम

परिषद्का उद्देश्य

१—१९७० वि० वा १९१३ ई० में विज्ञान परिषद्की स्थापना इस उद्देश्य से हुई कि भारतीय भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञानके अध्ययनको और साधारणतः वैज्ञानिक खोजके कामको प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद्का संगठन

२—परिषद्में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमोंके अनुसार सभ्यगण सभ्योंमेंसे ही एक सभापति, दो उपसभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमंत्री, दो मंत्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे, जिनके द्वारा परिषद्की कार्यवाही होगी।

पदाधिकारियोंका निर्वाचन

१८—परिषद्के सभी पदाधिकारी प्रतिवर्ष चुने जायँगे। उनका निर्वाचन परिशिष्टमें दिये हुये तीसरे नकशेके अनुसार सभ्योंकी रायसे होगा।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्यको ५) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश-शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ ७० रु० की रकम दे देनेसे कोई भी सभ्य सदाके लिये वार्षिक चन्देसे मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्योंको परिषद्के सब अधिवेशनोंमें उपस्थित रहनेका तथा अपना मत देनेका, उनके चुनावके पश्चात् प्रकाशित, परिषद्की सब पुस्तकों, पत्रों, विवरणों इत्यादिके बिना मूल्य पानेका—यदि परिषद्के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धनसे उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन-चौथाई मूल्यमें मिलेंगी।

२७—परिषद्के सम्पूर्ण स्वत्वके अधिकारी सभ्यवृन्द समझे जायँगे।

परिषद्का मुखपत्र

३३—परिषद् एक मासिक-पत्र प्रकाशित करेगी जिसमें सभी वैज्ञानिक विषयोंपर लेख प्रकाशित हुआ करेंगे।

३४—जिन लेखोंको परिषद् प्रकाशित करेगी उनमें जो लेख विशेष महत्व और योग्यताके समझे जायँगे उनके लेखकोंको अपने अपने लेख की बीस प्रतियाँ बिना मूल्य पानेका अधिकार होगा।

सूची

विज्ञान

विज्ञान-परिषद्, प्रयागका मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ६४ | तुला, वृश्चिक, धनु सम्वत् २००३, अक्टूबर, नवम्बर, दिसम्बर १९४६ | संख्या १, २, ३

फ्राँट तथा साइक्लोन

(Front and the Cyclones)

[*ले०—प्रो० जगदेव सिंह बी० एस-सी (आनर्स), एम० एस-सी*]

यों तो इस महायुद्ध ने 'फ्राँट' के नाम से बच्चे बच्चे को परिचित कर दिया है, परन्तु यहाँ हम एक ऐसे फ्राँट के विषय में लिखने जा रहे हैं, जिसका जन्म पहले महायुद्ध में हुआ था। आवश्यकता आविष्कार की जननी मानी जाती है। यूरोपीय महायुद्ध में जब नारवे का सम्बन्ध पृथ्वीके और भागोंसे तोड़ दिया गया, तब वहाँ के विज्ञान-वेत्ताओं ने अपने ही यहाँ वायु-विज्ञान पर खोज करना प्रारम्भ किया। वायुके ऊपरी भागोंके विषयमें ज्ञान प्राप्त करते समय वहाँ के निवासी जर्कनीज (Bjerknes) ने एक सिद्धान्त संसारके सामने रक्खा, जिसको फ्राँटल-वाद (Frontal theory)—फ्राँट सम्बन्धी सिद्धान्त-कहते हैं। इसके अनुसार भिन्न भिन्न प्रकार के वायु मिलकर 'फ्राँट' बनाते हैं, जो वायु की नाट्यक्रियाओं के लिए स्टेज का काम करता है। वायु सम्बन्धी अधिकतर क्रीड़ायें उसी 'स्टेज' पर हुआ करती हैं।

जब दो प्रकारके वायु, जिनके ताप, दबाव तथा जल-आर्द्रता भिन्न भिन्न होते हैं, एक दूसरेसे मिलते हैं, तो दोनों के बीचमें एक ऐसा क्षेत्र बन जाता है, जिसके दोनों ओर ये वायु पड़े रहते हैं। जब तक यह क्षेत्र दूर तक फैला रहता है, तब तक इस क्षेत्र को वायुके पृथक करने का क्षेत्र (Layer of separation) कहते हैं। जब यह सिमट कर थोड़ेमें हो जाता है, तब इसे 'फ्राँट' के नाम से पुकारते हैं।

भिन्न-भिन्न प्रकारके वायु का पता लगानेके लिये कुछ नियुक्त किये गये स्थानों पर वायु-विज्ञान तत्वों को प्रतिदिन प्रातः काल ८ बजे मालूम किया जाता है। ये पृथ्वीके धरातल ही के नहीं, बल्कि भिन्न भिन्न ऊँचाईके भी ज्ञात किये जाते हैं। इनको भारतवर्ष के मानचित्र पर प्रति दिन अंकित करते हैं। इन्हींके सहारे यह पता लगाते हैं कि कौन सी वायु कहाँसे आई है। जैसे मान लीजिये आज इलाहाबाद में पूर्वी वायु चल रही है और इसका वेग २० मील प्रति घंटा है। २४ घंटेमें यह कहाँ से आई होगी इसका पता लगाया जा सकता है। फिर यह पता लगाया जाता है कि यह वायु २४ घंटेके पूर्वके २४ घंटेमें कहाँसे आई होगी। इस प्रकार इन चित्रोंके सहारे अन्तमें यह पता लग जाता है कि वायु समुद्र से आई है अथवा पृथ्वीके

किसी और भागसे । जब वह समुद्र से आती है तो भापसे भरी होती है और इसकी वायु-आर्द्रता बहुत अधिक होती है। इसके विपरीत यदि वह स्थल से आती है तो भाप की मात्रा उसमें कम होती है। वायु की उत्पत्ति का इस प्रकार पता
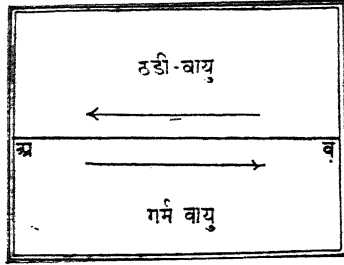
चित्र १

लगाना वायु-विश्लेषण (air mass analysis) कहलाता है।

ऐसा देखा जाता है कि पहिले तो फ्राँट एक सीधी रेखा सा होता है लेकिन फिर यह लहरदार बन जाता है। जैसा चित्र १ में दिखलाया गया है, 'अ ब' एक सीधा फ्राँट है जिसके एक ओर गर्म वायु तथा दूसरी ओर ठंढी वायु है। कुछ समय पश्चात् इसका रूप चित्र २ की तरह हो जाता है। गर्म वायु ठंढी वायु में तथा ठंढी वायु गर्म
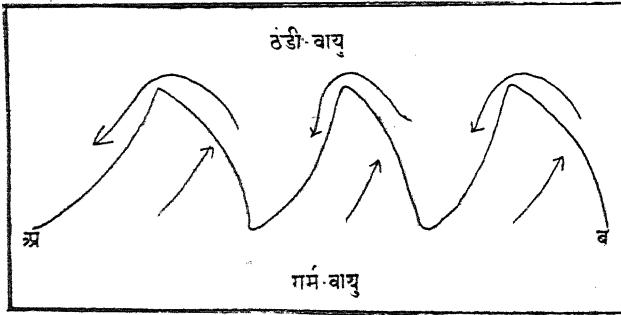
चित्र २

वायु में घुसना प्रारम्भ करती है। ऐसी दशा में नीचे वाले भाग को गर्म-वायु विभाग (Warm sector) तथा ऊपर वाले भाग को ठंढी-वायु विभाग (Cold sector) कहते हैं। चित्र ३ में एक ऐसे लहर को लेकर दिखलाया गया है। ऐसा देखा जाता है कि 'स' पर दबाव अकस्मात् कम होना प्रारम्भ हो जाता है। अभी तक विज्ञान-वेत्ता इसका ठीक पता नहीं लगा सके कि आखिर यह दबाव कम क्यों हो जाता है। इस दिशा में अभी अन्वेषण हो रहा है। यही धीरे धीरे एक साइक्लोनके रूपमें परिणत हो जाता है। पूरा साइक्लोन एक ओरसे दूसरी ओर चलना प्रारम्भ करता है। ऊपर दिखलाये गये चित्र साइक्लोनके
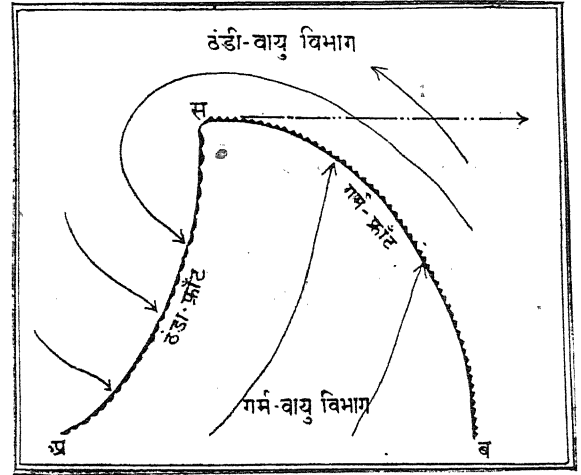
चित्र ३

क्षितिज भाग (horizontal section) के लिये गये हैं। जैसा हम देख रहे हैं 'अ स' में ठंढी वायु गर्म वायु को हटाती बढ़ती जाती है और 'ब स' में गर्म वायु ठंढी वायु को हटाती बढ़ती जाती है। 'अ स' को ठंढा फ्राँट (Cold front) तथा 'ब स' को गर्म-फ्राँट (Warm front) कहते हैं। गर्म-वायु-विभाग में बराबर-दबाव की रेखायें समीप समीप होती हैं; ठंडी वायु-विभाग में ये दूर दूर हो जाती हैं।

यदि ऐसे एक साइक्लोनके बीचसे लम्बवत् भाग (Vertical section) लिया जाये तो वह चित्र ४ की भाँति दिखलाई देता है। इसमें साइक्लोन बायें हाथ की ओर से दायें हाथ की ओर जा रहा है। 'अ ब' ठंढा-फ्राँट तथा 'स द' गर्म फ्राँट है। दोनों फ्राँटों का ढाल (slope) एक सा नहीं होता। गर्म फ्राँट पर तीनों प्रकारके

बादल (उच्च, मध्य तथा निम्न घन) दिखलाई पड़ते हैं; ठंढे फ्राँट पर केवल निम्न-घन तथा मध्यघन ही दिखलाई पड़ते हैं। इस प्रकार यदि कोई साइक्लोन आ रहा हो तो पहले उच्च-घन दिखलाई पड़ते है, फिर मध्य-घन तथा अन्त में निम्न-घन, क्योंकि उच्चघन सबसे ऊँचे होते हैं और दूर ही से दिखलाई देते हैं। ऐसे साइक्लोन मध्य तथा शीत कटिबन्ध में पाये जाते हैं। इनकी विशेषता यह है कि ये केवल दो प्रकार के वायुसे मिलकर बने होते हैं।

चित्र ४ में जैसा दिखलाया गया है, 'अ', तथा 'स' के आस पास वाले भाग में वर्षा अधिक होती है। यहाँ
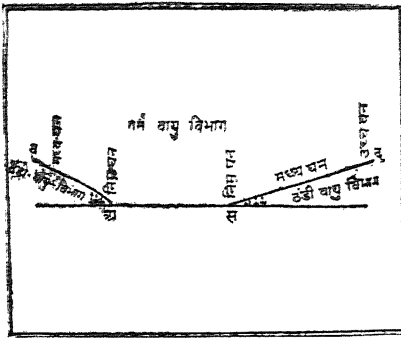
चित्र ४

के निम्न-घनों में से वर्षा काल का रुद्ध घन (Himbo stratus) बहुत ही अधिक मात्रा में होता है। 'स' के आस पास वर्षा लगातार तथा कई दिनों तक होती रहती है। 'अ' के आसपास वाले भाग में वर्षा कुछ कम तथा रुक-रुक कर होती है। ऐसी वर्षा को बूँदाबाँदी (drizzle) कहते है। ठंढे फ्राँट के पीछे वाले भाग में वायु की गति समय समय पर बहुत तेज़ हो जाती है। ऐसी वायु को स्क्वाल (squall) कहते हैं। एक ऐसे साइक्लोन को लम्बवत् तथा क्षितिज रूप में चित्र ५ में दिखलाया गया है। गर्म फ्राँट के दाहिने तथा ठंढे फ्राँट के बायें ओर के भाग में वर्षा खूब होती है।

ऐसे साइक्लोन भारत वर्ष में शरद-ऋतु में पाये जाते हैं, जो उत्तर-पश्चिम भाग से आते हैं तथा पूर्व की ओर जाते हैं। इन्हें पश्चिमी-डिप्रेशन (Western depression) भी कहते हैं। जब कोई साइल्कोन बहुत दूर में फैल जाता है तथा वायु की गति मन्द पड़ जाती है तब उसको अंगरेजी भाषा में डिप्रेशन (depression) कहते हैं।
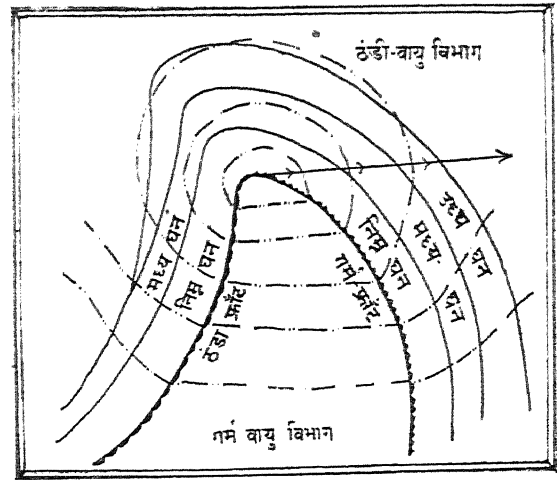
चित्र ५

उष्ण किटबन्ध में जो साइक्लोन आते हैं, उनमें तीन वायु का मिश्रण होता है। इसी कारण उनमें तीन फ्राँट होते हैं। विशेष कर वर्षा काल में भारत वर्ष में पूर्व की ओर से ऐसे ही साइक्लोन आते हैं। इन्हें पूर्वी-डिप्रेशन (Eastern depression) कहते हैं। तीसरे
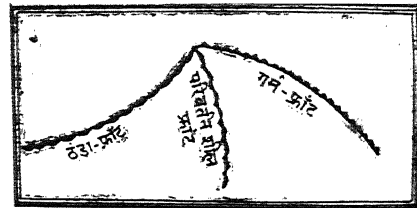
चित्र ६

फ्राँट का पता भारतीय वैज्ञानिकों ने लगाया है। इस फ्राँट को परिवर्त्तन शील फ्राँट (Variable front) कहते हैं। ऐसे 'फ्राँट' गर्म तथा नम दो वायु से बन जाते हैं, जिनकी वायु-आर्द्रता एक नहीं होती। इसका क्षितिज रूप चित्र ६ में दिखलाया गया है। ऐसे परिवर्तन शील फ्राँटों पर वर्षा कम होती है। उष्ण कटिबन्ध के साइक्लोनों की

एक और विशेषता यह है कि अधिकतर इनके बीच में एक ऐसा स्थान होता है जहाँ वायु की गति कुछ भी नहीं होती। उसके चारों ओर दायरे में काफी ऊँचाई तक वायु बहुत वेग से चक्कर करती हुई चलती है। बीच वाले
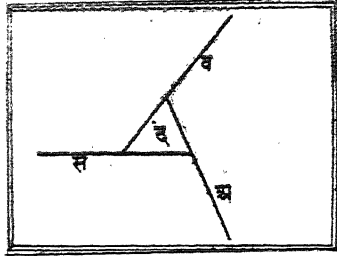
चित्र ७

भाग को साइक्लोन की आँख (Eye of the cyclone) कहते हैं। जब इन साइक्लोनों में पक्षी गण पड़ जाते हैं, तो मरने के बाद इन्हीं मध्य भागों में ढेर के ढेर से दिखलाई पड़ते हैं। चित्र ८ में 'अ' 'ब' 'स' तीन प्रकार
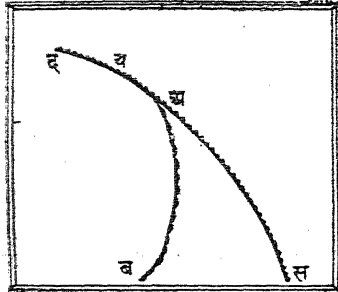
चित्र ८

के वायु 'द' के आसपास एक दूसरे से मिलते हैं। इस प्रकार बीच में थोड़ा सा भाग ऐसा रह जाता है जहाँ पर वायु का प्रभाव नहीं पड़ता। इसी बीच वाले भाग में साइक्लोन की आँख बन जाती है।

जब तक किसी साइक्लोन के लिये भाप से परिपूर्ण वायु मिलती रहती है तब तक वह लगातार एक सा वर्षा करता रहता है। वर्षा लगातार भीषण रूप से होती है। जिस समय भाप से परिपूर्ण वायु का आना बन्द हो जाता है, उसी समय साइक्लोन भी धीरे-धीरे समाप्त हो जाता है। जिन लोगों को काशी में जाकर पुराने वरुना-पुल के देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वे जानते होंगे कि वह पुल कितना मजबूत बनाया गया था, परन्तु १९४३ ई० के सितम्बर के महीने में एक ऐसे ही साइक्लोन से वर्षा के कारण दो-तीन दिन के अन्दर टूट गया।

कभी कभी ऐसा देखा जाता है कि एक साइक्लोन के साथ-साथ एक दूसरा आरम्भ हो जाता है। ऐसे साइक्लोनों को द्वितीय-साइक्लोन (Secondary cyclone) कहते हैं। यह धीरे-धीरे पहिले साइक्लोन की शक्ति को अपने में ले लेता है और इस प्रकार इसका जन्म-दाता समाप्त हो जाता है। चित्र ८ में ऐसे ही समाप्त होने वाले एक साइक्लोन का क्षितिज भाग लिया गया है। द्वितीय साइक्लोन
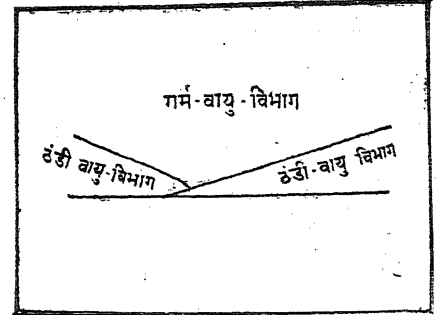
चित्र ९

'अ द' में कहीं से भी प्रारम्भ हो सकता है। यदि 'य' के ऊपर लम्बवत भाग लिया जाये तो यह चित्र ९ की भाँति होगा। इसमें ठंढी वायु धीरे-धीरे नीचे चली जाती है और गर्म वायु ऊपर। इस क्रिया को मिदना (occlusion) कहते हैं।

इसका पता लगाने के लिये कि कोई साइक्लोन २४ घंटे के बाद कहाँ होगा और किस भाग में अधिक से अधिक वर्षा होगी यह जानना आवश्यक है कि उसके 'फ्रॉट' कहाँ हैं और पहिले २४ घंटे में यह किस ओर से आया है। यह मान लिया जाता है कि जो हालत उसकी पहले रही है, वही बाद में भी रहेगी। फ्रॉट का पता लगाने के लिये उस देश के मानचित्र पर अँकित वायु-विज्ञान-तत्वों को देखते हैं। ऐसे चित्रों को अँगरेजी में सिनाप्टिक-चार्ट (Synoptic chart) कहते हैं। पहले तो समान दबाव की रेखाओं से कम दबाव वाले भाग का पता लगाते हैं। फिर वर्षा वाले भाग से फ्रॉटों का पता लगा लेते हैं। इस काम में ताप भी बहुत लाभ दायक

होता है, क्योंकि इससे ठीक पता चल जाता है कि कौन 'गर्म-फ्रॉट' है तथा कौन ठंढा।

सिनाप्टिक-चित्रों के द्वारा किसी स्थान के जल वायु के विषय में निम्नलिखित बातों का ज्ञान होता है।

(१) समान दबाव की रेखायें (Isobars) केवल सात प्रकार की होती हैं।

(क) साइक्लोन के चारों ओर की समान दबाव की रेखायें।

(ख) एण्टी-साइक्लोन के चारों ओर की " "

(ग) द्वितीय-साइक्लोन के " " "

(घ) काल (coll) के आसपास " "

(च) V-आकार (V-shaped) की समान दबाव की रेखायें।

(छ) त्रिकोण आकार (Wedge shaped) की "

(द) सीधी रेखायें।

(२) वायु की दिशा आसपास के कम दबाव वाले भाग पर निर्भर करती है। इसमें बाइज़-बैलट साहेब के नियम (Buy's Ballots' Law) के अनुसार वायु चलती है।

(३) वायु का वेग समान दबाव की रेखाओं की दूरी पर अवलम्बित है। जब दूरी अधिक होती है तब वायु का वेग कम होता है। जब दूरी कम रहती है तब वायु का वेग बहुत अधिक होता है।

(४) किसी स्थान पर किस प्रकार का मौसिम होगा, यह समान दबाव की रेखाओं के आकार पर अवलम्बित है।

(५) किसी स्थान के वायु-विज्ञान तत्व अपने स्थान को धीरे-धीरे बदला करते हैं। इस प्रकार यह बतलाना सम्भव हो जाता है कि किस समय कहाँ पर कौन-कौन से वायु-विज्ञान तत्व होंगे।

(६) कभी-कभी उष्ण कटिबन्ध में इन रेखाओं की हालत में बिना किसी विशेष परिवर्तन के भी वर्षा हो जाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि फ्रॉट ही साइक्लोन का जन्म स्थल, क्रीड़ा-स्थल तथा मरण-स्थल है।

आज कलकी (१६ सितम्बर ४६) कलकत्ते की भीषण वर्षा एक पूर्वी-साइक्लोन के कारण है जो इससे ५० मील उत्तर की ओर है। यहाँ से यह उत्तर की ओर जा रहा है। आशा है इनके विशेष ज्ञान का लाभ उठा कर उनकी भीषण शक्ति का भविष्य में प्रयोग किया जा सकेगा।

फ़ूड ईस्ट

[ले०—श्री जगेश्वर दयाल वैश्य, एम० ए०, बी० एस-सी०]

भारतीय भोजन विभाग कुछ दिनोंसे एक ऐसे पदार्थ की खोजमें था जो कि सस्ता हो और जिसमें काफी पोषक तत्व हों, जिससे भारतीय निर्धन जनता लाभ उठा सके।

भारतवर्ष में जब से चीनी की मिलें जगह जगह पर खुल गई हैं शीरे की बहुतायत हो गई है। फ़ूड ईस्ट (Food yeast) बनानेके लिये शीरा एक बहुत उपयुक्त पदार्थ है। भारत सरकार ने सर शान्ति स्वरूप भटनागरके सभापतित्वमें एक कमेटी इस कार्य के लिये बैठाई थी। इस कमेटी की राय है कि फ़ूड ईस्ट शीरे से आसानी से बनाया जा सकता है और भोजन तत्वों की कमी की पूर्ति भली प्रकार कर सकता। कमेटी की राय में एक कारखाना तुरन्त ही आरम्भ कर देना चाहिये जो कि कमसे कम ३००० टन फ़ूड ईस्ट वार्षिक बना सके।

हमारे भारतीय भोजन में प्रायः निम्न लिखित तत्वों की न्यूनता रहती है—अच्छे प्रकारके प्रोटीन, बी० ग्रुप के विटामिन। यह दोनों ही फ़ूड ईस्ट से प्रचुर मात्रा में मिल सकते हैं। चावल खाने वाले व्यक्तियों को इनकी दूसरे लोगों की अपेक्षा अधिक आवश्यकता होती है।

चावलों के साथ फ़ूड ईस्ट

चावलोंके कूटनेके समय और बनाने के समय फ़ूड ईस्ट नहीं मिलाया जा सकता। चावल खाने वाले इसे कढ़ी, दाल, दही, मसाले आदिके साथ चावलोंके साथ खा सकते हैं।

गेहूँ या अन्य अनाजों के साथ फ़ूड ईस्ट

गेहूँ अथवा अन्य अनाजोंके साथ इसका लेना बहुत

सरल है। यह आटेके साथ मिला कर खाया जा सकता है। इसका २ प्रतिशत आटे में मिलाना काफी है। इतनी कम मात्रा में यह स्वाद और रंगमें कोई अन्तर नहीं पैदा करता। इसके अलावा रोटी बनाने में भी विटामिन नष्ट नहीं होते।

कम भोजन समस्या और फूड ईस्ट

अनुभव प्राप्त होने पर इसका वार्षिक उत्पादन और भी बढ़ाया जा सकेगा और इस प्रकार स्कूल, अस्पताल, आदि संस्थाओं को तो प्रथम वर्ष में ही यह मिल सकेगा और साधारण जनता को कुछ वर्षों में सस्ते मूल्य में मिल सकेगा। आशा है कि यह जनता को ६ आना पौंडमें दिया जा सकेगा।

कोयले से मक्खन का निर्माण

[ले०—श्री जटाशंकर द्विवेदी]

अंगरेज़ों को जर्मनी का जो भाग गत महायुद्ध के अंत में मिला उसमें उन्हें एक बड़ी ही मूल्यवान वस्तु मिली। यह कोयले से मक्खन तैयार करने का कारखाना है।

एक अंगरेज कर्मचारी ने इस मक्खन को रख कर देखा और निर्णय दिया कि उसका विश्वास है कि कोई भी मनुष्य यह नहीं समझ सकता कि यह मक्खन प्राकृतिक नहीं है।

रूर नगर में स्थित इस कारखाने ने युद्ध के अन्त से अभी तक मक्खन नहीं बनाया है किन्तु इसके प्रबन्धकर्ताओं को आशा है कि लगभग एक मास में काम चालू हो जायगा।

इस कम्पनी के युवा प्रबन्धक डाक्टर कार्ल हीन्ज इमहौसेन के कथनानुसार यह कम्पनी एक मास में लगभग १६००० मन मक्खन तैयार कर सकती है जिसका खर्च असली मक्खन तैयार करने के खर्च से कम पड़ेगा। युद्ध काल में जब असली मक्खन का भाव ३ मार्क ६० फेनिङ्ग (३½ शिलिंग) प्रति किलो था उस समय इस बनावटी मक्खन का भाव केवल एक मार्क ८० फेनिङ्ग प्रति किलो ही था।

यह मक्खन बिना बरफ में रखे हुये भी बिगड़ता नहीं। डाक्टर इमहौसेन ने १ पौंड ऐसा मक्खन दिखलाया जो युद्ध बन्द होने के पहले ही बनाया गया था। यह कभी बरफ में नहीं रक्खा गया था किन्तु फिर भी पिघला नहीं था। इसका रंग और स्वाद बिलकुल प्राकृतिक मक्खन का सा था।

कोयले से मक्खन इस प्रकार बनाया जाता है। पहले कोयले को कोक में बदलते हैं फिर कोक को गैस में और गैस को पैराफीन में। एक प्रकार के फूंकने से जो सब से कठिन कार्य है १०० मन पैराफीन से ८०-८२ मन वसा अम्ल (Fatty acids) तैयार हो सकता है। इस वसा अम्लको वायु शून्य स्थान में रख कर उड़ाने और जमाने से यह कई प्रकार की वसाओं में बदल जाता है। इनमें से कुछ खाई जा सकती हैं और कुछ नहीं। इस प्रकार बनाये हुये खाने के योग्य वसा में २० प्रतिशत पानी मिलाया जाता है और रंग लाने तथा विटामिनों की मात्रा बढ़ाने के लिये इसमें गाजर का रस डालते हैं। फिर कुछ नमक मिला कर उसमें डाइएसीटाइल (Diacetyl) मिला देते हैं जिससे मक्खन की महक आ जाती है। इस मिश्रण को एक मशीन में घोटते हैं। इस मशीन के दूसरे सिरे से ८ इञ्च व्यास की कबाब की तरह की वस्तु निकल आती है। दूसरी मशीन से यह एक-एक पौंड के टुकड़ों में काट दिया जाता है और भली भाँति लपेट कर बाँध दिया जाता है।

जिन वसाओं का मक्खन नहीं बनता उनका साबुन बना लिया जाता है। जिस भाग से मक्खन या साबुन नहीं बन सकता उससे ऐसी वस्तु बना ली जाती है जिससे प्लास्टिक (Plastics), रबड़ को मुलायम करने की वस्तु तथा वार्निश का एक मसाला और मद्यसार आदि बना लिया जाता है।

यह कारखाना सन् १९३८ में बनाया गया था जो १९३९ से मक्खन तैयार करने लगा। एक बार इस पर अंग्रजों के बम भी बरसे थे जिससे मशीन को कोई

विशेष हानि नहीं हुई थी। हा, एक टंकी जिसमें १८०० मन के लगभग पैराफीन थी कई दिन तक जलती रही थी।

पता नहीं कि हमारे वनस्पति घी की तुलना में यह कोयलेका घी कैसा ठहरेगा। वनस्पति घी की परीक्षा हो गई है और बड़े-बड़े डाक्टरों का कहना है कि इसकी पोषण शक्ति यथार्थ घी से बहुत कम है। अब कोयले के घी की भी कड़ी परीक्षा लेनी चाहिये। कहते हैं कि संसार में कोयले की मात्रा अब बहुत कम हो गई है। इसलिये कोयले से घी बना कर खाने के काम में लाने से विशेष लाभ नहीं जान पड़ता। भारतवर्ष में तो घी देने वाले पशुओं की ही वृद्धि करने की आवश्यकता है जिससे दूध भी मिले और घी भी।

सितारों की चालें*

ले०—श्री नत्थनलाल गुप्त

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

सितारों को प्रायः स्थिर वा अचल समझा जाता है और एक सीमा तक यह विचार ठीक भी है। सूर्य्य, चन्द्रमा और समस्त ग्रह, उप-ग्रह आकाश में गति करते प्रतीत होते हैं, क्योंकि वे अपना स्थान बदलते रहते हैं, किन्तु सितारों में यह बात नहीं देखी जाती। सितारों को भिन्न भिन्न झुण्डों में बाँटा गया है। प्रत्येक झुण्ड की आकृति अलग-अलग है, पर किसी झुण्ड की जो आकृति हम आज देख रहे हैं वही हज़ारों वर्षों से चली आती है। सप्तऋषि मण्डल जिस शक्ल में आज चमक रहा है, हज़ारों वर्ष पहले भी उसकी आकृति ऐसी ही थी। ऐसा ही हाल मृगशिरा वा दूसरे नक्षत्र मण्डलों का है। उनके सितारों के आपसी सम्बन्ध में ज़रा भी अन्तर नहीं पड़ा, क्योंकि न तो उन्होंने एक दूसरे की दृष्टि से अपनी दिशा ही बदली है और न उनके फासलों में ही भेद पड़ा है; इसलिये, सितारों को, क्रियात्मक रूप से, अचल वा स्थिर कहना ठीक ही है। पर, यदि इसका यह मतलब समझा जाये कि वास्तव में भी सितारे बिलकुल गति करते ही नहीं तो यह विचार असत्य ही ठहरेगा। विश्वमें कहीं भी स्थिरता नहीं पाई जाती। प्रत्येक पदार्थ गतिशील है। फिर सितारे ही इस विश्व-व्यापी नियम से वंचित कैसे रह सकते हैं। वे भी ग्रहों के समान ही अपने नियत मार्गों पर गमन कर रहे हैं और उनमें से बहुतसे ग्रहों की अपेक्षा अधिक द्रुत गति से आकाश में दौड़े जा रहे हैं। ईश्वर जाने वे कहाँ जा रहे हैं। पर वे जा अवश्य रहे हैं।

यहाँ हम सितारों की दृश्य गतियों के सम्बन्ध में कुछ नहीं कह रहे हैं, किन्तु हम तो उनकी वास्तविक गतियों का वर्णन करना चाहते हैं। प्रगट रूप में तो सितारे सब मिलकर ध्रुव तारे (Pole star) के गिर्द घूमते प्रतीत होते हैं। किन्तु सितारों की यह चाल पृथ्वी की दैनिक गति के कारण प्रतीत होती हैं। इसी प्रकार से पृथ्वी की वार्षिक गति का सितारों की इस प्रगट गति पर यह प्रभाव पड़ता है कि यदि हम एक ही नियत समय पर सितारों को प्रति दिन देखें तो भिन्न-भिन्न ऋतुओं में भिन्न-भिन्न सितारे शिर के ऊपर दृष्टि आयेंगे। अपेरण (Aberration of light) तथा वार्षिक लम्बन (Annual Parallax) के कारण भी सितारे एक बिन्दु के गिर्द भ्रमण करते प्रतीत हुआ करते हैं; किन्तु इन समस्त दृश्य गतियों का कारण हमारी पृथ्वी की वार्षिक गति ही है। अयन-चलन (Precession) और अक्ष-विचलन (Nutation) के कारण भी सितारों की स्थिति में कुछ भेद पड़ जाता है; किन्तु यह सब बातें देखने मात्र को हैं वास्तविक नहीं, और पृथ्वी की भिन्न भिन्न गतियों के कारण प्रगट होती हैं, जैसा कि प्रथम अध्याय में समझा चुके हैं। यहाँ हमें सितारों की इन दृश्य गतियों से कुछ सरोकार नहीं है। हम तो अब सितारों की वास्तविक गतियों का वर्णन करना चाहते हैं।

सन् १७१५ ई० में हेली साहब ने स्वाती नक्षत्र (Arcturus) की ठीक-ठीक स्थिति निरीक्षणों द्वारा स्थिर की और फिर जब पुरानी नक्षत्र सारणी (Catalogue

*यह लेख हमारे अप्रकाशित ग्रन्थ "खगोल विज्ञान" के ७ वें अध्याय का २४ परिच्छेद है।

of stars) से उसका मिलान किया तो मालूम हुआ कि कुछ सितारों ने अपना स्थान कुछ परिवर्तन कर लिया है। यह एक बड़ी विस्मय जनक बात थी, क्योंकि उस समय तक यही समझा जाता था कि सितारे स्थान परिवर्तन नहीं किया करते। हेली के समय से अब तक बहुत से सितारों की वास्तविक गति का पता लगाया जा चुका है। स्कॉटलैण्ड (Scotland) के राज्य ज्योतिषी प्रो० डाइसन (Dysan) की सम्मति के अनुसार लगभग दस सहस्र सितारों की गतियों का अनुमान लगाया जा चुका है। उत्तर में जो सितारा* सब से अधिक तीव्र गति से चलता है उसका फासला इतना अधिक है कि आकाश तल पर उसकी दृश्य गति अत्यन्त सुस्त प्रतीत होती है और उसको चन्द्र व्यास के बराबर फासला (जो केवल आधे अंश के बराबर है) पूरा करने में लगभग २०० वर्ष लग जाते हैं। इससे दूसरे दर्जे पर तीव्र गति वाला सितार सप्तर्षि मण्डल का १८३० ग्रूमब्रिज* (1830 Groom bridge) नाम का सितारा है जिसकी वार्षिक गति ७·०१ है और वह २६५ वर्षों में आकाश तलपर सूर्य के व्यास के बराबर फासला पूरा करता है और यदि वह एक ही दिशा में गति करता रहे तो उसे समस्त आकाश का पूरा चक्कर काटने में लगभग १८५००० वर्ष लग जायेंगे। १८३० ग्रूम ब्रिज से उतर कर मन्द गति सितारे दक्षिणीय गोलार्द्ध में दो छोटे-छोटे सितारे हैं और उनके पश्चात् हमारे पडोसी ६१ राज हंस (61 Cygni) और अल्का सेन्टारी का नम्बर है। ६१ राज हंस का वेग ५·२ और अल्का सेन्टोरी का ३·७ वार्षिक है। जिन सितारों का फासला मापा जा चुका है उनका वेग मीलों में भी मालूम किया जा सकता है। अस्तु, मालूम किया गया है, कि ६१ राज हंस का वेग ३० मील प्रति सेकेंड व लगभग एक अर्ब मील वार्षिक है और १८३० ग्रूमब्रिज का लगभग १२८ मील प्रति सेकेंड और स्वाती का ३७६ मील प्रति सेकेण्ड है।

हमारा सूर्य्य भी एक सितारा है और तमाम सितारे भी सूर्य्य हैं। यदि दूसरे सितारे गति करते हैं, तो हमारा सूर्य्य भी अवश्य गति करता होगा। सर जान हरशल ने यह विचार प्रगट किया था कि हमारा सूर्य, ग्रहों उप-ग्रहों सहित, हरकुलीज़ (Hercules) नाम के तारा मण्डल की तरफ दौड़ा जा रहा है। यह स्पष्ट ही है कि यदि हम सूर्य्य के साथ-साथ आकाश में दौड़े जा रहे हैं तो हमारी इस गति का सितारों की दृश्य स्थिति पर अवश्य प्रभाव पड़ेगा। यदि हम नाव में बैठ कर किसी नदी में बहते जा रहे हों, और वह नदी किसी घने जंगल में से गुजरती हो, तो हमारे आस-पास के वृक्ष हम से उल्टी दिशा में गति करते प्रतीत होंगे। जो वृक्ष हमारे समीप हैं वे तीव्र गति से, और जो दूर हैं, वे मन्द गति से चलते मालूम होंगे तथा सब की गति एक ही दिशा में होगी। किन्तु हमारे सामने के वृक्ष, जो बहुत दूर पर आपस में मिले हुए से प्रतीत होते हैं, एक दूसरे से दूर हटते जायेंगे और पीछे के वृक्ष एक दूसरे के समीप आते जायेंगे। इसी प्रकार से यदि हमारा सौर-साम्राज्य भी आकाश में किसी तरफ को दौड़ा जा रहा है तो जिन सितारों की तरफ वह गति कर रहा है वे एक दूसरे से दूर हटते हुये मालूम होने चाहिये और आकाश पर उनके मुक़ाबिले के सितारे (अर्थात जिस दिशा से हमारा सूर्य्य दूर हट रहा है उस दिशा के सितारे) एक दूसरे के निकट आते जायेंगे और शेष समस्त सितारे सूर्य्य की इस गति की विरुद्ध दिशा में गति करते प्रतीत होंगे तथा जो सितारे निकट हैं, वे तीव्र गति से और जो दूर हैं वे मन्द गति से चलते प्रतीत होंगे। हरशल ने बतलाया कि जब हम सितारों की स्थिति की होशियारी से माप करते हैं तो हमें उनमें उक्त प्रकार का स्थान परिवर्तन अवश्य प्रतीत होता है। उसकी सम्मति के अनुसार हमारा सूर्य्य हरकुलीज़ तारा मण्डल के एक विन्दु की तरफ जो लैम्डा हरकुलीज़ (Hercules) नाम के तारे के पास है, लगभग उसी चाल से, जिस चाल से पृथ्वी अपनी कक्षा पर भ्रमण

*इस सितारे का नाम (Gould's Cordova zones, V Hour 243) है।

*ग्रूमब्रिज नाम का एक प्रसिद्ध ज्योतिषी हुआ है। उसकी तैयार की हुई नक्षत्र सारणी में इस सितारे की क्रम संख्या १८३० है इसलिये यह इस नाम से प्रसिद्ध है।

करती है, दौड़ा जा रहा। पर अब ज्योतिषियों की यह सम्मति है कि हमारा सूर्य्य में आकाश में लगभग ११ मील प्रति सेकेण्ड के वेग से गति कर रहा है (यह गति पृथ्वी की वार्षिक गति से कुछ कम है) और जिस स्थान की तरफ जा रहा है वह हरकुलीज़ तारा मण्डल में नहीं, किन्तु उसके पास के तारा मण्डल लायरा (Lyra) के उस सितारे के समीप है जो डेल्टा लायरा (δ Lyra) कहलाता है।

तनिक विचार तो। कीजिए हम ११ मील प्रति सेकेंड वा लगभग चार लाख मील की दैनिक गति से लायरा नाम के तारा मण्डल की तरफ बराबर दौड़े जा रहे हैं, पर वह तारामण्डल हम से इतनी दूर है कि उसके सितारों की स्थिति में प्रगट रूप से कुछ भी परिवर्तन प्रतीत नहीं होता। न तो उनकी चमक दमकमें ही कुछ भेद पड़ा है और न फासलोंमें ही। सितारे हमसे इतनी दूर हैं कि सर राबर्ट बाल (Sir Robert Ball) की सम्मति के अनुसार यदि हमारा सूर्य्य १८०००० वर्ष तक बराबर दौड़ता चला जाय तब कहीं इतना फासला पूरा कर पायेगा जितना फासला निकटतम सितारे का है, और लायरा तारामंडल के निकट पहुँचने के लिये तो १० लाख वर्षों से कम समय दरकार न होगा। इससे आप आकाश की अनन्तता का कुछ-कुछ अनुमान लगा सकते हैं।

अब प्रश्न यह है कि सूर्य्य एक सरल रेखा पर गति करता है वा किसी केन्द्र वा नाभिके गिर्द किसी वृत्ताकार वा दीर्घवृत्ताकार कक्षा पर भ्रमण करता है? यदि वह सरल रेखा पर गति कर रहा है तब उसका यह अर्थ है कि आकाश में दृष्टि आने वाले असंख्य सितारे उस पर कुछ भी प्रभाव नहीं डालते किन्तु ऐसा होना असम्भव है। इसलिये यही मानना पड़ता है कि वह किसी केन्द्र वा नाभि के गिर्द भ्रमण कर रहा है और इसलिये उसकी गति एक ही दिशामें सदा नहीं रह सकती किन्तु दिशा परिवर्तन करती रहती है। पर कक्षा बहुत ही बड़ी होने के कारण परिवर्तन बहुत ही धीरे-धीरे होता है। वह केन्द्र-विन्दु जिसके गिर्द सूर्य्य परिभ्रमण कर रहा है डाक्टर मैडलर (Dr. Madlar) की सम्मतिमें सत भय्या (Pleiodes) नाम के तारामण्डल में वा उसके समीप ही कहीं होना चाहिए।

अब हम फिर सितारों की निजी चालों की तरफ ध्यान देना चाहते हैं। सितारों में तीन प्रकार की गति पाई जाती है।

(१) कुछ सितारे हमारी दृष्टि रेखा के साथ पूर्ण कोण बनाते हुए गति करते हैं। वे आसपास के सितारों में अपना स्थान परिवर्तन करते प्रतीत होते हैं और उनके स्थान परिवर्तन की नाप दूरबीन के साथ लगे हुए सूक्ष्म मापक यन्त्र (Micrometer) द्वारा की जा सकती है। (२) दूसरे वे सितारे हैं जो हमारी दृष्टि रेखा की सीध में गति करते हैं अर्थात् या तो वे हमसे परे हट रहे हैं या वे सीधे हमारी तरफ दौड़े आरहे हैं। ऐसे सितारों में दृश्यगति नहीं होती क्योंकि उनकी स्थिति में कोई परिवर्तन प्रतीत नहीं होता। इसलिये ऐसी चालों का पता दूरबीन से नहीं लग सकता। उनका पता आलोक विश्लेषक यन्त्र (Spctroscope) द्वारा लगाया जाता है। डोप्लर (Doppler) के नियमानुसार, जिसका विवरण † पीछे
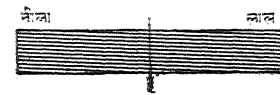
चित्र १—रिजल सितारे के रश्मि चित्र में हाइड्रोजन रेखा का स्थान परिवर्तन।

किया चुका है, हमारी तरफ गति करने वाले सितारों के रश्मिचित्र (Spectrum) में रेखाएँ बनफ्शी सिरे की तरफ, और हमसे दूर जाने वाले सितारों के रश्मिचित्र में रेखाए लाल सिरे की तरफ हटती प्रतीत हुआ करती हैं। इस रीतिसे किसी सितारे की चाल की दिशा ही नहीं, किन्तु उसका वेग भी मालूम किया जा सकता है। इन प्रयोगों से मालूम किया गया है कि स्वाती नक्षत्र (Arcturus) और अल्फा लायरी (a-Lyrae) दोनों सितारे कोई १० मील प्रति सेकेंड की चाल से हमारी तरफ दौड़े आ रहे हैं, और लुब्धक (Sirius) और आर्द्री (a-Oriouis)

† अध्याय ३ का ४ था परिच्छेद।

लगभग २० मील प्रति सेकेंड के वेग से हमसे दूर जा रहे हैं। रोहिणी नक्षत्र (Aldebran) भी लगभग ३० मील प्रति सेकेंड की चाल से हमसे दूर भागा जा रहा है। (३) कुछ सितारे ऐसे भी हैं जिनमें दोनों प्रकार की गति
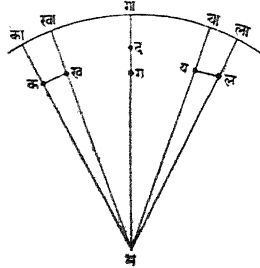
चित्र २—[इस चित्र में तीनों प्रकार की गति समझाई गई है। सितारा क, ख की तरफ गति करता है तो आकाश तल पर वह का से खा की तरफ चलता प्रतीत होता है। ग सितारा दृष्टि रेखा में द की तरफ तथा द सितारा ग की तरफ गति करेगा तो आकाश तल पर उसकी स्थिति गा स्थान पर स्थिर रहेगी। य सितारा ल की तरफ तिरछी गति करता है तो आकाश तल पर वह या से ला की तरफ गति करता प्रतीत होगा।]

पाई जाती है। अर्थात् कुछ तो दृष्टि रेखा की सीध में गति करते हैं और कुछ उस रेखा के दायें वा बायें वा किसी और तरफ को गति करते हैं। ऐसी गति को हम तिरछी गति कह सकते हैं। चित्र २ में तीनों प्रकार की गति दिखलाई गई है।

जिस प्रकार से बहुत से पक्षी मिलकर आकाश में उड़ते हैं उसी तरह से कुछ सितारे भी मिलकर एक ही चाल से एक ही दिशा में गति करते हुए पाये गये है। इन्हें सितारों का झिल्लड कहना उचित प्रतीत होता है। इनका सबसे अच्छा उदाहरण सप्तर्षि मण्डल में पाया जाता है। इस मण्डल के सात चमकीले सितारों में से ५ सितारे समान गति से एक ही दिशा में दौड़े जा रहे हैं, जिससे प्रतीत होता है कि पाँचों किसी एक ही संस्थान से सम्बन्ध रखते हैं। शेष दो सितारे दूसरी दिशा में दौड़े जा रहे हैं (देखो चित्र ३)। इसी प्रकार से सिंह राशि (Leo) का मघ (Regulas) नाम का रोशनसितारा भी एक आठवीं श्रेणी के धुंधले सितारे के साथ-साथ दौड़ लगा रहा है। सतभय्या (Pleiodes) तारामण्डल के समस्त सितारे भी इकट्ठा गति कर रहे हैं।
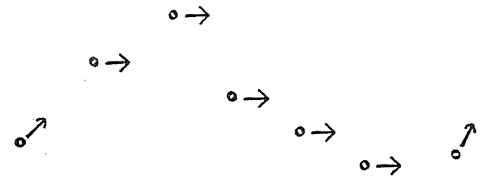
चित्र ३

ये सब कहाँ जा रहे हैं? इनका अन्तिम ध्येय क्या है? जिस तरह समस्त ग्रह-उपग्रह सूर्य्य का परिभ्रमण करते हैं उसी तरह से इन अनन्त सूर्यों का भी कोई एक बड़ा केन्द्रस्थानी महा सूर्य्य है, जिसकी परिक्रमा करने के लिये ये बाध्य हैं? यह ऐसा प्रश्न है जिसका अभी तक कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया जा सका है। हो सकता है कि सितारों के बहुत से छोटे-छोटे संस्थान हों, और प्रत्येक संस्थान के समस्त सितारे किसी एक केन्द्र के गिर्द घूम रहे हों। साथ ही वह समस्त संस्थान भी किसी एक महासंस्थान से सम्बन्ध रखता हो। अथवा यह भी सम्भव है कि समस्त सितारे बिल्कुल स्वतन्त्र हों और अपनी इच्छा से अनन्त आकाश में जिधर चाहें दौड़े फिरते हों। किन्तु विश्व में ऐसी स्वतन्त्रता कहीं देखी नहीं जाती। प्रकृति का एक २ अणु किसी न किसी नियम के आधीन काम कर रहा है। फिर सितारे स्वतन्त्र कैसे हो सकते हैं! प्रसिद्ध जर्मन ज्योतिषी आर्जीलेण्डर (Argelander) का विचार है कि सितारों के संस्थान का केन्द्रस्थान परसुवस (Perseus) तारकमण्डल में है। दूसरे जर्मन ज्योतिषी मैडलर (Madler) ने पर्याप्त छान बीन के पश्चात् यह सम्मति प्रगट की है कि सूर्य्य और अन्य समस्त सितारे सतभय्या तारक मण्डल (Pleiodes) के कृतिका (Alcyone) नाम के सितारे के गिर्द घूमते हैं। किन्तु अभी तक इनमें से कोई भी सम्मति सर्वमान्य नहीं हुई है। प्रायः ज्योतिषियों का ऐसा विचार है

कि किसी ऐसे बड़े और शक्तिशाली केन्द्रिक महासूर्य्य का अस्तित्व नहीं प्रतीत होता जो समस्त सितारों को वश में रख कर गति दे रहा हो, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि समस्त सितारे अपनी परस्पर की आकर्षणशक्ति से प्रभावित होकर भिन्न-भिन्न दिशाओं में गति कर रहे हैं।

हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ

[ले०—श्रीमती नीरा]

सितम्बर १९४३ के विज्ञान में नाड़ी संस्थान के वर्णन में हम पढ़ चुके हैं कि किसी भी अनुभव का ज्ञान हमें तभी होता है जब हमारी नाड़ियाँ उस अनुभव का समाचार हमारे मस्तिष्क तक पहुँचाती हैं। बाह्य वस्तुओं के अनुभव को प्राप्त करके उसका समाचार मस्तिष्क तक पहुँचाने का कार्य हमारी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा होता है। ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच हैं—दृश्येन्द्रिय, श्रवणेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, स्वादेन्द्रिय तथा स्पर्शेन्द्रिय।

दृश्येन्द्रिय

हम अपनी आँख की तुलना चित्र खींचने के कैमरे से कर सकते हैं। दोनों की रचना और दोनों के कार्यों में बहुत समानता है।

कैमरा वास्तव में एक छोटी-सी अँधेरी कोठरी के समान होता है। इसमें एक ओर एक छोटा सा गोल छिद्र होता है जिसमें ताल लगा रहता है। ताल के सामने की दूसरी दीवार पर अन्दर की ओर चित्र अंकित होने के लिए एक विशेष मसाला लगी काँच की प्लेट लगी रहती है। जिस वस्तु का चित्र खींचना होता है उसकी स्थिति और दूरी कैमरे के ताल से इस ढंग से रखी जाती है कि उसका प्रकाश ताल से होता हुआ अन्दर की प्लेट पर पड़े। आँख की रचना भी ठीक ऐसी ही है। आँख की बन्द अँधेरी कोठरी कैमरे की भाँति चौकोर न होकर गोल होती है। इसमें भी सामने की ओर एक पारदर्शक ताल लगा रहता है जिसमें से होकर प्रकाश की किरणें अन्दर ठीक सामने की दीवार पर पड़ती हैं। इस स्थान पर मसालेयुक्त प्लेट के स्थान पर एक सांवेदनिक झिल्ली लगी रहती है और इसी पर वस्तुओं का प्रतिबिंब पड़ता है। इस प्रतिबिंब का स्थान यहाँ पर स्थित नाड़ियाँ मस्तिष्क तक पहुँचाती हैं और हम उस वस्तु विशेष को पहचानते हैं।

हमारी आँखों के लिए चेहरे की हड्डी में एक-एक छिद्र नाक के दोनों ओर ललाट के नीचे रहते हैं। आँखें इन्हीं छिद्रों के भीतर स्थित रहती हैं। इन्हें इनकी जगह पर दृढ़ता से स्थित रखने के लिए प्रत्येक आँख में छः छोटी माँस पेशियाँ होती हैं—दो ऊपर, दो नीचे और एक-एक आँख के दोनों ओर। ये मांस पेशियाँ लचीली (Flexible) होती हैं इसीसे हम आँखों को इधर-उधर घुमा कर सब ओर की चीज़ें देख सकते हैं। यदि ये मांसपेशियाँ लचीली न होतीं तो हम आँखों को इधर-उधर घुमा फिरा न सकते और केवल सामने-सामने की ही चीज़ें देख पाते।

आँख गोलाकार है किन्तु इसका आगे का कुछ भाग, जिसे हम देखते हैं, कुछ उभरा हुआ रहता है यह ढेला या कारनिया (Cornea) कहलाता है। कारनिया एक मोटी पारदर्शक झिल्ली है। कारनिया के ऊपर एक बहुत पतली झिल्ली और होती है जिसके कंजंक्टाइवा (Conjunctiva) कहते हैं।

आँख के गोले की दीवार के तीन पर्त होते हैं—स्कलिराटिक (Sclerotic), कोरायड (Choroid) तथा रेटिना (Retina)। स्कलिराटिक पर्त सबसे ऊपरी पर्त है। कारनिया इसका ही उभरा हुआ अग्र भाग है। स्कलिराटिक पर्त श्वेत वर्ण कड़ी, ठोस, व सौत्रिक तन्तुओं से बनी होती है किन्तु इसका कारनिया वाला भाग पारदर्शक होता है। यह कड़ा पर्त आँख की रक्षा का कार्य करता है। आँख की माँसपेशियाँ भी इसी पर्त से जुड़ी रहती हैं।

स्कलिराटिक के बाद अन्दर को दूसरी पर्त कोरायड (Choroid) है। यह भी सौत्रिक तन्तु से बनती है और इसकी सेलों में काले रंग का द्रव्य भरा होने के कारण यह पूरी पर्त ही काली दीखती है। इस पर्त में रक्त केशिकाओं का जाल सा बिछा रहता है और इसी से यह पर्त आँख

के पोषण का काम करती है। कारनिया के पास पहुँचने पर इस पर्त के दोनों सिरे पतले सूत्रके आधारके बन जाते हैं। यह आइरिस (Fris) कहलाते हैं। दोनो ओर की आइरिस आपस में जुड़ी नहीं रहतीं है और इन्हीं के बीच एक गोल रिक्त स्थान रहता है जो काला सा दिखलाई देता है। यह छिद्र तारा या पुतली कहलाता है। तारा के अन्दर आइरस के कुछ पीछे आँख का पारदर्शक ताल रहता है। यह ताल उन्नतोदर (Covex) होता है। आइरिस से यह ताल बंधक तन्तुओं द्वारा बँधा रहता है। ताल कुल आँख को दो भागों में विभक्त करता है—एक ताल के आगे का भाग और दूसरा ताल के पीछे का भाग। आइरिस सिकुड़ और फैल सकती है।

आँख की तीसरी व सबसे भीतरी पर्त रेटिना कहलाती है। यह बहुत ही कोमल होती है और नाड़ी सूत्रों तथा विशेष प्रकार की सेलों से बनती है। इसका कारनिया के पास वाला भाग पतला और संविदनिक सेलों रहित होता है। पिछला भाग मोटा तथा संविदनिक सेलों से युक्त होता है और ठीक वही काम करता है जो कैमरे में लगी प्लेट करती है। आँख की पुतली के ठीक सीधमें रेटिनामें एक पीले रंग का धब्बा होता है। यह पीतबिंदु (Yellow-tso) कहलाता है। पीतविन्दु रेटिना का सबसे संविदनिक स्थान है और इसीसे देखे हुई चित्र की छाया इस पर पड़ने से हम उसे अधिक स्पष्ट देख सकते हैं। पीतबिंदु से थोड़ा हट कर (नाक की ओर) एक दूसरा स्थान है जो अंधविन्दु (Blind spot) कहलाता है। हमारे रेटिना के समस्त नाड़ीसूत्र यहाँ आकर एकत्र होते हैं और एक बड़ी नाड़ी बनाते हैं। यह नाड़ी दृष्टिनाड़ी कहलाती है। अंधविन्दु से होती हुई दृष्टिनाड़ी वृहत् मस्तिष्क के दृष्टिकेन्द्र तक जाती है। जिस समय हम कोई वस्तु देखते हैं और उसकी छाया पीतविन्दु पर पड़ती है तब यह दृष्टिनाड़ी ही उसकी संवेदना को मस्तिष्क तक पहुँचाती हैं। मस्तिष्क की सहायता से हम उस वस्तु के रूप रंग व आकार को देख तथा पहचान पाते हैं।

रेटिना और ताल के बीच का सारा स्थान खोखला होता है और जेलीकोष कहलाता है। इसमें एक स्वच्छ रंग का गाढ़ा पारदर्शक तरल भरा रहता है। यह जेलीरस (Vitreous humour) कहलाता है। कारनिया और ताल के बीच के रिक्त स्थान में पानी के समान एक पतला तरल भरा रहता है। यह जल रस (Aqueous humoue) कहलाता है और इस स्थान को जलकोष (Aqueous chamber) कहते हैं।

आँख की भीतरी बनावट जानने से पता लगता है कि यह कितना कोमल अंग है। इस कोमल अंग की रक्षा के लिये प्रकृति ने स्वयं ही प्रबन्ध कर दिया है। हमारी पलकें आँखों के लिए कपाटों का काम करती हैं। थोड़ा भी तीव्र प्रकाश हो, कोई हमारी आँख की ओर हाथ या अन्य कोई चीज़ बढ़ाये, हम स्वयं ही किसी उद्देश्य से हाथ आँखों की ओर ले जायँ, या तेज हवा बहती हो, तो पलकें झट से स्वयं बन्द होकर हमारी आँखों की रक्षा करती हैं। पलकों के किनारों पर छोटे-छोटे बाल होते हैं जो पक्ष्मन् (Eye lashes) कहलाते हैं। पलक सौत्रिक तन्तुओं से बनी हैं। इनकी ऊपरी सतह पर त्वचा की पर्त और अन्दर की ओर श्लैष्मिक झिल्ली की पर्त रहती है। श्लैष्मिक झिल्ली की पर्त में रक्त केशिकाओं का जाल बिछा रहती है और इसी कारण उसका रंग भी लाल दिखलाई पड़ता है।

ऊपर की पलक में कनपटी की ओर एक अश्रग्रन्थि होती है। इसमें नमकीन पानी के समान रस निकलता है। इस ग्रन्थि से १२ छोटी-छोटी नलिकायें निकलकर पलक की भीतरी सतह तक पहुँचती हैं। इन्हीं से होकर यह रस जो अश्रु (आँसू) कहलाता है, आँख की पलक की सतह पर आता रहता है। साधारणतः यह केवल इतनी ही मात्रा में निकलता है कि कारनिया तथा पलकों को तर रख सके। जिस समय किसी दुःख या पीड़ा से व्यथित होकर हम रोते हैं उस समय भावोद्वेग के कारण इसका प्रवाह बढ़ जाता है और आँसू हमारे नेत्रों से बाहर टपकने लगते हैं। नाक की ओर वाले भाग में जहाँ दोनों पलकें परस्पर मिलती हैं एक छिद्र होता है। इसमें से होकर ही तीव्र प्रवाह के समय कुछ आँसू नाक में भी पहुँच जाते हैं।

आँखों की पलकों के किनारों पर बालों की जड़ों से सटी हुई छोटी-छोटी ग्रन्थियाँ होती हैं। इनमें से एक चिकना द्रव्य सदा निकलता रहता है। यह पलकों को

चिकना रखता है। किसी ग्रन्थि का प्रवाह जब कारण वश रुक जाता है तो वह फूल जाती है। इसीको अंजनयारी कहते हैं।

हम पहले ही बतला चुके हैं कि पुतली से होकर जब प्रकाश की किरणें जलरस, ताल, व जेलीरस से होती हुई रेटिना के पीतविन्दु पर पड़ती हैं तभी हम किसी वस्तु को स्पष्ट देखते हैं। २५ फीट की दूरी तक की चीजें देखने में साधारणतः स्वस्थ नेत्रों को कोई कष्ट या कठिनाई नहीं होती। इससे दूर की या बहुत ही समीप की वस्तुयें देखने के लिए हमारे ताल को परिस्थिति के अनुकूल अपने को बनाना पड़ता है। ताल के समीप लगी हुई पेशियों के सिकुड़ने या फैलने से ही यह काम होता है।

आँखों के कुछ रोग

नेत्रों के कुछ दोष तो जन्मजात होते हैं और कुछ अर्जित। जन्मजात दोष तो साधारणतः ठीक नहीं हो सकते, किन्तु अर्जित दोषों का सावधानी से उपकर करने पर वे ठीक हो जाते हैं। कुछ दोष तो शिशुअवस्था से आँखों का उपयुक्त व्यवहार न करने से ही उत्पन्न हो जाते हैं। यदि मातापिता तथा अध्यापक सतर्क रहें तो ऐसे दोषों को उत्पन्न होने से रोक सकते हैं।

वर्ण अन्धता—इस दोष होने पर बालक विभिन्न रंगों में अन्तर नहीं जान सकता। यह दोष जन्तजात होता है और ठीक नहीं हो सकता।

निकट दृष्टि का रोग (Short sightedness)—इस दोष में लोगो को समीप की चीजें तो स्पष्ट दिखलाई पड़ती हैं किन्तु दूर की चीजें ठीक नहीं दिखलाई पड़तीं। यह दोष जन्मजात भी होता है और अर्जित भी। इसमें आँख का गोला कुछ अधिक लम्बा हो जाता है जिससे ताल और पीतविन्दु के बीच की दूरी स्वस्थ आँख की अपेक्षा अधिक हो जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि किसी बाहरी वस्तु से प्रकाश की किरणें जब आँख पर पड़ती हैं तो पीतविन्दु पर केन्द्रित न होकर रेटिना के पहले ही जेलीकोष के बीच केन्द्रित हो जाती हैं। इससे उस वस्तु का चित्र स्पस्ट नहीं दिखलाई पड़ता वरन् उसकी धुधली छाया दिखलाई पड़ती है। इससे हमारे नेत्रों को बहुत परिश्रम करना पड़ता है और फलस्वरूप हम उस वस्तु को अत्यन्त समीप से देखने की चेष्टा करते हैं। इस प्रकार हमारी आँखों की माँसपेशियों को सदा परिश्रम करते रहना पड़ता है और धीरे-धीरे यह रोग भी अधिक बढ़ता जाता है।

आँखों के इस दोष का उचित उपाय नतोदर (Concave) तालों वाला चश्मा लगाना है। इन नतोदर तालों पर उस वस्तु की किरणें जब पड़ती हैं तो ये उन्हें दूर छितरा देते हैं। आँख का उन्नतोदर ताल जब इन छितरी हुई किरणों को समेटता है तो ये पहले की अपेक्षा अधिक दूर पर केन्द्रित होती हैं। इस प्रकार पहले जेलीकोष तक ही रह जाने वाली किरणें अब रेटिना के पीतविन्दु तक पहुँच जाती हैं। इस प्रकार चश्मा लगा लेने से केवल दूर की चीजें ही दिखलाई नहीं पड़तीं वरन् यह दोष और अधिक बढ़ भी नहीं पाता।

पुस्तक आँख के बहुत पास रखकर पढ़ने, या इसी प्रकार रख कर अन्य कोई कार्य सीना, बुनना आदि करने से, पर्दे के बहुत समीप बैठकर तथा अधिक सिनेमा देखने से, बीमारी के बाद ही आँखों से अधिक परिश्रम लेने से, धीमे प्रकाश में पढ़ने आदि से ही यह दोष आँखों में उत्पन्न होता है। अतः माता पिता और अध्यापक को बच्चों के काम करने के ढंग को भी देखना चाहिए जिससे उन्हें इस कष्ट से बचाया जा सके। पुस्तक को पास रख कर पढ़ने की चेष्टा, सिर दर्द, ध्यान न लगना आँखों से पानी गिरना, दूर की चीजें अस्पष्ट दीखने का उलाहना करना, पुतली का बड़ा दीखना आदि इस रोग के स्पष्ट लक्षण हैं। इन लक्षणों के देखते ही खूब ध्यान से उनका उपचार कराना चाहिए, नहीं तो यह दोष बढ़कर नेत्रों को बिल्कुल अंधा हो कर देता है।

दूरदृष्टि का रोग (Long sightedness)—इस दोष के होने पर दूर की चीजें तो दिखलाई पड़ती हैं किन्तु समीप वाली स्पष्ट नहीं दिखलाई पड़तीं। इस दोष में आँख का गोला कुछ कम लम्बा हो जाता है अर्थात् उसके ताल और पीतविन्दु के बीच की दूरी स्वस्थ आँख को अपेक्षा कम होती है। इसका परिणाम यह होता है कि बाहरी वस्तु के प्रकाश की किरणें रेटिना पर न पड़कर उसके

पीछे पड़ती हैं और वह हमें अस्पष्ट दिखलाई पड़ती है। अति समीप की चीजें देख सकना ऐसे लोगों के लिए अत्यन्त कठिन होता है। अतः इस दोष के होने पर आँखों को अधिक परिश्रम करना पड़ता है।

छोटी आँखें व छोटी पुतली किताब दूर से पढ़ने की चेष्टा आदि इसके लक्षण हैं।

उन्नतोदर तालों वाला चश्मा लगाने से इस रोग को बढ़ने से रोका जा सकता है तथा सब चीजें भी स्पष्ट देखी जा सकती हैं। चश्मे के उन्नतोदर ताल प्रकाश की किरणों को समेटते हैं। कुछ सिमटी हुई ये किरणें जब आँख के ताल पर पड़ती हैं और वह उन्हें केन्द्रित करता है तो वे रेटिना पर ही पड़ती हैं। इस प्रकार वस्तुयें स्पष्ट दीखती हैं और हमारे नेत्रों को कोई विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता।

असमान दृष्टि का रोग—इस दोष में चीजें धुँधली और असमान दिखलाई पड़ती हैं। आँखों की बनावट में अन्तर होने से यह दोष उत्पन्न होता है। पूर्ण आँख की अथवा विशेष रूप से कारनिया की सतह इस दोष में असमान हो जाती है। इसके परिणाम स्वरूप प्रकाश की सब किरणें एक ही स्थान पर केन्द्रित नहीं हो पातीं। इसका उपचार भी उपयुक्त चश्मा लगाने से ही हो सकता है। चश्मे के ताल की सतह भी असमान होनी चाहिये जिससे उसकी तथा कारनिया की असमान सतहें मिलकर एक समान सतह बन सके। ऐसा होने पर हमें चीजें स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगेंगी।

आँखों का तिरछा होना (टिपरापन Squint—यह दोष दो कारणों से उत्पन्न होता है। यदि बालक की दोनों आँखों की दृष्टि में अन्तर होता है तो उसे प्रत्येक वस्तु देखने के लिये आँखों को इधर-उधर घुमा कर और बड़े परिश्रम से देखना पड़ता है। लगातार परिश्रम के कारण आँख की कोई पेशी खिंच जाती है तो कोई सिकुड़ जाती है। दूसरे यदि आँख की पेशियों में ही कोई दोष हो जाय तो उनके कारण आँख को इच्छानुसार घुमा फिरा सकना सम्भव नहीं होता और बालक टेढ़ी आँखों से ही देखने लगता है। यह दोष तीन साल की आयु में उत्पन्न होता अधिक पाया गया है। छोटे बच्चों की आँखों पर यदि लगातार बाल लटकते रहें तो भी वह इधर-उधर तिरछी निगाह से ही देखने लगता है। ऐसी परिस्थिति में भी यह दोष उत्पन्न हो जाता है। कभी-कभी आँख के कुछ अन्दर की ओर झुके रहने से भी यह दोष उत्पन्न हो जाता है। आपरेशन द्वारा प्रायः यह दोष ठीक हो जाता है। आपरेशन से सिकुड़ी हुई पेशी को बढ़ाया तथा खिंची हुई पेशी को काट कर छोटा किया जाता है। आरम्भ में बहुत थोड़ा सा दोषान्तर होने पर उपयुक्त चश्मे द्वारा भी लाभ हो सकता है।

आँख दुखना या आँख उठना (Sore eyes)—यह छूत से लगने वाला रोग है और गन्दगी के कारण फैलता है। गंदे कपड़े से मुँह पोछने आदि से आँखों में गन्दगी पहुँचती है। पलकें सूज जाती हैं और आँख से सफेद रंग का एक गाढ़ा पदार्थ, जिसे कीचड़ कहते हैं, निकलने लगता है। रोग बढ़ने पर कारनिया भी लाल पड़ जाता है। पलकें सूजकर ऐसी मोटी व भारी हो जाती हैं कि उनका खुलना कठिन हो जाता है। साधारणतः सोडा बाइकारबोनेट (Sodium bi-carbonate) से धोने तथा कोई कीटाणुनाशक (Atniseptic) मलहम लगाने से यह दो चार दिन में ठीक हो जाता है। किन्तु यदि लापरवाही से रोग बढ़ जाता है तो फिर विशेष डाक्टरी उपचार की आवश्यकता पड़ती है और ठीक होने में समय भी बहुत लगता है। आँख उठने का आभास पाते ही तत्परता से उसका उपचार करना चाहिये नहीं तो यह रोग बढ़ कर आँखों को खराब कर देता है। इससे कभी कभी दृष्टि तक समाप्त होते देखी गई है।

आँखों के दोषों से बचने के लिये यह आवश्यक है कि आँखों से उचित ढंग से काम लिया जाय। गलत विधि से या कम प्रकाश में बैठ कर पढ़ना, छोटे-छोटे अक्षर लिखने या पढ़ने की चेष्टा करना, बहुत अधिक बुनाई-सिलाई का काम करना आदि आँखों के लिये बहुत ही हानिकर है। अतः माता पिता व अध्यापक का कर्तव्य है कि वे आरम्भ से ही इस बात का ध्यान रखें कि बालक बालिकायें इस प्रकार की हानिकर आदतें न सीखने पायें।

श्रवणेन्द्रिय

जीवन में आँखों के बाद कानों का ही महत्त्व है। हम देखकर ही सब चीजों का ज्ञान प्राप्त करते हैं किन्तु कुछ चीजें ऐसी हैं जिनका शब्द बिना सुने हम उनका पूर्ण ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते। बालक अनुकरण द्वारा ही बोलना सीखते हैं। बोलने वाले के मुख की गति को देखकर वे उसका अनुकरण करते हैं, पर साथ ही अपने कानों से सुने शब्द का भी अनुकरण करते हैं। यदि कानों में किसी प्रकार का दोष हो तो बालक दूसरों के शब्दों को नहीं सुन सकता। ऐसी अवस्था में वह दूसरों के मुख की गति का अनुकरण चाहे कर ले, पर शब्दों का उच्चारण नहीं कर सकेगा। यही कारण है कि अधिकतर बहरे लोग गूँगे भी होते हैं। कुछ लोगों के कान एकदम बहरे तो नहीं होते पर उन्हें स्पष्ट सुनाई नहीं पड़ता या बहुत जोर की आवाज़ ही सुनाई पड़ती है।

हमारा कान तीन मुख्य भागों में विभाजित किया जा सकता है—बाह्य कान, मध्य कान, अंतस्थ या भीतरी कान।

चित्र १—कान—[१—कान का पर्दा, २—मुग्दर, ३—नेहाई, ४—रकाब, ५—अर्धचन्द्राकार नलियाँ, ६—कोकला]

बाह्य कान—यह कान का वह भाग है जिसे हम ऊपर से देख सकते हैं। यह कार्टिलेज से बना होता है। किन्तु इसके नीचे के भाग में, जो कुछ मोटा और मुलायम होता है, कार्टिलेज नहीं होता। वह सौत्रिक तन्तुओं से बना होता है। ऊपर से हम कान का जो छिद्र देखते हैं वह कर्णनली का बाहरी मुख है। कर्णनली १ से १½ इञ्च की एक छोटी सी नली है जो खोपड़ी की हड्डियों के बीच स्थित है। इसके चारों ओर की त्वचा में छोटी-छोटी ग्रंथियां होती हैं जिनमें से मोम की भाँति का सा पदार्थ निकलता रहता है। यह कान की रक्षा का प्राकृतिक उपाय है। कोई कीड़ा पतिंगा यदि कान की इस नली में घुस जाता है तो इसी मोम में चिपक कर रह जाता है, अन्दर घुस कर कान के कोमल भीतरी भागों को क्षति नहीं पहुँचा पाता। इसके अतिरिक्त यह मोम की नली की त्वचा को चिकनी और गीली भी रखता है। समय-समय पर बड़ी सावधानी से

इसे निकालते रहना चाहिये, अन्यथा बहुत अधिक मात्रा में एकत्र होकर हमारे सुनने में यह बाधा डालती है।

मध्यकान— बाह्यकान की समाप्ति पर खोपड़ी की हड्डियों के बीच में ही मध्यकान स्थित है। बाह्य व मध्य-कान को अलग करने वाला इनके बीच में एक पर्दा (Ear drum) रहता है। यह पर्दा कोमल झिल्ली का बना होता है और इसमें ऐसा कोई छिद्र या मार्ग नहीं होता जिससे बाह्य व मध्य कान में कोई संबंध स्थापित हो सके। पर्दे के पीछे की ओर तीन छोटी-छोटी हड्डियाँ होती हैं। सबसे पहली हड्डी मुग्दर (Hammer) कहलाती है। इसका आकार हथौड़े के सदृश होता है। दूसरी हड्डी नेहाई (Anvil) कहलाती है और इसका एक भाग मोटा तथा दूसरा पतला होता है। तीसरी हड्डी रकाब के आकार की होने से रकाब (Stirrup) ही कहलाती है। ये तीनों हड्डियाँ बंधक तन्तुओं द्वारा क्रम से परस्पर एक दूसरे से जुड़ी रहती हैं। चित्र १ से यह सम्बन्ध स्पष्ट हो जायेगा। मध्य-कर्ण के नीचे की ओर से कंठ तक भी एक नली जाती है। यह कंठकर्णी नली (Eustachion Tube) कह-लाती है। मध्यकान के दूसरे सिरे पर भी एक पतली झिल्ली रहती है जो भीतरी पर्दा (Inner Drum) कहलाती है।

अंतस्थ कर्ण—मध्य कर्ण के बाद अंतस्थ कर्ण स्थित है। इसके भी तीन भाग होते हैं –(१) तीन अर्द्धचन्द्रा-कार नलियाँ (Semicircular canals), (२) जौ के आकार की एक नन्हीं सी बन्द कोठरी जो कर्णकुटी (Vestibule) कहलाती है, तथा (३) कोकला (Cochlea)।

मध्यकान की भीतरी झिल्ली से कुछ हट कर कर्ण-कुटी स्थित है। मध्यकर्ण की ओर के कर्णकुटी के भाग से तीन नलियाँ निकलती हैं जो थोड़ा सा घुमाव देकर फिर उसमें ही मिल जाती हैं। इस प्रकार ये अर्द्धचन्द्र का सा आकार बनाती हैं और इसीसे इनका नाम अर्द्धचन्द्राकार नलियाँ पड़ा है। इन नलियों में उन नाड़ियों के सिरे मिलते हैं जो लघुमस्तिष्क से आती हैं। इनका संबंध शरीर के समतुलन से है।

कर्णकुटी के पिछले सिरे के छिद्र से एक और नली निकलती है जो घोंघे की भाँति खूब मुड़ी हुई रहती है। यही कोकला (Cochlea) है। इसमें श्रवण नाड़ी के सिरे रहते हैं। यही नाड़ी हमारे सुने हुए शब्दों को बृहत् मस्तिष्क में श्रवण केन्द्र तक पहुँचाती है।

कर्णकुटी, अर्द्धचन्द्राकार नलियों तथा कोकला में एक तरल पदार्थ भरा रहता है।

सुनने की क्रिया—जब हम बोलते हैं तो हमारे शब्दों से पास की वायु में लहरें (Vibrations) उत्पन्न होती हैं। वायु में शब्दों से उत्पन्न हुई लहरें जब कान के बाहरी भाग से टकराती हैं तब वह इन्हें एकत्रित रूप से कर्णनली में भेज देता है। कर्णनली में प्रवेश करने पर ये स्वर लहरें कान के पर्दे से टकराती हैं जिससे मध्यकर्ण की हड्डियों में भी ठीक वैसी ही लहरें उत्पन्न हो जाती हैं। ये लहरें आगे बढ़ कर अंतस्थ कर्ण के तरल द्रव्य में भी लहरें उत्पन्न कर देती हैं। इस तरल द्रव्य की लहरों का समाचार वहाँ पर स्थित श्रवण नाड़ी मस्तिष्क के श्रवण केन्द्र तक पहुँचाती है और तब मस्तिष्क की सहायता से हम सुने हुए शब्दों को पहचान पाते हैं।

कान के रोग

कान में आँख की भाँति अधिक दोष नहीं पाये जाते। जब कान की बनावट में ही कोई अन्तर या कमी होती है तभी स्वर लहरों को मस्तिष्क तक पहुँचने में कठिनाई होती है और फलस्वरूप हमारे सुनने में बाधा पड़ती है। कान का पर्दा यदि फट जाय तो हम बिल्कुल नहीं सुन सकते। कान में तिनके आदि डालने, कनपटी पर या सिर पर ज़ोर से मारने या चोट लगने से इसके फटने की संभा-वना रहती है। कुक्कुर खाँसी (Whooping cough), निमोनिया (Pneumonia), सरसाम (Meningitis) आदि जैसे कठिन रोगों में भी प्रायः कान में दोष उत्पन्न हो जाते हैं और हमारे सुनने में अन्तर पड़ने लगता है। अतः रोग की अवस्था में तथा उसके बाद भी बहुत सावधानी की आवश्यकता होती है। कान में किसी प्रकार की फुड़िया-फुँसी होना भी बड़ा खतरनाक है। यदि घाव जल्दी नहीं भरता तो यह अन्दर ही अन्दर फैलकर मस्तिष्क तक पहुँच जाता है। ऐसी अवस्था में यह प्रायः सदा ही जीवन के लिए घातक सिद्ध होता है।

घ्राणेन्द्रिय

घ्राणेन्द्रिय का अंग हमारी नासिका है। नासिका का जो भाग ऊपर से दिखलाई पड़ता है उसे बाह्य नाक कहा जाता है। इसका कड़ा भाग जो मस्तिष्क के समीप से आरम्भ होता है हड्डी से बनता है। नीचे का कोमल भाग कार्टिलेज, माँस व त्वचा से बनता है। नाक के दोनों छिद्र नथुने या नासिकारंध्र कहलाते हैं। इन छिद्रों से दीखने वाली नाक की भीतरी सतह श्लैष्मिक झिल्ली से बनी हुई है। इसमें छोटे-छोटे रोयें होते हैं। दोनों नासिकारंध्रों की नलियाँ थोड़ा ऊपर बढ़कर फिर नीचे की ओर झुक जाती हैं और हमारे तालू के पिछले भाग में समाप्त हो जाती हैं। नाक की ऊपरी सतह के कुछ भाग में त्वचा के भीतर छोटी-छोटी सांवेदनिक सेलें तथा नाड़ियाँ होती हैं।

हम पढ़ चुके हैं कि श्वास लेने का काम नाक ही करती है। श्वास के लिये खींची हुई वायु जब नाक के अन्दर जाती है तो उसके धूल के कण आदि नाक के रोओं में अटक कर रह जाते हैं और इस प्रकार शुद्ध होकर वायु अन्दर फेफड़ों की ओर बढ़ती है। धूल आदि को अन्दर से रोकने के अतिरिक्त नाक से एक लाभ और है। इसकी त्वचा की भीतरी पर्त की ग्रन्थियों से सदा एक तरल पदार्थ निकल कर नाक को अन्दर से गीला रखता है। इस तरल के सम्पर्क में आने पर वायु भी कुछ सीली हो जाती है। नाक की भीतरी सतह पर रक्त केशिकाओं का भी घना जाल है। इन केशिकाओं के रक्त की गर्मी के सम्पर्क में आकर यह वायु कुछ गर्म भी हो जाती है। इस प्रकार नाक श्वास की वायु को सीली व गर्म भी बना देती है और बाहर की शुष्क व ठंढी वायु सीधे फेफड़ों में पहुँच कर उन्हें हानि नहीं पहुँचा पाती।

वायु के साथ जब किसी प्रकार की गंध के कण नाक मे पहुँचते हैं तो वहाँ की सांवेदनिक सेलें तुरन्त अपनी नाड़ियों द्वारा गंधपिंडों तक उसकी सूचना पहुँचाते हैं। वहाँ से गंधनाड़ी मस्तिष्क के गंध-केन्द्र तक समाचार पहुँचाती है और तब हम उस गंध विशेष को पहचानते है। यदि यह गंध किसी प्रकार की सुगन्ध होती है तो हम बार बार उसे सूँघ कर उसका आनन्द उठाते हैं। इसके विपरीत यदि वायु किसी गंदे स्थान से आती है और उसकी गन्ध दुर्गन्ध होती है, तो हम तुरन्त वहाँ से हट जाते हैं। हम साथ ही अपने श्वास को रोकने की चेष्टा करते हैं जिससे गन्दी वायु हमारे फेफड़ों तक न पहुँच सके। यदि हमारी नाक में इस प्रकार दुर्गन्ध और सुगन्ध पहचानने की शक्ति न होती तो हम गन्दे से गन्दे स्थान के समीप की वायु में भी श्वास निस्संकोच ले लेते। ऐसी परिस्थिति में अनेकों प्रकार के रोगों के होने की संभावना रहती।

किसी वस्तु की गन्ध अनुभव करने के लिए यह आवश्यक है कि वायु में मिले हुये उसके गन्धकण नाक की ऊपरी सतह से, जहाँ गन्ध सेलें स्थित हैं, टकरायें। यदि ऐसा नहीं होता तो या तो हम गन्ध अनुभव ही नहीं कर पाते या बहुत ही हल्की सी गन्ध अनुभव करते हैं।

यह तो सभी जानते हैं कि हम खाद्यवस्तुओं का स्वाद अपनी जिह्वा से अनुभव करते हैं। पर वास्तव में अकेली जिह्वा यह काम नहीं कर सकती; उसे नाक की गन्ध सेलों की सहायता की आवश्कता पड़ती है। यह साधारण अनुभव की बात है कि जब कोई वस्तु नाक बन्द कर के खाई या पी जाती है तो हम उसका पूरा स्वाद अनुभव नहीं करते। इसीलिए कुनैन आदि कड़वी दवायें पीते समय लोग नाक बन्द कर लेते हैं। हम ऊपर कह चुके हैं कि नाक के छिद्र मुख में तालू के ऊपर खुलते हैं। जब मुख में भोजन पहुँचता है तब उसके गन्धकणों को लेकर मुख की हवा इन्हीं छिद्रों से नाक में पहुँचती है और वहाँ की गन्ध सेलों से टकराती है। बाहर से भी भोजन के गन्धकण वायु द्वारा नाक में पहुँचते हैं। इस प्रकार नाक की गन्ध सेलें जिह्वा को भोजन का स्वाद अनुभव करने में सहायता देती हैं।

कुछ पशुओं की गन्ध अनुभव करने की सेलें अधिक तीव्र होती हैं। मनुष्यों में भी इस सम्बन्ध में व्यक्तिगत अन्तर होते हैं। गन्धसेलों या गन्धनाड़ी में रोग या चोट द्वारा किसी प्रकार का दोष उत्पन्न होने से गन्ध अनुभव करने में बाधा पड़ती है।

स्वादेन्द्रिय

हमारी जिह्वा ही हमारी स्वादेन्द्रिय है। यह हमारे

गले के भीतर नीचे की सतह से आरम्भ होती है और आगे की ओर दाँतों के समीप तक आती है। सामने की ओर पीछे की अपेक्षा यह पतली और नुकीली हो जाती है। गले की व निचले जबड़े की हड्डियों से यह माँस-पेशियों द्वारा जुड़ी रहती है। जिह्वा माँस से बनती है और उस पर श्लैष्मिक झिल्ली की पर्त रहती है। अपनी माँसपेशियों के संकोचन-विमोचन के कारण यह फैल व सिकुड़ सकती है तथा आगे-पीछे व ऊपर-नीचे सब ओर घूम भी सकती है। बोलने में तथा भोजन चबाने के लिए मुँह में इधर से उधर सरकाने में जिह्वा से बड़ी सहायता मिलती है।

जिह्वा की श्लैष्मिक झिल्ली की पर्त पर नन्हें-नन्हें बहुत से दाने पाये जाते हैं। इनमें से कुछ दाने तो स्पर्श व गर्मी-सर्दी अनुभव करते हैं और कुछ स्वाद। स्वाद अनुभव करने वाले दाने स्वाद-कलियाँ (Taste buds) कहलाते हैं। जिह्वा की नोक पर तथा जिह्वा के पिछले भागों में ही स्वाद-कलियाँ विशेष रूप से होती हैं। स्वादकलियों से बाल के सदृश सूक्ष्म नाड़ियाँ निकल कर मुख्य स्वाद-नाड़ी में पहुँचती हैं। यह स्वाद-नाड़ी स्वाद-कलियों के अनुभव को वृहत् मास्तिष्क के स्वाद-केन्द्र तक पहुँचाती है। तब मस्तिष्क की सहायता से हम उस स्वाद को पहचानते हैं।

स्वादकलियों के सम्बन्ध में एक विशेषता और है। विभिन्न स्थानों की स्वादकलियाँ विभिन्न प्रकार का स्वाद अनुभव करती हैं, जैसे मीठा स्वाद जीभ की नोक की स्वाद-कलियाँ अनुभव करती हैं और जीभ के पीछे के भाग की स्वाद-कलियाँ कड़वा स्वाद।

स्पर्शेन्द्रिय

विसर्जन संस्थान के वर्णन में हम पढ़ चुके हैं कि त्वचा पसीने के रूप में हमारे शरीर की गन्दगी निकाल कर हमारे स्वास्थ्य को ठीक रखने में सहायता पहुँचाती है। इसके अतिरिक्त चीजों के स्पर्श का तथा गर्मी-सर्दी का अनुभव भी हमें त्वचा द्वारा ही होता है। इसी से इसे स्पर्शेन्द्रिय भी कहा जाता है।

हमारी त्वचा की बनावट वैसी सरल नहीं है जैसी ऊपर से देखने से मालूम पड़ती है। चित्र २ से त्वचा की बनावट स्पष्ट हो जायगी। त्वचा के दो पर्त होते हैं। ऊपर की पर्त उपचर्म (Epiuermis) कहलाती है। इसके ऊपर के सेल सूख-सूख कर झरते रहते हैं और उनके स्थान पर सदा नये सेल निकलते रहते हैं। इस पर्त में लाखों नन्हें-नन्हें छिद्र होते हैं जिनमें हमारे रोयें रहते हैं।
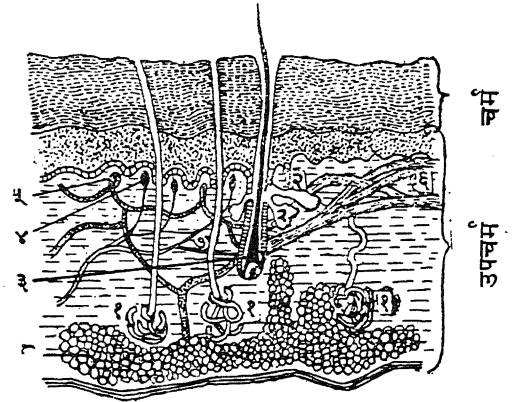
चित्र २—त्वचा
[१—स्वेद ग्रन्थियाँ, २—तेल ग्रन्थियाँ, ३—रोम, ४—ज्ञान कँगूरे, ५—रक्त कँगूरे, ६—माँस पेशियाँ, ७—नाड़ियाँ, ८—वसा]

उपचर्म के नीचे वाली दूसरी पर्त चर्म (Dermis) कहलाती है। यह पर्त उपचर्म से कुछ मोटी होती है और वास्तव में त्वचा का मुख्य भाग भी यही है। इसमें ही त्वचा की रक्तकेशिकायें, नाड़ियों के सिरे (Touch Corpuscles), स्वेदग्रन्थियाँ (Sweat Glands) तथा रोमों की जड़ें (Roots of the hairs) रहती हैं। रोमों की जड़ों से लगी हुई नन्हीं-नन्हीं ग्रन्थियाँ होती हैं। इनमें एक प्रकार का चिकना द्रव्य बनता है जो रोमों व त्वचा को कोमल व चिकना बनाये रहता है।

त्वचा की चर्म नामक पर्त में कुछ चपटी सेलें भी होती हैं। ये स्पर्श सेलें (Tactile cells) कहलाती हैं। इनका सम्बन्ध नाड़ी सूत्रों से होता है। ये शरीर के सब भागों में स्थित हैं, कहीं कम और कहीं अधिक। त्वचा पर किसी प्रकार के दबाव, गर्मी-सर्दी, या किसी वस्तु के स्पर्श का ज्ञान होते ही ये सेलें उत्तेजित हो उठती हैं। अपने से संबंधित नाड़ी-सूत्रों द्वारा उस समाचार को

मस्तिष्क के स्पर्श केन्द्र तक पहुँचाती हैं। तब मस्तिष्क हमें उसका चेतन रूप से ज्ञान कराता है।

कुछ स्थानों की त्वचा अधिक सचेतन होती है और स्पर्श का अनुभव बड़ी शीघ्रता और तत्परता से प्राप्त करती है, जैसे ओठ व अँगुलियों के सिरे। इसके विपरीत कुछ स्थानों की त्वचा बहुत ही कम सचेतन होती है और बहुत ही कम अनुभव प्राप्त कर सकती है, जैसे पीठ की त्वचा।

शरीर के विभिन्न अंगों की स्पर्शशक्ति में तो अन्तर होता ही है, किन्तु विभिन्न मनुष्यों की स्पर्शशक्ति में भी परस्पर व्यक्तिगत अन्तर होते हैं। कुछ लोगों की स्पर्शशक्ति बहुत ही कम होती है और कुछ की अधिक। स्पर्शशक्ति तीव्र होने से मनुष्य केवल स्पर्शमात्र से ही वस्तुओं का अनुभव प्राप्त कर लेते हैं। अंधों में यह विशेषता विशेष रूप से पाई जाती है। उनकी स्पर्शशक्ति बड़ी तीव्र होती है। दृश्येन्द्रिय के अभाव में वे स्पर्शेन्द्रिय द्वारा ही सब चीजों का अनुभव प्राप्त करते हैं।

मशीन की चिकनाइयाँ

(Lubricants)

[ले०—डा० सन्त प्रसाद टंडन]

मशीनों की चिकनाइयाँ पुराने समय में अधिकतर बैलगाड़ी, घोड़ागाड़ी आदि की धुरियों में या कुछ इसी प्रकार की अन्य साधारण मशीनों में उपयोग की जाती थीं, किन्तु आजकल विभिन्न प्रकार के यंत्र तथा कल-पुर्ज़ों में इनका उपयोग होता है। हमारे उपयोग में आने वाली वर्तमान मशीनें विभिन्न प्रकार की हैं और विभिन्न गति से चलती हैं। मशीन के स्वभाव तथा उसके चलने की गति के अनुसार ही उसके लिए चिकनाई के पदार्थ का चुनाव करना पड़ता है। एक ही चिकनाई सब प्रकार की मशीनों के लिए उपयोगी नहीं हो सकती। एक बड़े इंजिन के बड़े पहिये (Fly-Wheel) के लिए जो चिकनाई उपयुक्त होगी वह छोटी सी घड़ी के पहिये के लिए कभी उपयुक्त नहीं हो सकती। इसी प्रकार एक डायनमो (Dynamo) की धुरी के लिए जो १००० चक्र प्रति मिनिट की गति से घूम रही है, जो चिकनाई उपयोगी सिद्ध होगी वह भी इंजिन के तथा घड़ी के पहियों की चिकनाई से भिन्न होगी। अतः यह स्पष्ट है कि विभिन्न कार्यों में आने वाली तथा विभिन्न गतियों से घूमने वाली मशीनों के लिए विभिन्न प्रकार की चिकनाइयों की आवश्यकता होती है। इसी कारण मशीनों के लिए चिकनाइयाँ बनाते का समय इन सब बातों का ध्यान रखना बहुत जरूरी है। और यही कारण है कि इन पदार्थों के बनाने का काम काफ़ी कठिन है। बिना रसायन शास्त्र की सहायता के यह कार्य सम्भव नहीं हो सकता। विभिन्न गुण वाली चिकनाइयाँ बनाने में बहुत तरह के रासायनिक पदार्थों का उपयोग करना पड़ता है। इन सब पदार्थों के गुणों की पूरी जानकारी होने पर ही उन्हें उचित अनुपातों में मिलाने से चिकनाई बनाने में सफलता मिल सकती है।

चिकनाई या ग्रीज़ शब्द एक व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होता है। इससे उन सब पदार्थों का बोध होता है जो मशीनों तथा कलपुर्ज़ों के उन स्थानों पर लगाये जाते हैं जहाँ गति के समय दो पुर्ज़ों में परस्पर रगड़ लगती है।

कभी कभी ग्रीज़ शब्द का व्यवहार उन पदार्थों के लिए भी किया जाता है जो चमड़े को मुलायम करने के लिए इस्तेमाल में आते हैं। अतः हम ग्रीज़ों को दो विभागों में रक्खेंगे—मशीन की ग्रीज़ें और चमड़े की ग्रीज़ें।

प्रत्येक चिकनाई का उद्देश्य, चाहे वह घड़ी के पुर्ज़ों के लिए हो चाहे किसी बड़ी मशीन के लिए, गति के विरुद्ध कार्य करने वाली रुकावट (Resistance) या रगड़ को कम करना है। चमड़े की ग्रीज़ का उद्देश्य इसके अतिरिक्त चमड़े को मुलायम भी रखना होता है।

बहुत सी मशीनों में रगड़ (Frictional resistance) इतनी अधिक होती है कि इसके कारण

बहुत सी शक्ति का अपव्यय होता है। साथ ही इस रगड़ से जो ताप उत्पन्न होता है वह प्रायः इतना अधिक होता है (विशेष कर बहुत गति से घूमने वाले पुर्जों में) कि मशीन का वह भाग लाल तवे की तरह गरम हो जाता है। इसके कारण मशीन का वह भाग अधिक गलता तथा टूटता है। चिकनाई के व्यवहार से पुर्जों की परस्पर की रगड़ घट जाती है और परिणाम स्वरूप शक्ति का अपव्यय कम होता है और पुर्जों का घिसना तथा गलना भी घट जाता है।

बहुत सी मशीनें इतनी तीव्र गति से चलती हैं कि बिना चिकनाई के उन्हें चलाना भयप्रद होता है। उदाहरणार्थ रेलगाड़ियों के पहिये अपनी धुरियों पर इतनी तेजगति से चलते हैं कि यदि उनमें ग्रीज़ न लगाई जाय तो पहिये और धुरी के वे भाग जिनमें आपस में रगड़ लगती है इतना अधिक गरम हो जायँ कि वहीं से गल कर टूट जायँ। ऐसी दशा में रेलगाड़ी के लिये कितना खतरा है, यह हम भली भाँति जानते हैं। इसी प्रकार बिजली के पंखे, डायनमों तथा सेंट्रीफ्यूगल मशीनों की धुरियाँ खूब तेज़ गति से घूमती हैं और यदि बिना ग्रीज लगाये चलाई जायँ तो खतरे की सम्भावना है। यह स्पष्ट है कि चिकनाई की अनुपस्थिति में मशीन के वे भाग जो चलने या घूमने में किसी दूसरे भाग से रगड़ खाते हैं बहुत शीघ्र इस रगड़ के कारण घिसकर नष्ट हो जायँगे। जिस प्रकार रेती के रगड़ने से धातु झड़ कर गिरती है उसी प्रकार परस्पर की रगड़ से पुर्जों की सतह झड़ती रहती है।

अतः यह स्पष्ट है कि चिकनाई दो दृश्यों से उपयोगी है—(१) इसके उपयोग से पुर्जों की रगड़ बहुत कम हो जाती है और शक्ति का विशेष अपव्यय नहीं होने पाता, (२) परस्पर की रगड़ कम हो जाने से पुर्जों का घिसना और टूटना कम होता है।

विभिन्न प्रकार के चिकनाई के पदार्थों का वर्णन करने के पूर्व हमें यहाँ पहले यह समझ लेना चाहिए कि चिकनाई की उपयोगिता का वास्तविक कारण क्या है? यदि हम एक शक्तिशाली ताल द्वारा किसी कड़ी तथा चिकती से चिकनी धातु की परीक्षा करें तो हम देखेंगे कि सतह वास्तव में चिकनी नहीं है बल्कि उस पर धारियाँ तथा गढ़े मौजूद हैं। अतः यह स्पष्ट है कि चिकनी से चिकनी धातु की सतह भी वास्तव में आदर्श चिकनी नहीं होती। यदि हम ऐसी दो सतहों को एक दूसरे ऊपर से रगड़ खाते कल्पना करें तो हम देखेंगे कि एक सतह के उभड़े हुये भाग दूसरी सतह के गढ़ों में जकड़ जाते हैं। अब ये सतहें जब विरुद्ध दिशा में गति करती है तो एक सतह के उभड़े भागों को दूसरी सतह के गढ़ों में से निकलना पड़ता है। इस कार्य में खूब रगड़ लगती है और काफ़ी शक्ति का अपव्यय होना स्वाभाविक है।

एक और भी कठिनाई उपस्थित होती है। जब गति बहुत तीव्र होती है तो एक सतह के कुल उभड़े हुये भाग दूसरी सतह के गढ़ों में से एक समान गति से नहीं निकल पाते। परिणाम यह होता है कि बहुत से उभार रगड़ द्वार गढ़े के अन्दर ही टूट जाते हैं। इसमें भी शक्ति का अपव्यय होता है और साथ ही दोनों सतहों का घिसना सब जगह एक समान न होकर कहीं अधिक होता है और कहीं कम जिसके कारण पुर्जे अधिक शीघ्र खराब हो जाते हैं।

मशीनों के वे पुर्जे जो एक ही पदार्थ के बने हों परस्पर की रगड़ से अधिक जल्दी घिसते हैं, किन्तु भिन्न धातुओं या भिन्न धातु मिश्रणों के पुर्जे यदि परस्पर सम्पर्क में होते हैं तो अपेक्षाकृत कम घिसते हैं। इसका कारण यह है कि समान पदार्थों के पुर्जों में उभड़े स्थान तथा गढ़े एक सदृश होते हैं और एक दूसरे में बहुत जकड़ कर बैठते हैं और आसानी से शीघ्र अलग नहीं हो पाते। परिणाम यह होता है कि रगड़ अधिक लगती है। भिन्न पदार्थों के पुर्जों में उभड़े भाग तथा गढ़े एक सदृश नहीं होते और इस कारण एक दूसरे में बहुत कस कर नहीं बैठते। अतः उन्हें एक सरे से अलग निकालने में कम शक्ति का अपव्यय होता है और कम रगड़ लगती है। इसी कारण वे पुर्जे जो एक दूसरे के

सम्पर्क में रहते हैं अधिकतर भिन्न धातुओं के बनाये जाते हैं।

केवल कुछ को छोड़कर सभी मशीनों की चिकनाइयाँ या तो एकदम तरल होती हैं या मक्खन की भाँति अर्ध ठोस अवस्था में होती हैं। पिछले प्रकार की चिकनाइयाँ भी मशीनों में रगड़ द्वारा उत्पन्न ताप के कारण तरल रूप में परिणत हो जाती हैं। इस प्रकार चिकनाई का पदार्थ सतह पर एक गाढ़े तेल के रूप में फैल जाता है और सतह के सब गढ़ों को भर देता है जिसके फलस्वरूप सतह पहले की अपेक्षा अधिक चिकनी हो जाती है। अतः जब दो सम्पर्क में रहने वाली सतहों पर चिकनाई डाल दी जाती है तो उन दोनों के गढ़ों में तरल चिकनाई भर जाती है। फल यह होता है कि एक के उभार दूसरे के गढ़ों में अब जकड़ने नहीं पाते और इन दोनों सतहों में रगड़ कम लगती है।

कुछ चिकनाइयाँ ऐसी हैं जो महीन चूर्ण के रूप में व्यवहार की जाती हैं और सतहों के बीच में बराबर इसी रूप में बनी रहती हैं। उनका कार्य भी लगभग तरल चिकनाइयों की भाँति ही होता है।

प्रत्येक मशीन की चिकनाई का मुख्य कार्य सतहों की परस्पर की रगड़ को कम करना है। अतः वे सब पदार्थ जो इस उद्देश्य की पूर्ति में सहायक हो सकें मशीनों की चिकनाई तैयार करने के काम में लाये जा सकते हैं।

साधारणतः लोग समझते हैं कि विभिन्न मशीनों के उपयुक्त चिकनाई तैयार करना कोई कठिन कार्य नहीं है, किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। चिकनाई बनाने की कठिनता का आभास हमें तब होता है जब हम चिकनाई में वर्तमान होने वाले आवश्यक गुणों की जाँच करते हैं।

थोड़े ही दिनों से जब से मशीनों की उन्नति के कारण विभिन्न गुणों से युक्त चिकनाइयों की आवश्यकता अनुभव होने लगी है, लोगों ने मशीनों की चिकनाइयाँ तैयार करने की कठिनाइयों को समझना आरम्भ किया है। अब तक इस दिशा में बराबर प्रयत्न होते रहने पर भी प्रत्येक प्रकार की मशीन के लिए आदर्श चिकनाई बनाने में हम सफल नहीं हो सके हैं।

आदर्श चिकनाई में होने वाले आवश्यक गुण

एक अच्छी मशीन की चिकनाई में निम्नलिखित गुण होने आवश्यक हैं—

(१) **सस्तापन**—यह गुण बहुत आवश्यक है। चिकनाई मँहगी होने पर व्यवहार में नहीं लाई जा सकती। चिकनाई बनाने में जो पदार्थ व्यवहार में लाये जायँ वे सस्ते हों और साथ ही चिकनाई बनाने की विधि भी सस्ती हो जिससे तैयार पदार्थ सस्ता रहे।

(२) **चिकनाई का टिकाउपन**—तैयार हुई चिकनाई सदा एक सी गुणों वाली हो और बहुत दिनों तक बिना किसी परिवर्तन के स्थायी रह सके।

(३) **धातुओं पर कोई विनष्टकारी प्रभाव न पड़े**—कुछ चिकनाइयाँ जो अम्लीय होती हैं धातुओं को धीरे धीरे गला देती हैं। अतः ऐसी चिकनाइयों के व्यवहार से मशीन के पुर्जे शीघ्र खराब हो जाते हैं। घड़ियों, सिलाई की मशीन आदि महीन पुर्जों के लिए इस्तेमाल होने वाली चिकनाइयों में इस गुण का होना विशेष आवश्यक है।

(४) **विभिन्न तापक्रमों पर एक सा रहना**—यह गुण सब से अधिक महत्त्व का है और साथ ही सब से कठिनता से प्राप्त होता है। अधिकाँश चिकनाइयाँ तापक्रम बढ़ने पर अधिक तरल तथा कम होने पर अधिक गाढ़ी हो जाती हैं।

प्रत्येक चिकनाई के लिए एक विशेष सीमा तक तरल होना आवश्यक है। यदि इस सीमा से वह अधिक तरल होगी तो बह कर व्यर्थ नष्ट हो जायगी और यदि अधिक गाढ़ी होगी तो पुर्जों पर ठीक से लगाई नहीं जा सकेगी। चिकनाई की तरलता का ठीक नियन्त्रण न हो सकने के कारण बहुत सी कठिनाइयाँ सामने आती हैं। इन कठिनाइयों से बचने के लिए विभिन्न ऋतुओं में विभिन्न चिकनाइयों का व्यवहार किया जाता है। जो चिकनाई जिस ऋतु

में उपयुक्त तरल की अवस्था में रहती है उसे उसी ऋतु में इस्तेमाल किया जाता है।

चिकनाई का वर्गीकरण

मशीनों की चिकनाइयों का वर्गीकरण कई प्रकार से किया जाता है—(१) उन पदार्थों के आधार पर जिनसे वे तैयार की जाती हैं, (२) चिकनाई के भौतिक गुणों के आधार पर, तथा (३) उनकी विशेष उपयोगिताओं के आधार पर।

मशीनों की चिकनाइयाँ जिन पदार्थों से तैयार की जाती हैं वे विभिन्न रासायनिक वर्गों के विभिन्न गुणों वाले पदार्थ होते हैं। अतः पदार्थों के आधार पर चिकनाइयों का वर्गीकरण करने के पूर्व उन सब पदार्थों के रासायनिक तथा भौतिक गुणों का पूरा ज्ञान होना आवश्यक है।

भौतिक गुणों के आधार पर चिकनाइयों के दो विभाग किये जा सकते हैं—(१) तरल और (२) ठोस। प्रायः इन दोनों विभागों को स्पष्ट रूप से अलग अलग करना कठिन हो जाता है। कुछ चिकनाइयाँ ऐसी होती हैं जो तरल और ठोस की बीच की अवस्था में रहती हैं। अतः इन चिकनाइयाँ के लिए यह कहना कठिन हो जाता है कि उन्हें तरल वर्ग में रक्खा जाय या ठोस वर्ग में। अतः भौतिक गुणों के आधार पर चिकनाइयों का वर्गीकरण विशेष लाभकारी नहीं है।

विभाजन की तीसरी विधि चिकनाई के उपयोगों के आधार पर है। जो ग्रीज़ रेल में इस्तेमाल होती है उसे रेल-ग्रीज़ तथा जो मशीन में इस्तेमाल होती है उसे मशीन-ग्रीज़ कह सकते हैं। इसी प्रकार इंजिन-तेल, मोटर-तेल आदि नाम से चिकनाइयाँ पुकारी जा सकती हैं। विभाजन की यह रीति भी बहुत ठीक नहीं है क्योंकि एक पुर्जे या मशीन के लिए बनाई गई चिकनाई दूसरे पुर्जे तथा दूसरी मशीन में भी व्यवहार में आती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्गीकरण की तीनों ही विधियों में पहली विधि ही, जिसमें चिकनाईयों के रासायनिक पदार्थों के आधार पर उनका वर्गीकरण किया जाता है, अधिक वैज्ञानिक है। इस विधि के अनुसार चिकनाइयों के निम्न विभाग किये जा सकते हैं—

(१) वसा वर्ग की चिकनाइयाँ—इस वर्ग में वे चिकनाइयाँ हैं जिनमें एक या कई वसा पदार्थ तरल या ठोस रूप में हों।

(२) रासायनिक चिकनाइयाँ—वे चिकनाइयाँ जो रासायनिक रीति से बनाये गये पदार्थों से तैयार की जाती हैं इस वर्ग में रक्खी जाती हैं। उदाहरणार्थ खनिज तेल, कोलतार तेल, पेट्रोलियम जेली, रोज़िन तेल आदि सब चिकनाइयाँ इसी वर्ग में हैं। साबुन या साबुन का इमलशन भी जब चिकनाई के रूप में इस्तेमाल होता है इसी वर्ग में रक्खा जाता है।

(३) खनिज चिकनाइयाँ—इस वर्ग में केवल वे खनिज चूर्ण सम्मिलित किये जाते हैं जिनमें चिकनाहट का गुण होता है और जो चिकनाई के रूप में मशीनों में व्यवहार किये जा सकते हैं। इस वर्ग में साबुन का पत्थर (Soap stone), ग्रैफाइट (Graphite) आदि हैं।

कुछ समम पूर्व तक वसा पदार्थ ही विशेष रूप से मशीनों की चिकनाइयों के काम में लाये जाते थे किन्तु जबसे पेट्रोलियम के उद्योग-धंधों की उन्नति हुई है विभिन्न प्रकार के खनिज तेल तथा ग्रीजें चिकनाई के रूप में इस्तेमाल होने लगी हैं। वसा पदार्थों की तुलना में खनिज पदार्थ चिकनाई के रूप में अधिक अच्छे सिद्ध हुये हैं। अतः आजकल खनिज चिकनाइयों का ही विशेष व्यवहार होता है, वसा चिकनाइयों का कम।

चिकनाई बनाने में व्यवहृत होने वाले पदार्थ

साधारणतः मशीनों की चिकनाइयाँ जनावरों, वनस्पतियों तथा खनिज तेलों से बनाई जाती हैं। ये तेल या तो अकेले ही इस्तेमाल किये जाते हैं या मिश्रण के रूप में। प्रायः इन तेलों में साबुन, ग्रैफाइट आदि ठोस पदार्थों के चूर्ण भी मिला दिये जाते हैं।

चिकनाइयाँ बनाने के उपयोग में आने वाले कुल पदार्थ निम्न वर्गों में विभाजित कये जाते हैं—

१ ज़ानवरों के तेल व वसा

स्पर्म तेल	सुअर की चर्बी
व्हेल मछली का तेल	लार्ड तेल
डोलफिन मछली का तेल	गाय की चर्बी (Tallow beef)
हड्डी का तेल	भेड़ की चर्बी (Mutton tallow)
हड्डी की चर्बी	घोड़े की चर्बी

२ वनस्पति तेल व चर्बी

राई का तेल	रेंड़ी का तेल
सरसों का तेल	जैतून का तेल (Olive oil)
बादाम का तेल	ताल का तेल (Palm oil)
मूंगफली का तेल	

३ तैयार किया हुआ तेल

उबला तेल (Blown oils)
संगठित तेल (Polymerised oils)
गन्धकीय तेल (Sulphonated oils)

४ खनिज़ तेल तथा हाइड्रोकार्बन पदार्थ

पेट्रोलियम तेल	पैराफिन
शेल तेल (Shale oils)	नैफथलीन
कोलतार का तेल	रोज़िन
लिगनाइट तेल	गटापार्चा
रोज़िन तेल	एस्फ़ाल्ट

५ साबुन

सोडे का साबुन	एल्यूमिना साबुन
पोटास का साबुन	मैंगनीसिया साबुन
चूने का साबुन	

६ खनिज़ पदार्थ

ग्रैफाइट	गन्धक
टैल्क (Talc)	अमोनिया
सोडा	लिथार्ज (सीसे की आक्साइड)।
चूना	लेड एसीटेट
अभ्रक (Mica)	

इन सब पदार्थों के गुणों से पूर्ण परिचित होना ज़रूरी है। तभी आवश्यकतानुसार इनके मिश्रण से इच्छित चिकनाई बनाना सम्भव है।

तेल व चर्बी

तेल व चर्बी जानवरों तथा वनस्पतियों दोनों से ही प्राप्त होती हैं। इनकी तरलता के अनुसार इन्हें तीन समूहों में बाँटा जा सकता है—

(१) तरल चर्बी या तेल, (२) मक्खन की तरह अर्ध ठोस अवस्था वाली चर्बी। साधारण तापक्रम पर ये छूने से मुलायम मालूम होती हैं। जानवरों से प्राप्त होने वाले लार्ड और मक्खन तथा वनस्पतियों से प्राप्त नारियल का तेल और ताल का तेल इस समूह के उदाहरण हैं। (३) ठोस चर्बी जो साधारण तापक्रम पर ठोसरूप में रहती हैं। इस समूह में गाय की चर्बी, हरिण की चर्बी आदि सम्मिलित हैं।

यह कक्षा विभाजन केवल शीत प्रधान प्रदेशों के लिए है। उष्ण प्रदेशों में अर्ध-ठोस चर्बी तरल के रूप में तथा ठोस चर्बी अर्ध-ठोस के रूप में रहती हैं।

चूँकि सब चर्बी और इस वर्ग के तेल आपस में पूर्ण रूप से मिश्रित हो सकते हैं इस कारण तरल तेलों के साथ अर्ध-ठोस चर्बी मिला कर अपनी आवश्यकतानुसार किसी भी तरलता और किसी भी द्रवणांक का मिश्रण प्राप्त किया जा सकता है।

शुद्ध चर्बी पानी में अघुलनशील तथा पूर्णतः गंधहीन होती है और धातुओं पर अक्रियाशील होती है। किन्तु कुछ दिनों तक हवा में रहने पर इनमें परिवर्तन हो जाता है। चर्बी का रंग कुछ गहरा हो जाता है और उसमें से एक बुरी गंध आने लगती है। साथ ही स्वाद में अम्लीयता आ जाती है।

इसका कारण यह है कि हवा में रखने से चर्बी में रासायनिक परिवर्तन होते हैं और चर्बी वसा अम्ल तथा एलडिहाइड में विश्लेषित हो जाती है। वसा अम्ल के कारण ही चर्बी में अम्लीयता आ जाती है और साथ ही धातुओं को गलाने (Corrode) का गुण भी इसमें आ जाता है। अतः जिस चिकनाई में वसा अम्ल मौजूद होती है वह हानिप्रद सिद्ध होती है, विशेष कर महीन पुर्ज़ों के लिए।

कुछ वानस्पतिक तेलों में एक विचित्र गुण होता है। वे जब हवा में खुले रक्खे जाते हैं तो उनका रंग धीरे धीरे गहरा होने लगता है और वे धीरे धीरे गाढ़े होने लगते हैं। अंत में पारदर्शक रोज़िन के सदृश पदार्थ में जम जाते हैं। इन तेलों को सूखने वाले तेल (Drying oils) कहते हैं। यद्यपि वार्निश और पेंट बनाने में ये तेल बहुत ही उपयोगी हैं फिर भी मशीनों की चिकनाई के लिए पूर्णतः अनुपयुक्त हैं, क्योंकि ये रखने पर सूख जाते हैं। कुछ तेल हवा में थोड़ा गाढ़ा तो पड़ जाते हैं किन्तु एकदम ठोस नहीं होते। इन्हें अर्ध-सूखने वाले तेल (Semi-drying oils) कहते हैं। जो तेल हवा में कुछ भी गाढ़े नहीं होते उन्हें न सूखने वाले तेल (Non-drying oils) कहते हैं। इस अंतिम कक्षा के तेल मशीनों की चिकनाइयाँ बनाने के लिए उपयुक्त हैं।

सभी चर्बी साधारण ताप पर तेल की तरह तरल हो जाती हैं। चूँकि प्रत्येक चिकनाई की उपयोगिता उसके तरल अवस्था में आने पर ही होती है अतः हमें यह जानना जरूरी है कि विभिन्न तेल किन तापक्रमों पर द्रवित होते हैं।

ठंढा करने पर तेल गाढ़े होने लगते हैं और प्रायः किसी विशेष तापक्रम के नीचे जम कर रवेदार पारदर्शक ठोस में परिणत हो जाते हैं। जो चर्बी मक्खन की तरह अर्ध-ठोस अवस्था में रहती है वह ठंढा करने पर बहुत कड़ी और भुरभुरी हो जाती है।

चर्बी के गुणों से परिचित होने पर यह अनुमान किया जा सकता है कि वे विभिन्न प्रकार की चिकनाई बनाने में कहाँ तक और किस अनुपात में इस्तेमाल करने से उपयोगी हो सकती हैं। जिन मशीनों में तापक्रम अधिक रहता है। उनके लिए विशेष प्रकार के मिश्रण बनाये जा सकते हैं जिनमें ऊँचे द्रवटाँक वाली चर्बी हो जैसे टैलो। कम तापक्रम वाली मशीनों की चिकनाइयाँ साधारण तेल से बनाई जा सकती हैं।

चिकनाई की तरलता पर तापक्रम का प्रभाव पड़ने के कारण यह आवश्यक है कि जाड़े तथा गर्मी में व्यवहृत होने वाली चिकनाइयाँ विभिन्न तरलता की हों। मध्य यूरुप में गर्मी के तापक्रम और जाड़े के तापक्रम में लगभग ७५° फ का अन्तर होता है। अतः वहाँ गर्मी में जो ग्रीज़ रेल गाड़ी की धुरियों में इस्तेमाल होती है उसका द्रवणांक जाड़े में इस्तेमाल होने वाली ग्रीज़ से काफ़ी अधिक होता है।

तापक्रम के अतिरिक्त मशीन की गति के अनुसार भी उसकी चिकनाई की तरलता निर्धारित करनी पड़ती है। रगड़ से ताप उत्पन्न होता है। अतः जिन पुर्जों की जितनी अधिक गति होगी उतना अधिक उनमें रगड़ लगेगी और उसी के अनुसार उतना ही अधिक उनमें ताप पैदा होगा। अतः वह चिकनाई जो धीमी गति से चलने वाली किसी मशीन के लिए बनाई गई है तेज़ गति से चलने वाली मशीन के लिए उपयुक्त नहीं हो सकती, क्योंकि तेज़ गति वाली मशीन में ताप के कारण चिकनाई आवश्यकता से अधिक पतली हो जायगी और बह कर व्यर्थ चली जायगी। इस कारण यह नियम सदा ध्यान में रखना पड़ता है कि जो चिकनाई ऊँचे तापक्रम पर द्रवित हों वे ही तेज़ गति से चलने वाली मशीनों में व्यवहार की जायँ। इसी कारण हम देखते हैं कि रेलवे कम्पनियाँ अपनी मालगाड़ियों में एक किस्म की ग्रीज़ इस्तेमाल करती हैं और डाक गाड़ियों में दूसरी किस्म की।

तेल व चर्बी का संगठन

तेल व चर्बी रासायनिक दृष्टि से एक ही समूह

के पदार्थ हैं। ये वसा अम्लों और ग्लिसरीन के संयोग से बनते हैं। ग्लिसरीन एक ट्राइहाइड्रिक अलकोहल (Trihydric alcohol) है। यह किसी वसा अम्ल के एक दो या तीन अणुओं से संयुक्त हो सकता है। इस प्रकार ग्लिसरीन और वसा अम्लों के संयोजन से बने पदार्थों को क्रमशः मानोग्लिसराइड, डाइग्लिसराइड तथा ट्राइग्लिसराइड कहते हैं। चर्बी व तेलों में ट्राइग्लिसराइड ही रहते हैं। एक ही तेल व चर्बी में कई वसा अम्लों के ग्लिसराइड मौजूद रहते हैं। अधिक पाये जाने वाले ग्लिसराइड नीचे दिये जाते हैं—

ट्राइआरिन (Triaurin), C_3H_5 $(C_{12}H_{23}O_2)_3$—यह नारियल के तेल में पाया जाता है। यह एक रवादार ठोस पदार्थ है जो ४५° श पर द्रवित होता है।

ट्राइपामीटिन (Tripalmitin) C_3H_5 $(C_{16}H_{31}O)_3$—ताल के तेल में यह अधिक मात्रा में रहता है। कुछ अन्य ठोस चर्बी में भी यह पाया जाता है।

ट्राइस्टियरिन (Tristearin), C_3H_5 $(C_{18}H_{35}O_2)_3$—यह बहुत सी ठोस चर्बियों में पाया जाता है। टैलो में यह विशेष रूप से अधिक मात्रा में रहता है। यह एक रवादार ठोस है जो ७२° श पर द्रवित होता है।

ट्राइओलीन (Triolein), C_3H_5 $(C_{18}H_{33}O_2)_3$—यह न सूखने वाले अधिकांश तेलों में रहता है।

ट्राइइरूसिन (Trierucin), C_3H_5 $(C_{22}H_{41}O_2)_3$—यह एक ठोस पदार्थ है जो ३१° श पर द्रवित होता है। सरसों के तेल में यह वर्तमान रहता है।

ट्राइरिसीनोलीन (Triricinleoin), C_3H_5 $(C_{18}H_{33}O_3)_3$—रेंड़ी के तेल में अधिक मात्रा इसी की रहती है। यह एक तरल पदार्थ है।

वसा अम्ल

सभी तेलों व चर्बियों में वसा अम्ल मुक्त रूप में कम या अधिक मात्रा में मौजूद रहते हैं। ताल के तेल में ८० प्रतिशत तक वसा अम्ल रहती है किन्तु लार्ड में १ प्रतिशत से अधिक नहीं रहती।

तेलों और चर्बियों को कास्टिक सोडा या कास्टिक पोटास द्वारा उद्‌लेपित (Hydrolyse) कर वसा अम्ल प्राप्त किये जा सकते हैं। कास्टिक सोडा या कास्टिक पोटास के घोल के साथ तेल या चर्बी को गरम करने से साबुन बनता है और ग्लिसरीन अलग हो जाती है। साबुन वसा अम्लों का ही सोडियम या पोटेसियम यौगिक है। उदाहरणार्थ ट्राइस्टियरिन और कास्टिक सोडा के रासायनिक संयोग से सोडियम स्टियरेट (Sodium stearate) और ग्लिसरीन बनते हैं—

$$C_3H_5 (C_{18} H_{35} O_2)_3 + 3 \ NaOH = 3NaC_{18}H_{35}O_2 + C_3H_5(OH)$$
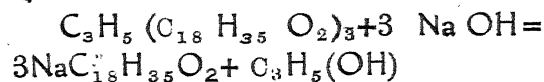
सोडियम स्टियरेट ही साबुन है। साबुन को सलफ्यूरिक एसिड के साथ प्रक्रिया कराने पर वसा अम्ल मुक्त रूप में प्राप्त हो जाता है। वसा अम्ल पाँच समूहों में रक्खे जाते हैं—

१. वे अम्ल जिनमें कार्बन की सब शक्तियाँ (Valencies) संतुष्ट हैं और जिनका सूत्र $C_nH_{2n}O_2$ है, जैसे पामिटिक, स्टियरिक आदि।

२. वे अम्ल जिनमें कम से कम दो कार्बन अणुओं की दो दो शक्तियाँ परस्पर द्वारा संतुष्ट हैं (अर्थात् एक Double bond है) और जिनका सूत्र $C_nH_{2n-2}O_2$ है। इस समूह को ओलिक समूह भी कहते हैं। ओलिक अम्ल इसमें सम्मिलित है।

३. वे अम्ल जिनमें कम से कम दो कार्बन अणु ऐसे हों जिनकी तीन शक्तियाँ (Valencies) परस्परद्वारा संतुष्ट हों (अर्थात् उनके बीच में एक Triple bond हो)। इस समूह को लिनोलीक समूह भी कहते हैं। लिनोलीक अम्ल इस समूह में सम्मिलित है।

४. वे अम्ल जिनका साधारण सूत्र $C_nH_{2n-6}O_3$) है। इस समूह को लिनोलिनिक समूह भी कहते हैं। लिनोलिनिक अम्ल इसका उदाहरण है।

५. हाइड्राक्सी अम्ल समूह जिनका साधारण

सूत्र $CnH_2n-_2O_3$ है, जैसे रिसीनोलिक अम्ल।

अलकोहल

चर्बी व मोम में निम्नलिखित अलकोहल वसा अम्लों के यौगिक के रूप पाये जाते हैं—

१. **ट्राइवेलेन्टअलकोहल** (Trivalent alcohol) $CnH_2n+_2O_3$ ग्लिसरीन

२. मानोवेलेन्ट अलकोहल (चर्बी समूह वाले), CnH_2n+_2O जैसे सिटाइल अलकोहल (Spermacetae), मिरीसाइल अलकोहल (Beeswax),

निम्नलिखित अलकोहल भी चर्बी व मोम में मुक्त रूप में पाये जाते हैं—

३. मानोवेलेन्ट एरोमैटिक अलकोहल (स्टिराल-समूह)—जैसे **कोलेस्टराल** (Cholesterol) जो सभी पशु चर्बी में और विशेषकर ऊनकी चर्बी में पाया जाता है।

आइसोकोलेस्टराल (Isocholesterol)—सभी पशु चर्बी में और विशेषकर ऊनकी चार्बी में पाया जाता है।

फाइटोस्टिराल (Phytosterol) जो सब वानस्पतिक चर्बी में पाया जाता है।

स्टिराल तेल व चर्बियों में बहुत ही सूक्ष्म मात्राओं में पाये जाते हैं। तेल व चर्बी के उस भाग में जो साबुन बनाने के बाद तली में बच रहता है ये मौजूद रहते हैं। साधारणतः तेलों व चर्बियों में इनकी मात्रा १ प्रतिशत से अधिक नहीं रहती। इनकी उपस्थिति या अनुपस्थिति से यह मालूम हो जाता है कि अमुक तेल पशु जगत का है या वानस्पतिक जगत का क्योंकि ये केवल जानवरों की चर्बी व तेलों में ही मौजूद रहते हैं।

तेल व चर्बी को शुद्ध करने की रीतियां

तेल और चर्बी में कई प्रकार की अशुद्धियाँ रहती हैं। इन अशुद्धियों में कुछ मुख्य ये हैं—रंग के पदार्थ, पानी, गोंद और सेल के टूटे कण। प्रत्येक तेल को शुद्ध करने की विशेष रीति उस तेल के स्वभाव तथा उसमें वर्तमान अशुद्धियों पर निर्भर करती है। यहाँ एक साधारण रीति दी जाती है—

तेल को एक लोहे की बड़ी व गहरी नाँद में भर दिया जाता है। पानी तथा अन्य अधिक घनत्त्व की अशुद्धियाँ धीरे धीरे नीचे बैठ जाती हैं। इन नाँदों की पेंदी में एक शुण्डाकार कीप बनी रहती है। इसी कीप में अधिक घनत्त्व की अशुद्धियाँ इकट्ठी हो जाती हैं। ऊपर से शुद्ध तेल एक नल के मार्ग से निकाल लिया जाता है। ठोस चर्बी को शुद्ध करते समय तरल अवस्था में रखने के लिए नाँद में भाप की नलियाँ रहती हैं। इन नलियों में भाप पहुँचा कर चर्बी को गरम किया जाता है और वह तरल अवस्था में आ जाती है। प्रायः तेल को और अधिक शुद्ध करने की आवश्यकता पड़ती है। यह शुद्धि रासायनिक रीतियों द्वारा की जाती है। कुछ रासायनिक रीतियों का वर्णन नीचे किया जाता है।

सलफ्यूरिक एसिड की रीति—तेल को एक ऐसी नाँद में भरते हैं जिसकी दीवारों पर सीसे (Lead) का पत्तर मढ़ा रहता है। इस नाँद में तेल भर कर उसमें २ प्रतिशत सलफ्यूरिक एसिड मिला दी जाती है। तेल और एसिड को खूब अच्छी तरह मिला दिया जाता है। सलफ्यूरिक एसिड अशुद्धियों का ओषदीकरण कर उन्हें नष्ट कर देती है। जब एसिड की क्रिया समाप्त हो जाती है तब सब को थोड़ी देर तक शान्तिपूर्वक पड़ा रहने दिया जाता है। तेल और एसिड दो सतहों में एक दूसरे से अलग हो जाते हैं। ऊपर की सतह तेल की होती है। ऊपर से तेल को निथार कर अलग निकाल लिया जाता है। फिर इसे कई बार पानी से धोकर इसकी सब एसिड निकाल देते हैं। इस रीति से तेल बहुत स्वच्छ, पतला और हल्के रंग का प्राप्त होता है। लेकिन इस रीति में एक दोष है जिसके कारण यह चिकनाई के अर्थ व्यवहार में नहीं लाया जा सकता। इस रीति से साफ किये तेल में वसा अम्लों की मात्रा काफ़ी रहती है। वसा अम्ल धातुओं को धीरे धीरे खा लेते हैं। अतः इनकी उपस्थिति से चिकनाई हानिप्रद सिद्ध होती है।

कास्टिक सोडा की रीति—तेल को एक बड़ी

नाँद में लगभग १००° श तक गरम किया जाता है और फिर २-३ प्रतिशत कास्टिक सोडा का तेज घोल धीरे धीरे डाल कर तेल को खूब हिलाते हैं। थोड़ी ही देर में तेल गंदला हो जाता है। तेल को फिर छन्न प्रेस द्वारा छान लेते हैं। इस रीति से साफ करने में तेल का कुछ भाग साबुन बनकर व्यर्थ चला जाता है। किन्तु तेल एक दम अम्ल रहित शुद्ध प्राप्त होता है जो चिकनाई तैयार करने के लिए बहुत ही उपयुक्त है।

चर्बी व तेलों के गुण

ठोस चर्बी

ठोस चर्बियाँ दो समूहों में विभाजित की जा सकती हैं (१) कड़ी, जैसे टैलो जिनके द्रवणांक ऊँचे होते हैं और (२) मक्खन की तरह नरम, जैसे लार्ड या नारियल का तेल।

टैलो (Tallow)—ये दो किस्म की होती हैं—(१) गाय की चर्बी और (२) भेड़ की चर्बी। इसका द्रवणांक सब जानवरों की चर्बियों से अधिक है। अधिक दबाव पर रखने से इसका अधिक तरल भाग, जिसे टैलो तेल (Tliow oil) कहते हैं, अलग हो जाता है। बचा हुआ भाग टैलो चर्बी कहलाता है। इसका द्रवणांक टैलो से भी अधिक रहता है और यह ऐसी ठोस चिकनाई बनाने के लिए जो ऊष्ण देशों में इस्तेमाल हो सके अधिक उपयुक्त है।

टैलो साधारणतः उन मशीनों की चिकनाइयों के तैयार करने में व्यवहार किया जाता है जो साधारण तापक्रम पर ठोस की अवस्था में रहती हैं। प्रायः अन्य चिकनाइओं के द्रवणांक को ऊँचा करने के निमित्त भी इसको चिकनाइयों में मिलाते हैं। स्वभावतः वह टैलो जिसका द्रवणांक बहुत अधिक है इस कार्य के लिय अधिक उपयुक्त है क्योंकि जिस टैलो का द्रवणांक जितना अधिक होगा उतना ही कम मात्रा में उसे किसी चिकनाई के द्रवणांक को ऊँचा करने में मिलाने की आवश्यकता पड़ेगी।

सुअर की चर्बी (Hog fat)—यह हल्के पीले रंग की मुलायम चर्बी है। इसका द्रवणांक ३६° श है। यह कास्टिक सोडा द्वारा शुद्ध की जाती है।

हड्डी की चर्बी (Boen fat)—हड्डी की चर्बी में कई चर्बियाँ होती हैं। इनमें दो आसानी से शीघ्र ही अलग की जा सकती हैं—एक जो शीघ्र ही जम जाती है और दूसरी जो कम तापक्रम पर भी तरल ही रहती है। तरल भाग को हड्डी का तेल कहते हैं। यह तेल मशीन की चिकनाइयाँ बनाने के लिए बहुत अच्छा पदार्थ है। सस्ती होने के कारण हड्डी की चर्बी बैल तथा घोड़ा गाड़ियों के पहियों की धुरियों के लिए ग्रीज़ तैयार करने में बहुत इस्तेमाल होती है।

घोड़े की चर्बी (Horse fat)—यह हल्के पीले रंग की मुलायम चर्बी है। इसका द्रवणांक २०°-३०° श है। बहुत अंशों में यह हड्डी की चर्बी से मिलती है। कुछ दिनों रखने से यह कुछ गाढ़ी पड़ जाती है।

ताल का तेल (Palm oil)—ताल वृक्ष के फलों से यह तेल प्राप्त होता है। यह अफ्रीका में अधिक होता है। ताज़ा तेल मक्खन की तरह अर्ध ठोस और नरम रहता है। इसका रंग नारंगी होता है और इसमें अच्छी गंध होती है। ताजे तेल का द्रवणांक लगभग २७° श होता है किन्तु पुराने तेल का लगभग ४०° श होता है। बहुत सी मशीनों की चिकनाइयाँ बनाने में ताजा तेल व्यवहार में आता है किन्तु विशेष चिकनाइयों के बनाने में इसको साफ़ कर लिया जाता है।

३ तरल तेल और चर्बी

इस समूह में वे तेल और चर्बी हैं जो साधारण तापक्रम पर तरल अवस्था में रहती हैं। अधिक नीचे के तापक्रम पर ये भी ठोस में परिणत हो जाती हैं। तरल तेल व तरल चर्बी उन मशीनों की चिकनाइयों के बनाने के लिए अधिक उपयुक्त होती हैं जो तेज़ गति से चलती हैं या जिनके पुर्ज़े बहुत कोमल होते हैं। इसके विपरीत वे चर्बी, जो ठोस हैं, मालगाड़ी

तथा अन्य धीमी गति से चलने वाली मशीनों की ग्रीज बनाने के लिए अधिक उपयुक्त हैं।

जानवरों की सब तरल चर्बियाँ साधारणतः ट्रेन तेल (Train oils) के नाम से प्रसिद्ध हैं। वनस्पतियों के तेल अलग अलग नामों से पुकारे जाते हैं।

स्पर्म तेल (Sperm oil)—स्पर्म व्हेल के शरीर से यह तेल प्राप्त होता है। इसमें अधिकांश भाग स्पर्म मोम का रहता है (Sprmaceti)। दबाव पर रखने से इसमें से कई तरलता के तेल प्राप्त होते हैं। मोम अलग निकलता है। स्पर्म तेल हल्की मशीनों के लिए बहुत अच्छी चिकनाई है क्योंकि रखने पर यह गोंद की तरह चिपकने वाले पदार्थ में नहीं परिणत होता जैसा कि अन्य बहुत से तेल हो जाते हैं।

स्पर्म तेल वास्तव में रासायनिक दृष्टि से अन्य तेलों की श्रेणी का पदार्थ नहीं है। यह अलकोहल और वसा अम्लों के संयोग से बना हुआ रासायनिक यौगिक है। अन्य तेल ग्लिसरीन और वसा अम्लों के यौगिक होते हैं।

व्हेल तेल (Whale oil)—यह तेल व्हेल मछली से निकाला जाता है। इसका रंग हल्का पीला या गहरा भूरा होता है और इसमें एक तेज़ गंध होती है। इसमें से पाँच तरह के तेल प्राप्त होते हैं जिन्हें क्रमशः ०, १, २, ३ और ४ नम्बर से सम्बोधित किया जाता है। ० और १ हल्के पीले रंग का होता है, ३ पीले भूरे रंग का, और ४ गहरे भूरे रंग का। इन तेलों का रासायनिक संगठन अभी ठीक से ज्ञात नहीं है।

डोलफिन मछली का तेल (Dolphin oil)-यह तेल हल्का पीला होता है और इसमें से भी एक तेज़ मछली की सी दुर्गन्ध आती है।

ट्रेन तेल (Train oil)—बाज़ार में इस नाम से जितने तेल आते हैं वे सब समुद्री जानवरों के तेल हैं। ये तेल अधिकतर व्हेल मछली से प्राप्त तेल होते हैं और सब तेलों से सस्ते होते हैं। अपने सस्तेपन के कारण ये तेल साबुन तथा मशीनों की चिकनाइयों के बनाने के काम बहुत आते हैं।

जानवरों के पैरों का तेल—गाय, बैल, भेड़, बकरे आदि की एड़ियों और खुरों से प्राप्त तेल इस नाम से बाजार में बिकते हैं। ये पीले रंग के पारदर्शक तेल हैं जिनमें बहुत ही कम गंध होती है। ये महीन पुर्जों के लिए बहुत अच्छी चिकनाई हैं क्योंकि इनमें वसा अम्ल मुक्त रूप में नहीं रहता और रखने से ये खराब भी नहीं होते। सिलाई की मशीन तथा अन्य महीन पुर्जों के लिए ये बहुत ही उपयुक्त चिकनाइयाँ हैं। डायनमों आदि बड़ी मशीनों की चिकनाइयों के लिए भी ये उपयुक्त हैं, किन्तु मँहगा होने के कारण इन मशीनों में इनका व्यवहार बहुत कम होता है।

इन तेलों का सबसे बड़ा गुण जिसके कारण ये सब से अच्छी मशीनों की चिकनाइयाँ सिद्ध होते हैं यह है कि ये वर्षों हवा के सम्पर्क में रक्खे रहने पर भी कुछ खराब नहीं होते, न तो इनमें अम्लता पैदा होती है और न इनकी तरलता में कोई अन्तर पड़ता है। कम तापक्रम पर भी इनकी तरलता लगभग एक ही सी रहती है।

घड़ियों, सीने की मशीन तथा अन्य महीन पुर्जों के लिए जो कीमती तेल छोटी शीशियों में बाज़ार में बिकने आते हैं वे अधिकांश में साफ़ किये हुये ये ही तेल होते हैं।

हड्डी का तेल (Boneoil)—हड्डी की चर्बी को दबाव में रखने से जो तरल भाग प्राप्त होता है उसे हड्डी का तेल कहते हैं। मशीनों की चिकनाई बनाने में यह बहुत उपयोग किया जाता है।

लार्ड तेल (Lard oil)—लार्ड को दबाव में रखने से जो तरल प्राप्त होता है उसे लार्ड तेल कहते हैं। बढ़िया किस्म का लार्ड तेल मार्जरीन (Margarine) बनाने के काम में आता है। घटिया किस्म का चिकनाई के अर्थ प्रयुक्त होता है।

टैलो तेल (Tallow oil)—टैलो को दबाव में रखने से जो तरल प्राप्त होता है उसे टैलो तेल कहते हैं ,तेल निकालने के बाद जो ठोस भाग बच

रहता है वह मोमबत्ती बनाने में इस्तेमाल होता है। टैलो तेल साधारण तापक्रम पर नरम चर्बी के रूप में रहता है। यह ठोस चिकनाई बनाने के काम में ही विशेष रूप से आता है।

सरसों का तेल (Rape seed oil)—यह रखने से कुछ सूख जाता है। ताजा तेल ही मशीन की चिकनाई बनाने में उपयोगी सिद्ध होता है। रखने से इसमें अम्लता पैदा हो जाती है।

बादाम का तेल—इसका रंग हल्का पीला होता है और इसमें एक अच्छी गंध रहती है। यह मुक्त अम्ल रहित होता है। इसके जमने का तापक्रम बहुत नीचा होता है (—१०° श)। अतः यह मशीनों के लिए बहुत अच्छा पदार्थ है।

मूंगफली का तेल—यह भी हल्के पीले रंग का तेल है। अच्छी जाति का मूंगफली का तेल साबुन बनाने में और घटिया जाति का मशीनों की चिकनाइयाँ तैयार करने में इस्तेमाल होता है।

जैतून का तेल (Olive oil)—यह जैतून वृक्ष के फल से प्राप्त होता है और हल्के पीले रंग का तेल है। इसमें कोई अम्लता नहीं रहती। यह खाने के काम में बहुत आता है। मशीनों की चिकनाइयों के लिए यह बहुत अच्छा पदार्थ है। मंहगा होने के कारण यह इस काम के लिए अधिक नहीं इस्तेमाल होता।

रेंडी का तेल—यह काफी गाढ़ा होता है और खनिज तेलों के साथ ठीक से मिश्रित नहीं होता। इसी कारण यह मशीन की चिकनाइयों के रूप में कम व्यवहार होता है।

वानस्पतिक तेल तथा जानवरों से प्राप्त तेल दोनों ही हवा में बहुत दिन रखने से अम्लीय हो जाते हैं। अम्लीय हो जाने पर ये धातुओं पर आक्रमण करते हैं और उन्हें धीरे-धीरे घुला लेते हैं।

प्रायः ऐसी चिकनाई से जिसमें अम्लता पैदा हो गई है, ताँबे पर हरा धब्बा पड़ जाता है। चिकनाइ का अम्ल ताँबे पर प्रक्रिया कर उसे एक यौगिक में बदल देता है। हरा धब्बा इसी नये यौगिक के कारण होता है। चर्बी व तेल की अम्लीयता के इस घुलनशील प्रभाव से बड़ी मशीनों में कोई विशेष हानि नहीं होती, किन्तु घड़ी आदि महीन पुरजों में चिकनाई के अम्ल से पुर्जे खराब हो जाते हैं। इन कोमल मशीनों के लिए वे ही चिकनाइयाँ व्यवहार में आ सकती हैं जिनमें मुक्त अम्ल बिल्कुल ही न हो

वानस्पतिक तेलों को चिकनाइयों के अर्थ प्रयुक्त करने के पहले यह देख लेना चाहिए कि हवा में रखने से इनमें क्या परिवर्तन होता है? बहुत से तेलों की तरलता में हवा द्वारा परिवर्तन हो जाता है। सरसों तथा जैतून के तेल रखने से बहुत काफी अम्लीय तथा कुछ गाढ़े पड़ जाते हैं, किन्तु बराबर तरल बने रहते हैं। कुछ तेल, जैसे अलसी का तेल हवा में धीरे धीरे गाढ़े पड़ते हैं और अन्त में कड़े ठोस में बदल जाते हैं। इस प्रकार के तेल सूखने वाले तेल कहलाते हैं। ऐसे तेल मशीनों की चिकनाइयों के लिए बिल्कुल अनुपयुक्त हैं, क्योंकि ये मशीनों में पड़े पड़े सूख जाते हैं और पुरजों को जकड़ देते हैं।

पेट्रोलियम से प्राप्त होने वाले खनिज तेलों में यह विशेषता है कि वे अक्रियाशील होने के कारण हवा में रखने से अम्लीय नहीं होते। इस दृष्टि से ये वानस्पतिक तेलों तथा जानवरों के तेलों से अधिक उपयुक्त हैं। कुछ खनिज तेल रखने पर थोड़ा गाढ़ा अवश्य हो जाते हैं, किन्तु इनका गाढ़ापन भी वानस्पतिक तेलों की अपेक्षा बहुत ही धीमी गति से होता है।

तैयार किया हुआ तेल (Treated Oils)

संगठित तेल (Polymerised oils)—जब रेंड़ी का तेल २६०° से ३००° श तक गरम किया जाता है तो यह संगठित हो जाता है। यह संगठित तेल खनिज तेलों में शीघ्र घुलनशील होता है। अतः ये खनिज तेलों के साथ मिश्रित किये जाकर मशीनों की चिकनाइयाँ बनाने के काम में आते हैं।

हाइड्रोकार्बन तेल (Hydrocarbon oils)

पेट्रोलियम—यह खनिज तेल है और ज़मीन के अन्दर से कुओं द्वारा निकाला जाता है। अमेरिका,

रूस, फारस, ईराक तथा रूमानिया में यह बहुत होता है। भारतवर्ष में आसाम, अटक तथा बर्मा में यह पाया जाता है।

पेट्रोलियम अधिकांश में हाइड्रोकार्बन यौगिकों का मिश्रण है। विभिन्न देशों में विभिन्न तापक्रमों पर इसमें से मिश्रण के अवयव अलग किये जाते हैं। साधारणतः निम्न पदार्थ स्रवण द्वारा इसमें से अलग किये जाते हैं—

(१) उड़नशील तेल जिसे नैफ्था या पेट्रोल भी कहते हैं।

(२) किरोसीन तेल,

(३) चिकनाई के तेल;

(४) न उड़ने वाला बचा हुआ भाग। इस भाग से पैराफीन मोम, वैसलीन आदि चीजें प्राप्त होती हैं।

शेल तेल (shale oil)—शेल से स्रवण द्वारा जो तेल प्राप्त होता है वह शेल तेल कहलाता है। इस तेल में भी हाइड्रोकार्बन ही रहते हैं। स्रवण द्वारा भिन्न क्वथनांक के कई पदार्थ इसमें से भी अलग किये जाते हैं। इन में मुख्य ये हैं—(१) रोशनी का तेल, (२) चिकनाई का तेल, (३) अशुद्ध तेल जिससे गैस बनाई जाती है और (४) पैराफिन मोम।

लिगनाइट तेल (lignite oil)—सैक्सनी में भूरा कोयल पाया जाता है जिसे लिगनाइट कहते हैं। हवा की अनुपस्थिति में इस कोयले को स्रवण करने से एक गाढ़ा भूरे रंग का तेल प्राप्त होता है जिसे लिगनाइट टार कहते हैं। इसमें से स्रवण द्वारा भिन्न भिन्न तापक्रमों पर कई पदार्थ अलग निकाले जाते हैं। ये सब पदार्थ भी अधिकांश में हाइड्रोकार्बन के ही मिश्रण हैं। लिगनाइट टार से निम्न मुख्य पदार्थ प्राप्त होते हैं—

पतला तेल (बेनज़ाइन)	...०.७८–०.८१ घनत्व
भारी नैफ्था	...०.८२५–०.८३ "
गैस बनाने का तेल	...०.८८–०.९०० "
भारी तेल	...०.८९०–०.९०५ "
कड़ा पैराफिन मोम	
नरम पैराफिन मोन	

रोज़िन (Rosin)—बहुत से पेड़ों से भिन्न प्रकार की गोंद प्राप्त होती है। इन सब को रोज़िन कहते हैं। रोज़िनों में 'रोज़िन' नामक विशेष रोज़िन ही मशीनों की चिकनाइयों में उपयोग की जाती है। रोज़िन चीड़ के वृक्षों से प्राप्त होती है। इन पेड़ों के तने में किसी स्थान पर जरा सा छेद कर एक बर्तन बाँध दिया जाता है। छेद से एक गाढ़ा चिपचिपा रस धीरे धीरे रिस कर बर्तन में इकट्ठा होता रहता है। जब बर्तन भर जाता है तो इसमें से सब पदार्थ निकाल कर उसे वाष्प स्रवण द्वारा स्रवित करते हैं। स्रवण करने पर एक उड़नशील तेल प्राप्त होता है जिसे तारपीन का तेल (Turpentine oil) कहते हैं। तारपीन का तेल निकल चुकने पर जो पदार्थ बर्तन में बच रहता है वह रोज़िन है। चीड़ के प्रारम्भिक पदार्थ से लगभग ८० प्रतिशत रोज़िन और २० प्रतिशत तारपीन का तेल प्राप्त होता है। रोज़िन हल्के पीले रंग से लेकर गहरे भूरे रंग के बीच में कई किस्म की होती है। साधारणतः रोज़िन एक पारदर्शक पदार्थ है, किन्तु कुछ अपार दर्शक काले रंग की रोज़िन भी देखने में आयी हैं। रोज़िन में एक अच्छी गंध होती है और यह बहुत आसानी से चूर्ण हो जाती है (Brittle)।

रोज़िन एक अम्लीय पदार्थ है कास्टिक सोडा से संयुक्त होकर यह एक घुलनशील यौगिक बनाती है जिसे रोज़िन साबुन कहते हैं। इस घुलनशील साबुन को चूने से प्रक्रिया कराने पर चूने-रोज़िन का साबुन बनता है जो अघुलनशील है। यह साबुन मशीनों की गाढ़ी चिकनाइयाँ बनाने, जैसे बैल या घोड़ा गाड़ी आदि की ग्रीज़ के काम में आता है। खनिज तेलों में गरम करने से यह साबुन घुल जाता है और एक साफ़ चिपकने वाला पदार्थ प्राप्त होता है।

रोज़िन तेल (Rosin oil)—रोज़िन को जब द्रवणांक से ऊपर के तापक्रम पर हवा की अनुपस्थिति में गरम किया जाता है तो यह विश्लेषित होकर वाष्प में परिणत हो जाता है। इन वाष्पों को ठंडा करने से तरल और ठोस दोनों प्रकार के पदार्थ

प्राप्त होते हैं। तरल पदार्थ को रोज़िन तेल कहते हैं। रोज़िन तेल में मुख्यतः हाइड्रोकार्बन रहते हैं किन्तु साथ में कुछ अम्ल पदार्थ भी मौजूद रहते हैं। ये अम्ल धातुओं को घुलाकर साबुन के समान यौगिक बनाते हैं जो धातुओं पर ही चिपक जाते हैं। अतः रोज़िन तेल मशीनों की चिकनाइयाँ बनाने के काम में नहीं आ सकता।

रोज़िन तेल के इस दोष को दूर करने के लिए रोज़िन को कुछ चूने के साथ गरम किया जाता है। ऐसा करने से इसके अम्ल चूने के साथ यौगिक बना कर बर्तन में ही रह जाते हैं और जो तेल स्रवित होकर आता है वह अम्ल रहित होता है। यह तेल चिकनाई के अर्थ व्यवहार में आ सकता है।

रोज़िन तेल, खनिज तेल और बिना बुझे चूने के मिश्रण को गरम करने से रोज़िन ग्रीज़ प्राप्त होती है। रोज़िन तेल तरल तथा ठोस दोनों ही प्रकार की मशीन की चिकनाई बनाने के काम में आता है, क्योंकि यह विभिन्न पदार्थों के साथ मिश्रित हो जाता है। विभिन्न पदार्थों के साथ सरलता से मिश्रित होने का इसका यह गुण इसे इस कार्य के लिए बहुत उपयोगी बनाता है।

पैराफिन मोम—यह अर्ध पारदर्शक मोम है जो शेल तेल और पेट्रोलियम के ऊँचे तापक्रम पर वाष्पीभूत होने वाले भाग को ठंढा करने से प्राप्त होता है। पैराफिन में अधिक अणुभार वाले हाइड्रो-कार्बन होते हैं। यह गलने पर सभी तेलों के साथ मिश्रित हो जाता है। इसी कारण इसे ग्रीज़ बनाने में इस्तेमाल करते हैं।

रबर और गटापार्चा—ये पदार्थ भी पेड़ों से प्राप्त होते हैं। कभी कभी चिकनाई के तेलों के तैयार करने में अन्य तेलों के साथ इनकी थोड़ी मात्रा मिलाई जाती है किन्तु यह निश्चय रूप से नहीं कहा जा सकता कि चिकनाई की दृष्टि से इनमें कोई लाभकारी गुण है।

चिकनाई बनाने में व्यवहृत होने वाले अन्य पदार्थ

सोडे का साबुन—कास्टिक सोडा और वसा तेलों के संयोग से जो साबुन बनता है उसे सोडे का साबुन कहते हैं। साबुन बनने की क्रिया में कास्टिक सोडे का सोडियम तेल के वसा अम्ल से मिलकर सोडियम यौगिक बनाता है और ग्लिसरीन अलग हो जाती है। वसा अम्ल का यह सोडियम यौगिक ही साबुन है। सोडे का साबुन एक ठोस पदार्थ है जो पानी में घुलनशील है।

पोटास साबुन—कास्टिक पोटास और वसा तेलों के संयोग से जो साबुन प्राप्त होता है वह पोटास साबुन कहलाता है। यह वसा अम्ल का पोटैशियम यौगिक होता है। पोटास साबुन नरम होते हैं।

ग्रीज़ बनाने में साबुन का उपयोग किया जाता है। कौन सा साबुन किस ग्रीज़ के लिए उपयोगी सिद्ध होगा यह इस बात पर निर्भर करता है कि ग्रीज़ को कितना गाढ़ा रखना है। अधिक गाढ़ी और कड़ी ग्रीज़ बनाने के लिए सोडा साबुन का व्यवहार किया जाता है और बहुत नरम ग्रीज़ के लिये पोटास साबुन का।

चूने का साबुन—सोडे के साबुन के घोल में कैलसियम क्लोराइड मिलाने से चूने का साबुन बनता है। ये साबुन पानी में अघुलनशील होते हैं। जैतून, अलसी, सरसों और रोज़िन तेल से बने चूने के साबुन ग्रीज़ बनाने के लिए उपयोग में लाये जाते हैं, क्योंकि ये खनिज तेलों में घुल जाते हैं। ठोस वसा अम्लों से बने चूने के साबुन इस कार्य में नहीं आते, क्योंकि वे खनिज तेलों में मिश्रित नहीं होते।

एल्यूमिना साबुन—चूने के साबुन की ही भाँति यह भी सोडे के साबुन के घोल में कोई घुलन-शील एल्यूमिनियम नमक का घोल मिलाने से बनता है। जैतून के तेल से बना एल्यूमिना साबुन प्रायः खनिज तेलों को गाढ़ा करने के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

मैगनीसिया साबुन—सोडे के साबुन और मैगनीसियम सलफेट के घोलों को मिश्रित करने से मैगनीसिया साबुन बनता है। जैतून के तेल से

बनाया गया मैगनीसिया साबुन भी खनिज तेलों को गाढ़ा करने में व्यवहार किया जाता है।

खनिज पदार्थ

ग्रेफ़ाइट—यह कार्बन का एक रूप है जो खनिज रूप से बहुत स्थानों में पाया जाता है। यूराल, साइ-बीरिया, कैनाडा, सीलोन और अमेरिका में यह बहुत पाया जाता है और कागज़ पर लिखने वाली पेन्सिल बनाने के काम में बहुत आता है।

ग्रेफाइट काला चमकीला ठोस पदार्थ है जो हाथ से छूने पर चिकना और फिसलनदार अनुभव होता है। इसे कागज़ पर रगड़ने से कागज़ पर एक काला निशान पड़ जाता है। शुद्ध ग्रैफ़ाइट में केवल कार्बन ही रहता है, किन्तु प्रायः इसमें पत्थरों के टुकड़े अशुद्धि के रूप में वर्तमान रहते हैं। चिकनाई के अर्थ प्रयुक्त होने वाले ग्रैफ़ाइट को परम शुद्ध होना चाहिए और उसमें पत्थर या अन्य किसी कड़ी चीज़ की मिलावट न होनी चाहिए।

ग्रैफ़ाइट प्रायः अकेला ही चिकनाई के रूप में व्यवहार होता है। कुछ ग्रीज़ों में भी इसे इस्तेमाल किया जाता है। साधारणतः ग्रीज़ों में ३ प्रतिशत ग्रैफ़ाइट तेलों के साथ मिश्रित किया जाता है।

ग्रैफ़ाइट रासायनिक रीति से भी तैयार किया जाता है।

अमेरिका के डा० एचीसन ने ग्रैफ़ाइट को कुछ पदार्थों की उपस्थिति में तेलों के साथ मिलाकर इमलशन प्राप्त किया। यह बड़ी अच्छी चिकनाई सिद्ध हुआ है। इसे अन्य तेलों में थोड़ा सा मिला-कर चिकनाई के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। ग्रैफ़ाइट मिली चिकनाई का सब से प्रधान गुण यह है कि चिकनाई मशीन पर बहुत समय तक स्थाई रहती है; अन्य चिकनाइयों की भाँति शीघ्र ही बह कर निकल नहीं जाती। ग्रैफ़ाइट के इस गुण के कारण ग्रैफ़ाइट मिश्रित तेल चिकनाई के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुये हैं। मोटर इंजिन के लिए विशेष रूप से ग्रैफ़ाइट के मेल से बनी चिक नाइयाँ बहुत लाभदायक सिद्ध होती है।

टैल्क (Talc)—यह सफ़ेद या हल्के बादामी रंग का खनिज है जो आल्पस, टाइरौल, भारत चीन आदि स्थानों में पाया जाता है। यह चमकीला होता है और छूने पर ग्रीज़ की भाँति चिकना मालूम होता है। यह अपने चिकनेपन के कारण ही ग्रीज़ बनाने में इस्तेमाल होता है।

साबुन पत्थर (Soap stone)—टैल्क की ही जाति का यह एक पत्थर है जो स्वच्छ तथा मुलायम होता है। यह इतना मुलायम होता है कि महीन पत्र के रूप में काटा जा सकता है। स्लेट की पेन्सिल बनाने में इसका बहुत उपयोग होता है। बदन पर लगाने वाले पाउडरों में भी यह मिलाया जाता है।

सोडा—सोडे का घोल जब तेल या चर्बी में मिलाया जाता है तो दूधिया रंग का घोल बनता है जो इमलशन कहलाता है। सोडा इमलशन चिकनाई बनाने में इस्तेमाल होता है।

चूना—यह कैलसियम का आक्साइड है और चूने के पत्थर को फूँकने से बनता है। चूने के साबुन के रूप में यह ग्रीज़ बनाने के काम में आता है।

लिथार्ज (Litharge)—यह सीसे की आक्सा-इड है। इसका साबुन कभी कभी लार्ड ग्रीज़ बनाने में व्यवहार किया जाता है।

लेड एसीटेट—यह लिथार्ज को एसीटिक एसिड में मिलाने से बनता है और ग्रीज़ को गाढ़ा करने और कड़ी करने के लिए प्रायः प्रयुक्त होता है।

अमोनिया—इमलशन चिकनाइयों के बनाने में प्रायः अमोनिया घोल का व्यवहार किया जाता है।

मशीनों की ठोस चिकनाइयाँ
(Solid Lubricants)

मशीनों की ठोस चिकनाइयाँ बनाने में दो चर्बियाँ आधार भूत हैं—टैलो और ताल का तेल (Palm oil) ताल का तेल सस्ता होने के कारण मशीनों की ग्रीज़ बनाने के काम में बहुत अधिक आता है।

ठोस चिकनाइयों में टैलो और ताल के तेल के अलावा कुछ अन्य तेल और चर्बियाँ भी चिकनाई

को नरम बनाने के लिए मिश्रित की जाती हैं। थोड़ा सा सोडा भी मिलाया जाता है जिसका उद्देश्य तेल को कुछ इमलशन या साबुन में परिणत करना होता है। प्रायः कुछ अन्य अक्रियाशील पदार्थ भी जैसे साबुन-पत्थर, टैल्क या गन्धक महीन चूर्ण के रूप में मिलाया जाता है। इन पदार्थों का उद्देश्य चिकनाई को गाढ़ा करना होता है।

ऊपर बतलाये पदार्थों की उचित मात्राओं के मिश्रण से किसी भी प्रकार की इच्छित ठोस चिकनाई बनाई जा सा सकती है। सुविधा के लिए चर्बियों का मिश्रण बड़ी मात्रा में एक ही बार बना कर रख लिया जाता है और जब जिस प्रकार की चिकनाई की आवश्यकता होती है तब इस चर्बी के मिश्राण की उचित मात्रा में अन्य चीजें मिलाकर इच्छित चिकनाई तैयार कर ली जाती है।

कुछ विशेष कार्यों के लिए पैराफीन, नैफ्थलीन, ग्रैफाइट और थोड़ा रंग आदि के मिश्रण से भी ठोस चिकनाइयाँ तैयार की जाती हैं।

टैलो से बनी चिकनाइयाँ—टैलो से बनाई हुई ग्रीज़ बहुत उपयोगी होती है किन्तु यह अन्य ग्रीज़ और चिकनाई की अपेक्षा मंहगी पड़ती है। तापक्रम के अनुसार टैलो की तरलता में परिवर्तन होता रहता है। तेज़ गरमी में यह नरम मक्खन की भाँति हो जाता है किन्तु जाड़े के दिनों में कड़ी रहती है। टैलो के इस गुण के कारण वे रेलवे कम्पनियाँ जो टैलो ग्रीज़ अपनी वैगनों में इस्तेमाल करती हैं प्रत्येक मौसिम के लिये विभिन्न टैलो ग्रीज़ हैं। विभिन्न मौसिमों में प्रयुक्त होने वाली टैलो रखती ग्रीज़ के मिश्रणों के अनुपात नीचे दिये जाते हैं:—

ग्रीज़	टैलो (भाग)	जैतून का तेल (भाग)	घोड़े की चर्बी (भाग)
जाड़े की	१००	२०	१३
वसंत की	१००	१०	१०
गरमी की	१००	१	१०

टैलो ग्रीज़ बनाने की साधारण विधि यह है। सब तेल व चर्बियों को एक बड़े बर्तन में लेकर लगभग ३०२° फ तक गरम किया जाता है। गरम होते समय मिश्रण को बराबर चलाते रहते हैं। जब सब चर्बियाँ और तेल खूब अच्छी तरह मिश्रित हो जाते हैं तो फिर इसे ठंढा होने के लिए रख दिया जाता है। जम कर ग्रीज़ तैयार हो जाती है। थोड़ी मात्रा में ग्रीज़ बनाने के लिए साधारण नाप की नाँद ठीक होती है, किन्तु जहाँ बहुत मात्रा में ग्रीज़ बनानी पड़ती है वहाँ गरम करने के लिए एक बड़ी बेलनाकार नाँद होती है जिसमें तरल तेलों को चलाने का प्रबन्ध रहता है।

ट्रेन तेलों से बनी ग्रीज़—ह्वेल, डालफिन और साल मछलियों से जो तेल प्राप्त होता है। वह बहुत सस्ता होता है। अमेरिका में इन तेलों से ग्रीज़ बनाई जाती है और ये ग्रीज़ रेलगाड़ियों में बहुत इस्तेमाल की जाती हैं।

इन तेलों से ग्रीज़ बनाने की विधि यह है। तेलों को कम तापक्रम पर कुछ समय तक रक्खा रहने दिया जाता है। तेल में जो ठोस चर्बी का अंश रहता है वह नीचे तली में बैठ जाता है। ऊपर से तेल को निथार कर उसमें लिथार्ज (Lead oxide) मिश्रित किया जाता है। लिथार्ज तेल में वर्तमान मुक्त अम्ल को यौगिक में परिणत कर नष्ट कर देता है। इस मिश्रण में फिर और तेल मिलाकर इसे आवश्यकतानुसार तरल कर लेते हैं और कुछ समय के लिए रख देते हैं। आवश्यकता से अधिक मौजूद लिथार्ज की मात्रा नीचे तली में बैठ जाती है। ऊपर से निथार कर ग्रीज़ को अलग रख लेते हैं। लिथार्ज और अम्ल के संयोग से जो यौगिक बनता है वह सीसे का साबुन होता है। यह ग्रीज़ में घुला रहता है और इसी से ग्रीज़ गाढ़ी रहती है।

टैलो और ट्रेन तेलों के संयोग से बनी ग्रीज़

स्वच्छ टैलो	–	२ भाग
ट्रेन तेल	–	१ भाग

टैलो को एक बर्तन में साधारण तापक्रम पर द्रवित किया जाता है। जब यह तरल हो जाता है तो

इसमें ट्रेन तेल मिला कर मिश्रण को खूब चलाया जाता है जिससे मिश्रण एक दिल हो जाय।

ठंढे देशों के लिये ट्रेन तेल का अनुपात कुछ बढ़ा दिया जाता है जिससे ग्रीज़ इच्छित तरलता की रहे। ट्रेन तेल का अनुपात जितना अधिक रहता है ग्रीज़ उतना ही अधिक नरम और शीघ्र द्रवित होने वाली होती है।

सभी चिकनाइयों के सम्बन्ध में यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि प्रत्येक नुसखा एक विशेष मौसिम के लिए ही उपयुक्त होता है। अधिक ठंडे या अधिक गरम मौसिमों के लिए नुसखों में आवश्यक परिवर्तन कर लेना चाहिए।

हड्डी की चर्बी और सरसों के तेल के मिश्रण से बहुत अच्छी चिकनाई बनती है। यह काफी सस्ती भी होती है। इसका एक नुसखा नीचे दिया जाता है।

हड्डी की चर्बी से बनी ग्रीज़

	गर्मी के लिये	जाड़े के लिये
हड्डी का तेल	६० भाग	४० भाग
सरसों का तेल...	४० भाग	६० ,,

गन्धक से बनी ग्रीज़

स्वच्छ टैलो	२ भाग
ट्रेन तेल	२ ,,
गन्धक का चूर्ण	१ ,,

टैलो को एक बर्तन में लगभग १००° श तक गरम किया जाता है और फिर इसमें ट्रेन तेल मिला दिया जाता है। टैलो और ट्रेन तेल को खूब चला कर मिला देने के बाद इसमें गन्धक का चूर्ण मिला दिया जाता है। सब चीज़ों को घोट कर एक दिल कर दिया जाता है। अब ग्रीज़ ठंढी होने के लिए रख दी जाती है।

गन्धक का चूर्ण बहुत महीन होना चाहिए नहीं तो ग्रीज़ ठीक नहीं बनेगी।

बूथ की पेटेन्ट ग्रीज़

	i	ii
स्वच्छ टैलो	६ भाग	८ भाग
ताल का तेल	१२ ,,	२० ,,
पानी	८ ,,	१० ,,
सोडा	१ ,,	१½ ,,

टैलो को पहले २६५° फ तापक्रम तक गरम किया जाता है। फिर इसमें ताल का तेल मिलाकर घोट दिया जाता है। सोडा को एक दूसरे बर्तन में पानी के साथ घोल कर इस घोल को तेलों के मिश्रण में धीरे-धीरे छोड़ते हैं और साथ ही मिश्रण को खूब हिलाते जाते हैं। सोडे का सब घोल डाल देने के बाद मिश्रण को आग पर से उतार कर अलग रख देते हैं किन्तु इसे तब तक बराबर चलाते रहते हैं जब तक कि यह जमना शुरू नहीं करता।

ऊपर बतलाई ग्रीजें बहुत अच्छी हैं और अधिकतर रेलवे कम्पनियों द्वारा ही उपयोग में लाई जाती हैं। जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है टैलो और ताल के तेल के अनुपातों को घटाने बढ़ाने से इन ग्रीज़ों की तरलता में आवश्यक प्रविवर्तन किया जा सकता है। टैलो की मात्रा बढ़ाने से ग्रीज़ अधिक कड़ी और ऊँचे तापक्रम पर द्रवित होने वाली होती है। ताल के तेल की मात्रा बढ़ाने से ग्रीज़ गरम होती है और कम तापक्रम पर द्रवित होती है।

टैलो, सरसों के तेल और सोडा से बनी ग्रीज़ें

(१) शीत ऋतु में व्यवहृत होने योग्य

टैलो	१८० भाग
सरसों का तेल	१२० ,,
सोडा	२० ,,
पानी	३६० ,,

(२) बसंत ऋतु में व्यवहृत होने योग्य

टैलो	२३० भाग
सरसों का तेल	८५ ,,
सोडा	२० ,,
पानी	३५० ,,

(३) गरमी में व्यवहृत होने योग्य

टैलो	२६० भाग

सरसों का तेल	५५ ,,
सोडा	२० ,,
पानी	३४० ,,

टैलो और ट्रेन तेल से बनी फ्राँसीसी ग्रीज़

टैलो	२६० भाग
ट्रेन तेल	२३० ,,
सोडा	२३ ,,
पानी	५०० ,,

टैलो और रेंड़ी के तेल से बनी ग्रीज़

रेंड़ी का तेल	१४० भाग
टैलो	७ ,,
सुअर की चर्बी (Pork fat)	१४ ,,

यह चिकनाई बहुत उपयोगी है, किन्तु अधिक मंहगी होने के कारण महीन पुर्जों में ही व्यवहार की जाती है।

ताल के तेल से बनी ग्रीज़ें

ताल के तेल से बहुत सी ठोस चिकनाइयाँ बनाई जाती हैं जो रेलगाड़ियों, इंजिनों के बड़े पहियों और अन्य भारी तथा तेज़ चलने वाली मशीनों में इस्तेमाल होती हैं।

ताल के तेल से बनी चिकनाइयाँ साधारणतः पीले या नारंगी रंग की होती हैं, क्योंकि इनके बनाने में अधिकतर प्राकृतिक अवस्था में प्राप्त ताल का तेल इस्तेमाल होता है जिसका रंग पीला या नारंगी होता है।

कुछ ग्रीज़ अकेले ताल के तेल से ही बनाई जाती हैं। अनुभव से ज्ञात हुआ है कि यद्यपि ये सस्ती होती हैं फिर भी जिन कामों के लिए ये बनाई जाती हैं उन कामों के लिए बहुत अच्छी नहीं होतीं। इनका द्रवणांक बहुत कम होता है अतः मशीन के चलने से जो ताप उत्पन्न होता है उस ताप में ये बहुत अधिक पतली हो जाती हैं और बह कर व्यर्थ नष्ट हो जाती हैं। इस कारण केवल ताल के तेल से बनी ग्रीज़ रेलगाड़ी की धुरियों तथा बैलगाड़ियों के लिए उपयुक्त नहीं हैं। ताल के तेल में साधारणतः टैलो मिला कर इसका द्रवणांक बढ़ाया जाता है। यदि बहुत कम द्रवणांक की आवश्यकता होती है तो ताल के तेल में कुछ पतला तेल जैसे ट्रेन तेल या सरसों का तेल मिला दिया जाता है। इन सब तेलों के इस्तेमाल से ताल तेल की ग्रीज़ मंहगी हो जाती है। किन्तु अच्छी ग्रीज़ बनाने के लिए इन तेलों का मिलाना आवश्यक है।

ताल के तेल और सोडा से बनी ग्रीज़

ताल के तेल की ग्रीज़ को उपयोगी बनाने के लिए यह ज़रूरी है कि उसमें धोने का सोडा थोड़ा मिलाया जाय। जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है कास्टिक सोडे की भाँति धोने के सोडे में भी चर्बी और तेलों को इमलशन के रूप में बदल देने का गुण होता है। किसी तरल चर्बी या तेल में सोडे का घोल मिलाने से दूधिया रंग का तरल प्राप्त होता है। यह दूधिया तरल तेल का इमलशन होता है। इमलशन से दो लाभ होते हैं—पहला यह कि इसके कारण चिकनाई पानी की काफ़ी मात्रा में मिलाई जा सकती है जिसके फलस्वरूप चिकनाई का वजन बिना उसकी कीमत बढ़ाये बढ़ जाता है। दूसरा लाभ यह होता है कि ताल के तेल में जो अम्ल मुक्त दशा में रहता है वह सोडे के साथ मिल कर साबुन में बदल जाता है और तेल अम्ल रहित हो जाता है। यदि चिकनाई में अम्ल रह जाता है तो वह धातुओं को धीरे धीरे गला देती है।

ऊपर की ग्रीज़ निम्न विधि से बनाई जाती है। एक बड़े बर्तन में पहले टैलो को डाल कर गला लिया जाता है। इसमें फिर ताल के तेल को मिला कर खूब घोट देते हैं। मिश्रण को १००° श तापक्रम पर रख कर पूरी क्रिया की जाती है।

एक दूसरे बर्तन में साधारण सोडे या कास्टिक सोडे का एक निश्चित घोल बना लिया जाता है। इस घोल को टैलो और ताल के तेल के गरम मिश्रण में धीरे धीरे डालते हैं और साथ ही मिश्रण को अच्छी तरह बराबर चलाते जाते हैं। तब तक मिश्रण को बराबर घोटा जाता है जब तक कि मिश्रण गाढ़ा नहीं पड़ जाता। बीच बीच में गरम मिश्रण के कुछ

अंश को बाहर निकाल कर ठंढा कर यह देख लिया जाता है कि वह ठंढा होने पर जमता है या नहीं। जब ठंढा होने पर जम जाता है तब कुल मिश्रण को आग पर से उतार कर एक बड़े बर्तन में भर कर जमने के लिए रख दिया जाता है।

रेलगाड़ियों में ग्रीज़ों को इस्तेमाल करने के लिए धुरियों के ऊपर एक सन्दूक बना रहता है। जिसमें ग्रीज़ भर दी जाती है। इस सन्दूक के नीचे एक छोटा छेद रहता है जिसके द्वारा ग्रीज़ धुरी पर थोड़ी थोड़ी पहुँचती रहती है। जब पहिया घूमना शुरू करता है तो धुरी रगड़ द्वारा गरम हो जाती है। इस गरमी से ग्रीज़ कुछ पतली हो जाती है और सन्दूक के छेद से रिस कर धुरी तक पहुँच जाती है।

विभिन्न मौसिमों के लिए विभिन्न द्रवणांक की ग्रीज़ बनाने की आवश्यकता होती है। गरमी के दिनों में ऊँचे द्रवणांक वाली ग्रीज़ और जाड़े में कम द्रवणांक वाली इस्तेमाल की जाती है।

इन ग्रीज़ों के कुछ नुसख़े नीचे दिये जाते हैं।

ताल के तेल और सोडा से बनी पीली ग्रीज़

(१) जाडे के उपयोग के लिए

टैलो	७५० भाग
ताल का तेल	५०० ,,
सरसों का तेल	७० ,,
सोडा	२२८ ,,
पानी	२६०० ,,

(२) बसंत ऋतु के उपयोग के लिए

टैलो	८०० भाग
ताल का तेल	५०० ,,
सरसों का तेल	५५ ,,
सोडा	२२२ ,,
पानी	२५०० ,,

(३) गर्मी के उपयोग के लिए

टैलो	९०० भाग
ताल का तेल	५०० ,,
सरसों का तेल	४४ ,,
सोडा	२१६ ,,
पानी	२४५० ,,

ताल के तेल, साबुन और सोडा से बनी ग्रीज़

(१) जाडे के उपयोग के लिए

ताल का तेल	१६० भाग
साबुन	५० ,,
सोडा	१६ ,,
पानी	५४० ,,

(२) गर्मी के उपयोग के लिए

ताल का तल	१६० भाग
साबुन	५० ,,
सोडा	२० ,,
पानी	३६० ,,

ताल के तेल को द्रवित कर उसमें साबुन मिला दिया जाता है। ये दोनों चीज़ें जब मिल जाती हैं तब सोडे को लगभग ६० भाग गरम पानी में घोल लिया जाता है और इस घोल को धीरे धीरे मिश्रण में डाल कर मिश्रण को खूब अच्छी तरह चलाते हैं। इसके बाद पानी की निश्चित मात्रा गरम मिश्रण में मिला दी जाती है और फिर मिश्रण को एक दूसरे बर्तन में जमने के लिए उड़ेल दिया जाता है। ठंढा होते समय कुल मिश्रण को तब तक खूब अच्छी तरह चलाते रहते हैं जब तक वह जमना शुरू नहीं करता।

ताल के तेल की अमरीकी ग्रीज़

	I	II
टैलो	१५० भाग	१०० भाग
ताल का तेल	१०० ,,	१६० ,,
सोडा	२५ ,,	३५ ,,
पानी	१६० ,,	३०० ,,

ताल के तेल की फ्रांसीसी ग्रीज़

	I	II
टैलो	३८० भाग	२८० भाग
ताल का तेल	१२५ ,,	१०० ,,
सरसों का तेल	६५ ,,	७० ,,

सोडा	२५ ,,	२० ,,
पानी	४२० ,,	५०० ,,

ताल के तेल की बेलजियन ग्रीज़

	I	II
ताल का तेल	२१० भाग	३८० भाग
टैलो	—	७५० ,,
साबुन	८५ ,,	— ,,
कोलज़ा तेल (Colzaoil)		२५० ,,
सोडा	१५ ,,	५० ,,
पानी	७०० ,,	१३०० ,,

यह ग्रीज़ अच्छी भी है और सस्ती भी पड़ती है।

भारी वैगनों की धुरियों के लिये ग्रीज़

(२) जाड़े में इस्तेमाल के योग्य

टैलो	४२० भाग
ताल का तेल	८४० ,,
सोडा	१४० ,,
पानी	४२०० ,,

(९) गर्मी में इस्तेमाल के योग्य

टैलो	४२० भाग
ताल का तेल	४९० ,,
सोडा	३५ ,,
पानी	२३०० ,,

जाड़े और गर्मी के बीच के मौसिम के लिए नं० २ नुसखे में सोडा की मात्रा थोड़ी घटा देनी चाहिए और ताल के तेल की बढ़ा देनी चाहिए।

बैलगाड़ी के लिए ग्रीज़

ताल का तेल	२१० भाग
टैलो	८५ ,,
सोडा	६५ ,,
पानी	६२० ,,

टैलो और ताल के तेल को एक साथ मिलाकर द्रवित किया जाता है। इसमें फिर सोडा का घोल डाल कर खूब घोटा जाता है। अंत में कुल पानी डाल कर अच्छी तरह मिला दिया जाता है। इसके बाद दूसरे वर्तन में निकाल कर ठंढा होने के लिए रख दिया जाता है। ठंढा होते समय भी ग्रीज़ को बराबर घोटते रहना चाहिए।

लकड़ी की मशीनों के योग्य ग्रीज़

टैलो	३० भाग
ताल का तेल	२० ,,
ट्रेन तेल	१० ,,
ग्रैफ़ाइट	२० ,,

तेल और टैलो को एक साथ द्रवित करने के बाद उसमे ग्रैफ़ाइट का बहुत महीन चूर्ण मिलाकर अच्छी तरह घोट दिया जाता है।

ऊपर बतलाई विभिन्न प्रकार की ग्रीज़ों में ताल के तेल से बनीं ग्रीज ही अधिकतर उपयोग में आती है। अन्य ग्रीज़ों का उपयोग बहुत ही कम होता है।

सीसे के साबुन से बनी चिकनाइयां
(Lead Soap Lubricants)

सीसे के लवणों में चर्बी को साबुन में बदल देने का गुण होता है। इस साबुन को सीसे का साबुन कहते हैं। ये साबुन कम तापक्रम पर कड़े रहते हैं, किन्तु साधारण तापक्रम पर नरम लेई की अवस्था में हो जाते हैं। मशीनों में रगड़ द्वारा जो ताप उत्पन्न होता है उसमें इनकी तरलता ऐसी अवस्था में रहती है जो चिकनाई के अर्थ इन्हें उपयुक्त बनाती है। यह गुण बहुत उपयोगी है और इसी के कारण इनका उपयोग चिकनाई के अर्थ होता है।

इन ग्रीज़ों को बनाने के लिए सबसे पहले यह ज़रूरी है कि सीसे के बेसिक एसीटेट (Basic acetate of lead) का एक घोल तैयार किया जाय। इस घोल को फिर चर्बी की उचित मात्रा के साथ मिश्रित किया जाता है।

घोल निम्न रीति से बनाया जाता है—

सीसे का एसीटेट	१० भाग
सीसे की आक्साइड (Litharge)	१० ,,
पानी	११० ,,

ऊपर की चीज़ों को मिला कर २ घंटे उबाला

जाता है। इसके बाद इसे ठंढा होने के लिए रख दिया जाता है। ऊपर से साफ़ तरल निथार कर अलग कर लिया जाता है। इस घोल में पानी मिलाकर इसे इतना पतला कर लिया जाता है कि ठोस पदार्थ की मात्रा इसमें १०० प्रतिशत रहे।

ग्रीज़ बनाने के लिये पदार्थों को निम्न अनुपात लेते हैं—

सीसे का बेसिक एसीटेट	१०० भाग
सरसों का तेल	८० ,,
सुअर की चर्बी	८० ,,

तीनों चीज़ों को एक साथ मिलाकर लगभग १००° श पर गरम किया जाता है जब सब चीज़ें अच्छी तरह मिलकर एक रस हो जाती हैं तो इसे आग से उतार कर ठंढा होने के लिए रख देते हैं। ठंढा होने पर यह जम कर ठोस के रूप में हो जाती है। इसका द्रवणांक ८५° से १०५° फ तक रहता है। इस ग्रीज का द्रवणांक ऊँचा होने के कारण यह बैलगाड़ियों या अन्य धीमी गति से चलने वाली गाड़ियों के लिए उपयुक्त नहीं होती। तेज़ गति वाली गाड़ियों की धुरियों के लिए ही इसका उपयोग होता है।

सीसे के ओलियेट से बनी ग्रीज़
(Lead oleate Grease)

स्टियरिन (Stearin) की मोमबत्ती बनाने में चर्बी को ऊँचे दबाव पर रक्खा जाता है जिससे ओलिक अम्ल चर्बी से अलग निकल आती है। इस ओलिक अम्ल को कम तापक्रम पर रखने से इसमें घुली ठोस वसा अम्ल ठोस रूप में तली में बैठ जाती है। ऊपर से ओलिक अम्ल के तरल को निथार कर अलग कर लिया जाता है। इस ओलिक अम्ल को प्रायः 'टैलो तेल' भी कहते हैं।

ओलिक अम्ल को एक बर्तन में लेकर बर्तन को ऊँची भट्ठी पर चढ़ाते हैं। आग का प्रबन्ध ऐसा रहता है कि बर्तन में आँच सीधी नहीं लगती, बल्कि बर्तन गरम हवा से गरम होता है।

ओलिक अम्ल का तापक्रम जब क्वथनांक के लगभग पहुँचता है तब इसमें बहुत महीन लिथार्ज का चूर्ण एक पतली नली के द्वारा डाला जाता है। लिथार्ज की मात्रा ओलिक अम्ल के भार की एक चौथाई होनी चाहिये। लिथार्ज डालते समय ओलिक अम्ल को बराबर एक लोहे की छड़ से चलाते रहते हैं। सब लिथार्ज डाल चुकने के बाद लगभग आध घंटे तक मिश्रण को और घोटते हैं। इसके बाद मिश्रण को आग पर से उतार कर धीरे धीरे ठंढा होने देते हैं। अनघुल लिथार्ज तली में बैठ जाता है। ऊपर से साफ़ तरल को निथार कर एक अलग बर्तन में ठंढा होने के लिए रख दिया जाता है। ठंढा होकर यह जम जाता है।

तेज़ गति से घूमने वाले पहियों की धुरियों के लिए यह ग्रीज़ बहुत उपयुक्त है, क्योंकि इन धुरियों में जो ताप रगड़ द्वारा उत्पन्न होता है वह इस ग्रीज को उपयुक्त तरल की अवस्था में ला देता है। धीमी गति से घूमने वाले पहियों के लिए यह उपयुक्त नहीं है, क्योंकि वहाँ जो ताप उत्पन्न होता है वह इतना कम होता है कि यह उपयुक्त तरल की अवस्था में नहीं आ पाती, क्योंकि इसका द्रवणांक ऊँचा रहता है।

इस ग्रीज़ का द्रवणांक नीचा करने के लिए इसमें घोड़े की चर्बी, ट्रेन तेल या अन्य तेल मिला देना चाहिए। यह उस समय मिलानी चाहिए जब कि तैयार सीसे के ओलिएट को गरम अवस्था में दूसरे बर्तन में निथार कर निकालते हैं। तेल मिलाने के बाद मिश्रण की खूब घुटाई कर देनी चाहिए।

साधारण साबुन से बनी ग्रीज़
(Soap Greases)

साबुन से बनी ग्रीज़ों में पोटाश के साबुन इस्तेमाल किये जाते हैं। यद्यपि ये ग्रीज़ें प्रायः बहुत उपयोगी सिद्ध होती हैं फिर भी इनका अधिक प्रचार नहीं है। इनके साथ एक डर यह रहता है कि यदि दाहक क्षार (Caustic alkalis) की मात्रा अधिक

रह गई (जो प्रायः रह जाती है) तो इनसे मशीनों की धातुओं को हानि पहुँचेगी।

साबुन से बनी ग्रीज़ के कुछ नुसखे नीचे दिये जाते है।

शारडन की साबुन से बनी ग्रीज़

	I	II
पोटाश साबुन	१० भाग	५० भाग
पानी	९० ,,	५० ,,

तेल से बनी ग्रीज़ों की अपेक्षा यह बहुत सस्ती पड़ती है। मौसिम के अनुसार साबुन की मात्रा घटाई या बढ़ाई जा सकती है।

टैलो, तेल और साबुन की ग्रीज़

टैलो	४२० भाग
जैतून का तेल	३६० ,,
पोटाश	६० ,,
पानी	६५० ,,

पोटाश को पानी में मिला कर इसका घोल तैयार किया जाता है। इस घोल को लगभग क्वथनांक तक गरम किया जाता है। फिर इस गरम घोल में कुल तेल और चर्बी एक साथ डाल दी जाती है। मिश्रण को आग पर उबलने देते हैं। जब मिश्रण गाढ़ा पड़ जाता है तो आग पर से नीचे उतार लेते हैं। यह ग्रीज़ वास्तव में पोटाश साबुन का एक पतला घोल है जिसमें बहुत सी चर्बी मिश्रित रहती है। यथार्थ में इसे एक इमलशन चिकनाई कहा जा सकता है।

गाड़ियों की धुरियों के योग्य ग्रीज़

	I	II
टैलो	५०० भाग	५०० भाग
अलसी का तेल	५०० ,,	४५० ,,
रोज़िन	५०० ,,	५०० ,,
कास्टिक सोडा का घोल	३१५ ,,	५०० ,,

ये दोनों ही ठोस ग्रीज़ें हैं और बैल तथा घोड़ा गाड़ी की धुरियों के लिए बहुत उपयोगी हैं। बनाने की विधि यह है: रोज़िन को पहले एक बर्तन में गला लिया जाता है। इसमें टैलो और अलसी का तेल डाल दिया जाता है। जब ये सब मिल कर एक सा हो जाते हैं तो फिर सोडे का घोल डाला जाता है।

ऊपर की ग्रीज़ें साधारण साबुन, रोज़िन साबुन और चर्बी के परस्पर मिश्रण से बनी इमलशन हैं।

कच्चे रबर से बनी चिकनाइयां

(Caoutchouu Lebricants)

डूलन की ग्रीज़

ट्रेन तेल	२०० भाग
कच्चा रबर	२० ,,

ट्रेन तेल को क्वथनांक तक गरम कर उसमें रबर के छोटे छोटे टुकड़े धीरे धीरे डालते जाते हैं और तेल को घोटते जाते हैं। जब सब रबर तेल में मिल चुकता है तो इसे आग पर से नीचे उतार कर रख देते हैं। यह ग्रीज़ भी मंहगी होने से अधिक प्रचलित नहीं है।

मशीन ग्रीज़

रबर	२० भाग
अलसी का तेल	१००० ,,

रबर की अमरीकी ग्रीज़

रबर	४ भाग
तारपीन का तेल	८ ,,
सरसों का तेल	११४ ,,
सोडा	१६ ,,
गोंद	४ ,,
पानी	५० ,,

रबर को तारपीन के तेल में घोल लिया जाता है। सरसों का तेल, सोडा, पानी और गोंद अलग मिश्रित किया जाता है। फिर दोनों मिश्रणों को एक साथ मिलाकर घोट दिया जाता है।

रबर से बनी मशीन पर अधिक टिकने वाली ग्रीज़

रबर	३६ भाग
तारपीन का तेल	७२ ,,

गोंद	१० ,,
टैलो	८० ,,
सोडा	७२ ,,
पानी	९०० ,,

रबर को तारपीन के तेल में लगभग ३००° फ तापक्रम पर घुला लिया जाता है। एक दूसरे बर्तन में टैलो को द्रवित कर उसमें सोडा और पानी मिला कर घोट दिया जाता है। अब इसमें रबर और तेल का मिश्रण डाल कर खूब अच्छी तरह मिश्रित कर दिया जाता है। ग्रीज़ ठंढी होने पर जम जाती है।

रबर और गटापार्चा से बनी ग्रीज़

रबर	५० भाग
गटापार्चा	५० ,,
तारपीन का तेल	१०० ,,
टैलो	१००० ,,

रबर और गटापार्चा को तारपीन के तेल में घुला कर खूब गरम किया जाता है। इस गरम घोल में धीरे धीरे टैलो मिलाया जाता है। यह ग्रीज़ मंहगी पड़ती है।

रबर से बनी धुरी के योग्य ग्रीज़

ताल का तेल	२० भाग
ट्रेन तेल	१०० ,,
रबर	२ ,,
लिथार्ज	२ ,,
लेड एसीटेट	२ ,,

रबर को छोटे-छोटे टुकड़ों में काट कर ट्रेन तेल के साथ लगभग ३९०°फ तापक्रम पर गरम किया जाता है। अब लिथार्ज और लेड एसीटेट को धीरे-धीरे डाल दिया जाता है। अंत में ताल का तेल गरम मिश्रण में डाल कर सब को खूब अच्छी तरह मिश्रित कर दिया जाता है।

रबर और चर्बी से बनी ग्रीज़

रबर	५ भाग
ताल का तेल	१०० ,,
सरसों का तेल	१०० ,,
टैलो	५० ,,

सरसों के तेल को खूब गरम कर उसमें रबर घोल दिया जाता है। इसके बाद उसमें ताल के तेल और टैलो को मिश्रित कर दिया जाता है।

अन्य ठोस चिकनाइयाँ

ऊपर के विभिन्न विभागों में बतलाई गई ठोस चिकनाइयों के अतिरिक्त कुछ अन्य ठोस चिकनाइयाँ और भी हैं। इनमें से कुछ विशेष उपयोगी चिक. नाइयों के नुसखे नीचे दिये जाते हैं।

एस्फाल्ट से बनी धुरी के योग्य ग्रीज़

एस्फाल्ट	३२ भाग
काला पिथ (Black pith)	८ ,,
पेट्रोलियम	८ ,,
लिथार्ज	८ ,,
पानी	८२ ,,

एस्फाल्ट और पिथ पहले एक बर्तन में एक साथ द्रवित कर लिए जाते हैं। फिर इनमें पेट्रोलियम मिलाकर सब को एक-सा मिश्रित कर लिया जाता है। इसके बाद लिथार्ज और अंत में पानी मिलाया जाता है। सब चीज़ें मिला देने के बाद मिश्रण को खूब घोटा जाता है जिससे कुल मिश्रण एक दिल हो जाय। इस ग्रीज़ का रंग काला चमकीला होता है। पेट्रोलियम की मात्रा घटाने-बढाने से ग्रीज़ आवश्यकतानुसार तरल बनाई जा सकती है।

नैफथलीन ग्रीज़

नैफथलीन	१०० भाग
सरसों का तेल	५०–१०० ,,

नैफथलीन को सरसों के तेल में गरम कर अच्छी तरह मिला देने से ग्रीज़ तैयार हो जाती है। सरसों के तेल की मात्रा कम रखने से ग्रीज़ ठोस और कड़ी बनती है और मात्रा अधिक रखने से ग्रीज़ तरल होती है। अतः तेल की मात्रा के परिवर्तन से यह ग्रीज़ ठोस, अर्ध-ठोस और तरल तीनों अवस्थाओं में प्राप्त की जा सकती है।

रोज़िन ग्रीज़

रोज़िन	१०० भाग
रोज़िन तेल	५० ,,
सुअर की चर्बी	३०० ,,

ग्रैफ़ाइट ग्रीज़ (धुरी के लिए)

टैलो	३६ भाग
सुअर की चर्बी	६ ,,
ताल का तेल	६ ,,
ग्रैफ़ाइट	२ ,,

ग्रैफाइट से इस ग्रीज़ का रंग कुछ काला होता है। यह ग्रीज़ बहुत अच्छी है और इंगलैंड तथा बेलजियम में रेलगाड़ियों की धुरियों में बहुत इस्तेमाल होती है।

तेज़ गति से घूमने वाली धुरियों के लिए ग्रैफाइट ग्रीज़

टैलो	१०० भाग
ग्रैफ़ाइट	१०० ,,

यह ग्रीज़ बिजली के पंखों तथा अन्य तेज़ गति से घूमने वाली मशीनों की धुरियों के लिए विशेष लाभदायक सिद्ध होती है।

बैल गाडियों तथा घोडा गाडियों के लिए ग्रीज़—बैलगाड़ियों तथा अन्य धीमी गति से चलने वाली गाड़ियों की धुरियों के लिए निम्न ग्रीज़ बहुत उपयोगी है :—

एक बड़े बर्तन में ३० भाग ऊन की चर्बी और ६० भाग वैसलीन लो और आग पर रख दो। तापक्रम कुछ बढ़ते ही ये दोनों द्रवित हो जायँगी उस समय इन्हें एक लोहे की छड़ से चलाकर मिला देना चाहिए। इसमें अब ७२ भाग बुझे चूने का महीन चूर्ण मिला कर घोट दो। एक दूसरे बर्तन में ३½ भाग कास्टिक सोडे के पानी में घोल तैयार करो और इस घोल को धीरे धीरे मिश्रण में डालो। मिश्रण को ५०°-६०° श तापक्रम पर रख कर खूब अच्छी तरह घोटो। जब मिश्रण घुट कर चिकना हो जाय तो आग पर से नीचे उतार कर रख दो ठंढा होने पर ग्रीज़ जम जायगी।

एक दूसरा नुसखा यह है :—

३५ भाग रोज़िन तेल को एक बर्तन में लेकर ५०°-६०° श तापक्रम तक गरम करो। इसमें २० भाग बुझे चूने का महीन चूर्ण मिलाकर घोट दो। ठंढा होने पर ग्रीज़ जम कर तैयार हो जायगी।

एक तीसरा नुसखा यह है :—

६० भाग वैसलीन, २० भाग बुझे चूने का चूर्ण और १ भाग लैम्प ब्लैक—तीनों को साधारण तापक्रम पर अच्छी तरह मिला दिया जाता है। इसके बाद २० भाग रोज़िन तेल मिलाकर खूब घोट दिया जाता है।

पहियों के लिए ग्रीज़

(१)	रोज़िन तेल	२० पौंड
	पेट्रोलियम	१६ पौंड
	खड़िया	३० ,,
	ताज़ा बुझा चूना	२ ,,
	कास्टिक सोडे का ३२° Tw का घोल	२½ ,,

सब चीज़ों को उचित रीति से मिलाकर मिश्रण को खूब घोट देने से ग्रीज़ तैयार हो जाती है।

(२)	गाढ़ा रोज़िन तेल	७० पौंड
	पतला ,, ,,	२० ,,
	बुझा चूना	१० ,,

तेलों को २००° फ तापक्रम तक गरम कर उसमें चूने का महीन चूर्ण मिला कर घोट देने से ग्रीज़ तैयार हो जाती है।

अप्राकृतिक रूप से ठोस किये गये तेल—कुछ तेलों को रासायनिक पदार्थों की सहायता द्वारा ठोस रूप में परिवर्तित कर ग्रीज़ की भाँति इस्तेमाल किया जाता है। इन तेलों को गाढ़ा करने के लिए उनमें रोज़िन या ओलिक अम्ल के साथ बने कैलसियम, मैगनीसियम या एल्यूमिनियम के साबुन मिलाये जाते हैं। पेट्रोलियम तेल को भी इन्हीं पदार्थों द्वारा गाढ़ा किया जा सकता है।

तरल चिकनाइयाँ

तरल चिकनाइयाँ कई दृष्टियों से ग्रीज़ों से अधिक अच्छी मानी जाती हैं। अतः इनका उपयोग ही अधिक मात्रा में किया जाता है। ग्रीज़ों की तुलना में इनका सब से बड़ा गुण यह है कि इन्हें मशीनों में डालने के लिए मशीन के उस स्थान पर किसी डिब्बे आदि बनाने की ज़रूरत नहीं पड़ती जैसा कि ग्रीज डालने के लिए ग्रीज़ बक्स की ज़रूरत पड़ती है। दूसरा गुण यह है कि ये पुर्ज़े पर पहुँचते ही अपना कार्य शुरू कर देती हैं; ग्रीज़ों की भाँति इन्हें तरल अवस्था में लाने के लिये रगड़ द्वारा उत्पन्न ताप की आवश्यकता नहीं पड़ती। तीसरा गुण यह है कि इनकी तरलता पर हवा के तापक्रम का ग्रीज़ की अपेक्षा कम प्रभाव पड़ता है।

तरल चिकनाइयाँ बनाने के लिए निम्न पदार्थ बहुत अच्छे हैं और ये ही अधिकतर इस्तेमाल होते हैं :—

१. स्पर्न तेल
२. सरसों का तेल
३. जैतून का तेल
४. रोज़िन तेल
५. ट्रेन तेल
६. हड्डी का और जानवरों के खुरों का तेल
७. पेट्रोलियम, ऊज़ोकेराइट तथा अन्य खनिज तेल
८. साबुन का घोल

जो चर्बी व तेल व्यवहार में लाये जायँ उन्हें पहले शुद्ध कर लेना चाहिए और यह देख लेना चाहिए कि उनमें वसा अम्ल मुक्त अवस्था में मौजूद नहीं हैं क्योंकि वसा अम्ल धातुओं को खा लेते हैं।

मशीन पर टिकने वाले तेल

(Cohesion oils)

तरल चिकनाई मशीन के जिस स्थान पर लगाई जाती है वहाँ से बह कर बहुत सी व्यर्थ चली जाती है। अतः चिकनाई का व्यय बहुत होता है। इस अपव्यय को कम करने के लिए कुछ ऐसी चिकनाइयाँ बनी हैं जो मशीन पर अधिक देर तक टिकी रहती हैं, शीघ्र बहकर नष्ट नहीं हो जातीं। इन चिकनाइयों को टिकने वाले तेल कहते हैं। इनकी तरलता साधारण तेलों से कुछ कम होती है।

इन चिकनाइयों का व्यवहार बहुत अच्छा नहीं समझा जाता। कुछ तो मशीन पर ऐसी कड़ी जम जाती हैं कि वहाँ पर ठीक से चिकनाई का फिर असर नहीं हो पाता।

इन चिकनाइयों में मुख्य तेल कोई गाढ़ा तेल होता है। सरसों का तेल प्रायः इसके लिए व्यवहार में आता है। कभी-कभी ट्रेन तेल, ताल का तेल और टैलो भी तरलता कम करने के लिये मिलाये जाते हैं। इन तेलों के अतिरिक्त इनमें रोज़िन तेल भी विभिन्न मात्राओं में रहता है।

रोज़िन मिलाने से तेल गाढ़ा हो जाता है। जितना अधिक रोज़िन डाला जाता है उतना ही अधिक वह गाढ़ा होता है। साधारणतः ८ से १५ प्रतिशत तक रोज़िन तेल में मिलाया जाता है।

इन तेलों के तैयार करने की विधि बहुत सरल है। एक बर्तन में सरसों के तेल को मन्दी आँच पर गरम किया जाता है और उसमें ठोस चर्बी की उचित मात्रा मिला दी जाती है। एक दूसरे बर्तन में रोज़िन तेल को लगभग क्वथनांक तक गरम कर उसमें रोज़िन के छोटे-छोटे टुकड़े डाल कर घोल देते हैं। जब सारा रोज़िन घुल जाता है तो इसको सरसों के तेल वाले बर्तन में डाल देते हैं। कुल मिश्रण को अच्छी तरह घोटते हैं। जब मिश्रण एक रस हो जाता है तो इसे आग पर से उतार कर अलग रख देते हैं और तब तक घोटते हैं जब तक कि वह गाढ़ा पड़ना शुरू नहीं करता।

नीचे इन तेलों के दो नुसखे दिये जाते हैं—

सरसों का तेल	८५ भाग	९६ भाग
स्वच्छ टैलो	५ ,,	४ ,,
रोज़िन तेल	१२ ,,	४ ,,

रोज़िन	१२ ,,	८ ,,

पहला तेल अधिक गाढ़ा है और दूसरा कम। पहला तेज़ गति से चलने वाली भारी वजन की धुरियों के लिए अधिक उपयुक्त है और दूसरा हल्की धुरियों के लिए।

रोज़िन तेल और चर्बी या अन्य साधारण तेल से बनी चिकनाइयाँ

रोज़िन तेल ठोस चर्बी तथा तरल तेलों में पूर्ण रूप से मिलनशील है। इसके तथा चर्बी व तेलों के मिश्रण से बहुत चिकनाइयाँ तैयार की जाती हैं।

रोज़िन तेल और ट्रेन तेल से बनी चिकनाई

रोज़िन तेल	१०० भाग
ट्रेन तेल	५२ ,,

कुछ दिनों तक रक्खी रहने पर इस चिकनाई से कुछ गाज धीरे धीरे अलग होकर तली में बैठ जाती है। जब गाज बैठ जाय तो ऊपर से स्वच्छ तेल को निथार कर इसे इस्तेमाल करना चाहिए। ताज़े बने तेल को तुरन्त उपयोग में नहीं लाना चाहिए।

गाढ़ी चिकनाई

	जाड़े के योग्य I	गर्मी के योग्य II
टैलो	३५ भाग	६० भाग
रोज़िन तेल	१० ,,	८ ,,
सरसों या जैतून का तेल	६५ ,,	४० ,,

रोज़िन तेल की पेटेंट ग्रीज़ (धुरी के लिए)—

यह ग्रीज़ रोज़िन तेल और चूने के सम्मिश्रण से बनती है। बुझे हुये चूने को पानी के साथ एक गाढ़े घोल के रूप में कर लिया जाता है। इसे छान कर इसमें मिले कंकड़, बालू आदि को अलग कर लिया जाता है। इसमें रोज़िन तेल महीन धार के रूप में डालते हैं और मिश्रण को खूब घोटते हैं। चूने की मात्रा तेल के अनुपात से २०-२५ प्रतिशत होती है।

यह अर्ध-पारदर्शक पीले रंग की ग्रीज़ है और कई दृष्टियों से बहुत उपयोगी है। एक सबसे बड़ा गुण इसमें यह है कि यह जाड़े तथा गर्मी प्रत्येक मौसिम में इस्तेमाल की जा सकती है, क्योंकि थोड़े तापक्रम से इसकी तरलता पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता।

पैराफिन तेल की ग्रीज़

तेल के कुएँ से प्राप्त हुये कच्चे पेट्रोलियम को स्रवण करने पर इसमें से कई प्रकार के तेल प्राप्त होते हैं। पहले अधिक उड़नशील पतले तेल स्रवित होते हैं; बाद में कम उड़नशील कुछ गाढ़े तेल। इन गाढ़े तेलों को पैराफिन तेल कहते हैं। ये तेल वज़नी गाड़ियों या इंजिनों की धुरियों के लिए बहुत उपयुक्त हैं। रेंड़ी के तेल को छोड़ कर अन्य सभी चर्बी व तेलों में पैराफिन तेल मिश्रित हो जाता है। पैराफिन तेल में इन्हीं विभिन्न तेलों व चर्बियों को मिलाकर ग्रीज़ तैयार की जाती है। इन ग्रीज़ों की तरलता पर तापक्रम का काफ़ी प्रभाव पड़ता है। अतः गर्मी तथा जाड़े के लिए अलग अलग ग्रीज़ बनानी पड़ती है। नीचे दो नुसखे दिये जाते हैं—

	गर्मी के लिए I	जाड़े के लिए II
पैराफिन तेल	१० भाग	६ भाग
स्वच्छ सरसों का तेल	९० ,,	९४ ,,

पैराफिन ग्रीज़ धुरियों तथा मोटे भारी पुर्ज़ों के लिए अच्छी चिकनाइयाँ हैं। इसका सबसे बड़ा गुण यह है कि इसका धातुओं पर कोई हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता।

पैराफिन और पेट्रोलियम जेली

पैराफिन तेल और पेट्रोलियम जेली को विभिन्न अनुपातों में द्रवित कर मिलाने से विभिन्न तरलता की ग्रीज़ें प्राप्त होती हैं। चूँकि इन ग्रीज़ों में अम्लता बिल्कुल नहीं रहती इस कारण ये महीन औज़ारों तथा विभिन्न मशीनों के लिए बहुत उपयोगी होती हैं।

विशेष कार्यों के लिए बनाई गई चिकनाइयाँ
(Lubricants for Special Purposes)

तेज़ गति से घूमने वाली धुरियों के लिए ग्रीज़

I साबुन	१ भाग
सरसों का तेल	१ ,,
पानी	५ ,,
टैल्क	२ ,,
II ऊज़ोकेराइट	१० भाग
पेट्रोलियम	४ ,,

पिस्टन के लिए ग्रीज़

पैराफिन तेल	१ भाग
टैल्क चूर्ण	४ ,,

पैराफिन तेल को गरम कर उसमें टैल्क चूर्ण मिला कर अच्छी तरह घोट देने से ग्रीज़ तैयार हो जाती है।

मशीन के पट्टे की ग्रीज़

अलसी का तेल	६ भाग
लिथार्ज	४ ,,

दोनो चीज़ों को परस्पर मिलाकर और कुछ पानी डाल कर इतनी देर तक उबाला जाता है कि ठंढा करने पर मिश्रण गाढ़ी लेई की तरह हो जाय। इसके बाद मिश्रण में थोड़ा तारपीन का तेल मिला कर पतला कर लिया जाता है।

बृटिश पेटेन्ट ग्रीज़

इस नाम से बहुत सी ग्रीज़ें बाज़ार में बिकती हैं। इनमें चूने का साबुन रोज़िन तेल या अन्य तेल में मिश्रित रहता है। चूने का साबुन पहले तैयार कर लिया जाता है। साबुन बनाने के लिए लगभग ५ भाग बुझा चूना और ७ भाग ट्रेन तेल एक साथ गरम किया जाता है। ये दोनों मिल कर एक गाढ़ा तरल साबुन बनाते हैं। इस साबुन को फिर विभिन्न तेलों में मिला कर ग्रीज़ बनाई जाती है। नीचे दो नुसखे दिये जाते हैं —

सफ़ेद पेटेन्ट ग्रीज़

चूने का साबुन	१०० भाग
रोज़िन तेल	१०० ,,

नीली पेटेन्ट ग्रीज़

चूने का साबुन	१०० भाग
रोज़िन तेल	१२५ ,,
कोलतार का तेल	१५-२५ ,,

नीला रंग लाने के लिए अल्ट्रामेरीन या प्रशियन ब्लू डाला है।

साबुन और खनिज तेल से बनी चिकनाई

पेट्रोलियम को २ या ३ प्रतिशत साबुन के साथ १००° श तापक्रम पर गरम करने से एक मक्खन की तरह गाढ़ी ग्रीज प्राप्त होती है। इसी भाँति रोज़िन और चूने के साबुन को रोज़िन तेल के साथ गरम करने से भी गाढ़ी ग्रीज प्राप्त होती है।

मशीनों के तेल व ग्रीज़ें

(१) ओलिक अम्ल	९० भाग
पेट्रोलियम	१० ,,
(२) ओलिक एसिड	१०० ,,
ग्लिसरीन	५० ,,
(३) ओलिक एसिड	१०० ,,
गाइकम तेल	२० ,,
(४) ग्लिसरीन	१०० ,,
पेट्रोलियम	१० ,,

टरबाइन के तेल (Turbine oils)

(१) पीला रोज़िन तेल	२०० भाग
जैतून का तेल	१ ,,
(२) पीला रोज़िन तेल	२०० ,,
नीला ,, ,,	३३ ,,
सरसों का तेल	३३ ,,
(३) पीला रोज़िन तेल	४० ,,
जैतून का तेल	४० ,,
ओलीन	६० ,,
(४) पीला रोज़िन तेल	४० ,,

बिनौले का तेल	३०	,,
पैराफिन तेल	३०	,,

ऊपर के तेल हल्का भार वहन करने वाली किन्तु तेज़ गति से घूमने वाली धुरियों तथा अन्य मशीन के पुर्ज़ों के लिए बहुत उपयुक्त हैं।

खनिज तेलों की चिकनाइयाँ

(Mineral Lubricating Oils)

पेट्रोलियम को स्रवण करने पर उड़नशील तेलों (जैसे पेट्रोल, किरोसीन) के निकलने के बाद कुछ गाढ़े न उड़ने वाले तेल प्राप्त होते हैं। इन तेलों को चिकनाई के तेल कहते हैं। जलने पर ये तेल बहुत धुआँ देते हैं और इनकी लपक भी बहुत धीमी होती है। इस कारण ये जलाने के लिए उपयुक्त नहीं हैं और चिकनाई के रूप में ही विशेष रूप से इस्तेमाल किये जाते हैं। इनमें पैराफिन तेल को अपने में घुलनशील करने का गुण होता है और आवश्यकतानुसार ये गाढ़े भी किये जा सकते हैं। अतः ये हर प्रकार की मशीनों के लिए अच्छी चिकनाइयाँ सिद्ध होते हैं। आजकल इन्हीं से बनी चिकनाइयों का विशेष प्रचार है।

चिकनाई के खनिज तेल काफ़ी सस्ते होते हैं और उनमें अम्लता बिल्कुल नहीं होती। अतः ये बहुत ही उपयोगी चिकनाइयाँ हैं। पेट्रोलियम से स्रवित होने वाले पदार्थों में केवल वे ही पदार्थ जो अधिक गाढ़े होते हैं और जलाने के काम में नहीं आ सकते चिकनाई के रूप में व्यवहार होते हैं। ये तेल हल्के पीले रंग के होते हैं और लगभग गंधहीन होते हैं। चिकनाई के अर्थ ये अकेले भी इस्तेमाल होते हैं और रोज़िन तथा पैराफिन तेल के मिश्रण के रूप में भी।

खनिज तेलों की गाढ़ी चिकनाई

ये चिकनाइयाँ बुझे हुये चूने के घोल, वानस्पतिक तेलों और खनिज तेलों के पारस्परिक मिश्रण से प्राप्त होती हैं। वानस्पतिक तेल के साथ मिल कर चूना कैलसियम साबुन बनाता है जो खनिज तेल में घुला रहता है। इस साबुन की मात्रा जितनी अधिक रहती है उतना ही अधिक ग्रीज़ का द्रवणांक होता है। द्रवणांक ऊँचा होने के कारण और गलने पर गाढ़ी ही रहने के कारण ये ग्रीज़ें विशेषरूप से अधिक दबाव के भाप के इंजिनों के लिए उपयुक्त हैं।

नीचे ऐसी चिकनाई के कुछ नुसखे दिये जाते हैं—

खनिज ग्रीज़ें

(१)	चिकनाई का खनिज तेल	१००	भाग
	अलसी का तेल	३०	,,
	ऊज़ोकेराइट तेल (Ozokerite)	२०	,,
	चूना (बुझा हुआ)	६	,,
(२)	चिकनाई का खनिज तेल	१००	भाग
	सरसों का तेल	५०	,,
	अलसी का तेल	७५	,,
	रोज़िन तेल	१००	,,
	चूना (बुझा हुआ)	२५	,,

वैसलीन (Vaseline)—पेट्रोलियम के स्रवण में लगभग ३००-३५०° तापक्रम पर जो पदार्थ स्रवित होता है वह वैसलीन है। यह अर्ध-ठोस पारदर्शक पदार्थ है जो कई ठोस तथा तरल हाइड्रोकार्बन का मिश्रण है। यह बहुत अच्छी चिकनाई है। शुद्ध करने के बाद यह अकेला ही चिकनाई के काम में इस्तेमाल किया जाता है। इसमें कोई अम्लता नहीं होती। अतः यह एक बहुत उपयोगी चिकनाई है।

पैरावैसलीन (Para-Vaseline)—वैसलीन में पेट्रोलियम मिलाने से विभिन्न तरलता की पतली चिकनाई भी बनाई जा सकती हैं। इसी तरह वैसलीन में पैराफिन मिलाने से अधिक गाढ़ी चिकनाई तैयार की जा सकती है। पैराफिन और वैसलीन के मेल से बने गाढ़े मिश्रण को ही पैरावैसलीन कहते हैं। इसमें कुछ रंग डाल कर इसे प्रायः रंगीन कर दिया जाता है।

साबुन और पेट्रोलियम जेली से बनी ग्रीज़ें

पेट्रोलियम जेली में रोज़िन साबुन मिलाने से

बड़ी अच्छी ग्रीज़ बनती है जो रेलवे में बहुत इस्तेमाल की जाती है। नीचे एक ऐसी ग्रीज़ का नुसखा दिया जाता है—

पेट्रोलियम जेली	८ भाग
टैलो	१ ,,
रोज़िन	१ ,,
कास्टिक सोडे का घोल (२०° बोमे)	१½ ,,

लैनोलिन से बनी चिकनाई

भेड़ के ऊन से एक चर्बी प्राप्त होती है जिसे ऊन की चर्बी या लैनोलिन (Lanolin) कहते हैं। यह चर्बी की भाँति नरम पदार्थ है किन्तु रासायनिक दृष्टि से चर्बी के वर्ग का पदार्थ नहीं है। रखने पर इसमें अम्लता नहीं पैदा होती। अतः इस कारण यह चिकनाई के योग्य एक अच्छा पदार्थ है। चूने और पेट्रोलियम जेली के साथ लैनोलिन को मिश्रित कर अच्छी ग्रीजें तैयार की जाती हैं। साबुन के पत्थर (Soap stone) के महीन चूर्ण को मिलाकर इसे आवश्यकतानुसार गाढ़ा किया जा सकता है। नीचे एक नुसखा दिया जाता है।

लैनोलिन ग्रीज़ (धुरी के लिए)

सरसों का तेल	१० भाग
चूना (बिना बुझा हुआ)	५ ,,
पानी	२० ,,
पेट्रोलियम जेली	५०० ,,
लैनोलिन	४० ,,
साबुन का पत्थर	१० से २५ आवश्यकतानुसार

सिलिंडर में उपयोग होने वाले तेल

(Cylinder Oils)

ये तेल विशेष कक्षा की चिकनाइयाँ हैं जो ऊँचे तापक्रम पर उबलने वाले पेट्रोलियम के पदार्थों तथा सुअर की चर्बी आदि से बनती हैं।

पेट्रोलियम को स्रवण करने पर उड़नशील तेल, (नैफ्था, किरोसीन आदि) तथा चिकनाई के तेलों का कुछ भाग स्रवित हो चुकने पर जो पदार्थ बच रहता है उसे सिलिंडर तेल कहते हैं। यह गहरे काले रंग का गाढा तरल है। हड्डी के कोयले से साफ़ करने पर हल्के पीले रंग का सिलिंडर तेल प्राप्त होता है। इस तेल को भाप के इंजिनों के सिलिंडर के लिए चिकनाई के रूप में व्यवहार किया जाता है। इसी से इसे सिलिंडर तेल कहते हैं।

चिकनाई के सम्बन्ध में वेल्स और साउथ कूम्बे का सिद्धान्त

मशीनों की चिकनाइयों में मुक्त अम्ल की उपस्थिति सदा हानिकारक समझी जाती रही है क्योंकि अम्ल धातुओं को धीरे-धीरे गला देता है। किन्तु एच० एम० वेल्स और साउथकूम्बे ने अपने अनुभवों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि वे चिकनाइयाँ, जिनमें चर्बी का अंश रहता है, उन चिकनाइयों से, जो शुद्ध खनिज तेलों से ही बनाई जाती हैं, सदा अधिक उपयोगी सिद्ध होती हैं क्योंकि उनमें थोड़ा सा वसा अम्ल मौजूद रहता है। इन वैज्ञानिकों का कथन है कि एक-दो प्रतिशत वसा अम्ल मौजूद रहने से चिकनाई की उपयोगिता बढ़ जाती है।

वेल्स और साउथकूम्बे के अनुसार किसी पदार्थ की चिकनाहट का उसके गाढ़ेपन से कोई सम्बन्ध नहीं होता। उन्होंने यह दर्शाया है कि बहुत से गाढ़े पदार्थ चिकनाहट न होने से चिकनाई के कार्य के लिए व्यर्थ सिद्ध होते हैं। इन दोनों ने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया है कि जानवरों की चर्बी तथा वानस्पतिक तेलों का पृष्ठ तनाव (Surface tension) खनिज तेलों से कम होता है। साथ ही उन चर्बी और तेलों का पृष्ठ तनाव जिनमें वसा अम्ल मुक्त रूप में रहता है उन चर्बी और तेलों के पृष्ठ तनाव से कम होता है जिनमें वसा अम्ल बिल्कुल नहीं होता। किसी तरलका पृष्ठ तनाव कम होने का फल यह होता है कि वह ठोस पदार्थ को ठीक से भिगा सकता है और स्वभावतः ऐसा पदार्थ एक अच्छी चिकनाई के योग्य होता है। प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हुआ है कि एक प्रतिशत वसा अम्ल की उपस्थिति से किसी भी चिकनाई की उपयोगिता ६० प्रतिशत बढ़ जाती है।

घड़ियों और सिलाई की मशीनों के तेल

(Clockmaker's and SewingMachine Oils)

घड़ियों तथा अन्य महीन पुर्जों के लिए चिकनाइयाँ अच्छे सरसों के तेल या जैतून के तेल से तैयार की जाती हैं। इन कोमल मशीनों में इस्तेमाल होने वाले तेल बहुत शुद्ध और उत्तम जाति के होने चाहिए। इन तेलों में अम्लता बिल्कुल नहीं होनी चाहिए। अम्लता दूर करने के लिये इन तेलों को एक प्रतिशत कास्टिक सोडा के घोल के साथ खूब हिलाया जाता है। रख देने पर कास्टिक सोडे का घोल नीचे बैठ जाता है। इसे अलग निकाल दिया जाता है और इसके बाद तेल को कई बार पानी से खूब अच्छी तरह धोते हैं जिससे तेल में मौजूद कास्टिक सोडे का प्रत्येक अंश निकल जाय। अब तेल अम्ल रहित शुद्ध हो जाता है। इसका पानी सुखा कर इसे काम में लाते हैं।

कास्टिक सोडा से साफ करने के बाद भी तेल में कुछ अशुद्धियाँ, जैसे रंग के पदार्थ आदि, रह जाती हैं जो चिकनाई की दृष्टि से हानिकारक होती हैं। इन्हें दूर करने के लिए तेल को अलकोहल से मिश्रित किया जाता है। अलकोहल तेल की अशुद्धियों को अपने में घुला कर तेल से अलग कर देता है। सफाई इस भाँति की जाती है। एक साफ बोतल में तेल भर कर उसमें तेल का $\frac{1}{2}$ भाग ९० प्रतिशत अलकोहल मिला दिया जाता है। बोतल को कार्क द्वारा कस कर बन्द करने के बाद खूब अच्छी तरह हिलाया जाता है। हिलाने के बाद बोतल को धूप में रख देते हैं। कभी-कभी धूप में रक्खी बोतल को हिला दिया जाता है। लगभग १५ दिनों बाद तेल सफेद हो जाता है और उसके ऊपर की अलकोहल की पर्त पीली हो जाती है। अलकोहल को अब तेल से अलग कर लिया जाता है और साफ तेल को एक शीशे के डाट वाली बोतल में बन्द कर अँधेरी जगह में रख दिया जाता है।

ऊपर की विधि से साफ किया हुआ जैतून का तेल या बादाम का तेल घड़ियों के लिए सब से उत्तम चिकनाई है। इन दोनों को अलग-अलग भी इस्तेमाल किया जा सकता है और बराबर के मिश्रण के रूप में भी।

घड़ियों के तेलों में सब से आवश्यक गुण यह होना चाहिए कि रखने से वे गोंद के समान गाढ़ा और चिपकने वाले न हो जायँ। वसा तेलों (Fatty oils) में केवल जैतून के तेल और हड्डी के तेल में ही यह गुण रहता है।

हड्डी का तेल—घड़ियों के लिये यह बहुत अच्छा होता है। इसका सब से बड़ा गुण यह है कि यह बहुत कम तापक्रमों पर भी तरल अवस्था में ही बना रहता है। इसके विपरीत अन्य तेल कम तापक्रमों पर या तो जम जाते हैं या गाढ़ा हो जाते हैं।

घड़ियों के उपयोग में आने वाले हड्डी के तेल की सफाई निम्न रीति से की जाती है:

पहले तेल को ऊपर बतलाई विधि से साफ कर लिया जाता है। अब इसे लगभग ०° श तापक्रम पर रखते हैं। कई घंटों तक इस तापक्रम पर रखने से हड्डी के तेल में से कुछ ठोस चर्बी तली में अलग होकर बैठ जाती है। ऊपर से स्वच्छ तरल तेल को निथार कर शीशियों में भर लिया जाता है और तली में बैठी ठोस चर्बी को अलग निकाल दिया जाता है।

बढ़िया मशीनोंके तेल (Fine Machine oils)

१० भाग सरसों के तेल में ५ भाग ९० प्रतिशत अलकोहल मिला कर लगभग ७०-८०° श पर गरम किया जाता है। गरम होते समय तेल और अलकोहल को बीच-बीच में हिलाकर मिला दिया जाता है। जैसे ही अलकोहल उबलना शुरू करता है गरम करना रोक दिया जाता है। कुल द्रव को अब एक बड़े फ्लास्क में उड़ेल कर धूप में रख दिया जाता है। थोड़े दिनों बाद जब तेल रंगहीन हो जाता है तो तेल को अलकोहल से अलग कर शीशियों में भर

लिया जाता है। यह तेल महीन पुर्जों की मशीनों के लिए अच्छी चिकनाई है।

घड़ियों के लिए खनिज तेल—

अच्छी तरह साफ़ किया हुआ भारी टार तेल (Heavy tar oil) घड़ियोंमें इस्तेमाल होता है। इस तेल की सफाई निम्न विधि से की जाती है :

१०० भाग टार तेल में २ भाग ब्लीचिंग पाउडर मिलाकर खूब हिलाया जाता है। इसमें फिर तीन भाग हाइड्रोक्लोरिक एसिड मिलाया जाता है। मिश्रण को कुछ समय तक खूब तेजी से हिलाते हैं। इसके बाद लगभग ६ घंटे तक इसे अलग शान्त रक्खा रहने दिया जाता है। हाइड्रोक्लोरिक एसिड और ब्लीचिंग पाउडर नीचे बैठ जाता है और तेल ऊपर उतरा आता है। ऊपर से तेल को निथार कर अलग कर लिया जाता है। इस तेल में ५ भाग कास्टिक सोडा का घोल मिश्रित कर खूब हिलाकर अलग रख दिया जाता है। थोड़ी देर में कास्टिक सोडे का घोल नीचे बैठ जाता है। तेल को ऊपर से निथार कर अलग निकाल लिया जाता है। इसे कई बार पानी से धोने और सुखाने के बाद फिल्टर पेपर से छान कर शीशियों में भर कर रख लिया जाता है। यह तेल अब घड़ियों में उपयोग करने के उपयुक्त हो जाता है।

सिलाई की मशीन के लिए खनिज तेल

पेट्रोलियम	—	१०० भाग
पानी	—	१० ,,
ब्लीचिंग पाउडर	—	१ ,,

ब्लीचिंग पाउडर को पानी में घोल कर पेट्रोलियम में डाल दिया जाता है। इसके बाद मिश्रण को खूब अच्छी तरह हिलाने के बाद अलग रख देते हैं। लगभग दो घंटे बाद तेल ब्लीचिंग पाउडर से अलग हो जाता है। तेल को निथार कर दूसरे वर्तन में निकाल लेते हैं और फिर इसमे कास्टिक पोटास का घोल मिला कर स्रवण करने से जो पेट्रोलियम स्रवित होता है वह शुद्ध होता है और सिलाई की मशीनों के लिए उपयुक्त चिकनाई होता है।

घड़ियों और सिलाई की मशीन के लिए तेल

जैतून का तेल	—	३ भाग
बादाम का तेल	—	२ ,,
सरसों का तेल	—	१ ,,

तीनों तेलों को पहले बतलाई हुई विधियों द्वारा शुद्ध कर लिया जाता है और फिर मिश्रित कर दिया जाता है। यह मिश्रित तेल महीन पुर्जों की मशीनों के लिए बहुत अच्छा होता है।

इमलशन चिकनाइयाँ

(Emulsion Lubricants)

जब कोई चर्बी या वसा तेल (Fatty oil) कास्टिक सोडा, पोटास या सोडा कार्बोनेट के घोल के साथ मिश्रित किया जाता है तो सबसे ऊपर तो एक पर्त तेल की अलग हो जाती है और इसके नीचे एक दूधिया रंग की पर्त बन जाती है जो तेल और पानी का इमलशन होता है। इस इमलशन में तेल के महीन कण पानी में तैरते रहते हैं। जिन तेलों में वसा अम्ल की मात्रा रहती है वे अधिक शीघ्र इमलशन में परिणत हो जाते हैं और ये इमलशन अधिक टिकाऊ भी रहते हैं।

खनिज तेलों का इमलशन केवल क्षार से नहीं बनता क्योंकि इनमें अम्ल की मात्रा बिलकुल नहीं होती। इनका इमलशन साबुन के घोल द्वारा बनाया जा सकता है।

घुलनशील तेल—गन्धकाम्ल (sulphuric acid) के साथ प्रतिक्रिया करने से वसा तेल ऐसे रूप में हो जाते हैं कि वे पानी में मिलाते ही तुरन्त इमलशन में परिणत हो जाते हैं। इन तेलों को घुलनशील तेल कहते हैं। ये रंगाई, कपड़ों की छपाई तथा उनको मुलायम करने आदि के काम में बहुत लाये जाते हैं। इनको व्यवहार करने में एक लाभ यह होता है कि ये पानी द्वारा धोकर कपड़ों आदि से निकाले जा सकते हैं।

औजारों के लिए घुलनशील तेल

यह तेलों के इमलशन होते हैं। नीचे ऐसे इमलशन के तीन नुसखे दिये जाते हैं—

(१) खनिज तेल	—	५६ भाग
ओलीन साबुन (तरल)		२८ „
अमोनिया	—	५.५ „
अलकोहल	—	११ „
(२) खनिज तेल	—	६३ भाग
ओलीन	—	२१ „
कास्टिक सोडे का घोल (३५°Be)		७ „
अलकोहल	—	९ „
(३) खनिज तेल	—	७० भाग
रोजिन	—	१० „
कास्टिक सोडे का घोल (३५°Be)		४ „
अलोकहल	—	४ „

घुलनशील रोजिन तेल

रोजिन तेल	—	८० भाग
अलकोहल	—	१२ „
कास्टिक सोडे का घोल (३५·१६)		८ „

घुलनशील खनिज और रोजिन तेल निम्न कार्यों में उपयोगी सिद्ध होते हैं: (१) छेद करने, काटने तथा पालिश करने के औज़ारों में चिकनाई के रूप में; (२) ऊनकी कताई के पहले उसे चिकना करने के लिए; (३) सूती कपड़ों को चिकना करने के लिए; (४) बहुत सी घुलनशील दवाओं में मिलाने के लिए।

चिकनाई के तेलों के स्थान में उपयोग होने वाले अन्य पदार्थ

(Substitutes For Lubricating oils)

चिकनाई के तेलों की माँग बढ़ने से बहुत से आवश्यक कामों के लिए इनके प्राप्त करने में कठिनाई होने लगी है। कुछ सालों से ऐसे दूसरे पदार्थ मालूम करने का प्रयत्न हो रहा है जो तेलों के स्थान में चिकनाई के अर्थ प्रयुक्त हो सकें। इस तरह के कई पेटेंट बाजार में बिकने भी लगे हैं। एक पेटेंट में टेट्राहइड्रोनैफ्थलीन और डेकाहाइड्रोनैफ्थलीन अकेले या तेलों के मिश्रण के रूप में उपयोग किया गया है।

कैलसियम क्लोराइड, ग्रैफाइट और अलकोहल का मिश्रण भी चिकनाई के रूप में व्यवहार किया जाता है।

कार्बोलिक एसिड के फासफोरिक एस्टर भी चिकनाई के रूप में इस्तेमाल हो सकते हैं।

'लीलावती' की शब्दावली

(डा० व्रज मोहन एम० ए०, एल-एल० बी०, पी-एच०डी०)

इतिहासज्ञ लिखते हैं कि हमारे पुरखों को किसी वाक्य में से एक स्वर घटाने में उतना ही आनन्द मिलता था जितना एक पुत्र के जन्म में। कम से कम गणितीय शब्दावली के सम्बन्ध में तो यह बात अक्षरशः सत्य बैठती है। हमारे प्राचीन गणितज्ञों की शब्दावली बहुत विकसित थी। यदि हम यह कहें कि जितना विकास आज हम अंग्रेज़ी की शब्दावली में देखते हैं, उससे भी अधिक विकास हमारे पूर्वजों की गणितीय शब्दावली में हो चुका था तो इसमें कोई अतिशयोक्ति न होगी। एक उदाहरण मैं यहां देता हूँ।

मान लो कि का खा गा घा एक चतुर्भुज है। का खा उसका आधार अथवा भूमि है और घा गा से घा चा, गा छा भूमि पर लम्ब डाले गये हैं। तो यह दोनों चतुर्भुज के लम्ब कहलाते हैं।

स्पष्ट है कि का चा $= \sqrt{\text{का घा}^2 - \text{घा चा}^2}$

का चा को लम्ब घा चा की सन्धि कहते हैं।

भूमि का खा का शेष भाग चा खा इस सन्धि की पीठ कहलाता है। इसी प्रकार छा खा लम्ब गा छा की सन्धि हुई और का छा इस सन्धि की पीठ।

छा खा लम्ब घा चा के लिये परसन्धि हुई और का छा परपीठ।

इसी प्रकार लम्ब गा छा की परसन्धि का चा है और परपीठ चा खा।

मान लो कि विकर्ण का गा लम्ब घा चा को जा पर काटता है।
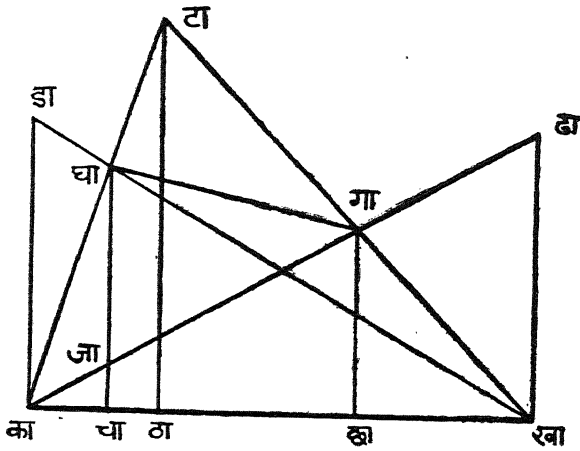
आकृति १

लीलावती के क्षेत्रव्यवहार नामक अध्याय में यह सूत्र आता है :—

$$\frac{\text{सन्धि} \times \text{परलम्ब}}{\text{परपीठ}} = \text{लम्ब का अधोखंड}$$

'लम्ब का अधोखंड' से तात्पर्य जा चा से है।

हमारी आकृति के शब्दों में

$$\frac{\text{का चा} \times \text{गा छा}}{\text{का छा}} = \text{जा चा।}$$

इसी प्रकार का जा को विकर्ण का अधोखंड कहते हैं जिसके लिये संगत सूत्र है :—

$$\frac{\text{सन्धि} \times \text{विकर्ण}}{\text{परपीठ}} = \text{विकर्ण का अधोखंड}$$

अर्थात् $$\frac{\text{का चा} \times \text{का गा}}{\text{का छा}} = \text{का जा।}$$

तत्पश्चात् कुछ जटिल परिभाषायें दी हैं :

$$\frac{\text{सन्धि} \times \text{परलम्ब}}{\text{लम्ब}} = \text{लम्ब का सम}$$

$$\text{सम} + \text{परसन्धि} = \text{लम्ब का हार}$$

अब मान लो कि चतुर्भुज की भुजायें का घा, खा गा बढ़ाने से टा पर मिलती हैं। तो त्रिभुज का खा टा चतुर्भुज का सूची कहलाता है।

इस त्रिभुज की ऊँचाई टा ठा सूचीलम्ब और भुजायें टा का, टा खा सूचीभुज कहलाती हैं।

का ठा और ठा खा भूमि का खा की आबाधायें कहलाती हैं।

सूचीलम्ब, सूचीभुज और आबाधायें निकालने के लिये भी सुघटित नियम दिये गये हैं। परन्तु इस समय मेरा प्रयोजन केवल शब्दावली से है। अतः यहाँ उन सूत्रों का देना अनावश्यक प्रतीत होता है।

अब का के मध्येन भूमि पर का डा लम्ब डालो जो विस्तृत विकर्ण खा घा से डा पर मिले। तो का डा को लम्ब घा चा का वंश कहेंगे। इसी प्रकार आकृति में लम्ब गा छा का वंश ढा खा है।

पाठक इस उदाहरण से अनुमान लगा सकते हैं कि हमारे प्राचीन गणितज्ञों की शब्दावली-बुद्धि कितनी विकसित थी। इन पंक्तियों के लेखक ने आकृति १ के समान आकृतियां न जाने कितनी बार कक्षा में श्यामपट्ट पर बनाई हैं परन्तु आज तक कोई भी प्रसंग ऐसा न आया जिसमें आकृति की भिन्न भिन्न रेखाओं को इतने विस्तार पूर्वक पृथक पृथक नाम दिये गये हों।

आज जब हम शब्दावली बनाने बैठते हैं तो सब से पहला प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या पुराने समस्त पारिभाषिक शब्दों को ज्यों का त्यों अपना लिया जाय। बिना कारण उन शब्दों को बदलना तो न्यायसंगत दिखाई नहीं देता। उन शब्दों पर हिन्दू संस्कृति की छाप लगी हुई है। वह शब्द हमारे पूर्वजों के अमिट पद चिन्ह हैं, अतः समय द्वारा सम्मानित हैं। अतएव उद्योग तो यही होना चाहिये कि वह शब्द ज्यों के त्यों हमारी शब्दावली में अपना लिये जायँ। परन्तु कहीं-कहीं शब्दों में परिवर्तन

करना आवश्यक हो सकता है. विशेषकर ऐसे शब्दों में जो बहुत लम्बे हों अथवा सर्वथा अनुपयुक्त हों। मैं दो एक उदाहरण देकर अपना तात्पर्य स्पष्ट करता हूँ।

लीलावती के क्षेत्र व्यवहार नामक अध्याय में निम्नलिखित शब्दावली का प्रयोग किया गया है।

समचतुर्भुज	र्‌हौम्बस
समकर्ण-समचतुर्भुज	वर्ग (स्क्वेयर)
समान लम्ब-चतुर्भुज	ट्रैपेज़ियम

यदि यह मान लिया जाय कि समचतुर्भुज र्‌हौम्बस के लिये उपयुक्त पर्याय है तो भी क्या वर्ग के लिए इतना लम्बा नाम—समकर्ण समचतुर्भुज—रखना उचित होगा? माना कि इस नाम से वर्ग की आकृति की पूरी परिभाषा स्पष्ट हो जाती है, परन्तु पर्यायवाची शब्द का प्रयोजन केवल संक्षिप्त नामकरण है न कि विस्तारपूर्वक गुण वर्णन। व्यक्तियों के नाम भी इस ढंग से नहीं रखे जाते कि नाम से ही व्यक्ति के सारे गुण स्पष्ट हो जायँ।

समानलम्ब चतुर्भुज भी वर्णनात्मक नाम है: ऐसा चतुर्भुज जिसके दोनों लम्ब समान हों। परन्तु यदि यह शब्द बहुत छोटा न भी हो सके तो भी इसे समलम्बभुज तो कह ही सकते हैं।

प्राचीन ग्रंथों में एक शब्द प्रचलित है 'समानान्तर चतुर्भुज'—पैरैललोग्राम का पर्याय। प्रथम तो यह नाम सर्वथा निरर्थक है। कोई चतुर्भुज कैसे समानान्तर हो सकता है और किसके समानान्तर होगा। तिस पर यह नाम लम्बा बहुत है। यदि यही नाम सरल और सुन्दर होता तो अनुपयुक्त होते हुये भी अपना लिया जाता। छोटे नाम में एक प्राकृतिक आकर्षण होता है। बड़े नाम में नैसर्गिक विकर्षण होता है। मेरी समझ में इस नाम में अवश्य ही परिवर्तन करना चाहिये। मैंने अपनी पुस्तकों में इसके स्थान पर 'समानाभुज' लिखा है। गणितज्ञ इस नाम पर विचार कर लें। यदि इससे भी छोटा नाम बन सके तो गणितीय जगत को उसका हार्दिक स्वागत करना चाहिये।

इसी प्रकार का एक लम्बा चौड़ा नाम है 'समानान्तर षड्फलक'—पैरैलेलीपाइपेड् का पर्याय। यदि इसके स्थान पर 'समानाफलक' नाम रखा जाय तो अनुचित न होगा। इसी ढङ्ग का एक बड़ा बेढंगा नाम देखने में आया है। समकोण-समानान्तर भौमिक घन, क्यूबौयड का पर्याय।

गणित के प्राचीन ग्रंथों में जो पर्यायवाची शब्द आये हैं, उनमें से बहुतों को पं० सुधाकर द्विवेदी ने अपना लिया था। सन् १८९८ में नागरी प्रचारिणी सभा ने एक पारिभाषिक शब्दावली समिति बनाई। इस समिति ने ८ वर्ष के परिश्रम के पश्चात् एक 'हिन्दी वैज्ञानिक शब्दावली' प्रकाशित की। इस समिति को पं० सुधाकर द्विवेदी का सहयोग प्राप्त था। इस शब्दावली में भी बहुत से प्राचीन शब्द समाविष्ट थे। सन् १९३० में सभा ने शब्दावली की पुनरावृत्ति के लिये एक उपसमिति बनायी जिसके अधिकांश सदस्य काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक विषयों के अध्यापक थे। इस उपसमिति ने प्रत्येक शब्द का परीक्षण किया और पुनरावृत्त शब्दावली सन् १९३१ में प्रकाशित कर दी। यह शब्दावली बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है और अभी तक भारत के हिन्दी भाषी वैज्ञानिकों में प्रामाणिक मानी जाती है।

सन् १९४४ में प्रयाग के 'भारतीय हिन्दी परिषद' ने विज्ञान के छः मुख्य विषयों की शब्दावली के निर्माण के लिये छः व्यक्तियों को नियुक्त किया। गणित की शब्दावली का कार्य इन पंक्तियों के लेखक को सौंपा गया। लेखक ने 'हिन्दी वैज्ञानिक शब्दावली' से प्रचुर सहायता ली और अधिकांश प्राचीन शब्दों को ज्यों का त्यों अपना लिया। परन्तु इस शब्दावली में केवल इंटरमीजियेट तक के ही शब्द आये थे। अतः बी० एस-सी० और एम० एस-सी० के अधिकांश शब्द नये बनाने पड़े। एम० एस-सी० तक की शब्दावली सन् १९४५ में 'भारतीय हिन्दी परिषद' के कार्यालय में भेज दी गई। अभी उसका मुद्रण नहीं हो पाया है। उसकी एक मुद्रलिखित प्रतिलिपि लाहौर के 'सरस्वती विहार' को भी भेजी गई है जहाँ प्रायः ५ वर्ष से शब्दावली निर्माण कार्य हो रहा है। 'सरस्वती विहार' ने भी इस नीति को अपनाया है कि उस शब्दावली में से यथासाध्य समस्त प्राचीन शब्द ज्यों के त्यों ले लिए जायं।

इस प्रकार यह प्रत्यक्ष है कि प्राचीन गणितीय शब्दों का संरक्षण किया जायगा। इन पक्तियों के लेखक का

अभी तक यह विचार था कि प्राचीन शब्दों में से बहुत थोड़े ऐसे रह गये होंगे जिनका समावेश इन शब्दावलियों में न हुआ हो। परन्तु इधर फिर एक बार 'लीलावती' का अवलोकन करने से यह धारणा निर्मूल सिद्ध हुई। इसी एक पुस्तक में अभी दर्जनों शब्द ऐसे पड़े हैं जो सरल, सुन्दर और उपयुक्त हैं और अभी तक अछूते बचे हुये हैं। एक सूची मैं यहाँ देता हूँ।

लीलावती का शब्द	अर्थ
अबाधा, अवधा	खंड (सेग्मैंट)
प्रकार	विधि
संपात	कटान
धनुष	चाप (आर्क)
वेध	गहराई
अपवर्तनांक	कौमन फैक्टर
अन्त्य	अन्तिम
उपान्त्य	अन्तिम से पहला
छित्, छेद	हर (डिनौमिनेटर)
उद्दिष्ट	न्यस्त, दिया हुआ
जात्य त्रिभुज	समकोण त्रिभुज
आसन्न मान	ऐप्रौक्सिमेट वैल्यू
जलसम भूमि	समतल भूमि
अस्र	कोण
सूक्ष्म भिन्न	प्रौपर फ्रैक्शन
स्थल भिन्न	इम्प्रौपर फ्रैक्शन
तष्ट करना	भाग देना

इन शब्दों में से कुछ का प्रयोग कभी-कभी कुछ लेखक करते हैं परन्तु अभी तक इनका समावेश कदाचित किसी शब्दावली में नहीं हो पाया है।

इस सूची में केवल ऐसे ही शब्द दिये गये हैं जिनके संगत पर्याय अंग्रेजी गणितीय शब्दावली में विद्यमान हैं परन्तु हमारी प्राचीन शब्दावली में अनेक शब्द ऐसे भी हैं जिनके अर्थों के लिये अंग्रेजी में विशेष नाम कभी रखे ही नहीं गये। उनके स्थान पर पूरे पूरे वाक्यांशों का प्रयोग होता है। हम यहाँ कुछ उदाहरण लीलावती के 'समान्तर श्रेढी'—अरिथमेटिकल प्रोग्रेशन नामक अध्याय से देते हैं:

आदि, मुख	श्रेढी का प्रथम पद
चय, वृद्धि	सर्वान्तर
गच्छ	पदों की संख्या
अन्त्यधन	श्रेढी का अन्तिम पद
मध्यधन	श्रेढी का मध्य पद
सर्वधन, श्रेढीफल	श्रेढी के पदों का योग

हमारे प्राचीन गणितज्ञ सूत्रों को वर्णनात्मक भाषा में लिखा करते थे। कदाचित इसी कारण उन्हें इतने अधिक पारिभाषिक शब्द बनाने पड़ते थे। ऊपर दिये हुए छः शब्दों में से एक के लिये भी अंग्रेजी में कोई अकेला पर्याय नहीं है। इन भावों को अंग्रेजी में वाक्यांशों द्वारा ही व्यक्त किया जाता है।

अब तनिक सर्वधन के सूत्र पर भी विचार कीजिये : व्येकपदघ्नचयो मुखयुक् अन्त्यधनं स्यात्। तत्मुखयुग् दलितं मध्यधनं भवति, तच्च पदगुणितं सर्वधनं भवति।

अर्थात् एक से हीन गच्छ को चय से गुणा करके आदि जोड़ दो, तो अन्त्यधन मिल जायगा। अन्त्यधन में आदि जोड़ कर आधा करने से मध्यधन आता है। मध्यधन को गच्छ से गुणा करने से सर्वधन होता है।'*

मान लो कि किसी समान्तर श्रेढी में

आदि = आ, चय = च, गच्छ = ग,

अन्त्यधन = अं, मध्यधन = म सर्वधन = स

तो उपरिलिखित सूत्र के अनुसार

एक से हीन गच्छ = ग − १,

अन्त्यधन = च (ग−१) + आ

$$\text{मध्यधन} = \frac{\text{अन्त्यधन} + \text{आ}}{२} = \frac{\text{च (ग−१)} + २\ \text{आ}}{२}$$

यह बात यहाँ ध्यान देने योग्य है कि यदि श्रेढी के पदों की संख्या विषम हो तो उसका मध्यधन उसका कोई पद नहीं होता।

श्रेढी

३, ५, ७,.........................४१ पदों तक

$$\text{का मध्यधन} = \frac{२ \times ४० + ६}{२} = ४३$$

जो श्रेढी का २१ वां पद है।

*श्री सीताराम झा : लीलावती सं० २००२ पृष्ठ ८८

परन्तु श्रेढी

२, ६, १०......................२० पदों तक में मध्यधन $= \frac{४.१६ + ४}{२} = ४०$

इस श्रेढी का १० वां पद ३८ है और ११ वां पद ४२ परन्तु कोई पद ४० नहीं है। फिर भी श्रेढी का मध्यधन ४० ही कहलायेगा। इस बात से स्पष्ट है कि 'मध्यधन' शब्द के बनाने की आवश्यकता केवल इसलिए पड़ी कि सूत्र को शब्दों में लिखा जा सके।

सूत्र का अन्तिम भाग यह होगा :

$$\text{सर्वधन} = ग \times \text{मध्यधन} = ग \times \frac{च\,(ग-१) + २आ}{२}$$

यह सूत्र आधुनिक सूत्र

$$स = \frac{ग}{२} \left\{ २आ + (ग-१)\,च \right\}$$

से अभिन्न है।

यदि प्राचीन सूत्र भी सदैव इसी सांकेतिक भाषा में लिखा जाता तो कदाचित इतने पारिभाषिक शब्दों के सृजन की आवश्यकता ही न पड़ती।

अब मैं इसी प्रसंग से सम्बद्ध लीलावती के कुछ अन्य रोचक शब्द देता हूँ।

संकलित ग = १ + २ + ३... + ग

आधुनिक गणित में हम कहते हैं।

क्रमगुणित ग = १.२.३...ग

इन व्यंजकों के लिए विशेष चिन्ह Σ और |__ रखे गये हैं। इन चिन्हों की संकेतलिपि में हम इन व्यंजकों को इस प्रकार लिखेंगे।

Σ ग = १ + २ + ३ + ... + ग

|__ग = १.२.३...ग

इस संकेतलिपि में हम श्रेढी व्यवहार के सूत्र

$$१ + २ + ३ + ... + ग = \frac{ग\,(ग+१)}{२}$$

को इस प्रकार　　$\text{संकलित } ग = \frac{ग\,(ग+१)}{२}$

अर्थात् इस प्रकार　　$\Sigma\, ग = \frac{ग\,(ग+१)}{२}$

लिख सकेंगे।

यह सूत्र निम्नलिखित श्लोक की प्रथम पंक्ति में समाविष्ट है :—

पदं सैकपदगुणितं दिभक्तं संकलितम्।
तदपि दियुत पदगुणितं त्रिभक्तं संकलितैक्यम।

यदि हम इन संकलितों को जोड़ें :—

१
१ + २
१ + २ + ३
१ + २ + ३ + ४
....
....
१ + २ + ३ + ४ + ... + ग

तो सबके योग को कहेंगे 'संकलितैक्य ग'।

श्लोक की दूसरी पंक्ति का अर्थ है :

दो से जुड़ा हुआ जो गच्छ है, उससे संकलित को गुणा दो और ३ से भाग दो तो संकलितैक्य होगा।*

अर्थात्

$$१ + (१+२) + (१+२+३) + (१+२+३+४) + \ldots\ldots + (१+२+३+४+\ldots+ग)$$

$$= (ग+२)\,\frac{ग\,(ग+१)}{२} \div ३ = \frac{ग\,(ग+१)(ग+२)}{६}†$$

इसी फल को हम चाहें तो इतने छोटे रूप में लिख सकते हैं :

$$\text{संकलितैक्य } ग = \frac{ग\,(ग+१)\,(ग+२)}{६}$$

$$\text{वर्गैक्य } ग = १^२ + २^२ + ३^२ + \ldots\ldots\ldots ग^२$$

$$\text{घनैक्य } ग = १^३ + २^३ + ३^३ + \ldots\ldots\ldots ग^३$$

समच्छेद	हरों का समानीकरण
भुज‡	समकोण त्रिभुज का आधार
कोटि+	समकोण त्रिभुज की ऊँचाई

*दुर्गाप्रसाद द्विवेदी : लीलावती-द्वितीय संस्करण (१९३१) २०६।

†देखो काली पद बसु : एल्जब्रा मेड ईज़ी, २४ वाँ संस्करण, प्रश्नावली ३७ प्रश्न ९।

‡भुज 'ऐब्सीसा' को भी कहते हैं।

+कोटि 'ओर्डिनेट' को भी कहते हैं।

प्रमाण	किसी अनुपात का प्रथम पद
फल	किसी अनुपात का द्वितीय पद
इच्छा	किसी अनुपात का तृतीय पद

मान लो कि एक प्रश्न है कि वह कौन सी राशि है जिससे १२ की वही निष्पत्ति है जो ८ की ३ से।

यदि अज्ञात राशि य है तो

प्रमाण	फल		इच्छा	इष्ट
८ :	३	=	१२ :	य

स्थूल मान	रफ वैल्यू
सूक्ष्म मान	क्लोज वैल्यू

यह शब्द आपेक्षिक हैं। हम जानते हैं कि π का मान $\frac{२२}{७}$ दो दशमलव स्थानों तक ठीक है और $\frac{३५५}{११३}$ छः स्थानों तक। तो $\frac{२२}{७}$ π का स्थूल मान हुआ $\frac{३५५}{११३}$ सूक्ष्म मान।

मूलप्रद अंक—ऐसा अंक जिससे पूर्णांकों में मूल निकल सके, अर्थात् एक सम्पूर्ण वर्ग।

निरग्र मूल—आसन्न पूर्णांक मूल

१२३ का निरग्र मूल ११ है।

विकार—परिवर्तन

यह शब्द विशेष अर्थ में प्रयुक्त होता है। जैसे

किसी समान्तर श्रेढी के पदों को उल्टा लिखने से योग में कोई विकार नहीं होता।

अक्षेत्र — असम्भव आकृति

यदि कहीं यह प्रश्न दिया हो कि

एक ऐसा त्रिभुज बनाओ जिसकी भुजायें ३, ४ और १० हों तो यह अक्षेत्र का उदाहरण है क्योंकि इन भुजाओं का त्रिभुज बन ही नहीं सकता।

अनियत — अनिश्चित

यदि किसी चतुर्भुज की केवल चारों भुजायें दी हों तो कर्ण अनियत होगा।

अग्र, शिर	किसी रेखा का सब से ऊँचा बिन्दु
मूल	किसी रेखा का सब से नीचा बिन्दु

आकृति १ में गा छा का अग्र गा है और मूल छा।

शर

मान लो कि गा घा एक वृत्त की जीवा है जिसका केन्द्र के है। व्यास खा छा जीवा पर लम्ब है। तो आकृति २ में इस व्यास का भाग चा छा इस जीवा का शर कहलाता है।
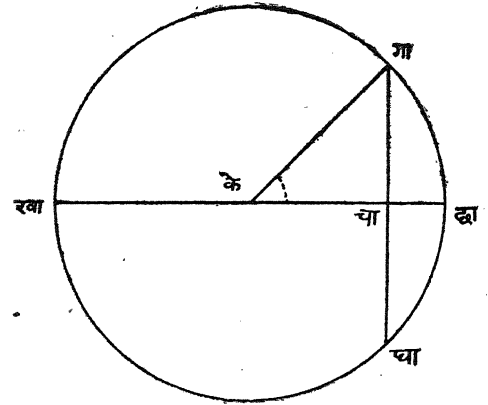
आकृति २

शर का आधुनिक त्रिकोणमितीय फलनों से बहुत निकट सम्बन्ध है। यदि वृत्त की त्रिज्या १ हो तो

$$\text{शर} = \text{चा छा} = \frac{\text{चा छा}}{\text{के गा}} = \frac{\text{के छा} - \text{के चा}}{\text{के गा}} = १ - \frac{\text{के चा}}{\text{के गा}}$$

$$= १ - \text{कोज्या के} = (\text{अंग्रेज़ी में}) \text{ वर्सिन के}$$

अतः हम चाहें तो अंग्रेज़ी के 'वर्स्ड साइन' को हिन्दी में शरज्या कह सकते हैं। कुछ लोगों ने इस शब्द का प्रयोग किया भी है, परन्तु अधिकांश* लेखक इसको 'उज्ज्या' कहते हैं†।

---

† उदाहरणार्थ देखो अवधेश नरायन सिंह : हिन्दू ट्रिग्नौमेट्री—प्रोसीडिंग्स बनारस मैथमेटिकल सोसायटी—न्यू सीरीज़ १ (१६३६) ७७—६२

*उज्ज्या उत्क्रमज्या (Versed sine) का छोटा रूप है जिसका प्रयोग सूर्यसिद्धान्त में (लगभग ४०० ई०) से और ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त में ६२८ ई० से बराबर होता आ रहा है। sine के लिए ज्योतिष्य ग्रन्थों में ज्या, भुजज्या, क्रमज्या, आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं इसलिए (Versed - sine) के लिए उत्क्रमज्या उपयुक्त है।

महाबीरप्रसाद श्रीवास्तव

घनहस्त, खारिका—(किसी ढेरी का) घनफल (शाब्दिक अर्थ = घन हाथ, घन इकाई)

यह शब्द 'राशि व्यवहार' में आता है। एक उदाहरण से इसका अर्थ स्पष्ट हो जायगा, यदि धान की एक ढेरी की परिधि २० है तो उसकी खारिका क्या होगी ?

दृढ़

मान लो कि दो संख्याओं में से उनका अपवर्तनांक निकाल दिया गया है। तो शेष संख्याओं को 'दृढ़ संख्यायें' कहेंगे। १५२ और ३६ का अपवर्तनांक ४ है। इसका भाग देने से ३८ और ९ आये। अब यह दोनों दृढ़ संख्यायें कहलायेंगी।

खहर—'खहर' का अर्थ है वह संख्या जिसका हर खं अर्थात् शून्य हो। प्राचीन पुस्तकों में यह शब्द 'अनन्ती' के लिये प्रयुक्त होता था। इस शब्दावली के अनुसार

$\frac{क}{०}$ = खहर,

जिसमें क (शून्य से भिन्न) कोई भी परिमित संख्या है।

क्षेप—जो संख्या जोड़ी जाय।

मान लो कि एक प्रश्न इस प्रकार है।

वह कौन सी संख्या है जिसके सातवें भाग में यदि ८ जोड़ा जाय तो १४ हो जाय।

तो इस प्रश्न में ८ क्षेप कहलायेगा।

दृश्य—इस शब्द का प्रत्यक्ष अर्थ है 'जो दिखाई दे'।

लीलावती का एक प्रश्न है।*

कमल के फूलों की एक राशि थी। उसके तीसरे, पांचवें, छठें और चौथे भाग से क्रम से शिव, विष्णु, सूर्य और पार्वती की पूजा की गई और शेष जो छः कमल बचे, उनसे गुरु की पूजा की तो कहो उस पुजारी के पास कितने कमल थे।

इस प्रश्न में दृश्य ६ है। इसका अर्थ यह हुआ कि किसी क्रिया के पश्चात् जो शेष रहे, उसे दृश्य कहते हैं। और वास्तव में वस्तु का यही भाग अन्त में दिखाई देता है।

†दुर्गाप्रसाद द्विवेदी : वही ६७

और भी कई प्राचीन लेखकों ने इस शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया है।

बीजगणित की भाषा में उपरिलिखित प्रश्न का यह समीकरण होगा।

$$य - \left[\frac{य}{३}+\frac{य}{५}+\frac{य}{६}+\frac{य}{४}\right] = ६ \qquad (क)$$

श्रीधर ने 'त्रिशतिका' में एक प्रश्न दिया है।

१/२	१/६	१/१२	दृश्य २

इसका समीकरण यह होगा :—

$$य - \left[\frac{य}{२}+\frac{य}{६}+\frac{य}{१२}\right] = २ \qquad (ख)$$

अब हम एक उदाहरण बख्शाली पांडुलिपि† से लेते हैं :—

१/२	१/३	१/४	दृश्य ६५/१

$$\text{अर्थात्} \quad \frac{य}{२}+\frac{य}{३}+\frac{य}{४} = ६५ \qquad (ग)$$

यहाँ दृश्य का अर्थ शेष तो नहीं लग सकता। यहाँ तो प्रश्न का न्यास यह है कि एक राशि के आधे, तिहाई और चौथाई भागों का जोड़ ६५ है।

अतः देखने में तो यह प्रतीत होता है कि यहाँ दृश्य

†सन् १८८१ में पेशावर के समीप एक गाँव बख्शाली में एक किसान को भूमि के अन्दर से भोजपत्र पर लिखी हुई एक पांडुलिपि मिली थी। यदि इस विषय में विशेष जानकारी प्राप्त करनी हो तो देखो : विभूति भूषण दत्तः बख्शाली मैथेमेटिक्स—बुलेटिन कलकत्ता मैथेमैटिकल सोसायटी २१ (१९२९) १—६० यह दोनों उदाहरण मैंने उसी गवेषणा-पत्र से लिये हैं।

जोड़ के लिये आया है, परन्तु वास्तव में इन दोनों अर्थों में कोई मौलिक अन्तर नहीं है। यदि हम यह कहें कि 'किसी भी क्रिया के अन्त में जो कुछ भी प्राप्त हो उसे दृश्य कहते हैं' तो यह अर्थ दोनों उदाहरणों में खप जायगा।

बीजीय समीकरणों में यदि अचल पद दाहिने हाथ पर रखा जाय तो राशि का वही भाग ज्ञात होता है, बायें हाथ का समस्त भाग अज्ञात होता है। अतः यदि बीजीय समीकरणों में हम अचल पद को दृश्य कहें तो यह अर्थ तीनों समीकरणों (क), (ख), (ग) में ठीक बैठ जायगा।

युक्त—जोड़ी हुई।

'५ से युक्त ग' का अर्थ हुआ (ग+५)। कभी-कभी हम साधारण बोल चाल में इस ढङ्ग की भाषा का प्रयोग करते हैं: '३ आने में ५ ऊपर ५० पान आये' अर्थात् ५५ पान आये।

हीन—घटाई हुई।

'४ से हीन ग' का अर्थ है (ग—४)। कभी-कभी हम कहते हैं कि 'सभा में २ कम २० व्यक्ति थे।'

प्रक्षेपक—साझे में किसी साझी का लगाया हुआ धन।

मिश्रधन—साझे का पूर्ण धन।

मान लो कि किसी व्यापार में तीन साझी क्रमशः ८, १२ और १६ रुपये लगाते हैं। तो प्रक्षेपक हुए ८, १२ और १६ और मिश्रधन हुआ ३६।

उत्तमर्ण	क्रेडिटर
अधमर्ण	डेटर
समघन	घन, क्यूब (ठोस)

इनके अतिरिक्त लीलावती में और भी अनेक शब्द हैं परन्तु आधुनिक गणित में उनकी कदाचित ही कहीं आवश्यकता पड़े।

इन्सुलिन के आविष्कार की कहानी

(ले०—श्री अजय कुमार बोस एम० एस० सी० और श्री कृष्णमोहन त्रिपाठी बी० एस० सी०)

वर्षों के जन-संहार के पश्चात् प्रथम महायुद्ध (सन् १९१४-१८ ई० का) समाप्त हुआ। युद्ध में भाग लेने वाले सैनिकों को विश्राम मिला। परन्तु उनकी आवश्यकता अब अधिकारियों को नहीं रही। कारण शत्रुओं का मान-मर्दन हो चुका था। सारे युरोप पर अंग्रेजों की सत्ता थी। जर्मनी का मस्तक नत हो चुका था। सेना से वीर योद्धा अब अवकाश पाने लगे। इन्हीं में एक होनहार डाक्टर फ्रेडरिक ग्रान्ट बैंटिङ्ग भी था। वह सेना में एक कुशल तथा चतुर डाक्टर समझा जाता था। परन्तु जब इस महासमर की समाप्ति पर उसे सेना के बन्धन से मुक्त किया गया तो वह बच्चों के एक अस्पताल में नियुक्त किया गया। परन्तु इससे उसे सन्तोष नहीं प्राप्त हुआ। उसने ओंटेरियो नामक नगर में अपना दवाखाना खोला। अधिक काल की प्रतीक्षा के पश्चात् उसके अस्पताल में एक रोगी आया। यही उसका प्रथम तथा अन्तिम रोगी था क्योंकि उसके पश्चात् ही उसने यह कार्य त्याग दिया और इस व्यवसाय से विदा ली। परन्तु जीवन की समस्या बड़ी कठिन है। जीविकोपार्जन मनुष्य को काम करने के लिए बाध्य करती है। वह अधिक समय तक बेकार न बैठ सका। उसने ओंटेरियो के मेडिकल स्कूल में एक अध्यापक का स्थान प्राप्त किया।

बैंटिङ्ग एक परिश्रमी तथा सच्चा मनुष्य था। उसे अपने उत्तरदायित्व का सदैव ध्यान रहता। यही कारण था कि वह अपने विद्यार्थियों को दत्त-चित्त होकर पढ़ाता। यही नहीं वरन् सम्पूर्ण रात्रि जागरण कर वह अनेकों प्रकार की चिकित्सा-सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ा करता जिससे आगामी दिवस नवीन विषयों का ज्ञान अपने विद्यार्थियों

को कम सके। इसी प्रकार उसके जीवन का कार्य-क्रम चलता रहा।

यह सन् १९२० के अक्टूबर माह की प्रथम रात्रि थी जो बैंटिङ्ग के जीवन में एक स्मृति छोड़ गई। रात्रि अधिक व्यतीत हो चुकी थी। चारों ओर घोर निस्तब्धता थी। परन्तु अपने वाचनालय में बैंटिङ्ग पुस्तकों के समूह के बीच अध्ययन में लीन था। समय का उसे कुछ ज्ञान न था। वह क्लोम (Pancreas) सम्बन्धी एक वैज्ञानिक ग्रन्थ का अवलोकन कर रहा था। क्लोम पेट के अन्दर एक छोटी ग्रन्थि (Gland) होती है। इसमें एक रस बनता है जिसे क्लोम रस कहते है। यह रस एक नली द्वारा अँतड़ियों में पहुँचता है और भोजन पचाने में सहायक होता है। इसी पुस्तक के द्वारा उसे यह ज्ञात हुआ कि मिनकोवस्की ने किस प्रकार एक कुत्ते के क्लोम को काट कर निकाल दिया तो वह मधुमेह के रोग से पीड़ित होकर मृत्यु को प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त उसे लैंगरहैन (Langerhan) नामक जर्मन वैज्ञानिक के विषय में अनुभव हुआ जिसने क्लोम में कुछ तन्तु (tissues) प्राप्त किये थे जो नली हीन थे। इन तन्तुओं के सेलों में कोई ऐसी वस्तु उत्पन्न होती थी जो मधुमेह को रोकती थी।

यदि किसी कुत्ते के क्लोम की नली बाँध दी जाय जिससे पाचक-रस बाहर न जा सके तो कुत्ते को मधुमेह रोग नहीं होता था इसलिये नलीहीन लैन्गरहैन सेलें अवश्य ही कोई रसायन पेट के अन्दर भेजती होंगी जिससे मधुमेह रुक जाता था। सम्पूर्ण संसार में लाखों पुरुष मधुमेह के भयानक रोग से पीड़ित होते हैं। इसका कारण यह है कि उनके लैन्गरहैन सेलों ने सुचारु-रूप से हारमोन (harmones) भेजना बन्द कर दिया है जिसके द्वारा शक्कर भोजन प्रणाली में शक्ति में परिणत होती है। यही कारण है कि सम्पूर्ण शक्कर मनुष्य के मूत्र के साथ निकल जाती है और उससे शक्ति का ह्रास होता जाता है। उस समय गुएल्पा एलेन (Guelpa Allne) के अर्द्ध-उपवास नाम की चिकित्सा इसके लिये प्रचालित थी।

बैन्टिङ्ग ने उन दिनों छपने वाली कुछ वैज्ञानिक पत्रिकाओं का अवलोकन किया। सौभाग्य वश उसे क्लोम और मधुमेह के विषय में एक लेख मिला। उससे उसे यह ज्ञात हुआ कि जब किसी मनुष्य के पेट में पथरी (Gall stones) पड़ जाती है जो क्लोम की नली का मार्ग रोक देती है तो उस मनुष्य की मृत्यु हो जाती है, परन्तु मधुमेह से पीड़ित होकर नहीं। इसके अतिरिक्त ऐसे मनुष्य की मृत्यु के पश्चात उसके मृत शरीर की जाँच से ज्ञात हुआ कि क्लोम सूख (atrophied) जाते हैं परन्तु लैन्गरहैन के द्वीप सेल (island Cells) अच्छी दशा में ही रहते हैं। इससे कुछ प्रकाश पाकर बेरान मोज़ेज़ (Baron Moses) ने एक स्वस्थ कुत्ते के ऊपर इसका परिणाम देखने का निश्चय किया। उसने एक स्वस्थ कुत्ते के क्लोम की नली को बाँध दिया। लगभग आठ सप्ताह के पश्चात् उसे यह ज्ञात हुआ कि क्लोम द्वारा निकले हुए पाचक रसों में विकार आ गया था परन्तु लैंगरहैन के द्वीप सेल पूर्व की ही भाँति स्वस्थ थे। इसको पढ़ कर बैन्टिङ्ग ध्यानमग्न हो गया। फलतः उसे यह अनुमान हुआ कि उसने मधुमेह की चिकित्सा को ढूँढ़ निकाला है। कदाचित् इस अन्वेषण के द्वारा वह सारे संसार के लाखों मनुष्यों को इस मधुमेह के भयकर रोग से मुक्त करने में सफल हो सके। उसका कथन यह था कि मधुमेह से पीड़ित मनुष्यों के लैंगरहैन सेल विकार युक्त हो जाते हैं फलतः वे हारमोन (harmone) नहीं उत्पन्न कर सकते जो शक्कर को पचाता है। इसलिये लैंगरहैन के सेल से उत्पन्न रस को उसके शरीर में प्रवेश कराना चाहिए। विकार पैदा करने वाले क्लोम के पाचक रस से लैंगरहैन सेलों को बचाने के लिए एक कुत्ते के क्लोम की नली को यदि बाँध दिया जाय तो लगभग दो माह की प्रतीक्षा के बाद क्लोम विकारयुक्त हो जाते हैं और तब चीर कर लैंगरहैन सेल निकाल लिये जा सकते हैं।

मष्तिष्क में इस विचार के आते ही बैन्टिङ्ग प्रो० मैक्लिओड (Macleod) से मिला। जो टोरंटो (Toronto) विश्वविद्यालय के मेडिकल स्कूल के फिजिओलोजी (physiology) विभाग के प्रधानाध्यापक थे। मैक्लिओड बैंटिङ्ग के विचारों से अधिक प्रभावित न

हुआ, क्योंकि क्लोम के मधुमेह को रोकने के विषय में उसके अपने ही कुछ भिन्न विचार थे। किन्तु फिर भी उसने बैंटिङ्ग की इच्छा पूर्ति की और उसे दस कुत्ते और एक सहायक इस कार्य को करने के लिये दे दिया। इसके पश्चात् मैक्लिओड इन सब बातों को भूल सा गया और अपने कार्य में लीन हो गया।

बैंटिङ्ग को जो सहकारी मिला उसका नाम चार्ल्स वेस्ट था। वह चिकित्सा-शास्त्र का एक विद्यार्थी था—एक नवयुवक जिसने अभी बीसवाँ वर्ष भी पूरा न हुआ था। परन्तु वह रक्त तथा मूत्र में शक्कर की मात्रा निकालने में अभ्यस्त था।

बैंटिङ्ग ने अब शल्य चिकित्सा (surgery) के अभ्यस्त हाथों को प्रयोग करना आरम्भ किया। उसने बड़े कौशल से कुत्तों के पेट को चीरा, उनके क्लोम की नलियों को बाँध दिया और फिर पेट को सी दिया। कुत्ते फिर जीवित अवस्था को प्राप्त हुये।

लगभग आठ सप्ताह के पश्चात् बैंटिङ्ग ने फिर एक बार कुत्तों के पेट को चीरा। परन्तु उसके आश्चर्य की सीमा न रही जब उसने क्लोम को स्वस्थ दशा में ही पाया। कदाचित् उसने नलियों को अधिक मजबूती से बाँध दिया था। परन्तु कुछ कुत्तों के क्लोम विकार युक्त हो गये थे यद्यपि लैंगरहैन सेल अपनी पुरानी ही दशा में स्वस्थ थे। बैंटिङ्ग ने फिर उनके क्लोम की नलियों को बाँध दिया तथा फल की प्रतीक्षा करने लगा जिससे उसके प्रयोग का फल निश्चित रूप से प्रकट हो जावे।

कई सप्ताह व्यतीत हो गये। एक दिवस बैंटिङ्ग ने अपने प्रयोग को करने का निश्चय किया। उसने एक कुत्ते के सूखे हुए क्लोम से लैंगरहैन सेलों को निकाला। नमक के पानी में इनका सत्त उसने प्राप्त किया। इसके पश्चात् उसने एक कुत्ते की जिस के क्लोम कुछ समय पूर्व निकाल लिये गये थे और इस कारण जो मधुमेह रोग से पीड़ित होकर मृत्यु के निकट आ रहा था, अंतड़ियों में सत्त को सुई के द्वारा प्रवेश कराया। एक घंटे के अन्दर ही कुत्ते के रक्त में शक्कर की मात्रा शून्य हो गई और उसका मूत्र भी शक्कर रहित हो गया। वह कुत्ता जो मृत्यु को आलिंगन करने जा रहा था, जीवित दशा को प्राप्त हुआ। यही नहीं वरन् वह धीमी चाल से चलने भी लगा। यह एक नवीन अन्वेषण था, एक अद्भुत घटना थी तथा बैंटिङ्ग की बुद्धि तथा धैर्य का परिणाम था।

इसके आधार पर बैंटिङ्ग और वेस्ट इस कार्य को सफल बनाने के हेतु तत्पर हो गये। वे दस कुत्ते पहले ही मर चुके थे। समय भी बीत चुका था। इसलिये और अधिक कुत्तों का प्रबन्ध उन लोगों ने स्वयं किया। उन लोगों ने अब पूरे क्लोम के सत्त को जाँचना आरम्भ किया। इससे कोई लाभ न हुआ। उनको ज्ञात हुआ कि लैंगरहैन सेलों का अम्ल से निकाला हुआ सत्त अधिक काम का था। परन्तु क्षार से निकाला गया सत्त अधिक, लाभदायक नहीं था। मधुमेह से पीड़ित मृत्यु के मुख में पहुँचे कुत्ते को जीवन-दान देने में यह प्रत्येक दशा में उपयुक्त था। बैंटिङ्ग ने इस अद्भुत हारमोन को, जो लैंगरहैन सेल से उसने निकाला था, इस्लेटिन (Isleitn) नाम दिया।

निसन्देह ही बैंटिङ्ग ने यह सिद्ध कर दिया कि असंख्यों मधुमेह से पीड़ितों की जीवन रक्षा की जा सकती है परन्तु अब प्रश्न यह था कि अधिक मात्रा में इस्लेटिन प्राप्त कहाँ से हो। उसने हर प्रकार के प्रयोग काम में लाये। अपना सम्पूर्ण कौशल तथा बुद्धि इसने अपने अन्वेषण में लगा दी। अन्त में अथक परिश्रम के फल स्वरुप काफी समय के पश्चात् उसे ज्ञात हुआ कि यदि पूरे क्लोम का सत्त अम्ल युक्त अलकोहल के द्वारा निकाला जाय तो केवल इस्लेटिन ही शुद्ध दशा में प्राप्त होती है। यह सत्य ही बड़ा सुगम था। इसके लिये क्लोम के पाने की समस्या भी सरल थी। प्रतिदिन सहस्त्रों की संख्या में सुअर तथा अन्य जानवर बधिक-शाला में मारे जाते हैं। उनसे यह वस्तु प्राप्त हो सकती थी। इस बात के ध्यान में आते ही बैंटिङ्ग और वेस्ट को अधिक से अधिक मात्रा में क्लोम के मिलने में कोई कठिनाई न रह गयी, जिसके द्वारा वे इस्लेटिन निकाल सकते। यह सन् १९२२ ई० जनवरी का माह था कि वे एक कुत्ते को जिसका क्लोम काट लिया गया था लगभग पचहत्तर दिवस तक जीवित रखने में सफल हो सके थे।

बैंटिङ्ग और वेस्ट ने अपने शरीर में भी यह दिखाने

के लिये कि इस में कोई विषैली वस्तु नहीं है, इस्लेटिन का प्रवेश सुई द्वारा कराया। इसके बाद इसको मधुमेह पीड़ित असहाय अवस्थाओं में रोगियों पर भी प्रयोग किया। सब में आशातीत सफलता प्राप्त हुई। इस विषय में बैंटिङ्ग ने चिकित्सकों की एक विस्ट सभा में जो याले विश्वविद्यालव (Yale University) में हुई थी और जिस में बड़े-बड़े चिकित्सक सुदूर देशों से आये थे, एक व्याख्यान दिया। परन्तु उस पर किसी ने ध्यान न दिया।

इधर प्रो० मैक्लिंओड ने जो अब तक बैंटिङ्ग के कार्य से अनभिज्ञ थे और जिन्हें केवल इतना ही स्मरण था कि बैंटिङ्ग उनसे दस कुत्ते और एक सहकारी माँग ले गये थे अब इस कार्य की महत्ता को समझा। उसने अपने सहकारियों के साथ इस कार्य को करना आरम्भ कर दिया। कुछ समय के पश्चात् मैक्लिओड ने अमेरिका के चिकित्सकों की सभा में एक विद्वत्ता पूर्ण व्याख्यान दिया जिसमें उसने इन्सुलिन (Insulin) के चमत्कार का वर्णन किया जिसका आविष्कार उन्होंने अपने सहकारियों के साथ मिल कर किया था। उसने बैंटिङ्ग और वेस्ट का नाम नहीं लिया बल्कि उनको अपना सहकारी बनाया। इसके अतिरिक्त उसने इसका नाम भी इस्लेटिन से इन्सुलिन रख दिया।

अब कोनाट प्रयोगशाला (Cannaught Laboratories) के अधिकारियों ने बैंटिङ्ग और वेस्ट को अपरिमित सामग्रियाँ उनके प्रयोग के लिये दे दी। वेस्ट ने क्लोम से इन्सुलिन अधिक मात्रा में निकालने के ढंग को और कुशल बनाया तथा बैंटिङ्ग ने टोरंटो के अन्य चिकित्सकों के साथ मिल कर यह सिद्ध किया कि इन्सुलिन यदि उचित मात्रा में प्रयोग किया जाय तो इसका कितना लाभ पहुँचता है। साथ ही उसने यह भी दिखलाया कि इन्सुलिन हानिकारक बिलकुल नहीं है।

सन् १९२३ तक इन्सुलिन अधिक मात्रा में उत्पन्न किया जाने लगा। लाखों मधुमेह से पीड़ितों की जीवन-आशा बँध गई। संसार के हित के निमित्त बैन्टिङ्ग और वेस्ट ने अपने इस अपूर्व आविष्कार को बिना मूल्य के ही अर्पण कर दिया। इस अनमोल आविष्कार द्वारा वे असंख्य धन प्राप्त कर सकते थे पर उन्होंने यह कार्य नहीं किया।

वैज्ञानिक संसार अधिक काल तक उनके कार्य से अनभिज्ञ न रह सका और थोड़े ही दिनों में बैंटिङ्ग टोरंटो विश्वविद्यालय का प्रोफेसर बनाया गया। वह खोज विभाग के प्रधान के रूप में काम करने लगे। वेस्ट फिजिआलोजी (Physiology) विभाग के डाइरेक्टर बनाये गये! वे दोनों विभाग अब बैन्टिङ्ग और वेस्ट विभाग के नाम से विख्यात हैं।

सन् १९२३ में बैंटिङ्ग और प्रो० मैक्लिओड को एक साथ इस चिकित्सा के लिये नोबुल पुरस्कार (Nobel Prize प्राप्त हुआ। बैंटिङ्ग ने वेस्ट को भी इस पारितोषिक का कुछ भाग दिया। परन्तु दुख की बात है कि एक वायु यान के आकस्मिक दुर्घटना के द्वारा उसकी असमय मृत्यु १९४१ में हो गयी।

बैंटिङ्ग और वेस्ट के अन्वेषण का कार्य अब भी अधिकांश प्रयोगशालाओं में होता है। इन्सुलिन पैदा करने तथा शुद्ध रूप में पाने के लिये अनेकों प्रयोग किये गये और अब यह अच्छे रुप में पाया जाता हैं। इसी कारण इसका मूल्य भी अब घट गया है।

हमारे देश में भी इन्सुलिन बनाने के कुछ प्रयत्न किये गये हैं। टाटा ने इन्सुलिन तैयार करने के लिये भारतीय विज्ञान-संस्था बंगलोर (Indian Institute of Science) को धन दिया है। इसके लिये वधिक शालाओं में क्लोम को ठीक दशा में रखने के लिये ठंढक-गृह (Cold-Storage) की आवश्यकता होती है। शुद्ध इन्सुलिन साधारण तापक्रम पर भी अधिक समय तक रक्खा जा सकता हैं।

भारतवर्ष में अधिकांश नर-नारी मधुमेह रोग से पीड़ित रहते हैं। यदि यहाँ की वधिक शालाओं से केवल न्यून परिमाण में ही क्लोम निकाले जा सकें तो न केवल भारतवर्ष में इन्सुलिन ही अधिक मात्रा में प्राप्त किया जा सके, वरन् भारत इस अद्भुत दवा को बना

कर अपने तथा सारे संसार की आवश्यकताओं की पूर्त्ति भी कर सकेगा।

इस समय प्रान्तों में तथा केन्द्र में हमारी अपनी सरकार होने के कारण हमारे देश के चिकित्सा शास्त्र के विशेषज्ञों के लिए अनुकूल अवसर है कि वे इस दिशा में प्रयत्न और खोज करें और इस अमूल्य तथा उपयोगी वस्तु को अधिक मात्रा में उत्पन्न कर देशवासियों की सेवा का श्रेय प्राप्त करें।

रंगरेज़ी

[ले० डा० ओंकारनाथ परती, रसायन विभाग, इलाहाबाद युनिवर्सिटी]

रंगरेजी से हमारा अभिप्राय कपड़ा रंगने से है। रंगरेजी एक कला है और सफल रंगरेज बनने के लिये अति परिश्रम आवश्यक है। रंगरेज के पास दो प्रकार के कपड़े रंगने के लिये आते हैं, बने बनाये या बिना बने। रंगरेज का काम है कि इन कपड़ों को इच्छित रंग में रंग दे। साधारणतया रंग ऐसा होना चाहिए जो धोने से अथवा धूप से शीघ्र खराब न हो। कपड़े के सूत के अनुसार रंग चुनना चाहिए। आधुनिक काल में दो भाँति के रंग रंगने की क्रिया में प्रयुक्त होते हैं, प्राकृतिक जैसे केसर, हारसिंगार, टेसू इत्यादि और यौगिक। आज कल यौगिक रंग ही बहुतायत से प्रयुक्त होते हैं। क्योंकि इनका उपयोग सरल है और इच्छित रंग आसानी से प्राप्त हो सकते हैं। रंगने की क्रिया निम्नलिखित भागों में विभाजित की जा सकती है :—

(१) कपड़े की सफ़ाई
(२) कपड़े की रंगाई
(३) रंगाई उपरान्त क्रिया (फिनिशिंग)

कपड़े की सफ़ाई

रंगने के पहले कपड़े की सफाई करना परमावश्यक है। कपड़े कई भाँति के धागों से बने होते है। इनमें मुख्य हैं सूत, रेशम, ऊन और लिनन्। चित्र नं० १ में यह धागे उस रूप में दिये हुए हैं जैसे सूक्ष्मदर्शक में दिखाई देते हैं। कपड़े बुनने में इन धागों के मिश्रण का भी प्रयोग होता है। कपड़े धागों के अनुसार निम्न भागों में विभाजित किये जा सकते हैं :—

(१) रेशम के बने
(२) रेशम और ऊन के बने
(३) रेशम और सूत के बने
(४) ऊन के बने
(५) ऊन सूत और रेशम के बने
(६) ऊन, और सूत के बने
(७) सूत के बने
(८) लिनन् के बने
(९) कृत्रिम रेशम के बने

कपड़े साफ करने की दो रीतियां हैं, पुरानी जिसमें पानी, साबुन इत्यादि का प्रयोग होता है और सूखी सफाई जिसमें, पेट्रोल, बेंजीन इत्यादि घोलको का प्रयोग होता है।

पूर्ण सफाई करने के पहले यह देखना चाहिये कि कपड़े पर दाग या धब्बे तो नहीं हैं। यदि दाग या धब्बे हों तो उन्हें पहले साफ करना चाहिए। सारिणी १ में विभिन्न प्रकार के दाग छुड़ाने की रीति दी हुई है। दाग़ छुड़ाने में यदि अम्ल या क्षार का प्रयोग किया जाय तो बहुत हलके घोल प्रयोग में लाने चाहिये अन्यथा कपड़े के खराब हो जाने का डर है। साधारणतया सारिणी १ में दी गई रीति से विभिन्न प्रकार के दाग आसानी से छुड़ाये जा सकते हैं। दाग छुड़ाने के बाद कपड़े की पूर्ण सफाई की ओर ध्यान देना चाहिये।

सूखी सफाई (ड्राई क्लीनिंग) :—यह रीति एक फ्राँसीसी एम० जडलिन ने सन् १८६६ ई० में प्रारम्भ की थी। इस रीति को फ्रेंच रीत भी कहते हैं। यह रीति इस आधार पर है कि कपड़ों में मिट्टी, गर्द इत्यादि चिकनाई या ग्रीस के कारण चिपक जाती है; यदि चिकनाई या ग्रीस निकाल दी जाय तो मिट्टी केवल झाड़ देने से निकल जायगी। चिकनाई या ग्रीस निकाल देने के लिये बहुत से घोलक प्रयोग किये जाते हैं जिन में मुख्य बेन्जौल, तारपीन, पेट्रोल, बेनजीन और नैपथा हैं। ईथर, क्लोरफार्म और कार्बन डाइसल्फाइड भी इसके लिये प्रयुक्त किये जा सकते हैं किन्तु ये अधिक कीमत के कारणों और कार्बन डाइसल्फाइड बदबू के कारण बहुत कम

प्रयोग में लायी जाती हैं। इस तरह की सफ़ाई के लिये कई प्रकार की मशीनों का प्रयोग होता है। चाहे किसी भी प्रकार की मशीन का प्रयोग किया जाय सब से पहले रूप और गुण के अनुसार कपड़े छाँट लिये जाते हैं, उदाहरण के लिये।

(क) सफेद ऊन, सफेद रेशम, क्रीम रंग के कपड़े, हलके नीले रंग और अन्य हलके रंग के कपड़े

(ख) गहरे रंग के कपड़े जैसे गाढ़े भूरे, हरे, लाल. इत्यादि

(ग) हलके रंग के मखमली कपड़े

(घ) गाढ़े रंग के मखमली कपड़े

(च) काले कपड़े

मखमल और अन्य रोयेंदार कपड़े सदैव अलग कर लेने चाहिये।
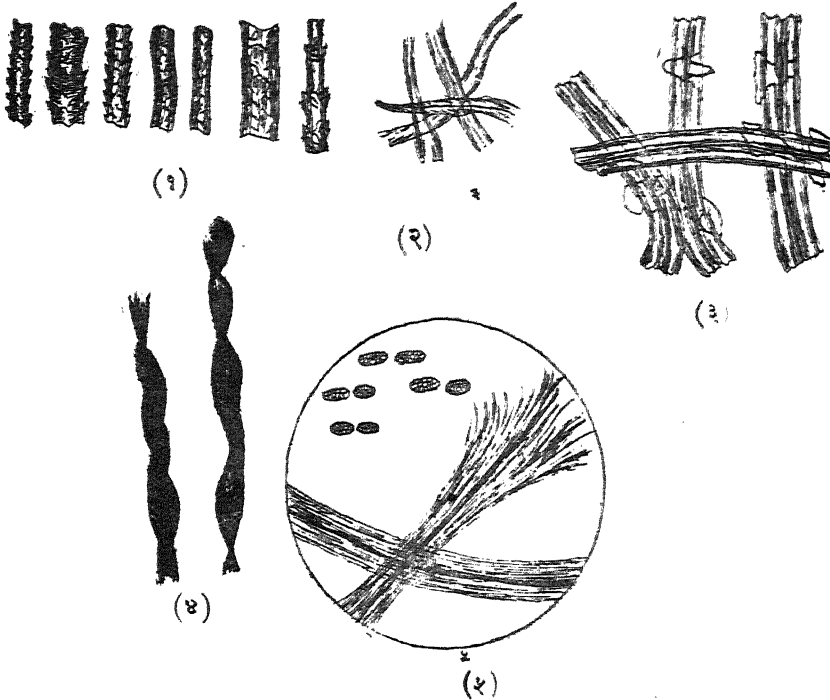
चित्र नं० १

१—ऊनके धागे विभिन्न भांति के २—रेशम के धागे ३—लिनेन के धागे ४—रूतके धागे ५ – टसरी रेशम के धागे

इन कपड़ों को अच्छी तरह ब्रुश से झाड़ लेना चाहिये। अब घोलकों से इनकी सफाई करनी चाहिये। छोटे व्यवसायी के लिये मशीनों का प्रयोग नितान्त आवश्यक नहीं है। कपड़े साफ करने की मशीनें साधारणतया एक ढोल के रूप में होती हैं जिन के अन्दर एक चरखी सी लगी होती है। ढोल में घोलक भर दिये जाते हैं और चरखी पर कपड़े लपेट दिये हैं। ढोल का मुँह बन्द कर दिया जाता है और बाहर से हाथ से या बिजली से चरखी घुमाई जाती है। थोड़े समय बाद कपड़े निकाल लिये जाते हैं। जैसा कि पहिले कहा जा चुका है इस क्रिया के लिये मशीनें नितान्त आवश्यक नहीं है। इस काम के लिये तीन पक्के मिट्टी के घड़े पर्याप्त होंगे। घड़े मजबूत होने चाहिये और उनका मुँह ढकने के लिये ढक्कन ऐसे होने चाहिये कि ढकना लग जाने पर उन में हवा भी न घुस सके। इन घड़ोंको बेन्जोलीन आदि घोलक से आधा भर देना चाहिये। झाड़े हुये कपड़ों को पहले घड़े में

सारिणी १

कपड़े पर पड़े दाग छुड़ाना

दाग	सफेद लिनन् और सूती कपड़े	रंगीन सूती कपड़े	रंगीन ऊनी कपड़े	सफेद ऊनी कपड़े	रेशमी कपड़े
चिकनाई, ग्रीस के दाग	साबुन और क्षार का घोल	हलका गरम पानी और साबुन	साबुन और अमोनिया	साबुन और अमोनिया	पेट्रोल, ईथर, या बेन्जौल और अमोनिया
रंग और वार्निश के दाग	तारपीन और क्लोरोफ़ार्म बाद में साबुन			तारपीन और क्लोरोफार्म	
स्याही के दाग	हलका गर्म औक्जैलिक अम्ल का घोल या हलका नमक का अम्ल	नीबू या नमक का अम्ल, यदि इनसे दाग न छूटे तो साबुन की झाग में ग्लिसरीन मिला कर छुड़ावें		सफेद सूती कपड़ों की भांति	सफेद सूती कपड़ों की भांति
चीनी, लेई और खून के दाग	साबुन और हलका गर्म पानी			गर्म पानी	
फल और शराब के दाग	केलसियम क्लोराइड का हलका घोल	साबुन और अमोनिया		सोडियम बाइ-सल्फाइट का गर्म पानी में हलका घोल	साबुन और अमोनिया
रंगीन स्याही के दाग	जैसे फलों के दाग छुड़ाने की रीति है।				
अम्ल के दाग	यदि ताजे हों तो अमोनिया और पानी से। शोरे के अम्ल के पीले या भूरे दाग नहीं छुड़ाये जा सकते।				
कोलतार के दाग	पहले मिट्टी के तेल, पेट्रोल, बेन्जौल या तारपीन से छुड़ावें, बाद में साबुन से अच्छी तरह धो डालें।				
मोम के दाग	पहले मोम खुरच लें और बाद में बेन्ज़ौल से छुड़ायें।				
शराब, चाय और कहवा के दाग	जैसे फलों के दाग छुड़ाने की रीति है।				

डुबाना चाहिये और ढक्कन बन्द कर लगभग १५ मिनट तक पड़े रहने देना चाहिये। इसके बाद उन्हें निकाल कर, अच्छी तरह निचोड़ कर दूसरे घड़े में डाल देना चाहिये। पन्द्रह मिनट उपरान्त फिर उन्हें निकाल कर तीसरे घड़े में डाल देना चाहिये। इसके बाद उन्हें निचोड़ कर सुखा लेना चाहिये और सूखने पर ब्रुश से अच्छी तरह झाड़ना चाहिये। साधारणतया कपड़े साफ हो जायंगे और यदि न हों तो एक बार फिर घोलक में डाल कर निकालने से साफ हो जायेंगे। जब कपड़े दूसरे घड़े में डाले जाँय तो पहले घड़े में दूसरे कपड़े डाल देने चाहिये। जब कपड़े दूसरे घड़े से तीसरे घड़े में डाले जाँय तो पहले घड़े के कपड़े दूसरे घड़े में डालने चाहिये। इस तरह करते रहने से समय में बहुत बचत होती है। पहले बताया गया है कि रूप और गुण के अनुसार कपड़े अलग-अलग कर लेने चाहिये। उपर्युक्त क, ख, ग, घ इत्यादि वर्ग के कपड़े अलग-अलग साफ करने चाहिये।

जब सब कपड़े साफ हो जाँय तो घोलक को एकत्र कर के वाष्पस्त्रवण द्वारा (भपके से) साफ कर लेना चाहिये। इस क्रिया के लिये ताँबे का एक यन्त्र होना चाहिये। एक ऐसा यन्त्र चित्र नं० २ में दिखाया गया है। इस तरह से साफ किया हुआ घोलक फिर प्रयोग में लाया जा सकता है।

चित्र २

घोलक साफ करने का यंत्र

सफाई की पुरानी रीति :—अधिकतर रंगरेज़ यही रीति काम में लाते हैं। एक दृष्टिकोण से यह रीति सूखी सफाई से उत्तम है। सूखी सफाई में केवल एक विधि का प्रयोग सब तरह के कपड़ों के लिये होता है किन्तु इस रीति में कपड़े के सूत के गुण के अनुसार सफाई की विधि में परिवर्तन किये जा सकते हैं। यह रीति साबुन से कपड़े की सफाई पर निर्भर है। इस रीति में एक दुर्गुण भी है और वह यह कि कभी-कभी साबुन के प्रयोग से कपड़ों का रंग फीका पड़ जाता है। सूखी सफाई में साधारणतया कपड़े के रङ्ग पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

इस रीति में भी सर्वप्रथम कपड़े के दागों को छुड़ाना चाहिये। इस काम में सारिणी १ से सहायता लेनी चाहिए। दाग छुड़ाने के उपरान्त विभिन्न प्रकार के वस्त्रों की निम्नलिखित विधि से सफाई करनी चाहिए :—

रेशमी कपड़े—रेशमी कपड़ों की सफाई के लिए एक तसले में प्रति सेर रेशमी कपड़ों के लिये १ से १½ छटाँक तक साबुन पानी में घोलना चाहिये। इस साबुन

के घोल में कपड़ों को अच्छी तरह मींजना चाहिये। फिर इस तसले को चूल्हे पर रखकर या अन्य किसी विधि से इतना गरम करना चाहिए कि पानी खौलने लगे। कपड़ों को लगभग आध घंटे तक खौलते साबुन के पानी में रखना चाहिए। बीच बीच में कपड़ों को विशेष कर दागीं स्थानों को मींजते रहना चाहिये। साधारणतया आध घंटे में कपड़े साफ हो जाते हैं किन्तु यदि आवश्यकता हो तो अधिक देर तक उन्हें गरम पानी में रखा जा सकता है। इसके बाद कपड़ों को पहले हलके गरम और बाद में ठंडे पानी से धोकर सुखाना चाहिये।

कभी-कभी इस विधि से सफाई करने पर कपड़े का रंग हलका पड़ जाता है। हलके रंग जैसे आसमानी, नीला, गुलाबी, पीला इत्यादि अकसर अधिक फीके हो जाते हैं। यदि कपड़े को दूसरे रङ्ग में रंगना हो तो पहले के रंगों का फीका पड़ना लाभदायक ही है। यदि पहले के रङ्ग रखने हों तो कपड़ों को सफाई के बाद निम्नलिखित घोलों में डुबाना चाहिए।

१ औंस (लगभग आधी छटांक) गन्धक का अम्ल
१ गैलन (लगभग ५ सेर) पानी

या

२ औंस सिरके का अम्ल
१ गैलन पानी

ऐसा करने से फीके रङ्ग फिर चटक हो जाते हैं। यदि रेशमी कपड़े का रङ्ग बिलकुल न बदलना हो तो उसे सूखी सफाई की रीति से ही साफ करना चाहिए। अच्छा तो यह होगा कि धोने से पहले कपड़े का एक कोना साबुन से धोकर देख लिया जाय कि रंग उतरता है कि नहीं।

ऊनी कपड़े—साधारणतया ऊनी कपड़ों के लिए १ पौंड (लगभग आध सेर) साबुन ४ गैलन लगभग २० सेर पानी में घोलना चाहिए। इस घोल को हलका गरम करना चाहिये। इसमें ऊनी कपड़ों को डुबा देना चाहिए और साबुन की झाग में हलके हाथ से मींजना चाहिए। यदि आवश्यकता हो तो दो तीन बार साबुन का पानी बदलना चाहिए। इसके बाद उन्हें ठंडे पानी से धोकर निम्नलिखित घोल में से निकालना चाहिये।

२ औंस सिरके का अम्ल (एसिटिक एसिड)
१ गैलन पानी

और, फिर सुखाना चाहिए। यह ध्यान रखना चाहिए कि ऊनी कपड़ों का रङ्ग साबुन से बहुत छूटता है। इस की परख रंगरेज को अभ्यास से ही आ सकती है। यदि वही रंग रखना हो तो जहाँ तक सम्भव हो सूखी सफाई की रीति काम में लानी चाहिए।

सूती कपड़े—इनकी सफाई की विधि वही है जो घरों में प्रयोग होती है। सूती कपड़ों के लिए साबुन के साथ साथ क्षार या सोडा भी प्रयोग में लाया जा सकता है। सोडा के प्रयोग में एक बात ध्यान में रखनी चाहिए। सूती कपड़ों के रङ्ग सोडा के प्रयोग से अकसर छूटने लगते हैं अतः सोडा का प्रयोग सतर्कता से करना चाहिये।

कपड़े की रंगाई

कपड़े रंगने की विधि बतलाने से पहले यह जानना आवश्यक है कि कौन सा रंग किस रंग पर आसानी से चढ़ सकता है। सारिणी २ में यह बतलाया गया है। यदि कपड़े को ऐसे रंग में रंगना है जो उसके पहले रङ्ग पर आसानी से नहीं चढ़ सकता तो उस के रङ्ग को छुड़ाना या हलका कर देना आवश्यक है। रङ्ग उड़ाने या हलका करने के लिए सबसे पहले साबुन या साबुन और सोडा का प्रयोग करना चाहिए। सोडा के प्रयोग में यह ध्यान रखना चाहिये कि सोडा अधिक होने से सूती कपड़े तो नहीं पर ऊनी और रेशमी कपड़े खराब हो सकते हैं। आजकल के रङ्ग अधिकतर एनीलीन वर्ग के होते हैं। इन रङ्गों को छुड़ाने के लिए निम्नलिखित एक अच्छी विधि है जिसमें कपड़े खराब होने की सम्भावना बहुत कम है।

सारिणी २

कपड़े का रंग	कौन सा रंग चढ़ सकता है
कोई हलका रङ्ग	काला
हलका पीला रंग	कोई गाढ़ा रंग

काला	गहरा लाल, भूरा, गाढ़ा पीला किन्तु यदि एनीलीन ब्लैक नामक काला रंग है तो उस पर कोई भी रंग ठीक से न चढ़ सकेगा।
हलका नीला	कोई गाढ़ा रंग।
भूरा (ब्राउन)	लाल, पीला, गाढ़ा ब्राउन, चाकलेट
गहरा लाल	भूरा (ब्राउन), लाल, गहरा हरा, गहरा नीला।
हलका हरा	हलका नीला, गुलाबी और पीला रंग छोड़ कर अन्य कोई रंग।
गहरा हरा	गहरा भूरा (ब्राउन), गहरा लाल गहरा नीला।
पीला	गुलाबी, हलका नीला इत्यादि रंगों को छोड़ कर कोई रंग।
सलेटी	गुलाबी, पीला और हलका नीला छोड़कर अन्य कोई रंग।
गुलाबी	कोई रंग
कोई हलका रंग	वही गाढ़ा रंग

प्रति पाँच सेर कपड़ों के लिये १ पौंड (लगभग आध सेर जिंक पाउडर और २½ औंस सूखा चूना पानी में मिलाकर उबालना चाहिए। फिर इसको थिर रख कर ऊपर से साफ घोल निथार लेना चाहिए। इस घोल में आवश्यकतानुसार पानी मिलाकर ६ से ८ घंटे तक कपड़ों को भिगोना चाहिये। इसके उपरान्त कपड़ों को निचोड़ कर १० औंस (सवा पाव) फिटकरी और १½ औंस टारटार के घोल में आध घंटे उबालना चाहिये। फिर कपड़ों को धोकर सुखा लेना चाहिए। यदि आवश्यकता हो तो यह रीति दुहराई जा सकती है।

ऊनी और रेशमी कपड़ों के लिए निम्नलिखित घोल भी प्रयोग में लाये जा सकते हैं:—

१¾ पौंड गन्धक का अम्ल
४ औंस औक्ज़ैलिक एसिड
पानी पर्याप्त मात्रा में

अथवा

१½ पौंड बाइक्रोमेट आफ पोटाश
४ पौंड गन्धक का अम्ल
पानी पर्याप्त मात्रा में

यह अनुभव किया गया है कि ऊनी और रेशमी कपड़ों का रंग उड़ाने के लिये एक भाग शोरे का अम्ल और दो भाग पानी का घोल बना कर प्रयोग करने से अधिक सफलता प्राप्त होती है। इस घोल के बनाने में ठंडे पानी का प्रयोग करना चाहिए। कपड़ों को एक बार में तीन चार मिनट से अधिक घोल में न रखना चाहिए और फिर धो डालना चाहिये। यदि कपड़े के धागे पीले पड़ने लगें तो घोल में और पानी मिला कर कपड़े भिगोने चाहिये। इस घोल से सफलता अधिक मिलती है किन्तु सतर्कता से काम लेना चाहिए।

यदि रंगीन कपड़े रंगना हो तो यह अच्छा होगा कि रंगरेज कपड़े के रंग की परीक्षा करे। जहाँ तक हो सके उसे यह मालूम करना चाहिये कि किस प्रकार के रंग से कपड़ा रंगा हुआ है। इससे उस कपड़े को दोबारा रंगने में सहायता मिलेगी। सारिणी ३ में कुछ प्रयोग दिये हुये हैं जिनसे कपड़े के रंग के विषय में जानकारी हो सकती है। आजकल हजारों तरह के रंग काम में लाये जाते हैं। इस सारिणी में केवल प्रमुख रंगों का विवरण है। इस सारिणी से रंग की पहिचान हो सकती है और इस तरह रंग उड़ाने या हलका करने में भी सहायता मिल सकती है। इस सारिणी में केवल वही प्रयोग दिये गये हैं जो एक रंगरेज सरलता से कर सकता है।

कपड़े रंगने के लिये आजकल हज़ारों रंग है। रंगरेज के दृष्टिकोण से इन रंगों को पाँच वर्गों में विभाजित किया जा सकता है:—

१. सीधे रंग [Direct Dyes]
२. एसिड रंग [Acid Dyes]
३. बेसिक रंग [Basic Dyes]
४. मौरडेन्ट रंग [Mordant Dyes]
५. इन्डिगो रंग [Indigo Dyes]

१ सीधे रंग—इस वर्ग में मेसर्स रीड हौलीडे ऐण्ड सन्स के टीटान रंग, बायर कम्पनी के बेन्ज़ो रंग, एनी-

सारिणी ३

कपड़े के रंग की जाँच

कपड़े का रंग	प्रयोग	देखो	निष्कर्ष (कौन सा रंग है)
१—लाल	कपड़े के एक कोने को साबुन के घोल में डुबा कर मलो	रंग तुरन्त बहने लगा	इयोसीन, मजंटा, सफरानीन
		रंग बिलकुल उतर गया किन्तु अम्ल के हलके घोल से फिर आ गया	एसिड मजंटा
		थोड़ा रंग छूटा	एज़ो वर्ग का रंग
		रंग चटक हो गया	बेन्ज़ो वर्ग का रंग
		रंग पर कोई प्रभाव न पड़ा	एलीज़रीन
	कपड़े के एक कोने को नमक के अम्ल में डुबाओ	लाल रंग बदल कर नीले से काला तक हो गया किन्तु साबुन से धोने से फिर लाल हो गया	कांगो, बेन्ज़ो परप्यूरीन, डाइएमीन वर्ग का रङ्ग
		रंग भूरा पीला पड़ गया	मजंटा
		रंग नीला पड़ गया	सफरानीन
		रंग पर कोई प्रभाव न पड़ा	एलीज़रीन, इयोसीन और एज़ोवर्ग के रंग
२—नीला	कपड़े के एक कोने को अमोनिया में डुबाओ और मलो	रंग उड़ जाय किन्तु अम्ल के हलके घोल से फिर आ जाय	क्षार वर्ग (Alkali)
		रंग पर कोई प्रभाव न पड़ा	नील (Indigo`, मिथलीन ब्लू
	कपड़े के एक कोने को शोरे के अम्ल में डुबाओ।	रंग पीला पड़ गया	नील, विक्टोरिया ब्लू
		रंग लाल पड़ गया	लॉगउड

कपड़े का रंग	प्रयोग	देखो	निष्कर्ष (कौन सा रंग)
		रंग हरा पड़ गया	नैपथौल ब्लैक
		रंग पर कोई प्रभाव न पड़ा	एलीज़रीन वर्ग का रंग
३—भूरा (ब्राउन)	कपड़े के एक कोने को साबुन के घोल में डुबाकर मलो	रंग छूटने लगा	बिस्मार्क ब्राउन, फास्ट ब्राउन, एसिड ब्राउन
		रंग पर कोई प्रभाव न पड़ा	एनथ्रासीन ब्राउन, कच और तूतिया, कच और पोटाश बाइक्रोमेट से रंगा
४—पीला	कपड़े के एक कोने को अम्ल के घोल में डुबाओ	रंग छूटने लगा	पिकरिक एसिड, नैपथौल यलो, आरामीन यलो
		रंग हलका पड़ा	आरनशिया यलो
		रंग भूरा पड़ने लगा	क्राइसमीन, क्राइसोफिनीन, टिटान यलो
		रंग नारंगी रंग का हो गया	फ़ुस्टिक यलो
५—हरा	कपड़े के एक कोने को साबुन के घोल में डुबाकर मलो	रंग उतरने लगा	बेसिक कोलटार ग्रीन
		रंग पर कोई प्रभाव न पड़ा	एलीज़रीन ग्रीन, नैपथौल ग्रीन, गैम्बीन ग्रीन तथा अन्य बेसिक वर्ग का रंग
६—काला	कपड़े के एक कोने को अम्ल के घोल में डुबाओ	रंग लाल पड़ने लगा	लॉगवुड ब्लैक
		रंग पर कोई प्रभाव न पड़ा	नैपथौल ब्लैक, एसिड ब्लैक, विक्टोरिया ब्लैक और एनीलीन ब्लैक

लीन फाबरी केशन के काँगों रंग और मेसर्स कसैला एण्ड को० के डाइएमीन रंग प्रमुख है। इन रगों से रंगने में विशेष कठिनाई नहीं पड़ती है। सूती कपड़ों के लिये टीटान रंग के घोल में कपड़े के भार का १५ से २० प्रतिशत भार नमक मिला कर रंगना चाहिये। बेन्ज़ो, काँगो और डाइएमीन रंगों के लिये कपड़े के भार का ५ प्रतिशत सोडा, ३ प्रतिशत साबुन और १० प्रतिशत ग्लॉबर साल्ट रंग के घोल में मिला कर रंगना चाहिये। उपरोक्त घोल लाल रंग के लिये सब से अच्छा है किन्तु पीले और नीले रंगों के लिये कपड़े के भार का ३ प्रतिशत साबुन और १० से १५ प्रतिशत ग्लाबर साल्ट रंग के घोल में मिला कर रंगने से रंग और भी अच्छा चढ़ता है। ऊनी कपड़ों के लिये रंग के घोल में कपड़े के भार का १५ प्रतिशत नमक और थोड़ा-सा अम्ल मिला कर रंगना चाहिये। यदि कपड़े में ऊन और सूत की मिलावट हो तो घोल में अम्ल न मिलाना चाहिये। रेशमी कपड़े रंगने के लिये रंग के घोल में नमक या सोडा फास्फेट मिलाना चाहिये। यदि रेशमी कपड़े में सूत की मिलावट हो तो रंग के घोल में नमक, ग्लाबरसाल्ट या सोडाफास्फेट मिला कर रंगना चाहिये।

इस वर्ग के पीले रंग सूर्य के प्रकाश और धुलाई में काफी पक्के होते हैं, लाल रंग भी पक्के होते हैं; भूरे (ब्राउन) रंग कच्चे होते हैं; नीले रंग बहुत पक्के नहीं होते और काले रंग काफी पक्के होते हैं।

२ एसिड रंग—इन में मुख्य हैं एसिड मजंटा, एसिडमाव, एसिडग्रीन, एसिड वायलेट इत्यादि; पिकरिक एसिड, नैपथौल यलो, आरन्शिया; इओसीन; एज़ो वर्ग के रंग जैसे स्कारलेट, पौंको, कोसीन, औरेंज, आमारान्थ, एज़ोरूबीन, मिलिंग यलो, एज़ो कारमीन, क्रोमोट्रॉप, नैपथौल ब्लैक, एसिड ब्लैक, फास्ट रैड, क्लौथ रैड और बोर्डो इत्यादि। इन रंगों की विशेषता यह है कि साधारणतया यह सूती कपड़ों पर अच्छी तरह नहीं चढ़ते और ऊनी अथवा रेशमी कपड़ों को रंगने के लिये रंग के घोल में अम्ल (एसिड) का प्रयोग करना पड़ता है।

यह रंग विशेष कर एजो रंग बड़े पक्के होते हैं। सूर्य के प्रकाश और धुलाई का इन पर बहुत कम प्रभाव पड़ता है।

३ बेसिक रंग—इन में मुख्य हैं मजंटा, मिथाइल वायलेट, पेरिस वायलेट; ब्रिलियन्ट ग्रीन, मालाकाइट ग्रीन इत्यादि; बिस्मार्क ब्राउन, क्राइसौयडीन, आरामीन, इन्डुलीन, निग्रोसीन, फॉसफीन, मिथिलीन ब्लू, इत्यादि। इस वर्ग के रंग चटक होते हैं। ऊनी और रेशमी कपड़ों के लिये इन रंगों के घोल में नमक अथवा ग्लाबर साल्ट मिला कर रंगना चाहिये। सूती कपड़ों को रंग के घोल में रंगने से पहले टैनिक एसिड के घोल में डुबाना चाहिये। टैनिक एसिड के स्थान में हमारे रंगरेज माजूफल को पानी में उबाल कर उस पानी का प्रयोग कर सकते हैं।

यह रंग देखने में तो बड़े चटक होते हैं किन्तु धूप से हलके पड़ जाते हैं। ऊनी कपड़ों पर यह रंग अधिक पक्के उतरते हैं। रेशमी कपड़ों को इन रंगों से रंगने में एक विशेष कठिनाई पड़ती है और वह यह कि रंग हर स्थान पर एक सा नहीं चढ़ता। इससे बचने के लिये जितना ठंडा पानी मिल सके उसका प्रयोग करना चाहिये और पहले रंग के हलके घोल में रंग कर बाद में और रंग मिलाकर रंगना चाहिये।

४ मौरडेन्ट रंग—इन में मुख्य हैं लॉगउड, फूस्टिक, ब्राज़ील उड, कोचीनील, एलीज़रीन, एलीज़रीन यलो एलीज़रीन ब्लू, एलीज़रीन सियानीन, एन्थ्रीसनी ब्राउन, गैम्बीन, क्रोम वायलेट, क्रोम ब्लू, अन्य क्रोम रंग, गैलो सियानीन इत्यादि। यह रंग स्वयं नहीं रंगते हैं वरन् किसी धातु या धातु के यौगिक को रंग देते हैं। इन रंगों के प्रयोग में कपड़े को पहले किसी धातु या धातु के यौगिक के घोल में भिगोना पड़ता है। इस घोल को मौरडेन्ट कहते है। और तब इन रंगों का प्रयोग किया जाता है।

साधारणतया यह रंग सब से पक्के होते हैं। विशेष कर एलज़रीन लाल रंगों में सब से पक्का है। यह रंग धूप में उड़ते नहीं है और न धुलाई का ही इन पर विशेष प्रभाव पड़ता है। पक्के रंगों में इस वर्ग के रंग सब से उपयोगी हैं।

इन्डिगो रंग—इन में मुख्य इन्डिगो और इन्डोफिनोल हैं। इन रंगों के रंगने में विशेष रीति का प्रयोग

होता है। इन से रंगना कठिन है और रंगरेज इनका बहुत कम प्रयोग करते हैं। साधारण सिले हुये कपड़ों के रंगने के लिये यह उपयुक्त नहीं है।

इस लेख के अन्त में विभिन्न प्रकार के रङ्गों से रंगने के कुछ नुसखे दिये हुये हैं।

रङ्गाई साधारणतया रङ्ग को पानी में घोल कर अथवा मौरडेन्ट के प्रयोग से की जाती है। रङ्ग का घोल कभी ठंडे पानी में कभी हलके गरम पानी में और कभी खौलते पानी में बनाया जाता है। इस घोल में कपड़ों को डुबा कर कुछ मिनटों से लेकर कुछ घंटों तक रखते हैं। कपड़ों को रङ्ग के घोल में डुबा कर उलटना पलटना चाहिये जिससे रङ्ग सब स्थानों में एक सा चढ़े। यह काम अधिकतर हाथ से किया जाता है किन्तु लकड़ी के छोटे-छोटे डन्डे भी प्रयोग में लाये जा सकते हैं। रङ्ग सब स्थानों पर एक सा लाने के लिये उपयुक्त रंग का इस्तेमाल करना चाहिये क्योंकि कुछ रंग कठिनता से समान रूप से चढ़ते हैं। रंगरेज के रंगने के बर्तन उसके काम पर निर्भर है। यदि थोड़े कपड़े एक साथ रंगने हों तो मिट्टी के तसले या छोटी नाँद काम में लानी चाहिये। यदि अधिक कपड़े एक साथ रंगने हों तो लकड़ी के बड़े बड़े तसले बनवाकर प्रयोग में लाने चाहिये। लकड़ी के तसलों में यह दुर्गुण है कि उनकी सफाई अच्छी तरह से नहीं की जा सकती और लड़की पर एक रंग चढ़ जाने से दूसरे रङ्ग पर उसका प्रभाव पड़ने लगता है और रंग अच्छे नहीं उतरते। यदि बहुत ज्यादा कपड़े एक साथ रंगने हो तो रङ्गने की मशीनों का प्रयोग करना उचित है।

पहले कहा जा चुका है कि रंग का घोल कभी ठंडे, कभी हलके गरम और कभी खौलते पानी में बना कर इस्तेमाल करना पड़ता है। यदि गरम पानी का प्रयोग करना हो तो तसले को गरम करने के लिये भट्टी का प्रयोग किया जाता है किन्तु यदि भाप के द्वारा पानी गरम किया जाय तो और अच्छा हो। इस काम के लिये चित्र ३ में दिखाया गया बर्तन काम में लाने से बड़ी आसानी होती है। हमारे यहाँ के रंगरेज अधिकतर भट्टी का ही प्रयोग करते हैं।

यदि अधिक कपड़े एक साथ रंगने हों तो डीलाइन्टी इत्यादि मशीनों का प्रयोग करना उत्तम है।

कपड़े रंगने में रंगरेज की मुख्य कठिनाई रङ्ग मिलाने और सब स्थानों पर समान रङ्ग करने में पड़ती है। रङ्ग मिलाने की रीति लिख कर नहीं समझाई जा सकती। यह तो रंगरेज को अनुभव से ही आती है। फिर भी एक बात यहाँ कही जा सकती है और यदि रंगरेज उसे ध्यान में रख कर काम करे तो सफलता शीघ्र मिल सकती है। जो भी रङ्ग रंगना हो कपड़े को पहले हलके रंग से रंगना चाहिये और फिर धीरे-धीरे रङ्गके घोल में अधिक रङ्ग छोड़ कर रंगते रहना चाहिये जब तक इच्छित रङ्ग न चढ़ जाय। कपड़े पर कभी-कभी सब स्थानों पर समान रूप से
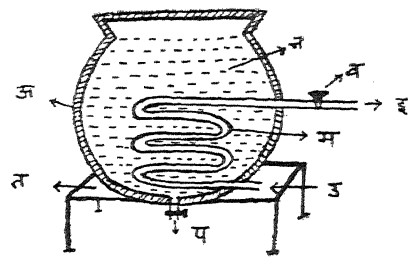
चित्र नं० ३

अ–ताँबे का बर्तन, ब–वाल्व, प–पानी निकालने का पाइप, उ-भाप जाने की राह, इ–भाप निकलने का पाइप, त–बर्तन रखने की तिपाई, म–भाप का पाइप, न–पानी

रङ्ग नहीं चढ़ता। यह अधिकतर पुराने और इस्तेमाल किये गये कपड़ों के साथ होता है। इसका कारण मुख्यतर कपड़े पर धब्बे या धूप से कपड़े का असमान रूप से उड़ा हुआ रङ्ग है। इस कठिनाई को दूर करने के लिये पहले कपड़ों को अच्छी तरह से साफ करना चाहिये। सफाई की रीति पहले दी जा चुकी हैं। यदि रंगाई के कपड़ों का पहला रङ्ग बहुत फीका पड़ गया हो तो साफ करने के बाद निम्नलिखित घोल में १० मिनट तक भिगोकर गरम पानी से धो डालना चाहिये।

गन्धक का अम्ल	½ पाइंट
ऑक्जैलिक एसिड	½ पौंड

पानी　३० से ४० गैलन

अब कपड़े को छाँट लेना चाहिये, जिनका रङ्ग समान हो उन्हें एक तरफ कर लेना चाहिये और जिनका रङ्ग असमान हो उन्हें अलग कर लेना चाहिये। अब असमान रङ्ग वालों को लगभग १० मिनट तक निम्नलिखित घोल में डुबा कर धो डालना चाहिये—

२ पाइंट नाइट्रस एसिड
३० से ४० गैलन पानी

नाइट्रस एसिड से कपड़े पर हलका पीला रङ्ग आ जाता है किन्तु इसको फिर रंगने में कोई असुविधा नहीं पड़ती। ऐसा करने से कपड़े का फीका रङ्ग समान हो जाता है। फिर भी ऐसे कपड़ों को रंगने में जहाँ तक हो सके ठंडे पानी का प्रयोग करना चाहिये और उन्हीं रङ्गों का प्रयोग करना चाहिये जो ठंडे पानी में रङ्गे जाते हैं। ऐसे ऊनी कपड़ों को लाल रंगने के लिये एसिड मजंटा, एसिड यलो और ग्लाबर साल्ट को पानी में घोल कर रंगना चाहिये। रंगने के और बहुत से नुस्खे अन्त में दिये हुये हैं।

कपड़े रंगने के उपरान्त उन्हें निचोड़ कर सूखने के लिये डालना चाहिये। निचोड़ने में रोयेंदार कपड़ो और ऊनी कपड़ों को उमेठना न चाहिये किन्तु दबा कर पानी निकाल देना चाहिये। इस काम के लिये बेलनों का प्रयोग करना अच्छा है। कपड़े निचोडने के लिये कई मशीनें भी मिलती हैं किन्तु साधारणतया बेलनों से दबा कर पानी निकाल देना पर्याप्त होता है। निचोड़ कर कपड़ों को सूखने के लिये लटका देना चाहिये। जहाँ तक सम्भव हो उन्हें छाँह में या हवादार कमरे में सुखाना अच्छा है क्योंकि कभी-कभी बहुत से रङ्ग धूप से फीके पड़ जाते हैं।

नीचे रंगाई के कई नुस्खे दिये जाते हैं। रंगरेज इन नुस्खों में इच्छानुसार अदल-बदल कर सकता है। यह नुस्खे केवल प्रमुख रङ्गोंके लिये है। हमें खेद है कि हिन्दी में रङ्गोंके सूक्ष्म भेदों के नाम के लिये पर्याप्त शब्द नहीं हैं अतः अंगरेजी के शब्दों का प्रयोग करना पड़ा है। यहाँ केवल थोड़े से ही नुस्खे दिये गये हैं किन्तु इन से भी रंगरेज को काफी सहायता मिल सकती है और वह इसी तरह के अन्य रङ्गों का उपयोग इसी भाँति कर सकता है। विभिन्न प्रकार के कपड़ों के लिये विभिन्न प्रकार के रङ्गों का प्रयोग करना पड़ता है और रङ्ग को हलका या गहरा चढ़ाने के लिये रङ्ग की मात्रा घटाई बढ़ाई जा सकती है। प्रत्येक नुस्खे के साथ पानी की मात्रा नहीं बतलायी गयी है। इसलिये यह उतना ही लेना चाहिये जिसमें कपड़ा अच्छी तरह डूब जाय।

रेशमी कपड़ों की रंगाई के लिये

१. गुलाबी रंग (रोज़)

दो कपड़ों के लिये

(क) अच्छा साबुन　२ से ३ औंस
सफरानीन प्राइमा　½ औंस
(अथवा ½ से ¾ औंस रोडामीन बी)

आधघंटे तक १४०° से १५०° फा० तापक्रम पर रंगना चाहिये।

(ख) अच्छा साबुन　२ से ३ औंस
इओसीन जी　¼ औंस
एसिटिक अम्ल　थोड़ा सा
(पिन्क)

(ग) ग्लाबर साल्ट　४ से ६ औंस
एसिटिक एसिड　१ औंस
ब्रिलियन्ट क्रोसीन एम ओ ओ　½ औंस

खौलते पानी में रंगना चाहिये।

२. लालरंग (क्रिमसन)

(क) ग्लाबर साल्ट　४ औंस
गन्धक का अम्ल　½ औंस
एज़ो कारमीन　१ औंस

खौलते पानी में रंगना चाहिये। एज़ो कारमीन के स्थान पर बोर्डो एस. आमारान्थ, मिलिंग रेड आर, फास्ट रेड इत्यादि भी प्रयोग किये जा सकते हैं।

(कारडीनल)

(ख) अच्छा साबुन　२ औंस
सफरानीन प्राइमा　¼ औंस
कनैरी　¼ औंस

पानी का तापक्रम १५०° फा० होना चाहिए।

(ग) (स्कारलेट)

टिटान स्कारलेट सी बी — १ पौंड
एसिटिक अम्ल — थोड़ा सा
खौलते पानी में रंगना चाहिये।

या

ग्लावर साल्ट — ४ औंस
गन्धक का अम्ल — ½ औंस
क्रोमोट्राय टू आर — १ औंस

(घ) (चेरी)

गन्धक का अम्ल — ½ औंस
एसिड मजंटा — १ औंस
फास्ट रेड ए. — ¾ औंस
इन्डिगो एक्सट्रैक्ट — ¼ औंस
खौलते पानी में रंगना चाहिये।

३. क्रीम रंग

नमक — १ पौंड
एसिटिक अम्ल — ¼ औंस
क्राइसोमीन आर या टीटान यलो वाई — पर्याप्त मात्रा में

खौलते पानी में रंगना चाहिये। थोड़ा रंग और मिलाकर यह घोल कई बार प्रयोग में लाया जा सकता है।

४. हलका नीला रंग

बोरेक्स (सुहागा) — ४ औंस
अलकली ब्लू (३ आर से ७ बी तक इच्छित नम्बर) — १ औंस

खौलते पानी में तीन मिनट तक रंगो फिर २ औंस गन्धक के घोल में डुबाओ। यदि रंग बहुत गहरा हो जाय तो बोरेक्स के घोल में उबालो इससे रंग हल्का पड़ जायगा।

५. नेवी ब्लू

ग्लावर साल्ट — ६ औंस
गन्धक का अम्ल — २ औंस
नैपथैल ब्लैक ३ बी — २½ से ३ औंस

यदि रंग और चटक करना हो तो नैपथैल ब्लैक कम कर के एसिड ब्लू ४ एस मिलाना चाहिये। खौलते पानी का प्रयोग करना चाहिये।

६. हरा

(क) एसिटिक अम्ल — थोड़ा सा
ग्रीन क्रिस्टल वाई — ¾ औंस
पानी का तापक्रम लगभग १५० फा० हो।

(ओलिव ग्रीन)

(ख) ग्लावर साल्ट — ६ औंस
गन्धक का अम्ल — २ औंस
नैपथॉल ग्रीन बी — २½ से ३ औंस
खौलते पानी का प्रयोग करना चाहिये।

७. भूरा

(क) [ब्राउन] गन्धक का अम्ल — ½ औंस
आरचिल — १४ औंस
हलदी — २० औंस
इन्डिगो अथवा इन्डिगो एक्सट्रैक्ट — ६ औंस
साबुन — थोड़ा सा

खौलते पानी में रंगना चाहिये। रंगने के बाद एसिटिक अम्ल के हलके घोल में डुबाना चाहिये। इससे रंग और चटक हो जायगा।

(ख) [सिलवर ग्रे]

ग्लावर साल्ट — ४ औंस
गन्धक का अम्ल — ½ औंस
नैपथॉल ब्लैक बी या एसिड ब्लैक एस — ¼ औंस
खौलते पानी का प्रयोग करना चाहिये।

८. माव

ग्लावर साल्ट — २ औंस
वायलेट ४ बी — ½ औंस
मजंटा — ¼ औंस
पानी का तापक्रम लगभग १८०° फा०।

९. बैंजनी [वायलेट]

ग्लावर साल्ट — ४ औंस
वायलेट रंग — १ औंस

वायलेट रंग जैसे मिथाइल वायलेट, पेरिस वायलेट, हॉफमैन वायलेट इत्यादि। उपरोक्त घोल-ठंडे पानी में बनाकर कपड़ों को रंगना चाहिये और फिर धीरे धीरे पानी

गरम करके रंगते रहना चाहिये। अन्त में पानी को खैलाना चाहिये।

या

ग्लाबर साल्ट	४ औंस
गन्धक का अम्ल	१½ औंस
एसिड वायलेट	१½ औंस

खौलते पानी में रंगना चाहिये। एसिड वायलेट के किसी भी नम्बर का प्रयोग उपरोक्त रीत से किया जा सकता है।

१०. पीला

[क] एसिटिक अम्ल	२ औंस
फास्ट यलो एफ वाई	१½ औंस

खौलते पानी में आध घंटे तक रंगना चाहिये।

[ख] [लेमन यलो]

ग्लाबर साल्ट	४ औंस
एसिटिक अम्ल	१½ औंस
एज़ो यलो	¾ औंस

खौलते पानी का प्रयोग करना चाहिये।

११. नारंगी रंग

ग्लाबर साल्ट	४ औंस
गन्धक का अम्ल	¾ औंस
औरेंज एक्स	१ औंस

खौलते पानी का प्रयोग करना चाहिये।

१२ काला

ग्लाबर साल्ट	१ पौंड
गन्धक का अम्ल	२ औंस
एसिड ब्लैक बी बी	४ औंस
एसिड ग्रीन	½ औंस
फास्ट यलो	¾ औंस

खौलते पानी का प्रयोग करना चाहिये।

या

ग्लाबर साल्ट	८ औंस
गन्धक का-अम्ल	२ औंस
नैपथौल ब्लैक बी	४ औंस
नैपथौल ग्रीन बी	½ औंस

खौलते पानी का प्रयोग करना चाहिये।

ऊनी कपड़ों की रंगाई के लिये

१ लाल रंग (क) (क्लेरेट)

ग्लाबर साल्ट	३ औंस
फिटकरी	२ औंस
टारटार	१½ औंस
कडवियर	१¾ पौंड
एसिड मजंटा	¾ औंस
इन्डिगो अथवा इन्डिगो एक्सट्रैक्ट	¾ औंस
एटलस औरंज	¾ औंस

खौलते पानी का प्रयोग करना चाहिये।

(ख) (क्रिमसन)

ग्लाबर साल्ट	१० औंस
गन्धक का अम्ल	२ औंस
फास्ट एसिड वायलेट आर	१½ औंस

(ग) (मरून)

ग्लाबर साल्ट	१० औंस
गन्धक का अम्ल	२ औंस
एज़ो यलो	१½ औंस
फास्ट एसिड वायलेट आर	२½ औंस
एसिड वायलेट ५ बी एफ	½ औंस

(घ) (स्कारलेट)

ग्लाबर साल्ट	१० औंस
गन्धक का अम्ल	२ औंस
क्रोमोट्रॉप २ आर	२ औंस

खौलते पानी का प्रयोग करना चाहिये।

२ भूरा रंगः (क) (ब्राउन)

पहले डेढ़ घंटे तक निम्नलिखित घोल में उबालो (मौरडैन्ट) :—

फिटकरी	१ ½ पौंड
टारटार	¾ पौंड
पोटाश बाइक्रोमेट	½ पौंड
पानी	पर्याप्त मात्रा में

और फिर निकाल कर धो डालो। अब निम्नलिखित घोल में रंगो :

ब्रेज़ील उड ६ पौंड
फ़ुस्टिक २½ पौंड
लॉग उड १ पौंड

पहले आध घंटे तक ठंडे घोल में भींजकर घोल को धीरे-धीरे गरम करके खौलाना चाहिये।

(ब) चेस्टनट
अमोनियम एसीटेट ५ औंस
टिटान ब्राउन वाई २ औंस
टिटान यलो वाई १ औंस
एसिड ब्लू ४ एस १½ औंस

खौलते पानी का प्रयोग करो।

(स) सिलवरग्रे
ग्लाबर साल्ट १० औंस
गन्धक का अम्ल १ औंस
इन्डुलीन ए ½ औंस

खौलते पानी का प्रयोग करो।

३. पीला रंग
ग्लाबर साल्ट १० औंस
थायो फ्लेवीन टी १ औंस

खौलते पानी का प्रयोग करो। रंग की मात्रा घटा कर लेमन यलो रंग तक रंगा जा सकता है।

४. हलका नीला
फिटकरी ¾ पौंड
गन्धक का अम्ल २ औंस
टारटार ½ औंस
ऐक्स्ट्रैक्ट इन्डिगो (या यौगिक इन्डिगो) १ पौंड
खौलते पानी का प्रयोग करना चाहिये।

५. नेवी ब्लू
पहले निम्नलिखित घोल (मौरडेन्ट) में १½ घंटे उबालो
टारटार ३ औंस
बाइक्रोमेट आफ पोटाश ४ औंस
फिर पानी से निकालकर निम्नलिखित घोल में रंगो :—
एसिटिक अम्ल १ औंस
एलीज़रीन ब्लू एस डब्लू २ पौंड

पहले ठंडे घोल में रंगो और फिर घोल को खौलाओ।

अथवा

ग्लाबर साल्ट १० औंस
गन्धक का अम्ल २ औंस
पेटेन्ट ब्लू वी ३½ औंस
फास्ट एसिड वायलेट आर १ औंस
एज़ो यलो ¾ औंस
एसिड वायलेट ४ बी एफ १¾ औंस
खौलते पानी का प्रयोग करो।

६. बैंजनी वायलेट
ग्लाबर साल्ट १० औंस
गन्धक का अम्ल २ औंस
एसिड वायलेट ४ बी एफ १ औंस
खौलते पानी का प्रयोग करो।

७. हरारंग (क) ओलिव
ग्लाबर साल्ट १० औंस
गन्धक का अम्ल २ औंस
पेटेन्ट ब्लू वी २ औंस
फास्ट एसिड वायलेट आर ½ औंस
एजो यलो १½ औंस
खौलते पानी का प्रयोग करो।

(ख) गाढ़ा हरा
ग्लाबर साल्ट १० औंस
गन्धक का अम्ल २ औंस
पेटेन्ट ब्लू वाई ३ औंस
फास्ट एसिड वायलेट आर ½ औंस
एजो यलो १½ औंस
एसिड वायलेट ४ बी एफ ¾ औंस
खौलते पानी का प्रयोग करो।

(ग) बॉटल ग्रीन
ग्लाबर साल्ट १० औंस
गन्धक का अम्ल २ औंस
पेटेन्ट ब्लू वाई १¾ औंस
फास्ट एसिड वायलेट आर ½ औंस
एजो यलो १½ औंस

खौलते पानी का प्रयोग करो।

(घ) (मॉस ग्रीन)

पहले डेढ़ घंटे तक निम्नलिखित घोल (मौरडेन्ट) में उबालो :—

फिटकरी	१० औंस
गन्धक का अम्ल	२ औंस
पोटाश बाइक्रोमेट	३½ औंस

फिर पानी से निकालकर निम्नलिखित घोल में डेढ़ घन्टे तक उबाल कर सुखाओ :—

फ़ूस्टिक	२ पौंड
लॉगउड	१२ औंस
ब्रेज़ील उड	७ औंस

८. काला रंग

ग्लाबर साल्ट	१ पौंड
गन्धक का अम्ल	४ औंस
नैपथौल ब्लैक बी	६ औंस
नैपथौल यलो एस	½ औंस
नैपथौल ग्रीन बी	¾ औंस

खौलते पानी का प्रयोग करो। नैपथौल ब्लैक के स्थान पर विक्टोरिया ब्लैक, एज़ो ब्लैक, एन्थ्रासाइट ब्लैक इत्यादि का प्रयोग किया जा सकता है।

अथवा

ग्लाबर साल्ट	१० औंस
गन्धक का अम्ल	२ औंस
क्रोमोट्रोप एस	५ औंस

एक घंटे तक इस घोल में खौलाओ फिर कपड़े निकाल कर इसी घोल में ३ औंस पोटाश बाइक्रोमेट मिला कर फिर कपड़ों को डाल कर आध घंटे तक खौलाओ।

सूती कपड़ों की रंगाई के लिये

१ गुलाबी रंग (पिन्क)

नमक	१० औंस
अच्छा साबुन	१ औंस
एरीका बी	½ औंस

खौलते पानी का प्रयोग करो।

२ नारंगी रंग

नमक	२० औंस
टीटान ऑरेंज	३ औंस

खौलते पानी का प्रयोग करो।

३ नेवी ब्लू

ग्लाबर साल्ट	१० औंस
अच्छा साबुन	२ औंस
बेन्ज़ो पर प्यूरीन आर	३ औंस

लगभग एक घंटे तक इस घोल में खौलाओ।

४ पीला

नमक	१५ औंस
टीटान यलो वाई	२ औंस

खौलते पानी का प्रयोग करो।

अथवा

पहले कपड़ों को गरम (तापक्रम १८०° फा०) टैनिक एसिड के घोल में (मौरडेन्ट) चार घंटे तक डुबाओ। फिर निकाल कर २ औंस टारटार एमिटिक के घोल में आधा घंटे तक डुबाओ और निकाल कर निचोड़ लो। अब १ औंस आरामीन २, कनैरी, आरामीन G, कनैरी GG या थाओफ्लैवीन टी के गरम (तापक्रम १७०-१८०° फा) घोल में रंगो। यह रंग विभिन्न भाँति के पीले रंग देते हैं।

५ लाल (स्कारलेट)

पहले कपड़ों को टैनिक एसिड के घोल में डुबाकर टारटार एमिटिक के घोल में डुबाओ (देखो नुस्खा न० ४) फिर उसे निम्नलिखित घोल में रंगो।

सफरानीन प्राइमा	१ औंस
आरामीन २	½ औंस

सफरानीन और आरामीन का अनुपात बदल कर कई प्रकार के लाल रंग रंगे जा सकते हैं।

६ भूरा रंग

(क) (ब्राउन)

पहले निम्नलिखित घोल में एक घंटे तक खौलाओ।

नमक	२० औंस
कौटन् ब्राउन एन	४ औंस

फिर निकाल कर, धोकर, निचोड़कर नीचे लिखे घोल में बीस मिनट तक डुबाओ।

सोडियम नाइट्राइट	२ औंस
नमक का अम्ल	३ औंस
ठंडा पानी	पर्याप्त मात्रा में

इसके बाद कपड़ों को निकाल कर आध घन्टे तक ३ औंस फिनाइलीन डाइएमीन के पानी में नमक का अम्ल मिले घोल में साधारण तापक्रम पर आध घन्टे तक रंगो।

कौटन ब्राउन एन की जगह डाइएमीन कच, डाइएमीन ब्राउन एन, या डाइएमीन ब्रौउन बी का प्रयोग कर के अन्य प्रकार के ब्राउन रंग प्राप्त हो सकते है।

(ख) (ग्रे)

नमक	१५ औंस
स्टीरोसीन ग्रे	२ औंस

कपड़ों को एक घन्टे तक खौलाओ।

७ हरा रंग

पहले टैनिक एसिड और टारटार एमिटिक से मौरडेन्ट करो (देखो नुस्खा न० ४) फिर निम्न लिखित घोल में रंगो :

ब्रिलियन्ट ग्रीन	१ औंस
आरामीन २	½ औंस

ब्रिलियन्ट ग्रीन के स्थान पर मालाकाइट ग्रीन या अन्य एनीलीन वर्ग के ग्रीन का प्रयोग कर सकते हैं। आरामीन की जगह बेन्जोफ्लैवीन या थायो फ्लैवीन टी का भी प्रयोग कर सकते हैं। रंग में इच्छा-नुसार परिवर्तन कर के कई प्रकार के हरे रंग रंगे जा सकते है।

८ बैंजनी (वायलेट)

पहले टैनिक एसिड और टार-टार एमिटिक से मौरडेन्ट करो (देखो नुस्खा न० ४) फिर १ औंस मिथाइल वायलेट के घोल में साधारण तापक्रम पर रंगो। मिथाइल वायलेट के स्थान पर अन्य वायलेट का भी प्रयोग किया जा सकता है।

९ काला

पहले कपड़ों को एक घन्टे तक निम्नलिखित घोल में खौलाओ।

ग्लावर साल्ट	१२ औंस
अच्छा साबुन	१ औंस
डाइएमीन ब्लैक बी ओ	५ औंस
टीटान यलो आर	½ औंस

फिर निचोड़ कर नीचे लिखे घोल में पन्द्रह मिनट तक डुबाओ।

नमक का अम्ल	३ औंस
सोडियम नाइट्राइट	२ औंस
ठंडा पानी	पर्याप्त मात्रा में

इसके बाद निकाल कर २ औंस फिनाइलीन डाइएमीन के घोल में डुबाओ (फिनाइलीन डाइएमीन पानी में घोलने के लिये थोड़ा सा नमक का अम्ल मिलाना चाहिये)। बीस मिनट बाद निकाल कर धो डालो और सुखाओ।

अथवा

पहले कपड़ों को निम्नलिखित घोल में एक घन्टे तक डुबाओ :

एनीलीन साल्ट	२ पौंड
गन्धक का अम्ल	½ पौंड
पानी	४० गैलन

फिर इसमें से निकाल कर नीचे लिखे घोल में आध घन्टे तक डुबाओ—

पोटाश बाइक्रोमेट	१ पौंड
आयरन नाइट्रेट	½ पाइंट
गन्धक का अम्ल	½ पौंड

यदि रंग गहरा न चढ़ा हो तो फिर एक बार इसी तरह रंगो। रंग कर कपड़ों को अच्छी तरह धोकर सुखाना चाहिये। इस तरह से सब से पक्का काला रंग चढ़ता है किन्तु रंगने की यह विधि तनिक कठिन है।

ऊनी-सूती कपड़ों के लिये

मिलावट के कपड़ों को रंगने के लिये केवल उन्हीं रंगों का प्रयोग करना चाहिये जो दोनो भाँति के धागों पर समान रूप से चढ़ सकें। ऊनी-सूती कपड़ों के लिये सीधे रंग (Direct dyes) का प्रयोग करना अच्छा है। इस काम के लिये सीधे रंगों के उदाहरण है टीटान यलो, टीटान स्कारलेट टीटान ब्राउन, क्राइसोफिनीन. क्राइसमीन

बेन्जो परप्यूरीन, डाइएमीन स्कारलेट इत्यादि। रंगने के घोल में ग्लाबर साल्ट कुछ अधिक मिलाना चाहिये और जहाँ तक हो सके साबुन का प्रयोग कम करना चाहिये। नीचे कुछ रंगों के नुस्खे दिये जाते हैं :

१. लाल (स्कारलेट)

नमक	३ पौंड
टीटान स्कारलेट सी बी	२½ औंस

खौलते पानी का प्रयोग करें।

२. भूरा (चेस्टनट)

नमक	३ पौंड
टीटान ब्राउन ओ	१ औंस
टिटान ब्लू ३ बी	१ औंस
एसिटिक अम्ल	थोड़ा सा

खौलते पानी का प्रयोग करें।

३ लाल (क्रिमसन)

नमक	३ औंस
टिटान रेड ६ बी	३ औंस

खौलते पानी का प्रयोग करें

४ काला

ग्लाबर साल्ट	१० औंस
नियान्जा ब्लैक बी	४ औंस
कोलम्बिया ब्लैक आर	४ औंस

खौलते पानी का प्रयोग करें।

५ बैंजनी

पहले टैनिक एसिड और टारटार एमिटिक से मौरडेन्ट करें फिर मिथाइल वायलेट से ठंडे पानी में रंगें।

रेशमी-सूती कपड़ों के लिये

यहाँ भी सीधे रंगों (direct dyes) का प्रयोग करना चाहिये क्योंकि यह रेशम और सूत दोनों पर समान चढ़ते हैं। नीचे कुछ नुस्खे इस तरह के रंगों के दिये जाते हैं :—

१ नीला रंग (नेवी ब्लू)

ग्लाबर साल्ट	१० औंस
डाइएमीन ब्लू ब्लैक ई	३ औंस

खौलते पानी का प्रयोग करें।

२ गुलाबी (पिन्क)

नमक	८ औंस
टिटान पिन्क ३ बी	½ औंस

पहले खौलते पानी में रंगों और बाद में कुछ बूँदें एसिटिक अम्ल की मिला कर एक घंटे तक फिर रंगो।

३ पीला

नमक	१० औंस
टिटान यलो वाई	२ औंस

खौलते पानी का प्रयोग करो।

४ भूरा (क) (ग्रे)

एसिटिक अम्ल	३ औंस
स्टिरोसीन ग्रे	३ औंस

आध घन्टे तक खौलते पानी में रगो।

(ख) (ब्राउन)

नमक	१० औंस
मिकाडो ब्राउन एम	३ औंस

एक घन्टे तक खौलते पानी में रंगों।

५ नारंगी

सोडा फास्फेट	३ औंस
अच्छा साबुन	३ औंस
बेन्जो औरेन्ज आर	२ औंस

घोल को धीरे-धीरे गरम कर के खौलाओ।

६ लाल (स्कारलेट)

ग्लाबर साल्ट	८ औंस
अच्छा साबुन	४ औंस
डाइएमीन स्कारलेट बी	२ औंस

खौलते पानी का प्रयोग करो।

लिनेन् और जूट के लिये

लिनेन् सूती कपड़े की तरह रंगा जाता है और इस तरह के रंगों के कई नुस्खे दिये जा चुके हैं। जूट बहुत कम रंगा जाता है। यदि आवश्यकता हो तो जूट भी सूती कपड़ों की भाँति रंगा जा सकता है।

रंगाई उपरान्त क्रिया (फिनिशिंग)

पहले कहा जा चुका है कि कपड़े रंगने के उपरान्त उन्हें निचोड़ने में सतर्कता से काम लेना चाहिये। लेस लगे पर्दों

को लेस की लम्बाई की ओर निचोड़ना चाहिये। ऊनी कपड़ों को उमेठना नहीं चाहिये किन्तु दबा कर जितना पानी निकल सके निकालना चाहिये। कपड़े निचोड़ने के लिये कई मशीनें मिलती हैं। इन्हें हाइड्रो एक्सट्रैक्टर कहते हैं इन में कुछ मशीनें हाथ से चलाने की है और कुछ मोटर द्वारा अथवा विद्युत् से चलाई जाती हैं। इन मशीनों में बहुत से कपड़े एक साथ निचोड़े जा सकते हैं। किन्तु एक साधारण रंगरेज अधिकतर हाथ से कपड़े निचोड़ता है अतः यहाँ पर निचोड़ने वाली मशीनों का कोई वर्णन नहीं किया गया है।

साधरणतया जब कपड़ा लगभग सूख जाता है तब उस पर इस्त्री करना चाहिये। इससे बल, सिलवट इत्यादि निकल जाते हैं। पतले कपड़ों (मलमल इत्यादि) और लेस में हलका माँड़ लगाकर इस्त्री करनी चाहिये। इससे कपड़ा जरा कड़ा हो जाता है और अच्छा लगता है।

रोयेंदार कपड़ों (मखमल, साटिन आदि) पर इस्त्री कभी भूल कर भी न करनी चाहिये क्योंकि ऐसा करने से रोयें चिपक जायेंगे और कपड़ा देखने में बुरा लगेगा। रोयें उभारने की सब से अच्छी तरकीब कपड़े में से पानी की भाप निकालना है। इस काम के लिये एक बर्तन में पानी खौलाना चाहिये और जब पर्याप्त भाप निकलने लगे तो उस पर जाली रख कर, जाली पर रोयेंदार कपड़े को रखना चाहिये। एक अच्छी तरकीब यह होगी कि पानी को एक बन्द बर्तन में उबाला जाय और एक पाइप द्वारा भाप को चित्र न० ४ में दिखाये गये छेद दार बर्तन में पहुँचाया जाय। इस पर रोयेंदार कपड़े सुगमता से डाले जा सकते हैं। यह बर्तन दीवार में लगाया जा सकता है। यदि भाप बनाने में कोई असुविधा हो तो चित्र न० ५ में दिखाई गई वाष्प भट्टी आसानी से बनाई जा सकती है। चित्र के अन्दर इसकी बनावट अच्छी तरह समझाई गई है। यह वाष्प भट्टी टीन, जस्ता या ताँबा किसी की भी बनाई जा सकती है। जहाँ तक हो सके इसको ताँबें की बनाना चाहिये। ताँबा महँगा तो अवश्य पड़ता है किन्तु ऐसी वाष्प-भट्टी बहुत दिनों तक चलती है। चित्र में ढाई फीट लम्बी वाष्प भट्टी बनाई गई है किन्तु इसकी लम्बाई में रंगरेज इच्छा-नुसार परिवर्तन कर सकता है। इस भट्टी को लकड़ी या कोयले से गरम किया जा सकता है और जाली पर कपड़े डाले जा सकते हैं। यदि जाली के ऊपर नमदा डाल कर कपड़े सुखाये जाँय तो सब स्थानों पर भाप समान रूप से लगती है। ऐसा करने से देर तो अवश्य होती है किन्तु कपड़े के रोयें बड़े सुन्दर रूप से उभड़ते हैं।

भाप लगाते समय रोयेंदार कपड़ों को ब्रुश से झाड़ते रहना चाहिये। भाप लगाने के बाद ऐसे कपड़ों को शीघ्र सुखाना चाहिये। हो सके तो आँच पर सुखाना चाहिये। यदि आवश्यकता हो तो भाप देने के पहले कपड़े में थोड़ा माँड़ लगा लेना चाहिए।
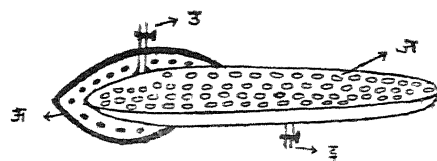
चित्र नं० ४

अ—दीवाल में लगाने का ब्रैकेट, ज—जाली, उ—पाप जाने का भाइप, इ—पानी निकालने का पाइप। जाली पर रोयें दार कपड़े डाले जाते हैं।

उपसंहार

इस लेख में संक्षेप में रंगरेजी पर कुछ बातें बताई गई हैं। केवल कपड़ा रंगने की क्रिया पर विचार किया गया है क्योंकि हमारे यहाँ रंगरेज से अभिप्राय कपड़ा रंगने वालों से है। खाल और चमड़े आदि से बने वस्त्रों की रंगाई का कोई वर्णन नहीं दिया गया है। अन्त में हम कृत्रिम सिल्क की रंगाई के विषय में कुछ बतलाना चाहते हैं। कृत्रिम सिल्क आजकल बहुत चल गया है। यह सिल्क अथवा रेशम नहीं है। यह प्रयोगशालाओं में तैयार किया जाता है और रेशम सा प्रतीत होता है। कृत्रिम सिल्क रंगने में उन रंगों का प्रयोग करना चाहिए जो सूती कपड़ों के रंगने में किये जाते हैं। आज कल सूत, रेशम और ऊन भी कृत्रिम सिल्क में मिलाकर कपड़े बुने जाते हैं। इस तरह के मिलावट के कपड़े साधारणतया
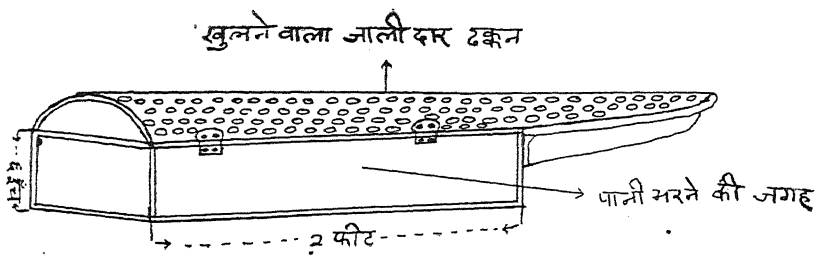
चित्र नं० ५

चित्र नं० ५
ढक्कन ऐसा होना चाहिये कि वाष्प-भट्टी की केवल जाली को छोड़ कर और कहीं से भाप न निकल सके। यह वाष्प-भट्टी नीचे से गरम की जाती है।

रेशमी-सूती और ऊनी-सूती कपड़ों की तरह रंगे जा सकते हैं। इन कपड़ों के रंगने के लिये अधिकतर सीधे रंगों का प्रयोग होता है।

यह लेख केवल साधारण रंगरेज के लिए लिखा गया है। मिलों में कपड़ा रंगने के लिए बहुत सी मशीनों का प्रयोग होता है। मशीनों के प्रयोग में फायदा तभी है जब बहुत से कपड़े एक ही रंग में रंगने हों। हमारे देश के रंगरेजों को ऐसा काम बहुत कम मिलता है। उन्हें तो केवल छोटे वस्त्र रंगने के लिए मिलते हैं। इस लेख में दी गई बातों का अभ्यास करने से रंगरेज सफल रंगरेज बन सकता है। रंगरेजी एक कला है जो अभ्यास और अनुभव से ही सीखी जा सकती है

युगल नक्षत्र *

[ले० श्री नत्थनलाल गुप्त, गवर्नमेंट पेन्शनर]

आकाश में बहुत से तारे ऐसे भी हैं जो नंगी आँख से तो इकहरे प्रतीत होते हैं पर जब उन्हें दूरदर्शक यन्त्र द्वारा देखा जाता है तो वह दोहरे (Double) देख पड़ते हैं। वह दो तारों का योग होते हैं, जिनका मध्यान्तर बहुत थोड़ा होता है। कभी-कभी तो यह अंतर एक विकला से भी कम होता है। यह युगल तारे (Double star) कहलाते हैं। इसी प्रकार तेहरे और चौहरे तारे भी पाये गये। इस समय तक इस प्रकार के कोई १०००० तारों का पता लगाया जा चुका है, जो आकाश के विभिन्न भागों में फैले हुए हैं।

सब से पहले १६६४ ई० में इंगलिस्तान के ज्योतिषी मिस्टर हुक ने एक युगल तारा मालूम किया था। वह अपनी दूरबीन से मेषराशि में एक पुच्छल तारे को देख रहा था, कि उसकी दृष्टि उस तारा मण्डल के ग तारे (Gama aries पर पड़ी। उसने देखा कि यह तारा यद्यपि खाली आँख से तो इकहरा तारा प्रतीत होता है पर वास्तव में वह दो तारों का योग है जो एक दूसरे के बहुत पास-पास हैं। इसके पश्चात् दोहरे तारों की संख्या

*यह लेख हमारे अप्रकाशित ग्रन्थ "खगोल विज्ञान" के ७वें अध्याय का तीसरा परिच्छेद है।

दिन प्रति दिन बढ़ने लगी, यहाँ तक कि १७८१ ई० में बोड ने ८० युगल तारों की एक सूची प्रकाशित की। इसी वर्ष हरशल ने यूरेनस को मालूम किया था। इसके पश्चात् सर विलियम हरशल ने भी बहुत से युगल तारे ढूँढ़ निकाले और उनकी संख्या ५०० तक पहुँच गई। दूसरे लोगों ने, जिनमें विलियम हरशल का पुत्र सर जौन हरशल भी है, उनकी संख्या ६००० तक पहुँचा दी।

बहुत समय तक तो लोग यह समझते रहे, कि यह तारे वास्तव में दोहरे नहीं हैं, उनके दोहरे प्रतीत होने का कारण केवल यह है, कि दो तारे एक ही दिशा में आगे पीछे स्थित हैं, जिनमें से एक तो समीप है और दूसरा उसके पीछे, सम्भव है, लाखों और करोड़ों मील के अन्तर पर हो; किन्तु दृष्टि की सीध में होने के कारण पास-पास मालूम होते हैं। १८०२ ई० तक ऐसा ही समझा जाता रहा जब कि विलियम हरशल ने बतलाया कि युगल तारों में से बहुत से ऐसे भी हैं जो वास्तव में दोहरे हैं और दोनों अपने सामान्य गुरुत्व केन्द्र के गिर्द घूमते हैं, मानो गुरुत्वाकर्षण का नियम तारों में भी काम कर रहा है।

इस प्रकार से युगल तारे दो श्रेणियों में विभक्त हो गये। एक तो वह, जो केवल देखने मात्र को ही युगल हैं, वास्तव में वह दो अलग-अलग इकहरे तारे ही हैं और उनका एक दूसरे से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। दूसरे वह, जो वास्तविक रूप से दोहरे हैं और दोनों मिलकर एक संस्थान (System) बनाते हैं, यह वास्तविक युगल या युग्मतारे (Binary) कहलाते हैं। पहली प्रकार के तारों को, जो केवल देखनेमात्र को दोहरे हैं, अवास्तविक युगल वा दृश्य युगल कह सकते हैं।

सब से पहले सर विलियम हरशल ने ही दोहरे तारों का नियमित रूप से निरीक्षण आरम्भ किया था। जब वह किसी युगल तारे को देखता तो वह दोनों तारों का मध्यान्तर और उनकी दिशाओं के कोण भी ठीक-ठीक नाप कर एक रजिस्टर में लिख लेता। उसके इस काम को उसके पुत्र सर जौन हरशल तथा सर जे० सौथ (Sir J. South) और प्रो० स्ट्रूव (Pro. Struve) ने भी चालू रक्खा। कुछ समय के पश्चात् मालूम हो गया कि उनमें से कुछ तारों की दिशा और कभी-कभी उनका मध्यान्तर भी बदल गया है। पहले इस परिवर्तन का कारण पृथ्वी की वार्षिक गति समझी गई; किन्तु इस सूरत में इस परिवर्तन का चक्र प्रत्येक युगल तारे में एक वर्ष होना चाहिये था। पर, जब भिन्न-भिन्न तारों में यह समय भिन्न-भिन्न पाया गया तो हरशल इस परिणाम पर पहुँचा कि इस परिवर्तन का कारण पृथ्वी की वार्षिक-गति नहीं किन्तु उन तारों की अपनी चाल है।

आकाश में हजारों ही युग्मतारे हैं जिनके अलग-अलग तारों की कक्षाओं (भ्रमण पथों) का गणित द्वारा पता लगाया जा चुका है। यह कार्य कितना कठिन है, इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि यदि किसी युग्म तारे के दोनों तारों का दृशान्तर ४" हो तो उसकी दृश कक्षा, जिसको हम नापना चाहते हैं केवल इतनी बड़ी होगी, जितनी बड़ी एक पेनी (Peuny) एक मील से मालूम होती है। इतनी छोटी कक्षा को नापना कितनी होशियारी का काम है और उसमें भूल की सम्भावना कितनी अधिक है? यह भूलें यों देखने में, चाहे बहुत ही थोड़ी मालूम हों, किन्तु जब यथार्थ कक्षा की महत्ता का विचार किया जाय तो वह बहुत बड़ी भूल प्रतीत होने लगती है।

यह बात सिद्ध हो चुकी है कि प्रत्येक युग्म तारे के दोनों भाग एक ही केन्द्र विन्दु के गिर्द दीर्घवृत्तों पर भ्रमण करते हैं और वे ठीक उन्हीं नियमों की पाबन्दी करते हुए गति करते हैं जिन के अनुसार ग्रह सूर्य्य के गिर्द घूमते हैं। इस प्रकार यह बात सिद्ध हो गई है, कि न केवल सौर-साम्राज्य में, किन्तु सारे विश्व में, एक ही नियम काम कर रहा है।

आकाश के बहुत चमकीले तारों में से बहुत से युग्म हैं—जैसे अल्फा सेन्टॉरी, (a centauri) कास्टर

(Castor) और लुब्धक (Sirius)। यहाँ हम कुछ युग्म तारों का हाल वर्णन करते हैं।

(१) कास्टर (Castor) या पुनर्वसु द्वितीय मिथुन राशि का सब से चमकीला तारा है। नंगी आँख से एक ही तारा प्रतीत होता है। किन्तु मध्यम श्रेणी की अच्छी दूरबीन से देखने से दोहरा दिखाई देने लगता है। इनमें एक तो तीसरी श्रेणी का तारा है और दूसरा उससे कुछ मन्द है। उनके मध्य का अन्तर ५" है। कास्टर उन दोहरे तारों में से है, जो एक केन्द्र-बिन्दु का परिभ्रमण करते हैं। किन्तु, उनकी गति अतिमन्द है, और एक चक्कर शताब्दियों में पूरा होता है।

(२) सप्तर्षि मंडल में भी एक सुन्दर युग्म तारा पाया जाता है जो वशिष्ट कहलाता है। यह उसकी पूँछ के तीन तारों में से बीच वाला तारा है। उसके पास ही एक मंद तारा है जो अरुन्धती कहलाता है। यह भी नंगी आँख से दिखाई दे सकता है। किन्तु, जब हम वशिष्ट को युग्म तारा कहते हैं, तो उससे हमारा अर्थ यह नहीं होता कि उसका दूसरा साथी अरुन्धती है। क्योंकि, जब वह दूरबीन से देखा जाता है तो अरुन्धती तो वशिष्ट से बहुत दूर मालूम होने लगती है, किन्तु वशिष्ट स्वयं भी दो तारों का जोड़ा प्रतीत होने लगता है। उनमें से एक तारा तो दूसरी श्रेणी का और दूसरा चौथी श्रेणी का मालूम होता है और उनके बीच में अंशात्मिक अन्तर कास्टर के तारों के अंशात्मिक अन्तर का कोई तिगुना मालूम होता है। इसी लिये यह हलकी दूरबीन से भी भली प्रकार दोहरा दिखाई देने लगा करता है। नये ज्योतिषियों के लिये यह आकाश में सबसे अच्छा युग्मतारा है। किन्तु हम यह नहीं बतला सकते कि वह यथार्थ में युगल है या केवल ऐसा देख पड़ता है। क्योंकि, अभी तक इन तारों में कोई भ्रमण गति नहीं देखी गई है। यह भी नहीं कह सकते कि अरुन्धती का भी इस तारे से कुछ सम्बन्ध है या नहीं। हाल ही में प्रकाश विश्लेषक यन्त्र द्वारा यह भी मालूम हुआ है कि वशिष्ट का बड़ा तारा स्वयं भी दो तारों का योग है, किन्तु वह इतने पास-पास हैं कि संसार की बड़ी से बड़ी दूरबीन से भी उनको अलग-अलग देखना असम्भव है।

(३) लुब्धक आकाश में सब से अधिक चमकीला तारा है। पहले वह इकहरा तारा समझा जाता था किन्तु १८४४ ई० में जर्मन ज्योतिषी बैसल ने मालूम किया कि उसका कोई साथी भी है, जो दिखाई नहीं पड़ता। यह तो पहले मालूम था कि लुब्धक लगभग १००० मील प्रति मिनिट की चाल से आकाश में आगे को दौड़ा चला जा रहा है। बैसल ने देखा कि उसकी चाल में कुछ अनियमितता पाई जाती है। अर्थात् कभी तो वह कुछ तेजी से चलता है और कभी सुस्ती से। इससे उसने यह परिणाम निकाला कि लुब्धक इकहरा नहीं दोहरा तारा है, और उसका साथी इतना बड़ा और उसके इतना समीप है कि वह इस इतने बड़े तारे को भी विचलित कर सकता है। ज्योतिषियों ने इस विचलन से ही लुब्धक और उसके साथी की कक्षाओं का हिसाब लगा लिया और एक ज्योतिषी ने उसकी भ्रमण गति का समय ५० वर्ष बताया। १८६१ ई० में आल्वन क्लार्क (Alvan clarke) को, जो शिकागू की वेधशाला में लुब्धक का निरीक्षण कर रहा था; उसके साथी का धुँधला सा प्रकाश दृष्टि आ गया। उसके पश्चात् तो उसे बार-बार देखा गया और उसका भ्रमण काल भी लगभग ५० वर्ष ही पाया गया। इस आविष्कार ने ज्योतिष विद्या के नियमों पर फिर सचाई की मुहर लगा दी।

(४) प्रश्वन (Procyon) भी एक प्रथम श्रेणी का प्रकाशमान तारा है। लुब्धक के समान इसकी चाल में भी अनियमितता पाई गई थी, इससे उसके साथी का, दृष्टि आने से पहले ही, पता लगा लिया गया था। १८९२ ई० में प्रो० शेबरल ने लिक की वेधशाला से उसके साथी को देख पाया।

(५) अल्फा सेन्टोरी (a centauri) भी दूरबीन से दोहरा दिखाई देता है। इसके दोनों तारों का मध्यान्तर पृथ्वी और सूर्य्य के मध्यान्तर से कोई २२ गुना अधिक है। किन्तु, तो भी वह खाली आँख से एक ही तारा प्रतीत होता है। उनमें से एक तारा दूसरे से बहुत छोटा

है और छोटा तारा बड़े के गिर्द लगभग ८९ वर्षों में भ्रमण करता है।

बहुत से तारे ऐसे हैं, जो बड़ी बड़ी दूरबीनों से भी इकहरे प्रतीत होते हैं। किन्तु, जब उनका प्रकाश विश्लेषक यन्त्र द्वारा निरीक्षण किया गया तो दोहरे पाये गये। हम पहले वर्णन कर चुके हैं, कि यदि कोई तारा हमारी ओर आ रहा हो तो उसके रश्मिचित्र की रेखायें बैंजनी सिरे की तरफ़ और यदि हमसे दूर जा रहा हो तो लाल सिरे की तरफ़ हटती हुई प्रतीत हुआ करती हैं। अब, यदि किसी तारे के रश्मिचित्र में कोई काली रेखा दोहरी दृष्टि आवे, अर्थात् एक रेखा लाल सिरे की तरफ़ हटी हुई हो और दूसरी बैंजनी सिरे की तरफ़, तो उसके यह अर्थ होंगे कि वह रश्मिचित्र वास्तव में दो रश्मिचित्रों का योग है और दो भिन्न भिन्न तारों ने उसे बनाया है, जिनमें से एक तो हमारी तरफ़ आरहा है और दूसरा हमसे दूर जा रहा है। इसी प्रकार कभी रेखा तो इकहरी ही दृष्टि आती है पर वह अलग अलग समयों में देखने से भिन्न-भिन्न स्थानों पर देखी जाती है। अर्थात् कभी तो वह लाल सिरे की तरफ़ हटती प्रतीत होती है और कभी बैंजनी सिरे की तरफ़। इससे यह परिणाम निकलता है कि वह तारा, जिसका वह रश्मिचित्र है, भ्रमण कर रहा है। किन्तु उसका साथी, जिसके कारण उसे यह भ्रमण करना पड़ता है, या तो बिलकुल ठंडा है या इतना धुँधला है कि वह अपना रश्मिचित्र नहीं बना सकता। इस प्रकार के युग्म तारे रश्मिचित्रदर्शी युग्म तारे (Spectroscopic Binaries) कहलाते हैं।

प्रो० पिकरिङ्ग ने १८८९ ई० में मालूम किया था कि सप्तर्षि मण्डल के तारे वशिष्ट के रश्मिचित्र की रेखा ५२ दिन के पश्चात् दोहरी दिखाई देने लगती है। प्रजापति तारा मण्डल के 'ब' तारे (Beta Aurigae) के रश्मिचित्र के चित्रों में भी इसी प्रकार हर दो दिन के पश्चात् रेखाएँ दोहरी दृष्टि आने लगती हैं। कन्याराशि का चित्रा तारा भी प्रकाश विश्लेषक यन्त्र से दोहरा मालूम होता है किन्तु उसका साथी बिलकुल ठंडा है। दैत्य तारे (Algol) का मित्र भी एक कृष्ण-नक्षत्र है। और भी बहुत से ऐसे तारे मालूम हो चुके हैं।

युग्मतारे प्रायः रंगदार होते हैं, और दोनों के रंग अलग अलग होते हैं। जो तारे साधारण दूरबीन से देखे जा सकते हैं उन में सब से अच्छा उदाहरण राजहंस का दूसरा तारा (beta cygni) है। उसका बड़ा तारा तो (जो तीसरी श्रेणी का तारा है) सुनहरे रंग का पीला है और उसका छोटा मित्र (जो चौथी श्रेणी का है) नीला है। वह दोनों इतना सुन्दर दृश्य उपस्थित करते है, कि एक बार देख लेने के पश्चात् फिर कभी भूला नहीं जा सकता। इसी प्रकार वृश्चिक राशि का ज्येष्ठा तारा भी युग्म तारा है जिस में बड़ा तारा तो लाल रंग का है और उसका छोटा साथी हरे रंग का है। इसी प्रकार और भी बहुत से उदाहरण दिए जा सकते हैं।

तिगड्डे चौगड्डे और पचगड्डे सितारे-आकाश में ऐसे तारे भी है जो नंगी आँख से तो इकहरे प्रतीत होते हैं पर दूरबीन में देखने से मालूम होता है, कि वह तीन, चार वा पांच तारों से मिल कर बने है। वह तिगड्डे, चौगड्डे वा पचगड्डे तारे कहलाते हैं। 'ग' इन्द्रमेधा (gama andromeda) के सम्बन्ध में हरशल ने मालूम किया था, कि वह एक युग्म तारा है। किन्तु उसके पश्चात् स्ट्रव ने बतलाया कि उस जोड़े का एक तारा भी दो तारों का योग है। इसी प्रकार से कर्क राशि का 'ज' तारा (zeta cancer) भी एक युग्म तारा है जिसके दोनों तारे एक दूसरे के गिर्द लगभग वृत्ताकार कक्षाओं में भ्रमण करते है और एक और छोटा तीसरा तारा, जो उनसे कुछ अन्तर पर है, इस युग्म तारे के गिर्द घूमता है। इस तारे की चाल मे कुछ अनियमितता पाई जाती है। प्रो० सीलिगर का विचार है कि एक और कृष्णतारा भी इनके साथ सम्मिलित है जिसके प्रभाव से यह अनियमितता उत्पन्न होती है।

लीरा (सितार) नाम के तारा मण्डल में एक मन्द-तारा इ लीरी (lyrae) है। इसे जब साधारण दूरबीन से देखते हैं तो वह एक युग्म तारा प्रतीत होता है। किन्तु जब किसी बड़ी दूरबीन से देखा जाता है, तो इस जोड़े का

प्रत्येक तारा भी युग्म प्रतीत होता है। प्रत्येक जोड़े के दोनों तारे एक दूसरे के चारों ओर भ्रमण करते हैं और फिर दोनों जोड़े भी एक और केन्द्र बिन्दु के गिर्द घूमते हैं। इन दोनों जोड़ों के मध्य में एक और मन्द तारा दिखाई देता है। नहीं कह सकते कि उसका सम्बन्ध भी इसी परिवार के साथ है या नहीं।

यह न समझ लेना चाहिए कि यह दोहरे तिहरे तारे जो देखने में पास-पास मालूम होते है, वास्तव में भी पास ही पास हैं। ये एक दूसर से बहुत बड़ी-बड़ी दूरियों पर हैं। हम किसी युग्म तारे के दोनों साथियों का अंशात्मिक मध्यान्तर तो माप ही सकते हैं, किन्तु यदि हमें उस युग्म तारे का हम से वास्तविक अन्तर (मीलों में) भी मालूम हो जाय तो हम उन दोनों तारों का मध्यान्तर मीलों में भी मालूम कर सकते हैं। यह जान लिया गया है, कि अल्गोल और उसके साथी का मध्यांतर ३००००० मील है। उसकी भ्रमण गति की अनियमितता के कारण एक अमेरिकन ज्योतिषी की यह भी सम्मति है कि अल्गोल अपने साथी के सहित एक और तारे के गिर्द घूमता है, जो उससे १८००००००० मील के अन्तर पर है; और यह परिक्रमा १८० वर्षों में पूरी होती है।

विचार तो कीजिए कि आकाश में जो तारे इतने पास-पास दिखाई देते हैं, कि खाली आँख से वे एक ही तारा मालूम होते हैं, उनके मध्य में भी इतना महान अन्तर है। तब जो तारे खाली आँख से ही दूर-दूर दिखाई देते हैं उनके बीच में कितना फासला होगा? इससे मालूम हुआ कि तारे न केवल हम से ही बहुत दूर है, किन्तु आपस में भी एक दूसरे से महान अन्तर पर है। यदि हम किसी प्रकार उनमें से किसी तक तारे पर पहुँच जायें तो वहाँ से भी हमें शेष सब तारे इसी प्रकार महान अन्तर पर और नन्हें-नन्हें से प्रतीत होंगे, जिस तरह यहाँ से प्रतीत होते हैं। तारों के समूह या गुच्छे, जो हमें यहाँ से विशेष आकृति के प्रतीत होते हैं, और उनके तारे पास-पास मालूम होते है, वास्तव में न तो पास पास हैं और न विशेष आकृति के हैं, केवल दूर होने के कारण ही वह हमें ऐसे मालूम होते हैं।

तारों का भार (गुरुत्व) जानना

हम ग्रहों के वर्णन में बता चुके है, कि ग्रहों का गुरुत्व या द्रव्यमान उनके गिर्द घूमने वाले उपग्रहों के द्वारा मालूम किया जाता है। युग्म तारों का गुरुत्व भी लगभग उसी रीति से मालूम किया जा सकता है। आप जानते हैं, कि युग्म तारों के दोनों तारे एक केन्द्रविन्दु के गिर्द भिन्न-भिन्न कक्षाओं पर भ्रमण किया करते हैं। बड़ा तारा छोटी कक्षा बनाता है और छोटा तारा बड़ी कक्षा पर घूमता है। किन्तु गुरुत्व मालूम करने के लिये बड़े तारे को स्थिर और छोटे तारे को उसके गिर्द घूमता हुए मान लेते हैं और बड़े तारे का गुरुत्व दोनों तारों के गुरुत्व के बराबर समझ कर छोटे तारे की कक्षा मालूम करते हैं। यह कक्षा दोनों तारों की अलग-अलग वास्तविक कक्षाओं से बड़ी होती है। फिर यह मालूम करते हैं, कि छोटा तारा बड़े तारे की तरफ एक सेकण्ड में कितना गिरता है। गणित द्वारा यह भी मालूम कर लिया जाता है कि यदि इन दोनों के बीच का अन्तर सूर्य और पृथ्वी के बीच के अंतर के बराबर होता तो गिरावट का मान क्या होता, गिरावट के इन दोनों मानो में जो अनुपात होता है, वही अनुपात सूर्य के गुरुत्व और उन दोनों तारों के गुरुत्वों के योग में होती है। इसलिये तारों के बीच का अन्तर और छोटे तारे का परिक्रमण काल मालूम होना अत्यन्त आवश्यक है।

उदाहरण के लिये हम लुब्धक का गुरुत्व मालूम करने की रीति ज़रा खोल कर वर्णन कर देते हैं। लुब्धक का साथी एक अत्यन्त धुंधला तारा है, और उन दोनों तारों का मध्यान्तर पृथ्वी और सूर्य के मध्यान्तर से लगभग २१ गुना है, तथा लुब्धक का साथी लगभग ५२ वर्षों में उसके गिर्द एक बार परिक्रमण करता है।

हम लुब्धक के साथी के इस परिक्रमण का सूर्य के गिर्द यूरेनस के परिक्रमण के साथ मिलान करते हैं। हम जानते हैं, कि सूर्य से यूरेनस का अन्तर पृथ्वी और सूर्य के मध्यान्तर से १९ गुना अधिक है, और उसको सूर्य की परिक्रमा करने में ८४ वर्ष लगते हैं। सौर परिवार में कोई ऐसा ग्रह नहीं है, जो सूर्य से उतने ही अन्तर पर हो,

जितने अन्तर पर लुब्धक से उसका साथी है। किन्तु कैपलर के तीसरे नियम से यह बात सुगमता से मालूम की जा सकती है, कि यदि कोई ऐसा ग्रह होता तो उसे सूर्य के गिर्द घूमने में ६६ वर्ष लगते। किन्तु लुब्धक का साथी उसके गिर्द केवल ५२ वर्षों में घूम जाता है; इससे स्पष्ट है, कि लुब्धक सूर्य की अपेक्षा अधिक आकर्षण शक्ति रखता है; और इसीलिये उसका द्रव्यमान भी अधिक है। आकर्षण शक्ति का प्रभाव परिक्रमण कालों के वर्गों के विलोम मानानुसार होता है। अतः—

$$\frac{\text{लुब्धक की आकर्षण शक्ति का प्रभाव}}{\text{सूर्य की आकर्षण शक्ति का प्रभाव}} = \frac{(९९)^२}{(५२)^२}$$

$$= \frac{९८०१}{२७०४} = ३.६$$

चूँकि दोनों अवस्थाओं में दूरियां बराबर मान ली गयी हैं इसलिये आकर्षण शक्ति की मात्रा द्रव्यमानानुसार होगी। अतः लुब्धक का (उसके साथी सहित) द्रव्यमान या भार या गुरुत्व सूर्य के द्रव्यमान या गुरुत्व से लगभग ३½ गुना है

इसी प्रकार से अल्फा सेन्टोरी का गुरुत्व सूर्य के गुरुत्व से १.८ गुना और 'ग' काश्यप (Gama Cassiofreiae) का गुरुत्व ८-३ गुना अधिक मालूम किया गया है।

इस प्रकार से जो गुरुत्व मालूम होता है, वह जोड़े के दोनों तारों के गुरुत्वों का योग होता है। अब यदि अलग-अलग गुरुत्व मालूम करना हो, तो उन दोनों तारों की अलग अलग वास्तविक कक्षाएं मालूम करनी पड़ेंगी। छोटे तारे की कक्षा बड़ी होगी और बड़े की छोटी। और यह कक्षाएं तारों के गुरुत्वों के विलोममानानुसार होंगी। इससे तारों के गुरुत्वों में अनुपात मालूम हो जायगी, जिससे दोनों तारों का अलग अलग गुरुत्व मालूम हो सकता है। अनुमान किया गया है, कि लुब्धक का साथी लगभग सूर्य के बराबर भारी है और लुब्धक स्वयं अपने साथी से लगभग २½ गुना अधिक भारी है।

पारिवर्तनशील तारे

[ले०—डा० हरिकेशव सेन, प्रयाग विश्वविद्यालय]

नव और अभिनव तारे

(Novae and Supernovae)

परिवर्तनशील तारों में सब से विचित्र होते हैं नवतारे परंतु यह नामकरण मेरी समझ में ठीक नहीं है। 'नव' से साधारणतया यह समझा जा सकता है कि उनका उद्भव हाल ही में हुआ है, और वे अन्य तारों के समान अब आकाश में चमकेंगे। परंतु यह बात ठीक नहीं है। वह एकाएक अत्यधिक उज्ज्वल हो कर धीरे धीरे अनुज्ज्वल हो जाते हैं। उनका उज्ज्वल होना, तो कई सप्ताहों का ही काम है, परन्तु उनके अदृश्य होने में कई साल लग जाते हैं। विश्व के विकास-क्रम के दृष्टिकोण (Cosmic time scale) से यह खेल फुलझरी के जलने का सा है। इसलिये इन तारों का नाम आकस्मिक या सामयिक (temporary) होता तो अच्छा होता 'नव' को लैटिन भाषा में 'नोवा' (Nova) कहते हैं और यही नाम अब प्रचलित हो गया है। किसी नवतारे का नामकरण, यह जिस तारा समूह में स्थित हो और जिस वर्ष पहले पहल देखा गया हो, उसी के अनुसार होता है। जैसे कि हरक्यूलिस (Hercules) मंडल में दिसम्बर, सन् १९३४ में जो नवतारा आविष्कृत हुआ है उसका नाम नोवा हरक्यूलिस १९३४ (Nova Hercules 1934) है।

नवतारे अचानक दीख पड़ते हैं और अधिकतर आकाशगंगा में या उसके पास कुछ तारे इतने उज्ज्वल होते हैं कि आसपास के आकाश का रूप ही बदल देते हैं। जितने खाली आँखों से दीखते हैं उनमें से अधिकांश 'स्वान्तः सुखाय' (amateur) ज्योतिर्विदों से आविष्कृत हुये, पेशेवरों (professionals) से नहीं। इसका कारण यह है कि 'स्वान्तः सुखाय' ज्योतिर्विदों की संख्या अधिक है और वह आकाश का अधिक अंश देखते हैं। पेशेवर ज्योतिर्विद अपने कामों से इतनी फुर्सत नहीं पाते कि

आकाश का पूर्ण अवलोकन करें। उनके काम में तारक-मंडलियों के पूर्ण ज्ञान की आवश्यकता भी नहीं। 'स्वान्तः सुखाय' ज्योतिर्विद् आकाश के अवलोकन में सर्वदा रत रहने के कारण तारकमंडलियों से अधिक परिचित रहते हैं और किसी भी अनोखी वस्तु को जल्दी ही ताड़ लेते हैं।

इस पुस्तक के पाठक भी यदि इन 'स्वान्तः सुखाय' ज्योतिर्विदों के संप्रदाय में न हों तो हम उनकी सुविधा के लिये निम्नलिखित प्रकार का वर्णन देते हैं। यदि कोई वस्तु तारे सी दीखे जिसके विषय में संदेह हो कि यह नवतारा हो सकता है तो ऐसा करना चाहिये :

(१) आकाश के जिस अंश में तारा देख पड़े उस अंश को एक तारा-मानचित्र (Star chart) में देखना चाहिये। इससे मालूम होगा कि यह तारा नया है या इसके पहले आविष्कृत हो चुका है।

(२) इस बात का निश्चय करना चाहिये कि तारे सी वस्तु वास्तव में कोई ग्रह तो नहीं है। ग्रह अनुभवी ज्योतिर्विदों को भी धोखा दे देते हैं। जो बड़े-बड़े पाँच ग्रह हैं, यथा बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति और शनि इनके अवस्थानों को देख लेना चाहिये। यह ग्रह राशिचक्र से अधिक दूर नहीं रह सकते। इनमें सबसे उज्ज्वल शुक्र ग्रह सूर्य से ४८° से अधिक दूर नहीं रह सकता और बुध ग्रह सूर्य से २८° से अधिक दूर नहीं रह सकता। ग्रह आकाश में शीघ्र चलते तो हैं, परंतु एक रात से दूसरी रात तक बहुत दूर नहीं जा सकते। इन बातों से ग्रह की पहचान आसानी से हो सकती है परन्तु यदि थोड़ा भी संदेह हो तो किसी पंचांग से उनका स्थान जान लेना चाहिये।

(३) यदि इस बात का निश्चय हो जाय कि तारा पहले आविष्कृत नहीं हुआ है और ग्रह भी नहीं है तो सबसे निकट के वेधशाला को तुरंत ख़बर देनी चाहिये। यह अति आवश्यक है कि नये तारों का अवलोकन जितनी जल्दी हो सके शुरू हो जावे। एक रात का भी नागा होना ठीक नहीं हैं।

इस शताब्दी के प्रारंभ से ५० नये तारे आविष्कृत हुए हैं, जिनमें से लगभग बारह तारे निकलते ही देख लिये जाने और यथेष्ट उज्ज्वल होने के कारण अच्छी तरह जांचे गये हैं। इनमें से दो अपेक्षाकृत उज्ज्वल नवतारे सूर्यग्रहण के समय उदित हुए हैं जिससे प्रतीत होता है कि सूर्यग्रहण से उनका कुछ संबंध है। नोवा ऐक्विली १९१८ (Nova Aquilae 1918) सूर्यग्रहण के बाद दूसरी रात को और नोवा लसर्टी १९३६ (Nova Lacertae 1936) सूर्यग्रहण से पहले रात को दीख पड़े हैं। नवतारों और सूर्यग्रहण में तो कोई संबंध हो ही नहीं सकता। इनका एक साथ दीखना एक विचित्र संयोग समझना चाहिये, जो और भी विस्मयजनक मालूम होगा यदि हम सोचें कि तारों का आकस्मिक उज्ज्वल होना हमारे देखने से दो सहस्र वर्ष पहले हुआ है।

ऐसा जान पड़ता है कि एकाएक उज्ज्वल हो जाने के बाद, अधिकांश नवतारे समझ जाते हैं कि वह अपनी आय से कहीं अधिक व्यय करने लगे हैं, और तभी खर्च घटाना शुरू कर देते हैं। उनकी उज्ज्वलता पहले जल्दी घटने लगती है, फिर थोड़ी धीरे-धीरे, कभी-कभी बीच-बीच में घटती बढ़ती भी है। कुछ महीनों के बाद उज्ज्वलता बहुत धीरे-धीरे घटने लगती है और तारे को उसकी प्रथमावस्था प्राप्त होने में १५ साल भी लग सकते हैं।

यह प्रश्न हमारे मन में स्वतः उत्पन्न होता है कि यह अनोखे आगन्तुक कहाँ से आ गये और इनकी अवस्था पहले किस प्रकार की थी? कार्य-कारण का संबंध निकालने के लिये दृश्य (phenomena) में प्रवाह सातत्य (continuity) का निश्चय करना चाहिये। विज्ञान का यह एक विशेष उद्देश्य है। वस्तुतः वैज्ञानिक प्रकारों की भित्ति ही यह है कि प्रवाह (continuity) की सत्ता है। लैटिन भाषा में एक कहावत है, "नैचुरा नान फैसिट साल्टम," (Natura non fecit Saltum) जिसके अर्थ हैं कि प्रकृति कूदती नहीं अर्थात् प्रकृति में प्रवाह भंग नहीं हो सकता। क्या एक नवतारे का अकस्मात् जल उठना इस लैटिन कहावत को मिथ्या सिद्ध कर देता है?

जब एक आकस्मिक और अनजान प्रकाश का आविर्भाव हो तो वैज्ञानिक रीति से इन प्रश्नों का समाधान होना चाहिये : (क) प्रकाश की प्रकृति क्या है अर्थात् यह किस किस्म (quality) का है और इसकी तीव्रता (intensity) कितनी है? (ख) प्रकाश की अवस्था

प्राप्त करने से पहले इसकी सामर्थ्य (energy) किस अवस्था में थी ? (ग) किस कारण वह सामर्थ्य प्रकाश में परिणत होकर प्रकाश अकस्मात् निकल पड़ा ? इन प्रश्नों का उत्तर देने की चेष्टा जिस क्रम में वास्तव में हुई है उसी क्रम में हम उनका उल्लेख करेंगे।

जब कोई नवतारा दीखता है तो पहले उसका एक फोटोग्राफ लेकर आकाश में उसकी स्थिति निर्णय की जाती है। उसके बाद पुराने फोटोग्राफों से यह मालूम किया जाता है कि उसी जगह पर कोई दूसरी वस्तु पहले थी या नहीं। इस तरह से मालूम किया गया है कि नवतारे पहली अवस्था में अत्यंत कम उज्ज्वल तारे थे जो केवल दूरदर्शक ही के द्वारा दीख सकते थे और बहुत ही साधारण थे। इससे स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि नवतारे की प्रथमावस्था सूर्य जैसा तारा है। इसलिये हमारे सूर्य का भी एकाएक नवतारा बन जाना कोई आश्चर्य नहीं है। यदि ऐसा हो तो पृथ्वी की क्या अवस्था होगी? सूर्य फूल कर हमें जलती हुई गैसों से जला देगा और हमारी पृथ्वी भी गैस बन जावेगी। ऐसा हो भी सकता है, और नहीं भी हो सकता। सीबरी (Seabury) के मतानुसार ऐसा दुरवस्था की संभावना इतनी अल्प है कि इससे भयभीत होने का कोई कारण नहीं।

एक बहुत कम उज्ज्वल तारा, जो किसी की भी दृष्टि आकर्षण करने में समर्थ न था, अकस्मात ८०,००० गुना अधिक उज्ज्वल हो कर नवतारा बन जाता है और तारकमंडली में अग्रणी हो जाता है। थोड़ी देर के लिये नवतारा मंडली के करोड़ों तारों में सब से अधिक उज्ज्वल हो जाता है। बड़े-बड़े तारों में केवल थोड़े ही तारे जैसे कि अगस्त्य (Canopus), डेनेब (Deneb), या रीगेल (Rigel) उसकी समकक्षता कर सकते हैं। पृथ्वी से अगर हम देखें तो नवतारा हमें उज्ज्वल दीख सकता है, और न भी दीख सकता है—यह उसकी दूरी पर निर्भर है। यदि यह बहुत दूर हो, तो हमारे बहुत पास स्थित कम उज्ज्वल तारों से अधिक उज्ज्वल नहीं दीखेगा, जैसे घर में स्थित बिजली की रोशनी मीलों दूर शक्तिशाली विद्युत बत्ती (Search-light) से अधिक उज्ज्वल मालूम होगी।

यदि हम अपनी तारकमंडली से बाहर बहुत दूर चले जावें, तो वहाँ से इस तारकमंडली की सब वस्तुएँ लगभग एक ही फासले पर रहेंगी और तब तारों की उज्ज्वलता हमें ठीक-ठीक दीखेगी। जो तारा सचमुच उज्ज्वल है वह दूसरों से उज्ज्वल ही दीखेगा और आसानी से दृष्टि आकर्षण करेगा। इसमें यदि किसी नवतारे का आविर्भाव हो तो उसका आविष्कार करना अपनी तारकमंडली में रह कर नवतारा आविष्कार करने से अधिक सहज है, जैसे कि घने जंगल में पास की झाड़ियाँ दूर के पेड़ों को देखने नहीं देतीं। अब पाठक को सूझेगा किसी प्रकार से हम अपनी तारकमंडली से बाहर चल पड़ें। ऐसा करना संभव नहीं, क्योंकि यदि ऐसे किसी यान का निर्माण भी करें तो किनारे तक पहुँचने के बहुत पहले ही हम मर जावेंगे, जाने में इतनी देर लगेगी। लेकिन एक आसान तरीका हमारे हाथ है। वह यह है कि दूसरी तारकमंडलियों का निरीक्षण करना। ऐसा किया गया है और हमारी आशा भी पूर्ण हुई है। एंड्रोमेडा नीहारिका (Andromeda Nebula) अपेक्षाकृत हमारे निकट है और अच्छी तरह देखी गयी है। इस "विश्व-द्वीप" (island-universe) में ८० या ९० नवतारे पाये गये हैं और हबल (Hubble) की गणना के अनुसार यदि इसका लगातार अवलोकन किया जाय तो साल में ३० नवतारे दीखेंगे। हमारी तारकमंडली में भी नवतारों की संख्या साल में ऐसी ही है।

तारे से जो गर्मी और रोशनी आती है उसकी तुलना हम एक टंकी के पानी के प्रवाह से कर सकते हैं। एक साधारण तारे की ज्योति की तुलना हम एक परिमित आयतन वाले नल के जल के स्थिर प्रवाह से कर सकते हैं। परिवर्तनशील नक्षत्र के प्रवाह की तुलना जल के उस आवर्त्तशील प्रवाह से की जा सकती है जब कि जल की सतह आवर्त्त से उठती और गिरती हो। नवतारों में मानों बाँध टूट गया—जल उच्छ्वसित प्रवाह से चारों तरफ फैलने लगा। प्रकाश में इस प्रलयनाटक की छाया पड़ती है और 'रश्मिदर्शक' के द्वारा इसका अध्ययन होता है। तारे के रश्मिचित्र से मालूम होता है कि तारे के केन्द्र से जलती हुई गैस बड़ी तेजी से बाहर निकलती है।

नवतारे के रश्मिचित्र में यह विशेष बात है कि उज्ज्वल रेखायें अपनी पुरानी जगह के दोनों तरफ समान फैल जाती हैं, परन्तु काली रेखायें रश्मिचित्र के बैंगनी सिरे की तरफ हट जाती हैं। हम जानते हैं कि कोई प्रकाशमान वस्तु जब हमारी तरफ आती है तो उसके रश्मिचित्र की रेखायें बैंगनी सिरे की तरफ हट जाती हैं, और जब वस्तु हमसे दूर जाती है तब रेखायें लाल सिरे की तरफ हट जाती हैं। हाम (Halm) ने ही पहले नवतारों की विचित्र रेखाओं के कारण निर्देश किये। उज्ज्वल रेखायें दोनों तरफ इसलिये हटती हैं कि प्रकाश गैस की एक परत (shell) से आता है जो कि तारे के चारों ओर फैलता रहता है, सामनेवाला हिस्सा हमारी तरफ आता है और पिछला हिस्सा हमसे दूर जाता है। परन्तु काली रेखायें तारे और हमारे बीच में गैस से उत्पन्न होती हैं जो हमारी ओर चलती है; इसलिये यह रेखायें बैंगनी सिरे की ओर हट जाती हैं।

रेखाओं के हटने और कभी कभी तारे के आलोक चित्र से यह प्रतीत होता है कि सब नवतारों में ही गैस ऊपर की तरफ बड़ी तेजी से चलती है। तारे की बाहरी परतें किसी तरह, संभवतः प्रकाश के दबाव से, तारे के गुरुत्वाकर्षण से छूट कर टूट पड़ी हैं। इस मत का समर्थन प्रायः सभी ज्योतिर्विद् करते हैं, यद्यपि नवतारों के विषय में हमारा ज्ञान अभी पूर्ण नहीं है।

अब प्रश्न यह उठता है कि तारे की सतह क्यों टूट पड़ती है? इस विषय में दो मत हैं—एक तो किसी कारण तारे का किसी और वस्तु से संघर्षण, और दूसरा किसी आभ्यंतरिक कारण से तारे का टूट जाना। अधिकतर ज्योतिर्विद् द्वितीय मत के पक्षपाती हैं। आकाश में शून्य की तुलना में तारों का आयतन इतना छोटा है कि तारों का संघर्षण बहुत ही अभावनीय घटना है। इससे साल में इतने नवतारे (करीब ३० के) नहीं पैदा हो सकते। यह भी कहा गया है कि तारा नीहारिका (nebula) में डूबते समय या ग्रह जैसी छोटी वस्तु के संघर्षण से जल उठता है, परन्तु ऐसा भी होना संभव नहीं मालूम होता। एक संघर्षण की अवस्था दूसरे संघर्षण की ऐसी नहीं होगी, तो दोनों क्षेत्र में फल कैसे बराबर होते हैं?

यह अधिक संभव है कि तारे की सतह के अत्यन्त नीचे किसी विशेष (critical) अवस्था के होने के कारण बहुत सी उप-परमाणविक (sub-atomic) शक्ति निकल पड़ती है। तारे के एकाएक फूल उठने से ऊपरी सतहें एक साथ मिल कर ठोस हो जाती हैं और यह ठोस वस्तु बाहर तेजी से दौड़ती है। आभ्यंतरिक शक्ति के नाश होने के साथ ही वह ठोस वस्तु फिर गैस बन जाती है जो कि बाहर की तरफ अपनी गति को स्थिर रखती है। कई ऐसे विस्फोट हो सकते हैं और कई परतें वर्षों बाहर की ओर चलती रह सकती हैं।

ज्योतिर्विद् ऐसा ही नवतारों का चित्र खींचते हैं, जो कि प्रकृति के रंगमंच में खंडप्रलय का अभिनय करते हैं। यह चित्र संपूर्ण नहीं है और स्थान स्थान पर अस्पष्ट भी है; परंतु नवतारा-रसिक सभी लोग स्वीकार करेंगे कि चित्र की सामान्य रूपरेखा बिलकुल गलत नहीं हो सकती।

अब हम "अभिनव" तारों (Super-novae) के विषय में थोड़ा सा वर्णन करेंगे। कुण्डलीकृत नीहारिकाओं (spiral nebulae) में जो नवतारे मिले हैं उनमें से कुछ तारे दूसरों से कहीं अधिक उज्ज्वल हैं और एक विशेष वर्ग के प्रतीत होते हैं। इनको अभिनव तारे (super-novae) कहते हैं और यह अत्यधिक उज्ज्वल होते हैं। इनका अध्ययन हाल में बाडे (Baade) और ज़्वीकी (Zwicky) ने किया है। अभिनव तारे नवतारों से ६०० गुना अधिक उज्ज्वल होते हैं। एक नवतारा तो तारकमंडली के अपेक्षाकृत अधिक उज्ज्वल तारों के समान है, पर एक अभिनव तारा पूरी तारकमंडली के समान उज्ज्वल है। यदि अभिनव तारे वास्तव में तारे हों तो वह सारे विश्व में सब से उज्ज्वल वस्तुओं में गिने जायँगे। इनके प्रकाशवक्र और रश्मिचित्र नवतारों के ऐसे ही हैं। अभिनव तारे बहुत कम दीखते हैं। बाडे और ज़्वीकी के हिसाब से तारकमंडली में नवतारे साल में ३० या इससे अधिक दीखते हैं, पर एक अभिनव तारे की सृष्टि कई शताब्दियों में एक बार होती है। सन् १८८५

में एंड्रोमिडा नीहारिका (Andromida Nebula) में एक अभिनव तारा देखा गया था। हाल में, जनवरी सन् १९३६ में एक अपेक्षाकृत उज्ज्वल नवतारा एन० जी० सी० ४२७३ (N. G. C 4273) नामक क्षुद्र नीहारिका में देख पड़ा था और अब तक करीब १५ देखे गये हैं। अगस्त, सन् १९३७ में एन० जी० सी० इनडेक्स कैटेलाग ४१८२ (N. G. C. Index Catalogue 4182) नामक एक कुण्डलीकृत, अस्पष्ट पर यथेष्ट बड़ी, नीहारिका में एक बहुत ही उज्ज्वल अभिनव तारा देखा गया है। ज्योतिर्विद इसकी उज्ज्वलता का जो हिसाब लगाते हैं वह यदि ठीक हो तो अब तक देखे हुये सब अभिनव तारों से वह अधिक उज्ज्वल और वस्तुतः विश्व में किसी भी अकेली वस्तु से अधिक उज्ज्वल होगा। यदि इसकी दूरी का हिसाब ठीक हो तो यह नवतारे से पाँच हजार गुना अधिक उज्ज्वल था, और हमारे सूर्य से करोड़ों गुना बड़ा!

हमारी तारकमंडली में हाल में कोई अभिनव तारा नहीं देखा गया है, यद्यपि विख्यात ज्योतिर्विद टाइको ब्रेही (Tycho Brahe) ने सन् १५७२ में जो बड़ा नवतारा देखा था, वह एक अभिनव तारा भी हो सकता है। यह तारा शुक्रग्रह (Venus) से अधिक उज्ज्वल था और दिन में भी आसानी से दीखता था। परन्तु जब तक इस बात का निश्चय न हो कि यह तारा बहुत ही दूर स्थित है, हम इसे अभिनव तारा नहीं कह सकते। इस बात का हमें कुछ भी ज्ञान नहीं। ज़्वीकी (Zwicky) के मतानुसार विश्वकिरणों से अभिनव तारों की उत्पत्ति है। इस बात पर अभी ठीक-ठीक कुछ मालूम नहीं हुआ है। गैमो (Gamow) और चंद्रशेखर ने भी अभिनव तारों की उत्पत्ति के विषय में मत दिये हैं। इस लेख में उन मतों का उल्लेख करना संभव नही है।

सौर परिवार की जन्म कथा

(Origin of the Solar System)

हमारे सौरपरिवार की सृष्टि कैसे हुई, इस विषय में ज्योतिर्विदों के क्या विचार हैं इसका थोड़ा सा उल्लेख करके हम इस माला लेख को समाप्त करेंगे। सौरपरिवार से परिवर्तनशील नक्षत्र का क्या संबंध हो सकता है, यह प्रश्न स्वतः पाठक के मन में उठेगा। इसका उत्तर हम जल्दी ही देंगे जब हम सौरपरिवार के जन्मविषयक प्रोफेसर ए० सी० बनर्जी का अतीव हृदयग्राही मत का वर्णन करेंगे। सौरपरिवार के जन्म के विषय में हम पृथ्वी निवासियों का कौतूहल में होना कुछ भी आश्चर्यजनक नहीं है। मनुष्य अपने ज्ञान के विकास के साथ ही सूर्य, नक्षत्र और आकाश के दूसरे ज्योतिष्कों के विषय में सोचता रहा। यह प्रश्न निश्चय ही बहुत पुराना है कि हमारी पृथ्वी कैसे पैदा हुई। परन्तु ज्योतिर्विद की दृष्टि से यह प्रश्न और भी कौतूहलजनक है। वह इसलिये कि ग्रहसमष्टि (planetary system) में अपूर्व सृष्टिकौशल दिखाई पड़ता है। मानों किसी अद्भुत यंत्र-विज्ञानवेत्ता ने उनका निर्माण किया है। दसों ग्रह (नये आविष्कृत प्लुटो ग्रह को लेकर) सूर्य के चारों ओर एक ही दिशा में और लगभग एक ही तल (plane) में घूमते हैं। इस तल को ज्योतिर्विद राशिचक्र कहते हैं। सूर्य तथा अन्य ग्रह अपने अपने अक्ष पर भी उसी दिशा में घूमते हैं। यह बात उपग्रहों में भी पाई जाती है। बिना किसी कारण के केवल संयोग से ऐसा नहीं हो सकता। जीन्स ने गणित द्वारा दिखलाया है कि ऐसी बात के आकस्मिक होने की संभावना इतनी अल्प है कि इसको हम एक प्रकार असंभव ही समझ सकते हैं। तो प्रश्न उठता है कि ऐसा होने का क्या कारण हो सकता है? बड़े आश्चर्य की बात है कि मनुष्य ने अपने जीवन में अनेकानेक कठिन समस्याओं का समाधान किया है, पर जिस पृथ्वी पर वह खड़ा है वह पृथ्वी कहाँ से आई इस प्रश्न का उत्तर अभी तक उसके पास नहीं।

प्रश्न तो मनुष्य के मन में बहुत पहले ही उदय हुआ होगा, पर उसके उत्तर देने की ठीक-ठीक चेष्टा बहुत हाल ही में हुई है। प्रथम उल्लेखयोग्य मत कांट और लाप्लास का है। पहले सज्जन दार्शनिक और दूसरे ज्योतिर्विद तथा गणितज्ञ थे। इस मत के अनुसार सूर्य आरंभ में एक प्रकांड गैस भरी हुई नीहारिका (nebula) के रूप में था। यह नीहारिका धीरे-धीरे ठंढी होने के कारण सिकुड़ती गई और इसके घूमने का वेग बढ़ता गया। अंत में यह इतनी

तेज़ी से घूमने लगी कि टूट गई और इसके टूटे हुये टुकड़ों से ग्रहों की उत्पत्ति हुई। सब ग्रह उसी तरफ घूमने लगे जिस तरफ नीहारिका पहले घूमती थी। ग्रहसमष्टि की इस तरह उत्पत्ति अत्यन्त स्वाभाविक तो मालूम होती है, परंतु इस मत में एक बड़ा भारी दोष है। गणितज्ञ घूमने की मात्रा के विषय में एक शब्द व्यवहार करते हैं जिसको हम घूर्ण झोंक (angular momentum) कहेंगे। एक बड़ी आश्चर्यजनक बात यह है कि दशों ग्रहों से सूर्य कहीं अधिक भारी है पर सूर्य की अपेक्षा ग्रहों में घूर्ण झोंक बहुत अधिक है। यह क्यों है? इस प्रश्न का लाप्लास-कांट-मत (Laplace-kant hypothesis) कोई समाधान नहीं कर सकता। अतः ज्योतिर्विद् ग्रहसमष्टि के जन्म का कोई दूसरा कारण खोजने लगे।

दूसरा उल्लेखयोग्य मत जीन्स और जेफ्रेज़ का है, जिसे हम घर्षण संबंधी मत (tidal encounter theory) कह सकते हैं। इसकी मुख्य बात यह है कि सूर्य से किसी तारे का आकस्मिक घर्षण होने के कारण सूर्य के पिंड का थोड़ा सा अंश टूट पड़ा। ठंढा होने पर इसी से ग्रहों की सृष्टि हुई। पहले यह प्रतीत हुआ था कि ग्रहों की घूर्णझोंक सूर्य से संघर्षण करनेवाले तारे से प्राप्त हुई होगी। परंतु प्रोफेसर रसेल ने गणित द्वारा सिद्ध किया कि ऐसा नहीं हो सकता। ग्रहों की घूर्णझोंक तारे से जितना मिल सकती है उससे दशगुना अधिक है। इसके अतिरिक्त जीन्स-जेफ्रेज़ का मत उपग्रहों की उत्पत्ति का ठीक ठीक कारण नहीं निर्दोश कर सकता। इन कारणों से यह मत अधिक दिन नहीं चला।

रसेल के सुझाव से लिटलटन ने यह मत दिया कि सूर्य एक दोहरा तारा था (binary star) और इसके सहचर तारे का संघर्षण एक और तारे से हुआ। सहचर टूट गया और उसके टूटे हुये अंश का थोड़ा सा भाग सूर्य ने पाया, जिससे ग्रहों की उत्पत्ति हुई। लिटलटन ने दिखलाया है कि संघर्षण करने वाला तारा सूर्य के सहचर को लेकर अदृश्य हो गया और ग्रहों को पर्याप्त घूर्ण झोंक मिल गयी। इसी लिए नाक्स शा ने इस मत का नाम "अभिहरण वाद" ("enticement theory") रखा है। लिटलटन ने उपग्रहों की उत्पत्ति का भी कारण निर्देश किया है।

लायटन और हिल (Luyten, Hill) ने उपर्युक्त मत के विरुद्ध दो भारी आपत्तियाँ की हैं। ग्रहों की उत्पत्ति के लिये बहुत अधिक शक्ति (energy) की आवश्यकता थी इसलिये संघर्षण करने वाला तारा भारी होना चाहिये और उसकी गति भी अधिक होनी चाहिये। भारी होने के कारण वह तारा सूर्य को भी आकर्षित कर लेता अथवा सूर्य से उसका संघर्षण हो जाता। आगंतुक तारे की गति अधिक होने के कारण जिस टूटे हुए अंश से ग्रहों की उत्पत्ति होती उसकी भी गति इतनी अधिक हो जाती कि उसे सूर्य की आकर्षण शक्ति नहीं रोक सकती। दो लड़नेवाले तारे भी टूटे हुए भाग का अधिकांश ले लेते और केवल ६ प्रतिशत (6°/₀) भाग ग्रहों की उत्पत्ति के लिये रह जाता। हाल ही में प्रोफेसर ए० सी० बनर्जी के सुझाव से उनके शिष्य भटनागर ने गणित द्वारा सिद्ध किया है कि सूर्य, उसके सहचर तारे, और आगंतुक तारे, इन तीनों में संघर्षण होता और इस लिये लिटलटन के मतानुसार ग्रहों की उत्पत्ति नहीं हो सकती। स्पाइटजर ने हाल में दिखलाया है कि तारों के संघर्षण से यदि थोड़ा अंश टूट भी जाय तो भी वह अंश ठंढा होने के पहले आकाश में फैल जायगा, इसलिये ग्रहों की उत्पत्ति नहीं हो सकती।

अब हम प्रोफेसर बनर्जी के सीफाइड-संबंधी मत का वर्णन करेंगे जिससे उन्होंने दिखलाया है कि सीफाइड (Cepheid) नामक परिवर्तनशील नक्षत्र से ग्रहों की उत्पत्ति कैसे संभव है। सीफाइड के स्पंदन-संबंधी मत का उल्लेख हम कर चुके हैं। यह भी कह चुके हैं कि एडिंगटन ने स्पंदन की मात्रा के वर्ग का त्याग किया है, जो कि अनुचित है, क्योंकि स्पंदन की मात्रा तारे के अर्धव्यास का १।१२ भाग भी हो सकती है। हाल की एक अतीव हृदयग्राही गवेषणा में बनर्जी ने गणित द्वारा सिद्ध किया है कि स्पंदन की मात्रा के वर्ग को हिसाब में लेने से स्पंदन स्थिर नहीं रह सकता। इस आधार पर बनर्जी ने ग्रहमंडल की उत्पत्ति का एक बिलकुल नया मत दिया है जिसे सीफाइड-संबंधी मत (Cepheid theory) कहते हैं।

बनर्जी के मत में मान लिया गया है कि सूर्य पहले एक सीफाइड परिवर्तनशील नक्षत्र का अंश था। इसकी

तोल सूर्य की तोल से ६ गुना अधिक मान ली गयी है, जो डेल्टा सीफाई (δ Cephei) नामक एक सामान्य सीफाइड तारे के भार के समान है। लगभग सीफाइड ही की तोल के समान एक दूसरे तारे के उसके पास से गुज़रने की वजह से सीफाइड के स्पंदन की मात्रा उस तारे की आकर्षण शक्ति से बढ़ गई। दूसरे तारे का सीफाइड से लड़ना ज़रूरी नहीं है, न तो यही ज़रूरी है कि वह सीफाइड के बहुत पास होता हुआ गुज़रे। केवल इतना पास होते हुए गुज़रना पर्याप्त है कि सीफाइड के स्पंदन की मात्रा बढ़ जावे और इस कारण वह टूट जावे, जैसे कि बनर्जी ने गणित द्वारा सिद्ध किया है। सूर्य के समान एक टुकड़ा सीफाइड तारे से निकल आवेगा और दोनों तारों के बीच के टूटे हुये अंशों से ग्रहों की उत्पत्ति होगी। गणित द्वारा बनर्जी ने दिखलाया है कि आगंतुक तारे से यथेष्ट घूर्ण झोंक (angular momentum) ग्रहों को मिलेगी। यह भी सिद्ध किया गया है कि सौर परिवार को यथेष्ट शक्ति मिलेगी जिससे कि वह सीफाइड तारे से अलग हो जावेगा, अर्थात् उसकी आकर्षण शक्ति के बाहर चला जायेगा।

ग्रहमंडल (planetary system) के जन्मविषयक बनर्जी के इस सीफाइड मत की दो विशेषतायें हैं—इसने बहुत ही स्वाभाविक रीति से शक्ति (energy) और घूर्ण झोंक (angular momentum) विषयक समस्याओं का समाधान किया है, जिनकी पूर्त्ति पुराने मत नहीं कर सके हैं। इसकी एक और भी विशेषता यह है कि और मतों की तुलना में इस मत में कल्पित बातें बहुत कम हैं। सीफाइड तारा भी एक ग्रहमंडल प्राप्त करेगा जिसमें हमारे ग्रहमण्डल के सिवा और भी ग्रहमण्डल होने की संभावना इस मत के अनुसार अधिक है। इस बात पर आगे हम और भी कुछ कहेंगे।

यह हम पहले कह चुके हैं कि लेखक ने दिखलाया है कि सीफाइड-स्पंदनशील नक्षत्र का घनत्व एकरस (homogeneous) होना चाहिये। और ज्योतिर्विदों ने भी जैसे कोपाल, एडिंगटन और चंद्रशेखर ने ऐसा ही मत प्रकट किया है। दोहरे तारों (binary star) का जन्म-रहस्य अभी ज्योतिर्विद् पूर्ण रीति से उद्घाटन नहीं कर सके हैं। लेखक ने इस विषय में यह मत दिया है कि एक एकरसघन (Homogeneous) सीफाइड तारा प्रकाश फैलाने के कारण सिकुड़ने लगा और उत्तरोत्तर तेज घूमने लगा। घूमने का वेग बढ़ने से वह एकरसघन नहीं रह सका इसलिये उसका स्पंदन स्थिर नहीं रहा और वह टूट कर दोहरा तारा (binary star) बन गया। यह दोहरे तारे भी अपनी उपर्युक्त प्रकार से उत्पत्ति के के कारण एकरसघन होंगे। कोपाल ने दिखलाया है कि दोहरे तारे जिनका जन्म हाल में हुआ है लगभग एकरसघन हैं और समय के साथ साथ उनका केन्द्रीय घनत्व (central condensation) बढ़ता है। कुछ दोहरे तारे इतने पास पास स्थित हैं कि केवल रश्मिचित्र दर्शक के द्वारा ही यह मालूम हो सकते हैं। ज्योतिर्विद् इनको 'स्पेक्ट्रास्कोपिक बाइनरीज़' (spectroscopie binaries) कहते हैं। लेखक के मत के अनुसार सीफाइड दोहरे तारे के बीच में 'स्पेक्ट्रास्कोपिक बाइनरीज़' का स्थान होगा। जीन्स का भी यही मत है।

कुण्डलीकृत नीहारिकाओं (spiral nebulae) का भी जन्मरहस्य अभी ज्योतिर्विद् नहीं उद्घाटित कर सके हैं। इस विषय में लेखक ने एक मत दिया है। वह यह है कि नीहारिका पहले एक बहुत पतले वायुमंडल से परिवृत एक एकरसघन स्पंदनशील नक्षत्र थी। इसको अँग्रेज़ी भाषा में "जेनरेलाइज़्ड रोशेज़ माडेल" ("Generalised Roche's model") कहते हैं। इसके स्पंदन की गवेषणा लेखक ने की है और यह दिखलाया है कि इसका वायुमंडल इतना गंभीर होगा कि वह जब टूटेगी तो जीन्स के मतानुसार ताल (lens) के समान चपटी हो जावेगी और इसके विषुवत-तल से पदार्थ निकल आवेंगे। बनर्जी ने इस बात की गवेषणा की है कि किस अवस्था में यह पदार्थ कुण्डलीकृत पथ में भ्रमण करेंगे और उनके छात्र ब्रजबासी लाल ने यह दिखलाया है कि वास्तव में यह पथ कुण्डलीकृत होंगे। इस प्रकार कुण्डलीकृत नीहारिकाओं का जन्म होना संभव है। कुण्डलीकृत नीहारिकाओं के जन्म के विषय में बनर्जी ने जो कहा है वह उल्लेखनीय है, "जब तक हम तारकमंडलियों (galaxies) की बनावट (constitution) के विषय में विशेष ज्ञान नहीं प्राप्त करते हैं, तब तक कुण्डलीकृत

नीहारिकाओं के जन्म का ठीक-ठीक कारण निर्देश करना संभव नहीं है।"

पाठक आश्चर्य में होंगे कि इतने विभिन्न मतों का क्या अर्थ है। क्या सत्य ही ग्रहमंडल का जन्मवृत्तांत इतना रहस्यपूर्ण है कि ज्योतिर्विद अब तक इस विषय में एकमत नहीं हो पा रहे हैं? इस विषय में थोड़ा सा विचार करने पर संभवतः पाठक का संदेह दूर होगा। प्रथमतः ग्रहमंडल के जन्म का ऐसा कोई कारण निर्दिष्ट करना असंभव है जिसके सिवा और कोई कारण नहीं हो सकता। क्योंकि ग्रहों का जन्म अत्यन्त अतीतकाल में हुआ है इसलिये इस विषय में कई मत होना बहुत ही स्वाभाविक है। इनकी प्रथमावस्था की कल्पनायें विभिन्न प्रकार की हो सकती हैं जिससे विभिन्न मतों की सृष्टि होगी। दूसरे इस समस्या का गणित द्वारा सिद्धांत स्थिर करना एक प्रकार असंभव है क्योंकि इसमें कई वस्तुयें परस्पर आकर्षण करती हैं। इस पर केवल 'लगभग' वाला हिसाब (orders of magnitude) करना ही संभव है जिसका आधार विशेष करके दो नियम (laws) हैं जिनके अनुसार शक्ति और घूर्णझोंक की समष्टि में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता (conservation of energy and momentum)। हम देख चुके हैं कि इन नियमों द्वारा विभिन्न मतों का खंडन कैसे हुआ है। सत्य ही वह अत्यन्त विस्मयजनक है।

अब हम एक अत्यन्त कौतूहल वर्धक विषय का वर्णन करके इस अध्याय को और साथ ही साथ पुस्तक को समाप्त करेंगे। यह प्रश्न करना स्वाभाविक है कि इस विशाल विश्व में हमारा ग्रहमंडल एक ही है या और भी ऐसे ग्रहमंडल होंगे। लोग ज्योतिर्विदों से इस प्रश्न के उत्तर की आशा भी रखते हैं। अत्यन्त दुःख की बात है कि अनेक दिनों तक ज्योतिर्विद इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सके। वह इसलिये कि और तारों में यदि ग्रहमंडल हों भी तो वे इतने दूर होंगे कि अब तक के बने हुये सब से शक्तिशाली दूरदर्शक से भी हम उनको नहीं देख सकते। रसेल ने ज्योतिर्विदों की अक्षमता का यह कारण निर्देश किया है। विभिन्न मतों (theories) के द्वारा ही ज्योतिर्विद उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर मालूम कर सकते थे। परन्तु इन मतों में इतनी विभिन्नता है कि इस विषय में कोई सिद्धांत स्थिर करना संभव नहीं था।

जीन्स जेफ्रेज़ और लिटलटन के मतों के अनुसार ग्रहमंडल संसार में बहुत ही विरल होने चाहियें। जीन्स के गणनानुसार ग्रहमंडल की सृष्टि ५०० करोड़ साल में एक बार हो सकती है। इस विश्व की सृष्टि कितने वर्षों के पूर्व हुई है इस विषय में ज्योतिर्विदों में मतभेद दृष्ट होता है। परन्तु अधिकतर उनका मत है कि विश्व का वयस लगभग १,००० करोड़ वर्ष का है। इतने अर्से में जीन्स जेफ्रेज़ मत के अनुसार अधिकाधिक दो ग्रहमंडलों की सृष्टि हमारी तारकमंडली (galastic system) में हो सकती है। लिटलटन के दोहरे तारों के संघर्षण विषयक मतवाद में ग्रहमंडल का जन्म होना एक प्रकार असंभव है।

स्पेंसर जोन्स ने कहा है कि इस विशाल विश्व में तारों की संख्या इतनी अधिक है कि इनमें बहुत से तारे ग्रहमंडल से परिवेष्टित होंगे। बनर्जी का भी यही मत है। हम इनके हाल के सीफाइड-मत (cepheid theory) का वर्णन कर चुके हैं। इस गवेषणा के अंत में बनर्जी कहते हैं, "एक सिद्धांत अनिवार्य है। यदि हमारा मत ठीक हो तो ग्रहमंडल इस विश्व में बहुत से हो सकते हैं।" बनर्जी की यह भविष्यवाणी बिलकुल सत्य निकली है। बहुत ही हाल में (सन् १९४३) और तारों में भी ग्रहमंडल पाये गये हैं। इनको खोजने की विधि बहुत ही आसान है, परंतु इस तरह खोज हो सकती है यह बात पहले किसी के दिमाग़ में नहीं आई थी। नये ग्रहमंडलों के आविष्कर्त्ता दोनों ज्योतिर्विद अमेरिकन हैं।

डा० स्ट्रांड ने ६१ सीगनी (61 Cygni) नामक दोहरे तारे की कक्षा (orbit) में कुछ आवर्त्तशील व्यवधान (periodic deviation) पाये जिसका कारण एक तृतीय वस्तु का सान्निध्य ही हो सकता है जो कि दोहरे तारे के चारों तरफ घूमती होगी। इस तृतीय वस्तु का गुरुत्व बृहस्पति के गुरुत्व से १६ गुना अधिक पाया गया है और इसकी प्रकाशमात्रा (luminosity) बहुत ही कम है। इन दोनों कारणों से हम इसे एक ग्रह समझ सकते हैं और इसका नामकरण ६१ सीगनी सी (61 Cygni C) किया

गया है। साथ ही साथ रायल और होलमबर्ग (Reuyl, Holmberg) ने ७० ओफ्युकाई (70 Ophiuchi) नामक दोहरे तारे में उपर्युक्त ग्रह से भी छोटा एक ग्रह पाया है।

इस प्रकार बनर्जी की भविष्यवाणी सफल हुई है। इस मत की स्वाभाविकता ही इसकी एक विशेषता है। सत्य ही स्पेंसर जोन्स ने और मतों के विषय में कहा है, "विभिन्न मतों में इतनी विशेष बातें मान ली गई हैं कि ग्रहमंडल नास्तिकवाद से अति अल्प ही बच गया है, अर्थात् इसका जन्म होना ही अति आश्चर्य की बात है।"

यह उल्लेखनीय बात है कि दोनों दोहरे तारे जिनमें ग्रह पाये गये हैं सूर्य के बहुत पास ही हैं। इससे बनर्जी के सिद्धांत की पूर्ण परिपुष्टि होती है और दूसरे मतों का खंडन होता है। ग्रहमंडल का जन्मविषयक कोई मत अब सत्य नहीं हो सकता जिससे स्पष्ट यह प्रतीत न हो कि ग्रहमंडल का जन्म एक साधारण व्यापार है और इस विशाल विश्व में बहुत से ग्रहमंडल होने चाहिये।

यहाँ पर हम पाठक की दृष्टि पुनर्वार लेखक के दोहरे तारों के जन्म-विषयक सीफाइड-मत की ओर आकर्षित करेंगे। इस मत का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। इसके अनुसार दोहरे तारों में ग्रहों की सृष्टि होना बहुत ही संभव है। यह उल्लेखनीय है कि सीगनस (Cygnus) और ओफ्युकस (Ophiuchus) दोनों में सीफाइड तारे यथेष्ट पाये जाते हैं।

पाठक को यह जानने का अवश्य कौतूहल होगा कि यदि हमारी पृथ्वी की तरह और भी तारों में ग्रह हों तो इन ग्रहों में हमारे जैसे मनुष्य या किसी प्रकार के जीव होंगे या नहीं? इसके उत्तर में हम राज ज्योतिर्विद (Astronomer Royal) स्पेंसर जोन्स (Spencer Jones) की उक्ति देंगे, "यदि इस पृथ्वी के जीव किसी स्वाभाविक प्राकृतिक क्रिया के फलस्वरूप हों, तो और भी ग्रहों में हमारे जैसे जीव होंगे।"

वैज्ञानिक वार्ता

दीमक की दवा

इधर पिछले कई वर्षों से राजकीय कृषि अनुसंधानशाला, दिल्ली के आस पास पाई जाने वाली कई किस्म की दीमक के सम्बन्ध में जाँच पड़ताल करती आई है। परीक्षा द्वारा यह मालूम करने की कोशिश की गई है कि फसलों को दीमक से बचाने के लिये कौन सा रासायनिक द्रव्य अधिक उपयुक्त होगा। मालूम हुआ है कि डी० डी० टी० के ५ प्रतिशत घोल के छिड़काव के बाद खेत में गेहूँ बोने से दीमक का असर नहीं होता। खुद गेहूँ को भी घोल में धोकर बोया जा सकता है। एक एकड़ में करीब ४० पौंड डी० डी० टी० खर्च होता है।

आलू की कीड़ी

भारत में आलू की कीड़ी भी एक समस्या है। देखा गया है कि आलू जमा रहने के बाद उस में एक प्रकार की विशेष कीड़ी लग जाया करती है, जिसे अंग्रेजी में 'ट्यूबर-माथ कहते हैं। इस कीड़ी को नष्ट करने के लिये कृषि अनुसंधानशाला ने कनाडा से एक विशेष प्रकार का कीड़ा मँगाया है। यह कीड़ा आलू की उक्त कीड़ी के अंडों को नष्ट कर देता है। अनुसन्धानशाला में यह कीड़ा बहुत भारी संख्या में पैदा किया जा रहा है। कहते हैं कि आलू के गोदामों में इन कीड़ों को डाल दिया जायगा और वे उक्त कीड़ी से आलुओं को सुरक्षित रख सकेंगे।

रबी की पैदावार में वृद्धि

नई दिल्ली स्थित राजकीय कृषि अनुसंधानशाला और उसके सब-स्टेशन करनाल में १९४१ से इस बात का प्रयोग किया जा रहा है कि क्या वर्षा के दिनों की नदी का फालतू पानी जमीन में फैला देने से बाद में उस जमीन में बिना सिंचाई के अच्छी फसल पैदा करने की ताकत आ सकती है। १९४५-४६ की वर्षा के बाद जो प्रयोग किया गया है, उससे मालूम होता है कि यदि मानसून अच्छी हो और सितम्बर में भी अच्छी वर्षा हो जाय तो इस

इलाके में शीत काल की वर्षा के बिना भी रबी की अच्छी फसल हो सकती है और ऊसर जमीन के लिये भी यह बात लागू है।

अनुसन्धान शाला में की गई जाँच से पता चला है कि धातुओं के मैल (स्लैग) का उपयोग खाद के रूप में भी किया जा सकता है।

कपास की पैदावार में १६ प्रतिशत वृद्धि

कोइलपट्टी के कृषि अनुसंधान केन्द्र में की गई जाँच से मालूम हुआ है कि यदि इरूँग घास [सोरगम] और नील की फसल काटने के बाद भूमि में कपास बोई जाय, तो कपास की पैदावार लगभग १६ प्रतिशत बढ़ जाती है।

मद्रास प्रान्त के मदुरा, रामनद और तिनोवल्ली जिलों के बहुतेरे किसान अपनी जमीन में इरूंग घास और कपास की खेती बारी-बारी से करते हैं। इरूंग की फसल के बाद कपास की जो फसल बोई जाती है, उस में कपास का परता प्रायः १६ प्रतिशत कम बैठता है और यदि इरूंग के साथ नील भी बो दिया जाता है, तो कपास की पैदावार करीब १६ प्रतिशत बढ़ जाती है। इरूंग को वहाँ के किसान प्रायः पशुओं के चारे के लिये बोते हैं और उसमें प्रति एकड़ लगभग १२ पौंड नील के बीज भी मिला देते हैं, जिससे बाद की कपास की फसल अच्छी बैठे।

यह भी देखा गया है कि कुम्बू की फसल के बाद भी कपास की फसल अच्छी होती है। वैज्ञानिकों का कहना है कि इरूंग में सोडियम के क्षार-तत्व अधिक होते हैं जिनसे जमीन क्षार युक्त हो जाती है, जो कपास की खेती के लिये अच्छी नहीं होती। नील के साथ इरूंग बोने से, भूमि का यह दोष दूर हो जाता है।

पराग सुरक्षित रखने की प्रणाली

अनुसन्धान द्वारा अब ऐसी प्रणाली निकाल ली गई है, जिसके अनुसार कृत्रिम घोलों के माध्यम से, पुष्पों का पराग काफी दिनों तक सुरक्षित रखा जा सकता है। गन्ने के सम्बन्ध में किये जाने वाले अनुसन्धान कार्य में इस प्रणाली से काफी सहायता मिली है। कई जाति के गन्नों के पराग से, नई जाति का अच्छा गन्ना पैदा करने के लिये अनुसन्धान कार्य जारी ही रहता है किन्तु सब गन्ने एक ही ऋतु में नहीं फूलते कुछ पहले फूल जाते हैं और कुछ बाद में। इस कारण, उन गन्नों के फूलों का पराग मिला कर नया बीज पैदा करने में दिक्कत होती है। इसलिये वैज्ञानिकों ने उपर्युक्त प्रणाली निकाली है।

चालू ऋतु में कोयम्बटूर के केन्द्र में नई जाति के गन्ने पैदा करने का काफी काम हुआ है और चारे के लिए गन्ना पैदा करने की भी कोशिश की गई है। युगांडा से प्राप्त की गई जाति की घासों का व्यवहार भी किया गया है।

शक्कर मिलों के कचड़े से नया रंग

कानपुर के इम्पीरियल इंस्टिट्यूट आफ शुगर टेक्नालोजी में शक्कर मिलों के एक विशेष प्रकार के कचड़े (प्रेस मड) से गन्धक श्रेणी का एक काला-भूरा रंग तैयार किया गया है। इसे पीले अथवा नारंगी रंगों में मिला देने से, कई प्रकार के खाकी रंग तैयार किये जा सकते हैं।

भारत के लिए चार और राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं की स्थापना

पता चला है कि १३२ लाख रुपये की पूंजी से शीघ्र ही भारत में चार और राष्ट्रीय प्रयोगशालाएँ स्थापित की जा रही हैं। हाल में वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसन्धान परिषद् की प्रबन्ध समिति ने इन से सम्बद्ध योजनाओं की स्वीकृति दी है।

भारत सरकार के खाद्य और कृषि विभाग के मंत्री माननीय डी० राजेन्द्र प्रसाद ने १७ नवम्बर, १९४६ को धनबाद के समीप डिग्वाडीह में ईंधन अनुसन्धान शाला का शिलान्यास किया है। अनुमान है कि इस पर १४ लाख रु० खर्च आयेगा।

भारत के उद्योग और रसद विभाग के मंत्री तथा वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसन्धान परिषद् के प्रधान माननीय श्री एम० सी० राजागोपालाचारी ने १९ नवम्बर १९४६ को जमशेदपुर में राष्ट्रीय धातुशोधन प्रयोगशाला

की आधारशिला स्थापित की। अनुमान है कि इसकी प्रारम्भिक लागत लगभग ४३ लाख रु० होगी।

राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला की आधारशिला अन्तःकालीन सरकार के उप-प्रधान माननीय पं० जवाहरलाल नेहरू ४ जनवरी, १९४७ को नई दिल्ली में, भारतीय विज्ञान परिषद् के अधिवेशन के समय रखेंगे। अनुमान है कि इस प्रयोगशाला पर लगभग ४० लाख रुपया खर्च आयेगा।

राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला की आधारशिला पूना में जनवरी १९४७ के अन्त में बम्बई के प्रधानमंत्री माननीय श्री बी० जे० खेर रखेंगे। हाल में बम्बई की सरकार ने इसे पूना में स्थापित करने और इसके लिये परिषद् को आवश्यक जमीन देने की भी स्वीकृति दी है। अनुमान है कि इस पर लगभग ३५ लाख रु० खर्च होगा।

देश की औद्योगिक उन्नति के लिये पाँच राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं की योजना बनाई गई थी। इन में से पहली प्रयोगशाला केन्द्रीय काँच और चीनी मिट्टी उद्योग अनुसन्धान संस्था थी जिस पर लगभग १२ लाख रुपया खर्च आया। इसकी आधार शिला पिछले दिसम्बर में कलकत्ता में, भारत सरकार के योजना-निर्माण और उन्नति विभाग के तत्कालीन सदस्य सर आर्देशिर दलाल ने रखी थी।

मौसिम की भविष्यवाणी द्वारा फसलों की बुवाई में सहायता

एक प्रकार से कहा जा सकता है कि भारत सरकार का मिटियरोलाजिकल (अन्तरिक्ष) विभाग देश की अर्थ-व्यवस्था के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार से सहायता पहुँचाता है। अनेक सूक्ष्म यंत्रों के द्वारा आगे आने वाले मौसिम की विभिन्न बातों का पता लगा कर और सब लोगों को उसकी सूचना देकर, यह विभाग कृषि और जहाजों तथा विमानों के गमनागमन के कार्य में मूल्यवान सहायता प्रदान करता है।

हाल ही में अन्तःकालीन सरकार के कम्युनिकेशन सदस्य माननीय सैयद अली जहीर ने अपने विभाग के कई उच्च अधिकारियों के साथ नई दिल्ली के मिटियरोलाजिकल आफिस का निरीक्षण किया था। भारतीव वेधशालाओं के डाइरेक्टर जनरल डा० एस० के० बनर्जी ने माननीय सैयद अली जहीर को वेधशाला के अनेक यंत्र दिखलाते हुए बतलाया के उनसे किस प्रकार काम लिया जाता है। आप ने कहा कि रेडियों सोंड नामक यंत्र से आने वाले मौसिम की जानकारी प्राप्त करने में बड़ी सहायता मिलती है, क्योंकि उसके द्वारा अत्यधिक ऊँचाई पर तापमान का अन्तर मालूम किया जा सकता है।

मौसिम सम्बन्धी चार्टों का निर्माण

मौसिम सम्बन्धी मान चित्र (चार्ट) तैयार करने में सारे देश में फैले हुए अनेक कर्मचारियों के पर्यवेक्षण से सहायता लेनी होती है। एक ही समय पर प्रायः ५०० पर्यवेक्षक देश के विभिन्न स्थानों में आवश्यक बातों की जाँच करते हैं और फिर तार टेलिप्रिंटर अथवा बे-तार के जरिये अपनी जानकारी मौसिम की घोषणा करने वाले कार्यालय (फोरकास्टिंग आफिस) को भेजते हैं। पर्यवेक्षकों को विभिन्न बातों का पता लगाने के लिये चालक गुब्बारों रेडियों सोंड नामक यंत्रों, आदि साधनों से काम लेना होता है। उदाहरण देते हुए डाक्टर बनर्जी ने बतलाया कि गत १६ सितम्बर को कलकत्ते में जो घोर वृष्टि हुई थी, वह बंगाल की खाड़ी से बहने वाली नम हवा के उत्तर पश्चिम से आने वाले शुष्क वायु के ऊपर निकल जाने से उत्पन्न अवनमन (डिप्रेशन) के कारण हुई थी।

भारत ऐसा देश है, जहाँ प्रायः बहुत पहले से ऋतु सम्बन्धी पेशीनगोई की जाती है। उदाहरणार्थ पहले से ही बता देना होता है कि इस वर्ष वर्षा कैसा होगी कहाँ अधिक तथा कहाँ कम होगी और जाड़ों में भी कुछ पानी गिरेगा अथवा नहीं। इस प्रकार की जाँच पड़ताल के लिये प्रायः समस्त संसार की ऋतु सम्बन्धी उन बातों का पता रखना होता है, जिनका असर भारत के मौसिम पर पड़ता हो। इस सिलसिले में मालूम किया जा चुका है कि दक्षिण अमरीका जैसे अति दूरस्थ देश के वायुमंडलीय चाप का असर भारत की मानसूनों पर पड़ता है। इसी तरह देखा गया है कि यदि शीत ऋतु में हिमालय पर अधिक बर्फ गिरती है, तो उत्तर पश्चिमी भारत में मानसून से होने वाली वर्षा कम पड़ जाती है।

इसी प्रकार विभाग द्वारा इस बात का भी अध्ययन किया गया है कि ऋतु से फसलों का क्या सम्बन्ध है। इसके लिये देश की प्रायः सभी मुख्य फसलों के कलेंडर (मान दर्शक) प्रत्येक जिले के लिये अलग-अलग तैयार किये गये हैं। इनसे मालूम होता है कि किसी स्थान की ऋतु सम्बन्धी अवस्था का वहाँ की फसल के बढ़ाव पर कैसा प्रभाव पड़ता है। इन बातों की घोषणा समाचार पत्रों तथा रेडियों द्वारा कर दी जाती है, जिससे कृषक आगामी ऋतु के सम्बन्ध में सतर्क हो जायँ।

फसलों पर ऋतु का प्रभाव

और भी महत्व की बात यह है कि विभाग द्वारा काम में लाये जाने वाले अनेक सूक्ष्म यंत्र तथा उनके विभिन्न पुर्जे विभाग से सम्बद्ध कारखाने (वर्कशाप) में ही तैयार कर लिये जाते हैं। रेडियो सौंड नामक यंत्र का डिजाइन और स्वयं यंत्र भी भारत में ही तैयार किया गया है। केवल उस में लगने वाले रेडियों वाल्व बाहर से मंगाने होते हैं। इस यंत्र के प्रायः १५० पुर्ज़ों में से अधिकांश विभाग के कारखाने में ही तैयार होते है और अन्य यंत्र भी यही बनाये जाते हैं। नागपुर के एक कारखाने में गुब्बारे भी तैयार किये जाते हैं, जो विदेशी गुब्बारों के समान ही अच्छे होते हैं। दिल्ली की वेधशाला ४० मील तक की ऊँचाई पर के तापमानों के विषय में अनुसंधान कर रही है, जिस के लिये विशेष यंत्रों से काम लिया जा रहा है। भूकम्प के धक्के नापने के लिये जमीन के अन्दर भी एक कमरा है, जिसमें भूकम्प नापक यंत्र के द्वारा जानकारी प्राप्त होती है।

खाद्यों के सम्बन्ध में अनुसन्धान

डा० राजेन्द्रप्रसाद का वैज्ञानिकों के सम्मुख भाषण

अन्तःकालीन सरकार के खाद्य-सदस्य डा० राजेन्द्र प्रसाद ने नई दिल्ली में खाद्य अनुसन्धान के वैज्ञानिक दल की पाँचवीं बैठक के सम्मुख भाषण देते हुए कहा कि जिस कार्य में आप संलग्न हैं वह देश के लिये व्यापक लाभकारी सिद्ध होना चाहिये। मैं वैज्ञानिक होने का दावा नहीं करता लेकिन जिन कुछ विषयों पर आप विचार करेंगे उनमें मैं एक साधारण व्यक्ति की हैसियत से बहुत दिलचस्पी रखता हूँ।

खाद्य की हैसियत से बनस्पति घी का क्या महत्व है, इस प्रश्न का जिक्र करते हुए डा० राजेन्द्र प्रसाद ने कहा कि वैज्ञानिकों तक में इसके बारे में मतभेद है। इसलिये इस विषय पर सरकार और जन साधारण की एक निश्चित राय बतानी चाहिए। देश में दूध का उत्पादन बढ़ाने के सम्बन्ध में भी खाद्य सदस्य ने अनुरोध किया और कहा कि सोयाबीन से दूध पैदा करने की योजना में मैं बहुत दिलचस्पी रखता हूँ।

आगे चलकर आपने कहा कि निश्चित परिणामों पर पहुँचने के लिये वैज्ञानिक परीक्षणों में काफी समय लगता है। यदि मुझे यह विश्वास दिलाया गया कि इन में से कुछ समस्याओं पर हमें वैज्ञानिक निर्णय प्राप्त हो जायंगे, जो देश के लिए हितकारी होंगे तो आपके परिणाम प्राप्त करने के लिये मैं जल्दबाजी से काम न लूँगा।

टेक्निकल कर्मचारियों की ओर से भाषण देते हुए सर शान्ति स्वरूप भटनागर ने देश को दुर्भिक्ष से बचाने के महान् कार्य में डा० राजेन्द्र प्रसाद को पूर्ण सहयोग देने का वचन दिया। सर शान्ति स्वरूप भटनागर ने विज्ञान के रचनात्मक पहलू पर जोर दिया और कहा कि वैज्ञानिक दल के व्यक्ति सदस्य की उन्नति में लोगों के रहन-सहन का मान ऊँचा करने में और उन्हें पहले से अधिक और अच्छा खाद्य प्रदान करने में दिलचस्पी रखते हैं।

बनस्पति घी के पौष्टिक पहलू पर और आगे अनुसन्धान करने की आवश्यकता, सोयाबीन से दूध बनाने के सम्बन्ध में, चक्की और मिलों से पिसे आटे के पौष्टिक तत्व के बारे में तथा खली जैसी चीजों को खाद्य में इस्तेमाल करने के सम्बन्ध में अनुसन्धान करने पर कमेटी में विचार किया गया।

क्षमा प्रार्थना

साम्प्रदायिक झगड़ों के कारण प्रयाग नगर में अक्टूबर और नवम्बर के महीनों के अधिकांश भाग में 'करफ्यू' था जिससे इन महीनों का विज्ञान समय पर नहीं छप सका। इसलिए तीनों महीने का विज्ञान एक साथ निकाला जा रहा है। आशा है पाठकगण हमारी लाचारी के लिए क्षमा करेंगे।

सम्पादकीय

महामना पंडित मदनमोहन मालवीय

आज भी यह विचार करते हुये कि पूज्य मालवीय जी अब हम लोगों के बीच में नहीं हैं, मन शोकाकुल हो उठता है। यह विश्वास करने की इच्छा ही नहीं होती कि मालवीयजी अब इस असार संसार में नहीं है वरन् स्वर्ग के शान्त सुखद वातावरण में विचरण कर रहे हैं। पूज्य मालवीय जी अपने कुटुम्बियों व देशवासियों को रोता बिलखता छोड़कर गत १२ नवम्बर की संध्या को चार बजकर १३ मिनट पर इस दुःखमय संसार को छोड़कर चले गये। भारतमाता की गोद सूनी कर गये। भारतमाता का वह उज्ज्वल नर-रत्न अब देखने को नहीं मिलेगा, सोचते ही हृदय व्याकुल हो उठता है। भारत के भाग्याकाश का वह देदीप्यमान सूर्य अस्त हो चुका है, वज्रकठोर हृदय से यह विश्वास करना ही पड़ रहा है।

पूज्य मालवीय जी की अवस्था इस समय लगभग ८५ वर्ष की थी। पर इस वृद्धावस्था में भी उनमें देश के लिये युवकों का सा उत्साह और लग्न थी। अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में भी उन्हें अपने देश और देशवासियों की ही चिन्ता थी।

स्वर्गीय मालवीयजी का जन्म २५ दिसम्बर सन् १८६१ को प्रयाग में हुआ था। वह यहीं पले और यहीं उनकी प्रारम्भिक शिक्षा दीक्षा हुई। उन्होंने सन् १८८४ में कलकत्ता विश्व विद्यालय से बी० ए० तथा सन् १८९२ में प्रयाग विश्व विद्यालय से एल०एल० बी० की परीक्षा पास की। उसी वर्ष से प्रयाग में उन्होंने वकालत आरम्भ की। बाल्यावस्था से ही उनकी प्रतिभा का चमत्कार लोग अनुभव कर रहे थे। वकालत में बहुत जल्दी ही उन्होंने उन्नति की और शीघ्र ही वह प्रतिभाशाली वकीलों में गिने जाने लगे। सन् १९११ में जब उन्होंने वकालत करना छोड़ा था, उस समय वह प्रयाग हाईकोर्ट के प्रमुख वकीलों में थे।

बाल्यावस्था से ही पूज्य मालवीय जी की रुचि देश व समाज सेवा की ओर थी। कांग्रेस के जन्मकाल से ही उनका उससे सम्बन्ध रहा है और जीवन पर्यन्त वह उसके सच्चे कार्यकर्त्ता रहे। जिस समय मालवीय जी ने कांग्रेस में पदार्पण किया था उनकी आयु केवल २५ वर्ष की थी। कांग्रेस की सभा में जब वह पहुँचे तो उपस्थित वयोवृद्ध सज्जनों ने सोचा कि यह युवक सेवाकार्य क्या कर पायेगा। पर जिस समय पूज्य मालवीय जी ने अपनी वक्तृता दी वे सब चुपचाप मंत्रमुग्ध की भाँति बैठे सुनते ही रह गये। मालवीय जी की प्रतिभा, देशभक्ति, दृढ़ निश्चय, स्वावलम्बन आदि गुणों की धाक उन पर उसी क्षण से जम गई और उस समय से अब तक कांग्रेस में उनका वही स्थान बना रहा।

स्वदेशी आन्दोलन आरम्भ करने में भी पूज्य मालवीय जी का ही हाथ था। समाजसेवा के विचार से ही उन्होंने सन् १९१६ में स्वयं-सेवकों की शिक्षा के लिए सेवा-समिति दल की स्थापना की थी। देशोद्धार के इस प्रकार के अनेकों कार्य उन्होंने किये। शायद ही कोई ऐसी देश-सेवी व समाज-सेवी संस्था हो जिससे पूज्य मालवीय जी का सम्बन्ध न रहा हो।

अपनी मातृभाषा की उन्नति की ओर भी सर्वप्रथम उन्हीं का ध्यान आकृष्ट हुआ था। "कचहरियों की भाषा हिन्दी हो" यह आवाज सबसे पहले पूज्य मालवीय जी ने ही उठाई थी। हिन्दी के प्रचार, हिन्दी साहित्य की उन्नति तथा हिन्दी भाषा द्वारा शिक्षा देने की उपयोगिता पर भी उन्हीं ने लोगों का ध्यान खींचा था।

एक ऐसा विश्वविद्यालय स्थापित करने का स्वप्न जिसमें पाश्चात्य ज्ञान की शिक्षा आर्य संस्कृति की शिक्षा के साथ साथ दी जाय, वह अपनी युवावस्था से ही देख रहे थे। उनकी बातों पर उस समय के लोग विशेष ध्यान नहीं देते थे। उनकी आकांक्षा को वे स्वप्न मात्र समझते थे। किन्तु मालवीय जी जैसी महान् आत्मा के लिये कोई भी कार्य आकाश-कुसुम तोड़ना नहीं था। वह तो यदि वास्तव में आकाश के कुसुम तोड़ने का निश्चय करते तो

अवश्य ही उसमें भी सफलता पाते। उनकी जिस इच्छा पर ध्यान देना वयोवृद्ध अपना समय नष्ट करना समझते थे और युवक जिसकी हँसी उड़ाते थे, आज उनकी वही इच्छा काशी विश्वविद्यालय के रूप में मूर्तिमान खड़ी है। अकेले ही अपने दृढ़ निश्चय और विश्वास के आधार पर वह बराबर प्रयत्न करते रहे। सन १९११ में वकालत छोड़ने के बाद उन्होंने अपना अधिकांश समय इस विश्व विद्यालय की सेवा में लगाया। सन १९१६ में काशी विश्वविद्यालय स्थापित हो गया था और तब से निरन्तर उसकी वृद्धि और उन्नति होती रही है। हम आशा करते हैं कि जिस प्रकार उनके जीवन में उनका प्रिय विद्यालय उन्नति करता रहा है, उसी प्रकार अब भी उन्नति करता रहेगा और युग युग तक भारतवासियों को पूज्य मालवीय जी की याद दिलाता रहेगा।

अपने साहित्यिक ग्रन्थों व कथा-पुराणों में हम प्राचीन भारत के ऋषि-मुनियों का वर्णन पढ़ते आ रहे हैं। पर मालवीय जी हमारे अपने युग के ऋषि थे। उनके दर्शन करके तथा उनके संसर्ग में आकर प्रत्येक प्राणी यह जान सकता था कि आर्य ऋषियों की क्या विशेषतायें थीं। वह आधुनिक भारत के आदर्श महर्षि थे। उनका जीवन यथार्थ हिन्दू जीवन था। वह ब्राह्मण शब्द के मूल अर्थ में ब्राह्मण थे। भारत में ब्राह्मण वर्ग का धर्म शिक्षा प्राप्त करना तथा शिक्षा देना आर्यकाल से ही माना गया है। मालवीय जी आदर्श विद्वान थे। वह संस्कृत के महान् पंडित तथा अन्य अनेक विषयों के अच्छे ज्ञाता थे। अर्थशास्त्र व राजनीतिशास्त्र, समाज व नागरिकशास्त्र, धमशास्त्र, दर्शनशास्त्र कोई भी ऐसा विषय नहीं था जिसमें उनकी पहुँच न रही हो। इस प्रकार अपनी विद्वता के कारण वह वास्तव में ब्राह्मण कहलाने का दावा कर सकते थे। शिक्षा देने के कार्य में भी उन्होंने किसी से पीछे कहलाने का अवसर नहीं दिया। उनका काशी विश्व विद्यालय अब तक सहस्रों छात्रों व छात्राओं को विभिन्न विषयों में शिक्षादान दे चुका है और भविष्य में भी युग-युग तक देता रहेगा।

धार्मिक रहन-सहन की दृष्टि से भी मालवीय जी कट्टर हिन्दू थे। सन् १९२३ में उन्होंने हिन्दू महासभा जैसी संस्था को जन्म दिया और जीवन पर्यन्त उसकी वृद्धि और उन्नति के लिये चेष्टा करते रहे। कट्टर हिन्दू होते हुये भी वह अन्ध विश्वासी नहीं थे और प्रत्येक बात को तर्क की कसौटी पर कसते थे। वे वास्तविक वैदिक संस्कृति का पालन करने वाले हिन्दू ब्राह्मण थे और यही कारण था कि कट्टर हिन्दू कहलाते हुये भी उनमें समाज सुधारकों व सुधारों के प्रति इतनी सहानुभूति और सहनशीलता थी। सुधार सम्बन्धी किसी भी आंदोलन में पीछे नहीं रहे और न उन्होंने कभी सुधारकों के मार्ग में बाधा ही उपस्थित की। वह आर्य संस्कृति के सच्चे भक्त थे, किन्तु उनमें धर्मान्धता नहीं थी। यही कारण था कि वह हिन्दू मुसलमान में भी भेद नहीं करते थे। उनके लिए मनुष्य मात्र भाई-भाई थे। उस तपस्वी का तो "वसुधैव कुटुम्बम्" में विश्वास था।

मालवीय जी अपने समय के वक्ताओं में सर्वश्रेष्ठ थे। उनका कोई सानी मिलना कठिन है। विदेशी भाषा पर भी उनका कैसा अधिकार था इसे देख कर स्वयं उस भाषा वाले भी (अंग्रेज) आश्चर्यान्वित होते थे। हिन्दी व अंग्रेजी दोनों के ही वह सर्वोत्तम वक्ता थे। उनकी संस्कृत की वक्तृता सुन कर तो ज्ञात होता था कि सहस्रों वर्ष पूर्व का कोई मुनि बोल रहा है। अपने विश्व विद्यालय में जब वह गीता पर वक्तृता देते थे तो उनकी जनता अत्यन्त ही प्रभावित होती थी और मालवीय जी की धार्मिक प्रवृत्ति उन पर अपना गहरा प्रभाव डालती थी।

मालवीय जी अत्यन्त मृदुभाषी थे और सबसे स्नेह-पूर्ण व्यवहार करते थे। उनके इन सब गुणों के अतिरिक्त उनका उज्ज्वल, निष्कलंक, चरित्र उन्हें वास्तव में महर्षि कहलाने का अधिकारी बनाता है। उनका पवित्र निष्कलंक चरित्र भविष्य में भारत की सन्तानों के लिए आदर्श रूप रहेगा। मालवीय जी की मृत्यु से भारतवासियो ने अपने एक सच्चे हितैषी को खो दिया। उनकी यह क्षति पूरी होना कठिन है।

अंत में हम भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि वह उस महान् आत्मा को अपनी सुखमय गोद में शान्ति दे और हमें इतना साहस दे कि हम महर्षि मालवीय जी के जीवन से शिक्षा पाकर तथा उनके आदर्शों पर चलकर अपने देश व समाज की सेवा करने योग्य बन सकें।

विज्ञान-परिषद्की प्रकाशित प्राप्य पुस्तकोंकी सम्पूर्ण सूची

१—विज्ञान प्रवेशिका, भाग १—विज्ञानकी प्रारम्भिक बातें सीखनेका सबसे उत्तम साधन—ले० श्री रामदास गौड़ एम० ए० और प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी० ;

२—चुम्बक—हाईस्कूलमें पढ़ाने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी०; सजि०; ।।=)

३—मनोरञ्जक रसायन—इसमें रसायन विज्ञान उपन्यासकी तरह रोचक बना दिया गया है, सबके पढ़ने योग्य है—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम० एस-सी० ; १।।),

४—सूर्य-सिद्धान्त—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान-भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखनेका सबसे सुलभ उपाय—पृष्ठ संख्या १२१५ ; १४० चित्र तथा नकशे—ले० श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; सजिल्द; दो भागोंमें; मूल्य ६)। इस भाष्यपर लेखकको हिन्दी साहित्य सम्मेलनका १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है।

५—वैज्ञानिक परिमाण—विज्ञानकी विविध शाखाओंकी इकाइयोंकी सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहालकरण सेठी डी० एस सी०; ।।।),

६—समीकरण मीमांसा—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १।।) द्वितीय भाग ।।=),

७—निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री बी० एस सी० ; ।।),

८—बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित—इंटरमीडियेटके गणितके विद्यार्थियोंके लिये—ले० डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी० ; १।),

९—गुरुदेवके साथ यात्रा—डाक्टर जे० सी० बोसीकी यात्राओंका लोकप्रिय वर्णन ; ।-),

१०—केदार-बद्री यात्रा—केदारनाथ और बद्रीनाथके यात्रियोंके लिये उपयोगी; ।),

११—वर्षा और वनस्पति—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शङ्करराव जोशी; ।),

१२—मनुष्यका आहार—कौन-सा आहार सर्वोत्तम है—ले० वैद्य गोपीनाथ गुप्त; ।=),

१३—सुवर्णकारी—क्रियात्मक—ले० श्री गंगाशंकर पचौली; ।),

१४—रसायन इतिहास—इंटरमीडियेटके विद्यार्थियोंके योग्य—ले० डा० आत्माराम डी० एस-सी०; ।।।),

१५—विज्ञानका रजत-जयन्ती अंक—विज्ञान परिषद् के २५ वर्षका इतिहास तथा विशेष लेखोंका संग्रह; १)

१६—फल-संरक्षण—दूसरा परिवर्धित संस्करण—फलोंकी डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार आदि बनानेकी अपूर्व पुस्तक; २१२ पृष्ठ; २५ चित्र—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्रनारायण सिंह एम० एस-सी०, २),

१७—व्यङ्ग-चित्रण—(कार्टून बनानेकी विद्या)—ले० एल० ए० डाउस्ट ; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी, एम० ए०; १७५ पृष्ठ; सैकड़ों चित्र, सजिल्द; १।।)

१८—मिट्टीके बरतन—चीनी मिट्टीके बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा ; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र; सजिल्द; १।।),

१९—वायुमंडल—ऊपरी वायुमंडलका सरल वर्णन—ले० डाक्टर के० बी० माथुर; १८६ पृष्ठ; २५ चित्र, सजिल्द; १।।),

२०—लकड़ी पर पॉलिश—पॉलिशकरनेके नवीन और पुराने सभी ढंगोंका ब्योरेवार वर्णन। इससे कोई भी पॉलिश करना सीख सकता है—ले० डा० गोरखप्रसाद और श्रीरामयत्न भटनागर, एम०, ए०; २१८ पृष्ठ; ३१ चित्र, सजिल्द; १॥),

२१—उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश; आकार बड़ा विज्ञानके बराबर २६० पृष्ठ; २००० नुसखे, १०० चित्र; एक-एक नुसखेसे सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं या हज़ारों रुपये कमाये जा सकते हैं। प्रत्येक गृहस्थके लिये उपयोगी; मूल्य अजिल्द २) सजिल्द २॥),

२२—कलम-पेवंद—ले० श्री शंकरराव जोशी; २०० पृष्ठ; ४० चित्र; मालियों, मालिकों और कृषकोंके लिये उपयोगी; सजिल्द; १॥),

२३—जिल्दसाज़ी—क्रियात्मक और ब्योरेवार। इससे सभी जिल्दसाज़ी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०; १८० पृष्ठ, ६२ चित्र; सजिल्द १॥।),

२४—त्रिफला—दूसरा परिवर्धित संस्करण-प्रत्येक वैद्य और गृहस्थके लिये—ले० श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार, २१६ पृष्ठ; ३ चित्र, एक रङ्गीन; सजिल्द २।),

यह पुस्तक गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय की १३ श्रेणी के लिए द्रव्यगुणके स्वाध्याय पुस्तकके रूपमें शिक्षापटलमें स्वीकृत हो चुका है।

२५—तैरना—तैरना सीखने और डूबते हुए लोगोंको बचाने की रीति अच्छी तरह समझायी गयी है। ले० डाक्टर गोरखप्रसाद पृष्ठ १०४ मूल्य १),

२६—अंजीर—लेखक श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार-अंजीर का विशद वर्णन और उपयोग करनेकी रीति। पृष्ठ ४२, दो चित्र, मूल्य ॥),

यह पुस्तक भी गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालयके शिक्षा पटलमें स्वीकृत हो चुकी है।

२७—सरल विज्ञान-सागर प्रथम भाग—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद। बड़ी सरल और रोचक भाषा में जंतुओंके विचित्र संसार, पेड़ पौधों की अचरज-भरी दुनिया, सूर्य, चन्द्र और तारोंकी जीवन कथा तथा भारतीय ज्योतिषके संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। विज्ञानके आकार के ४५० पृष्ठ और ३२० चित्रोंसे सजे हुए ग्रन्थ की शोभा देखते ही बनती है। सजिल्द मूल्य ६),

२८—वायुमण्डलकी सूक्ष्म हवाएँ—ले० डा० सन्त-प्रसाद टंडन, डी० फिल० मूल्य ॥।)

२९—खाद्य और स्वास्थ्य—ले० श्री डा० ओंकारनाथ परती, एम० एस-सी०, डी० फिल० मूल्य ॥।)

हमारे यहाँ नीचे लिखी पुस्तकें भी मिलती हैं:—

१—विज्ञान हस्तामलक—ले०—स्व० रामदास गौड़ एम० ए० भारतीय भाषाओंमें अपने ढंगका यह निराला ग्रंथ है। इसमें सीधी सादी भाषामें अठारह विज्ञानोंकी रोचक कहानी है। सुन्दर सादे और रंगीन पौने दो सौ चित्रोंसे सुसज्जित है, आजतककी अद्भुत बातोंका मनोमोहक वर्णन है, विश्वविद्यालयोंमें भी पढ़ाये जानेवाले विषयोंका समावेश है, अकेली यह एक पुस्तक विज्ञानकी एक समूची लैब्रेरी, है एक ही ग्रंथमें विज्ञानका एक विश्वविद्यालय है। मूल्य ६)

२—सौर-परिवार—लेखक डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० आधुनिक ज्योतिष पर अनोखी पुस्तक ७७६ पृष्ठ, ५८७ चित्र (जिनमें ११ रंगीन हैं) मूल्य १२) इस पुस्तक पर काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा से रेडिचे पदक तथा २००) का छन्नूलाल पारितोषिक मिला है।

३—भारतीय वैज्ञानिक—१२ भारतीय वैज्ञानिकोंकी जीवनियां—ले० श्री श्याम नारायण कपूर, सचित्र ३८० पृष्ठ; सजिल्द; मूल्य ३) अजिल्द २॥)

४—वैक्युम-ब्रेक—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा। यह पुस्तक रेलवेमें काम करने वाले फ़िटरों इंजन-ड्राइवरों, फ़ोर-मैनों और कैरेज एग्ज़ामिनरोंके लिये अत्यन्त उपयोगी है। १६० पृष्ठ; ३१ चित्र जिनमें कई रंगीन हैं, २),

विज्ञान-परिषद्, ४२, टैगोर टाउन, इलाहाबाद

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञान परिषद् प्रयागका मुखपत्र

भाग ६४ | मकर, सम्वत् २००३, जनवरी १९४७ | संख्या ४

प्रकाशक

विज्ञान-परिषद्,

४२, टैगोर टाउन, इलाहाबाद।

[एक संख्या का मूल्य

प्रयागकी

विज्ञान-परिषद् के मुख्य नियम

परिषद्का उद्देश्य

१—१९७० वि० वा १९१३ ई० में विज्ञान परिषद्की स्थापना इस उद्देश्य से हुई कि भारतीय भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञानके अध्ययनको और साधारणतः वैज्ञानिक खोजके कामको प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद्का संगठन

२—परिषद्में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमोंके अनुसार सभ्यगण सभ्योंमेंसे ही एक सभापति, दो उपसभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमंत्री, दो मंत्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे, जिनके द्वारा परिषद्की कार्यवाही होगी।

पदाधिकारियोंका निर्वाचन

१८—परिषद्के सभी पदाधिकारी प्रतिवर्ष चुने जायँगे। उनका निर्वाचन परिशिष्टमें दिये हुये तीसरे नकशेके अनुसार सभ्योंकी रायसे होगा।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्यको ५) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश-शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ ७० रु० की रकमदे देनेसे कोई भी सभ्य सदाके लिये वार्षिक चन्देसे मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्योंको परिषद्के सब अधिवेशनोंमें उपस्थित रहनेका तथा अपना मत देनेका, उनके चुनावके पश्चात् प्रकाशित, परिषद्की सब पुस्तकों, पत्रों, विवरणों इत्यादिके बिना मूल्य पानेका—यदि परिषद्के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धनसे उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन-चौथाई मूल्यमें मिलेंगी।

२७—परिषद्के सम्पूर्ण स्वत्वके अधिकारी सभ्यवृन्द समझे जायँगे।

परिषद्का मुखपत्र

३३—परिषद् एक मासिक-पत्र प्रकाशित करेगी जिसमें सभी वैज्ञानिक विषयोंपर लेख प्रकाशित हुआ करेंगे।

३४—जिन लेखोंको परिषद् प्रकाशित करेगी उनमें जो लेख विशेष महत्व और योग्यताके समझे जायँगे उनके लेखकोंको अपने अपने लेख की बीस प्रतियाँ बिना मूल्य पानेका अधिकार होगा।

विज्ञान

विज्ञान-परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विनेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ।। तै० उ० ।३।५।

भाग ६४ | सम्वत् २००३, जनवरी १९४७ | संख्या ४

विपाक और विघटक-रस क्रिया

Fermentation and Enzyme action

(ले०—श्री कृष्ण बहादुर एम० एस-सी० रसायन विभाग प्रयाग विश्वविद्यालय)

विपाक वह प्रक्रिया है जिसमें कुछ विशेष जीवित सेलों (cell) की क्रियाओं द्वारा कुछ विशेष पदार्थ बन जाते हैं। सेलों के जिन पदार्थों द्वारा यह क्रिया होती है वे जीवित नहीं होते, किन्तु साधारण रासायनिक यौगिक (Chemical compound) होते हैं जिन्हें विघटक-रस कहते हैं। पहिले लोगों का ऐसा विचार था कि यह विपाक प्रक्रिया सिर्फ जीवित सेलों द्वारा ही होती है पर आज कल के वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि यह प्रक्रिया अजीवित विघटक-रस द्वारा होती है।

इतिहास—हिन्दुओं के प्राचीन ग्रंथों में मदिरा का वर्णन है और सम्भवतः उन्हें विपाक के बारे में बहुत ज्ञान था। मदिरा विपाक (Alcoholic Fermentation) से संसार की अधिकांश जातियाँ बहुत दिनों से परिचित हैं। पहले लोगों का यह विश्वास था कि विपाक आरम्भ होने के पूर्व ही उस पदार्थ में मदिरा का अंश रहता है। विपाक प्रकिया से वह मदिरा जो पहले अशुद्ध दशा में रहती-है शुद्ध हो जाती है। पाश्चात्य देश के विद्वानों का ऐसा विचार सत्रहवीं शताब्दी तक था। १६८२ में बेचर (Becher) ने यह मालूम किया कि विपाक प्रक्रिया के लिये चीनी अति आवश्यक है और मदिरा पहले ही से उस पदार्थ में नहीं रहती।

१८३७ में फ्रान्स के कागनिअर्ड डि ला टौर (Cagniard de la tour) जर्मनी के श्वान (Schwann) और कुटिंसग (Kutzing) ने विपाक हुई वस्तुओं में छोटी छोटी बहुत सी जीवित सेलों को लिंग-हीन उत्पादन (Asexual Reproducts) द्वारा पैदा होते देखा। ये सेलें शक्कर को कम कर देती हैं, मदिरा को बढ़ाती और कार्बन डाइआक्साइड बनाती है। इनकी संख्या की वृद्धि के साथ साथ शक्कर का कम होना और मदिरा की वृद्धि होना स्पष्ट रूप से दिखलाई देता है। इन लोगों के प्रयोग ऐसे प्रामाणिक नहीं थे कि उन पर अधिक विश्वास किया जा सकता। लगभग २० साल बाद १८६० में लोगों को यह बात समझ में आई कि मदिरा विपाक ईस्ट (Yeast) नाम के एक प्रकार के जीवित सेल द्वारा

होता है। लीबिग (Liebig) ने इस जन्तु सिद्धान्त का पूरा विरोध किया। वह बराबर इसी बात पर जोर देता रहा कि विपाक क्रिया केवल रासायनिक प्रक्रिया द्वारा होती है।

लीबिग ने विपाक को कम्पन सिद्धान्त द्वारा होना बतलाया। उसने कहा कि विपाक वस्तु एक प्रकार के विघटक रस द्वारा विपाकित होती हैं। यह रस विश्लेषित (Decompose) होता है। इस क्रिया से विपाक वस्तु के अणुओं (Molecules) में एक प्रकार की शक्ति पहुँचती है जिसके कारण वे अणु छोटे छोटे नये पदार्थ के अणुओं में परिवर्तित हो जाते हैं।

शीघ्र ही लीबिग के इस सिद्धान्त में परिवर्तन करना अति आवश्यक प्रतीत हुआ। पास्तूर (Pasteur) ने यह स्पष्ट सिद्ध कर दिया कि विपाक प्रक्रिया में जीवित सेलों का महत्वपूर्ण हाथ है।

शीघ्र ही दोनों सिद्धान्तों में सामंजस्य लाने का प्रयत्न किया गया और नाइगिली (Naegeli) ने एक सिद्धान्त बनाया। उसने कहा कि जो वस्तुयें विपाकित होती हैं उनके अणु अपनी संचित शक्ति (Potential energy) द्वारा शीघ्रता के साथ दोलित (oscilate) होते रहते हैं। इसी प्रकार विघटक रस (Enzyme) के अणु भी शीघ्रता के साथ दोलित होते रहते हैं और विघटक रस के अणु के इस कम्पन के द्वारा विपाक वस्तु के अणु शीघ्रता से विश्लेषित होने लगते हैं। यह विश्लेषण (Decompoition) जीवित सेलों के बाहर होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस सिद्धान्त में विघटक रस का नष्ट होना नहीं बतलाया गया है जैसा कि लीबिग के सिद्धान्त में बतलाया गया था।

बीस सालों के वाद-विवाद के पश्चात् पास्तूर ने यह सिद्ध कर दिया कि विपाक प्रक्रिया जीवन सेलों द्वारा ही होती है। यह विपाक शक्ति सेल के अन्दर रहती है और वहीं यह क्रिया होती है। इसी प्रकार उन्होंने यह भी सिद्ध किया कि लैक्टिक (Lactic) तथा ब्यूटरिक (Butric) विपाक भी एक प्रकार के जीवित जन्तुओं द्वारा होता है। ये जन्तु ईस्ट से भिन्न प्रकार के होते हैं।

विपाक का अर्थ

बहुत दिनों तक वह क्रिया जो जीवित इस्ट सेलों द्वारा होती थी विघटक रसों द्वारा होने वाली क्रिया से विभिन्न समझी जाती थी। १८३० में रोबीकेट (Robiquet) और बौट्रन (Boutron) ने कड़ुए बादाम में एक विघटक रस का पता लगाया। लीबिग (Liebig) और वोह्लर (Wohler) ने इस विघटक रस की अद्भुत क्रिया का पता लगाया। यह विघटक रस एक प्रकार के ग्ल्यूकोसाइड (Glucoside) में जिसे एमग्डेलिन (Amygdalin) कहते हैं पाया जाता है। जब कड़ुए बादाम की सेलें पानी में तोड़ दी जाती हैं तो बादाम का विघटक रस एमग्डेलिन को बेन्जैलडिहाइड, (Benzaldehyde), हाइड्रोसियानिक अम्ल (Hydrocyanic acid) और ग्लूकोज़ में विभाजित कर देता है।

बादाम के इस विघटक रस को अलग कर लिया जा सकता है और ऐसी दशा में भी जब कि इसके साथ किसी जीवित पदार्थ का विद्यमान होना असम्भव है यह एमगडेलिन को विश्लेषित करने का कार्य पहले की ही भाँति करता है।

इसी प्रकार की एक क्रिया १८१४ में करचौफ (Kirchhoff) ने एक अन्य विघटक रस की देखी। उसने देखा कि जव के अँकुओं के अन्दर का रस यदि स्टार्च (Starch) पर क्रिया करता है तो पानी में सुगमता से न घुलनशील होने वाला स्टार्च विश्लेषित होकर ग्लूकोज़ में परिवर्तित हो जाता है। यह एक प्रकार के विघटक रस की क्रिया द्वारा होता है जिसे डायस्टेस (Diastase) कहते हैं।

इसी प्रकार एक दूसरा विघटक रस ल्यूश (Leuchs) ने थूक से निकाला और लगभग उसी समय में पेपसीन (Pepsin) नामक एक अन्य विघटक रस का पता लगा जो प्रोटीन (Protein) को घुलनशील पेपटोन में बदल देता है। पेपसीन पेट के आमाशयिक रस (Gastric) से निकाला गया था।

प्रारम्भ में इस तरह दो प्रकार की क्रियायें अलग-अलग मानी जाती थीं। एक वे जिनमें जीवित सेल

भाग लेती थीं और दूसरी वे जिनमें विघटक रस द्वारा क्रिया होती थी।

इस प्रकार के दो विभाग बहुत दिनों तक माने जाते रहे। पर सन् १८९६ में बुकनर (E. Buchner) ने जीवित ईस्ट सेलों को बल पूर्वक नष्ट कर के उनमें से खूब दबाव द्वारा एक रस निकाला जिस में शक्कर को मदिरा बनाने की शक्ति थी। इस से यह स्पष्ट हो गया कि वह पदार्थ जिससे मदिरा-विपाक होता है जीवित सेलों द्वारा नहीं होता पर उन में उपस्थित एक प्रकार के यौगिक (Compound) द्वारा होता है जिसे विघटक रस कहते हैं।

पर यह अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि अब भी बहुत से विघटक रस बाहर निकालने पर अपनी क्रिया नहीं करते इसी कारण अब भी दो प्रकार के विघटक रस माने है एक तो वे जो सेलों के भीतर रहने पर ही क्रियाशील रहते हैं और दूसरे वे जो बाहर निकाल लेने पर भी अच्छी भाँति अपनी क्रिया कर सकते हैं।

विघटक रस जीव मात्र के लिये अति आवश्यक यौगिक है। यह शरीर का रासायनिक-क्रियारस (Chemical Reagent) है। बहुत छोटी मात्रा में ही यह बहुत से बड़े-बड़े अणुओं को छोटे-छोटे अणुओं में तोड़ लेता है, जो आवश्यकतानुसार या तो सेल के बाहर निकाल दिये जाते हैं या सेल में ही काम में आजाते हैं।

बरज़ीलियस (Berzielius) ने प्रथम बार उत्प्रेरक (Catalytic agent) और विघटक रस में समानता अनुभव की। आस्टवल्ड (Ostwald) के सिद्धान्त के आधार पर कि उत्प्रेरक एक क्रिया की गति को जो साधारणतः बहुत धीरे होती है तेज़ कर देता है, यह विघटक रस भी वही काम करता है। इसलिये विघटक रस को जीव-उत्प्रेरक (Organic Catalytic agent) भी कहते हैं। इस प्रकार साधारण उत्प्रेरक की भाँति विघटक रस यदि अधिक मात्रा में होगा तो अधिक विपाक होगा पर क्रिया के फल स्वरुप बने हुए यौगिकों में विघटक रस न रहेगा और न तो विघटक रस तथा बने यौगिकों में कोई अणु सम्बन्ध ही होगा।

अधिकतर विघटक रस की क्रियायें जल-विश्लेषण कक्षा (Hydrolytic character) की होती हैं। ये क्रियायें प्रायः खनिज अजैव उत्प्रेरक (norganic-catalysis) के द्वारा भी की जा सकती हैं। यहाँ तक कि बहुत बड़ी-बड़ी क्रियायें जैसे मदिरा का सिरके में बदलना, केलसियम फारमेट (Calcium formate) का कैलसियम कारबोनेट ($CaCO_3$) कारबोनिक अम्ल तथा हाइड्रोजन में बदलना खूब बारीक प्लैटिनम (Platinum) द्वारा की जा सकती हैं। पर इन दोनों उत्प्ररको में विशेष अन्तर यह है कि विघटक रस की क्रिया बड़ी विशिष्ट होती है। एक विघटक रस जो वसा (fat) को उदविश्लेषित कर सकता है स्टॉच को नहीं कर सकता।

विघटक रस की यह विशेषता है कि क्रिया पूर्ण रुपेण समाप्त होने के पूर्व इसकी क्रिया बड़ी मन्द पड़ जाती है। विघटक रस एक निश्चित सांद्रता (Concentration) पर ही काम करते हैं, उससे कम या अधिक होनें पर उनकी क्रिया कम या बन्द हो जाती है। बहुत से ऐसे प्रमाण हैं कि विघटक रस विपाकित पदार्थ के साथ रासायनिक-सम्बन्ध (Chemical union) स्थापित कर लेता है और यह नया यौगिक जो इस सम्बन्ध द्वारा बनता है विश्लेषित होकर छोटे पदार्थों में विभाजित हो जाता है। परन्तु कुछ लोगों का मत है कि यह क्रिया विपाकित पदार्थ के विघटक रस पर द्रवीकरण द्वारा होती है।

थोड़ी सी विघटक रस की मात्रा बहुत सा पदार्थ विश्लेषित कर सकती है। पर प्रत्यक्ष रुप में इनवर्टेस (Invertase) और रिनेट (Rennet) को छोड़ कर जिनमें विघटक रस अपने से चार सौ गुना अधिक पदार्थ विश्लेषित कर सकते हैं अन्य विघटक रस की क्रियायें कुछ समय के पश्चात् बन्द हो जातीं हैं। क्योंकि इस क्रिया में बहुत सा विघटक रस नष्ट हो जाता है।

एक विशेषता यह भी है कि वे उन्हीं दशाओं में जिसमें विघटक सर खूब सुगमता से और अति शीघ्र गति से काम करता है शीघ्र नष्ट भी हो जाता है। उदाहरण के लिये प्रोटीन को विश्लेषित करने वाला विघटक रस ट्रिपसिन (Tripsin) जो क्लोम (Pancrease) में मिलता है थोड़े से तापक्रम पर थोड़ा बार युक्त होने पर

अच्छा काम करता है पर इन्हीं दशाओं में वह मर भी जाता है।

विघटक रस का संगठन (Composition) मालूम करना अत्यन्त कठिन काम है, क्योंकि पूर्ण शुद्ध रुप से उन्हें अलग करने की अभी तक कोई विधि नहीं मालूम हो सकी है बहुत से विघटक रस तो केवल सफेद चूर्ण के रुप में ही मिल सके हैं। उनके बनाने की विधि में उनके अन्दर उपस्थित बहुत से अशुद्ध यौगिकों (Compound) को निकालने का कोई उपाय नहीं है। अभी तक जो कुछ हो सका है वह इतना ही है कि विशुद्ध विघटक रस निकाल कर उसमें उपस्थित सब यौगिकों के सामूहिक गुणों का ही ज्ञान प्राप्त किया गया है। कारण एक यह भी है कि विघटक रस कलोद की (Colloid) श्रेणी के पदार्थ हैं जिनके घोल में यदि किरण डाली जाँय तो इसके कण साधारण कलोद पदार्थों के कणों की भाँति बड़ी शीघ्रता के साथ घूमते देख पड़ेंगे।

कलोद पदार्थों के गुण अधिकतर उनके पृष्ठ (surface) के कारण होती है। उनका बहुत सा पृष्ठ घोलक द्रव के सम्मुख हो जाता है। जो यौगिक घोलक द्रव में घुलित होने पर घोलक द्रव का पृष्ठ तनाव (surface tension) कम कर देते हैं वे कलोद कणों पर जमा हो जाते हैं। इस क्रिया को शोषण (adsorption) कहते हैं। यदि अल्युमीनियम हाइड्राक्साइड (Aluminium Hydroxide) के कलोद के घोल में थोड़ा सा नीला कांगो रंग (Congo blue) डाल दिया जाय तो हम देखते हैं कि कलोद के कण नीले रंग के हो जाते हैं। पहले यह क्रिया शोषण द्वारा ही होती है पर यदि इसी को खौलाया जाय तो सब कलोद कण लाल हो जाते हैं क्योंकि बाद में रासायनिक क्रिया भी होती है। इसी भाँति सम्भवतः विघटक रस के कलोद कणों पर भी क्रिया होती है और इस प्रकार घुलित वस्तु धीरे-धीरे घोल से निकाल दी जाती है।

विघटक रस साधारणतः तीन भागों में विभाजित किये जा सकते हैः—

(१) साधारण जल विश्लेषित करने वाले।

(२) ओषदीकरण और अनोषदीकरण करने वाले (Oxidation and Reduction)

(३) विशेष पदार्थों का थक्का (Clotting) बाँधने वाले।

(१) इस भाग के विघटक रस बहुत श्रेणी में बाँटे जा सकते हैं उदाहरणार्थ एक सैकराइड (Mono saccharide) दो सैकराइड बहु, सेकराइड, प्रोटीन तथा प्रोटीन विश्लेषित पदार्थों को जल विश्लेषित करने वाले।

बहु सैकराइड को जल विश्लेषित करने वाले विघटक रस

विघटक रस (enzyme)	विश्लेषित होनेवाले पदार्थ (Hydrolysed thing)	बनने वाले यौगिक	कहाँ मिलते हैं
डायस्टेस (Diastase)	स्टार्च	मालटोज़ और डेक्सट्रिन	अंकुरित जव में, बहुत से फंगस तथा बैक्टीरिया में।
एमाइलेस (Amylase)	ग्लाइकोजन	मालटोज	
ग्लाइकोजिनेस (Glycogenase)	”	”	
इन्यूलेज (Inulase)	इन्यूलिन (Inulin)	फ्रुकटोज (Fructose)	उगने वाली मोटी जड़ों में (bulbs band tulers)
सेल्यूलोज (Cellulose)	सेल्यूलोज	अनोषदीकरण गुणवाली शकर (Reducing sugar)	उगते बीज के अकुओं में।
पेक्टिनोज (Pectinose)	पेकटिन	”	”
जिलेज़ (Gelase)	जिलोज़	”	बैक्टीरियम जिलैटिकस (Bact. gelaticus)

एक तथा दो सैकराइड को जल-विश्लेषित करने वाले विघटक रस

विघटक रस	विश्लेषित होनेवाले पदार्थ	बनने वाले यौगिक	कहाँ मिलते हैं
माल्टेज़ (Maltase)	माल्टोज	ग्ल्यूकोज़	ईस्ट, माल्ट, पेट के रस में
ग्ल्यूकेज़ (a-glucase)	गन्ने की शक्कर	फ्रुकटोज़, ग्लूकोज़	ईस्ट, पेट के रस में
इनवर्टेज़ (Invertase)			
लैक्टेज़ (Lactase)	लैकटोज़	ग्ल्यूकोज़, गैल्कटोज़	पेट के रस में
ट्रिह्लेज़	ट्रिह्लोज़	ग्ल्यूकोज़	(Aspergillus niger) तथा हरे माल्ट में
रैफिनेज़	रैफिनोज़	मिलीबायोज (Melibiose) और फ्रुकटोज	ईस्ट
मिलीबायेज़ (Melibiase)	मिलीबायोज़	गैल्कटोज़ और ग्ल्यूकोज़	ईस्ट
मिलीसिटेज़	मिलीसिटोज़	ट्यूरानोज (Touranose) ग्ल्यूकोज	(Aspergillus niger)
ट्युरानेज़	ट्यूरानोज़	ग्ल्यूकोज़	"

इसी प्रकार बहुत से विघटक रस जो ग्लूकोसाइड, प्रोटीन तथा प्यूरीन यौगिक को जल विश्लेषित करते हैं प्राप्त किये गये हैं और उनकी क्रिया मालूम की गई है। पर अभी तक किसी भी विघटक रस के रासायनिक बनावट के बारे में कुछ नहीं मालूम है। फिशर (Fischer) के मत के अनुसार विघटक रस तथा विपाक पदार्थ का सम्बन्ध वही होता है जो ताले और चाभी का होता है। जिस तरह एक चाभी केवल एक विशेष ताला ही खोल सकती है उसी प्रकार एक रस केवल एक यौगिक पर ही क्रिया कर सकता है।

दैनिक जीवन में रसायन विद्या के प्रयोग

[ले० ब्रजवल्लभ अग्रवाल बी० एस० सी द्वितीय वर्ष]

एक युग था जब मानवको भोजनके लिये पशुओं, और जंगली मेवों पर, वस्त्रोंके स्थान पर वृक्षों के पत्तों पर तथा विशाल भवनोंकी जगह पर जंगलोंके घने कुञ्जों पर निर्भर रहना पड़ता था। जब दुर्भाग्यवश मनुष्य अस्वस्थ होता तब मृत्यु के अतिरिक्त कोई अन्य चारा नहीं था। आवश्यकताओं के अनुसार मनुष्य ने अपनी उन्नति की तथा संस्कृतिका निर्माण किया। तत्पश्चात् विज्ञान का जन्म हुआ और उसने संस्कृति में एक नवीन जीवन

फूँका, विश्व में विप्लव कर दिया, इतिहास का पथ परिवर्तन कर दिया। एक नवीन युगका आवाहन हुआ और इस युगमें विज्ञानने अपने आविष्कारों द्वारा मानवके दैनिक जीवनमें से कितनी ही कठिनाइयों, द्विविधाओं, और आपत्तियोंको जड़से उखाड़ कर फेंक दिया।

विज्ञानकी कला कलाके लिये नहीं है। जीवनके लिये है। एक वैज्ञानिक जब कोई अन्वेषण करने जाता है तो उसके मस्तक में अन्तिम ध्येय मानवताकी सहायता होती है संसारका सुधार होता है। प्रत्येक आविष्कार को जीवनमें प्रयुक्त करना ही वैज्ञानिककी चरम सफलता है।

हमारे आजके जीवनमें, उसके प्रत्येक लघुतम अंश में हमको वैज्ञानिक युगका प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। हमको अपने जीवनके पग-पग पर रसायन विद्याकी सहायता लेनी पड़ती है, किन्तु अब हम उसके इतने अभ्यस्त होगये हैं कि हम भूल जाते हैं कि वह किसकी देन है। इन प्रतिक्षण मिलने वाली सुविधाओं के लिये कौन अधिकारी है हमारी कृतज्ञताका ? यह एक साधारण मनुष्यकी कल्पनाके बाहरकी बात है कि उसको स्वास्थ्य-प्रद भोजन खाने सुन्दर सुन्दर वस्त्र पहिरने, विशाल भवनों में रहने, अच्छे टॉयलेट प्रयोग करने और स्वास्थ्यकी रक्षा करने में रसायन विद्याकी कितनी सहायता लेनी पड़ती है। यह विश्वासके साथ कहा जा सकता है कि यदि रसायन विद्याके ज्ञानका पूर्व रूपसे नाश कर दिया जाय तो आज भी संस्कृति उसी रूपमें मिलेगी जिसमें कि २००० वर्ष पूर्व थी।

मानव के लिये भोजन का प्रश्न सर्वप्रथम है। अतः भोजन की रक्षा तथा उत्पत्ति में रसायन विद्या का प्रयोग अधिक महत्व रखता है। पिछले युगमें संसारमें अकालादि के कारण इस युग की अपेक्षा कहीं अधिक मनुष्य मरते थे। किन्तु कृषि की उन्नति तथा रसायन विद्या के प्रयोगने इन अकालों की गणना वैज्ञानिक देशों में बहुत कम करदी है। सभ्यताके इस प्रगतिशील युग में हमारे देशको, अन्य बहुत से कारणों के साथ विज्ञान में उन्नत न होने के कारण भी, अकालोंका सामना करना पड़ता है। यद्यपि विज्ञानकी चतुर्मुखी शक्ति वर्षा एवं ऋतुके शासन में असफल है फिर भी इसकी सहायता से बहुतसी भूलोंसे बचने का उपाय किया जा सकता है। तथा कृषि और व्यवसाय को अधिक विश्वसनीय एवं प्रशस्त बनाया जा सकता है।

रसायन विद्या की सहायता से यह मालूम होगया है कि अधिकतर पौधों को पोटैशियम नाइट्रोजन, तथा फ़ासफोरस के तेज़ाब की आवश्यकता होती है। दिन की लम्बाई का प्रभाव तापकी अपेक्षा अधिक अच्छा होता है और कुछ गैसें विशेष कर कारबन डाइऑक्साइड पौधे के बढ़नेके लिये अति आवश्यक है। प्रत्येक पौधेकी आवश्यकता के अनुसार मिट्टीमें आवश्यक तत्वों का मिश्रण करके उसको अधिक उत्पादक बनाया जा सकता है। एक टन गेहूँ में ४७ पौन्ड नाइट्रोजन १८ पौन्ड फ़ासफ़ोरस, और १२ पौन्ड पोटाश होता है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि यह तत्व गेहूँकी उत्पत्ति के लिये कितने आवश्यक हैं।

रसायन विद्याने पशुओंका स्वास्थ्य ठीक रखनेमें बड़ी मदद दी है। कैल्शियम जो हमारे शरीरका आवश्यक अंश है दूधमें अधिक मात्रा में पाया जाता है। हम गायको ऐसी वस्तुएँ खिलाकर जिनमें Calcium अधिक हो गायको सदैव स्वस्थ तथा बहुत दूध देने वाली बनाये रख सकते हैं।" कैनरकी" के घोड़े बहुत प्रसिद्ध हैं और इसका कारण यही है कि वहांकी घासमें Calcium अधिक होता है। हम दूसरे स्थानों में भी प्रयत्न कर उसी बनावट की घास तैयार कर सकते हैं तथा घोड़ों को स्वस्थ बना सकते हैं। गाय घोड़े तथा अन्य लाभदायक पशुओं को स्वस्थ रखना मानव जाति के लिये असीम रूपेण श्रेयस्कर है।

विटामिन की खोज रसायन विद्या में मनुष्य के सतत परिश्रम का आधुनिकतम एवं अत्यन्त महत्वपूर्ण रूप प्रस्तुत करती है। मनुष्य के शरीर के लिये विटामिनों का उचित मात्रामें होना अनिवार्य है। किसी भी विटामिन की कमी से बड़ी से बड़ी भयानक बीमारियों के होने का डर रहता है। अब तक सात या छः विटामिन मालूम कर लिये गये हैं। इन विटामिनों की ठीक ठीक प्रकृति अभी मालूम नहीं हो पाई है। किन्तु यह निश्चयके साथ कहा जा सकता है कि कौन सा विटामिन किस प्रकार के भोजन में पाया जाता है तथा किस विटामिन की कमी से किस बीमारी का सन्देह है। विटामिनों के ज्ञानसे मनुष्य अपने शरीरकी आवश्यकताओं को समुचित रूपसे पूरी कर सकता है उदाहरणतया जिनमें विटामिन 'ए'

की कमी है वे उसे कॉडलिवर आयल तथा मक्खनके प्रयोग से पूरा कर सकते हैं। विटामिनों के आविष्कार से एक लाभ यह हुआ है कि हम बहुत सी वस्तुओंको स्थायी रूपमें बदल कर उनका प्रयोग कर सकते हैं। दूध को वैज्ञानिक सिद्धान्तोंके अनुसार सुखा कर रखा जा सकता है । तथा उन अवसरों पर जहाँ गाय का मिलना संभव नहीं होता उसका प्रयोग होता है। बहुतसे बच्चों को माताओंकी मृत्युके कारण गाय का दूध पीना पड़ता था। इससे उनका शरीर दुर्बल और शक्तिहीन रहता था। किन्तु अब उन सब अंशों को मिलाकर जो माँ के दूध में पाये जाते हैं उतनाही लाभदायक दूध बनायाजा सकता है। इस प्रकार की विधियोंसे किसी भी देशके भावी नवयुवकों को व्याधियों से बचाया जा सकता है।

अब शकर तथा रसायन विद्या के सम्बन्ध का प्रश्न उठता है। आजकल शुद्ध सफेद, सस्ती तथा स्वादिष्ट शकर मशीनों द्वारा रसायन शास्त्रके निर्धारित सिद्धान्तों पर ही बनाई जाती है। जरमनी इत्यादि कुछ देशों में शकर चुकन्दरसे बनाई जाती है। भारत इत्यादि अन्य देशोंमें शकर गन्ने से बनती है। किन्तु उन दोनों का स्वाद तथा विशेषताएँ आपस में मिलते हैं। इसका कारण यही है कि शकर एकही प्रकारके तत्वों के एकही अनुपातमें संयुजित होने पर बनती है।

रसायन की सेवा तथा कार्यशक्ति भोजन के उपादान ही एकत्रित कर देने तक नहीं सीमित है। वह भोजन की रक्षा भी करती है । यदि किसी रक्षा करने वाली वस्तु का प्रयोग नहीं किया जाय तो एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते समय बहुत सी वस्तुएँ सड़ जाया करें। "ऐथाइल क्लोराइड" (Ethyl Chloride) कारबन डाइऑक्साइड अमोनिया और सल्फोर डाई ऑक्साइड (Sulphur dioxide) खानेकी वस्तुओंको सड़नेसे बचाते है। बहुतसे डिब्बों में से, जिनमे खानेकी वस्तुएँ भरी जाती हैं, हवा निकाललो जाती है क्यों कि हवा की अनुपस्थितिमें बहुतसी वस्तुएँ खराब नहीं होतीं। तरह तरहके कागजों तथा वारनिशों का आविष्कार हुआ,जो खानेकी वस्तुएँ लेजाने वाले डिब्बे और टिनोंके बनानेमें काम आती हैं। शकर, नमक, सिरका, गंधक, अंडा, और जैतूनका तेल भी खानेकी वस्तुओंको सड़ने से बचाते हैं । इसी प्रकार अनाज तथा खेतीको कीड़ोंसे बचानेके लिये बहुत सी वस्तुओं का प्रयोग होता है। इनमें Paris Green) लेड आरसीनेट (Lead-arsenate) कैल्शियम आरसिनेट (Calcium Arsenate) Indigo) तथागन्धक विशेष हैं। खानेके विषय में रसायन विद्याकी एक देन है, खाने की वस्तुएँ जाँचनेके तरीके- इनसे हानिकार वस्तुएँकी जांच की जा सकती है। अमरिकामें अधिकतर सामान सरकार की जाँच के बाद बाहर भेजा जाता है। इस प्रकार वहाँ सरकार बाजार में उन्हीं वस्तुओं को बेचने की आज्ञा देती है जो सरकार द्वारा जाँचली जाती है। सारी जनता के स्वास्थ्यकी रक्षा के लिये यह एक अच्छी विधि है।

हमारे वस्त्रों में रसायन विद्या का प्रयोग एक विशेष स्थान रखता है । इस में कोई सन्देह नहीं कि कपड़ा अधिकतर रुई से बनता है किन्तु कपड़े को सुन्दरता तथा उसकी मज़बूती रसायन विद्याकी उन्नति की देन है। अच्छे-अच्छे डिज़ाइन तथा फैशनके कपड़े उनकी रंगाई का ही परिणाम है और इन रंगोंको बनानेका श्रेय रसायन विद्याको है। पहिले ये रंग पेड़ पौधों तथा धरतीसे निकलने वाली वस्तुओंसे बनाये जाते थे, किन्तु अब अधिकतर रंग वैज्ञानिकोंकी प्रयोग शाला से ही निकलते हैं और रंगोंके अन्वेषण में बहुत से देशोंने लाखों रुपये व्यय किये हैं। कोलतार द्वारा अनेक रंग बनाये जाते हैं और इस कलामें जरमनीने सर्वाधिक सफलता प्राप्तकी है। रासायनिकों ने अपनी प्रयोगशालामें अपने कठिन परिश्रमसे नील (Indigo) भी बना लिया है। लगभग ३० तरहकी रंगाईकी वस्तुएँ रसायन विद्याने निकाली हैं और उनमेंसे कुछका रंग इतना पक्का है कि किसी प्रकार भी नहीं छूट सकता। कभी तो डोरे को रंग कर कपड़ा बुना जाता है और कभी कपड़ेको बुनकर रंगा जाता है। सुन्दर सुन्दर डिज़ाइनों पर ही किसी कपड़ेकी मिलकी सफलता निर्भर है। कपड़ा यदि गहरे रंगमें रँगा जावेतो उसको हल्का भी कियाजा सकता है बड़ी शीघ्रता और सफ़ाईके साथ रंग उड़ानेके मसालों द्वारा । पहिले यदि किसी कपड़ेका रंग छुड़ाना होता था तो उसको धूपमें सुखा देते थे और वह कई दिनमें जाकर हल्का होता था। पर आजकल मिनटोंमें

कपड़ेका रंग हल्का किया जाता है या उड़ाया जाता है। रंग उड़ानेके लिये ओज़ोन हाईड्रजन परोक्साइड, और क्लोरीन प्रयोग में लाये जाते हैं।

कपड़े की मिलोंमें माड़ी और गोंदका प्रयोग भी अति आवश्यक है। कारण यह है कि किसी भी व्यापारी के व्यापार की सफलताके लिये कपड़ा तैयार होनेके बाद उसको एक चमक देना बहुत जरूरी है जो इन द्रव्योंसे सहज ही प्राप्त हो जाती है।

प्राकृतिक ऊन तथा रेशम की सफ़ाई करके उसका सुन्दर कपड़ा बनाने में भी इस विद्याका प्रयोग किसी प्रकार कम नहीं है। ऊन तथा रेशम अपनी नैसर्गिक दशामें मोम तथा चरबी से मिले होते हैं। जिनको कास्टिक सोडा द्वारा हटाया जाता है और ऊन तथा रेशम को कपड़ा बनाने योग्य बनाया जाता है इसका सबसे विचित्र प्रयोग बनावटी रेशम बनानेमें होता है जिसकी बनावट नीचे दी जाती है।

इसके लिये कपड़े के चीथड़े तथा कपड़े की लुगदी आरंभिक वस्तुएं हैं। सर्वप्रथम इनका रंग क्लोरीन द्वारा छुड़ाया जाता है और फिर दो घंटे तक उनको १६% कासटिक सोडा में घोटा जाता है। तत्पश्चात् उनको तरल पदार्थ से अलग करके उनकी मात्रा के ६०% 'सलफ़र डाई ऑक्साइड' से मिलाया जाता है। तीन या चार घंटे में जो वस्तु तैयार होती है उसमें कुछ और कास्टिक सोडा मिलाया जाता है। इन सब क्रियायों के उपरान्त जो वस्तु मिलती है उसको बारीक छेदों की चलनी पर रख कर ऊपर से मशीनों द्वारा दबाया जाता है जिससे महीन तार निकलने लगता है। बाद वाला काम गरम कमरों में किया जाता है। ये तार लपेट लिये जाते हैं और उनसे कपड़ा बुना जाता है। यह क्रिया रसायन-विद्या के सेलूलोज़ (Cellulose) की खोज पर निर्भर है।

रसायन विद्या ने तेज़ प्रकाश उत्पन्न करने में भी अधिक सहायता दी है। बिजली के आविष्कार के पूर्व रासायानिकद्रव्यों से प्रकाश उत्पन्न करने का महत्व आज से अधिक था। मोमबत्तियाँ आज भी काफ़ी जलाई जाती हैं। इनका निर्माण भी इसी विद्या के ज्ञान से होता है। चरबी को तेज़ाब के पानी के साथ उबाल लिया जाता है और फिर उसको भाप के सामने लाते हैं। उसमें थोड़ा सा चूने का पानी भी मिला होता है। इस क्रिया के परिणाम स्वरूप चरबी ग्लिसरीन, और इस्टियरिक, पामिटिक और औलेइक तेज़ाबों में टूट जाती है। इसके तरल तेज़ाब को ठोस (Solid) तेज़ाब से अलग करते हैं। ठोस तेज़ाबों को मोम से मिलाकर मोमबत्ती बनाते हैं। प्रकाश के सम्बन्ध में रसायन विद्याका सबसे आश्चर्यजनक आविष्कार पैट्रोमेक्स का है जो उसके मेन्टल के आविष्कार पर निर्भर है। कुछ अल्प मात्रा में पाये जाने वाले तत्वों के आक्साइड जब अधिक गरम किये जाते हैं तो बड़ी चमकदार ज्योति उत्पन्न होती है। इसी सिद्धान्त को लेकर पैट्रोमेक्स का आविष्कार किया गया था। आज भी हर्ष के अवसरों पर ये गैस लैम्प प्रकाश का समुद्र उडेंल देते हैं और इसके लाभों का अनुमान इससे भी हो सकता है कि कि संसार का मेन्टलों का खर्च तीस करोड़ प्रतिवर्ष का है।

आज संसार के बड़े-बड़े नगरों में गैस पाइप मिलते हैं जिससे आग की सैकड़ों कठिनाइयों से छुटकारा मिल जाता है। यह गैस (Coal-Gas) होती है। एक विशेष प्रकार के कोयले को जलाकर इसका निर्माण किया गया है। 'ऑक्सो-कोल गैस" के जलने से इतनी अधिक गरमी निकलती है कि नकली हीरे (Imitations) बनाये जाते हैं। ये हीरे (aluminium oxide) अलमोनियम ऑक्साइड को गरम करके बनाये जाते हैं और ये और असली लाल तथा नीलम के कान काटते हैं।

शीशे का आविष्कार संसार के अत्यन्त महत्वपूर्ण आविष्कारों में से एक है। सभ्यता की उन्नति में शीशे का बहुत बड़ा भाग है। विश्व शीशे के आविष्कारक का कितना ऋणी है—यह शब्दों में प्रकट करना असम्भव है। डा० जॉन्सन ने लिखा है—"जो मनुष्य शीशे का सर्व प्रथम अविष्कार कर रहा था, वह प्रकाश के आनन्द की वृद्धि कर उसको सफल कर रहा था, विज्ञान के क्षेत्र को विस्तृत कर रहा था, विश्व को अमर हर्ष का दान दे रहा था, तथा विद्यार्थी की सहायता प्रकृति के सौन्दर्य को समझाने में कर रहा था।" इतनी उपयोगी वस्तु 'रसायन' की ही देन है। साधारण

खिड़की का शीशा सोडा. लाइम, और अल्यूमिनियम के सिलीकेटस (Silicate) का मिश्रण होता है। शीशे की पारदर्शिता उसके अवयवों की शुद्धता पर निर्भर है। विशेष अवयव सफ़ेद रेत है जो इँगलैण्ड एवं फ्रान्स में पाया जाता है। इसको (Sodium carbonate) सोडा और खरिया के साथ मिलाकर मिट्टी के बर्त्तनों में रखते हैं और गैस द्वारा गरम करते हैं। पहिले शीशा धुँधला होता है पर बाद में साफ़ हो जाता है और पिघला हुआ शीशा मिलता है जिसको इच्छानुसार साँचों में ढाल कर अन्यान्य वस्तुएँ बनाई जाती हैं। साँचों में नली द्वारा चतुर कलाकार फूंकते हैं तो साँचे के के अनुसार वस्तु बन जाती है।

रसायन विद्या का एक दूसरा आश्चर्यजनक आविष्कार क़ागज़ है। आजकल विद्या का सारा काम क़ागज़ से चलता है। क़ागज़ के लाभों पर प्रकाश डालने को कोइ आवश्यकता नहीं। केवल इतना कहना पर्याप्त होगा कि संस्कृतिको, विचार धाराओं को अतीत की स्मृतियों को, तथा कलाओं को अमर बनाने में कागज़ का सबसे बड़ा हाथ है। इसके बनाने की विधि यह है—

अच्छा कागज़ बनाने में शुद्ध लकड़ी की लुगदी का प्रयोग होता है जिसमें शुद्ध सैलूलोज़ होता है। लकड़ी के टुकड़ों को दवाओं के साथ कॉस्टिक सोडा में घोटा जाता है। इससे पानी में न घुलने वाला अंश अलग हो जाता है। शेष पानी में घुल जाता है। बिना घुली चीज़ को छान कर अलग कर लेते हैं। इसका रंग क्लोरीन द्वारा छुड़ाया जाता है। और इसको मशीनों में दाब कर क़ागज़ बनाया जाता है।

आजकल हमारे दैनिक जीवन में शृङ्गार की वस्तुओं (टॉयलेट) का भी विशेष स्थान है। रसायन विद्या द्वारा लाभदायक मंजन, साबुन, तेल, सेन्ट, क्रीम, पाउडर, बूट-पालिस आदि कितनी ही सुगन्धित वस्तुएँ बनाई जाती हैं। इन सब में साबुन सर्वाधिक महत्व रखता है क्योंकि यह हमारे शरीर तथा कपड़ों की सफ़ाई के लिये अतिशय आवश्यक है। साबुन कैसे बनाया जाता है यह संक्षेप में नीचे दिया जाता है।

फ़ैक्टरियों में साबुन लोहे के बहुत बड़े-बड़े बर्त्तनों में बनाया जाता है जो गैसों द्वारा गरम किये जाते हैं। बढ़िया साबुन के लिये ज़ैतून का तेल और घटिया के लिये गोले. ताड़. या तिलका तेल प्रयोग में लाया जाता है। चरबी भी साबुन बनाने के लिये काम में आती है। इन तेलों तथा चरबियों को कॉस्टिक सोडा से पानी के साथ मिलाते हैं और उबालते हैं जब तक कि वे अच्छी तरह मिल नहीं जाते। इसके बाद उसमें नमक मिलाया जाता है इससे तरल वस्तु गाढ़ी हो जाती है। उसका कुछ अंश गाढ़ा बनकर ऊपर तैरने लगता है। नीचे की तरलता जिसमें अधिकतर "ग्लिसरोल" होता है अलग कर दी जाती है। इस प्रकार तैयार किया हुआ साबुन एक बार फिर कॉस्टिक सोडे के साथ गरम किया जाता है। तथा गरम गाढ़ा साबुन दो तीन दिन पश्चात् साँचों में ठंडा होने दिया जाता है।

हमारे मकानों, उच्च प्रासादों, और विशालभवनों की सुन्दरता बढ़ाने का एक बहुत बड़ा श्रेय वारनिशों तथा पेन्टों को है। सफ़ेद रोग़न बनाने में ज़िन्क सलफ़ाइड (Zinc sulphide) बेरियम सलफ़ेट (Barium sulphate) ऐन्टीमनी तथा टाइटीनियम आक्साइड्स (Oxides of antimony and titanium) का प्रयोग होता है। पेन्ट बनाने में अल्यूनिमियम तथा जस्ते का चूरा भी काम में लाया जाता है। वारनिश बनाने के लिये फ़ासिल रेज़िन्स (Fossil Resins) का प्रयोग सर्वाधिक होता है। पेन्ट तथा वारनिश तैयार करने के लिये उचित द्रव्यों का होना आवश्यक है। ऐसे द्रव्य जो आजकल प्रयोग में लाये जाते हैं, यह हैं ऐमाइल ऐसीटेट (Amyl-acetate) ब्यूटाइल तथा इथाइल ऐसीटेट (Butyl and ethyle acetate), नहाइड्रस एलकोहौल (anhydrous alcohol) डाइऐथाइलकारबोनेट (Diethyle Carbonate) इथाइल लेकटेट और ब्यूटाइल प्रोपिओनेट (Ethyl lactate and butyl propionate) फ़रफ्यूराल (Furfural) भी इस सम्बन्ध में अति उपयोगी सिद्ध हुआ है। सीमेन्ट मकान के बनाने में कितना उपयोगी है यह कहना व्यर्थ है। यह भी रसायन विद्या का उपहार है।

अब रसायन विद्या का अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रयोग होता

है दवाइयाँ बनाने में। हमारे स्वास्थ्य की रक्षा के लिये, हमारे जीवन को सुखी बनाने के लिये रसायन विद्या ने कितनी सहायता दी है, यह वर्णन से परे है। बड़ी से बड़ी भीषण बीमारियों को आजकल की दवाइयाँ तुरन्त अच्छा कर देती हैं। दवाइयों का विवरण प्रस्तुत करना आसान नहीं है। हज़ारों प्रकार के रोग तथा उनकी दवाइयाँ होती हैं। रसायनिकों ने मानव-शरीर के प्रत्येक अंगकी प्रकृति तथा उसकी मात्रा की जाँच अच्छी प्रकार कर ली है, और यदि उसमें किसी अंशकी कमी होती है तो अनेक बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं। इन्ज़ेकशन के द्वारा उसकी कमी पूरी की जाती है। उदाहरणार्थ कैल्शियम की कमी से आदमी पीला और दुर्बल हो जाता है। पर इन्ज़ेक्शन द्वारा शरीर में कैल्शियम पहुँचाया जा सकता है तथा कमज़ोरी को दूर किया जाता है। यह जानना रोचक होगा कि मनुष्य के शरीर में १० गैलन पानी, २४ पौन्ड कारबन, ⅛ औंस लोहा, ७ पौन्ड चूना, २ पौन्ड से कम फ़ासफ़ोरस ¹⁄₁₀ औंस शकर, १.८ औंस नमक, ११२ घनफ़ीट अक्सीजन (Oxygen) और ५६१ घन-फ़ीट हाईड्रोजन होती है। इनके अतिरिक्त कुछ और भी तत्व होते हैं जिनमें पोटैशियम. क्लोरीन, गन्धक तथा मैगनेशियम विशेष हैं। इन सबकी मात्रा १० औंस होती है।

दवाइयों में "टिन्कचर ऑफ़ आयोडीन (Tincture of iodine) ले लीजिये, जिससे प्रत्येक साधारण मनुष्य परिचित है। यह दवाई हमारी चोटें ठीक करनेके लिये बहुत उपयोगी हैं। आज कल दवाइयोंमें आरसनिक (Arsenic) नीला थोथा, (Copper sulphate) लोहा, जस्ता, गन्धक, आदि प्रयोगमें अधिक लाये जाते हैं।

उपर्युक्त प्रयोगोंके अतिरिक्त रसायन विद्याका प्रयोग दैनिक जीवनकी और भी सैकड़ों वस्तुओंमें होता है। युद्धमें देशकी रक्षाके लिये इसका प्रयोग और अधिक होता है। लेखनीमें इतनी शक्ति नहीं कि इस विद्यासे उत्पन्न लाभोंका वर्णन कर सके हमारे नवयुगके निर्माणमें सभ्यताके उत्थानमें, मानवताके दुःख और विश्वके सुधारमें रसायन विद्याका सर्वप्रथम स्थान है इस कथनमें कोई भी शंका नहीं कर सकता।

जल-परीक्षण

(ले० श्री विद्यासागर विद्यालंकार)

प्रारम्भिक-विचार जलमें कुछ इस प्रकारकी अशुद्धियां होती हैं जो व्यवसायिक प्रयोजन या पीनेके लिए प्रयुक्त होने वालों जलको हानिकारक बना देती हैं। इसलिए इनको पहिचानने तथा दूर करनेके लिए जलकी रासायनिक परीक्षाकी जाती है। जलकी यह परीक्षा इस बातका ध्यान रख करकी जाती है कि उसे किस कार्यके लिए प्रयुक्त करना है। यदि साबुनसे कपड़े आदि धोने या क्वथनक (ब्वायलर) में भाप पैदा करनेके लिए पानीकी आवश्यकता है तो जलमें उपस्थित खनिज पदार्थ, कुल ठोस अवशेष स्थायी और अस्थायी कठोरता तथा अम्लकी अशुद्धियांही जाननी होती हैं। जल में विद्यमान अन्य अशुद्धियों को जानने व दूर करने की अधिक आवश्यकता नहीं होती।

इसी प्रकार पीनेके लिए प्रयुक्त किये जाने वाले पानीमें उन्हीं अशुद्धियोंको देखा जाता है जो स्वास्थ्यके लिए हानिप्रद हैं। यह अशुद्धियां दो प्रकारकी होती हैं। प्रथम प्रकारकी अशुद्धियां पानीमें खनिज पदार्थोंके घुलनेके कारण होती हैं। कुछ खनिज पदार्थ विषैले होनेसे पानीको भी विषैला कर देते हैं, उदाहरणके लिए हम सीसकके लवणले सकते है। दूसरे प्रकारकी अशुद्धियाँ पानीमें सड़ाद पैदा करने वाली होती हैं जो पानीके नालीमेंसे गुजरते हुए गली सड़ी वस्तुओंके संपर्कमें आनेसे उसमें पैदा हो जाती हैं। इन्हें पानीमें उपस्थित अमोनियम समास, क्लोराइड नाइट्राइट या नाइट्रेट द्वारा जाना जाता है।

पानीमें जो अशुद्धियां कार्बनिक-पदार्थोंके रूपमें होती

हैं उनके परीक्षणके लिए कुछ विशेष विधियोंका प्रयोग करते हैं पहले पानीको वाष्पीकरण द्वारा उड़ा देते हैं, फिर अवशेष में "ज्वलन-विधि" से कार्बनिक कार्बन और नाइट्रोजनकी मात्रा जान ली जाती है ऐसे कार्बनिक अशुद्धियों को जानने का पता लग जाता है। ऐसी अशुद्धियों के लिए आजकल अन्य विधियां भी काम में लाई जाने लगी हैं।

पानीके नमूनोंका संग्रह—इस कार्यके लिए शीशेकी बोतल सबसे अच्छी रहती हैं, पत्थरकी बोतलें तथा कार्क आदि इस कार्यके लिए सर्वथा अनुपयुक्त हैं। पानी इकट्ठा करनेसे पहिले बोतलोंको अच्छी प्रकार धो कर सुखा लेना चाहिए। यदि ये बोतलें पहिले अम्ल आदि रखने के काम आती रही हों तो बहुत अच्छा है क्योंकि ऐसी बोतलें शीघ्र ही साफ हो जाती हैं। इन कारणोंसे विनचैस्टर क्वार्ट बोतल उपयुक्त होती है। इनका आयतन २४०० घन सेंटीमीटर होता है इसलिए विश्लेषण में पानीसे भरी हुई ऐसी एक बोतल पर्याप्त रहती है।

भिन्न-भिन्न जल भिन्न-भिन्न विधियों से इकट्ठे किये जाते हैं। पम्प या नल से जो पानी नमूनेके लिये लिया जाता है उसमें यह सावधानी रखनी चाहिए कि पहिले नल को खोलकर कई गैलन पानी बहा देना चाहिए, फिर तब नमूनेके लिए पानी बोतल में भरना चाहिए। नदी या झरनेसे नमूनेका पानी लेते समय उसे अच्छी प्रकारसे हिला लेना चाहिए। इसके लिए बोतलको पानीमें ऊपर नीचे कई बार डुबाना चाहिए।

बोतलमें पानी इतना भरना चाहिए कि वह डाटसे आधा इञ्च नीचे रहे। भरनेके बाद इसे शीघ्र ही डाटसे बन्द कर देना चाहिए। अब इसके ऊपर रबर या सनके कपड़ेका टुकड़ा धागेसे या ताम्बे की तारसे कस कर बाँध कर लाखसे बंद कर देना चाहिए। ऐसा पदार्थ काममें नहीं लाना चाहिए जो बोतल को खोलनेके समय अन्दर जा पड़े और पानीके विश्लेषणमें बाधा उपस्थित करे। इन बोतलोंको ठण्डे और अंधेरे कमरोंमें रखना चाहिए। पानीका नमूना लेने और उसे खोलनेके बाद दोनों अवस्थाओंमें यथासम्भव शीघ्र ही अमोनिया और कार्बनिक पदार्थों को जान लेना चाहिए, क्योंकि पानीके खुला रहने पर उसमें उपस्थित रासायनिक और भौतिक परिवर्तन शुरू हो जाते हैं, वैसे तो बोतलके बन्द रहने पर भी थोड़ी बहुत मात्रामें परिवर्तन होते रहते हैं। विश्लेषणके लिए पानी को बोतलसे निकालनेके पहिले अच्छी प्रकार हिला लेना चाहिए। यदि पानीमें गंदलापन अत्यधिक हो तो विश्लेषण से पूर्व उसे छान लेना चाहिए। छने द्रव और ऊपर प्राप्त हुए अवशिष्ट पदार्थका अलग अलग विश्लेषण करना चाहिए

अवलम्बनस्थ पदार्थों की परीक्षा

अवलम्बनस्थ पदार्थ प्रायः अपूर्ण छाननके कारण होते हैं। सीसक पर पानीकी क्रियाके कारण या अन्य कारणोंसे भी ये पदार्थ हो सकते हैं। इनको जाननेके लिए निम्न विधियां काममें लाई जाती हैं।

(१) पहिले एक छाननपत्र लेकर उसे भार स्थिर होने तक ११०° श० पर सुखाते हैं। तब इससे परीक्षणीय पानीकी निश्चित मात्रा छानते हैं। छाननपत्र पर आये हुए अवलम्बनस्थ पदार्थों को स्रवित जलसे अच्छी प्रकार धोकर भार स्थिर होने तक ११०° श० पर सुखाते हैं। इस प्रकार छानन-पत्रके भारमें जो वृद्धि होता है उसीसे छने पानीकी मात्रामें उपस्थित अवलम्बनस्थ पदार्थों का भार ज्ञात हो जायेगा। इससे १०,००,००० भाग पानीमें विद्यमान अवलम्बनस्थ पदार्थ की मात्रा जान ली जाती हैं।

ऊपर प्राप्त हुए अवशेषमें कार्बनिक और अकार्बनिक दोनों प्रकार के पदार्थ होते हैं जिनको अलग अलग जानने के लिए निम्न विधि प्रयोग में ला सकते हैं:—

एक प्लेटिनम या चीनी मिट्टीकी मूषा लेकर उसमें छानन-पत्रका सारा पदार्थ डाल दो और छानन पत्रको प्लेटिनमकी तारमें लपेट कर जला कर इसकी राख इसी मूषा में डालो। इस मूषा को इतना गरम करो कि लाल हो जाय जिससे अवशेष में उपस्थित कार्बनिक पदार्थ जल जायगें। जब इसका सारा कार्बन जल जावे तो इसमें अमोनियम कार्बनेटकी कुछ बूंदे डाल कर कम तापमान पर गरम करो और ठंडा होने पर तोल लो। प्राप्त भार

† फैंकलैण्ड और आर्मस्ट्रां द्वारा ज्ञात

में से छारण पत्रकी राख और मूषा का भार घटा देनेसे अवलम्बनस्थ पदार्थों में उपस्थित अकार्बनिक पदार्थोंका भार प्राप्त होगा । अवलम्बनस्थ पदार्थों के कुछ भारमेंसे अकार्बनिक पदार्थोंके भारको निकाल देनेसे कार्बनिक पदार्थोंका भार ज्ञात हो जायेगा ।

घुले हुए कुल ठोस पदार्थों की मात्रा निर्धारण—इस कार्य के लिये निम्न उपकरण लो :—

(१) प्लाटिनम या चीनी मिट्टी की प्याली जो वाष्पीकरण के लिये प्रत्युक्त होती है ।

(२) अभ्रक प्लेट, उपयुक्त प्याली को ढकने के लिये

(३) शोषक (डेसी केटर)

(४) बीकर (बीकर के मुख का आयतन प्याली के निचले भाग के समान हो जिससे प्याली बीकर पर रखे जाने पर बीकर को अच्छी प्रकार ढक ले)

(५) कुप्पी (१ लिटर आयतन वाली)

उपयुक्त प्याली को स्रवित पानी से धोकर लाल गरम करो और शोषक में रख कर ठण्डा करके अभ्रक प्लेट के साथ तोल लो । अब बीकर को दो तिहाई पानी से भरकर उसमें कुछ कागज़ के टुकड़े डाल दो जिससे पानी उछल उछल कर न उबले । इस पर उपयुक्त प्याली को रखदो और १ लिटर आयतन वाली कुप्पी में १००० घ० सं० परीक्षणीय पानी लेकर प्याली में इतना पानी डालो कि मुख से १ सैण्टीमीटर नीचे तक रहे । बीकर को नीचे से गरम करने पर भाप पैदा होगी जिससे प्याली गरम होगी और उसका पानी उड़ना शुरु हो जायगा । जब प्याली का पानी उड़कर कम हो जाय तो उसमें कुप्पी से और पानी डाल दो और यह क्रिया तब जारी रखो जब तक कुप्पी का सारा १ लिटर पानी वाष्प बन-कर उड़ न जाय । अब प्याली की बाहरी दीवार को साफ करके वाष्प भट्ठी में भार स्थिर होने तक गरम किया जाता है और अन्त में ठण्डा करके अभ्रक प्लेट के साथ तोल लिया जाता है । प्राप्त भार में से प्याली और अभ्रक प्लेट का भार घटाने से १ लिटर पानी में उपस्थित घुले हुवे ठोस पदार्थों की मात्रा ज्ञात हो जाती है ।

बहुधा अवशेष पदार्थ वायु में से आर्द्रता चूसने वाले होते हैं इसलिये प्याली आदि को ठण्डा होते ही एकदम से तोलना चाहिए ।

पानी की स्वास्थ्य सम्बन्धी परीक्षा— हम पहले लिख चुके हैं कि जो पानी पीने के काम में लाया जाता है उसमें स्वास्थ्य के लिये हानिप्रद वस्तुएं भी पाई जाती हैं । इन हानिप्रद वस्तुओं की परीक्षा भौतिक और रासायनिक दोनों दृष्टियों से की जाती है । भौतिक परीक्षा में पानी का गंदलापन, रंग, गन्ध और कदाचित् स्वाद भी देखते हैं । रासायनिक परीक्षा में कुल अवशेष, अवशेष को तेज़ गरम करके जलाने से जो भार में कमी हो वह तथा कुल ठोस पदार्थ देखे जाते हैं । इस प्रकार जलाने से जो गन्ध पैदा होती है उसकी ओर विशेष ध्यान देना चाहिए और जलाने के पूर्व तथा बाद में अवशेष का रंग भी देखना चाहिए । इसके अतिरिक्त पानी में स्वतन्त्र अमोनिया, एल्ब्यूमिनायड अमोनिया, नाइट्रोजन का नाइट्राइट और नाइट्रेट के रूप में, क्लोरिन का क्लोराइड के रूप में और शोषित आक्सीजन का भी निश्चय किया जाता है । जो पानी अत्यधिक दूषित होते हैं उनमें कार्बनिक नाइट्रोजन का निश्चय किया जाता है । प्रायः यह कार्बनिक नाइट्रोजन एल्ब्यूमिनायड अमोनिया के रूप में पाया जाता है । जब कार्बनिक पदार्थ विच्छिन्न होते हैं तो नाइट्रोजन पहिले स्वतन्त्र अमोनिया के रूप में प्राप्त होता है, जब इसका उपचयन होता है तो नाइट्रोजन नाइट्राइट के रूप में और अधिक उपचयन होने पर नाइट्रेट के रूप में प्राप्त होता है । यही अन्तिम अधिक स्थिर रहने वाला है । जिन प्रदेशों के पानी में क्लोरीन अधिक पाई जाती है, वहाँ नाली से क्लोरिन की उपस्थिति के कारण अशुद्धियाँ पानी में घुल जाती हैं जो पानी की मात्रा निर्धारण के समय मालूम हो जाती हैं । कभी २ पानी में ऐसे कार्बनिक यौगिक पाये जाते हैं जो पोटाशियम परमैंगनेट और अम्ल की उपस्थिति में आक्सीजन छोड़ते हैं । इस आक्सीजन को "शोषित आक्सीजन" के नाम से पुकारा गया है ।

पानी की भौतिक परीक्षा—पानी की भौतिक परीक्षा में उसका गदलापन, रंग स्वाद और गन्ध देखे जाते हैं । इनकी मात्रा निर्धारण के लिए प्रमाण-घोल तैयार किये

जाते हैं. इन प्रमाण-घोलों में मालूम किये जाने वाले पदार्थ की ज्ञात मात्रा घुली होती है, इनके रंग से परीक्षणीय घोल के रंग की तुलना की जाती है। प्रमाण-घोल से परीक्षणीय घोल का रंग मिलने पर प्रमाण घोल में उपस्थित पदार्थ की मात्रा के अनुसार परीक्षणीय घोल में भी पदार्थ की मात्रा विद्यमान होगी ऐसा समझ लिया जाता है।

गंदला पन—पानी में गंदलापन प्रकट करने के लिए कहा जाता है कि दस लाख भाग पानी में इतने भाग सिलिका (SiO_2) अवलम्बित है। इसलिए जब यह कहा जाय कि यह पानी १०० गंदलापन का है तो उसका अभिप्राय होगा कि १० लाख भाग पानी में १०० भाग सिलिका के हैं। इस काम के लिए जो प्रमाण घोल तैयार किया जाय उसमें सिलिका के कण इतने अधिक बारीक होने चाहिए कि एक मिलीमीटर व्यास का तार उस पानी (सिलिका के कण अवलम्बित हैं) के ठीक केन्द्र में ऊपर की सतह से १०० मिलीमीटर तक नीचे रखा जाने पर, तार से १.२ मीटर ऊपर से देखने वाले को तार अच्छी प्रकार दिखाई दे। यह निरीक्षण दोपहर के समय खुली हवा में करना चाहिए, धूप न हो इसका ध्यान रखना चाहिए।

इसका प्रमाण घोल तैयार करने के लिए निक्षिप्त फुलर की मिट्टी २०० मैश-सीव की काम में लानी चाहिए। १ लिटर स्रवित पानी में १ ग्राम इस मिट्टी के डालने से १००० गदले पन का प्रमाण घोल तैयार हो जायेगा। जब तुलना करनी हो तो इसे हलका करके काम में ला सकते हैं। प्रमाण घोल तैयार करने की दूसरी विधि निम्न है :—२०० मैश सीव की फुलर की मिट्टी को स्रवित पानी में खूब हिला २ कर अवलम्बित किया जाता है। इसे अब दस घंटे के लिए अलग रख देते हैं जिससे जो मिट्टी निक्षिप्त होनी होगी वह निक्षिप्त हो जायेगी, शेष पानी को अलग करके, उसके निश्चित आयतन का वाष्पीकरण करके उसमें सिलिका (या फुलर की मिट्टी) की मात्रा जान लो।

रंग—पानी को छानपत्र द्वारा छानकर सभी अवलम्बित पदार्थों को निकाल देना चाहिए जिससे पानी का रंग देखते हुए उनका रंग उसमें न आ जावे। अब रंग की तुलना के लिए निम्न प्रकार से घोल तैयार करो :—

१.२४६ ग्राम पोटाशियम प्लाटिनिक क्लोराइड ($PtCl_4KCl$) जिसमें ०.५ ग्राम प्लाटिनम होता है और १ ग्राम स्फटिक कोबल्ट क्लोराइड ($CoCl_2 6H_2O$) जिसमें ०.२५ ग्राम कोबल्ट होता है पानी में घोले जाते हैं। इसमें १०० घ० सें० हाइड्रोक्लोरिक एसिड मिला कर द्रव को स्रवित पानी से १ लिटर बना लेते हैं। यह घोल ५०० रंग का है। जब इस घोल को तुलना के लिए काम में लाना हो तो स्रवित पानी से हलका कर लिया जाता है। परन्तु यह ध्यान में रखना चाहिए कि पानी का रंग ७० से अधिक हो तभी उसे हलका किया जाता है। इन प्रमाण घोलों को जब निरीक्षण के काम में लाना हो तो इन्हें "नैसलर-नलिका" में, जिसमें २० से २५ सैन्टीमीटर में १०० घ० सें० के चिन्ह हों, भर लेना चाहिए और लम्ब रूप में नीचे से ऊपर की सफेद परावर्तन-समर्थ तल तक देखना चाहिए।

गन्ध—पानी में गन्ध देखने के लिए गरम और ठण्डे दोनों प्रकार के नमूनों की परीक्षा करनी चाहिए। जिस बोतल में पानी रखा हो उसे खोलते ही गन्ध की परीक्षा कर लेनी चाहिए, क्योंकि यह बहुत अस्थिर और शीघ्र ही गुम हो जाने वाली होती है।

ठण्डी अवस्था में—जिस बोतल में पानी हो उसे पहिले अच्छी प्रकार हिला लेना चाहिए इस कार्य के लिए यदि बोतल आधी भरी हुई हो तो अच्छा है क्योंकि हिलाने में सुविधा रहेगी। हिलाने के बाद शीशे की डाट खोल कर गन्ध देख लो।

गरम अवस्था में—एक ४०० घ० सें० के बीकर में परीक्षणीय पानी का १५० घ० सें० लेकर उसे अच्छी प्रकार ढककर इतना गरम करो कि पानी उबले नहीं परन्तु उबलने के समीप पहुँच जाय। इसे ठण्डा करके हिलाओ तथा ढक्कन हटा कर सूँघो। इस गन्ध को पहिचानो कि

१. यह ध्यान रखना चाहिए कि प्लाटिनिक लवण चमकीले पीले रंग का हो अशुद्ध प्लाटिनम लवण जो किलाल रंग का होता है, काम में नहीं लाना चाहिए।

यह घास की सी है, मिट्टी की सी है, सड़ी लकड़ी की सी है, मछली की सी है, उग्र है, अवांछनीय है, सुगन्धित है अथवा दुर्गन्धित है आदि । निम्नतालिका गन्ध की तीव्रता को बतलाती है।

संख्या सबंधी मान	परिभाषा	परिभाषाओं के लक्षण
०	बिल्कुल नहीं	गन्ध होती ही नहीं
१	बहुत हलकी	साधारणतया पता नहीं लगती परन्तु अनुभवी और दक्ष व्यक्ति प्रयोगशाला में इसे पहिचान लेता है।
२	हलकी	ध्यान खींचे जाने पर गन्ध पहिचान लेते हैं अन्यथा नहीं।
३	स्पष्ट गन्ध	यह गन्ध शीघ्र ही पहिचान ली जाती है और पानी को काम में लाने की अनिच्छा होती है।
४	निश्चित	यह ध्यान को स्वयं आकृष्ट करती है और पानी को अरुचिकर बना देती है।
५	बहुत तीव्र	पानी को पूर्ण रूप से पीने के अयोग्य कर देती है; यह परिभाषा बहुत तीव्रतम गन्ध में प्रयुक्त करते हैं।

स्वाद—पानी का स्वाद भी गरम और ठण्डी दोनों अवस्थाओं में देखते हैं। गन्ध देखने की विधि के अनुसार इसे भी कई श्रेणियों में विभक्त करके स्वाद को नमकीन, मीठा, खारा, कड़ुवा आदि में प्रगट कर सकते हैं।

पानी की रासायनिक परीक्षा—इसमें पानी को रासायनिक विधियों से जांचते हैं तथा उसमें उपस्थित अशुद्धियों का मात्रा-निर्धारण करते हैं।

क्लोरीन क्लोराइड रूप में—इस कार्य के लिए निम्न परीक्षक चाहिए।

परीक्षक १—सिलवर नाइट्रेट का प्रमाण घोल—·०५९९ ग्राम सिलवर नाइट्रेट को थोड़े स्रवित पानी में घोल कर २५० घ० से० तक करलो। इस घोल का एक घ० से० = ०·०००५ ग्राम क्लोरीन।

परीक्षक २—पोटाशियम क्रोमेट का १०°/० उदासीन घोल तैयार करो।

क्रिया—पिघट से दो चीनी मिट्टी की प्यालियों में पृथक्-पृथक् ५० घ० से० नमूने का पानी लेकर प्रत्येक में दो-दो बूंद पौटाशियम क्रोमेट का घोल मिलाओ। अब इनमें से एक प्याली में ब्यूरेट से सिलवर नाइट्रेट का घोल धीमे-धीमे एकबार में ०·१ घ० से० की मात्रा में गिराओ और हिलाते रहो। सिलवर नाइट्रेट का घोल तब तक डालते रहो जब तक हलका लाल रंग न दीखने लगे। इसके रंग की तुलना दूसरी प्याली में रखे द्रव से करते रहो। इस परीक्षण को दो तीन बार दोहराओ और ब्यूरिट के अंकों की औसत ले लो।

यदि ५० घ० से० पानी के लिए १ घ० से० सिलवर नाइट्रेट व्यय होता है जो ·०००५ ग्राम क्लोरीन के बराबर होती है। इसलिए ५० सी० सी० पानी में ·०००५ ग्राम क्लोरीन होगी।

$$\text{दस लाख भाग पानी में} = \frac{\cdot0005 \times 1000000}{50} =$$

१० ग्राम

शोषित आक्सीजन—पानी में शोषित आक्सीजन की परीक्षा के लिए निम्न परीक्षक चाहिए :—

परीक्षक १—पोटैशियम परमैंगनेट का प्रमाण घोल ०·३९५ ग्राम शुद्ध लवण १ लिटर स्रवित जल में घोलो।

† अमेरिकन पब्लिक हैल्थ असोसियेशन स्टैण्डर्ड मेथड्स १९१३ पृ० सं० १२

१ घ० से० घोल से ०·०००१ ग्राम आक्सीजन 'उपचयन' के लिए प्राप्त होता है।

परीक्षक २—अमोनियम आक्जेलेट का प्रमाण घोल-०·८८८ ग्राम शुद्ध अमोनियम आक्जेलेट १ लिटर स्रवित पानी में घोलो। १ घ० से० घोल = ०.०००१ ग्राम आक्सीजन।

अमोनियम आक्जेलेट के प्रमाण घोल से विलेयमापन द्वारा पोटाशियम परमैंगनेट के घोल को प्रमाणित कर लेना चाहिए।

परीक्षक ३—हल्का सल्फ्यूरिक एसिड—३ आयतन पानी में १ आयतन सान्द्र सल्फ्यूरिक एसिड मिलाओ। यह घोल उपचायक पदार्थों से रहित होना चाहिये। इसमें थोड़ा सा पोटाशियम परमैंगनेट मिला दो जिससे कुछ देर के बाद हलका गुलाबी रंग आ जाय।

क्रिया—४२० घ० से० की एरलेन मेयर कुप्पी में १०० घ० से० लेकर ५ घ० से० हल्के सल्फ्यूरिक एसिड से अम्लीय कर लो। इसमें १० घ० से० पोटाशियम परमैंगनेट के प्रमाण घोल को ब्यूरिट द्वारा डालो और कुप्पी को उबलते हुए पानी में ३० मिनिट तक इस प्रकार रखो कि उबलते हुये पानी का ऊपरी तल कुप्पी में रखे हुये द्रव के तल से ऊँचा रहे। यदि गरम करने पर गुलाबी रंग उड़ जाय तो और १० घ० से० परमैंगनेट घोल मिलाओ और पुनः उपर्युक्त प्रकार से गरम करो। जब तक कुप्पी में स्थिर गुलाबी रंग न प्राप्त हो जाय, इस क्रिया को दोहराते रहो। अब गरम पानी में से निकाल कर १० घ० से० आक्जेलिक घोल को मिलाओ और इस घोल की अधिकता का निश्चय परमैंगनेट के घोल से कर लो। कुल प्रयुक्त पोटाशियम परमैंगनेट में से १० घ० से२ आक्जेलिक एसिड निकाल लो, शेष शोषित आक्सीजन के तुल्य परमैंगनेट घोल होगा।

यदि पानी बहुत खराब हो तो उसकी थोड़ी मात्रा लेकर उसे १०० घ० से० में कर लेना चाहिए। क्योंकि यह नितान्त अवांछनीय है कि उबलते हुए पानी में परमैंगनेट का गुलाबी रंग न रहे।

स्वतन्त्र अमोनिया—जिस उपकरण से स्वतन्त्र अमोनिया का मात्रा-निर्धारण करते हैं, उसमें यथासंभव जोड़ कम से कम होने चाहिये, जिससे बाह्य अशुद्धियों के आने की संभावना न रहे और उपकरण में रखे पदार्थ का विच्छेदन न हो। उपकरण में लवण की कुप्पी तथा घनीकारक होने चाहिए। पास में एक सुरक्षक-नलिका रख लेनी चाहिए जिससे भाप के साथ उठने वाली अशुद्धियों को हटाया जा सके। इसमें निम्न परीक्षक चाहिए :—

क. अमोनिया रहित पानी

ख. अमोनियम क्लोराइड का प्रमाण घोल—३.८२ ग्राम अमोनियम क्लोराइड १ लिटर स्रवित पानी में घोलो। इस घोल का १० घ० से० लेकर अमोनिया रहित जल से उसको १ लिटर बना लो। इस घोल के १ घ० से० में नाइट्रोजन ०.०००० १ ग्राम होगा।

ग. नैसलर घोल—२१ ग्राम पोटाशियम आयोडाइड को थोड़े पानी में घोलो। इसमें मरक्यूरिक क्लोराइड के संतृप्त घोल की कुछ अधिक मात्रा डालो, यह अधिकता घोल में झलकनी चाहिए। इसमें ४०० घ० से० ५०% पोटाशियम हाइड्राक्साइड का घोल मिलाओ। जब इसमें तलछट बिल्कुल न रहे तो इसे पानी से १ लिटर कर लो, कुछ समय के लिए रखकर बाद में निकाल लो।

अथवा—२५० घ० से० पुनः स्रवित पानी में ६१.७५ ग्राम पोटाशियम आयोडाइड घोलो, इसमें मरक्यूरिक क्लोराइड का ठण्डा घोल मिला दो (मरक्यूरिक क्लोराइड को पानी में घोल कर उबालो, इस उबलते हुये पानी मे मरक्यूरिक क्लोराइड का संतृप्त घोल तैयार करके ठण्डा करके काम में लाओ) मरक्यूरिक क्लोराइड के घोल में पोटाशियम आयोडाइड का घोल सावधानी से मिलाओ और घोल की इतनी मात्रा मिलाओ जिससे इस मिश्रण-घोल का रङ्ग स्थायी चमकीला हो जाय। इस चमकीले लाल रङ्ग को प्राप्त करने के लिए मरक्यूरिक क्लोराइड-घोल ४०० घ० से० से कुछ ही ऊपर लगेगा। इस लाल निक्षेप को घोलने के लिए ठीक .७१ ग्राम पोटाशियम आयोडाइड मिला दो। अब इस मिश्रण घोल में १५० ग्राम पोटाशियम हाइड्राक्साइड को २५० घ० से० पानी में घोलकर मिला दो, इस मिश्रण-घोल को पानी

से १ लिटर कर लो इस घोल को अच्छी प्रकार हिलाकर निक्षेप को नीचे बैठने दो और द्रव को नितार लो।

क्रिया—परीक्षण आरंभ करने से पूर्व उपकरण को निम्न प्रकार से अच्छी तरह साफ करो। जैलडाल की ८०० घ० सें० की कुप्पी लेकर ५०० घ० से० स्रवित जल से भरो, इसमें चुटकी भर सोडियम कार्बनेट डालकर स्रवण शुरु करो। स्रवण शुरु हो जाने पर घनीकारक के बाह्य आवरण में पानी नहीं छोड़ना चाहिए, जिससे भाप सारे उपकरण को अच्छी प्रकार से धो दे। अब बाह्य आवरण में पानी छोड़ो और स्रवित जल प्राप्त करो। जब लगभग २५० घ० सें० जल स्रवित हो चुके तो उसके अन्तिम ५० घ० से० में नैसलर-घोल मिला कर परीक्षा करो कि १५ मिनट तक कोई रङ्ग तो नहीं आता यदि रङ्ग आये तो यह स्रवण तब तक करते रहना चाहिए, जब तक कि स्रवित पानी "नैसलर-घोल से रङ्ग देना बन्द न कर दे। अब इस जैलडाल की कुप्पी को खाली कर दो।

इस जैलडाल कुप्पी में परीक्षणीय पानी भरो, यदि यह पानी अम्लीय हो तो इसे शुद्ध सोडियम-कार्बनेट से उदासीन कर लेना चाहिए। यह ध्यान रखना चाहिए कि सोडियम-कार्बनेट की थोड़ी भी अधिक मात्रा अमोनिया को शीघ्र अलग कर देती है परन्तु इससे पानी का उछलना बन्द हो जायेगा। अब स्रवण प्रारम्भ करो, प्रति मिनट स्रवित जल ६ से १० घ० सें० प्राप्त होना चाहिए। इस स्रवित जल के पचास पचास घ० सें० तीन नैसलर जारों में अलग इकट्ठा करके प्रत्येक में २ घ० सें० नैसलर घोल मिला दो। १० मिनट बाद अमोनियम क्लोराइड और नैसलर घोल से तैयार प्रमाण घोलो से (जिनमें अमोनिया की मात्रा हमें ज्ञात है) तुलना करो और पानी में अमोनिया की मात्रा जान लो।

एल्ब्यूमिनायड-अमोनिया—इसके निश्चय के लिए निम्न परीक्षक तैयार करो।

क्षारीय पोटाशियम परमैंगनेट घोल—१२५० घ० सें० पानी में २०० ग्राम पोटाशियम हाइड्राक्साइड और ८ ग्राम शुद्ध पोटाशियम परमैंगनेट घोलो। इस घोल को उबाल कर एक लिटर कर लो और गरम घोल ही बोतल में भर लो।

क्रिया—स्वतन्त्र अमोनिया के निश्चय के बाद जैलडाल कुप्पी में बचे हुये पानी में ५० घ० सें० क्षारीय पोटाशियम परमैंगनेट का घोल मिला दो इसमें झाँवा पत्थर के कुछ टुकड़े धो करके डालो और गरम करो। इन्हें जैलडाल कुप्पी में डाल कर स्रवण शुरु करो इस प्रकार स्रवित जल को चार या पाँच नैसलर जारों में पृथक् २ ५० घ० सें० ले लो और प्रत्येक में २ घ० सें० नैसलर घोल मिलाओ। १० मिनट के बाद इनके रङ्गों की तुलना, स्वतन्त्र अमोनिया की परीक्षा के समान, करो।

कार्बनिक नाइट्रोजन—नमूने वाला पानी लेकर उसे स्वतन्त्र अमोनिया रहित कर दो और इसमें शुद्ध सल्फ्यूरिक एसिड (नाइट्रोजन रहित) मिलाकर अम्लीय करो। इसे एक प्याले में पकाओ जिससे अम्ल का धुआं बिल्कुल निकल जाये और द्रव रङ्गहीन हो जाये। यदि पानी के उछलने का भय हो तो उसमें झाँवा पत्थर के गरम टुकड़े डाल दो। इसे ठण्डा करो और अमोनिया रहित पानी से हलका करके १०% सोडियम कार्बनेट के घोल (घोल अमोनिया रहित होना चाहिए) से इसे उदासीन करो। इस मिश्रण-घोल का स्रवण करो और स्रवित द्रव को नैसलर-नलिकाओं में भर कर रङ्गों की तुलना, स्वतन्त्र अमोनिया और एल्ब्यूमिनायड अमोनिया की परीक्षा के समय की गई तुलना के समान करो।

स्थायी प्रमाण—प्रायः नैसलर घोल अधिक देर तक रखने से, विशेष रूप से वर्षा ऋतु में, खराब हो जाता है। इसलिए प्लाटिनिक घोल और कोबल्ट घोल को मिलाकर स्थायी प्रमाण घोल तैयार किये जाते हैं। स्थायी प्रमाण घोल तैयार करने के लिए २ ग्राम पोटाशियम प्लाटिनक क्लोराइड को पानी में घोला जाता है, इसमें १०० घ० सें० सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक एसिड मिलाकर १ लिटर कर लिया जाता है। कोबल्ट घोल तैयार करने के लिए १२ ग्राम कोबल्टस क्लोराइड ($CoCl_2 6H_2O$) स्रवित पानी में घोला जाता है, इसमें १०० घ० सें० हाइड्रोक्लोरिक एसिड मिला कर १ लिटर कर लिया

जाता है। इन दोनों घोलों की तालिका में दी हुई मात्राओं को मिलाने से प्रमाण घोल तैयार हो जायगें। तालिका में दी हुई संख्याओं को घ० से० में लेकर नैसलर-नालिकाओं में स्रवित पानी से ५० घ० से० कर लेना चाहिए। जो नैसलर नालिका ली जायँ वे २० से २१ सेन्टीमीटर लम्बी हों और उनमें १५० घ० से० के चिह्न बने हों। जो स्थायी प्रमाण घोल तैयार किये जायँ उनकी तुलना अमोनियम क्लोराइड और नैसलर घोल से तैयार घोल से करनी चाहिए। अमोनियम क्लोराइड और नैसलर घोल से तैयार घोल में अमोनियम क्लोराइड की जो मात्रा हो उसके तुल्य आयतन उस स्थायी प्रमाण घोल में प्लेटिनिक् और कोबल्ट घोल की मात्रा तालिका में दिखाये अनुसार होनी चाहिए। यदि आवश्यकता हो तो नैसलर घोल को पोटाशियम आयोडाइड और मरक्यूरिक क्लोराइड की मात्रा बदल कर ठीक कर लेना चाहिए।

अमोनियम क्लोराइड प्रमाण घोल के तुल्यायतन घ० से०	प्लेटिनम घोल घ० से०	कोबल्ट घोल घ० से०
०.०	१.२	०.०
०.१	१.८	०.०
०.२	२.८	०.०
०.४	४.७	०.१
०.७	५.६	०.२
१.०	७.७	०.५
१.४	६.६	१.१
१.७	११.४	१.७
२.०	१२.७	२.२
२.५	१५.०	३.३
३.०	१७.३	४.५
३.५	१६.०	५.७
४.०	१६.७	७.१
४.५	१६.६	८.७
५.०	२०.०	१०.४
६.०	२०.०	१५.०
७.०	२०.०	२२.०

नाइट्रोजन नाइट्राइट रूप में—निम्न परीक्षक तैयार करे।

क. सल्फानिलिक एसिड—४ ग्राम इस अम्ल को ५०० घ० से० एसिटिक एसिड (विशिष्ट गुरुत्व १.०४) में घोलो।

ख. नैफथाइल एमीन एसिटेट—२.५ ग्राम आल्फा नैफथाइल एमीन को ५०० घ० से० एसिटिक एसिड (विशिष्ट गुरुत्व १.०४) में घोलो और पहिले से धोई हुई शोषक रुई से छान लो। इसका घोल रखा रहने पर हलका गुलाबी रंग देता है जो कि प्रयोग के समय बाधा उपस्थित कर सकता है।

ग. सोडियम नाइट्राइट का घोल—१.१ ग्राम सिल्वर नाइट्राइट को नाइट्राइट रहित पानी में घोलो। सिल्वर को सोडियम या पोटाशियम क्लोराइड के घोल द्वारा निक्षिप्त करो और घोल को १ लिटर कर लो। इस घोल के १०० घ० से० को १ लिटर में करलो, अब इस प्राप्त घोल के १० घ० से० को १ लिटर में कर लो। पानी निस्संक्रमित और नाइट्राइट लवण रहित होना चाहिए। इसमें १ घ० से० क्लोरोफार्म मिला दो। प्राप्त घोल को निस्संक्रमित बोतल में रखना चाहिए।

१ घ० से० (प्राप्त घोल) = ०.०००१ मिलीग्राम नाइट्रोजन क्रिया—थोड़ा नमूने का पानी लेकर उसमें एल्यूमीनियम हाइड्राक्साइड का घोल मिला कर छान लो। एल्यूमीनियम हाइड्राक्साइट से अवलम्बित लोहे आदि के लवण निक्षिप्त हो जायेगें जिनसे रंग आने की संभावना रहती है। इस छने द्रव के १०० घ० से० लेकर परीक्षक 'क' और "ख" प्रत्येक की घ० से० मिला दो। इसे दस मिनट तक रखने के बाद सोडियम नाइट्राइट के प्रमाण घोल से रंगो की तुलना करो।

स्थायी प्रमाण—इस क्रिया के लिए भी स्थायी प्रमाण घोल तैयार किये जा सकते हैं। २४ ग्राम कोबल्टस क्लोराइड ($CoCl_2\ 6H_2O$) को स्रवित पानी में घोलकर १०० घ० से० सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक एसिड मिला कर घोल को १ लिटर करलो। दूसरी कुप्पी में १२ ग्राम शुष्क क्यूपरिक क्लोराइड ($CuCl_2\ 2H_2O$) के स्रविद पानी में घोल कर १०० घ० से० सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक एसिड मिलाकर घोल को स्रवित पानी से १ लिटर कर

लो। तालिका में दिये हुए घोलों को दिये अनुपात में लेकर नैसलर नलिका में १०० घ० सें० कर लो। नैसलर नलिका १२-१४ सेन्टीमीटर लम्बी होनी चाहिए और उसपर १०६ घ० से०. के चिन्ह होने चाहिए।

कोवल्टिक घोल घ० से०	कापर घोल घ० से०	सोडियम नाइट्राइट घोल घ० से०
·०	·०	·०००
१·१	१·१	·००१
३·५	३·०	·००३
६·०	५·०	·००५
१२·०	८·०	·०१०

नाइट्रोजन नाइट्रेट रूप में—इसमें निम्न परीक्षकों की आवश्यकता होती है।

सोडियम या पोटाशियम हाइड्राक्साइड घोल—२५० ग्राम हाइड्राक्साइड लेकर १२५० घ० से० स्रवित पानी में घोलो, इसमें एल्यूमीनियम धातु की पतली चादर के कुछ टुकड़े डालकर रात्रि भर क्रिया होने दो। अब द्रव को उबाल कर एक लिटर कर लो।

२. एल्यूमीनियम की पतली चादर के कुछ टुकड़े जो कि १० से० मीटर लम्बे, ६ मिलीमीटर चौड़े, $\frac{1}{3}$ मिली मीटर मोटे हों, लो। इनका भार लगभग १/२ ग्राम होना चाहिए।

क्रिया—१६६ घ० सें० पानी को ३०० घ० सें० के बीकर में लेकर २ घ० से० हाइड्राक्साइड का घोल मिलाओ और इतना उबालो कि उबालने पर घोल २० घ० से० रह जाय। इसे अब ३ सैण्टी मीटर व्यास की और १०० घ० सें० की परीक्षा नली में डालो। बीकर को नाइट्रोजन रहित पानी से कई बार धोकर परीक्षा नली में डालते जाओ और इस द्रव को परीक्षा नली में ७५ घ० से० कर लो। इसमें अब एल्यूमीनियम के उपर्युक्त लम्बाई चौड़ाई के टुकड़े डाल कर रबर कार्क से बन्द करदो। इस रबर कार्क में १ छेद करके Λ आकार की शीशे की नली लगाओ. इसका व्यास ५ मिली मीटर होना चाहिए। इस नली को रबर कार्क में लगा, निचला सिरा धोकर साफ कर लो और दूसरा सिरा अन्य परीक्षा नली में रखे स्रवित पानी के नीचे तक डुबाओ। इस उपकरण में एक छोटा सा छिद्र (Trap) रखा जाता है, जिससे जो हाइड्रोजन पैदा हो वह आसानी से बाहर निकल जाय। इस छिद्र में से बहुत थोड़ी मात्रा अमोनिया की भी निकल जाती है जो कि उपेक्षणीय है। इस क्रिया को कम से कम चार घंटे या रात्रि भर होने दो। अब नलिका के पदार्थ को स्रवण कुप्पी में डाल दो, इसमें २५० घ० से० नाइट्रोजन रहित पानी मिलाकर घोल को हल्का करलो। इसका अब स्रवण करो और प्राप्त स्रवित द्रव को नैसलर नालिकाओं में इकट्ठा करके, नैसलर घोल मिलादो। यदि नाइट्रेट बहुत अधिक हो तो स्रवित जल की समभाजक राशि २०० घ० से० की कुप्पी में लो और इसमें नैसलर घोल मिलाओ। ऊपर जिस नलिका में अपचयन किया गया है उसमें यदि घोल साफ और रंग रहित है तो उस घोल के निश्चित आयतन को हल्का कर लो और बिना स्रवण किये उसकी समभाजक राशि में नैसलर घोल मिलादो और रंग की तुलना करो।

सूचना—यदि नाइट्रेट बहुत अधिक (५० भाग प्रति दस लाख से भी अधिक) हों तो थोड़ी मात्रा में लेकर उसमें अपचयन से पूर्व स्रवित पानी मिला कर १०० घ० से० करलो।

खानिजपदार्थ :—पानी के नदी, नालों तथा स्रोतों के रूप में पृथ्वी पर बहते हुए, विभिन्न खनिज पदार्थों की चट्टानों के संसर्ग में आने पर ये खनिज पदार्थ उसमें घुल जाते हैं। इन खनिज पदार्थों को हम दो विभागों में बाँट सकते हैं।

(क) विषैले खनिज पदार्थ

(ख) सामान्य खनिज पदार्थ

पानी में उपस्थित विषैले खानिज पदार्थ :— पानी में ताम्र, सीसक, जस्ता, बेरियम आरसैनिक आदि धातुएँ पाई जाती हैं। अधिकतर ताम्र और सीसक ही देखे जाते हैं। पानी में इनकी उपस्थिति

बहुत हानिप्रद है, इसलिए इनकी मात्रा जाननी आवश्यक होता है।

१०० घ० से० पानी १ शीशे के सिलेण्डर में लेकर उसमें ५ घ० से० एसिटिक एसिड और ५ घ० से० हाइड्रोजन सल्फाइड का संतप्त घोल मिला दो। एक दूसरे सिलण्डर में इतना पानी लेकर उसमें केवल ५ घ० से० एसिटिक एसिड डाल दो। यदि पहले सिलेण्डर में दूसरे की अपेक्षा रग कुछ गहरा हो तो पानी म सीसक और ताम्र की उपस्थिति समझनी चाहिए। यदि पानी में इनकी मात्रा बहुत थोड़ी मालूम हो तो १ लिटर पानी को वाष्पीकरण द्वारा १०० घ० से० में कर लो इस १०० घ० से० पानी में उपरोक्त प्रकार से इन धातुओं की उपस्थिति का अनुमान कर लो।

ताम्र की मात्रा का निर्धारण—ताम्र की मात्रा के निर्धारण के लिए कापर सल्फेट का प्रमाण घोल तैयार करो। ०.३९२१ ग्राम स्फटिक कापर सल्फेट को पानी में घोलकर १ लिटर में कर लो। इस घोल के प्रत्येक घ० से० में ०.०००१ ग्राम ताम्र होता है।

५०० घ० से० पानी को वाष्पीकरण द्वारा ५० घ० से० कर लो इसमें ५ घ० से० स/१० एसिटिक एसिड डालदो। अब द्रव को शीशे के सिलेण्डर में भर कर पोटेशियम फेरोसायनाइड के हल्के घोल की कुछ बूंदे डालो, यदि इसमें ताम्र होगा तो लाल भूरा आ जायेगा। इसी प्रकार का एक और सिलण्डर लेकर उसम ५० घ० से० स्रवित पानी लेलो। इसमें ताम्र के प्रमाण घोल का मपा हुवा आयतन मिला कर ५ घ० से० स/१० एसिटिक एसिड से अम्लीय करो और पोटाशियम फेरोसायनाइड की उपरोक्त मात्रा डालो। इस प्रकार दोनो के रंगों की तीव्रता की तुलना करके ताम्र की मात्रा जानलो।

सीसक का मात्रा निर्धारण—यदि जल में ताम्र विद्यमान न हो तो निम्न विधि से सीसक की उपस्थिति जाननी चाहिए यदि पानी में ताम्र और सीसक दोनों उपस्थित है तो पहिले ताम्र की जाँच करनी चाहिए। ताम्र की मात्रा निर्धारण से ताम्र के प्रमाण घोल का जो आयतन मालूम हो, उतना ताम्र का प्रमाण घोल ५० घ० से० स्रवित पानी में मिलाकर फिर लेड एसिटेट उसमें मिलाना चाहिए. इससे तुलना के लिए जो घोल तैयार होगा, वह पानी में उपस्थित ताम्र के कारण आने वाले रंग को भी बताता रहेगा। इसके लिए निम्न परीक्षक तैयार करो :—

क. ०.१८३१ ग्राम लैड एसिटेट को पानी में घोल कर १ लिटर कर लो और इसमें थोड़ा एसिटिक एसिड मिला दो जिससे घोल साफ रहे। इस प्रमाण घोल के प्रत्येक घ० से० में ०.०००१ ग्राम सीसक होता है।

ख. हाइड्रोजन सल्फाइड का घोल—एक सिलण्डर में १०० घ० से० पानी लेकर ५ घ० से० एसिटिक एसिड और ५ घ० से० हाइड्रोजन सल्फाइड घोल मिला दो। दूसरे सिलण्डर में १०० घ० से० स्रवित पानी लेकर ५ घ० से० एसिटिक एसिड और ५ घ० से० हाइड्रोजन-सल्फाइड घोल मिला दो इसमें अब लैड-एसिटेट का प्रमाण घोल मिला कर रङ्गों की तुलना करो।

यदि रङ्ग अत्याधिक गहरा आये तो ५० घ० से० पानी काम में लाओ, यदि रंग बहुत हल्का हो तो एक लिटर पानी को वाष्पीकरण द्वारा ५० घ० से० कर लो।

सीसक की पानी पर क्रिया :—सीसक पर पानी की क्रिया सभवतः उसमें घुली हुई आक्सीजन के कारण होती है। धातु पर आक्सीजन और पानी की क्रिया से लैड हाइड्राक्साइड ($Pb(OH)_2$) बन जाता है जो कि पानी में घुलनशील है।

$$2Pb + O_2 + 2H_2O \rightarrow 2Pb(OH)_2$$

१. कभी कभी पानी में लोहे की मात्रा होती है, इसलिए जब उसमें पोटाशियम फेरोसायनाइड मिलाते हैं तो प्रशियन ब्ल्यू रंग आजाता है, इसे हटाने के लिए नाइट्रिक एसिड की कुछ बूंदे डाल कर वाष्पीकरण करो। वाष्पीकरण के बाद इसमें अमोनियम हाइड्रेट की मात्रा अधिकता से डाल दो; जो निक्षेप आये उसे छारण पत्र से अलग करके छने द्रव को नाइट्रिक एसिड से उदासीन करके ताम्र की जाँच के लिए काम में लाओ।
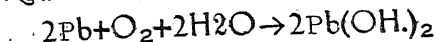
लैड-कार्बनेट-हाइड्राक्साइड की अपेक्षा पानी में कम घुलनशील है, इसलिए पानी में जब कैल्शियम बाइ-कार्बनेट होता है तो वह सीसक पर पानी की क्रिया को रोकता है। उसका कारण यही होता है कि धातु की तह पर लैड कार्बनेट की तह जमने लगती है जो कि पानी की क्रिया को रोकती है। पानी में यदि घुलनशील सिलिकेट की थोड़ी भी मात्रा हो तो वह भी धातु पर पानी की क्रिया को रोकते हैं।

सामान्य खनिज पदार्थों की मात्रा निर्धारण— पानी में प्रायः सिलिका, लोहा, कैलशियम, मैग्नेशियम आदि रहते हैं। उनकी जाँच निम्न प्रकार से कर सकते हैं।

क. सिलिका की मात्रा निर्धारण—५०० घ० से० पानी को लेकर ५ से १० घ० से० हाइड्राक्लोरिक एसिड से अम्लीय करो और वाष्पीकरण द्वारा इसे सुखा लो। अवशेष को जल-ऊष्मक (वाटर बाथ) पर सुखाओ। इसे अब एस्बेस्टस् प्लेट पर १२०° से १२५° श० पर ज्वाला में आध घण्टा तक गरम करो। इस शुष्क अवशेष को १० घ० से० सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक एसिड से तर करके ५० घ० से० पानी में घोलो और १५ से ३० सैकण्ड तक उबाल कर छान लो। छारण पत्र पर आये अवशेष को गरम पानी से धोकर ज्वाला में गरम करो और तोल लो।

लोहे और एलूमीनियम का मात्रा निर्धारण— सिलिका के अघुलनशील अवशेष को छानने के बाद जो द्रव प्राप्त हो उसमें दो तीन बूँद नाइट्रिक एसिड (लोहे से रहित) को मिला कर उबालो और द्रव को लगभग ४०-५० घ० से० कर लो। आग पर से इसे हटा कर इसमें अमोनियम क्लोराइड का घोल डालो और बाद में अमोनियम हाइड्रेट को कुछ अधिक मात्रा में डाल दो, इसे एक दो मिनट उबाल कर छान लो। प्राप्त निक्षेप में लोहा और एल्यूमीनियम हैं, फास्फेट के होने की भी संभावना हो सकती है। ज्वाला पर बहुत अधिक गरम करके ठण्डा करो और तोल लो। गरम करने से हाइड्रेट आक्साइड में बदल जायँगे। यदि यह लोहे और एल्यूमीनियम आक्साइड का निक्षेप ०.०१ ग्राम प्रति लिटर या १० भाग प्रति दस लाख से अधिक है अथवा लोहे और एल्यूमीनियम की मात्रा अलग २ जाननी हो तो इस निक्षेप के ८ या १० गुने पोटाशियम बाइसल्फेट के साथ जोर से गलाओ और पानी में घोल कर जस्ता द्वारा फैरस् में अपचित कर लो। इसका विलेय-मापन पोटाशियम परमैंगनेट के साथ करो और इस लोहे की मात्रा को एल्यूमीनियम आक्साइड के रूपमें गणना द्वारा निकालो। अब मूल निक्षेप और एल्यूमीनियम आक्साइड के रूप में ज्ञात लोहे के भार में जो अन्तर हो उसे लिख लो।

$$Fe \times 1.43 = Fe_2O_3$$
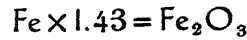
कुल लोहा—पानी में उपस्थित कुल लोहा रङ्ग-मापक विधि से निम्न प्रकार जाना जाता है।

परीक्षक (क) लोहे का प्रमाण घोल—०.७ ग्राम स्फटिक फैरस् अमोनियम सल्फेट थोड़े से स्रवित जल में घोलो, इसमें २५ घ० से० हल्का (१ : ५) सल्फ्यूरिक एसिड मिलाओ और पोटाशियम परमैंगनेट से उपचित कर लो। इस प्राप्त घोल को १ लिटर कर लो।

घोल का १ घ० से० = ०.१ मिली ग्राम लोहा (Fe)

ख. पोटाशियम सल्फोसायनाइड—२० ग्राम प्रति लिटर का घोल तैयार करो।

ग. पोटाशियम परमैंगनेट—६.३ ग्राम प्रति लिटर का घोल तैयार करो।

घ. हाइड्रोक्लोरिक एसिड—१ : १; अम्ल लोहे से बिलकुल रहित होना चाहिए।

क्रिया—१००० घ० से० पानी को हाइड्रोक्लोरिक एसिड से अम्लीय कर के वाष्पीकरण द्वारा उड़ा दो। अवशेष को नैसलर नलिका में लेकर ब्रोमीन की कुछ बूँद के साथ ५ घ० से० हाइड्रोक्लोरिक एसिड मिला कर १०० घ० से० कर लो। १० घ० से० पोटाशियम सल्फोसायनाइड (KCNS) को मिला कर इसके रङ्ग की तुलना प्रमाण घोलों के रङ्गों से की जाती है। यह तुलना शीघ्र कर लेनी चाहिए, क्योंकि फिर यह रङ्ग फीका पड़ने लगता है।

प्रमाण घोल निम्न प्रकार तैयार करो—

१०० घ० से० की नैसलर नलिका में ५ घ० से० हाइड्रोक्लोरिक एसिड और १० घ० से० पोटाशियम सल्फोसायनाइड डालो। इसमें लोहे का प्रमाण घोल

ब्यूरेट से डालकर स्रवित जल इतना डालो कि जिससे इसका रङ्ग उपरोक्त नमूने के समान हो जाय।

लोहा (फेरस रूप में)—रङ्ग मापक विधि से निम्न प्रकार जाना जाता है।

परीक्षक (क.)—लोह प्रमाण घोल—०.७ ग्राम स्फटिक फैरस् अमोनियम सल्फेट को १ लिटर स्रवित पानी में जिसमें १० घ० से० हल्का सल्फ्यूरिक एसिड भी मिला हुआ हो घोलो। घोल स्थायी नहीं है, आवश्यकतानुसार फिर बना लेना चाहिए।

घोल का १ घ० से० = ०.१ मि० ग्राम लोहा

ख. पोटाशियम फेरिसायनाइड—१०० घ० से० स्रवित पानी में ०.४ ग्राम घोल लो। इसे भी आवश्यकतानुसार उसी समय ही तैयार करना चाहिए।

ग. सल्फ्यूरिक एसिड—१ आयतन एसिड में ५ आयतन पानी मिला दो।

क्रिया—१०० घ० से० के नैसलर जार में ५० घ० से० पानी ले कर १० घ० से० हल्का सल्फ्यूरिक एसिड डालो और अवलम्बनस्थ पदार्थों को हटाने के लिए आवश्यकतानुसार छान लो। इसमें १४ घ० से० पोटाशियम फेरिसायनाइड घोल मिला कर स्रवित पानी से १०० घ० से० करो और इसकी तुलना प्रमाण घोल से करो। प्रमाण घोल निम्न प्रकार से तैयार करो—

१०० घ० से० के नैसलर जार में ७४ घ० से० स्रवित जल लो उसमें १० घ० से० सल्फ्यूरिक एसिड (ग) मिलाकर १५ घ० से० पोटाशियम फेरिसायनाइड मिलाओ और घोल को अच्छी प्रकार हिला कर एक सा कर लो। ब्यूरेट से लोहे के प्रमाण घोल की भिन्न २ मात्राएँ डाल कर अच्छी प्रकार मिला कर तुलना करो।

फेरिक् लोहे की मात्रा जानने के लिए कुल लोहे की मात्रा में से फेरस् लोहे की मात्रा निकाल दो।

फास्फेट—निम्न परीक्षक तैयार करो—

(क) अमोनियम मोलिब्डेट—२५ ग्राम बिल्कुल शुद्ध लवण ½ लिटर स्रवित पानी में घोलो।

(ख) नाइट्रिक एसिड (वि. गु. १.०७) स्रवित जल से १ : ५ में कर लो।

(ग) फास्फेट प्रमाण घोल—०.५०४५ ग्राम स्फटिक सोडियम फास्फेट (Na_2HPO_4 $12H_2O$) स्रवित पानी में घोल कर १०० घ० से० प्रमाण नाइट्रिक एसिड मिला दो इसे अब हल्का करके १ लिटर कर लो।

१ घ० से० = ०.०००१ ग्राम फास्फेट (P_2O_5)

क्रिया—१०० घ० से० पानी में ६ घ० से० नाइट्रिक एसिड मिलाकर घोल को चीनी मिट्टी की प्याली में डाल कर पानी को उड़ा दो। प्रायः शुष्क अवशेष को २१२° फार्नहाइट पर दो घण्टे तक भूनो। इसे अब १०० घ० से० स्रवित पानी में घोलो और इसमें ८ घ० से० मोलिब्डेट घोल और ४ घ० से० नाइट्रिक एसिड मिला दो। इसकी तुलना फास्फेट घोल से तैयार प्रमाण घोल से करो।

नोट—१. नैसलर नलिका २५ सैण्टीमीटर लंबी और १२० घ० से० के चिह्न वाली होनी चाहिए। नलिका का शीशा कठोर और एकदम श्वेत होना चाहिए।

२. यदि पानी पहिले से रङ्गीन हो तो उसे शुष्क करके हुये ६ घ० से० नाइट्रिक एसिड के साथ १.० घ० से० (यदि पानी बहुत अधिक रङ्गीन हो तो इसकी अधिक मात्रा भी ली जा सकती है) पोटाशियम परमैंगनेट घोल डाल देना चाहिए और फिर उतने ही समय तक २१२° फार्नहाइट पर भूनना चाहिए।

३. यदि फास्फेट बहुत अधिक हों तो उन्हें भारात्मक विधि से जान लेना चाहिए।

कैलशियम—उपरोक्त क्रियाओं में सिलिका, लोहा आदि निक्षिप्त करने के बाद प्राप्त पानी में अमोनियम आक्ज़लेट का सतृप्त घोल बूँद २ करके डालो अथवा अमोनियम आक्ज़लेट के स्फटिक थोड़ी सी मात्रा में डाल दो। इसे दो मिनट तक उबालो। यदि निक्षेप बहुत अधिक हो तो उसे हिलाते रहो। इसे अब आग पर से हटा कर छान लो। अवशेष को जोर से गरम करके कैलशियम ऑक्साइड में बदलो और तोल लो।

मैग्नीशियम—कैलशियम प्राप्त करने के बाद छने द्रव को वाष्पीकरण द्वारा सुखा लो। प्राप्त अवशेष को जोर से गरम करके अमोनियम लवणों को निकाल दो। अब अवशेष को हाइड्रोक्लोरिक एसिड में घोल कर पानी डाल दो, आवश्यकता हो तो छान भी लो। इसमें अमो-

नियम हाइड्रेट थोड़ी अधिक मात्रा में डालो, इसके बाद सेडियम फास्फेट का घोल मिला दो। प्राप्त निक्षेप को छान कर जोर से गरम करो और तोल लो। प्राप्त वस्तु मैग्नेशियम पायरोफास्फेट होगी।

सलफेट—५०० घ० से० पानी लेकर उसे हाइड्रोक्लोरिक एसिड से अम्लीय करके वाष्पीकरण द्वारा ५० घ० से० कर लो। इसमें बेरियम क्लोराइड थोड़ी अधिक मात्रा में डाल दो। बेरियम सलफेट के निक्षेप को छान कर ज़ोर से गरम करो और तोल लो।

क्षारीय धातुएँ—१ लिटर पानी वाष्पीकरण द्वारा १०० घ० से० में सान्द्र कर लो। इसमें बेरियम क्लोराइड मिला कर सल्फेट को निक्षिप्त कर लो। इसे छानो और छने द्रव में चूने का पानी मिला कर उबालो, जिससे लोहा और मैग्नेशियम निक्षिप्त हो जाये। इसे छान लो और छने द्रव में अमोनियम हाइड्रेट कुछ अधिक मात्रा में डालकर अमोनियम कार्बनेट घोल मिलाओ। इसके बाद अमोनियम आक्जलेट घोल की कुछ बूँदे मिला दो जिससे बेरियम और कैलशियम निक्षिप्त हो जायेगें। इसे छानो और छने द्रव को वाष्पीकरण द्वारा सुखा कर अवशेष को ज़ोर से गरम करो जिससे अमोनियम लवण निकल जायें।

अवशेष को पुनः पानी में घोलो और यदि आवश्यकता हो तो छान भी लो। इसमें अमोनियम आक्ज़लेट की १ बूँद डालो, यदि उसमें कैलशियम होगा तो निक्षिप्त होना शुरु हो जायेगा। कैलशियम की अनुपस्थिति का निश्चय हो जाने के बाद हाइड्रोक्लोरिक एसिड से अम्लीय करके तुली हुई प्याली में वाष्पीकरण करके सुखा लो। इस क्षारीय धातुओं के क्लोराइड के अवशेष को गरम करके तोल लो इस अवशेष में पोटाशियम और सेडियम क्लोराइड की मात्राएँ जानी जा सकती हैं।

कठोरता—बहुधा पानी में कैलशियम और मैग्नेशियम कार्बनेट रहते हैं। ये पानी में उपस्थित कार्बोनिक एसिड के कारण घुलनशील बाइकार्बनेट में परिवर्तित हो जाते हैं। इनके साथ २ कैलशियम और मैग्नेशियम के सल्फेट भी पानी में घुले रहते हैं, इसलिए पानी में जब साबुन घोला जाता है तो ये लवण साबुन के साथ क्रिया करके उसे निक्षिप्त कर देते हैं। क्रिया निम्न प्रकार होती है।

$$CaCO_3 HCO_3 + 2C_{17} H_{35} COO Na \rightarrow$$
कैलशियम कार्बनेट + सेडियम स्टीरेट
(घुलनशील) (घुलनशील)

$$2Na HCO_3 + Ca (OO C C_{17}H_{35})_2$$
सेडियम बाइ कार्बनेट + कैलशियम स्टीरेट
(अघुलनशील)

$$Ca SO_4 + 2C_{17} H_{33} COO Na \rightarrow Na_2 SO_4 = Ca (OOC C_{17} H_{33})_2$$
कैल्शियम सल्फेट, + सोडियम सल्फेट
सोडियम ओलिएट → कैलशियम अलियेट
(घुलनशील) (अघुलनशील)
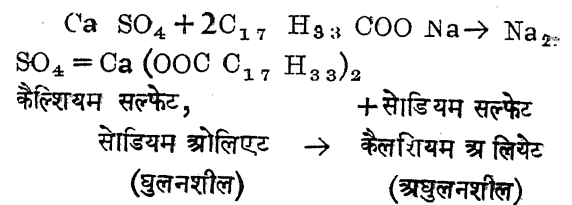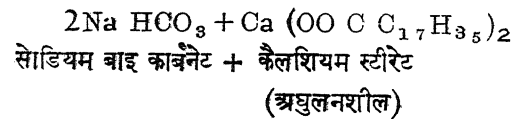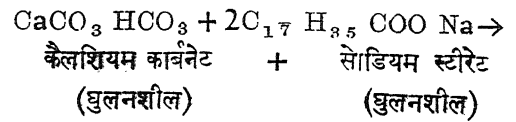
कैलशियम और मैग्नेशियम बाईकार्बनेट के द्वारा पानी में जो कठोरता उत्पन्न हो जाती है उसे अस्थायी कहते हैं। गरम करने से ये बाइकार्बनेट फट जाते हैं। कैलशियम और मैग्नेशियम कार्बोनेट के निक्षिप्त हो जाने से अस्थायी कठोरता दूर हो जाती है।

$$CaCO_3 \cdot HCO_3 \rightarrow CaCO_3 + H_2O + CO_2$$

चूना मिलाने से भी यह कठोरता दूर हो जाती है।

$$CaCO_3 \cdot HCO_3 + Ca (OH)_2 \rightarrow 2Ca CO_3 + 2H_2O$$
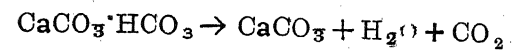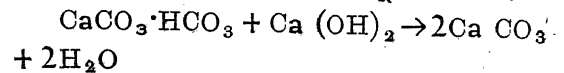
कैलशियम और मैग्नेशियम सल्फेट के कारण जो कठोरता होती है उसे स्थायी कठोरता कहते हैं। उबालने से यह कठोरता दूर नहीं होती। इसमें सोडियम कार्बनेट मिलाने से कैलशियम या मैग्नेशियम कार्बनेट निक्षिप्त हो जाते हैं और यह कठोरता दूर हो जाती है।

$$CaSO_4 + Na_2CO_3 \rightarrow CaCO_3 + Na_2SO_4$$
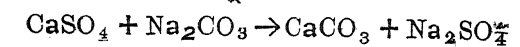
इस पुस्तक में हम परिणामों को प्रतिदस लाख या पी० पी० एम० (Ports per Million) में प्रगट करेंगें।

(क) साबुन के प्रमाण घोल से कठोरता का मात्रा निर्धारण—इस कार्य के लिए निम्न घोल चाहिए—

(i) कैलशियम क्लोराइड का प्रमाण घोल—०.२

ग्राम शुद्ध कैलशियम कार्बनेट ठीक २ तोल कर हल्के हाइड्राक्लोरिक एसिड की थोड़ी सी मात्रा में घोलो। यह ध्यान रखना चाहिए कि उबाल से पदार्थ के भार में कुछ हानि न हो, इस प्रयोजन के लिए बर्तन को ढक देना चाहिए। इस घोल को जल-ऊष्मक पर रख कर सुखा कर पानी मिलाओ और वाष्पीकरण द्वारा सुखा लो। इस क्रिया को तब तक दोहराओ जब तक कि अम्ल की अधिकता बिलकुल न निकल जाय। अब अवशेष को स्रवित पानी में घोल कर १ लिटर कर लो।

इस घोल का १ घ० से० = ०.२ मिली ग्राम कैलशियम कार्बनेट ($CaCO_3$)

(ii) साबुन का प्रमाण घोल—१०० ग्राम शुष्क कैस्टाइल साबुन १ लिटर ८०% अलकोहल में घोलो और कुछ दिनों तक रखा रहने दो। इस घोल को प्रमाणित करने के लिए अलकोहल (७०% से ८०%) से इतना हल्का कर लो कि इस घोल के ६.४ घ० से० २० घ० से० कैलशियम क्लोराइड के घोल से मिलाने पर स्थायी फेन पैदा करें।) साधारणतया मूल साबुन घोल को १ लिटर प्रमाण घोल बनाने के लिए १०० घ० से० से कम प्रयुक्त होंगे।

साबुन घोल को प्रमाणित करना—२०० घ० से० की शीशे की डाट की बोतल लो, उसमें २० घ० से० कैलशियम क्लोराइड घोल पिपेट से डाल कर ४० घ० से० स्रवित पानी मिलाओ। अब ब्यूरेट से साबुन का घोल डालना शुरू करो। एक समय में कुल .२ घ० से० डालना चाहिए और इस घोल को मिलाने के बाद ज़ोर से हिलाते हैं। इस प्रकार साबुन घोल तब तक मिलाते रहते हैं जब तक कि उसे हिला कर रखने के ५ मिनट बाद तक भी फेन न टूटे।

इस क्रिया के बाद परिणाम इस प्रकार प्राप्त होगा (यदि साबुन घोल बिलकुल ठीक प्रमाण घोल होगा तभी यह परिणाम प्राप्त होगा)

४.४ घ० से० साबुन घोल = २० घ० से० कैलशियम क्लोराइड घोल १४.४ घ० से० में से ०.५ घ० से० घटाकर अपने पठन को ठीक कर लेना चाहिए, प्राप्त अंक में १ घ० से० साबुन घोल १ मिली ग्राम कैलशियम कार्बोनेट के बराबर होगा।

कुल कठोरता का मात्रा निर्धारण—२०० घ० से० की शीशे की डाट लगी बोतल में परीक्षणीय पानी के ५० घ० से० लो। इसमें साबुन घोल ब्यूरेट के द्वारा उपरोक्त विधि से धीमे २ मिलाओ और जब स्थायी फेन प्राप्त हो जाय तो साबुन घोल मिलाना बन्द कर दो और उसके आयतन से निम्न तालिका द्वारा कैलशियम कार्बोनेट पी० पी० एम० जान लो।

उपरोक्त तालिका से साबुन घोल के एक घ० से० के दसवें भाग तक का मान देखा जा सकता है जब कि पानी का नमूना ५० घ० से० ही लिया गया हो। यदि पानी में कठोरता अधिक हो तो पानी कम लेकर स्रवित जल से उसे ५० घ० से० कर लो।

स्थायी कठोरता—५० घ० से० पानी लेकर उसे धीमे धीमे आधे घन्टे तक उबालो। इसे ठंडा करो और छान लो। इसमें उबाल कर ठडा किया हुवा स्रवित पानी इतना मिलाओ कि उसका आयतन ५० घ० से० हो जाय। इसकी क्रिया साबुन घोल से उपरोक्त विधि से करके तालिका द्वारा कठोरता देखलो।

अस्थायी कठोरता—कुल कठोरता में से स्थायी कठोरता निकाल कर अस्थायी कठोरता ज्ञात की जा सकती है।

इस प्रकार साबुन घोल के द्वारा कठोरता जानने की विधि "क्लार्क विधि" कही जाती है।

हेनर विधि—कैलशियम और मैग्नेशियम के कार्बनेटों के कारण जो स्थायी कठोरता है उसका निश्चय प्रमाण अम्ल घोल द्वारा करते हैं। स्थायी कठोरता मालूम करने के लिए पानी को सोडियम कार्बोनेट के प्रमाण घोल की अधिक मात्रा के साथ उबालते हैं। उबालने के बाद घोल में सोडियम कार्बनेट की उपस्थिति अधिक मात्रा को प्रमाण अम्ल द्वारा जान लेते हैं। कुल प्रयुक्त सोडियम कार्बोनेट की मात्रा में से अम्ल द्वारा ज्ञात सोडियम कार्बोनेट की मात्रा को घटा देते हैं। इस प्रकार से सोडियम कार्बोनेट की वह मात्रा ज्ञात हो जायगी जो कि मैग्नेशियम और कैलशियम के लवणों के

साबुन घोल के घ०सें०	०·० घ०सें०	०·१ घ०सें०	०·२ घ०सें०	०·३ घ०सें०	०·४ घ०सें०	०·५ घ०सें०	०·६ घ०सें०	०·७ घ०सें०	०·८ घ०सें०	०·९ घ०सें०
०·०	...	...	...	...	...	...	...	०·०	१·६	३·२
१·०	४·८	६·३	७·९	९·५	११·१	१२·७	१४·३	१५·६	१६·९	१८·२
२·०	१९·५	२०·८	२२·१	२३·४	२४·७	२६·०	२७·३	२८·६	२९·९	३१·२
३·०	३२·५	३३·८	३५·१	३६·४	३७·७	३८·०	४०·३	४१·६	४२·९	४४·३
४·०	४५·७	४७·१	४८·६	५०·०	५१·४	५२·९	५४·३	५५·७	५७·१	५८·६
५·०	६०·०	६१·४	६२·९	६४·३	६५·७	६७·१	६८·९	७०·०	७१·४	७२·९
६·०	७४·३	७५·७	७७·१	७८·६	८०·०	८१·४	८२·९	८४·३	८५·७	८७·१
७·०	८८·६	९०·०	९१·४	९२·९	९४·३	९५·७	९७·१	९८·६	१००·०	१०१·५
८·०	१०३·०	१०४·५	१०६·०	१०७·५	१०९·०	११०·५	११२·०	११३·५	११५·०	११६·०
९·०	११८·०	११९·५	१२१·१	१२२·६	१२४·१	१२५·६	१२७·१	१२८·६	१३०·१	१३१·६
१०·०	१३३·१	१३४·६	१३६·१	१३७·६	१३९·१	१४०·६	१४२·१	१४३-७	१४५·२	१४६·८
११·०	१४८·४	१५०·०	१५१·६	१५३·२	१५४·८	१५६·३	१५७·९	१५९·५	१६१·१	१६२·७
१२·०	१६४·३	१६५·९	१६७·५	१६९·०	१७०·६	१७२·२	१७३·८	१७५·४	१७७ ०	१७८·६
१३·०	१८०·२	१८१·७	१८३·३	१८४·९	१८६·५	१८८·१	१८९·७	१९१·३	१९२·९	१९४·४
१४·०	१९६·०	१९७·६	१९९·२	२००·८	२०२·४	२०४·०	२०५·६	२०७·१	२०८·७	२१०·३
१५·०	२११·९	२१३·५	२१५·१	२१६·८	२१८·५	२२०·२	२२१·८	२२३·५	२२५·२	२२६·९
१६·०	२२८·६									

निश्चित करने में खर्च हुई है। इस प्रकार कठोरता का निश्चय किया जाता है।

परीक्षक १.—हाइड्रोक्लोरिक एसिड का प्रमाण घोल—इस अम्ल का स/१० घोल तैयार करो।

२.—सोडियम कार्बोनेट का प्रमाण घोल—५.३०६ ग्राम शुद्ध शुष्क सोडियम कार्बोनेट को पानी में घोलो और इसे १ लिटर कर लो।

३. मिथाइल आरेञ्ज—.०५ ग्राम मिथाइल औरेञ्ज को मिथाइलेटेड स्पिरिट में घोलो और ४०० घ० से० कर लो।

(i) अस्थायी कठोरता का मात्रा निर्धारण—१०० घ० से० पानी में कुछ बूंद मिथाइल औरेञ्ज मिला दो। यदि कठोरता अधिक हो तो कम पानी लेकर स्रवित पानी से १०० घ० से० कर लो। इसमें अब हाइड्रोक्लोरिक एसिड का प्रमाण घोल ब्यूरेट से डालो, जब सूचक का रंग हलका गुलाबी आ जाय तो अम्ल डालना बन्द कर दो। जितने घ० से० अम्ल प्रयुक्त हो उसके अनुसार कैलशियम कार्बोनेट की तुल्य मात्रा निकाल लो।

उदाहरण—१०० घ० से० पानी के लिये ०·१ स हाइड्रोक्लोरिक एसिड १२·५ घ० से० व्यय हुआ।

१ घ० से० हाइड्रोक्लोरिक एसिड उदासीन करता है = ०·००५ ग्राम कैलशियम कार्बोनेट।

∴ १२·५ घ० से० हाइड्रोक्लोरिक एसिड उदासीन करेगा = ०·००५ × १२·५ ग्राम कैलशियम कार्बोनेट।

= ·०६२५ ग्राम कैलशियम कार्बोनेट।

∴ ५०० घ० से० पानी में कैलशियम कार्बोनेट रूप में अस्थायी कठोरता होगी = ·०२५ ग्राम अस्थायी कठोरता पी० पी० एम० या प्रति दस लाख होगी

$$= \frac{·०६२५}{५००} \times १००००००$$

= १२५ ग्राम कैलशियम कार्बोनेट

(ii) स्थायी-कठोरता—२५० घ० से० पानी लेकर ०·१स सोडियम कार्बोनेट घोल ५० घ० से० मिला दो इसका वाष्पीकरण करके शुष्क अवशेष प्राप्त करो। इस शुष्क अवशेष को स्रवित जल में घोल कर २५० घ० से० कर लो। इसमें ५० घ० से० लेकर उसका ०·१स अम्ल के साथ विलेयमापन करो।

उदाहरण—२५० घ० से० पानी + ५० घ० से० सोडियम कार्बोनेट घोल उबाल कर सुखा दिये गये। प्राप्त अवशेष को पानी में घोल कर २५० घ० से० किया गया। इसके अब ५० घ० से० लेकर ०·१स हाइड्रोक्लोरिक एसिड के साथ विलेयमापन करने में ८·७ घ० से० अम्ल प्रयुक्त हुआ।

परिणामतः ५० घ० से० द्रव में स्थायी कठोरता उत्पन्न करने वाले लवणों को निक्षिप्त करने के लिए ०·१ स सोडियम कार्बोनेट घोल १·३ घ० से० (१०—८·७ = १·३ घ० से०) की आवश्यकता थी, क्योंकि प्रत्येक ५० घ० से० में १० घ० से० सोडियम कार्बोनेट था।

१ घ० से० सोडियम कार्बोनेट = ०·००५ ग्राम कैलशियम कार्बोनेट।

∴ १·३ घ० से० ,, ,, = ०·००५ × १·३ = ·००६५ कैलशियम कार्बोनेट।

अर्थात् ५० घ० से० में कठोरता है = ·००६५ कैलशियम कार्बोनेट।

तो प्रति दस लाख में होगी $= \frac{·००६५ \times १००००००}{५०} =$ १३० कैलशियम कार्बोनेट।

(क) पानी की क्षारीयता का निर्धारण—पानी की क्षारीयता को कैलशियम कार्बोनेट के रूप में प्रगट करते हैं।

परीक्षक १—सल्फ्यूरिक एसिड घोल—०·१स घोल तैयार करो।

२—मिथाइल आरेञ्ज।

क्रिया—४०० घ० से० के बीकर में २०० घ० से० पानी लेकर ०·१ स सल्फ्यूरिक एसिड घोल के साथ विलेयमापन करो। सूचक मिथाइल औरेञ्ज की ३ बूँदे काफी रहेंगी।

यदि पानी रंगीन हो तो उसे नीरंग करने के लिये हाइड्रोजन परॉक्साइड (H_2O_2) मिलाते हैं। इसके लिये पहिले ५ घ० से० मिलाओ, यदि यह मात्रा अपर्याप्त हो तो ५ घ० से० और मिलाओ। इस प्रकार

नीरंग होने तक पांच पांच घ० से० हाइड्रोजन-परॉक्साइड मिलाते जाओ। हाइड्रोजन परॉक्साइड मिलाने से इसकी अम्लीयता के कारण पानी की क्षारीयता की जो हानि होती है उसके लिये प्रत्येक ५ घ० से० हाइड्रोजन परॉक्साइड पर ०·१ घ० से० सल्फ्यूरिक एसिड के पठन में जोड़ दो।

स = प्रयुक्त सल्फ्यूरिक एसिड की घ० से० संख्या
स × ५ × ०·००५ = ग्राम कैलशियम कार्बोनेट प्रति लिटर
स × ५ × २८·४ × ०·००५ = ग्राम प्रति गैलन कैलशियम कार्बोनेट
अथवा स × १·४६ = ,, ,, कैलशियम कार्बोनेट

(ख) पानी की अम्लीयता का कारण—पानी में अम्लीयता कार्बोनिक और सल्फ्यूरिक एसिड तथा लोह और एल्यूमीनियम सल्फेट के कारण हुआ करती है। अम्लीयता को जानने के लिए २५० घ० से० पानी लेकर उसका ०·१स सोडियम कार्बोनेट घोल के साथ विलेयमापन करो। सूचक फिनालफ्थलीन और मिथाइल औरेञ्ज काम में ला सकते हैं।

जब पानी का उपयोग वाष्प बनाने के लिये करना हो या पानी में फिटकरी काम में लानी हो तो पानी की अम्लीयता देखने की अपेक्षा इसकी पी एच (pH) मान देखना आवश्यक होता है। इसके लिये पहिले दी गई विधि काम में ला सकते हैं।

जल का कोमलीकरण—किसी कठोर जल को कोमल बनाने के लिये कितने चूने और सोडियम कार्बोनेट की आवश्यकता है इसका निर्धारण निम्न प्रकार से कर सकते हैं—

१ (क) चूने का मात्रा निर्धारण—एक ५०० घ० से० की कुप्पी में ४०० घ० से० परीक्षणीय पानी लेकर १०० घ० से० चूने के संतृप्त घोल के पानी में डालो और इस मिश्रण-घोल को उबालो। ठण्डा होने के बाद जो पानी वाष्प बनकर उड़ गया हो, उसकी जगह स्रवित पानी डाल कर घोल को ५०० घ० से० कर लो। इसे छारण पत्र से छानकर छने द्रव में से ४०० घ० से० लेकर स/१० हाइड्रोक्लोरिक एसिड से विलेयमापन करो। मिथाइल औरेञ्ज सूचक के तौर पर प्रयुक्त करो।

अ = ५० घ० से० चूने के पानी में स/१० कैलशियम आक्साइड के घ० से०।
(जैसा कि विलेयमापन द्वारा ज्ञात हो)

ब = विलेयमापन में प्रयुक्त स/१० हाइड्रोक्लोरिक एसिड के घ० से० (४ अ—५ ब) × ४·२१ Ca O सूत्र से १ लिटर पानी को कोमल करने के लिये चूने के मिलीग्राम प्राप्त होंगे।

(ख) सोडियम कार्बोनेट का मात्रा निर्धारण—उपरोक्त विलेयमापन से प्राप्त उदासीन ४०० घ० से० पानी में ४० घ० से० स/१० सोडियम कार्बोनेट घोल मिला कर उबाल दो। जिस प्याली में ऊपर विलेयमापन किया गया था उसे कार्बन-आक्साइड रहित पानी से धोने से प्राप्त पानी से कुप्पी के द्रव को ५०० घ० से० कर लो। इसे अच्छी प्रकार मिला कर छान लो। छने द्रव में से ४०० घ० से० द्रव बीकर में लेकर स/१० हाइड्रोक्लोरिक एसिड द्वारा इसमें उपस्थित क्षार की अधिकता जान लो।

स = इस विलेयमापन में प्रयुक्त स/१० हाइड्रोक्लोरिक एसिड के घ० से० इसलिये (२०—ब—⁵⁄₄ स) × ३३·१३ सोडियम कार्बनेट ($Na_2 Co_3$)

= १ लिटर पानी को कोमल करने के लिये सोडियम कार्बोनेट की मात्रा (मिली ग्राम में)

२—पानी को कोमल करने के लिये नीचे कुछ सूत्र दिये हैं। उन सूत्रों को समझने के लिये निम्न तालिका में प्रतिक्रिया गुणांक दिये हैं।

धनात्मक मूलक	प्रतिक्रिया गुणांक
फेरस लोहा (Fe)	०·०३५८
एल्यूमीनियम (Al)	०.११०७
कैलशियम (Ca)	०.०४९९
मैग्नेशियम (Mg)	०.०८२२
सोडियम (Na)	०.०४३५
पोटाशियम (K)	०.०२५६
हाइड्रोजन (H)	०.९९२

ऋणात्मक मूलक

कार्बोनेट (CO_3)	०.०३३३
बाइकार्बोनेट (HCO_3)	०.०१६४
सलफेट (SO_4)	०.०२०८
क्लोरीन (Cl)	.०२८२
नाइट्रेट (NO_3)	०.०१६१

प्रत्येक मूलक के प्रति दस लाख में उपस्थित भाग को प्रतिक्रिया गुणांक से गुणा करने से उसका प्रतिक्रियामान प्राप्त हो जायेगा, इस मान को निम्न सूत्रों में r चिन्ह लगाकर मूलकों के रासायनिक चिन्हों द्वारा प्रगट किया गया है।

१०००गैलन पानी के लिए चूना (९० o/o CaO) पौण्डों में चाहिए = ०.२६ + ($rFe + rAl + rMg + rH + 2HCO_3 + 0$ ०.४५४ CO_2) और सोडियम कार्बोनेट पौण्डों में चाहिए—

= ०.४६५ ($rFe + rAl + rCa + rMg + rH - rCO_3 - RHCO_3$).

घुली हुई आक्सीजन का मात्रा-निर्धारण— विलीन या घुली हुई आक्सीजन के मात्रा निर्धारण के लिए नमूने का संग्रह बहुत सावधानी से करना चाहिए। २५० घ० सें० की छोटी गर्दन की कुप्पी में परीक्षणीय पानी लेकर डाट से बन्द कर दो। इसमें यह सावधानी रखनी चाहिए कि बाहर की वायु के कारण जल में उपस्थित पदार्थों में परिवर्त्तन न हो और उसमें वायु के बुलबुले न उठें।

परीक्षक (क) मैंगनस् सलफेट-घोल—९६ ग्राम मैंगनस् सलफेट २०० घ० सें० पानी में घोल लो।

(ख) आयडाइड-घोल—१८० ग्राम सोडियम हाइड्राक्साइड और ५० ग्राम पोटाशियम आयडाइड ५०० घ० सें० स्रवित पानी में घोल लो।

(ग) हाइड्रोक्लोरिक एसिड-घोल—१.४ विशिष्ट गुरुत्व का अम्ल १ भाग लेकर १ भाग पानी में मिला दो।

(घ) सोडियम थायोसल्फेट-घोल—१.२४१ ग्राम सोडियम थायोसलफेट ($Na_2S_2O_3 5H_2O$) को पानी में घोल कर १ लिटर कर लो।

(च) निशास्ता-घोल—५ ग्राम आलू से तैयार किये हुये निशास्ते में १० ग्राम मरक्यूरिक आयडाइड मिलाकर ठण्डे पानी के साथ रगड़ कर बारीक लेई बना लो। इनमें १ लिटर खौलता हुआ पानी डाल कर आध घण्टे तक उबालो।

क्रिया—पानी का नमूना लेकर पिपटे से २ घ० सें० घोल (क) और (ख) इसके अधस्तल में छोड़ो और डाट लगाकर अच्छी प्रकार हिलाओ। जब इसमें निक्षेप नीचे बैठ जाय तो २ घ० सें० हाइड्रोक्लोरिक एसिड डाल कर तब तक अच्छी प्रकार हिलाओ जब तक निक्षेप उसमें न घुल जाय। इसमें से १०० घ० सें० एक दूसरी कुप्पी में लेकर सोडियम थायोसलफेट-घोल से विलेयमापन करो। सूचक निशास्ता-घोल काम में लाओ। जब सूचक का रंग हलका पीला आजाय तो डालना बन्द कर दो।

नोट—(i) पानी में आक्सीजन घुली होने पर मैंगनस् सलफेट सोडियम हाइड्राक्साइड और पोटाशियम आयडाइड घोल की उपस्थिति में उपचित हो जायेगा। इससे पोटाशियम आयडाइड में से आयोडीन पृथक् हो जायगी जिसका विलेयमापन सोडियम थायोसल्फेट से किया जाता है।

(ii) जिस पानी में आक्सीजन घुली हुई हो, उसका नमूना बहुत सावधानी से इकट्ठा करना चाहिये। इसके लए २५० घ० सें० के चिन्ह वाली छोटी गर्दन की बोतल काम में लानी चाहिए। बोतल में नमूना भर लेने के बाद बोतल में बाहर की वायु नहीं रहने देनी चाहिये।

परिणामों की समीक्षा—भिन्न-भिन्न जलों की परीक्षा करने के बाद निम्न परिणाम प्राप्त हुये हैं। ये परिणाम प्रति दस लाख भाग में प्रगट किये गये हैं।

अ = अपरीक्षित, न = नहीं

ऊपर की तालिका से पानी में पाये जाने वाले पदार्थों की उपस्थित मात्रा का साधारण ज्ञान हो जाता है। विशेषतः पीने के तथा व्यावसायिक प्रयोगों के लिए अशुद्धियों को जानकर उनकी मात्रा को सीमित करना पड़ता है। नीचे इन अशुद्धियों के सम्बन्ध में साधारण जानकारी दी गई है।

(१) गंदलापन—कुएँ के पानी में गंदलापन प्रायः नहीं होता क्योंकि पानी रेत में से छन कर आता है। परन्तु नदियों और स्रोतों में वर्षा के दिनों में गंदलापन

	स्रोत	लाहौर के एक कुएँ का	एक अन्य कुएँ का	एक अन्य कुएँ का		गंग नहर
				कम गहरे का	अधिक गहरे का	
गंदलापन	१०	न	न	न	न	
रंग	·२	न	न	न	न	
कुलठोस	३००	२१८·८	२६०	५००	४००	
क्लोरीन	६	१८	११	१४	१४	
आक्सीजन "शोषित"	५	·२६	२·५	२	२—५	
नाइट्रोजन निम्न रूपों में						
(i) स्वतन्त्र अमोनिया	·०४	·०००		·०२	·०२—३	
(ii) एब्यूमिनायड "	·१५	३·०८	१·७	·०५	·२०	
(iii) नाइट्राइट	·०००	·०००	·०८	·०००	·००५	
(iv) नाइट्रेट	·४	अ		२·००	·४	
क्षारीयता	२००	अ	·३४	३००	३००	
कठोरता	अ	१७५	अ	अ	अ	
(i) अस्थायी	अ	१४८	१५०	अ	अ	
(ii) स्थायी	अ	१७	८४	अ	अ	
धातुएँ			६५			
(i) लोहा	अ	अ	१	अ	अ	
(ii) ताम्र	अ	अ	१	अ	अ	
(iii) जस्ता	अ	अ	३.६	अ	अ	
(iv) सीसक	अ	अ	·२४६	अ	अ	

बढ़ जाता है। इसलिए इसे माप लेते हैं और संख्या में प्रगट करते हैं।

(२) रंग—साधारण अवस्था में पानी नीरंग होता है, परन्तु अशुद्धियों के कारण पानी का रंग भी देखा जाता है क्योंकि गंदलेपन के साथ विशेष कर वर्षा के दिनों में रंग भी विशेष प्रकार का हो जाता है।

(३) घुले हुये कुल ठोस पदार्थ—पानी जब मिट्टी में से गुजरता है तो मिट्टी में उपस्थित कुछ ठोस पदार्थ घोल लेता है। घुले हुये पदार्थों की कमी या अधिकता का कारण मिट्टी में उनकी कमी या अधिकता होती है। जिस पानी में ये पदार्थ अत्याधिक मात्रा में घुले होते हैं वह पानी व्यवसायिक कार्यों (कपड़े धोने, क्वथकों में उबालने) के अनुपयुक्त होता है।

(४) क्लोरीन—पानी में क्लोरीन प्रायः सोडियम-क्लोराइड (नमक) या कभी २ कैलशियम या किसी अन्य धातु के क्लोराइड लवणों के कारण होती है। ये मिट्टी या समुद्र जल से आ जाते हैं।

(५) आक्सीजन 'शोषित',—जल में उपस्थित कार्बनिक द्रव्य पोटाशियम परमैंगनेट और अम्ल की उपस्थिति में आक्सीजन छोड़ते हैं। ये आक्सीजन उन कार्बनिक द्रव्यों का प्रतिनिधित्व करती है।

(६) स्वतन्त्र अमोनिया—पानी में जो अमोनियम लवण होते हैं वह प्रायः मरे पशुओं और पौदों के सड़ने से पैदा हो जाती है। यदि पानी में कैलशियम या मैंगनेशियम कार्बोनेट होगा तो अमोनिया उपचित होकर नाइट्राइट और नाइट्रेट में बदल जायेगा। जब पानी के नमूनों का संग्रह करके रख दिया जाता है तो उसमें कभी २ अमोनिया पहिले की अपेक्षा कम हो जाती है। इसलिए नमूना संग्रह के बाद पानी में यथासंभव शीघ्र ही अमोनिया का मात्रा—निर्धारण कर लेना चाहिए।

(७) एल्ब्यूमिनायड अमोनिया—इसकी उपस्थिति से पानी में कार्बनिक नाइट्रोजन वाले पदार्थों का ज्ञान होता है।

(८) नाइट्राइट—यदि पानी में इसकी पर्याप्त मात्रा है तो समझना चाहिए कि पानी में ये अशुद्धियाँ बहुत समय से नहीं हैं अपितु किसी अन्य अशुद्धि से अभी पैदा हो गई हैं क्योंकि नाइट्राइट शीघ्र ही उपचित होकर नाइट्रेट में बदल जाता है। नाइट्राइट और नाइट्रेट दोनों ही हानिकरक नहीं हैं परन्तु ये सूचित करते हैं कि पानी में ऐसे हानिकारक कार्बनिक द्रव्य उपस्थित हैं जिनसे नाइट्राइट बन गया है।

(९) नाइट्रेट—पानी में उपस्थित कार्बनिक द्रव्यों के पूर्ण उपचयन से नाइट्रेट पैदा हो जाते हैं।

(१०) कठोरता—कठोर पानी व्यवसायिक कार्यों में बहुत बाधा पहुँचाते हैं। इसलिए पानी में कठोरता जानकर इसे दूर करना बहुत आवश्यक होता है। पानी में कठोरता उस भूमि पर अश्रित है जहाँ पर पानी है।

(११) हानिप्रद धातुएँ—पानी में धातुओं की मात्रा कितनी होनी चाहिए जो कि हानिप्रद न हो, विवादस्पद विषय है। परन्तु साधारणतया निम्न मात्राएँ स्वीकार कर ली गई हैं—

(i) लोहा—घरेलू या व्यवसायिक प्रयोजनों के लिए प्रति दस लाख भाग पानी में १ भाग से अधिक लोहा नहीं होना चाहिए। यदि पानी में ३ भाग लोहा होगा तो पानी का स्वाद विचित्र होगा।

(ii) ताम्र—जब तक पानी ताम्बे के बर्त्तनों में न रखा जाय तब तक पानी में प्रायः ताम्बा नहीं पाया जाता। इसकी मात्रा प्रति दस लाख भाग में १ भाग से अधिक नहीं होनी चाहिए।

(iii) जस्ता—खनिज जलों में जस्ता पाया जाता है जस्ता-चढ़े लोहे के नलों या टँकों के कारण भी इसकी मात्रा पानी में पाई जाती है। पीने के लिए यह पानी अवाञ्छनीय होता है। यह प्रति दस लाख पानी में ०.१५ भाग से १३० भाग तक पाया जाता है।

(iV) सीसक—जब कोमल पानी सीसक के नलों के सम्पर्क में आता है तो यह प्रायः पानी में घुल जाता है। पीने के पानी में इसकी उपस्थिति अत्यन्त घातक है। इसकी प्रति दस लाख भाग पानी में ०.२५ भाग उपस्थिति घातक नहीं है, ०.५ भाग बहुत हानिप्रद है और ०.९५ भाग घातक है।

मसिनाग

[ग्रैफाइट Graphite]

[ले०—मकरन्द ढौंड्याल]

दूसरे दर्जे के खनिज पदार्थों में ग्रैफाइट एक उपयोगी पदार्थ है। भारत को अपने कुछ स्वतन्त्र उद्योग-धन्धों के के लिये निकट भविष्य में इसकी यथेष्ट मात्रा में आवश्यकता होगी।

नामोत्पत्ति—

ग्रैफाइट लैटिन भाषा के ग्राफो (Gapho) शब्द से बना है। लैटिन में ग्राफो का अर्थ है अंकित करना अर्थात् लिखना; और यह ठीक भी है क्योंकि ग्रैफाइट एक चिकना कोमल काले रंग का खनिज है जिससे सरलता पूर्वक कागज़ पर मन-इच्छित चिन्ह अंकित किये जा सकते हैं।

उन्नत यूरोप के उत्साही और चैतन्य वैज्ञानिकों ने अधिकाँश रूप से अपनी खोजों और अविष्कारों के समस्त नाम संस्कृत के समान सहज—अर्थ-द्योतानि लैटिन भाषा के ही शब्दों से गढ़े हैं और इस हेतु हमने भी इसका नाम करण हिन्दी (राष्ट्र-भाषा) में "मसिनाग" कर दिया है।

जाति—

मसिनाग कार्बन जाति का एक चमकीला काला खनिज है जो इतना कोमल होता है कि कागज़ पर रगड़ देने से काला चिन्ह अंकित कर देता है। उसकी चमक सीसा (नाग) धातु के कटे हुए भाग की चमक के समान ही होती है और इसीलिये अंग्रेजी में इसको ब्लैक लेड (Black Lead) काला सीसा कहते हैं।

मसिनाग न तो धातु ही है और न इसको मिट्टी पत्थर ही कहा जा सकता है। वह इन दोनों खनिजों के बीच की वस्तु है और इसलिये इसको एक उपधातु ही कहना ठीक होगा। इसको छूने और अंगुली से रगड़ने पर एक प्रकार की मुलायम गुदगुदीदार चिकनाई अनुभव होती है।

यह दो प्रकार के रूपों में मिलता है (१)-रवादार (Granular) और (२) पर्तदार (Foliated)। रवादार जाति सीसे के तुल्य अधिक चमकदार, हल्का और कुछ इस्पाती भूरापन लिये हुए मिलता है और (२) पर्तदार अधिक काला, कम चमकदार भारी, और कुछ मिलावट के साथ मिलता है।

ग्रैफाइट कार्बन का संशोधित दूसरा रूप है। कार्बन के जितने भी रूप हैं इनमें सबसे उत्तम संशोधित रूप "हीरा" है जो काला रंग परित्याग कर विशुद्ध पारदर्शक श्वेत बन जाता है अथवा कभी कभी पीत और नील रंग का भी आभास ले लेता है। संसार में हीरा एक बहुमूल्य रत्न है। इसके पश्चात् कार्बन का दूसरा संशोधित रूप ग्रैफाइट ही है। मूल्यवान न सही तो भी एक उपयोगी वस्तु अवश्य है।

भूगर्भ में स्थित प्रकृति की अद्भुत रसायन-शाला में नित्य और निरन्तर जो रासायनिक क्रियायें हो रही हैं वे मानवी ज्ञान से बहुत परे हैं और यह भी नहीं कहा जा सकता है कि इन रसायनों को उलट फेर कर नई नई वस्तुओं को बनाने में प्रकृति का क्या अर्थ है! प्रकृति की ये क्रियायें सत्य ही आश्चर्यमय हैं।

इसी रसायन-शाला में किन्हीं क्रियाओं द्वारा कोयले का स्वरूप अथवा अन्य उपकरणों का मेल संशोधन होकर हम कार्बन के इस रूप को पाते हैं और वह भी सब स्थानों में नहीं वरन् किन्हीं खास खास चुने हुए स्थानों में।❀

❀ किसी फ्रान्सीसी रसायन शास्त्री ने अपने प्रयोगों द्वारा साधारण कोयले को लोहे मिश्रित कर और अति ताप देकर एकाएक ठण्डा करके देखा तो उस लोहे मिश्रित कोयले का कुछ भाग तो हीरे को कणों में परिवर्तित हो गया और कुछ ग्रैफाइट में। एकाएक ठण्डा करने से उस पर एक प्रकार का बड़ा दवाव पड़ा था।

इस आधार पर मेरे एक मित्र का विचार है कि ग्रैफाइट की खानों में दूर जाकर हीरे का मिलना सम्भव हो सकता है।

कठोरता—

मसिनाग की कठोरता वैज्ञानिक भाषा में १ से २ तक पाई जाती है।

घनत्व—

लगभग २ के होता है।

खान—

मसिनाग की खान बहुधा चूने या लोहे की लाग वाली भूमि के आस-पास पाई जाती है। (कहा जाता है कि कहीं कहीं अभ्रकी भूमि में भी पाई जाती है परन्तु ऐसा मैंने नहीं देखा है)। यह अन्य उपधातुओं की तरह फैले हुए रूप में नहीं पाया जाता, वरन् इसकी एक कील सी, जिसको मैंने आगे मुँगरी नाम से पुकारा है, भूमि अथवा पहाड़ों पर ठुकी हुई सी मिलती है। इस कील (मुँगरी) के चारों ओर बहुत काले रंग के पत्थरों या मिट्टी का स्तर होता है। यह कील खानों में सीधी घुसी हुई नहीं पाई जाती वरन् कहीं कहीं इधर उधर भी हो सकती है। यही कारण है कि कुछ दूर जाकर कभी यह मुँगरी गायब सो मालूम होती हैं।

मैंने इस कील जैसी खान को गढ़वाल के मरोड़ा गाँव के समीप देवलगढ़ सरिता पर देखा है। यह नदी श्रीनगर (गढ़वाल) से ऊपर जाने पर ६ मील दूर मोटर रोड को काटती है और उस स्थान पर डंगरी पन्थ नाम का एक पक्का घाट बना हुआ है। इसी घाट से लगभग १ मील ऊबड़ खाबड़ रास्ता चलने पर यह खनिज विकट चूने के प्रस्तरों के बीच स्थित है। गढ़वाल में लोहवा में भी इसकी एक खान है। अन्य पर्वतीय प्रदेशों में भी इसकी खानें बतलाई जाती हैं। भारत के अन्य स्थानों में भी यह खनिज यथेष्ट मात्रा में पाया जाता है।

ऐसा अनुमान किया जाता है कि जहाँ जहाँ ग्रैफाइट की खानें मिलती हैं वे भाग किसी समय अधिक उष्ण रहे होंगे और उनके चारों ओर कठिन दबाव का भी प्रभाव बना रहा होगा।

जहाँ इसके पास जल होता है लोहा मिश्रित मिट्टी से रंग का गेरुके रंग का मैल पिघलता रहता है।

खुदाई—

ग्रैफाइट की मुँगरी जहाँ साधारण स्थल पर होती है वहाँ की मिट्टी और पत्थर चारों ओर से खोद कर अलग कर लेना चाहिये। यह खुदाई सब्बल, कुदाल, गैंती, फावड़ा और बेलचा से सरलता पूर्वक की जा सकती है। तब मसिनाग की मुँगरी के चारों ओर काले पत्थरों और मिट्टी को खोद कर जो पत्थर कोमल हों और जो मिट्टी लगभग ग्रैफाइट के सामान काली, चिपचिपी, मुलायम और कँकड़-पत्थर रहित हों उन्हें बटोर लेना चाहिये क्योंकि ये भी काम की वस्तुएँ हैं।

तत्पश्चात् ग्रैफाइट की मुँगरी को पैने चौड़े मुँह की कुदाल अथवा छेनी और हथौड़े से सावधानी से तोड़ तोड़-कर साफ़ कनस्तरों या बाँस की डलियों में एकत्र करना चाहिये। इस प्रकार शुद्ध ग्रैफाइट बड़ी सावधानी सहूलियत के साथ बटोर लेना चाहिये।

मसिनाग भूगर्भ के अन्दर जितनी ही गहरी खुदाई में मिलता जायगा वह उतना ही शुद्ध रूप में पाया जायगा।

परन्तु जहाँ ग्रैफाइट की मुँगरी कठिन पर्वतों और प्रस्तरों के मध्य में होती हुई चली जाती हैं वहाँ साधारण खुदाई से काम नहीं चलता। वहाँ तो पहिले बारूद की बत्ती से आसपास के कुछ चट्टानों को तोड़ कर इनमें इतना नष्ट करना होगा कि ग्रैफाइट की खुदाई में अड़चन न आने पाये। यदि प्रस्तर ऊपर से लटकते हों तो उन्हें बारूद-बत्ती से नष्ट कर देना चाहिये अन्यथा खुदाई करने में मजदूरों के दबने का भय बना रहता है। इन प्रस्तरों को नष्ट करने के पश्चात् सब्बलों द्वारा आस पास के पत्थर हटा कर तब पहली रीति की भाँति खुदाई की जा सकती है।

जहाँ ग्रैफाइट की मुँगरी कुछ दूर चल कर पुनः अपना पथ बदल कर इधर-उधर चली जाती है वहाँ बहुधा प्रस्तरों का जोड़ मिलना सम्भव है इसलिये ऐसे स्थानों में इस रुकावट को दूर करने के लिये बारूद बत्ती अथवा सब्बल ही से उनको हटाने का काम करना आवश्यक हो जाता है।

खान से खोदने पर मसिनाग बहुधा शुद्ध कार्बन के ही रूप में मिलता है परन्तु कहीं कहीं ४ से १० प्रतिशत तक लोहे के मल मण्डूर या चूने या ऐसी मिट्टी का मिश्रण भी मिल जाया करता है।

गोदाम—

मसिनाग के गोदाम शुद्ध और साफ़ सुथरे स्थान में बनाने चाहिये जहाँ धूल मिट्टी जाकर ग्रैफाइट के चूरे को बर्बाद न कर सके।

इसके भी गोदाम दो प्रकार के बनाये जा सकते हैं। (१) जो मिट्टी मुँगरी के बाह्य स्तर में से बटोरी जाती है उसे किसी साफ कमरे या बन्द छप्पर के अन्दर ढेर में रखा जा सकता है परन्तु प्रत्येक दशा में फर्श सिमेंट का बना हुआ होना चाहिये अथवा यदि फर्श कच्चा हो तो उस पर बाँस की बारीक चटाई अथवा लोहे की चद्दर बिछा कर भी काम निकाला जा सकता है।

(२) दूसरे प्रकार के गोदाम बन्द कनस्तरों, लकड़ी के सन्दूकों या ढक्कनदार डलियों में बनाये जा सकते हैं परन्तु इनमें खर्च बहुत पड़ जाता है इसलिए इनमें मुँगरी से ही निकला हुआ शुद्ध ग्रैफाइट रखने का उपयोग करना चाहिये न कि मिट्टी मिले हुए अशुद्ध ग्रैफाइट में।

दूसरे प्रकार के भाण्डारों को बाहर हवा पानी में नहीं रखना चाहिये वरन् इनसे बचाने के लिये इनको किसी कमरे में रख लेना चाहिये जिसमें आंधी और वर्षा में मसिनाग खराब न हो जाय।

(२) मसिनाग का उपयोग

(१) जितनी भी काली पेन्सिलें आप काम में लाते हैं या बाजार में देखते हैं उनके भीतर यह काला-सीसा मसिनाग ही है और उसी से आप दिनरात्रि लिखने का काम करते हैं। बतलाइये आजकल इन पेन्सिलों की भारत में कितनी अधिक खपत है, असंख्य रूप में।

पेन्सिलें बनाने वाले ग्रैफाइट में गोंद आदि मिलाकर और बारीक सलाखों में ढाल कर सुथरे हुए लकड़ी के टुकड़ों के अन्दर भर देते हैं। यदि ग्रैफाइट अच्छी जाति का हुआ तो पेन्सिलें अच्छी बनती हैं। जो लोग मिलावटी मसिनाग से पेन्सिलें बनाते हैं वे इस व्यवसाय को बहुत हानि पहुँचाते हैं। आपने कई बार सस्ती पेन्सिलों को लेकर देखा होगा कि चाकू से नोक बनाते बनाते वे टूटती जाती हैं और एक पत्र लिखते लिखते सारी की सारी पेन्सिल घिस कर समाप्त हो जाती है। कठोर पेन्सिलें बनाने के लिये मसिनाग में थोड़ा सा बालू का मैदा मिला देते हैं। ये पेन्सिलें बहुधा ड्राइंग नक़्शों के बनाने अथवा कार्बन-पेपर से अनुलेख (Duplicating) के लिये काम में लाई जाती हैं।

(२) बहुत से कारखानों की उन मशीनों में, जिनके पुर्जों तथा बोर्डों में चिकनाई के लिये तेल डालने से आग लग जाने का भय होता है, ग्रैफाइट का मैदा तेल के बदले काम में लाया जाता है क्योंकि ग्रैफाइट में भी एक कोमल पिस जाने वाली शुष्क चिकनाई होती है और उससे आग लगने का कोई भय नहीं होता है।

(३) विद्युत परिचालन के काम में और बैटरियों के सेलों के अन्दर ग्रैफाइट का बड़ा उपयोग किया जाता है।

(४) लोहे तथा लकड़ी को कृष्ण-रंग देने के लिये ग्रैफाइट बहुत काम में लाया जाता है। काले रंग के काम में यह इन दो अलावा सब जगह खूब काम देता है।

अब से कुछ काल पहिले ग्रैफाइट से लोग सफेद वस्त्रों को रंगा करते थे। इसकी रीति वे लोग इस प्रकार करते थे कि ग्रैफाइट को लेकर वे लोग पानी के साथ घोल देते थे और थोड़ा केले के रस मिलाकर खूब खौलाते थे। तब उतार कर सफेद गाढ़े आदि के कपड़ों को इसमें डुबो कर कुछ देर रहने देते थे और बिना निचोड़े ही सुखा देते थे। परन्तु स्मरण रहे कि ऐसा करने में कपड़े पर यह घोल एक समान भींज जाना चाहिये—अथवा कपड़ा धब्बेदार सा रंगेगा। इस प्रकार कपड़े जिस रंग को लेते थे वह आजकल के रंग काले गाढ़े से किसी दशा में भी कम दर्शनीय नहीं होता था।

(५) बारूद के बनाने में भी ग्रैफाइट काम में लाया जाता है। इससे बारूद शीघ्र तापग्राही और चमकीला बन जाता है!

(६) मिट्टी के साथ, मिला कर ग्रैफाइट की उन धातुओं को गलाने के लिये बड़ी बड़ी कुठारियाँ बनाई जाती हैं जो अत्याधिक तापमान में गल सकती हैं। क्योंकि यह शीघ्र तापग्राही तो है परन्तु गलता नहीं है।

(शेष फिर)

विज्ञान-परिषद्की प्रकाशित प्राप्य पुस्तकोंकी सम्पूर्ण सूची

१—विज्ञान प्रवेशिका, भाग १—विज्ञानकी प्रारम्भिक बातें सीखनेका सबसे उत्तम साधन - ले० श्री रामदास गौड़ एम० ए० और प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी० ;

२—चुम्बक—हाईस्कूलमें पढ़ाने योग्य पुस्तक ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी०; सजि०; ।।=)

३—मनोरञ्जक रसायन—इसमें रसायन विज्ञान उपन्यासकी तरह रोचक बना दिया गया है, सबके पढ़ने योग्य है ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम० एस-सी० ; १।।),

४—सूर्य-सिद्धान्त—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान-भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखनेका सबसे सुलभ उपाय—पृष्ठ संख्या १२१४ ; १४० चित्र तथा नकशे—ले० श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; सजिल्द; दो भागोंमें; मूल्य ६)। इस भाष्यपर लेखकको हिन्दी साहित्य सम्मेलनका १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है।

५—वैज्ञानिक परिमाण—विज्ञानकी विविध शाखाओंकी इकाइयोंकी सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहालकरण सेठी डी० एस सी०; ।।।),

६—समीकरण मीमांसा—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १।।) द्वितीय भाग ।।=),

७—निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री बी० एस सी० ; ।।),

८—बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित—इंटरमीडियेटके गणितके विद्यार्थियोंके लिये—ले० डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी० ; १।),

९—गुरुदेवके साथ यात्रा—डाक्टर जे० सी० बोसकी यात्राओंका लोकप्रिय वर्णन ; ।~),

१०—केदार-बद्री यात्रा—केदारनाथ और बद्रीनाथके यात्रियोंके लिये उपयोगी; ।),

११—वर्षा और वनस्पति—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शङ्करराव जोशी; ।),

१२—मनुष्यका आहार—कौन-सा आहार सर्वोत्तम है—ले० वैद्य गोपीनाथ गुप्त; ।=),

१३—सुवर्णकारी—क्रियात्मक—ले० श्री गंगाशंकर पचौली; ।),

१४—रसायन इतिहास—इंटरमीडियेटके विद्यार्थियोंके योग्य—ले० डा० आत्माराम डी० एस-सी०; ।।।),

१५—विज्ञानका रजत-जयन्ती अंक—विज्ञान परिषद्के २५ वर्षका इतिहास तथा विशेष लेखोंका संग्रह; १)

१६—फल-संरक्षण—दूसरा परिवर्धित संस्करण—फलोंकी डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार आदि बनानेकी अपूर्व पुस्तक; २१२ पृष्ठ; २५ चित्र—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्रनारायण सिंह एम० एस-सी०; २),

१७—व्यङ्ग-चित्रण—(कार्टून बनानेकी विद्या)—ले० एल० ए० डाउस्ट ; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी, एम० ए०; १७५ पृष्ठ; सैकड़ों चित्र, सजिल्द; १।।)

१८—मिट्टीके बरतन—चीनी मिट्टीके बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा ; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र; सजिल्द; १।।),

१९—वायुमंडल—ऊपरी वायुमंडलका सरल वर्णन—ले० डाक्टर के० बी० माथुर; १८६ पृष्ठ; २५ चित्र; सजिल्द; १।।),

२०—लकड़ी पर पॉलिश—पॉलिशकरनेके नवीन और पुराने सभी ढंगोंका ब्योरेवार वर्णन। इससे कोई भी पॉलिश करना सीख सकता है—ले० डा० गोरखप्रसाद और श्रीरामयत्न भटनागर, एम०, ए०; २१८ पृष्ठ; ३१ चित्र, सजिल्द; १।।),

२१—उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश; आकार बड़ा विज्ञानके बराबर २६० पृष्ठ; २००० नुसखे, १०० चित्र; एक-एक नुसखेसे सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं या हज़ारों रुपये कमाये जा सकते हैं। प्रत्येक गृहस्थके लिये उपयोगी; मूल्य अजिल्द २) सजिल्द २।।),

२२—कलम पेबंद—ले० श्री शंकरराव जोशी; २०० पृष्ठ; ४० चित्र; मालियों, मालिकों और कृषकोंके लिये उपयोगी; सजिल्द; १।।),

२३—जिल्दसाज़ी—क्रियात्मक और ब्योरेवार। इससे सभी जिल्दसाज़ी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०; १८० पृष्ठ, ६२ चित्र; सजिल्द १।।),

२४—त्रिफला—दूसरा परिवर्धित संस्करण-प्रत्येक वैद्य और गृहस्थके लिये—ले० श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार, २१६ पृष्ठ; ३ चित्र, एक रङ्गीन; सजिल्द २।),

यह पुस्तक गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय, की १३ श्रेणी के लिए द्रव्यगुणके स्वाध्याय पुस्तकके रूपमें शिक्षापटलमें स्वीकृत हो चुकी है।"

२५—तैरना—तैरना सीखने और डूबते हुए लोगोंको बचाने की रीति अच्छी तरह समझायी गयी है। ले० डाक्टर गोरखप्रसाद पृष्ठ १०४ मूल्य १),

२६—अंजीर—लेखक श्री रामेशवेदी; आयुर्वेदालंकार-अंजीर का विशद वर्णन और उपयोग करनेकी रीति। पृष्ठ ४२, दो चित्र, मूल्य ॥),

यह पुस्तक भी गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालयके शिक्षा पटलमें स्वीकृत हो चुकी है।

२७—सरल विज्ञान-सागर प्रथम भाग—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद। बड़ी सरल और रोचक भाषा में जंतुओंके विचित्र संसार, पेड़ पौधों की अचरज-भरी दुनिया, सूर्य, चन्द्र और तारोंकी जीवन कथा तथा भारतीय ज्योतिषके संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। विज्ञानके आकार के ४५० पृष्ठ और ३२० चित्रोंसे सजे हुए ग्रन्थ की शोभा देखते ही बनती है। सजिल्द मूल्य ६), मिल है।

२८—वायुमण्डलकी सूक्ष्म हवाएँ—ले० डा० सन्तप्रसाद टंडन, डी० फिल० मूल्य ।।।)

२९—खाद्य और स्वास्थ्य—ले० श्री डा० ओंकारनाथ परती, एम० एस-सी०, डी० फिल० मूल्य ।।।)

हमारे यहाँ नीचे लिखी पुस्तकें भी मिलती हैं:—

१—विज्ञान हस्तामलक—ले०—स्व० रामदास गौड़ एम० ए० भारतीय भाषाओंमें अपने ढंगका यह निराला ग्रंथ है। इसमें सीधी सादी भाषामें अठारह विज्ञानोंकी रोचक कहानी है। सुन्दर सादे और रंगीन पौने दो सौ चित्रोंसे सुसज्जित है, आजतककी अद्भुत बातोंका मनोमोहक वर्णन है, विश्वविद्यालयोंमें भी पढ़ाये जानेवाले विषयोंका समावेश है, अकेली यह एक पुस्तक विज्ञानकी एक समूची लैब्रेरी, है एक ही ग्रंथमें विज्ञानका एक विश्वविद्यालय है। मूल्य ६)

२—सौर-परिवार—लेखक डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० आधुनिक ज्योतिष पर अनोखी पुस्तक ७७६ पृष्ठ, ५८७ चित्र (जिनमें ११ रंगीन हैं) मूल्य १२) इस पुस्तक पर काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा से रेडिचे पदक तथा २००) का छन्नूलाल पारितोषिक

३—भारतीय वैज्ञानिक—१२ भारतीय वैज्ञानिकोंकी जीवनियाँ—ले० श्री श्याम नारायण कपूर, सचित्र ३८० पृष्ठ; सजिल्द; मूल्य ३।।) अजिल्द ३)

४—वैक्युम-ब्रेक—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा। यह पुस्तक रेलवेमें काम करने वाले फ़िटरों इंजन-ड्राइवरों, फ़ोरमैनों और कैरेज एग्ज़ामिनरोंके लिये अत्यन्त उपयोगी है। १६० पृष्ठ; ३१ चित्र जिनमें कई रंगीन हैं, २),

विज्ञान-परिषद्, ४२, टैगोर टाउन, इलाहाबाद

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुखपत्र

इंडियन् साइंस काँग्रेस विशेषाङ्क

भाग ६४ | सम्वत् २००३, फरवरी, मार्च १९४७ | संख्या ५, ६

प्रकाशक

विज्ञान-परिषद्,

बेली रोड, इलाहाबाद।

षिक मूल्य ३)]

[एक संख्या का

इस विशेषांङ्क का मूल्य १)

प्रयागकी

विज्ञान-परिषद् के मुख्य नियम

परिषद्‌का उद्देश्य

१—१९७० वि० वा १९१३ ई० में विज्ञान परिषद्‌की स्थापना इस उद्देश्य से हुई कि भारतीय भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञानके अध्ययनको और साधारणतः वैज्ञानिक खोजके कामको प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद्‌का संगठन

२—परिषद्‌में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमोंके अनुसार सभ्यगण सभ्योंमेंसे ही एक सभापति, दो उपसभापति एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमंत्री, दो मंत्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे, जिनके द्वारा परिषद्‌की कार्यवाही होगी।

पदाधिकारियोंका निर्वाचन

१८—परिषद्‌के सभी पदाधिकारी प्रतिवर्ष चुने जायँगे। उनका निर्वाचन परिशिष्टमें दिये हुये तीसरे नकशेके अनुसार सभ्योंकी रायसे होगा।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्यको ५) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश-शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ ७० रु० की रकमदे देनेसे कोई भी सभ्य सदाके लिये वार्षिक चन्देसे मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्योंको परिषद्‌के सब अधिवेशनोंमें उपस्थित रहनेका तथा अपना मत देनेका, उनके चुनावके पश्चात् प्रकाशित, परिषद्‌की सब पुस्तकों, पत्रों, विवरणों इत्यादिके बिना मूल्य पानेका—यदि परिषद्‌के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धनसे उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन-चौथाई मूल्यमें मिलेंगी।

२७—परिषद्‌के सम्पूर्ण स्वत्वके अधिकारी सभ्यवृन्द समझे जायँगे।

परिषद्‌का मुखपत्र

३३—परिषद् एक मासिक-पत्र प्रकाशित करेगी जिसमें सभी वैज्ञानिक विषयोंपर लेख प्रकाशित हुआ करेंगे।

३४—जिन लेखोंको परिषद् प्रकाशित करेगी उनमें जो लेख विशेष महत्व और योग्यताके समझे जायँगे उनके लेखकोंको अपने अपने लेख की बीस प्रतियाँ बिना मूल्य पानेका अधिकार होगा।

विज्ञान

विज्ञान-परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ।। तै० उ० ।३।५।

भाग ६४ | सम्वत् २००३, फरवरी, मार्च १९४७ | संख्या ५, ६

इंडियन सायंस कांग्रेस, दिल्ली के अध्यक्ष

श्री जवाहरलाल नेहरू का भाषण

श्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने इंडियन सायंस कांग्रेस के दिल्ली अधिवेशन में अपने अध्यक्षपद से दिये गये अपने भाषण में कहा—"निस्सन्देह विज्ञान का उद्देश्य केवल व्यक्तिगत रूप से 'सत्य' की खोज करना नहीं है। यदि इसके द्वारा समाज का उत्थान होता है, तो इसका लक्ष्य इतने से कहीं अधिक विस्तृत है। भूखे मनुष्य और भूखी नारी के लिये 'सत्य' शब्द अर्थहीन है। उसे तो भोजन चाहिये भूखे व्यक्ति के लिए 'ईश्वर' भी अर्थ नहीं रखता, वह तो केवल भोजन चाहता है। भारतवर्ष आज भूखा है, इस नंगे भूखे देश के सामने सत्य और ईश्वर का नाम लेना, और इसी प्रकार जीवन की अन्य सुन्दरतम चर्चा चलाना भीषण उपहास मात्र है।

हमें तो उनके लिए भोजन, वस्त्र, घर, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि जीवन की ऐसी आवश्यकताओं को जुटाना है, जो प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त होनी ही चाहिये, जब हम इतना कर लेंगे, तब हम दार्शनिक स्वरूप प्रदान करके 'ईश्वर' का भी चिन्तन कर सकते हैं। अतः इस समय तो विज्ञान को भारत के ४० करोड़ व्यक्तियों की बात सोचनी चाहिए। वस्तुतः इस दृष्टिकोण से देखना, और उसे कार्य में परिणत करना तभी संभव हो सकता है, जब हम सुसंगठित सामंजस्यपूर्ण योजना के लिए तैयार हो जायँ।

इन सब कामों के लिए सायंस-कांग्रेस को अभी से उद्यत हो जाना चाहिए। उसे इस भरोसे पर नहीं बैठना चाहिये कि पहले सरकार की ओर से काम का श्रीगणेश हो, सरकारें तो भली भी हो सकती हैं, और सरकारें बुरी भी होती हैं, पर यह स्पष्ट है कि सरकारें साधारणतया आसानी से करवट नहीं बदलती हैं, उनको चेताने का एकमात्र उपाय यही रहा है कि जनता की वाणी में आगत भविष्य के लिए अभी से चीत्कार उत्पन्न की जाय। अतः मैं वैज्ञानिकों की इस प्रवृत्ति को निरुत्साहित कराना चाहता हूँ, कि वे सदा सरकार के करने न करने की बाट जोहा करें। यह स्वाभाविक अवश्य है कि सरकार पर आशा रखने का उन्हें अधिकार है—(यह मैं अपने सभी सरकारी सहयोगियों की ओर

से कुछ-कुछ और अपनी ओर से ही विशेष कह रहा हूँ)—हम लोग सभी भारतवर्ष के वैज्ञानिक उत्थान में विशेष रुचि ले रहे हैं, और जितना भी हमसे बन पड़ेगा, भारतवर्ष में अनुसन्धान और अन्वेषणों का प्रोत्साहन देंगे। देश में जितनी बौद्धिक गुप्त निधि है, हम उस सबका उपयोग करके समाज के उत्थान में उसे लगाना चाहते हैं, और इसके सदुपयोग के लिए अवसर और साधन प्रदान करेंगे। मैं सायंस कांग्रेस और विदेशों से आये हुये अतिथियों को विश्वास दिलाना चाहता हूँ, कि हम विदेश के विज्ञान में इस दृष्टि से सहयोग देने के लिए तत्पर हैं जिससे विश्व में शांति की स्थापना हो, और मानवता को शांति और वैभव मिले।

पर इस प्रकार का वचन देने से पूर्व मैं यह सर्वथा स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि युद्ध के कार्य में हम किञ्चनमात्र भी सहयोग नहीं देंगे। हमारा भविष्य क्या है, मैं नहीं जानता। मैं भविष्य-वाणी भी नहीं कर सकता, और न मुझे इसका अधिकार ही प्राप्त है कि भविष्य में हमारा देश क्या करेगा और क्या न करेगा, इसके सम्बन्ध में बचन बद्ध हो जाऊँ। इस समय गतयुद्ध के समाप्त होने पर लोगों के विचार भविष्य में होने वाले युद्ध की संभावना की ओर ही दौड़ रहे हैं, और ऐसा प्रतीत होता है, कि वैज्ञानिक भी भावी युद्धों की सामग्री जुटाने में अनिच्छा होने पर भी लगा दिये गये हैं। ऐसी स्थिति में वैज्ञानिक पुरुषों और महिलाओं को यह सोचना आवश्यक है, कि वे इस बात के प्रति सतर्क हो जायें कि उनकी शक्ति और सम्पन्नता का उपयोग उनकी इच्छा के विरुद्ध ऐसे निन्द्य लक्ष्यों की पूर्ति के लिए किया जा रहा है। उन्हें यह स्पष्ट घोषित कर देना चाहिए, कि उनकी इच्छा इस प्रकार के वशात् सहयोग के प्रति बिलकुल भी नहीं है। अस्तु, मुझे यह आशा है कि भविष्य में मेरा देश इस प्रकार के युद्धों में घसीटा नहीं जा सकेगा, जब कि ये भावी युद्ध इस समय तक घटित युद्धों की अपेक्षा अधिक भयंकर होने की सभावना रखते हैं।

यह सब कहते हुए भी मैं यह जानता हूँ कि शान्ति और युद्ध सम्बन्धी वैज्ञानिक अन्वेषणों के बीच में भेदक रेखा खींचना कितना कठिन है। परमाणु की अपार शक्ति, जिसका अभी हमें परिचय मिला है, युद्ध को भयंकरता में भी सहयोग दे सकती है, और शान्ति के उपयोग में भी आ सकती है। केवल इस दृष्टि से इसकी अवहेलना नहीं की जा सकती कि युद्ध में भी इसका उपयोग संभव है। भारत में हम इस शक्ति का विकास करना चाहते हैं, निस्सन्देह हम इसका पूर्ण विकास करेंगे। सौभाग्य से हमारे देश में ऐसे वैज्ञानिक हैं, जो ऐसा करने में समर्थ हैं। हम संसार के अन्य देशों का सहयोग प्राप्त करके इस शक्ति को उन्नत करेंगे, पर केवल शान्तिमय लक्ष्य को दृष्टि में रख कर।

यह दुःख की बात है, कि जिस समय प्रकृति में निहित इतनी महान् शक्तियाँ हमें प्राप्त है, जिनके उपयोग से हम अपना उत्थान कर सकते हैं, और मानवता के आदर्श को उस उच्च शिखर तक पहुँचा सकते हैं, जिसका पहले के युगों में स्वप्न भी नहीं देखा गया था, तो फिर अब भी हम उन्हीं पुराने युद्धों की ओर संघर्षों की कल्पना करते रहें, जिनके बिना आर्थिक और सामाजिक वैभव प्राप्त करना कठिन समझा जाता था, इन युद्धों और संघर्षों से विशेष देशों या वर्गों का एकाधिपत्य स्थापित हो जाता है, और अर्थ के आश्रय पर जनता में अनेक भेदक वर्ग और श्रेणियों की स्थापना हो जाती है। अन्य क्षेत्रों के लोग चाहें, इसमें कितनी निष्ठा क्यों न रखते हों—है यह भी घोर दुःख की बात, पर कम से कम वैज्ञानिकों को तो इसके अनौचित्य पर विश्वास होना चाहिये।

आज भारतवर्ष में हम अपनी राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं में उलझे हुए हैं। इस क्षेत्र में कार्य करते समय हमारे समक्ष अनेक अधिक विस्तृत
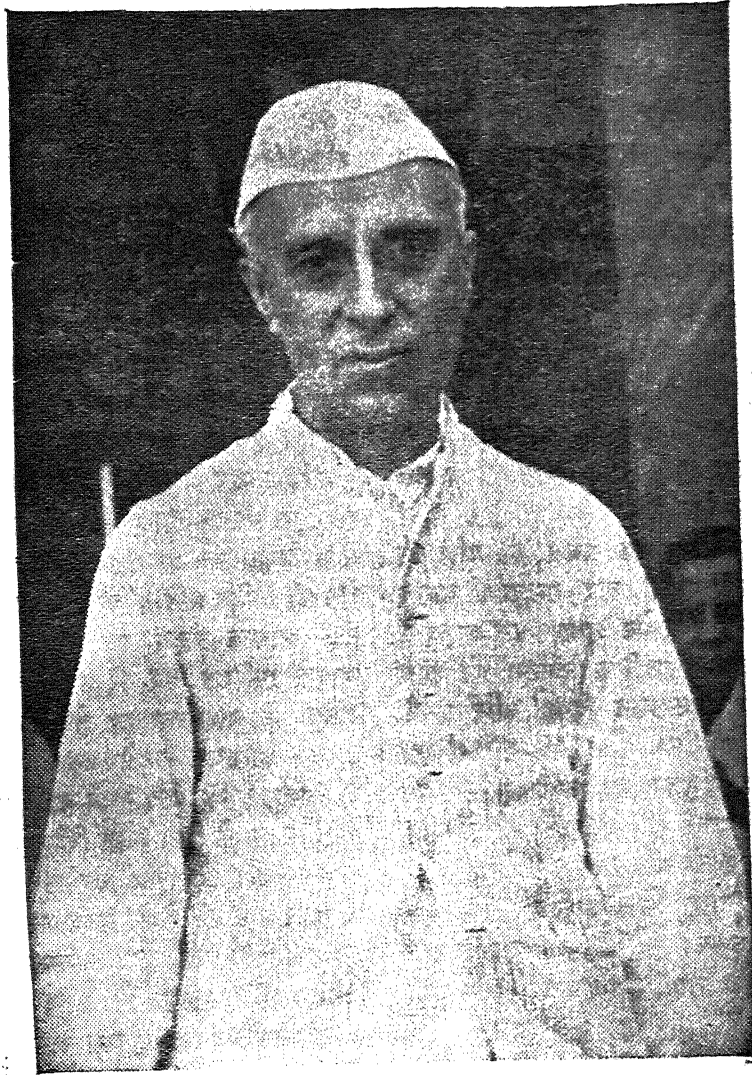
इंडियन साइन्स कांग्रेस के ३४वें अधिवेशन के सभापति
पण्डित जवाहरलाल नेहरू

समस्यायें उपस्थिति होती है, जिनमें निश्चय पूर्वक विज्ञान को बहुत बड़ा भाग लेना है। मैं आप सब वैज्ञानिकों को—चाहे आप युवक हों या वृद्ध—भारत के भविष्य की साधना से चिन्तन के लिये अमन्त्रित करता हूँ, जिससे आपके सहयोग से न केवल भारत के चालीस करोड़ व्यक्तियों का उत्थान हो, प्रत्युत समस्त विश्व में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग, सुख और शान्ति की स्थापना हो।

हिरोशिमा में जो कुछ घटा उसकी भयंकरता का उल्लेख करना शब्दों की शक्ति के बाहर है। विज्ञान के दो पक्ष हैं-विध्वंसात्मक और निर्माणात्मक अथवा उत्पादक। दोनों पक्ष सदा साथ साथ रहे हैं,

और इस समय भी साथ साथ हैं। यह कोई नहीं कह सकता कि अन्त में किसकी विजय होगी, हिरोशिमा तो हमारे संघर्ष का प्रतीकमात्र है। यू० एन० ओ० के 'एटामिक इनर्जी कमीशन' के निश्चयों के अनन्तर भी (यद्यपि हम इन निश्चयों का स्वागत करते हैं) हमारे हृदय में सन्देह बना रहा है, कि आखिर हम सब किस ओर बढ़ रहे हैं। परमाणु बम की बात छोड़िए, फिर भी यह निश्चय है, कि हम एक ऐसे नये युग में प्रविष्ट हो रहे हैं, जिसमें मानव समाज को महान् शक्तिओं और बलों की सम्पन्नता प्राप्त होगी। क्या यह नया युग एक नये प्रकार के संगठित समाज की स्थापना करेगा ? मेरी धारणा है कि अवश्य यह हमारे वर्त्तमान संगठन को बहुत कुछ बदल देगा।

मेरा ध्यान इस समय उस समय की ओर जा रहा है जब संसार में पहली बार बन्दूक की बारूद (आग्नेय चूर्ण) का विस्फोट हुआ। इस बारूद ने हमारे मध्य कालीन सामाजिक संगठन को शीघ्र और बड़े वेग से उलट-पुलट दिया, और इसके परिणाम स्वरूप हमें एक नया राजनीतिक एवं आर्थिक संगठन प्राप्त हुआ, यह ठीक है इस युग परिवर्त्तन में अनेक अन्य शक्तिओं का भी हाथ था, पर निस्सन्देह, बारूद का भी समाज के संगठन पर बड़ा प्रभाव पड़ा, और जो सामन्तवर्ग हमें इस समय प्राप्त हुआ उसका यह विशेष कारण था। इसके सहारे ही एक नये पूँजीवर्ग की स्थापना भी हुई।

मैं कई बार यह सोचता रहा हूँ, कि मुझ ऐसे व्यक्ति को जो सचमुच राजनीति के उपयुक्त न था, राजनीति में इतना घनिष्ट सम्पर्क क्यों प्राप्त हो गया। मैं इस प्रश्न के उत्तर देने का प्रयत्न करूँगा— इसलिये नहीं कि यह प्रश्न व्यक्तिगत है, पर इस लिये कि इसका विस्तृत महत्व है। इसका कारण यह है कि वस्तुतः किसी भी क्षेत्र में (और विज्ञान के ऐसे क्षेत्रों में तो और भी विशेष रूप से) तब तक उन्नति संभव नहीं है, जब तक उन बेड़ियों से जनता को मुक्त न कर दिया जाय जो उचित विकास और वृद्धि के उपयुक्त आयोजनों में बाधा डालती हैं।

कोई भी देश जो स्वतंत्र नहीं है, और जिसमें आत्म-निर्भरता नहीं है, कभी सचमुच उन्नति नहीं कर सकता। कुछ व्यक्ति निजी रूप से उन्नति कर भी जायँ, पर आगे बढ़ने के लिये जन समाज को स्वातंत्र्य और आत्मनिर्भरता प्राप्त होनी चाहिये। अतः प्रत्येक दृष्टि से, और विशेषतः विज्ञानोन्नति की दृष्टि से यह नितान्त आवश्यक है कि पहले हम भारतवर्ष को स्वतंत्र और आत्म-निर्भर बनाने में सहयोग दें।

आज भारत ने विज्ञान के जगत् में, विशेषतया दार्शनिक भौतिक विज्ञान में और कुछ अन्य विभागों में भी प्रमुख यश प्राप्त किया है, अभी हमने अपने देश की निहित प्रतिभा के स्रोत का पूर्ण उपयोग भी नहीं आरम्भ किया, पर फिर भी हमने अच्छा आदर्श उपस्थित कर दिया है। अभी तो भारतीय जनता के बाह्य नग्न पृष्ठ को कुरेदा मात्र है, पर इतने में ही हमने सन्तोषजनक परिणाम दिखाया, मैं सोचता हूँ कि यदि हमने कहीं अपने द्वार अधिकांश जनता के लिये खोल दिये होते, तो हमारे देश का एक नया ही चित्र उपस्थित होता। उस चित्र की कल्पना से ही मेरा हृदय भर आता है। देश में इस समय जितनी गुप्त प्रतिभायें हैं, उनका पाँच प्रतिशत भी जागरूक हो सका होता, तो इस देश में वैज्ञानिकों का एक अच्छा वर्ग उत्पन्न हो गया होता।

यद्यपि मेरा बहुत कुछ समय राजनीतिक उलझनों में जाता है तथापि लगभग सभी समस्याओं के सुलझाने के लिये मैंने सदा वैज्ञानिक दृष्टि कोण सामने रक्खा है। मेरा विश्वास है कि हमारी प्रत्येक समस्या के सुलझाने का एक ही सच्चा दृष्टिकोण हो सकता है और वह वैज्ञानिक दृष्टि-कोण है।

मैं अब अपने विदेशी प्रतिनिधियों का स्वागत

करता हूँ, जो इस समय यहाँ उपस्थित हैं। मुझे खेद है कि सोवियट प्रतिनिधि अभी यहाँ नहीं पहुँच पाये हैं। मुझे आशा है कि या तो वे सायंकाल तक आ जायगें, और नहीं तो कल तो अवश्य ही आ जावेंगे। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह सायंस कांग्रेस भी जो ऐसे समय हो रही है जो हमारे इतिहास का विशेष महत्व पूर्ण समय है, उतनी ही महत्वपूर्ण होगी, और इसके योग से देश की वैज्ञानिक उन्नति को विशेष आश्रय प्राप्त होगा।

—डाक्टर सत्यप्रकाश

विश्व की वैज्ञानिक उन्नति का उद्गम भारत है

प्राचीन भारतीय दार्शनिकों में अतुलनीय अन्तर्ज्ञान था

विज्ञान-परिषद् के लिये श्री० राजगोपालाचार्य का सन्देश

"संसार के किसी भी देश में मनुष्य का अन्तर्ज्ञान आधुनिक विज्ञान के अनुसंधान और उत्पत्ति के इतने निकट नहीं पहुँचा जितना कि भारत के प्राचीन दार्शनिकों का अन्तर्ज्ञान पहुँचा था।"

उपर्युक्त शब्द भारत के मन्त्री श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य के उस सन्देश के हैं जो उन्होंने भारतीय विज्ञान परिषद् के लिये दिया था। उनका पूरा सन्देश यह है :—

भारत ने आधुनिक काल में अनेक महान वैज्ञानिक उत्पन्न किए हैं। उनमें से कुछ को संसार के वैज्ञानिकों की प्रथम श्रेणी में स्थान प्राप्त हुआ है। इस देश के अनेक नवयुवक विविध अनुसंधान- संस्थाओं में नितान्त महत्वपूर्ण विषयों पर गवेषणा कर रहे हैं। हमें भरोसा है कि भारत की मौलिक बुद्धि, प्राचीन काल के समान, एक बार फिर वैज्ञानिक अनुसंधान में प्रकट होगी।

संसार के किसी भी देश में मनुष्य का अन्तर्ज्ञान आधुनिक विज्ञान के अनुसंधान और उसकी उत्पत्ति के इतने निकट नहीं पहुँचा जितना कि भारत के प्राचीन दार्शनिकों का अन्तर्ज्ञान पहुँचा था। यदि संसार में क्रमबद्ध वैज्ञानिक ज्ञान का प्रसार करने वाला कोई सर्व प्रथम केन्द्र रहा हो तो वह प्राचीन भारत ही था। संस्कृत ग्रंथों में उपलब्ध ज्योतिष शास्त्र तथा गणित का ज्ञान-भंडार आश्चर्य की वस्तु है। कुछ लोग यह मानना पसन्द करते हैं कि ज्ञान का प्रवाह भारत से ग्रीस होता हुआ अरब नहीं पहुँचा वरन् उसे भारत ने ही ग्रीस से प्राप्त किया था। यदि यही विचार मान लिया जाय तो भी भारत के लिये यह कोई छोटी बात नहीं थी, क्योंकि इसका अर्थ यह होगा कि उस समय के भारतीय ज्योतिषी, गणितज्ञ तथा औषध-शास्त्री ग्रीस जैसे दूरस्थ देश से इतना ज्ञान भंडार स्वीकार करके पचा सकते थे। अतएव, आधुनिक वैज्ञानिक उमंग तथा विज्ञान के विकास में भारतीय मस्तिष्क का जो प्रयोग हो रहा है वह भारत की प्राचीन मौलिक बुद्धि के अनुरूप ही है।

भारत के सर्वमान्य राजनीतिक नेता गण भी अपनी विचार-सरणी तथा कार्यपद्धति में वैज्ञानिक हैं। जो लोग गांधी जी को निकट से जानते हैं वे समझ सकते हैं कि महात्मा गांधी जो कुछ भी करते हैं उसमें एक दृढ़ वैज्ञानिक दृष्टिकोण होता है। विचारों या अनुमान में शिथिलता और त्रुटि से वे अधीर हो उठते हैं। उनके कार्यों में जो कुछ अनाधुनिक दीखता हो उसमें भी सच्चे वैज्ञानिकों को गांधी जी सत्य के एक ऐसे बन्धु-अनुसंधानक मिलेंगे जो कि वैज्ञानिक पद्धति के अनुकूल उपकरणों से ही काम करते हैं।

यही बात पंडित जवाहरलाल नेहरू के विषय में भी है। सरकार में उनका जो पद है उसके कारण वे इस परिषद् के अध्यक्ष नहीं हैं। उनका हृदय और उनकी बुद्धि आधुनिक विज्ञान की झंकार के अनुसार ही स्पंदित होती है। उनके इस परिषद् का अध्यक्ष-पद ग्रहण करने से और राष्ट्रीय-भौतिक विज्ञान प्रयोगशाला की आधारशिला रखने से भारत में राजनीतिक पुनर्जन्म के साथ साथ विज्ञान में मौलिक अनुसंधान को प्रोत्साहन मिलेगा।

विश्वविद्यालयों में विज्ञान का अध्ययन करने वाले समस्त नवयुवकों को इससे उत्साह और बल प्राप्त होगा।

विज्ञान, कला और संस्कृतिक राजनीति से कम महत्व-पूर्ण नहीं है। जब तक एक विदेशी शक्ति हमारे ऊपर बलात् शासन करती रही और एक संघर्ष चलाते रहना अनिवार्य रहा, तब तक राजनीति का महत्व बहुत चढ़ा-बढ़ा था। स्वतन्त्रता के साथ हर बात अपना योग्य आकारप्रमाण ग्रहण कर लेता है। अब राजनीति हर चीज पर शासन करने और हर चीज को भ्रष्ट करने वाली नहीं रह सकेगी। विज्ञान तथा कला और संस्कृतिक सरकार या राजनीतिक वादानुवाद से अब अधिक महत्व की होगी।

भारतीय विज्ञान सम्मेलन-चौंतीसवें वार्षिकाधिवेशन के संस्मरण

[लेखक—प्रो० पी० एस० नायडू मनोविज्ञान विभाग के सभापति तथा रीडर एज्यूकेशन विभाग प्रयाग विश्वविद्यालय]

अनुवादक —ईश्वर शरण दास

नव वर्ष के प्रथम तथा द्वितीय सप्ताह में दिल्ली में होने वाली वैज्ञानिकों की बैठक इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इसका मुख्य ध्येय भारत के भविष्य का उचित रूप से आयोजन करना था। पं० जवाहरलाल नेहरू ने, जो कि अधिवेशन के सभापति थे, सभा का उद्घाटन किया। पंडित जी भारतीय तथा विदेशों के प्रमुख वैज्ञानिकों के साथ जो कि रंगीन गाउनों से सुशोभित थे, रंगमञ्च तक ले जाये गए। उस जलूस में जो कि पंडित जी के पीछे २ चल रहा था, हिन्दू और मुसलमान, भारतीय तथा विदेशी, चीनी, फ्राँसीसी, अमेरिकन, अंगरेज, आस्ट्रेलियन तथा कनेडियन सभी वैज्ञानिक विद्यमान थे। सभी वैज्ञानिक एक विशाल कुटुम्ब में उपस्थित से प्रतीत होते थे मानो विज्ञान ने सम्प्रदायिक तथा राष्ट्रीय मतभेदों का नाश ही कर दिया हो। यदि विज्ञान शिक्षित मनुष्यों में एकता का भाव ला सकता है और यदि इसका प्रवेश साधारण जनता में हो जाये तब तो शायद वह रामबाण ही सिद्ध हो और उनकी संकुचित प्रवृत्ति सदा के लिए दूर हो जाये। अतः विज्ञान के उचित प्रयोग में मनुष्य का कल्याण प्रतीत होता है।

दिल्ली तथा इंगलैंड दोनों ही स्थानों का मौसम बहुत खराब था। अतः विदेशी प्रतिनिधियों के आगमन में विलम्ब हो गया और इसीलिए अधिवेशन की तिथि एक दिन बढ़ा कर तीन जनवरी कर दी गई। तीसरी जनवरी को मध्याह्न के समय वर्षा की सम्भावना दिखाई पड़ने लगी। सभा खुले मैदान में होने वाली थी। अतः पाठक भली भाँति अनुमान लगा सकते हैं कि कहीं वास्तव में वर्षा हो गई होती तो लोगों की क्या हालत होती। किन्तु ठीक सभा के समय आकाश भाग्यवश साफ हो गया। सर शान्ति स्वरूप भटनागर ने सर हैरल्ड स्पेन्सर जोन्स का पंडित जी से परिचय कराते हुए, हँसी में यह कहा कि राज्य ज्योतिषी महोदय जलवायु के क्लर्क को बादल हटाने के लिए राजी करने में समर्थ हो गए। उद्घाटन का उत्सव भाग्यवश निर्विघ्न समाप्त हो गया और 'यदि अन्त भला तो सब भला" की उक्ति चरितार्थ हो गई। प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिकों, विदेशी अतिथियों तथा अपने सहकारी मंत्रियों से घिरे हुए पं० जवाहरलाल नेहरू को रंगमञ्च के मध्य में बैठे हुए देखना एक अपूर्व, मनोहर तथा देवतुल्य दृश्य था।

उद्घाटन

दिल्ली विश्वविद्यालय के वाइसचान्सलर तथा स्वागत समिति के सभापति सर मारिस ग्वायर (Sir Mawris Gwyer) ने स्वागत करते हुए अपने भाषण में समय के उपयुक्त ही अन्तर्राष्ट्रीय एकता पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि दिल्ली का अधिवेशन दो कारणों से इतिहास में अमर रहेगा। सर्व प्रथम तो भारत इस समय स्वाधीनता के द्वार पर है। और दूसरे इस समय हमारे बीच में विदेश के अत्यन्त प्रसिद्ध वैज्ञानिक विद्यमान हैं। इसके

पूर्व इस भारत भूमि पर भिन्न २ देशों से इतनी संख्या में वैज्ञानिक कभी भी एकत्र नहीं हुए। यूनाइटेड किंगडम, यूनाइटेड स्टेट्स, रूस, कनाडा, फ्रांस तथा आस्ट्रेलिया से वैज्ञानिक गण आये हैं और यह इस बात का प्रबल प्रमाण है कि भिन्न २ जाति तथा भिन्न २ देशों के सदस्य होते हुए भी वैज्ञानिकों तथा विज्ञान में कितनी एकता है।

पंडित जी का सभापति के आसन से दिया हुआ भाषण वास्तव में मनोहर तथा योग्यता पूर्ण था। वह बिना पूर्व अध्ययन के अनायास ही बोले थे। उन्होंने पहले हिन्दुस्तानी में कहना प्रारम्भ किया किन्तु कुछ ही समय में एकबारगी अंगरेजी में बोलने लगे। उन्होंने लगभग दस सहस्र जनता को मन्त्र मुग्ध सा कर दिया। उनके व्याख्यान में दो बातें विशेष महत्व की हैं। प्रथम तो उन्होंने यह कहा कि संसार की तथा व्यक्तिगत देशों की समस्याओं का हल एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण से ही प्राप्त हो सकता है। विज्ञान की (Spirit) तथा रीति (Method) ही दो ऐसी वस्तुएं हैं जो कि वैज्ञानिक महापुरुषों की मानव जाति के लिए सब से बड़ी देन हैं। संसार की सब आपत्तियाँ इसलिए हैं कि हम वैज्ञानिक रीति की अवहेलना करने लगे हैं। उनके व्याख्यान की दूसरी खास बात यह थी कि स्वयं विज्ञान में भी परिशोधन की आवश्यकता है। विज्ञान टुकड़ों के लालच में पड़ कर अपने पूर्ण ध्येय को भूल सा गया है विज्ञान का भिन्न २ असंख्य विभागों में विभाजित हो जाना अत्यन्त ही हानिकारक सिद्ध होगा, पूर्ण ध्येय तथा उचित मार्ग का भाव हमारे अन्दर से नष्ट सा हो गया है। और हम भूली हुई भेड़ों के सामान इधर उधर भटक रहे हैं। इस पूर्ण ध्येय के भाव की प्राप्ति की ओर फिर से हमारा ध्यान आकृष्ट होना चाहिए और यह काम दार्शनिक (Philosopher) के अतरिक्त और कौन कर सकता है। इसलिये यदि सर्व श्रेष्ठ वैज्ञानिक दर्शन की ओर झुक रहे हैं तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

सभापति महोदमय ने इसके बाद परमाणु शक्ति (atomic energy) के सहसा अत्याधिक परिस्राव तथा उसके द्वारा सामाजिक जीवन पर होने वाले प्रभाव पर प्रकाश डाला। सर के० एस० कृष्णन ने अभी हाल ही में, प्रयाग में यह भविष्यवाणी की है कि अगले पाँच वर्षों में परिमाणु शक्ति (atomic energy) जन साधारण तक पहुँच जायेगी। इसका अनुमान करना अत्यन्त ही कठिन है कि तब कितना घोर परिवर्तन हो जायेगा। पंडित जी ने बहुत साफतौर से यह दिखला दिया कि भविष्य में साधारण मनुष्य किस प्रकार उन्नति के शिखर पर पहुँच सकता है।

पंडित जी ने यह निवेदन किया कि जनसाधारण के सुधार में ही विज्ञान को अब लग जाना चाहिए। विज्ञान ऐसे समय में अपनी प्रौढ़ावस्था में प्रवेश कर रहा है जब कि भारत पूर्ण स्वतन्त्रता के मानो द्वार पर ही स्थित हो और इसलिए वैज्ञानिकों का यह महान् कर्तव्य है कि वह सुन्दर तथा सुदृढ़ आयोजनों द्वारा हमारी समस्याओं को हल करें और देशवासियों की रुचि को विज्ञान की ओर आकृष्ट करने का भरसक प्रयत्न करें। सभापति महोदय ने अपने वक्तव्य को समाप्त करते हुए यह प्रार्थना की कि जनता को विज्ञान के उचित प्रयोग द्वारा राष्ट्रीय बाधाओं तथा मनो-मालिन्य को नष्ट कर देना चाहिए। चाहे हम अन्य सब व्यवहारों में राष्ट्रीयता का पालन क्यों न करें किन्तु विज्ञान अन्तर्राष्ट्रीय स्थान रखती है और उसका दृष्टिकोण अन्तर्राष्ट्रीय ही होना चाहिए। मुझे विश्वास है कि विदेशी वैज्ञानिकों का आगमन इस बात को सिद्ध कर देगा और उन लोगों को, जो कि अपनी अपनी विशेष परिस्थियों के कारण घोर राष्ट्रीयता का पालन करते हैं, वह अनुभव करा सकेगा कि विज्ञान अन्तर्राष्ट्रीय स्थान रखता है।

यह वास्तव में एक अत्यन्त जोशीला भाषण था और ज्यों ही पंडित जी अपने स्थान पर बैठ गए, दस सहस्र तालियाँ एक साथ बज उठीं मानो कोई हार्दिक प्रसन्नता का अवसर हो। मुझे उस समय पंडित जी के मुख की ओर देख कर श्रीयुत श्रीनिवास शास्त्री के शब्दों का स्मरण हो आया कि नेहरू वंश आकृति की सुन्दरता तथा तीव्र बुद्धि में सर्वश्रेष्ठ है। पता नहीं कितने लोगों ने इस बात पर ध्यान दिया कि अन्तर्राष्ट्रीय जनता के सम्मुख भाषण देते हुए पं० नेहरू एक उदार वैज्ञानिक प्रतीत होते थे। सर के० एस० कृष्णन (Sir K. S. Krishnan) ने हँसी में यह कहा कि दिल्ली में वैज्ञानिक राजनीतिज्ञ में

बदल गए थे और राजनीतिज्ञ वैज्ञानिक बन गए थे। हम लोगों ने एक वैज्ञानिक की हैसियत वाले पं० नेहरू का भाषण सुना, जिसको सुनने का बहुत ही कम लोगों को सौभाग्य प्राप्त हुआ होगा।

तत्पश्चात् विदेश के प्रसिद्ध अतिथियों ने अपने मित्रों की ओर से भारतीय वैज्ञानिकों के लिए संदेश पढ़ सुनाये। निम्नलिखित वैज्ञानिकगण विदेश से आये थे—सर चार्ल्स डारविन जो कि प्रसिद्ध प्राचीन डारविन के पौत्र थे। (Charles Darvin, Grandson of the greel Darvin), सर डी आर्की थौम्पसन (Sir D. Arcy Thompson) सर हैरल्ड स्पेन्सर जोन्स जो कि राज-ज्योतिषी है (Sir Harold Spensor-Jones the Astronomer Royel) । इङ्गलैंड के प्रो० ब्लैकेट (Prof. Blacket) तथा प्रो० मुनरो फाक्स (Prof. Munro Fox) प्रो० हारवी (Prof. Harvey) शापली (Shapely) तथा ब्लैक्सली (Bleckslee) यूनाइटेड स्टेट्स से प्रो० आर० बी० थाम्पसन (Prof. R. B. Thompson) प्रो० राबर्ट बौयिल (Prof. Robert Boyle) कनाडा से चीन के प्रसिद्ध गणितज्ञ प्रो० चेन सेन शंग (Prof Chen Shen Shang) तथा फ्राँस के प्रो० हेडामार्ड (Prof. and Mrs Hadamard) सपत्नीक पधारे थे।

इसके बाद लेफ्टिनेन्ट जेनरल लौक़ (Lieut. Gen. Lock) द्वारा वैज्ञानिक प्रदर्शिनी का उद्घाटन हुआ। वहाँ पर भी वास्तविक तत्व की वस्तुओं पर जनसाधारण की दृष्टि गई ही नहीं। राडर (Radar) के अतिरिक्त वहाँ पर इस बात पर विशेष जोर डाला गया था कि किस प्रकार लड़ाई के अस्त्र शस्त्र शान्ति के समय में भी प्रजा के हित में उपयोग किये जा सकते हैं। पेन्सिलीन (Penicillin) के आटोमैटिक इंजेक्शन (automatic injection) का प्रयोग भी दिखलाया गया था। एक स्थान पर यह भी प्रदर्शित किया गया था कि किस प्रकार कीड़े गर्म कपड़ों को नष्ट कर देते हैं और कपड़ों को कीड़ों से बचाने का क्या उपाय है। भारतीय जंगल विभाग ने यह भी दिखलाया था कि असली तथा नकली टीक (Teak) की क्या पहचान है। व्यवहारिक मनोवैज्ञानिक विभाग के प्रदर्शन में सब से चकित करने वाली घटना यह थी कि किस प्रकार जब अमेरिकन दम्पति में से पति के ऊपर Ishirara Colour Vision test का प्रयोग किया गया तो क्या देखा जाता है कि वह (Red-Green Colour Blind) रेड ग्रीन-कलर ब्लाइन्ड थे अर्थात् वह लाल और हरा रंग नहीं देख पाते थे। उनको विवाह किये कई वर्ष हो गये थे लेकिन उनकी पत्नी को यह बात नहीं विदित थी और न पति महोदय को ही कभी इस बात का शक हुआ। यह घटना यह भली भाँति सिद्ध करती है कि किस प्रकार मनोविज्ञान मनुष्य की आत्म-सुस्थिरता को नष्ट कर देता है।

भिन्न-भिन्न विभागों में वाद-विवाद—कुछ ऐसे वाद-विवाद जो कि विशेष उप विषयों से ही सम्बन्धित रहते हैं विज्ञान सम्मेलन के इतिहास में विशेष स्थान रखते हैं। प्रत्येक विभाग पहले ही कुछ चुने हुये विषय निर्धारित कर देता है और प्रसिद्ध वैज्ञानिकों से उन विषयों पर प्रकाश डालने तथा अपनी सम्मति प्रकट करने की प्रार्थना की जाती है। लगभग पचीस ऐसे वाद-विवाद दिल्ली में हुए। इस वर्ष विवाद के विषय जन साधारण की रुचि के थे। वास्तव में इन्हीं विवादों में विज्ञान की स्वतन्त्र भारत के भविष्य की देन निर्धारित है। विज्ञान का प्रत्येक अङ्ग अथवा विभाग राष्ट्रीय आयोजना के हित प्रयुक्त किया गया और इस प्रकार देश के हितार्थ उपयुक्त साधनों के विकास के लिये उपयुक्त आयोजना बनाई गई थी। निम्नलिखित विषय विवाद के लिए निर्धारित थे।

1—The Planning of Mathematics and its social Relationships for India.

2—The role of statistics in the planned economy of India.

3—The place of physics in the economic development of India.

4—Psychology and Industry in India.

5—Psychological foundations of the conflicts in India.

6—Cosmic Rays.

7—Place of Geology, Geography, Zoology,

Botany, Engineering etc. in the economic development of the country.

8—Reclaimation of soils.

9—Manufacture of alkaloids and synthetic drugs in India.

10—Rust disease of Economic plants.

तत्पश्चात् पाँचवीं जनवरी को प्रातःकाल एक सार्वजनिक वादविवाद हुआ जिसका विषय था—विज्ञान और राष्ट्रीय योजना। इस विवाद में कई बड़े-बड़े वैज्ञानिकों ने भाग लिया जिनमें प्रो० मेघनाथ साहा, डा० जे० एन० मुकर्जी, डी० एन० वाडिया, जे० सी० घोष तथा डा० राजेन्द्रप्रसाद मुख्य थे। भिन्न-भिन्न विभागों के सभापति महोदयों के भाषण जो प्रत्येक वर्ष जन साधारण की समझ के बाहर थे इस वर्ष काफी आसान तथा आम लोगों के समझने लायक हो गये थे। उदाहरणार्थ मनोविज्ञान विभाग के सभापति का विषय था 'मनोविज्ञान तथा मानव समाज का पुनर्निर्माण।'

इस विज्ञान सम्मेलन के अतिरिक्त दिल्ली नगर इस वर्ष कई अन्य नवीन संस्थाओं के जन्म का कारण हुआ और कई पुरानी संस्थाओं ने भी अपनी वार्षिक बैठक दिल्ली में की।

प्रत्येक दिवस सायंकाल के समय जनसाधारण के लाभ के लिये साधारण विषयों पर सरल व्याख्यान होते थे जिनमें भारत तथा विदेश दोनों ही स्थानों के वैज्ञानिकों ने भाग लिया। सर सी० वी० रमन, प्रो० साहा, सर चार्ल्स डारविन, सर हैरल्ड जोन्स तथा प्रो० टार्वी उनमें प्रमुख वक्ता थे। राजज्योतिषी का कथन था कि हम नहीं जानते कि जीवन का कहाँ से प्रारम्भ हुआ है। विज्ञान की घोर भौतिकता का सदा के लिए प्रयाण होता दिखाई पड़ता है। सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञ तथा ज्योतिषी दार्शनिक बन रहे हैं और एक ही कदम आगे बढ़ने पर वह हमारे उपनिषदों वाले ऋषियों के साथी बन जायेंगे।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक गण केवल अपनी प्रयोगशाला के कीड़े ही नहीं बने रहते हैं जैसा कि साधारणतया लोग समझते हैं। वे भी आखिरकार मनुष्य ही हैं—बिलकुल मनुष्य और साधारण मनुष्यों की तरह आनन्द मनाना चाहते हैं। अतः स्वागत समिति द्वारा आयोजित मन बहलाव के साधनों से उन्होंने बहुत आनन्द प्राप्त किया। सब वैज्ञानिकों ने मोटर से पूसा की सैर की और हवाई जहाज से आगरा देखने गये।

दिल्ली के अधिवेशन की सब से बड़ी सीख यह है कि प्रत्येक राष्ट्रीय आयोजना का उचित आधार वैज्ञानिक ही होना चाहिये। अन्य किसी नींव पर बनी हुई इमारत बालू की दीवार की भाँति गिर कर नष्ट हो जायेगी। दिल्ली अधिवेशन ने विज्ञान को दार्शनिकता प्रदान की है और इस प्रकार पश्चिम की कष्टदायक भौतिकता का नाश करके एक बहुत बड़ा सुधार किया। इसके अतिरिक्त उसने यह भी दिखला दिया कि विज्ञान का दृष्टिकोण अन्तर्राष्ट्रीय है तथा किस प्रकार संकुचित राष्ट्रीय सीमाओं का विज्ञान के द्वारा नाश हो जाता है। दिल्ली ने विज्ञान को सामाजिक रूप प्रदान किया है और वैज्ञानिक अनुसन्धान कर्ता के लिये, जनसाधारण के जीवन तथा माँगों को मुख्य ध्येय का रूप प्रदान किया है। इसके अलावा इस सम्मेलन ने वैज्ञानिक अनुसन्धानकर्ता के लिये पूर्ण ध्येय को सदैव ध्यान में रखने की आवश्यकता पर बहुत जोर डाला है क्योंकि विज्ञान अब तक अपने स्वभावानुसार विभागों तथा हिस्सों से ही सम्बन्ध रखता था। अतः भारतीय वैज्ञानिक को संसार के दार्शनिक रूप की अवहेलना न करने के लिये कड़ी चेतावनी दी जाती है। अतः यह सारहीन नहीं है कि एक ही सप्ताह पहले दार्शनिक सम्मेलन हुआ और तत्पश्चात् वैज्ञानिक सम्मेलन का आगमन हुआ।

दिल्ली के अधिवेशन ने अधिकारी वर्ग तथा जनता के हृदय में एक वैज्ञानिक जागरण सा उत्पन्न कर दिया है। सबसे बढ़ कर तो यह है कि दिल्ली सम्मेलन ने सब राष्ट्रों तथा जातियों को भ्रातृत्व के सूत्र में बाँध दिया। क्या मैं यह आशा करूँ कि मनुष्य को एक दूसरे के निकट लाने के प्रयास में विज्ञान मनुष्य को ईश्वर के सन्निकट लाने में भी सफल होगा। क्योंकि जिस प्रकार साधारण व्यक्ति को वैज्ञानिक चेतना की आवश्यकता रहती है उसी प्रकार एक वैज्ञानिक के लिये ईश्वर सम्बन्धी चेतना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है।

इंडियन साइन्स कांग्रेस १९१४-४७

लेखक—डाक्टर हीरालाल दुबे

भारतीय विज्ञान का इतिहास तो बहुत ही पुराना है और विज्ञान के विविध क्षेत्रों में भारत की देन भी कम नहीं है। गणित, ज्योतिष, रसायन, चिकित्सा जीव और वनस्पति और भौतिक विज्ञान में भारत और देशों से अधिक बढ़ा हुआ था। यह कहना असत्य न होगा कि गणित और चिकित्सा में भारत केवल अगुआ ही नहीं था परन्तु इन शास्त्रों में और देशों का गुरू भी रह चुका है। यवनों के आने के पहले तक भारतीय विज्ञान की ज्योति चमक रही थी परन्तु यवनों के प्रवेश के साथ ही भारतीय विज्ञान की लव भी धीमी पड़ती गई और अन्त में समाप्त भी हो गई। मेरा यह विचार बिलकुल नहीं है कि यवनों के कारण ही भारतीय विज्ञान की समाप्ति हुई। इसके क्या-क्या कारण थे और किन-किन परिस्थितियों में इन विद्याओं का नाश हुआ यह तो एक दूसरा ही विषय हो जाता है। करीब ३०० वर्षों तक भारतीय विज्ञान अन्धकार में पड़ा रहा और इस फलस्वरूप भारतवाले विज्ञान को भूल ही नहीं गये परन्तु इतने अनभिज्ञ हो गए कि वे समझने लगे कि विज्ञान तो पाश्चात्य देशों की ही देन है।

भारतीय विज्ञान क्षेत्र में यह अन्धकार २० वीं शताब्दी के आरम्भ तक रहा। हमारे देश में विज्ञान के पुनर्जन्म और उत्थान की कथा इंडियन साइन्स कांग्रेस एसोसियेशन के इतिहास में भली भाँति मिलती है। जिस प्रकार ह्यूम महोदय इंडियन नेशनल कांग्रेस के जन्मदाता हैं उसी प्रकार दो अँग्रेज नवयुवकों ने दूसरी नवम्बर १९१२ में शनीवार के दिन इंडियन साइंस कांग्रेस की नींव रक्खी। ये दोनों महोदय रसायनज्ञ हैं। १९१० में प्रोफेसर पी० एस० मेकमोहन की नियुक्ति कैनिङ्ग कालेज लखनऊ में और प्रोफेसर जे० एल० साइमनसन की नियुक्ति प्रेसिडेन्सी कालेज मदरास में हुई। ये दोनों आचार्य विलायत से आये हुए थे जहाँ पर कि विज्ञान खूब फल फूल रहा था और वैज्ञानिकों को आपस में विचार विनिमय के लिए रायल सोसाइटी और विज्ञान की प्रगति के लिये ब्रिटिश एसोसियेशन आदि वैज्ञानिक संस्थाएँ वर्तमान थीं। ऐसी संस्थाएँ किसी भी देश में ज्ञान और विज्ञान के प्रसार और वृद्धि में बहुत सहायता दे सकती हैं। प्रोफेसर मेक-मोहन और प्रोफेसर साइमनसन ने भारतवर्ष में आते ही इस कमी को महसूस किया। उन्होंने देखा कि भारतवर्ष में वैज्ञानिक विचार विनिमय की बहुत ही कमी है और यदि ब्रिटिश एसोसियेशन की भाँति इस देश में भी वैज्ञानिकों का वार्षिक सम्मेलन हो जाया करे तो यहाँ पर भी वैज्ञानिक अनुसन्धान करने में उत्तेजना फैलाई जा सकती है। वे इस विचार के थे कि इस मिलन से न कि केवल विज्ञान के विविध क्षेत्रों के कार्यकर्त्ताओं के सम्मेलन और एक दूसरे से निकट सम्बन्ध हो जाने से ही अधिक लाभ होगा परन्तु इससे साधारण जनता में भी विज्ञान की ओर रुचि बढ़ेगी और वैज्ञानिक अन्वेषणों के महत्व और लाभ को समझ सकेंगे।

१९११ में इन दोनों आचार्यों ने भारतीय वैज्ञानिकों के पास पत्र भेजे और उनकी राय इस विषय पर माँगी। इस पत्र में उन्होंने लिखा था कि इस एसोसियेशन का ध्येय वही होगा जो कि विज्ञान की प्रगति के लिए ब्रिटिश एसोसियेशन का है। ये इस प्रकार से हैं:—

(१) वैज्ञानिक निरीक्षण में अधिक उत्तेजना पैदा करना और अधिक नियमित रूप से वैज्ञानिक कार्य करना।

(२) देश के अलग-अलग भागों में फैले हुये और विज्ञान में रुचि रखने वाले व्यक्तियों और परिषदों का सम्मेलन कराना।

(३) और विज्ञान की वृद्धि में अड़चन डालने वाली बाधाओं का निवारण करना।

इन ध्येय को सामने रखते हुए एक ऐसा सम्मेलन बनाया जावे जिसकी वार्षिक (Meeting) बैठक, भारत के बड़े बड़े शहरों में हुआ करे जहाँ पर कि अनुसन्धान लेख (Paper) पढ़े जावें और उन पर वादविवाद होवे और अन्त में पूरा कार्यक्रम वार्षिक रिपोर्ट के रूप में छपा करे।

इन दोनों आचार्यों को यह भली भाँति ज्ञात था कि इस योजना की सफलता भारतीय सहयोग पर ही निर्भर है और इस कारण उन्होंने भारतीय वैज्ञानिकों से इस सम्मेलन में भाग लेने की प्रार्थना की क्योंकि इस परिषद् का ध्येय और स्थायीपन की पूर्ति तभी हो सकती है जब कि काफी मात्रा में सहयोग प्राप्त होवे। यह बड़े हर्ष की बात है कि उस समय से भारतीय साइन्स कांग्रेस बराबर उन्नति के मार्ग पर चल रही है और इस उन्नति का कारण विदेशी वैज्ञानिक नहीं हैं परंतु भारत के प्रत्येक प्रान्त के वैज्ञानिक और अन्वेषणों में लगे हुए नवयुवकों के परिश्रम और लगन का फल है।

प्रोफेसर मेकमोहन और साइमनसन के प्रार्थना-पत्र का स्वागत पूरे देश में हुआ यद्यपि इस कार्य की सफलता में संदेह प्रगट किया गया क्योंकि उस समय बहुत कम अन्वेषण इस देश में किए जाते थे और दूसरे भारत की लम्बाई और चौड़ाई को देखते हुए इस सम्मेलन में वैज्ञानिकों के एकत्रित होने में भी संदेह था। परंतु जिन्होंने इस महान कार्य का बीड़ा उठाया था वे इन कठिनाइयों से निराश न होकर आगे ही कदम बढ़ाते गये। १९१२ की दूसरी नवम्बर को कलकत्ता में एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल के कमरों में भारत के १७ प्रख्यात वैज्ञानिकों की मीटिंग हुई। इस मीटिंग के अध्यक्ष डा० एच०एच० हॉयडेन थे। इस मीटिंग में यह तय हुआ कि एशियाटिक सोसाइटी से प्रार्थना की जावे कि वे साइंस कांग्रेस की वार्षिक बैठक का भार अपने ऊपर लेलें और प्रत्येक वर्ष कलकत्ता में बैठक होवे। इसके लिए एक कमेटी भी बना दी गई जो कि १९१४ जनवरी में साइन्स कांग्रेस की बैठक के लिए पूरी योजना तैयार करे और यह पहली बैठक भारतीय अजायबघर कलकत्ता की शताब्दी उत्सव के साथ ही की जावे।

१९१३ की २० वीं नवम्बर को एक असाधारण मीटिंग में कमेटी का पुनः निर्माण किया गया। इसमें लार्ड कारमाइकेल जो कि उस समय बंगाल के गवर्नर थे साइंस कांग्रेस की पहली बैठक के संरक्षक (Patron) नियुक्त किये गए और सर आशुतोष मुकर्जी, कलकत्ता विश्वविद्यालय के वाइस चान्सलर पहले प्रेसीडेन्ट चुने गए। श्री डी० हूपर, मंत्री और कोषाध्यक्ष के पद पर नियुक्त किये गए। कांग्रेस का पहला अधिवेशन एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल के कमरों में १५, १६ और १७ जनवरी, १९१४ में हुआ और इस बैठक में १०६ सभ्यों ने भाग लिया जो कि भारत के विभिन्न भागों से एकत्रित हुए थे। यह अधिवेशन छः भागों में बटा हुआ था जिसमें भौतिक, रसायन, जीव, वनस्पति, भूगर्भ और मानवजाति (Ethnography) शास्त्र विषय थे और कुल मिला कर ३५ लेख पढ़े गये थे। इस अधिवेशन की वार्षिक रिपोर्ट केवल ६ छपे हुए पन्नों में थी जिसमें विभिन्न भागों में पढ़े गए लेखों की सूची थी और सर आशुतोष मुकर्जी का अध्यक्ष पद से व्याख्यान भी था। यह रिपोर्ट एशियाटिक सोसाइटी के विवरणों (Proceedings) में ही छापी गई थी।

आरम्भ से ही इंडियन साइन्स कांग्रेस और एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल से सम्बन्ध रहा है और १९१७ से यह सम्बन्ध और भी घनिष्ठ हो गया क्योंकि इस समय से एशियाटिक सोसाइटी के मंत्री और अवैतनिक कोषाध्यक्ष साइन्स कांग्रेस की अन्तरंग सभा के सदस्य रहा करेंगे। एशियाटिक सोसाइटी पर साइन्स कांग्रेस के व्याख्यान, वाद-विवाद और रिपोर्ट छपवाने का भार है और कांग्रेस अधिवेशन समाप्त होने पर वर्ष भर का कार्यक्रम भी

करती रहती है और साथ ही में कोषाध्यक्ष का भार भी संभालती है। एशियाटिक सोसाइटी से कांग्रेस को बहुत ही सहायता मिली है। जैसा कि प्रोफेसर साइमनसन ने कांग्रेस की १५वीं अधिवेशन के अध्यक्ष पद का भाषण देते हुए कहा था कि जहाँ तक मुझे दीख पड़ता है इस सम्बन्ध से एशियाटिक सोसाइटी को कोई भी लाभ नहीं पहुँचा परंतु हमारे कार्य में इससे अकथनीय लाभ हुआ है।

आदि में कांग्रेस के कार्यकर्त्ताओं का यही विचार हुआ था कि प्रत्येक वर्ष अधिवेशन कलकत्ता में ही मनाया जावे परंतु पहले अधिवेशन की बैठक से स्पष्ट हो गया कि यदि दूसरे प्रांतों का पूरा-पूरा सहयोग प्राप्त करना है तो देश के विभिन्न भागों में ही बैठक करना लाभदायक होगा और इस कारण कांग्रेस की दूसरी बैठक मद्रास में होना निश्चय हुआ। इस अधिवेशन के लिए मद्रास ने निमन्त्रण भी भेजा था।

१९१५ में साइन्स कांग्रेस का दूसरा अधिवेशन मद्रास में हुआ और इसमें १५० सभ्यों ने भाग लिया और पहली कांग्रेस के ६ भागों के अलावा दो और भाग बढ़ाए गए जो कि कृषि और (Applied Science) औद्योगिक विज्ञान के थे। इस अधिवेशन में कुल मिला कर ६० लेख भेजे गए थे।

कांग्रेस का तीसरा अधिवेशन इलाहाबाद में जनवरी १९१६ में होना निश्चय हुआ परंतु बाद में यह बदलकर लखनऊ कर दिया गया क्योंकि संयुक्त प्रांत में लखनऊ का महत्व बढ़ गया था और वास्तव में इस प्रांत की राजधानी लखनऊ हो गई। इसी प्रकार भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न प्रांतों के बड़े-बड़े शहरों तथा विद्या के मुख्य केन्द्रों में साइन्स कांग्रेस के अधिवेशन होने लगे और जिस ध्येय से इस कांग्रेस की स्थापना हुई थी उसकी भी पूर्ति दिखाई देने लगी। कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन कलकत्ता, मद्रास, लखनऊ, बंगलोर, लाहोर, बम्बई, बनारस, नागपुर, इन्दौर, हैदराबाद और दिल्ली में हुए हैं।

आरम्भ में कांग्रेस के कोई खास नियम नहीं थे। बंगलोर के चौथे अधिवेशन में कांग्रेस के नियमों को बनाने की आवश्यकता जान पड़ी और एक अंतरंग सभा को कांग्रेस के कार्य का भार सौंपा गया और यह सभा 'कुछ विचारणीय विषयों' को (General) साधारण कमेटी की वार्षिक बैठक में भी रख सकती थी। साधारण कमेटी के सभ्य वे सब हो सकते थे जिन्होंने कांग्रेस के तीन अधिवेशनों में भाग लिया हो और तीन एसे सभ्य जो कि कांग्रेस के पदाधिकारी रहे हों।

१९२१ में पहली अंतरंग सभा का निर्माण हुआ और (general) साधारण कमेटी ने एक काउन्सिल नियुक्त की जिसमें अंतरंग सभा के सभ्य, कांग्रेस के भारतवासी अध्यक्ष और पांच और सभ्य होंगे। कांग्रेस के प्रत्येक भागों की भी कमेटियाँ बनाई गई। इन कमेटियों पर अपने-अपने विषयों के लेख पढ़ने व अपने भागों के कार्य का भार सौंपा गया।

१९२४, १९२५ और १९३१ में कुछ नए नियम बनाए गए और कुछ पुराने नियमों में रद्दोबदल भी की गई। जो कि नियम आजकल हैं वे कलकत्ता अधिवेशन में ५ जनवरी, १९३५ में बनाए गये थे और इसी समय इंडियन साइंस कांग्रेस एसोसियेशन की भी स्थापना हुई थी। इस एसोसियेशन के कार्य की वार्षिक रिपोर्ट सर्व प्रथम १९४६ में (general body) सभ्यों के सामने रक्खी गई।

साइंस कांग्रेस की रजत जयन्ती १९३८ में कलकत्ता में बड़े धूमधाम से मनाई गई थी और यह अधिवेशन-कांग्रेस के इतिहास में बड़े मार्के का है। इस अवसर पर ब्रिटिश एसोसियेशन ने अपने सभ्यों का एक दल भेजा था। इस दल के नेता लार्ड रूदरफोर्ड थे और वे कांग्रेस की रजत जयंती के अध्यक्ष भी चुने गए थे परन्तु बहुत खेद है कि उनकी अकस्मात मृत्यु हो जाने के कारण वे इस अधिवेशन में सम्मिलित न हो सके। उनके स्थान पर सर जेम्स जीन्स ने अध्यक्ष का पद ग्रहण किया और लार्ड रूदरफोर्ड का लिखा हुआ भाषण इस अवसर पर पढ़ा। इस भाषण में साइंस कांग्रेस की

उत्पत्ति से लेकर १६३८ तक भारतीय वैज्ञानिकों के मुख्य कार्यों का उल्लेख किया गया था और भारतीय विश्वविद्यालयों में वैज्ञानिक अन्वेषणों की ओर रुचि और उन्नति का भी हवाला था। उन्होंने इस ओर ध्यान दिलाया था कि विश्वविद्यालयों में विज्ञान विभागों को अधिक बढ़ाया जाय ताकि इस प्रगतिशील देश के लिए अध्यापकों और आविष्कार कर्त्ताओं की कमी न पड़े और सरकारी वैज्ञानिक विभागों के लिए भी नवयुवक वैज्ञानिक सरलता से मिल सकें। लार्ड रुदरफोर्ड की इस चेतावनी का सरकार पर व विश्वविद्यालयों पर कोइ भी असर न पड़ा जिसके कारण हमारी स्थिति आज भी वैसी है जैसी कि साइंस कांग्रेस की स्थापना के समय थी।

इस रजत जयन्ती अधिवेशन में पाश्चात्य देशों के कई प्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता पधारे थे। इसमें केवल ब्रिटिश एसोसियेशन के ही सभ्य न थे परन्तु जर्मनी, फ्रांस, अमेरिका आदि देशों के भी वैज्ञानिक थे जिन्होंने अधिवेशन के विचार विनिमय, वादविवाद तथा भाषणों में पूरा भाग लिया था। इस अधिवेशन में १५०० सभ्य थे और लेखों की संख्या ८७५ थी। दस विषयों पर विचार-विनिमय किया गया जिसमें विभिन्न विषयों के वैज्ञानिकों ने भाग लिया था इसके अलावा विभागों में अलग-अलग वादविवाद हुए। संध्या समय जनसाधारण के लिए सरल भाषा में ८ वैज्ञानिक भाषण हुए थे। इन भाषणों में इतना जमाव होता था कि जगह की कमी पड़ जाती थी और इससे हम कुछ अन्दाज लगा सकते हैं कि साइंस कांग्रेस को जनसाधारण में विज्ञान की ओर रुचि पैदा करने में कितनी सफलता प्राप्त हुई है।

रजत जयन्ती अधिवेशन से एक और बड़े महत्व की बात मालूम हुई कि पाश्चात्य देशों के वैज्ञानिकों से मेल मिलाप होने के कारण भारत में विज्ञान की प्रगति पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। यह देखते हुए साइंस कांग्रेस अपने वार्षिक अधिवेशनों पर अन्य देशों के वैज्ञानिकों को निमंत्रित किया करती है जिससे इस देश में वैज्ञानिक अन्वेषणों में उत्तेजना फैले और भारतीय वैज्ञानिकों को और देश वाले वैज्ञानिकों से मिलने का अवसर मिले।

१६४४ में दिल्ली में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ था और यह भी बैठक बड़े महत्व की थी। इसमें लंदन की रॉयल सोसाइटी के मन्त्री प्रोफेसर ए० व्ही० हिल महोदय पधारे थे। उन्होंने इसी अवसर पर रॉयल सोसाइटी की भी मीटिंग की थी और सोसाइटी के २८१ वर्षों के इतिहास में यह पहला ही अवसर था जब कि रॉयल सोसाइटी की मीटिंग इंगलैंड के बाहर की गई हो। कांग्रेस का अधिवेशन कुछ समय के लिए रॉयल सोसाइटी की मीटिंग में परिणित कर दिया गया था और इसमें सोसाइटी के दो प्रसिद्ध फेलो सर शान्ति स्वरूप भटनागर और प्रोफेसर जे० एच० भाभा ने सोसाइटी के रजिस्टर में हस्ताक्षर किये थे।

साइन्स कांग्रेस का ३४वां अधिवेशन १६४७ में फिर से दिल्ली में मनाया गया। पहले इस अधिवेशन की बैठक पटना में होने वाली थी और इसके अध्यक्ष पं० जवाहरलाल जी चुने गए थे। राष्ट्रनेता जवाहरलाल जी पहले भी अध्यक्ष पद के लिए चुने गए थे परन्तु उनकी जेल यात्राओं के कारण वे इस पद को अभी तक सुशोभित न कर सके थे। इस समय पंडित जी अस्थायी सरकार के उपसभापति हैं और उन्होंने कई कारणों से कांग्रेस का अधिवेशन पटना में न रख कर दिल्ली में रखना अधिक उचित समझा। इस अधिवेशन में भी पाश्चात्य देशों के कई प्रसिद्ध वैज्ञानिकों ने भाग लिया। इंगलैंड, फ्रांस, केनेडा अमेरिका और रशिया से वैज्ञानिक दल आये थे। इस अवसर पर भारतीय वैज्ञानिकों का भी खूब जमाव था और इतना जमाव शायद किसी और अधिवेशन में नहीं हुआ था। यह कांग्रेस १३ भागों में विभाजित थी और लगभग अनुसंधान लेखों की संख्या ७८२ थी

और करीब-करीब २५मौलिक विषयों पर वाद-विवाद हुए जिन पर हमारे देश की उन्नति निर्भर है।

इंडियन साइन्स कांग्रेस के इतिहास में ३४वें अधिवेशन का महत्व निराला ही रहेगा। यह पहला ही मौका है जब कि राष्ट्र निर्माण की प्रयोगशाला में अन्वेषण करने वाले नेता द्वारा सभापति के पद की शोभा बढ़ाई गई हो। अभी तक केवल वैज्ञानिक ही इस पद के उपयुक्त समझे जाते थे। दूसरे इस अधिवेशन में पाश्चात्य देशों से आए हुए वैज्ञानिकों ने अधिवेशन में ही भाग नहीं लिया परन्तु भारतीय नेताओं से भी मेल मिलाप किया जो कि भारत की उन्नति और निर्माण में लगे हुये हैं। और जिनकी हार्दिक इच्छा है कि दूसरे राष्ट्रों से विज्ञान, राजनीति और दुनियां की भलाई मे पूरा-पूरा सहयोग पा सकें। तीसरे इस अधिवेशन में अस्थायी सरकार के सब सभ्यों ने विज्ञान की वृद्धि में बहुत ही रुचि दिखाई जिससे ज्ञात होता है कि भारत में विज्ञान का भविष्य बहुत ही उज्ज्वल है।

इंडियन साइन्स कांग्रेस के इतिहास का अवलोकन करने से यह भलीभांति प्रगट हो जाता है कि जिन महापुरुषों ने इसका बीड़ा उठाया था उन्हें इस कार्य में पूर्ण सफलता मिली है।

भारतीय साइँस काँग्रेस का ३४ वाँ अधिवेशन, दिल्ली सन् १९४७ ई०

भौतिक विज्ञान विभाग

अध्यक्ष—प्रोफेसर केदारेश्वर बैनर्जी डी० एस-सी०, एफ० एन० आई० सभाध्यक्ष का भाषण

अनुवादक—रुद्रपालसिंह एम० एस-सी०, रिसर्चस्कालर भौतिक विज्ञान विभाग—प्रयाग विश्वविद्यालय

परमाणु प्रासाद में हलचल

उन्नीसवीं शताब्दी के गणित द्वारा रवों का अध्ययन करने वाले लोगों ने रवों की भौतिक विशेषताओं से यह धारणा की कि उनके भीतर परमाणुओं का एक सुन्दर प्रासाद है। उनकी इस धारणा की पुष्टि लावे और ब्रैग नाम के दो वैज्ञानिकों ने एक्स रश्मियों की सहायता से की। उस समय से यह एक्स रश्मियाँ ठोस वस्तुओं के परमाणुओं की भीतरी गठन ज्ञात करने के लिए काम में लाई जाती हैं। इन रश्मियों की सहायता से यह ज्ञात हुआ है कि उन वस्तुओं के अतिरिक्त, जिनके भीतर परमाणुओं का नियमानुसार होने का संदेह किया जाता था, और भी अनेक वस्तुएँ थीं जिनमें यह क्रम पाया गया। इस अध्ययन से यह पता चला कि बहुत सी वह वस्तुएँ भी जो ऊपर से देखकर रवे नहीं कही जा सकतीं रवों की अवस्था में हैं। यहाँ तक कि रेशम तथा "सेल्यूलोज" के रेशों में भी भीतरी अणु नियमित रूप से स्थित है।

शीघ्र ही यह पता लगा कि ठोस वस्तुओं में परमाणुओं का नियमित होना आवश्यकीय होते हुए भी उनकी स्थिति में पूर्णतया क्रम नहीं होता; परन्तु हम उस अवस्था के निकट से निकट पहुँच सकते हैं। यदि हम यह कल्पना भी कर लें कि किसी रवे के भीतर परमाणु 0°K तापक्रम पर नियमानुसार स्थित हैं तो भी किसी ऊँचे तापक्रम पर ऐसा न होगा। इसका कारण यह है कि इस तापक्रम पर अधिक गर्मी के कारण परिमाणु अपने नियत स्थानों के इधर-उधर कम्पन करेंगे और किसी भी समय रवे के परमाणुओं में पूर्ण क्रम नहीं होगा। गर्मी के कारण रवों में पूर्ण क्रम न होने के अतिरिक्त यदि हम इकले रवे लें तो वे "मोज़ेइक ब्लाकों" से बने होते हैं और यह ब्लाक एक दूसरे के समानान्तर स्थित होते हैं। इन ब्लाकों का आकार किसी ख़ास पदार्थ पर निर्भर करता है तथा अन्य पदार्थों के लिए दूसरे से भिन्न रहता है। रवों के भीतर और भी अनेक आकस्मिक त्रुटियाँ पाई जाती हैं जिनका

अभी तक सन्तोषजनक कारण ज्ञात नहीं है। इसके अतिरिक्त रवों पर किसी प्रकार का विकिरण पड़ने से उसमें "लैटिस" का कम्पन होने की सम्भावना है। यह एक अद्भुत बात है कि पदार्थों की बहुत सी आवश्यकीय तथा अनावश्यकीय विशेषताएँ इस परमाणु प्रासाद की त्रुटियों पर निर्भर है और इसीलिए निकटवर्ती व्यतीत समय में परमाणु प्रासाद की इन त्रुटियों का अध्ययन करने की ओर विशेष ध्यान दिया गया है तथा उन्हें अध्ययन करना महत्वपूर्ण समझा गया है।

आज के व्याख्यान में मैं एक्स-रश्मियों द्वारा इन त्रुटियों का अध्ययन करने का उल्लेख करूँगा और विशेष कर उन फलों पर प्रकाश डालूँगा जो अभी तक पूर्णतया नहीं समझे गये हैं परन्तु फिर भी किसी शुद्ध भौतिक-विज्ञान वेत्ता को रुचिकर है।

निकटवर्ती व्यतीत वर्षों में एक्स-रश्मि द्वारा अनुसन्धान करने वाली प्रयोगशालाओं के लावे आलोक चित्रों में अनावश्यकीय प्रकाश प्रतिबिम्ब का अध्ययन करने में लोगों ने विशेष रुचि दिखलाई है। इन प्रतिबिम्बों का पता पहले-पहल सन् १९१३ ई० में फ्रीड्रिच ने उस समय लगाया जब उसने अपने एक महत्वपूर्ण चित्र में यह देखा कि उसमें लावे निशानों के केन्द्र से कई रेखायें अर्धव्यासों की ओर निकलती हुई ज्ञात होती हैं। सबसे पहले फैक्सेन ने सन् १९२३ में इसकी व्याख्या करने का प्रयत्न किया और कहा कि रवों द्वारा एक्स रश्मियों के विक्षिप्त प्रकाश में कहीं-कहीं पर प्रकाश का आधिक्य होना चाहिए। इसके पश्चात् सन् १९२८ ई० में वालर तथा सन् १९३१ में आट ने क्वन्तम मेकैनिकल कायदों का उपयोग करके इस समस्या का सैद्धान्तिक अनुसन्धान किया। इन अनुसन्धानों से यह पता लगा कि रवों द्वारा विक्षिप्त एक्स रश्मियों में किसी भी धरातल समूह के कारण प्रकाश का आधिक्य होना चाहिए चाहे प्रतिबिम्बन की लावे—ब्रैग अवस्था न भी लागू होती हो। असल में जहाँ एक धरातल समूह के कारण लावे—ब्रैग अवस्था लागू होती हो वहीं प्रकाश आधिक्य वाले स्थान होना चाहिए और इन स्थानों से ज्यों-ज्यों हम दूर हटते जाँयगे त्यों-त्यों प्रकाश की मात्रा न्यून होती जायगी। अब यदि एक रवा इकरंगी एक्स रश्मियों से आलोकित किया जाय तो विक्षिप्त प्रकाश में कुछ स्थानों पर अधिक आलोक वाले स्थान होना चाहिए। फैक्सेन के अनुसार फ्रीड्रिच के प्रयोग में एक्स रश्मियों को भिन्न-भिन्न तरंगों के कारण इन अधिक प्रकाश वाले स्थानों में अर्धव्यासीय रेखायें थीं।

सर्व प्रथम लावल ने सन् १९३८ तथा १९३९ में अपने आयनीकरण प्रकोष्ठ प्रयोग में एक्स रश्मियों के विक्षिप्त पृष्ठ वाले प्रकाश में यह अधिक प्रकाश वाले स्थान देखे। इस प्रकार इन अतिरिक्त प्रकाश धब्बों का अध्ययन करने के लिये लोगों में एक विशेष रुचि पैदा हो गई और बहुत से रवों को भिन्न-भिन्न प्रकार से रख कर तथा बहुत सी अवस्थाओं में अनेक एक्स रश्मि चित्र लिए गये। सन् १९४० और १९४१ में जैकेरियासेन ने, सन् १९४२ में जैन ने तथा सन् १९४२-४३ में बार्न ने रवों की स्थिति-स्थापक विशेषताओं में असमानता तथा उनके भीतर परमाणुओं की व्यवस्था का विचार रखते हुए फैक्सेन-वाला सिद्धान्त को और पुष्ट बनाया। फल निकालने का एक ढंग न होने पर भी इन प्रकाशकों के जो फल मिले वह प्रायः समान थे और इन फलों का प्रयोग केवल कुछ साधारण चीज़ों के लिए ही सम्भव था।

सन् १९४१-४२ में रमन तथा उनके सहकारियों ने (रमन और नगेन्द्रनाथ सन् १९४० तथा रमन और नीलकंठन) इन निशानों की उत्पत्ति के विषय में यह बताया कि यह गर्मी के कारण उत्पन्न हुए परमाणुओं के कम्पन की वजह से नहीं बल्कि रवों पर पड़ने वाली एक्स रश्मियों द्वारा उनको "लैटिस" में कम्पन उत्पन्न हो जाने के कारण पाये जाते हैं। यह सिद्धान्त इन अतिरिक्त निशानों की कुछ विशेषताओं की व्याख्या करता है पर कुछ और बातें हैं जो इसके द्वारा बिना किसी अप्रयोजनक कल्पना के नहीं समझाई जा सकतीं। इन कल्पनाओं में एक कला तरंग की कल्पना है। यदि हम उनको यह मान लें कि वह "लैटिस" कम्पन की कलाओं के वितरण का "फोरियर" के प्रकार का सिद्धान्त है तो हमको विक्षिप्त प्रकाश में कहीं-कहीं अत्यधिक प्रकाश न मिलना चाहिए। इसलिए प्रयोगों द्वारा पाये गये फलों को समझाने के लिये यह आवश्यकता होती है कि कम्पन की कलाओं में किसी

हद तक रुकावट पड़ने का कोई उपाय ढूँढा जाय। रमन और उनके सहकारी इन तरंगों के विषय में कुछ नहीं कहते।

लावे के एक्स-रश्मि चित्रों में यह अतिरिक्त प्रतिबिम्बन रवों की भीतरी ख़राबियों के कारण भी हो सकता है। प्रेस्टन ने सन् १९३९, १९४०, १९४१ में, ब्रैग ने सन् १९४१, गुइनर ने १९४५ में, राइजेन सन् १९४४ में तथा बरजर्स और हिमोक ने १९४६ में इसी कारण पर अधिक ज़ोर दिया है। रवों के अन्दर ये त्रुटियाँ दो कारणों से हो सकती हैं। प्रथम तो यह कि "मोज़ेइक ब्लाक" यह छोटे रवे जिनको मिलाकर बड़े समूचे रवे बनते हैं कहीं कहीं पर अधिक छोटे हो जाते हैं। इस प्रकार एक मोज़ेइक ब्लाक से एक्स रश्मियाँ उस ओर (diffract) होती हैं जिधर लावे के तीन समीकरण भी लागू होते हैं। अन्य किसी भी दिशा में अँधेरा होना चाहिए क्योंकि अन्य दिशाओं में रश्मियाँ एक दूसरे को नष्ट कर देती हैं। परन्तु यदि यह मोज़ेइक ब्लाक छोटे हुए तो यह नष्ट करने का कार्य पूर्ण रूप से न होगा और अन्य दिशाओं में भी प्रकाश फैलेगा। अब आप कल्पना कीजिए कि एक ऐसा मोज़ेइक ब्लाक है जिसमें अणु या परमाणु एक रेखा में स्थित है। इस प्रकार के एक ब्लाक से (diffract) हुई एक्स रश्मियाँ ऐसे (cones) के धरातल पर पड़ेगी जिनके ऊपरी सिरे उस ब्लाक में स्थित हैं और प्रकाश चित्र में हमको गोल निशान उन स्थानों में मिलेंगे जहाँ कि यह (cones) फोटोग्राफिक फिल्म को काटते हैं। यदि हम उस रेखा पर अधिक से अधिक अणु लें तो ये गोल रेखायें अधिक साफ होंगी। अब हम यदि यह कल्पना करें कि वे ब्लाक दो दिशाओं में फैले हुए हैं और उनमें अणु या परमाणु दो दिशाओं में एक जाल सा बनाए हुए हैं तो हमको इस प्रकार जो लावे चित्र मिलेगा उसमें गोल रेखायें न होंगी बल्कि उनके स्थान पर कुछ धब्बे होंगे। यह धब्बे अगर ब्लाक का आकार अधिक बड़ा नहीं है तो पूर्ण साफ न होंगे पर यदि उनका आकार बढ़ता गया तो वे अधिक साफ़ होते जायँगे। और यदि हम उनकी मोटाई भी एक मात्रा से अधिक मान ले तो उन धब्बों की घनता उन स्थानों पर बढ़ती जायगी जहाँ के लिए लावे-ब्रैग अवस्था लागू होती है तथा अन्य स्थानों पर प्रकाश की मात्रा न्यून होती जायगी। इस कारण प्रष्ट प्रकाश में प्रकाश विभाजन की गणना करने का एक तरीका इवाल्ड ने सन् १९४० में तथा गुइनर ने सन् १९४५ में इन मोज़ेइक ब्लाकों की कुछ मुख्य शक्लों के लिए निकाला।

एक दूसरे प्रकार की त्रुटि जो रवों में पाई जाती है और जिसका प्रष्ट प्रकाश पर प्रभाव पड़ेगा वह रवों में भीतरी तनाव (Strain) है। इसका अध्ययन केवल धातुओं तथा धातुसंकरों के लिए ही अधिक हुआ है। इस प्रकार की त्रुटि से केवल लावे-ब्रैग निशानों में कुछ चौड़ापन आ जायगा जो अधिक दूर तक न होगा और इस प्रकार यह एक मुख्य प्रकार की त्रुटि और प्रकार की त्रुटियों से भिन्न पहचानी जा सकती है।

यदि हम प्रयोगलब्ध फलों की तुलना सैद्धान्तिक फलों से करें तो हम एक विशेष कठिनाई का अनुभव करते हैं। वह कठिनाई यह है कि जिन त्रुटियों का उल्लेख हमने किया है हो सकता है कि उनमें से सभी मौजूद हों और वह सब अपना प्रभाव प्रयोग के फलों पर डालें। इसलिए एक्स-रश्मि चित्रों में लावे निशानों के विषय में यह जानना कि उनकी उत्पत्ति का असली कारण क्या है कठिन हो जाता है। अन्य मुख्य कठिनाई यह है कि यदि लावे निशानों से प्रकाश का असमान विभाजन हुआ तो रवों की समान विशेषताएँ एक ही प्रकार की असमानता धब्बों के प्रकाश विभाजन पर प्रगट करती है। अर्थात् यदि रवे में किसी एक दिशा में कमज़ोर बन्धन होता है तो ये बातें उसमें पाई जाती हैं।

(१) गर्मी द्वारा उत्पन्न कम्पन का अधिक से अधिक भाग इस दिशा में होता है।

(२) यह Infra red कम्पन को उत्पन्न करने की सरल दिशा है।

(३) इस दिशा के लम्बवत् धरातल के समानान्तर रवे तहदार बनते हैं।

यह विशेषताएँ उन अतिरिक्त प्रकाश धब्बों पर, जो (१) गर्मी द्वारा उत्पन्न कम्पन के कारण बने हों या (२) Infra red कम्पन के उत्पन्न होने से बने हों या (३) रवों

के अन्दर की किसी त्रुटि के कारण बने हों, एक ही प्रकार का प्रभाव डालेंगी।

ऊपर हमने कई भिन्न प्रकार के कारणों का, जिनके द्वारा लावे एक्स रश्मि चित्रों में अतिरिक्त प्रतिबिम्बन होता है, उल्लेख किया है। भिन्न भिन्न सिद्धान्तों की प्रयोग द्वारा पाये गये फलों से तुलना करने के लिए हम भिन्न दिशाओं में विक्षिप्त प्रकाश की गणना सिद्धान्तों द्वारा करते हैं और फिर प्रयोग द्वारा प्राप्त फलों से यह पता लगाते हैं कि वे सिद्धान्त कहाँ तक ठीक हैं। उपस्थित समय में यह सिद्धान्त जहाँ तक बढ़े हैं उसके अनुसार हम कुछ साधारण रवों ही के लिए यह गणना उस प्रकार कर सकते हैं जैसा जैकेरियासेन ने १९४१ में, जैन ने १९४२ में और बार्न ने १९४३ में गर्मी द्वारा उत्पन्न कम्पन वाले सिद्धान्त के आधार पर किया। इसके अतिरिक्त इवाल्ड,गुइनर और क्रोनिग ने रवों के भीतर स्थित त्रुटियों के आधार पर भी गणना की। परन्तु उन वस्तुओं की संख्या जिन पर प्रयोग किए जा चुके हैं अधिक हैं इसलिए यह सरल होगा कि हम उल्टे प्रकार से अध्ययन करें और यह देखें कि हमको उनसे क्या क्या हाल मालूम होते हैं। इस दिशा में पहला क़दम इवाल्ड ने उठाया और (Scattering pheno menon) का भूमितिक चित्र दिया जो अपवर्त्य लैटिस के आधार पर है। यह निम्नांकित चित्र से प्रत्यक्ष समझा जा सकता है।
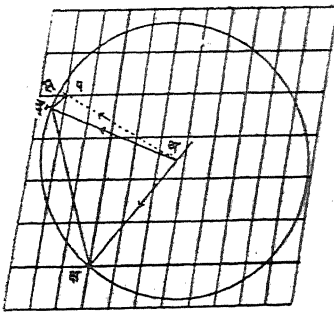
इस चित्र में यदि अब रवे पर पड़ती हुई एक एक्स रश्मि है तो इन अ ब की लम्बाई एक इकाई ली और अ को केन्द्र मानकर तथा अ ब को अर्धव्यास लेकर एक वृत्त बनाया। यदि यह प्रतिबिम्बन वृत्त किसी लैटिस विन्दु प से होकर जाता है तो प्रतिबिम्बित रश्मि अ प के समानान्तर होगी तथा ब द उन धरातलों के बीच का अन्तर बतायेगा जिनके लिये अ प की दिशा में लावे-ब्रैग अवस्था लागू होती है।

अर्थात यदि अणु तथा परमाणु अपने अपने स्थान पर स्थित हैं तो एक्स रश्मि केवल अ प की ओर प्रतिबिम्बित होगी। परन्तु किसी रवे में यह असम्भव है कि यह दशा किसी भी समय पाई जाय। रवे के भीतरी अणुओं का नियत स्थानों पर नियमित प्रकार से न होना उपरोक्त तीन कारणों में से किसी के कारण हो सकता है और उनके नियत स्थान से हटने की दूरी को हम फोरियर सिद्धान्त से एक तरंगावली में तोड़ सकते हैं। इन तरंगों का आपस में तथा रवों की भीतरी लैटिस periodicities के साथ मिलना पृष्ठ प्रकाश वितरण उत्तरदायी है। इस पृष्ठ प्रकाश को हम अपवर्त्य लैटिस के किसी भी Sharp विन्दु के चारों ओर मान सकते हैं। इसलिए यदि प्रतिबिम्बन वृत्त किसी भी लैटिस विन्दु के पास से जाता है तो अ विन्दु को उस वृत्त के धरातल पर के द विन्दु से मिलाने से जो रेखा बनेगी वह उस अतिरिक्त पृष्ठ प्रकाश क्षेत्र से होकर जायगी। वह रश्मि जो अ और स को मिलाती है उस क्षेत्र के घने भाग पर वृत्त के धरातल से मिलेगी। सन् १९२३ ई० में फैक्सेन ने कहा कि गर्मी द्वारा रवों में अणुओं के कम्पन के कारण जो प्रकाश विक्षिप्त होगा वह उपरोक्त क्षेत्र में प विन्दु के चारों ओर एक वृत्त में बटा होगा। पर प से ज्यों-ज्यों हम दूर हटते जाते हैं त्यों-त्यों प्रकाश की घनता न्यून होती जाती है। इससे उसने एक फल निकाला जो नीचे दिया हुआ है।

$$\sin \phi = 2 \sin \theta B \cos (\phi - \theta)$$

इस समीकरण में θB प विन्दु के लिए ब्रैग कोण है और θ वह कोण है जो एक्स रश्मियां उस दिशा में प्रतिबिम्बित करने वाले धरातल समूह से बनाती है। ϕ बड़ा से बड़ा प्रकाश वितरण कोण है। यदि हम ऐसी एक्स-रश्मियाँ उपयोग करें जो इकरंगी न हों तो प्रकाश वाले स्थान पर एक Spectrum बन जायगा और हमको

केन्द्र से अर्द्धव्यासों की ओर निकलती हुई रेखायें मिलेगी जो फ्रीड्रिच ने पाई थीं।

इन अतिरिक्त प्रकाश धब्बों पर काम करने वाले कई वैज्ञानिकों ने इस उपरोक्त फल की परीक्षा लेने की कोशिश की जिसमें कुछ लोगों ने यह बताया कि यह ठीक था। अधिकतर धब्बों में प्रकाश प्रायः बराबर मात्रा में धब्बे के पूर्ण क्षेत्र में था जिससे घने प्रकाश वाले भाग का पता लगाना कठिन था। इस कारण उस कोण का पता भी ठीक न लग सका जिस दिशा में अधिक प्रकाश वितरण होना चाहिए। कई प्रयोगशालाओं में बाद में किये गये प्रयोगों से यह मालूम हुआ कि ऊपर दिया हुआ समीकरण बहुत से रवों के लिए लागू नहीं है बल्कि कुछ थोड़े साधारण रवों के लिए ही ठीक ज्ञात होता है। अष्ठ प्रकाश का अधिक अध्ययन करने वाली प्रयोगशालाओं में ज्ञात हुआ है कि इन अव्यवस्था की तरंगों में Spherical symmetry नहीं है। इवाल्ड के तरीके पर हम उन तरंगों के अ ग प्रतिबिम्बन स्थान के चारों ओर वितरण का पता आसानी से लगा सकते हैं। उनका अनुकरण करते हुए यदि हम अ द को विक्षिप्त रश्मि मान लें और उसकी लम्बाई अपवर्त्य लैटिस में एक इकाई लें तो द "वेक्टर" ब द का अन्तिम विन्दु होगा। ब द का अपवर्त्य रवे की भीतर की उस (periodicity) की मात्रा देता है जिसके कारण कि अ द की ओर प्रकाश विक्षिप्त होता है। यदि द अपवर्त्य लैटिस के प विन्दु के निकट है तो प द उन बहुतों में तरंग की लम्बाई का अपवर्त्य होगा जिनसे हम रवे के भीतरी अव्यवस्था को प्रगट करते हैं प द उस तरंग की लम्बाई बताता है तथा उसके चलने की दिशा का ज्ञान भी देता है। इनको हम "फ्रोरियर ट्रान्सफार्म" कहते हैं जो हमको सारी तरंगावली के एक फ्रोरियर (Component) के विषय में सूचना देता है।

इस प्रकार तरंग की लम्बाई मालूम होने पर यदि हमको कम्पन की (freqlrency) भी मालूम हो तो हम इन तरंगों की चाल भी मालूम कर सकते हैं। रमन ने यह कहा था कि यदि हम रवों पर पड़ने वाली एक्स-रश्मियों तथा उनसे विक्षिप्त रश्मियों की (frequency) ज्ञात हो तो हम लैटिस कम्पन की (frequency) निकाल सकते हैं। पर प्रयोगों द्वारा यह ज्ञान हुआ कि विक्षिप्त होने पर (frequency) में जो न्यूनता या अधिकता होती है वह इतनी कम है कि उसका माप ठीक नहीं हो सकता। इससे यह पता अवश्य लग सकता है कि रमन के कहने के अनुसार यह धब्बे (Infra-red) कम्पन के कारण नहीं हो सकते क्योंकि उनकी (wave vectors) अपवर्त्य लैटिस वेक्टर्स का १०० होंगी और इसलिए अ ग स्थानों के अतिरिक्त प्रकाश अन्यत्र न होगा और यदि होगा तो माप के बाहर होगा। शायद इस कठिनाई का अनुभव करके तथा यह जानकर कि रवे के प्राकृतिक (Infra red) कम्पन अधिक संख्या में न होंगे और रवे के अ ग कोण को बदलने से धब्बों में अतिरिक्त प्रकाश न जायगा। रमन ने यह कल्पना की कि लैटिस में परमाणुओं के (Infrared) कम्पन की कलाएँ एक प्रकार की नहीं है बल्कि वे एक दूसरे से कला तरंगों से सम्बन्धित हैं।

इस प्रकार जैसा कि हम लोगों ने देखा कि एक्स-रश्मियों के फल अपवर्त्य लैटिस में फोरियर "ट्रान्सफार्मों" के द्वारा समझाये जा सकते हैं। हालांकि फोरियर ट्रान्सफार्मों का बाबद हमको पूर्णतया रवों की भीतरी अव्यवस्था का चित्र नहीं देता फिर भी उसके द्वारा हम काफ़ी सूचना पा सकते हैं। यह तब हो सकता है जब कि हम रवों में कई लैटिस बिन्दुओं के समीप धब्बों का अध्ययन करें। बहुत सी दशाओं में हम यह बता सकते हैं कि वह धब्बे किसी स्थित त्रुटि के कारण है या अणुओं के नियमित न होने के कारण है!

यदि हम कई लैटिस बिन्दुओं के निकट प्रकाश वितरण का अध्ययन करें तो हम कम्पन (frequency) की बाबत भी कुछ जान सकते हैं और तरंगों की प्रगति का ज्ञान प्राप्तकर सकते हैं। इस प्रकार एक्स-रश्मियों के लावे चित्रों का अध्ययन करके हम रवों की भीतरी आवश्यकीय तथा अनावश्यकीय विशेषताओं का पता लगा सकते हैं।

नेशनल ऐकेडमी आफ साइन्सेज तथा इन्डिन ऐकेडमी आफ साइन्सेज का सम्मिलित अधिवेशन

लेखक : डाक्टर रामदास तिवारी, रसायन विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय,

नेशनल ऐकेडमी आफ साइन्सेज तथा इन्डियन ऐकेडमी आफ साइन्सेज का सम्मिलित अधिवेशन प्रयाग विश्वविद्यालय के म्योर सेन्ट्रल कालेज में ता० २६, २७ वा २८ दिसम्बर १९४६ को हुआ। प्रतिनिधियों के ठहरने का प्रबन्ध म्योर सेन्ट्रल कालेज में ही था जिससे की भिन्न-भिन्न उत्सवों में सम्मिलित होने के लिये उनको दूर से आने का कष्ट न उठाना पड़े। उत्सव में आने वाले प्रमुख प्रतिनिधियों में सर सी० वी० रमन, प्रो० बीरबल साहनी, डा० के० आर० रामनाथन देहली, डाक्टर आर० एस० कृष्णन बँगलौर, प्रोफेसर टी० आर० सेसादरी आन्ध्र विश्वविद्यालय, डा० गुरुराजादास कानपुर, डाक्टर एस० एस० जोशी बनारस, प्रिन्सिपल भगवन्तम आन्ध्र विश्वविद्यालय, पी० बी० सुखातमें देहली, डा० बी० के० मालवीय लखनऊ थे।

उत्सव के प्रारम्भ होने के पूर्व प्रयाग हाइकोर्ट के प्रधान जज श्री कमला कान्त जी वर्मा ने जो उत्सव के सभापति थे, महामना पं० मदन मोहन मालवीयजीके निधन पर निम्न लिखित प्रस्ताव रक्खा जिसे समस्त लोगों ने अपने स्थानों पर खड़े होकर पास किया :—

"नेशनल ऐकेडमी आफ साइन्सेज तथा इन्डियन ऐकेडमी आफ साइन्सेज का यह सम्मिलित अधिवेशन पं० मदन मोहन मालवीय जी के निधन पर दुख प्रकट करता है। मालवीय जी बनारस विश्वविद्यालय के संस्थापक थे तथा विश्व के अनेक क्षेत्रों में विशेष कर शिक्षा क्षेत्र में उनकी सेवायें असीम थीं। उनका त्याग तथा शिक्षा प्रेम देश वासियों को सदैव मार्ग प्रदर्शक रहेगा।"

इसके पश्चात स्वागत कारिणी समिति के मंत्री राव साहब डा० प्यारे लाल श्री वास्तव ने सर तेज बहादुर सप्रू, आदरणीय श्री राजगोपाला चार्य, श्री गोविन्द बल्लभ पन्त, श्री सम्पूर्णानन्द तथा पं० अमरनाथ झा के संदेश पत्र जो उन्होंने उत्सव की सफलता के लिये भेजे थे पढ़कर सुनाये।

तदुपरांत स्वागत कारिणी समिति के प्रधान डाक्टर तारा चंद जी का भाषण हुआ जिसमें उन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय की ओर से उत्सव में आने वाले ऐकेडमियों के सभ्यों तथा प्रतिनिधियों का स्वागत किया। उनके भाषण के कुछ अंश आगे दूसरे स्थान में दिये हुये हैं।

प्रयाग हाईकोर्ट के प्रधान जज श्री कमलाकान्त जी वर्मा ने अधिवेशन का उद्घाटन करते हुये अपना भाषण दिया जो अन्य स्थान में दिया है।

इन्डियन ऐकेडमी के सभापति का भाषण देने के पूर्व सर सी० वी० रमन ने स्वागत कारिणी समिति को स्वागत के लिये धन्यवाद दिया। फिर उन्होंने अपना भाषण "मणिभीय अवस्था में नवीन धारणायें" के विषय पर दिया। इसके पश्चात नेशनल ऐकेडमी के सभापति प्रोफेसर ए० सी० बनर्जी ने "संसार कितना पुराना है" पर विषय भाषण दिया।

फिर दोपहर से डा० पी० वी० सुखातमें की अध्यक्षता में पौधों और जन्तुओं की उत्पत्ति के Stastical विधियों" पर एक विचार विनिमय हुआ जो उस दिन दूसरे पहर तथा दूसरे दिन तक चलता रहा। विषय पर अनेक विद्वानों ने अपना-अपना मत प्रकट किया।

भोजन के उपरान्त दोनों ऐकेडेमियों की कार्य कारिणी की बैठकें हुई और वार्षिक चुनाव हुये। शाम को ४॥ बजे स्वागत कारिणी की ओर से

सभ्यों, प्रतिनिधियों तथा अन्य अतिथियों को चाय दी गयी। इसके पश्चात शाम को ६ बजे श्री कमला कान्त जी वर्मा के सभापतित्व में सर सी० वी० रमन ने जवाहिरात पर एक भाषण दिया और उस दिन का कार्य समाप्त हुआ।

दूसरे दिन ता० २७ दिसम्बर को ९॥ बजे से १२॥ बजे तक प्रोफेसर टी० आर० सेसादरी के सभापतित्व में गणित, भौतिक विज्ञान, रसायन तथा भू गर्भ विज्ञान सम्बन्धी अनुसन्धान के लेख पढ़े गये और उन पर वाद विवाद हुआ। इनमें डाक्टर आर० एस० कृष्णन तथा प्रोफेसर माधवराव के अनुसन्धान लेख विशेष महत्व पूर्ण थे। शाम को डाक्टर धर के सभापतित्व में प्रकृति में नाइट्रोजन का चक्र सम्बन्धी विषय पर विचार विनिमय हुआ और इसके बाद दूसरा विचारविनिमय प्रोफेसर ए० सी० बनर्जी के सभापतित्व में तारों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में हुआ। नाइट्रोजन वाले विचार विनिमय में डाक्टर भोलानाथसिंह, डाक्टर हीरालाल दुबे, रमेशचन्द्र कपूर तथा भुवनचंद्र पान्डे ने भी अपने विचार प्रकट किये। तारों वाली विचार विनिमय में डाक्टर हरी केसवसेन तथा श्री कुन्दन सिंह जी सिंगवी ने भाग लिया। ४॥ बजे लीडर प्रेस की ओर से चाय हुई और फिर शाम को ६ बजे सर सी० वी० रमन के सभापतित्व में "युद्ध कालीन रसायनिक अनुसंधान" पर प्रोफेसर टी० आर० सेसादरी का भाषण हुआ। इसके बाद ७ बजे से डाक्टर बी० एस० गुहा ने भारत की अर्वाचीन जातियाँ-उनके वंशीय तथा सांस्कृतिक विचार पर अपना भाषण दिया।

तीसरे दिन ता० २८ दिसम्बर को गणित, भौतिक विज्ञान, रसायन, तथा भू गर्भ विज्ञान की बैठक फिर ९॥ बजे से प्रोफेसर सेसादरी की अध्यक्षता में प्रारंभ हुई जिसमें कई अनुसंधान सम्बन्धी लेख पढ़े गये। डाक्टर वृज किशोर मालवीय, डाक्टर तिवारी, मेहरोत्रा तथा डाक्टर गुरुराज दास के विचारों पर काफी वाद विवाद हुआ। इसके पश्चात ११ बजे से सर सी० वी० रमन की अध्यक्षता में रंगों के सिद्धान्त पर एक विचार विनिमय हुई। इसका प्रारम्भ प्रयाग विश्वविद्यालय के डाक्टर जमुनादत्त जी तिवारी ने किया। उन्होंने अनेक सिद्धान्तों को बतलाते हुये यह दिखलाया कि कोई भी सिद्धान्त पूर्णतयः सब बातें नहीं सिद्ध कर सकता। तदुपरांत सर सी० वी० रमन तथा अन्य और वैज्ञानिकों ने भी इस सम्बन्ध में अपने मत प्रकट किये।

दो बजे से सभ्य तथा प्रतिनिधि लोग संगम तथा कृषि विभाग नैनी देखने गये और नैनी में सबको चाय पिलाई गई। इसके बाद शाम को ६ बजे से 'उपवास के रसायनिक सिद्धान्त' पर डाक्टर धर का एक महत्वपूर्ण भाषण हुआ।

अन्त में सर सी० वी० रमन ने स्वागत कारिणी तथा अन्य लोगों को धन्यवाद देते हुये अधिवेशन को समाप्त किया।

राष्ट्रीय भौतिक अनुसन्धान शाला के शिलान्यास के अवसर पर श्री पं० जवाहरलाल नेहरू का अभिभाषण

अन्य देशों के समान हमें भी शीघ्र ही अपने देश में परमाणुओं की अपरिमित शक्ति सम्बन्धी अन्वेषणों के लिए अनुसन्धान शालायें बनानी होंगी। पर हाँ, इसलिये नहीं कि हम परमाणु-बम बनावेंगे। विश्व के भावी नव निर्माण में परमाणु की शक्ति का विशेष और व्यापक उपयोग किया जायगा, तब यह कैसे संभव है, कि हम इस बात में पिछड़े रहें। यह सब जानते है कि रेडियम आदि

तत्त्वों में रोगों के निवारण करने की क्षमता होती है। यही नहीं परमाणु की शक्ति के उपयोग से हमें अपने यंत्रों को चलाने का एक नया गतिवान् साधन प्राप्त हो गया है, जिस का उपयोग कल कारखानों में सर्वत्र किया जा सकता है। अब हम अपनी भौगोलिक सीमा के बन्धनों में ग्रस्त नहीं रहेंगे।

घरेलू कारखानों को भी परमाणु-शक्ति से लाभ होगा। यदि आपके पास काम चलाने के लिये परमाणु-शक्ति या इसी प्रकार की कोई शक्ति है, तो छोटी इकाइयों में इनका उपयोग अधिक आसानी से और सफलता से किया जा सकता है। अतः व्यवहार की दृष्टि से यह अब परमावश्यक है कि परमाणु-शक्ति का अनुसन्धान वृहद्‌मात्रा में आरम्भ कर दिया जाय—यह तो स्पष्ट है, कि यह अनुसधान छोटे पैमाने पर नहीं किया जा सकता।

मुझे आशा है कि इस राष्ट्रीय भौतिक अनुसन्धान शाला के बाद, (जिसका कार्य यहाँ शीघ्र ही आरम्भ होने वाला है) हमारे देश में अनेक अनुसंधानशालायें एवं प्रयोगशालायें खुलेंगी जिन में अनेक उत्साही युवक और युवतियाँ भाग लेंगी, और उनके द्वारा देश की ही नहीं, समस्त संसार की सेवा हो सकेगी।

गत कुछ महीनों से मैं बराबर उन सब विभिन्न आयोजनाओं को देखता और पढ़ता रहा हूँ, जिनका सम्बन्ध उन प्रयोग शालाओं में है जिनकी स्थापना देश के विभिन्न भागों में होने जा रही है। इन में से कुछ आयोजनाओं पर मेरा विशेष विचार भी गया है जैसे नदी प्रदेश की आयोजना में, जलाशय, बांध आदि—जिन में से कुछ तो टेनेसी-प्रदेश की आयोजना से भी विस्तृत हैं। इस समय मेरे मस्तिष्क के समक्ष वह चित्र ज्वलन्त हो जाता है, जिसका निर्माण इन आयोजनाओं का लक्ष्य है। वर्तमान युग के संघर्ष में भारत के उत्थान का यह क्रियात्मक शिलारोहण मेरी दृष्टि में बहुत ही अधिक महत्व रखता है।

मैं यह मानता हूँ कि इस समय तक हम बहुत उन्नति जो नहीं कर पाये, उस में धन की बाधा इतना कारण नहीं थी जितना कि योग्य दीक्षा प्राप्त व्यक्तियों के अभाव की। हम धन की और धन के अभाव की चर्चा आवश्यकता से अधिक किया करते हैं, पर यह भी तो सच है कि जब हम दृढ़ता पूर्वक किसी काम को सम्पन्न करने की सोच लेते हैं, तो धन के अभाव में भी वह काम पूरा हो जाता है—युद्ध के लिये जब हम कमर कस लेते हैं, तो उसके लिये तो धन की कमी शीघ्र ही पूरी हो जाती है। रचनात्मक आयोजनाओं के समय ही धन के अभाव की चर्चा हमें सुनायी पड़ती है। मेरी तो पक्की धारणा है कि भारत के उत्थान की किसी भी रचनात्मक आयोजना के मार्ग में धन के अभाव की चर्चा उठानी ही नहीं चाहिये।

क्या सचमुच ही हमारे देश में शिक्षित और दीक्षित व्यक्तियों का अभाव है? यदि है तो हमें इसका प्रबन्ध करना चाहिये, पर मैं तो देखता हूँ, कि हमारे अनेक नवयुवक जो विश्वविद्यालय में सम्मान प्राप्त करते हैं सदअवसरों के अभाव में इस प्रकार के पद और पेशेग्रहण कर लेते हैं, जो उनकी प्रतिभा के विरुद्ध हैं। कुछ तो साधारण प्रबन्धात्मक नौकरियों में चले जाते हैं—शायद इसलिये कि वहाँ उनकी नौकरी सादे अतः अधिक सुरक्षित समझी जाती है। इस प्रकार हमारे देश को योग्य प्रतिभा का दुरुपयोग हो रहा है। उन व्यक्तियों की प्रतिभा का अन्यत्र अच्छा उपयोग हो सकता था, न कि वहाँ जहाँ उन्हें सेज कुर्सी पर बैठ कर सर्वथा अनावश्यक कार्य करना पड़ता है।

हमें अपने व्यक्तियों को शिक्षित करने के लिये अभी बहुत कुछ करना है और जो शिक्षा पा रहे हैं, उन्हें ऐसे अवसर देने हैं कि वे अपनी शिक्षा को कार्य में परिणत कर सकें।

भारतवर्ष में गणना के अंक बहुत ही कम प्राप्त हैं, पर इन ज्ञातव्य अंकों की प्रतीक्षा में हम अपने कामों को बन्द कर के बैठ नहीं सकते। हमें कुछ काम तो आरम्भ कर देना ही चाहिये। इन अनु-

सन्धान शालाओं के शिलान्यास के अनन्तर हमें बृहद् परिमाण पर शक्ति के उत्पादन की आयोजना करनी चाहिये। चाहें हम कोई भी काम आरंभ क्यों न करें, हमें अपने देश में हर एक के लिये ही बृहद् परिमाण पर शक्ति आवश्यक होगी। इस समय तो भारत ऐसे विस्तृत देश में शक्ति का उत्पादन बहुत ही कम नगण्य मात्रा में हो रहा है। निस्सन्देह, हमारे देश की शक्ति-उत्पादन की क्षमता तो बहुत है। विश्वास पूर्वक हम कह सकते हैं कि हमारा देश खनिज सम्पत्ति और जन-बल में संसार के सब से धनी देशों में से है, और शक्ति-उत्पादन की क्षमता भी यहाँ बहुत है। इस प्रकार हम सभी तरह से सम्पन्न हैं। प्रश्न केवल इतना ही है कि हम अपने इन सब साधनों में सामञ्जस्य कैसे स्थापित कर सकते हैं, और पारस्परिक सहयोग से लाभ कैसे उठा सकते हैं।

यदि यह सब कुछ हो जाय, तो हमारे देश का चित्र ही बदल जायगा। हमारे विगत इतिहास में भी विज्ञान ने समाज के स्वरूप को कई बार बहुत कुछ परिवर्त्तित किया है, यह ठीक है कि बहुत कुछ परिवर्त्तन परोक्ष रूप से ही विज्ञान ने किया, और थोड़ा बहुत प्रत्यक्ष रूप से भी। पर आज तो विज्ञान ये परिवर्त्तन प्रत्यक्ष रूप से करने पर आरूढ़ है।

भारतवर्ष में हमें अनेक कठिनाइयों का सामना करना है। पर ऐसा नहीं है, कि इन कठिनाइयों को हम वेग पूर्वक दूर न कर सकें। मेरा तो विश्वास है कि भारतवर्ष में वेग से उन्नति करना और आगे बढ़ना आसान है। मैं जब इन कठिनाइयों का निर्देश करता हूँ तो मेरा अभिप्राय केवल उन कला-कौशल सम्बन्धी बाधाओं से नहीं है, जिनमें हम उलझे हुये हैं, मेरा ध्यान तो उन बाधाओं की ओर जाता है, जिन पर साधारणतया वैज्ञानिक विचार भी नहीं करते। पर मुझे तो इन पर विचार करना ही पड़ता है। इस देश की विस्तृत जनता के सम्बन्ध में जब हमें कुछ करना पड़ता है, तो मुझे प्रतिक्रिया स्वरूप इन बाधाओं का ध्यान आ जाता है। जब तक हमें इस विस्तृत जनता की सहानुभूति नहीं प्राप्त हो जायगी, और जब तक यह जनता कम से कम कुछ अंश में हमारी आयोजनाओं को समझने की क्षमता नहीं रक्खेगी तब तक हम बहुत दूर तक आगे नहीं बढ़ सकते। यदि उन्हें हम साथ न ले चलगे, तो वे हमें रोक देंगे, हमारे काम में ब्रेक लगा देंगे। अतः यह परमावश्यक हो जाता है कि हम जो कुछ करने की सोचें, इस जनता को भी समझा दें, और उसके सम्बन्ध में उनकी सहानुभूति प्राप्त कर लें।

हम में से आज भी बहुतों का दृष्टिकोण सामाजिक रीति रस्मों की ओर संकुचित सा है, और अब भी हम अनेक रूढ़ियों में बँधे हुये हैं। एक युग था कि भूतकाल में भी हमारे विज्ञान ने कुछ अंशों तक जनता के भतर से देवी-देवताओं के अन्ध विश्वासों को दूर करने में कुछ सहायता दी। ये अन्धविश्वास अब भी जनता में फैले हुये हैं, और हमें इनका उन्मूलन करना है, और मैं चाहता हूँ कि इसमें विज्ञान हमारी सहायता करे। यही नहीं, देवी-देवताओं के त्रास के साथ-साथ जो इनसे भी भयानक त्रास हमारे सामने उपस्थित है, और जिससे हमें अपनी जनता को मुक्त करना है वह मानव समाज की ओर से त्रास है। इस सम्बन्ध में विज्ञान और वैज्ञानिक दृष्टिकोण हमारी बहुत कुछ सहायता कर सकता है।

कभी-कभी मुझे यह सोच कर कुछ दुःख होता है कि इस समय मैं अपनी वर्त्तमान आयु से कुछ अधिक छोटा क्यों न हुआ। मेरे सामने तो नये भारत का चित्र उपस्थित हो रहा है, मेरे देश में एक नया युग आ रहा है, जिसमें अनेक परिवर्त्तन होने वाले हैं, मैं तो उन नवयुवकों और नवयुवतियों की सोच रहा हूँ, जो इस नये वातावरण से लाभ उठाने जा रहे हैं, और जो उस संगठन के निर्माण में भाग ले रहे हैं, जिसका हम बहुत पहले से स्वप्न मात्र देख रहे थे।

मुझे इसका भी दुःख है कि संभवतः मुझे वे दिन भी देखने को न मिलें जब हमारा देश पूर्ण वैभव प्राप्त कर लेगा। पर मुझे इस बात से पूर्ण सन्तोष है कि इस उज्ज्वल भविष्य के निर्माण में हम लोगों का कुछ हाथ रहा है। मुझे इसका आनन्द है कि आज एक ऐसी ही महत्वपूर्ण आयोजना का आरम्भ करने में किञ्चन मात्र योग दे रहा हूँ।

इस अंग्रेजी भाषण के अनन्तर श्री पंडित नेहरू ने उत्सव में सम्मिलित होने वाले ग्रामीणों के हितार्थ कुछ शब्द हिन्दुस्तानी में कहे। उत्सव में इन ग्राम निवासियों की संख्या बहुत अधिक थी, और उन्होंने नेहरू जी का उत्साह पूर्वक स्वागत और अभिवादन किया था। उन्होंने इस अनुसन्धान शाला की स्थापना के महत्व को इन लोगों के सामने रक्खा और उन्हें आश्वासन दिया कि इससे देश की जनता की गरीबी मिट सकेगी। जनता से उन्होंने सहयोग देने के लिए अनुरोध भी किया, और कहा कि इसकी सफलता उनकी सहानुभूति पर निर्भर है। शिलान्यास संस्कार के समय ग्रामीण जनता ने नेहरू जी की उच्च स्वर से जय-जयकार मनायी. और उनकी तुमुल ध्वनि के साथ-साथ यह उत्सव समाप्त हुआ।

नेशनल ऐकेडमी आफ़ साइन्सेज़ तथा इन्डियन ऐकेडमी आफ़ साइन्सेज़ के सम्मिलित अधिवेशन पर आई हुई शुभकामनाएं

माननीय श्री गोविन्द वल्लभ पन्त, प्रधान मंत्री, यू० पी०

आज का संसार वैज्ञानिक चमत्कारों का बहुत आभारी है और आज कल जिधर भी दृष्टि दौड़ाओ वैज्ञानिक अन्वेषणों और दैनिक जीवन में बड़ा ही निकट सम्बन्ध दिखलाई देता है। ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य ने प्रकृति की समस्त शक्तियों पर विजय प्राप्त कर ली है और विज्ञान ने उसे प्राकृतिक तत्वों का पूर्ण स्वामी बना दिया है। यह हर्ष की बात है, परन्तु साथ ही साथ यह भी आवश्यक है कि यह ध्यान रक्खा जाये कि यह शक्तियाँ विनाशकारी दशा में न प्रयोगित हों। इस दिशा में विज्ञान आज चल भी चुका है परन्तु मुझे आशा है कि सारे संसार के वैज्ञानिक अपनी सरकार तथा राजनीतिज्ञों से यह सिद्धान्त मनवाने पर अड़े रहेंगे कि उनका विज्ञान विध्वंसकारी दिशा में न प्रयोग किया जाये। मेरी कामना है कि आपकी कांग्रेस पूर्णतया सफल हो।

माननीय श्री सम्पूर्णानन्द, अर्थ तथा शिक्षा मंत्री यू० पी०

वैज्ञानिकों के प्रयत्न का मानसिक तथा आत्मिक महत्व तो है ही, परन्तु साथ ही साथ देश की आगामी उन्नति में भी वैज्ञानिकों का बड़ा हाथ रहेगा। मुझे कोई सन्देह नहीं कि यदि भारतीय वैज्ञानिकों को नैतिक उत्साह तथा आर्थिक सहायता पर्याप्त अवस्था में मिल सके, तो वह उच्च से उच्च कोटि का कार्य्य कर सकते हैं। मुझे आशा है कि इस प्रकार की सहायता उन्हें मिलेगी। कांग्रेस की सफलता की मैं कामना करता हूँ।

भारतीय विज्ञान परिषद् में भाग लेने वाले विदेशी वैज्ञानिकों का संक्षिप्त जीवन-चरित्र

सर हैरोल्ड स्पेन्सर जोन्स

जोन्स का जन्म केनिङ्गस्टन, इङ्गलैण्ड में सन १८९० में हुआ था। जीजस कालेज में शिक्षा के उपरान्त सन् १९१३ में २३ वर्ष की उम्र में आप ग्रीनविच की रायल आवज़रवेटरी के 'मुख्य सहायक' नियुक्त किये गये। प्रथम महायुद्ध में आप प्रकाश सम्बन्धी वस्तुओं के सप्लाई विभाग के सहायक संचालक थे। सन १९२३ में आप केप के ज्योतिषी और १९३३ में ग्रीनविच की आवज़रवेटरी के सञ्चालक नियुक्त हुए। सन् १९३३ से अब तक आप ग्रीनविच ही में हैं। आप रायल सोसायटी, रायल ज्योतिष सोसायटी और रायल मिटियारोलाजी सोसायटी के सभ्य हैं। सन् १९१८ में आप ने मिस ग्लाइड्स मेरी ओवर्स से शादी की और आज आपके दो लड़के हैं। आपने बहुत सी पुस्तकें लिखी हैं जिनमें कुछ निम्न हैं: साधारण ज्योतिष (१९२२), दूसरे संसारों में जीवन (१९४०), अनन्त संसार (१९३५), ग्रीनविच की रॉयल ऑवज़रवेटरी (१९४४)।

प्रोफेसर पी० एम० एस० ब्लैकेट

आपका जन्म १८ नवम्बर सन् १८९७ को हुआ था। आपकी शिक्षा आर० एन० कालेज आसबोर्न में हुई और १९२३ से ३३ तक आप किङ्ग कालेज के सभ्य थे। १९३३ से ३७ तक आप बर्क बेक कालेज में भौतिक विज्ञान के प्रोफेसर रहे और १९३७ से मैनचेस्टर विश्वविद्यालय में भौतिक विज्ञान के लैंगवर्दी प्रोफेसर हैं। सन १९३३ में आप रायल सोसायटी के सभ्य चुने गये। आपने सन १९२४ में कान्सटैञ्जा रयन से शादी की और आपके एक पुत्र व पुत्री हैं। कास्मिक रश्मियों के सम्बन्ध में आपने बहुत ही महत्वपूर्ण अन्वेषण किये हैं। परमाणु-शृंखला के भंग होने का प्रथम चित्र आपने ही लिया था।

सर डी० आर० सी० वेण्टवर्थ थाम्पसन

आपका जन्म सन १८६० में हुआ था। सन १८८४ में आप डण्डी में स्थित सेण्ट एण्ड्रूज विश्वविद्यालय में प्राकृतिक इतिहास के आचार्य नियुक्त हुए और इसी स्थान पर सन १९१७ तक आपने कार्य्य किया। आप बहुत सी वैज्ञानिक सोसायटियों के सभापति रह चुके हैं और कई भाषणों के लिए आप प्रसिद्ध हैं। अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक सभाओं में कई बार अपने देश का प्रतिनिधित्व आप कर चुके हैं। आपने १९०१ में मारीन से विवाह किया जिनसे आपके ३ सुपुत्रियाँ हैं। आपने कई पुस्तकें वैज्ञानिक विषयों पर लिखी हैं जिनमें निम्न प्रसिद्ध हैं: साइंस और क्लासिक्स (१९३१), यूनानी पक्षियों की ग्लासरी (१८९५)।

प्रोफेसर विलियम ब्राउन

आपका जन्म १८८८ में डूमफ्रीशायर में हुआ था। आपने इडिनबरा विश्वविद्यालय में शिक्षा पाई और अपना अनुसंधान कार्य्य इम्पीरियल कालेज आफ साइंस में आरम्भ किया। इसके पश्चात आप वैज्ञानिक व औद्योगिक अनुसंधान विभाग में तथा खेती विभाग में भी अनुसंधान कार्य्य में लगे रहे। सन १९२३ में आपकी नियुक्ति इम्पीरियल कालेज में सहायक प्रोफेसर के स्थान पर हुई और वहीं आप १९२८ में वनस्पित विभाग के प्रोफेसर बनाए गए। आपका विवाह लूसी डोरिस ऐलन से हुआ। आपके एक पुत्र तथा तीन पुत्रियाँ हैं।

प्रोफेसर एल० जे० मार्देल

आपका जन्म अमेरीका के नगर फिलाडेलफिया में सन १८८८ में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक

शिक्षा सेन्ट्रल हाई स्कूल फिलाडेलफिया में हुई। उच्च अध्ययन के लिए आप इंगलेण्ड गये जहाँ कैम्ब्रिज यूनीवर्सिटी में आपने शिक्षा पाई। आरंभ में कुछ दिन आप बर्क बेक कालेज में अध्यापन करते रहे, फिर आप मैनचेस्टर विश्वविद्यालत चले आए। आजकल आप मैनचेस्टर विश्वविद्यालय में गणित के प्रोफेसर हैं। आप अपने गणित के अनुसन्धनों व मुद्रित लेखों के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं और सन १९४१ में आपको लण्डन गणित सोसायटी का मार्गन मेडल दिया गया।

प्रोफेसर हैरोल्ड मनरोफाक्स

आप एक प्रसिद्ध प्राणी विज्ञानवेत्ता हैं। आप का जन्म सन १८८९ में हुआ और आपकी शिक्षा कैम्ब्रिज में हुई। १९१३ में आप इम्पीरियल कालेज में प्राणिविज्ञान के अध्यापक नियुक्त हुए। इसके बाद बहुत से स्थानों पर कार्य्य करने के बाद सन १९४१ से आप लण्डन विश्वविद्यालय के बैडफोर्ड कालेज में प्राणिविज्ञान के आचार्य का पद सुशोभित कर रहे हैं। १९२६ से आप प्राणि व वनस्पति विज्ञान की समालोचक पत्रिका (Biological Review) का संपादन कर रहे हैं।

सर आर्थर फ्लेमिङ्ग

आप एक कुशल यांत्रिक हैं. और विद्युत् विज्ञान के औद्योगिक प्रयोगों पर आपके अनुसंधान प्रसिद्ध हैं। आपका जन्म १८८१ में हुआ था और आपने फिन्सबरी औद्योगिक कालेज में शिक्षा पाई। आप बहुत सी कम्पनियों में कार्य्य कर चुके हैं और कई कमेटियों के चेयरमैन रह चुके हैं। सन १९३७ में हाक्सले मेडल और १९४१ में फैरेडी मेडल आपको आपकी अनुसंधानों के पुरस्कार स्वरूप दिया गया। आप आजकल कई कम्पनियों के डाइरेक्टर तथा मैनेजर हैं।

प्रोफेसर डडले स्टैम्प

इनका नाम प्रत्येक भूगोल का विद्यार्थी जानता है। आप एक कुशल लेखक तथा भूगोल विज्ञान के प्रसिद्ध अनुसंधानकर्त्ता हैं। आपका जन्म १८९८ में हुआ था और आपने किङ्ग कालेज, लन्दन में शिक्षा पाई। १९१७-१९ तक आपने रायल इञ्जीनियरस में काम किया। १९२२ में आप इण्डो-बर्मा पेट्रोल कम्पनी के परामर्शदाता नियुक्त हुए। १९२३-२६ तक आप रंगून विश्वविद्यालय में भूगोल व भूगर्भ शास्त्र के प्रोफेसर रहे। १९२५ में आप रूस साइंस कांग्रेस में भारत के प्रतिनिध के रूप में गये। १९२७ में आप भारतीय विज्ञान परिषद् के लाहौर अधिवेशनमें भूगोल-विभाग के सभापति थे। १९३७-३८ में जब भारतीय विज्ञान परिषद् की रजतजयंती हुई तो आप ब्रिटिश प्रतिनिधि के रूप में पधारे। अपने लेखों व अनुसन्धानों के लिए आप बहुत प्रसिद्ध हैं और आजकल लन्दन विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य्य करते हैं।

प्रोफेसर राबर्ट बायल

एक कुशल भौतिक विज्ञानवेत्ता है। आपका जन्म सन १८८३ में हुआ। मैकगिल व इडिनबरा विश्वविद्यालयों में शिक्षा पाने के बाद १९०९-११ तक आपने प्रोफेसर रदरफोर्ड के साथ रेडियो सक्रियता पर अनुसंधान किये। १९२९ तक आप मुख्यतः अलबर्टा विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य्य करते रहे और तबसे आप ओटावा में स्थित नेशनल फीजिकल लैबोरेटरी के भौतिक विभाग व विद्युत-यांत्रिक विभाग के डाइरेक्टर हैं। आप अपनी रेडियो सक्रियता के अनुसंधानों और भौतिक विज्ञान के औद्योगिक प्रयोगों के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं।

सर चार्ल्स गाल्टन डार्विन

आपका जन्म १८८७ में हुआ था और आप प्रसिद्ध डार्विन के कुल से हैं। आपने मालवरो तथा कैम्ब्रिज में शिक्षा पाई। १९१० में आप मैन्चेस्टर विश्वविद्यालय में अध्यापक नियुक्त हुए और उसके बाद कई विश्वविद्यालयों में अध्यापन कार्य्य कर चुके हैं। सन १९३९ से आप नेशनल फीजिकल लैबोरेटरी के डाइरेक्टर हैं। आपकी पुस्तकों में से

The new conception of matter बहुत प्रसिद्ध है।

प्रोफेसर हार्लो शाप्ले

आप एक प्रसिद्ध ज्योतिषाचार्य हैं। आपका जन्म १८८५ में हुआ था और आपने मिसूरी विश्व-विद्यालय में शिक्षा पाई है। आपने प्रिंसटेन विश्व-विद्यालय से पी० एच० डी० की डिगरी ली। इसके अतिरिक्त लगभग १ दर्जन विश्वविद्यालयों से आपको आनरेरी उपाधियाँ मिल चुकी हैं। १९१४ से २१ तक आप माउण्ट विलसन आवजरवेटरी में रहे। सन १९२१ में आप हैवर्ड कालेज की आवजरवेटरी में नियुक्त हुए और आज भी उसी पद को शोभित कर रहे हैं। आप अनेक वैज्ञानिक सभा व सोसाइटियों के सभासद व सभ्य हैं। अपने अनुसंधानों के पुरस्कार स्वरूप आपको नेशनल एकाडेमी का ड्रैपर पदक, फैङ्कलिन पदक व पोप पायस पुरस्कार मिल चुका है। आपने कई सुन्दर पुस्तकें लिखी हैं।

प्रोफेसर एडमण्ड न्यूटन हार्वे

आपका जन्म १८८७ में हुआ। आपकी शिक्षा पेनीसिलवानिया तथा कोलम्बिया विश्वविद्यालयों में हुई। १९११ से आप प्रिंसटन विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य्य कर रहे हैं और १९१९ में आप वहीं प्राणिविज्ञान के प्रोफेसर हुए और तब से वहीं कार्य्य कर रहे हैं। आप बहुत सी वैज्ञानिक परिषदों में सभापतित्व कर चुके हैं और एक प्रसिद्ध प्राणि विज्ञान वेत्ता हैं।

मनोविज्ञान और मानव समाज का पुनर्निर्माण

भारतीय विज्ञान परिषद के मनोविज्ञान विभाग के सभापति के आसन से श्री पी० एस० नायडू द्वारा दिए हुए भाषण का सारांश

मानव जाति के भावी हित का आयोजन करने वालों के लिए, घर तथा बाहर की मानव परिस्थिति एक तीव्र व्याकुलता का कारण बन जाती है। यह प्रतीत होता है कि मानो मनुष्य अपनी सम्पूर्ण शक्ति का प्रयोग करते हुए आत्म बलिदान तथा विनाश की ओर तीव्र गति से बहता हुआ चला जा रहा है। नैराश्यवादी का कथन उस समय उचित ही मालूम होता है जब कि वह उन्नति के सब सिद्धान्तों को आत्म शक्ति से विहीन व्यक्तियों के द्वारा निर्मित उपाहासास्पद छुटकारे के नाम से पुकारता है। वह कहता है कि उन्नति के सब सिद्धान्त केवल वास्तविकता से मुँह चुराने वालों द्वारा बनाये गए हैं और इन सिद्धान्तों के बनाने वालों में नाम मात्र को भी आत्मशक्ति नहीं मिलती। किन्तु हम यह प्रश्न करने के लिए विवश हैं कि शताब्दियों से अपने को ऊपर उठाने के लिए सब प्रकार के यत्न करने पर भी मनुष्य अपनी प्रारम्भिक असभ्य अवस्था के समान पाशविक वृत्तियों का दास क्यों बना हुआ है। मेरे विचार से तो मनुष्य का उचित रूप से जीवन को निर्धारित न करना ही इसका एक मात्र कारण है। अब तक मनुष्य वाह्य वातावरण के आधार पर ही विचार तथा आयोजन किया करता था और पूर्णस्थिति के अत्यावश्यक अंग अपने आन्तरिक आत्मा की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों की वह हमेशा से अवहेलना करता आया है। **समकालीन मानव परिस्थिति द्वारा निर्दिष्ट मनोवैज्ञानिक आयोजन ही समय की अत्यन्तावश्यक माँग है।**

मनुष्य के इस सार्वभौमिक रोग की मनोवैज्ञानिक परीक्षा तीन अन्तःस्थित कारणों को प्रकट करती है। प्रथम तो एक ओर मनुष्य की स्वाभाविक

योग्यता तथा स्वभाव और दूसरी ओर उसके वातावरण जिसमें कि उसको रहना तथा कार्य करना है, के बीच अव्यवस्था है। मनुष्य के मस्तिष्क के अचेतन (Unconscious) विभाग में छिपी हुई असंख्य, अज्ञात, तथा निरंकुश ग्रन्थियाँ (Complexes) जो रेचक (Catharsis) तथा उन्नति (Sublimation) चाहती है, रोग का दूसरा कारण है। तीसरा और अन्तिम कारण मनुष्य की आत्मिकता के प्रति अज्ञानतापूर्ण अवहेलना है। योग्यता (efficiency), आनन्द (Happiness) तथा आत्मनिष्ठा (Self Realisation) ही तीन ऐसे क्रमबद्ध उद्देश्य है जिनको मनोविज्ञान के अनुसार आयोजकों को सदैव लक्ष्य में रखना चाहिए। प्रथम तो व्यवहारिक मनोविज्ञान (Applied Psychology) की सहायता द्वारा, दूसरा गहरस्व मनोविज्ञान (Depth Psychology) की सहायता द्वारा तथा तीसरा भारतीय मनोविज्ञान (Indian Psychology) के द्वारा प्राप्त करना चाहिए।

योग्यता जो कि हमारे उद्देशों के श्रेणी में सबसे निम्निकोटि की है, प्राप्ति करने के लिए व्यक्तिगति नागरिकों का उपयुक्ति तथा नियति मानसिक परीक्षाओं द्वारा ज्ञान सम्बन्धी (Cognitive) तथा अनुभव सम्बन्धी (Conative) योग्यता तथा रुचि का राष्ट्रव्यापी निरीक्षण ही निर्धारित उपाय है। तत्पश्चात व्यापारों उद्यमों तथा व्यवसायों का एक वृहत विश्लेषण करके अंत में प्रत्येक व्यक्ति को उसी के योग्य उद्यम में नियुक्ति कर देना चाहिए। इस प्रकार मानव संपर्क के विघ्नों का प्रधान कारण अपति व्यवसाइक अवव्यवस्था तथा उससे उपजी हुई हानियों तथा विपत्तियों का नाश हो जायगा।

अब आगे आनन्द के माध्यमिक लक्ष्य पर विचार करना चाहिए। यह ध्येय मस्तिष्क के अचेतन भाग (Unconscious) को शुद्ध करने से तथा मानसिक शक्ति के उचित तथा उपयुक्ति परिस्राव के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। मनोविश्लेषण पर स्थित चिकित्सात्मक (Therapy) प्रयोग घर, स्कूल, व्यवसाय के स्थानों एवं सभी मानव संस्थाओं में करना चाहिए? इस प्रकार घृणित ग्रंथियों (Ugly complexes) का निर्माण रुक जायगा और यदि वह किसी प्रकार बन भी जायँ तो उनका शीघ्र ही नाश किया जा सकता है। योग्यता तथा आनन्द रूपी दो ध्येयों की प्राप्ति के लिए जिनके द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय मनोमालिन्य जो कि युद्ध का कारण होती हैं, तथा व्यक्तिगत कष्ट और आपत्तियाँ दूर हो सकेंगी। तीन अखिल भारतीय संस्थाओं का शीघ्र ही निर्माण होना चाहिए। प्रथम तो एक अखिल भारतीय मनोवैज्ञानिक परिषद स्थापित की जाय जिसके सदस्य अधिकारी वर्ग तथा विषेश कर वे लोग हों जिनको मजदूरों से काम लेना रहता है। यह विशेषज्ञ साधारण कार्यों का संचालन करें। इसके अतिरिक्त एक अखिल भारतीय मनोवैज्ञानिक संस्था स्थापित की जाय जिसमें केवल विशेषज्ञ ही हों जो कि व्यवहारिक अथवा प्रयोगात्मक क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक अनुसन्धान अपनी अध्यक्षता में करवा सकें। तीसरी और अन्तिम एक अखिल भारतीय मनोवैज्ञानिक तथा मनोविश्लेषणात्मक समिति की उपस्थिति आवश्यक है, जिसमें (Field works) फील्ड वर्क्स हों जो कि वृहत रूप में मनोवैज्ञानिक निरीक्षण तथा मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य-गृहों में रोगियों को भरती कर सकें।

अन्त में आत्मनिष्ठा का (Self-realisation) का ध्येय ही बाकी रह जाता है। यह एक व्यक्तिगत सम्बन्ध है और सार्वजनिक रूप में इसका प्रयोग नहीं हो सकता है। फिर भी यदि समाज में उच्च स्थान प्राप्त जनता के मुखिया इस ध्येय की प्राप्ति के लिए दत्तचित्त हो जायें तो और लोग शीघ्र ही उनका अनुकरण करने लगेंगे। आत्मनिष्ठा का मार्ग हमारी स्मृतियों में निर्धारित है। प्रथम तो सत्य का मनन होना चाहिए तत्पश्चात् उस सत्य का साधारण व्यवहारिक जीवन की कसौटी पर निरीक्षण होना चाहिये और अन्त में इसी के द्वारा पर-ब्रह्म की प्राप्ति होगी। वास्तव में यही सर्वश्रेष्ठ विज्ञान की सर्वोत्तम सीख है।

करांची साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में विज्ञान विभाग के सभापति श्रीयुत् चन्द्रशेखर वाजपेई जी एम०एस-सी० का भाषण

प्यारे भाइयो और बहिनो,

आज मैं अपना अहोभाग्य समझता हूँ कि मुझे विज्ञान परिषद् के कार्य-संचालन करने का अवसर प्रदान किया गया है। विज्ञान परिषद् का सभापति निर्वाचित्त कर आप महानुभावों ने मेरा बड़ा सम्मान किया है जिसका अनुभव मैं हृदय से कर रहा हूँ। मैं इस सम्मान के लिये हिन्दी भाषाभाषी विशिष्ट जनता तथा उनके प्रतिनिधि रूप आप लोगों को हृदय-तल से धन्यवाद देता हूँ। यदि मैं यह कहने का साहस करूँ कि मैं सभापति-पद के लिये अयोग्य हूँ, तो आप तथा हिन्दी भाषाभाषी जनता के निर्वाचन की क्षमता पर परोक्ष रीत से लांच्छन आता है। सूर्य के प्रकाश के अभाव में आप देशी मिट्टी के चिराग़ ही से काम चलाना चाहते हैं, इससे जहाँ एक ओर आपकी दूरदर्शिता तथा उदारता का परिचय मिलता है, वहाँ दूसरी ओर मुझ जैसे हिन्दी के सेवक को प्रोत्साहन प्राप्त होता है। अवसर-प्रदान तथा आदर भाव के लिये मैं हिन्दी भाषा-भाषी जनता का आभारी हूँ। एतदर्थ मैं हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

विज्ञान-युग

जिस विज्ञान का प्रसार संसार में हुआ है और जिसकी करामातों तथा उपकारों की संख्या अगणित है, उसका प्रादुर्भाव कुछ अंशों में कीमियागीरी के ऊपर अवलम्बित है। इतिहास से मालूम होता है कि प्राचीन समय में कुछ लोगों में यह धुन सवार थी कि किस प्रकार निम्न-श्रेणी के धातुओं को जैसे ताँबा, लोहा, सीसा आदि, उत्तम कोटि के धातुओं (जैसे सोना, चाँदी आदि) में परिणत कर दिया जाय। पारस पत्थर की खोज में वे दिन रात लगे रहते थे। 'पारस गुन अवगुन न चितवै कंचन करत खरो' का उद्देश्य उनके सामने रहता था। इसी प्रकार के प्रयत्न योरप में अनुमानतः दो-ढाई सौ वर्ष पहले बड़े ज़ोरों से जारी थे। ऐसे तथाकथित वैज्ञानिकों को काल्पनिक पारस पत्थर तो नहीं मिल सका, पर उनके प्रयत्नों से वर्तमान विज्ञान का प्रादुर्भाव अवश्य हो गया। उनकी खोज ही ने रसायनशास्त्र की नींव डाली। नाना प्रकार के तत्त्वों का आविष्कार हुआ। अन्त में सचमुच ही पारस पत्थर इन वैज्ञानिकों के हाथ लग गया। विज्ञान विकास के पथ पर अग्रसर होता चला गया। विज्ञान ने मानवीय समाज के सभी क्षेत्रों पर अपनी छाप लगा दी है। अतः वर्तमान युग को वैज्ञानिक युग कहने में कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

विज्ञान के चहुँतरफ़ा विकास ने हमारे जीवन की पृष्ठभूमि को ही बदल दिया है। गत तीस-पैंतीस वर्षों में विज्ञान की उन्नति आश्चर्यजनक हुई है—यह तथ्य प्रत्यक्ष है।

विज्ञान के प्रसार से व्यवसायियों ने बड़ा लाभ उठाया है। कल-कारखानों की स्थापना से उद्योग-धन्धों में बड़ी उन्नति हुई है। नवीनतम साधन-विधियों का आविष्कार होता चला जा रहा है। संसार-व्यापी जो युद्ध अभी कुछ एक-दो वर्ष पहले समाप्त हुआ है, उसके पहले प्रचलित यन्त्र आज-कल पुराने समझे जा रहे हैं। उनके स्थान को लेने के लिये जिन यन्त्रों का निर्माण किया गया है वे मानसिक दक्षता और प्रतिभा के नवीनतम उदाहरण हैं। इन यन्त्रों से सर्व-साधारण को भी अनेकों लाभ मिले हैं किन्तु अधिक लाभ पूँजी-पतियों के ही हाथ लगा है।

विज्ञान का दूसरा पहलू

उपरोक्त विवरण से विज्ञान के उज्ज्वल पक्ष का पता लगता है, इसका 'कृष्ण पक्ष' भी है। गत विश्वव्यापी युद्ध ने इस कृष्ण पक्ष से बड़ी सहायता ली थी—या यों कहिये कि इस युद्ध ने विज्ञान को कलङ्कित कर दिया है। नये नये नये प्रकार के विध्वंसकारी अस्त्रों का प्रयोग इस युद्ध में किया गया था। जितने राष्ट्र इस युद्ध में सम्मिलित थे, उनके बड़े बड़े वैज्ञानिक नये विनाशकारी अस्त्र-शस्त्रों के आविष्कार में तल्लीन थे। परमाणुबम इन्हीं प्रयत्नों का फल है। जब एकायक पहला परमाणुबम १९४५ के अगस्त मास में जापान के हीरोशीमा नगर पर गिराया गया, तो

लोगों को इसके प्रलयङ्कारी प्रभाव का कुछ अनुमान हो गया। ऐसा मालूम होने लगा कि महाभारत और रामायण वर्णित ब्रह्मास्त्र इस पृथिवी पर रहने वाले मनुष्यों के हाथ लग गया है। पृथिवी के विनाश में अब किसी प्रकार की देरी बाकी नहीं रह गई है। जापान के एक कोने से दूसरे कोने तक 'त्राहि' 'त्राहि' के शब्द सुनाई पड़ने लगे—यहाँ तक कि जापान ने अस्त्र डाल दिया और वह संधि करने के लिये तैयार हो गया। अब भी परमाणुबम से समस्त संसार में आतङ्क छाया हुआ है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से सशंकित है कि नहीं मालूम कब वह ब्रह्मास्त्र उसके विरुद्ध प्रयोग में लाया जाय।

कुछ लोग विज्ञान के इस विनाशकारी पहलू को लक्ष में रख कर विज्ञान को बदनाम कर रहे हैं। वे समझते हैं कि संसार में जितने क्लेश और दुख मनुष्यों को भुगतने पड़ रहे हैं, उनका दोष विज्ञान के ही ऊपर आरोपित होना चाहिये। कुछ अंशों में यह बात सच ही है। पर संसार में जितनी वस्तुएँ हैं, उनमें दो पहलू पाये जाते हैं—एक अच्छा, तो दूसरा खराब। द्वन्द्व भाव का राज्य सर्वत्र ही फैला हुआ है। शुभ्र ज्योत्स्ना पूर्ण चन्द्रमा में भी कलंक है। किन्हीं किन्हीं दशाओं में भोजन भी विष हो जाता है और मनुष्यों की मृत्यु घंटों हो जाती है। बिजली से अनेक लाभ मिलते हैं, पर यदि उसका प्रयोग ठीक प्रकार से न किया जाय तो वही मृत्यु का कारण हो सकती है। जिस पानी के बिना हमारे जीवन के कार्य नहीं चल सकते हैं, उसी में डूब कर बहुधा लोग मर जाते हैं। पर इन दुखद और क्लेशकारी परिणामों से हम बिजली और जल को कोस नहीं सकते हैं। इसी प्रकार यदि विज्ञान का दुरुपयोग किया जाय और उससे संसार में दुख का संचार किया जाय तो विज्ञान को बलिवेदी पर नहीं चढ़ाना चाहिए। विज्ञान वेत्ता भी राष्ट्रीयता के संकुचित दायरे में फँसे हुए हैं। विजय प्राप्त करने की भावना से प्रेरित होकर युद्ध के समय उन्होंने विषैली गैसों और परमाणुबम का आविष्कार किया। युद्ध का कारण विज्ञान नहीं है; राष्ट्रों के कुत्सित विचार, पारस्परिक द्वेषभाव और स्पर्धा आदि युद्ध के कारण होते हैं। इनके ऊपर नियन्त्रण रखने की आवश्यकता है। हमको निराश नहीं होना चाहिये। सृष्टि बहुत बड़ी है। क्लेश और दुखों के बाद सुख और शान्ति का राज्य भी कायम होगा। विज्ञान-वेत्ता स्वयम् विध्वंसकारी अस्त्र-शस्त्रों के भविष्य में निकाल लेने में समर्थ होंगे।

विज्ञान की सक्रियता

जगत के भौतिक क्षेत्र में ही विज्ञान की सक्रियता समाप्त नहीं होती है। आधुनिक विज्ञान ने अन्य युगों की अपेक्षा हमारे जीवन को बिलकुल भिन्न बना दिया है। नये नये आविष्कारों तथा यन्त्रों के निर्माण से हमारे रहन-सहन के ढंगों में महान परिवर्तन हो गये हैं; पर इन परिवर्तनों से कहीं अधिक बड़े परिवर्तन हमारे जीवन के अन्य विभागों में हुये हैं। डेढ़-दो सौ वर्ष पूर्व जब आधुनिक विज्ञान की चर्चा आरम्भ हुई, तो सबसे पहिले उसकी मुठ-भेड़ धर्म (या यों कहिये मज़हब) से हुई। बाइबिल, कुरान तथा अन्य धार्मिक पुस्तकों में लिखा है कि पृथ्वी चिपटी है और सूर्य उसके चारों ओर परिक्रमा करता है; पर विज्ञान की शिक्षा इसके विरुद्ध थी। मज़हबी विचारों के विरुद्ध प्रचार करने के कारण गेलिलियो को कारावास की यातनायें सहन करनी पड़ी और ब्रूनो की हत्या कर दी गई। इस्लाम मज़हब के अनुयायियों में से भी कुछ वैज्ञानिकों को अपने वैज्ञानिक विचारों के कारण क्लेश सहन करने पड़े थे।

मज़हबी चमत्कारों तथा अलौकिक घटनाओं की तीव्र आलोचना की जाने लगी। सृष्टिक्रम के विरुद्ध होने के कारण उनको अग्राह्य बतलाया जाने लगा। विकासवाद ने मज़हबी किले को बिलकुल खोखला कर दिया। सारांश यह है कि विज्ञान धर्म का घोर विरोधी कहा जाने लगा। वैज्ञानिक विचारों को नास्तिक समझा जाता था। विज्ञान के निरन्तर आन्दोलन के कारण पादरी मुल्ला तथा पंडितों ने अपने अपने सिद्धान्तों को नये रूप में उपस्थित करना आरम्भ कर दिया है।

धर्म तथा विज्ञान में समन्वय स्थापित करने के जो प्रयत्न धर्माधिकारियों की ओर से पल्लवित किये गये और किये जा रहे हैं, उनमें मनोरंजकता के साथ अवसरवादित्व की मात्रा अधिक है। बाइबिल में लिखा है कि ईश्वर ने सृष्टि की उत्पत्ति छः दिन में की, तदन्तर सातवें दिन उसने

आराम किया। समन्वय करने वालों की ओर से कहा जा रहा है कि यहाँ पर छः दिन का अभिप्राय छः युगों से है। नवीन भाष्य करने में अलंकारों की सहायता ली जा रही है। इस प्रकार वैज्ञानिक विरोध को शांत किया जा रहा है। धार्मिक मन्तव्यों की भित्ति विश्वास पर अवलम्बित है, अतः विज्ञान के तर्क और प्रत्यक्ष प्रमाण का सामना करने में उनको अलंकार का सहारा लेना पड़ता है।

राजनीति के क्षेत्र में भी विज्ञान का प्रभाव दिखलाई पड़ता है। राजनीति में मनुष्यों की समानता का सिद्धान्त बड़े पैमाने पर प्रचलित करने का श्रेय विज्ञान को ही मिलेगा: क्योंकि विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि सब मनुष्यों में एक ही प्रकार का खून बहता है। उनके रक्त का ताप-क्रम भी लगभग बराबर होता है। इस प्रकार कुलीनता के भाव का निराकरण हो गया है। लोक संग्रह का आधार मनुष्यों की समानता पर पूर्ण रूप से अवलम्बित हो गया है।

शिक्षा की जटिल समस्याओं के हल करने में भी विज्ञान से पूरी सहायता मिली है। बुनियादी शिक्षा का आधार विज्ञान के ऊपर पूर्ण रूप से अवलम्बित है। इस प्रकार शिक्षण व्यवस्था में व्यवहारिक विज्ञान पड़ा ऊँचा है। उद्योग-धन्धों की पढ़ाई बुनियादी शिक्षा का एक मुख्य अंग है। कौन कौन फसलें किस समय बोई जावें? उनमें किस प्रकार का खाद दिया जावे? पौदों की जड़ें कैसी होती हैं? उनके पत्ते, फल तथा फूल किस प्रकार के होते हैं? इन सब बातों की जानकारी प्राप्त करने में व्यावहारिक विज्ञान की बड़ी आवश्यकता है।

आहार शास्त्र के पुराने विचारों में भी विज्ञान की बदौलत क्रान्ति आ गई है। प्रकृति के समीप आने की शिक्षा विज्ञान दे रहा है। आहार शास्त्र में विटमिन का ज्ञान रखना बड़ा आवश्यक हो गया है। बिना चोकर निकाले हुये सम्पूर्ण आटे की रोटी बनानी चाहिये—यही स्वास्थ्य-दायक भोजन हो सकता है। चोकर निकालने की प्रथा का प्रचार बढ़ रहा था, उसके रोकने का श्रेय विज्ञान को मिलना चाहिये। मैदा के मुकाबिले में आटा लाभदायक होता है; पर झूठे विचारों के जाल में फँसे हुये लोग (शिक्षित विशेष कर) पीछे मैदा में चोकर मिला देते हैं। आहार के मुख्य मुख्य भोज्य पदार्थों में किन किन तत्वों का किस मात्रा में सम्मिश्रण होना चाहिये, इसका पूरा विवरण विज्ञान से हमको मिल गया है। मैदा के बनाने में गेहूँ का जो आवरण और अंश निकाल दिया जाता है उसमें विटामिन की प्रचुर मात्रा, लोहा आदि तत्व पाये जाते हैं जिनका आहार में होना बहुत ही आवश्यक है।

नीतिशास्त्र में सत्यासत्य, कर्त्तव्याकर्त्तव्य आदि विषयों की विवेचना की जाती है। व्यापक अर्थ में धर्म का अंग नीतिशास्त्र है, पर यदि नीतिशास्त्र को पृथक मान लिया जाय जो नास्तिकों को भी स्वीकार है, तो क्या नीतिशास्त्र के ऊपर भी विज्ञान का प्रभाव पड़ा है? मज़हबी चमत्कारों और अलौकिक घटनाओं की तीव्र आलोचना विज्ञान ने की। वे सृष्टिक्रम के विरुद्ध हैं, इसलिये वैज्ञानिक पद्धति के अनुकूल वे त्याज्य हैं। इन चमत्कारों का आधार अंधविश्वास है, अतः विज्ञान विश्वास का ही मूलोच्छेदन करा रहा है। विश्वास को आचार में परिणत नहीं कर सकते हैं। ऐसे विश्वासों के प्रति हम उपेक्षा भाव भी रख सकते हैं और निष्क्रिय भी हो सकते हैं। नीतिशास्त्र तो सक्रिय है। कुछ लोग यह समझते रहे हैं कि विज्ञान उदासीन होने के कारण नीतिशास्त्र में हस्तक्षेप नहीं करता है; पर ऐसी स्थिति नहीं है। विश्लेषणों द्वारा विज्ञान ने यह निश्चित कर दिया है कि मनुष्य के आहार में कर्बोज़, प्रोटीन आदि तत्व होने चाहिये। प्रोटीन की प्राप्ति पशुओं के माँस, दाल, बादाम, पिश्ता आदि से होती है। मृत्यु के भय से शरीर में 'टाकज़िन' की उत्पत्ति होती है, अतः जानवरों के मांस में यह 'टाकज़िन' वर्तमान रहता है और वह स्वास्थ्य के लिये हानिकर होता है। इस दृष्टि से आहार में मांस को सम्मिलित करना अनुचित मानना चाहिये।

एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये—इसकी विवेचना नीतिशास्त्र में की जाती है। यदि एक मनुष्य एक बालक को पीटता है, तो वह नीतिशास्त्र की दृष्टि से दोषी माना जाता है; पर यदि वही व्यक्ति दूध में गन्दी चीज़ें मिला देता है और इस मिश्रण को वह शुद्ध दूध के नाम से बेचता है, तो भी वह सर्वसाधारण की दृष्टि में उतना दोषी नहीं ठहराया जाता है

जितना दोषी बालक के मारने वाले को समझा जाता है। गन्दे दूध के कारण सैकड़ों शिशुओं की मृत्यु हो सकती है। नीतिशास्त्र ऐसी बातों की ओर उदासीन रहता है; पर विज्ञान ने नीतिशास्त्र के क्षेत्र को बहुत विस्तृत कर दिया है। अभी तक नीतिशास्त्र व्यक्तियों के आचार-व्यवहार की ओर ध्यान देता चला आ रहा था; पर विज्ञान के सम्पर्क से नीतिशास्त्र को 'सक्रिय समूह' की ओर बढ़ना पड़ा है।

विज्ञान और धर्म में भेद

यदि धर्म का व्यापक अर्थ लिया जाय तो उसमें लोक-कल्याण और सुख-प्राप्ति ही का लक्ष्य होता है—'परोपकार पुण्याय, पापाय परपीडनम्'। विज्ञान भी लोक कल्याण का इच्छुक है। क्लोरोफ़ार्म आदि के आविष्कार से डाक्टरों को 'आपरेशन' करने में बड़ी सुविधा मिल गई है, अन्यथा डाक्टरों के 'आपरेशन' से रोगी को महान कष्ट हुआ करता था। जहाँ तक लोक-कल्याण का सम्बन्ध है, धर्म और विज्ञान ऐहिक सुखों की प्राप्ति में समान कार्य कर रहे हैं; पर यह सम्भव हो सकता है कि प्रयोग में लाये गये साधनों में भेद हो जाय।

आधुनिक विज्ञान को गर्व है कि उसने प्रकृति के ऊपर सब प्रकार से विजय प्राप्त कर ली है। रामायण में वर्णन आता है कि रावण के अधीन वरुण, इन्द्र आदि देवता थे।

> 'रवि ससि पवन वरुन धनधारी।
> अगिन काल जम सब अधिकारी'॥
>
> —रामायण

इसी प्रकार विज्ञान का आधिपत्य वरुण, इन्द्र आदि देवताओं ने स्वीकार कर लिया है। सेवक के रूप में विद्युत आप के घर में विराजमान है। पानी की भाप से रेल के इञ्जन चलते हैं और जहाज़ समुद्र में दौड़ते-फिरते हैं। विज्ञान द्वारा मनुष्य ने प्रकृति को वशीभूत कर लिया है। प्रकृति के ऊपर विजय प्राप्त करने वाले वैज्ञानिक साधन प्रशंसा के पात्र हैं; पर धर्म ने प्रकृति के ऊपर विजय प्राप्त करने के निमित्त दूसरे प्रकार के साधनों का सहारा लिया है। विज्ञान के साधन बाह्य हैं; पर धर्म के साधन आन्तरिक हैं। भेद केवल इतना ही है। रोगों से मुक्त होने के अभिप्राय से मनुष्य अपने शरीर को ब्रह्मचर्य तथा संयम से इतना कठोर बना सकता है कि उसको वैद्यों तथा डाक्टरों की शरण में जाने की आवश्यकता ही न पड़े। इसके विपरीत मनुष्य अपने शरीर को इतना सुकुमार बना सकता है कि वह रोगों का शिकार होता रहे और डाक्टरों की शरण लेनी पड़े। डाक्टरों को रोगों के निवारण के निमित्त नई नई दवाइयाँ निकालनी पड़ेंगी, सब प्रकार से सुसज्जित अस्पतालों की स्थापना भी सभ्यता का एक मुख्य अंग हो जायगा। मनुष्य अपने शरीर को इतना सुदृढ़ बना सकता है कि शीत से बचने के लिये उसे वस्त्रों को आवश्यकता न मालूम पड़े अथवा कम से कम वस्त्रों की आवश्यकता मालूम हो। ऐसी दशा में वस्त्र के उत्पादन के लिये कल-कारखानों के खोलने की आवश्यकता ही न उत्पन्न हो। आन्तरिक शक्तियों की की सबलता मनुष्य को प्रकृतिजन्य शीतोष्ण प्रभावों से बचा सकती है। इस प्रकार मनुष्य प्रकृति के ऊपर विजय प्राप्त करने का अधिकारी समझा जा सकता है। प्रकृति के ऊपर विजय प्राप्त करने के साधनों के सम्बन्ध में प्राचीन शास्त्रकारों के मत का निचोड़ यह है कि धर्म तो निवृत्ति मार्ग का अनुयायी है और विज्ञान प्रवृत्ति मार्ग पर चलने वाला है।

सृष्टिक्रम के विरुद्ध होने के कारण चमत्कार तथा अलौकिक विभूतियाँ विज्ञान को मान्य नहीं हैं। उनका आधार विश्वास है; पर विज्ञान में भी चमत्कार उदय हो गये हैं। सम्प्रति इस जगत में बन्दरों से मनुष्य का विकास बन्द है। हज़ारों वर्ष पूर्व किसी समय इस पृथ्वी पर ऐसा चमत्कारिक विकास हुआ होगा—ऐसा विज्ञान का मत है। इस समय नदियों, पहाड़ों आदि की उत्पत्ति नहीं हो रही है। वैज्ञानिक चमत्कारों के ये ज्वलन्त उदाहरण हैं। इन द्वारों से विज्ञान में विश्वास का प्रवेश हो रहा है। विश्वास की दृष्टि से विज्ञान तथा धर्म एक ही धरातल पर हो गये हैं। धर्म में तर्क का क्षेत्र बहुत ही सीमित है; पर विज्ञान में तर्क को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। विज्ञान में तर्क और विश्वास एक दूसरे के सहायक हैं।

विज्ञान और दर्शन

जिस विज्ञान की चर्चा मैंने अभी तक की है, वह आधुनिक है, तो भी उसके प्रतिपादित सिद्धान्त सार्वभौतिक हैं। इस विज्ञान के द्वारा जीवन में महान परिवर्तन हुये हैं। उनका उल्लेख यथास्थान पर किया जा चुका है। कुछ परिवर्तन तो मनुष्य के लिये बड़े हितकारी सिद्ध हुये हैं, पर कुछ भयंकर होते हैं। वैज्ञानिक तो जिज्ञासा-वृत्ति से प्रेरित होकर घोर तपस्या करता है। वह समुद्र को मथ कर अमृत और विष दोनों ही को निकालता है। यदि कुछ आविष्कार समाज के लिये विध्वंसकारी सिद्ध हुये हैं, तो इस वैज्ञानिक का दोष नहीं है। वह तो नैतिक मर्य्यादा का उल्लंघन नहीं करना चाहता है, पर मनुष्य की कुत्सित शोषणप्रवृत्ति, पद-लोलुपता, ईर्ष्या तथा द्वेष कुछ अन्वेषकों को बाध्य करते हैं कि वे वैज्ञानिक आविष्कारों का दुरुपयोग करें। सच्चा वैज्ञानिक तो वह है जो सत्य की खोज में निष्पक्ष होकर लगा रहे। वह तो तापसिक जीवन व्यतीत करता है। दूसरे ही मनुष्य इसके आविष्कारों से अनुचित लाभ उठाते हैं। सच्चा वैज्ञानिक तो निष्पक्ष होकर निष्काम भाव से अपने कार्य में संलग्न रहता है।

कुछ समय पूर्व वैज्ञानिकों की यह धारणा हो रही थी कि कि वे भौतिकवाद को धर्म के स्थान पर आसीन कर देंगे। तर्क ने ही उनको ऐसा साहसी बना दिया था; पर अब वे ही वैज्ञानिक विश्वास के दामन को पकड़े हुये नज़र आते हैं। पहिले तो वे यह ख्याल करते थे कि विश्वास का जगत सारहीन होता है। वे तर्क ही की दुहाई दे रहे थे; पर उनका भौतिकवाद उस मंजिल तक पहुँच गया है जहाँ तक तर्क की पहुँच थी। विश्वास की सहायता से विज्ञान को विवश होकर कुछ सिद्धान्त पल्लवित करने पड़े हैं। यहीं पर विज्ञान और दर्शन का संगम हो जाता है और जो भेद अभी तक विज्ञान तथा दर्शन में माना जाता था, वह भी मिट सा गया है। यद्यपि विज्ञान के सिद्धान्तों में परिवर्त्तनशीलता की गुञ्जाइश हमेशा बनी रहती है—यह ध्रुव सत्य है, तो भी वह निस्संकोच भाव से कहा जा सकता है कि वैज्ञानिक पद्धति की मर्यादा कहीं न कहीं निश्चित करनी पड़ेगी। विज्ञान पिछले कुछ वर्षों से अन्तिम सत्य के पथ पर अग्रसर हो रहा है। इस प्रकार दर्शन और विज्ञान को पृथक करने वाली लकीर मिटसी गई है। विज्ञान तथाकथित अन्तिम सत्य की धरोहर को दर्शन के हवाले कर रहा है। विज्ञान अपनी निर्बलता का अनुभव कर रहा है। वह मन और आत्मा के गूढ़तम रहस्यों का पता बिलकुल नहीं लगा सका है। इस दिशा में विज्ञान का पराजय हुआ है। वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में मन और आत्मा की गूढ़तम तथा रहस्यमय शक्तियों का अनुसन्धान नहीं किया जा सका है।

विज्ञान अभी अन्तिम सत्य तक नहीं पहुँचा सका है। विज्ञान के विकास में समय-समय पर सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं; पर कुछ समय के बाद उनकी सारहीनता प्रकट हो जाने पर वे त्याग दिये जाते थे। कुछ दिनों तक भौतिकविज्ञान के परमाणुवाद का बोलबाला रहा; पर डार्विन, हक्सले आदि वैज्ञानिक विचारकों ने सिद्ध कर दिया कि परमाणुवाद के मानने में बड़े दोष आते हैं; उनकी विचारधारा के अनुकूल गुणविकासवाद ही विज्ञान की चरम सीमा है। सांख्य दर्शन तथा वेदान्त भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं। गीता में भी संसारोत्पत्ति का मुख्य कारण गुणविकासवाद ही कहा गया है। जड़ प्रकृति को स्वयंकर्त्री और स्वयंभुवो नहीं माना जा सकता है। परमाणुवाद के अनुसार प्रकृति को परमाणुओं का पुंज माना गया था; पर अब ऐसा नहीं मानते हैं। कुछ दिनों तरंगवाद तथा कणवाद भी प्रचालित रहे; पर अब इस समय क्वन्तमवाद की तूती बोल रही है। नवीन क्वन्तमवाद ने तरंगवाद तथा कणवाद में मेल कर दिया है। यांत्रिक विज्ञान तथा क्वन्तमभौतिकविज्ञान संख्या शास्त्र की विधियों को काम में लाते हैं।

आधुनिक भौतिक विज्ञान के कुछ प्रधान कण ये हैं:—इलक्ट्रन, पोज़ीट्रन, प्रोटन, निव्ट्रन, आदि। इनसे सब द्रव्य बने हैं। आधुनिक वैज्ञानिक विचारधारा के अनुसार इलक्ट्रन और पोज़ीट्रन दोनों ही में शक्ति का समाहार अत्यधिक है। कुछ वैज्ञानिकों का यह विश्वास है कि प्रकृति सम्बन्धी सब समस्यायें क्वन्तमवाद और सा-

पेक्षतावाद के सहयोग से सुलझाई जा सकती हैं; किन्तु विज्ञान ने अभी तक इस दिशा में बहुत कम काम किया है क्योंकि विज्ञान को अपनी सीमाओं का ज्ञान हो गया है। वैज्ञानिक जिज्ञासावृत्ति से सब प्राकृतिक घटनाओं को समझना कुछ आसान नहीं मालूम हो रहा है। जिन घटनाओं का निरीक्षण वैज्ञानिक कर सकते हैं, उनके सम्बन्ध में ही वैज्ञानिक चर्चा हो सकता है। शेष घटनाओं का हल दर्शनशास्त्र के तर्क और कल्पना की सहायता से ही निकल सकता है।

भौतिक विज्ञान ने जगत की सृष्टि के ऊपर अच्छा प्रकाश डाला है। प्रकृति से जगत की सृष्टि होती है और वह शक्ति का पुंज है। प्रकृति और शक्ति में कोई भेद नहीं रह गया है। प्रकृति और शक्ति अन्त में एक हो हो जाती हैं। वेदान्त शास्त्र का यही निचोड़ है; पर अभी तक विज्ञान यह नहीं सिद्ध कर सका है कि वह शक्ति चेतन है अथवा जड़। सम्भव है कि कुछ दिनों में इसका रहस्य भी प्रकट हो जाय। इसी कोटि के एक दूसरे वैज्ञानिक सिद्धान्त ने धर्म के गौरव को बढ़ा दिया है। अणुजीव खोजकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि जीवित पदार्थ ही जीवित पदार्थ को उत्पन्न कर सकता है। वैज्ञानिक चमत्कार को दृष्टि में रख कर हम यह सोच सकते हैं कि सृष्टिविकास के किसी काल में जीवित पदार्थ की उत्पत्ति जड़ पदार्थ से हो गई हो।

विज्ञान और साहित्य

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तत्वावधान में विज्ञान परिषद् का यह अधिवेशन हो रहा है। अतः यह आवश्यक है कि हम जान लें कि हिन्दी साहित्य के ऊपर विज्ञान का क्या प्रभाव पड़ा है। यह तो सम्भव नहीं है कि विज्ञान के प्रभाव से साहित्य अछूता रह गया होगा, क्योंकि प्रकृति और साहित्य का घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। प्राकृतिक दृश्यों तथा चित्रों का वर्णन करना साहित्य का एक मुख्य अंग होता है। प्रकृति की अभिव्यंजना ही से साहित्य को तृप्ति मिलती है।

विज्ञान बुद्धिवाद का पक्षपाती है; साहित्य हृदयवाद का अनुयायी है। पहिले का सम्बन्ध बुद्धि वैभव के जगत से है और दूसरे का जगत भावना और कल्पना के ऊपर प्रतिष्ठिता है। पर इस कथन से यह अभिप्राय न निकालना चाहिये कि विज्ञान में हृदयवाद का प्रवेश नहीं है और न साहित्य में बुद्धिवाद का। विज्ञान में कल्पना तथा भावना से पूरा काम लिया जाता है, साहित्य में तर्क और बुद्धि की भी आवश्यकता पड़ती है। सैद्धान्तिक दृष्टि से इस प्रकार विज्ञान और साहित्य में यह समन्वय स्थापित किया जा सकता है, पर वास्तव में यह समन्वय इतना आसान नहीं है। विज्ञान और साहित्य का विरोध कुछ अवश्यम्भावी है। विज्ञान साहित्य की अनर्गल बातों की उपेक्षा नहीं कर सकता है। जिस विज्ञान ने धर्म जैसे गूढ़तम विषय से लोहा लिया हो वह भला साहित्य की बुद्धि-विरोधिनी बातों को कब छोड़ सकता है? विज्ञान और साहित्य के विरोध में कुछ सार है, इसमें किसी को भी सन्देह नहीं हो सकता है। बुद्धि और कल्पना में कुछ विरोध होना स्वभाविक है। बुद्धि किसी वस्तु को उसी समय ग्रहण करती है, जब वह तर्क की कसौटी पर पूरी उतर जाय।

विज्ञान और साहित्य की चर्चा करने में जो मेरा दृष्टिकोण है, सम्भवतः कुछ साहित्यकारों को वह रुचिकर न प्रतीत हो। मुझे स्वयम् अनुभव हो रहा है कि इस विषय की चर्चा करने का मैं पूर्ण रूप से अधिकारी नहीं हूँ, पर इतना मैं कह सकता हूँ कि मैं विज्ञान और साहित्य दोनों का भक्त हूँ। विज्ञान ने सत्य की खोज में अथक परिश्रम किया है। मानवीय ज्ञान की अधिकांश शाखाओं में उसने नियामकता स्थापित करने की चेष्टा की है। यदि इसी जिज्ञासावृत्ति तथा भावना से प्रवृत्त होकर वह साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश करता है, तो उसका यह प्रयास दुस्साहस तथा अनधिकारजन्य नहीं कहा जा सकता है। साहित्य की सेवा करने में भी वह अग्रसर होना चाहता है। 'कालिदास की निरंकुशता' के ऊपर लेख लिख कर जो सेवा हिन्दी के महारथी स्वर्गीय आचार्य पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने की थी, उसी तरह की सेवा, बड़े पैमाने पर, विज्ञान की ओर से हो सकती है। विज्ञान ही इस बात के कहने का अधिकारी हो सकता है कि जो भी देश-काल आदि के विरुद्ध विषयों का वर्णन करता है, वह लोकशास्त्र का व्यतिक्रम करके दोषी ठहरा जा सकता

है। साहित्यकारों को भी निरंकुश न होना चाहिये। 'कविसमय' तथा 'काव्य-समय' की अनर्गल बातों के प्रचार को रोकना ही अभीष्ट है। आधुनिक वैज्ञानिक युग में उनका कोई स्थान नहीं रह गया है। कवि प्रसिद्धियों के नाम पर बहुतसी ऊटपटांग बातों का जो प्रचार हिन्दी साहित्य में हुआ है और अब भी हो रहा है, उसके ऊपर नियंत्रण होना आवश्यक मालूम होता है। परम्परा की दुहाई देकर आलंकारिकों ने सत्य और वास्तविकता का गला घोंटा है। विज्ञान को यह मर्यादाहीन आचार सह्य नहीं है। संकीर्ण कवि प्रसिद्धियों के सम्बन्ध में पंडित हजारीप्रसाद द्विवेदी 'हिन्दी सहित्य की भूमिका' में लिखते हैं—

"पर्वतमात्र में सुवर्ण रत्न आदि का वर्णन; अन्धकार का मुष्टि-ग्राह्य और सूचीभेद्य होना; ज्योत्स्ना का घड़े में भर जाना; कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष में ज्योत्स्ना और अंधकार की समानता होते हुए भी पहले को तमोमय और दूसरे को चन्द्रिकामय वर्णन करना; शिव और चन्द्रमा का बहुकाल से जन्म होते हुये भी उन्हें बालरूप में वर्णन करना; समुद्रों की संख्या चार और सात दोनों वर्णन करना; भुवनों की संख्या तीन, सात और चौदह कह कर वर्णन करना; विद्याएँ अट्ठारह भी हैं और चार भी हैं और चौदह भी, यह स्वीकार करना और मकर का वर्णन केवल समुद्र में करना।" इन संकीर्ण कविप्रसिद्धियों से बड़ा मनोरंजन होता है! यदि 'विसाल' कवि प्रसिद्धियों का उल्लेख किया जाय, तो हँसते हँसते पेट फूल जायगा।

यद्यपि कवियों और साहित्कार को प्रकृति का निरीक्षक होना चाहिये (तभी उनका किया गया वर्णन ग्राह्य हो सकता है) तो भी यह अतिशयोक्ति नहीं होगी कि प्रायः वे प्राकृतिक निरीक्षण के 'कायल' नहीं हैं। कवियों को अभी तक यह नहीं मालूम हो सका है कि अशोक में फल होते हैं या नहीं। यद्यपि कोकिल, बसन्त, ग्रीष्म तथा वर्षा ऋतुओं में बोलते हैं, पर कवियों को यही मान्य है कि वे केवल वसन्त ही में बोलते हैं। 'नायक और नायिका' के वर्णन में मनोविज्ञान शास्त्र का का उल्लंघन कवियों ने किया है। शरीर-रचनाशास्त्र की शिक्षा से प्रायः सभी साहित्कार अनभिज्ञ मालूम होते हैं—विशेषकर उर्दू के कवि। 'दिल', हृदय, कलेजा, जिगर आदि एक ही अर्थ में प्रयुक्त किये जाते हैं। 'प्रेमानल' कभी शरीर को जला देता है, तो कभी वह शरीर को ठंडा भी कर देता है।

देशकाल की दृष्टि से अब लोकोक्तियों का निर्माण होना चाहिये। 'चिराग तले अँधेरा' के स्थान पर 'बल्ब के नीचे प्रकाश' (और कभी कभी ऊपर अँधेरा...) की लोकोक्ति होनी चाहिये।

हमारे आधुनिक कवियों तथा साहित्यकारों ने अभी तक वैज्ञानिक विषयों को बहुत कम अपनाया है। वे पुरानी लकीर के फकीर को पीटते चले जा रहे हैं। मैं यह कहता हूँ कि मेरे इस कथन में अपवाद नहीं है। 'निराला,' पंडित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आदि कुछ कवियों ने हिन्दी साहित्य में इस ओर कुछ कवितायें लिखी हैं जो वैज्ञानिक विषयों से सम्बन्ध रखती हैं। नवीन' जी की कृति— 'यह रहस्य-उद्घाटन-रतज'—नवीनता के लिये हुये है। इसमें दार्शनिकता के साथ वैज्ञानिकता का पुट है। इसमें भौतिक विज्ञान के नवीनतमवाद का विशद वर्णन है जो सम्भवतः वैज्ञानिक विकास की अन्तिम श्रृङ्खला भी हो सकती है—ऐसी सम्भावना की जा सकती है। विज्ञान जगत में जो एक लहर उठ रही है कि विज्ञान को अन्त में दर्शनशास्त्र की शरण में जाना पड़ेगा, उसको इस कविता में पूर्ण रूप से निबाहा है। मानव के दार्शनिक तथा वैज्ञानिक विकास का इतिहास में बड़ी सुन्दरता के साथ किया है। जो पारिभाषिक शब्द इसमें प्रयुक्त किये गये हैं, वे बड़े ही सार्थक मालूम होते हैं। उन शब्दों का आधार संस्कृत भाषा ही है। ऐसी कविताओं से विज्ञान साहित्य के प्रसार में बड़ी सहायता मिल सकती है।

विज्ञान और शिक्षा

पाश्चात्य देशों और इङ्गलैण्ड में एक समय वह था जब विज्ञान को पाठ्य विषयों में स्थान नहीं दिया जाता था। लोगों की धारणा उस समय यह थी कि विज्ञान से शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्त्ति नहीं होती है। इंगलैंड के प्रसिद्ध तत्ववेत्ता हर्बर्ट स्पेन्सर को यह श्रेयस प्राप्त है कि शिक्षणालयों की पाठ्य-प्रणाली में विज्ञान को स्थान दिया

गया। स्पेन्सर का यह मत है कि विज्ञान की शिक्षा जीवन में बहुत ही लाभदायिनी है और उसके उपयोग का क्षेत्र बहुत ही विशाल है। सब पाठ्य विषयों में उसने विज्ञान को अधिक प्रधानता तथा महत्त्व दिया है। अन्त में स्पेन्सर को सफलता प्राप्त हुई और विद्यालयों के पाठ्य विषयों में विज्ञान को सम्मिलित कर लिया गया। अतः भारतवर्ष में विज्ञान के शिक्षण के सम्बन्ध में कोई कठिनता उपस्थित नहीं हुई; पर यहाँ पर शिक्षा के माध्यम का प्रश्न बड़ा जटिल बना लिया था। छोटी छोटी कक्षाओं में भी अंग्रेज़ी भाषा द्वारा सभी विषयों की शिक्षा दी जाती थी; किन्तु अब वह समय आ गया है जब सभी विषयों की शिक्षा मातृ-भाषा के माध्यम द्वारा दी जायगी। भारतवर्ष के कुछ विश्वविद्यालयों ने स्वीकार कर लिया है कि सभी विषयों की पढ़ाई देशी भाषाओं के माध्यम द्वारा होगी। राष्ट्रीयता तथा हिन्दी भाषाभाषियों की संख्या की दृष्टि से देशीय भाषाओं में हिन्दी को प्रथम स्थान प्राप्त है। किन्तु हमारे देश के कुछ शिक्षा विशारदों को हिन्दी के माध्यम होने की क्षमता पर सन्देह है। क्या यह दासत्व मनोवृत्ति का द्योतक नहीं है?

हम देखते हैं कि हिन्दी में जटिल से जटिल दार्शनिक विषयों को व्यक्त किया जा रहा है। अन्य विषयों के ऊपर भी हिन्दी में पुस्तकें लिखी गई हैं तथा लिखी जा रही हैं। यदि आधुनिक शिक्षा प्रणाली के प्रवर्त्तनकाल के आरम्भ ही से हमारे अध्यापक सजग रहते, तो शिक्षा के माध्यम का प्रश्न बहुत वर्ष पूर्व ही हल हो गया होता। इस दिशा में विश्वविद्यालयों के प्रोफ़ेसर आदि पथ-प्रदर्शन का कार्य कर सकते थे। विज्ञान विषयक अंग्रेज़ी पुस्तकों को स्वयम् पढ़कर वे अपने छात्रों की पढ़ाई हिन्दी में कर सकते हैं। इस प्रकार की प्रणाली का अवलम्बन जापानियों ने उस समय किया था जब उनके देश में उनकी भाषा में वैज्ञानिक पुस्तकों का अभाव था। जब वैज्ञानिक पुस्तकें तैयार हो जायगी, तभी वे अपने छात्रों को विज्ञान शिक्षा देंगे—ऐसे विचार को उन्होंने अपने पास फटकने दिया। भारतवर्ष के विदेशी भाषा के माध्यम की चक्की में शिक्षक तथा छात्र दोनों ही पीसे जाते हैं; पर जापान जैसे समृद्धिशाली तथा उन्नतिशील देश में केवल एक शिक्षक को ही विदेशी भाषा के सीखने में समय लगाना पड़ता है। ऐसी पढ़ाई के कुछ वर्षों बाद जापानी भाषा में वैज्ञानिक शब्द संग्रह तैयार कर लिया गया और देशी भाषा के माध्यम द्वारा सब प्रकार की वैज्ञानिक शिक्षा दी जाने लगी। वह प्रणाली 'जापानी प्रणाली' के नाम से विख्यात हो गई। यह बड़े खेद की बात है कि हमारे देश में हमारे प्रोफ़ेसरों आदि ने ऐसी किसी प्रणाली का आश्रय नहीं लिया, अन्यथा यहाँ भी माध्यम की जटिल समस्या कभी हल हो गई होती। वैज्ञानिक पुस्तकों का निर्माण भी समय पाकर हो गया होता। वह ध्रुव सत्य है कि कुछ दिनों की पढ़ाई के बाद जो वैज्ञानिक पुस्तकें तैयार की जायँगी, वे उन पुस्तकों से लाख दर्जे अच्छी होंगी, जो देशी भाषा के माध्यम द्वारा की गई पढ़ाई के पूर्व लिख कर रख दी गई हों। ऐसी पुस्तकों की भाषा परिमार्जित तथा सार्थक होगी। पढ़ाई के समय अपने अनुभव द्वारा शिक्षक वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों का संग्रह भी कर सकते हैं। इन वैज्ञानिक शिक्षकों की एक संस्था स्थापित की जाय जिसके अधिवेशन समय-समय पर होते रहें और उनके परिश्रम का फल एक सूत्र में बंध जाय। मैं समझता हूँ और मेरा यह विश्वास है कि कुछ वर्षों के ऐसे परिश्रम से वैज्ञानिक ग्रन्थों का अभाव दूर हो जायगा।

पञ्चवर्षीय योजना

सम्प्रति भारतवर्ष में चारों तरफ योजनाओं धूम मची हुई है। राष्ट्रीय कामों के सम्पादन में नये जीवन की स्फूर्ति आ रही है। रूस देश में योजनाओं द्वारा बड़ा काम हुआ है। जो भी आशातीत उन्नति रूस देश ने राष्ट्रीय कामों में की है, वह इन्हीं योजनाओं का फल है। इस सम्बन्ध में भारतवर्ष को रूस देश से बहुत शिक्षा मिल सकती है। वैज्ञानिक शिक्षा के प्रसार में निश्चित योजना से बड़ा काम सिद्ध हो सकता है। विज्ञान परिषद् के पूर्व अधिवेशनों में निर्दिष्ट योजना के ऊपर काफी प्रकाश डाला जा चुका है। मैं योजना सम्बन्धी उन्हीं बातों के दुहराने का दोषी होकर भी यहाँ पर उसकी चर्चा करना चाहता हूँ। मन तो चाहता है कि मैं आपके सम्मुख दश-

वर्षीय योजना रक्खूं! पर समय को दृष्टि में रख कर भारतवर्ष की वर्तमान स्थिति में पंचवर्षीय योजना का मैं पक्षपाती हूँ।

(अ) विज्ञान की शिक्षा देने में जापान देश ने जिस प्रणाली का अवलम्बन किया है, उसको शिक्षालयों में पल्लवित किया जाय। लगातार दो वर्ष तक उस प्रणाली के अनुसार काम किया जाय। वैज्ञानिक शिक्षक विज्ञान की पढ़ाई में अँग्रज़ी पुस्तकों का सहारा लेंगे और इसके साथ पारिभाषिक शब्दों का संग्रह अपनी जानकारी के लिये वे करते जायँगे।

(आ) तीसरे वर्ष के प्रारम्भ में वैज्ञानिक शिक्षकों का एक वृहद् सम्मेलन किया जाय जिसमें विज्ञान की भिन्न भिन्न शाखाओं के अध्यापक अपनी अपनी समिति बना कर विचार परामर्श करेंगे। एक वर्ष के अन्दर पारिभाषिक शब्दों का संकलन समाप्त किया जा सकता है।

(इ) चौथे वर्ष उपरोक्त प्रकार से तैयार किये गये पारिभाषिक शब्दों की सहायता से सुबोध ग्रन्थ की रचना की जाय। इन ग्रन्थों में सौ पृष्ठ से अधिक न हों। इन ग्रन्थों का प्रचार सर्वसाधारण में तथा विद्यालयों में किया जाय।

(ई) पाँचवें वर्ष विज्ञान के विद्वान लेखकों से सरल हिन्दी में प्रामाणिक ग्रन्थ लिखवाये जायँ।

हिन्दी प्रान्तों सरकारें इस योजना के कार्य को अपने ऊपर ले सकती हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन को भी इस ओर कार्य करना चाहिये। साहित्य के व्यापक अर्थ में वैज्ञानिक साहित्य का समावेश साहित्य में हो जाता है। वैज्ञानिक साहित्य के अध्ययन के निमित्त सम्मेलन की ओर से एक विद्यालय खोला जाय जिसमें उपरोक्त योजना के अनुकूल विज्ञान की पढ़ाई हो। यदि पंचवर्षीय योजना उपयोग में लाई जाय, तो पाँच वर्ष के वर्ष के बाद हिन्दी में परिमार्जित वैज्ञानिक भाषा तथा पारिभाषिक शब्दों का प्रचार आसानी से हो जायगा।

पारिभाषिक शब्द

वैज्ञानिक साहित्य के संवर्धन में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, प्रयाग की हिन्दुस्तानी ऐकेडेमी, प्रयाग का विज्ञान परिषद्, की 'श्री सयाजी साहित्यमाला' आदि संस्थायें काम कर रही हैं। इसी दिशा में प्रयाग विश्वविद्यालय का भारतीय हिन्दी परिषद् तथा लाहौर निवासी डाक्टर रघुवीर लगे हुये हैं; पर इन संस्थाओं तथा व्यक्तियों के आगे वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों की जटिल समस्या उपस्थित है। ऐसे मूल शब्दों का संग्रह उपरोक्त योजना में वर्णित विधि के अनुसार आसानी से हो सकता है। इन मूल शब्दों में प्रत्यय आदि लगाने तथा व्याकरणीय परिवर्तन से नये रूपान्तर गढ़े जा सकते हैं।

आजकल चारों से यही आवाज़ आ रही है कि हिन्दी वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों की कमी (या यों कहिये 'अभाव') है। इस कारण विज्ञान की पढ़ाई का क्षेत्र परिमित तथा संकीर्ण है। इसमें सन्देह नहीं है कि इस कथन में सत्यता का अंश बहुत अधिक है; पर केवल पारिभाषिक शब्दों को ही वैज्ञानिक साहित्य के निर्माण की कुञ्जी समझना दूरदर्शिता का द्योतक नहीं है। आरम्भ में सरल वैज्ञानिक भाव की उत्पत्ति होनी चाहिए। वैज्ञानिक घटनाओं, प्रयोगों तथा विधियों की रूप-रेखा सरल हिन्दी में प्रस्तुत की जा सकती है। कुछ वर्षों के प्रयास के बाद भावबोधक वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों का संग्रह सम्भव हो जायगा। किसी भाषा के साहित्य के समझने में व्याकरण के ज्ञान की आवश्यकता मालूम होती है और इसी भाषा के व्याकरण के समझने में साहित्य का ज्ञान अपेक्षित होता है। उसी भाँति वैज्ञानिक भाषा तथा पारिभाषिक शब्दों का अन्यान्याश्रय है, किन्तु वैज्ञानिक भाषा का आगमन पहिले होना चाहिये। जब खेत तैयार हो जाता है, तभी उसमें बीज बोये जाते हैं। वैज्ञानिक भाषा के प्रचलित हो जाने पर पारिभाषिक शब्दों से वैज्ञानिक साहित्य को अलंकृत करना चाहिये।

हिन्दी, मरहठी, बंगाली, गुजराती आदि भाषाओं का आदि स्रोत संस्कृत है। भावात्मकता तथा प्रामाणिकता की दृष्टि से वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों के निर्माण में सब से पहिले संस्कृत शब्दों को 'तत्सम' तथा 'तद्भव' रूप में अपनाना चाहिये। प्रत्येक शब्द का सांस्कृतिक

इतिहास होता है। इतिहास को दृष्टि में रख कर हमको पारिभाषिक शब्द गढ़ना चाहिये। हमारे मत में जो भाव 'मन्दिर' शब्द के प्रयोग से आते हैं, 'टेम्पुल' शब्द कहने से उन भावों का प्रकाशन नहीं होता है। भारतवर्ष की संस्कृति की दृष्टि से 'मन्दिर' शब्द का प्रयोग सोलहो आने सार्थक है, चाहे ये दोनों शब्द पर्याय ही क्यों न हों। इस प्रकार पारिभाषिक शब्दों के निर्माण का मूल आधार संस्कृत और हिन्दी भाषा होनी चाहिये। इन शब्दों के रूपान्तर तैयार करने में हिन्दी भाषा के व्याकरण से पूरी सहायता लेनी चाहिये। अंग्रेज़ी के जो वैज्ञानिक हिन्दी शब्द में रूढ़ि हो गये हैं उनको अपनाने में कोई हानि नहीं है। अंग्रेज़ी के वैज्ञानिक शब्द कार्बोहाइड्रेट, आक्सिजन, नाइट्रोजन आदि हिन्दी में कर्बोज, ओषजन, नत्रजन आदि के रूप में प्रयुक्त किये जा रहे हैं, वे बहुत ही उपयुक्त मालूम होते हैं। इनको तद्भव कहने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

बहुधा लोग कहते हैं कि संस्कृत तथा अँग्रेज़ी के तत्सम तथा तद्भवों से निर्मित वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द बड़े क्लिष्ट होते हैं। इस शंका के सम्बन्ध में मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि यदि अँग्रेज़ी भाषा में लिखी गई कोई वैज्ञानिक पुस्तक विज्ञान से अनभिज्ञ किसी व्यक्ति को पढ़ने को दी जाय, तो वह भी पारिभाषिक शब्दों को क्लिष्ट ही समझेगा। साधारण नमक के लिये यदि वैज्ञा-शब्द 'सोडियम क्लोराइड' प्रयुक्त किया जाय, तो विज्ञान से अपरिचित कितने व्यक्ति इस शब्द को समझ सकेंगे? वैज्ञानिक विशुद्ध साहित्य में क्लिष्टता अवश्यम्भावी है। हाँ, प्रचार से ये ही क्लिष्ट शब्द सुबोध हो सकते हैं। गत तीन-चार वर्षों से भारतवर्ष में अन्न संकट के समय अँग्रेज़ी भाषा के शब्द, कन्ट्रोल, राशन, यूनिट, कोटा, आदि का इतना अधिक प्रचार हो गया है कि अशिक्षित जनता भी इनके अर्थों को हृदयङ्गम कर लेती है। इसी प्रकार कर्फ़्यू, असेम्बली आदि शब्दों का प्रचार भी हो गया है। ऐसे शब्दों के प्रयोग से हमको डरना नहीं चाहिये। इनके अपनाने में हिन्दी भाषा की उदारता प्रकट होगी। पर यदि गलत अर्थ में किसी शब्द का प्रचार हो गया हो, तो उसके छोड़ने में हमको मोह न होना चाहिये। मेरे कहने का तात्पर्य एक उदाहरण से बिलकुल स्पष्ट हो जायगा। हिन्दू विश्वविद्यालय में जब 'आर्ट' कालेज का निर्माण किया जा रहा था, तो अशिक्षित मज़दूर उसको 'आठ' कालेज के नाम पुकारते थे। जब साइंस' कालेज बनना आरम्भ हो गया, तो वे ही मज़दूर उसे 'नौ' कालेज कहने लगे क्योंकि आठ के बाद नौ संख्या होती है। यद्यपि 'नौ' शब्द सरल भी है, छोटा भी है और उसका अधिक प्रचार भी हो गया था पर तो भी हमें 'साइंस' का पर्याय 'नौ' को नहीं समझना चाहिये।

'ऐंग्लो हिन्दुस्तानी' स्कूलों में विज्ञान की पढ़ाई

आधुनिक शिक्षा-प्रणाली में विज्ञान की पढ़ाई के लिये जो पाठ्य पुस्तकें रखी गई हैं; उनकी शैली बड़ी विचित्र है। न तो तीतर हैं और न बटेर हैं। उनकी मिश्रित भाषा बड़ी दूषित है। रोमन अंकों का प्रयोग बहुत ही गर्हित है। इस विषय के ऊपर विज्ञान परिषद् के गत अधिवेशनों में काफी कहा जा चुका है। मैं केवल आप लोगों को ध्यान फिर से इस ओर आकृष्ट करना चाहता हूँ। 'फुट' शब्द का बहुवचन 'फीट' हिन्दी में बहुत खटकता है। इस प्रकार से लिखी गई पुस्तकों से हिन्दी का वैज्ञानिक साहित्य बहुत कलुषित हो रहा है। पाठ्य-क्रम से ऐसी पुस्तकों को निकाल देना हिन्दी के लिये हितकर होगा। सरकारी शिक्षा-विभाग को इस ओर ध्यान देना चाहिये। जब हिन्दी का माध्यम स्वीकृत किया जा चुका है, तो ऐसी पुस्तकों के चलन को बन्द कर देना ही अभीष्ट है।

प्रान्तीय भाषाओं का सहयोग

मद्रास प्रान्त की कुछ भाषाओं को छोड़ कर भारतवर्ष की अन्य भाषाओं का आधार में संस्कृत है—इसके मानने में अब किसी को भी आपत्ति नहीं। इन भाषाओं ने भी विज्ञान के प्रसार में बहुत काम किया है और अब भी वैज्ञानिक साहित्य का निर्माण किया जा रहा है। इसमें से कुछ एक भाषाओं का वैज्ञानिक साहित्य उन्नत अवस्था पर पहुँच गया है। प्रायः उनमें पारिभाषिक शब्दों का संकलन भी हो गया है। फलस्वरूप भारतवर्ष के

मानने वालों का सबसे पहिला कर्त्तव्य यह होना चाहिये कि इन भाषाओं तथा मद्रास प्रान्त की भाषाओं के वैज्ञानिक साहित्य को एक सूत्र में बाँधा जाय। सम्भव है कि ऐसा काम किया जा रहा हो, मुझे उसकी जानकारी न हो। इन भाषाओं तथा हिन्दी के कुछ वैज्ञानिक लेखकों तथा विद्वानों की एक समिति बनाई जाय जो पारिभाषिक शब्दों के संग्रह का कार्य करे। कुछ समय के बाद इस कार्यवाही का परिणाम होगा कि समस्त भारतवर्ष के लिये विज्ञान के प्रमाणिक पारिभाषिक शब्द तैयार हो जायँगे। प्रत्येक प्रान्त में वहाँ की भाषा को उन्नतिशील बनाने के लिये संस्थायें भी काम कर रही हैं। उन संस्थाओं के परामर्श तथा सहयोग से वैज्ञानिक साहित्य का निर्माण बड़ी सुगमता से किया जा सकता है।

अन्तिम निवेदन

मैं नहीं कह सकता कि विज्ञान जैसे क्लिष्ट विषय को सुबोध, बनाने में मुझे कहाँ तक सफलता मिली है और कहाँ तक इस प्रकार प्रस्तुत किया गया विषय आपको रुचिकर प्रतीत हुआ है। मुझे इस बात का कुछ कुछ आभास है कि विज्ञान परिषद के इस मंच से मैं कोई नई और मनोरंजन सामग्री आपके सम्मुख प्रस्तुत नहीं कर सका हूँ। जल तो एक ही है, पर इसके रखने के पात्र भिन्न भिन्न हो सकते हैं। पर मुझे इस बात का पूरा आभास है कि आपने धैर्य और सहिष्णुता के साथ मेरे भाषण को सुना है जिसके लिये मैं आपको हृदय-तल से धन्यवाद देता हूँ। त्रुटियों के लिये मैं आपसे क्षमा-प्रार्थी हूँ। मुझे पूर्ण आशा है कि आप विज्ञान परिषद के इस अधिवेशन के निश्चयों तथा मन्तव्यों को पूर्ण रूप से सफलीभूत बनाने की चेष्टा करेंगे।

भारतीय विज्ञान परिषद द्वारा रूसी वैज्ञानिकों का स्वागत

तथा

रूस की विज्ञान-एकेडेमी का शुभ सन्देश

भारतीय विज्ञान परिषद की ओर से रूस के वैज्ञानिकों के स्वागत के उपलक्ष्य में एक पार्टी दी गई जिसमें रूस की विज्ञान-एकेडेमी के उपाध्यक्ष प्रो॰ वी॰ पी॰ वोलगिन ने भारतीय विज्ञान कांग्रेस के प्रति एकडेमी की ओर से श्रद्धांजलि अर्पित की। इसका उत्तर देते हुए पंडित जवाहरलाल नेहरू ने यह आश्वासन दिया और यह आशा प्रकट की कि विज्ञान व राजनीति के क्षेत्र में रूस व भारत में सम्पर्क बढ़ेगा तथा दोनों राष्ट्र मानवीय कार्यों में भी एक दूसरे के साथ मिल कर कार्य करेंगे।

प्रो॰ वोलगिन ने अपना भाषण रूसी भाषा में दिया। उसका उल्था एक रूसी महिला ने अंग्रेजी में किया। नेहरूजी ने पहिले हिन्दुस्तानी और बाद में अंग्रेजी में भाषण दिया। उक्त महिला ने उनके भाषण का रूसी भाषा में उल्था किया।

प्रो॰ वोलगिन ने अपने भाषण में कहा : "आज रूस की विज्ञान-एकेडेमी की ओर से भारत के वैज्ञानिकों के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है। एकेडेमी को भारतीय विज्ञान परिषद में शामिल होने का निमन्त्रण देने पर हम विज्ञान-कांग्रेस और खास कर नेहरूजी के आभारी हैं। एकेडेमी भारत के वैज्ञानिकों के नाम से भली भाँति परिचित है। इसी तरह रूस के अनेक वैज्ञानिकों के नाम से भारत भी परिचित होगा। लेकिन यह पहिला मौका है, जब कि रूस की विज्ञान एकेडेमी का एक प्रतिनिधि-मंडल भारतीय विज्ञान परिषद में हिस्सा ले रहा है।

रूस की विज्ञान-एकेडेमी के इतिहास पर संक्षिप्त प्रकाश डालने के बाद प्रो॰ वोलगिन ने कहा—"कल दिल्ली में औद्योगिक अनुसंधान संस्था के शिलान्यास समारोह में मुझे लार्ड केलविन के वे शब्द स्मरण हो आए, जिनमें उन्होंने कहा था—"विज्ञान

का जीवन अथवा उसकी आत्मा यह है कि उसका प्रयोग कैसे किया जाता है।' उनका यह वक्तव्य हमारी एकेडेमी के लिए एक मन्त्र है।

"अभी हम जिस युद्ध में से गुजरे है, उसमें हमारे यहाँ की तमाम विज्ञान-संस्थाओं का ध्यान अपने देश की रक्षा तथा अपने शत्रु के पराजय में लगा हुआ था। अब युद्ध के बाद उन सबका ध्यान नवीन पंचवर्षीय योजना को सफल करने में लगा हुआ है। हमें आशा है कि हम लोगों के भारतीय विज्ञान कांग्रेस में सम्मिलित होने से भारत व रूस के लोगों में वैज्ञानिक सम्बन्ध, सांस्कृतिक विचार-विनिमय और मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बढ़ने में सहायता मिलेगी।

"भारतीय वैज्ञानिक सफल हों"

"हमारी पीढ़ी के लोगों को दो बार विश्व-युद्धों का सामना करना पड़ा है। अतएव वह बखूबी समझती है कि अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का महत्व क्या है और विश्व की जनता की उन्नति के लिए इससे कहाँ तक सहायता मिल सकती है। आज भारतीय लोगों के सामने अनेक औद्योगिक व सांस्कृतिक समस्याएँ उपस्थित हैं। हमें यकीन है कि लार्ड केलविन के सन्देश से अनुप्राणित होकर भारतीय वैज्ञानिक इन समस्याओं को सुलझाने में सक्रिय हिस्सा लेंगे हम चाहते हैं कि भारत के वैज्ञानिक अपने कार्य में सफल हों। इसी से समूचे विश्व में शान्ति पैदा होगी और विश्व के लोगों व वैज्ञानिकों के बीच सहयोग स्थापित होगा।"

नेहरूजी का उत्तर

भारतीय विज्ञान परिषद के प्रधान पंडित जवाहरलल नेहरू ने इसका उत्तर देते हुये कहा—"विगत कई वर्षों से हम लोग सोवियट यूनियन में अनेक कारणों से काफी दिलचस्पी लेते रहे हैं। आप लोग हमारे पड़ौसी हैं और पड़ौसी के नाते हमें एक दूसरे के मामलें में दिलचस्पी लेनी चाहिए। हमें एक दूसरे की जानकारी रखनी चाहिए। और एक दूसर के साथ निकट सम्पक स्थापित करने चाहिय।

"पड़ौसी होने के अतिरिक्त आप लोग अनेक क्षेत्रों में अग्रणी हैं और आप लोगों ने हमारे देखते-देखते अपने विशाल देश का जिस तेजी के साथ कायाकल्प किया है उससे समूची मानव जाति दंग रह गई है। इसलिए जब हम लोग भी भारत में कोई महान परिवर्तन करने की सोचते हैं, तो हम आपकी मिसाल अपने सामने रखते हैं। हम लोग यह जानना चाहते हैं आप लोग ने क्या किया और कैसे किया। आपके यहां सबसे बड़ी चीज यह हुई है आपके यहाँ विज्ञान काफी फला-फूला है। इस विज्ञान के आधार पर रूस के लोगों की भलाई हुई है। हम भी भारत की जनता की भलाई के लिए विज्ञान की सहायता लेना चाहते हैं। हम आप लोगों से कुछ सीखना चाहते हैं। अतएव आप लोगों ने यहाँ आकर हमें जो सन्देश दिया है, उसका हम स्वागत करते हैं।

भारत सरकार के बाह्य मामलों के मन्त्री की हैसियत से बोलते हुए नेहरूजी ने यह प्रकट किया—"निकट भविष्य में दोनों राष्ट्र एक दूसरे के यहाँ अपने-अपने राजदूत मुकर्रर करने वाले हैं। वैसा हो जाने के बाद अनेक मानवीय कार्यों में मिल कर काम करने का मार्ग खुल जायगा।

"अन्त में मैं रूसी प्रतिनिधियों से अपील करूँगा कि वे रूस की विज्ञान एकेडेमी के पास हमारी कृतज्ञता का सन्देश पहुँचा दें। एकेटेमी ने हमारे पास जो सन्देश भेजा है उसके लिए उसका धन्यवाद। हमें आशा है कि आप लोगों के शुभागमन से दोनों देशों के बीच और खास कर दोनों देशों के वैज्ञानिकों के बीच निकट सम्पर्क बढ़ेगा।"

अखिल भारतीय वैज्ञानिक कार्य्यकर्त्ता एसोसियेशन के

वैज्ञानिकों को नेहरू जी की सलाह

अखिल भारतीय वैज्ञानिक कार्यकर्ता एसोसियेशन की प्रारम्भिक बैठक में भाषण देते हुये पं० जवाहरलाल नेहरू ने कहा कि आप लोग समाज के हितों को कुर्बान कर के अपने हितों की रक्षा न करेंगे। वैज्ञानिक अभी तक व्यक्तिवादी अधिक रहे हैं वे ठीक रूप से संगठित नहीं हुए। वह समय आ सकता है जब संगठित वैज्ञानिक समाज के सामने पिस्तौल लेकर खड़े हो सकते हैं। यदि विज्ञान केवल व्यक्ति की स्वार्थ भावना को प्रोत्साहन दे, तो ऐसा हो सकता है। सत्ता के साथ स्वार्थ भावना एक खतरनाक चीज है और मैं चाहूँगा कि वैज्ञानिक भारतीय ब्राह्मणों की सेवा भावना को अपनावें। अवश्य ही मैं यह नहीं चाहता कि जो सेवा करें, उन्हें पैसा न मिले। किन्तु नई व्यवस्था में रुपये को बहुत अधिक सत्ता और सम्मान का स्थान प्राप्त न होगा और सेवा तथा ज्ञान की पूजा होगी।

उपवास का वैज्ञानिक महत्व*

डाक्टर नीलरत्न धर

महात्मा गाँधी धन्य है जिनके उपवासों ने हमारे देश-वासियों का ध्यान इस विषय की ओर आकृष्ट किया है। यूरोप और अमेरिका में सन् १८८६ से उपवास सम्बन्धी वैज्ञानिक प्रयोग किए जा रहे हैं। वहाँ तो कुछ व्यवसायिक उपवास करने वाले हुये हैं, जिनमें 'सूसी' (Succi) का नाम विशेष उल्लेखनीय है जिसने सन् १८८६ में ३० दिन तक पेरिस में, मिलान, में क्योरेन्स में; सन् १८९० में ४० दिन तक लन्दन में सन् १८९२ में २१ दिन तक नेपुल्स में तथा कई अन्य स्थानों पर उपवास किया था। ३० दिन तक उपवास करने से उसके शरीर का भार ६३ सेर से घट कर ४८·७५ सेर, २१ दिन तक उपवास के बाद ६३·६ सेर से घट कर ५२·४ सेर रह गया। जब वह लन्दन मे ४० दिन तक उपवास करता रहा तो उसका वजन ५५·८ सेर से ४१·७ सेर हो गया।

कुछ व्यवसायिक उपवास करने वालों के वजन में जो कमी हुई थी वह निम्नांकित है—

(देखो तालिका सं० १)

इन व्यक्तियों के अलावा डा० टैनर (Tanner) नामक एक अमेरिकन ने ४० दिवस व मेरलाटी (Merlatti) ने ५० दिन तक पेरिस में उपवास किए।

उपवास काल में "सुसी" (Succi) ने पेट-पीड़ा को शान्त करने के लिए लैन्डनम (Landanum) जो अफीम से तैयार होती है, खाई थी। किन्तु अन्य व्यक्ति केवल जल ही के अधार पर रहे। मानसिक दशा पर उपवास का प्रभाव प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न होता है। प्रायः देखा जाता है कि उपवास से मनुष्य की कार्य शक्ति का ह्रास हो जाता है; किन्तु "सुसी" (Succi) में यह प्रभाव बहुत थोड़ी मात्रा में होता था, यहाँ तक कि उसे घोड़े पर चढ़ने व चलने-फिरने में भी कष्ट का अनुभव नहीं होता था।

शरीर-विज्ञान वेत्ताओं का मत है कि इस संबंध में कुत्ते की आपेक्षिक शक्ति बहुत है, प्रति दिन लगभग ३ पाव पानी देने पर कुत्ते को १०० दिन तक भूखा जा सकता है—

कुत्ते के शरीर के विभिन्न अवयवों में उपवास के कारण वजन की कमी के कुछ आँकड़े नीचे दिए जाते हैं :

(देखो तालिका सं० २)

*इंडियन एकेडेमी तथा नेशनल एकेडेमी के सम्मलित वार्षिक अधिवेशन में दिया गया एक भाषण।

अब प्रश्न यह उठता है कि उपवास के कारण शरीर का भार क्यों घट जाता है:—

लैवाइसे (Antoime L. Lavosier) नामक महान् फ्रांसीसी वैज्ञानिक, जिसका उत्कर्ष फ्रांसीसी क्रांति के समय हुआ किन्तु जो अकाल ही उस क्रान्ति में फाँसी पर चढ़ा दिया गया, के अनुसंधानों से यह विदित हुआ कि मनुष्य-जीवन खाद्य-पदार्थों तथा श्वास द्वारा शरीर में प्रविष्ट ओषजन (Oxygen) के मिश्रण पर निर्भर है। यह क्रिया जो कि ओषदीकरण (Oxidation) कहलाती है हमें आवश्यक ताप और शक्ति प्रदान करती है।

इस प्रकार, चाहे बाह्य तापक्रम कुछ भी हो स्वस्थ शरीर का तापक्रम ३७·०° सेन्टीग्रेड या ९८·४° फारनहाइट रहता है। कुछ पशु-पक्षियों के शरीर का तापक्रम अधिक होता है : उदाहरणार्थ मुर्गे गौरैय्या का ४२° से०; कुत्ते का ३९·२° से० खरगोश का ३९·६° से०।

फलतः शरद ऋतु में जब कि वायु मण्डल का तापक्रम बहुत कम होता है हमारे शरीर का ताप 'रेडिएशन' (Radiation) द्वारा कम होता रहता है; तात्पर्य यह कि ओषदीकरण (Oxidation) की क्रिया ही हमारा जीवन है और इस क्रिया का अन्त ही जीवन का अन्त है—चाहे हम उपवास करें या भर पेट भोजन करें यह क्रिया शरीर के अन्दर अविच्छिन्न रूप से होती रहती है।

एक स्वस्थ मनुष्य के भोजन में प्रति दिन निम्न-लिखित पदार्थ होते हैं: १ पौण्ड (½ सेर लगभग) कार्बोहाइड्रेट (चावल, चपाती, पावरोटी, आलू, चाना इत्यादि से प्राप्त: मुख्य पदार्थ)

¼ पौण्ड (½ पाव) प्रोटीन एवं अन्य नाइट्रोजन देने वाले पदार्थ (दाल, मछली, मांस, अण्डे, दूध आदि); ⅛ पौण्ड (१ छटाक) फैट (चर्बी जो तेल, घी, मक्खन, काकोजम आदि से मिलती है)

इन खाद्य-पदार्थों का, जैसा कि ऊपर बताया गया है, शरीर के अन्दर ओक्सीजन (Oxygen) से रासायनिक मिश्रण होता है और इस रासायनिक क्रिया से हमें जीवन-शक्ति तथा कार्य-शक्ति मिलती है—

१ ग्राम कार्बोहाइड्रेट (Cabohydrate) या प्रोटीन (Protein) = ४·१ कै० (4·1 Calories)

१ ग्राम फैट (Fat) = ९·१ कै० (9·1 Calories)

१ पौण्ड कार्बोहाइड्रेट = ४५३ ग्राम = (४५३ × ४·१) कै०

¼ पौण्ड प्रोटीन = लगभग १०० ग्राम = (१०० × ४·१) कै०

⅛ पौण्ड फैट = लगभग ५० ग्राम = (५० × ९·१) कै०

इनका योगफल = लगभग २८०० कै०

भोजन की मात्रा शारीरिक परिश्रम के अनुसार होनी चाहिए। श्रमिकों को अधिक भोजन चाहिए। यह प्रसिद्ध बात है कि पहलवानों को अधिक भोजन (जिससे ५५०० कै० ताप मिले) की आवश्यकता होती है।

ऊपर दिए गए आंकड़ों से स्पष्ट है कि साधारण-तया मनुष्य के लिए उतना भोजन चाहिए जिससे लगभग २७०० कै० ताप मिल सके।

गत महायुद्ध (१९१४-१८) के पूर्व पाश्चात्य देशों के कुछ प्रमुख नगरों की म्युनिस्पिल-रेकार्ड से पता लगता है कि म्यूनिक, पेरिस और लन्दन में जनसाधारण को इतना खाना दिया जाता था जिससे ३०१५, २९०३ और २६६५ कै० क्रमशः ताप मिलता था।

शरीर में चर्बी (Fats), प्रोटीन (Protein) और कार्बोहाइड्रेट (Carbohydrate) होते हैं। कार्बोहाइ-ड्रेट ग्लाइकोजन (Glycogen) के रूप में होता है और यह सरलता पूर्वक ग्लूकोज (Glucose) में परिणित हो जाता है। उपवास के प्रथम ३-४ दिवसों में ग्लाइकोजन (Glycogen) पदार्थ शरीर से 'ओषदीकरण' (Oxidation) द्वारा समाप्त हो जाता है और फिर ओषदीकरण (Oxidation) के लिए प्रोटीन और चर्बी (fats) ही शेष रहते हैं। खाना न खाने पर कार्बोहाइड्रेट (Carbohydrates)

की कमी होने के कारण चर्बी या प्रोटीन (fat or protein) पदार्थ जल्दी समाप्त होने लगते हैं जिसके फल स्वरूप आक्सी ब्यूटरिक एसिड (Oxy Butric acid), एसीटो एसीटिक एसिड (aceto acetic acid) तथा अन्य विषाक्त पदार्थ शरीर में बन जाते हैं।

इन विषाक्त पदार्थों से जीं मचलाने लगता है और अशान्ति सी आ जाती है। स्वस्थ अवस्था में यूरिया (Urea) नामक एक पदार्थ भी बनता है, किन्तु उपवास करने पर जब भिन्न-भिन्न आम्ल पदाथ बनते हैं तो यूरिया अमोनिया (ammonia) में परिणित होकर इन आम्ल पदार्थों से शरीर की रक्षा करता है, किन्तु इस क्रिया की गति लगभग ३० दिन के बाद समाप्त सी होने लगती है और शरीर की स्वरक्षा शक्ति घट जाती है। शरीर में उपवास जनित आम्ल पदार्थों को नष्ट करने के लिए सोडा बाई कार्ब, सोडा टारटरेट या सोडा साइट्रेट क्षारीय पदार्थ देना उचित है।

प्रयाग विश्वविद्यालय की रासायनिक-अनुसंधान शाला में किए गए प्रयोगों से यह ज्ञात हुआ है कि सोडा टारटरेट तथा सोडा साइट्रेट नामक पदार्थ न केवल आम्ल पदार्थों के नष्ट करने में सहायक होते हैं बल्कि स्वयं ओषदीकरण (Oxidation) में भाग लेकर चर्बी पदार्थों (fats) का उचित ओषदीकरण सुगम कर देते हैं जिस कारण विषाक्त पदार्थों के बनने की सम्भावना शरीर में बहुत कम हो जाती है।

लम्बे उपवास में, जिसमें कि शरीर का भार चर्बी और प्रोटीन पदार्थ के अनुचित ओषदीकरण के कारण घट जाता है, यही एकमात्र उचित परिचर्या है।

बहुमूत्र रोग (Diabetes) में भी शारीरिक क्रिया 'उपवास-काल के समान ही होती है क्योंकि इस रोग में कार्बोहाइड्रेट (Carbohydrate) ग्लूकोज़ (Glucose) के रूप में बिना ओषदीकरण में भाग लिए मूत्र के साथ निकल जाता है जिसके फल स्वरूप शरीर के चर्बी और प्रोटीन पदार्थ ही द्रुत गति से ओषदीकरण होकर उपरोक्त विषाक्त पदार्थ बनाते हैं। इनसूलिन (Insuline) देने से ग्लूकोज़ (Glucose) के ओषदीकरण में सहायता मिलती है जिससे कि विशैले पदार्थ कम हो जाते हैं। सोडा बाई कार्ब तथा सोडा टारटरेट जैसे क्षार-पदार्थ भी इस रोग में लाभदायक होंगे।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि बहुमूत्र रोग में जो कि अधिक खाने से हो जाती है, और उपवास में शरीर के अन्दर एक ही समान रासायनिक क्रिया होती है और उसका उचित इलाज भी एक ही है।

उपवास-काल में प्राणी को विशेष मात्रा में जल देना पड़ता है क्योंकि हमारे शरीर का भार अधिकाँश मात्रा में पानी के कारण होता है। बाल्यावस्था में शरीर के भार में ६८% और प्रौढ़ावस्था में ५८% जल का अंश होता है। खाद्य पदार्थों में भी जल का अंश विशेष होता है : उदाहरणार्थ दूध में ८८ प्रतिसैकड़ा, आलू में ७५% पानी का अंश होता है।

आधे पेट खाना हमारे दीन देश में नित्यप्रति का अनुभव है। यह विशेष उल्लेखनीय है कि योरोपियन राष्ट्र भी गतमहायुद्ध (१९१४-१८) के समय इसका अनुभव कर चुके हैं विशेषतः जर्मनी के अधीकृत देशों में इसका प्रभाव अधिक मालूम हुआ ब्रूसेल्स (Brussels), म्यूनिक (Munich) के नागरिकों को कुछ काल तक इतने कम भोजन पर जीवन यापन काल पड़ा था जिससे केवल ९५० केलीज़ ताप मिल सकता था, स्मरण होना चाहिए कि साधारणतः एक स्वस्थ मनुष्य को २८५० केलोरीज़ ताप की आवश्यकता है।

तालिका सं० १

व्यक्ति	१४ दिन किलोग्राम	%	१६ दिन किलोग्राम	%	२० दिन किलोग्राम	%	२६ दिन किलोग्राम	%	३० दिन किलोग्राम	%	३१ दिन किलोग्राम	%	४० दिन किलोग्राम	%
लैमिनज़िन (Lavanzin)	७·४६	१२·४	२·३८	१३·८	९·७१	१६·०	१२·५४	२०·७	१२·९५	२१·४	१३.२५	२१·६	—	—
सूसीः—														
पेरिस	९·९०	१५·७	१०·३०	१६·३	११·४०	१८·१	१३·७५	२१·८	१४·२५	२२·६	—	—	—	—
मिलान	७·७०	१२·६	८·४५	१३·८	१०·१५	१६·६	१२·८०	२०·६	१३·१०	२१·४	—	—	—	—
फ्लोरैंस	८·४५	१३·३	९·००	१४·२	१०·५०	१६·६	१२·८५	२०·३	—	—	—	—	—	—
लण्डन	७·१०	१७·२	७·७०	१३·८	९·००	१६·१	११·५०	२०·६	११·६०	२०·८	११·७०	२१·०	१४·१०	२५·३
नेपल्स	८·२०	१२·६	८·३५	१३·१	१०·६०	१६·७	—	—	—	—	—	—	—	—
रोम	६·६०	१२·६	७·३०	११·२	८·६०	१३·२	—	—	—	—	—	—	—	—
ज्यूरिय	७·९५	११·१	८·७०	१२·१	९·८०	१३·७	—	—	—	—	—	—	—	—
जैक्यूस (Jacques)	७·३४	११·८	७·०३	११·३	८·०८	१३·०	१०·१५	१६·४	१०·३२	१६·६	—	—	—	—
सी० ब्यूटे (V. Beaute)	७·२३	११·९	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—
शैन्क (Schenk)	७·५०	१३·३	८·१	१४·४	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—
औसत	—	१२·६	—	१३·४	—	१५·६	—	२०·१	—	२०·६	—	२१·५	—	२५·३

तालिका सं० २

अवयव	चर्बी रहित जानवर में भारात्मक प्रतिशतता		२४ दिन के उपवास में चर्बी रहित अवयव की हानि
	सामान्य	उपवासित	%
ढाँचा	१४·७८	२१·५०	५
त्वचा	१०·३६	११·२९	२८
माँस पेशियाँ	५३·७७	४८·३१	४२
मस्तिस्क तथा रीढ़	०·९४	१·११	२२
आँख	०·११	०·१६	३
हृदय	०·५४	०·६१	१६
रक्त	७·१४	५·६९	४८
तिल्ली	०·३९	०·२६	५७
जिगर	३·९८	३·०५	५०
पैनक्रियास	०·३३	०·१९	६२
गुन्दी	०·६६	०·४५	५५
जनेन्द्रियाँ	०·३६	०·२३	४१
पेट और अँतड़ियाँ	५·८	६·०२	३२
फेफड़े	०·४१	०·१७	२९

इंडियन साइन्स कांग्रेस का ३४ वां अधिवेशन

देहली…………………सन् १९४७

रसायन-परिषद

सभापति--पी० के० बोस डी० एस-सी०, एफ० एन० आई०

का

भाषण

(हीरालाल निगम एम. एस-सी० द्वारा अनूदित)

सर्व प्रथम मैं इंडियन साइन्स काँग्रेस के सदस्यों को धन्यवाद देना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ जिन्होंने इस अवसर पर मुझे रसायन परिषद् के प्रधान का पद दिया है। इस सम्मान का मूल्य मुझे भली-भाँति विदित है।

मेरा विचार आज के भाषण में 'प्लास्टिक' जैसे चिन्ताकर्षक विषय पर बोलने का है। इस विषय पर भाषण देने की प्रेरणा मुझे तीन विभिन्न कारणों से मिली है—प्रथम तो यह कि किसी देश की व्यावसायिक तथा आर्थिक उन्नति में प्लास्टिक्स का महत्व नित्य-प्रति बढ़ता जा रहा है. दूसरे यह कि भारत में किसी भी प्रकार के प्लास्टिक्स के व्यवसाय का अभाव है और तीसरे यह कि वर्त्तमान समय में इस विषय की ओर लोगों का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित हो रहा है।

स्वेच्छा से ही अपने सिर पर मढ़े हुए इस कार्य को पूरा करने में मुझे कुछ भय व हिचकिचाहट का अनुभव हो रहा है। अगणित शाखाओं में विभाजित यह विषय इतना विशद् है कि इसका पूर्ण ज्ञान किसी एक व्यक्ति के लिए चाहे किसी प्रकार सम्भव भी हो किन्तु इस छोटे से भाषण में उसके मुख्य भागों का भी विवरण देना असम्भव है।

यह सब होते हुए भी भारत की भावी प्रगति के लिए इस विषय का महत्व समझना मेरी दृष्टि में अब नितान्त आवश्यक है जब कि उसके साधन तथा व्यवसायों के राष्ट्रीकरण के लिए सफल प्रयास हो रहा है। प्रारम्भ में यह जान लेना आवश्यक है कि 'प्लास्टिक्स' हैं क्या? इसकी सरल परिभाषा यह हो सकती है कि कोई भी वस्तु जो दबाव द्वारा किसी सांचे में ढाली जा सके और दबाव हटा लेने पर भी उसी रूप में बनी रहे. 'प्लास्टिक' कही जा सकती है। उदाहरणार्थ मिट्टी, राल लाख आदि वस्तुएँ हैं जिनका प्रयोग प्राचीन काल से चला आ रहा है। किन्तु रसायनशाला में की गई गवेषणाओं को सम्मिलित करते हुए यह शब्द आजकल संश्लेषित तरीकों से और प्रकृति में बनी हुई उन सभी वस्तुओं के लिए प्रयुक्त होता है जो साधारण अणुओं के संघट्ट-भवन से बनते हैं।

इसका महत्वपूर्ण प्रारम्भ सन् १९०९ से माना जा सकता है जब बैकेलेन्ड (Bakeland) ने 'फीनोल-फार्म एलडीहाइड' 'Phenol-formaldehyde' या बैकेलाइट' 'Bakelite' की खोज की और उसका व्यावसायिक महत्व ज्ञात किया। बैकेलैन्ड (Bakeland) के अग्रगण्य कार्य-समय से इस महायुद्ध के अन्त तक के कुछ वर्षों में व्यवसायों की वृद्धि के कारण व रासायनिक खोजों के कारण हमारा 'प्लास्टिक्स' का ज्ञान बहुत आगे बढ़ गया है। विशेषतया पिछले कुछ ही वर्षों में प्लास्टिक्स-व्यवसाय' की बड़ी अनोखी प्रगति हुई। कारण यह था कि युद्धकाल में रसायन-वैज्ञानिकों से असाधारण गुण वाले इन नए पदार्थों की माँग की गई और फलतः प्राचीन प्लास्टिक्स की वस्तुओं में न केवल परिवर्धन ही हुआ वरन् बहुत से नए भेद

भी मालूम किए गए। जिस द्रुत गति से इस व्यवसाय में वृद्धि हो रही है वह संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के बाग में प्राप्त उत्पान-अंकों से विदित है।

सन्	उत्पादन पौंड में
१९२०	२,०००,०००
१९४३	६,५ ,०००,०००
१९४४	८,०० ००० ०००
१९४६-४७	२०००.००० ००० (?)

उत्पादन में ऐसी वृद्धि होने का मुख्य कारण यह था कि प्लास्टिक्स के सहस्रों नूतन उपयोगों का पता लगाया गया। विभिन्न गुणों तथा रूपों में प्राप्त होने के कारण प्लास्टिक्स का व्यवसायिक महत्व बहुत बढ़ गया है। वर्तमान समय में प्लास्टिक्स व्यवसाय की आशातीत वृद्धि देख कर यह अनुमान किया जा सकता है कि निकट भविष्य में ही विश्व के सांस्कृतिक इतिहास में प्लास्टिक्स-युग का आविर्भाव होगा। मुख्यतया प्लास्टिक-पदार्थ विशाल अणुओं से बने होते हैं, और ये विशाल अणु या तो बहु-लिप्नीकरण (Poly condensation या संघट्ट-भवन (Polymeri Sation) की क्रियाओं से बनते हैं। बहु-लिप्नीकरण की क्रिया में जल-अणु योग होता है किन्तु संघट्ट-भवन की क्रिया में द्वि बन्ध भंग होकर अणुओं का सरल संयोग होता है। श्री केरथर्स विशेष धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने यह पता लगा लिया है कि प्लास्टिक पदार्थ बनने के लिए अणुओं के संघट्ट-भवन की क्रिया किस विशिष्ट (कम से कम) अणु-भार तक की जानी चाहिए।

प्लास्टिक्स का वर्गीकरण:—ताप एवं दबाव की प्लास्टिक्स की प्रतिक्रियाओं को आधार मान कर इन पदार्थों का वर्गीकरण किया जाता है। इस प्रकार मोटे तौर पर प्लास्टिक्स दो वर्गों में विभाजित किये जा सकते हैं एक थर्मो-प्लास्टिक्स दूसरे थर्मो-हार्डेनिंग रेजिन्स। इन दोनों में मुख्य अन्तर केवल इतना है कि प्रथम प्रकार के पदार्थ गलन-शील होते हैं और उनका रूप परिवर्त्तन विपर्यय शील होता है किन्तु दूसरे प्रकार के पदार्थों में यह गुण नहीं पाये जाते।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, इस छोटे से भाषण में प्लास्टिक-पदार्थों का पूर्ण विवरण देना असम्भव है। कतिपय विशेष महत्वपूर्ण रेजीनों के नाम नीचे दिये जा रहे हैं—

(१) फीनोलिक प्लास्टिक्स:—फीनोल तथा फार्म एलडीहाइड के रसायनिक संयोग की क्रिया सन् १८७१ में ही मालूम हो चुकी थी किन्तु सांचे में ढाली जाने योग्य रेजीन के बनाने की विधि बताने का श्रेय बेकलैन्ड को ही है। इस रेजीन के बनाने की विधि यह है कि पहले एक आम्लीय-उत्प्रेरक पदार्थ की उपस्थित में फीनोल तथा फार्मएलडीहाइड के रासायनिक संयोग से नोभोलैक (Novolac) बनता है यह पदार्थ गलन-शील तथा घुलन-शील भी होता है। तदनन्तर चूना आदि के मिश्रण से यह पदार्थ एक ऐसे पदार्थ में बदल दिया जाता है जिसका संगठन ताप पर अवलम्बित है।

(२) 'एमिनो' प्लास्टिक्स:—ये पदार्थ 'यूरिया' 'थायो-यूरिया' आदि से बनते हैं। इनमें से 'यूरिया फार्मएलडी-हाइड रेजीन' विशेष उल्लेखनीय है। यह रेजीन' क्षारीय-उत्प्रेरक पदार्थों की उपस्थिति में बनता है। ये पदार्थ विभिन्न रंगों में प्राप्त हो सकते हैं इसलिए ये सजावट के काम में लाए जाते हैं।

(३) 'इथाइलीन एवं सम्बन्धित-पदार्थों से बने रेजिन':—इनमें से 'पाली-इथाइलीन' (Poly-Ethylenes) मुख्य हैं। इनका बनना सन् १९४३ ई० में प्रारम्भ हुआ और युद्ध-काल में 'केबल्स' (Cables) के रोधन के लिए ही इनका प्रयोग होता रहा। 'इम्पीरियल केमिकल इन्डस्ट्रीज लिमिटेड' (Imperial Chemical Industries Ltd.) ने 'एल्काथीन' (Alkathene) नाम से बहुत से पदार्थ बना डाले है। ये पदार्थ कठोर होते हैं, आर्द्रता का इनमें कोई प्रभाव नहीं पड़ता और रासायनिक पदार्थों के साथ कोई क्रिया नहीं होती।

(४) 'एक्राइलिक रेजीन्स' (Acrylic Resins) इन पदार्थों का संश्लेषण हाल ही में हुआ है। ये सब पदार्थ 'एक्राइलिक' (Acrylic) से बन सकते हैं। यह अम्ल 'ग्लीसरीन' (Glycerol) से बनाया जा सकता है। अपने प्रकाश-सम्बन्धी गुणों के कारण यह कांच के स्थान पर वायु-यान के कल-पुर्जों में प्रयुक्त किया जाता है।

(५) 'नाइलोन' (Nylon) :—इन पदार्थों का संश्लेषण बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। यह कृत्रिम रूप से तैयार किया हुआ पदार्थ प्राकृतिक रेशम से कहीं बढ़ कर है।

(६) 'सिलीकॉन रेजीन्स' (Silicon Resins)-यह बिल्कुल ही भिन्न प्रकार का प्लास्टिक-पदार्थ है जिसके बनाने का प्रयास अभी पूर्ण रूपेण सफल भी नहीं हो पाया। अन्य पदार्थों की तरह इसमें केन्द्रीय अणु 'कार्बन' (Carbon) नहीं होता। इनमें केन्द्रीय अणु 'सिलीकॉन' (Silicon) रखा जाता है इससे गुणों में बहुत अन्तर पाया जाता हैं। प्लास्टिक गुणों के अतिरिक्त इनमें रबड़ की तरह बढ़ने-घटने का गुण भी पाया जाता है।

प्लास्टिक-पदार्थों का अन्तर्चित्रण :—यद्यपि रासायनिक इकाइयों तथा बन्धनों के आधार पर प्लास्टिक-पदार्थों के गुणों का स्पष्टीकरण किसी सीमा तक सम्भव है किन्तु अभी उनके अन्तर्चित्रण के विषय में 'इद मित्थं' कहना भूल ही होगी। कहना यह चाहिये कि वैज्ञानिकों ने अपने अथक परिश्रम से कुछ निष्कर्ष निकाले हैं जो वास्तव में बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। उन निष्कर्षों का पूर्व विवेचन यहाँ करना आवश्यक नहीं हां एक दो निष्कर्षों का उल्लेख विषय के ज्ञान में सहायक एवं मनोरंजक होगा जैसे एक निष्कर्ष यह है कि थर्मोप्लास्टिक' पदार्थों की रचना शृंखलात्मक होती है।

नई खोज एवं प्लास्टिक का भविष्य :—युद्ध-काल में जर्मनी तथा अमेरिका में कई प्रकार के प्लास्टिक पदार्थों का संश्लेषण हुआ जिनमें बहुत तो अभी भी गुप्त रखे गए हैं। रासायनिक इकाइयों के परिवर्तन से प्लास्टिक-पदार्थों के गुणों में बहुत अन्तर पड़ जाता है इसी आधार पर नई प्रकार की 'रेजीन्स' तैयार की गई है उदाहरणार्थ 'सिलीकॉन रेजीन्स' (Silicon Resins) है। साथ ही साथ प्रयुक्त मशीनरी में भी बहुत से उपयोगी परिवर्तन तथा परिवर्धन कर दिए गए हैं। प्लास्टिक्स' की व्यावसायिक उन्नति देख इसका भविष्य उज्ज्वल प्रतीत होता है।

प्लास्टिक-व्यवसाय तथा भारत :—

प्लास्टिक्स पर वैज्ञानिक खोज तो आवश्यक है ही पर व्यावसायिक दृष्टिकोण से निम्नलिखित बातें प्लास्टिक्स' की उन्नति के लिए विशेष आवश्यक हैं।

(१) कच्चा माल

(२) कच्चे माल से 'रेजीन्स' तथा अन्य प्लास्टिक पदार्थों का बनना

(३) तैय्यार सामान

वस्तुओं के पूर्ण रूपेण तैय्यार होने में कोई विशेष असुविधा नहीं होती और न कच्चे माल से 'रेजीन्स या प्लास्टिक्स' पदार्थ में ही कोई उलझन होती है। कच्चे माल से ये पदार्थ बनाने में सरल रासायनिक क्रियाओं पर अवलम्बित विधियों का प्रयोग होता है और मशीनरी भी साधारण ही आवश्यक है। इसलिए स्पष्ट है कि कच्चे माल के साधन तथा दाम पर ही इस व्यवसाय की उन्नति या अवनति निर्भर है। साधन को छोड़ कर यदि भारतवर्ष में कच्चे माल के दाम पर ही विचार किया जाय तो निराश होना पड़ता है—तुलना के लिए नीचे एलोकेशन आफिस आफ दि केमिकल ब्यूरो वार प्रोडक्शन बोर्ड वाशिंग्टन (Allocation Office of the Chemical Beareau, War Production Board, Washingten) से प्राप्त कच्चे माल की निख (१९४१) सूची दी जाती है। साथ ही इन अंकों से कच्चे माल और उससे तैय्यार 'रेजीन्स' के दाम का भी अनुमान हो सकता है।

कच्चा माल (Raw Materials)

	दाम प्रति पौंड डालरों में	रुपयों में रु०	आ०	पाई
मिथानोल (Methanol)	०·०५	०	२	८
फामलीन (Formalin)	०·०४	०	२	११½
हेक्सा (Hexa)	०·२८	०	१५	०
बेन्जीन (Benzene)	०·०३	०	१	८
फीनोल (Phenol)	०·११	०	५	१०
क्रेसारलिक एसिड (Cresylic acids)	०·१८	०	९	८
थेलिक एनहाइड्राइड (Phthallic anhydride)	०·१३	०	०	०
ग्लासरीन (Glycerine)	०·१७	०	९	१½
स्टारीन (Styrene)	०·२८	०	१५	०
नाइट्रिक एसिड (Nitric acid)	०·०५६६	०	३	½
एसिटिक एनहाइड्राइड (Acetic anhydride)	०·११	०	५	१०
यूरिया (Urea)	०·०३५	०	२	०
मेयामीन (Melamine)	०·४५	१	८	८
कास्टिक सोडा (Caustic soda)	०·०२	०	१	१
कार्बन-डाइसल्फाइड (Carbon disulphide)	०·०५	०	२	८
केमिकल काटन पल्प (Chemical Cotton Pulp)	०·०६	०	४	६½
प्लास्टिक रजीन्स (Plastic Resins)				
फीनोल फार्मएलडिहाइड (Phenol Farmaldehyde)	०·२४	०	१२	९
केर्जान (Casein)	०·२५	०	१३	४
अक्राइलट्स (Acrylates)	१·००	३	५	४
भिनाइल रजीन्स (Vinyl Resins)	०·६१५	२	०	९
पालास्टिरीन (Polystyrene)	०·३२	१	१	०
थैलिक एल्काइड (Phthallic alkyd)	०·३०	१	०	२
नाइट्रो-सेलूलोज (Nitro cellulose)	०·२६	०	१३	१३
इथाइल सेलूलोज (Ethyl-cellulose)	०·४१	१	५	१०
सेलूलोज एसीटेट और सी० ए० बी० (Cellulose acetate)	०·५८	१	१५	०
मेलामीन फार्मएलडिहाइड (Melamine formaldehyde)	०·२६४	१	३	५
सेलूलोज भिस्कोज (Cellulose Viscose)	०·४५	१	८	०

नोट—१ रुपया = ०·३० डालर

लगभग सभी देशों में संश्लेशित रेजीनों में काम आने वाले मुख्य-मुख्य पदार्थ तारकोल से ही प्राप्त किए जाते हैं। इस प्रकार आजकल के व्यवसाय एक-दूसरे पर आश्रित है किन्तु उनके इस तरह आश्रित होने से एक-दूसरे को कोई हानि नहीं पहुँचती बल्कि उनके विकास में सहायता ही मिलती है जैसा कि पीछे दी हुई तालिका से स्पष्ट है। कोल कार्बनीकिरण (Carbonization) व्यवसाय में भारत में १३·७ लाख गैलन बेन्ज़ीन (Benzene) तथा ५ लाख गैलन टोलोइन (Toluene) समुचित दाम पर तैय्यार होता है इसके आधार पर फ़ीनोल (Phenol) और मैलिक एन हाइड्राइड (Maleic anhydride) जैसे पदार्थों का सश्लेषण भली-भांति किया जा सकता है आशा है हमारे लोग इस पर विचार करेंगे। बिहार सरकार ने फ़ीनोल (Phenol) फार्म एलडी हाइड (Formaldehyde) यूरिया (Urea), एल्कोहल (Alcohol) तथा क्लोरीन (Chlorine) बनने के लिए सिन्धी (Sindhri) में मशीनरी जुटाई है इससे यदि इन वस्तुओं को प्राप्ति उचित रूप से हो सकी भारत में प्लास्टिक्स-व्यवसाय बहुत शीघ्र उन्नति कर जायगा।

भारतीय परिस्थित पर दृष्टि डालते हुए प्लास्टिक्स व्यवसाय पर एक और बात विचारणीय है कि यदि प्लास्टिक्स-व्यवसाय में हमारे देशवासियों ने पाश्चात्य देशों का अनुकरण किया तो बहुत बड़ी असफलता और निराशा ही हाथ लगेगी कारण यह है कि हमारे उनके साधनों तथा सुविधाओं में पृथ्वी-आकाश का अन्तर है। हमें चाहिए कि हम प्रकृति प्रदत्त वस्तुओं का उपयोग करें उदाहरणार्थ लाख (Shellac) रोज़ीन (Rosin) काजू के छिलके (Cashew nut-shell) इत्यादि। सी० एन० एस० एल० (C. N. S. L.) और बी० एस० एल० (B. S. L.) पदार्थों में सघट्ट भवन तथा लिप्तीकरण (Condensation) की क्रिया अच्छी तरह हो सकती है इसलिए इनका उपयोग आर्थिक दृष्टि से लाभ दायक होगा।

भारत में प्लास्टिक्स पर खोज—

निस्सन्देह भारत में प्राकृतिक रज़ीन्स बहुतायत में पाई जाती हैं इसलिए भारत में प्लास्टिक्स पर खोज होने के सभी साधन वर्तमान हैं किन्तु सन् १९२५ से इस देश में 'इन्डियन लाख रिसर्च इन्स्टीचूट' (Indian Lac Research Institute) की स्थापना हुई और उचित वैज्ञानिक ढंग से खोज आरम्भ हुई। गत २० वर्षों में इस प्रयोगशाला में कई महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले गए जिससे प्लास्टिक्स की उपयोगिता बहुत ही बढ़ गई। इन सब पदार्थों में 'लाख' की उपयोगिता सबसे बढ़ कर है। आज कल ये पदार्थ ग्रामोफोन रेकार्डस, पालिश, रंग, कपड़े आदि के व्यवसाय में विशेष रूप से उपयोग में लाए जा रहे हैं। 'कौन्सिल आफ साइन्टिफिक एन्ड इन्डस्ट्रियल रिसर्च' (Council of Scientific and Industrial Research) 'फारेस्ट रिसर्च इन्स्टीचूट' (Forest Research Institute) 'इन्डियन इन्स्टीचूट आफ साइन्स' (Indian Institute of Science) की प्रयोग शालाओं में इस विषय पर खोज चल रही है। प्लास्टिक पदार्थों के बनाने के लिए आवश्यक 'मैनीटल' (Mannitol) सार्बिटाल (Sorbitol) आदि पदार्थ पर विशेष अध्ययन हुआ है।

फिर भी यह स्पष्ट है कि भारतवर्ष में अब भी गवेषणात्मक दृष्टि से प्लास्टिक्स पर बहुत कम काम हुआ है यहां एक केन्द्रीय प्रयोगशाला (Central Plastic Research Institute) की आवश्यकता है जिस पर निम्नलिखित दायित्व होगा—

(१) 'प्लास्टिक्स' पर वैज्ञानिक गवेषणा।

(२) प्लास्टिक्स-व्यवसाय की उन्नति के लिए निर्देश देना।

(३) प्लास्टिक्स के विषय में शिक्षा देना।

(४) प्लास्टिक्स-व्यवसाय के बारे में पूरी सूचनाएँ रखना।

उपरोक्त बातों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि प्लास्टिक्स-व्यवसाय भविष्य में किसी

देश की आर्थिक परिस्थित में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखेगा और हमें अपने देश की व्यवसायिक उन्नति के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि हम इस व्यवसाय के हर एक पहलू को उन्नतिशील बनावे।

मणि*

[ले० —श्री० कृष्ण जी, भौतिक विज्ञान विभाग प्रयाग विश्वविद्यालय]

मनुष्य की सभ्यता के इतिहास से यह पता चलता है कि माणियों का मूल्य मनुष्य ने इतिहास के बहुत शुरू में जान लिया था। मणि को मनुष्य ने अपने शृङ्गार की वस्तु बना कर उसका मूल्य बहुत बढ़ा दिया। उनकी मुख्य विशेपताओं में उनकी स्थायी सुन्दरता, रंग पार दर्शता कठोरता और उनकी कमी है। सुन्दरता के साथ पारदर्शता एक आवश्यक गुण है, क्योंकि पारदर्शक मणि को काटने और चमकाने से उसके रंग की सुन्दरता बहुत बढ़ाई जा सकती है। कठोरता, सुन्दरता और चमक को प्रयोग के साथ नष्ट होने से बचाती है, एक मणि का ग्राहक प्राकृतिक मणि के लिए सहस्त्रो गुना मूल्य दे सकता है परन्तु उतने ही सुन्दर कृत्रिम मणि के लिए कुछ भी नहीं चाहता।

किसी से अगर यह कहा जाय कि जिस वस्तु को वह इतना मूल्यवान समझता है वह केवल एक मामूली तत्व कार्बन या ऐसी वस्तुएँ जैसे कैलसियम सिलिकेट ($CaSiO_3$) आल्युमिलियम आक्साइड (Al_2O_3) आदि हैं तो उसको बड़ा आश्चर्य और दुख होगा। कोई कुछ भी सोचे पर रसायन शास्त्र के अनुसार मणि केवल ऐसी ही मामूली वस्तुएँ हैं जैसे कार्बन, संयुक्त सिलिकेट, अल्युमिनियम आक्साइड इत्यादि; परन्तु रचनात्मक दृष्टि के सर्वश्रेष्ठ कला के सर्वोत्तम नमूने हैं। मणि कलापूर्ण होने के अतिरिक्त विज्ञान का भंडार है क्योंकि यह अगणित घटनाओं (Phenomena) जैसे संदीप्ति (Luminecence), प्रतिदीप्ति (Flourescence) इत्यादि का प्रदर्शन करते है।

सब मणि रचनात्मक दृष्टि से एक निर्दोष (Perfect) मणिभ (Crytal) ही होते हैं। इनमें उपस्थित तत्वका हर एक परमाणु शून्य में एक ही जाली (Common space lattice) के कोनों पर क्रमानुसार रक्खा रहता हैं। प्रकृति में ये खनिज पदार्थ की चट्टानों के रूप में पाये जाते हैं। प्रकृति में यह अमूल्य पत्थर निम्नलिखित तीन विशेष प्रकार से बनते हैं।

(१) किसी घोल के वाष्पीकरण से अवक्षिप्त (Precipitate) होने पर। अवक्षेप किसी गैस के निकलने से, तापक्रम या वायुभार बदलने से होता है। बिल्लौर या स्फाटिक (Quartz) दूधिया पत्थर या ओपल (Opel) और सिल खड़ी (Gypsum) इस प्रकार के उदाहरण हैं।

(२) गर्म तरल पदार्थों को ठोस होने से—जब कभी बहुत मिले जुले तत्वों का मिश्रण बहुत गर्म और तरल रूप से ठंडा होकर ठोस होता है तो उसमें बड़ी बड़ी चट्टानों के बीच में यह बहुमूल्य पत्थर भी बन जाते हैं। मिश्रण जितने ही धीरे-धीरे ठंडा होता है उतने ही बड़े बड़े मणिभ (Chrystal) बनते हैं। हीरा, नीलम और पन्ना इस प्रकार के उदाहरण हैं।

(३) चट्टानों के रूपान्तर होने में—गर्मी पानी और वायुभार के प्रभाव से चट्टानों बहुत परिवर्तन हो जाता है। यहाँ तक उनके तत्वों का मिश्रण भी बदल जाता है। इस प्रकार के उदाहरणों में याकुत (garnet) स्पिनल (Spinel) इत्यादि हैं।

मणि कई प्रकार के होते हैं, परन्तु हीरा

---

* प्रयाग में दिसम्बर मास में नेशनल इंडियन एकाडेमी आफ़ साइंस के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर सर चन्द्रशेखर वेंकटरमन द्वारा दिये गये एक भाषण के अधार पर

(Diamond) कई कारणों से सर्वोत्तम है और इसी कारण इसका विशेष प्रकार से अध्ययन किया गया है। भौतिक शास्त्र के विद्वान के लिए तो यह ठोस वस्तुओं का राजा है। यह सब ठोसों का प्रतिनिधि और साथ ही साथ एक असाधारण वस्तु भी है—प्रतिनिधि अपनी मणिभीय रचना की सरलता और निर्दोषता के कारण और असाधारण इस कारण कि यह सरलता होते हुए भी यह अगणित सुन्दर गुणों का प्रदर्शन करता है।

यह केवल एक तत्त्व कार्बन से बनता है। हीरे की मणिभीय रचना से पता चलता है कि कार्बन के परमाणु में चतुर्फलक (tetrahedral) सममिति है और इसकी रचना इस बात का श्रेष्ठ उदाहरण है कि कार्बन चतुर्बन्धक है और उसमें आपस में अगणित संख्या में संयोग करने की शक्ति है। इसका मणिभ घनाकार पद्धति का होता है। केवल मणिभीय विज्ञान ही यह बतलाता है कि इसके बनावट के चार विभाग हो सकते हैं। इस बात को हम बड़ी आसानी से समझ सकते हैं अगर पूरी रचना को एक क्रमानुसार रचना के रूप में देखा जाय जिसके एकाई टुकड़े (unit cell) में दो कार्बन परमाणु हैं जिनमें कि स्वयं चतुर्फलक सममिति है। ऐसे दो कार्बन परमाणु को मिला कर अगर एक इकाई टुकड़ा बनाया जाय तो उसके चार रूप हो सकते हैं। (१) और (२) एक ढङ्ग के जिसमें चतुर्फलक सममिति होगी, (३) और (४) दूसरे ढङ्ग के जिसमें अष्टफलक सममिति होगी। इन चार रूप से चार प्रकार के हीरे बनते हैं। किसी हीरे में चारों प्रकार मिले हुए पाये जा सकते हैं। पहले दो रूप जब आपस में मिलते हैं तो उनकी संदीप्ति और पारदर्शता पूरे हीरे भर में एक सी होती है। जब दूसरे दो रूप आपस में मिलते हैं तो एक ही हीरा भिन्न-भिन्न प्रकार की संदीप्ति और नीललोहितोत्तर पारदर्शता (Ultra violet transparency) का प्रदर्शन करता है। संदीप्ति की तीव्रता और रंग भिन्न-भिन्न हीरों में बहुत भिन्न होती है यहाँ तक कि कुछ हीरों में संदीप्ति होती ही नहीं। हीरों में दो प्रकार की संदीप्ति होती है—पीली (५०३० अ° तरंग दैर्ध्य) और नीली (४१५८ अ° तरंग लम्बाई)। जब रूप १ और २ मिलते हैं तो नीली संदीप्ति होती है, रूप ३ और ४ के मिलने से कोई संदीप्ति होती और जब रूप ३ या ४, १ या २ से मिलते हैं तो पीली संदीप्ति होती है। किसी हीरे में चारों रूप भिन्न भिन्न मात्राओं में मिले हो सकते हैं इसी कारण हीरों में अगणित प्रकार की संदीप्ति और प्रतिदीप्ति होती है।

रंजन किरणों का हीरों से परावर्त्तन और नील-लोहितोत्तर पारदर्शता का अध्ययन करने से हीरों के अन्दर की रचना के बारे में बहुत सा हाल मालूम होता है। एक आश्चर्य की बात यह है कि हीरे में, जो कि कार्बन परमाणु की क्रमानुसार रचना से बना है, अपना व्यक्तित्व है अर्थात् हर एक दूसरे से भिन्न हैं। उन हीरों का मूल्य बहुत होता है जिनमें अन्दर कुछ दरार या दोष होता है श्वेत या बिना रंग के हीरे का मूल्य रंगीन हीरों से बहुत थोड़ी सी मात्रा के कारण हो जाता है। हीरा संसार में सबसे अधिक कठोर वस्तु है।

हीरे के बाद मूल्यवान पत्थरों का दूसरा समुदाय कोरंडम (Corundom) है। इनमें अल्युमिनियम आक्साइड (Al_2O_3) होता है और कभी कभी अल्युमिनियम के स्थान पर थोड़ी थोड़ी मात्रा में क्रोमियम, टाइटेनियम और लोहा पाया जाता है। इस कारण इन मणियों में रंग आ जाते हैं। यह समझा जाता है कि क्रोमियम से लाल रंग, टाइटेनियम से नीला और लोहे से पीला रंग होता है। इस समुदाय में माणिक या चुन्नी (Ruby), नीलम (S pphire)—अधिकतर नीला लेकिन श्वेत, पीला और गुलाबी भी, और कुछ प्रकार के पन्ना (EmeralJ) और पुखराज (Topaz) अधिकतर इनकी मणिभीय रचना षटकोणीय समपार्श्व (Hexagonal prism) द्वि-सूचीस्तंभ (Bipyramid) और (Rhombohedran) होती है। एक मणि में दो तीन रूपों की

मिलावट भी पाई जाती है। माणिक और नीलम निर्दोष मणिभीय रूप में पाये जाते हैं। इनकी कठोरता हीरे के बाद होती है, इनमें वर्ण विश्लेषण बहुत कम होता है इस कारण हीरे की चमक इनमें नहीं पायी जाती है। इनमें से कुछ मणि नीललोहितोत्तर किरण के पड़ने से स्फुरित होते हैं। कुछ माणिक और नीलम को एक विशेष प्रकार से काटने पर उनमें श्वेत छः किरण वाला तारा बन जाता है। ऐसे पत्थरों को तारा माणिक (Star Ruby) और तारा नीलम (Star Emerald कहते हैं। यह मणि अधिकतर पूर्वी देशों में जैसे बर्मा, स्याम भारतवर्ष, अफगानिस्तान और यूराल पहाड़ों में पाये जाते हैं।

मूल्य में इस समुदाय के बाद वैदूर्य्य (Beryl) समुदाय आता है। यह बेरीलियम अल्युमिनियम सिलिकेट [$(Be_3Al_2(SiO_3)_6$] के मणिभ होते हैं। इसमें सबसे मूल्यवान पन्ना होता है। इसकी मणिभीय रचना षटकोणीय होती है। यह माणिक और नीलम से कम कठोर होता है। इसमें और भी कम वर्ण विश्लेषण होता है इस कारण इसमें चमक नहीं होती। इनका मूल्य केवल इनके सुन्दर रंग और पारदर्शता के कारण होता है। पन्ना पारदर्शक और हरे रंग का होता है। इसका रंग क्रोमियम के कारण होता है, इससे यह पता चलता है कि यह तत्व इन दोनों मणियों में दो रूप में मिला है। यह अशुद्धि जिसके कारण रंग होता है सारे मणि भर में सूक्ष्म रूप से छितराई रहती है।

पृथ्वी में स्फटिक (quartz) एक बहुत साधारण खनिज है। यह लगभग सब प्रकार के चट्टान में पाया जाता है। कुछ प्रकार के स्फटिक तो अत्यन्त सुन्दर होते हैं। यह षटकोणीय समपार्श्वीय मणिभ के रूप में पाया जाता है। यह केवल सिलिकन द्विओषिद होता है। स्फटिक मणि का मूल्य उसकी कटाई पर होता है। कठोरता में यह पन्ना के बाद आता है। कटहला (Amethst) बैंजनी रंग का पारदर्शक स्फटिक होता है। यह बहुत अच्छे मणिभीय रूप में पाया जाता है। इसके रंग की तीव्रता स्थान स्थान पर विभिन्न होती है। इसका रंग संभवतः किसी लोहयौगिक के कारण होता है। गुलाबी स्फटिक (Rosequartz), धूँएदार स्फटिक भी सुन्दर होते हैं। इसमें बहुत कम वर्णविश्लेषण होता है इसलिए इसमें चमक नहीं रहती। इसमें ध्रुवण घूर्णत्व है। यह ध्रुवित प्रकाश की ध्रुवनदशा को बदल देता है।

नरम मणियों में ओपल, मोती और मूँगा इत्यादि हैं। ओपल का धारण करना बहुत अमंगलकारी समझा जाता था परन्तु अब यह बहुत प्रचलित हो गया है। बहुत से ओपल अपनी सुन्दरता के कारण बहुमूल्य हो रहे हैं। और मणियों के प्रतिकूल यह अमणिभ होता है। नरम होने के कारण अधिक प्रयोग के बाद इसकी सुन्दरता और चमक कम हो जाती है पर उसको फिर से चमका कर सुन्दर कर दिया जाता है। इसकी द्युति काँचसी होती है। यह बिलकुल पारदर्शक से लेकर अपारदर्शक तक होता है। इसके अन्दर रंगों का एक सुन्दर मिश्रण दिखाई देता है, यह व्यतिकरण (interfrence) से होता है। व्यतिकरण उसके अन्दर के सूक्ष्म दरारों या छितरी हुई छोटी छोटी पानी की बूदों के कारण होता है। ओपल सिलिका (Silica) के घोल से चट्टान की दरारों में जमती है। कठोर होने में सिलिका कुछ पानी छोड़ देता है और सिकुड़ कर ओपल बन जाता है। सिकुड़ने में दरारें बन जाती हैं और उसके दूसरा सिलिका जम जाता है जिसका वर्त्तनांक (refractive index) भिन्न होता है। इसी प्रकार के ओपल में अधिक व्यतिकरण होता है और सुन्दर रंगों का मिश्रण दिखलाई देता है। आस्ट्रेलिया में सबसे अधिक ओपल मिलता है।

दूसरी नरम मणि मोती है। यहकई तरह के घोंघों के ढक्ने में बनता है। यह कीड़े समुद्र में कालसियम कार्बोनेट खींच कर अपना ढक्कन बनाते हैं। इस ढक्कन में एक कार्बनिक वस्तु और कालसियम

कार्बोनेट की दो मणिभीय रूप होते हैं। इस ढक्कन के अन्दर अगर कोई बाहरी वस्तु या कीड़ा प्रवेश कर जाय तो घोंघे को खुजली लगती है और वह उसके चारों ओर एक (Secretion) जमा देता है और वही मोती बन जाता है। मोती अधिकतर श्वेत हलकी पीली या हलकी नीली होती है। दूसरे रंगों की भी मोतियां पाई जाती हैं। सर्वोत्तम मोती श्वेत, गोल या नाशपाती की तरह होती हैं। नरम होने के कारण चोट से इसके ऊपर निशान बन जाते हैं और चमक नष्ट हो जाती है। मोती में फिर पुरानी चमक नहीं आती गामूं भी मोती की ही तरह कालसियम कार्बोनेट का होता है। उसको कुछ समुद्री कीड़े (Coral polyps Secrete) त्याग करते हैं और अपना ढक्कन बनाने के काम में लाते हैं। लाल और गुलाबी मूंगे मूल्यवान होते हैं।

इन मणियों के अतिरिक्त बहुत और भी होते अम्बर (amber), याकुत (garner) सिलखड़ी (gypsum), यशव (Jade), पुखराज (tpaz) फीरोजा (tesquoise) इत्यादि। यह सब रसायन शास्त्र के अनुसार केवल मामूली तत्वों के संयोग या मिश्रण हैं, परन्तु रचनात्मक दृष्टि से प्राकृतिक के सर्वोत्तम कला के सर्वश्रेष्ठ नमूने हैं चाहे वह मणिभीय रूप में हों चाहें अमणिभीय रूप में हों।

नेशनल एकेडमी और इंडियन एकेडेमी के सम्मिलित अधिवेशन की स्वागत कारिणी समिति के अध्यक्ष डाक्टर ताराचन्द के भाषण के कुछ अंश

प्रयाग विश्वविद्यालय की ओर से मैं आपका हार्दिक स्वागत करता हूँ। यह एक प्रसन्नता की बात है कि वैज्ञानिकों की दो उच्च संस्थाओं ने अपना सम्मिलित अधिवेशन प्रयाग में करने का निश्चय किया है। हमारे इतिहास में सामंजस्य तथा एकीकरण की वृद्धि में प्रयाग का एक विशेष महत्व रहा है।

मैं अपने चारो ओर भारतवर्ष के प्रमुख वैज्ञानिको को देख रहा हूँ और इस समय यह समस्या मेरे सम्मुख है कि किस विषय पर बोलूं। मैं साधारणतया विज्ञान पुकारे जाने वाले विषयों से लगभग अनभिज्ञ हूँ और 'राजनीति' में, जो केवल शिष्टता के नाते राजनैतिक विज्ञान' कहलाता है, मेरा विशेष अध्ययन है; तथापि मैं आप लोगों से प्रार्थनाकरता हूँ कि कुछ क्षणों तक मेरी बात सुनने का कष्ट सहन करें। प्रार्थमिक वैज्ञानिकों में मुख दार्शनिक अरस्तू ने सब से पहिले राजनैतिक विज्ञान के महत्व की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया था; राजनैतिक विज्ञान व्यक्तिगत व समाजिक दोनों ही दृष्टिकोणों से मनुष्य के व्यवहार को समझने तथा अध्ययन करने का प्रयत्न करता है और आज वैज्ञानिकों को यह तथ्य स्पष्ट हो गया है कि वह केवल एक अकेले कोने में बैठ कर वैज्ञानिक अध्ययन से सन्तुष्ट नहीं हो सकते वरन् उन्हें विज्ञान के सामाजिक व राजनैतिक प्रभावों को भी ध्यान में रखना होगा।

विज्ञान के दो पहलू हैं, एक तो वह प्रबोधन का साधन है और दूसरे शक्ति का स्रोत है। परन्तु ऐसा प्रबोधन जो बिना किसी ध्येय के हो मिथ्यावाद में परिणित हो जाता है और ऐसी शक्ति जिसका कोई उद्देश्य नहीं होता स्वयं घातक तथा सभ्यता विनाशक बन जाती है। सन् १९३२ में ब्रिटिश एसोसियेशन की एक सभा में सर अल्फ्रेड इविङ्ग ने जो विचार प्रकट किये थे, उनसे मैं सहमत हूँ: कुछ वर्ष पहिले हम वैज्ञानिक को यह स्वाधिकार दे सकते

थे कि वह अपनी यन्त्र-विद्यायों के अनुसन्धानों में विना विघ्न के लगा रह कर प्रसन्नता प्राप्त कर; परन्तु आज तो हमें उससे यह प्रश्न पूछना ही है कि "तुम्हारा ध्येय क्या है और तुम सभ्यता को कहाँ ले जा रहे हो?" गत महायुद्ध से इस प्रकार के प्रश्न व संशय हर एक हृदय में उठने लगे हैं। महायुद्ध के कारण विज्ञान ने तीव्र गति से उन्नति की और सब से बड़ी बात तब हुई जब मनुष्य को परमाणुक शक्ति के प्रयोग में सफलता मिल गई, प्रगति की इस भयानकता ने उपरोक्त प्रश्न को वास्तवकिता का रूप दे दिया है और रिपन के पादरी की तरह के कुछ लोग तो इस प्रगति के भंयकर परिणामों को देख कर इस मत के हो गये कि हमें १० वर्ष के लिए अपनी भौतिक व रासायनिक प्रयोग शालाओं को ही बन्द कर देना चाहिये। मैं पादरी महोदय से सहमत नहीं हूँ, यह तो निराशावादी दृष्टि कोण होगा; विज्ञान से उत्पन्न कठिनाइयाँ विज्ञान को दबाने से नहीं वरन् विज्ञान की वृद्धि द्वारा ही हल हो सकती हैं। युद्ध की भयानकता के लिये विज्ञान को दोष देना असंगत होगा।

हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि यद्यपि विज्ञान का समाज पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है तथापि विज्ञान केवल एक सामाजिक घटना ही है; मेरा अभिप्राय यह है कि सामाजिक आवश्यकताएँ व शक्तियाँ विज्ञान के मार्ग व विकास को निर्धारित करती हैं। इतिहास का प्रत्येक अध्याय इस तथ्य को स्पष्ट दिखलाता है कि विज्ञान का इतिहास समाज के इतिहास से क्रम बद्ध है और हर युग में सामाजिक आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों के अनुसार ही विज्ञान की प्रगति हुई है। समय-समय पर होने वाले युद्धों ने सामाजिक आवश्यकताओं को उस दिशा में परिणित किया है जिससे सहयोग कर विज्ञान ने हमको भंयकर परिणाम दिये है। गत दो महायुद्धों के इतिहास से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है और अनगिन्त आलौकिक आविष्कारों के अतिरिक्त इन दो युद्धों के परिणाम स्वरूप विज्ञान के संगठन में बिल्कुल परिवर्त्तन हो गया है। व्यक्ति वादिता का युग समाप्त हो कर आज सरकार द्वारा संगठित व व्यवस्थित अनुसंधान का युग आ गया है।

विज्ञान शक्ति का स्रोत है और यह स्रोत इतना मूल्यवान है कि हम इसे अकेला नहीं छोड़ सकते है। चाहे विज्ञान धर्म की सेवा में लगा हो, अथवा उसका प्रयोग आर्थिक युद्ध में किया जारहा हो; समाज उस पर अवश्य नियंमण करने का प्रयत्न करेगा। अस्तु विज्ञान का प्रयोग किस प्रकार होता है वह सामाजिक संगठन के स्वभाव पर निर्भर होगा और यह समाज के हाथ में है कि विज्ञान उसके लिये एक वरदान हो अथवा शाप।

विज्ञान प्रबोधन का साधन है जिसके बिना हमारी वर्त्तमान सभ्यता जीवित नहीं रह सकती। विज्ञान हमें लाभदायक ज्ञान देता है परन्तु लाभदायक होते हुए भी यह ज्ञान सम्पूर्ण नहीं है। विज्ञान हमें संसार और प्रकृति के बारे में वृहत् ज्ञान दे सकता है परन्तु वह मानसिक भावनाओं व प्रेरणाओं के बारे में कुछ नहीं बतला पाता। विज्ञान प्रकृति को एक वाह्य वस्तु की तरह लेकर उसकी व्याख्या करने का प्रयत्न करता है परन्तु मष्तिष्क के लिये वाह्यता अर्थ हीन है। विज्ञान आपेक्षिक तथ्यों का अध्ययन करता है और मष्तिष्क तथा दर्शन निरापेक्ष का अध्ययन करते हैं। विज्ञान की इन सीमाओं के वर्णन करने से मेरा अभिप्राय विज्ञान के महत्व को कम करना नहीं है। मनुष्य को अधिक से अधिक विज्ञान की आवश्यकता है और विशेष कर भारतवर्ष में तो विज्ञान की वृद्धि अत्यन्त ही अधिक आवश्यक है। भारतवर्ष में एक दीर्घ काल से अधिष्ठाननिष्ठता (Subjectivism), रहस्यवादिता (mysticism) और तपस्विता (asceticism) का बोल बाला रहा है और इसी कारण भारत में विज्ञान की यथार्थता का महत्व बहुत अधिक है।

महिलाओ और सज्जनो ! मैं लगभग समाप्त कर चुका; परन्तु बैठने के पहिले आभार प्रदर्शन मेरा आवश्यक कर्त्तव्य है। मेरी कामना है कि यह सम्मिलित अधिवेशन अनुसन्धान की वृद्धि में सफल हो और हम सब में यह प्रेरणा उत्पन्न करे कि हम सब उस सत्य की खोज की ओर आकर्षित हो जो न केवल विज्ञान की परन्तु समस्त सामाजिक श्रङ्खला व मानविक प्रगति की नीव है।

विज्ञान के प्रति जन-साधारण का दृष्टिकोण*

विज्ञान द्वारा हम ज्ञान का संकलन व संगठन करते हैं और वैज्ञानिक अध्ययनों में सत्य की निस्वार्थ खोज की जाती है। मानवता के लिए ज्ञान का यह संकलन व संगठन आवश्यक है और यह मानना ही पड़ेगा कि सत्य की निस्वार्थ खोज ने मनुष्य के लिए बहुत ही लाभप्रद आविष्कार हमें दिये हैं। परन्तु साथ ही साथ हमें ज्ञान के इस संकलन से सचेत भी रहना है; ज्ञान की खोज और सत्य का अध्ययन आवश्यक है परन्तु यह भी आवश्यक है कि यह खोज व अध्ययन मानवता की भलाई की दृष्टिकोण से किया जाए और इसी दशा में इस खोज की प्रतिष्ठा की जा सकती।

मैं आपका ध्यान इस ओर आकर्षित कराना चाहता हूँ कि आपके उद्योगों के दो पहलू हैं. उनमें एक तो रचनात्मक पहलू है और दूसरा विध्वंसात्मक। विज्ञान और वैज्ञानिकों ने ही हमें भाप, वैद्युत्शक्ति, वायुयान, तारबेतार और असंख्य औषधियाँ दी हैं; पर इसी विज्ञान ने आज मनुष्य के हाथ में परमाणुक बम भी पकड़ा दिया है, जिससे कभी-कभी यह भय होता है कि किञ्चित यही शक्ति समस्त मानविक सभ्यता का ही विनाश न कर बैठे। मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मेरा मत यह कभी नहीं रहा है कि इन विध्वंसकारी परिणामों के लिए विज्ञान या वैज्ञानिकों को दोष दूँ। इनका उत्तरदायित्व तो हमारे राजनैतिक नेताओं पर है। फिर भी मैं आप वैज्ञानिकों से अनुरोध करूँगा कि आप ऐसा वातावरण बनाएँ और ऐसी परम्परा (tradition) स्थापित कर दें कि आपके अनुसन्धान तथा खोजें इस विनाशकारी दिशा में शोषित न किये जा सकें। आपको इस परम्परा के स्थापन में प्रयत्न करना ही पड़ेगा, नहीं तो आप जन साधारण की सहानुभूति को और भी अधिक खो बैठेंगे। 'और भी अधिक' शब्दों का प्रयोग मैंने जान बूझ कर किया है, क्योंकि आप इस तथ्य से अनभिज्ञ न होंगे कि जन साधारण के हृदय में आपकी खोजों व प्रयत्नों के बारे में संशय आज भी वर्त्तमान है। जन साधारण की तो मुख्य आवश्यकता है प्रसन्नता व आनन्द। क्या आपकी खोजें उसे उसकी मुख्य माँग दे सकने में सफल हो सकी है? आपने उसके लिए दूरियाँ कम कर दी हैं, उत्पादन शक्ति में वृद्धि कर उसे अधिक रुपया कमाने की शक्ति दे दी है, कुछ सीमा तक कष्टों व व्याधों के निराकरण उपाय आपने उसे दिये हैं, परन्तु क्या आप उसके आन्नद के किञ्चित भी वृद्धि कर पाये हैं? मेरा उद्देश्य यहाँ आन्नद' की परिभाषा व व्याख्या करने से नहीं है; मेरा ध्येय तो केवल इतना है कि आज का जन साधारण आपके प्रयत्नों को अपनी परिभाषा के आन्नद में वृद्धि कारक ही नहीं पाता बल्कि वह उन्हें निश्चय रूप से हानिकारक व शत्रु रूप में पाता है। मैं आपको उसके इस दृष्टिकोण से सचेत कर देना चाहता हूँ क्योंकि आपका, उसका और सच में

---

* दिसम्बर मास के अन्तिम सप्ताह में प्रयाग विश्व विद्यालय में होने वाले नेशनल व इंडियन ऐकेडमी के सम्मिलित अधिवेशन में प्रयाग हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश श्री कमला कान्त जी वर्मा ने सभापति का आसन प्रतिष्ठित किया था। उसी अवसर पर दिये गये भाषण का सारांश

मानवता मात्रा को कल्याण इस दृष्टि कोण से सचेत हो इसके मूल कारणों के निराकरण ही में हैं।

इसके अतिरिक्त आप भारतीय वैज्ञानिकों से भारत के निवासी के नाते भी मेरा कुछ अनुरोध है। हरदेश को अपने वैज्ञानिकों की आवश्यकता है और भारत में जहाँ कि बड़े बड़े क्षेत्र सुप्त अवस्था में पड़े हैं वैज्ञानिकों की खोज की आवश्यकता और भी अधिक हो जाती है; परन्तु यह आवश्यकता आज तो और भी बहुत बढ़ गई है। गत महायुद्ध से भारत पर भी विनाशकारी प्रभाव पड़े हैं और उसे भी पुनर्निमाण की अत्यन्त आवश्यकता है और यह भी स्पष्ट है कि यह निर्माण वैज्ञानिक के सहयोग के बिना असम्भव है। मेरी आशा है कि आप अपने इस कर्त्तव्य को निस्वार्थ, सतत परिश्रम से पूरा करेंगे और साथ ही साथ मैं यह भी आशा करता हूँ कि सरकार भी आपको वह आवश्यक सहानुभूति व सहायता देने से हाथ न घसीटेगी जिसके बिना यह कार्य असम्भव होगा।

मुझे केवल एक बात और कहना है—संसार इस क्षण एक अव्यवस्थित अवस्था में है और हमारा देश भी उसी का एक भाग है। पुर्ननिर्माण की वृहत योजनाएँ बनाई जारही हैं और उनको कार्यान्वित करने का प्रयत्न हो रहा है परन्तु मेरे विचार में कि केवल पार्थिव जगत में निर्माण करना पर्याप्त न होगा। मेरी तुच्छ बुद्धि से तो पार्थिव जगत से भी अधिक आवश्यक पुनर्निर्माण मानसिक तथा चारित्रिक क्षेत्र में होना है। आज सत्य, मर्यादा सद्व्यवहार को किञ्चित महत्व नहीं दिया जारहा है; अनैतिकता और कूटनीति का बोल बाला हो रहा है। सत्य व ज्ञान के प्रत्यक खोज करने वाले का यह परम कर्त्तव्य हो जाता है कि इस अवस्था को बदलने का प्रयत्न करे। मुझे विश्वास है कि आपके प्रयत्न इस दिशा में बहुत लाभदायक होंगे। विज्ञान ने आपको प्रथम बात जो सिखाई है वह है मानसिक व कार्यात्मक नियंत्रण और इस नियंत्रण का दूसरा नाम है 'संगठित स्वार्थहीनता'। आपके मानसिक व कार्यात्मक नियंत्रण का जन साधारण पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ेगा और मुझे कोई सन्देह नहीं है कि आप इस संगठित स्वार्थ-हीनता को न केवल अपने में ही कायम रक्खेंगे बल्कि इसका विस्तार भी जन साधारण में करेंगे।

विज्ञान परिषद् के ३३ वें वर्ष अक्टूबर १९४५ से सितम्बर १९४६ का कार्य विवरण

विज्ञान परिषद् प्रयाग के ३३ वें वर्ष का कार्य उतना संतोष जनक नहीं था जितना इसके पहले दो तीन वर्षों तक रहा। कागज निमंत्रण के कारण नयी पुस्तकों का प्रकाशन प्रायः नहीं के समान हुआ। श्रीयुत ओंकारनाथ परती की पुस्तिका 'खाद्य और स्वास्थ्य' तथा डा० सन्तप्रसाद टंडन की वायुमंडल की सूक्ष्म हवाएं' ही छोटी छ टी पुस्तकें प्रकाशित हो सकीं। रेडियो की पुस्तक पूरी करने के लिये लेखक के अनुरोध से ग्वालियर में छपाने का प्रबन्ध किया गया जिसके लिये महंगा कागज खरीदना पड़ा, परंतु कागज खरीद लेने पर मालूम हुआ कि जिस टाइप में पुस्तक यहाँ छपी है वह टाइप वहाँ कहीं मिलता ही नहीं इस लिए वह पुस्तक ज्यों की त्यों वहीं पड़ी है। सरल विज्ञान सागर जिल्द साज के यहाँ से बहुत समय के बाद आया जो अब उपयुक्त दोनों पुस्तिकाओं के साथ सभ्यों के पास इसी दिसम्बर मास के अन्दर भेज दिया जायगा। पुरानी पुस्तकों का भंडार भी धीरे-धीरे समाप्त हो रहा है। कागज की कमी के कारण सरल विज्ञान सागर इतना कम छपाया गया था कि वह आजीवन और साधारण सभ्यों को ही देने में समाप्त हो जायगा। घरलू डाक्टर, मधु मक्खी पालन, जिल्द

साजी, ताप आदि पुस्तकें समाप्त हो गयी हैं। सूर्य सिद्धान्त का प्रथम खंड (पहले तीन अध्याय) भी प्रायः समाप्त हैं। पर्याप्त सामग्री के अभाव तथा छपाई की महंगाई के कारण इनका दूसरा संस्करण प्रकाशित करना बिना सरकार की सहायता या विशेस चंदे के नहीं हो सकता।

डाक हड़ताल, साम्प्रदायिक झगड़ों तथा अन्य कई कारणों से विज्ञान' भी कई महीने तक समय पर नहीं निकाला जा सका।

इस वर्ष निम्नांकित सज्जन परिषद के पदाधिकारी रहे :—

सभापति—डा० श्रीरंजन

उपसभापति : १—प्रो० सालगराम भार्गव

२ -डा० धीरेन्द्र वर्मा

प्रधान मंत्री : श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव

मंत्री : १—डा० रामशरण दास

२—डा० हीरालाल दुबे

कोषाध्यक्ष : डा० रामदास तिवारी

आय व्यय परीक्षक—डाक्टर सत्यप्रकाश

सम्पादक : डा० संतप्रसाद टंडन

स्थानीय अंतरंगी—

१—प्रो० ए० सी० बनर्जी

२—डा० गोरखप्रसाद

३—डा० बी० एन० प्रसाद

४—श्री रामचरण मेहरोत्रा

बाहरी अंतरंगी—

१—श्री वेंकटलाल ओझा, हैदराबाद दक्षिणी

२—श्री हीरालाल खन्ना, कानपुर

३—श्री पुरुषोत्तमदास खत्री डूँगरपुर

४—श्री छोटू भाई सुथार, आणद

५—डा० दौलतसिंह कोठारी, दिल्ली

सितम्बर १९४६ तक परिषद के आजीवन सभ्यों की संख्या ४४ और साधारण सभ्यों की संख्या १२९ है। इस वर्ष नीचे लिखे सज्जन परिषद के आजीवन सभ्य और सभ्य हुए।

आजीवन सभ्य—

१—श्री नन्दकुमार तिवारी हिन्दू विश्वविद्यालय

२—श्री दुकालूप्रसाद मिश्र मालगुजार रायपुर

३—श्री कैलाशनाथ कपूर कलकत्ता

साधारण सभ्य—

१—डा० रामदेव मिश्र

२—श्री आर० एम० रथी सेक्रेटरी महावीर हिंदी वाचनालय, हैदराबाद (द०)

३—श्री शान्तानन्द जी मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल चित्तौड़गढ़

४—श्री कैलाशनाथ जी गोल्डेन राक त्रिचनापल्ली

५—श्री प्रधान मंत्री, होशियारपुर प्रांतीय सभा

६—श्री घनश्यामदास पुजारा, विष्णु मंदिर पेशावर

इस वर्ष के आय व्यय का लेखा इस प्रकार है :—

आय

आजीवन सभ्यों से	१४५)
साधारण सभ्यों से	२१८।।।)
पुस्तकों की बिक्री से	१६१३≡)
विज्ञान के ग्राहकों से	७५६।−)।
ब्याज से	८२।।≡)
ब्लाकों की बिक्री से	७=।।=)
संयुक्त प्रान्तीय सरकार से	६००)
गतवर्ष की रोकड़ बाकी	१८४१।≡)।।।
	५३८२।−)

व्यय

लेखक का वेतन	३०२।।।=)।।
चपरासी का वेतन	२३८)
गोदाम और दफ़्तर का किराया	१=०)
स्टेशनरी	१३)
इक्के, ठेले का किराया	१०।।)
साइकिल की मरम्मत में	१४। ।।
पार्सल आदि का खर्च	१६।।।−)।
विज्ञान की छपाई	११५०।।≡)।।

पुस्तकों की छपाई	१४५)
अन्य पुस्तकों के खरीदने में	५६)
टिकट आदि (पोस्टेज)	२४२।=)।
जिल्द बंधाई	२७॥≡)
फुटकर खर्च	२३≡)
प्रूफ रीडर को	२३॥=)
कागज खरीदा	३५०‒)
ब्लाक बनवाने में	२७५॥)॥
बैंक कमीशन	३)
स्थिर कोष में जमा	६००)
रोकड़ बाकी❀	१६६९॥‒)॥
	५३४२।‒)

विज्ञान के संबंध में आय व्यय का ब्यौरा इस प्रकार है:—

आय

ग्राहकों से	७५६।‒)।
ब्लाकों की बिक्री से	७८॥=)
सभ्यों से	९७॥)
सरकार से	६००)
	१५३५।≡)।
घाटा जो पुस्तकों की आय से दिया गया	५९०।)।
	२१२५॥≡)॥

व्यय

कागज	३५०)
प्रूफ दिखाई	२३॥=)
ब्लाक में	२७५॥)॥
छपाई	११५०॥≡ ॥
डाक खर्च	१४०॥)॥
लेखक का वेतन (कुल १/३)	१००॥≡)॥
चपरासी का वेतन "	७९।‒)।
फुटकर खर्च	५)
	२१२५॥≡)॥

❀इसका १२२।‒) स्थायी कोष में जमा करने पर शेष बचता है १५४७।)॥

यह स्मरण रखना चाहिए कि इस खर्च में सम्पादन का खर्च शामिल नहीं है और न लेखकों का पुरस्कार ही जो अब तक अवैतनिक ही रहे हैं। यदि यह भी देना पड़ता तो डेढ़ दो हजार रुपये का घाटा होता। कई कारणों से मैं समझता हूँ कि अब सम्पादक और लेखकों के बिना पुरस्कार दिये काम नहीं चल सकेगा। विज्ञान नियमित ढङ्ग और सुचारु रूप से चलने लगे और अच्छे अच्छे लेखों से विज्ञान की उपयोगिता बढ़े तो उसकी ग्राहक संख्या में भी इतनी वृद्धि हो जायगी कि हमें घाटा नहीं उठाना पड़ेगा। इसी दृष्टि से आगामी वर्ष का अनुमान पत्र उपस्थित किया गया है। विज्ञान की १००० प्रतियाँ छपाने में जो खर्च पड़ेगा उसका अनुमान यहाँ लगाया जाता है :—

आय

लगभग ८०० ग्राहकों से	२४००)
" ५० सभ्यों से	१२५)
सरकार से	६००)
	३१२५)
घाटा	९९१)
	४११६)

व्यय

३२ पेज का विज्ञान १०००, ४८ रीम	६२४)
६ रीम कवर का दाम	१२०
छपाई २४) प्रति फर्मे की दर से १०८) प्रतिमास	१२९६)
रैपर की छपाई	५०)
ब्लाक	३००)
डाकखर्च	२५०)
लेखक का वेतन कुल का आधा १५) की दर से	१८०)
चपरासी का वेतन कुल का १/३	९६)
सम्पादक को भेंट ५०) प्रतिमास	६००)
लेखकों को पुरस्कार ५०) "	६००)
	४११६)

इस सम्बन्ध में कागज की भी कठिनाई सामने है। अभी तक तो लगभग २ रीम प्रतिमास की दर से कागज मिल रहा है। जब संख्या दूनी हो जायगी तब कागज का कोटा भी दुगुना करवाना पड़ेगा।

अन्य कामों के लिए शेष अनुमान पत्र यह है-

आय

पुस्तकों की बिक्री से	१०००)
रोकड़ बाकी *	१५४७)॥
	२५४७)॥

व्यय

पुस्तकों के लिए ब्लाक	३००)
स्टेशनरी पैकिंग आदि	५०)
डाक व्यय	१५०)
इक्का, ठेला आदि	२५)
रेलभाड़ा आदि	१५)
साइकिल की मरम्मत	३०)
बैंक को इंसीडेंटल चार्ज	१०)
दफ्तर और गोदाम का किराया	१८०)
क्लार्क का वेतना आधा	१८०)
चपरासी का वेतन ३/४	१९२)
पुस्तकों की जिल्द बंधाई	५००)
नयी पुस्तकों की छपाई	६१५।)॥
	२५४७)॥

अंत में हम उन मित्रों को धन्यवाद देना अपना कर्तव्य समझते हैं जिन्होंने अपने पूर्ण सहयोग से परिषद की सेवा की। विज्ञान का सम्पादन डा० सन्तप्रसाद जी टंडन ने बड़े परिश्रम से किया इस लिए वह विशेष धन्यवाद के पात्र हैं। कोषाध्यक्ष डा० रामदास तिवारी तथा आय व्यय परीक्षक डा० सत्यप्रकाश ने परिषद का हिसाब जाँचने में बड़ा परिश्रम किया इस लिए परिषद उनका बहुत आभारी है। श्री महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव ने चार वर्ष तक प्रधान मंत्री के पद पर रह कर विज्ञान परिषद की जो सेवा की है उसके लिए परिषद आभारी है और आशा करती है कि भविष्य में भी वह अपना सहयोग देते रहेंगे।

*स्थायी, स्थिर और बोर्ड के रुपयों को छोड़ कर जो ३४००) और ७२००) हैं।

३३वें वार्षिक अधिवेशन का कार्य्य विवरण

विज्ञान परिषद का ३३ वाँ वार्षिक अधिवेशन सौर ८ फाल्गुन संबत २००३ वि० तदनुसार २० फरवरी सन् १९४७ ईस्वी को ५ बजे संध्याकाल में म्योर सेन्ट्रल कालेज बिल्डिङ्ग के भौतिक विज्ञान के व्याख्यान भवन में हुआ। डाक्टर श्री रंजन ने सभापति का आसन ग्रहण किया। व्याख्यान भवन परिषद के सभ्यों विश्वविद्यालय के अध्यापकों तथा विद्यार्थियों से भरा हुआ था। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान के अध्यापक श्री नन्दकुमार जी तिवारी ने लगभग एक घंटे तक "वनस्पतियों में सचेतनता तथा सज्ञानता" पर बहुत ही मनोहर और शिक्षाप्रद सचित्र व्याख्यान दिया। उन्होंने अपने व्याख्यान में अनेक दृष्टि कोणों से स्पष्ट दिखलाया कि वनस्पति संसार में न केवल जीवन ही है बल्कि जीवधारी प्राणियों की तरह वनस्पतियों भी में सचेतनता व सज्ञानता है और वह भी अन्य जीवधारियों की तरह वातावरण से प्रभावित होते हैं। उन्होंने कई दृष्टान्तों से बतलाया कि किस प्रकार वातावरण प्रतिकूल हो जाने पर वनस्पतियों की वृद्धि संकुचित हो जाती है; तो भी इस प्रतिकूल वातावरण में जीवित रहने के लिए वे मार्ग ढूँढ निकालते हैं। श्रीयुत तिवारी जी को धन्यवाद देने के बाद यह साधारण सभा विसर्जित हुई।

इसके पश्चात् विज्ञान परिषद के अंतरंग सभा की एक बैठक हुई। गत वार्षिक अधिवेशन का का

विवरण पढ़े जाने और स्वीकृत होने के पश्चात् आगामी वर्ष के लिए निम्न पदाधिकारी चुने गये।

सभापति—डाक्टर श्री रजन

उप-सभापति—प्रो० सालगराम भार्गव

डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा

प्रधान मंत्री—डाक्टर हीरालाल दुबे

मंत्री—श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव

डाक्टर रामदास तिवारी

कोषाध्यक्ष—डाक्टर रामशरणदास

स्थानीय अंतरगी—प्रो० ए० सी० बैनरजी

डाक्टर बी० एन० प्रसाद

डाक्टर गोरख प्रसाद

श्री हरिमोहनदास टंडन

प्रधान सम्पादक—श्री रामचरण मेहरोत्रा

बाहरी अंतरंगी—श्री वेंकटलाल ओझा (हैदराबाद दक्षिण)

श्री हीरालाल खन्ना (कानपुर)

डाक्टर ओंकारनाथ पर्ती सागर (सी० पी०)

श्री छोटू भाई सुथार (अणाद, गुजरात)

डाक्टर दौलत सिंह कोठारी

आयव्यय परीक्षक—डा० सत्यप्रकाश

वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली पर विचार विनिमय

इसके बाद वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दा वली पर विचार विनिमय हुआ जिस में निम्न लिखित सभ्यों ने भाग लिया।

श्री नन्दकुमार तिवारी जी ने कहा कि वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली संस्कृत मूलक होनी चाहिए जिससे एक प्रधान शब्द के अनेक गौण शब्द सहज ही बनाये जा सकें, अंग्रेजी शब्दों को ज्यों के त्यों ग्रहण करने में इतने शब्द हिन्दी भाषा में लेने पड़ेंगे जिनका याद रखना सब साधारण के लिए सुगम न होगा। विदेशीय शब्दों को लेने से १० प्रतिशत आविष्कारकों को तो लाभ हो सकता है परन्तु ९० प्रतिशत लोगों के ऊपर अनगिनत शब्दों को बोझा लाद देना अनुचित होगा। जरमन और फ्रासीसी भाषाओं के शब्द भी तो अंग्रेजी शब्दों से नहीं मिलते और उन से भिन्न होते हैं।

डाक्टर गोरखप्रसाद जी ने कहा कि शब्दों का चुनाव करने का समय अभी नहीं आया। शब्द बनने दिया जाएँ और आठ दस वर्ष बाद देखा जाये कि उस समय के प्रचलित शब्दों में कौन से ऐसे हैं जो हिन्दी भाषा में चालू हो सकते हैं और पच सकते हैं। आपने कहा कि विज्ञान के अनेक विषयों पर पुस्तकें नहीं हैं, उन पर पुस्तकें लिखी व प्रकाशित की जायें, तो अधिक ठोस काम होगा। केवल संस्कृत ही से शब्द बनाये जाएँ इसके पक्ष में मैं नहीं हूँ। हाँ, अधिकांश शब्द हिन्दी व संस्कृत के लिए जाएँ।

डाक्टर सत्य प्रकाश ने कहा कि आरम्भ में मैं शुद्ध संस्कृत या हिन्दी से शब्द बनाने के पक्ष में था और रसायन विज्ञान के शब्द बना कर अपनी पुस्तकों में प्रयोग भी कर चुका हूँ, परन्तु मेरे सिवा किसी और ने उन शब्दों को न अपनाया और आज भी वे मेरी ही पुस्तकों तक सीमित हैं। व्यवहारिक दृष्टि से उनको अनुपयुक्त देख कर अब मेरा दृष्टि कोण वही है जिसकी चर्चा डाक्टर गोरख प्रसाद जी ने अभी की है: जैसे "साइकिल" के साथ बहुत से नाम आये जिनका चलन हो गया है इसलिये वे उसी रूप में ले लिए जायें। इस कारण बीच का रास्ता स्वीकार करना ही उचित जान पड़ता है।

डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा ने बतलाया कि "भारतीय हिन्दी परिषद" ने विज्ञान के लगभग सभी विभागों की पारिभाषिक शब्दावली तैयार करवा ली है और डाक्टर सत्य प्रकाश उनका सम्पादन कर रहे हैं। आशा है कि एक वर्ष में वह कोष प्रकाशित हो जायेगा।

श्री नन्दकुमार जी ने कहा कि डाक्टर सत्य प्रकाश की व्यवहारिक दृष्टि से काम न चलेगा। धातुओं के नाम संस्कृत या हिन्दी ही में रहना

चाहिए। यदि डाक्टर सत्य प्रकाश जी के शब्द प्रचलित नहीं हुए तो उनका प्रचार करने की आवश्यकता है। सूत्रों के लिए भी हिन्दी के ही अक्षर उपयुक्त होंगे अँग्रेजी के अक्षरों से काम लेने में जन साधारण को अंग्रेजी के अक्षर सीखने पड़ेंगे, जो अनुचित होगा।

प्रोफेसर ए० सी० बनर्जी ने कहा कि बङ्गला, गुजराती, मराठी, हिन्दी आदि सभी भाषाओं की पारिभाषिक शब्दावली एक होनी चाहिए क्योंकि इन सभी भारतीय भाषाओं में साम्य है।

इसके बाद बाहर से आये सज्जनों तथा सभापति को धन्यवाद देने के पश्चात सभा विसर्जित हुई।

महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव,
प्रधान मंत्री
२०—२—४७

वैज्ञानिक समाचार

भारतीय विज्ञान परिषद् :—भारतीय विज्ञान परिषद् का ३४ वाँ अधिवेशन भारत वर्ष की राजधानी दिल्ली में जनवरी के द्वितीय सप्ताह में बड़े समारोह के साथ हुआ। इस अधिवेशन के सभापति देश के सर्वमान्य नेता श्री जवाहरलाल जी नेहरू थे। भिन्न विभागों में निम्न लिखित वैज्ञानिकों ने सभापति का आसन ग्रहण किया :

(१) भौतिक विज्ञान विभाग के अध्यक्ष डाक्टर के० बनर्जी

(२) रसायन शास्त्र विभाग के अध्यक्ष डाक्टर पी० के० बोस

(३) वनस्पति विज्ञान विभाग के अध्यक्ष डाक्टर ए० सी० जोशी

(४) प्राणि विज्ञान विभाग के अध्यक्ष डाक्टर जी० डी० भालेराव

(५) कृषि विज्ञान विभाग के अध्यक्ष डाक्टर एन० एल० दत्त

(६) शरीर विज्ञान विभाग के अध्यक्ष प्रोफेसर एस० ए० रहमान

(७) मनोविज्ञान विज्ञान के अध्यक्ष प्रोफेसर पी० एस० नायडू

(८) एन्थ्रापालोजी विभाग की अध्यक्ष डाक्टर श्रीमती इरावतीकार्वे

(९) चिकित्सा विज्ञान के अध्यक्ष डाक्टर जी० पाङ्गा

नेशनल ऐकेडमी आफ़ साइन्सेज़ और इंडियन ऐकेडमी आफ़ साइन्सेज़ का सम्मलित अधिवेशन प्रयाग में २६, २७, २८ दिसम्बर को हुआ। प्रयाग हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश श्री कमला कान्त वर्मा उसके सभापति थे। यह अधिवेशन कई दृष्टि कोणों से बहुत ही सफल रहा। दोनों ऐकेडमियों के प्रसिद्ध वैज्ञानिकों ने इसके विचार विनिमयों तथा वाद विवाद में भाग लेकर परस्पर एक दूसरे से लाभ उठाया। जन साधारण के लिए तीन व्याख्यानों का प्रबन्ध किया गया; प्रथम दिन सर सी० वी० रमन ने 'जवाहिरात' पर भाषण दिया, दूसरे दिन दक्षिणी भारत के प्रसिद्ध रसायनज्ञ श्री टी० आर० सेसादरी ने "युद्ध कालीन रासायनिक अन्वेषणों" पर एक भाषण दिया और तीसरे दिन भारतवर्ष के सर्व प्रमुख रसायनज्ञ श्री नील रत्न धर जी ने "उपवास के रासायनिक महत्व" पर एक बहुत ही ओजस्वी भाषण दिया।

दिल्ली विश्व विद्यालय द्वारा विदेशी वैज्ञानिकों का सम्मान : १० जनवरी को दिल्ली विश्व विद्यालय में एक विशेष दीक्षान्त समारोह किया गया। इस अवसर पर विश्वविद्यालय के चांसलर लार्ड वैवेल ने ९ लब्ध प्रतिष्ठ विदेशी वैज्ञानिकों को 'डाक्टर आफ साइन्स' की आनरेरी उपाधि प्रदान कर सम्मानित किया। इनके नाम इस प्रकार हैं :—

ब्रिटेन के सर चार्ल्स-डार्विन. सर हैरल्ड स्पेन्सर जोन्स, सर डार्सी थाम्पसन, और प्रोफेसर पी० एम० एस० ब्लैकेट, अमेरिका के डाक्टर हार्लो शेपले और डाक्टर ए० एफ० ब्लैकेस्ली, फ्राँस के प्रोफ़ेसर एक्वेस हडमर्ड और रूस के एकेमेडीसियन वी० पी० वोल्गिन और एकेमेडीसियन ई० एन० पैवलोवस्की।

बोस रिसर्च इंसट्यूट का २८ वाँ वार्षिक अधिवेशन ३० नवम्बर को हुआ। इस अवसर पर कलकत्ता विश्वविद्यालय के भौतिक विज्ञान के आचार्य एस० के० मित्र ने आठवाँ सर जगदीश चन्द्र बोस—स्मारक भाषण दिया। उनका विषय "सूक्ष्म-तरङ्गों" से सम्बन्धित था। इस विषय पर बोलते हुए उन्होंने सर बोस के इस दिशा में अनुसन्धानों का महत्व बतलाया। आज तो द्वितीय-विश्व-युद्ध में रादर' का प्रयोग होने के कारण सूक्ष्म-तरङ्गों का महत्व बहुत ही बढ़ गया है। परन्तु आज से ५० वर्ष पूर्व सर जगदीश ने इस दिशा में जो महत्व पूर्ण अन्वेषण किये, वह वास्तव में आश्चर्य जनक हैं।

इंसट्यूट के डाइरेक्टर ने वार्षिक रिपोर्ट पढ़ते हुए बतलाया कि आगामी मास से इंसट्यूट के प्रबन्ध-प्रणाली में बहुत परिवर्तन हो जायेंगे। २८ वर्ष से यह इंसट्यूट केवल ट्रस्टियों द्वारा प्रबन्धित होता था, परन्तु अब इसकी प्रबन्धक सभा में ट्रस्टियों के अतिरिक्त सरकारी प्रतिनिधि व बाहरी वैज्ञानिक पर्याप्त संख्या में रहेंगे।

उपनिवेश सम्बन्धी छात्रवृत्तियाँ—उपनिवेशों के पारस्परिक सम्बन्ध की उन्नति व वैज्ञानिक अनुसंधान को प्रोत्साहन देने के लिए सन १६४४ से १६४६ तक में २५ छात्र वृत्तियाँ देने का आयोजन किया गया है। यह छात्रवृत्तियाँ सेक्रेटरी आफ़ स्टेट के हाथ में हैं। इन वृत्तियों का मूल्य ४०० पाउण्ड से लेकर ७५० पाउण्ड तक रहेगा। आवेदन पत्र निम्न पते से मँगाये जा सकते हैं।

सेक्रेटरी, कोलोनियल रिसर्च कमेटी, पैलेस चैम्बर्स, ब्रिज स्ट्रीट, लंडन।

रूस में विज्ञान पर व्यय—१६४६ के बजट में विज्ञान के लिए ६३ अरब रुबल खर्च की योजना थी। यह खर्चा सन् १६४५ में होने वाले खर्चे का तिगुना है और राष्ट्रीय आमदनी का २°/० है।

सर श्रीराम अनुसन्धान संस्था—डाक्टर जान मथाई ने ६ जनवरी १६४७ को देहली में औद्योगिक विषयों पर अनुसन्धान के लिए स्थापित सर श्रीराम अनुसन्धान संस्था की नींव डाली। इस संस्था की स्थापन के लिए सर श्रीराम व दिल्ली कपड़ा मिल के अन्य डाइरेक्टर धन्यवाद व बधाई के पात्र हैं और उनका कार्य्य इस आशाजनक तथ्य का द्योतक है कि हमारे व्यवसायी भी आज वैज्ञानिक अनुसन्धान के महत्व को समझने लगे हैं और उसकी सहायता को आगे बढ़ रहे हैं।

खाद्य पदार्थों का व्यवसाय—खाद्य विभाग के सहयोगी मंत्री ने एक वक्तव्य में कहा है कि युद्ध काल में भारतवर्ष में खाद्य व्यवसाय की बहुत उन्नति हुई है। सन १६४३-४४ में भारतवर्ष ने केवल २०,००० रुपये के बिस्कुट आदि बाहर से मंगवाये, जब कि १६३५-३६ में १६ लाख के आये थे। इस समय देश में लगभग बिस्कुट के २० कारखाने हैं और बिस्कुट के व्यवसाय में लगभग २ करोड़ रुपया लगा हुआ है।

वनस्पति घी के व्यवसाय ने भी आश्चर्य जनक उन्नति की है। सन् १६३६ में केवल १० कारखाने थे जिनकी सलाना पैदावार ११५,००० टन थी, जब कि आज २२ कारखाने हैं और उनकी पैदावार १८२,००० टन है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि वर्ष के अन्त तक कारखानों की संख्या ६६ पहुँच जायेगी जिनकी अनुमानित पैदावार ४६०,०००, टन होगी।

इस समय शक्कर के लगभग १७० कारखाने हैं। इनमें अधिकतर यू० पी० और बिहार में स्थित हैं। ऐसा प्रयत्न किया जा रहा है कि

यू० पी० और बिहार के बाहर ४५ नये कारखाने स्थापित किये जायें, जिसमें देश में चीनी का पूरा पड़ सके और बाहर से चीनी न मँगानी पड़े।

वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसन्धान परिषद् का कार्य

भारतीय विज्ञान तथा उद्योग की उन्नति के लिये, "वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसन्धान परिषद" ने देश में सात राष्ट्रीय अनुसन्धानशालाओं की स्थापना की योजना बनायी है। इनमें से तीन अनुसंधानशालाएं कलकत्ता, धनबाद, तथा जमशेदपुर में गत १२ महीनों के भीतर पहले ही स्थापित की जा चुकी हैं और चौथी का शिलान्यास विगत ४ जनवरी को दिल्ली में माननीय पं० जवाहरलाल नेहरू के हाथों से कराया जा चुका है।

नेहरू जी ने जिस शाला का शिलान्यास किया है, वह भौतिक विज्ञान के सम्बन्ध में छानबीन करेगी। इसका नाम "राष्ट्रीय भौतिक अनुसन्धान-शाला" रखा गया है। पूर्व-स्थापित शालाओं में से कलकत्ते की अनुसन्धानशाला कांच तथा चीनी मिट्टी के उद्योग के सम्बन्ध में खोज करने के लिये स्थापित की गयी है और धनबाद तथा जमशेदपुर की शालाएँ क्रमशः ईंधन तथाधातु-शोधन विषयक छानबीन के लिये। बम्बई के प्रधान मंत्री माननीय श्री बी० जी० खेर इसी महीने के अन्त से पहले एक राष्ट्रीय रासायनिक अनुसन्धानशाला का भी शिलान्यास करने वाले हैं। इसके अतिरिक्त सड़क सम्बन्धी अनुसन्धान के लिये दिल्ली में और भवन-निर्माण सम्बन्धी अनुसन्धान के लिये रुड़की में एक-एक अनुसंधानशाला अलग खोलने का विचार किया जा रहा है।

औद्योगिक अनुसन्धान आयोजन समिति

वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसन्धान परिषद ने १९४४ में एक "औद्योगिक अनुसन्धान आयोजन समिति" की स्थापना की थी, जिसने भारत में वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसन्धान की उन्नति के लिये एक पंचवर्षीय योजना के अनुसार कार्य करने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया है। इस योजना के अन्तर्गत अनेक सुझाव रखे गये हैं, जिनमें एक "राष्ट्रीय अनुसन्धान परिषद" की स्थापना, ११ राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं तथा अनुसन्धान-संस्थाओं का निर्माण, विश्वविद्यालयों के वैज्ञानिक विभागों को दृढ़ करने के लिये आर्थिक सहायता की व्यवस्था पेटेंटों के लिये एक "राष्ट्रीय ट्रस्ट" की स्थापना तथा, एक "मान निर्धारण बोर्ड" की स्थापना, आदि अनेक बातें शामिल हैं।

उल्लिखित "वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसन्धान परिषद" की स्थापना १९४२ में हुई थी। आयोजित वैज्ञानिक अनुसन्धान द्वारा राष्ट्र के कल्याण तथा समृद्धि केलिये कार्य करना, इस परिषद का मुख्य उद्देश्य है। इसके द्वारा प्राकृतिक विज्ञान की समस्त शखाओं की छानबीन का कार्य किया जाता है और उपलब्ध वैज्ञानिक ज्ञानकारी को उद्योगधन्धों के लाभ के लिये प्रयुक्त करने की व्यवस्था की जाती है।

परिषद के पास स्वयं अपनी अनुसन्धानशाला है, जिसमें काय करने के अतिरिक्त वह अनेक विश्वविद्यालयों तथा देश की अनुसंधान संस्थाओं से भी वैज्ञानिक छानबीन का काम कराती है और इसके लिये उन्हें आर्थिक सहायता भी प्रदान करती है। गत पाँच वर्षों के भीतर "परिषद" ने प्रायः २० विभिन्न क्षेत्रों में वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसन्धान का कार्य सम्पन्न किया तथा कराया है, जिनमें ईंधन, रंग बनाने की चीजें, बनस्पति तेल, सेल्युलोज, काँच, रासायनिक द्रव्य, दुगलनीय वस्तुएँ, धातु, प्रयुक्त भौतिक रेडियो, तथा परमाणु-शक्ति आदि के विषय सम्मिलित हैं।

अनुसंधान योजनाएँ तथा प्रक्रिया

विभिन्न योजनाओं की परीक्षा करने और उनके सम्बन्ध में सिफारिशें देने के लिये २२ "अनुसन्धान समितियाँ" नियुक्त की गयी है। १९४० में परिषद कुल ४२ योजनाओं की छानबीन के किये रुपया खर्च

करती थी, किन्तु अब इन योजनाओं की संख्या १५० हो गयी है। विभिन्न विश्वविद्यालयों में अनुसन्धान संस्थाओं को लगभग ८ लाख रुपया सहायता के रूप में दिया गया है।

गत वर्ष परिषद् ने अनेक नयी अनुसन्धान-योजनाओं के लिये २०६०,००० रुपया मंजूर किय था। दिल्ली की अनुसन्धानशाला में १०० से अधिक वैज्ञानिक प्रक्रियाएँ खोजी जा चुकी हैं, जिनमें से ३१ निजी उद्योग-धन्धों को प्रयोग में लाने के लिये पट्टे पर दे दी गया है। देश-रक्षा के सम्बन्ध में भी अनेक प्रक्रियाएँ मालूम की गयी है, जो सरकार को दे दी गयी हैं। ४० चीजों को पेटेंट भी कराया जा चुका है, और २८ प्रक्रियाओं के "पेटेंट" कराने के लिये आवेदन किया जा चुका है।

देशी साधनों की जाँच

देश की औद्योगिक उन्नति में सहायता प्रदान करने के लिये, "परिषद" ने देश के अनेक साधनों तथा उद्योगों की जांच-पड़ताल के लिये व्यवस्था की है। इनमें कांच, कोयला, 'रेयन' तैयार करने के "सेलुलोज" देने वाले पौधे, अन्तर्दहन इंजन, रेडियो, मिश्रितधातु, तथा अन्य अनेक वस्तुएँ सम्मिलित है। विश्वविद्यालयों तथा अनेक अनुसन्धान संस्थाओं से अनेक विषयों में विशुद्ध अनुसन्धान-कार्य भी कराया जा रहा है, जो अभी विशुद्ध वैज्ञानिक जानकारी उपलब्ध करने के लिये ही है। "परिषद" की सहायता के लिये २ 'स्थायी परामर्शदात्री समितियाँ" भी हैं।

धातु की खानों पर सरकारी अधिकारी

पं० जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में भारतीय विज्ञान परिषद् की सामान्य समिति ने सोमवार को इस आशय का प्रस्ताव स्वीकार किया कि भारत के समस्त खनिज-साधन (धातु की खानें) भारतीय सरकार अपने हाथ में ले ले और उनका व्यवसाय किसी भी अवस्था में विदेशियों के हाथ में न सौंपा जाय। जिन खनिज-पदार्थों से यूरेनियम और थोरियम प्राप्त होता है उनका राष्ट्रीय हित की दृष्टि से बहुत महत्व है, इसलिये उन्हें संचित रखने का प्रयत्न तुरन्त शुरू किया जाय।

दिल्ली में होने वाले भारतीय विज्ञान परिषद के अधिवेशन में दिये गये कुछ भाषणों का सारांश

प्राणिविज्ञान विभाग के अध्यक्ष डाक्टर जी० डी० भालराव ने वैदिक काल से अब तक के प्राणिशास्त्रीय प्रयत्नों का सिंहावलोकन करते हुये बताया कि भविष्य में किस प्रकार प्रयत्न करना चाहिए। उन्होंने उन अनेक प्रकार के कृमियों की चर्चा की जा मनुष्य और पशुओं को कष्ट देते हैं। मछलियों पर असर करने वाले कृमियों की चर्चा करते हुये उन्होंने कहा कि इनमें से कुछ जब सीपों के अन्दर इल्ली की अवस्था में होत हैं तब मोती बनते हैं।

राज-ज्योतिषी सर हैरल्ड स्पेन्सर जोन्स के कुछ व्याख्यान विज्ञान परिषद् द्वारा आयोजित किये गय थे। "अन्य संसारों में जीवन" पर भाषण देते हुए उन्होंने कहा कि हमें इस निष्कर्ष को मानना ही पड़ेगा कि इस संसार के अतिरिक्त दूसरे संसारों का भी अस्तित्व है और वहां किसी न किसी रुप में जीव भी विद्यमान होंगे। कदाचित सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में एक अरब के लगभग संसार हैं और उनमें से प्रत्यक में दस दस खरब तारे हैं। इस संसार में जीवन कैसे शुरू हुआ यह तो निश्चयपूवक कोई नहीं कह सकता परन्तु मेरा विश्वास है कि सृष्टि में जहाँ कहीं भी जीने योग्य परिस्थितियाँ हैं वहाँ प्राणी होंगे ही।

मि० लियाकत अली खां ने इस सभा के अध्यक्ष-पद से कहा—"आशा है कि यहाँ एकत्रित वैज्ञानिक-समाज संसार भर में ऐसा वातावरण उत्पन्न करेगा कि यहाँ जो जीव पाए जा चुके हैं वे जीते रह सकें।"

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञान-परिषद्‌की प्रकाशित प्राप्य पुस्तकोंको सम्पूर्ण सूची

१—विज्ञान प्रवेशिका, भाग १—विज्ञानकी प्रारम्भिक बातें सीखनेका सबसे उत्तम साधन—ले० श्री रामदास गौड़ एम० ए० और प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी० ;

२—चुम्बक—हाईस्कूलमें पढ़ाने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी०; सजि०; ।।=)

३—मनोरञ्जक रसायन—इसमें रसायन विज्ञान उपन्यासकी तरह रोचक बना दिया गया है, सबके पढ़ने योग्य है—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम० एस-सी० ; १।।),

४—सूर्य-सिद्धान्त—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान-भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखनेका सबसे सुलभ उपाय—पृष्ठ संख्या १२१५ ; १४० चित्र तथा नकशे—ले० श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; सजिल्द; दो भागोंमें; मूल्य ६) । इस भाष्यपर लेखकको हिन्दी साहित्य सम्मेलनका १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है ।

५—वैज्ञानिक परिमाण—विज्ञानकी विविध शाखाओंकी इकाइयोंकी सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहालकरण सेठी डी० एस सी०; ।।।),

६—समीकरण मीमांसा—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी, प्रथम भाग १।।) द्वितीय भाग ।।=),

७—निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री बी० एस सी० ; ।।),

८—बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित—इंटरमीडियेटके गणितके विद्यार्थियोंके लिये—ले० डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी० ; १।),

९—गुरुदेवके साथ यात्रा—डाक्टर जे० सी० बोसीकी यात्राओंका लोकप्रिय वर्णन ; ।-),

१०—केदार-बद्री यात्रा—केदारनाथ और बद्रीनाथके यात्रियोंके लिये उपयोगी;),

११—वर्षा और वनस्पति—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शङ्करराव जोशी;),

१२ मनुष्यका आहार—कौन-सा आहार सर्वोत्तम है—ले० वैद्य गोपीनाथ गुप्त; ।=),

१३—सुवर्णकारी—क्रियात्मक—ले० श्री गंगाशंकर पचोली; ।),

१४—रसायन इतिहास—इंटरमीडियेटके विद्यार्थियोंके योग्य—ले० डा० आत्माराम डी० एस-सी०; ।।।),

१५—विज्ञानका रजत-जयन्ती अंक—विज्ञान परिषद् के २५ वर्षका इतिहास तथा विशेष लेखोंका संग्रह; १)

१६—फल-संरक्षण—दूसरा परिवर्धित संस्करण-फलोंकी डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार आदि बनानेकी अपूर्व पुस्तक; २१२ पृष्ठ; २५ चित्र—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्र-नारायण सिंह एम० एस-सी०; २),

१७—व्यङ्ग-चित्रण—(कार्टून बनानेकी विद्या)—ले० एल० ए० डाउस्ट ; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी, एम० ए०; १७५ पृष्ठ; सैकड़ों चित्र, सजिल्द; १।।)

१८—मिट्टीके बरतन—चीनी मिट्टीके बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा ; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र, सजिल्द; १।।),

१९—वायुमंडल—ऊपरी वायुमंडलका सरल वर्णन—ले० डाक्टर के० बी० माथुर; १८६ पृष्ठ; २५ चित्र; सजिल्द; १।।),

२०—लकड़ी पर पॉलिश—पॉलिशकरनेके नवीन और पुराने सभी ढंगोंका ब्योरेवार वर्णन। इससे कोई भी पॉलिश करना सीख सकता है—ले० डा० गोरखप्रसाद और श्रीरामयत्न भटनागर, एम०, ए०; २१८ पृष्ठ; ३१ चित्र, सजिल्द; १॥),

२१—उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश; आकार बड़ा विज्ञानके बराबर २६० पृष्ठ; २००० नुसखे, १०० चित्र; एक-एक नुसखेसे सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं या हज़ारो रुपये कमाये जा सकते हैं। प्रत्येक गृहस्थके लिये उपयोगी; मूल्य अजिल्द २) सजिल्द २॥),

२२—कलम पेबंद—ले० श्री शंकरराव जोशी; २०० पृष्ठ; ४० चित्र; मालियों, मालिकों और कृषकोंके लिये उपयोगी; सजिल्द; १॥),

२३—जिल्दसाज़ी—क्रियात्मक और ब्योरेवार। इससे सभी जिल्दसाज़ी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०; १८० पृष्ठ, ६२ चित्र; सजिल्द १॥),

२४—त्रिफला—दूसरा परिवर्धित संस्करण-प्रत्येक वैद्य और गृहस्थके लिये—ले० श्री रामेशवदी आयुर्वेदालंकार, २१६ पृष्ठ; ३ चित्र, एक रङ्गीन; सजिल्द २),

यह पुस्तक गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय, की १३ श्रेणी के लिए द्रव्यगुणके स्वाध्याय पुस्तकके रूपमें शिक्षापटलमें स्वीकृत हो चुकी है।"

२५—तैरना—तैरना सीखने और डूबते हुए लोगोंको बचाने की रीति अच्छी तरह समझायी गयी है। ले० डाक्टर गोरखप्रसाद पृष्ठ १०४ मूल्य १),

२६—अंजार—लेखक श्री रामेशवदी आयुर्वेदालंकार-अंजार का विशद वर्णन और उपयोग करनेकी रीति। पृष्ठ ४२, दो चित्र, मूल्य ॥),

यह पुस्तक भी गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालयके शिक्षा पटलमें स्वीकृत हो चुकी है।

२७—सरल विज्ञान-सागर प्रथम भाग—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद। बड़ी सरल और रोचक भाषा में जंतुओंके विचित्र संसार, पेड़ पौधों की अचरज-भरी दुनिया, सूर्य, चन्द्र और तारोंकी जीवन कथा तथा भारतीय ज्योतिषके संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। विज्ञानके आकार के ४५० पृष्ठ और ३२० चित्रोंसे सजे हुए ग्रन्थ की शोभा देखते ही बनती है। सजिल्द मूल्य ६), मिल है।

२८—वायुमण्डलकी सूक्ष्म हवाएँ—ले० डा० सन्तप्रसाद टंडन, डी० फिल० मूल्य ॥)

२९—खाद्य और स्वास्थ्य—ले० श्री डा० ओंकारनाथ परती, एम० एस-सी०, डी० फिल० मूल्य ॥)

हमारे यहाँ नीचे लिखी पुस्तकें भी मिलती हैं:—

१—विज्ञान हस्तामलक—ले०—स्व० रामदास गौड़ एम० ए० भारतीय भाषाओंमें अपने ढंगका यह निराला ग्रंथ है। इसमें सीधी सादी भाषामें अठारह विज्ञानोंकी रोचक कहानी है। सुन्दर सादे और रंगीन पाँच सौ चित्रोंसे सुसज्जित है, आजतककी अद्भुत बातोंका मनोमोहक वर्णन है, विश्वविद्यालयोंमें भी पढ़ाये जानेवाले विषयोंका समावेश है, अकेली यह एक पुस्तक विज्ञानकी एक समूची लैब्रेरी, है एक ही प्रथम विज्ञानका एक विश्वविद्यालय है। मूल्य ६)

२—सौर-परिवार—लेखक डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० आधुनिक ज्योतिष पर अनोखी पुस्तक ७७६ पृष्ठ, ५८७ चित्र (जिनमें ११ रंगीन हैं) मूल्य १२) इस पुस्तक पर काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा से रेडिचे पदक तथा २००) का छन्नूलाल पारितोषिक

३—भारतीय वैज्ञानिक—१२ भारतीय वैज्ञानिकोंकी जीवनियां—ले० श्री श्याम नारायण कपूर, सचित्र ३८० पृष्ठ; सजिल्द; मूल्य ३।) अजिल्द ३)

४—वैक्युम-ब्रेक—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा। यह पुस्तक रेलमें काम करने वाले फ़िटरों इंजन-ड्राइवरों, फ़ोरमैनों और कैरेज एग्ज़ामिनरोंके लिये अत्यन्त उपयोगी है। १६० पृष्ठ; ३१ चित्र जिनमें कई रंगीन हैं, २),

विज्ञान-परिषद्, बेली रोड, इलाहाबाद

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुखपत्र

भाग ६५ | सम्वत् २००३, मई १९४७ | संख्या २

प्रकाशक
विज्ञान-परिषद्,
बेली रोड, इलाहाबाद ।

वार्षिक मूल्य ३)] [एक संख्या का मूल्य

प्रयागकी

विज्ञान-परिषद् के मुख्य नियम

परिषद्‌का उद्देश्य

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद्‌की स्थापना इस उद्देश्य से हुई कि भारतीय भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञानके अध्ययनको और साधारणतः वैज्ञानिक खोजके कामको प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद्‌का संगठन

२—परिषद्‌में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमोंके अनुसार सभ्यगण सभ्योंमेंसे ही एक सभापति, दो उपसभापति एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमंत्री, दो मंत्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे, जिनके द्वारा परिषद्‌की कार्यवाही होगी।

पदाधिकारियोंका निर्वाचन

१८—परिषद्‌के सभी पदाधिकारी प्रतिवर्ष चुने जायँगे। उनका निर्वाचन परिशिष्टमें दिये हुये तीसरे नकशेके अनुसार सभ्योंकी रायसे होगा।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्यको ५) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश-शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ ७० रु० की रकमदे देनेसे कोई भी सभ्य सदाके लिये वार्षिक चन्देसे मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्योंको परिषदके सब अधिवेशनोंमें उपस्थित रहनेका तथा अपना मत देनेका, उनके चुनावके पश्चात् प्रकाशित, परिषद्‌की सब पुस्तकों, पत्रों, विवरणों इत्यादिके बिना मूल्य पानेका—यदि परिषद्‌के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धनसे उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन-चौथाई मूल्यमें मिलेंगी।

२७—परिषद्‌के सम्पूर्ण स्वत्वके अधिकारी सभ्यवृन्द समझे जायँगे।

परिषद्‌का मुखपत्र

३३—परिषद् एक मासिक-पत्र प्रकाशित करेगी जिसमें सभी वैज्ञानिक विषयोंपर लेख प्रकाशित हुआ करेंगे।

३४—जिन लेखोंको परिषद् प्रकाशित करेगी उनमें जो लेख विशेष महत्व और योग्यताके समझे जायँगे उनके लेखकोंको अपने अपने लेख की बीस प्रतियाँ बिना मूल्य पानेका अधिकार होगा।

विषय-सूची

विज्ञान

विज्ञान-परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ।। तै० उ० ।३।५।

भाग ६५ | सम्वत् २००४, मई, १९४७ | संख्या २

सर कार्यमाणिक्कम श्रीनिवास कृष्णन्

[लेखक—श्री० रामचरण मेहरोत्रा]

हर्ष का विषय है कि भारतवर्ष स्वतंत्रता के पथ पर तीव्रगति से बढ़ रहा है। स्वतन्त्रता पाकर भी यदि हम वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक उन्नति न कर सके, तो हमारी अवस्था आज से कुछ बहुत अच्छी न हो सकेगी। पिछले कुछ दिनों से हमारी अन्तर्कालीन सरकार का ध्यान राष्ट्र के इस आवश्यक अंग की ओर गया है कि देश की आर्थिक उन्नति के लिए वैज्ञानिक अनुसन्धान ही प्रथम सीढ़ी है और इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए ६ प्रयोगशालाएँ स्थापित की जा रही हैं। भारत सरकार के विभिन्न विभागों की कार्य्य-कुशलता देख कर हर देशवासी के हृदय में अनायास ही यह संशय उठ खड़े होते हैं कि क्या इन प्रयोग शालाओं में कुछ वास्तविक उच्च-कोटि का कार्य्य हो सकेगा? क्या और विभागों की तरह यह अनुसन्धान विभाग भी केवल फाइलों और रिपोर्टों का संग्रह होकर तो न रह जायेगा? इन्हीं संशयों की सर्व-उपस्थिति के कारण देश के वैज्ञानिक क्षेत्रों में यह समाचार बहुत ही हर्ष से पढ़ा गया कि सर कार्यमणिक्कम् श्री निवास कृष्णन् राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला के प्रथम डाइरेक्टर नियुक्त

किये गये हैं। डाक्टर कृष्णन् से परिचित लोगों को

यह विश्वास हो गया कि भौतिक प्रयोगशाला में तो वास्तविकता में प्रथम कोटि का कार्य्य होगा, क्योंकि डाक्टर कृष्णन ने इस डाइरेक्टरशिप को मंजूर करने के पहिले अपने आपको यह आश्वासन अवश्य दिला लिया होगा कि इस प्रयोगशाला में काम होना है, केवल फाइलों और रेकार्डों का संग्रह नहीं।

श्रीनिवास कृष्णन् का जन्म ४ दिसम्बर सन् १८९८ में दक्षिण भारत के वात्रप नगर में हुआ। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा वात्रप और श्रीविल्ली पुत्तुर के हिन्दू हाई स्कूलों में हुई। इसके बाद आपने मदुरा के अमेरिकन कालेज से इन्टरमीजिएट की परीक्षा पास की और मद्रास के क्रिश्चियन कालेज से बी० ए० किया। इसके बाद उच्च शिक्षा के लिए आप कलकत्ते गये और वहाँ कालेज आफ साइंस में आचार्य रमन के पास अध्ययन एवं अन्वेषण करके १९२१ में आपने अपनी शिक्षा समाप्त की। आचार्य रमन ने इन्हीं दो वर्षों के सम्पर्क में इस नवयुवक विद्यार्थी की प्रतिभा का पता पा लिया था और वे तभी से चाहते थे कि यह मेधावी युवक वैज्ञानिक अनुसन्धानों में लग कर भारत का गौरव बढ़ाये। परन्तु आर्थिक परिस्थितियों के कारण कृष्णन् को मद्रास क्रिश्चियन कालेज में नौकरी करनी पड़ी। यहाँ आप रसायन शास्त्र में निर्देशक (Demonstrato) नियुक्त हुए। इस काल में आपने रसायन शास्त्र का गूढ़ अध्ययन किया और रसायन शास्त्र का यह ज्ञान इन्हें अपने अगले जीवन के अनुसन्धानों में बड़ा ही सहायक रहा।

परन्तु कृष्णन् का हृदय संतुष्ट न था वह कोई अच्छा अवसर ढूँढ़ रहे थे कि अपना सब समय वैज्ञानिक अनुसन्धानों में गुजार सकें। शीघ्र ही उन्हें यह सुअवसर मिल गया। डाक्टर अमृतलाल सरकार के बाद आचार्य रमन 'इंडियन एसोसियेशन फार दी कल्टीवेशन आफ साइंस' के अवैतनिक मंत्री निर्वाचित किये गये। आचार्य रमन ने यह अवसर पाते ही कृष्णन् को अपने पास बुला लिया और नवम्बर १९२३ में कृष्णन् मद्रास क्रिश्चियन कालेज की नौकरी छोड़ कर कलकत्ते पहुँचे। यहाँ आपके अनुसन्धान कार्य्य का श्री गणेश हुआ।

आचार्य रमन के सम्पर्क में आपने १९२३ से १९२८ तक अनुसन्धान कार्य्य किया। इन्हीं दिनों के कार्य्य के फल स्वरूप आचार्य रमन की ख्याति संसार में फैली है और इन सभी अनुसन्धानों में कृष्णन् का विशेष हाथ रहा है। आचार्य रमन के जगत-प्रसिद्ध 'रमन-प्रभाव" सम्बन्धी अन्वेषण कार्य्य में भी आपको उनके सहकारी होने का गौरव प्राप्त हुआ। रमन के साथ ही साथ आपकी ख्याति भी देश विदेश फैलने लगी और पत्रिकाओं में आपके अनुसन्धानों के लिए प्रशंसा पत्र छपने लगे। आचार्य रमन के साथ संयुक्त कार्य्य करने के अतिरिक्त आप इस काल में भी स्वतन्त्र मौलिक कार्य्य करते रहे। इस काल पर था और आपका स्वतन्त्र अध्ययन मणिमीय तथा चुम्बकीय रसायन पर हुआ।

कलकत्ते में आचार्य रमन के साथ पाँच वर्ष कार्य्य करने के बाद आपको ढाका विश्वविद्यालय में भौतिक विज्ञान का रीडर नियुक्त किया गया। यहाँ आप को स्वतन्त्र अनुसंधान करने और विद्यार्थियों के नेतृत्व करने का अवसर मिला। इस काल में आपकी वैज्ञानिक प्रतिभा निखर उठी। यहाँ आपका विशेष अध्ययन मणियों के चुम्बकीय गुणों' पर केन्द्रित था, इन अनुसन्धानों के फल रायल सोसायटी के फिलासिफिकल ट्रांजेक्शन्स में एक विशेष लेख माला के रूप में प्रकाशित हुए।

सन् १९३३ में आप को एक बार फिर एसोसियेशन आफ सान्इस वापस जाने का अवसर मिला। आपके आचार्य रमन के बङ्गलौर चले जाने पर आप वहाँ के डाइरेक्टर नियुक्त किये गये। रमन के सम्पर्क के कारण एसोसियेशन की ख्याति बहुत ही उच्च कोटि की थी। कृष्णन ने इस ख्याति में किञ्चित भी कमी न आने दी। इनके लगभग सभी विद्यार्थी इनके साथ ढाका से कलकत्ते चले आये और यहाँ आपने नई लगन के साथ अनुसन्धान कार्य्य जारी रक्खा। इस काल में आपने अपने चुम्बकीय अध्ययन को

जारी रक्खा और साथ ही साथ अति निम्न तापक्रमों पर तापगति सिद्धान्त के ऊपर भी बड़ा गहरा अध्ययन किया। इस समय तक आपके स्वतन्त्र अन्वेषणों व अनुसन्धानों की ख्याति भी सर्वत्र फैल चुकी थी, परन्तु इस बढ़ती हुई ख्याति ने आपके काम में किसी प्रकार की कमी न आने दी वरन् आप नित्य ही ज्यादा लगन से अपने कार्य्य में संलग्न रहे।

१९३६ में आप प्रथम बार विदेश गये। वारसा में होने वाली वैज्ञानिकों की एक अन्तर्राष्ट्रीय कानफरेंस में आपने सुरभित अणुओं की प्रतिदीप्ति (Fluorescence of aromatic molecules) पर एक उत्कृष्ट अन्वेषण निबन्ध पढ़ा। इस निबन्ध से आपकी ख्याति बहुत दूर दूर तक फैल गई। १९३७ में आप ने कैम्ब्रिज की कैवेंडिश प्रयोग शाला, लन्दन की रायल इंस्टिट्यूट और लीज की भौतिक विज्ञानशाला में अपने अन्वेषणों पर भाषण दिये। लीज में आपको विश्वविद्यालय द्वारा एक विशेष पदक से भी सम्मानित किया गया।

१९२९ में आपको राष्ट्र-संघ (League of Nations) की ओर से आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय बौद्धिक सहयोग समिति की कार्य्यवाही में भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया गया। इस अवसर पर आपने स्ट्रासबर्ग में आपने अपने चुम्बकीय अध्ययनों पर बड़ा ही ओजस्वी भाषण दिया और इसके अतिरिक्त आप इंगलैण्ड तथा योरप के विभिन्न विश्वविद्यालयों में भी गये और वहाँ आपने भाषण देकर विदेशियों के सम्मुख भारत को गौरवान्वित किया।

डाक्टर कृष्णन केवल एक कुशल अनुसन्धान कर्त्ता ही नहीं हैं वरन् इनके भाषण बड़े ही लोकप्रिय होते हैं। आपके भाषणों में गहन अध्ययन की छाप, तो होती ही है परन्तु साथ ही साथ कठिन से कठिन विषय को सरल रूप में श्रोता गणों को समझा देने की अद्भुत क्षमता भी आपमें विद्यमान है। आप स्वभाव से ही बड़े सरल तथा विनोदी हैं और अपने भाषणों के बीच में जो अपनी विनोद प्रियता का परिचय देते हैं, उससे आपके भाषण बड़े ही लोक प्रिय बन जाते हैं। इन गुणों से आपकी ख्याति और भी तेज़ी से बढ़ने लगी। अभी तक विदेशी वैज्ञानिक केवल आपके अनुसन्धान निबन्धों को पढ़ कर आपकी प्रतिभा का पता पाते थे परन्तु आपके भाषणों से वे बहुत ही प्रभावित हुए और इस ख्याति के फल स्वरूप शीघ्र ही १९४० में ब्रिटेन की रायल सोसायटी ने आपको अपना सभ्य निर्वाचित किया। आप भारत के छठे सपूत हैं जिनको यह सम्मान मिला है।

१९४२ के मार्च में आप इलाहाबाद विश्वविद्यालय के भौतिक शास्त्र के प्रोफेसर नियुक्त किये गये। तब से अब तक यही कार्य कर रहे हैं। प्रयाग में भी आपके बहुत शिष्य हैं जिनमें डाक्टर अवधबिहारी भाटिया, श्री अजितकुमार वर्मा, डाक्टर देवेन्द्र शर्मा, तथा मिसेज बोस उल्लेखनीय हैं। लगभग एक वर्ष पहिले जब यह चर्चा चली कि डाक्टर कृष्णन भौतिक प्रयोगशाला के प्रथम डाइरेक्टर नियुक्त होने जा रहे हैं, तब आप से पूँछने पर आपका स्पष्ट उत्तर था कि मुझे सरकारी प्रयोगशालाओं में जाने के पहिले केवल एक ही आश्वासन की आवश्यकता होगा कि वहाँ कुछ वास्तविक अनुसन्धान कार्य्य की सुविधा मिलेगी या नहीं।

अपने देश में भी आप का बहुत सम्मान होने लगा। आप की गणना सब प्रमुख वैज्ञानिकों में होने लगी। १९४० में आप को भारतीय विज्ञान परिषद् (Indian Science Congress) के भौतिक विज्ञान विभाग का सभापति निर्वाचित किया गया और इस अवसर पर दिया गया आपका भाषण आपके अनुसन्धान निबन्धों में बहुत प्रसिद्ध है। १९४१ में आप को कृष्ण राजेन्द्र जुबली स्वर्ण पदक प्रदान किया गया।

आपके भाषणों की भी लोकप्रियता फैल रही थी। १९४० में आपको कलकत्ते में अहदर चन्द्र मुकर्जी भाषण देने के लिए निमंत्रित किया गया. १९४१ में आपने पटना विश्वविद्यालय में सुखराज

रे रीडरशिप भाषण दिये और १९४३ में आपने अपनी पुरानी संस्था इंडियन एसोसियेशन फार दी कल्टीवेशन आफ़ साइंस में रिपन प्रोफ़ेसर शिप भाषण दिये।

१९४६ में आप को भारतीय सरकार ने यूरोप तथा अमेरिका भ्रमण करने भेजा। आपका इस भ्रमण का मुख्य उद्देश्य भौतिक विज्ञान में होने वाले नवीन अनुसन्धानों से परिचय पाना था। आप लगभग ८ मास यूरोप तथा अमेरिका का भ्रमण करके दिसम्बर १९४६ में भारत लौटे। इसी काल में आप ने रायल सोसायटी द्वारा आयोजित इम्पायर साइंटिफिक कान्फ्रेंस में भारतीय सरकार के प्रतिनिधि की हैसियत से भाग लिया। जून १९४६ में आपके वैज्ञानिक अनुसन्धानों के सम्मान स्वरूप आपको 'सर' की पदवी दी गई।

सर कृष्णन् भारत के सर्वोच्च वैज्ञानिकों में तो हैं ही, परन्तु अपने इस गहरे ज्ञान को इतनी सरलता तथा सादगी से वहन करते हैं कि आश्चर्य होता है। ख्याति के उच्च शिखर पर पहुँच कर भी घमण्ड आपको छू भी नहीं गया है। आत्म विज्ञापन से आप आज भी कोसों दूर भागते हैं। आप आज भी इतने क्रियाशील तथा फुर्तीले हैं कि अपने नवयुवक विद्यार्थियों को भी मात करते हैं। आपने चुम्बकीय गुणों पर विशेष अध्ययन किया है, शायद इसी से आपकी व्यक्तिगत चुम्बकीय शक्ति बहुत बढ़ गयी है। हर सभा में, हर सोसायटी में आप सब को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। आप की रुचि बहुत विस्तृत है। विज्ञानाचार्य होते हुए भी आप विविध विषयों में बहुत दिलचस्पी लेते हैं। किसी भी विषय पर बात कीजिए, आपका ज्ञान बहुत ही विस्तृत प्रतीत होता है। संस्कृत के अच्छे पण्डित हैं और प्राचीन भारतीय सभ्यता के बारे में आपका अध्ययन गहरा है। हर स्थिति में आप प्रमुख रहते हैं, ब्रिज तथा टेनिस के आप विशेष शौकीन हैं। आपके ब्रिज के साथी भी मुक्त कण्ठ से आपकी प्रशंसा करते हैं। कुछ वर्ष पहिले आपने टेनिस के आल इंण्डिया चैम्पियनशिप में भाग लिया था। आप जीवन की कला जानते हैं और उसके हर पहलू में में दिलचस्पी रखते हैं।

आप का विज्ञान से अटूट और प्रगाढ़ प्रेम है; उसमें स्वार्थ परता की झलक भी नहीं है। आप गुणों के पारखी है और बहुत शीघ्र ही अपने विद्यार्थियों की मेधावी शक्ति का सही अनुमान लगा लेते हैं. परन्तु अपने अच्छे से अच्छे विद्यार्थियों को निज स्वार्थ से अपने साथ ही काम करने की सम्मति नहीं देते। यदि देखते हैं कि यह विद्यार्थी किसी और वैज्ञानिक के साथ या किसी दूसरी प्रयोग शाला में ज्यादा अच्छा काम कर सकता है, तो उसे वहीं जा कर काम करने को बाध्य करते हैं। प्रयाग के विद्यार्थियों में श्री हरीशचन्द्र आज कैम्ब्रिज में बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य्य कर रहे हैं और यह आप ही की प्रेरणा का फल है कि हरीश जी एम० एस० सी० करने के बाद डाक्टर भाभा के पास बङ्गलौर गये और वहाँ से कैम्ब्रिज प्रस्थान किया।

आप विज्ञान के क्षेत्रों में सहकारिता तथा सहयोग का महत्व जानते हैं। दुख का विषय है कि भारत अन्य क्षेत्रों की तरह वैज्ञानिक क्षेत्रों में भी परस्पर वैमनस्य से हानि उठा रहा है। इस पारस्परिक वैमनस्य को दूर करने का आप सतत प्रयत्न किया करते हैं। भारत की विभिन्न वैज्ञानिक संस्थाओं के परस्पर सहयोग के लिए आप एक दीर्घ काल से इच्छुक हैं। भारत में तीन वैज्ञानिक संस्थाएँ प्रमुख हैं; (१) इंडियन एकाडेमी आफ़ साइंस बङ्गलौर (२) नेशनल इंस्टट्यिट आफ़ सांइस, तथा (३) नेशनल एकाडेमी आफ़ साइंस इलाहाबाद आप तीनों के प्रमुख सदस्य है और उनकी कार्य्य वाहियों में बड़ा ही सक्रिय भाग लेते हैं। १९४३-४४ ने आप इंडियन एकाडेमी आफ़ सोइस के उप-सभापति थे। १९४५-४६ में आप नेशनल एकाडेमी के सभापति रहे। यह आप ही के प्रयत्नों का फल है कि पिछले दो तीन वर्षों से इंडियन और नेशनल एकाडेमी के वार्षिक अधिवेशन संयुक्त होते हैं। इन संयुक्त अधिवेशनों में

परस्पर विचार विनियम से सब वैज्ञानिकों बहुत ही लाभ होता है। आप की इच्छा तो यह है कि यह तीनों संस्थाएँ संयुक्त कार्य्य करें और इस दिशा में आप प्रयत्न भी कर रहे हैं। हाल ही में आप भारतीय सरकार द्वारा स्थापित अनुसन्धान सलाहकार समिति के सदस्य नियुक्त हुए हैं और उसकी ९ फरवरी के मीटिङ्ग में आप इस प्रस्ताव को पास कराने में सफल हुए हैं कि भारत की उपरोक्त तीनों संस्थाएँ मिला दी जाएँ और एक केन्द्रीय वैज्ञानिक संस्था स्थापित की जाए जो इन तीनों संस्थाओं के कार्य्य का नियंत्रण करे।

सर कृष्णन नव स्थापित राष्ट्रीय प्रयोग शाला के प्रथम डाइरेक्टर नियुक्त हुए हैं। इस प्रयोग शाला का शिलान्यास श्री जवाहरलाल नेहरू ने ४ जनवरी को किया था। इस आश्वासन पर कि आप वहाँ निर्विघ्न कार्य्य में संलग्न रह सकेंगे आपने यह नियुक्ति स्वीकार कर ली है। परन्तु विज्ञान से आपका प्रगाढ़ प्रेम इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि आपने निश्चय कर लिया है कि जब तक वह प्रयोग शाला बन नहीं जाती, आप प्रयाग की भौतिक प्रयोग शाला ही में रहेंगे। इससे आपको लगभग १०००) प्रतिमास की आर्थिक क्षति हो रही है, पर विज्ञान का यह प्रेमी प्रयोगशाला के बाहर एक क्षण भी बिताना पसन्द नहीं करता।

हमारी आशा है और हम कामना करते हैं कि भारत का यह उदीय मान वैज्ञानिक प्रतिदिन उन्नति करे! आप के सम्पर्क से राष्ट्रीय प्रयोग शाला का मान शीघ्र ही बहुत ऊँचा हो और आप अपने अनुसन्धानों से स्वतन्त्र भारत की गौरव गाथा दूसरे स्वतन्त्र देशों के कोने-कोने में पहुँचा दें!

धूमकेतु

[लेखक—श्री० उदितनारायणसिंह]

धूमकेतु की उत्पत्ति

सूर्य-मंडल की उत्पत्ति तथा उसके क्रमिक विकास के विषय में बहुत से सिद्धान्त प्रतिपादित किए जा चुके हैं, किन्तु उनमें एक भी ऐसा नहीं है जो पूर्ण रूप से सन्तोष जनक हो, और सौर-परिवार में अपनी विचित्र सत्ता रखने वाले पुच्छल तारों की उत्पत्ति के विषय में कुछ निश्चित-रूप से कहना और भी कठिन हो गया है। धूमकेतुओं का निर्माण कब से प्रारम्भ हुआ, क्यों और किस प्रकार विभिन्न कक्षा में घूमने वाले भिन्न भिन्न आकार प्रकार के धूमकेतु बनते आए, इन प्रश्नों का कोई सन्तोष पूर्ण समाधान अभी तक नहीं मिल सका है। यह विचार कि सौर-परिवार के निर्माण के साथ धूमकेतुओं की उत्पत्ति का प्रश्न भी सम्बधित है काफी स्वभाविक है, किन्तु ग्रहों और पुच्छलतारों के आचरण के वैषम्य से इस धारणा की भी पुष्टि होती है कि इनका निर्माण सूर्य मण्डल के बाहर होता है और किसी प्रकार घूमते फिरते अनायास ही ये सौर-परिवार में कुछ समय के लिए सम्मिलित हो जाते हैं।

कुछ लोगों ने यह सुझाव उपस्थित किया कि सौर-परिवार के निर्माण के समय का ध्वन्सावशेष काल-क्रम में पुच्छल तारों के रूप में परिवर्त्तित हो गया। लेकिन इसे मानने में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि सूर्य-मण्डल की उत्पत्ति के विषय में हमें अभी निश्चित रूप से कुछ भी नहीं मालूम है। वस्तुतः किसी वृहदाकार नक्षत्र के अंग भंग और संहार के बाद सौर-मण्डल का सृजन हुआ यह मान लेने के बाद ही ध्वन्सावशेष का प्रश्न उठ सकता है, और इस बात को स्वीकार करने में अन्य भौतिक कठिनाइयाँ आ खड़ी होती हैं। दूसरे धूमकेतु का शरीर छोटे छोटे पाषाण-कणों तथा गैसों से बना होता है जो कुछ दूरी पर बिखर जाने के बाद अपनी लघुता के कारण एक दूसरे को अपने समीप नहीं खींच सकते। प्रश्न उठता है कि ध्वन्स के बाद इन कणों का एक

समूह में पुंजीभूत हो जाना किस प्रकार सम्भव हो सका। इसके अतिरिक्त धूमकेतु की कक्षा और गति में ग्रहों के साथ कोई ऐसा साम्य नहीं है जिससे इस युक्ति को शक्ति मिले कि इन सबका निर्माण एक ढंग से ही हुआ होगा।

पुच्छलतारों की एक विशेषता यह है कि उनके शरीर के द्रव्यों का बहुत शीघ्रता से क्षय होता रहता है। इससे यह अनुमान भी किया जाता है कि प्रारम्भ में वे सौर-मण्डल के अंश नहीं थे और उनकी उत्पत्ति सौर-परिवार के निर्माण के बाद हुई है। हो सकता है—ग्रहों को साथ लेकर अनन्त आकाश में अपनी उद्भ्रान्त यात्रा करते हुए सूर्य अकस्मात् रज-कणों के बड़े बड़े समूहों के समीप आकर उन्हें अपनी ओर आकर्षित कर लेता हो। किन्तु इस दशा में किसी दिशा-विशेष में घूमने वाले पुच्छलतारे ही इस प्रकार सौर आकर्षण में फँस सकते थे। लम्बी-अवधि वाले धूमकेतु के वर्त्तमान परवलय-पथ के अध्ययन से इस बात का कुछ तो आभास मिलता कि किस विशेष दिशा में यात्रा करने से उनकी गति में अनिवार्य संशोधन हुआ है। सत्य तो यह है कि धूमकेतु हर दिशा से और पर्याप्त संख्या में आया करते हैं। फिर इस अनुमान को स्वीकार कर लेने के बाद यह बात भी मान लेनी होगी कि नक्षत्रलोक में इधर उधर बिखरे हुए कण-समूह किसी अज्ञात सृजन-क्रम के सहारे धीरे धीरे घनीभूत होकर धूमकेतु का रूप धारण कर लेते हैं और इसके लिए प्रमाण ढूँढ़ना और भी दुष्कर-कार्य्य है।

कुछ लोगों ने यह सोचा कि सूर्य-मण्डल में ही पुच्छलतारों का निर्माण होता रहता है। उनके अनुसार शनि तथा बृहस्पति के ज्वालामुखी विस्फोट से निकले हुए द्रव्य धूमकेतु के रूप में घूमने लगते हैं। इस धारणा के विरोध में पहली आपत्ति यह है कि शनि और बृहस्पति में ज्वालामुखी होने की बात अप्रमाणित ही नहीं शायद असामान्य भी है; और यदि ज्वालामुखी हों भी तो उनसे निकले हुए द्रव्यों के लिए यह सरल नहीं है कि वे इन ग्रहों के प्रचण्ड आकर्षण की उपेक्षा कर उनसे दूर भाग जायं। इसके लिए प्रारम्भिक वेग बहुत ही अधिक होना चाहिए। लेकिन इन ग्रहों के घने वायुमण्डल को भेद कर अत्याधिक वेग से भागती हुए वस्तुयें उल्का के रूप में जलभुन जायँगी तथा उनके धूमकेतु बन जाने की सम्भावना बहुत ही क्षीण प्रतीत होती है।

धूमकेतु की गठन और उसका प्रकाश

धूमकेतु का शरीर ठोस रजकणों तथा गैसों से बना रहता है। उसके शिर का घनत्व पूँछ की अपेक्षा बहुत अधिक होता है और ठोस कण अधिकांश शिर-भाग में केन्द्री भूत रहते हैं। और उनसे लिपटी हुई गैसें धूमकेतु के आवरण का काम देती हैं। गैसों में आक्सिजन, हाइड्रोजन, कार्बन मानो आक्साइड, नाइट्रोजन, नाइट्रोजन हाइड्राइड तथा हाइड्रोक्सील के अतिरिक्त कुछ ऐसी भी हैं जो विषाक्त होती हैं। लेकिन इन गैसों के अणु एक दूसरे से कई मील दूर होते हैं और इसलिए कभी कभी पृथ्वी के धूमकेतु की पूँछ से टकराने पर भी इन विषैली गैसों का यहाँ के प्राणियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। धूमकेतु का आकार बहुत बड़ा होने पर भी उनका भार (mass) बहुत कम होता है; अतएव किसी धूमकेतु के शरीर में द्रव्य की मात्रा कितनी है इसका ठीक ठीक पता लगाना बहुत मुश्किल है। क्योंकि आकाश की किसी भी वस्तु के भार का माप विभिन्न ग्रहों पर आकर्षण आधार पर किया जाता है और धूमकेतु का अकर्षण किसी भी ग्रह पर प्रायः नहीं के बराबर ही पड़ता है। लेक्सेल (Lexell) का धूमकेतु सन् १७७० ई० में पृथ्वी के बहुत सन्निकट आ गया था और हमारे इस छोटे ग्रह के आकर्षण के कारण उस धूमकेतु के चक्कर की अवधि में कई दिनों का अन्तर हो गया था किन्तु पृथ्वी की गति में उसके आकर्षण के प्रभाव से किसी भी प्रकार का व्यतिक्रम परिलक्षित नहीं हो सका। इस धूमकेतु का भार पृथ्वी के भार के दस-हजारवें अंश से भी

छोटा रहा होगा। धूमकेतु का औसत घनत्व इतना कम होता है कि उसकी पूँछ के करीब एक हजार घन कीलोमीटर भाग का भार हमारी साधारण हवा के एक घन सेंटीमीटर के भार के बराबर होता है। यदि दैव वशात् कभी हमारी पृथ्वी धूमकेतु की पूँछ से टकरा जाय तो उससे हम लोगों का रंचमात्र भी अकल्याण नहीं होगा। उस समय हमारा आकाश थोड़ा और प्रकाशित हो उठेगा क्योंकि तब हम लोगों को धूमकेतु पूँछ का प्रभापूर्ण भाग दिखाई देता रहेगा! धूमकेतु के भार का अधिकांश केन्द्रक में पुंजीभूत रहता है लेकिन वहाँ भी इसका घनत्व इतना क्षीण है कि यदि पूँछ के अलावा केन्द्रक से ही हमारी पृथ्वी की भिड़न्त हो जाय तो हमारे जीवन क्रम में किसी प्रकार के अमांगलिक व्याघात उपस्थित होने की सम्भावना नहीं है। अधिक से अधिक यही हो सकता है कि हमारे वायुमण्डल में धूमकेतु ठोस रजकणों के निरन्तर जलने से तीव्र उल्का-वर्षण का अनुपम दृश्य उपस्थित हो जाय।

धूमकेतु का प्रकाश ग्रहों की भाँति सूर्य के प्रकाश का प्रतिविम्ब मात्र है। सूर्य के प्रकाश को धूमकेतु के गैस के अणु आत्मसात् करने बाद पुनः फेंकते हैं और इस क्रम में उनका क्षय भी होता रहता है। ज्यों ज्यों धूमकेतु सूर्य के निकट आता जाता है, गैसों के अणु अधिकाधिक टूटते रहते हैं और उसके आकरण का आकार छोटा होने लगता है। १९१० में हेली के धूमकेतु का व्यास सूर्य के समीप, २३०,००० कीलोमीटर से कम होकर ४०,००० कीलोमीटर ही रह गया था।

धूमकेतु की पूँछ का क्रमशः ह्रास तो होता ही रहता है, साथ ही कुछ पुच्छलतारों में एक और विचित्र बात होती है। कभी कभी सूर्य के काफी समीप आ जाने से धूमकेतु के छोटे छोटे भाग उसके शरीर से अलग होकर उपग्रह की भाँति उसके साथ साथ ही चलने लगते हैं। १८८२ ई० का धूमकेतु जब सूर्य के बहुत निकट आ गया तो ऐसा प्रतीत हुआ कि उसके केन्द्र के चार अलग हिस्से हो गये हैं। और उसी समय उपग्रह के रूप में एक दूसरे धूमकेतु का भी उदय हुआ। १८८० में एक और धूमकेतु उसी कक्ष पर घूमते हुए देखा गया था और १८८७ में एक तीसरा उसी प्रकार यात्रा कर रहा था। ऐसा मालूम होता है कि प्रारम्भ में एक ही धूमकेतु के सूर्य के आकर्षण के कारण कई भाग हो जाते हैं और वे सब करीब करीब पुराने पथ पर ही चलते रहते हैं।।

धूमकेतु के केन्द्रक में कभी कोई बड़ा ठोस पिण्ड नहीं देखा गया है। १९१० में हेली का प्रसिद्ध धूमकेतु पृथ्वी और सूर्य के बीच में आ गया था लेकिन व्यवधान के कारण सूर्य का कोई भी भाग पृथ्वी से अलक्षित नहीं रह सका। यदि इसके शरीर में कहीं बड़े आकार का कोई ठोस भाग होता हो निश्चय ही उसकी छाया सूर्य के गोलक पर पड़ती। लेकिन उस समय किसी प्रकार की छाया का आभास नहीं मिला। उसी दूरी पर यदि ५० कीलोमीटर चौड़ा कोई ठोस पिण्ड होता तो उसकी छाया सूर्य पर एक बिन्दु-तुल्य धब्बे के समान पड़ती, उससे यह आसानी से अनुमान लगाया जा सकता है कि हेली के धूमकेतु के शरीर में यदि कोई ठोस द्रव्य है तो उसका आकार बहुत ही छोटा होगा। १९२७ ई० में (Pons winnecke) नामक पृथ्वी के बहुत सन्निकट होकर यात्रा कर रहा था। उस समय बैल्डेट (Baldet) और स्लिफर (Slipher) ने उसके केन्द्र का परीक्षण किया उनका निष्कर्ष यह था कि यदि इसके भीतर ठोस भाग है तो उसका आकार दो कीलोमीटर से अधिक चौड़ा न होगा। उसकी ज्योति की परीक्षा के बाद बैल्डेट ने यह निकर्ष निकला कि इसके केन्द्रक का व्यास ४०० मीटर से अधिक नहीं हो सकता।

धूमकेतु की जो भी कहानी हो लेकिन उसके निर्माण और संहार की कथा संक्षेप में इस प्रकार है। इसके भार का प्रमुख भाग ठोस कणों का बना होता है। ये रज-कण केन्द्रक के पास अधिक घनीभूत होते हैं और क्रमशः कम संख्या में धूमकेतु

के आवरण की तरफ फैलते जाते हैं। इन कणों से लिपटी हुई कई प्रकार की गैसें इन्हें निरन्तर घेरे रहती हैं। कालन्तर में सूर्य-रश्मियों के के दबाव के कारण ये द्रव्य पूँछ के रूप में धूमकेतु के केन्द्रक के बाहर होने लगते हैं तो धीरे धीरे केन्द्रक शक्तिहीन होकर छिन्नभिन्न हो जाता है। इसके बाद जो कुछ बचा रहता है वह करीब करीब अपने पुराने पथ पर ही घूमता रहेगा और एक दिन पृथ्वी से टकराने पर इसके वायुमण्डल में उल्कापात का दृश्य उपस्थित करेगा।

राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला

[संग्रहकर्त्ता—श्री० रामचरण मेहरोत्रा]

वृहत परिमाण पर वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसन्धान के संगठन के लिए भारतवर्ष में एक राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोग शाला की स्थापना की जा रही है। यह प्रयोग शाला पूना में बनाई जायेगी। पूना की जलवायु साल भर सुहावनी रहती है और यह स्थान भारत के प्रधान उद्योग-केन्द्र बम्बई के भी पास हैं। पाशान सड़क पर एक मनोहर स्थान इस प्रयोग शाला के चुना गया है, इस स्थान का क्षेत्र फल ४७० एकड़ है और शिक्षा केन्द्रों से निकट होने के कारण प्रयोग शाला के लिए बहुत ही उपयुक्त है।

प्रयोग शाला में कार्य्यकर्त्ताओं की संख्या निम्न होगी।

१. वैज्ञानिक कार्य्यकर्त्ता	
(क) डाइरेक्टर, सह-डाइरेक्टर, उच्च वैज्ञानिक अफसर, निम्न वैज्ञानिक अफसर	५१.
(ख) अनुसन्धान सहकारी	६४.
२. प्रबन्ध कार्य्यकर्त्ता	४२
३. वर्कशाप आदि के लिए कार्य्यकर्त्ता	३५.
४. गुदाम, प्रयोगशाला-कर्मचारी आदि	८६
५. अन्य कार्य्यकर्त्ता	४२
	३२०

प्रयोग शाला की मुख्य इमारत का क्षेत्र फल १५०,००० वर्ग फुट होगा और इसके अतिरिक्त १० छोटी-छोटी इमारतें प्रत्येक ३०,००० वर्ग फुट क्षेत्र फल की होंगी। प्रयोग शाला में निम्न सात विभाग होंगे (१) अकार्बनिक रसायन जिसमें विश्लेषणात्मक रसायन भी शामिल है (२) भौतिक रसायन तथा वैधुत् रसायन (३) उच्च संगठित पदार्थों का रसायन-शास्त्र (४) कार्बनिक रसायन (५) जीवात्मक रसायन (६) रासायनिक यांत्रिक-शास्त्र (७) सर्वे विभाग। ऐसा अनुमान किया जाता है कि प्रयोग शाला के बनाने में ३५ लाख रुपये खर्च होंगे और उसका सालाना खर्चा लगभग ११½ लाख होगा।

६ अप्रैल सन् १९४७ को बम्बई के प्रधान मंत्री श्रीयुत् बी० जी० खेर जी ने इस प्रयोग शाला की नींव डाली। प्रयोग शाला के प्रथम डाइरेक्टर डाक्टर सलीम उज्जमाँ सिद्दीकी नियुक्त किये गये हैं। शिलान्यास के अवसर पर माननीय चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य सभापति थे और उपस्थित महानुभावों में प्रमुख सर शान्ति स्वरूप भटनागर, सर आर्देशिर दलाल सर श्री राम तथा सर जे० सी० घोष थे।

पहिली प्रमुख शुभ कामना पण्डित जवाहरलाल नेहरू जी की थी। उन्होंने लिखा कि 'भारतवर्ष में वैज्ञानिक अनुसन्धान की उन्नति के लिए राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोग शाला की स्थापना बहुत महत्वपूर्ण है। रसायन शास्त्र में मौलिक अनुसन्धान ही राष्ट्र के औद्योगिक उन्नति की कुञ्जी है। हमारे खनिजों के स्रोतों के पता लगाने में यह प्रयोग शाला बड़े काम की होगी, ऐसी मेरी आशा है। मुझे विश्वास है कि वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसन्धान कौंसिल के

अन्तर्गत स्थापित यह राष्ट्रीय प्रयोग शालाएँ भारतीय वैज्ञानिकों को यह अवसर देंगी कि वे निस्वार्थता व लगन से भारत वर्ष के करोड़ों निवासियों को पार्थिव, आर्थिक तथा सामाजिक दासता के बन्धन छुड़ाने के प्रयत्न में योग दे सकें।"

बम्बई के गवर्नर सर जान कालवीलने शुभकामना में लिखा था कि 'मुझे विश्वास है कि यह संस्था बहुत ही राष्ट्रीय महत्व की होगी और मुझे प्रसन्नता है कि इसकी स्थापना बम्बई प्रांत के एक शहर पूना में हो रही है जो अपनी सभ्यता के लिए एक दीर्घ काल से प्रसिद्ध है।"

सभापति श्री राजगोपालाचार्य जी ने अपने भाषण में कहा, 'औद्योगिक उन्नति के लिए वैज्ञानिक अनुसन्धान का महत्व बहुत अधिक है। इस देश में हमने अनुसन्धान की ओर पर्याप्त मात्रा में ध्यान नहीं रक्खा है और इसी का फल है कि औद्योगिक दिशा में भी हमारा देश बड़ी निम्न अवस्था में है। हमारे उद्योग मुख्यतः विदेशी कलों और विदेशीय कारखाने वालों की दी हुई विधियों पर निर्भर करते हैं और केवल इस कारण जीवित हैं कि हमें कई फ़ायदे हैं। पहिला लाभ तो हमें सस्ते मजदूरों का है। दूसरे कच्चे माल की बहुतायत है और तीसरे भारतवर्ष की इतनी बड़ी आबादी के कारण माल की खपत भी बहुत है। मुझे आशा है कि औद्योगिकों के सहयोग से स्थापित यह राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला हमारे व्यवसायों को अधिक उन्नतिशील बनाने में सफल होगी।

श्री राजगोपालाचार्य जी ने व्यवसाइयों को सम्बोधित करते हुए कहा, "मेरा आपसे अनुरोध है कि आप इन राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं को अधिक से अधिक सहायता दें। हम वैज्ञानिक के अनुसन्धानों से प्रायः तुरन्त ही लाभ नहीं उठा सकते। कौन जानता था कि परमाणु और परमाणुक शक्ति एक दिन इतनी भयानक यथार्थता का रूप ले लेगी?"

शिलान्यास करते समय श्रीयुत बी० जी खेर जी ने कहा, "यह प्रयोगशाला दूसरी संस्थाओं में होने वाले आधार-मूल अनुसन्धानों और उद्योगों के बीच मध्यस्थता का कार्य्य करेगी। इसके प्रयत्नों के फलस्वरूप देश में उद्योग धन्धों की उन्नति होगी और उद्योग धन्धों की उन्नति से विज्ञान की वृद्धि में सहायता मिलेगी।"

उन्होंने आगे चलकर कहा, 'आज संसार नैतिक पतन के गहरे गर्त में गिरा हुआ है। स्वार्थपरता अनियमता और परस्पर द्वेष ने हर ओर अपना अधिकार कर लिया है। विज्ञान उन्नति कर रहा है और उसकी उन्नति के साथ युद्ध शस्त्रों की विध्वंसकारिता भी बढ़ रही है। विज्ञान को नैतिक दशा से कुछ सरोकार नहीं है, विज्ञान तो हमें नग्न सत्य बतला देता है और यह हम राजनैतिकों पर छोड़ देता है कि हम उस नग्न मूर्ति को कैसा जामा पहिनाएँ। इस अवस्था का मेरे विचार में केवल एक हल है, हमें अपनी शिक्षा प्रणाली ऐसी परिवर्तित करनी चाहिये कि विज्ञान की उन्नति के साथ हमारी नैतिक उन्नति भी कदम से कदम मिला कर बढ़े। हममें से किसी को इस तथ्य में सन्देह न होगा कि भौतिक, यांत्रिक व रासायनिक विज्ञान हमें कुशाग्रता, नैतिक नियंत्रण, स्वास्थ्य, और शान्ति नहीं दे सकते, परन्तु इन विज्ञानों का मुख्य कार्य्य मनुष्य के अन्तःकरण को जाग्रत कर देना है और यही जाग्रति हमारे सारे भविष्य की आशा-केन्द्र है। सत्यता और वास्तविकता को हमें प्रत्येक दृष्टिकोण से अध्ययन करना चाहिए और यह रासायनिक प्रयोगशाला इस अध्ययन के एक पहलू को पूरा करने के उद्देश्य से बनाई जा रही है।"

वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसन्धान कौंसिल के डाइरेक्टर सर शान्ति स्वरूप भटनागर जी, जो कि राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं के निर्माण के विचार के आरम्भदाता हैं, शिलान्यास के अवसर पर उपस्थित थे। उन्होंने आशा प्रकट की कि यह प्रयोगशाला दीर्घकालीन योजनाओं पर अनुसन्धान करेगी। दीर्घकालीन समस्याएँ हमारे विश्वविद्यालयों में हल

[शेष पृष्ठ ४५ पर]

सोंठ

(ले०—श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालङ्कार, हिमालय हर्बल इंस्टिट्यूट, बादामी बाग, लाहौर)

विविध भाषाओं के नाम

हिन्दी—सोंठ।

संस्कृत[१]—उत्पत्तिबोधक नाम—नागर (नगरों में होने वाला), शृंगवेर (सम्भव है यह पहले...करवा है)। परिचयज्ञापक संज्ञा—राहुच्छत्र (राहु का छत्र); शृङ्गवेर (जिसकी गाँठें सींग की तरह होती है, शृंगम् इव वेरम् अवयवं यस्य)। गुण प्रकाशक संज्ञा-महौषध (महान् उपयोगी ओषधि); विश्व, विश्वा, विश्वभेषज (सारे संसार के लिए हितकर औषध या जिसका सारा कन्द औषध में काम आता है); भद्र (कल्याण-कारी श्रेष्ठ दवा); कटुक (रस में कटु या चरपरा); कटूत्कट (बहुत अधिक चरपरा); ऊषण (उष्ण वीर्य)।

पञ्जाबी—सुण्ड।
बंगाली—शुण्ठ, सोण्ट, शुण्ठि।
मारवाड़ी—सूंठ।
मराठी—सुण्ढ।
गुजराती—शुण्ढय, सुंठ, सूंठ।
कर्णाटकी—शोंठि, ओणसुंठि, वेनशुंठी।
तामिल—शुक्कु।
तेलगु—सोंटी, सोंठी, शोंठी।
सिंहली—वेलिम इंगुरु।
वर्मी—गिन्सीखिपाव।
मलयी—पुक्क।
पश्तो—सुंड।
अरबी—जंजवीले आविस।
फारसी—जंजवील, जजवील खुश्क।
अंग्रेजी—ड्राइ जिंजिबर (Dry gingiber)

ताजी सोंठ को अदरक कहते हैं। इसके नाम ये हैं :—

हिन्दी—अदरक।

संस्कृत[१]—परिचयज्ञापक संज्ञा—आर्द्रक, आर्द्रिका (गीला, नमीवाला)।

गुणप्रकाशक संज्ञा—कटुकन्द, कटुकन्दक (चरपरा कन्द), कटुभद्र (चरपरा कल्याणकारी)

पंजाबी—अद्कर।
बंगाली—आदा।
मारवाड़ी—आदो।
मराठी—आल।
गुजराती—आदु।
कर्णाटकी—अल्ल, असिशोंठि, हसी सुंठी।
तामिल—इञ्जि।
तेलगु—अल्ल, अल्लम।
सिंहली—अमु इंगुरु।
बर्मी—ख्वेन सेङ्ग, गिनसिन।
अरबी—जंजवीले रतव।
फारसी—जंजवीले तर।
अंग्रेजी—जिञ्जर (Ginger).

लैटिन—(जञ्जिबर औफिसिनल (zingiber officinale Rosc.)।

---

[१](क) शुण्ठी विश्वा च विश्वञ्च नागरं विश्वभेषजम्।
ऊषणं कटुभद्रञ्च शृङ्गवेरं महौषधम्॥
भा०प्र०, पू०ख०, मि० प्र० ६, हरीतकादि वर्ग ४४

(ख) शुण्ठी महौषधं विश्वमौषधं विश्वभेषजम्।
नागरं कटुकं भद्रं राहुच्छत्र कटूत्कटम्॥
कै० दे० नि०, ओ० व०; १२६६।

(ग) भ० पा० नि०, शुण्ठयादि वर्ग. २। पं० ३।
श० नि०, पिप्पल्यादि: २४-२५। पं० ५।

(घ) आर्द्रकं गुल्ममूलञ्च मूलजं कन्दलं वरम्।
शृङ्गवेरं महीजञ्च सैकतेष्टयनूपजम्॥
अपाकशाकं भाद्रारिण्यं राहुच्छत्रं सुशाककम्।
शार्ङ्गं स्यादार्द्रशाकञ्च सच्छाकमृतुभूद्वयम्।
श० नि०, पिप्पल्यादि; २७-२८।

नैसर्गिक वर्ग

शिटेमिनी (Scitaminaea)

अदरक के नाम पर ही पहले इस वर्ग का नाम आर्द्रक वर्ग (Zingiberaceae) था। वार्मिंग ने जिंजिबरेसी वर्ग को शिटेमिनी के अन्तर्गत कर दिया था। वेन्थम और हुकर ने जिंजिबरेसी, मुसेसी (कदली वर्ग Musaceae), केनासी (Cannaceae) और मैरेण्टेसी (Marantaceae) इन वर्गों को शिटेमिनी नाम में मिला दिया।

शिटेमिनी वर्ग में चौबीस गण हैं जिनकी दो सौ पिचहत्तर जातियां हैं। इस वर्ग की वनस्पतियां उष्ण प्रदेशों में, मुख्यतया भारत और मलय द्वीप-समूहों में, मिलती हैं। ये वनस्पतियां एकबीजपत्रक (monacetyledons) और बहुवार्षिक (perennial) हैं। ये सम्पद (sympodial), मांसल भूमध्यकाण्ड (rhizomes) वाली होती हैं और इनकी जड़ें प्राय: प्रगाण्डिक (tuberous) होती हैं। वायवीय तना नहीं होता। हो भी तो छोटा होता है। कभी-कभी प्रकट रूप में काण्ड-सा बन जाता है जैसे केले में पत्तों की तहें लिपट कर काण्ड सा बन जाती हैं।

इस नैसर्गिक वर्ग में चिकित्सा और व्यापारिक दृष्टि से अनेक महत्वपूर्ण पौधे हैं जैसे हल्दी, अदरक इलायची, केला आदि।

वानस्पतिक वर्णन

अदरक मृदु (herbaceous) बहुवार्षिक द्रुम है। करीब तीन या चार फुट ऊँचा होता है। इसका काण्ड ही जड़ बन जाती है और भूमि के अन्दर यह सर्पणशील सी होती है। कन्द रूप जड़ को अदरक कहते हैं। पत्ते बांस के पत्तों के समान परन्तु उससे छोटे और ऊपर से बहुत चिकने तथा नीचे से कुछ कम चिकने होते हैं। फूलों का रंग जामनी होता है। फूलने का समय बरसात है परन्तु फूल कभी ही निकलते हैं। मैंने बीज भी कभी नहीं देखे।[१]

[१] विलियम रौक्सवर्ग: फ्लोरा इण्डिका, पृष्ठ १६।

इतिहास

चीनी और भारतीय बहुत प्राचीन काल से अदरक को मसालों और चिकित्सा में प्रयोग कर रहे हैं। संस्कृत साहित्य और चीनी चिकित्सा ग्रन्थों में इस का बहुत उल्लेख मिलता है। प्राचीन ग्रीक और रोम निवासी प्रतीत होता है कि इसका उद्भव अरब समझते रहे हैं क्योंकि उन्हें यह लालसागर के रास्ते से होकर ही मिलती थी। यह पौधा दक्षिणीय एशिया का मूलनिवासी है। वहां यह सभ्य युग से पहले से बोया जा रहा है और बहिर्निर्यात किया जा रहा है।

किस्में

निम्नलिखित किस्में बाजार में प्रसिद्ध हैं—जमायका, कोचीन, बंगाल, टेलीचेरी (Teliechery), जापान और अफ्रीका। भारतीय और अफ्रीका की सोंठ मसालों की मण्डियों में प्राय: छिलका उतारे बिना ही आती रही इस लिए इनका रंग तुलना में मैला होने से इन्हें काली सोंठ (black ginger) भी कह देते थे। दूसरे स्थानों के सोंठ छिलके उतार कर तथा चूने की तह चढ़ा कर या रंग उड़ा कर बाजार में लायी जाती थी। कैलसियम कार्बोनेट या सलफेट की तहें चढ़ाना रूप को कुछ सुन्दर बना देता है और कीड़ों के खाये जाने से भी बचाता है। लेकिन बहुत से लोग इन साधनों के बिना भी सन्तोषजनक पदार्थ निर्माण कर लेते हैं जो निर्यात होने पर भी अच्छी अवस्था में रहता है। रंग उड़ाने के लिए रंग उड़ौना चूर्ण (ब्लीचिंग पाउडर) और गन्धक द्विअक्साइड इस्तेमाल होते हैं।

खेती

दुनियां के सब गरम प्रदेशों में अदरक की खेती की जाती है। भारत में यह नमीदार गरम प्रदेशों में सब जगह बड़े पैमाने में उगायी जाती है परन्तु मुख्यतथा मैदानों में बोई जाती है। मद्रास, कोचीन

तथा ट्रावंकोर में विशेषतः और कुछ हद तक बंगाल और पंजाब में भी खेती की जा रही है।

पौदा छाया में अच्छा होता है इस लिए आम आदि बड़े वृक्षों के पडोस की भूमि का इसके लिए अच्छा उपयोग किया जा सकता है। इससे फलों के वृक्षों को एक और लाभ यह है कि फलों को हानि पहुँचाने वाले कीड़ों को यह उनसे दूर रखता है।

ज़मीन का चुनाव

कठोर चिकनी भूमि किसी भी कन्द वाली फसल के लिए अनुकूल नहीं होती। पथरीली और चट्टानी भूमि भी इन फसलों के लिए अच्छी नहीं। गहरी, उपजाऊ और स्वभावतः पानी के अच्छे निकास वाली भूमि को यह पौधा अधिक पसन्द करता है। गहरी नदियों से बनाई गई, रेतीली जगहों पर, जैसे बड़ौदा और कायरा की दुरमुट जमीनें (loams) हैं, यह पूर्ण सन्तोषप्रद उगता है।

ज़मीन बनाना

अदरक की खेती के लिए ज़मीन चुन ली गई है तब सबसे पहले यह अभीप्सित होता है, कि वर्षा की ठीक समाप्ति पर हल चला दिया जाय क्योंकि उस समय हल चलाने के लिए भूमि ठीक हो गई होती है। सुहागे से खेत के डले तोड़ डाले जाने चाहिए। आने वाली एप्रिल में पहली वारिश के बाद दुबारा हल चला कर सुहागा फेर लेने से भूमि अदरक की गाँठें बोने लायक हो जाती है।

खाद

इस पौदे को खाद प्रायः नहीं दी जाती परन्तु एक मन राख और दो या तीन मन खली का मिश्रण प्रति एकड़ में डालने से फसल को और जिन वृक्षों के नीचे यह बोई गई है उनको भी लाभ होता है। खाद की उपेक्षा की गई तो जिन वृक्षों की छाया में अदरक बोई जा रही है, बारबार की कृषि के कारण उन्हें हानि पहुँचती है। खाद दो बार दी जानी चाहिए। गांठों को बोने के ठीक बाद और तब जब पौधों की जड़ों में मिट्टी चढ़ाई जाने लगे।

बीज बोना

अदरक की छोटी-छोटी गाठें, जिनमें प्रत्येक में दो या तीन आंखें हों, बीज कहलाते हैं। भूमि तय्यार करने के बाद नियमित पंक्तियों में दो इञ्च गहराई में नौ-नौ इञ्च की दूरी पर बीज (गांठें) बोनी चाहिए। प्रत्येक पंक्ति का आपस में अन्तर भी नौ इञ्च होना चाहिए। एक एकड़ में बोने के लिए दो मन बीजों की आवश्यकता होती है। जब पौधे ऊपर आ जायं तो जड़ों पर बरसात शुरू होने के पहले ही मिट्टी चढ़ा दी जानी चाहिए। मिट्टी इस तरह चढ़ाई जाती है कि बीच में सीधी नालियां या खाइयां बन जाती हैं। इन खाइयों का रुख खेत के ढलान की ओर होना चाहिए जिससे वारिश का पानी पौधों के पास खड़ा न रह कर सीधा बाहर निकल जाय।

निलाई

निलाई सदा हाथों द्वारा सावधानी से की जानी चाहिए। खेत की अवस्था के अनुसार तीन से छः बार तक निलाई की जा सकती है। प्रत्येक बार में घास पात और विजातीय वनस्पतियाँ निकाल देनी चाहिए। नहीं तो विजातीय घास आदि के बड़ा हो जाने पर उनकी जड़ें अन्दर गहरी जाकर अदरक की गाँठों के साथ मिल जाती हैं और तब उनके साथ उलझी हुई जड़ों को निकालना कठिन होता है और इससे फसल को हानि भी बहुत पहुँचती है।

सिंचाई

जब तक वारिश नहीं पड़ती हर छठे दिन पौधों को पानी दिया जाना चाहिये। उसके बाद यदि दस दिन से अधिक बीत जाने पर भी वर्षा नहीं हुई तो सिंचाई अवश्य कर दी जानी चाहिए। वारिश बन्द हो जाने पर सिंचाई हर छठे दिन जरूरी होती है। जब तक फसल पक न जाय सिंचाई इसी तरह जारी रखनी चाहिये। नवम्बर की समाप्ति या दिसम्बर के आरम्भ में फसल खोदने के लिए तैयार हो जाती है। फसल पकने के लिए कोई निश्चित नियम नहीं कहा जा सकता।

फसल खोदना

फूल निकलने बन्द हो जाने पर और पत्ते पूर्णतया सूख जाने पर जड़ें खुरपे से खोद कर बाजार में बेच दी जानी चाहिए या सुखा कर सोंठ बना ली जानी चाहिए।

फसल खोदते हुए कुछ गाँठें जमीन में ही छोड़ दी जांय तो वे ही बीज का काम दे देती हैं। तब नया बीज नहीं बोना पड़ता, पर इस तरह से प्राप्त फसल घटिया किस्म की होती हैं, गांठें बहुत छोटी होती हैं और उनमें रेशे भी अधिक होते हैं।

संग्रह

सामान्यतया अच्छे बने हुए किसी घर का बीच का कमरा अपेक्षाकृत ठण्डा होता है, इस लिए वह अदरक रखने के लिए बहुत अनुकुल होता है। ठंडा नमीदार वायुमंडल, जिसमें वायु का आवागमन स्वतन्त्रता से हो सके, इसके लिए अच्छा रहता है। रखने से पहले अदरक को भलीभांति देख कर उसमें से सड़े गले खण्डों को फेंक दें। कमरे के अन्दर मिट्टी के फर्श को दस-बारह इंच गहरा खोदें और निकली हुई मिट्टी को पानी से गीला कर लें। आठ-दस दिन में मिट्टी पानी सोख लेती है और फर्श काफी सूख जाता है। अदरक को सूखे पत्तों से ढक दें। इन पर प्रायः पानी छिड़क दिया जाता है। ढेरियों को सप्ताह में एक बार परीक्षा कर ली जाय और यदि बीच का भाग शेष की अपेक्षा अधिक गरम है तो सारी अदरक कमरे से निकाल कर सड़ी गली गांठों को चुन कर निकाल फेंक दें। तीन या चार दिन बाद अदरक की फिर ढेरी लगा दें। ढेरी ठण्डी रहे तो समझना चाहिये कि अदरक ठीक है।

(क्रमशः)

राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला

[पृष्ठ शेष ४१ का]

नहीं की जा सकतीं क्योंकि न तो उनकी आर्थिक दशा ऐसी है और न उनके पास इतना संगठित वैज्ञानिक समाज ही है। वैज्ञानिक गवेषणा और उस गवेषण के व्यवहारिक प्रयोग के बीच का मार्ग बहुत लम्बा और कठिन है और दुख की बात है कि भारतीय वैज्ञानिकों को अभी यह अवसर बहुत कम मिला है कि अपनी गवेषणाओं को लोकहित के लिए व्यवहारिक प्रयोग में लायें। अब वह समय आ गया है कि भारतवर्ष को न केवल मौलिक गवेषणाओं को ही महत्व देना होगा बल्कि व्यवहारिक ज्ञान-वृद्धि की भी प्रतिष्ठा करनी होगी। भटनागर जी ने यह आशा प्रकट की कि इस प्रयोगशाला का सम्बन्ध उद्योग-धन्धों के कारखानों से बड़ा निकट व वास्तविक रहेगा और साथ ही साथ इसका सहयोग विश्वविद्यालयों की प्रयोगशालाओं से भी रहेगा। अच्छा होगा यदि विश्वविद्यालयों की प्रयोगलाओं में की हुई मौलिक गवेषणाओं के व्यवहारिक महत्व पर यह प्रयोगशाला कार्य्य करे।
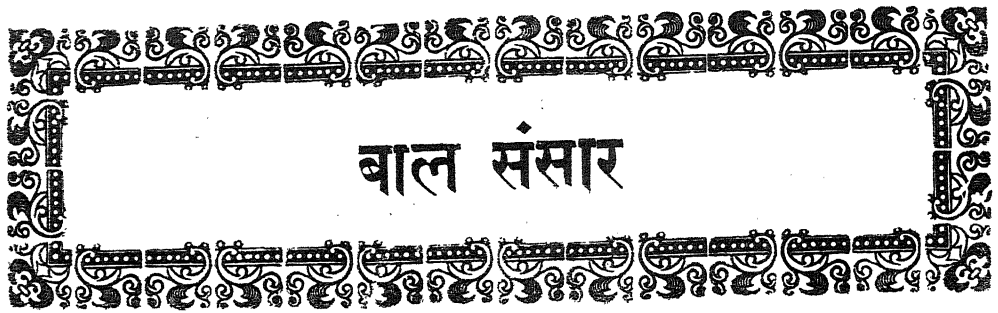
बाल संसार

कोयले की आत्मकथा

लेखक—सुमन

मेरे बालक श्रोतागणो! मैं तुम्हें अपनी दर्द भरी जीवन-कहानी सुनाना चाहता हूँ। इस कहानी के कहनेसे मेरा तात्पर्य तुम्हारे पिता या दादा की शिकायत करना नहीं है सच तो यह है कि उन्होंने मेरा सदैव तिरस्कार व अनादर किया है परन्तु मैंने कभी उसका बुरा नहीं माना, मैं तो हमेशा से उनके साथ भलाई ही करता आया हूँ। इस क्षण तो मैं केवल इतना चाहता हूँ, कि तुम बालक, जिनके ऊपर संसार की सभी भावी आशाएँ अवलम्बित हैं, मेरे ऊपर भी इतनी दया करना कि मेरे साथ अब बुरा व्यवहार न करना।

अच्छा सच बताओ! मेरे एक टुकड़े को देखते ही तुम्हारे हृदय में क्या भाव उपजते हैं? कितना काला! कितना कुरूप यह पदार्थ ईश्वर ने बनाया है। परन्तु क्या तुमने कभी यह भी सोचा है कि मैं तुम्हारे कितने काम की वस्तु हूँ। दूर क्यों जाओ, मेरे बिना तुम्हारा खाना पकना भी असम्भव हो जाता, यह मैं ही कि अपना तन जला कर जो गरमी देता हूँ, वह तुम लोगों के खाना पकाने के काम आती है। यदि आज मैं यह काम बन्द कर दूँ, तो तुम्हें केवल कच्ची चीजें खाने को मिलें। बताओ, तुम्हें कच्ची दाल, तरकारी और गेहूँ में क्या स्वाद आयेगा।

कोयले सी काली! कितनी अधिक घृणा भर दी है तुम्हारे हृदय में तुम्हारे बड़े लोगों ने मेरे प्रति! अच्छा मान लो तुम आज अपने-मां बाप से दूर किसी शहरी स्कूल पढ़ में रहे हो और सहसा ही तुम्हें अपने छोटे भाई बहिनों की, माता की याद सताने लगे; तो तुम छुट्टी लेकर फौरन रेल पर सवार होकर घर की ओर चल देते हो। ६० मील प्रति घण्टे के हिसाब से सफ़र करते हुए सैकड़ों मील का सफर कुछ ही घण्टों में तै कर कितनी शीघ्र जा कर अपनी माता की गोद में लेट जाते हो; तुम्हें उस क्षण कितनी प्रसन्नता होती है! क्या तुमने ऐसे क्षणों में कभी भी यह ध्यान देने का प्रयत्न किया है कि यह मैं ही हूँ जिसने तुम्हें इतनी प्रसन्नता दी? मेरे बिना क्या रेल एक पग भी चल सकती थी? जिस समय तक तुम्हारे पूर्वजो ने मेरी शक्ति का पता नहीं पाया था, वे महीनों में मीलों का सफ़र तै कर पाते थे। स्टीफ़नसेन महाशय बहुत ही चतुर व्यक्ति थे, उन्होंने मेरा गुण पहिचान कर मेरा मूल्य किया और रेल के इञ्जन में मेरा प्रयोग किया तो मैंने भी उन्हें प्रसद्धि देकर अमर कर दिया।

शायद तुम्हारे मन में यह भाव उपज रहे हों कि मेरे इन गुणों को तो तुम जानते ही हो, इसमें मैं तुम्हें नयी बात क्या बतला रहा हूँ। अच्छा लो अब मैं अपने कुछ ऐसे गुण बतलाऊँगा, जो तुमने कभी न सोचे होंगे। क्या तुम अनुमान कर सकते हो कि

मेरी ऐसी तुच्छ वस्तु तुम्हारे प्रयोग में आने वाली कितनी वस्तुओं में विद्यमान है। शक्कर की मिठास से तुम भली भाँति परिचित हो ही; क्या तुम सोच सकते हो कि शक्कर के चमकते हुए सखेद रवों में भी मैं विद्यमान हूँ ? यदि तुम बाजार से लगभग सेर भर शक्कर खरीदते हो, तो उस शक्कर में लगभग सात छटाक मुझे मोल लेते हो। आज तो इतनी सफ़ेद शक्कर आने लगी है; यह भी मेरे ही कारण है। मैं स्वयं काला हूँ, पर दूसरों का रंग साफ करने का गुण मुझ में है। जब कि गुड़ ऐसी वस्तु का पीला-पीला मटमैला रङ्ग किसी प्रकार दूर न हो सका, तो लोगों ने मेरी सहायता ली और तब से मैं इस काम में प्रयोग होता हूँ, इसके अतिरिक्त और भी कितनी वस्तुओं का रङ्ग दूर करने में मेरा इस्तेमाल किया जाता है।

रङ्ग को सोख लेने का गुण तो मुझ में है ही, पर मुझ में बदबूदार और ज़हरीली गैसों को भी सोख लेने की शक्ति है। इसी शक्ति के आधार पर मुझे बदबू दूर करने के लिए डाला जाता है। लड़ाई में लोगों को जहरीली गैसों का डर लगा रहता था, इसके लिए गैस-मास्क बनाए गये कि यदि कभी दुश्मन जहरीली गैसें छोड़ दे, तो वे गैस-मास्क लगा कर साँस ले सकें। गैस-मास्क में भी मेरा प्रयोग होता है। मैं अन्दर आने वाली हवा में से जहरीली गैसें सोख लेता हूँ और हवा को शुद्ध सांस लेने लायक बना देता हूँ।

दूसरी पदार्थों को निरञ्जित करने व बदबू दूर करने के गुण तो मुझमें हैं ही परन्तु कोलतार जैसी काली, बदबूदार वस्तु भी तुमको मुझी से मिलती है। कोलतार द्वारा लोग अपनी लकड़ी की चीजों को दीमक से बचा लेते हैं, लोहे पर कोलतार लगा देने से उसने ज़ंग नहीं लगती। परन्तु कोलतार से केवल इतने ही लाभ नहीं है। तुम्हें आश्चर्य होगा कि आजकल कोलतार से हज़ारों सुन्दर से सुन्दर रंग बनाए बनाते है। तुमको रंगीन कपड़े बहुत पसन्द होंगे। यह सब पीले, नीले, गुलाबी आदि रंग कोलतार से ही बनते हैं। है न आश्चर्य जनक यह बात कि काली बदबूदार वस्तु से इतने सुन्दर रंग ?

इतना ही नहीं, यह तो एक दीर्घ काल से बात चली आयी है कि जिस राष्ट्र के पास जितना अधिक कोयला था, उतनी ही ज्यादा उन्नति उस राष्ट्र ने की। परन्तु आज तो कोलतार का महत्व भी बहुत बढ़ गया है।

इतना ही नहीं इसी कोलतार से युद्ध में प्रयोगित सब जहरीली गैसें बनाई जाती हैं। आदि काल से दुष्ट मनुष्य मेरी शक्ति का दुरुपयोग करते आये हैं। लड़ाई में बारूद का कितना महत्व है, यह तो तुम जानते ही होगे; बारूद के बिना तोपें, बन्दूकें सब बिल्कुल बेकार हो जायेंगी। युद्ध की ऐसी महत्व-पूर्ण वस्तु बारूद भी मेरे बिना नहीं बनाई जा सकती। सुन्दर सुन्दर रंग ही नहीं बाजार में जितने कृत्रिम एसेन्स या इत्र मिलते हैं, वह सब कोलतार से ही बने होते हैं। कोलतार से प्राप्त पदार्थों की गिन्ती तो आज इतनी बढ़ गयी है कि यदि मैं तुम्हें सुनाने लगूँ तो तुम ऊब जाओगे। मैं तुम्हें उबाना नहीं चाहता, आओ तुम्हें अपने कुछ और गुण बताऊँ।

इस्पात या फ़ौलाद के गुणों से तुम परिचित ही हो, यह मेरी ही मित्रता के कारण है कि इस्पात इतना अच्छा गुणी हो गया है। इस्पात का कड़ापन मेरे ही कारण है और मेरी मात्रा के घटाने बढ़ाने से इस्पात में मन चाहे गुण पैदा किये जा सकते हैं। यह मैं ही हूँ जिसकी सहायता से इतने चमकदार धातु तुमको मिल सकते हैं, मेरे बिना मैगनीशियम, एल्यूमिनियम, टिन, जस्ता, सीसा कोई भी धातु तुमको न मिलती।

यदि अब मैं कहूँ कि वस्तुओं में मैं हीरा हूँ, तो यह मुहावरा मेरे लिए अनुपयुक्त न होगा। परन्तु यदि मैं कहूँ कि हीरे जैसी चमकदार व कीमती वस्तु, जिसको पाने के राजा महराजा भी लालयित रहते हैं, केवल मेरा ही एक स्वरूप है, तो किञ्चित तुम मुझे पागल समझ कर मेरा विश्वास न करोगे। परन्तु

मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि हीरा मेरा ही एक रूप है। संसार के सब प्राणियों से तिरस्कृत हो जब मैंने देखा कि मेरा काला रंग और भद्दा रूप मेरे प्रति किये गये अनादर और अप्रतिष्ठा का कारण है तो मैं पृथ्वी के गर्त में जा छिपा। पृथ्वी की आन्तरिक गर्मी में घोर तपस्या कर मैंने अपना रूप इतना निखराया कि जब मनुष्य ने मुझे इस अवस्था में पाया तो सब से मूल्यवान वस्तु ठहरा कर मेरा आदर किया। इस घोर तपस्या में मैं इतना कड़ा हो गया कि कोई भी वस्तु मुझे काट न सके; संसार में सभी वस्तुओं से हीरा कड़ा होता है। परन्तु लोगों को अब भी सन्तोष न हुआ, वे मेरे आन्तरिक सौंदर्य से प्रभावित तो हुए पर कुछ ही दिन में यह सौंदर्य भी उन्हें फीका लगने लगा। अब तो नित्य ही मेरे ऊपर नये अत्याचार होने लगे। मुझे काटा गया, मेरे कोने काट कर मुझे अधिक चमकीला बनाने का प्रयत्न किया गया। आज तो मेरा मूल्य इस बात पर भी निर्भर है कि कितनी होशियारी से कारीगर ने मेरी बोरियों को काटा छाँटा है और वह मेरी चमक वह कितनी बढ़ा पाया है।

मनुष्य इतने ही अत्याचार से सन्तुष्ट हो जाते, तो भी काफी था। उन्हें ज्योंही पता चला कि हीरा भी मेरा ही स्वरूप है और मेरा हीरे ऐसा मोहक रूप इस कारण हो गया है कि पृथ्वी के अन्दर इतने दबाव और गरमी में मैंने घोर तपस्या की है, तो उनके मन में एक नया लोभ जागृत हुआ। वे कल्पना करने लगे कि क्यों न मुझ ही को हीरे में परिवर्तित कर दें। इस कल्पना की पूर्ति करने में जो प्रयोग किये वे मेरे लिए कितने कष्टदायक थे कि तुम नहीं समझ सकते। लोहे की कोठरियों में बन्द कर मुझे उन्होंने जितना ज्यादा से ज्यादा गरम कर सकते थे गरम किया। स्वयं निमन्त्रित कष्ट तपस्या काल में मुझे जरा भी अनुभव न हुआ था, परन्तु यह तो लोभ दृष्टि से मेरे ऊपर अत्याचार किया जा रहा था, मैं पीड़ा से कराह उठा। अन्त में तङ्ग आकर मैंने कुछ सीमा तक अपना सुन्दर हीरे का स्वरूप तो धारण कर लिया, परन्तु मोआएजाँ जैसे प्रसिद्ध वैज्ञानिक को भी मानविक लोभ प्रवृत्ति के इस कार्य में इतनी सफलता न होने दी कि वे नित्य व्यवासायिक परिमाण पर मेरा शोषण आरम्भ कर देते।

मैं आज कुछ तो प्रसन्न हूँ कि वैज्ञानिकों ने अपने इन अत्याचार पूर्ण व्यवहार को छोड़ दिया है। आज मेरे काले रूप को न सही, परन्तु हीरे वाले स्वरूप को वैज्ञानिक संसार में जो आदर मिल रहा है, उससे मैं हर्ष के बारे फूल उठता हूँ। भारत के लोग अपनी शिष्टता के कारण मुझे सदैव से पसन्द रहे हैं और आज प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक सर चन्द्रशेखरवेंकटरमन द्वारा मुझे जो सम्मान मिल रहा है, उसका मैं कृतज्ञ हूँ। जब रमन साहब अपने रोचक, ओजस्वी भाषणों में मेरे हीरे वाले स्वरूप के अद्भुत गुणों का बखान करते हैं, तो मुझे कितनी अधिक प्रसन्नता होती है। जब वे कहते हैं, कि ठोस पदार्थों में मेरा संगठन सब से अधिक आदर्श रूप है, तो मेरा हृदय हर्षातिरेक से पागल हो उठता है। अपनी कृतज्ञता प्रदर्शन के लिए मैंने निश्चित कर लिया है कि अपने संगठन के समस्त रहस्य इन प्रतिभाशाली भारतीय वैज्ञानिकों को ही बतलाऊँगा, जिससे उनके वैज्ञानिक ज्ञान की प्रतिष्ठा संसार में फिर मेरे सुन्दर स्वरूप हीरे ही की तरह चमक उठे।

कालान्तर सौर वर्ष सं० २००४ वि० (सन् १९४७-४८ ई०)

	१—मेष (वैशाख)					२—वृष (ज्येष्ठ)					३—मिथुन (आसाढ़)				
रवि०		७	१४	२१	२८		४	११	१८ (१ ६/४ऊ)	२५	१ (१६ ६/४ऊ)	८	१५	२२	२९
सोम०	१ (१४ ४/४ऊ)	८	१५	२२	२९		५	१२	१९	२६	२	९	१६	२३	३०
मंगल०	२	९	१६	२३	३०		६	१३	२०	२७	३	१०	१७ (२ ७/४ऊ)	२४	३१
बुध०	३	१०	१७	२४	३१ (१४ ५/४ऊ)		७	१४	२१	२८	४	११	१८	२५	३२
गुरु०	४	११	१८ (१ ५/४ऊ)	२५		१ (१५ ५/४ऊ)	८	१५	२२	२९	५	१२	१९	२६	
शुक्र०	५	१२	१९	२६		२	९	१६	२३	३०	६	१३	२०	२७	
शनि०	६	१३	२०	२७		३	१०	१७	२४	३१	७	१४	२१	२८	

	४—कर्क (श्रावण)					५—सिंह (भाद्रपद)					६—कन्या (आश्विन)				
रवि०		४	११	१८	२५	१ (१७ ८/४ऊ)	८	१५	२२	२९		५	१२	१९	२६
सोम०		५	१२	१९	२६	२	९	१६ (१ ९/४ऊ)	२३	३०		६	१३	२०	२७
मंगल०		६	१३	२०	२७	३	१०	१७	२४	३१		७	१४	२१	२८
बुध०		७	१४	२१	२८	४	११	१८	२५		१ (१७ ९/४ऊ)	८	१५ (२ १०/४ऊ)	२२	२९
गुरु०	१ (१७ ७/४ऊ)	८	१५	२२	२९	५	१२	१९	२६		२	९	१६	२३	३०
शुक्र०	२	९	१६ (२ ८/४ऊ)	२३	३०	६	१३	२०	२७		३	१०	१७	२४	३१
शनि०	३	१०	१७	२४	३१	७	१४	२१	२८		४	११	१८	२५	

७—तुला (कार्तिक)

रवि०		२	९	१६	२३	३०
सोम०		३	१०	१७	२४	
मंगल०		४	११	१८	२५	
बुध०		५	१२	१९	२६	
गुरु०		६	१३	२०	२७	
शुक्र०		७	१४	२१	२८	
शनि०	१ (१८ १०/४७)	८	१५	२२	२९	

८—वृश्चिक (मार्ग शीर्ष)

रवि०		७	१४	२१	२८	
सोम०	१ (१७ ११/४७)	८	१५ (१ १२/४७)	२२	२९	
मंगल०	२	९	१६	२३		
बुध०	३	१०	१७	२४		
गुरु०	४	११	१८	२५		
शुक्र०	५	१२	१९	२६		
शनि०	६	१३	२०	२७		

९—धनु (पोष)

रवि०		६	१३	२०	२७	
सोम०		७	१४	२१	२८	
मंगल०	१ (१६ १२/४७)	८	१५	२२	२९	
बुध०	२	९	१६	२३		
गुरु०	३	१०	१७ (२ १/४८)	२४		
शुक्र०	४	११	१८	२५		
शनि०	५	१२	१९	२६		

१०—मकर (माघ)

रवि०		५	१२	१९ (१ २/४८)	२६	
सोम०		६	१३	२०	२७	
मंगल०		७	१४	२१	२८	
बुध०	१ (१४ १/४८)	८	१५	२२	२९	
गुरु०	२	९	१६	२३	३०	
शुक्र०	३	१०	१७	२४		
शनि०	४	११	१८	२५		

११—कुम्भ (फाल्गुन)

रवि०		३	१०	१७	२४	३१
सोम०		४	११	१८ (१ ३/४८)	२५	
मंगल०		५	१२	१९	२६	
बुध०		६	१३	२०	२७	
गुरु०		७	१४	२१	२८	
शुक्र०	१ (१३ २/४८)	८	१५	२२	२९	
शनि०	२	९	१६	२३	३०	

१२—मीन (चैत्र)

रवि०		७	१४	२१	२८	
सोम०	१ (१५ ३/४८)	८	१५	२२	२९	
मंगल०	२	९	१६	२३	३० (१३ ४/४८)	
बुध०	३	१०	१७	२४		
गुरु०	४	११	१८ (१ ४/४८)	२५		
शुक्र०	५	१२	१९	२६		
शनि०	६	१३	२०	२७		

संग्रहकर्त्ता—श्री० रामदास, दौराला

वैज्ञानिक समाचार

१. भारतीय वैज्ञानिकों की प्रतिष्ठा

प्रोफेसर मेघनाद साहा अमेरिका की एस्ट्रानामिकल सोसाइटी के सदस्य निर्वाचित किये गये हैं। सर शान्तिस्वरूप भटनागर को रसायन शास्त्र के अनुसन्धानों के लिए सर सी० आर० रेडी राष्ट्रीय इनाम मिला है।

२. भारती विद्यार्थियों के लिए दो अमेरिकन छात्र वृत्तियाँ

अमेरिका की परडू विश्वविद्यालय ने भारतीय विद्यार्थियों के लिए दो छात्र वृत्तियाँ मन्जूर की हैं। इनका मूल्य १३० डालर प्रतिवर्ष होगा और विद्यार्थी को विज्ञान के किसी विभाग में अनुसन्धान करना होगा। इस छात्र वृत्ति के मूल्य से पूरा व्यय नहीं हो सकता, विद्यार्थी को अपनी जेब से लगभग २५०० डालर व्यय करने के लिए तैयार होना चाहिए। भारतीय सरकार ने विश्वविद्यालयों से इन छात्र-वृत्तियों के लिए सिफारशें माँगी है, परन्तु अन्तिम निर्णय परडू विश्वविद्यालय के अधिकारियों के हाथ में रहेगा।

३. भारतीय पेटेराटों की प्रदर्शनी

हाल में पेटेण्टों और डिजाइनो की प्रदर्शनी के अवसर पर पूना में भाषण देते हुए भारत के पेटएटों और कण्ट्रोलर दीवान बहादुर के० एस० पाई ने कहा कि भारत में इस समय टेक्निकल साज-सामान की जो कमी पाई जाती है—उसे दूर करने का केवल एक ही उपाय है और वह यह कि हम भारतीय पेटेण्ट पद्धति के संरक्षण में भारतीय आविष्कारों को उन्नत करें।

आगे आपने इस बात पर खेद प्रकट किया कि भारत ने अन्य देशों के मुकाबले में इस पद्धति में अब तक पूरा-पूरा लाभ नहीं उठाया है। आपने बताया कि १९३०-३७ तक अमरीका, और जर्मनी में हर साल औसतन क्रमशः ४८,३९७ और २०,६२१ आविष्कार पेटेण्ट (विशिष्ट अधिकार पत्र) कराये गये। १९३०-१९३५ तक बृटेन और जापान में यह संख्या क्रमशः १८,४१७ और ४,८४५ थी। परन्तु इसके मुकाबले में भारत में यह संख्या केवल ८९८ तक ही सीमित रही। भारत इस दिशा में न केवल बड़े-बड़े औद्योगिक राष्ट्रों से ही पीछे रहा, बल्कि बेल्जियम, स्विटजरलैंड और चेकोस्लोवाकिया जैसे छोटे-छोटे राष्ट्रों से भी पिछड़ गया है। इन राष्ट्रों की औसत क्रमशः ७,३१५, ७,३०३ और ३,६१३ रही। इसी प्रकार प्रत्येक दस लाख की आबादी के हिसाब से भी भारतीय पेटण्टों की संख्या कम ही रही जो विभिन्न देशों के लिये इस प्रकार थी:— स्विटजरलैंड १,०१६, बेल्जियम ८९२; बृटेन ४९३, अमरीका ३७४ और भारत २। इसके अलावा १९४६ में पेटेण्टों के सम्बन्ध में कुल मिलाकर २,६१० आवेदनपत्र प्राप्त हुए, जिनमें से केवल ९६६ भारतीय थे।

श्री पाई ने बताया कि भारतीय पेटेण्ट पद्धति को प्रारम्भ हुए आज ९० वर्ष हो चुके हैं और इसी बीच भारतीय आविष्कारों के क्षेत्र में बहुत काफी विस्तार हुआ है। प्रारम्भ में पंखा खींचने की तरकीबों, चूल्हों, ईंधन और तेल के कारखानों से सम्बन्ध रखने वाले आविष्कार ही पेटेंट कराये जाते थे। लेकिन बाद में १९०५ स्वदेशी आन्दोलन के कारण कातने और बुनने से सम्बन्ध रखने वाले यन्त्रों, पानी खींचने के साधनों लैंपों, चीनी और तेल के कारखानों तथा और ऐसे ही छोटे-छोटे उद्योगों से सम्बन्ध रखने वाले आविष्कार पेटेण्ट कराये गये। १९४६ में जिन उद्योगों के सम्बन्ध में आविष्कार पेटेण्ट कराए गए

उनमें खाद्य वस्तुएँ, कीटाणुनाशक चीजें, निर्माण सामग्री, बिजली की मोटरें, और पंखे, प्लास्टिक का सामान, डिब्बे, ताले, टिफिनकैरियर, रबड़ की चीजें और खिलौने भी शामिल हैं।

परन्तु श्री पाई ने कहा कि भारतीयों में आविष्कार करने की प्रतिभा की कमी नहीं है। उदाहरण के तौर पर युद्धकाल में वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसन्धान परिषद् ने यह साबित कर दिया है कि यदि भारतीय आविष्कर्त्ताओं को उचित रूप से प्रोत्साहन मिले तो वे नयी-नयी चीजें तैयार कर सकते हैं। पिछले पांच-छः साल में उक्त परिषद् ने अपने सौ से भी अधिक अविष्कार पेटेण्ट कराये हैं। इसी प्रकार एक ही वर्ष में अखिल भारतीय चर्खा संघ के लिए अच्छी किस्म के ९ चर्खे पेटेण्ट कराये गये।

अन्त में आप ने इस बात पर जोर दिया कि आविष्कार उद्योगों को सफलता और उन्नति का मूल मन्त्र है—विशेष कर युद्धोत्तर काल में जबकि संसार के अन्य देशों से भारत की प्रतियोगिता बढ़ जायगी।

संश्लेषित पेनीसिलीन

अमेरिकन अनुसन्धान कर्त्ताओं की इस घोषणा कि वे पेनीसिलीन के संश्लेषण में सफल हो गये हैं, के फल स्वरूप अखबारों में यह भ्रांतिपूर्ण खबरें छप रही हैं कि शीघ्र ही पेनीसिलीन सस्ती और पर्य्याप्त मात्रा में मिलने लगेगी। उपरोक्त आंशिक संश्लेषण कार्नेल विश्वविद्यालय के रसायनाचार्य डाक्टर विन्सेन्ट डू विगनाउद ने १९४६ में किया है। आक्सफर्ड विश्वविद्यालय में भी इस प्रकार के आंशिक संश्लेषण का अध्ययन आज से ५ वर्ष पहिले ही हो चुका है। यह संश्लेषण क्रिया मौलिक दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण है, परन्तु इसका प्रयोग व्यवसायिक परिमाण पर असम्भव है।

अति तीव्र गति वाला कैमरा

हाल ही में कैनेडा के के० एम० बेयर्ड महाशय ने एक अति तीव्र गति वाला कैमरा बनाया है। इससे एक सेकिण्ड में ७०,००० फोटो ली जा सकती है। उन्होंने अपनी इस गवेषणा को कैनेडियन जरनल आफ़ रिसर्च के जुलाई अंक में छापा है और लेख में उन्होंने एक फोटो दी है जिसमें राइफिल से छपाई गई गोली का का चित्र प्रति सेकिण्ड में ६४,००० चित्रों की गति से लिया गया है।

इस्पात पर निकेल की क़लई करना

ब्रिटेन के अ-लौहिक धातुओं के अनुसन्धान एसोसियेशन के बुलेटिन (Bulletin of the British non-ferrous metals Research Association) के अक्टूबर १९४६ वाले अंक में इस्पात पर निकेल क़लई करने की एक नयी विधि बताई गई है। इस विधि में वैधुत्-धारा की आवश्कता नहीं होती। इस विधि का सिद्धान्त यह है कि नियंत्रित दशाओं में निकेल के अमोनिया युक्त गरम घोलों में हाइपो-फास्फाइटों की क्रिया से इस्पात की सतह पर निकेल जमा होती है।

जर्मनी के उद्योगों के बारे में जानकारी

हिज़ मेजेस्टी के लन्दन स्थित दफ्तर ने जर्मनी के उद्योगों के बारे में एक रिपोर्ट छापी है। इसमें जर्मनी के उद्योगों के बहुत से भेद इकट्ठे किये गये हैं। रिपोर्ट की १००० प्रतियाँ निम्न पते पर भेज दी गई हैं। उत्सुक जन इनसे लाभ उठा सकते हैं।

पेटेण्ट दफ्तर, नं० २१४ लोअर सरकुलर रोड, कलकत्ता।

यक्ष्मा का ऐतिहासिक विश्लेषण

केन्द्रीय स्वास्थ्य विभाग के यक्ष्मा-सलाहकार लेफ्टिनेंट कर्नल आ० विश्वनाथ ने हाल ही में दिल्ली विश्वविद्यालय में यक्ष्मा (टुबरक्लोसिस) के

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का सिंहावलोकन करते हुए बताया है कि यक्ष्मा के इतिहास को हम प्रायः सभ्यता का ही इतिहास समझ सकते हैं।

आपने कहा कि प्राचीन भारत में ऋग्वेद काल से यक्ष्मा निवारण के लिये एक मंत्र प्रचलित था और मनु ने भी अपनी स्मृति में इस राज रोग के निरोधार्थ कई उपायों का उल्लेख किया है तथा यक्ष्मा-पीड़ित रोगियों से विवाह सम्बन्ध करना बुरा बताया है। सुश्रुत के लेखों में रोगोपचार की चर्चा करते हुए प्रातःकाल शुद्ध वायु-सेवन, अश्वारोहण (घुड़ सवारी), पौष्टिक भोजन आदि को प्रशंसा की गयी है।

रोग सम्बन्धी अनुसन्धान

चीन के प्राचीन ग्रन्थों में फुपफुसी खांसी तथा फुपफुसी ज्वर का उल्लेख पाया जाता है और मिस्र के सुरक्षित मृतक शवों (ममीज) से भी यक्ष्मा के प्रमाण मिलते हैं। इसके अतिरिक्त, फारस के अग्नि-पूजक, जूडिया के यहूदी तथा सिकंदर महान् के प्रजा-जन, इस रोग के प्रकोप से अवगत थे। यूनानी चिकित्सा के पितामह हाइप्रोक्रेटीज ने सर्व-प्रथम, रोग के लक्षणों की चर्चा की थी और उसे "थाइसिस" का नाम दिया था। यद्यपि ईसा की मृत्यु के बाद की प्रायः १५ शताब्दियों में, ईसा मतावलम्बी देशों में चिकित्सा-विज्ञान में अधिक प्रगति हुई नहीं मालूम देती, किन्तु ७वीं, ८वीं तथा ९वीं शताब्दियों में अरब ने इस दिशा में पर्याप्त प्रगति की थी।

पंद्रहवीं से अठारहवीं शब्दी के बीच इस रोग के सम्बन्ध में अधिक अनुसन्धान कार्य प्रारम्भ हुआ और १८ वीं शताब्दी में रिचर्ड मार्टिन नामक एक अंग्रेज सज्जन ने "थाइसियोलाजिया" नामक अपना लेख (पेपर) प्रकाशित किया। इसके बाद लाइनेक (१७८१-१८२६) नामक सज्जन ने एक अन्य प्रकाशित किया, जिसमें उन्होंने बताया कि यक्ष्मा फुपफुस की ही नहीं होती, बल्कि किसी भी अंग की हो सकती है।

१९ वीं शताब्दी बोडिंगटन ने प्रथम बार आरोग्य-मंदिरों (सेनेटोरियमों) की चिकित्सा-प्रणाली की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया और उनके इस सुझाव से लाभ उठा कर, जर्मनी के डाक्टर ब्रेह्मर ने अपने यहाँ संसार के प्रथम आरोग्य-मंदिर की स्थापना की। इस प्रकार सेनेटोरियमों का विचार अन्य देशों में भी फैलता गया।

इसके बाद १८८२ में रावर्ट काक ने यक्ष्मा के कीटाणुओं का पता लगाया और तत्पश्चात् १८९५ में रांटजन द्वारा एक्स किरणों का पता चला। इस प्रकार रोग की चिकित्सा के क्षेत्र में अधिकाधिक प्रगति होती गयी और यह मालूम किया गया कि यह रोग सामूहिक रूप में लोगों का पीड़ित कर सकता है।

यह सब बताने के बाद कर्नल विश्वनाथन ने अन्त में कहा कि स्ट्रेप्टोमाइशिन जैसे रासायनिक द्रव्यों का पता चलने के फल-स्वरूप, आशा की जा सकती है कि भविष्य में कभी न कभी यक्ष्मा (ट्युबरक्लोसिस) की चिकित्सा के लिये उपयुक्त औषधि का ढूँढ़ निकालना असम्भव नहीं है।

समालोचना

खगोल प्रवेश—लेखक श्री छोटू भाई सुथार; प्रकाशक श्री चंदुभाई राव जी भाई पटेल, चरोतर एज्यूकेशन सोसाइटी, आणंद। भाषा गुजराती पृष्ठ संख्या १३६, सजिल्द मू० २॥)

यह पुस्तक तारक मंडल आणंद की तारक ग्रंथावली का दूसरा अंक है। पहला अंक विश्वदर्शन के नाम से दो वर्ष पहले प्रकाशित हुआ था जिसमें कई आकाश तथा नक्षत्रों के चित्र देकर यह बतलाया गया है कि रात में निर्मल आकाश में जो अनगिनत टिमटिमाते ज्योतिविंदु दिखाई पड़ते हैं, वे यथार्थ में क्या हैं, यहाँ से कितनी दूर है और उनका प्रकाश यहाँ तक कितने वर्षों में पहुँच पाता है। प्रस्तुत पुस्तक में विश्वदर्शन के केवल एक अंग की झाँकी है। इसलिए इसका नाम खगोल प्रवेश सार्थक है। इसमें भी दो खंड कर दिये गये हैं। पहले खंड में सूर्य और सौर परिवार के सम्बन्ध की बातें हैं। जिस पृथ्वी पर हम रहते हैं कितनी बड़ी है, इसका सूर्य से क्या संबंध है, सूर्य से यह कैसे उत्पन्न हुई है और सूर्य के ही आधार पर किस तरह स्थित है। सूर्य क्या है, कितना बड़ा है, उससे हमारा क्या सम्बन्ध है। चन्द्रमा, कैसे उत्पन्न हुआ किस प्रकार पृथ्वी की परिक्रमा करता है और हम पृथ्वी निवासियों को किस प्रकार लाभ पहुँचाता है। इसी प्रकार सूर्य और पृथ्वी के बीच में घूमनेवाले ग्रहों बुध और शुक्र तथा बाहर वाले ग्रहों मंगल, गुरु शनि, यूरेनस नेपचून और प्लेटो धूमकेतु आदि का मनोहर वर्णन किया गया है।

दूसरे खंड में आकाश गंगा और नीहारिका का वर्णन बड़ी ही रोचक भाषा में किया गया है। तारे क्या हैं, इनका रंग और तेज किस प्रकार भिन्न भिन्न है, तारों का विश्व क्या है, आकाशगंगा किसे कहते हैं, तारानगर क्या है, सूर्यमंडल की उत्पत्ति और विकास कैसे हुआ है, यह सब बातें लिखी गयी हैं। खगोल और फलित ज्योतिष पर भी एक छोटा सा अध्याय लिखा गया है।

परिशिष्ट में बहुत सी ज्ञातव्य और महत्वपूर्ण बातों की सूची दी गयी है।

ऐसी उपयोगी पुस्तक लिखने के लिए हमारे गुजराती भाषी भाई श्री छोटू भाई सुथार के चिर ऋणी रहेंगे।

अनेक उपयोगी चित्रों के साथ यह पुस्तक आकाश में रुचि रखने वाले विद्यार्थियों, नवयुवकों और बूढ़ों सब के लिए उपयोगी होगी इसमें कोई सन्देह नहीं। हम श्री छोटू भाई सुथार को ऐसी सुन्दर पुस्तक लिखने के लिए बधाई देते हैं।

महावीर प्रसाद श्रीवास्तव

संदेश प्रत्यक्ष पचाङ्ग—सम्पादक गणक मार्तण्ड, कृष्णराम वहालजी भट्ट, मुनिराज श्री विकाश जी, ज्योतिषाचार्य यशवन्त केशव प्रधान आदि, प्रकाशक-संदेश लिमिटेड, नंदलाल चुनीलाल बोडी वाला, अहमदाबाद, भाषा गुजराती, मूल्य ।॥=)

यह पंचाङ्ग शुद्ध ज्योतिष बेधों के अनुसार बनाया गया है और जगन्नाथपुरी के गोवर्धनमठ के शंकराचार्य का यह संदेश पहुँचाता है:—

धर्मकृत्यादि काल निर्णय विषये सनातन धर्मानुरागिभि र्दृकप्रत्यया—वहमेव पंचांगमनुसर्तव्य मेष एवं शास्त्र सिद्धः पन्था:"

बम्बई के वैष्णव पुष्टि मार्ग के प्रधान मंदिर के आचार्य गोस्वामी श्री कृष्ण जीवन जी महाराज कहते हैं:—

यद्यपि मैं ज्योतिष शास्त्र का विद्वान नहीं हूँ परन्तु ग्रहस्थिति का निर्णय दृक्प्रत्यय और गणित उभय सिद्ध जिससे हो वही मत ठीक है।

इससे प्रकट होता है कि हमारे मित्र कृष्णराम वहाल जी भट्ट तथा हरिहर प्राणशंकर भट्ट के लगातार प्रयत्न से प्रत्यक्ष पंचांग की उपयोगिता हमारे धर्माचार्यों को भी प्रकट हो गयी है और वे भी ऐसे पंचांगों के पक्ष में है। पंचांग सम्बन्धी उपयोगी माहिती (माहियत) में ज्योतिष संबंधी अनेक महत्वपूर्ण बातों पर प्रकाश डाला गया है। जिसको पढ़ कर गुजराती भाषा भाषी जनता भी पंचांगों की बारीकियों को समझ सकती है। इसके कुछ शीर्षक यह हैं—पांच अंग, नक्षत्र चक्रारंभ, दृक्प्रत्ययी पंचांग विषय, तिलकपक्ष, केतकी पक्ष, हमारा मार्ग, व्रत और उत्सवों का कालनिर्णय, ज्योतिशास्त्र, मेषादि संज्ञा, नक्षत्र व्यवस्था गोल, अयन, ऋतु मास, नाक्षत्र, चांद्रमास और वर्ष, अधिक मास, तिथि, वार, नक्षत्र योग, करण मुसलमानी महीनों के नाम। इनसे ज्योतिष सिद्धान्त की सभी उपयोगी बातों का पता लग जाता है।

मुहूर्त प्रकरण में उन सब विषयों के मुहूर्त के सम्बन्ध में जानकारी दी गयी है जिनका काम हिन्दू घरों में पड़ता है।

इस पंचांग के बनाने में गणित और फलित दोनों प्रकार के ज्योतिष के आचार्यों का सहयोग प्राप्त है इससे आशा होती है कि कुछ दिनों में हमारे ज्योतिष की अनेक उलझी हुई गुत्थियां सुलझ जायगी और हमारा पंचांग कल्पित न होकर प्रत्यक्ष बेध सिद्ध हो जायगा।

मुख्य पंचांग में तिथि नक्षत्र योग करण आदि अहमदाबाद और बंबई के सूर्योदय से देकर प्रत्येक दिन के सूर्य, चन्द्रमा के भोगोश क्रान्ति और शर तथा अन्य ग्रहों के भोगांश दिये गये हैं। नम-आविष्कार ग्रह हर्शल और नेपचून को भी ले लिया गया है।

देखें हमारे काशी के पंचांग कब ऐसे शुद्ध रूप में प्रकट होते हैं।

महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव

देहाती इलाज—लेखक श्री रामेश वेदी आयुर्वेदालङ्कार; प्रकाशक हिमालय हर्बल इंस्टिट्यूट, बादामी बाग, लाहौर। भाषा सरल हिन्दी, पृष्ठ संख्या ७२, मूल्य १)

श्री रामेश वेदी जी के नाम से विज्ञान के पाठक भली भाँति परिचित हैं। प्रस्तुत पुस्तक भारतीय-द्रव्य गुण-ग्रन्थमाला का पाँचवा अंक है। इस ग्रन्थ माला के दो अंक त्रिफला तथा अञ्जीर विज्ञान परिषद् द्वारा प्रकाशित किये गये हैं। लगभग प्रत्येक भारतीय इस तथ्य पर गर्व करता है कि उसके पूर्वज बड़े ही विद्वान थे तथा भारतवर्ष ने प्राचीन काल ही में साहित्य प्रदेश ही में नहीं वरन् भौतिक विज्ञान तथा प्रयोगात्मक विज्ञान में भी बड़ी उन्नति करली थी। औषध शास्त्र तो उल्लेखनीय है; आज भी सहस्रों वर्ष के बाद जो रोग पाश्चात्य देश की औषध-प्रणाली से असाध्य है, हमारे यहाँ के योग्य वैद्य उन दुःसह रोगों को सरल उपचारों से ठीक कर लेते हैं। यह तो सर्वमान्य बात है ही कि अध्ययन तथा अनुसन्धान ही के साधनों के अभाव में हमारे वैद्य लोगों का ज्ञान बहुत ही सीमित तथा संकुचित रह जाता है, फिर भी उनकी सफलता यह प्रदर्शित करती है कि हमारी प्राचीन प्रणाली कितनी प्रभाव-शालिनी है। श्री रामेश वेदी जी ने इस ओर अथक परिश्रम किया है और आज भी वे इस महान उद्देश्य में लगे हुए हैं। भारतीय-द्रव्य-गुण ग्रन्थमाला का उद्देश्य इन्हीं खोजों को प्रकाशित करना है। इस प्रयत्न के लिए श्रीयुत् वेदी जी धन्यवाद तथा बधाई के पात्र हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में देश-प्रसिद्ध उपचारकों के नुस्खों पर आधारित कुछ सरल नुस्खे दिये गये हैं। इन नुस्खों की उपयोगिता के बारे में किसी को सन्देह नहीं हो सकता; क्योंकि इसमें से बहुत से नुस्खे तो प्रायः हर भारतीय घर में प्रयोग होते ही रहते हैं। सामान्य ग्रहस्थों और सर्व साधारण वैद्य समाज को

इस पुस्तिका से बहुत अधिक लाभ होगा। पुस्तक की छपाई साफ, तथा सुन्दर है।

हम भाई रामेश वेदी जी को ऐसी उपयोगी पुस्तक के लिखने पर बधाई देते हैं और उनसे आशा करते हैं कि वह इसी विषय पर इससे अधिक वृहत् पुस्तक लिख कर जन साधारण के धन्यवाद के पात्र होंगे। रा० च० मेहरोत्रा

प्रारम्भिक स्वास्थ्य—लेखक श्री गौरी शंकर गुप्त; प्रकाश श्री उमेदी लाल वैश्य श्याम सुन्दर-रसायन शाला, काशी भाषा सरल हिन्दी, पृष्ठ संख्या ३२, मूल्य ।=)।

प्रस्तुत पुस्तक बच्चों के लिए उपयोगी है। लेखक स्वयं ही १४ वर्ष की आयु के हैं। इतनी छोटी आयु में आपका प्रयत्न सर्वथा सराहनीय है। पुस्तक की भाषा अच्छी है और हमारे बच्चों को इस पुस्तक से बहुत लाभ होगा। रा० च० मेहरोत्रा

नोट—पिछले दो मास से काग़ज़ की मिलों में हड़ताल हो जाने के कारण बाज़ार से एक रीम काग़ज़ भी मिलना असम्भव हो गया है। विवश होकर इस मास विज्ञान का आकार ४ फर्मे से ३ फर्मे कर देना पड़ा है, परन्तु हम आशा करते हैं कि एक दो अंक के बाद हम फिर से ४ फर्मों का विज्ञान छापने में समर्थ हो सकेंगे। कृपया पाठकगण हमें हमारी विवशता में क्षमा करें।

विज्ञान-परिषद्‌की प्रकाशित प्राप्य पुस्तकोंकी सम्पूर्ण सूची

१—विज्ञान प्रवेशिका, भाग १—विज्ञान की प्रारम्भिक बातें सीखने का सबसे उत्तम साधन—ले० श्री रामदास गौड़ एम० ए० और प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी० ;

२—चुम्बक—हाईस्कूल में पढ़ाने योग्य पुस्तक - ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी०; सजि०; ।।=)

३—मनोरञ्जक रसायन—इसमें रसायन विज्ञान उपन्यासकी तरह रोचक बना दिया गया है, सबके पढ़ने योग्य है—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम० एस-सी० ; १।।),

४—सूर्य-सिद्धान्त—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान-भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखनेका सबसे सुलभ उपाय—पृष्ठ संख्या १२१४ ; १४० चित्र तथा नकशे—ले० श्री महाबीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; सजिल्द; दो भागोंमें; मूल्य ६)। इस भाष्यपर लेखकको हिन्दी साहित्य सम्मेलनका १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है।

५—वैज्ञानिक परिमाण—विज्ञानकी विविध शाखाओंकी इकाइयोंकी सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहालकरण सेठी डी० एस सी०; ।।।),

६—समीकरण मीमांसा—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १।।) द्वितीय भाग ।।=),

७—निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री बी० एस सी० ; ।।),

८—बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित—इंटरमीडियेटके गणितके विद्यार्थियोंके लिये—ले० डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी० ; १।),

९—गुरुदेवके साथ यात्रा—डाक्टर जे० सी० बोसीकी यात्राओंका लोकप्रिय वर्णन ; ।~),

१०—केदार-बद्री यात्रा—केदारनाथ और बद्रीनाथके यात्रियोंके लिये उपयोगी; ।),

११—वर्षा और वनस्पति—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शङ्करराव जोशी; ।),

१२—मनुष्यका आहार—कौन-सा आहार सर्वोत्तम है—ले० वैद्य गोपीनाथ गुप्त; ।=),

१३—सुवर्णकारी—क्रियात्मक—ले० श्री गंगाशंकर पचौली; ।),

१४—रसायन इतिहास—इंटरमीडियेटके विद्यार्थियोंके योग्य—ले० डा० आत्माराम डी० एस-सी०; ।।।),

१५—विज्ञानका रजत-जयन्ती अंक—विज्ञान परिषद् के २१ वर्षका इतिहास तथा विशेष लेखोंका संग्रह; १)

१६—फल-संरक्षण—दूसरा परिवर्धित संस्करण-फलोंकी डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार आदि बनानेकी अपूर्व पुस्तक; २१२ पृष्ठ; २५ चित्र—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्र-नारायण सिंह एम० एस-सी०; २),

१७—व्यङ्ग-चित्रण—(कार्टून बनानेकी विद्या)—ले० एल० ए० डाउस्ट ; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी, एम० ए०; १७५ पृष्ठ; सैकड़ों चित्र, सजिल्द; १।।)

१८—मिट्टीके बरतन—चीनी मिट्टीके बरतन कैसे बनते हैं; लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा ; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र, सजिल्द; १।।),

१९—वायुमंडल—ऊपरी वायुमंडलका सरल वर्णन—ले० डाक्टर के० बी० माथुर; १८६ पृष्ठ; २५ चित्र; सजिल्द; १।।),

२०—लकड़ी पर पॉलिश—पॉलिशकरनेके नवीन और पुराने सभी ढंगोंका ब्योरेवार वर्णन। इससे कोई भी पॉलिश करना सीख सकता है—ले० डा० गोरखप्रसाद और श्रीरामयत्न भटनागर, एम०, ए०; २१८ पृष्ठ; ३१ चित्र, सजिल्द; १॥),

२१—उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश; आकार बड़ा विज्ञानके बराबर २६० पृष्ठ; २००० नुसखे, १०० चित्र; एक-एक नुसखेसे सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं या हज़ारों रुपये कमाये जा सकते हैं। प्रत्येक गृहस्थके लिये उपयोगी; मूल्य अजिल्द २) सजिल्द २॥),

२२—कलम-पेबंद—ले० श्री शंकरराव जोशी; २०० पृष्ठ; ४० चित्र; मालियों, मालिकों और कृषकोंके लिये उपयोगी; सजिल्द; १॥),

२३—जिल्दसाज़ी—क्रियात्मक और ब्योरेवार। इससे सभी जिल्दसाज़ी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०; १८० पृष्ठ, ६२ चित्र; सजिल्द १॥),

२४—त्रिफला—दूसरा परिवर्धित संस्करण-प्रत्येक वैद्य और गृहस्थके लिये—ले० श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार, २१६ पृष्ठ; ३ चित्र, एक रङ्गीन; सजिल्द २।),

यह पुस्तक गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय, की १३ श्रेणी के लिए द्रव्यगुणके स्वाध्याय पुस्तकके रूपमें शिक्षापटलमें स्वीकृत हो चुकी है।"

२५—तैरना—तैरना सीखने और डूबते हुए लोगोंको बचाने की रीति अच्छी तरह समझायी गयी है। ले० डाक्टर गोरखप्रसाद पृष्ठ १०४ मूल्य १),

२६—अंजीर—लेखक श्री रामेशबेदी आयुर्वेदालंकार-अंजीर का विशद वर्णन और उपयोग करनेकी रीति। पृष्ठ ४२, दो चित्र, मूल्य ॥),

यह पुस्तक भी गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालयके शिक्षा पटलमें स्वीकृत हो चुकी है।

२७—सरल विज्ञान-सागर प्रथम भाग—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद। बड़ी सरल और रोचक भाषा में जंतुओंके विचित्र संसार, पेड़ पौधों की अचरज-भरी दुनिया, सूर्य, चन्द्र और तारोंकी जीवन कथा तथा भारतीय ज्योतिषके संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। विज्ञानके आकार के ४५० पृष्ठ और ३२० चित्रोंसे सजे हुए ग्रन्थ की शोभा देखते ही बनती है। सजिल्द मूल्य ६), मिल है।

२८—वायुमण्डलकी सूक्ष्म हवाएँ—ले० डा० सन्तप्रसाद टंडन, डी० फिल० मूल्य ॥।)

२९—खाद्य और स्वास्थ्य—ले० श्री डा० ओंकारनाथ परती, एम० एस-सी०, डी० फिल० मूल्य ॥।)

हमारे यहाँ नीचे लिखी पुस्तकें भी मिलती हैं:—

१—विज्ञान हस्तामलक—ले०—स्व० रामदास गौड़ एम० ए० भारतीय भाषाओंमें अपने ढंगका यह निराला ग्रंथ है। इसमें सीधी सादी भाषामें अठारह विज्ञानोंकी रोचक कहानी है। सुन्दर सादे और रंगीन पौने दो सौ चित्रोंसे सुसज्जित है, आजतककी अद्भुत बातोंका मनोमोहक वर्णन है, विश्वविद्यालयोंमें भी पढ़ाये जानेवाले विषयोंका समावेश है, अकेली यह एक पुस्तक विज्ञानकी एक समूची लैब्रेरी, है एक ही ग्रंथमें विज्ञानका एक विश्वविद्यालय है। मूल्य ६)

२—सौर-परिवार—लेखक डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० आधुनिक ज्योतिष पर अनोखा पुस्तक ७७६ पृष्ठ, ५८७ चित्र (जिनमें ११ रंगीन हैं) मूल्य १२) इस पुस्तक पर काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा से रेडिचे पदक तथा २००) का छन्नूलाल पारितोषिक

३—भारतीय वैज्ञानिक—१२ भारतीय वैज्ञानिकोंकी जीवनियां—ले० श्री श्याम नारायण कपूर, सचित्र ३८० पृष्ठ; सजिल्द; मूल्य ३।।) अजिल्द ३)

४—वैक्युम-ब्रेक—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा। यह पुस्तक रेलवेमें काम करने वाले फ़िटरों इंजन-ड्राइवरों, फ़ोरमैनों और कैरेज एग्ज़ामिनरोंके लिये अत्यन्त उपयोगी है। १६० पृष्ठ; ३१ चित्र जिनमें कई रंगीन हैं, २),

विज्ञान-परिषद्, बेली रोड, इलाहाबाद

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

प्रयागकी

विज्ञान-परिषद् के मुख्य नियम

परिषद्‌का उद्देश्य

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद्‌की स्थापना इस उद्देश्य से हुई कि भारतीय भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञानके अध्ययनको और साधारणतः वैज्ञानिक खोजके कामको प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद्‌का संगठन

२—परिषद्‌में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमोंके अनुसार सभ्यगण सभ्योंमेंसे ही एक सभापति, दो उपसभापति एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमंत्री, दो मंत्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे, जिनके द्वारा परिषद्‌की कार्यवाही होगी।

पदाधिकारियोंका निर्वाचन

१८—परिषद्‌के सभी पदाधिकारी प्रतिवर्ष चुने जायँगे। उनका निर्वाचन परिशिष्टमें दिये हुये तीसरे नकशेके अनुसार सभ्योंकी रायसे होगा।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्यको ४) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश-शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ ७० रु० की रकमदे देनेसे कोई भी सभ्य सदाके लिये वार्षिक चन्देसे मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्योंको परिषद्‌के सब अधिवेशनोंमें उपस्थित रहनेका तथा अपना मत देनेका, उनके चुनावके पश्चात् प्रकाशित, परिषद्‌की सब पुस्तकों, पत्रों, विवरणों इत्यादिके बिना मूल्य पानेका—यदि परिषद्‌के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धनसे उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन-चौथाई मूल्यमें मिलेंगी।

२७—परिषद्‌के सम्पूर्ण स्वत्वके अधिकारी सभ्यवृन्द समझे जायँगे।

परिषद्‌का मुखपत्र

३३—परिषद् एक मासिक-पत्र प्रकाशित करेगी जिसमें सभी वैज्ञानिक विषयोंपर लेख प्रकाशित हुआ करेंगे।

३४—जिन लेखोंको परिषद् प्रकाशित करेगी उनमें जो लेख विशेष महत्व और योग्यताके समझे जायँगे उनके लेखकोंको अपने अपने लेख की बीस प्रतियाँ बिना मूल्य पानेका अधिकार होगा।

विषय-सूची

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुखपत्र

भाग ६५ | सम्वत् २००३, अप्रैल १९४७ | संख्या १

प्रकाशक

विज्ञान-परिषद्,

बेली रोड, इलाहाबाद।

[ार्षिक मूल्य ३)]

[एक संख्या का मूल्य

विज्ञान

विज्ञान-परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ६५	सम्वत् २००४, अप्रैल, १९४७	संख्या १

क्षारीय धातुओं की कहानी

(लेखक—श्री रामचरण मेहरोत्रा)

(१)

"एडमण्ड, एडमण्ड, जरा इधर तो देखो" वैज्ञानिक ने चिल्ला कर कहा।

"......................"

"ओह, एडमण्ड, तुम क्या कर रहे हो? जरा इधर आकर देखो तो, आज मैं कास्टिक पोटाश से एक नई धातु निकालने में सफल हो गया हूँ; आज मेरा वर्षों का परिश्रम सफल हुआ है।" इन शब्दों के साथ वैज्ञानिक ने बिजली का स्विच बन्द किया और दौड़ा हुआ अपने चचेरे भाई व सहायक एडमण्ड के पास गया। एडमण्ड उसके अगले प्रयोग के लिए एक नई बैटरी तैयार कर रहा था और कार्य की संलग्नता के कारण उसने वैज्ञानिक के उपरोक्त उत्तेजना पूर्ण शब्दों को नहीं सुना था। वैज्ञानिक ने उसका हाथ पकड़ कर उसे घसीटा और उसके कंधे पर हाथ रख कर प्रयोगशाला में इधर उधर नाचने लगा। ऐसा लगता था कि हर्ष व उत्तेजना से वह पागल हो उठेगा ··इधर उसके हाथ से टक्कर खा एक बीकर गिरा, उधर एक फ्लास्क टूटा······परन्तु वैज्ञानिक का ध्यान इस क्षण इन तुच्छ वस्तुओं से परे था।

'हम्फ्री, आखिर मामला क्या है?"

अब वैज्ञानिक को होश आया, उसने कहा, "मैं तुमसे कितने दिन से कह रहा था कि कास्टिक सोडा और कास्टिक पोटाश ऐसे साधारण क्षारीय पदार्थ भी तत्व नहीं हैं, वह भी रासायनिक यौगिक हैं। तुम जानते हो कि मैं एक दीर्घकाल से इनमें से दूसर तत्वों को निकालने का कितना घोर परिश्रम कर रहा हूँ, परन्तु सफलता कहीं आज जाकर हाथ लगी है। आओ, एडमण्ड तुम्हें भी अपनी सफलता का दृश्य दिखलाऊँ।"

वैज्ञानिक उसे मेज के पास ले गया। मेज पर एक बड़ी सी भद्दी गैलवेनिक बैटरी लगी हुई थी। यह बैटरी आजकल की बैटरियों से बिलकुल भिन्न थी। इस तरह की एक छोटी सी बैटरी आप आज भी बना सकते हैं। एक जस्ते की प्लेट के ऊपर तांबे की प्लेट रखिये और इन दोनों के ऊपर नमक

के घोल में डूबी हुई एक दफ्ती, चमड़े या कपड़े की तह रखिए; कपड़े की तह पर फिर जस्ते की प्लेट और जस्ते की प्लेट पर फिर तांबे की प्लेट और अन्त में फिर वही चमड़े की तह। लीजिये आपकी बैटरी तैयार हो गयी। अब जितनी अधिक तेजी की विद्युत् आपको चाहिए उतनी ही बड़ी और संख्या में भी उतनी ही अधिक प्लेटें प्रयोग कीजिये। वैज्ञानिक ने इसी ढङ्ग की एक बहुत बड़ी बैटरी मेज पर जमा कर रक्खी थी। उसने बैटरी का एक पोल लेकर एक प्लैटिनम के चम्मच पर बांध दिया। अब चम्मच में उसने एक कास्टिक पोटाश का टुकड़ा लिया और बैटरी का दूसरा पोल हाथ में पकड़ कर कास्टिक पोटाश के टुकड़े को छुआए रहा। एक ही क्षण में विद्युत् का प्रभाव प्रतीत होने लगा। वह कास्टिक पोटाश का टुकड़े धीरे धीरे पिघल रहा था।

एडमण्ड ने पूछा, "परन्तु स्वामी इसमें नयी बात क्या है, जो आप इतना प्रसन्न हो रहे हैं?" उत्तेजना से वैज्ञानिक कांप रहा था। उसकी दृष्टि बराबर चम्मच में पिघलते हुये कास्टिक पोटाश के टुकड़े पर लगी थी। क्या अभी जो एक क्षण पहिले उसने देखा था, वह मिथ्या था। क्या वह गैलवनी के इस कथन 'कि हम परीक्षणों में प्रायः वह नहीं देखते, जो सत्यता ही होती हैं; बल्कि अपनी कल्पना की पुष्टि करने वाले किसी तथ्य को देख लेते हैं", के अनुसार केवल काल्पनिक दृश्य था। नहीं; उसका शरीर उत्तेजना से काँप रहा था, उसके हाथ वैद्युत् प्रभाव से जल रहे थे, दो जगह पर हाथ झुलस कर काला हो गया था; पर वह धुन का पक्का वैद्युत्-पोल को पकड़े ही हुए था। क्षण युगों के समान प्रतीत होते थे, सहसा···

वैज्ञानिक ने एडमण्ड को कोहनी से इशारा किया, "देखो एडमण्ड, देखो!"

कास्टिक पोटाश लगभग पिघल गया था; उसकी सतह से गैस निकल रही थी; परन्तु सब से आश्चर्य की बात थी कि चम्मच के पेंदे में से किसी चमकदार धातु की तरह के कुछ टुकड़े निकलते हुए दिखलाई दे रहे थे। यह धातु के टुकड़े बिलकुल पारे के समान लगते थे। उनमें से कुछ तो निकलते ही विस्फोटित होकर गायब हो जाते थे, परन्तु जो रह जाते थे, वह भी चम्मच की सतह में थोड़ी ही देर में अपनी चमक को खो देते थे। एडमण्ड ध्यान से चम्मच की ओर देख रहा था।

वैज्ञानिक ने सन्तोष की सांस ली और बोला, "एडमण्ड! देखो, यह इस कास्टिक पोटाश में उपस्थित एक नवीन धातु है जो चम्मच की सतह पर रह रह कर चमक उठती है—मेरे प्यारे भाई! क्या तुम आज की इस नई प्राप्ति का महत्व समझे?"

"हाँ, हम्फ्री! मैं समझता हूँ, आज आप अपने एक दीर्घ कालीन विचार को सत्य सिद्ध करने में सफल हो गये हैं। आज आपका महीनों का सतत कठोर परिश्रम फलीभूत हुआ है; अन्त में आज आपने सिद्ध कर दिया है कि कास्टिक पोटाश ऐसा साधारण पदार्थ जिसको आज तक हर देश के बड़े से बड़े रसायनज्ञ तत्त्व मानते थे, तत्त्व नहीं है और उसके भी तोड़ने से उसमें एक नई धातु प्राप्त होती है। स्वामी! मैं आपको इस उच्चकोटि की गवेषणा के लिए बधाई देता हूँ।"

(२)

उपरोक्त घटना लन्दन के रायल साइंटिफिक एसोशियेशन में अक्टूबर मास सन् १८०७ की एक संध्या को हुई। वैज्ञानिक का परिचय पाने के लिए आप स्वभावतः ही उत्सुक हो उठे होंगे। वैज्ञानिक का नाम हम्फ्री डेवी था। हम्फ्री डेवी एक निर्धन लकड़हारे का लड़का था, बचपन उसने पेनाज़न्स में खेल कूद में काटा, किताबों का उसे शौक न था, खेलना और मछली पकड़ना, उसकी दिन चर्य्या थी। पिता की आसामयिक मृत्यु के बाद कुल का भार उसके सिर आ पड़ा तो लाचारी में खेल कूद छोड़ उसने एक डाक्टर बोरलास के यहाँ काम सीखने की नौकरी की। यहाँ रसायन शास्त्र की उसे प्रथम ट्रेनिंग

मिली। शीघ्र ही उसने सादे परीक्षणों और अध्ययन द्वारा बहुत सा ज्ञान अर्जित कर लिया। उसके कुछ दिनों बाद वह मेडिकल न्यूमेटिक इंसटीट्यूशन में जाकर काम करने लगा। यहाँ उसने एक ऐसी गैस का पता लगाया जिसको अंग्रेजी में "लाफ़िङ्ग गैस" कहते हैं, इसके सूँघने मात्र से मनुष्य को हँसी का दौरा आने लगता है।

लाफिंग गैस की गेवषणा से हम्फ्री को जो प्रसिद्ध मिली, उसके फलस्वरूप उसे रायल साइंटिफ़िक एसोशियेशन द्वारा वहाँ काम करने को निमंत्रित किया गया। यहाँ आकर उसने बहुत से पदार्थों और उनके घोलों पर विद्युत् के प्रभाव का अध्ययन किया। दिन भर प्रयोगशाला में काम करना, और शाम को नाच, पार्टी, दावत में भाग लेना उसकी नित्य की चर्या थी, वह एक कुशल प्रयोगिक ही नहीं था, वरन् उसके भाषण भी बड़े रोचक होते थे। इंगलैंड और फ्राँस में उस समय युद्ध हो रहा था और लन्दन निवासियों को पेरिस में आनन्द मनाने का अवसर नहीं मिलता था; उन्होंने आनन्द का एक नवीन स्रोत ढूँढ निकाला था, वह था अपने उस नवयुवक वैज्ञानिक के भाषण। नित्य ही डैवी के भाषणों में अधिक से अधिक लोग इकट्ठे होते थे। उनको सबसे अधिक मनोरंजक उसके द्वारा प्रदर्शित प्रयोग लगते थे।

डैवी इस काल में पदार्थों पर विद्युत् के प्रभाव का अध्ययन कर रहा था और अपने फलों को उसने २० नवम्बर सन् १८०६ को 'बैकेरियन भाषण' के अवसर पर सुनाया। यह भाषण बैकेरियन भाषण इसलिए कहलाता था क्योंकि इस भाषण के लिए किसी महाशय बेकर ने अपने मृत्यु के समय १०० पाउण्ड का दान दिया था जिसका ब्याज प्रतिवर्ष भाषण देने वाले को आदर भेंट के रूप में दिया जाता था। उन्नीसवीं शताब्दी में बैकेरियन भाषण देने का निमंत्रण बहुत प्रतिष्ठा पूर्ण माना जाता था और इस तथ्य से ज्ञात होता है कि वैज्ञानिक हम्फ्री की ख्याति फैल रही थी।

परन्तु डैवी कुछ दिनों से एक चिन्ता में पड़ा था। उसको विश्वास था कि कास्टिक पोटाश और कास्टिक सोडा तत्व नहीं हैं, बल्कि किन्हीं और तत्वों से मिलकर बने यौगिक पदार्थ हैं। इस सत्य के सिद्ध करने के लिए उसने कास्टिक पोटाश के घोल में विद्युत् का प्रभाव किया······परन्तु इससे उसे कोई भी विशेष फल न मिला। विद्युत् ने कास्टिक पोटाश पर तो कोई प्रभाव किया ही नहीं, केवल जल को हाइड्रोजन और आक्सीजन में विश्लेषित कर दिया।

इसके बाद डैवी ने सोचा कि शायद पानी की उपस्थिति उसके कार्य्य में बाधक है। उसने इस बार कास्टिक पोटाश का टुकड़ा चम्चम में लेकर उसे पहिले आग से पिघलाया और पिघले हुए पोटाश में विद्युत प्रवाहित की···इस बार उसे कुछ सफलता मिली······ऐसा प्रतीत तो होता था कि कास्टिक पोटाश विश्लेषित हो रहा है,परन्तु शायद ऊँचे तापक्रम के कारण प्राप्त पदार्थ जल जाते थे और दिखलाई देती थी केवल एक लाल ज्वाला। कोई दूसरा साधारण वैज्ञानिक इन असफलताओं के बाद हार मान कर बैठ जाता पर डैवी ने हार मानना सीखा ही न था। सुबह से शाम प्रयोगशाला में उसे एक ही चिन्ता थी; शाम को नाच घर में नाचते हुए, समाज में दावतें खाते हुए, उसे केवल एक यही धुन थी कि किस प्रकार वह कास्टिक पोटाश को तोड़ कर उसके अन्दर से और सरल पदार्थ निकाल ले।

उसके सामने एक ही समस्या थी·····कास्टिक पोटाश का विश्लेषण···। पानी उसमें बाधक था ·· ···ऊँचे तापक्रम पर विश्लेषण तो हो जाता था परन्तु निष्फल···प्राप्त वस्तुएँ मिलती न थीं। वैज्ञानिक संसार तो माँगता था कि "लो, यह वस्तुएँ मैंने पोटाश से निकाली हैं"······तब उसे पूर्ण विश्वास होता·····पानी या ऊँचे तापक्रम के बिना विद्युत कास्टिक पोटाश से गुजरती ही न थी······। गम्भीर समस्या डैवी के सामने थी। वह कमर कस के तैयार था।······एक के बाद एक सूखा टुकड़ा एडमंड से मंगाता·····ज्यादा से ज्यादा बड़ी बैटरी से कड़ी से

कड़ी विद्युत् धारा गुज़ारने का प्रयत्न करता······ परन्तु निष्फलता ही उसके हाथ लगती······!

सहसा ही एक रात को उसे एक विचार सूझा कि क्यों न कास्टिक पोटाश का टुकड़ा केवल इतना गीला लिया जाए कि वह विश्लेषण में बाधक न सिद्ध हो सके······कितना सरल सा विचार था···! पर अपनी सूझसे हम्फ्री समझ गया कि उसने अपनी समस्या का हल मालूम कर लिया है। महीनों का परिश्रम उसे कल सुबह फल देगा, इसका उसे पूर्ण विश्वास हो गया। उत्तेजना से उसे रात भर नींद न आई·····दूसरे दिन सुबह तड़के ही प्रयोग शाला गया······सफलता की देवी आज उसे बधाई देने को खड़ी थी······आज सचमुच ही वह सफल हुआ·····उसने एढमंड को बुला कर अपनी सफलता दिखाई·····एडमंड ने उसे बधाई दी तो वह बोला।

"एडमण्ड! यह तो सफलता का केवल आरम्भ है। आज मैं कितना प्रसन्न हूँ कि मैंने सिद्ध कर दिया है कि कास्टिक पोटाश तत्व नहीं है, परन्तु शीघ्र ही मैं दिखा दूँगा कि और भी साधारण पदार्थ जिन्हें शताब्दियों से वैज्ञानिक तत्व मानते आये हैं, असलियत में तत्व नही है!"

(३)

विज्ञान से प्रत्यक्ष सम्बन्ध न रखने वाले लोग यह सोच सकते हैं कि डैवी तो अब सफल हो गया। उसे अब अपना इच्छित फल मिल गया और इसके बाद से उसने आनन्द किया होगा··· खुशियाँ मनाई होंगी;···परन्तु ऐसी नहीं होता···। अपना इच्छित फल मिल जाने ही पर समस्या ठीक रास्ते पर आती है और तब वैज्ञानिक के लिए परिश्रम का काल आता है। डैवी को १६ नवम्बर को फिर बैकेरियन भाषण देना था, वह चाहता कि इस विजय और बैकेरियन भाषण के बीच में उसे जो लगभग ७ सप्ताह मिले, उसमें अपने नये तत्व के सब गुण जान ले और बैकेरियन भाषण के दिन अपने नये मित्र की प्रत्येक आदत व स्वभाव का उसे ज्ञान हो। परन्तु शीघ्र ही उसे पता चल गया कि उसका नया मित्र बहुत ही अलौकिक व आश्चर्यजनक स्वभाव वाला है।

डैवी ने प्रयत्न किया कि उस चमकदार वस्तु को जमा कर ले··· ··परन्तु उसे अपने कार्य की कठिनता का पता शीघ्र ही चल गया···। प्राप्त वस्तु आरम्भ में तो पारे की तरह चमकदार होती थी··· किन्तु जल्दी ही उसकी चमक गायब हो जाती थी। बाहर हवा में निकालने पर वह धीरे धीरे बहुत गरम हो उठता था और थोड़ी देर छोड़ देने पर साबुन की तरह चिकना एक पदार्थ उसके स्थान पर रह जाता था···परीक्षणों द्वारा उसने देखा कि यह नया पदार्थ कोई नवीन वस्तु नहीं···वरन् उसका पुराना जानकार कास्टिक पोटाश ही है।

डैवी समझ गया कि उसका नया मित्र बहुत ही क्रियाशील है; हवा की उपस्थिति में वह रासायनिक क्रिया द्वारा फिर कास्टिक पोटाश में परिवर्तित हो जाता है। देखने से आरम्भ में वह तो अपनी चमक के कारण एक धातु सा लगता है, परन्तु कोई धातु तो इतनी क्रियाशील नहीं होती।···फिर भी न मालूम क्यों डैवी को विश्वास था कि नवीन प्राप्त वस्तु एक धातु ही है और वह उसके गुणों का अध्ययन कर अपनी धारणा को सिद्ध करना चाहता था···पर उसके सामने था अब एक दूसरा प्रश्न था कि किस प्रकार वह इस नई वस्तु को जमा करके रक्खे···। उसने देखा हवा में यह क्रियाशीलता के कारण रहता नहीं, उसने अब सोचा कि "लाओ, इसे पानी में रक्खूँ···"

परन्तु यह क्या! पानी में डालते ही तो वह नाचने लगा···और लो यह गैस क्या निकल रही है···? अरे···यह तो हाइड्रोजन है···। तो क्या यह पदार्थ इतना क्रियाशील है कि इसने जल को भी हाइड्रोजन में विश्लेषित कर दिया···यही नहीं··· लो कुछ क्षण में तो यह स्वयं ही जल उठा···और फिर वही लाल ज्वाला···वही ज्वाला जो कुछ दिन पहिले डैवी ने आग से पिघले हुए कास्टिक पोटाश

में विद्युत् गुजारते समय देखी थी…। उस दिन इस ज्वाला को देख कर उसे हर्ष मिश्रित निराशा हुई थी…हर्ष इसलिए कि प्रथम बार उसे यह विश्वास हो गया था कि उसकी यह धारणा ठीक है कि कास्टिक पोटाश तत्व नहीं है…परन्तु साथ ही साथ निराशा भी कि वह उस तत्व को जमा न कर सकता था… आज फिर उसे इसी प्रकार की भावना हुई…।

सदैव की तरह आज भी वह परिश्रम करता ही गया…हार मानना उसके स्वभाव में था ही नहीं…परन्तु वह करे भी तो क्या करे…वह अपने नये मित्र के लिए कोई स्थान ढूँढ रहा था जहाँ उसे स्थायी रूप में टिका सके…जब वह टिके, तब ही तो वह उससे परिचय प्राप्त कर, उसके समस्त गुणों व स्वभाव को समझ सकता था। उसे अपनी समस्या का कोई हल मिल ही नहीं रहा था…हवा में वह कास्टिक पोटाश में बदल जाता, पानी से वह रासायनिक क्रिया कर लेता, तेजाब में वह जल उठता, शीशे को वह खा जाता, आल्कोहल से क्रिया करने लगता। जिस वस्तु पर हम्फ्री का हाथ पड़ता और वह इसे अपने इस नये पदार्थ के निकट लाता, उसी से यह पदार्थ क्रिया करने लगता। उसकी समस्या बनी ही रही…परन्तु परिश्रम का फल सबको मिलता है। अन्त में डैवी ने अपने मित्र के लिए रक्षित स्थान ढूँढ ही निकाला और यह स्थान था 'मिट्टी का तेल'…मिट्टी के तेल में उसका नया तत्व अक्रियाशील अवस्था में पड़ा रहता।

नये तत्व के सब गुण वह अध्ययन कर लेना चाहता था…परन्तु अब फिर संशय उसके हृदय में स्थान करने लगा। पहिला संशय तो यही था कि यह नया तत्व धातु है भी या नहीं…धातु की तरह दिखता हुआ यह तत्व आश्चर्य जनक गुणों वाला था…पानी से हल्का पानी पर तैरना, मोम सा मुलायम, इतना क्रियाशील कि जल से संयोजित हो उससे हाइड्रोजन को भी निकाल बाहर करता। परन्तु शीघ्र डैवी के रासायनिक अनुभव ने उसे अपने संशय पर विजय पाने दी और उसने निश्चय कर लिया कि यह तत्व धातु ही है और उसने उसे नाम दिया "पोटेशियम"।

वह पोटेशियम के साथ ही नहीं रुक गया, शीघ्र ही उसने दूसरे क्षारीय पदार्थ को लिया। कास्टिक सोडा से उसी प्रकार विद्युत् गुजारने पर एक नयी धातु का पता लगाया और इसका नाम रक्खा 'सोडियम'। सोडियम अपने भाई पोटेशियम से सब ही गुणों में मिलता था।

बैकेरियन भाषण के लिए अब भी ६ सप्ताह बाकी थे। ६ सप्ताह के समय में वह पोटेशियम और सोडियम के बारे में उतनी ही जानकारी संग्रहित कर लेना चाहता था जितना शताब्दियों के परिश्रम से वैज्ञानिक और तत्वों के बारे में हासिल कर पाये थे। वह सुबह से प्रयोगशाला में आता; दस दस प्रयोग एक ही समय में आरम्भ कर देता; इस प्रयोग से कुछ क्षण का अवकाश पा उधर दौड़ता, उधर से तीसरे पर…इसी प्रकार दिन भर अटूट परिश्रम में लगा रहता…किसी किसी दिन प्रयोगशाला से निकलता तो देखता समस्त संसार सो गया है…। अब उसका ध्यान घड़ी की ओर जाता, तो देखता ३ या ४ बज गये हैं। उसे अपनी लगन पर स्वयं आश्चर्य हो उठता। परन्तु इतने परिश्रम को करते हुए भी वह सामाजिक निमंत्रणों का आदर अवश्य करता…यदि उसे पाँच बजे निमंत्रण में जाना होता, तो ४¾ पर काम बन्द करता और घर जाकर किसी प्रकार ठीक समय पर पहुँच ही जाता। कभी कभी तो इतना समय भी न मिलता कि वह कपड़े बदल ले; तो वह जो कपड़े पहने होता, उसी पर नये कपड़े डाट कर पार्टी में पहुँच जाता। उसके मित्र टिप्पणी करते…"देखो, डैवी महाशय आजकल मोटे हो रहे हैं", परन्तु उन्हें यह न मालूम होता कि वह पूरी ६ कमीजे एक के ऊपर एक पहने हुए हैं।

इसी बीच में शहर में टाइफस बुखार का प्रकोप फैल गया। वैज्ञानिक को उसके उपचार के प्रयत्न में वहाँ भी भेजा गया। वह वहाँ कोई विशेष सेवा

तो न कर पाया, परन्तु शायद वहाँ से बीमारी के कीटाणु उसके साथ हो गये।

इन सब बातों के होते हुए भी दिन रात उसका ध्यान अपने नये तत्वों की ओर ही लगा हुआ था। समय मिलते ही वह प्रयोगशाला जाता और प्रत्येक क्षण इन दो नई धातुओं के गुणों के अध्ययन में बिताता। अन्त में बैकेरियन भाषण की तिथि आ पहुँची। १९ नवम्बर १८०७ को उसने संसार को बतलाया कि उसने कितनी अलौकिक धातुओं का पता लगाया है। श्रोतागण उसके प्रयोगों से मुग्ध रह गए। आज उन्हें पता चला कि कोई धातु ऐसी भी हो सकती है जो पानी से हल्की हो और जल में आग लगा दे; परन्तु इस नये ज्ञान के साथ ही साथ उन्हें आश्चर्य हो रहा था डैवी की सक्रियता पर। एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग पर वह किस द्रुत वेग से गुजर रहा था। वैज्ञानिक की जो परिभाषा—"शुष्क व्यक्ति"—उन्होंने बना रक्खी थी वह आज निर्मूल प्रतीत हो रही थी। कितना आकर्षक था डैवी का भाषण!

परन्तु भाषण के बाद डैवी बहुत ही कमजोर दिखलाई दे रहा था। एडमण्ड ने पूछा कि 'डैवी, क्या मामला है?"

"मुझे टाइफस बुखार ने पकड़ लिया, ऐसा मालूम होता है" उसका उत्तर था।

(४)

डैवी की दशा उस दिन से बिगड़ती ही गयी, वह बिस्तर से बिलकुल लग गया। तीन चार दिन में उसकी दशा शोचनीय हो उठी।

तमाम इंगलैण्ड में यह समाचार बिजली की तरह फैल गया कि उनका प्रिय डैवी बीमार है। रायल साइंटिफिक एसोसियेशन के डाइरेक्टरों को चिन्ता हुई क्यों कि कुछ काल से एसोसियेशन की मुख्य आमदनी डैवी के आकर्षक भाषणों में आने वाली भीड़ से ही होती थी।

उसके शरीर पर टाइफस बुखार के चिन्ह तो न थे; परिश्रम की अधिकता ही उसकी बीमारी की कारण थी। बीच में तो उसकी दशा इतनी खराब हो गई, कि जीवन की कोई आशा न रही। देश में शोक फैल गया; परन्तु डैवी अपनी आत्मशक्ति से बच गया और जीवित रहा। उसे अभी बहुत वैज्ञानिक कार्य करना था; परन्तु ३० साल से कम उम्र में जो दो अलौकिक धातुएँ उसने ढूँढ निकाली थीं ऐसा दूसरा अन्वेषण वह भी बाकी जीवन भर में न कर सका।

धूमकेतु

[लेखक—श्री उदितनारायण सिंह]

सन् १४५६ ई० की एक रात को अकस्मात् आकाश में एक धूमकेतु की दिगन्त व्यापी पूँछ देख कर सारा योरप काँप उठा। संयोग से उस समय तुर्कों का ईसाइयों से युद्ध चल रहा था। धूमकेतु के उदय को किसी आसन्न विपत्ति की सूचना समझ भय से ईसाई-सम्प्रदाय घबरा गया और तत्कालीन पोप कैलिक्सटस तृतीय ने इस घटना के अमांगलिक प्रभाव के निवारण के लिए प्रार्थना तथा अन्य धार्मिक उपचार करने का आदेश दिया। कुछ दिनों बाद, बिना कोई अकल्याण किए 'देवलोक का वह अवांछित दूत' चुपचाप अस्त हो गया। पर इस घटना ने २३२ वर्ष पश्चात् सन् १६८२ ई० में मानव-संसार को सौरपरिवार के एक सत्य का साक्षात्कार कराया। उसके पहले कई बार लोगों ने आकाश के विभिन्न प्रान्तों में धूमकेतु देखे थे किन्तु इनके मार्ग तथा रूप के विषय में कोई स्थिर विचार नहीं निर्धारित किए जा सके थे। प्रसिद्ध ज्योतिर्विद केप्लर की यह धारणा थी कि धूमकेतु एक सीधी रेखा में घूमते रहते हैं। परन्तु हेली ने न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त के आधार पर उनकी कक्षा और गति के

विषय में एक निश्चित समाधान दिया। १६८२ के धूमकेतु को (उनके रूप की समानता के कारण) ठीक वही मानकर जिसे केप्लर ने १६०७ ई० में देखा था, हेली ने यह अनुमान किया कि अपनी कक्षा के चारों ओर घूमने में इसे करीब ७५ साल लगते हैं और फिर उसने अपनी गणना के अधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि १४५६ ई० तथा १६०७ ई० के धूमकेतु की कक्षा बिलकुल एक सी थी। इन बातों से उसे विश्वास हो गया कि १४५६ ई० में योरप को त्रस्त करने वाला विकराल धूमकेतु क्रमशः १५३१, १६०७ तथा १६८२ ई० में पुनः दिखलाई पड़ा था और इस आधार पर उसने भविष्यवाणी की कि धूमकेतु फिर १७५८ ई० में दिखलाई पड़ेगा। हेली की यह साहस पूर्ण भविष्यवाणी बिलकुल ठीक निकली। उसके बताये हुए समय के २० महीने बाद वह धूमकेतु पुनः प्रकट हुआ। बीस महीने का यह अन्तर ग्रहों के आकर्षण के परिणाम स्वरूप धूमकेतु की कक्षा में कुछ परिवर्तन हो जाने के कारण हुआ। था। हेली की गणना से यह सिद्ध हो गया कि धूमकेतु भी सौर परिवार के सदस्य हैं और इस समुदाय के दुर्निवार नियमों से विवश हो ये लोग भी सूर्य के चारों ओर अनवरत चक्कर काटा करते हैं। इसके पूर्व कि हम लोग धूमकेतु के निर्माण तथा उसकी कथित विशेषताओं पर विचार करें, यह अच्छा होगा कि सूर्य के चारों ओर उनके घूमने के क्रम और उनके पथकी कुछ विशिष्ट बातें अच्छी तरह समझ ली जायें।

सूर्य के चारों ओर घूमने वाले गृहों की कक्षायें करीब करीब वृत्ताकार ही हैं। वस्तुतः उनका रूप तो दीर्घ वृत्त का है और सूर्य उन सभी दीर्घ वृत्तों के नाभि-स्थान (focus) पर स्थित है; पर इन कक्षाओं की उत्केन्द्रता (eccentricity) इतनी छोटी है कि वे करीब करीब वृत्त के रूप में ही आती हैं। लेकिन पुच्छलतारों की कक्षा के; उत्केन्द्रता के आधार पर, दो प्रमुख विभाग किए जा सकते हैं। एक तो वे जिनकी उत्केन्द्रता बहुत छोटी हैं और जो साधारण दीर्घवृत्त हैं। दूसरे प्रकार की वे कक्षा हैं जिनकी उत्केन्द्रता करीब करीब एक के बराबर है और जिनका रूप परवलय के समान होता है। सन् १८०० ई० और १९४१ ई० के बीच में करीब १११ विभिन्न धूमकेतु देखे गए हैं जिनमें ४८ ऐसे हैं जिनकी कक्षा परवलय के समान है और बाकी में ३३ की उत्केन्द्रता ०.९९० से अधिक और २० की ०.९९.० से कम है। उन ३३ धूमकेतुओं में जिनकी कक्षा परवलय के समान है १५ एस हैं जिनकी उत्केन्द्रता १ से कुछ अधिक हैं। उन्हें देखने से यह भान होता है कि वे अतिपरवलाय (Hyperbolic) पथ पर विचरण कर रहे हैं। तो वे सौर-परिवार के स्थायी-सदस्य नहीं हैं, किन्तु इस निष्कर्ष के लिए निश्चय प्रमाण नहीं मिल सकता है।

कक्षा की बनावट के अतिरिक्त ग्रहों और धूमकेतु के पक्ष में एक दूसरा विचित्र अन्तर यह है कि जहाँ सभी ग्रह-कक्षायें करीब करीब एक ही समतल में हैं वहीं अधिकांश धूमकेतु के पथ पृथ्वी की कक्षा के साथ ९०° का कोण बनाते हैं। और सभी ग्रह सूर्य के चारों ओर एक ही ढङ्ग से (ऊपर से देखने में हमेशा सूर्य को अपनी बायीं ओर रखते हुए) घूमते हैं, किन्तु करीब ५० धूमकेतु ऐसे हैं जो ग्रहों के विपरीत सूर्य का चक्कर उल्टे लगाते हैं। ४३ प्रतिशत धूमकेतु का सूर्य से निकटतम दूरी पृथ्वी की दूरी से कम है और ४४ प्रतिशत ऐसे हैं जिनकी निकटतम दूरी पृथ्वी की दूरी से अधिक तथा उसकी दूरी के दूने से कम है।

कुछ धूमकेतु ऐसे हैं जो ५ साल से लेकर १०० साल तक की अवधि के बीच में सूर्य के चारों ओर एक चक्कर काट लेते हैं। ये उसी दिशा में घूमते हैं जिसमें ग्रह-समूह और अधिकांश ऐसे हैं जिनकी कक्षा पृथ्वी की कक्षा से ४५° से भी छोटा कोण बनाती है। इनकी अधिकतम दूरी बृहस्पति की दूरी से अधिक नहीं है। इनकी वर्तमान कक्षा की बनावट का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि इनकी गति पर और इनकी कक्षा के उत्तरोत्तर

विकास पर वृहस्पति का बहुत मार्मिक प्रभाव पड़ा है। वस्तुतः पहले बहुत बड़ी कक्षा में घूमते हुए धूमकेतु अकस्मात् जब वृहस्पति के समीप से गुजरते हैं तो इस महान ग्रह के आकर्षण के कारण उनकी गति में आमूल परिवर्तन होते हैं और उनका पथ बिलकुल बदल जाता है। यह नवीन कक्षा किस प्रकार का होगा इसका निर्णय इस बात पर निर्भर है कि धूमकेतु वृहस्पति के पास किस गति और किस दिशा में गुजरता है। यदि प्रारम्भ में कोई धूमकेतु वृहस्पति के समतल में एक परवलय पथ पर घूम रहा है तो नीचे की सारिणी से उसकी नवीन कक्षा का भिन्न भिन्न दशा में पता लगाया जा सकता है।

प्रारम्भिक गति		नवीन कक्षा
१—वृहस्पति के समानान्तर	सूर्य से निकटतम दूरी काफी अधिक हो	दीर्घवृत्त— सीधीगति
२—वृहस्पति के प्रतिकूल		अति परवलय— ,,
३—सूर्य की ओर	सूर्य से निकटम दूरी कुछ कम हो	दीर्घ वृत्त—बिपरीत गति
४— सूर्य से अलग हटता हुआ		अतिपरवलय—सीधी गति

यह स्पष्ट है कि अति परवलय-पथ पर घूमने वाले पुच्छल तारे कुछ दिनों पश्चात् सौर-मंडल के बाहर चले जायेंगे और फिर कभी नहीं प्रकट होंगे।

इनमें सबसे मनोरंजक कहानी उन पुच्छल तारों की है जो वृहस्पति के समानान्तर घूमते हैं तथा सूर्य से जरा दूर होते हैं। वृहस्पति के समीप आने पर इनकी गति में परिवर्तन होता है और ये दीर्घ-वृत्त में घूमने लगते हैं। दूसरी बार जब ये फिर वृहस्पति के समीप आते हैं तो उनकी कक्षा में पुनः परिवर्तन होता है और उनकी कक्षा क्रमशः संकुचित होती जाती है। धीरे-धीरे वृहस्पति के प्रभाव से ये इतने आक्रान्त हो जाते हैं कि अनायास ही उसके चारों ओर घूमने लगते हैं। इस प्रकार वृहस्पति के परिवार में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जारही है और वे धूमकेतु जो वृहस्पति से प्रभाव के कारण दीर्घवृत्त में पर विपरीत दिशा में घूमने लगते हैं दूसरी बार वृहस्पति के समीप से गुजरते समय अपनी उल्टी गति के कारण सम्भवतः सौर-मंडल के बाहर जा पड़ेंगे और पुनः उनके दर्शन नहीं होंगे।

धूमकेतु की बनावट

कोई चमकता हुआ धूमकेतु बिना किसी यन्त्र की सहायता से देखने पर ऐसा लगता है जैसे किसी धुँधले से सफेद धब्बे में धुयें की एक लम्बी पूँछ जोड़ दी गई हो। इसकी पूँछ के किनारे इस तरह क्रमशः प्रभाहीन होते हुए आकाश की पृष्ठ भूमि के रंग में मिल जाते हैं कि इसकी सीमारेखा निर्धारित करना असम्भव सा हो जाता है। पृथ्वी की कक्षा के भीतर से यात्रा करते हुए सूर्य से निकटतम दूरी पर पहुँचने में तथा उसके उपरान्त नक्षत्र-लोक में अपने प्रशस्त पथ पर निरन्तर विचरण करने के क्रम में धूमकेतु की प्रभा, इसकी पूँछ की रूपरेखा तथा कभी कभी उसके शरीर की बनावट में अनेक परिवर्तन होते रहते हैं। कोई भी दो धूमकेतु एक तरह के नहीं होते और सत्य तो यह है कि शायद ही कोई धूमकेतु अपनी कक्षा की दूसरी परिक्रमा में ठीक पहले जैसा ही आचरण करता हो। इस प्रकार शारीरिक बनावट में धूमकेतु सौर-परिवार के अन्य सदस्यों से सर्वथा भिन्न होते हैं। ये ठोस पिंड न होकर छोटे छोटे कण-समूहों को घेरे हुए वृहदाकार गैस-पुंज हैं।

दूरबीन से देखने पर धूमकेतु के सिर के दो स्पष्ट भाग मालूम होते हैं। मध्य में एक चमकता हुआ तारा सा रहता है जो केन्द्रक (Nucleus) कहलाता है और उसके चारों ओर कुहासे की तरह धुँधला प्रकाश घेरे रहता है (coma) जिसे आवरण कहते हैं। लैटिन में (coma) का अर्थ 'बाल' होता है। शायद धूमकेतु में वस्तुतः कोई केन्द्र नहीं होता है और जो

कुछ हम देखते हैं वह केवल प्रभा की अपेक्षाकृत तीव्रता के कारण एक ज्योति विन्दु सा दीखता है। केन्द्रक के समीप (coma) का भाग अधिक प्रभापूर्ण होता है और उससे दूर के हिस्से क्रमशः ज्योति-हीन होते जाते हैं। साधारणतया अधिक चमकीले धूमकेतु कोमा में केन्द्रक को घेरे हुए प्रकाश के विभिन्न स्तर दिखाई देते हैं।

धूमकेतु के शिर वृहस्पति के आकार को मात करने वाले सहस्रों मील चौड़े होते हैं। कुछ तो ऐसे हैं जो सूर्य्य के आकार से भी बड़े हैं।

धूमकेतुका शिर तो सूरज की ओर होता है और पूँछ दूसरी ओर; जैसे-जैसे धूमकेतु सूर्य की ओर बढ़ता जाता है पूँछ पीछे होता जाता है और जब यह सूर्य से दूर जाने लगता है तो पूँछ आगे आगे चलने लगता है जैसे उसके पथ को प्रकाशित करती चल रही हो। धूमकेतु की पूँछ के इस विचित्र आचरण से निष्कर्ष निकाला गया कि कदाचित सूर्य से कोई अज्ञात शक्ति निरन्तर प्रवाहित होकर धूमकेतु के शरीर से धूम-पुंज बाहर करती रहती है। किन्तु इस रहस्य की मीमान्सा बहुत दिनों तक नहीं हो सकी। इसका समाधान भौतिक-विज्ञान के इस सिद्धान्त में मिला है कि प्रकाश सूक्ष्मकणों पर दबाव डालता है और उसके कारण उनमें विस्फोट भी होता है। प्रकाश के दबाव की यह क्षीण शक्ति केवल अत्यन्त लघु रज-कणों तथा गैस के अणुओं को ही प्रभावित कर सकती है। तो इस प्रकार सूर्य का प्रकाश धूमकेतु के उन छोटे छोटे कणों पर दबाव डालते और उन्हें धक्का देने के क्रम में एक ऐसी शक्ति उत्पन्न करता है जिससे सौर-आकर्षण का विरोध होता है। किन्तु ज्यों ज्यों धूमकेतु सूर्य के समीप होता जाता है उसके भीतर प्रकाश के प्रवेश की तीव्रता ठीक उसी गति से बढ़ती है जिस गति से सूर्य का आकर्षण; इस प्रकार आकर्षण और विकर्षण के परस्पर संहार के कारण गति के मौलिक रूप पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अतः यह स्पष्ट है कि सूर्य से अधिक दूर रहने पर धूमकेतु में पूँछ नहीं होती होगी। और यदि हम लोग भूलोक में न रह कर वृहस्पति अथवा अन्य सुदूर गृह पर निवास करते होते तो धूमकेतु की पूँछ देखने के अनुपम आनन्द से सर्वथा वंचित रहते। मंगल की कक्षा में प्रवेश करने के पूर्व ही धूम-केतु की पूँछ निकलती है और वास्तविक पूँछ तो तब बनती है जब वह पृथ्वी की कक्षा को पार करने लगता है। उस समय पूँछ निकलना प्रारम्भ होता है और प्रतिदिन ६ लाख मील की गति से बढ़ने लगती है। इस प्रकार बढ़ते बढ़ते ३ से ६ अरब मील तक लम्बी हो जाती है। अभी तक सबसे लम्बी पूँछ १२४३ ई० के धूमकेतु की थी जो २० अरब मील लम्बी थी। १९१० में हेली के धूमकेतु की पूंछ की अधिकतम लम्बाई १० अरब मील थी।

यदि कोई धूमकेतु सीधे सूर्य की ओर ही बढ़ता आये तो उसकी पूँछ पीछे की ओर उसी सीधी रेखा मेंफैली रहेगी। किन्तु धूमकेतु तो सूर्य के चारों ओर घूमते रहते हैं इसलिये उनकी पूंछ सीधी न होकर प्रायः वक्र हुआ करती है। कभी कभी एक ही धूमकेतु के एक ही समय कई पूंछ निकल आती हैं और उनकी वक्रता भी एक सी नहीं होती। १९१० के धूमकेतु में यही बात थी। धूमकेतु की पंछ के भाग अति परवलय-पथ में घूमते हैं और इसीलिए धूमकेतु से अलग हो जाते हैं। अतः जिन द्रव्यों से से पूंछ बना करता है वे इस क्रम में धीरे धीरे खतम होने लगते हैं। यही कारण है कि उन धूमकेतुओं की पूंछ जो अपेक्षाकृत छोटी अवधि के भीतर सूर्य की परिक्रमा कर लेते हैं और जो पृथ्वी की कक्षा के भीतर से जाते हैं. प्रायः छोटी और प्रभाहीन होती है।

(अगले अंक में समाप्त)

'लौगेरिथ्म' का पर्याय

(डा० ब्रजमोहन)

आजकल वैज्ञानिक शब्दावली के क्षेत्र में कई विचारधारायें बह रही हैं। कुछ विज्ञानकों का तो यह मत है कि हम अंग्रेजी के पारिभाषिक शब्दों को ज्यूँ का त्यूँ अपना लें। यह लोग हिन्दी में अंग्रेजी शब्दों 'डाइनेमो, नाइट्रोजन और रेडियम' को ज्यूँ का त्यूँ लिखेंगे। इस पद्धति में तुरन्त एक कठिनाई आन खड़ी होती है। यदि हम 'रेडियम' शब्द को ज्यूँ का त्यूँ अपना लें तो 'रेडियो-ऐक्टिव' और 'रेडियो-ऐक्टिविटी' के लिए कौन से पर्याय निर्धारित करेंगे ? क्या इन शब्दों को भी हम ज्यूँ का त्यूँ अपना लें ? यदि हम अंग्रेजी से 'ग्राफ' शब्द ज्यूँ का त्यूँ ले लें तो क्या 'ग्रेफिक' 'ग्रेफिकल' और 'ग्रेफिकली' को भी लेना होगा ? और यदि इन शब्दों को नहीं लेंगे तो इनके पर्याय किस प्रकार बनायेंगे ? क्या हम इन अंग्रेजी शब्दों पर संस्कृत व्याकरण के नियम लगा सकेंगे ? क्या हम ग्राफात्मक' और 'ग्राफतः' जैसे भद्दे प्रयोगों को हिन्दी में चला सकेंगे ? क्या इस प्रकार के शब्द हिन्दी और संस्कृत जगत को ग्राह्य होंगे ? कदापि नहीं। स्पष्ट है कि अंग्रेजी शब्दों को ज्यूँ का त्यूँ अपनाने की नीति हमें दो पग भी आगे न बढ़ने देगी।

कुछ अन्य लोगों ने इस नीति में थोड़ा सा हेर फेर किया। उन्होंने अंग्रेजी शब्दों को थोड़ा सा तोड़ मरोड़ कर उन्हें हिन्दी रूप देना चाहा। 'औक्सीजन' के पर्याय 'अक्सजन' और 'ओषजन' इस प्रवृत्ति के उदाहरण हैं। इस नीति का फल यह हुआ कि हमारे पारिभाषिक शब्द सर्वथा निरर्थक बने। इसके अतिरिक्त ऊपर लिखा दोष इन शब्दों में भी ज्यूँ का त्यूँ रह गया। 'ओषजन' से औक्साइड', 'औक्सिाइड', 'औक्सिडायज' 'औक्सिजेनेट' इत्यादि के पर्याय बनाने यदि असम्भव नहीं तो बहुत ही कठिन अवश्य हैं।

कुछ लेखकों ने इस नीति में और थोड़ा सा परिवर्तन किया। उन्होंने यह प्रयास किया कि शब्द ऐसे बनें जिनका अंग्रेजी शब्दों से ध्वनि साम्य भी रहे और खींच तानकर यह शब्द हिन्दी अथवा संस्कृत के मूलों से सम्बद्ध भी कर दिये जायं। यहां मैं ऐसे शब्दों के कुछ उदाहरण देता हूँ :—

केबिल = कई बल (जिसमें कई बल पड़े हों)
बैटरी = बलकरी
सर्किट = सरकिल
ग्राफ = ग्राह
स्पाइरल = सर्पिल

परन्तु हमारी कठिनाई ज्यूँ की त्यूँ रह गई। हम 'सर्किट' को चाहे 'सर्कित' कह भी लें परन्तु 'सर्किटस' को क्या कहेंगे ? यदि 'ग्राफ' का पर्याय 'ग्राह' मान लें तो 'ग्रैफिकल' का पर्याय कैसे बनायेंगे।

इसी ढङ्ग का उदाहरण है 'लौगेरिथ्म' का पर्याय 'लघुरिक्थ'।

हमारे पूर्वजों ने कदाचित इस शब्द के लिए स्पष्ट रूप से कोई पर्याय नहीं बनाया था क्योंकि गणित के प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में इस ढङ्ग के किसी शब्द का उल्लेख नहीं है, परन्तु पं० सुधाकर द्विवेदी का विचार है कि हमारे प्राचीन गणितज्ञ लौगैरिथ्म के भाव से सवथा अनभिज्ञ नहीं थे। इसका प्रमाण वह यह देते हैं कि बहुत पुराने समय से हमारे देश में यह प्रश्न प्रचलित है—

१ रत्ती हीरे का मोल १०० रुपये हैं तो ४ रत्ती हीरे का क्या मोल होगा, जहाँ यह शत है कि सवाई तोल चौगुना मोल ?

इस प्रश्न का साधन बिना लौगैरिथ्म की सहायता के नहीं हो सकता।

परन्तु यदि प्राचीन गणितज्ञ लौगैरिथ्म के भाव से परिचित भी थे तो भी उस भाव के द्योतक किसी पारिभाषक शब्द के अभाव में हमें कोई न कोई

नया शब्द बनाना ही पड़ेगा। आधुनिक समय में पं० बापूदेव शास्त्री ने अपनी त्रिकोणमिति में इस शब्द के लिये 'प्रघातमापक' पर्याय बनाया है।※ इस शब्द की उत्पत्ति सरलता से समझ में आ सकती है :—

घात का अर्थ है 'पौवर'। $क^{७}$ को पढ़ेंगे 'क घात ७' और 'इनडेक्स' ७ को कहेंगे 'घातांक' अथवा घातमापक, क्योंकि यह घात का माप है। और लौगैरिथ्म की परिभाषा इस प्रकार है :

$$यदि\quad क^{य} = च$$

तो च का लौगैरिथ्म य हुआ आधार क के अनुसार। और इस सम्बन्ध को हम इस प्रकार लिखेंगे :

$$लौगेरिथ्म_{क}^{च} = य।$$

स्पष्ट है कि लौगैरिथ्म भी एक प्रकार का घातांक ही होता है परन्तु यह घातांक एक विशिष्ट प्रसंग में ही लौगैरिथ्म कहलाता है। अतएव विशेषता दर्शाने के लिये 'घनातमापक' में 'प्र' उपसर्ग लगाया गया है जो विशेषता का द्योतक है। इस प्रकार लौगैरिथ्म का नाम 'प्रघातमापक' हो गया।

तत्पश्चात् प० सुधाकर द्विवेदी ने अपनी पुस्तक 'दीर्घवृत्त लक्षण' में इस शब्द का पर्याय 'लघुरिक्थ' बनाया। इस शब्द की उत्पत्ति वह स्वयं ही इस प्रकार देते हैं :※

पिता जो धन मरने के पश्चात् छोड़ जाता है, उसे रिक्थ' कहते हैं। यदि संख्या $१०^{५}$ मर जाय तो ५ शेष रहेगा। इसे छोटा रिक्थ अर्थात् 'लघुरिक्थ' कह सकते हैं। यह शब्द अंग्रेजी शब्द से मिलता भी है. अतः जो व्यक्ति अंग्रेजी, हिन्दी दोनों जानते हों, उन्हें यह नाम स्मरण करने में भी कोई कठिनाई नहीं होगी। इस प्रकार यह नाम साथक भी हो जाता है।

इस प्रकार का तर्क तो धींगामस्ती ही कहलायेगा। संख्या के मर जाने का क्या अर्थ हुआ? और यदि सारी संख्या $१०^{५}$ मर गई तो घातांक ५ ही शेप कैसे रह गया।

लघुरिक्थ शब्द बहुत प्रचलित भी नहीं हो पाया।

सन् १६०६ में बा० श्यामसुन्दर दास की 'हिन्दी वैज्ञानिक शब्दावली' नागरी प्रचारिणी सभा काशी से प्रकाशित हुई। उसमें लौगैरिथ्म का पर्याय 'घातांकगणन' दिया है। यह नाम तो बिलकुल ही बेतुका प्रणीत होता है।

सन् १६३१ में इस शब्दावली का परिवर्द्धित संस्करण छपा। इसमें लौगैरिथ्म का पर्याय 'लघुगणक' दिया है। इस नाम में कुछ तथ्य अवश्य है। लौगैरिथ्म की सहायता से बहुत से प्रश्नों में गुणा के स्थान पर योग से और भाग के स्थान पर वियोग से काम चल जाता है। इस प्रकार गणना में सरलता आ जाती है। इसलिए इसको 'लघुगणक' कहना अनुपयुक्त न होगा।※

परन्तु प्रश्न यह है कि क्या वास्तव में हमारी प्राचीन पुस्तकों में लौगैरिथ्म का कोई पर्याय नहीं है। कम से कम एक स्थान है जहाँ यदि प्रत्यक्ष रूप में नहीं तो परोक्ष रूप में इस शब्द का पर्याय विद्यमान है। नेमिचन्द ने अपने ग्रन्थ 'त्रिलोकसार' में एक शब्द 'अर्द्धच्छेद' दिया है। इस शब्द का अथ है 'जितनी बार एक संख्या अधियायी जा सके।

$$यदि\quad \frac{स}{या} = २$$

※संस्कृत के कोषों में भी इसी ढंग के शब्द दिये हैं। उदाहरणतः मूलगांव कर की 'हैन्डी इंग्लिश संस्कृत डिक्शनरी' में लौगैरिथ्म के पर्याय 'घातदर्शक, घातप्रमापक और संवर्गमापक' दिये हैं।

†देखो सुधाकर द्विवेदी—गणित का इतिहास भाग १ पृष्ठ १३२।

※मंडाश्री की ट्वेन्टियेथ सेन्चुरी डिक्शनरी में भी यही शब्द दिया गया है।

तो 'स' 'य' का अर्धच्छेद हुआ

अर्थात् स = अधच्छेद य।

चूंकि $६४ = २^६$,

अत: अर्धच्छेद ६४ = ६

आधुनिक शब्दावली में इसी सम्बन्ध को इस प्रकार लिखेंगे :

लघुगणक $_२६४ = ६$

स्पष्ट है कि 'अर्धच्छेद' का अर्थ हुआ 'आधार २ के प्रति लिया गया लौगैरिथ्म।'

नेमिचन्द ने इस शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया था, इस बात की पुष्टि निम्नलिखित नियमों से होती है जो उन्होंने 'त्रिलोकसार' की गाथा १०५-१०८ में दिये हैं† :—

१—गुणक और गुण्य के अर्धच्छेदों का योग गुणनफल का अधच्छेद होता है।

अर्थात् $२^{श+ष} = २^{श} . २^{ष}$

स्पष्ट है कि यह घातांक नियम की ही एक विशिष्ट दशा है।

२—यदि भाज्य के अर्धच्छेद में से भाजक का अर्धच्छेद घटायें तो भजनफल का अधच्छेद प्राप्त होगा।

अर्थात् $$२^{श-ष} = \frac{२^{श}}{२^{ष}}$$

यह भी घातांक नियम की हों एक विशिष्ट दशा है।

यदि हम इस शब्दावली को अपनायें तो 'लौगैरिथ्म' के लिये 'छेद' पर्याय मानना होगा। इस प्रकार आधार १० के प्रति लिये गये 'लौगैरिथ्म' को कहेंगे 'दशमच्छेद' अथवा 'दशमभागच्छेद'। परन्तु यदि हम क्रमात्मक संख्याओं (आर्डिनल नम्बर्स) के स्थान पर 'गणनात्मक संख्याओं' (कार्डिनल नम्बर्स) का प्रयोग करें तो इसको 'दशाच्छेद' कहेंगे। इसी प्रकार 'आधार ७ के प्रति लिये गये 'लौगैरिथ्म' को कहेंगे 'सप्तच्छेद'। यह शब्द बहुत सरल और छोटे हैं और एक पूरे वाक्यांश का अर्थ एक शब्द में आ जाता है। परन्तु एक कठिनाई है। हमारी प्राचीन गणित में छेद' शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त होता था। प्राचीन पुस्तकों में 'डिनौमिनेटर' के कइ पर्याय दिये हैं : छिति छेद, हर, हार। इनमें से 'हर' प्राय: सर्वमान्य हो गया है। अतएव छेद' के इस अर्थ के कारण तो कोई भ्रम नहीं पड़ेगा। परन्तु छेद का एक अर्थ 'सेक्शन' अर्थात् काट भी होता है।* साधारण अंग्रेजी-हिन्दी और अंग्रेजी-संस्कृत कोषों में सेक्शन के अर्थ 'छेद' और परिच्छेद' दिया है और 'क्रौस सेक्शन' का 'अनुप्रस्थ परिच्छेद'†। परन्तु उसी शब्दावली के एक अन्य स्थल पर 'क्रौस सेक्शन' का पर्याय केवल 'परिच्छेद'‡ दिया है। चूँकि 'परि' द्योतक है चारों ओर का. अतएव यह अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है कि 'सेक्शन' का पर्याय केवल 'छेद' माना जाय और 'क्रौस सेक्शन' का 'परिच्छेद'।

सेक्शन के लिए 'काट' भी बहुत कुछ प्रचलित हो चुका है। इसे हटाने की कोई आवश्यकता नहीं। यथावसर 'छेद' और 'काट' दोनों प्रयुक्त हो सकते हैं। कुछ प्रयोग ऐसे होंगे जिनमें 'काट' उपयुक्त होगा, कुछ में छेद; कुछ में दोनों।

अतएव हमारी शब्दावली इस प्रकार की होगी :

Section	छेद काट
Sectional	छेदीय
Cross-Section	परिच्छेद
Theory of Sections	छेद सिद्धांत
Vertical Section	उदग्र छेद. उदग्र काट

†देखो कापाडिया लिखित श्रीपति का 'गणिततिलक' (१९३७) भूमिका पृष्ठ २५।

*छेद के साधारण अर्थ छिद्र के कारण भ्रम होने की आशंका बहुत कम है।

†पृष्ठ ३३

‡पृष्ठ ११२

Horizontal Section	क्षैतिजछेद क्षैतिजकाट
Circular Section	वर्तुल काट
Common Section	युगल काट
Conic Section	शंकु काट, शांकव
Golden Section	कनक काट
Lateral Section	पार्श्विक छेद
Medial Section	मध्य की छेद
(Mean	मध्यक)*
Normal Section	अभिलम्ब काट
Plane Section	समतल काट
Method of Section	छेद विधि
Points of Section	विभाजक बिन्दु
Middle Section	मध्यच्छेद

यदि हम 'लौगैरिथ्म' का पर्याय भी 'छेद' मानें तो 'सेक्शन' के अर्थ का भ्रम होने की आशंका बहुत रहेगी। विशिष्टतः 'मीन लौगैरिथ्म' के लिये 'मध्यकच्छेद' कहना होगा और 'मीडियल सेक्शन' के लिए 'मध्यकी छेद'। इन दोनों पर्यायों में अत्यधिक समानता है। इसके अतिरिक्त 'छेद विधि' का अर्थ Method of Section भी हो सकेगा, Method of logarithms भी। अतएव, इस पर्याय में थोड़ा बहुत परिवर्त्तन करना ही पड़ेगा।

इस कठिनाई को दूर करने के लिए लाहौर के डा० रघुवीर ने यह प्रस्ताव किया है कि 'लौगैरिथ्म' का पर्याय 'छेदा' रखा जाय। इस प्रकार हम प्राचीन शब्द के समीप भी रहेंगे और 'सेक्शन' के पर्याय से संभ्रम भी न होने पायेगा।

इस सम्बन्ध में एक और बात पर भी विचार करना है। अंग्रेजी के अक्षर e के दो अर्थ हैं: एक तो eccentricity दूसरा transcendental function e. इन दोनों अर्थों के लिए हिन्दी में भी उपयुक्त अक्षर चुनने होंगे। हम तत्सम्बन्धी शब्दावली और संकेतलिपि इस प्रकार बना सकते हैं :

eccentricity e	उत्केन्द्रता
e	उ
(transcendental)e	घ ('घातांक' से)
(Generalised)E	घा
Logarithm	छेदा
Logarithm to base 10	दशाच्छेदा
Logarithm to base e	घच्छेदा
Logarithmic	छेदी
Logarithmic theorem	छेदा प्रमेय
Logarithmic Series	छेदा श्रेणी
Logarithmic curve	छेदी वक्र
Logarihmic Function	छेदी फलिन
Logarithmic differentiation	छेदी अवकलन
Mean logarithm	मध्यकच्छेदा
Anti-logarithm	प्रतिच्छेदा
Characteristic of a logarithm	छेदा पूर्णांश
Mantissa of a logarithm	छेदा भिन्नांश

इस शब्दावली पर गणितज्ञ कृपया ध्यान दें।

*यह लाहौर के डा० रघुवीर का पर्याय है। ना० प्र० सभा की शब्दावली में 'मीन' के लिए 'मध्यमान' दिया है जिसका अर्थ है 'मीन वैल्यू'। यदि इस शब्द को स्वीकार कर लिया जाय तो 'मीन' और 'मीन वैल्यू' में कोई अन्तर नहीं रह जायगा। हम Mean Value theorem को 'मध्यमान प्रमेय' कहेंगे। और यदि कहीं Theorem of the mean का पर्याय बनाने की आवश्यकता पड़ी तो उसे भी 'मध्यमान प्रमेय' ही कहना पड़ेगा।

हिन्दी में वैज्ञानिक पारिभाषिक संकेतावली

[ले०—श्री ओंकार नाथ शर्मा, लोको फोरमैन, आगरा]

यंत्र शास्त्र सम्बन्धी विविध विषयों पर हिन्दी में लिखते समय जहां तक हो सका है मैंने नागरी-प्रचारिणी की वैज्ञानिक शब्दावली के आधार पर ही अपनी शब्दावली बनाई और नये शब्दों का निर्माण भी उक्त सभा द्वारा स्वीकृत सिद्धान्तों के आधार पर ही किया, लेकिन गणित प्रधान विषयों का विवेचन करते समय संकेतों के अभाव की एक समस्या और सामने आई। ना० प्र० स० के सन् ९०६ के शब्दावली के संस्करण में रासायनिक मूल तत्वों के संकेत तो दिये हुए हैं लेकिन भौतिक और गणित के नहीं। प्रारम्भिक पुस्तकों में इनकी आवश्यकता भी नहीं पड़ती, लेकिन यंत्र शास्त्र में बिना इनके काम नहीं चलता। अंग्रेजी भाषा की पुस्तकों में देखा गया है कि भिन्न-भिन्न लेखकों ने एक ही शब्द के भिन्न-भिन्न संकेत गढ़ लिये हैं। कई संकेतों में तो अब धीरे-धीरे समानता होती जा रही है लेकिन किसी संस्था ने उन्हें इकट्ठा कर उनको प्रमाणिक रूप नहीं दिया है, जिसके बिना इस विषय का अध्ययन करने वालों को बड़ी असुविधा होती है।

विद्युत यंत्र शास्त्र सम्बन्धी परिभाषिक शब्दों के कुछ संक्षिप्तरूप और संकेतों का स्थिरीकरण सन् १८९३ ई० में शिकागो में होने वाली अन्तर्राष्ट्रीय इलेक्ट्रिकल कांग्रेस की कमेटी आन नोटेशन आफ चेम्बर आफ डेलीगेटस ने किया था जो अब तक सारी दुनिया के विद्युत यंत्र कलाविद् काम में ला रहे हैं। यंत्र शास्त्र सम्बन्धी संकेतों और संक्षिप्तरूपों का स्थिरीकरण अमेरिका की अमेरिकन स्टेन्डर्डस् असोसियेशन ने उसदेश की विभिन्न संस्थाओं के सहयोग से कुछ वर्ष हुए तभी किया है। लेकिन उसे अन्तर्राष्ट्रीय महत्व कभी प्राप्त नहीं हुआ है। संकेतों और संक्षिप्त रूपों का स्थिरीकरण करने से एक खास फायदा यह होता है कि भिन्न-भिन्न स्थानों से प्रकाशित तत्सम विषयक अनुसंधानों और सूत्रों का आशय सरलता से समझने में बड़ी सहायता मिलती है, और प्रत्येक संकेत का यथार्थ आशय जानने के लिये अनुसंधान कर्त्ता के पैर्वापर्य्य वर्णन से उसे अभिसम्बन्धित करने की जरूरत नहीं पड़ती।

हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य अभी निकलना आरम्भ ही हुआ है, इस लिये पारिभाषिक शब्दों और संकेतों को अभी से अन्तर्प्रान्तीय प्रमाणिक स्वरूप देने का प्रयत्न करना भविष्य के लिये बड़ा सुविधाजनक होगा। मैंने अपने लेखों में गणित-प्रधान विषयों का विवेचन करते समय निम्नलिखित शैली का अनुसरण किया है, संकेतावली साथ में दी जा रही है, यह संकेतावली अवश्य ही सम्पूर्ण नहीं है। कार्य आरम्भ करने के लिये प्रोफेसर लैन-हाम की टेक्सट्बुक आफ मिकेनिकल इंजीनियरिंग की संकेतावली को आधार माना है क्योंकि उन्होंने मिकेनिकल इंजीनियरिंग के सभी प्रमुख विषयों पर अपनी एक ही पुस्तक में प्रकाश डाला है।

१—अंग्रेजी की बीज गणित में a, b, c, d, e, f, g और h इत्यादि अक्षर उन राशियों के स्थान पर काम आते हैं जिनका मान हमें मालूम होता है। हिन्दी में इसी काम के लिये, क, ग, घ, च, छ, ज, झ इत्यादि अक्षर काम में लाये जा सकते हैं।

२—m और n के स्थान पर म और न का उपयोग हो सकता है।

३—p, q और r के स्थान पर प, फ और ब का उपयोग हो सकता है।

४—x, y और z का मान सदैव बदलता रहता है, इनके स्थान पर हिन्दी में य, र और ल का उपयोग हो सकता है।

५—समीकरणों में (or) के स्थान पर "या" का उपयोग करना चाहिये, अथवा इत्यादि शब्द लम्बे पड़ते हैं।

६—यांत्रिक और गणित सम्बन्धी चित्रों में डेश लगा कर एक ही अक्षर का, विशेष कर सूचीकरण में, कई प्रकार से प्रयोग होता है, जैसे A, A,' A,'' A''' इत्यादि लेकिन हिन्दी में ऐसा करने की जरूरत नहीं, हमें मात्राओं का प्रयोग करना चाहिये जैसे क, का, कि, की इत्यादि।

७—यांत्रिक -चित्रों में उ, ख, ङ, ञ, ट, ढ़, ध, भ, और ष का उपयोग सूची करण के लिये नहीं करना चाहिये क्योंकि यह अक्षर भली भांति न लिखे जाने पर क्रमशः ड, र, व, उ, ज, ठ, द, ध, ब, म और व के साथ समानता रखने के कारण गलत पढ़े जा सकते हैं, जिससे कारखानों में बहुत नुकसान की सम्भावना हो सकती है। अंग्रेज़ी में भी इसी कारण से I और O निषिद्ध माने गये हैं।

८— αβ आदि ग्रीक अक्षरों का विशेष परिभाषाओं को व्यक्त करने के लिये उपयोग हुआ करता है। फिलहाल हिन्दी में इनका उपयोग उसी प्रकार से करते रहना चाहिये जब तक, कि किसी अन्तप्रान्ती परिषद् द्वारा उपयुक्त भारतीय चिन्ह नहीं निश्चित कर दिये जावें।

६—समीकरणों में उपयोग होने वाले संकेतों को जहाँ तक हो सका है एक ही अक्षर का बनाने का प्रयत्न किया है और अधिक से अधिक दो अक्षरों का। दो अक्षरों की की सीमा से न बढ़ने देने के लिये मात्रा और सयुक्ताक्षरों का उपयोग किया है।

१०—संकेत बनाते समय जहाँ तक हो सका है, उसके पारिभाषिक शब्द के आदि अक्षर को मात्रा हटाकर काम में लिया है, जैसे चाड़ाई के लिये च और ऊँचाई के लिये ऊ।

जब किसी पारिभाषिक शब्द का आदि अक्षर किसी अन्य काम में आ चुका हो, तब उस शब्द की मुख्य ध्वनि देने वाला कोई दूसरा अक्षर भी ले लिया है, जैसे—"समक्ष स्थिति स्थापक मायांक" के लिये "थि"।

जब यह भी नहीं सम्भव हुआ तब कोई भी खाली अक्षर ले लिया जैसे "शिथिलांक" के लिये "य" और स्थिरांक के लिये "ज्ञ" अक्षर ले लिया है।

११—किसी परिभाषा में जब किसी छोटी चीज़ को अथवा छोटे मापको व्यक्त किया है, तब उसके संकेत में भी अ की मात्रा का उपयोग किया है; और जहाँ कोई परिभाषा उसी चीज़ के बड़े नाम को व्यक्त करती है, वहाँ उसके संकेत को आ की मात्रा लगा कर बनाया है। जैसे—किसी रस्से के कम तनाव को ख संकेत से व्यक्त किया है तो उसी के अधिक तनाव को खा संकेत से व्यक्त किया है। इसी प्रकार पौंडों के दबाव के लिये द संकेत रखा है; तो टनों के दबाव के लिये दा संकेत रखा है।

किसी समग्र राशि (Total quantity) के लिये उसी संकेत को द्वित्त कर दिया है; जैसे (Total pressure) के लिये "द्द" और (Total heat) के लिये "त्त"।

इसी प्रकार (Modulus) अर्थात् मायांक शब्द के लिये इ की मात्रा (Coefficient) अर्थात् गुणक शब्द के लिये ई की मात्रा रखी है। इस नियम के अनुसार (Modulus of rapture in bending) अर्थात् नमन विध्वंसक मायांक का संकेत बनाने के लिये नमन के संकेत म में इ की मात्रा जोड़ कर मि कर दिया और (Coeffici ent of bending stress) अर्थात् नमन चांप गुणक के लिये मी संकेत बना दिया। (Moment) अर्थात् घूर्ण के लिये ऐ की मात्रा का संकेत रखा है, जिसके अनुसार (Bending Moment) अर्थात् नमन घूर्ण के लिये "मैं" संकेत बन गया। (Strees) अर्थात् चांप के लिये रकार का संकेत रखा है जिसके अनुसार त्र, व्र, प्र, स्र और ठ्र संकेत क्रम से वितानिक चांप, विरूपक चांप, पार्श्विक-चाप, सम्पीडन चांप और आधारित चांप के लिये बन गये।

कई विशेष कारणों से बहुत संकेत इन नियमों के अपवाद भी हैं।

कहने का आशय यह है कि वैज्ञानिक साहित्य के लेखन कार्य में हर एक काम किसी नियम से होना चाहिये; विशेष कर शब्द, मुहाविरे और संकेतों के बनाने में, नहीं तो एक ही ग्रन्थ में कई संकेत ऐसे बन जावेंगे कि एक ही संकेत कई पारिभाषिक शब्द को व्यक्त करने लगेगा और ऐसा भी हो सकता है कि एक ही पारिभाषा के कई संकेत बन जावें, और फिर भिन्न भिन्न लेखक भिन्न भिन्न संकेत मनमाने बनावेंगे जिससे इस विषय के पाठकों को बड़ी असुविधा हो जायगी।

आशा है इस विषय पर हिन्दी में साहित्य लिखने वाले सज्जन इधर ध्यान देंगे और अपने अनुभव पूर्ण सुझाव इस पत्र के माध्यम से सबके सामने रखेंगे।

वैज्ञानिक मुहाविरों और यांत्रिक चित्रों में काम में आने वाली नागरी लिपि के संशोधन पर मैं अपने विचार फिर कभी पाठकों के सामने रखूंगा।

Abbreviation & Symbols of Mechanical Engineering terms and their Hindi equivalents.

Hindi	English	Explanations
		POWER & LIGHT
अं	A	Ampere.
अ. ब.	H. P.	Horse power.
आ. ब.	B. H. P.	Brabe horse power.
प. श.	Cp.	Candle power.
प्र. अ. ब.	I. H. P.	Indicated horse power.
व	Y	Volts.
व. अ.	Ya	Volt-ampere.
व. क.	Yc	Volt coloumb.
वाट	Wa	Watt.
वाघ	Wh	Watt hours.
वि. वा. व.	E. M. F.	Electromotive force.
प्रधा.	A. C.	Alternating current.
सधा.	D. C.	Direct current.
अध	Ah	Ampere hour.
प्र	Rt.	Resistance electrical due to temp.
प्रो	Ro	Resistance electrical in ohms,
		HEAT AND STEAM.
कल	Cal.	Calorie.
ग	Lh	Latent heat.
ट	S	Sensible heat.
त	s	Specific heat or heat in general.
ता	To	Final temperature in heat mixture.
त्त	H	Total heat.
क्त	J	Joules' Mechanical equivalent.
तृ	Kp.	Specific heat of gases at const. pressure.
तॄ	Kv	,, ,, ,, ,, Volume.
ऋट	Cp	,, ,, ,, ,, Pressure in H. U.
ऋद	Cv	,, ,, ,, ,, Volume in H. U.

Hindi	English	Explanations
नि	r	Ratio of expansion.
फ.	t'	Initial temperature in degrees F° or temperature.
फा.	F°	Temperature in degrees F in general.
वत	BHU	British thermal units.
श	C'	Temperature in degrees C°.
ज्ञा	C	Cylinder clearance constant.
सी	C	Contraction coefficient per gun coil.
		MECHANICS & HYDRAULICS.
आ	g	Acceleration due to gravity in ft. per sec.
ओ	v	Work put in.
औ	u	Work got out.
अं	f	Acceleration in ft. per second.
ई	$\bar{c}$	Coefficient of velocity.
ग क	CG. or *G*	Centre of gravity.
ङ	Fn	Tractive effert in lbs. to over come Friction.
अ	m	Mass in lbs. $=\frac{w}{g}$
त्र	v	Volocity in ft. per seconds.
त्रा	V	Velocity in ft. per minute.
त्रु	t	Time in seconds.
ठ	Rt.	Reaction at supports.
ड	W	Resistance in lbs,
ढ़	G	Gradient.
द्	p	Pressure in lbs. per sq. inch or pressure in general.
दा	p. tons	Pressure in tons.
ह्	P	Total pressure in lbs. per sq. ft.
हा	P tons.	Total pressure in tons.
ध	H	Head of water in ft.
धा	G	Weight of a cubic ft. of water.
धी	C	Coefficient of discharge.
धि	Q	Water discharge in cu. ft. per sec.
पू	P	Effert or force applied.
फ़. प.	ft. lbs.	Foot lbs.

Hindi	English	Explanations
भ	w	Weight or load in lbs.
भा	W	Weight or load in tons.
		THEORY OF MACHINES
क	T	Number of teeth.
ख	tn	Lesser tension in belt or rope.
खा	Tn	Greater tension in belt or rope.
ल	1	Pitch.
लौ	k	Pitch of bolts in terms of diameter.
व. ल.	D P	Diametral pitch.
वृ. ल.	C P	Circular pitch.
स	n	Number of revolutions per sec.
सा	N	Number of revolution per mt.
		STRENGTH OF MATERIALS
इ	K	Modulus of volumetric elasticity in lbs. per sq. inch.
ही	x	Coefficient of Wohler's formula.
ए	I	Moment of inertia.
ऐ	Tm	Twisting moment.
चा	W	Width of one rivet link.
छ	Q	Concrete of formula for struts.
झ	F	Factor of safety.
मि	fo	Modulus of rapture in bending.
ठ्	fb.	Beading stress in tons per sq. inch.
णि	zb	Bulk modulus.
न्थि	C	Modulas of transverse elasticity.
थि	E	Modulas of direct elasticity.
प	M	Poisson's Ratio.
मा	t	Thickness of plate.
स्री	O	Coefficient of bending stress.
मै	Bm	Bending moment.
य	Y	Distance of the farthest fibre. from neutral axis in bending or twisting.
र	f lbs,	Stress in lbs. per sq. inch,

Hindi	English	Explanation
ता	f	Stress in tons per sq. inch.
तो	F	Total stress in tons.
तॅ	F lbs.	Total stress in lbs.
श्रा	ft.	Stress in tension.
व्रा	fs	Stress in shew.
प्रा	fl	Lateral stress.
ह्वा	fc	Stress in compression.
ल	p"	Pitch of a riveted joint or screw.
क्त	x	Number of bolts in cylinders and flauge couplings.
षि	Z	Modulus of section in bending.
ष्ट	Zt	Modulus of section in twisting.
शि	Y	Concrete of formula for beam deflection.
ह	S	Range of stress variation in Wohler's formula.
हा	fh	Hoop's stress.
मं	B	Bending.
		APPLIED MATHEMATICS.
ज्या	Sin	Sins
को ज्या	Cos	Cosinse.
को छे	Cosec.	Cosecant
को स्पर्श	Cot	Cotangent.
को युज्या	Covers	Coversed sine
है को ज्या	Cosh	Hyperbolic cosine.
छे	sec.	Secant.
घ	v	Vol. in cubic inch or volume in general.
घा	V	Volume in cubic ft.
च	b	Breadth in inches.
चु	S	Larger side or side of a regular polygon.
चृ	s	Side of a square in inches.
ऊ	h	Height in inches.
न	e	Base of naperian dog.
फ	t	Foot or feet.
म	t	Thickness.

Hindi	English	Explanation
मी	m	Metre.
ल	l	Length in inches.
ला	L	Length in ft.
व	d	Small diameter in inches.
वा	D	Larger diameter in inches.
वर्ग	sq.	Square.
वन्	i	Mean diameter or intermediate radius of thick cylinders
क्ष	a	Area in sq. inches.
क्षा	A	Area in sq. ft.
त्र	r	Radius in inches.
त्रा	R	Radius in ft.
त्रे	R″	Larger radius in inches.
ज्ञ	C	Constant.
ई	c	Coefficient.
		GREEK LETTERS & OTHER SYMBOLS.
α	alpha	(1) Coefficient of temperature, and (2) Coefficient of linear expansion according Fahrenheit scale. (3) Various angles.
β	beta	Various angles.
γ	gamma	Ratio of *specific heat at const. pressure*/specific heat at const. volume.
δ	delta	Deflection per inch length
	”	Deflection per foot length.
η	eta	Efficiency.
θ	theta	Angle of torsion.
K	kappa	Coefficient of jet contraction.
μ	mu (1)	(1) Coefficient of friction.
	(2)	(2) Tangent of angle of friction.
π	pi	3·1416 or $\frac{22}{7}$.
ρ	rho	Radius of curvature in bending,
σ	sigma	Various angles'

Hindi	English	Explanation
τ	tau	Absolute temperature in F°.
ϕ	phi	Angle of friction or entropy.
ω	omega	Angular velocity.
$\triangle$	delta	Total deflection in inches.
$\triangle$ft	,,	Total deflection in ft.
Σ		Sum of
$\propto$		Varies as.
$>$		Greater than.
$<$		Less than.
$\parallel$		Parallel to or with fiher
$+$		Across fiher.

नागरी अक्षरों से नवीन संकेत निर्माण करते समय मात्राओं का उपयोग।

अ		छोटा कम, पौंडों में. इंचों में
आ		बड़ा, अधिक, टनों में, फुटों में
इ		Modulus.
ई		Coefficient.
उ		Per second.
ऊ		Per minute.
ए		Miles per hour.
ऐ		Moment.
ओ		In, put in, application.
औ		Out, got out, out turn,
अं		
द्वित्त		Total, final.
र-कार		Stresses.
म-कार		
न-कार		
ऋ		
ॠ		

भौतिक विज्ञान को हमारी देन

[लेखक—डाक्टर एस० पी० मुश्रान तथा श्री श्रीप्रकाश]

कोई माने या न माने—हम मनाने की आवश्यकता भी नहीं समझते। इतिहास साक्षी है कि भारत एक समय संसार का गुरु था—उसने अन्य देशों को तथा पृथ्वी के शेष स्थल को कला सिखाई थी, विज्ञान का पाठ पढ़ाया था। आधुनिक युग इस बात की पुष्टि करता ही है। जिस भूमि पर, इस कलिकाल में भी रामानुजन जैसा गणितज्ञ, रमन् जैसा भौतिक शास्त्र का महान पंडित, प्रफुल्ल चन्द्रराय, बोस, साहा, कृष्णन, साहनी, भाभा और भटनागर जैसे वैज्ञानिक जन्म लेते हैं—और ऊपर से उसे असंस्कृत लोगों की भूमि ही संसार क्यों न कहे, अन्तस्तल से उस भूमि का वह भी अभिवादन करता है। गत २५, ५० वर्षों में भारत ने विज्ञान साहित्य को जो देन दी—वह किसी भी राष्ट्रसे—जो गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हुआ है, जहाँ एक राष्ट्र शासन नहीं है जहाँ विज्ञान की उन्नति में साधनों का सुलभ होना दूररहा—बाधायें, रुकावटें अनन्त हैं—कम नहीं है। विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में भारतीयों ने जो कार्य्य किया है, उनका संक्षिप्त वर्णन देने का हम यहाँ प्रयास कर रहे हैं। वर्णन संक्षिप्त ही हो सकता है। हमारा ध्येय केवल इतना है—हम अपने वैज्ञानिकों को न भूलें तथा उनके कार्य्य से अनभिज्ञ न हों। इस समय भी हममें से अनेक हैं जो कि हमारे वैज्ञानिकों से परिचित नहीं—यदि उनसे हम इनका परिचय करा सकें—तो हमारा प्रयास सफल होगा—यह हमारी भावना है।

सर जगदीश चन्द्र बोस—

सम्भवतः भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में बनस्पतियों में जीवन सिद्ध करने वाले बोस को पाकर कुछ लोग आश्चर्य्य चकित हो उठेंगे। पर यदि हम यह कहें कि बोस ही प्रथम भारतीय वैज्ञानिक हैं जिन्होंने कि भारत की इस क्षेत्र की प्रतिभा का योरप को प्रथम बार दिग्दर्शन कराया था, अनुचित न होगा। बेतार के तार का आविष्कारक मारकोनी कहा जाता है—पर मारकोनी के बहुत पूर्व बोस ने बिना तार के, केवल तरंगों की सहायता से सन्देश ७५ फीट तक भेजा था। आपने १८९५ ई० में लन्दन में जिस समय यह प्रयोग प्रदर्शित किया था—संसार चकित हो उठा। पर भारत का अभाग्य—बोस इस कार्य्य को यहीं छोड़ विज्ञान के अन्य क्षेत्रों में जा घुसे।

अन्य व्यक्तियों ने इस कार्य्य को हाथ में लिया और मारकोनी एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप तक सन्देश भेजने में सफल हो सका।

बोस का हर्ज द्वारा बताई हुई विद्युत-चुम्बकीय तरंगों (electromagnetic waves) का ओर सन् १८९३ ई० में ध्यान गया। आपने इन पर अनुसन्धान किया और उन्होंने 'विद्युत तरंगों के गुण' (roperties of Electric waves) शीर्षक एक लेख माला प्रकाशित की। सन् १८९५ में विद्युत चुम्बकीय तरंगों को उत्पन्न करने वाला एक सर्वथा नवीन प्रकार का उत्पादक यंत्र तैयार कर आपने उसका प्रदर्शन लिवरपूल के ब्रिटिश असोसियेशन में किया। इस उत्पादक यन्त्र से वह ५ मिलीमीटर की लहर लम्बाई की अत्यन्त सूक्ष्म तरंगें उत्पन्न करने में सफल हुये। अपने इस नवनिर्मित उपकरण द्वारा आप विद्युत तरंगों में प्रकाश की किरणों सरीखे प्रायः सभी गुणों की उपस्थिति को प्रत्यक्ष सिद्ध कर दिखाने में भी सफल हुये।

सर चन्द्र शेखर वेंकट रामन्—

नोबुल-प्राइज विजेता सर चन्द्र शेखर वेंकट रामन् को कौन नहीं जानता। यदि हम उन्हें भारत का सबसे बड़ा वैज्ञानिक कहें—तो यह कह कर अन्य वैज्ञानिकों के साथ अन्याय न करेंगे। आपको नोबुल-पुरस्कार आप द्वारा अविष्कृत 'रामन्-प्रभाव" (Roman effect) पर मिला था। रामन् प्रभाव को

हम एक वाक्य में इस तरह कह सकते हैं—प्रकाश का रंग परिक्षेपण द्वारा बदल जाता है, इस प्रभाव पर १७०० से भी अधिक निबन्ध प्रकाशित हो चुके हैं।

रामन् का प्रथम कार्य्य शब्द-विज्ञान पर [Sound] था। १९०७-१७ ई० तक, जब कि आप भारतीय अर्थ विभाग के अफसर थे, आपका अधिकांश कार्य्य कम्पन और शब्द विज्ञान ही तक सीमित रहा। इस काल की सबसे महत्वपूर्ण खोज वाद्य-यंत्रों के सिद्धान्त हैं। आपने वीणा, तानपूरा, मृदंग आदि भारतीय वाद्य-यंत्रों तथा वायोलिन, (Cello) और पियानों और विदेशीय यंत्रों के शाब्दिक गुणों (Accoustical Properties) का विशेषरूप से अध्ययन किया।

सन् १९१७ ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालय में विज्ञानाचार्य का पद ग्रहण करने के बाद लगातार चार वर्षों तक आप प्रकृति के रंगों के अध्ययन और विश्लेषण में लगे रहें। आकाश में कुहासा और हलके बादलों द्वारा बने हुये रंगीन किरीट (Coloureed coronas) और इन्द्र धनुष की व्याख्या इस काल के विशेष उल्लेखनीय कार्य्य है।

सन् १९२१ ई० में आपने समुद्र जल के विषय में अध्ययन किया और आपने इसका नीला होने का कारण परिक्षेपण (Seattering) ही सिद्ध किया। आपके अनुसार न केवल पारदर्शक द्रव्यों में वरन बरफ और स्फटिक सरीखे ठोस पारदर्शक पदार्थों में भी अणुओं की गति के कारण प्रकाश का परिक्षेपण होता है।

आपने अपने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया कि द्रव पदार्थों का संगठन ठोस पदार्थों के अधिक अनुरूप है—वाष्प पदार्थों के कम। आपने अपने सिद्धान्त की पुष्टि एक्स किरण की सहायता से की। आपने अणुओं के चुम्बकीय गुणों का भी विशेष रूप से अध्ययन किया है। आपने विभिन्न पदार्थों के अणुओं के बारे में बहुत सी नई बातें मालूम कीं।

यह कहना कठिन है भौतिक विज्ञान की किस शाखा के आप विशेषज्ञ हैं। आपने अनेक शाखाओं में कार्य्य किया और प्रत्येक में आपका कार्य्य श्रेष्ठ है। आज कल आप हीरे द्वारा प्रकाश के परिक्षेपण पर अनुसन्धान कर रहे हैं। यह कार्य्य भी उच्चकोटि का है।

डा० मेघनाथ साहा

प्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० मेघनाथ साहा ने एक साधारण कुल में ही जन्म लिया था—पर आपकी प्रतिभा ने भारत के इने गिने वैज्ञानिकों में आपकी गणना करा दी। आप का विशेष कार्य्य ज्योति भौतिक विज्ञान में है। सूर्य्य रश्मि चित्र सम्बन्धी कुछ अत्यन्त जटिल और महत्वपूर्ण [Astro physics] समस्याओं को अपने नवीन सिद्धान्त द्वारा आपने खूबी से हल कर दिया है। आपने यह सिद्ध किया कि अधिक ऊँचे तापक्रमों पर तथा अल्प दबाव पर सूर्य्य के वर्ण मण्डल के परमाणु आयानाइज्ड होते हैं और इसी कारण सूर्य्य के [Chromosphere] वर्ण मण्डल के रश्मि चित्रों में कुछ रेखायें मोटी देख पड़ती हैं। इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिया में सर आर्थर इंडिंग्टन ने डा० साहा के इस सिद्धान्त की गणना टेलास्कोप के अविष्कार (१६०८ ई०) से ले कर अब तक के ज्योतिषिक ज्योति भौतिक विज्ञान के १० बहुमूल्य सिद्धान्तों में की है।

परमाणु केन्द्र सम्बन्धी भौतिक विज्ञान आपने रश्मि विश्लेषण [Spectroscopy] और और परमाणु विज्ञान [nuelear physics] पर भी काफी कार्य्य किया है।

डा० कार्य्यमणिक्कम श्री निवास कृष्णन

रामन् के श्रेष्ठतम् शिष्य, श्री कार्य्य माणिक्कम श्री निवासकृष्णन प्रयाग विश्वविद्यालय में भौतिक शास्त्र के आचार्य्य हैं। रामन् ने जो महत्वपूर्ण अनुसन्धान कलकत्ते में किये उस में कृष्णन ने पूर्ण सहायता पहुँचाई और उनकी सफलता का बहुत कुछ श्रेय कृष्णन को भी है। आपने भौतिक

कार्य्य भी किया है। आपका विशेष कार्य्य रसायन और भौतिक विज्ञान की स्फटिक एवं चुम्बक शाखाओं पर [magnetic and crystal physics and chemistry] पर है। आपने अत्यन्त न्यून तापक्रमों पर तापगति सिद्धान्त [Thermodynamics of very low temperature] के बारे में भी उल्लेखनीय कार्य्य किया है।

डा० होमी जहाँगीर भाभा एफ० आर० एस०

एकत्तीस वर्ष की आयु में ही रायल सोसायटी के फेलो बन जाने वाले डा० होमी जहाँगीर भाभा की ओर समस्त वैज्ञानिक संसार की दृष्टि है। आपके विशेष विषय कास्मिक किरण [Cosmic Rays] प्रसरण, परमाणु-विज्ञान [nuclear Physics व सापेक्षवाद [Theory of Relativity] हैं। आपने प्रसिद्ध वैज्ञानिक हाइटलर (Heitler) के साथ भी कार्य्य किया हैं।

श्री एस० एन० बोस

कलकत्ता विश्वविद्यालय के श्री एस० एन० बोस ने भी भौतिक विज्ञान में कुछ कम कार्य्य नहीं किया। आप भारत के इने गिने अनुभवात्मक भौतिक विज्ञान-वेत्ताओं (Theoretical Physicists) में है। आपने आइन्सटाइन के साथ क्वान्टम स्टेटिटिक्स पर कार्य्य किया है और तभी उस सिद्धान्त का नाम बोस-आइन्सटाइन स्टेटिस्टिक्स पड़ा है।

श्री चन्द्र शेखरन्—

रामन् यदि प्रयोगात्मक भौतिक विज्ञान में भारत के अग्रगण्य नेता हैं तो अनुभवात्मक भौतिक विज्ञान (theoretical physics) में उनके भानजे श्री चन्द्रशेखर राव हैं। भारत का यह वैज्ञानिक आजकल अमेरिका की येल यूनिवर्सिटी में भौतिक-विज्ञान का आचार्य है। इनका अधिक कार्य्य ज्योति भौतिक विज्ञान (astrophysics) पर है। आपने नाक्षत्रिक वायु मण्डल (stellar atmospheres) का अध्ययन किया और उस पर एक निबन्ध माला भी प्रकाशित की है। आपने वर्ण मण्डल (chromosphere) के निर्माण का एक नया सिद्धान्त उपस्थित किया है।

डा० डी० एस० कोठरी—

देहली विश्वविद्यालय के भौतिक विभाग के अध्यक्ष डा० डी० एस० कोठरी के लिये कुछ लोगों की भविष्यवाणी है कि वे ५ वर्षों के अन्दर ही रायल सोसायटी के फेलो बना दिये जायेंगे। आपने तारिकाओं के संगठन (constitution of stars) पर विशेष कार्य्य किया है। आपने अपने अनुसन्धान द्वारा यह पता लगाया है कि मृत्यु प्राप्त तारिकाओं में पदार्थ किस अवस्था में रहता है। आपने यह भी सिद्ध कर दिया है कि जूपिटर से बड़ा कोई नक्षत्र नहीं मिल सकता। आपने प्लान्क स्थिराङ्क (planck's constant) के निकट मूल्य को भी मालूम करने का भी प्रयास किया है।

इन ८ उच्चकोटि के भौतिक विज्ञान-वेत्ताओं के अतिरिक्त अनेक हैं जिन्होंने कि अपना जीवन इस विज्ञान के लिये उत्सर्ग कर दिया है। प्रत्येक प्रयोगशाला में हम विद्यार्थियों की एक कतार है जो नवीन अनुसन्धान—नवीन अन्वेषणों के पीछे हाथ धोकर पड़े हैं। कौन जानता है इनमें से कोई रामन् के समान फिर न चमक उठे; कम से कम हमें आशा तो ऐसी ही करनी चाहिये।

क्षय रोग की चिकित्सा

हाल ही में कानपुर के रोटरी क्लब में भारत सरकार के स्वास्थ्य विभाग के क्षय रोग सम्बन्धी सलाहकार कर्नल आर० विश्वनाथन का क्षय रोग विषय पर भाषण हुआ था जिसमें उन्होंने बताया कि भारत में क्षय रोग के सम्बन्ध में चार प्रकार की भ्रान्त धारणाएं फैली हुई है।

पहली गलतफहमी उन्होंने यह बतलायी कि लोग क्षय या तपेदिक को पैतृक रोग समझते हैं। उन्होंने कहा कि यह भ्रममूलक धारणा केवल इसी देश के लोगों तक सीमित नहीं है बल्कि बहुत से पाश्चात्य देशों में भी फैली हुई है।

कर्नल विश्वनाथन ने बताया कि क्षय पैतृक रोग कदापि नहीं है। क्षय रोग से ग्रसित माता-पिता की सन्तान बचपन से ही इस रोग के सम्पर्क में रहने के कारण शीघ्र क्षयग्रस्त हो जाती है। यदि बच्चों को उनके माँ बाप से अलग कर के पालक माता-पिता को सौंप दिया जाय तो उन्हें क्षय रोग नहीं हो सकता।

क्षय रोग असाध्य नहीं है

दूसरी गलतफहमी यह है कि क्षय रोग असाध्य है। इसमें सन्देह नहीं कि प्रति वर्ष पांच लाख आदमी इस रोग से मरते हैं किन्तु इसका कारण यही है कि बहुतों को रोग के प्रारम्भ में ही निदान और चिकित्सा की सुविधा नहीं मिल पाती। क्षय चिकित्सालयों के रेकार्ड देखने से पता चलता है कि जिन रोगियों की चिकित्सा प्रारम्भिक आक्रमण के समय से ही आरम्भ हो जाती है उन में से ८० से ९० फी सदी आदमी अच्छे हो जाते हैं। कहा तो यहां तक जाता है कि क्षय रोग ही सब से अधिक चिकित्सा-साध्य रोग है।

तीसरी भ्रान्ति जल-वायु के सम्बन्ध में है। लोगों का अब भी यही खयाल है कि और यह खयाल औसत आदमी का ही नहीं बल्कि डाक्टरों तक का है कि क्षय-चिकित्सा के लिए पहाड़ों की हवा और चीड़ के जंगल बहुत जरूरी है। किन्तु कर्नल विश्वनाथन् की धारणा यह है कि जो रोगी उसी जल-वायु में आरोग्य लाभ करता है जिसमें वह रहता आ रहा है और बाद में भी रहता है उसमें उसे आरोग्यलाभ करने के लिये विशेष रूप से अनुकूल वातावरण मिलता है और पहाड़ों से स्वस्थ होकर मैदानों में आने वाले की अपेक्षा वह मजे में रहता है।

चौथी भ्रान्ति इस रोग की संक्रमणता के सम्बन्ध में है उनका कहना है कि संक्रमण कफ और थूक से अधिक फैलता है। जब तक रोगी आप के मुंह पर ही न खांस दे और जब तक वह इधर उधर थूका-थाकी न कर के उगालदान में ही थूका करे तब तक वह पास रह कर भी किसी को क्षय की छूत नहीं लगा सकता।

इसके बाद कर्नल विश्वनाथन् ने एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात कही। उन्होंने कहा कि प्रायः सभी जगह लोग क्षयचिकित्सा के अस्पताल या किलनिक को बस्ती के समीप बनाने का विरोध करते हैं। किन्तु यदि क्षय अस्पताल घनी बस्तियों के बीचों बीच में हो तो इस से कोई हानि नहीं क्योंकि यदि रोगी अस्पताल के अन्दर रहेंगे तो वे बाहर न थूक सकेंगे और अस्पताल में उनके थूक को वैज्ञानिक विधि से नष्ट किया जायगा। क्षय रोग तो उन्हीं रोगियों से फैलता है जो अस्पताल से बाहर रह कर जहां तहां थूका करते हैं। मद्रास शहर में एक बहुत बड़ा क्षय लस्पताल शहर के बिलकुल बीचों बीच में है और यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इस अस्पताल के बस्ती के अन्दर होने से क्षय क्षय के प्रकोप को काफी कम कर दिया जा सका है।

कानपुर का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि कानपुर के हेल्थ अफसर के मतानुसार वहां १० लाख की आबादी में से ५,००० व्यक्ति प्रति वर्ष

क्षय रोग से मरते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि प्रतिदिन लगभग १२ आदमी क्षय रोग से मरते हैं। स्वीकृत मानदंड के अनुसार एक आदमी के मरने का अर्थ यह हुआ कि और पांच आदमी बीमार हैं। इस प्रकार अकेले कानपुर में किसी भी एक दिन क्षय रोग के २५,००० रोगी मिल जायंगे।

अपने भाषण के अन्त में कर्नल विश्वनाथन ने कहा कि क्षय रोग के निवारण के लिये सब से बड़ी आवश्यकता क्लिनिक की है। इसका काम निदान और रोग-निवारण होना चाहिये। रोग-चिकित्सा तो इसका सहायक कार्य होना चाहिये। पाश्चात्य देशों के मानदंड के अनुसार प्रति ५०,००० आदमियों पीछे एक क्लिनिक होना चाहिये। इस प्रकार कानपुर को २० क्लिनिक की आवश्यकता होगी। चूँकि एक साथ २० क्लिनिक स्थापित नहीं किये जा सकते इसलिये उन्होंने बताया कि प्रारम्भ में एक मुख्य क्लिनिक और दो सहायक क्लिनिकों से काम चलाना चाहिये।

वैज्ञानिक समाचार

१—वैज्ञानिक अनुसन्धान सलाहकार समिति

देश में वैज्ञानिक अनुसन्धान के एकीकरण तथा अनुसन्धान नीति के सम्बन्ध में भारत सरकार को परामर्श देने के उद्देश्य से सरकार ने वैज्ञानिक सलाहकार समिति का विस्तार कर दिया है।

अब समिति में निम्न सदस्य रहेंगे :—

उद्योग तथा रसद विभाग के माननीय सदस्य—अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसन्धान के डाइरेक्टर—उपाध्यक्ष, सर सी० वी० रमन एफ० आर० एस०, सर ज्ञान घोष, प्रोफेसर मेघनाद साहा एफ० आर० एस०, डा० नजीर अहमद, कर्नल सर रामनाथ चोपरा, नेशनल इन्सटीट्यूट आफ साइंसेज आफ इंडिया के अध्यक्ष, प्रोफेसर के० एस० कृष्णन एफ० आर० एस०, प्रोफेसर बीरबल साहनी एफ० आर० एस०, प्रो० एच० जे० भाभा एफ-सी आर० एस०, इंस्टीट्यूशन आफ इंजीनियर्स (भारत) द्वारा निर्वाचित एक प्रसिद्ध इंजीनियर, जिऑलाजिकल सर्वे आफ इंडिया के डाइरेक्टर, भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद के उपाध्यक्ष अथवा भारत सरकार के कृषि कमिश्नर, भारतीय मेडिकल सर्विस के डाइरेक्टर-जनरल, वेधशालाओं के डाइरेक्टर जनरल, वन्य अनुसन्धानशाला के अध्यक्ष, केन्द्रीय सिंचायी बोर्ड के अध्यक्ष, और भारत सरकार के पशुपालन कमिश्नर—सदस्य गण।

समिति और उसके कार्य

भारत सरकार के गजट के १४ दिसम्बर १६४६ के अंक में प्रकाशित एक प्रस्ताव में बताया गया है कि अब तक जो वैज्ञानिक अनुसन्धान समिति काम करती रही है उसकी स्थापना दिसम्बर १६४४ में हुई थी। इधर कुछ समय से सरकार विभिन्न सरकारी विभागों तथा वैज्ञानिक संस्थाओं के अनुसन्धान कार्यों में अधिक एकीकरण की आवश्यकता पर विचार कर रही थी। अब सरकार प्रोफेसर ए० वी० हिल एफ० आर० एस० की रिपोर्ट पर विचार करने के उपरान्त इस निर्णय पर पहुँची है कि वैज्ञानिक सलाहकार समिति की सदस्यता का विस्तार होना चाहिये और उसमें वैज्ञानिक अनुसन्धान की सभी शाखाओं का प्रतिनिधित्व होना चाहिए। इसीलिये समिति का पुनर्निर्माण किया गया है।

समिति के कार्य निम्नलिखित होंगे :

१—भारत सरकार को देश भर में अनुसन्धान सम्बन्धी साधारण नीति के सम्बन्ध में तथा अन्य किसी ऐसे विषय में परामर्श देना, जिस पर उसकी सलाह मांगी गयी हो।

२—वैज्ञानिक अनुसन्धान का एकीकरण करना, जिसके अंतर्गत भारत में सरकारी तथा गैर-सरकारी तत्वावधान में होने वाले कार्य के

सम्बन्ध में जानकारी का संकलन और प्रकाशन, विभिन्न संस्थाओं के मध्य अनुसन्धान के एकीकरण के सम्बन्ध में सुझाव उपस्थित करना तथा विभिन्न विभागों द्वारा मिलकर किये गये अनुसन्धान की प्रगति की समीक्षा करना भी सम्मिलित रहेंगे।

३—यदि अन्य देशों से किसी वैज्ञानिक विषय के सम्बन्ध में लिखा पढ़ी करने की आवश्यकता हुई तो वह वैज्ञानिक सलाहकार समिति की ही मध्यस्थता से की जायगी। समिति का सम्बन्ध उद्योग तथा रथा रसद विभाग से रहेगा। विभाग का एक डिप्टी सेक्रटरी समिति के सेक्रटरी का काम करेगा।

२. भारत के लिए केन्द्रीय वैज्ञानिक प्रतिष्ठान

अन्तःकालीन सरकार के उद्योग तथा रसद सदस्य माननीय श्री सी० राजगोपालाचारी की अध्यक्षता में गत ६ फरवरी को नयी दिल्ली में हुई नवीन "वैज्ञानिक परामर्शदात्री समिति" की बैठक में सर्व-सम्मति से स्वीकार किया गया है कि दिल्ली के "नैशनल इंस्टिट्यूट आव साइंसेज", इलाहाबाद की नेशनल एकेडेमी आफ़ सांइसेज़ तथा बङ्गलौर की 'इंडियन एकेडेमी आव साइंसेज" को एक की में मिला कर भारत के लिये एक सर्वोच्च वैज्ञानिक संस्था की स्थापना की जानी चाहिए।

समिति ने निश्चय किया है कि इस प्रकार जिस नयी "केन्द्रीय एकेडेमी" की स्थापना की जायगी, वर्तमान तीनों वैज्ञानिक संस्थाओं के सदस्य (फेलो) स्वतः उसके सदस्य हो जायंगे। यह भी सिफारिश की गयी है कि वर्तमान एकेडेडियों को अपने को नयी केन्द्रीय एकेडेमी की शाखाओं या भागों के रूप में फिर से निर्मित करना चाहिये। इलाहाबाद और बंगलोर की एकेडेमियां अपना कार्य यथापूर्व जारी रख सकती हैं, किन्तु दिल्ली के "नैशनल इंस्टिट्यूट आव साइंसेज" को निर्णय करना होगा कि क्या उसे अपने कार्य में परिवर्तन करना होगा और यदि करना होगा तो किस रूप में। वर्तमान एकेडेमियों द्वारा प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं के सम्बन्ध में निश्चय किया गया है कि उनके नामों में कोई परिवर्तन न किया जाय।

समिति के सदस्य

"वैज्ञानिक परामर्शदात्री समिति" की उपर्युक्त बैठक में, अनेक सरकारी अफसरों के अतिरिक्त सर सी० वी० रमन, सर ज्ञान घोष सर के० एस० कृष्णन्, कर्नल सर रामनाथ चोपड़ा, प्रोफेसर बीरबल साहनी, प्रो० एम० एन० साहा तथा प्रो० एच० जे० भाभा ने भी भाग लिया था।

यहां इसका भी उल्लेख कर देना अनुचित न होगा कि देश के वैज्ञानिक अनुसन्धान कार्य में तारतम्य रखने तथा अनुसन्धान सम्बन्धी नीति के विषय में भारत सरकार को परामर्श प्रदान करने के लिए, दिसम्बर १९४६ में उक्त समिति का विस्तार करके, उसे पुनर्निर्मित किया गया था। केन्द्रीय सरकार के उद्योग तथा रसद विभाग के सदस्य, इस वैज्ञानिक परामर्शदात्री समिति के अध्यक्ष और ज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसन्धान के संचालक (डाइरेक्टर) उसके उपाध्यक्ष हैं। उसके १७ सदस्यों में भारत के ७ ख्यातिनामा वैज्ञानिक और भूगर्भ पर्यवेक्षण, वन-अनुसन्धान, वेधशालाएँ, भारतीय चिकित्सा-व्यवस्था जैसे केन्द्रीय सरकार के विभागों के प्रधान सम्मिलित हैं।

३. भारत का प्रथम औषध निर्माण शास्त्र

सबसे पहली बार भारतीय औषध निर्माण सम्बन्धी तालिका प्रकाशित हुई है। इसे भारत सरकार द्वारा नियुक्त एक समिति ने तैयार किया है। इसमें देशी औषधियों के मान निर्धारित कियेगये हैं।

१९४४ में केन्द्रीय सरकार ने ड्रग्स टेक्निकल एडवाइजरी बोर्ड से कहा था कि वह उन औषधियों की एक तालिका तयार करने के लिये सामग्री इकट्ठी करे जिनका भारत में उपयोग होता है। फलतः इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये सर आर० एन० चोपड़ा की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की गयी थी।

इस समिति ने जो सिफारिशें कीं और जिन्हें

भारत सरकार ने स्वीकार कर लिया था उन्हें १९४६ की भारतीय औषध निर्माण सम्बन्धी तालिका में सम्मिलित कर लिया गया है। यह तालिका अपने ढङ्ग की पहली है और आशा है कि भविष्य में इसके आधार पर एक सम्पूर्ण भारतीय औषध निर्माण शास्त्र की रचना की जा सकेगी।

भारत में जड़ी-बूटियों का प्रयोग बहुत दिनों से चला आ रहा है। किन्तु शक्ति और गुण का कोई प्रामाणिक ज्ञान न होने से इनका व्यापक उपयोग न हो पाता था। किन्तु प्रस्तुत तालिका के प्रकाशन से यह कमी दूर हो गयी है।

यद्यपि ये औषधियों बृटिश औषध निर्माण शास्त्र में सम्मिलित नहीं हैं फिर भी इनमें औषधीय गुण बहुत हैं और इसीलिए इन्हें सरकारी औषध निर्माण शास्त्र में सम्मिलित किया जा सकता है और विदेशों से आने वाली मंहगी दवाओं के स्थान पर इनका उपयोग किया जा सकता है। यह तालिका उन विदेशी औषध निर्माण शास्त्रों की पूरिका है जो आजकल उपयोग में लाये जा रहे हैं।

३. भारतीय चिकित्सा प्रणालियों की उन्नति के लिये समिति

भारतीय चिकित्सा प्रणालियों की उपयोगिता बढ़ाने के लिये किये जाने वाले उपायों पर विचार करने के लिये जो समिति नियुक्त की गयी है उसमें भारत सरकार ने निम्न व्यक्तियों को नियुक्त किया है :

सर आर० एन० चोपड़ा, आई० एम० एस० (रिटायर्ड) अध्यक्ष—

वैद्य सदस्य

भिषग्-रत्न डा० ए० लक्ष्मीपति, बी० ए०, एम० बी०, और सी० एस० प्रिंसिपल, मद्रास आयुर्वेदिक कालेज (१९२१-४८) मद्रास के भारतीय चिकित्सा प्रणालियों के सलाहकार बोर्ड के सदस्य।

डाक्टर बालकृष्ण चिन्तामणि लागू, आयुर्वेद विशारद, एम० एल० ए०, बम्बई के भारतीय चिकित्सा प्रणाली बोर्ड के अध्यक्ष।

डा० बी०ए०पाठक, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के आयुर्वेदिक कालेज के प्रिंसिपल, संयुक्त प्रान्त के भारतीय चिकित्सा बोर्ड के सदस्य।

हकीम सदस्य

शिफाउल्मुल्क हकीम हबीबुर्रहमान, तिब्बिया कालेज के प्रिंसिपल।

शिफाउल्मुल्क हकीम मुहम्मद हसन कर्शी, तिब्बिया कालेज, लाहौर के प्रिंसिपल।

हकीम नासिरुद्दीन अहमद खा, दिल्ली प्रान्त के आयुर्वेदिक और तिब्बी बोर्ड के जनरल सेक्रेटरी।

इर्विन अस्पताल दिल्ली के सुपरिंटेंडेंट मेजर एम० एच० शाह और कर्माइकेल मेडिकल कालेज कलकत्ता के औषध निर्माण शास्त्र के प्रोफेसर डा० बी० एन० घोष।

४. नृवंश-विज्ञान सम्बन्धी पर्यालोचन

केन्द्रीय सरकार की स्थायी अर्थ समिति ने हाल ही में भारत के नृवंश-विज्ञान सम्बन्धी (एंथ्रेपोलोजिकल सर्वे) की है, जिसके अन्तर्गत एक "नृवंश विज्ञान कार्यालय" खोलने की व्यवस्था भी सम्मिलित है। आशा की जाती है कि इस कार्यालय के द्वारा नृवंश-विज्ञान सम्बन्धी अध्ययन और भारत की विभिन्न जातियों तथा कबीलों के सम्बन्ध में जो जानकारी बढ़ेगी उसका प्रभाव, भारतीय जनों के विभिन्न जातीय विभागों के संयुक्तीकरण की दिशा में काफी पड़ सकता है। रूस इस बात का प्रत्यक्ष उदाहरण है, जहां विभिन्न भाषाओं रीति-रिवाजों तथा उत्पत्ति वाली अनेक जातियों तथा कबीले, सफलता-पूर्वक एवं संयुक्त राष्ट्र के रूप में सम्बद्ध किये जा चुके हैं।

यदि भारत को भी अपने यहां के लगभग २३ करोड़ आदि वासियों तथा कबीले वालों को स्वस्थ ढंग से, अन्य प्रजा-जनों में सम्मिलित कर लेना है, तो नृवंश विज्ञान सम्बन्धी उक्त पर्यालोचन कार्य की व्यवस्था आवश्यक है। भारत सरकार आरम्भिक रूप में इस कार्य की व्यवस्था भी कर चुकी है और १९४६-४७ के खर्च के लिये १३७,५३० रु० का खर्च पहले ही स्वीकार किया जा चुका था। योजना के द्वितीय वर्ष १९४७-४८ के लिये ३,६२,००० तथा बाद के तीन वर्षों के लिये १० लाख रुपया और स्वीकार किया गया है। विभाग को बनारस से हटा

कर, कलकत्ते के भारतीय संग्रहालय में ले जाने का भी विचार किया जा रहा है।

५—भारत में थोरियम और यूरेनियम की खानें

केन्द्रीय असेम्बली में एक प्रश्न का उत्तर देते हुए भारत सरकार के निर्माण, खान और बिजली विभाग के सेक्रेटरी, श्री वी० के० गोखले ने बताया कि भारत में पाये गये थोरियम के भंडारों के सम्बन्ध में परमाणु अनुसन्धान समिति तथा भारत के भूगर्भ अनुसन्धान के अन्तर्गत यूरेनियम शाखा द्वारा एक योजना तैयार की जायगी। परमाणु अनुसन्धान समिति की स्थापना प्रोफेसर एच० जे० भाभा की अध्यक्षता में भी जा चुकी है और दूसरी संस्था की स्थापना डा० एम० एस० कृष्णन् की अध्यक्षता में होगी।

जहां तक ब्रिटिश भारत का प्रश्न है, यूरेनियम, मोनाजाइट और थोरियम के निर्यात पर इस समय भारत सरकार का नियंत्रण है।

गया जिले के अबरकी पहाड़ माइका खानों और पिछली में सिंघभूम जिले के सुंग्री में बिल्लोर जिले के संकरा ओर कोदन्डरामा तथा तुम्मलातालुपर में, त्रिचनापली जिले के वैयमपट्टी में, ट्रावनकोर के थडागे पहाड़ी में तथा अजमेर-मेवाड़ के विसुन्दनी में कभी-कभी यूरेनियम पाया जाता है।

ट्रावनकोर रियासत, मद्रास, प्रान्त तथा उड़ीसा के कुछ स्थानों में मोनाजाइट कहीं-कहीं मिलता है।

६—भारतीय इमारती लकड़ी की उपयोगिता

पिछले बीस वर्षों में देहरादून की वन्य अनुसन्धान शाला में बहुत-सी किस्म की भारतीय इमारती लकड़ी की दृढ़ता और तनाव इत्यादि के बारे में विशेष रूप से अध्ययन किया गया है। इस सम्बन्ध में २½ लाख से भी अधिक परीक्षण किये गए हैं और अब सारी आवश्यक सूचना और आंकड़ों के आधार पर की गई गहरी छानबीन के बाद इमारती लकड़ी की वितान-क्षमता और स्थिति स्थापकता के सम्बन्ध में ठोस परिणाम निकाले गए हैं। इसी सम्बन्ध में उक्त संस्था की ओर से एक पुस्तिका भी प्रकाशित हुई है जिसमें बताया गया है कि विभिन्न किस्म की भारतीय इमारती लकड़ी का दबाव, उसका तनाव इत्यादि कितना-कितना होता है। इमारती लकड़ी की किस्में निर्धारित करने का भी प्रयत्न किया गया है। इसके लिये १४० से भी अधिक प्रकार की इमारती लकड़ी के लिये अलग-अलग स्थिति स्थापकता सम्बन्धी मान भी निर्धारित किये गये हैं।

उक्त पुस्तिका में बताया गया है कि इस अनुसन्धान के परिणामस्वरूप इंजीनियरों को किसी किस्म का भी ऐसा निर्माण सम्बन्धी काम करने में बड़ी मदद मिल ककेगी जिसमें भारतीय इमारती लकड़ी का प्रयोग किया जाता हो।

७—भारत में वैज्ञानिक अनुसन्धान

वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान पत्रिका (जर्नल आव साइंटिफिक एण्ड इंडस्ट्रियल रिसर्च) के सितम्बर १९४६ के अंक में अनेक विषयों पर कई लेख छपे हैं, जिनमें से कुछ का संक्षिप्त उल्लेख नीचे किया जा रहा है:

एक लेख कास्टिक सोडा के उत्पादन से सम्बन्ध रखने वाली समस्याओं के विषय में है। कास्टिक सोडा का उपयोग अनेक उद्योग-धंधों में होता है। साबुन और कागज बनाने तथा तेल आदि साफ करने के लिए वह बहुत जरूरी है। इस लेख में बताया गया है कि भारत की स्थितियों का खयाल रखते हुए यहाँ के लिए कास्टिक सोडा तैयार करने की कौनसी प्रणालियों अधिक उपयुक्त होंगी।

दुर्गलनीय वस्तुओं की तैयारी

अनेक बातों का ख्याल रखते हुए, लेख में यह भी तजबीज की गयी है कास्टिक सोडा तैयार करने के कारखाने देश के किन भागों में खोले जाने चाहिये। यह भी बताया गया है कि युद्ध से पहले देश में प्रतिवर्ष २०-२५ हजार टन कास्टिक सोडा खर्च होता था। लड़ाई के दिनों यह खर्च बढ़ कर ५५ हजार टन प्रतिवर्ष हो गया और खयाल है कि भविष्य में औद्योगिक उन्नति होने पर प्रतिवर्ष सवा-

डेढ़ लाख टन खर्च होगा। किन्तु इतनी अधिक आवश्यकता के होते हुए भी, भारत अभी प्रतिवर्ष केवल १२ हजार टन कास्टिक सोडा तैयार कर पाता है। खयाल है कि नये कारखानों के खुल जाने पर वार्षिक उत्पादन कुल २४ हजार टन तक बढ़ सकेगा।

दुर्गलनीय वस्तुओं तथा चीनी मिट्टी के उद्योगों के लिये अत्यन्त आवश्यक खनिज पदार्थ येनाइट अधिकांशत भारत में ही पाया जाता है। यह पदार्थ अधिकतर भारत के सिंह भूमि खरसवां तथा सराय-केला नामक स्थानों में मिलता है और १९२८ से पहले इसका अधिकांश मुख्यतः अमेरिका को भेज दिया जाता था। इधर पिछले कुछ सालों से इसका उपयोग, दुर्गलनीय वस्तुएं तैयार करने के काम में, भारत में भी किया जाने लगा है।

'पैक्टिन' का उत्पादन

इसी तरह का एक और पदार्थ "सिल्लीसेनाइट" है। उल्लिखित पत्रिका में इन दोनों ही पदार्थों के विषय में एक लेख प्रकाशित हुआ है, जिसमें बताया गया है कि भारत के किन-किन स्थानों में यह पदार्थ पाये जाते हैं और भविष्य में दुर्गलनीय वस्तुओं की तैयारी के लिये किस सीमा तक उनका उपयोग किया जा सकेगा।

पैक्टिन एक ऐसा पदार्थ है जो विभिन्न उद्योगों के काम में तो आता है पर भारत में अधिकांशतः बाहरी देशों से ही मंगाया जाता है। "पत्रिका" में प्रकाशित एक लेख में बताया गया है कि बम्बई विश्वविद्यालय की प्रयोगशालाओं में किये गये अनुसंधान से मालूम हुआ है कि पैक्टिन अनेक देशी फलों तथा सब्जियों से भली-भांति प्राप्त किया जा सकता है। नींबू जाति के फलों के छिलके, सेब, अमरूद, अंजीर, पपीता, नासपाती, आदि अनेक फल हैं जिनसे "पैक्टिन" प्राप्त किया जा सकता है। गाजर और मटर की फलियों के छिलके से भी "पैक्टिन" तैयार किया जा सकता है।

एक अन्य लेख ट्रैवलिंग वेव वैकुअम ट्यूब के विषय में भी प्रकाशित हुआ है। इस नलिका का आविष्कार अमेरिका में हुआ है। वह १४ इंच लंबी और २ इंच व्यास की होती है जिसमें अनेक प्रकार की यंत्रावली तथा बिजली के तारों की जाली फिट रहती है। कहते हैं कि इस नलिका की सहायता से एक ही समय, बहुत से रेडियो संदेश भेजे जा सकेंगे। अनुमान है कि अमेरिका जितने क्षेत्र फल के लिए, ऐसा एक ट्यूब" काफी होगा और उसके द्वारा टेलिफोन पर दस हजार व्यक्त एक ही समय बातचीत कर सकेंगे।

पत्रिका के सम्पादकीय लेख में आविष्कारों के संरक्षण के विषय का विवेचन किया गया है।

रेशम उद्योग

भारत में कच्चे रेशम के उत्पादन का उल्लेख करते हुए बताया गया है कि १८६० से १८७० में वर्षों में भारत विदेशों को काफी रेशम भेजता था, किन्तु उत्पादन के तरीकों में कोई उन्नति न कर सकने के कारण आगे चल कर भारत को रेशम का निर्यात कम पड़ गया। उसी समय जापान ने नये-नये तरीकों से काम लेकर कच्चे रेशम की अपनी उपज काफी बढ़ा ली और धीरे-धीरे संसार को अपनी आवश्यकता का ३-४ हिस्सा रेशम जापान से प्राप्त करना पड़ा। इस प्रकार विश्व के बाजारों में रेशम के व्यापार पर जापान ने अपना अधिपत्य जमा लिया।

युद्ध-काल में भारत के रेशम-उद्योग को काफी प्रोत्साहन मिला, किन्तु इसमें संदेह नहीं कि वैज्ञानिक आधार पर काफी सुधार करने की उसमें अब भी गुञ्जाइश है। ऐसा होने पर ही रेशम के निर्यात का व्यापार,देश में, पुनः स्थापित किया जा सकता है। मैसूर, मदरास का कालेगल तालुका, बंगाल और कश्मीर भारत में रेशम के उत्पादन के मुख्य क्षेत्र हैं। पंजाब तथा आसाम में भी थोड़ा रेशम पैदा होता है और बिहार, बम्बई, राजपूताना तथा मध्य प्रान्त में पैदा करने की कोशिश हो रही है। भारतीय रेशम की चार मुख्य किस्मों में से, मलबरी

रेशम अधिकांशतः रेशम की पैदावार के मुख्य क्षेत्रों में होती है, "एरी" तथा "मूँगा" रेशम आसाम में होते हैं और "टसर" बिहार तथा बंगाल के कुछ भागों में होता है।

उक्त लेख में बताया गया है कि रेशम उद्योग की उन्नति के लिये सरकार को अनेक बातों की छानबीन कराने की समुचित व्यवस्था करना चाहिये। इस दिशा में अच्छे किस्म की शहतूत की खेती, अच्छे किस्म के रेशम के कीड़े रहित बीजों का उत्पादन तथा वितरण और रेशम-उद्योग के प्रोत्साहन के लिये आवश्यक कानून का निर्माण आदि अनेक बातें हैं, जिनके संघटन की समुचित व्यवस्था सरकार को करनी चाहिये।

बम्बई विश्वविद्यालय के रासायनिक विभाग ने वनस्पति तेलों के विघटन द्वारा जलाने की गैस पैदा करने के सम्बन्ध में काफी छानबीन की है जिसके विषय में भी एक विचारपूर्ण लेख उक्त "पत्रिका" के कथित अंक में प्रकाशित हुआ है।

बम्बई विश्वविद्यालय के उक्त विभाग ने ऐसी प्रणाली निकाली है जिसके अनुसार बनस्पति तेलों को चाप युक्त ताप देने से कुछ गैसें तैयार होती हैं, जो उद्योग-धंधों के लिये बड़े काम की है और साथ ही जलाने के काम में भी लायी जा सकती हैं। भारत में ये गैसें, कोयले तथा पेट्रोल के स्थान में ईंधन का काम भी दे सकेंगी और इस दृष्टि से बहुत उपयोगी सिद्ध होंगी। बनस्पति तेलों से ये गैसें तैयार करने के लिये जिन मशीनों तथा साज-सामान की जरूरत पड़ेगी, वह भी भारत में ही तैयार किया जा सकता है। आशा है कि देश की अनेक औद्योगिक संस्थाओं तथा प्रयोगशालाओं के लिये, यह नयी प्रणाली, जिसके अनुसार बनस्पति तेलों से जलाने की गैसें तैयार की जा सकेंगी, काफी रुचिकर सिद्ध होगी।

खमीर से विटामिन 'डी'

उक्त पत्रिका में एक लेख विटामन "डी" के उत्पादन के सम्बन्ध में भी छपा है। खमीर से एक चीज तैयार की जाती है, जिसका नाम एरगोस्ट्रल है। इस चीज से एक विशेष प्रणाली द्वारा विटामिन "डी" प्राप्त किया जाता है। हाल ही में कुछ ऐसी प्रक्रियाओं की खोज हुई है जिनके अनुसार खमीर से एरगोस्ट्रल नामक द्रव्य काफी मात्रा में सरलता-पूर्वक प्राप्त किया जा सकता है और विशेष विधि से इस द्रव्य से कहीं अधिक मात्रा में विटामिन 'डी' प्राप्त किया जा सकता है।

विज्ञान-परिषद्की प्रकाशित प्राप्य पुस्तकोंकी सम्पूर्ण सूची

१—विज्ञान प्रवेशिका, भाग १—विज्ञान की प्रारम्भिक बातें सीखने का सबसे उत्तम साधन—ले० श्री रामदास गौड़ एम० ए० और प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी० ;

२—चुम्बक—हाईस्कूल में पढ़ाने योग्य पुस्तक ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी०; सजि०; ।।=)

३—मनोरञ्जक रसायन—इसमें रसायन विज्ञान उपन्यासकी तरह रोचक बना दिया गया है, सबके पढ़ने योग्य है—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम० एस-सी० ; १।।),

४—सूर्य-सिद्धान्त—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान-भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखनेका सबसे सुलभ उपाय—पृष्ठ संख्या १२१४ ; १४० चित्र तथा नकशे—ले० श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; सजिल्द; दो भागोंमें, मूल्य ६)। इस भाष्यपर लेखकको हिन्दी साहित्य सम्मेलनका १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है।

५—वैज्ञानिक परिमाण—विज्ञानकी विविध शाखाओंकी इकाइयोंकी सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहालकरण सेठी डी० एस सी०; ।।।),

६—समीकरण मीमांसा—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १।।) द्वितीय भाग ।।=),

७—निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री बी० एस सी० ; ।।),

८—बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित—इंटरमीडियेटके गणितके विद्यार्थियोंके लिये—ले० डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी० ; १।),

९—गुरुदेवके साथ यात्रा—डाक्टर जे० सी० बोसीकी यात्राओंका लोकप्रिय वर्णन ; ।-),

१०—केदार-बद्री यात्रा—केदारनाथ और बद्रीनाथके यात्रियोंके लिये उपयोगी; ।),

११—वर्षा और वनस्पति—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शङ्करराव जोशी; ।),

१२—मनुष्यका आहार—कौन-सा आहार सर्वोत्तम है—ले० वैद्य गोपीनाथ गुप्त; ।=),

१३—सुवर्णकारी—क्रियात्मक—ले० श्री गंगाशंकर पचौली; ।),

१४—रसायन इतिहास—इंटरमीडियेटके विद्यार्थियोंके योग्य—ले० डा० आत्माराम डी० एस-सी०; ।।।),

१५—विज्ञानका रजत-जयन्ती अंक—विज्ञान परिषद् के २५ वर्षका इतिहास तथा विशेष लेखोंका संग्रह; १)

१६—फल-संरक्षण—दूसरा परिवर्धित संस्करण—फलोंकी डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार आदि बनानेकी अपूर्व पुस्तक; २१२ पृष्ठ; २५ चित्र—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्र-नारायण सिंह एम० एस-सी०; २),

१७—व्यङ्ग-चित्रण—(कार्टून बनानेकी विद्या)—ले० एल० ए० डाउस्ट ; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी, एम० ए०; १७५ पृष्ठ; सैकड़ों चित्र, सजिल्द; १।।)

१८—मिट्टीके बरतन—चीनी मिट्टीके बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा ; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र, सजिल्द; १।।),

१९—वायुमंडल—ऊपरी वायुमंडलका सरल वर्णन—ले० डाक्टर के० बी० माथुर; १८६ पृष्ठ, २५ चित्र; सजिल्द; १।।),

२०—लकड़ी पर पॉलिश—पॉलिशकरनेके नवीन और पुराने सभी ढंगोंका ब्योरेवार वर्णन। इससे कोई भी पॉलिश करना सीख सकता है—ले० डा० गोरखप्रसाद और श्रीरामयत्न भटनागर, एम०, ए०; २१८ पृष्ठ; ३१ चित्र, सजिल्द; १॥),

२१—उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश; आकार बड़ा विज्ञानके बराबर २६० पृष्ठ; २००० नुसखे, १०० चित्र; एक-एक नुसखेसे सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं या हज़ारों रुपये कमाये जा सकते हैं। प्रत्येक गृहस्थके लिये उपयोगी; मूल्य अजिल्द २) सजिल्द २॥),

२२—कलम-पेबंद—ले० श्री शंकरराव जोशी; २०० पृष्ठ; ५० चित्र; मालियों, मालिकों और कृषकोंके लिये उपयोगी; सजिल्द; १॥),

२३—जिल्दसाज़ी—क्रियात्मक और ब्योरेवार। इससे सभी जिल्दसाज़ी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०; १८० पृष्ठ, ६२ चित्र; सजिल्द १॥),

२४—त्रिफला—दूसरा परिवर्धित संस्करण-प्रत्येक वैद्य और गृहस्थके लिये—ले० श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार, २१६ पृष्ठ; ३ चित्र, एक रङ्गीन; सजिल्द २।),

यह पुस्तक गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय, की १३ श्रेणी के लिए द्रव्यगुणके स्वाध्याय पुस्तकके रूपमें शिक्षापटलमें स्वीकृत हो चुकी है।"

२५—तैरना—तैरना सीखने और डूबते हुए लोगोंको बचाने की रीति अच्छी तरह समझायी गयी है। ले० डाक्टर गोरखप्रसाद पृष्ठ १०४ मूल्य १),

२६—अंजीर—लेखक श्री रामेशबेदी आयुर्वेदालंकार-अंजीर का विशद वर्णन और उपयोग करनेकी रीति। पृष्ठ ४२, दो चित्र, मूल्य ॥),

यह पुस्तक भी गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालयके शिक्षा पटलमें स्वीकृत हो चुकी है।

२७—सरल विज्ञान-सागर प्रथम भाग—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद। बड़ी सरल और रोचक भाषा में जंतुओंके विचित्र संसार, पेड़ पौधों की अचरज-भरी दुनिया, सूर्य, चन्द्र और तारोंकी जीवन कथा तथा भारतीय ज्योतिषके संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। विज्ञानके आकार के ४५० पृष्ठ और ३२० चित्रोंसे सजे हुए ग्रन्थ की शोभा देखते ही बनती है। सजिल्द मूल्य ६),मिल है।

२८—वायुमण्डलकी सूक्ष्म हवाएँ—ले० डा० सन्त-प्रसाद टंडन, डी० फिल० मूल्य ।॥)

२९—खाद्य और स्वास्थ्य—ले० श्री डा० ओंकारनाथ परती, एम० एस-सी०, डी० फिल० मूल्य ।॥)

हमारे यहाँ नीचे लिखी पुस्तकें भी मिलती हैं:—

१—विज्ञान हस्तामलक—ले०—स्व० रामदास गौड़ एम० ए० भारतीय भाषाओंमें अपने ढंगका यह निराला ग्रंथ है। इसमें सीधी सादी भाषामें अठारह विज्ञानोंकी रोचक कहानी है। सुन्दर सादे और रंगीन पौने दो सौ चित्रोंसे सुसज्जित है, आजतककी अद्भुत बातोंका मनोमोहक वर्णन है, विश्वविद्यालयोंमें भी पढ़ाये जानेवाले विषयोंका समावेश है, अकेली यह एक पुस्तक विज्ञानकी एक समूची लैब्रेरी, है एक ही ग्रंथमें विज्ञानका एक विश्वविद्यालय है। मूल्य ६)

२—सौर-परिवार—लेखक डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० आधुनिक ज्योतिष पर अनोखी पुस्तक ७७६ पृष्ठ, ५८७ चित्र (जिनमें ११ रंगीन हैं) मूल्य १२) इस पुस्तक पर काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा से रेडिचे पदक तथा २००) का छन्नूलाल पारितोषिक

३—भारतीय वैज्ञानिक—१२ भारतीय वैज्ञानिकोंकी जीवनियां—ले० श्री श्याम नारायण कपूर, सचित्र ३८० पृष्ठ; सजिल्द; मूल्य ३।) अजिल्द ३)

४—वैक्युम-ब्रेक—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा। यह पुस्तक रेलवेमें काम करने वाले फ़िटरों इंजन-ड्राइवरों, फ़ोर-मैनों और कैरेज एग्ज़ामिनरोंके लिये अत्यन्त उपयोगी है। १६० पृष्ठ; ३१ चित्र जिनमें कई रंगीन हैं, २),

विज्ञान-परिषद्, बेली रोड, इलाहाबाद

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुखपत्र

भाग ६५ | सम्वत् २००४, जून १९४७ | संख्या ३

प्रकाशक

विज्ञान-परिषद्,

बेली रोड, इलाहाबाद।

ार्षिक मूल्य ३)]

[एक संख्या का

प्रयागकी

विज्ञान-परिषद् के मुख्य नियम

परिषद्का उद्देश्य

१—१९७० वि० वा १९१३ ई० में विज्ञान परिषद्की स्थापना इस उद्देश्य से हुई कि भारतीय भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञानके अध्ययनको और साधारणतः वैज्ञानिक खोजके कामको प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद्का संगठन

२—परिषद्में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमोंके अनुसार सभ्यगण सभ्योंमेंसे ही एक सभापति, दो उपसभापति एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमंत्री, दो मंत्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे, जिनके द्वारा परिषद्की कार्यवाही होगी।

पदाधिकारियोंका निर्वाचन

१८—परिषद्के सभी पदाधिकारी प्रतिवर्ष चुने जायँगे। उनका निर्वाचन परिशिष्टमें दिये हुये तीसरे नक्शेके अनुसार सभ्योंकी रायसे होगा।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्यको ५) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश-शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ ७० रु० की रकमदे देनेसे कोई भी सभ्य सदाके लिये वार्षिक चन्देसे मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्योंको परिषदके सब अधिवेशनोंमें उपस्थित रहनेका तथा अपना मत देनेका, उनके चुनावके पश्चात् प्रकाशित, परिषद्की सब पुस्तकों, पत्रों, विवरणों इत्यादिके बिना मूल्य पानेका—यदि परिषद्के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धनसे उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन-चौथाई मूल्यमें मिलेंगी।

२७—परिषद्के सम्पूर्ण स्वत्वके अधिकारी सभ्यवृन्द समझे जायँगे।

परिषद्का मुखपत्र

३३—परिषद् एक मासिक-पत्र प्रकाशित करेगी जिसमें सभी वैज्ञानिक विषयोंपर लेख प्रकाशित हुआ करेंगे।

३४—जिन लेखोंको परिषद् प्रकाशित करेगी उनमें जो लेख विशेष महत्व और योग्यताके समझे जायँगे उनके लेखकोंको अपने अपने लेख की बीस प्रतियाँ बिना मूल्य पानेका अधिकार होगा।

विषय-सूची

विज्ञान

विज्ञान-परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ६५ | सम्वत् २००४, जून, १९४७ | संख्या ३

महान् अज्ञेय

[डाक्टर देवेन्द्र शर्मा, एम० एस० सी०, डी० फिल०]

न त्वं वेद न चैवाहं भूतभव्यभवत्प्रभुः,
कलिश्चैवैष कालश्च सर्वभूतापहारकः।
—वाल्मीकि रामा० उत्तर का०

जहाँ तापगतिशास्त्र का पहला सिद्धान्त ताप का गति में और गति का ताप शक्ति में परिवर्त्तन होना सिखाता है, दूसरा सिद्धान्त इस परिवर्त्तन पर एक छोटा सा प्रतिबन्ध लगा देता है—बिना किसी बाह्य शक्ति की सहायता के ताप स्वयमेव ठण्डी चीज़ से गर्म को नहीं जा सकता। दूसरे शब्दों में, एक ऐसा ताप-इञ्जन बनाना सम्भव नहीं जो केवल एक ही वस्तु में से ताप-शक्ति ले और बिना आस पास की चीज़ों में कोई परिवर्त्तन किये हुए उस सब शक्ति को गति या काम में परिणित कर दे। इसी भाव को व्यक्त करने के लिये भौतिकज्ञ 'यन्त्रता' शब्द का प्रयोग करता है। यह अनुपलब्ध शक्ति का माप है, और विज्ञान की भाषा में दूसरा सिद्धान्त कहता है—प्रत्येक भौतिक अथवा रासायनिक क्रिया में जितनी भी चीज़ें भाग लेती हैं उन सबकी यन्त्रता का योग बढ़ता रहता है, केवल उन क्रियाओं में जिनको फिर उल्टा किया जा सकता है यह स्थिर रहता है।

यदि यह बात ठीक है तो विश्व में प्राप्य शक्ति घटती जा रही है—घड़े का पानी बूँद-बूँद करके चू रहा है, हमारी घड़ी की चाबी धीरे-धीरे खुल रही है। यह एक अप्रिय यथार्थता है, क्योंकि अभी तक कोई क्रिया इस सिद्धान्त का उल्लङ्घन करती हुई नहीं देखी गई।

यन्त्रता बढ़ रही है, अर्थात् विश्व की उपलब्ध शक्ति का ह्रास हो रहा है इसके लिये एक उदाहरण लें। छत पर रक्खे हुए पत्थर में अपनी स्थिति के कारण शक्ति (स्थिति-शक्ति) है। इस बात को विज्ञान का एक अक्षर न जानने वाला भी मानेगा—केवल उसको ज़मीन पर खड़ा करके ऊपर से पत्थर छोड़ देने की धमकी मात्र ही काफी होगी, अस्तु। जब पत्थर ज़मीन पर गिरता है तो उसकी शक्ति कहाँ जाती है? स्पर्श से मालूम होगा कि पत्थर और उसके गिरने का स्थान दोनों गर्म हो गये हैं, जिसका अर्थ है स्थिति-शक्ति जो पहले पत्थर की गति-शक्ति में परिणित हुई थी अन्त में ताप-शक्ति में परिवर्त्तित

हो गई। प्रश्न उठता है, क्या इस ताप-शक्ति को हम पुनः गति-शक्ति में बदल कर पत्थर को ऊपर पहुँचा सकते हैं ? अथवा दूसरे शब्दों में, क्या उस ताप-शक्ति से एक इञ्जन चलाकर पत्थर को फिर ऊपर रक्खा जा सकता है ? हम जानते हैं कि किसी भी इञ्जन की दक्षता शत-प्रतिशत नहीं। फलतः बिना बाहरी ताकत प्रयोग में लाये पत्थर को पुनः छत पर नहीं रक्खा जा सकता।

एक जिज्ञासु प्रश्न कर सकता है कि जब स्थिति-शक्ति को उतनी ही गति-शक्ति अथवा ताप-शक्ति में परिवर्त्तित किया जा सकता है, तो ताप-शक्ति को फिर उतनी ही गति-शक्ति में क्यों नहीं परिणित कर सकते ? इसका कारण समझने के लिये यह जानना आवश्यक है कि ताप-शक्ति का प्रादुर्भाव कैसे होता है। कणों या परमाणुओं का अस्त-व्यस्त, उल्टा-सीधा चलना ताप-शक्ति का उत्पादन करता है। जो वस्तु जितनी ही गरम है उसके कण उतने ही स्वतन्त्र और अस्त-व्यस्त हैं। यदि हम एक ठोस को गर्म करना प्रारम्भ करें तो पहले वह तरल (कुछ स्वतन्त्र) और फिर गैस (बिलकुल स्वतन्त्र) होता है। जहाँ गति स्वतन्त्र और अस्तव्यस्त है वहाँ कणों की सम्पूर्ण शक्ति को काबू में करके एक-पथ-गामी करना असम्भव है। इस प्रकार जहाँ भी ताप है वहाँ लभ्य शक्ति का ह्रास हो रहा है और अधिकांश भौतिक एवं रासायनिक क्रियाओं में ताप का उत्पादन होता है। हाँ, किसी वस्तु की ताप-शक्ति के एक भाग को गति-शक्ति में बदला जा सकता है यदि एक दूसरी वस्तु उससे कम तापमान की मिल जाय। और एक साधारण इञ्जन इसी सिद्धान्त पर चलता है। परन्तु जिस क्षण दोनों वस्तुओं का तापमान समान हो जाता है, हम उनकी शक्ति का उपयोग नहीं कर सकते जब तक कि हम एक तीसरी वस्तु उन दोनों से कम तापक्रम की न ढूँढ़ निकालें और इसी प्रकार चौथी, पाँचवी आदि वस्तुओं की आवश्यकता पड़ेगी यहाँ तक कि अन्त में विश्वभर एक तापक्रम पर आ जाय—यह होगी उसकी जड़, निश्चेष्ट दशा जब सब व्यापार बन्द हो जायँगे, सब प्रलय की गोद में सो रहे होंगे।

लभ्य-शक्ति शनः २ घट रही है, घड़ी की चाबी खुल रही है, घड़ा बूँद २ रित रहा है..., परन्तु यह चाबी किसने दी, घड़ा किसने भरा ? प्रत्यक्ष है प्रकृति ने नहीं ! वह तो चीजों को अधिक से अधिक अस्त-व्यस्त अवस्था में ले जाती है। उसमें प्रत्येक क्रिया 'यन्त्रता' बढ़ा रही है। प्रकृति का हम जिस अर्थ में प्रयोग करते हैं उसमें वह स्वतन्त्र, मस्तिष्क और नियन्त्रण हीन है। उसकी गोद में प्रायः उच्छृङ्खलता तथा अवारेपन का ही पालन होता आया है। सर्वाङ्ग सुन्दरी होते हुए भी वह भीतर ही भीतर घुलकर शनः २ मृत्यु की ओर अग्रसर हो रही है। वह स्वयं कोई उपचार नहीं कर सकती। तब कोई ऐसी सत्ता होनी चाहिये जिसने उलझे हुये को सुलझाया, अस्त व्यस्त को व्यवस्थित किया। अपनी सुगमता के लिये हम उसे विधाता अथवा सृष्टा कह सकते हैं—यहाँ उस सृष्टा या विधाता से अभिप्राय नहीं जो अपनी सृष्टि से घुटनों के बल बैठकर प्रार्थना की आशा करता अथवा कुछ मानव-कृत मतों में विश्वास रखने या न रखने के कारण एक दूसरे के संहार की आज्ञा देता है। हमारा सृष्टा तो सुलझाने वाला है, उसके दरबार में हिंसा कहाँ ? धर्मावलम्बियों के सृष्टा को उसके गुण-दोष विवेचन के लिये उन्हीं को सौंप हम आगे बढ़ते हैं।

हमारा सृष्टा कैसा है यह जानने के लिये हमारी गणित अभी शैशव में ही है, उसके चिन्ह और समीकरणों में अभी पर्याप्त सामर्थ्य नहीं। फिर शब्द तो शब्द ही हैं, अशक्त और अधिकांश अव्यक्त छोड़ने वाले। हो सकता है हम सृष्टा की प्रतिमा बनाकर कुछ अनुमान कर सकें, परन्तु आज का भौतिकज्ञ अच्छी तरह जानता है कि प्रतिमाओं से खेलना कितना बचपन है; सरलतम परमाणु की प्रतिमा ने भी उसे कितना छकाया है—फिर इस विश्व में नियन्त्रण विधान स्थापित करने वाले की प्रतिमा का कौन कहे ?

मस्तिष्क ही व्यवस्था की सृष्टि करता है (इस परिभाषा से विक्षिप्त मस्तिष्क हीन है)। और क्योंकि विश्व में व्यवस्था है, सृष्टा में कम से कम यह गुण अवश्य होना चाहिये—अन्य गुणों के सम्बन्ध में कहना मेरी मर्यादा के बाहर है—और अपनी सुविधा तथा गुण की सार्थकता के लिये हम उसे परम मस्तिष्क' कह सकते हैं। वैज्ञानिक भाषा में 'यन्त्रता' घटाने का काम इस 'परम्-मस्तिष्क' का है।

विश्व के रचना काल में मकान बनाने के पहिले ईंट और चूना रहे होंगे—वही हमारे चिर परिचित ऋणाणु, धनकण, हीनकण कुछ अन्य मौलिक कणों के साथ। यदि इन चीजों को करोड़ों वर्षों तक यों ही पड़ा रहने दिया जाता तो बिना राजगीर—मस्तिष्क—के भवन-निर्माण की सम्भावना न के बराबर होती। माना कुछ नियमों के अनुसार सब क्रियाएँ हो सकती हैं, परन्तु नियम का होना ही व्यवस्था और मस्तिष्क के होने का प्रमाण है। इस परम्-मस्तिष्क को हम अपनी भावनानुसार जो नाम चाहें दें। यदि निर्जन बन में एक ईंट का टुकड़ा अथवा चार पत्तियाँ एक क्रम में दिखाई दें तो हम सहज ही वहाँ एक समय मस्तिष्क की उपस्थिति का अनुमान कर लेंगे। ईंट अथवा क्रमबद्ध पत्तियाँ बिना मस्तिष्क के कैसे वहाँ आई? यदि ताश के पत्तों को बहुत काल तक निरन्तर फेंटते रहें तब भी उनके एक क्रम में लग जाने की सम्भावना न के बराबर है। उनको क्रमबद्ध देखकर हम यही कहेंगे कि यह किसी मनुष्य (मस्तिष्क) का काम है। रेत में पद-चिन्ह देख कर रौबिन्सन क्रूसो अनुमान कर लेगा कि द्वीप में फ्राइडे है। फिर इसकी तो कोई सम्भावना ही नहीं कि यह इतना सुघटित एवं अद्भुत् मानव-मस्तिष्क यों ही बन गया हो—मानव मस्तिष्क जो इतना आश्चर्य जनक तथा विचित्र है कि अपने सृष्टा का विश्लेषण करने में भी नहीं चूकता। सम्भाव्यता रेत में पद-चिन्ह नहीं बना सकती, 'फ्राइडे' का होना जरूरी है।

बहुत लोग शंका कर सकते हैं, 'क्या कोई सृष्टा को दिखा सकता है, अथवा किसी ने उसे देखा है?' हमारे भौतिक यन्त्र अभी उस पूर्णता को भी नहीं पहुँचे जो एक अणु को भी देख सकें, फिर उस केवल मस्तिष्क का तो कहना ही क्या! यदि अब से २५ वर्ष पूर्व कोई ऐसी किरणों के सम्बन्ध में कहता जो एक गज मोटी सीसे की दीवार को पार कर जायँ तो शायद उसकी बातें अधिक विश्वास से न सुनी जातीं। परन्तु अब भी हम उस विकिरण को नहीं देख सकते। वह पदार्थ पर जो प्रभाव डालता है उससे हम उसके कुछ गुणों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। समस्त ज्ञान का वास्तविक आधार ही यह अनुमान है। जिसे हम प्रत्यक्ष करते हैं वह तो केवल कुछ संकेतमात्र अज्ञात के पद-चिन्ह हैं, और शेष ज्ञान विज्ञान केवल एक काल्पनिक चित्त है जो वैज्ञानिक कलाकार इन्हीं संकेतों की सहायता से बनाता है। इसी प्रकार नीलोत्तर और उपरक्त प्रकाश, एक्स-किरण या रेडियो लहरों का ज्ञान केवल आँख या कान द्वारा प्राप्त नहीं किया जाता। ऐसे स्पन्दन की शब्द-लहरें भी हैं जिनको हम कान से नहीं सुन सकते; केवल हमारे यन्त्र ही उनको मालूम नहीं कर लेते, ऐसे जीव (यथा चमगादड़) भी हैं जो उस शब्द को सुनते और सुनाते हैं। जो ज्ञान हम बिना किसी वाह्य सहायता के प्राप्त करते हैं वह हमसे अनभिज्ञ जगत का एक बहुत छोटा भाग है। तब मुझे क्या अधिकार है कि मैं उस पर अविश्वास करूँ जो सृष्टा के देखने अथवा देव-बाणी सुनने का दावा करता है। हमारी शिक्षा अभी अपूर्ण है, हमारी इन्द्रियाँ अभी शिथिल हैं, और वह मनुष्य जिसे ये शक्तियाँ मिली हैं, वह उस महान् मस्तिष्क की प्रतिमायें नहीं बनावेगा, क्योंकि उसे यहाँ उस मस्तिष्क की समानता का कुछ नहीं मिलेगा, उसका सापेक्षतावाद और कन्तम-शास्त्र शायद उसे धोखा दे जायँ, तथा उसका अन्तिम अवलम्ब, अस्पष्ट शब्द, उसके अनुभव और दर्शन का एक अधूरा और धूमिल चित्रण ही कर सकें।

हो सकता है भावी वैज्ञानिक कुछ 'गहरे पानी पैठ' खोज कर सृष्टि एवं सृष्टा के सम्बन्ध में कुछ नये सत्यों एवं सिद्धान्तों का विवेचन करे। परन्तु अन्तिम और महानतम वैज्ञानिक जो अपनी सम्पूर्ण शक्ति—यन्त्र और गणित—एकत्र करके उत्सुकता पूर्वक घड़े में से अन्तिम बूँदों को रिसते देखेगा, वह सबसे गर्वित और महान भी नम्रता पूर्वक यही कहेगा—

'देख्यो सुन्यो कबहूँ न कितै,
वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन।'

'वह' तो यन्त्रता घटाने में निमग्न होगा, अपनी घड़ी में चाबी देता हुआ, दूसरे शब्दों में थकी हुई सृष्टि की थकान दूर करता हुआ, या कवि के शब्दों में ही

'देखौ, दुरयौ वह कुञ्ज-कुटीर में,
बैठ्यो पलोटत राधिका पायन।'

और उससे जो ठोस पानी के अस्तित्व में विश्वास नहीं करेगा क्योंकि उसने कभी देखा नहीं, हाण्टिङ्गडन*के शब्दों में यही कहा जा सकता है,

'तुझसे उस विषय पर बातें करने में जो तेरे लिये अगम्य है, मैं सरलतम सत्य कहते हुए भी तेरी दृष्टि में आत्मश्लाघी हूँ, अतः मेरी प्रार्थना है कि इन बातों को जाने दे...।'

*स्कॉट के टैलिसमैन के अध्याय ३ में एक पात्र।

उपयुक्त आहार

एक विचार धारा

[लेखकः डाक्टर सु० प्र० मुश्रान, रसायन विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय]

आज यह स्पष्ट सत्य हम लोगों के सम्मुख है कि भारतवर्ष स्वतंत्रता के द्वार पर है, परन्तु देश की समस्त समस्याएँ स्वतन्त्रता से ही हल नहीं हो जायेंगी। स्वतंत्र भारत वासियों के लिये यह आवश्यक है कि उन्हें सब विषयों का अच्छा ज्ञान हो। समय की कठिनाइयों के होते हुए भी स्वतंत्र भारत के प्रत्येक शासक का कर्तव्य है कि वह भारतवर्ष के अर्धभूखे मनुष्यों के आहार का समुचित प्रबन्ध करे। साधारण से साधारण मनुष्य को यह जानना चाहिए कि किस प्रकार से वह आहार का उपयोग करे। प्रत्येक स्त्री तथा पुरुष, बच्चों के निरन्तर, तथा राष्ट्र के प्रत्येक सदस्य को भोजन के विषय में आवश्यक जानकारी रखना चाहिए तथा उसका कर्त्तव्य है कि दैनिक जीवन में इस ज्ञान का उपयोग करे। इस लेख का उद्देश्य यह है कि प्रत्येक मनुष्य को यह ज्ञान हो जाय कि आहार के मुख्य सिद्धान्त क्या हैं जिससे कि वह बाजार के खाद्य पदार्थों को कमधन व्यय करके प्राप्त ही न कर सके वरन् उनका सदुपयोग भी कर सके।

मनुष्य का शरीर एक मोटर की मशीन के समान है। हम मोटर को अच्छी अवस्था में प्राप्त कर सकते हैं परन्तु जब इसका पैट्रोल समाप्त हो जायगा तो यह सत्य है कि वह काम करना बन्द कर देगी। मनुष्य का शरीर भी इसी मशीन के समान है और सब मशीनों की तरह यह भी खाद्य पदार्थों द्वारा प्राप्त शक्ति के बिना काम नहीं कर सकती। मोटर काम न करने पर कुछ शक्ति नहीं चाहती, परन्तु मनुष्य को जब कि वह आराम करता है तथा सुषुप्तावस्था में भी और हृदय की धड़कन, शारीरिक ताप तथा फेफड़े इत्यादि इन्द्रियों को ठीक रखने के लिए शक्ति की आवश्यकता होती है। यह आवश्यक शक्ति जब मनुष्य आराम करता है उसकी आधारमूल (Basal) शक्ति कहलाती है और इसकी मात्रा मनुष्य की

ऊँचाई तथा तौल पर निर्भर है। उदाहरण के लिए एक ५ फीट और १० इंच के ऊँचाई और १२ स्टोन तौल वाले मनुष्य के लिए लगभग १·७९ सहस्त्र कैलोरी शक्ति एक दिन के लिए आवश्यक है। खाद्य पदार्थ में रूपान्तरित करने से एक कैलोरी शक्ति लगभग चार ग्रेन चीनी से प्राप्त होती है, जब कि चीनी का उपयोग पूर्ण रूप से शरीर में हो जाय। एक मनुष्य १.८ सहस्त्र कैलोरी शक्ति एक दिन के लिए १ पौंड शक्कर अथवा शक्ति में समान और किसी खाद्य पदार्थ को खाकर प्राप्त कर सकता है। अगर मान लीजिए कि यह ऊपर कहा गया ५ फीट १० इञ्च का मनुष्य बिस्तर पर लेटने अथवा उठने या बैठने के स्थान पर कोइ कार्य करना आरम्भ करे तो वह अधिक शक्ति का उपयोग करेगा और इसके लिए यह आवश्यक है कि वह अधिक खाद्य पदार्थ पाए। अगर कोई कार्यशील पुरुष साधारण काम करता है, तो उसका आधार मूल शक्ति से दुगनी मात्रा में शक्ति की आवश्यकता होगी यानी वह ३·६ सहस्त्र कैलोरी शक्ति के निकटतम हो जायगी। इस प्रकार से कुल कैलोरी शक्ति की आवश्यकता मनुष्य के काम पर निर्भर है अर्थात् जैसा वह काम करेगा वैसी ही अनुपात में शक्ति खर्च होगी। हम विचार कर सकते हैं एक नवयुवक इस प्रकार से दिन को व्यतीत करता है!

(१) आठ घंटे की निद्रा (२) सात घंटे छोटा मोटा काम (३) एक घंटा चलना, इसकी औसत मनुष्य की अवस्था तथा स्वास्थ्य पर निर्भर है (४) आठ घंटे व्यवसायिक कार्य जैसे क्लर्क तथा टाइप करने वाले तथा मानसिक कार्य करने वाले मनुष्य के समान कुर्सी पर बैठ कर काम करना या सरल काम जो कि व्यवसायिक या तिजारती हो या माध्यम यांत्रिक कार्य करने वाले के समान हो। बहुत परिश्रम तथा कठिन कार्य, मजदूर के समान, या खेलने कूदने वाले के समान करना। हिसाब लगाने पर पता चला है कि कुर्सी पर बैठकर कार्य करने वाले मनुष्य के लिये २·३५ सहस्त्र कैलौरी शक्ति की आवश्यकता होगी। जब कि मनुष्य ऐसा भोजन करता है जिसका मूल्य कुल आवश्यक कैलोरी के बराबर होता है तो यह भोजन दो विशेष कारणों से उसकी आवश्यकता के बराबर नही होता। पहला कारण यह है कि वह जो कुछ खाता है वह पूर्ण अंश से या तो पचता नहीं या उसे पूर्ण रूप से प्रविष्ट नहीं कर पाता और इस प्रकार से वह बेकार जाता है (२) प्रविष्ट खाद्य का उपयोग करने का अर्थ है कुछ ताप का शरीर से कम होना। इन कमियों को पूरी करने के लिए यह आवश्यक है कि हम दस प्रतिशत कथित कैलोरिक मूल्य इस खाद्य से निकाल लें।

मनुष्य का भोजन निम्नलिखित सिद्धांतों के अनुसार उपयुक्त होना चाहिये (१) कैलोरियों की आवश्यकता की पूर्ति जो कि शरीर के लिये जरूरी हैं (२) भिन्न-भिन्न खाद्यपदार्थों का समानुपात अर्थात् चर्बी, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट जिनसे देह की कैलोरीय आवश्यकता की पूर्ति होती है (३) एमीनो ऐसिड की आवश्यकता जो कि प्रोटीन द्वारा प्राप्त होती है (४) खनिज लवण के भाग विशेषरूप से कैलशियम, फाँसफोरस, सोडियम और क्लोरीन (५) नाना प्रकार के विटामिन।

प्रोटीन बहुत से मिश्रत अणुओं से बने होते हैं और इनमें गन्धक हाइड्रोजन आक्सीजन, नाइट्रोजन होती है। इनका विशेष गुण यह है कि वह नाइट्रोजन को एमीनो एसिड के रूप में देती हैं जो कि मनुष्य देह को ठीक रखने में परमावश्यक है।

कार्बोहाइड्रेट में कारबन, औक्सीजन, हाइड्रोजन होती हैं, पर इसमें नाइट्रोजन का मेल नहीं होता। हमारे आहार में कार्बोहाइड्रेट शक्कर तथा स्टार्च के रूप में होते हैं। चर्बी में कार्बोहाइड्रेट के समान नाइट्रोजन नहीं होती, यह कार्बोहाइड्रेटों से मिलकर मनुष्य देह में शक्ति को पैदा करती है जो कि शरीर के ताप को ठीक स्थापित किए रहती है। प्रोटीन या तो जानवरों या शाक से मिलता है।

शाक से प्राप्त प्रोटीन में जानवरों से प्राप्त प्रोटीन से कम ऐमीनो ऐसिड मिलती हैं इसलिए यह आवश्यक है कि हमारे भोजन के प्रोटीन अंश का कम से कम ⅓ भाग जानवरों से प्राप्त होना चाहिए। ठीक स्वास्थ वाले मनुष्य के शरीर में कारवोहाइड्रेट पदार्थ सुगमता से जल जाते हैं अर्थात् आक्सीकृत हो जाते है, परन्तु एक बहुमूत्र रोगी के शरीर में इनका आक्सीकरण पूर्ण रूप से नहीं होता। ऐसे मनुष्य के खाने में चर्बी को बढ़ाना तथा कारबोहाइड्रेटों को उस सीमा तक कम करना पड़ेगा जहाँ तक कि कारबोहाइड्रेट ठीक प्रकार से जल सकें। परन्तु अधिक चर्बी से भी जिगर पर बुरा प्रभाव पड़ता है। डाक्टरों के मतानुसार कुल शक्ति की आवश्यकता का ⅓ भाग चर्बी से प्राप्त होना चाहिए। जहाँ तक हो सके तरल चर्बियों जैसे तेल, कृत्रिम घी आदि का बहिष्कार करना चाहिए क्योंकि उनमें विटामिन 'ए' तथा 'डी' नहीं होता। हाइड्रोजिनेटड चर्बी या बनस्पती का व्यवहार करने वालों को चाहिये कि वह इसकी जानकारी रक्खें की चर्बी बहुत दिनों से बनी हुई रक्खी न हो। बहुत अनवेष्ण कर्त्ताओं ने देखा है कि अगर हाइड्रोजिनेटड चर्बी हाइड्रोजिनेशन के पश्चात् तीन-चार मास तक रक्खी जाय तो इसके उपयोग करने से गुर्दे तथा जिगर में जहर पैदा हो जाता है। इसका कारण यह है कि निकेल की धूल जो कि हाइड्रिजोनिटेड चर्बी में रहती है चर्बी से क्रिया करके इस जहर को पैदा करती है।

विटामिन

यह हमें पूर्ण रूप से पता है कि हम अपना स्वास्थ्य उस आहार पर ठीक प्रकार से नहीं रख सकते जिससे कि केवल शरीर में कार्य करने की शक्ति आती है तथा उसकी थकावट दूर होती है। सर हापकिन्स ने १९०६ में यह पता लगाया कि यदि चूहे के आहार में केवल प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, चर्बी, लवण तथा पानी रहे तो चूहों में कुछ समय के उपरान्त अपोष्टिकता के चिन्ह प्रकट हो जाएगें। उनकी खोज से यह ज्ञात हुआ कि कुछ बीमारियें आहार में कुछ आवश्यक अंशों की कमी होने के कारण होती हैं। इन आवश्यक अंशों को हम विटामिन कहते हैं। १६०१ ई० से पूर्व सर जेम्स लैन्कास्टर ने पुरानी खुजली से पीड़ित मल्लाहों का नारँगी तथा नेबू के उपयोग से इलाज किया। इसके बाद यह हमें ज्ञात हुआ कि खुजली होने का कारण केवल कम भोजन ही नहीं है, वरन् भोजन में विटामिन 'सी' की कमी भी है। अंकुरीकृत मटर, फलिऐं तथा ताजे सागों में विटामिन 'सी' प्रचुरता से पाया जाता है। भारतवर्ष में बेरी-बेरी नामक रोग साधारण तरह से होता है। जिसकी विशेषता कमजोरी, टाँगों का लड़खड़ाना तथा जलन्धर का होना है। शरीर में विटामिन 'बी' की कमी होने से यह रोग होता है। यह रोग भारतीय अधभूखे तथा कम वेतन पाने वाले मजदूरों को भयंकर रूप में होता है। भारत में अधिक चावल का उपयोग करने वाले भाग अर्थात् बंगाल तथा दक्षिणी भारत में यह रोग बड़ा प्रचलित है। यहाँ यह बताना जरूरी है कि बेरी बेरी का होना चावल के खाने का कारण नहीं वरन मिल द्वारा पालिश किया हुआ चावल का उपयोग करना है। चावल को सुन्दर रूप देने के कारण पुष्टता देने वाली वस्तु की चादर मिल में पिसने से दूर हो जाती है और इसके साथ ही साथ विटामिन बी पूर्ण रूप से अलग हो जाता है। अगर चावल को भूसे से दूर करने में पुराना ढङ्ग व्यवहार में लाया जाए जिसके कारण पुष्टता देने वाली विटामिन बी की पतली चादर दूर न हो वे तो बेरी बेरी का भयानक रोग न होगा। इस रोग को दूर करने का दूसरा उपाय यह है कि हम अच्छे-अच्छे खाद्य पदार्थ जैसे दूध, फल, तथा शाक खाकर विटामिन बी की कमी को दूर करें। जब से अँगरेजों ने मशीन के द्वारा फैक्टरी में चावल का पीसना शुरू किया, तबसे यह रोग भारतवर्ष में आरम्भ हुआ। खमीर

में सबसे अधिक विटामिन बी पाया जाता है परन्तु यह अन्य प्रकार के अनाजों में भी होता है। विटामिन बी पानी में घुल जाता है किन्तु विटामिन ए पानी में नहीं घुलता, और इसका घोल चर्बी में प्राप्त हो सकता है। विटामिन ए अधिक मात्रा में मछली के तेल में और कम मात्रा में मक्खन तथा हरे-हरे शाक में मिलता है। इस विटामिन की कमी से बच्चों का बढ़ना रुक जाता है तथा इसकी कमी का यह फल भी होता है कि मनुष्य प्राकृतिक सहन शक्ति को खो बैठते हैं और उनका शरीर कीटाणुओं के आक्रमणों को नहीं रोक पाता। इस विटामिन की कमी के कारण आँखों में खुश्की जिसको रतौंधी कहते हैं हो जाती है और हम धुँधली रोशनी में वस्तुओं को ठीक प्रकार से देखनहीं सकते।

विटामिन डी दूसरा चर्बी में घुलने वाला विटामिन है जो मछली के तेल में अधिक मात्रा में और दूसरे जानवरों की चर्बी में कम मात्रा में पाया जाता है। पर यह बनस्पति तेल या तरल पदार्थ में नहीं मिलता। भोजन में इसके न होने से हड्डी का न बढ़ना और उनमें पुष्टता का न होना पाया जाता है और यह बच्चों में मिठुआ (Rickets) होने का कारण भी है। एक बच्चा दो स्रोतों से अर्थात् मुँह तथा खाल के द्वारा विटामिन डी प्राप्त कर सकता है। जब सूर्य की अति-बैंजनी किरणें या आर्क लैम्प की किरणें उसके चर्म को छूती है तो चर्म के अन्दर की चर्बी विटामिन डी में परिवर्तित हो जाती है और इस प्रकार बच्चा अपने ही आप अपना ही विटामिन डी पैदा करके भोजन की एक बड़ी कमी को पूरा करता हैं।

तीसरा चर्बी में घुलने वाला विटामिन ई है। जिसको बाँझपन दूरक विटामिन भी कहते हैं। इसके भोजन में न होने से मनुष्य तथा स्त्रियों में पैदा करने वाली गिलटियों का अवसान हो जाता है और जिसके कारण उनमें बाँझपन आ जाता है। यह विटामिन हर एक मामूली खाद्य पदार्थ में और प्रमुख रूप से पत्तों तथा बीजों में मिलता है।

खनिज लवण

विटामिन के समान खनिज लवण भी भोजन के जरूरी भाग हैं, जो कि भोजन में कम मात्रा में होते हुए भी स्वास्थ्य के लिए बहुत ही आवश्यक वस्तुएँ हैं। खाद्य पदार्थ में नाना प्रकार के खनिज लवण पाए जाते हैं जिनमें लोहा, कैलशियम, आयोडिन, फॉसफोरस, मेगनीशियम और ताँबा विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। हेमोग्लोबीन अर्थात् रक्त के लाल पिगमेण्ट जो कि आक्सीजन को शरीर में ले जाते हैं, को बनाने के लिए लोहा एक आवश्यक वस्तु है। इसकी कमी से रक्त-हीनता और साधारण कमजोरी हो जाती है। स्त्रियों तथा बच्चों को लोहे की अधिक आवश्यकता है। लोहे के सबसे अच्छे उद्गम अंडे, आलू, हरे शाक तथा घर के पिसे आँटे की रोटी हैं। आलुओं को छिलके सहित पकाना चाहिए क्योंकि छिलके में आधे से अधिक लोहे का भाग होता है।

थाइरायड गिल्टियाँ, जो कि शरीर के साधारण कार्यों पर अधिकार रखती हैं, उन के लिए आयोडीन आवश्यक है। इसकी कमी के कारण शारीरिक तथा मानसिक शक्ति में कमी हो जाती है और काफी मात्रा में शारिरिक कार्य शक्ति पर प्रभाव पड़ता है। इसके उद्गम हरे-हरे शाक, डेरी से प्राप्त घी, दूध, दही, मक्खन और कम मात्रा में मछली तथा मांस है।

वे खनिज लवण जो कि हड्डियों में होते है, जिन पर शरीर की समस्त शक्ति निर्भर है और वे पदार्थ जिन पर दाँत का कड़ापन निर्भर है चूने तथा फॉसफोरस से युक्त लवण हैं। दूध तथा पनीर चूने के सबसे अच्छे उद्गम हैं और कुछ प्रकार की मछलियाँ, मूँगफली तथा शाक भी हैं। छोटे बच्चों के लिए चूने की मात्रा फॉसफोरस से दूनी होनी आवश्यकहै। चूने तथा फॉसफोरस की कमी से बच्चों को Rickets हो जाती है। फॉसफोरस के अच्छे उद्गम दूध, पनीर, मूँगफली, अंडे, दाल तथा घर के पिसे आँटे की रोटी हैं।

लोहे को हेमोग्लोबीन बनाने के लिए ताँबे की आवश्यकता पड़ती है। मनुष्य को ताँबे की दैनिक आवश्यकता लोहे की आवश्यकता का ⅟₁₀ भाग होती है। ताँबे के उद्‌गम दूध, मछली, जिगर, मूँगफली तथा फल हैं।

मैंगनीज लवण शरीर में बैक्टीरिया से उत्पन्न जहर को, मुख्य रूप से staphylococci जो कि फोड़े तथा फुन्सियों में पाया जाता है, निशक्त करने के लिए शरीर को अपने 'antidotes' पैदा करने में सहायता देते हैं। इस काम के लिए मैंगनीज का घोल हमारे शरीर में इन्जेक्शन के द्वारा पहुँचाया जाता है।

मैगनीशियम नसों तथा पुट्ठों को ठीक प्रकार से कार्य करने में सहायता पहुँचाता है। हड्डी तथा दाँतों में अधिक मात्रा में कैल्शियम फास्फेट होता है परन्तु उनमें सख्ती का आना मैगनिशियम फास-फेट की मात्रा पर निर्भर है।

सिलिकन शरीर के विभिन्न भागों में पाया जाता है। यह वाह्य रूप से बालों तथा खाल में तथा आन्तिरिक रूप से हमारे फेफड़ों में इकट्ठा रहता है। हमारे दाँतों के ऊपर जो 'इनेमल' नामक पर्त जमी है फ्लोरीन तथा सिलिकन का मिश्रण है।

और बहुत से पदार्थ जैसे कोबल्ट, आर्सेनिक तथा जिन्क हमारे शरीर में कम मात्रा अथवा न्यून मात्रा में हैं लेकिन इनके कार्यों के विषय में हमें अधिक ज्ञान नहीं है।

जल या पानी

जल भी मनुष्य के आहार में एक आवश्यक वस्तु है। बिना जल के पृथ्वी पर जीवन असम्भव हो जायगा। मनुष्य के शरीर के भार का ७० % भाग जल के ही कारण होता है। भिन्न-भिन्न रगों में उनकी गठन के अनुसार जल की मात्रा घटती-बढ़ती है। और यह २२% हड्डी से लेकर ८३% गुर्दे तक होता है। पानी के बिना जीवन उतना ही कठिन है जितना हवा के बगैर। पानी हमें केवल पीने ही से प्राप्त नहीं होता, वरन् जितना भोजन हम खाते हैं, उससे भी हमारे शरीर को जल प्राप्त होता है। ताजे शाकों में लगभग ७५% जल होता है। पानी खाल को चिकना तथा स्वस्थ बनता है, इसलिए महिलाओं के लिए यह आवश्यक है कि अपनी सुन्दरता चिरकाल तक स्थापित रखने के लिए अप्राकृतिक वस्तुएँ जैसे लिपस्टिक, रूज, तथा पाउडर का त्याग कर जल का अधिक से अधिक व्यवहार करें।

क्रमशः

सोवियट कृषि में रसायनिक खाद का प्रयोग

औद्योगीकरण की उन योजनाओं का, जिनके कारण पिछड़ा हुआ जारशाही रूस का एक महान, शक्तिशाली देश बन सका, सोवियट कृषि पर भी भारी प्रभाव पड़ा। खेती का काम बढ़ते हुए परिमाण में मशीनों से किया जाने लगा और इसके फलस्व-रूप उत्पत्ति निरन्तर बढ़ती रही है। हलों के खीचने वाली इंजिनों (ट्रैक्टरों) की संख्या १९३३ में ६६,००० थी और १९४० में ५२३,०००। इसी प्रकार जहाँ १९३२ में "कम्बाइनों" (खेती के काम प्रयुक्त की जाने वाली एक प्रकार की मशीन) की संख्या २०,५०० थी १९४० में १,८२,००० हो गई। एक ओर खेती के काम में मशीनों का अधिक से अधिक उपयोग किया जाने लगा; दूसरी ओर खेती के काम का समाजवादी ढङ्ग पर पुनर्निर्माण आरम्भ हुआ। सामूहिक खेती की प्रथा ने भी जिसके कारण पृथक रूप से छोटी मोटी खेती बारी का अन्त हो गया, मशीनों के उपयोग को उत्साह दिया।

खेती के पुनर्निर्माण में रासायनिक पदार्थों के उपयोग ने एक महत्वपूर्ण भाग लिया। १९१७ की की क्रान्ति के पूर्व रूस में रसायनिक पदार्थों के बड़े कारखाने न थे और इस कारण खेती में

रसायनिक पदार्थों का उपयोग नहीं किया जा सकता था। सोवियट संघ में रसायनिक पदार्थों का उद्योग प्रथम पंचवर्षीय योजनाओं के समय में विकसित हुआ।

इस समय तक रूसी वैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध कर दिया था कि देश के विभिन्न भागों में विभिन्न प्रकार की भूमि पर रसायनिक खाद द्रव्यों की सहायता से उत्पत्ति कितनी अधिक बढ़ाई जा सकती है। केवल यही नहीं: विस्तार-पूर्वक अनुसन्धान कर कृषि-विशेषज्ञों ने कुछ नए प्रकार के खाद-द्रव्यों की खोज की।

इन अनुसन्धानों के कारण फॉस्फेट और पोटेशियम की दृष्टि से सोवियट संघ को प्रथम स्थान प्राप्त हो गया। सामूहिक कृषि की प्रथा, मशीनों के बढ़ते हुए उपयोग, धातुसंशोधन और मशीन बनाने वाले कारखानों के विकास और नए खाद द्रव्यों की खोज—इन सब कारणों से खाद द्रव्यों के बड़े कारखानें प्रथम पंचवर्षीय योजना के समय में ही स्थापित हो सके और इन खाद द्रव्यों का दूसरी पंचवर्षीय योजना के समय में उद्योग धंधों में उपयोग किया जाने लगा।

निम्नांकित संख्याओं से १९३२-१९३७ में खाद द्रव्यों द्वारा प्राप्त हुई बढ़ती हुई उत्पत्ति का अनुमान मिल सकेगा।

खाद द्रव्य	१९३२	१९३७	उत्पत्ति की वृद्धि
नाइट्रोजन	२२.२ हजार टन	६५९.० हजार टन	२९ गुनी
पोटैशियम	२७.० ,, ,,	४०७.६ ,, ,,	१५ ,,
सूपरफास्फेट	४७७.६ ,, ,,	१,४५४.१ ,, ,,	३ ,,
फोस्फोराइट बुकनी	३६६.० ,, ,,	६३४.२ ,, ,,	१.६ ,,
टोटल	९२२-८ ,, ,,	३,१५४.९ ,, ,,	३.४ ,,

यह स्वाभाविक था कि १९४१-१९४५ में, अर्थात् युद्ध के दिनों में, खेतों को रसायनिक खाद द्रव्य पहले की तुलना में कम परिमाण में मिलने लगे। किन्तु युद्ध के बाद इस उद्योग को बढ़ाने की कई योजनाएँ कार्यान्वित की गई। प्रस्तुत पंचवर्षीय योजना के अनुसार १९५० तक रसायनिक खाद द्रव्यों की उत्पत्ति ५५,००,००० टन हो जाएगी, अर्थात् युद्ध के पहले की तुलना में कहीं अधिक।

सोवियट संघ में रसायनिक खाद द्रव्यों का उपयोग औद्योगिक फ़सलों, जैसे कपास और चुकन्दर इत्यादि की उत्पत्ति बढ़ाने के लिए किया जाता है। किन्तु अन्य प्रकार की औद्योगिक फ़सलों (चाय, तम्बाकू इत्यादि) की उत्पत्ति बढ़ाने में भी इसका उपयोग किया जाता है।

रसायनिक खाद द्रव्यों के उपयोग के कारण औद्योगिक फ़सलों की उत्पत्ति पहले से कहीं अधिक बढ़ गई। पिछले पाँच या छ वर्षों में उज़बेक प्रजातन्त्र की कपास की उत्पत्तिकी संख्याओं से इसका अनुमान लगाया जा सकता है। कपास की खेती के लिए उज़बेकिस्तान सोवियट संघ का मुख्य केन्द्र है।

खाद द्रव्य का परिमाण

(टन प्रति एकड़)

१९३३	१९३५	१९३७	१९३९
०.३५६	०.४६४	०.६४४	०.६८०

कपास की उत्पत्ति में वृद्धि का केवल खाद द्रव्यों का प्रयोग ही कारण न था। हाँ मुख्य कारण वह अवश्य था।

चुकन्दर की उत्पत्ति के विकास से दूसरा उदाहरण दिया जा सकता है।

खाद द्रव्य का परिणाम

(टन प्रति एकड़)

१९३४	१९३६	१९३८	१९४०
०.१४२	०.३२८	०.४७६	०.५८०

चुकन्दर की औसत उत्पत्ति
(टन प्रति एकड़)

६.६४	१३.८	१३.६६	१८.७४

ये संख्याएँ उज़बेकिस्तान में कपास की औसतन उत्पत्ति और क़िर्गीज़िया में चुकन्दर की उत्पत्ति से सम्बन्ध रखती हैं, किन्तु कुछ खेतों में उत्पत्ति इससे कहीं अधिक बढ़ी चढ़ी थी। सोवियट संघ की स्थिति में खाद द्रव्यों के उपयोग से केवल औद्योगिक फ़सलों की उत्पत्ति में ही वृद्धि होना सम्भव नहीं है पर अनाज इत्यादि में भी। किन्तु इस समय सोवियट संघ का रसायनिक उद्योग इस योग्य नहीं है कि खाद द्रव्यों की आवश्यकता सम्पूर्ण रूप से पूरी कर सके। इसका कारण यह है कि सोवियट संघ में ऐसी भूमि का क्षेत्रफल, जिस पर खेती का काम किया जाता है, योरप के अन्य सब देशों से और टर्की को भी मिलाकर अधिक है। खाद द्रव्यों के उपयोग को बढ़ाने के विषय में हमारे वैज्ञानिक अनेकों अनुसन्धान कर रहे हैं।

इधर कुछ वर्षों से सोवियट संघ के अनुसन्धान केन्द्र खाद द्रव्यों का सबसे उपयोगी प्रयोग करने के विषय में अनुसन्धान कर रहे हैं। अनेकों प्रयोगों तथा वास्तविक अनुभव से यह मालूम हो सका है कि भिन्न प्रकार के खाद द्रव्यों की अवधि और उनके उपयोग की सही विधि, तथा भूमि और फसल की विशेषताओं को ध्यान में रखने से खाद की उपयोगिता बहुत बढ़ जाती है। यह सिद्ध किया जा चुका है कि खाद के प्रयोग से केवल फ़सल की उत्पत्ति में वृद्धिही नहीं होती, पर पौधों के रसायनिक गुणों में परिवर्त्तन भी हो जाता है। सोवियट संघ में ऐसे रसायनिक कृषि विज्ञान के अनुसन्धानों को बहुत महत्व दिया जाता है जिसके कारण नए प्रकार के खाद द्रव्यों के खोजने में सहायता मिलती है।

सोंठ बनाना

[लेखक—श्री रामेशवेदी, हिमालय हर्बल इंस्टीट्यूट, लाहौर]

सूखी हुई अदरक को सोंठ कहते हैं। सुखाने की दो विधियाँ हैं।

साधारण विधि :—अदरक पैदा करने वाले सब देशों में इस विधि से सोंठ बनाई जाती है। पूर्णतया स्वस्थ और ठीक तरह पकी हुई गाँठें सुखाने के लिए छाँटनी चाहिए। अदरक को धूप में सुखाया जाता है और उनके साथ लगी हुई मिट्टी जितना सम्भव हो साफ़ कर दी जाती है।

सुखाने के लिए पहला कार्य होता है—पत्तों से अच्छी तरह झाड़ पोंछ कर साफ की हुई अदरक को पानी में भिगोना। गाँठों को पानी में मल कर साफ़ कर लिया जाता है और भीगे रहने से वे नरम भी हो जाती हैं जिससे छिलका उतारने में सरलता पड़ती है। ठीकरियों या ईंट के टुकड़ों से रगड़ या खुरच कर छिलका अलग कर लिया जाता है। छिली हुई अदरक अब साफ़ पानी में धो ली जाती है और तीन-चार दिन तक धूप में खुली पड़ी रहने दी जाती है। सुखाने के साथ-साथ धूप अदरक के रंग को भी उड़ाती है। फिर यह हाथों से मली जाती है। मलने में सावधानी रखनी चाहिए कि गाँठें टूट न जायँ। अदरक को फिर धूप में सूखने और रंग उड़ने के लिए डाल दिया जाता है और तब हाथों से मसला जाता है जैसा कि पहले वर्णन किया गया है। इसके बाद अदरक को दो-तीन घण्टे के लिए पानी में भिगोते हैं और फिर धूप में सूखने के लिए डाल देते हैं। सूख जाने पर किसी खुरदरे कपड़े पर इसे रगड़ा जाता है जिससे रहे सहे छिलके भी उतर जाते हैं। छिलके उतरने की क्रिया वास्तव

में बहुत महत्व रखती है क्योंकि सोंठ की सुरभि जिस उड़नशील तेल के कारण होती है वह अदरक के ऊपर के तन्तुओं में होता है। इसलिए अधिक खुरचने से सोंठ के गुण नष्ट हो सकते हैं।

विविध स्थानों पर इस विधि में अनेक परिवर्त्तन कर लिये गये हैं। भारत के कुछ भागों में अदरक को पानी में दो दिन तक भिगोया जाता है। जमायका में खोदने के बाद तुरन्त ही इसे पानी में डाल देते हैं, क्योंकि उखाड़ने के बाद मिट्टी और जड़ें गाँठों के साथ लगी हुई हैं और वे उसी तरह सूख रही हैं तो सूखने पर सोंठ का रंग इतना सफेद नहीं आता।

गुजरात में छिलके उतारने का काम ठीकरियों से या नारियल की जटा से बने कठोर खुरदरे टाट पर अदरक को रगड़ कर किया जाता है। जमायका में अदरक पर से छिलके उतारना एक कला समझी जाती है। इस काम में निपुण व्यक्ति हाथ की अँगुलियों में अदरक को पकड़ लेते हैं और पतले फलक वाले चाकुओं से छिलका उतारते हैं। दक्षिण भारत के कुछ भागों में छिलका उतारा ही नहीं जाता परन्तु पानी में अच्छी तरह भीग जाने के बाद धोने की टंकियों में ही अदरक को पैरों से मला जाता है। इस तरह तय्यार करने से सोंठ की कीमत घट जाती है।

छिलका उतरी हुई गाँठें तुरन्त ही साफ़ पानी के हौज में धोने के लिए डाल दी जाती हैं। इसमें नया पानी आता रहता है और गाँठें धुल कर पूरी तरह साफ़ हो जाती हैं। सूखा पदार्थ हलके रंग का प्राप्त करना अभीष्ट हो तो यह क्रिया नितान्त आवश्यक होती है। इसलिए जहाँ छिलके उतारे जायँ वहाँ पानी भरपूर होना चाहिये। हवा में खुली डालने से छिलके उतारी हुई अदरक का रंग काफी बदल जाता है।

सूखी चीज़ सफेद प्राप्त करने के लिये छिलके रहित अदरक को धोने के बाद कुछ घण्टों तक चूने के पानी में भिगो कर सुखाया जाता है। आवश्यक हो तो फिर चूने को धो दिया जाता है। अदरक के देर तक खराब न होने के गुण को चूना बढ़ा देता है।

जमायका में सीमेण्ट के फ़र्श पर अदरक सुखाई जाती है और भारत के कुछ स्थानों में ज़मीन पर बिछी चटाइयों और टाटों पर। भूमि गीली या नमीदार हो तो यह विधि अच्छी नहीं होती। भारत के कुछ जिलों में अच्छी तरह सूख जाने के बाद गाँठों को फिर खुरदरे टाट पर हाथों से रगड़ा जाता है और फिर दुबारा धूप में सुखाया जाता है। इससे कहते हैं शुष्क उपज का रंग अधिक सफेद आता है। रंग उड़ाने के लिए कभी-कभी सुखाने से पहले अदरक को उबाल लिया जाता है। अधिक देर तक उबाली गई तो इसके क्रियाशील तत्व नष्ट हो जाते हैं इसलिए इसे उबालना नहीं चाहिए।

दूसरी विधि :—ताजी अदरक को पहले बताई विधि से छिलके रहित करके चूने के घोल की टंकी में छोड़ देते हैं। चूने का घोल मकानों में की जाने वाली कलई की घनता का होना चाहिए। इसमें यह करीब दो घण्टे तक पड़ी रहती है। इस बीच में इसे एक या दो बार हिला देना चाहिए। इसमें से निकाल कर अदरक को टोकरियों में डाल कर चार घण्टे तक गन्धक की धूनी देते हैं। छः फुट लम्बे और इतने ही चौड़े मिट्टी के बने कमरे में अदरक भरी टोकरियाँ बाँस के बुने जाल पर फर्श से कुछ ऊँची रखी जाती हैं। लोहे की एक तश्तरी में गन्धक डाल कर उसके नीचे आग जला दी जाती है। धुआँ सारे कमरे में भर जाता है और यह चार घण्टे तक रहता है। डेढ़ हज़ार पौण्ड हरी अदरक को धूनि देने के लिए सात पौण्ड गन्धक काफी होती है। अगले दिन अदरक को धूप में सूखने के लिए डाल देते हैं और शाम को चूने के पानी में भिगोने तथा गन्धक की धूनि देने की प्रक्रिया दुहराई जाती है। इस बार आठ पौण्ड गन्धक ली जाती है और धूनि देने का समय बढ़ा कर बारह घण्टे कर दिया जाता है। यह प्रक्रिया तीसरी बार दुहराई जाती है। इसमें गन्धक

का परिमाण बढ़ा कर नौ पौण्ड कर दिया जाता है और धूएँ में अदरक को खुला रखने का समय कम करके चार घण्टे कर दिया जाता है। त. अदरक को सूखने के लिए फर्श पर बिछा देते हैं। अच्छी तरह सूख जाने पर चूना धो दिया जाता है और गाँठों को फिर दुबारा पूरी तरह सुखा लिया जाता है।

इस तरह बनाई हुई सोंठ तुलना में मोटी, भरी हुई तथा प्रायः सफेद रंग की होती है और टूटती भी अधिक अच्छी है। साधारण विधि से सुखाई सोंठ की अपेक्षा इसमें कुई और कीड़ों के आक्रमण की कम सम्भावना रहती है। इस विधि में एक दोष भी है। थोड़े से अतिरिक्त व्यय और श्रम के होने पर भी इस प्रकार तय्यार की गई सोंठ में गन्धक द्विआॅक्साइड विद्यमान होता है जो गन्धक की धूनी देने से बना था, इस से यह सोंठ सब देशों में बेची नहीं जा सकती।

पैदावार तथा व्यापारिक महत्व

निम्नलिखित प्रसिद्ध किस्में बाज़ार में मिलती हैं :—जमायका, कोचीन, बंगाल, टेलिचेरी (Tellechery), जापान और अफ्रीका। कोचीन शुण्ठी का भारतीय सोंठों में सब से उच्च स्थान है परन्तु रंगपुर, मिदनापुर, और बंगाल में हुगली जिला, बम्बई में सूरत और थाना और संयुक्त प्रान्त में कुमायुँ भी अच्छी सोंठ पैदा करने के लिए प्रसिद्ध हैं। कोचीन शुण्ठी कालीकट, कोचीन तथा मलावार तट के अन्य स्थानों से बड़े परिमाण में बहिर्नियात की जाती है और संसार की सोंठ की माँग के एक बड़े भाग की पूर्ति करती है। लण्डन की मण्डियों में मूल्य की दृष्टि से यह, अधिक सावधानी से तय्यार की गई और इसलिए देखने में अधिक अच्छी जमायका सोंठ के बाद रखी जाती है। बम्बई और कलकत्ता भी हर साल बड़े परिमाण में सोंठ बाहर के देशों में भेजते हैं।

सोंठ की किस्मों में जमायका सोंठ मण्डियों में सब से अधिक पसन्द की जाती है और इसकी कीमत सबसे ज्यादह होती है। यह रेतीली भूमि में बोयी जाती है। वर्षा सन्तोषजनक न हो तो इसकी सिंचाई का अच्छा प्रबन्ध होता है।

जमायका में प्रति एकड़ सूखी सोंठ की पैदावार एक हज़ार से डेढ़ हज़ार पौंड कही जाती है और कभी-कभी दो हज़ार पौंड भी निकल आती है। बंगाल में पैदावार एक से डेढ़ हज़ार पौंड तक, पञ्जाब में दो हजार पौंड तक और त्रावनकोर में ढाई हजार पौंड प्रति एकड़ हो जाती है। इन संख्याओं से ज्ञात होता है कि उपज के परिमाण देखे जायँ तो भारत जमायका के समकक्ष है और वैज्ञानिक कृषि से यह आशा की जा सकती है कि उपज बढ़ जायगी। संयुक्त राज्य भारतीय सोंठ की बहुत समय तक अच्छी मण्डी रही है। पिछले महायुद्ध से पहले १९१८ में संयुक्त राज्य में विभिन्न देशों से निम्नलिखित परिमाण और मूल्य में सोंठ निर्यात की गई थी—

	हण्डरवेट में परिमाण	पौंडों में मूल्य
ब्रिटिश भारत	६५५५४	१०७४६४
जमायका	२०६९६	३७१८०
सीरा लिओमि (अफ्रीका)	२१८६०	३३२८०

इस व्यापार में भारत की लाभप्रद स्थिति को जमायका और अफ्रीका की पैदावारों ने बहुत आघात पहुँचाया। १९२७ में जमायका ने २४००० हण्डरवेट सोंठ निर्यात की। सीरा लिओमि (अफ्रीका) ने भी उन्नति निश्चित की है। इसकी निर्यात की संख्या २८००० हण्डरवेट है। भारतीय सोंठ का निर्यात निश्चित रूप से कम हुआ है। १९२९ के मार्च की समाप्ति तक निर्यात संख्या ४६००० हण्डरवेट थी।

रासायनिक संघटन

सोंठ में गन्ध युक्त हलके पीले रंग का एक उड़नशील तेल एक से तीन प्रतिशतक होता है। यह मुख्यतया टर्पीन्स (terpenes) का बना होता है। एक स्थिर तेल करीब तीन प्रतिशतक तथा निशास्ते का एक बड़ा परिमाण होता है।

उड्डनशील तेल जमायका की सोंठ में लगभग एक प्रतिशतक, अफ्रीका की सोंठ में दो से तीन प्रतिशतक और भारतीय सोंठ में लगभग ३·५ प्रतिशतक निकलता है। सोंठ की विशिष्ट गन्ध के लिए यह उत्तरदायी है, परन्तु स्वाद के लिए नहीं। सोंठ के चरपरे (तिक्त) तत्व उड़नशील नहीं है। इस लिए वे उड़नशील तेल में नहीं पाये जाते। उड़नशील तेल स्वाद में तिक्त नहीं होता। तिक्त क्रियाशील तत्व भी पृथक प्राप्त किया गया है और इसको जिंजरोल (gingerol) नाम दिया गया है। हलका पीला, गन्ध रहित, स्वाद में बहुत तिक्त, लेसदार सा यह द्रव कोचीन शुण्ठी में ०·६ प्रतिशतक होता है।

भारतीय सोंठ की अपेक्षा जमायका सोंठ कम तिक्त होती है। जमायका सोंठ में भारतीय सोंठ की सुरभि भारतीय पैदावर की तुलना में बहुत अधिक पसन्द की जाती है।

सोंठ में बहुत से रेजिन्स (resins) हैं। एक तैलीय रेजिन द्रव रूप निकाला गया है। इसका नाम जिंजरीन (gingerin) रखा गया है। सामान्यतया यह ईथर के साथ खींचा (extract) जाता है। यह राब जैसा गाढ़ा होता है और रङ्ग में भी उससे मिलता है। इसमें सोंठ की सुरभि और उसका तिक्त स्वाद दोनों विद्यमान होते हैं। पूर्वीय भारत की सोंठ में यह लगभग आठ प्रतिशतक और जमायका शुण्ठी में प्रायः पाँच प्रतिशतक होता है।

ऐलन (Allen) और मूर (Moor) ने कुछ नमूनों के विश्लेषण से निम्नलिखित परिणाम प्राप्त किये हैं :—

	जमायका सोंठ के नमूने				
	१	२	३	४	५
नमी	११·२	१०·९५	१३·९५	१२.७६	१३·९६
राख			३·९०	३·२९	३·४५
विलेय राख	१·५०	१·४१	३·०५	१·५५	१·७१
ठंडे पानी का एक्स्ट्रैक्ट	१५·६५	१३·२५	१४·४०	१२·२५	११·८५

	कोचीन सोंठ के नमूने			अफ्रीका की सोंठ के नमूने	
१	१	२	३	१	२
नमी	१०·६४	१३·५०	१३·२३	१५·९७	१३·७०
राख		३·८१	३·६२	३·६६	३·९०
विलेय राख	१·७१	२·०३	२·०४	२·२८	२·४१
ठण्डे पानी का एक्स्ट्रैक्ट	१३·००	८·६५	११·६५	१०·८०	१०·१०

उपयोगी भाग

पत्ते और ताज़ी तथा सूखी सोंठ।

ब्रिटिश फार्माकोपिया में स्वीकृत सोंठ वह है जिसका बाहर का मैला छिलका खुरच लिया गया हो और फिर उसे धूप में सुखाया हो। व्यापार में इसे बिना रङ्ग उड़ाई हुई जमायका सोंठ (Unbleached Jamaika ginger) कहते हैं। इसका मान (स्टैण्डर्ड) यह होना चाहिए :—

(क) नब्बे प्रतिशतक मद्यसार (एल्कोहल) में विलेय एक्स्ट्रैक्ट साढ़े चार प्रतिशतक से कम नहीं, और

(ख) जल में विलेय एक्स्ट्रैक्ट दस प्रतिशतक से कम नहीं होना चाहिये।

(ग) राख छह प्रतिशतक से अधिक नहीं और जलीय विलेय राख १·७ प्रतिशतक से कम नहीं होनी चाहिए।

संयुक्त राज्य अमेरिका के मान ये हैं :—

(क) निशास्ता चयालीस प्रतिशतक से कम नहीं।

(ख) काष्ठोज (crude fibre) आठ प्रतिशतक से अधिक नहीं।

(ग) चूना (Ca O) एक प्रतिशतक से अधिक नहीं।

(घ) ठण्डे पानी का एक्स्ट्रैक्ट बारह प्रतिशतक से कम नहीं।

(ङ) कुल राख सात प्रतिशतक से अधिक नहीं।

(च) ठण्डे पानी में विलेय राख दो प्रतिशतक से कम नहीं।

(छ) उदहरिकाम्ल में अविलेय राख दो प्रतिशतक से अधिक नहीं चाहिए।

चूने की तह चढ़ाई हुई सोंठ या रंग उड़ाई हुई सोंठ में केलसियम कार्बोनेट (Calcium Carbonate) चार प्रतिशतक से अधिक नहीं होना चाहिए। इसकी कुल राख दस प्रतिशतक से अधिक नहीं होनी चाहिए। अन्य बातों में इसके मान पहले की तरह हैं।

मात्रा

सोंठ का चूर्ण—दो से तीन माशे तक।

मिलावट

एक्स्ट्रैक्ट निकालने के बाद बचे हुए फोक और निशास्ते को पिसी हुई सोंठ में मिला कर बाजार में बेच देते हैं। इससे चूर्ण के स्वाद में तीखापन कम हो जाता है। आवश्यक तीखापन पैदा करने के लिए और हलका पीला रङ्ग लाने के लिए, मिलावट करने वाले लालमिरच और हल्दी का प्रयोग करते हैं।

परिवर्तन शील तथा अल्प कालिक नक्षत्र

(Variable and Temporary stars)

[ले० श्री नत्थनलाल गुप्त]

प्रकाश की दृष्टि से सितारे विभिन्न श्रेणियों में विभक्त किये गये हैं। किन्तु, कुछ सितारे ऐसे हैं, जिन का प्रकाश बदलता रहता है। इस प्रकार के सितारे हजारों की संख्या में मालूम हो चुके हैं और परिवर्तन शील नक्षत्र (Variable stars) कहलाते हैं। सब से पहला परिवर्तन शील सितारा सन् १५९६ ई० में डेनमार्क के रहने वाले डेविड फैबरीसियस (David Fabricius) ने मालूम किया था। यह मीरा सीटी, (Mira ceti) अर्थात् सीटस (Cetus) नाम के तारा मण्डल का अद्भुत सितारा, कहलाता है। इस का निरीक्षण तब से बराबर किया जाता रहा है। लगभग दो सप्ताह तक तो यह बड़ी शान के साथ चमकता रहता है और उस समय यह दूसरी श्रेणी का सितारा प्रतीत होता है। इस के पश्चात् उस का प्रकाश शीघ्र २ घटने लगता है यहाँ तक कि वह नवीं श्रेणी का सितार रह जाता है और इसलिये खाली आँख से दिखाई नहीं देता। ५ मास तक वह अदृश्य रहता है, उसके पश्चात् फिर दिखाई देने लगता है। तीन मास तक उसका प्रकाश धीरे धीरे बढ़ता रहता है। ग्यारह मास में वह फिर अपनी पूरी आबोताब को पहुँच जाता है। इस प्रकार से उसके परिवर्तन का चक्र लगभग ३३१ दिनों में पूरा होता है। पर इस काल में कुछ परिवर्तन भी होता रहता है। इसकी चमक कभी तो प्रथम श्रेणी के सितारे के निकट तक पहुँच जाती है और कभी पंचवी श्रेणी से आगे नहीं बढ़ती। सन् १९०६ ई० में उसकी चमक दूसरी श्रेणी के सितारों से भी अधिक थी। सन् १९१९ ई० के अगस्त मास में, जब वह पूरी उन्नति पर पहुँच चुका था तब वह दूसरी श्रेणी का सितारा था। परशुवश (Perseus) तारा मण्डल में एक और अद्भुत सितारा है, जो बेटा परसी (Beta Persie) वा अल्गोल (Algol) कहलाता है। इस सितारे के प्रकाश परिवर्तन का चक्र लगभग ३ दिन (२ दिन २० घंटे ४८ मिनिट) में पूरा होता है।

इसे पहले पहल अर्बदेश वासियों ने मालूम किया था और उसका नाम अलमेल अर्थात् छलाक रख

चित्र नं० १

दिया था। यह भी दूसरी श्रेणी का सितारा है। लगभग ३६ घंटे वह अपनी पूरी चमक से चमकता रहता हैं उसके पश्चात् उसका प्रकाश कम होने लगता है। कोई ४½ घंटों में वह दूसरी श्रेणी से घटते घटते चौथी श्रेणी का सितारा रह जाता है। किन्तु केवल २० मिनिट इस अवस्था में रहने के पश्चात् उसका प्रकाश फिर बढ़ने लगता है और ३½ घंटों में वह फिर दूसरी श्रेणी का सितारा हो जाता है और कोई ३६ घंटों तक वह फिर उसी तरह पूरी आबोताब से चमकता रहता है। इसी प्रकार से परिवर्तन का चक्र घूमता रहता है। चित्र नं० १ में, इसके प्रकाश परिवर्तन की वक्ररेखा दिखाई गई है जो मीरा सेटी की वक्र रेखा की उल्टी है।

सन् १७८२ ई० में एक अंग्रेज ज्योतिषी गुडरिक (Goodricke) नामी ने बतलाया था, कि अल्गोल के प्रकाश परिवर्त्तन का कारण यह है, कि उसके गिर्द एक कृष्ण नक्षत्र घूमता है, जो बार २ उसके सामने से गुजरता है और उसे ग्रहण लगा देता है। पोट्सडम (Potsdam) की वेध शाला के डाइरेक्टर प्रो० वोगल (Prof. Vogel) ने सन् १८८९ ई० में प्रकाश विश्लेषक पत्र द्वारा अल्गोल की परीक्षा की थी और मालूम किया कि अल्गोल और उसका साथी दोनों एक केन्द्रबिन्दु
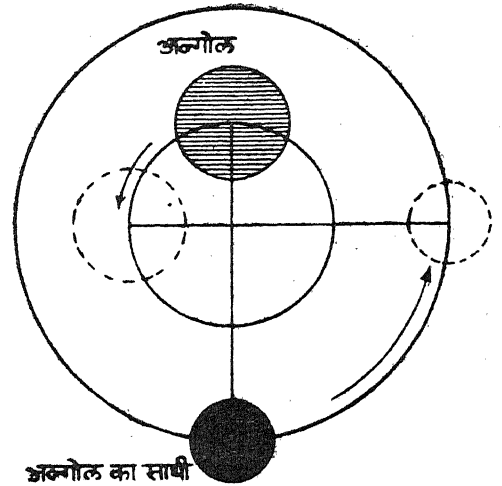
चित्र नं० २

के गिर्द घूमते हैं; और ग्रहण लगने से पहले अल्गोल हमसे दूर हटता और ग्रहण के पश्चात् फिर उसी वेग से हमारी तरफ आता प्रतीत होता है। इस प्रकार उसने सिद्ध कर दिया कि अल्गोल के परिवर्तन का कारण ग्रहण ही है।

यू सेफी (U. Cephei) भी अल्गोल की तरह का सितार है। उसका परिवर्तन चक्र ६ घंटे है। लीरा (Lyra) (बरबत) सितारा मंडल का सितारा 'ब' (B Lyra) भी एक परिवर्तन सितारा है। उसके प्रकाश परिवर्तन की वक्र रेखा चित्र नं० १ में बीच में दिखाई गई है। इसका परिवर्त्तन चक्र १३ दिन (१२ दिन २१ घंटे ५३ मिनिट और १० सेकेंड) का है। किन्तु इसमें यह बात विशेष है, कि इस का प्रकाश एक चक्र में दो बार बढ़ता और दो बार घटता है। जब यह अपनी पूरी चमक पर होता है, तो वह तीसरी और चौथी श्रेणी के मध्य का सितारा मालूम होता है। इस अवस्था में वह लगभग दो दिन रहता है। फिर प्रकाश घटने लगता है और घटते घटते सितारा इतना मध्यम हो जाता है, कि चौथी और पांचवीं श्रेणी के मध्य में पहुँच जाता है, फिर प्रकाश बढ़ने लगता है और

कोई तीन दिन के पश्चात् वह फिर पूर्णता को प्राप्त हो जाता है। मगर दो ही दिन के पश्चात् फिर मध्यम होना आरम्भ हो जाता है। इस बार वह थोड़ा मध्यम होता है और एक सप्ताह के पश्चात् फिर पूर्णता को प्राप्त हो जाता है। यही चक्र बराबर घूमता रहता है।

कुछ सितारों का परिवर्त्तन-काल लम्बा होता है। जैसे, एटाअर्गस (Eta Argus) नाम का सितारा, जो दक्षिणी गोलार्द्ध में है, अब सातवीं श्रेणी का सितारा है और इसीलिये बिना दूरबीन के दृष्टि नहीं आ सकता। किन्तु सन् १६७७ ई० में, जब हेले ने उसे सेण्ट हलीना से देखा था, वह चौथी श्रेणी का सितारा था, और उससे कोई १०० वर्ष के पश्चात् वह दूसरी श्रेणी का सितारा हो गया, और सन् १८३७ ई० में वह प्रथम श्रेणी के सितारे अल्का सेन्टोरी के समान चमकने लगा था। उसके पश्चात् उसका प्रकाश कम होने लगा था, किन्तु, सन् १८४३ ई० में वह फिर चमक उठा और इस बार उसकी चमक लुब्धक (Sirius) के सिवा शेष तमाम सितारों से अधिक थी। फिर धीरे-धीरे मध्यम होने लगा और सन् १८६७ ई० में छटी श्रेणी का सितारा रह गया। सन् १८६८ ई० में वह और भी मध्यम हो गया।

नवीन वा क्षणिक सितारे (Temporary stars)

इन सितारों के अतिरिक्त, जो आकाश में सदा चमकते रहते हैं, कभी-कभी अचानक ही नये सितारे भी प्रगट हो जाते हैं जो कुछ समय तक अपनी चमक दिखला कर फिर सदा के लिये लुप्त हो जाते हैं। ऐसे सितारे नवीन वा क्षणिक वा अल्पकालिक सितारे कहलाते हैं। नीचे हम ऐसे कुछ सितारों का वर्णन करते हैं।

सन् १३४ ईसा से पूर्व वृश्चिक राशी में एक नवीन सितारा प्रगट हुआ था, उसे यूनान के प्रसिद्ध ज्योतिषी हिपारकस (Hipparchus) ने देखा था और उससे उसके मन में सितारों की सूचि बनाने का विचार उत्पन्न हुआ था ताकि आने वाली नसलों के लिये याद-दाश्त रहे।

सन् १५७२ ई० में कश्यप (Cassiapeia) तारा मण्डल में एक ऐसा ही अद्भुत सितारा दिखाई दिया था। उसे सबसे पहले १६ अगस्त को एक जर्मन निवासी ने विटनवर्ग (Wittenberg) में देखा, ११ नवम्बर को वह डेनमार्क के प्रसिद्ध ज्योतिषी टाईखू की दृष्टि पड़ा, वह उसे देखकर अचम्भित रह गया। उस समय वह बृहस्पति के समान चमक रहा था। चन्द दिनों में उसकी चमक शुक्र के बराबर हो गई। वास्तव में उस सितारे की चमक ऐसी थी कि वह दिन दहाड़े भी दिखाई दे सकता था। उसका नाम टाईखू के नाम के साथ सम्बन्धित हो गया है। क्योंकि उसने उसका नियम के साथ निरीक्षण किया था और मालूम किया था कि उसकी दूरी भी दूसरे सितारों के समान ही है। वह उसका लगातार निरीक्षण करता रहा जब तक कि सन् १५७४ ई० में, मार्च मास के अन्त में वह दिखलाई देना बन्द हो गया। उस समय तक दूरबीन का आविष्कार नहीं हुआ था, अन्यथा वह उसका कुछ और समय तक निरीक्षण करता। जब उसका प्रकाश क्रमशः कम हो रहा था तो उसका रङ्ग भी क्रमशः बदल रहा था। पहले वह श्वेत था, फिर पीत वर्ण हो गया; सन १५७३ ई० के मोसिमे बहार में वह रोहिणी नक्षत्र (Aldebaran) के समान रक्त वर्ण दृष्टि आने लगा और मई सन १५७३ ई० में वह सीसा धातु के वर्ण का, शनि के समान खाकी सा दिखाई देने लगा और अदृश्य होने तक वैसा ही रहा।

एक और चमकीले अल्प-कालिक सितारे का नाम कैपलर से सम्बन्धित किया जाता है। यह सन् १६०४ ई० में दिखलाई दिया था। इस साल १० अक्तूबर को कैपलर के एक शिष्य ने देखा कि एक सुन्दर नवीन सितारा ओफियूकस (Ophiuchus) अर्थात् सपेरा वा सर्पधारी नाम के तारा मण्डल में चमक रहा है। उस समय मंगल, बृहस्पति तथा

शनि ग्रह भी पास-पास उसी तारा मण्डल में थे, इसलिये इस सितारे की चमक का उन ग्रहों की चमक से मिलान करना आसान था। अनुमान किया गया कि उसकी चमक मंगल और बृहस्पति से कुछ अधिक और शनि के लगभग बराबर थी। उस सितारे का निरीक्षण गैलेलिओ ने भी किया था। लगभग १७ मास तक वह दृष्टि आता रहा और मार्च सन १६०६ में अदृश्य हो गया।

यह दोनों सितारे ऐतिहासिक काल के अत्यन्त प्रकाशित अल्प कालिक सितारे हैं।

२८ अप्रैल सन १८४८ ई० को हिन्द (Hind) नामी अंग्रेज़ ज्योतिषी ने एक अल्प कालिक सितारा मालूम किया जिसकी चमक अधिक से अधिक पांचवीं श्रेणी के सितारों के समान थी।

सन १८६६ ई० में क्रीट तारा मण्डल (Corona Barealis) में अकस्मात ही एक दूसरी श्रेणी का नवीन सितारा चमक उठा। उसे १२ मई सन १८६६ ई० को आयरलैण्ड के त्वाम (Twam) स्थान में एक मनुष्य ने देखा था, जो बिना दूरबीन के आकाश का निरीक्षण कर रहा था, ऐसा प्रतीत होता है कि वह एकदम ही भड़क उठा था। उसके बारे में एथेंस (Athens) का प्रसिद्ध ज्योतिषी शिमिट (Schimidt) लिखता है कि इससे केवल ४ घण्टे पहले उसका कहीं नाम व निशान भी नहीं था। इससे प्रतीत होता है कि वह सितारा केवल कुछ घंटों में ही इतना तेजस्वी हो उठा था।

इसके सम्बन्ध में एक विशेष बात यह है कि यह पहला ही नवीन सितारा है जिसकी परीक्षा प्रकाश विश्लेषक यन्त्र द्वारा की गई। सर विलियम ह्यूगिन्स (Sir William Huggins) ने इसकी प्रकाश विश्लेषक यन्त्र द्वारा परीक्षा की थी और मालूम किया, कि उसके रश्मि चित्र में चार प्रकाश रेखाएँ दृष्टि आती हैं जिनमें सबसे प्रकाशित हाईड्रोजन की रेखा है। जिससे स्पष्ट है कि उसके एकदम चमक उठने का कारण हाईड्रोजन के एक बड़े ढेर का एकदम जल उठना था। इसके पश्चात् यह सितारा मन्द पड़ने लगा और ९ दिन के पश्चात् वह खाली आँख से दिखना बन्द हो गया।

इस सितारे के प्रगट होने से कुछ वर्ष पहले आर्जीलैण्डर (Argelanderl) ने उत्तरीय आकाश के कुछ मान चित्र प्रकाशित कराये थे; उनमें से एक मान चित्र पर, ठीक उसी स्थान पर, जहाँ वह सितारा प्रगट हुआ था, एक बहुत ही छोटा सा सितारा पाया गया, जिस की चमक नवीं और दसवीं श्रेणी के बीच में थी। इससे मालूम होता है कि ठीक अर्थों में उसे नवीन सितारा नहीं कह सकते। हिसाब लगाया गया है, कि इस सितारे का प्रकाश केवल चन्द घंटों में ही अस्ल से ९ गुण अधिक हो गया था। विचार तो करो, यदि हमारे सूर्य का प्रकाश और ताप इसी अनुपात से एक दम बढ़ जाय तो उसका परिणाम कितना भयंकर होगा। केवल हमारी पृथ्वी ही नहीं, किन्तु, दूर से दूर के ग्रह—नेपच्यून पर भी, यदि किसी प्रकार के जीव रहते होंगे तो वह सब के सब तत्काल नष्ट हो जायेंगे।

इसके दस वर्ष के पश्चात् अर्थात् सन् १८७६ ई० में राजहंस (Cygnus) तारा मण्डल में, एक नवीन सितारा उदय हुआ। उसे २४ नवम्बर को जूलियस शिमिट (Julius Schimidt) ने एथेंज (Athens) में पहले पहल देखा। उस समय वह तीसरा वा चौथी श्रेणी का सितारा मालूम होता था। उसके पश्चात् उसका प्रकाश धीरे धीरे कम होने लगा। अक्तवर सन् १८७७ ई० में वह दशवीं श्रेणी का सितारा रह गया। इसके पश्चात् भी उसका प्रकाश बराबर घटता रहा। अन्त में वह पन्द्रहवीं श्रेणी का सितारा रह गया। इस सितारे की भी प्रकाश विश्लेषक यन्त्र से परीक्षा की गई थी और उसमें हाईड्रोजन बहुतायत से पाई गई थी। सर रॉबर्ट बाल (Sir Robert Ball) की सम्मति में सौर परिवार से इस सितारे

की दूरी २०, ०००, ०००, ०००, ००० मील से कम नहीं है।

सन १८८५ ई० में इन्द्र मेधा (Andromeda) तारा मण्डल में एक नवीन सितारा दिखाई दिया। सौर परिवार से उसकी दूरी मालूम करने का प्रयत्न किया गया; किन्तु, निराशा के अतिरिक्त कुछ हाथ न आया। १७ अगस्त को वह नवीं श्रेणी का सितारा प्रतीत होता था, ३० अगस्त तक वह सातवीं श्रेणी का सितारा हो गया। इसके पश्चात् उसका प्रकाश घटने लगा।

२४ जनवरी सन १८९२ ई० को एडिन बर्ग (Edinburgh) के रहने वाले डा० एण्डरसन (Dr .Anderson) ने प्रजापति (Auriga) तारा मण्डल में एक नवीन सितारा देखा जो उस समय पञ्चम श्रेणी का सितारा प्रतीत होता था। ऐसा मालूम होता है कि एण्डरसन के देखने से पहले भी यह सितारा खाली आँख से दिखाई देता रहा है, किन्तु किसी ने उस तरफ ध्यान नहीं दिया। क्योंकि अमेरिका के प्रो० पिकरिङ्ग (Prof. Pickering) ने उन्हीं दिनों में जो फोटो लिये हैं उन पर इसका निशान बराबर मिलता है। उन प्लेटों को देखने से मालूम होता है कि १० नवम्बर को उसकी चमक चौथी श्रेणी के सितारों से कुछ अधिक थी। उसके पश्चात् वह धुंधला पड़ने लगा और जब उसे एण्डरसन ने देखा तो वह ५म श्रेणी का सितारा था। उसके पश्चात् उसका प्रकाश फिर बढ़ने लगा और १४ फरवरी को वह फिर ४र्थ श्रेणी के निकट पहुँच गया। तत्पश्चात् वह लगातार मध्यम होता चला गया। यहाँ तक कि अप्रैल में वह सोलहवीं श्रेणी का सितारा रह गया। किन्तु, ज्योतिषी लोग यह देखकर बहुत हैरान हुए कि अगस्त मास में वह फिर उन्नति करने लगा है। इस बार वह नवीं श्रेणी से आगे न बढ़ सका। उसके पश्चात् वह बहुत हल्का पड़ गया।

सन् १८९२ और १९०१ ई० के बीच में कई छोटे-छोटे नवीन सितारे प्रगट हुए जिनमें से बहुधा फोटोग्राफी की सहायता से ही पर्याप्त किये गये थे। किन्तु २१ फरवरी सन १९०१ ई० को परशुवश (Perseus) तारा मण्डल में एक बहुत चमकीला सितारा प्रगट हुआ। उसे बहुत से लोगों ने देखा। डा० एण्डरसन (Dr. Anderson) ने जब उसे प्रथम बार देखा तो वह दोयम श्रेणी का सितारा था। इससे पहली रात को उसी स्थान का जो फोटो लिया गया था उस पर वह नजर नहीं आता था। इससे मालूम होता है कि उस रात वह सितारा १२ वीं श्रेणी से भी कम चमकीला होगा। २३ फरवरी को वह ब्रह्म हृदय (Capella) के समान प्रथम श्रेणी का सितारा हो गया। इसके पश्चात् उसका प्रकाश घटने लगा और १ मार्च तक वह फिर दोयम श्रेणी में, और ६ मार्च तक तृतीय श्रेणी में पहुँच गया, सितम्बर मास में वह छठी श्रेणी का सितारा हो गया; मार्च सन् १९०२ ई० में आठवीं श्रेणी का, और जुलाई में १२वीं श्रेणी का रह गया।

सन् १६०४ ई० में केपलर ने जो नवीन सितारा देखा था उसके पश्चात् यह १९०१ ई० का नवीन सितारा ही ऐसा था जो प्रथम श्रेणी तक पहुँचा।

इसके पश्चात् सन् १९०३ व १९०५ ई० में भी दो नये सितारे दिखलाई दिये थे, पर वह बहुत मध्यम थे।

ऊपर लिखित बातों से मालूम होता है कि नवीन वा अल्प कालिक सितारे भी वास्तव में परिवर्तन शील सितारे ही हैं; भेद केवल इतना है कि उनके प्रकाश में परिवर्तन बड़े पैमाने पर होता है। यह समझ लेना गलत है, कि यह सितारे अचानक ही अभाव से उत्पन्न हो जाते हैं और कुछ दिनों वा महीनों अपनी शान दिखाकर फिर अभाव को प्राप्त हो जाते हैं। सच बात यह है कि नवीन सितारे, यद्यपि हमें दृष्टि नहीं आते, किन्तु किसी न किसी अवस्था में पहले ही उपस्थित होते हैं फिर किसी कारण से अचानक ही जल उठते हैं

और कुछ दिनों के पश्चात् फिर ठण्डे होकर अदृश्य हो जाते हैं।

अमेरिका में प्रो० पिकेरिङ्ग (Prof. Pickering) ने प्रकाश-परिवर्तन करने वाले समस्त सितारों को पाँच श्रेणियों में बाँट दिया है। (१) नवीन वा अल्प कालिक सितारे (२) दीर्घकाल में परिवर्तन करने वाले सितारे जैसे मीरा (Mira) (३) वह सितारे जिनमें थोड़ा थोड़ा परिवर्तन बेकायदा तौर पर किन्ही नियमों के अधीन जिनका अभी तक हमें ज्ञान नहीं है, प्रगट होता रहता है। आद्रा नक्षत्र (a orionis) और अल्काकश्यप (a cassiopae) इस प्रकार के सितारों के अच्छे उदाहरण हैं। डा० गोल्ड (Dr. Gould) की सम्मति है कि ऐसे बहुत थोड़े सितारे हैं जिनके प्रकाश में थोड़ा बहुत परिवर्तन न होता हो। (४) वह सितारे जिनमें परिवर्तन लगातार और नियमित रूप से जारी रहता है और वह चक्र केवल कुछ दिनों में पूरा हो जाता है इसका सब से अच्छा उदाहरण बेटा लीरी (Beta Lyrae), अर्थात् बखत तारा मण्डल का ब सितारा है। (५) वह सितारे जिनमें परिवर्तन लगातार तो जारी नहीं रहता, किन्तु, थोड़े-थोड़े समय के पश्चात् परिवर्तन होता रहता है, अर्थात् यूँ तो वह लगातार समान रूप से चमकते रहते हैं, पर विशेष समय के पश्चात् उनका प्रकाश कुछ देर के लिये कम हो जाता है और फिर शीघ्र ही अपनी पहली अवस्था पर आ जाता है। अब तक इस प्रकार के दस सितारे मालूम हो चुके हैं. अलगोल इसका सबसे अच्छा उदाहरण है। अलगोल के सम्बन्ध में हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं कि उसका एक अ-प्रकाशित साथी उसके गिर्द घूमता हुआ बार-बार उसके सामने से गुजरता है और उसके कुछ भाग को ग्रहण लगा देता है. जिससे उसका प्रकाश कुछ देर के लिये हलका पड़ जाता है। इस रीति से जिन तारों में प्रकाश परिवर्तन होता है वह अलगोल की तरह के परिवर्तन शील सितारे कहलाते हैं और पञ्चम श्रेणी में सम्मिलित हैं।

अन्य सितारों के प्रकाश परिवर्तन के कारण भिन्न-भिन्न ख्याल किये जाते हैं। कुछ सितारों की बाबत तो ऐसा विचार है कि वह हमारे सूर्य्य के समान ठोस पिण्ड नहीं हैं। क्योंकि, ऐसा ठोस पिण्ड यदि एक बार अच्छे प्रकार तप जाय तो फिर वह केवल कुछ दिनों वा मासों में ठंडा नहीं हो सकता। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि असंख्य नन्हें-नन्हें उल्काओं का एक समूह उल्काओं के एक और बहुत बड़े समूह के गिर्द पुच्छल तारे की तरह के लम्बे दीर्घवृत्त पर चक्कर काटता है। जब यह छोटा समूह बड़े समूह के केन्द्र के पास से गुजरने लगता है, तो वह, बड़े समूह के बहुत से दूर-दूर तक फैले हुए उल्काओं के बीच में से गुजरता है। इस समय उसकी गति भी अति तीव्र होती है। इस अवस्था में उल्काओं के परस्पर टकराने से छोटा समूह इस प्रकार प्रकाशित हो उठता है जिस प्रकार से उल्का पिंड हमारे वायु मण्डल में से गुजरते समय जल उठा करते हैं। जब वह समूह उस स्थान पर से गुजर जाता है तो उल्कायें धीरे-धीरे फिर ठंडी हो जाती हैं।

हमारा सूर्य्य भी एक प्रकार का परिवर्तन शील सितारा है, जिसका परिवर्तन चक्र ११ वर्ष है। हम सूर्य्य के वर्णन में बता चुके हैं कि सूर्य्य के पृष्ठ तल पर काले-काले दाग होते हैं जो सदा घटते-बढ़ते रहते हैं। स्पष्ट है कि यदि सूर्य्य को किसी दूर की दुनिया से देखा जाय तो जिस समय उसका मुख दाग रहित होगा उस समय वह अधिक चमकीला मालूम होगा, पर ज्यूँ-ज्यूँ उस पर काले दाग पैदा होते जायेंगे प्रकाश मन्द पड़ता जायगा; और जिस समय दाग धब्बे बहुत अधिक हो जायेंगे, चमक-दमक बहुत कम रह जायगी; इसके पश्चात् जब दाग कम होने लगेंगे तो प्रकाश बढ़ता मालूम होगा यहाँ तक कि ११ वर्षों के पश्चात् सूर्य्य की चमक फिर पूर्णता को प्राप्त हो जायगी। इस प्रकार से दागों के घटने बढ़ने से सूर्य्य के प्रकाश में यद्यपि थोड़ा

सा परिवर्तन होता है किन्तु होता अवश्य है और यह परिवर्तन लगातार जारी रहता है। ज्योतिर्विदों का विचार है कि सूर्य्य के सिवा कुछ और भी सितारे ऐसे हैं जिन के प्रकाश में इसी तरह दागों के कारण परिवर्तन हुआ करता है और लगातार जारी रहता है।

बेटा लीरी (B. Lyrae) की तरह के सितारों के परिवर्तन का कारण अभी तक ठीक-ठीक मालूम नहीं हो सका है। इस प्रकार के सितारों का प्रकाश, जैसा कि हम पहले वर्णन कर चुके हैं, एक चक्र में दो बार बढ़ता और दो बार घटता है। विचार यह है कि इन सितारों के प्रकाश के परिवर्तन का कारण किसी और सितारे की आकर्षण शक्ति है, अर्थात् उनके तल पर किसी दूसरे सितारे की आकर्षण शक्ति से ज्वार भाटा उत्पन्न होता रहता है जिससे सितारे की प्रकाश फेंकने की शक्ति घटती बढ़ती रहती है।

आकाश पर ऐसे सितारे भी पाये जाते हैं जो ठंडे होकर काले पड़ गये हैं जैसा कि अलगोल का साथी एक काला सितारा ही है। आकाश में इस प्रकार के बुझे हुए सितारे और भी बहुत से होंगे। यदि इस प्रकार के दो सितारे आपस में टकरा जायें तो उनकी टक्कर से इतनी उष्णता पैदा हो जायगी कि वह दोनों जल उठेंगे और इससे बड़ा उग्र प्रकाश उत्पन्न होगा। इस प्रकार से भी नवीन सितारे पैदा हो सकते हैं। किन्तु ऐसे सितारों का कुछ दिनों वा मासों में फिर ठंडा पड़ जाना असम्भव प्रतीत होता है। इस सम्बन्ध में प्रो० काप्टैन (Prof: Kapteyn) ने जो विचार प्रगट किया है वह ज्यादा सही प्रतीत होता है। उनकी सम्मति में बिलकुल काला वा कम प्रकाशित सितारा किसी अदृश्य गैस वा उल्काओं के अम्बार में से गुजरने लगता है तो सितारे का केवल ऊपरी तल रगड़ के कारण प्रकाशित हो उठता है और जब सितारा उस अम्बार में से गुजर जाता है तो वह थोड़े ही दिनों में ठंडा होकर फिर काला पड़ जाता है। कुछ लोगों की यह भी सम्मति है कि काले सितारे यद्यपि ऊपर से ठंडे होकर काले पड़ गये हैं किन्तु उनके भीतर अब भी बहुत-सी उष्णता भरी हुई है। वह कभी-कभी हमारे ज्वाला मुखी पर्वतों के समान फूट पड़ते हैं, और उनके भीतर से गर्म और प्रकाशित पदार्थ बड़ी मात्रा में बाहर निकलने लगते हैं। जब तक वह पदार्थ निकलते रहते हैं; सितारा प्रकाशित रहता है। ज्यूँ-ज्यूँ अग्नि वर्षा का जोर घटता जाता है, तारा भी मध्यम पड़ता जाता है और अन्त में दिखाई देने से रह जाता है। यदि यह ख़्याल सच्चा है तो सितारों पर जो अग्नि-वर्षा होती होगी वह हमारी पृथ्वी की अग्नि-वर्षा से लाखों गुणा अधिक होगी तभी तो वह इतनी अधिक दूरी से दृष्टि आ सकती है। (क्रमशः)

अशुद्धि-निवारण

मई १९४७ के अंक में, ४९ वें पृष्ठ पर छपे कालान्तर सौर में निम्न अशुद्धियाँ रह गई हैं।

१—३. मिथुन की १ ली तारीख १५-६-४७ की है परन्तु १६-६-४७ लिखा है।

२—४. कर्क को १६ तारीख १-८-४७ की होती है परन्तु इसमें २-८-४७ छपा है।

३—६. कन्या की १५, १ली अक्तूबर '४७ की जगह २-१०-४७ लिखा है।

४—७. तुला की १५ तारीख को १-११-४७ होती है।

५—९. धनु की १७ तारीख १-१-४८ की है परन्तु २-१-४८ छप गया है।

बाल संसार

सोने की आत्मकथा

लेखक—सुमन

बालको ! मेरी कहानी तो बहुत पुरानी है । और सम्भव है कि धातुओं में सबसे पहले मनुष्यों की दृष्टि मुझ पर ही पड़ी हो। यह तो बात सच ही है कि दुनियाँ की सभ्यता और राजनीति में मेरा बहुत बड़ा हाथ रहा है । मुझे पाने के लिए मनुष्य हर एक प्रकार का प्रयत्न करते हैं । बहुत पुरानी बात है कि मनुष्य लोहा, ताँबा आदि धातुओं को मुझ सरीखा बना देना चाहते थे । उनका विचार था, कि यदि पारस पत्थर मिल जावे, तो उसको इन सस्ती धातुओं में रगड़ कर सोना बना लिया जावे । परन्तु यह केवल उनका सपना था । कहाँ राजा भोज कहाँ और "भुजवा तेली"। अभी हाल की बात हैकि जर्मनी में मीथ नामक वैज्ञानिक ने घोषणा कर दी, कि उन्होंने पारा से सोना बना लिया । परन्तु यह बात कहाँ सच होने लगी, अंत में झूठ निकली । आज भी मैं वैसा ही पवित्र, सुन्दर और मूल्यवान हूँ, जैसा कि आदि में था ।

मुझे लोग नाना प्रकार से उपयोग में लाते हैं । मेरे सिक्के हर एक देश में बनाये जाते हैं । परन्तु पवित्र अवस्था में मैं इतना कोमल रहता हूँ कि मनुष्यों के स्पर्श से मेरी आकृति बिगड़ जाती है । इसलिये मुझे कठोर बनाने के लिये ताँबा, चाँदी आदि नीच धातुएँ मुझमें मिला देते हैं । अब मेरे सिक्कों की शक्लें बरसों तक ठीक बनी रहती हैं । शायद तुमने गिन्नी देखी होगी । इसमें मेरी बहुत अधिक मात्रा होती है । सोने के सिक्कों में मेरी मात्रा ९० प्रतिशत या इससे कुछ अधिक ही रहती है ।

तुमने फाउनटेनपेन की निब में चौदह कैरेट गोल्ड लिखा देखा होगा । 'कैरेट' मेरी पवित्रता का माप है । २४ कैरेट में खालिस सोना रहता है । गिन्नी २२ कैरेट की होती है । इसमें २२ भाग सोना और दो भाग और धातुओं का होता है । इसी प्रकार १४ कैरेट सोने में १४ भाग सोना और १० भाग और धातुओं का होता है । सबसे नीचे दर्जे का सोना ९ कैरेट कहलाता है । इसमें ९ हिस्सा सोना और १५ हिस्सा और धातुओं का होता है । यदि ९ कैरेट सोना में १५ हिस्से चाँदी के ही मिलाये जावें, तो इस धातु का रङ्ग सोने का न होकर चाँदी के समान हो जाता है । और यदि १५ हिस्से ताँबा ही मिलाया जाय, तो रंग ताँबे के समान लाल हो जाता है । इस कारण ९ कैरेट सोने में चाँदी और ताँबा दोनों की मात्राएँ इस प्रकार से मिलायी जाती हैं कि धातु का रंग सुनहला बना रहे ।

मेरी पवित्रता, सुन्दरता, चमक धमक और रङ्ग रूप को देख कर स्त्रियाँ मुझ पर मोहित हो जाती हैं । कभी-कभी तो मेरे पीछे घरों में लड़ाई झगड़े भी हो जाते हैं । मैं स्त्रियों की सुन्दरता बढ़ाने में काफी सहायता करता हूँ । अंगूठी, नेकलेस, इयररिंग आदि मेरे ही अंग है । हाँ, यह अवश्य है कि ताँबा, चाँदी आदि भी इनमें मिले रहते हैं जिससे मुझमें कठोरता आ जाती है ।

मेरा मूल्य अधिक होने के कारण बहुत सी वस्तुओं पर मेरी कलई कर दी जाती हैं । जिसको लोग सोने का पानी फिरा हुआ भी कहते हैं । ताँबे या चाँदी की चीजों पर मेरी कलई कर देने से उन वस्तुओं पर मेरी सी ही सुन्दरता और चमक आ जाती है । बिचारे अनपढ़ और सीधे साधे

मनुष्य इससे धोखे में पड़ जाते हैं कि वस्तु सोने की ही बनी हुई है। कुछ चीजों में जैसे—चाँदी की तश्तरियों में या पुस्तकों पर सुनहले अक्षरों में सोने के वर्क का ही उपयोग किया जाता है।

मैं बलवर्धक भी हूँ। मेरा सेवन करने से शक्ति बढ़ती है। लोग आँवले के मुरब्बे और पान पर मेरे वर्क लपेट कर इसी लिये खाते हैं। वैद्य और डाक्टर मुझे भस्म और दवाइयों के रूप में बलहीन मनुष्यों को खिलाते हैं। मेरा उपयोग तस्वीर खींचने वाले और लाल कांच बनाने वाले भी करते हैं।

मैं काफी भारी धातु हूँ। मेरा घनत्व १९.३ है और मैं १०६४° डिग्री पर पिघल जाता हूँ। मैं धातुओं में विद्युत और ताप का सबसे अच्छा चालक हूँ। मैं सबसे अधिक घनवर्धनीय और तन्य धातु हूँ। मेरे .००००००२ मिली मीटर के तार लेसों में काम आते हैं। मेरे इतने बारीक तार खींचे गये हैं कि ३२४० मीटर लम्बे तार का वजन केवल १ ग्राम होता है। यदि मेरे १ ग्रेन (ट्राय) वजन का तार खींचा जाय तो वह १½ मील लम्बा होवेगा।

मेरे वर्क .०००८९ मिली मीटर मोटाई के बनाये गये हैं। मुझे पीट कर इतने महीन वर्क बनाये गये हैं कि एक सेन्टीमीटर मोटाई के लिये ११०००० वर्कों की आवश्यकता होगी।

मेरा सोना या स्वर्ण नाम तो बहुत पुराना है। और यह मेरे सुन्दर और चमकदार पीले रंग के कारण दिया गया था। परन्तु जब वैज्ञानिकों ने देखा कि जलवायु, अम्ल और साधारण रासायनिकों व ताप का मुझ पर कुछ भी असर नहीं होता तो उन्होंने मुझे 'सभ्य धातु' कहना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार लोहा, ताँबा आदि 'नीच धातुओं' से अलग कर दिया। इन धातुओं पर जल, वायु, अम्लों आदि का बहुत जल्दी असर हो जाता है।

तुम कहते होगे कि मेरी कहानी बहुत लम्बी है। परन्तु मैं तुम्हें यह सुना कर कहानी खत्म करूँगा कि मैं कहाँ से और कैसे आया। मेरी 'सभ्य' प्रकृति के कारण मैं स्वतंत्र रूप में विचरता हूँ। मेरा किसी से सरलता से मेल नहीं खाता। मैं स्वतंत्र रूप में कुछ नदियों की मिट्टी और रेता में रहता हूँ। और स्फटिक या बल्लोरी पत्थर के पहाड़ों में पाया जाता हूं। इस तरह के पहाड़ कोलार में पाये जाते हैं जो कि मैसूर राज्य में है। भारतवर्ष में १९३७ में ३३०००० औंस सोना निकाला गया था। मैं सबसे बड़ी मात्रा में ट्रान्सवाल में पाया जाता हूँ जो कि दक्षिणी अफ्रीका में है। दुनियाँ में जितना सोना निकाला जाता है उसका आधे से ज्यादा दक्षिणी अफ्रीका से आता है। कैलीफोर्निया में मेरा १९० पौंड वजन का डेला मिला था। समुद्र के पानी में भी मैं वर्तमान हूँ परंतु मात्रा इतनी कम है कि मेरी कीमत से पांच गुना अधिक खर्च मुझे निकालने में हो जावेगा। जर्मन वैज्ञानिक हैबर ने १९१८ के युद्ध के पश्चात् इसका प्रयत्न किया था परंतु वे निष्फल रहे।

मुझे पवित्र रूप में पाने के लिये वैज्ञानिकों ने दो मुख्य तरकीबें निकाल रखी हैं। पहली तरकीब यह है कि नदियों की रेत और मिट्टी को मेजों पर पानी से धोते हैं। मेरे अधिक भारी होने के कारण मैं नीचे बैठ जाता हूँ और हलकी रेत और मिट्टी आदि पानी के बहाव में बह जाती है। इस तरह मैं रेत आदि से अलग कर लिया जाता हूँ। दूसरी तरकीब बिल्लोरी पत्थरों से अलग करने की है। इन पहाड़ों को तोड़ कर और बड़े-बड़े पत्थरों को कूट कर महीन टुकड़ों में कर लेते हैं। और फिर पोटसियम सायनाइड के बहुत हलके घोल को डालते हैं। इस घोल में केवल सोना घुल जाता है। इस घोल में जस्ता धातु डालने से सोना अलग हो जाता है और इसको छान कर मुझे अलग कर लेते हैं। खूब गरम करने पर मैं सुन्दर, चमकदार, पीतवर्ण में प्रगट हो जाता हूँ। यह कहानी सुनकर तुमने मेरे बारे में कुछ जानकारी कर ली होगी। परन्तु मुझे दुख है। मेरे कारण संसार की शान्ति भंग होती रहती है। घरों में, न्यायालयों में, गरीब और अमीरों में, देश देश में, यहाँ तक कि पूरे संसार में मेरे ही पीछे अशान्ति फैली हुई है।

प्रश्नोत्तर

विज्ञान के पाठकों से हमारे पास समय समय पर अनेक पत्र आते रहे हैं जिसमें वह अपनी आवश्यकतानुसार अनेक प्रश्न पूछते रहे हैं तथा कुछ वस्तुओं के बनाने की विधियाँ जानने की उत्सुकता दिखलाते रहे हैं। प्रत्येक पाठक के पास अलग अलग उत्तर देने से हमने यह अच्छा समझा कि विज्ञान में उनका उत्तर छाप दिया जाय जिससे और लोग भी उसका लाभ उठा सकें। अबसे विज्ञान के प्रत्येक अंक में इस प्रकार के प्रश्न व उत्तर छपा करेंगे। इस प्रकार के प्रश्न सम्पादक, 'विज्ञान' प्रयाग के पास भेजना चाहिये।

१—श्रीकृष्ण नारायण, कानपूर—सन्तरे के छिलके का मारमलेड बनाने की विधि जानना चाहते हैं।

सन्तरे के छिलकों को महीन टुकड़ों में कतर लो और इन कटे हुए छिलकों को कई बार पानी के साथ उबालो जिससे उनकी कड़ुवाहट कम हो जाय और छिलके मुलायम हो जायँ। चार या पाँच बार उबालने से छिलके काफी मुलायम हो जाते हैं और उनकी कड़ुवाहट जाती रहती है।

५० भाग चीनी की चाशनी बनाओ और उसमें १० भाग सन्तरे का रस डाल दो। फिर ४० भाग उबले हुए छिलके डाल कर उबालने को रख दो। बीच बीच में ठंढे चम्मच से देखते जाओ कि जेली जमती है या नहीं। जब जेली जमने लगे तो इसे कृमिरहित किये गये बरतनों में भर दो। (विशेष विवरण विज्ञान परिषद् की प्रकाशित पुस्तक फल-संरक्षण में मिल सकता है।

२—श्री नरेन्द्रनाथ, देहली—टरपेन्टाइन स्टेन्स क्या होते हैं?

तेल में घुलनशील तारकोल के रंगों के तारपीन घोल को टारपेन्टाइन स्टेन्स कहते हैं। रङ्ग को तारपीन में घोलकर उसमें थोड़ा मोम भी घोल दिया जाता है। इससे लकड़ी खराब नहीं होती और एक बड़ी सतह पर एक सी पॉलिश आ जाती है। यह ज्यादा स्थायी नहीं होते और हवा तथा प्रकाश में खुला रहने से बिगड़ जाते हैं।

३—श्री रामकृष्ण, इटावा—नाखूनों की पालिश बनाने की विधि जानना चाहते हैं।

जिलेटीन	८ ग्राम
एमाइल एसीटेट	२० ग्राम
एसीटोन	६७ ग्राम
इओसिन	५ ग्राम

जिलेटीन के छोटे-छोटे टुकड़े करके एमाइल एसीटेट तथा एसीटोन के मिश्रण में डाल दो। कुछ देर में जिलेटीन घुल जायगी। अब रंग (इओसीन) डाल कर घोल को हिलाओ और छान लो।

४—श्री जगन्नाथ प्रसाद, वालटेयर से कोई अच्छी चटनी बनाने की विधि जानना चाहते हैं।

गुड़	८ छटाक
अदरक	८ ,,
किसमिस	४ ,,
छुहारे	३ ,,
सोंठ	½ ,,
मिर्च	१ ,,
सिरका	१६ ,,

गुड़ का शरबत बनाकर उबाल लो और सिरका मिला दो बाकी सब चीजें साफ़ करके इसमें मिलाकर गरम कर लो और आवश्यकतानुसार नमक डाल कर बड़े बर्तन में रख लो।

५—श्री असीम कुमार दत्त, ढाका से यू डिकलोन बनाने की विधि जानना चाहते हैं।

इत्र बरगमे	३½ औंस
,, नीबू	५ ,,
,, निरोली	३½ ,,
,, सन्तरा	१½ ,,
,, रोजमैरी	२½ ,,
एल कोहल	३० क्वार्ट

यह वस्तुयें मिलाने से अच्छा यूडी क्लोन बन जायगा।

वैज्ञानिक समाचार

वैज्ञानिक मानव-शक्ति समिति

अगले १० वर्षों में भारत के वैज्ञानिक तथा औद्योगिक क्षेत्रों में कितने और किस प्रकार के विज्ञान तथा उद्योग धन्धों की शिक्षा प्राप्त आदमियों की आवश्यकता होगी, इसका अनुमान करने के लिए भारत सरकार ने एक समिति स्थापित की है। यह समिति इन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए आगामी ५ वर्षों की योजनाओं की सिफारिश करेगी। इस समिति में निम्न सदस्य रहेंगे :

सर शफात अहमद खाँ (सभापति), श्री अफ़ज़ल हुसेन, डा० होमी भाभा, सर शान्ति स्वरूप भटनागर, डा० के० ए० हमीद, श्रीमती हन्सा मेहता, रायबहादुर ए० न० खोसला, सर के० एस० कृष्णन, श्री० जी० एल० मेहता, प्रो० जे० एन० मुकर्जी, डा० एम० कुरेशी, डा० बीरबल साहनी, विङ्ग कमांडर एच० सिंह, डा० डी० एन० वादिया, डा० एस० आर० सेनगुप्त (मंत्री)।

धातुओं की भारतीय इंस्टीट्यूट

भारत में धात्वीय अध्ययन तथा अनुसंधान को प्रोत्साहन देने के लिए एक इंस्टीट्यूट की स्थापना की गई है। ऐसी आशा की जाती है कि यह संस्था ब्रिटिश तथा अमेरिकन धात्वीय इंस्टीट्यूटों की तरह काम करेगी। इस वर्ष के लिए टाटा स्टील कम्पनी के डाइरेक्टर सर जे० जे० गांधी इसके सभापति और भारत सरकार के धातु विभाग के अफसर डाक्टर डी० पी० अन्तिया इसके मंत्री चुने गये हैं।

शोक समाचार

विटामिन विज्ञान के जन्मदाता सर फ्रेडेरिक हापकिन्स का मृत्यु समाचार समस्त वैज्ञानिक संसार में बड़े शोक से पढ़ा जायगा।

सर फ्रेडेरिक का जन्म ईस्टबोर्न में २० जून सन् १८६१ में हुआ था। पिता की असामयिक मृत्यु के कारण आप का अध्ययन काल बहुत ही देर में आरम्भ हो सका। चिकित्सा शास्त्र की प्रथम ट्रेनिङ्ग आपको २७ वर्ष की अवस्था में लन्दन के गाई नामक अस्पताल में मिली। १८९४ में आपने लन्दन से शरीर विज्ञान में डिगरी प्राप्त की इसके चार वर्ष बाद सर मिचेल फास्टर के निमन्त्रण पर आप कैमब्रिज में शारीरिक रसायन शास्त्र के अध्ययन की योजना को कार्यान्वित करने के लिये गये। १९१३ में आपके ही प्रयत्न से कैम्ब्रिज में जीव-रसायन का एक पृथक विभाग स्थापित किया गया और आप उसके प्रथम आचार्य नियुक्त हुए। लगभग इसी समय आपने चूहों पर परीक्षण करके स्पष्टतया यह प्रदर्शित कर दिया कि कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन और चरबी के अतिरिक्त शारीरिक स्वस्थता के लिए भोजन में एक और अंग भी अत्यन्त आवश्यक है, इसी आवश्यक अङ्ग का नाम आगे चलकर विटामिन पड़ा।

सन १९३१ से सर फ्रेडेरिक, कैम्ब्रिज में उन प्रोफेसरशिप के आसन को शोभित कर रहे थे। आपकी गवेषणाओं में विटामिन के अतिरिक्त १९२१ के लगभग ग्लूटाथायोन की गवेषणा भी उल्लेखनीय है।

वैज्ञानिक संसार से अपने जीवन काल में आपको बहुत सम्मान तथा प्रतिष्ठा मिली। आपको आक्सफोर्ड, मैंचेस्टर, डबलिन, शेफील्ड, बरमिंघम तथा एबरडीन विश्वविद्यालयों से आपको 'डाक्टर' की उपाधि से सम्मानित किया और १९२९ में आपको शरीर विज्ञान के क्षेत्र में की गई गवेषणाओं के पुरष्कार स्वरूप नोबेल-पुरष्कार प्रदान किया गया। १९२५ में आपको 'सर' की उपाधि दी गई।

सर फ्रेडेरिक ने अपने जीवन काल में किये हुए अनुसन्धान कार्य्य से विज्ञान के इतिहास में जीव तथा शरीर रसायन के अग्रगण्य नेता के रूप में अपना स्थान सदैव के लिए बना लिया है। उनकी मृत्यु ने हमारे बीच से मानव समाज के एक बहुत बड़े हितकारी को हटा लिया है। परमात्मा उनकी आत्मा को शान्ति दे।

विज्ञान-परिषद्‌की प्रकाशित प्राप्य पुस्तकोंकी सम्पूर्ण सूची

१—विज्ञान प्रवेशिका, भाग १—विज्ञान की प्रारम्भिक बातें सीखने का सबसे उत्तम साधन—ले० श्री रामदास गौड़ एम० ए० और प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी० ;

२—चुम्बक—हाईस्कूल में पढ़ाने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी०; सजि०; ।।=)

३—मनोरञ्जक रसायन—इसमें रसायन विज्ञान उपन्यासकी तरह रोचक बना दिया गया है, सबके पढ़ने योग्य है—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम० एस-सी० ; १।।),

४—सूर्य-सिद्धान्त—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान-भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखनेका सबसे सुलभ उपाय—पृष्ठ संख्या १२१५ ; १४० चित्र तथा नकशे—ले० श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; सजिल्द; दो भागोंमें, मूल्य ६)। इस भाष्यपर लेखकको हिन्दी साहित्य सम्मेलनका १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है।

५—वैज्ञानिक परिमाण—विज्ञानकी विविध शाखाओंकी इकाइयोंकी सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहालकरण सेठी डी० एस-सी०; ।।।),

६—समीकरण मीमांसा—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी, प्रथम भाग १।।) द्वितीय भाग ।।=),

७—निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री बी० एस सी० ; ।।),

८—बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित—इंटरमीडियेटके गणितके विद्यार्थियोंके लिये—ले० डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी० ; १।),

९—गुरुदेवके साथ यात्रा—डाक्टर जे० सी० बोसकी यात्राओंका लोकप्रिय वर्णन ; ।–),

१०—केदार-बद्री यात्रा—केदारनाथ और बद्रीनाथके यात्रियोंके लिये उपयोगी; ।),

११—वर्षा और वनस्पति—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शङ्करराव जोशी; ।),

१२—मनुष्यका आहार—कौन-सा आहार सर्वोत्तम है—ले० वैद्य गोपीनाथ गुप्त; ।=),

१३—सुवर्णकारी—क्रियात्मक—ले० श्री गंगाशंकर पचौली; ।),

१४—रसायन इतिहास—इंटरमीडियेटके विद्यार्थियोंके योग्य—ले० डा० आत्माराम डी० एस-सी०; ।।।),

१५—विज्ञानका रजत-जयन्ती अंक—विज्ञान परिषद् के २५ वर्षका इतिहास तथा विशेष लेखोंका संग्रह; १)

१६—फल-संरक्षण—दूसरा परिवर्धित संस्करण—फलोंकी डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार आदि बनानेकी अपूर्व पुस्तक; २१२ पृष्ठ; २५ चित्र—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्र-नारायण सिंह एम० एस-सी०; २),

१७—व्यङ्ग-चित्रण—(कार्टून बनानेकी विद्या)—ले० एल० ए० डाउस्ट ; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी, एम० ए०; १७५ पृष्ठ; सैकड़ों चित्र, सजिल्द; १।।)

१८—मिट्टीके बरतन—चीनी मिट्टीके बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा ; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र, सजिल्द; १।।),

१९—वायुमंडल—ऊपरी वायुमंडलका सरल वर्णन—ले० डाक्टर के० बी० माथुर; १८६ पृष्ठ; २५ चित्र, सजिल्द; १।।),

Reg. No. A 372

२०—लकड़ी पर पॉलिश—पॉलिशकरनेके नवीन और पुराने सभी ढंगोंका ब्योरेवार वर्णन। इससे कोई भी पॉलिश करना सीख सकता है—ले० डा० गोरख-प्रसाद और श्रीरामयत्न भटनागर, एम०, ए०; २१८ पृष्ठ; ३१ चित्र, सजिल्द; १।।),

२१—उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश; आकार बड़ा विज्ञानके बराबर २६० पृष्ठ; २००० नुसखे, १०० चित्र; एक-एक नुसखेसे सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं या हज़ारों रुपये कमाये जा सकते हैं। प्रत्येक गृहस्थके लिये उपयोगी; मूल्य अजिल्द २) सजिल्द २।।),

२२—कलम-पेवंद—ले० श्री शंकरराव जोशी; २०० पृष्ठ; ५० चित्र; मालियों, मालिकों और कृषकोंके लिये उपयोगी; सजिल्द; १।।),

२३—जिल्दसाज़ी—क्रियात्मक और ब्योरेवार। इससे सभी जिल्दसाज़ी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०; १८० पृष्ठ, ६२ चित्र; सजिल्द १।।),

२४—त्रिफला—दूसरा परिवर्धित संस्करण-प्रत्येक वैद्य और गृहस्थके लिये—ले० श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार, २१६ पृष्ठ; ३ चित्र, एक रङ्गीन; सजिल्द २।),

यह पुस्तक गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय, की १३ श्रेणी के लिए द्रव्यगुणके स्वाध्याय पुस्तकके रूपमें शिक्षापटलमें स्वीकृत हो चुकी है।"

२५—तैरना—तैरना सीखने और डूबते हुए लोगोंको बचाने की रीति अच्छी तरह समझायी गयी है। ले० डाक्टर गोरखप्रसाद पृष्ठ १०४ मूल्य १),

२६—अंजीर—लेखक श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार-अंजीर का विशद वर्णन और उपयोग करनेकी रीति। पृष्ठ ४२, दो चित्र, मूल्य ।।),
यह पुस्तक भी गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालयके शिक्षा पटलमें स्वीकृत हो चुकी है।

२७—सरल विज्ञान-सागर प्रथम भाग—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद। बड़ी सरल और रोचक भाषा में जंतुओंके विचित्र संसार, पेड़ पौधों की अचरज-भरी दुनिया, सूर्य, चन्द्र और तारोंकी जीवन कथा तथा भारतीय ज्योतिषके संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। विज्ञानके आकार के ४५० पृष्ठ और ३२० चित्रोंसे सजे हुए ग्रन्थ की शोभा देखते ही बनती है। सजिल्द मूल्य ६), मिल है।

२८—वायुमण्डलकी सूक्ष्म हवाएँ—ले० डा० सन्त-प्रसाद टंडन, डी० फिल० मूल्य ।।।)

२९—खाद्य और स्वास्थ्य—ले० श्री डा० ओंकारनाथ परती, एम० एस-सी०, डी० फिल० मूल्य ।।।)

हमारे यहाँ नीचे लिखी पुस्तकें भी मिलती हैं:—

१—विज्ञान हस्तामलक—ले०—स्व० रामदास गौड़ एम० ए० भारतीय भाषाओंमें अपने ढंगका यह निराला ग्रंथ है। इसमें सीधी सादी भाषामें अठारह विज्ञानोंकी रोचक कहानी है। सुन्दर सादे और रंगीन पौने दो सौ चित्रोंसे सुसज्जित है, आजतककी अद्भुत बातोंका मनोमोहक वर्णन है, विश्वविद्यालयोंमें भी पढ़ाये जानेवाले विषयोंका समावेश है, अकेली यह एक पुस्तक विज्ञानकी एक समूची लैब्रेरी, है एक ही ग्रंथमें विज्ञानका एक विश्वविद्यालय है। मूल्य ६)

२—सौर-परिवार—लेखक डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० आधुनिक ज्योतिष पर अनोखी पुस्तक ७७६ पृष्ठ, ५८७ चित्र (जिनमें ११ रंगीन हैं) मूल्य १२) इस पुस्तक पर काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा से रेडिचे पदक तथा २००) का छन्नूलाल पारितोषिक

३—भारतीय वैज्ञानिक—१२ भारतीय वैज्ञानिकोंकी जीवनियाँ—ले० श्री श्याम नारायण कपूर, सचित्र ३८० पृष्ठ; सजिल्द; मूल्य ३।।) अजिल्द ३)

४—वैक्युम-ब्रेक—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा। यह पुस्तक रेलवेमें काम करने वाले फ़िटरों इंजन-ड्राइवरों, फ़ोर-मैनों और कैरेज एग्ज़ामिनरोंके लिये अत्यन्त उपयोगी है। १६० पृष्ठ; ३१ चित्र जिनमें कई रंगीन हैं, २),

विज्ञान-परिषद्, बेली रोड, इलाहाबाद

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुखपत्र

भाग ६५ | सम्वत् २००४, जुलाई १९४७ | संख्या ४

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries

प्रकाशक

विज्ञान-परिषद्,

बेली रोड, इलाहाबाद।

[...क मूल्य ३)]

[एक संख्या का मूल्य...

प्रयागकी

विज्ञान-परिषद् के मुख्य नियम

परिषद्‌का उद्देश्य

१—१९७० वि० वा १९१३ ई० में विज्ञान परिषद्‌की स्थापना इस उद्देश्य से हुई कि भारतीय भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञानके अध्ययनको और साधारणतः वैज्ञानिक खोजके कामको प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद्‌का संगठन

२—परिषद्‌में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमोंके अनुसार सभ्यगण सभ्योंमेंसे ही एक सभापति, दो उपसभापति एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमंत्री, दो मंत्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे, जिनके द्वारा परिषद्‌की कार्यवाही होगी।

पदाधिकारियोंका निर्वाचन

१८—परिषद्‌के सभी पदाधिकारी प्रतिवर्ष चुने जायँगे। उनका निर्वाचन परिशिष्टमें दिये हुये तीसरे नकशेके अनुसार सभ्योंकी रायसे होगा।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्यको ५) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश-शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ ७० रु० की रकमदे देनेसे कोई भी सभ्य सदाके लिये वार्षिक चन्देसे मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्योंको परिषद्‌के सब अधिवेशनोंमें उपस्थित रहनेका तथा अपना मत देनेका, उनके चुनावके पश्चात् प्रकाशित, परिषद्‌की सब पुस्तकों, पत्रों, विवरणों इत्यादिके बिना मूल्य पानेका—यदि परिषद्‌के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धनसे उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन-चौथाई मूल्यमें मिलेंगी।

२७—परिषद्‌के सम्पूर्ण स्वत्वके अधिकारी सभ्यवृन्द समझे जायँगे।

परिषद्‌का मुखपत्र

३३—परिषद् एक मासिक-पत्र प्रकाशित करेगी जिसमें सभी वैज्ञानिक विषयोंपर लेख प्रकाशित हुआ करेंगे।

३४—जिन लेखोंको परिषद् प्रकाशित करेगी उनमें जो लेख विशेष महत्व और योग्यताके समझे जायँगे उनके लेखकोंको अपने अपने लेख की बीस प्रतियाँ बिना मूल्य पानेका अधिकार होगा।

विज्ञान

विज्ञान-परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विनेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ।। तै० उ० ।३।५।

भाग ६५	सम्वत् २००४, जूलाई, १९४७	संख्या ४

पूर्व-ऐतिहासिक जन्तु-जगत

[ले०—श्री० उमेश चन्द्र बी० एस-सी० (फ़ाइनल)]

[ज्योतिषी पृथ्वी की आयु लगभग २,०००,०००,००० (दो अरब) वर्ष बतलाते हैं। पहिले पहल पृथ्वी नीहारिका के रूप में थी। धीरे २ पृथ्वी व चन्द्रमा पृथक हुए। उस समय यह प्रकाशवान थे और इनका धरातल पिघला हुआ था। जल अत्याधिक गर्म वाष्प के रूप में था और उसके नीचे था द्रवीभूत 'लावा'। बहुत धीरे २ पृथ्वी ठंढी हुई और एक समय ऐसा आया जब सम्पूर्ण वाष्प ने ठंढे हो कर मेघों का रूप धारण किया। पृथ्वी पर प्रथम वर्षा हुई और सर्व-प्रचीन चट्टानें बहुत लम्बे काल तक वर्षा की भयंकर चोट सहती रहीं। जमती हुई चट्टानों में गर्म सोते बह निकले और झीलें व नाले बन गए।

लाखों वर्ष एक के बाद एक बीत गए। दिन बड़े होने लगे और सूर्य दूर हो गया। चन्द्रमा की गति मन्द हो गई। भयंकर आंधी व वर्षा समाप्त हो गई। बड़े २ सागरों का निर्माण हुआ।]

जीवन का आरम्भ—

प्रथम चट्टानों की सृष्टि १,६००,०००,००० वर्ष पहिले हुई थी। सबसे प्राचीन चट्टानें 'आदिजीवक' व 'प्रतिजीवक' हैं। आदिजीवक, युग की आयु पृथ्वी की आयु की तिहाई और प्रतिजीवक युग की चौथाई है। यह युग जीवन रहित हैं। सम्भव है प्रतिजीवक युग में अमीबा इत्यादि रहे हों।

जीवन का आरम्भ पुराणजीवक युग से कहना चाहिये। इस समय घोंघा, सीपी, मूँगे, झींगे इत्यादि मिलते हैं। कुछ लाख वर्षों के बाद केकड़ों का प्रादुर्भाव हुआ। परन्तु अभी तक गहरे जल के

यह लेख एच० जी० वेल्स महोदय की 'आउटलाइन्स आफ़ हिस्ट्री' नामक पुस्तक आधार है पर और 'टेक्निकल' शब्दों के उल्था का आधार श्री राहुल सांकृत्यायन की 'विश्व की रूप रेखा' है।—ले०

भूगर्भ विज्ञान के अनुसार समय विभाग

युग		काल	'जीवन' की दशा	पृथ्वी की दशा	
आधुनिक युग	(२०,००० वर्ष)	आधुनिक काल (२०,००० वर्ष)	वास्तविक मानव-मस्तिष्क का विकास।		बौद्धिकता का युग
		कास्केडियन प्रलय			
नव जीवक (४%)	उत्तर काल (१,०००,००० वर्ष)	प्लाइस्टोसीय	ग्लेशियल काल के कारण बड़े स्तनपोषितों की समाप्ति	अस्थिर तापक्रम	स्तनपोषितों का युग
	पूर्व काल (६०,०००,००० वर्ष)	प्लायोसीय	मनुष्य की उत्पत्ति	ऐल्प व हिमालय आदि पर्वतों का निर्माण। आधुनिक वनस्पति।	
		मायोसीय	आधुनिक स्तनपोषितों का आधिक्य		
		ओलिगोसीय	आधुनिक स्तनपोषितों का आधिक्य		
		इओसीय	प्राचीन स्तनपोषितों की समाप्ति		
		पेलियोसीय	प्राचीन स्तनपोषितों की उत्पत्ति		
		लारमाइड प्रलय			
मध्य जीवक (८%)	(१२०,०००,००० वर्ष)	क्रिटेशीय	उरङ्गमों का स्वर्णकाल	राकी व एन्डीज़ का निर्माण	सरीसृपों का युग
	(१५५,०००,००० वर्ष)	जुरासीय	पक्षी व नभचर उरङ्गम	नीचे स्थल, विस्तृत मरुभूमि	
	(१९०,०००,००० वर्ष)	ट्रायसिय	उरङ्गमों की उत्पत्ति	बड़ी नदियां व उनके नीचे मैदान	
		एपेलीशियन प्रलय			
पुराण जीवक (७४%)	उत्तरकाल (२१५,०००,००० वर्ष)	पर्मीय	स्थलचर जीवों की उत्पत्ति	पर्वतों का निर्माण, अस्थिर तापक्रम	मत्स्यों का युग
		कार्बनीफेरीय	प्राचीन उरंगम, कृटि व शकं	नीचे स्थल, विशाल सागर	
	मध्यकाल (३५०,०००,०००)	डेवोनीय	प्रथम अर्द्धजलचर	दलदल, शुष्क वायु	
	आदि काल (१,४२०,०००,००० वर्ष)	सिलूरीय	फुफ्फुसदार मत्स्य, बिच्छू व मकड़े।	अधिकतर स्थल जल के नीचे	
		आर्दोविसीय	मूंगे व मछलियां	नीचे स्थल	सीपों का युग
		केम्ब्रीय	घोंघे, सीपी, झींगे व केकड़े	नीचे स्थल, सम जलवायु	

महा-कैनायन प्रलय

प्रतिजी० (३८%)			जीवन के चिन्ह बहुत कम। सम्भवतः अमीबा	भूकम्प	
आदिजी० (२५%)			जीवन रहित	पृथ्वी की उथल पुथल	

(कोष्ट चिन्ह में दिये अंक उस काल का समय बतलाते हैं)

जन्तुओं अथवा स्थल के जन्तुओं की उत्पत्ति नहीं हुई थी।

मत्स्यों का युग—

सिलूरीय काल में एक नई प्रकार के जन्तु की सृष्टि हुई। इन जन्तुओं के आँख व दाँत थे और वे भली भांति तैर सकते थे। यह मछलियाँ प्रथम रीढ़-धारी जन्तु थे। डेवोनीय काल में इन मछलियों की मात्रा अत्याधिक बढ़ गई थी। उस काल की मछलियाँ अब नहीं मिलतीं वे अधिक बड़ी नहीं थीं—अधिक से अधिक ३ या ४ फिट तक होती थीं। कुछेक २० फीट तक होती थीं। वे जल में इधर उधर भागतीं, वायु में कूदतीं और सागर की घनी बनस्पति में छिपती फिरती थीं। वे एक दूसरे का पीछा व शिकार करतीं।

दलदलों का युग—

मत्स्य युग के अन्तमें जब कि बहुत उथले सागर व दलदल पाये जाते थे, जीवन जलसे स्थल की ओर अग्रसर हुआ। इस काल में प्राचीन कीटों का आधिक्य था। कुछ कीड़े बहुत बड़े होते थे। ड्रेगन मक्खी के पंखों की लम्बाई २९ इंच थी। जलचर केंकड़ों व बिच्छुओं के सम्बन्धी स्थलचर मकड़े व बिच्छू थे मछलियोंसे अर्द्धजलचरों (मेंढक इत्यादि) की उत्पत्ति हुई। यद्यपि इन जीवों ने स्थल पर रह कर हवामें सांस लेना सीख लिया था, तथापि उनको अण्डे देने के लिये जल की शरण में जाना पड़ता था।

'बनस्पति' ने भी थल पर रहना सीख लिया था। इस काल में वृक्षों का तना लकड़ीका होने लगा और जीवों की भांति इनकी भी जड़ पानी में होती थी। उरङ्गमों की सृष्टि हो गई थी।

उरङ्गमों का युग—

दलदलों के लम्बे काल के बाद ग्लेशियल काल आया। इसको 'एपेलीशियन प्रलय' कहते हैं इसमें पृथ्वी का तापक्रम अत्यन्त स्थिर रहा और वायु अत्यन्त शुष्क। इस काल की चट्टानें बलुहा पत्थरों के रूप में है। प्राचीन दलदल नए प्रस्तरोंसे ढंग एक और वृक्ष दब कर कोयले की खानों में परिवर्त्तित हो गए।

ताप व आर्द्रता के लौटने पर नए प्रकार के जीवों की उत्पत्ति हुई, ऐसे जीव जो कि उत्पन्न होते ही वायु में सांस ले सकें। आज के सब सरीसृप उस समय अधिक मात्रामें वर्त्तमान थे परंतु उनके अतिरिक्त अनेक भयानक व अद्भुत जीव मिलते थे। जो अब नहीं पाए जाते। यह अद्भुत उरङ्गम १०० फिट तक लम्बे होते थे। 'डिप्लोडस कार्नेजइ' ८४ फिट लम्बा जीव था और 'ब्राइगेन्टोसारस' इससे भी लम्बा १०० फिट का जीव था। इनके ऊपर मांस भक्षक 'डाइनोसारस' निर्वाह करते थे 'टिरेनोसारस' इनमें सबसे भयानक माना जाता है।

यह भयानक उरङ्गम अपनी चाल से पृथ्वी को हिलाते थे चमगीदड़ सदृश 'टेरोडैक्टाइल' वायु में कीड़ों का पीछा करते थे। कुछ उरङ्गम जल में भी लौट गए।

प्रथम पक्षी व स्तनपोषित जन्तु—

अन्त में सूर्य की तीक्ष्ण तपन कम हुई। कुछ छोटे उरङ्गम शत्रुओं के भय से पहाड़ों पर चले गए।

इनके ठंढ से बचने के लिये पर निकल आए। यह जन्तु अपने अण्डों की रक्षा करते थे और उन्हें अपने शरीर की गर्मी से सेते थे। सर्व प्राचीन पक्षी जलचर थे और वे मछलियों पर जीवन निर्वाह करते थे—जैसे हेस्पेरार्निस। उनकी अगली भुजाएँ तैरने के लिये उपयुक्त थीं. उड़ने के लिये उपयुक्त थीं, उड़ने के लिये नहीं। उरङ्गमों व पक्षियों के बीच के जन्तु अब नहीं मिलते, उनके दांत व छिपकलीकी सी दुम होती थी। उदाहरणार्थ 'आर्किओप्टेरिक्स'। सर्वप्रथम वास्तविक पक्षी 'इकथिओर्निस' था।

प्रथम पक्षी के लाखों वर्ष बाद प्रथम स्तनपोषियों की उत्पत्ति हुई। उनके ठंढ से बचने के लिये पर के स्थान पर बाल थे वे अण्डों की रक्षा करने के बदले उन्हें अन्दर रखने लगे जब तक वह बच्चे का रूप नहीं धारण कर लेते। वे अपने बच्चों को दूध पिलाते थे। उरङ्गम व स्तनपोषियों के बीच के जन्तु 'एकिडना व 'सैटिपस हैं।

ठंढक ने भयानक उरङ्गमों का अन्त कर दिया। 'लारमाइड प्रलय' के बाद उरङ्गमों का स्थान पक्षियों व स्तनपोषियों ने ले लिया।

स्तनपोषितों का युग—

'नवजीवक युग के आरम्भ में पृथ्वी में बहुत से भूकम्प आए और बहुत उथल पुथल रही। इसी काल में हिमालय इत्यादि का निर्माण हुआ। यह ग्लेशियल युग था।

इओसीय काल में चरने वाले पशु-आधुनिक घोड़े का लघु पूर्वज, लघु ऊँट, सुअर, टापिर व बन्दर इत्यादि का आधिक्य था। इन पशुओं पर मांस भक्षक पशु रहते थे। इस काल के अत्यन्त भयानक पशु जैसे गैंडे के वंशज 'युइटेथीर', 'टाइटेनोथीर इत्यादि अब नहीं मिलते। इसी काल में प्रथम कुत्ते व बिल्लियाँ, लम्बे दाँत वाला चीता इत्यादि की सृष्टि हुई। म्योसीय काल में ऊँट, हिरन व लामा इत्यादि अधिकता से मिलते थे।

प्लाइस्टोसीयकाल में पृथ्वी को मनुष्य सदृश बन्दर (हाइडेलबर्ग मानव) के दर्शन हुए। इस समय तक पशुओं के मस्तिष्क की काफी उन्नति हो चुकी थी और अधिक उन्नति हो रही थी। इस काल में महा-गज, बालदार गैंडा, रेन्डियर, जंगली घोड़े इत्यादि का प्रादुर्भाव था।

मनुष्य—

'कास्केडियन प्रलय' के बाद बहुतसे महान जन्तु समाप्त हो गए। बन्दरों से मनुष्य का विकास हुआ। प्रथम वास्तविक मनुष्य की उत्पत्ति 'आधुनिक युग' में हुई। बन्दर और मनुष्य के बीच बहुत जीव हुए। सबसे पहले 'एपमैन' की उत्पति हुई, यह खड़े होकर चल सकता था। फिर 'डान-मैन' आया। दक्षिणी अफ्रीका में बन्दर व मनुष्य के बीच की एक जाति का पता लगा है, इसे 'रोडीशियन मानव' कहते हैं।

'पूर्व मनुष्य' गुफाओं में रहते थे। वे अग्नि व पत्थर के अस्त्रों का प्रयोग जानते थे। वे अपने वस्त्र खालों से बनाते थे। उनके माथे छोटे होते थे और जबड़े निकले हुए। अपना सर मोड़ कर पीछे अथवा आकाश की ओर नहीं देख सकते थे। इनको 'निएन-डर्थल मानव' कहते हैं।

आजसे ३०-३५ सहस्र वर्ष पहले प्रथम वास्तविक मनुष्य उत्पन्न हुआ। वास्तविक मानवों के अस्थि पंजर को-मेग्नन व ग्रीमाल्डो इत्यादि में पाए जाते हैं और इन्हीं स्थानों के नाम पर इनका नामकरण हुआ है। यह पाषाण युगके अन्तिम मनुष्य थे। नवपाषाण युग में मनुष्य ने अस्त्रों को चिकना,करना व रंगना सीख लिया।

इसके बाद इतिहास का आरम्भ होता है।

५—सितारों के झुरमुट और आकाश गंगा

(Star clusters and the Milky way)

[लेखक : श्री नत्थन लाल गुप्त]

विज्ञान में प्रकाशित पिछले लेखों में हम सितारों के ऐसे परिवारों का वर्णन कर चुके हैं जो दो, तीन व चार सितारों से मिलकर बने हैं; किन्तु आकाश में सितारों के ऐसे गुच्छे भी पाये जाते हैं जो सैकड़ों अथवा हजारों सितारों का संघात हैं। वह सितारों के झुरमुट कहलाते हैं। उनमें से अधिकतर तो दूरबीन से ही देखे जा सकते हैं, पर कुछ ऐसे भी हैं जो खाली आँख से भी दिखाई दे जाते हैं। वह यूँ तो प्रकाश का एक धब्बा सा प्रतीत होते हैं किन्तु जब उन्हें किसी बड़ी दूरबीन से देखा जाता है तो वह असंख्य नन्हें २ सितारों का ढेर मालूम होते हैं।

आकाश में सितारों के ऐसे झुरमुट (Star clusters) सैकड़ों मालूम हो चुके हैं। इनके सितारे बहुत ही मद्धम होते हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि वह सितारे सचमुच ही बहुत छोटे हैं या अनन्त दूरी के कारण ऐसे मद्धम मालूम होते हैं। झुरमुट की आकृति प्रायः गोलाकार होती है और उसके केन्द्र के समीप सितारे पास २ और बहुत घने होते हैं, पर किनारों की तरफ छिदरे होते चले जाते हैं। कभी २ रंगीन सितारे भी देखने में आते हैं।

जो झुरमुट नंगी आँख से दिखाई देते हैं, उनमें सतभय्या* (Pleiades) का झुरमुट बहुत प्रसिद्ध है। यह वृष राशी के निकट है और शरद ऋतु में सूर्य्य अस्त होने के थोड़ी देर पश्चात ही दिखाई देने लगता है। नंगी आँख से उसमें छः या सात सितारे ही देखे जा सकते हैं जिनमें सब से चमकीला सितारा कृतिका नक्षत्र (Alcyone) कहलाता है। एक छोटी सी दूरबीन में देखा जाय तो उसमें १०० के लगभग सितारे दृष्टि गोचर होने लगते हैं और बड़ी दूरबीन से तो उसमें ६०० से ऊपर सितारे देखे गये हैं। इसका फोटो लेने से यह भी मालूम हुआ है कि इस गुच्छे के बड़े सितारे प्रकाशित गैस से घिरे हुए हैं।

वृष राशी के रोहणी नक्षत्र (Aldebaran) नाम के सब से तेजस्वी सितारे के पास सितारों का एक और गुच्छा है जो रोहणी का झुरमुट (Hyades) कहलाता है। इसके सितारे बहुत दूर २ और छितराये हुए हैं इसलिये दूरबीन में उसका दृश्य कुछ मनोहर प्रतीत नहीं होता।

बहुत नन्हें २ सितारों का एक गुच्छा कर्क (Cancer) राशी में है, जो खाली आँख से तो बादल का एक छोटा सा टुकड़ा प्रतीत होता है, किन्तु एक छोटी दूरबीन में देखने से ऐसा मालूम होता है, जैसे शहद की मक्खियों का छत्ता हो; इसी लिये यह गुच्छा मक्खियों के छत्ते (Beehive) के नाम से ही प्रसिद्ध हो गया है। इसकी आकृति गोलाकार है।

सितारों के बड़े २ और शानदार झुरमुट दूरबीन के बिना भली प्रकार नहीं देखे जा सकते। आकाश में सब से सुन्दर झुरमुट वह हैं, जो हरकुलीश (Hercules) और सेन्टोरस (Centaurus) नाम की तारा मण्डलों में पाये जाते हैं। हरकुलीश तारा-मण्डल वाला झुरमुट, यदि आकाश स्वच्छ हो तो, एक छोटी सी दूरबीन में रोशन बादल का एक अति सुन्दर गोल सा टुकड़ा प्रतीत हुआ करता है। किन्तु जब उसे किसी बड़ी दूरबीन से देखा जाता है, तो बड़ी बहार दिखाई देती है। आकाश के एक छोटे से भाग में हजारों प्रकाशित सितारे चमकते दिखाई देते हैं और मद्धम सितारों को तो कौन* गिन

* इसे सात सखियों का झुरमुट भी कहते हैं।

* हरशल की सम्मति है, कि इस झुरमुट में न्यून से न्यून चौदह हजार सितारे हैं। (Romance of Modern Astronomy)

सकता है। अनुमान किया गया है, कि वह हमसे एक लाख प्रकाश वर्षों की दूरी पर होंगे। सेन्टोरस का झुरमुट इससे भी बड़ा है। खाली आँख से वह एक चौथी श्रेणी का सितारा प्रतीत हुआ करता है, किन्तु दूरबीन में देखने से उसमें हजारों सितारे नजर आते हैं और उसकी सुन्दरता पर आँख मोहित हो जाती है, यह दक्षिणी गोलार्द्ध में है।

परशुवश (Perseus) तारा मण्डल में एक और बहुत सुन्दर झुरमुट पाया जाता है। खाली आँख से वह प्रकाश का एक धब्बा सा प्रतीत हुआ करता है; किन्तु, जब उसे दूरबीन से देखते हैं, तो दो अलग-अलग गुच्छे मालूम होते हैं, जिनके बीच में थोड़ा सा फासला होता है, इनमें से प्रत्येक में असंख्य सितारे दिखाई देते हैं और वह ऐसे घनके हैं, कि दूरबीन का तमाम दृश्य-स्थान सितारों से भर जाता है।

इस प्रकार से आकाश में सितारों के सैकड़ों सुन्दर झुरमुट पाये जाते हैं, उनमें से कुछ के सितारे बहुत चमकीले हैं; कुछ में सितारों की संख्या बहुत अधिक है; कुछ की आकृति निराली है; कुछ ऐसे हैं जिनमें अति सुन्दर रंगीन सितारे पाये जाते हैं, कुछ के सितारे इतने छोटे २ हैं; मानो चाँदी के बारीक २ कण बिखरे पड़े हैं; कुछ के सितारे इतने पास पास हैं, कि उनको अलग-अलग पहचानना कठिन है। उन सब का वर्णन करने को यहाँ स्थान नहीं है। इसलिये, हम यहाँ केवल दो अद्भुत झुरमुटों का और वर्णन कर देना उचित समझते हैं जो दक्षिणी गोलार्द्ध में पाये जाते हैं और मैगलेनी बादल (Magellanic cloudes) कहलाते हैं। उनके इस नाम का कारण यह है कि मैगलेन (Magellan) नामी एक यात्री ने उन्हें आविष्कार किया था। इनमें से बड़े का नाम बड़ा न्यूबेकुला (Nubecula Major) और दूसरे का छोटा न्यूबेकुला (Nubecula Minor) है। दोनों गोल व अण्डाकार से हैं। मिस्टर गोर (Mr. Gore) का अनुमान है, कि बड़ा झुरमुट आकाश तल पर कोई ४२ वर्गांश पर फैला हुआ है। जब उसे दूरबीन से देखते हैं तो उसमें ६०० से अधिक अलग-अलग सितारे ६ वीं० श्रेणी से १० म० श्रेणी तक के दिखाई देते हैं। बहुत से सितारे इससे भी मद्धम हैं। इसके अतिरिक्त इस झुरमुट में ३०० के लगभग सितारों के छोटे गुच्छे और कुछ नीहारिकाएँ भी पाई जाती हैं। इसके किसी भाग का लम्बन (Parallax) अभी तक मालूम नहीं हो सका है, इस कारण इसकी दूरी का अन्दाजा नहीं लगाया जा सकता। छोटा झुरमुट कुछ फीका है और दूरबीन में भी कुछ शानदार प्रतीत नहीं होता। उसकी दूरी ३००८ प्रकाश वर्ष अनुमान की गई है।

आकाश गंगा वा मन्दाकिनी Milky Way

आकाश में एक और अद्भुत चीज दिखाई दिया करती है, जिसे आकाश गंगा या मंदाकिनी कहते हैं; क्योंकि, वह प्रकाश का एक प्रवाह सा प्रतीत होती है, अंग्रेजी में इसे मिल्की वे (Milky-way) अर्थात् दूधया मार्ग और फारसी में 'कहकशा' कहते हैं। 'कहकशा' नाम का कारण यह है कि घास के एक बंडल को पृथ्वी पर घसीटने से जैसा निशान पड़ जाता है वैसी ही बेढंगी शक्ल इसकी भी है। यह एक चमकीले बादल के समान कुछ चीज है और पटके की भांति आकाश के चारों ओर लिपटी हुई है। इसी कारण वह उत्तरीय गोलार्द्ध में भी दिखलाई पड़ती है और दक्षिणीय में भी। मूर्ख लोग इसे मुर्दों का मार्ग ख्याल करते हैं और कहते हैं कि, जब मनुष्य मर जाता है तो उसका आत्मा इसी मार्ग से स्वर्ग को जाया करती है।

उसकी आकृति बहुत ही बेढंगी है; कहीं पर तो वह बहुत चौड़ी है और कहीं पर सिकुड़ी है; और कहीं कहीं उसमें से शाखाएँ सी निकली हुई हैं, राजहंस (Cygnus) तारा मंडल और वृश्चिक राशी (Scorpio) के बीच में इसके दो भाग हो गये हैं।

उसके बीच-बीच में कहीं कहीं अंधेरे मैदान भी देखे जाते हैं। इस प्रकार का एक स्थान दक्षिणी गोलार्द्ध में है। यह इतना काला है कि 'कोयलों के बोरे' के नाम से प्रसिद्ध हो गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह काले-काले धब्बे आकाश गंगा के बीच में बड़े-बड़े छिद्र हैं, जिनमें से आकाश गंगा के दूसरी तरफ का अंधेरा आकाश दिखाई देता है। इन स्याह धब्बों में यूँ तो कोई सितारा दिखाई नहीं देता, किन्तु जब उनका फोटो लिया जाता है, तो मालूम होता है, कि उन तमपूर्ण स्थानों में भी नन्हें-नन्हे असंख्य तारे मौजूद हैं।

आकाश गंगा को जब दूरबीन से देखते हैं तो बड़ा आनन्द आता है। यह चमकीली धुन्ध असंख्य सितारों में बदल जाती है। कुछ तो चमकीले सितारे उसके ऊपर फैले हुए मालूम होते हैं, जिन्हें नजदीक के सितारे समझना चाहिये; उनसे परे कुछ धुंधले सितारों की एक और तह दिखाई देती है; इसी तरह तह के पीछे दृष्टि आती है, अन्त में हमारी दृष्टि एक ऐसी तह पर जा कर ठहर जाती है जो हलके प्रकाश की केवल एक चादर सी मालूम होती है। दूरबीन जितनी अधिक बड़ी शक्ति की होती है, सितारों की उतनी ही अधिक तहों को हमारी निगाह पार कर जाती है; परन्तु ऐसी दूरबीन अभी तक कोई नहीं बनाई गई जिसके द्वारा प्रत्येक स्थान पर आकाश गंगा को आर पार देखा जा सके। लार्ड रौस (Lord Rosse) की बड़ी दूरबीन भी उसके बहुत से अति प्रकाशित भागों को अलग-अलग सितारों में नहीं बदल सकी।

आकाश गंगा या मंदाकिनी खगोल के जिस महावृत्त पर से गुजरती है, वह मन्दाकिनी वृत्त (Galactic circle) कहलाता है। उसके दोनों ओर ९०° की दूरी पर जो बिन्दु हैं वह मन्दाकिनी ध्रुव (Galactic Poles) कहलाते हैं। मन्दाकिनी वृत्त विषुवद्रेखा को जिन दो विन्दुओं पर काटता है, वह विन्दु, सम्पातों से दस दस अंश पूर्व में स्थित हैं; और मन्दाकिनी वृत्त का तल विषुवद्रेखा के तल के साथ ६०° का कोण बनाता है।

सब से पहले सर विलियम हरशल ने सितारों का नियमित रूप से निरीक्षण आरम्भ किया था। उसने मन्दाकिनी वृत्त से उत्तरीय-मन्दाकिनी ध्रुव तक के अन्तर को १५° चौड़े ६ कटिबन्धों में बाँट लिया, और फिर एक दूरबीन की सहायता से जिसके दृश-अवकाश का व्यास १५', या यूं कहो कि उसका क्षेत्र फल चन्द्र बिम्ब के क्षेत्र फल के ¼ था, रातों जाग २ कर, प्रत्येक कटिबन्ध के सितारों की गणना आरम्भ कर दी; और इस प्रकार से उसके प्रत्येक कटिबन्ध के सितारों की मध्यम संख्या मालूम कर ली। वह अपने जीवनकाल में मन्दाकिनी वृत्त के उत्तर की ओर वाले आधे आकाश की ही जांच पड़ताल कर सका। उसके पश्चात्, दक्षिणीय भाग की जांच उसके पुत्र सर जॉन हरशल ने उसी दूर-बीन से ली। इन दोनों पिता पुत्र की इस कठिन तपस्या से जो परिणाम प्राप्त हुए वह निम्नलिखित तालिका से प्रगट हैं।

कटिबन्ध	१५′ व्यास के दृश्य स्थान में सितारों की मध्यम संख्या
(१) ९०° उत्तरीय से ७५° उत्तरीय तक	४·३२
(२) ७५° ,, ,, ६०° ,, ,,	५·४२
(३) ६०° ,, ,, ४५° ,, ,,	८·२१
(४) ४५° ,, ,, ३०° ,, ,,	१३·६१
(५) ३०° ,, ,, १५° ,, ,,	२४·०९
(६) १५° ,, ,, ०″ ,, ,,	५३·४३
(७) ०° ,, ,, १५° दक्षिणीय तक	५२·०१
(८) १५° दक्षिणी से ३०° ,, ,,	२६·२९
(९) ३०° ,, ,, ४५° ,, ,,	१३·४९
(१०) ४५° ,, ,, ६०° ,, ,,	९·०८
(११) ६० ,, ,, ७५° ,, ,,	६·६२
(१२) ७५ ,, ,, ९०° ,, ,,	६·०५

इससे स्पष्ट है कि आकाश गंगा के ऊपर सितारों का संख्या बहुत अधिक है, और उसके दोनों तरफ सितारे क्रमशः कम होते चले गये हैं। ऊपर की तालिका से यह भी प्रगट होता है कि उत्तर की अपेक्षा दक्षिण की तरफ सितारे कुछ अधिक हैं, इससे मालूम होता है, कि हमारा सूर्य्य सितारों के मध्य में नहीं किन्तु कुछ उत्तर की ओर हटा हुआ है।

दूरबीन में देखने से मन्दाकिनी-ध्रुवों के पास तो, दृश्य-अवकाश में केवल चार पांच सितारे ही चमकते दिखाई देते हैं, किन्तु मन्दाकिनी में तो उनकी यह अवस्था है कि एक बार में दृश अवकाश में छः सात सौ सितारे चमकते दिखाई दे जाते हैं। मन्दाकिनी में भी सितारे सब जगह समान रूप से फैले हुए नहीं हैं, वरन कहीं अधिक सघन है और कहीं कम। कुछ स्थानों पर सितारों के झुरमट से दिखाई देते हैं, और कहीं २ बहुत दूर तक सितारों के लम्बे २ प्रवाह से चले गये हैं। एक बार केवल १५ मिनट में कोई एक लाख ६० हजार सितारे दूरबीन के दृश अवकाश में से गुजरते हुए दिखाई दिये। ऐसा प्रतीत होता था मानो बड़े २ सितारों का एक बेपनाह सैलाब उमड़ा चला आ रहा है।

पहले यह समझा जाता था कि सितारों की यह दुनिया गोलाकार है, और हम उसके विषवद्रेखा पर हैं। किन्तु, प्रश्न यह है, सितारे समस्त आकाश में समान रूप से फैले हुए क्यों नहीं हैं ? वह आकाश गंगा के ऊपर क्यों अधिक घने दिखाई देते हैं, और शेष आकाश पर उनका संख्या इतनी कम क्यों है ? लन्दन (London) के एक यन्त्रकार थोमस राईट (Thomas wright) ने इस समस्या को इस प्रकार से सुलझाने का प्रयत्न किया है; कि तमाम सितारे, जो हमें खाली आँख से, और दूरबीन से दृष्टि आते हैं, वह सब मिलकर गोलाकार नहीं, वरन चकले के समान गोल और चपटी आकृति बनाते हैं, जिसकी मोटाई उसकी लम्बाई चौड़ाई की अपेक्षा बहुत ही कम है, और हमारा सौर परिवार उसके मध्य में कुछ उत्तर को हटा हुआ स्थित है, इसी में सितारे हमारे हर तरफ तो दिखाई देते हैं पर चूँकि उस चकलाकार आकृति के किनारों की तरफ वह अधिक दूर तक फैले हुए हैं, इसलिये उस तरफ वह अधिक

सघन प्रतीत होते हैं; इस प्रकार से सघन सितारों का एक गोल चक्कर सा हमें चारों ओर से घेरे हुए प्रतीत होता है इसका नाम आकाश गंगा या मन्दाकिनी है।

हरशल के विचार के अनुसार भी आकाश पर के तमाम सितारे, सितारों के एक ही झुँड से सम्बन्ध रखते हैं, पर वह झुण्ड गोल नहीं, किन्तु बेढङ्गा सा है क्योंकि यदि वह ठीक चकला-आकार गोल होता तो आकाश गंगा हमारे चारों ओर चौड़ाई और घनत्व में समान होती, किन्तु जैसा कि हम पहले वर्णन कर चुके हैं, वह सब जगह समान नहीं है; कहीं उसकी चौड़ाई अधिक है और कहीं कम, कहीं उससे शाखाएँ सी निकली हुई हैं और एक स्थान पर उसमें बहुत बड़ा शिगाफ (दण्ड) भी है, जो उसके किनारे से आरम्भ होकर बहुत दूर तक अन्दर की तरफ़ चला आया है। कुछ स्थानों पर वह बहुत सघन प्रतीत होती है, इसका कारण सम्भवतः यह है, कि वहाँ सितारे बहुत दूर तक बाहर की तरफ फैले हुए हैं और जहाँ सितारे कम दिखाई देते हैं वहाँ वह बहुत दूर तक फैले हुए नहीं हैं। इस प्रकार सितारों के इस झुरमट का किनारा चकले के किनारे के समान गोल नहीं है, किन्तु उसके ऊपर स्थान २ पर सींगों के सामान शाखाएँ बाहर को निकली हुई हैं। इनमें जगह २ छिद्र भी पाये जाते हैं जिनका मुख हमारी तरफ है इसलिये हम उनमें से आकाश गंगा के आर पार देख सकते हैं; सम्भवतः उसमें ऐसे छिद्र भी होंगे जिनका मुख हमारी तरफ न होने के कारण हम उन्हें देख नहीं सकते।

सितारों की इस तमाम दुनिया को, जिसका हमने ऊपर कथन किया है, अब हम आकाश गंगा के नाम से ही पुकारेंगे। यूँ समझो कि अकाश गंगा से अब हमारा तात्पर्य आकाश पर का वह प्रकाशित बादल नहीं है जो आकाश के गिर्द पटके के समान लिपटा हुआ प्रतीत होता, वरन उससे हमारा तात्पर्य सितारों का एक ऐसा झुरमट है जिसमें आकाश के वह समस्त सितारे सम्मिलित हैं जो हमें खाली आँख से तथा दूरबीन से भी दिखाई देते हैं और हमारा सूर्य्य भी उन्हीं में सम्मिलित है। इसके विस्तार के सम्बन्ध में हरशल ने अनुमान लगाया है कि उसकी मोटाई, सूर्य्य और निकटतम सितारे के मध्यान्तर से कोई ८० गुणा अधिक है, और उसका बड़े से बड़ा व्यास निकटतम सितारे के मध्यान्तर से लगभग २००० गुणा अधिक होगा, और इस फासले को पार करने में, प्रकाश को, कोई २०००० वर्ष लग जायेंगे, अर्थात् आकाश गंगा के दूरस्थ सितारेसे प्रकाश को हम तक पहुँचने में कोई १०००० वर्ष लग जाते हैं।

किन्तु, हरशल ने आकाश गंगा की आकृति और विस्तार का अनुमान लगाते समय यह मान लिया था, कि समस्त सितारे परिमाण और चमक दमक में समान हैं तथा उनके मध्य में ऐसा ही महान अन्तर है जैसा हमारे सूर्य और निकटतम सितारे के बीच में है, अतएव उसने ख्याल कर लिया कि जो सितारे मद्धम प्रतीत होते हैं वह चमकीले सितारों की अपेक्षा अधिक दूरी पर होंगे। परन्तु, जब सितारों का फासला नापा जाता है तो ऐसा भी देखा गया है कि कुछ तेजस्वी सितारे मद्धम सितारों की अपेक्षा अधिक दूर पाये गये हैं, सितारों के परिमाणों तथा प्रकाशों में इतना अन्तर है कि हम इस मामले में कोई विशेष नियम नहीं बता सकते, अतएव यह बहुत सम्भव है, कि आकाश गंगा के वह सितारे जो मद्धम होने के कारण बहुत दूर समझ लिये गये हैं वास्तव में बहुत फासले पर न हों वरन छोटे और फीके हों, अतः ऐसी बातों में ग़लती की बहुत सम्भावना है।

हम नहीं कह सकते कि आकाश गंगा सितारों का एक संस्थान है या बहुत से सितारों का केवल एक ढेर सा ही है। इसके अन्दर दो-दो, तीन-तीन चार-चार और पाँच-पाँच सितारों के बहुत से संस्थान पाये जाते हैं जिनके सितारे एक ही केन्द्र बिन्दु का परिभ्रमण करते हैं, किन्तु, वह अलग-अलग संस्थान भी परस्पर कोई सम्बन्ध रखते हैं अथवा नहीं, इसके सम्बन्ध में अभी तक हमें कोई ज्ञान

नहीं है। हम इस समय केवल इतना ही जानते हैं कि आकाश गंगा सितारों का एक बहुत बड़ा झुरमुट है। आकाश में सितारों के और भी बहुत से झुरमुट पाये जाते हैं; जिनमें से कुछ का उल्लेख हम पीछे कर चुके हैं। कुछ विद्वानों का विचार है कि वह झुरमुट भी हमारी आकाश गंगा के ही भाग हैं; पर दूसरों की सम्मति है कि उनमें से कुछ हमारी आकाश गंगा के समान, असंख्य सितारों के बड़े-बड़े अलग-अलग संघ हैं, और उनका हमारी आकाश गंगा से कोई सम्बन्ध नहीं है। वह बहुत दूर होने के कारण बहुत क्षुद्र प्रतीत होते हैं, किन्तु वास्तव में, वह हमारी आकाश गंगा के मुकाबले में क्षुद्र नहीं कहे जा सकते। यदि हम उन झुरमुटों में से किसी एक के कि सितारे पर पहुँच जायें, तो वहाँ से हमारी आकाश गंगा भी वैसी ही क्षुद्र प्रतीत होगी जैसे वह झुरमुट हमें यहाँ से प्रतीत होते हैं।

आकाश अनन्त है, पर आकाश गंगा के सितारे अनन्त दूरी तक फैलते नहीं चले गये हैं। क्योंकि, यदि वह भी अनन्त होते, तो आकाश-तल पर एक चप्पा भर जगह भी खाली दिखाई न देती और तमाम आकाश सूर्य्य के समान तेज रूपी होता। क्योंकि, समस्त सितारों का प्रकाश, चाहे वह हम से कितनी ही दूरी पर होते, हम तक अवश्य पहुँच जाता कारण यह है कि आकाश (ईथर) न तो प्रकाश को रोकता है और न नष्ट करता है। अब तो तमाम सितारों का प्रकाश मिलकर पूरे चाँद के प्रकाश का १/६० है, इससे प्रतीत होता है, कि सितारे संख्या में बहुत अधिक नहीं है; और सितारों का यह जगत असीम नहीं है। इसके अतिरिक्त आकाश के कुछ भागों में तो सितारों की संख्या बहुत थोड़ी दृष्टि आती है और बड़ी २ दूरबीनों तथा फोटो के प्लेटों से भी इस संख्या में कुछ वृद्धि नहीं हो जाती। इससे स्पष्ट है कि उन दिशाओं में सितारे बहुत दूर तक फैले हुए नहीं हैं, किन्तु जिन दिशाओं में वह बहुत दूर तक फैले हुए हैं वहाँ भी उनकी सीमा अवश्य है, यद्यपि वह इतनी दूर है, कि हम उसका ठीक २ अनुमान नहीं लगा सकते। डा० रॉबर्ट (Dr. Robert) ने राज हंस (Cygnus) तारा मण्डल के निकट आकाश के एक भाग का, जहाँ तारे बहुत सघन हैं, फोटो उतारा। उसके देखने से भी पता लगता है कि सितारों के पीछे अँधेरा है। एकचित्र सन् १८९५ ई० में लिया गया था और दूसरा १८९८ ई० में दोनों अवसरों पर वायु मडल की अवस्था समान थी। पहला चित्र लेते समय एक घंटे तक प्लेट सितारों के सामने रक्खी गई थी, और दूसरी बार ७½ घंटे तक, किन्तु तो भी दोनों चित्रों में सितारे समान थे। यहाँ तक कि मध्यम से मध्यम सितारे में भी फर्क न था। इससे मालूम होता है कि, सघन से सघन भागों में भी एक निश्चित दूरी के पश्चात् कोई सितारा नहीं है। विभिन्न यन्त्रों से समस्त सितारों की जो संख्या मालूम हुई है वह दस करोड़ ख्याल की जाती है, इससे भी पता चलता है, कि सितारे सान्त हैं। क्योंकि, आकाश की अनन्तता का विचार करते हुए यह संख्या अधिक नहीं है।

हमारा यह सितारों का जगत का विश्व, चाहे कितना ही महान हो, किन्तु निसन्देह वह असीम नहीं है, और इसलिये अनन्त आकाश के मुकाबले में एक बिन्दु से अधिक महत्व नहीं रखता, तब, क्या शेष समस्त आकाश खाली पड़ा है, क्या उसमें परमेश्वर की कोई प्रजा बास नहीं करती। विद्वानों का झुकाओ अधिकतर इस विचार की तरफ है कि ऐसे २ और भी बहुत से विश्व आकाश में उपस्थित हैं किन्तु हम उन्हें देख नहीं सकते। मिस्टर गोर (Mr. Gore) ने गणित किया है, कि यदि कोई और ऐसा विश्व है तो वह हमारे इस विश्व से न्यून से न्यून ५२०१४९६०००००००००००० मील के अन्तर पर होगा, इतने महान अन्तर पर की किसी चीज को देखने की क्या आशा हो सकती है? और फिर ऐसे विश्व, अनन्त आकाश में एक दूसरे से ऐसेही महान अन्तर पर न मालूम कितने होंगे, सत्य है—

तेरी महिमा बड़ी है अपरम्पार,
कौन है उसका पा सके जो पार।

प्रतिदीप्तिमान प्रकाश

(Fluorescent Lighting)

(लेखक—श्री रामचरण मेहरोत्रा)

आज का मानव-समाज महाशय एडीसन का हृदय से आभारी है। उनकी गवेषणाओं की संख्या असीमित है और इस दिशा में उनकी वैज्ञानिक दक्षता का परिचय मिलता है। बिजली का बल्ब जो आज शहरों के धनी निर्धन, लगभग सर्व साधारण के लिये आलोक का स्रोत है, उन्हीं की देन है। परन्तु पिछले कुछ वर्षों से विशेषतया इङ्गलैण्ड के वैज्ञानिक यह सन्देह प्रकट कर रहे हैं कि साधारण बिजली के बल्ब का प्रचार अब इने गिने दिनों को ही रह गया है।

साधारण बल्ब का मुख्य दुर्गुण यह है कि उसमें शक्ति बेकार बहुत व्यय होती है। आधुनिक सब से अच्छे बल्ब में भी हम उपयोगी वैद्युत् शक्ति का १/२०वां भाग भी काम में नहीं लाते, लगभग ९५% भाग हमें आलोक प्रदान करने में सहायक न हो कर ताप के रूप में खर्च हो जाता है। शक्ति का इतना अधिक ह्रास वैज्ञानिकों को एक दीर्घ काल से खटकता रहा है और उन्होंने इस दिशा में बहुत प्रयोग किये। हाल ही में वे एक नये प्रकार का बल्ब बनाने में सफल हुये हैं, जिसमें प्रतिदीप्तिता के सिद्धान्त पर प्रकाशोत्पादन का प्रयास किया गया है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इस नये प्रयास में वे शक्ति के ह्रास को पहले से एक तिहाई तक ले आने में सफल हो गये हैं। शक्ति के बचत के साथ साथ इन नये प्रकाश-बल्बों का प्रमुख गुण यह है कि इनका प्रकाश बिल्कुल सूर्य्य के प्रकाश के सदृश होता है, और इस प्रकार आज वैज्ञानिक हमें रात्रि में भी दिन का सा प्रकाश देने में सफल हो गया है।

यह आधुनिक बल्ब पुरानी नियान ट्यूबों का एक उन्नत रूप है। नियान ट्यूबों में 'नियान' नामक गैस भरी होती है और जब इस गैस में से विद्युत् धारा प्रवाहित होती है, तो उसमें से नारंगी रंग का प्रकाश निकलता है। यह 'नियान ट्यूब' एक दीर्घकाल से साइनबोर्डों के कार्य्य में प्रयोग किये जा रहे हैं। यदि इन ट्यूबों में 'नियान गैस' के स्थान में पारद का वाष्प भरा जाये, तो नारंगी रंग के बजाय नीलिमामय प्रकाश निकलता है। कुछ काल पूर्व तक यह पारद वाष्प लैम्प बहुत ही प्रचलित थे, परन्तु इनका मुख्य दुर्गुण यह है कि इनके प्रकाश में मनुष्य का रंग मुरदे के समान पीलाई लिये दिखाई देता है और इसलिये गृह कार्य्य के लिये यह बल्ब न पसन्द किये जा सके।

इन पारद वाष्प बल्बों में एक गुण और भी है कि इनके प्रकाश में अल्ट्रा-वायलेट प्रकाश की प्रधानता होती है। यह तथ्य एक दीर्घ काल से मालूम था कि अल्ट्रा-वायलेट प्रकाश में बहुत से सलफ़ाइड, सलफ़ेट तथा अन्य पदार्थ सबल मात्रा में प्रतिदीप्ति प्रदर्शित करते हैं। यदि इन प्रतिदीप्तिमान पदार्थों को पारद वाष्प बल्बों की आन्तरिक तल पर एक पतली सतह के रूप में लगा दिया जाय, तो यह प्रतिदीप्ति द्वारा प्राप्त प्रकाश मिलने लगता है। शीघ्र ही एक नया तथ्य मालूम किया गया कि यदि इन प्रतिदीप्तिमान पदार्थों में धातुओं की एक निम्न मात्रा मिला दी जाये, तो बल्ब से विभिन्न रंगों का सुन्दर प्रकाश मिलने लगता है; उदाहरणार्थ चांदी की उपस्थित से नीले रंग और तांबे की उपस्थित से हरे रंग का प्रकाश प्राप्त होता है। इस गवेषणा को शीघ्र ही साइनबोर्डों के लिये प्रयोग किया गया।

परन्तु वैज्ञानिक इस उन्नति से सन्तुष्ट न हुये। वे तो ऐसे प्रतिदीप्तिमान पदार्थ की खोज में थे, जो बिल्कुल सूर्य्य के प्रकाश के समान सफ़ेद रोशनी दे। यह अनुसन्धान कार्य्य बड़े परिश्रम और धैर्यशीलता का था, क्योंकि अनेक पदार्थों की न्यूनतम उपस्थित भी प्रतिदीप्तता को बहुत प्रभावित कर देती है। अन्त में वे कुछ ऐसे प्रतिदीप्तिमान पदार्थों के अन्वेषण में सफल हो गये जो बिना धातुओं की उपस्थित के ही अल्ट्रा-वायलेट प्रकाश में प्रतिदीप्ति द्वारा सफ़ेद प्रकाश देते हैं, यह बहुत बड़ी उन्नति थी और शीघ्र ही द्वितीय महायुद्ध में विभिन्न स्थलों में इस नवीन अन्वेषण का उपयोग किया जाने लगा।

आज कल इस प्रकार के ट्यूब १½ इंच मोटाई में और लगभग ५ फ़ीट की लम्बाई में मिलते हैं। इनमें सिरों पर टङ्गस्टन के दो विद्युत्-द्वार होते हैं, जिन पर धात्वीय आक्साइड की तह होती है और ट्यूब के अन्दर एक गेंद होती है जिससे पारद वाष्प तथा आरगन गैस दोनों प्राप्त होती रहती हैं। ट्यूब की अन्दुरूनी सतह पर प्रतिदीप्तिमान पदार्थ की एक तह लगाई जाती है। प्रयोगिक ढंग पर लन्दन में ज़मीन के नीचे दौड़ने वाली रेलवे लाइनों के आलोकित करने के लिये इस प्रकार की ट्यूबों का प्रयोग किया गया है।

शीघ्र ही यह प्रश्न उठा कि इनकी रोशनी मनुष्य के लिये हानिकारक तो नहीं है? विशेषतया आंखों पर इस रोशनी के प्रभाव का बहुत अध्ययन् किया गया है और इस अध्ययन से यह पूर्णतया सिद्ध हो गया है कि इस प्रकाश से नयन-ज्योति पर कोई बुरा प्रभाव पड़ता। इनकी रोशनी बिल्कुल सूर्य्य की रोशनी के सदृश होने के अतिरिक्त, इन ट्यूबों का मुख्य गुण यह है कि उतनी ही शक्ति व्यय करने वाले साधारण बल्ब से इनका प्रकाश तिगुना होता है और साधारण बल्ब की तुलना में इस प्रकार के ट्यूबों में केवल एक चौथाई शक्ति ताप के रूप में बेकार जाती है। इस प्रकार इन ट्यूबों से बहुत कम शक्ति व्यय में बहुत ही ठण्डी और आंखों को आराम देने वाली रोशनी मिलती है। इनके इन गुणों के कारण यह आशा की जाती है कि शीघ्र ही ये बहुत ही लोक प्रिय हो जायेंगे और गृह कार्य्यों में इनका उपयोग बहुतायत के होने लगेगा।

यक्ष्मा का प्रचीन इतिहास*

(लेखक—श्री कालका प्रसाद वर्मा, बनारस)

पुस्तकों के पढ़ने से पता चला है कि जब से सन्सार में मनुष्य आया तभी से उसके पीछे पीछे यक्ष्मा लग गया। नियोलिथिक एरा (Neolithic Era) यानी इतिहास के पहले भी हड्डी और जोड़ों के यक्ष्मा का पता लगता है। जब से सभ्यता का प्रादुर्भाव हुआ, यक्ष्मा ने भी अपना मुँह फैलाना आरम्भ कर दिया। मिश्र देश के उत्थान के साथ साथ यक्ष्मा के फैलने का चिन्ह कुछ उन सूखे हुये मुर्दों (Mummies) में पाया गया है जो सन् ईस्वी से लगभग ५००० वर्ष पहले जिन्दा थे। बेबिलोन के उत्थान काल की पुस्तकों में भी यक्ष्मा का नाम तो नहीं आया है, पर एक बीमारी के लक्षण ऐसे दिये गये हैं जिनसे निश्चय होता है कि वह यक्ष्मा ही रहा होगा।

पूर्व काल में चीन भी सभ्यता में बढ़ा जिसके साथ साथ यक्ष्मा का प्रकाश हुआ। चीन की सब से पुरानी पुस्तक में लुपिङ्ग (Laoping) शब्द आता है, जिसका अर्थ फेफड़े का कफ होता है। इसका जो कुछ बयान दिया गया है वह आज कल के फेफड़े की यक्ष्मा से बहुत कुछ मिलता जुलता है। जिस पुस्तक से यह बयान लिया गया है वह सन् ईस्वी से कम से कम १००० वर्ष पहले की है, ऐसा पुरातत्व वेत्ताओं का विचार है।

भारतवर्ष में ऋगवेद में एक मन्त्र यक्ष्मा के मुक्त होने की है। शतपथ ब्राह्मण में भी एक श्लोक आया है जो मैंने इस पुस्तक में अन्यत्र उद्धृत कर दिया है। सुश्रुत में भी यक्ष्मा का बयान मिलता है।

पारसी लोगों की ज़ेन्द अवस्ता नामक पुस्तक में, जो कम से कम सन् ईस्वी से २००० वर्ष पहले की है, महर्षि जोरोआस्टर की शिक्षा में यक्ष्मा का भी संकेत मिलता है। वहां यह भी लिखा है कि यह महा रोग गुलाब के तेल (Roseoil), मोम (Beeswax) और पाइन के तेल (Pine oil) से शमन होता है।

पारसी लोगों के बाद यहूदी लोगों के सब से प्राचीन ग्रन्थ को देखिये वहां भी इस महारोग का वर्णन मिलेगा। बाइबिल में भी इसका बयान आया है।

---

* लेखक की 'यक्ष्मा' नामक अप्रकाशित पुस्तक का एक अंश।

अत्यन्त प्राचीन जुडिया (Judes) लोग यक्ष्मा से पूरी तरह जानकार थे। ये लोग जानवरों की यक्ष्मा को भी जानते थे।

डाक्टर वैनकाफ ने लिखा है कि सिकन्दर बादशाह और ईसू मसीह यक्ष्मा से मरे। एक जर्मन डाक्टर ने लिपज़ीग के पुस्कालय में रखी हुई एक पुस्तक के आधार पर लिखा है कि प्रभु ईशू मशीह को प्लूरिसी के साथ यक्ष्मा हुआ था। यही कारण था कि सूजी देते समय बायें फेफड़े से रक्त मिश्रित पानी निकला था। सम्भव है ऐसा रहा हो।

वेविलोन के न्याय शास्त्र (The Famous code of Hammurabi of Babylon) में कुछ ऐसा बयान आया है जिससे यक्ष्मा का पता लगता है। जी० ई० स्मिथ ने एक जगह लिखा है कि उन्होंने मिश्र देश के एक ममीमें पाट्ज़ डिज़ीज पाया।

इन उपरोक्त इतिहासों में रोग का पता तो अवश्य चलता है, पर दवा का नहीं। हीपोक्रेट (Hippocrates 460-377 B. C.) ने सब से पहले इस रोग का सम्पूर्ण लक्षण संग्रह किया और इसका नाम थाइसिस (Phthisis) रखा। उन्हीं ने ट्युबर्किल (Tubercle) का पता लगाया और बतलाया कि इस रोग का इस रोग का मुख्य कारण ट्युबर्किल का बनना है और यह रोग १८ वर्ष की अवस्था से ३५ वर्ष की अवस्था तक के लोगों को अधिक होता है। प्लेटो ने (430-347 B. C.) ने लिखा है कि यक्ष्मा अच्छा नहीं होता। एरिस्टाटिल ने जो प्लेटो से ५० वर्ष बाद हुआ यक्ष्मा को छूत की बीमारी बताया है और कहा है कि इसका अच्छा होना असम्भव है।

एरिस्टाटिल के बाद जेल्सस, प्लाइनी और एरेटियस ने इस प्रश्न को लिया। ये तीनों रोम निवासी थे इन्होंने पता लगाया कि यक्ष्मा अधिकतर पतले दुबले, खूबसूरत, पतली छाती और उभड़े हुये गर्दन वालों को होता है। आर्ट्रेइयस (Aretaeus) ने सब से पहले यह मालूम किया कि फेफड़े से खून आना यक्ष्मा का ही एक अंग है। जेल्सस की मतानुसार समुद्र का सफर करना यक्ष्मा का प्रतिशोधक है। प्लाइनी ने पायन आयल (Pine oil) और लकड़ी की राल का धुआं सूंघना (Resinous effluvia of wood) श्रेयकर माना। गेलेन (130-200 A.D.) ने बताया कि यक्ष्मा वालों के पास अधिक न रहना चाहिये। वेजेटियस (420 A.D.) ने अपने अनुसन्धान में मनुष्यों और जानवरों की यक्ष्मा का अन्तर खोज निकाला। जूज ने सर्वप्रथम यह आवाज उठाई कि रोगी मुख्यतयः यक्ष्मा पीड़ित जानवरो का मान्स खाने से यक्ष्मा होने की सम्भावना रहती है।

अरब में र्‌हजेस (Rhazes 850-923) और एविसिना (Avicennal 980 1037) ने यक्ष्मा पर अधिक समय दिया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यक्ष्मा अच्छा हो सकता है और इस रोग में शुद्ध वायु और दूध अधिक उपयोगी होता है। उन्होंने यह भी बताया कि इस रोग में कपूर गुलाब और अंगूर की चीनी अवश्य लेनी चाहिये। १५ वीं सदी में जर्मनी में पारासेल्सस ने यक्ष्मा के प्रश्न को हाथ में लिया और इसके रूप रेखा के बारे में बहुत कुछ लिखा।

वेसिली कीड़ों के बारे में सर्वप्रथम इटली के डाक्टर गिरोलामों फ्राकस्टेरो ने १५ वीं सदी में लोगो का ध्यान आकर्षित किया और बतलाया कि इन्ही कीड़ों के कारण यक्ष्मा रोग होता है। डाक्टर गिडियोन हार्वे ने अपने अनुसन्धान से पता लगाया कि यक्ष्मा के रोगियों पर जल-वायु का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। ये महाशय १६ वीं सदी में हुये थे। लगभग २०० वर्ष बाद रिचर्ड मार्टन (लंडन) ने यक्ष्मा पर थिसियोलोजिया (Phthisislogia) नामक प्रथम पुस्तक लिखी।

इटली में सर्व प्रथम डाक्टर जी० बी० मार्गनी G. B. Morgagni) १८ वीं सदी के अन्त में ट्युबर्किल का पता लगाया जिसे हीपोक्रेट ने मसीह से ४६० वर्ष पूर्व ढूँढ निकाला था और जो विश्व के गर्त में ढक चुकी थी। इन्होंने दवा के रूप में पारे का नमक बाल्सम, मछली का तेल तथा जैतून का तेल और ताज़ा मक्खन बताया। पर अभी तक मामला गड़बड़ ही रहा।

नेपोलियन बोनापार्ट के शासन काल में फ्रान्स ने एक डाक्टर पैदा किया जिसका नाम रेनेलाइनक था जिन्होंने फेफड़े और दिल के ऊपर एक बहुत उम्दा पुस्तक लिखी है जिसका नाम है, Medical Auscultation on diagnosis of maladies of lungs and heart

सन् १७८१ में ट्युवर्किल का पता लगा कर इस बीमारी का नाम ट्युवरक्लोसिस रखा गया। इन्होंने सर्व प्रथम स्टेथास्कोप का आविष्कार किया। इन्होंने बताया कि यक्ष्मा केवल फेफड़े से ही नहीं होता बल्कि चमड़ा, अंतड़ी, हड्डी और दिमाग आदि में भी होता है। इनको इसका कारण न मिला कि यक्ष्मा क्यों होता है। लगभग ७८ वर्ष बाद सन् १८८२ ई० में जर्मन डाक्टर राबर्ट काच्च ने सिद्ध किया कि (ट्युवरक्लोसिस) यक्ष्मा का उत्पन्न करने वाला एक प्रकार का कीड़ा होता है जिसे वेमिली कहते हैं। इन्होंने इन कीड़ों को पकड़ा और पाल कर लोगों को दिखला दिया।

डाक्टर काच्च से १६२ वर्ष पूर्व सन् १७२० में बेञ्जामिन गार्टन ने भी कहा था कि यक्ष्मा एक प्रकार के कीड़ों से उत्पन्न होता है पर इनकी यह केवल भविष्यवाणी ही थी, किसी प्रयोग का आधार नहीं था।

अन्त में वियेना के डाक्टर ल्योपोल्ड आइनब्रूगर जो महारानी मोरिया थेरिसा के राज वैद्य थे सीने पर उङ्गली रख कर ठोंकने और उस शब्द से यक्ष्मा पहिचानने का नियम निकाल कर यक्ष्मा की जांच पूरी कर दी, पर दवा अभी तक ठीक नहीं निकल पाई।

होमियोपैथी इस दिशा में बहुत बढ़ गया है। इङ्गलैण्ड के डाक्टर बर्नेट ने १०० से अधिक यक्ष्मा के रोगियों को बिल्कुल अच्छा कर दिया। इनका बयान न्युक्योर आफ कञ्जम्पशन नामक पुस्तक में लिखा है। बंगाल के डाक्टर घटक ने भी सैकड़ों रोगियों को यक्ष्मा से मुक्त कर दिया है तथा इनमें से लगभग १८ का बयान अपनी बनाई हुई ट्युवर क्लोसिस नामक पुस्तक में लिख दिया है। स्वर्गवासी डाक्टर सरकार ने स्वर्गारोहण के पहले एक तीसरे दर्जे के रोगी को अच्छा कर दिया। डा० होल्काम्बे ने साइलीशिया ६००० देकर तीसरे दर्जे के रोगी को अच्छा कर दिया है।

ईश्वर करे कि इस भयंकर रोग की कोई उत्तम औषधि निकल आवे।

जल के अभाव में रासानिक कियाएँ

लेखक: श्री० श्री प्रकाश एम० एस० सी०

अन्तर्वेदी और अनावृष्टि की कल्पना कुछ असंगत सी प्रतीत होती है। पर असंगत—कोई विशेष चिन्ता नहीं—मानसपटल पर होने दीजिये नृत्य—जल के अभाव में हाहाकार मच जायेगा। ब्रह्मा की सृष्टि कांप उठेगी, मनुष्य गिरेगा, पशु गिरेंगे, सुन्दर हरे हरे वृक्ष भी गिर जायेंगे—सिंधु-गंगा का मैदान सहारा का स्मरण दिलायेगा, सुन्दर उद्यान लकड़ी के टाल के प्रतीक होंगे। और यदि "रासायनिक प्रयोग शाला में जल समाप्त हो गया, तो!" रासायनिक को ध्यान था इसका भी, पर वह कल्पना शक्ति पर ही आश्रित न रहा उसने जल के अभाव में प्रयोग किये। कोई इस बीसवीं शताब्दि में नहीं—प्रयोग, कियायें करते हुये बीत गये होंगे १५० वर्ष से भी अधिक। १७९४ ई० में श्रीमती फुलहैम ने रजत् और स्वर्ण के योगों पर हाइड्रोजन सल्फाइड का प्रभाव देखा। एक विशेष बात मालूम हुई—जल के प्रभाव में क्रिया ही नहीं हुई—वे काले नहीं पड़े। वैंकलिन ने १८१६ में सोडियम, जिंक, मैग्निशयम को एक नवीन स्वभाव में देखा, जल के अभाव में वायु उनके ऊपर कोई भी प्रभाव न था। यहीं तक नहीं जल के अभाव में क्लोरीन ने भी सोडियम पर कोई क्रिया नहीं की। १८० में डिक्सन ने कार्बन मोनोक्साइड और औक्सीजन के मिश्रण में जल के अभाव में कोई विस्फोट नहीं देखा।

१८८० में बेकर ने यह विषय अपने हाथ में लिया और विशेष गति से इस विषय पर कार्य हुआ। प्रयोगों के फल स्वरूप—निम्न क्रियाओं की गति जल के अभाव में केवल नाम मात्र ही रह जाती है—

(१) क्लोरीन और सोडियम

(२) औक्सीजन और सोडियम, पोटैशियम

(३) ऑक्सीजन और कार्बन

(४) हाइड्रोजन सल्फाइट + धातुओं के लवण व ऑक्साइड

(५) हाइड्रोजन क्लोराइड + कैल्शियम कार्बोनेट,

(६) कैल्शियम आक्साइड + सल्फर ट्राइऑक्साईड

(७) " " + कार्बन डाइऑक्साइड

(८) " " + अमोनियम क्लोराइड

(९) अमोनिया + हाइड्रोक्लोरिक एसिड

(१०) " " + कार्बन डाइऑक्साइड

(११) कार्बन मोनोक्साइड + हाइड्रोजन

(१२) " " + नाइट्रस आक्साइड

(१३) " " + ऑक्सीजन

(१४) हाइड्रोजन + क्लोरीन

(१५) " " + ऑक्सीजन

(१६) " " + नाइट्रस आक्साइड

(१७) इथलीन + क्लोरीन

(१८) " " + ब्रोमीन

बेकर को कुछ ऐसी भी क्रियायें मिलीं जिन पर जल के अभाव का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। जैसे—

(१) ऑक्सीजन + बोरन,

(२) " " + आरसेनिक

(३) " " + एन्टिमनी

(४) " " + सैलेनियम

(५) कार्बन डाइसल्फाइड का ओषदीकरण (Oxidation)

(६) सायनोजन " "

(७) हाइड्रो-कार्बन " "

(८) आक्सीजन का ओज़ोन में परिवर्तन

(९) नाइट्रोजन पैन्टोक्साइड का विघटन

(१०) हाइड्रियाडिक एसिड का"

गुणों में परिवर्तन

जल का अभाव क्रियाओं को ही प्रभावित करता हो, ऐसा नहीं है रासायनिक पदार्थों के गुण भी परिवर्तित हो जाते हैं। बेकर ने १९ २ ई० में नाइट्रोजन ट्राइक्साइड और टेट्रॉक्साइड पर अन्वेषण किया। आरम्भ में ट्राइक्साइड का वाष्पांक—२° सेन्टीग्रेड था पर उसको तीन वर्ष तक सल्फ्यूरिक एसिड और कैलशियम क्लोराइड द्वारा सुखाने पर वाष्पांक ४३° से० पहुँच गया—४५° का परिवर्तन। तीन वर्ष तक फौस्फोरस पेन्टॉक्साइड द्वारा सुखाने पर नाइट्रोजन ट्राक्साइड का वाष्पाङ्क २१° से ६९° तक पहुँच गया।

बेकर अपने इस नये अनुभव से उत्साहित हुआ और इसने अन्य पदार्थों पर जल के अभाव का प्रभाव देखने की चेष्टा की। १९१३ ई० में उसने कुछ पदार्थ सुखाने के लिये रख दिये और उनका अध्ययन १९२१ में—८ वर्ष पश्चात् किया। कार्बन डाइ सल्फाइड को तो १८९४ में रखा गया था और इसे २८ वर्ष पश्चात् तंग किया गया। बेकर के फल निम्न प्रकार हैं—

पदार्थ	वर्ष*	वाष्पांक	नया वाष्पांक	परिवर्तन
ब्रोमीन	८	६३°	११८°	५५°
मरकरी	९	३५८°	४२०°–४२५·१°	७२°
हेक्सेन	८·५	६८.४°	८२°	१४°
बेनज़ीन	८.५	८०°	१०६°	२६°
कार्बनडाइ सल्फाइड	२८	४६.५०	८०°	३०°
टेट्राक्लोराइड	९	७८°	११२° से अधिक	३४°
ईथर	९	३५	८३	४८°
मिथाइल अल्कोहाल	९	६६°	१२०° से अधिक	५४°
इथाइल अल्कोहाल	९	७८.५°	१३८°	६०°
प्रोपाइल अल्कोहाल	९	९५°	१३४°	३९°

सुखाने के पश्चात् इन पदार्थों को यदि वायु के संसर्ग में आने दिया जाय, तो गुणों में पुनः परिवर्तन होने लगता है। ऐसा देख गया है कि जिन योगों में ऑक्सीजन विद्यमान है, वे शीघ्र ही परिवर्तित हो जाते हैं। ईथर का वाष्पांक आरम्भ में ३५ था। ९ वर्ष सुखाने पर वाष्पांक ८३ हो गया। पर एक दिन वायु के संसर्ग से ही उसका वाष्पांक ३६° पर उतर आता है।

यही हाल इन तीनों अल्कोहल—मिथाइल, इथाइल और प्रोपाइल—का भी है। पुनः परिवर्तन बहुत शीघ्र होता है।

[*जिस काल में सुखाया गया]

द्रवणांक (M. P.)

वाष्पांक के समान ही द्रवणांक में भी सुखाने पर परिवर्तन आ जाता है। गन्धक का द्रवणांक ११२.५° सेन्टीग्रेड है। १९१३ ईसवी में एक नली में गन्धक को भर कर सुखाने के लिये रख दिया गया। १९१४ ई० में अध्ययन करने पर द्रवणांक में कोई विशेष परिवर्तन नहीं पाया गया। पर १९२२ ई० में ९ वर्ष पश्चात्—वह ११७.५° सेन्टग्रेड पर द्रवित हुआ। अन्य पदार्थों के के द्रवणांकों के परिवर्तन की तालिका निम्न है—

पदार्थ	*वर्ष	आरम्भ में द्रवणांक	नया द्रवणांक	परिवर्तन
आयडीन	९	११४°	११६°	२°
ब्रोमीन	८	–७.३०	–४.५°	३°
बेन्ज़ीन	१०	५.४°०	६°	०.६°

पृष्ठीय—तनाव Surface Tension

बेकर ने ब्रोमीन, बेंज़ीन, हेक्सेन, और नाइट्रोजन टेट्रॉक्साइड के पृष्ठीय तनाव का अध्ययन किया। जल के अभाव में, अनेक वर्षों के सुखाने पर, इन अंकों में भी वृद्धि हुई। एक मनोरंजक सत्य पुष्टि की गई कि सुखाने पर पदार्थ अधिक संगठित हो जाते हैं। जल एक शक्तिशाली विघटन-माध्यम है। उसके अभाव में पदार्थों के संगठन में वृद्धि हो जाना स्वाभाविक है।

वाष्पीय घनत्व

बेकर ने ईथर और मिथाइल अल्कोहल के वाष्पीय घनत्व का अध्ययन किया। आरम्भमें ईथरका वाष्पीय घनत्व ३७ था, पर उसे सुखाने पर ८१.७ तक वृद्धित हो गया। मिथाइल अल्कोहल का वाष्पीय घनत्व भी सुखाने पर १६ से ४५ तक परिवर्तित हो गया। इसे हम एक भिन्न दृष्टि कोण से भी देख सकते हैं। सुखाने पर यौगिक भारों [Mol.-Wt.] में वृद्धि हो जाती है। ईथर का सूखने पर यौगिक भार दुगना हो गया और मिथाइल अल्कोहल का तिगुना।

घनत्व [Density]

पदार्थों के घनत्व का अध्ययन करते समय बेकर

[*जिस काल में सुखाया गया]

को एक नई बात मालूम हुई। घनत्व जल के अभाव में विशेष परिवर्तित नहीं होता। बेकर ने कार्बन डाइसल्फाइड, बेन्जीन, कार्बन टेट्राक्लोराइड, ईथर, सल्फर डाइऑक्साइड, नाइट्रोजन ट्राइऑक्साइड को फौस्फोरस पेन्टॉक्साइड द्वारा सुखाया। १ वर्ष तक सुखाने घनत्व में परिवर्तन केवल $\frac{१}{१०,०००}$ भाग ही रहा।

आपेक्षिक ताप [Sp. Ht.]

आपेक्षिक ताप [Sp. Ht.]

पदार्थों के आपेक्षिक तापों में भी विशेष परिवर्तन मिला। बेकर ने बेन्ज़ीन, विभिन्न तापक्रमों में कार्बन टेट्राक्लोराइड, इत्यादि के आपेक्षिक तापों का अध्ययन किया। बिल्कुल सुखा देने पर इन फलों में परिवर्तन मिलता है। पर यदि केवल ०.०४ प्रतिशत ही जल का संसर्ग मिले, परिवर्तन या तो होता ही नहीं, और यदि होता भी है तो वह नाममात्र है।

यह एक विस्तृत विषय है और इस पर विशद अध्ययन हो रहा है।

———

सोवियट खेती का विकास

युद्ध के बाद के इन दिनों में, जब खेती के पुनर्निर्माण और पुनरुत्थान की समस्या अनेकों देशों के सामने है, सोवियत संघ में भी कृषि की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। जैसा कि सब जानते हैं सोवियत संघ में सामूहिक खेती की प्रथा पूरी तौर से स्थापित कर दी गई है। इसी समूहिक खेती की प्रथा ने सोवियत संघ को जर्मनों को परास्त करने के योग्य बनाया, और, युद्ध के बाद खेती के पुनर्निर्माण में सहायता दी। कृषि के पुनर्निर्माण का कार्य युद्ध के समय में ही आरम्भ हुआ और उसके बाद अधिक तेज़ी से किया जाने लगा। सोवियत सरकार ने किसानों की सहायता मशीन और बीज इत्यादि के रूप में ही नहीं पर नक़द कर्ज़ देकर भी की। सोवियत संघ की कम्यूनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय कमेटी ने कृषि सम्बन्धी प्रश्नों का गूढ़ अध्ययन किया है। इस वर्ष फ़रवरी के महीने में इस कमेटी ने यह

निश्चय किया कि, थोड़े से थोड़े समय में जनता को अधिक से अधिक खाद्य वस्तुएँ दी जा सकें और कारखानों को अधिक से अधिक परिमाण में कच्चे माल दिए जा सकें। केवल यही नहीं, जनता और कारखानों की माँग पूरी करने के पश्चात् इन दोनों वस्तुओं का अच्छा संग्रह तैयार करने का भी निश्चय किया।

तीन वर्षों में, अर्थात् १९४७, ४८ और ४६ में अनाज की उत्पति युद्ध के पहले की स्थिति को प्राप्त कर लेगी। १९४७-४८ में ऐसी भूमि का क्षेत्रफल, जिस पर अनाज बोया जायगा १,१२४,००,००० हेक्टर हो जायगा (एक हेक्टर = २.४७ एकड़)। सोवियत संघ के अनाज की उत्पत्ति १२,७०,००,००० टन हो जायगी (१ टन = २ मन और ३२ सेर)। १९४६ तक कपास और चुकन्दर की उत्पत्ति युद्ध के पहले की उत्पत्ति से भी अधिक हो जायगी। लाखों हेक्टर अच्छी से अच्छी भूमि पर ये फ़सलें बोई जाएँगी। आगामी कुछ वर्षों में फूल और फलों की उत्पत्ति में अच्छा विकास होगा।

जर्मन आक्रमणकारियों ने अनेकों पशु मार डाले थे और अनेकों वे चुरा ले गए थे। पशुओं, भेड़ और बकरियों की संख्या १९४८ तक युद्ध के पूर्व की संख्या के बराबर हो जाएगी।

खेतों को मशीनें पहुँचाने का काम भी तेज़ी के साथ किया जा रहा है। इस वर्ष और अगले वर्ष के अन्त तक एक लाख से अधिक हलों को खींचने वाली बड़ी इंजिनें और एक लाख बड़ी लारियाँ खेतों को मिलेंगी।

सोंठ

(गतांक से आगे)

[लेखकः—श्री० रामेश वेदी आयुर्वेदालङ्कार, हिमालय हर्बल इंस्टीट्यूट, लाहौर

सोंठ के गुण[१]

सोंठ रुचिकारक, आमवात नाशक, पाचक, कटु-रसयुक्त, लघुपाकी, स्निग्ध, उष्णवीर्य, विपाक में मधुर-रसयुक्त, कफ, वात और मलबन्ध को दूर करने वाली, स्वर के लिए हितकारी, वमन, श्वास, शूल, खाँसी, हृदय के रोग, श्लीपद, शोथ, बवासीर, अफारा, पेट की वायु आदि को दूर करती है।

अदरक मल को भेदन करने वाली, पाक में गुरु, तीक्ष्ण, उष्ण वीर्य, अग्निदीपक, कटुरस युक्त, विपाक में मधुर रस युक्त, रुक्ष, वात तथा कफ को नष्ट करने वाली होती है और जितने गुण पहले सोंठ के कहे हैं वे सब अदरक में भी हैं।[१]

आग्नेय गुण—उष्णता-अधिक होने से सोंठ भोजन रसों को आँतों की झिल्ली द्वारा शोषण या ग्रहण करती

---

१ (क) शुण्ठी रुच्यामवातघ्नी पाचनी कटुका लघुः।
स्निग्धोष्णा मधुरा पाके कफवातविबन्धनुत्॥
वृष्या स्वर्या वमिश्वास शूलकासहृदामयान्।
हन्ति श्लीपद शोथार्श आनाहोदरमारुतान्॥
आ० प्र०, पू० ख०, मि० प्र० ६, हरीतकादिवर्ग ४५-४६

(ख) वाग्भू मधुरं पाके स्निग्धोष्णं कटुकं लघु।
रुच्यं महानां संग्राहि हृद्यं वायोविबन्धनुत्॥
दीपनं पाचनं वृष्यं स्वर्यं वात कफापहम्।
निहन्ति शूलहृद्रोग शोफार्शः श्लीपदोदरम्॥
आनाहं श्वासकासायवयीहिद ध्माय पिन्तलम्॥

ग कै० दे०, ओ० व०, १३००-१३०१।
सस्नेहं दीपनं वृष्यमुष्णं वातकफापहम्।
विपाके मधुरं हृद्यं रोचनं विश्वभेषजम्॥
च० सू० अ० २७, २९१।

१ क आर्द्रिका भेदिनी गुर्वी तीक्ष्णोष्णा दीपनी मता॥
कटुका मधुरापाके रूक्षा वातकफापहा।
ये गुणाः कथिताः शुण्ठ्यास्तेऽपि सन्त्यार्द्रकेऽखिलाः॥
आ० प्र०, पू० ख०, मि० प्र० ६, हरीतकादिवर्गः ४९-५०।

ख तत्तुल्ययार्द्रकं विद्यात् सतीक्ष्णं भेदनं गुरु॥
पाचनं रोचनं वृष्यं करट्वष्णं वह्निदीपनम्॥
कफानिलहरं स्वर्यं विबन्धानाहशूलजित्।
अंकुरं शृंगवेरस्य रक्तजित् श्लेष्मवातलम्।
अव्यक्त रसवीर्यत्वात्तपरं कफापहम्॥
कै० दे०, ओ० व०, १३०४-५।

है और जलीय अंश को सुखा कर पतले मल को गाढ़ा करती है। इसलिए यह ग्राही पर मल संग्राहक समझी जाती है। आयुर्वेद के आचार्यों ने सोंठ को मल का भेदन करने वाली भी लिखा है। यहां यह प्रश्न उठता है कि जो द्रव्य बधे हुए मल का भेदन करने वाला है वह ग्राही कैसे होगा, क्योंकि ग्राही द्रव्य तो मल को गाढ़ा करने वाले होते हैं। भावमिश्र इसका समाधान इस प्रकार करते हैं कि सोंठ मल का भेदन करके मलबन्ध दूर करती है किन्तु यह मल को बाहर निकालने का काम नहीं करती।[1]

कैयदेवने अदरक एक भेद आर्द्रकनागर लिखा है। इसके भेद भौतिक गुणों की ओर वह हमें कोई संकेत नहीं देता। अन्य निघण्टुकारों ने ऐसा कोई भेद अपने अन्य ग्रन्थों में नहीं दिया। हमारे विचार में किसी प्रान्त विशेष की अदरक को उसने यह नाम दिया है। गुणों में यह अदरक जैसा ही है।[1] चरक ने कन्दों में सर्वश्रेष्ठ अदरक को माना है।[2]

शुण्ठी खण्ड[3]—सोंठ का चूर्ण ३२ तोला, खाण्ड १ सेर ४८ तोला, घी ६४ तोला, दूध ६ सेर ३२ तोला, विधि पूर्वक पाक करें। गाढ़ा होने पर इनके सूक्ष्म चूर्णों का प्रक्षेप दें—आँवला, धनिया, मोथा, जीरा, पिप्पली, वंशलोचन, दालचीनी, छोटी इलाइची, तेज पत्र, काला जीरा और हरड़ प्रत्येक १॥ तोला, काली मिरच और नागकेसर ६-६ माशा। ठण्डा होने पर इस में २४ तोला शहद मिलायें।

मात्रा—आधा तोला।

रोग—अम्लपित्त, शूल, हृद्रोग, वमन, आमवात।

आर्द्रक खण्ड[1]—अच्छी प्रकार पिसी हुई अदरक ३ सेर १६ तोला, गौ का घी १ सेर ४८ तोला, गो दुग्ध ६ सेर ३२ तोला, खाण्ड ३ सेर १६ तोला। प्रक्षेप—पिप्पली, पिप्पली मूल, काली मिरच, सोंठ, चित्रक, वायविडंग, मोथा, नागकेसर, दालचीनी, छोटी इलाइची, तेज पत्र, और कपूर प्रत्येक आठ तोला। यथा विधि पाक करें। प्रातः काल रोगी को सेवन करायें।

मात्रा—आधा तोला।

रोग—शीतपित्त (छपाकी), कोठ, क्षय, रक्तपित्त, खाँसी, दमा, अरुचि, वायुगोला, उदावर्त, सोज, खुजली तथा क्रिमि रोगों को नष्ट करता है। जराग्नि को प्रदीप्त कर बल एवं वीर्य को बढ़ाता है और शरीर को पुष्ट करता है।

आग्नेयगुणभूयिष्ठात् तोयांशं परिशोषयेत्।
संगृह्णाति मलं तन्तु ग्राहि शुण्ठ्यादियो यथा।।
विबन्ध भेदिनी यातु सा कथं ग्राहिणीभवेत्।
शक्तिर्विबन्धभेदे स्याद्यतो न मलपातने ।।
भा० प्र०, पू० ख०, चि० प्र०, हरीतक्यादिवर्ग, ४-४८।

कटूष्णं दीपनं वृष्यं रुच्यमार्द्रकनागरम्।
श्वासकासवमिहिक्कावात श्लेष्मविबन्धनुत् ।।
कै० दे०, ओ० व०, १३९२।

२ देखिये च० सू० अ० २५; ३६।

३ शुण्ठीचूर्णस्य कुडवं खण्डप्रस्थं समावपेत्।
दत्वाद्विकुडवं सर्पिः क्षीरप्रस्थद्वये पचेत् ।।
लेह्योऽवतारिते दद्यात् धात्रीधान्यकमुस्तकम्।
अजाजी पिप्पली वांशी त्रिजातं कारवी शिवा।।
त्रिशाणं मरिचं नागं षण्माषन्तु पृथक् पृथक्।
पलत्रयञ्च मधुनः शीतीभूते प्रदापयेत्।।
ततो मात्रां प्रयुंजीत अम्लपित्तनिवृत्तये।
शूलहृद्रोगवमनैरामवातैश्च पीडितः।।
भै० र० अम्लपित्ताधिकार; ३६-४०।

१ आर्द्रकं प्रस्थमेकं स्यात् गोघृतं कुडवद्वयम्।
गोदुग्ध प्रस्थयुगलं तदर्द्धं शर्करामता ।।
पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं विश्वभेषजम्।
चित्रकञ्च विडंगञ्च मुस्तकं नागकेशरम् ।।
त्वगेला पत्रकर्पूरं प्रत्येकं पलमात्रकम्।
विधाय पाकं विधिवत्वादेत्कोलद्विसम्मितम् ।।
आर्द्रकखण्डनामायं प्रातर्भुक्तो व्यपोहति।
शीतपित्तमुदर्दञ्च कोठमुत्कोठमेव च ।।
यक्ष्माणं रक्तपित्तञ्च कासं श्वासमरोचकम्।
वातगुल्ममुदावर्त्तं शोथं कण्डूक्रिमीनपि ।।
दीपयेदुदरे वह्निं बलं वीर्यञ्च वर्द्धयेत्।
वपुः पुष्टं प्रकुरुते तस्यासेव्यमिदं सदा ।।
भै० र० शीतपित्तोदर्दकोठाधिकार, २१-२६।

सौभाग्य शुण्ठी[1]—त्रिकटु त्रिफला, भांगरा, जीरा, काला जीरा, धनिया, कूठ, अजमीया, लोह भस्म, अभ्रक भस्म, काकड़ाशृंगी, कटूफल, मोथा, छोटी इलायची, जायफल, जटामांसी, तेजपत्र, तालीशपत्र, नागकेसर, गन्ध यात्रा, कचूर मुलहठी, लौंग, लाल चन्दन, प्रत्येक १ तोला, सोंठ २८ तोला, खाण्ड ११२ तोला. इन सब चीज़ों से चार गुणा गौ का दूध लें। विधि पूर्वक पका कर मोदक बनायें।

मात्रा—आधे से एक तोला।

अनुपान—पानी या दूध।

अम्लपित्त, अरुचि, शूल, हृद्रोग, वमन, गले की जलन, हृदय प्रदेश की जलन, सिर दर्द, मन्दाग्नि, हृदय में शूल, पसलियों की दर्द, कुक्षि शूल, वस्ति शूल, गुदा के रोग, पेशाब कठिनता से आना, ज्वर आदि।

सामान्य उपयोग

मसालों और चिकित्सा में इसका प्रयोग भूमण्डल पर सब जगह बहुत विस्तृत होता है। एक समय यह शराबों को स्वादु बनाने में बहुत इस्तेमाल होती थी। अब भी शीत ऋतु में पसन्द की जाने वाली और शीत ऋतु के लिये उपयोगी तथा हृदय को शक्ति देने वाली शराबों में शुण्ठी मद्य (Ginger beer) का ऊँचा स्थान है। अदरक का चरपरापन हलका और स्वादु होने से और इसमें प्रिय सुरभि होने से इसने बहुत विविध प्रकार के भोज्य द्रव्यों के निर्माण में मसाले के रूप में विस्तृत उपयोगिता प्राप्त कर ली है। साधारण व्यञ्जनों से लेकर रोटियों और स्वादुपेयों में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

जिंजर की बोतलः—सोडा वाटर, लेमोनेड आदि खनिज जल बेचने वाले जिंजर की जो बोतल देते हैं उसे बनाने की विधि यह है—पौने चार सेर पानी में पांच सेर खाण्ड मिला कर बनाई गई चाशनी. खौलता पानी, बारह छटांक निम्बू का तेल (Oil of Lemons) चार बूँद, सिरकाम्ल दो द्रव छटांक और शुण्ठी मद्यासव (tr. of ginger) इच्छानुसार। इन सब को एक जगह मिला लें। पानी की एक बोतल में यह मिश्रण एक से डेढ़ औंस तक मिलाना चाहिये और फिर कार्बोनिकाम्ल गैस (Carbonic acid gas) गुज़ार लेनी चाहिये।

इसमें क्योंकि सोंठ का मद्यासव पड़ता है इसलिये बेचने वाले इसे शुण्ठी मद्य (Ginger beer) के नाम से बेचते हैं।

जिंजरेड—खाण्ड की चासनी तीन सेर, शुण्ठी मद्यासव दो छटांक, सिरकाम्ल २ छटांक, तिक्त नारंगी मद्यासव (Bitter orange tuetincr) इच्छानुसार। इससे पेय बनाने का तरीका पहले की तरह है।

जिंजर-एल (Ginger-ale)—खाण्ड की चासनी तीन सेर, संयुक्त शुण्ठी मद्यासव (compound tincture of ginger) दो छटांक, सिरकाम्ल दो छटांक और शर्करा रञ्जक (Sugar colouring) पेय बनाने का तरीका पहले की तरह है।

शुण्ठी मद्य - उत्सेचन (फ़र्मेण्ट) कर के बनाई गई असली शुण्ठी मद्य जिंजर की बोतल से सर्वथा भिन्न चीज़ है। उसका नुसखा यह है—पानी ६३ सेर, खाण्ड १०½ सेर. छोटे टुकड़ों में कटी हुई सोंठ ३ पाव, टार्टरिक एसिड ३ छटांक, बबूल गोंद (Gum arabic) ½ सेर, निम्बू का तेल ½ छटांक और खमीर ३ छटांक। उत्सेचन के बाद इसमें कम से कम दो प्रतिशतक और कभी-कभी इससे काफ़ी अधिक एलकोहल होती है।

रागषाडव—कच्चे आम को उबाल कर गुड़ तेल मिश्रित एक प्रकार का मुरब्बा बनाया जाता था जिसमें सोंठ भी डाली जाती थी। इस मुरब्बे को रागषाडव कहते[1] हैं।

अदरक का अचार बनाया जाता है। इसका सूखा मुरब्बा बहुत पसन्द किया जाता है और यह भारत से बाहर भी जाता है। क्रमशः

---

१ त्रिकटु त्रिफला भृंग जीरकद्वयधान्यकम्।
कुष्ठाजमोदा लौहाभ्र शृङ्गी कटूफलमुस्तकम्।
एला जातीफलं मांसी पत्रं तालीशकेशरम्।
गन्ध यात्रा शटी यष्टी लवङ्गं रक्तचन्दनम्॥
एतानि सम्भागमनि शुण्ठिचूर्णन्तु तत्समम्॥
सिता द्विगुणिता तत्र गव्यक्षीरं चतुर्गुणम्।
तोलप्रमाणं दातव्यं दुग्धेनापि जलेन वा।
अम्लपित्तं निहन्त्येतद्रोचकानिसूदनम्॥
शूलहृद्रोगवमनं कण्ठदाहं नियच्छति।
हृद्दाहञ्चशिरःशूलं मन्दाग्निञ्च विनाशयेत्॥
हृच्छूलं पार्श्वकुक्षिस्थ वस्तिशूलं गुदे रुजम्।
बलपुष्टिकरञ्चैव वशीकरणमुत्तमम्॥
विशेषादम्लपित्तञ्च मूत्रकृच्छ्रं ज्वरं भ्रमम्।
निहन्ति तात्र सन्देहो भास्करस्तिमिरं यथा॥
भै० र०, अम्लपित्ताधिकार; ६७७३।

१ कथितन्तु गुडोपतं सहकार फलनवम्।
तैलनागरसंयुक्तं विज्ञेयो रागषाडवः॥
च० सू० अ० २७; १०४।

बाल-संसार

इंद्रधनुष के रङ्गों की कहानी

लेखकः श्री सुमन

बालको! तुमने वर्षा के बाद आकाश साफ़ होने पर प्रायः इंद्रधनुष को निकलते हुए देखा होगा। इंद्रधनुष के सात रङ्गों को तो तुम पहिचानते ही होगे; क्या तुमने यह ध्यान दिया है कि इन्द्रधनुष में सातों रंग सदैव उसी क्रम में रहते हैं, सब से ऊपर लाल, फिर नांरजी, पीला, हरा, नीला, नील-रङ्गी और अन्त में बैंजनी! क्या तुमने कभी यह भी सोचने का प्रयत्न किया है कि यह सत-रङ्गा धनुष किस प्रकार सहसा आकाश पर प्रकट हो जाता है? इन्द्रधनुष की उत्पत्ति के बारे में बहुत सी किम्वदन्तियाँ फैली हुई हैं। हिन्दू लोग इन्द्र को वर्षा का देवता मानते हैं और कहते हैं कि यह धनुष वही है जिससे इन्द्र महाराज तीर चला कर बारिश किया करते हैं। शायद तुम यह भी सोचते हो कि जैसे आकाश में बादलों से प्रायः तरह तरह की शक्लें बन जाती हैं, वैसे ही यह इन्द्रधनुष भी कभी कभी प्रकट हो जाता होगा, परन्तु यदि ऐसा होता तो यह आवश्यक नहीं था कि सदैव वही सात रङ्ग उसी क्रम में प्रकट होते। अब ध्यान देकर देखना कि कभी इन रङ्गों के क्रम में भिन्नता तो नहीं आती। स्पष्ट है कि इन्द्रधनुष कुछ प्राकृतिक नियमों के अनुसार ही प्रकट होता है और इसीलिए उसमें वे ही सात रंग सदैव उसी क्रम में दिखलाई देते हैं।

इन्द्रधनुष की उत्पत्ति के ऊपर एक दीर्घ काल से वैज्ञानिक सोच विचार कर रहे थे। अन्त में सर आइज़क न्यूटन की गवेषणा ने इस समस्या को हल किया। न्यूटन के नाम से तो तुम परिचित ही होगे, यह वही न्यूटन महाशय थे जिन्होंने पेड़ से सेब गिरते देख यह नियम मालूम किया कि पृथ्वी प्रत्येक वस्तु को अपनी ओर खींचती रहती है। सन् १६६० में, विलायत के एक शहर कैम्ब्रिज में एक साधारण से कमरे में न्यूटन साहब ने कइ प्रयोग आरम्भ किये, जिनसे न केवल इन्द्रधनुष बल्कि समस्त प्रकाश के स्वभाव के बारे में अद्भुत बातें संसार को आरम्भ हुईं। न्यूटन साहब ने उस कमरे को चारों तरफ़ से जकड़ कर बन्द कर दिया था, ऐसा कि कहीं से उसमें रोशनी भी घुस न सके। ऐसे अंधेरे कमरे में रोशनी के आने के लिए उन्होंने केवल एक खिड़की में आलपीन से छेद कर दिया था। छेद से सूरज की रोशनी एक सीधी लकीर में आ रही थी और न्यूटन साहब हाथ में शीशे का एक तिकोना ठोस (Prism) हाथ में लिए हुए किसी बड़े सोच में पड़े हुए थे। ऐसा शीशे का टुकड़ा तो तुमने भी देखा होगा, इसमें यह गुण था कि ज्यों ही उसे रोशनी की आती हुई रेखा के सामने रक्खा जाता था, त्योंही दीवाल पर सफेद रोशनी की जगह सात रंग प्रकट हो जाते थे और आश्चर्य की बात तो यह थी कि यह रङ्ग बिल्कुल वही थे जो इन्द्रधनुष में होते हैं और उसी क्रम में यह प्रकट होते थे। यदि न्यूटन की जगह कोई साधारण मनुष्य होता तो प्रसन्न होकर चिल्लाता फिरता कि मैं इन्द्रधनुष को दीवाल पर बुला कर दिखला सकता हूँ; या कोई चालाक मनुष्य इसे जादू का खेल कह कर पैसा कमाता। परन्तु न्यूटन साहब तो दीवाल पर इन्द्रधनुष वाले इन सात रङ्गों को देखकर बड़ी परेशानी में पड़ गये। वैज्ञानिक का ध्यान तो सदैव इस ओर जाता है कि अमुक क्रिया या घटना का कारण क्या है?

इस अद्भुत घटना को देखकर महाशय न्यूटन भी इसका कारण ढूँढने में लग गये। दिन रात उन्हें यही सोच लगा रहता कि यह सात रंग कहाँ से आते हैं?

क्या यह शीशे के टुकड़े से निकलते हैं ? परन्तु यह सुझाव उनको सन्तुष्ट नहीं कर पाता था। सोचते सोचते, उनका कुशाग्र मस्तिष्क एक अनुमान पर पहुँचा कि हो, न हो, यह रंग सूर्य की आने वाली रोशनी में ही विद्यमान थे और प्रिज्म ने केवल उन रंगों को प्रथक कर दिया है। यह विचार आते ही उनको निश्चय सा हो गया कि सातों रङ्गों की उत्पत्ति के बारे में यही धारणा सत्य के सबसे अधिक निकट है। परन्तु वैज्ञानिक केवल अनुमान मात्र पर विश्वास कर लेनेवाला जीव नहीं है, उसका तो ध्येय यह होता है कि अपने विश्वासों को निर्विवाद रूप में संसार के सम्मुख सिद्ध कर सके, जिससे समस्त लोग उस विश्वास को सत्य मान कर उसे "प्राकृतिक नियम" का नाम दे सकें।

ऐसे ही सबूत की तलाश अब न्यूटन को थी, शीघ्र ही उन्हें अपने परिश्रम का सुफल मिल गया। उनकी युक्ति बहुत ही साधारण थी। प्रकाश की किरण के सामने प्रिज्म रखने से दीवाल पर सफेद रोशनी के स्थान पर सात रंग प्रकट हो जाते थे। न्यूटन साहेब ने सोचा कि यदि इस प्रिज्म को उलटा कर दिया जाए तो रंगों का क्रम भी उलट जायेगा। साधारण सी बात थी, प्रयोग करने पर ठीक ही साबित हुई। यह प्रयोग तुम भी कर सकते हो, प्रिज्म को सीधा रखने पर दीवाल पर ऊपर की ओर लाल, बीच में हरा और अन्त में बैंजनी रंग प्रकट होंगे और उल्टा कर देने पर बैंजनी सब से ऊपर और लाल सब से नीचे। इतना देखते ही न्यूटन साहेब हर्ष से उछल पड़े। शायद तुम यह प्रश्न पूछोगे कि इसमें इतनी प्रसन्नता की क्या बात थी ? तुम तो अभी नहीं समझ पाये, पर वह कुशाग्र बुद्धि वाला वैज्ञानिक फौरन समझ गया कि उसे अपनी धारणा को सत्य सिद्ध करने का मार्ग स्पष्ट मिल गया। दूसरे ही क्षण उन्होंने एक प्रिज्म को लिया, उसे प्रकाश की रेखा के मार्ग में सीधा रक्खा। साधारण सी बात हुई कि सातो रङ्ग प्रकट होगये, फिर उन्होंने पहिले प्रिज्मके बिल्कुल सदृश एक प्रिज्म और लिया और इस बार उसे उलट कर पहिले प्रिज्म के निकट रक्खा और लो यह क्या हुआ ? दीवाल पर सातो रंग गायब हो गये और फिर वही सफेद रोशनी प्रकट हो गई। जादू का सा खेल यह तुमको लगेगा। परन्तु यदि एक क्षण ध्यान से सोचो तो समझ में आ जायेगा कि पहिले प्रिज्म ने प्रकाश में उपस्थित सातों रंगों को अलग अलग किया और दूसरे प्रिज्म ने उनको उल्टी दिशा में मिला दिया और सातों रंग फिर मिल कर दीवाल पर सफेद रोशनी के रूप में प्रकट हो गये। इस प्रकार उन्होंने सिद्ध कर लिया कि न केवल सफ़ेद प्रकाश को सात रङ्गों में प्रथक किया जा सकता है बल्कि सातो रंगों को मिलाने पर फिर सफ़ेद प्रकाश प्रकट हो जाता है। अब तो निर्विवाद रूप से सिद्ध हो गया कि सातो रंग सफ़ेद प्रकाश में ही उपस्थित हैं।

न्यूटन साहेब ने उपर्युक्त प्रमाण के अतिरिक्त एक और भी बड़े मनोरंजक रूप में अपनी धारणा को सत्य सिद्ध किया। उनका यह प्रमाण भी देखना चाहते हो, तो एक लकड़ी का गोल टुकड़ा लो और बढ़ई से उसको चर्खी के ऊपर ऐसा लगवा लो कि वह जोर से नाच सके। लकड़ी के टुकड़े पर अब सातो रङ्गों को उसी क्रम में रंग लो और चर्खी को नचाओ। जोर से नचाने पर तुम्हें एक भी रंग न दिखाई देगा, वरन् उनके स्थान पर लकड़ी का टुकड़ा सफ़ेद रंगा मालूम होगा। कितनी आश्चर्यजनक है यह बात, परन्तु उपर्युक्त तथ्य से तो तुम इसका कारण समझ ही गये होगे।

हाँ, तो अब तुम समझ गये होगे कि सफ़ेद प्रकाश सात रंगों से मिल कर बना है। परन्तु शायद तुम सोचते होगे कि हमने तो इन्द्रधनुष की बात को ले कर आरम्भ किया था और कहां से कहां चले आये। परन्तु महाशय न्यूटन के इन्हीं प्रयोगों ने इन्द्र-धनुष की उत्पत्ति का कारण स्पष्ट कर दिया। बारिश के बाद जब प्रकाश की किरणें निकलती हैं तो कभी-कभी वायुमंडल में उपस्थित पानी की बूँदे उनके लिये प्रिज्म का कार्य्य करने लगती है और यह प्राकृतिक प्रिज्म, सूर्य्य की प्रकाश रेखाओं को सात रंगों में पृथक कर इन सातों रंगों को आकाश में इन्द्र धनुष के रूप में प्रकट कर देते हैं। प्रकृति कितनी साधारण वस्तुओं से हमारे लिये कितने मनमोहक दृश्य उपस्थित कर सकती है !

———

प्रश्नोत्तर

१ श्री नारायण शर्मा लखनऊ सरके गंजेपन की दवा पूछते हैं।

डाक्टर या वैद्य से नुसखा लिखाना ही अच्छा है, क्योंकि गंजापन कई कारणों से उत्पन्न हो सकता है।

निम्न घोल की परीक्षा की जा सकती है। इससे अनेक व्यक्तियों को लाभ पहुँच चुका है—

१—बोरैक्स	१ ड्राम
ग्लिसरीन	२ "
टिंक्चर कैनथराइडिज़	१ औंस
पोटैशियम कारबोनेट	½ ड्राम
बेरम (खुशबूदार शराब)	१ औंस
डिस्टिल्ड वाटर (स्रवितजल)	८ औंस

२. श्री रामगोपाल सक्सेना, बनारस वैनिशिंग क्रीम बनाने की विधि जानना चाहते हैं।

वैनिशिंग का अर्थ है अंतर्धान हो जाने वाला। इन क्रीमों में तेल, चर्बी या वेसलिपन नहीं रहता। इसलिये चेहरे पर तेल की चमक नहीं आती। त्वचा स्वच्छ और सुन्दर तथा प्राकृतिक जान पड़ती है। नुसखों में बतलाई गई सुगन्धियों के बदले अन्य सुगन्धियाँ भी डाली जा सकती हैं।

१—स्टियरिक ऐसिड (सफेद)	४ पौंड १२ औंस
ग्लिसरीन	८ " ८ "
स्रवित जल (डिस्टिल्ड वाटर)	१४ पाइंट
लिकर अमोनिया	४ औंस ६ ड्राम
ऐलकोहल	१ पाइंट
इत्र चमेली (कृत्रिम)	४ ड्राम
कस्तूरी (कृत्रिम रवेदार)	२० ग्रेन
टरपिनियोल (कृत्रिम पदार्थ)	२ औंस

स्टियरिक ऐसिड को किसी बर्तन में रक्खो। उस वर्तन को गरम पानी में रख कर स्टियरिक ऐसिड को पिघलाओ। २ पौंड ग्लिसरीन और १२ पौंड पानी मिला कर इतना गरम करो कि स्टियरिक ऐसिड में डालने पर वह जम न जाय। इसमें अमोनिया डालो और तब इसे स्टियरिक ऐसिड में डालो और बराबर चलाते जाओ। अब शेष ग्लिसरीन और पानी मिलाकर ८०-डिगरी सेंन्टीग्रेड तक गरम करो (इतना गरम करो कि हाथ न सहे) इसे पहले वाले मिश्रण में मिलाओ। बराबर चलाते रहो। १५ मिनट तक इसे गरम रक्खो और चलाते जाओ आँच से उतार लो और खूब चलाते रहो। अंत में इत्रों को ऐलकोहल में घोल कर इसमें धीरे-धीरे मिलाओ। और बराबर फेंटते रहो जब सब एक दिल हो जाय तब बतन में बन्द करो।

वैज्ञानिक समाचार

(१) पृथ्वी की चुम्बकीय शक्ति

पृथ्वी की चुम्बकीय शक्ति के कारण के बारे में दीर्घ काल से बहुत अनुमान किये जा रहे हैं, परन्तु कोई अनुमान पूर्ण सत्य के निकट भी नहीं पहुँचा। इङ्गलैण्ड के प्रमुख भौतिक विज्ञान वेत्ता श्री० पी० एम० एस० ब्लैकेट ने लन्दन की रायल सोसाइटी के सम्मुख १५ मई को एक अनुसन्धान लेख पढ़ा, जिसमें उन्होंने इसी विषय की व्याख्या की है। उन्होंने पृथ्वी, सूर्य तथा तारे ७८ वरजीनिस की चुम्बकीय शक्ति के मान से यह स्पष्ट कर दिया है कि इनके चुम्बकीय शक्ति और परिभ्रमण (Rotation) गति में सरल सम्बन्ध है। यह विचार वैज्ञानिक क्षेत्रों के लिये अति नवीन है और इसने प्रथमवार यांत्रिक शक्ति तथा चुम्बकीय शक्ति में सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। इस नयी धारणा का पूर्ण वर्णन विज्ञान के अगले अंक में पाठकों को मिलेगा।

(२) भारत में परमाणुक शक्ति पर अनुसन्धान

भारतीय सरकार के उद्योग तथा रसद के मंत्री श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ने एक विज्ञप्ति प्रकाशित की है, जिसमें उन्होंने भारत के परमाणुक शक्ति पर अनुसन्धान करने के लिये एक समिति बनाये जाने की घोषणा की है। ट्रावनकोर प्रदेश की मोनाजाइट बालू शायद थोरियम का सर्वोत्तम खनिज है और इसलिये सर शान्ति स्वरूप भटनागर और प्रोफेसर भावा को इस विषय पर बातचीत करने के लिये ट्रावनकोर भेजा गया था। इनके वार्तालाप के फल स्वरूप एक संयुक्त समिति स्थापित की गई है जिसमें ६ सदस्य भारतीय वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसन्धान कौंसिल निर्वाचित करेगी और ३ सदस्य ट्रावनकोर सरकार। दोनों के लिये यह संयुक्त सलाहकार समिति होगी। संयुक्त समिति में निम्न सदस्य रहेंगे,

प्रोफ़ेसर एच० जे० भाभा (सभापति), प्रोफ़ेसर मेघनाद साहा, श्री डी० एन० वादिया, डा० नज़ीर अहमद, सर के० एस० कृष्णन, सर शान्ति स्वरूप भट-

नागर, डा० के० एल० माउडगिल, श्री के० पी० मेनन, श्री वी० महादेवान ।

(३) वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसन्धान कौंसिल

विज्ञान तथा उद्योगों के प्रतिनिधियों की एक-मत राय के कारण भारतीय सरकार ने वैज्ञानिक तथा औद्यो- अनुसन्धान कौंसिल के पुराने विधान को ही जारी रखने का निश्चय किया है, परन्तु उन्होंने औद्योगिक अनुसन्धान उपयोगिता समिति को जो कि कौंसिल की एक सलाहकार समिति थी, बन्द कर देने का निर्णय किया है।

१ अप्रैल १९४७ से ५ वर्ष के लिये कौंसिल की गवर्निङ्ग समिति पर निम्न सदस्य नियुक्त किये गये हैं— (१) उद्योग धन्धों तथा सप्लाइज़ के माननीय सदस्य (सभापति), (२) सर शान्ति स्वरूप भटनागर डाइरेक्टर वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसन्धान, (३) सर आर्थर वाफ़, उद्योग धन्धों तथा सप्लाईज़ विभाग के मंत्री (४) श्री ए० के० चन्दा, आर्थिक सलाहकार (५) सर जे० सी० घोष बङ्गलौर (६) प्रोफ़ेसर मेघनाद साहा कलकत्ता (७) सर श्रीराम नई दिल्ली, (८) सर आर्देशिर दलाल (९) श्री जे० आर० डी० टाटा बम्बई, (१०) गुलाम मुहम्मद बम्बई, (११) डाक्टर नज़ीर अहमद, भारतीय टैरिफ़ बोर्ड, (१२) श्री कस्तूर भाई लाल भाई, अहमदाबाद (१३) श्री ए० एफ० हितेंज़ाल एम० एल० ए० (१४) सर ए० एल० मुदालियर, मद्रास (१५) सर एच० सीताराम रेडी, मद्रास के उद्योग-मंत्री, (१६) श्री घनश्याम दास बिड़ला, नई दिल्ली (१७) श्री एन० वी० गाडगिल एम० एल० ए० (केन्द्रीय) (१८) डा० के० ए० हमीद बम्बई (१९) सर मुहम्मद यमीन खाँ, एम० एल० ए० (केन्द्रीय)

(४) वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसन्धान बोर्ड

३ वर्ष के लिये बोर्ड के निम्न सदस्य नियुक्त किये गये हैं—(१) वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसन्धान कौंसिल के सभापति (२) सर शान्ति स्वरूप भटनागर (३) डा० विधान चन्द्र राय कलकत्ता (४) डा० एन० एन० ला, कलकत्ता (५) श्री पी० एफ० एस० वारेन, कलकत्ता (६) डा० जीवराज एन० मेहता, बम्बई (७) डा० नज़ीर अहमद (८) सर रहीमउतुला चिनाये, बम्बई (९) सर जे० सी० घोष (१०) डाक्टर मुहम्मद कुरेशी (हैदराबाद) (११) सर कार्य्यमाणिकम श्री निवास कृष्णन (१२) श्री कस्तूर भाई लाल भाई (१३) प्रो० मेघनाद साहा (१४) सर श्रीराम (१५) सर आर्थर वाफ़ (१६) सर आर्देशिर दलाल (१७) सर गुलाम मुहम्मद (१८) जेनरल हेड क्वार्टर नई दिल्ली के वैज्ञानिक सलाहकार (१९) सर तेजा सिंह मलिक (२०) सर चन्द्रशेखर वेंकटरमन (२१) डा० एच० जे० भाभा, बम्बई (२२) श्री डी० एन० वादिया ।

४. जर्मनी की वैज्ञानिक पत्रिकायें

हर्ष का विषय है कि जर्मनी में ६० संस्थाओं को वैज्ञानिक अनुसन्धान पत्रिकायें छापने की आज्ञा मिल गई है; इनमें से लगभग २५ का तो छपना भी आरम्भ हो गया है और शीघ्र ही और पत्रिकाओं के छपने की आशा है।

५. पासचियर-प्रदर्शिनी

साउथ के निङ्गस्टन, लन्दन में स्थिति वैज्ञानिक अजा- यबघर में १० अप्रैल से २६ मई तक एक प्रदर्शिनी हुई थी। प्रदर्शिनी वैज्ञानिक अध्ययन में प्रदर्शनों के महत्व को दिखलाने के लिये की गई है। इसके एक अंग में वैज्ञानिक लुई पासचियर के अनुसन्धानों का एक काला- नुसार प्रदर्शन है।

६. कैन्सर अनुसन्धार कांग्रेस का चौथा अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशन

सेण्ट लुई, मिसूरी, अमेरिका में २ से ७ सितम्बर १९४७ तक कैन्सर पर एक अनुसन्धान कांग्रेस होगी। वाशिङ्गटन विश्वविद्यालय के डाक्टर ई० वी० काउड्राई इसके सभापति निर्वाचित हुये हैं। इस प्रकार के ३ अधि- वेशन पहले हो चुके हैं। पहिला १९३३ में मेड्रिड में हुआ था, दूसरा ब्रुसेल्स में १९३६ में हुआ था और तीसरा एटलाण्टिक सिटी, न्यूजरसी संयुक्त प्रदेश अमेरिका में हुआ था। डाक्टर एम० जी० सीलिग इसके प्रोपेगन्डा मन्त्री हैं और शीघ्र ही वाशिङ्गटन का सरकारी विभाग विभिन्न देशों की सरकारों को इस अधिवेशन में प्रतिनिधि भेजने के लिये निमन्त्रण देगा।

७. भारतीय चिकित्सा प्रणालियों का उत्थान
सामात द्वारा प्रश्नावलियों का वितरण

हाल ही भारत सरकार ने भारतीय चिकित्सा प्रणालियों को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से जिस समिति की स्थापना की थी उसमें आजकल जिन विषयों पर सोच विचार किया जा रहा है उनमें से कुछ ये हैं—क्या सरकार की आयुर्वेदीय और यूनानी-तिब्बी चिकित्सा प्रणालियों के अनुसार की जाने वाली चिकित्सा पर नियन्त्रण रखना चाहिये ? क्या इन चिकित्सा प्रणालियों के सम्बन्ध में शोध करने और अन्वेषण के लिये वैज्ञानिक प्रणालियां लागू करने की गुंजाइश है ? इन प्रणालियों के सम्बन्ध में शिक्षण सुविधाओं में सुधार करने के लिये क्या व्यवस्था हो सकती है औप सर्वसाधारण के लिये उनकी उपयोगिता किस प्रकार बढ़ाई जा सकती है ? देश में इन चिकित्सा प्रणालियों के अनुसार होने वाले वर्तमान कार्य के विभिन्न अंगों के सम्बन्ध में प्रमाणिक तथ्यों का संग्रह करने के लिये समिति ने चार प्रश्नावलियां तैयार की हैं जो क्रमशः प्रान्तीय और रियासती सरकारों, भारतीय चिकित्सा संस्थाओं, चुने हुये वैद्यों और हकीमों तथा दवाखानों में बाँटी जायंगी। हिन्दी और उर्दू में भी ये प्रश्नावलियां तैयार हैं और इन्हें सेक्रेटरी, इनडिजिनस मेडिसिन्स कमेटी, पोस्ट बक्स न० २५, दिल्ली से मगाया जा सकता है।

८. भूगणित तथा भूमौतिक विज्ञान और भारत

भारत के सर्वेयर-जनरल की प्रार्थना पर भारत सरकार ने निश्चय किया है कि भू-गणित तथा भू-भौतिक अन्तर्राष्ट्रीय यूनियन (संघ) में भारत फिर सम्मिलित हो जाय। पहले अगस्त १९३० में स्काटहोम बैठक में भारत इस यूनियन में सम्मिलित किया गया था, किन्तु आर्थिक कारणों से उसे १९३३ में, उनसे पृथक हो जाना पड़ा। हाल में ही, भारत के सर्वेयर-जनरल (प्रधान पर्यवेक्षक) की प्रार्थना तथा भूगर्भ पर्यवेक्षण के डाइरेक्टर की सिफारिश पर, भारत सरकार ने भारत का इस यूनियन में पुनः सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया है। यूनियन के गत अगस्त के कैम्ब्रिज अधिवेशन में भारत के सदस्य बनाये जाने का प्रस्ताव रखने के लिये, सरकार ने सर एस० एस० भटनागर, श्री डी० एन० वाडिया तथा डाक्टर ग्राफ हंटर को ब्रटेन भेजा था।

इंडियन मिनरल्स (भारतीय खनिज) नामक पत्रिका के पहले (जनवरी १९४७ के) अंक में एक लेख प्रकाशित हुआ है जिसमें बताया गया है कि उक्त 'यूनियन' (इंटर्नैशनल यूनियन आव जेओडेसी एंड जिओफिजीक्स) की कार्रवाई जिन मुख्य सात विभागों में विभाजित है, उनके विषय में विगत शताब्दी में भारत में कितना सफल कार्य हुआ है इस सिलसिले में, भू-गणित, त्रिग्नोमत्री, ख-गोल अवनि-आकर्षण, भू-कम्प विज्ञान, और सागर, ज्वालामुखी पर्वत, जल-विद्युत आदि विषयों पर भारत में होने वाले वैज्ञानिक पर्यवेक्षण तथा अन्य कार्य का हवाला इस लेख में दिया गया है।

यूनियन की सदस्यता से लाभ

इसमें सन्देह नहीं कि अंतराष्ट्रीय भू-गणित तथा भूमौतिक विज्ञान संघ का सदस्य बनने से भारत को अनेक लाभ हो सकते हैं। इस प्रकार भारत के प्रतिनिधि भी संघ के त्रय-वार्षिक अधिवेशनों में सम्मिलित हो सकेंगे और संघ द्वारा प्रकाशित सारी चीजों की प्रतियां भी भारत को प्राप्त हो सकेंगी। संघ की ओर से उसके सदस्य देशों को भू-गणित तथा भू-भौतिक सम्बन्धी टेक्निकल रिपोर्टें प्रकाशित की जाती हैं, जो छानबीन के कार्य में बड़ी सहायता दे सकती हैं। साथ ही, कोई भी सदस्य देश संघ के अधिवेशन में कोई भी संबधित विषय विचारार्थ उपस्थित कर सकता है और इस प्रकार उस विपय पर पर्याप्त जानकारी उपलब्ध की जा सकती है।

भारत सरकार भूगोल, गणित, ज्योतिष, रेडिओ, तार तथा प्राणि-विज्ञान, आदि के उन्नति के लिये कार्य करने वाले अन्य अंतराष्ट्रीय संघों के सम्बन्ध में भी आवश्यक बातें जानने की कोशिश कर रही है।

(९) बनस्पति घी पर अनुसन्धान

केन्द्रीय आहार विभाग ने बनस्पति घी पर दो अनुसन्धान योजनाओं को स्वीकृत है।

पहिली योजना में बनस्पति की पौष्टिक प्रभाव पर काम किया जायेगा, यह अनुसन्धान इंडियन इन्स्टीट्यूट आफ़ साइन्स बङ्गलौर में किया जायेगा। दूसरी योजना में मानव समाज पर बनस्पति के प्रभाव पर काम होगा और यह कार्य बम्बई, दिल्ली और मद्रास या बङ्गलौर की प्रयोगशालाओं में होगा।

(१०) सर चन्द्रशेखर वेंकटारमन के लिये सोवियट सम्मान

भारत के सर्व-प्रमुख वैज्ञानिक सर रमन को सोवियट एकाडेमी आफ़ सांइसेज़ ने अपना सदस्य निर्वाचित किया है।

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुखपत्र

भाग ६५ | सम्वत् २००४, अगस्त १९४७ | संख्या ५

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries

प्रकाशक

विज्ञान-परिषद्,

बेली रोड, इलाहाबाद।

वार्षिक मूल्य ३)] [एक संख्या का मूल्य।

प्रयागकी

विज्ञान-परिषद् के मुख्य नियम

परिषद्का उद्देश्य

१—१९७० वि० वा १९१३ ई० में विज्ञान परिषद्की इस उद्देश्यसे स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञानके अध्ययनको और साधारणतः वैज्ञानिक खोजके कामको प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद्का संगठन

२—परिषद्में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमोंके अनुसार सभ्यगण सभ्योंमेंसे ही एक सभापति, दो उपसभापति एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमंत्री, दो मंत्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे, जिनके द्वारा परिषद्की कार्यवाही होगी।

पदाधिकारियोंका निर्वाचन

१८—परिषद्के सभी पदाधिकारी प्रतिवर्ष चुने जायँगे। उनका निर्वाचन परिशिष्टमें दिये हुये तीसरे नकशेके अनुसार सभ्योंकी रायसे होगा।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्यको ५) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश-शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ ७० रु० की रकमदे देनेसे कोई भी सभ्य सदाके लिये वार्षिक चन्देसे मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्योंको परिषद्के सब अधिवेशनोंमें उपस्थित रहनेका तथा अपना मत देनेका, उनके चुनावके पश्चात् प्रकाशित, परिषद्की सब पुस्तकों, पत्रों, विवरणों इत्यादिके बिना मूल्य पानेका—यदि परिषद्के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धनसे उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन-चौथाई मूल्यमें मिलेंगी।

२७—परिषद्के सम्पूर्ण स्वत्वके अधिकारी सभ्यवृन्द समझे जायँगे।

परिषद्का मुखपत्र

३३—परिषद् एक मासिक-पत्र प्रकाशित करेगी जिसमें सभी वैज्ञानिक विषयोंपर लेख प्रकाशित हुआ करेंगे।

३४—जिन लेखोंको परिषद् प्रकाशित करेगी उनमें जो लेख विशेष महत्व और योग्यताके समझे जायँगे उनके लेखकोंको अपने अपने लेख की बीस प्रतियाँ बिना मूल्य पानेका अधिकार होगा।

विज्ञान

विज्ञान-परिषद, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विनेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ६५ | सम्वत् २००४, अगस्त, १९४७ | संख्या ५

विज्ञान विरदावली

विज्ञान ज्ञान का हो प्रसार !
इसमें नवजीवन यशोगान,
इसमें प्रज्ञा दृग विद्यमान !
मनहर ; नूतन इसके जग में,
सुर-शक्ति सौष्ठव है प्रधान।
यह करता प्रादुर्भाव भव्य,
नव यन्त्रों का अविरल प्रतिपल ?
अवदात-ध्वान्त को कर देता,
जल को कर सकता दीप्त अनल।
दामिनि जो यह निशि में जलती,
यह विज्ञानी जन का प्रभाव ?
जिनका गुण गौरव देख देख,
होता चिर पुलकित सिन्धु साथ ;
पानिप प्रशान्त इसकी न्यारी ;
जिससे आलोकित जगत भूमि,
स्फूर्ति, सृजन ,सौन्दर्य शुभ्र,
वारण-समीप सरि-सिन्धु ऊर्मि।
उन्नायक इसके विज्ञ वृन्द ;
इसकी सत्ता-शतधा प्रणम्य।
'जगदीश बोस' वह चतुर 'राय',
वाग्मी 'रमन' के भाव गम्य !
जिनके तृण-तृण में प्रबल सार ;
विज्ञान ज्ञान का हो प्रचार ॥

—इन्दुभाल शुक्ल 'दिव्य' सम्पादक "सुषमा"

मलेरिया से द्वन्द्वयुद्ध

तथा

पालूड्रीन की खोज

[ले०—श्री० विद्यासागर विद्यालंकार, दिल्ली]

[कुछ दिन से 'इम्पीरियल कैमिकल इण्डस्ट्रीज' ने एक नवीन औषधि का विज्ञापन प्रारम्भ किया है। इस औषधि के सम्बन्ध में उनका दावा है कि यह औषधि अब तक ज्ञात मलेरिया संहारक औषधियों में सर्वोत्तम है। उसका कुछ इतिहास इस लेख में प्रस्तुत किया गया है। संक्षेप में मलेरिया से अब तक के द्वन्द्व-युद्ध का सिंहावलोकन भी किया गया है।]

यह अनुमान लगाया गया है कि प्रतिवर्ष मलेरिया से ३० लाख व्यक्तियों इस संसार से कूच कर जाते हैं। यह तो अभी तक मालूम नहीं हो सका कि मलेरिया से जिन लोगों की जीवनीशक्ति क्षीण हो गई है वे कितनी सख्या में अन्य घातक रोगों के शिकार हो गये हैं। हमें ऐसे उदाहरण मिलते हैं जब कि कुछ प्रदेशों की सम्पूर्ण जनसंख्या का मलेरिया ने सफाया कर दिया है, नई बस्तियाँ बसने से रोक दी हैं और युद्धकाल में आक्रमण करती हुई सेनाओं की गति में 'ब्रेक' लगा दी है। यह रोग केवल उष्ण-कटिबन्ध के देशों तक ही सीमित नहीं है, अपितु शीत कटिबन्ध के इंगलैण्ड जैसे देशों में भी अनियन्त्रित रूप से फलता फूलता रहा है। यह कहा जाता है कि इंगलैण्ड का प्रसिद्ध डिक्टेटर ओलिवर क्रामवेल भी इसी जूड़ी-ताप से मरा था। अब भी संयुक्त राष्ट्र अमरीका के दक्षिणी भाग—समशीतोष्ण कटिबन्ध—में यह तृतीयक ज्वर (प्रति तीसरे दिन होने वाला मलेरिया) रूप में अथवा अन्य उग्र रूपों में पाया जाता है। यह भी अब प्रायः सब को मालूम है कि यह रोग एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य में एनाफिलीज नामक मच्छर के काटने से पहुँचता है। मच्छर के काटने से यह रोग कैसे बढ़ता है, यह हमारे लेख का विषय नहीं है, अपितु मच्छर के काटने के कुछ दिनों बाद जो ज्वर रूप में रोग प्रगट होता है उसके प्रतिकार के लिये अब तक अन्तिम उपाय क्या किया गया है यही प्रस्तुत लेख का उद्देश्य है।

प्रारम्भिक प्रयत्न

मलेरिया या जूड़ी को रोकने के लिये भारतीय चिकित्सकों ने चिरायते का प्रयोग आरम्भ किया, पाश्चात्य चिकित्सकों ने सिनकोना और कुनैन का। परन्तु द्वितीय महायुद्ध के छिड़ जाने के कारण कुनैन के उत्पादनक्षेत्र—दक्षिण पूर्व एशिया—जापान के अधिकार में चले गये। इंगलैण्ड और अमरीका की सेनाओं को बर्मा और मलाया के ऐसे प्रदेशों में लड़ना पड़ रहा था, जहाँ मलेरिया अपने पूर्ण रौद्र रूप में था। इन प्रदेशों के आर्द्र और जंगल युक्त प्रदेशों में सैनिक मलेरिया से बहुत परेशान होने लगे। फलतः इस रोग को रोकने के लिये बहुत परिश्रम किया जाने लगा। वैज्ञानिकों की तत्परता और कार्य संलग्नता के परिणाम स्वरूप युद्धकाल में मच्छरों के महाकाल डी. डी. टी., ६६६ जैसी छिड़कने की औषधियों का आविष्कार हुआ, और मेपाक्रिन, प्लाज्याक्विन तथा पामाक्विन तथा मेटाक्लोरिडिन जैसी मुँह से लेने की औषधियों का आविष्कार किया गया। मेपाक्रिन के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि यह तो वस्तुतः जर्मनी द्वारा निर्मित अटेब्रिन का नामान्तर मात्र है। परन्तु दोनों के प्रभाव और गुणों से ऐसा प्रतीत नहीं होता। मेटाक्लोरिडिन एक अमरीकन औषधि है इसके

सम्बन्ध में यह दावा किया गया है कि यह कुनैन और अटेब्रिन दोनों से अधिक लाभदायक है।

नयी औषधि क्यों ?

सम्भवतः यह प्रश्न होता है कि मलेरिया को रोकने के लिये इतनी औषधियों के होते हुए भी और नई औषधियों की क्या आवश्यकता है? यह तो अनुभव सिद्ध बात है कि इनमें से कोई भी औषधि अभी तक पूर्ण रूप से मलेरिया-निरोधक सिद्ध नहीं हुई, पूर्ण निर्दोष तो हैं ही नहीं। इनके प्रयोग से विषैले पदार्थों के से लक्षण भी उत्पन्न होते देखे गये हैं।

मेपाक्रिन के ही उदाहरण को यदि लिया जाय तो इसके प्रयोग से यह प्रयोग से यह प्रगट हुआ है कि चमड़ी पर पीले पीले धब्बे पड़ जाते हैं। २०० कटिबन्ध में रहने वाली बहुत सी स्त्रियों ने मलेरिया से पीड़ित रहना तो स्वीकार किया, पर मेपाक्रिन से चमड़ी का पीला पड़ जाना गवारा नहीं किया। कुनैन और मेपाक्रिन शरीर में प्रविष्ट होने पर अपना प्रभाव तभी दिखाती हैं जब कि रोग को शरीर में प्रविष्ट होने के बाद कुछ समय निकल चुकता है। इसलिये जिस शीघ्रता से रोग शान्त होना चाहिये उस प्रकार नहीं होता। सामान्य रूप से यह कह सकते हैं कि ये औषधियाँ रोग निरोध, रोगोपचार और रोगावृत्ति रोकने के तीनों काम एक साथ कर सकने में असमर्थ हैं।

यद्यपि पामाक्विन गेमेटोसाइट्रो (इन्हीं कीटाणुओं को मच्छर हमारे शरीर में प्रविष्ट कराते हैं, जिनसे मलेरिया रोग फैलता है) पर अद्भुत प्रभाव दिखाती है और रोग के पुनः संक्रमण का कोई अवसर नहीं रहता, रोग की पुनरावृत्ति को घटाने में सफल हुई है; परन्तु यह औषधि इतनी अधिक विषैली है कि डाक्टरों के निरन्तर निरीक्षण और निर्देशों पर ही इसे लिया जा सकता है, स्वयं नहीं। इन कारणों के अतिरिक्त उपर्युक्त सभी औषधियों के निर्माण में अत्यन्त कठिनाई का सामना करना पड़ता है, इसलिये यह भी आवश्यक प्रतीत होने लगा कि ऐसी औषधि बनाई जाय जिसका निर्माण सरलता पूर्वक हो सके।

ऊपर की बातों को ध्यान में रखते हुए वैज्ञानिकों ने प्रयत्न आरम्भ किये कि वे ऐसी औषधि खोज निकालें जो रंगहीन हो, विषरहित हो, सब सेबढ़कर जिसका निर्माण सरलता से किया जा सके; और, रोग निरोधक, रोगोपचारक तथा रोग की पुनरावृत्ति को रोकने वाली हो।

नयी औषधि के लिये परीक्षाएँ

चिकित्सा अनुसन्धान करने वाले वैज्ञानिक रोगों का अध्ययन करने के लिये तथा परीक्षण करने के लिये यथा-सम्भव छोटे से छोटे प्राणी काम में लाते हैं। इसका प्रथम कारण तो यह है कि नई औषधियों का सीधा मनुष्य पर परीक्षण करना ठीक नहीं समझा जाता। यदि अन्य कोई मार्ग न रहे तभी मनुष्यों पर उसका परीक्षण किया जाता है। दूसरा कारण यह है कि प्रारम्भ में औषधि की मात्रा प्राणियों के शरीर के भार के आधार पर दी जाती है, इस प्रकार कई प्राणियों पर परीक्षा करने के बाद ही औषधि की मात्रा निर्धारित की जाती है। इतनी अधिक संख्या में मनुष्यों पर परीक्षण नहीं किये जा सकते। सौभाग्य से मनुष्य को होने वाले बहुत से रोग, विशेषतः बैक्टीरिया उत्पन्न रोग अन्य चूहे जैसे छोटे प्राणियों में उत्पन्न किये जा सकते हैं। इसलिये इन प्राणियों पर यदि औषधि सफल हो जाती है तो लगभग इन्हीं अवस्थाओं में मनुष्य पर भी सफल हो जाती है।

पर दुर्भाग्य से अभी तक ऐसा कोई प्राणी ज्ञात नहीं जो मनुष्य पर आक्रमण करने वाले मलेरिया रोग को ग्रहण कर सके। यद्यपि मलेरिया की कुछ जातियाँ बन्दरों में पायी जाती हैं, परन्तु यह प्रयोगगृह की दृष्टि से छोटा नहीं है और परीक्षणार्थ इनका नियन्त्रण कर सकना सरल कार्य नहीं है। तो भी कुछ पक्षी ऐसे मिलते हैं जिन पर मनुष्य पर आक्रमण करने वाले मलेरिया के जीवाणुओं से मिलते जुलते जीवाणुओं का आक्रमण हो जाता है। ये

जीवाणु मच्छर द्वारा ही प्रविष्ट कराये जाते हैं। यह जीवाणु प्रविष्ट होने के कुछ समय बाद तक शरीर में रोग के कोई लक्षण प्रगट नहीं करते। पर्याप्त समय बाद ये जीवाणु खून के रक्त-कणों में प्रगट होने लगते हैं। इस प्रयोजन के लिये चूजे, बतक की छोटी जाति, जावा की गोरैया और केनेरी पक्षी उपयुक्त सिद्ध हुए हैं।

मलेरिया के परीक्षार्थ उपर्युक्त पक्षी और उपर्युक्त मलेरिया का जीवाणु चुनने के लिये बहुत अधिक ध्यान दिया गया। मलेरिया फैलाने वाले जीवाणुओं में पक्षियों पर 'प्लाज़्मोडियम गैलिनेशियम', 'प्लाज़्मोडियम लोफूरी', और 'प्लाज़्मोडियम रैतिक्टम' का ही विशेष प्रभाव देखा गया। इसलिये यदि पक्षी और उपर्युक्त जीवाणु के निर्वाचन में थोड़ा भी प्रमाद किया जाय तो सम्पूर्ण परीक्षा के परिणाम ठीक दिशा में न प्राप्त होकर उल्टी दिशा में प्राप्त होंगे। इसे ध्यान में रखते हुए प्रारम्भ में तो केनेरी चिड़िया से काम लिया गया, पर इसकी दुर्लभता तथा इस पर होने वाले व्यय के कारण इसे छोड़कर चूजे (मुर्गी का बच्चा) को लिया गया। प्रथम तो यह सस्ता पड़ता था, दूसरी इसका सुविधापूर्वक नियन्त्रण किया जा सकता है, तीसरे यह सरलता से उपलब्ध हो जाता है। इसमें मलेरिया के जिस जीवाणु का प्रयोग किया गया, वह उपर्युक्त में से एक प्लाज़्मोडियम गैलिनेशियम था। यह जीवाणु १९३६ के आरम्भ में लंका से ब्रिटेन भेजा गया था, लंका में यह जंगली कबूतरों में प्राकृतिक रूप से पाया जाता है।

औषधि-परीक्षण ढंग

जिन चूजों पर परीक्षा करनी होती है उन्हें ऊपर निर्दिष्ट जीवाणु से आक्रान्त करके दो दलों में बांट देते हैं। जब उन दलों में मलेरिया के लक्षण प्रगट होने लगते हैं तो उनमें से एकदल को चार दिन तक प्रातः सायं नवनिर्मित औषधि खिलायी जाती है। पांचवें दिन दोनों दलों के, एक दल वह जिसे औषधि दी गई है दूसरा वह जिसे औषधि नहीं दी गई, रक्त की परीक्षा की जाती है तथा रक्त में उपस्थित रोगोत्पादक जीवाणुओं की गिनती की जाती है। यदि यह देखा जाय कि औषधि देने से रोगोत्पादक जीवाणुओं की संख्या एक दल में कम हो गई है तो यह समझा जाता है कि औषधि में रोगविरोध की क्षमता है। इस क्षमता को विविध प्रकार से पुष्ट किया जाता है तथा उसे भांपा जाता है। कहने सुनने में यह सब जितना सरल प्रतीत होता है, व्यवहार में वह कहीं अधिक जटिल और कठिन है।

इसी ढंग से परीक्षा करते हुए बीच में कई अन्य औषधियाँ भी सामने आयीं। उनके नामकरण संख्याओं पर किये गये, जैसे २६६६, ३३४९, ३९३६। और अन्त में जो औषधि सामने आयी वह थी ४८८८, इसी का नाम बाद में पालूड्रीन रक्खा गया।

लेटिन का शब्द है पालस, पालूडिस का अर्थ है दलदल। प्रायः मलेरिया दलदल के निकट होता है, इसलिये इसका नाम पालूड्रीन रक्खा गया। इसका रासायनिक नाम 'एन. १ पी—क्लोरोफेनिल एन—५ आइसोप्रिल बाइगुआइड' है। इसका हाइड्रोक्लोराइड लवण ही मुँह से खाने को दिया जाता है। यह कुनैन से १० गुना और मेपाक्रिन ३ गुना अधिक लाभकारी है। अन्य दवाइयों के अवगुण इसमें नहीं हैं। यह अन्य दवाइयों की अपेक्षा सस्ती और सरलता पूर्वक तैयार होती है।

इस औषधि के अनुसन्धान पर १९४२ में 'इम्पीरियल कैमिकल इण्डस्ट्रीज' के फार्मास्युटिकल विभाग मैंचेस्टर में कार्य आरम्भ हुआ था। इसके अनुसन्धानकर्त्ता डा० एफ० एल० रोज़, डा० एफ० एच० एस० कर्ड तथा डा० डी० जी० डेवी थे। नवम्बर १९४५ में इस औषधि के निर्माण की घोषणा कर दी गई थी। इसके संगठन का भेद भी बाद में घोषित कर दिया गया था। मैनचेस्टर के पास ब्लैकली में इसे भारी परिमाण में बनाने का कार्य आरम्भ कर दिया गया है। एक और कारखाना स्काटलैण्ड ग्रैंमेमथ में भी खुलने वाला है। इसी कम्पनी ने यहीं पर युद्धकाल में मेपाक्रिन बनाने का एक कारखाना खड़ा किया था।

गणितीय शब्दावली की समस्यायें

(डा० ब्रजमोहन)

(१)

किसी भी भाषा में एक शब्द के अनेक अर्थ होना कोई अप्राकृतिक बात नहीं है। अंग्रेजी भी इस गुण से ओत प्रोत है। भिन्न भिन्न विषयों में एक शब्द के भिन्न भिन्न अर्थ होना तो साधारण सी बात है। चलन कलन में Differential का एक विशिष्ट अर्थ है। औषधि विज्ञान में शब्द Differential का अर्थ सर्वथा भिन्न है और राजनीति में Differential (treatment) एक पृथक ही वस्तु है। इस प्रकार के उदाहरण तो अनगिनत दिये जा सकते हैं परन्तु एक ही पारिभाषिक विषय में भी एक ही पारिभाषिक शब्द के अनेक अर्थ हो सकते हैं। मैं यहाँ केवल दो एक उदाहरण लेता हूँ :

जब हम Cartesian System का उल्लेख करते हैं तो System से हमारा तात्पर्य एक पद्धति अथवा प्रणाली से होता है। परन्तु, जब हम किसी System of circles पर विचार करते हैं तो System से हमारा तात्पर्य एक समूह अथवा संहति से होता है। अब मान लीजिये कि हम किसी संग्रह के विषय में कहें कि :

There is a system in the collection

तो इस वाक्य में System का तीसरा ही अर्थ है। स्पष्ट है कि तीनों स्थानों पर System के लिये एक ही पर्याय से काम नहीं चलेगा। हमें कुछ इस ढङ्ग की शब्दावली बनानी होगी :

१. (Cartesian) System	(कार्तीय) पद्धति
२. System (of circles)	(वृत्त) संहति
३. System	क्रम

अंग्रेजी का एक दूसरा शब्द लीजिये Homogeneous जब हम कहते हैं Homogeneous equation तो उसका अर्थ होता है 'ऐसा समीकरण जिसके समस्त पदों के घात बराबर हों।' परन्तु जब हम कहते हैं Homogeneous liquid तो हमारा तात्पर्य ऐसे द्रव से होता है जिसका कोई भी भाग ले लें, घनत्व एक सा ही मिलेगा।

इसी शब्द से मिलता जुलता एक शब्द है Uniform। जब हम कहते हैं Uniform function, तो अर्थ होता है : ऐसा फलन जिसका मान अथवा रूप एक सा रहता हो। परन्तु Uniform body का अर्थ Homogeneous body से मिलता जुलता है। Homogeneous body उस कार्य को कहते हैं जिसके सब भागों का घनत्व एक सा हो परन्तु Uniform body उसे कहते हैं जिसके सब भागों का घनत्व भी एक सा हो और रूप भी एक सा हो। इन दोनों भावों के लिये पृथक पृथक शब्द रखने होंगे। हम अपनी शब्दावली इस प्रकार की बना सकते हैं :—

Homogeneous Equation	समघात समीकरण
Homogeneous body	समांश काय
Uniform function	एकरूप फलन
Uniform Convergence	एकरूप संसृति
Uniform body	समांग काय

हिन्दी शब्दावली में भी एक शब्द के अनेक अर्थ हो सकते हैं। इसमें कोई दोष नहीं है। परन्तु अर्थ ऐसे होने चाहिये जिनमें परस्पर भ्रम की आशंका न हो। जहाँ ऐसी आशंका हो वहाँ पुराने शब्द को एक अर्थ के लिए निश्चित करके अन्य अर्थों के लिए नये शब्द बनाना आवश्यक होगा। इस लेख में मैं हिन्दी के कुछ ऐसे ही शब्दों पर विचार करूँगा जिनके, अभ्यास के कारण, कई-कई अर्थ हो गए हैं।

(१) क्रिया—यह शब्द Action और Operation दोनों के लिये आता है। यह दोनों वस्तुयें एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। परन्तु दोनों अर्थों में इस शब्द का प्रयोग रूढ़ हो चुका है। Action and

Reaction के लिए 'क्रिया और प्रतिक्रिया' वाक्यांश परम्परा से चला आता है। और जोड़ने, घटाने को भी प्राचीनकाल से 'योग और वियोग क्रिया' कहते चले आए हैं। अतएव 'क्रिया' शब्द के इन दोनों में से किसी अर्थ को भी छोड़ देना व्यवहारिक दिखाई नहीं पड़ता। और कदाचित इसकी आवश्यकता भी नहीं है। इन दोनों अर्थों में परस्पर भ्रम की आशङ्का बहुत कम है। कठिनाई तभी उपस्थित होगी जब इस ढंग का वाक्य आ पड़ेगा :

The acting force will be continuously in operation.

परन्तु एक तो ऐसे वाक्य बहुत कम प्रयोग में आयेंगे। दूसरे, यहाँ Operation का अर्थ भी Action ही है। और हम इसका अनुवाद इस प्रकार कर सकते हैं :—

कारक बल अथवा चेष्टक बल सतत रूप से कार्य करता रहेगा।

हमारी तत्सम्बन्धी शब्दावली इस प्रकार की बनेगी :—

Act	क्रिया करना, चेष्टा करना
Acted on	चेष्टित
Acting force	चेष्टक बल, कारक बल
Action	क्रिया
Active	क्रियाशील, सक्रिय
Operand	कर्म
Operate	क्रिया करना
Operated	क्रियाकृत
Operation	क्रिया
Operational factor	क्रियात्मक गुणक
Operative	क्रियाकारी
Operator	कारक

(२) *वास्तविक*—यह शब्द Real, True और Actual तीनों के अर्थ में आता है। True के लिए तो इसका प्रयोग अनावश्यक है, क्योंकि उसके लिए तो शब्द 'सत्य' सर्वथा उपयुक्त है। साधारणतः यदि Real और Actual के लिए एक ही शब्द का प्रयोग किया जाय तो कोई भ्रम नहीं पड़ता। परन्तु यदि हमें इस वाक्य का अनुवाद करना पड़ा तो कठिनाई आ पड़ेगी :—

Even if the proportional coordinates are imaginary, the actual coordinates may be real.

स्पष्ट है कि ऐसी स्थिति में Actual और Real दोनों के लिए एक ही शब्द से काम नहीं चलेगा। मेरी समझ में गणित में Real शब्द प्रयोग में बहुत आता है। अतएव इसके लिए प्रचलित शब्द 'वास्तविक' निश्चित कर दिया जाय और Actual के लिये 'यथार्थ' निर्धारित किया जाय।

(३) मिश्र—इस शब्द के भी कई प्रयोग देखने में आये हैं :—

Mixture शब्द के लिये भी हम 'मिश्र' शब्द का प्रयोग कर सकते हैं इसमें और Compound (विशेषण) में परस्पर भ्रम की सम्भावना प्रायः नहीं है। परन्तु यदि हम इन दोनों को भी पृथक करना चाहें तो Mixture को 'मिश्रण' कह सकते हैं जैसा कि ना. प्र. स. के कोष में दिया है। ऐसी दशा में to mix (क्रिया) और Mixture (संज्ञा) दोनों के लिए एक ही शब्द मिश्रण का प्रयोग करना होगा।

मिश्र	Mixture
मिश्र	Compound (संज्ञा)
मिश्र योग	Compound Addition
मिश्र कल्पित राशि	Complex quantity

Mixture और Compound दोनों के लिये एक ही पर्याय से कदापि काम नहीं चल सकता। नागरी प्रचारिणी सभा की गणितीय शब्दावली में Compound (क्रिया) का पर्याय संयोजन दिया है। अतएव Compound (संज्ञा) के लिये यदि संयोग शब्द का प्रयोग किया जाय तो अनुचित न होगा। लाहौर के 'आंग्ल भारतीय महाकोष' ने भी यही शब्द दिया है।

यदि Compound (विशेषण) के लिये मिश्र

का प्रयोग प्रचलित रहे तो कोई हानि नहीं है। जिस अर्थ में यह शब्द आजकल गणितीय विषयों में विशेषण के रूप में आता है उसका इसके संज्ञारूप के अर्थ से कोई निकट सम्बन्ध नहीं रह गया है। जिस प्रसंग में Compound संज्ञा के रूप में आता है, उस प्रयोग में विशेषण के रूप में नहीं आता। Compound Addition का Chemical Compounds से कोई सम्बन्ध नहीं है। अतएव Compound शब्द के इन दोनों अर्थों के लिये एक ही पर्याय रखना अनुचित नहीं होगा।

Complex quantity के लिये मिश्र, कल्पित राशि' बिल्कुल बेतुका है। इस शब्द से कल्पना से क्या सम्बन्ध ? मैंने अपनी गणितीय शब्दावली* में इसका पर्याय 'संकर राशि' दिया है। यदि यह पर्याय गणितीय जगत को स्वीकार हो जाय तो 'मिश्र' शब्द सम्बन्धी समस्या हल हो जायगी और हमारी शब्दावली इस प्रकार की बनेगी :—

To mix	मिश्रण
Mixture	मिश्र
Compound (संज्ञा)	संयोग
To Compound	संयोजन
Compound Addition	मिश्रयोग
Complex quantity	संकर राशि

(४) संकलन—यह शब्द भी कई अर्थों में उपयुक्त हो रहा है:—

संकलन सूत्र	Addition Formula
संकलन	Summation
संकलन नियम	Law of association

Addition और Summation के लिये एक ही शब्द का प्रयोग नहीं होना चाहिये। Summation of series' में हम श्रेणी के भिन्न-भिन्न पदों को केवल जोड़ते ही नहीं है, उसके अतिरिक्त और भी कुछ करते हैं। पहिले हम पदों की एक परिमित संख्या 'ग' का जोड़ निकालते हैं। फिर इस फल में हम 'ग' को अनन्त की ओर प्रवृत्त करते हैं। जो फल आता है उसे श्रेणी का Sum कहते हैं। Summation शब्द में यह सारी क्रियानिहित है। अतएव इस क्रिया के लिए Addition के पर्याय से पृथक कोई शब्द निर्धारित करना होगा।

Association के लिये संकलन शब्द सर्वथा अनुपयुक्त है। यदि इसी शब्द को अपनाया जाय Associative और Summable दोनों को 'संकलनशील' कहना होगा। इसके अतिरिक्त 'संकलित' का अर्थ Summed भी होगा, Associated भी। अतएव मेरा प्रस्ताव है कि हम इस प्रकार की शब्दावली बनायें।

Addition	योग करना, जोड़ना, योजन
Sum	योग, जोड़, सकलन
Summation	संकलन
Summable	संकलनशील
Summability	संकलनशीलता
Associate	सहचर
Association	सहचरन, साहचर्य
Associated function	सहचरित फलिन
Associative	सहचरनशील
Law of Associotion	सहचरन नियम

(५) आसन्न—इस शब्द के भी तीन प्रयोग देखने में आये हैं :—

आसन्न कोण	Adjacent Angle
आसन्न चित्र	Adjoining picture
आसन्न मान	Approximate value

इसी ढङ्ग का एक शब्द 'संलग्न' है। यह भी Adjacent और Adjoining दोनों के लिये प्रयुक्त होता है। यदि हम इन दोनों शब्दों का काम एक ही पर्याय से चलाना चाहें तो इस ढङ्ग के वाक्य का अनुवाद करने में कठिनाई आन पड़ेगी :—

In the adjoining figure the adjacent angles are equal.

*यह शब्दावली 'भारतीय हिन्दी परिषद् प्रयाग' से प्रकाशित होने वाली है।

अतएव स्पष्ट है कि दोनों के लिये पृथक-पृथक पर्याय रखने होंगे।

Approximation के दो अर्थ हैं : पास आना और पास लाना।
यह दोनों अर्थ निम्नलिखित वाक्यों से स्पष्ट हो जायँगे :—

This result approximates to that.

I am not finding the correct value; I am only approximating it.

अतएव Approximate के लिये ऐसा शब्द चुनना होगा जो दोनों काम दे सकें। डा० रघुवीर का प्रस्ताव है कि Approximate का पर्याय पहिले अर्थ में 'उपसदन' रक्खा जाय, दूसरे में 'उपसादन'। शब्दावली इस प्रकार की बनेगी :—

Adjacent	आसन्न
Adjoining Vdjoint	संलग्न
Approximation (to come near)	उपसदन
Approximation (to bring near)	उपसादन
Approximated	उपसादित
Approximate value	उपसन्न मान
Approximately	उपसादन से, लगभग
Approximator	उपसादक
Near Approximation	समीप उपसदन

(६) संगत :—

संगत कोण	Corresponding angle
संगति	Correspondence
संगति	Consistency
असंगति	Inconsistency

'असंगति प्रदर्शन' में यह शब्द अन्तिम अर्थ में प्रयुक्त होता है। यदि हम इन प्रयोगों में कोई परिवर्तन न करें तो इस प्रकार के वाक्य में कठिनाई उपस्थित हो जायगी :—

The corresponding value will be inconsistent with the data.

इसका अनुवाद इस प्रकार करना होगा :—
'संगत मान न्यास से असंगत होगा'। यह वाक्य बहुत ही भद्दा प्रतीत होगा। मेरे विचार में इन शब्दों के पर्याय इस प्रकार निर्धारित किये जायँ :—

Consistent	संगत
Consistency	संगति
Inconsistent	असंगत
Inconsistency	असंगति
Corresponding	संवादी (र)*
Correspondence	संवादिता
to Correspond	संवादी होना

(७) घन—यह शब्द भी तीन अर्थों में प्रयुक्त हो रहा है :

घन	Solid
घन	Cube (Solid)
घन	Third power

यदि इन शब्दों का विवेचन न किया गया तो निम्नलिखित वाक्य

A cube is a solid

का अनुवाद

घन एक घन है

होगा। यह वाक्य निरर्थक प्रतीत होगा। 'घन' के दूसरे और तीसरे अर्थों में परस्पर भ्रम की आशंका बहुत कम है तथापि हम बड़ी सरलता से उनके पर्याय भी पृथक कर सकते हैं:—

Solid	ठोस, सान्द्र (र)*
Cube (solid)	घनज
Cube (third power)	घन

कुछ मित्रों का प्रस्ताव है कि Solid का पर्याप 'सुघन' निर्धारित किया जाय परन्तु जब हम Theory of sets of points पर आयेंगे तब 'Dense' के लिये कोई पर्याय बनाना होगा। इसके लिये 'सुघन' शब्द सर्वथा उपयुक्त होगा। इस प्रकार Density और Dense का सम्बन्ध भी अक्षुण्ण रहेगा। (क्रमशः)

*डाक्टर रघुवीर का शब्द

उपयुक्त आहार (२)

एक विचार धारा

[लेखक : डाक्टर सु० प्र० मुश्रान, रसायन विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय]

मनुष्य के लिए लाभदायक खाद्य पदार्थों को निम्न लिखित श्रेणियों में बाँटा जा सकता है।

दूध—दूध की आहार में क्या विशेषता है, इसके बताने की हमें आवश्यकता नहीं, क्योंकि हर मनुष्य इसके उपयोग व लाभ की जानकारी रखता ही है। दूध में विटामिन ए, कैलशियम, रिबोफ्लैवीन (विटामिन बी$_2$) पाए जाते हैं, जो कि अच्छे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक वस्तुएँ हैं। दूध में दुग्ध शर्करा (लैक्टोज़) होती है जो आतों के लिए लाभदायक होती है। इसमें केसीन भी होती है जो कि माँस, अंडों तथा शाक से प्राप्त प्रोटीन से ज्यादा लाभदायक होती है। डेरी की बनी वस्तुओं में दही, दूध के समान पुष्टता का देने वाला है। मक्खन रहित (मखनियाँ) दूध भी एक बहुमूल्य खाद्यपदार्थ है, परन्तु इसमें विटामिन ए, डी तथा चर्बी नहीं होती। फटे दूध के पानी (पछे) में कैलशियम रिबोफ्लैवीन (विटामिन बी$_2$) और दो, अन्य प्रोटीन दुग्ध एल्बूमिन (Lactalbumin) तथा दुग्ध ग्लोबुलिन (lact globulin) पाए जाते हैं जो केसीन से भी अधिक मूल्यवान होते हैं। इसलिए दूध के पानी को फेंक नहीं देना चाहिए।

आलू तथा शकरकंद—इनमें कार्बोहाइड्रेट अधिकता से होती है; आलू में २०% कार्बोहाइड्रेट तथा २% प्रोटीन और शकरकंद में ३०% कार्बोहाइड्रेट तथा १·८% प्रोटीन होती है। शकरकंद अधिक मात्रा में नहीं खाने चाहिए क्योंकि इनके रेशे अन्न प्रणाली (Alimentary canal) में जलन पैदा कर देते हैं जिससे अतिसार (Diarrhoea) हो जाता है।

फलिएँ, मटर तथा दालें—इनमें निकटतम ६०% कार्बोहाइड्रेट और २० से २५% प्रोटीन होता है। सोयाबीन में ४३% प्रोटीन, २०% चर्बी तथा २०% कार्बोहाइड्रेट रहता है।

नट्स (मूँगफली)—यह प्रोटीन युक्त होती हैं। अखरोट तथा मूँगफली सस्ती होती हैं और आसानी से मिल सकती हैं। अखरोट में २१% प्रोटीन, ४७% चर्बी तथा १२% कार्बोहाइड्रेट होता है। मूँगफली में २७% प्रोटीन, ४०% चर्बी और २०% कार्बोहाइड्रेट होता है। परन्तु इनका अधिक मात्रा में व्यवहार नहीं करना चाहिये।

टमाटर और खट्टे (citrus) फल—टमाटर में कैरोटिन, विटामिन सी तथा औकज़लेट और खट्टे (citrus) फलों में विटामिन सी होता है। खट्टे फल हम निःसंकोच होकर अधिक मात्रा में खा सकते हैं परन्तु टमाटर, अधिक खाने से आक्जेल्यूरिया (oxaluria) हो जाता है।

हरी तथा पीली पत्तियों वाले शाक तथा सब्ज़िएँ—यह हमें कैरोटीन, विटामिन सी तथा मुख्यतः खनिज लवण देते हैं। यह हमारी आतों को स्वस्थ रखते हैं। पालक में कैलशियम, लोहा, मैगनीशियम, विटामिन ए तथा सी होता है। कुकुरमुत्ता में ताँबा तथा विटामिन बी और करमकल्ले में विटामिन ए और सी और Asparagus में विटामिन सी पाया जाता है।

फल तथा और प्रकार के शाक—फल हमें अधिकतर विटामिन ए और सी देते हैं और हमारी आतों को स्वस्थ रखते हैं। किसमिस सेब, अंगूर,

संतरे, रसभरी, अन्ननास तथा नींबू में विटामिन सी, जरदालू और आड़ू में विटामिन ए और लोहा खजूर और अंजीर में विटामिन बी, लोहा और मैगनीशियम पाये जाते हैं। केले में कम खाद्य-मूल्य होता है परन्तु इससे हमें थोड़ी मात्रा में विटामिन बी प्राप्त होता है। अन्य सब्जियाँ हमें खनिज लवण देती हैं।

अंडे—इनमें प्रोटीन चर्बी, फासफोलाइडस, स्टॅरॉल्स, विटामिन ए और डी, रीबोफ्लेवीन और लोहा की मात्रा अधिकता से होती हैं। इसलिए बढ़ते हुए बच्चों के लिए बड़े लाभदायक हैं; परन्तु इनमें फलों तथा शाक के समान आन्तरिक अन्तड़ियों की सड़न को घटाने की विशेषता नहीं होती। इस कमी के कारण और इनमें अधिक मात्रा में स्टॅरॉल्स होने के कारण वृद्धावस्था में अंडों का कम सेवन करना उचित है।

मांस, मुर्गी तथा मछली—इनमें अधिक खाद्य-मूल्य का प्रोटीन १९% से २०% तक होता है। इनमें विटामिन कम होते हैं और बहुत कुछ पकाने से भी कम हो जाते हैं।

आँटा, बाजरा, अन्न—यह कारबोहाइड्रेट से पूर्ण होते हैं। घर में हाथ से कुटा हुआ चावल सबसे उत्तम होता है और बाजार में मिल म कुटा हुआ चावल सबसे बुरा होता है। क्योंकि इसमें विटामिन बी तथा खनिज लवण कम मात्रा में होते हैं। गेहूँ का आटा विटामिन बी, लोहा, ताँबा मैगनीशियम, फासफोरस, कैलशियम से पूर्ण होता है। ज्वार तथा बाजरे के विटामिन कुछ दिनों तक पानी में भिगो देने से बढ़ जाते हैं।

मक्खन तथा अन्य चर्बिएँ—चर्बी को हम किसी एक निश्चय अनुपात तक खा सकते हैं और यह अनुपात अधिकतर देश की जलवायु पर निर्भर है। संक्षेप रूप से, जिस देश का जलवायु अधिक ठंडा होगा, मनुष्य वहाँ चर्बी का अधिक सेवन करेंगे। मक्खन दूध का एक चर्बी वाला भाग है। प्रकृति ने उसको पूर्ण रूप से बच्चों को शक्ति देने के लिए बनाया है और इसमें विटामिन ए तथा डी अधिक मात्रा में पाया जाता है।

सोयाबीन

कई शताब्दियों से सोयाबीन मन्चूरिया तथा उत्तरी चीन के मजबूत तथा मेहनती किसानों का मुख्य आहार रहता चला आया है और पिछले २ या इससे अधिक वर्षों से अमरीका तथा दक्षिणी पूर्वी योरूप में इसका प्रयोग किया जा रहा है।

चीन तथा जापान में सोयाबीन को दिन में दो या तीन बार खाया जाता है। चीनी डेरी की बनी वस्तुओं को व्यवहार में नहीं लाते और वहाँ की जनता केवल थोड़ी सी मात्रा में माँस का उपयोग करती है। इतना होते हुए भी चीनी कई शताब्दियों से अब तक सोयाबीन के व्यवहार के द्वारा जो कि एक पूर्ण आहार है जीवित रहते चले आए हैं। वैज्ञानिकों ने आहार के विचार से यह मान लिया है कि इसमें ओट्स, गेहूँ, नाज, चावल, अंडे से चार गुना प्रोटीन अधिक रहता है। सोयाबीन से जर्मनी वालों ने एक प्रकार का आँटा तैयार किया था जिसको एडेल सोजा (Edel-soja) कहते हैं। इसको उन्होंने चपातियों तथा बिस्कुटों में परिवर्तित किया तथा शोरबे में मिलाकर प्रयोग किया। इससे जर्मनी के सैनिकों को एक आदर्श राशन प्राप्त हुआ जो कि गत महायुद्ध का एक मुख्य लक्षण था प्राकृतिक रूप में सोयाबीन में एक प्रकार की सुगन्ध होती है। अगर सोयाबीन को दस या पंद्रह मिनट तक भाप के द्वारा गर्म किया जाय और तब उसका आटा बनाया जाय तो उसमें एक मीठी, मनमोहक सुगन्ध तथा फलियों के समान स्वाद आ जाता है और वह कई महीनों तथा वर्षों तक बगैर सड़े हुए रह सकता है। प्रोटीन युक्त सोयाबीन की पाचनशीलता और खाद्य-मूल्य पकाने से बढ़ जाती है। सोयाबीन स्टार्च और ग्लूकोज की बनाने वाली वस्तुओं से रहित होता है इसलिये यह मधुमेह के रोगियों के लिए लाभदायक होता है। खनिज लवणों के विचार से

यह फासफोरस, लोहा, कैलशियम से पूर्ण होता है। सोयाबीन को जलाने पर क्षारीय राख बच जाती है इसलिये यह शरीर के क्षारीयता को ठीक रखता है। सोयाबीन विटामिन बी से पूर्ण होता है। सोयाबीन का दूध अन्य जानवरों के दूध के समान होता है और बच्चों को पिलाने के लिये तथा अतिसार और दूसरे अन्य भी गड़बड़ियों को दूर करने के लिये जहाँ गाय का दूध हानिकारक होता है, प्रयोग में लाया जाता है।

भारत में नाजों की न्यून मूल्य के कारण सोयाबीन की उपज कम होती है। इसके अतिरिक्त भारत में सोयाबीन के दूसरे गुणों पर आधारित और कोई उद्योग नहीं है जैसे कि अमरीका तथा जर्मनी में हैं। सोयाबीन को कार्बनिक विलायकों से क्रिया करने पर एक प्लास्टिक बनती है हल्की, बहुत दिन तक चलने वाली, पारदर्शक और जलसिद्ध (water-proof) होता है। इससे मोटरें के भाग और दूसरी फुटकर वस्तुएँ बनायी जाती हैं। कहा जाता है कि फोर्ड मोटर कम्पनी सोयाबीन के प्लासटिकों का उपयोग मोटरों के ढाँचे बनाने में करेगी। सोयाबीन का तेल मोमबत्ती, वारनिश, बरसाती, तथा कृमिनाशकों के बनाने के काम में आता है। भारतवर्ष में आहार में पुष्टता की कमी होने के कारण तथा इसकी इतनी उपयोगिता के कारण सोयाबीन का भारतवर्ष की कृषि में उच्च स्थान होना चाहिए। इसकी उपज भिन्न प्रकार की मिट्टी में तथा मैदानी भागों में तथा पहाड़ी हिस्सों में हो सकती है। यह बड़े खेद की बात है कि कृषि विभाग ने अभी तक इसके विषय में काफी खोज नहीं की है कि इसके द्वारा किस प्रकार से देश की औद्योगिक तथा स्वास्थ्य की उन्नति करें। तथा यह पता लगाएँ कि उसकी उपज के लिए किस विशेष प्रकार की मिट्टी तथा विशेष बीज की आवश्यकता है। यह स्पष्ट है कि जब तक हमारे मिल मालिक हमारी कृषि को व्यवहारिक तथा औद्योगिक धन्धों में नहीं लगाते, किसानों के उनकी परिश्रम का फल पूर्ण रूप से नहीं मिलेगा जिससे कि सोयाबीन का दाम अन्य अनाजों के दामों से मुकाबला न सकेगा।

क्या स्वास्थ्य के लिये मांस तथा पशुओं से प्राप्त प्रोटीनों का खाना हमारे लिये आवश्यक है, यह प्रश्न बड़ा ही व्यापक हो उठा है? खाद्य के विशेषज्ञों का विचार है कि मांस-प्रोटीन एक आवश्यक खाद्य नहीं है, अगर इसके स्थान पर डेरी से प्राप्त प्रोटीन, फल तथा शाक का उपयोग करें। प्रोटीन से युक्त मांस को, भारत की गरीब जनता अधिक मूल्य होने के कारण प्राप्त करने का साहस नहीं कर सकती है। शाक जैसे सेम, मटर, आलू कम मूल्य वाले तथा उसी के समान लाभदायक हैं। दूध, मक्खन तथा डेरी की खपत माँस के स्थान पर करने से शरीर को अधिक प्रोटीन तथा विटामिन प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त मांस को पचाना आसान कार्य नहीं है। और भारत जैसे गर्म देश में इसकी खपत बिल्कुल बेकार है। अपनी निजी सरकार से हमें यह आशा कि वह गरीब बच्चों को बिना मूल्य के दूध देने का प्रबन्ध करे और यह राष्ट्र के स्वास्थ्य की भलाई का एक प्रमुख कार्य होगा। यह गर्भिणी स्त्रियों पर भी लागू है जिनके शरीर में साधारण स्त्रियों से अधिक दैनिक प्रोटीन की आवश्यकता है। यह देखा गया है कि प्रोटीन को देने वाले मांस के स्थान पर जब दूध तथा डेरी से प्राप्त वस्तुओं का गर्भिणी स्त्रियों ने सेवन किया इनके शरीर को एक प्रकार का लाभ हुआ। जहाँ तक शारीरिक चुस्ती का सम्बन्ध है, खोज द्वारा पता चला है कि अगर हम भोजन में से जानवरों से प्राप्त चर्बी तथा प्रोटीन का भाग पूर्ण रूप से निकाल दें तो कार्य करने की शक्ति पर प्रभाव नहीं पड़ता। भारत तथा अन्य देशों के खिलाड़ी भी इस बात से सहमत हैं। इसके अतिरिक्त मांस शरीर में एक प्रकार की अम्ल पैदा करता है। रक्त की क्षारीयता को स्थापित रखने के लिए यह हानिकारक है।

खाद्य मूल्य में हानियाँ

खाद्य को बेकार फेंक देने से खाद्य मूल्य में जो कमी हो जाती है उस पर अब हमें विचार करना चाहिए क्योंकि यह आहार के मूल्य में एक काफी कमी कर देते हैं। खाना बनाते समय सबसे अधिक खाद्य पदार्थ बेकार चले जाते हैं। कभी-कभी वे भाग जो खाए जा सकते हैं बेकार फिक जाते हैं। उदाहरण के लिए करमकल्ले के बाहर के गहरे हरे-हरे पत्तों में जो साधारण तौर पर फेंक दिए जाते हैं आन्तरिक सफेद पत्तों से सैकड़ों गुनी अधिक मात्रा में विटामिन ए पाया जाता है। टमाटर के छिलकों में विटामिन ए का मूल्य उसके गूदे से बीस गुनी मात्रा में तथा उसके रस से एक सौ गुनी अधिक मात्रा में होता है। इसी प्रकार जब हम आलू, सेब, नाशपाती, नींबू के छिलकों तथा शलगम, मूली और चुकन्दर के पत्तों को फेंक देते हैं तो विटामिन सी में कमी हो जाती है। भोजन के बनाने में बहुत मात्रा में विटामिन सी की कमी हो जाती है, क्योंकि कुछ विटामिन सी तो करमकल्ला शलजम, गाजर इत्यादि खाद्य पदार्थों के उबालने में पानी के साथ फिक जाता है और कुछ ऊँचे तापक्रम के कारण नष्ट हो जाता है। यदि खाद्य पदार्थ पानी में उबाले जाने के बजाए भाप द्वारा पकाये जायें तो इन हानियों में कमी हो सकती है। गाय के दूध में काफी विटामिन सी होता है परन्तु कुछ तो पास्टुराइजेशन करने से तथा कुछ ज्यादा तापक्रम के कारण नष्ट हो जाता है। साधारण तापक्रम पर भी दूध में उपस्थित विटामिन सी अस्थाई होने के कारण नष्ट हुआ करते हैं, अगर पास्टुराइजेशन के पश्चात दूध को रेफ्रीजिरेटर में रख दिया जाय तो विटामिन ज्यादा स्थायी रहता है और विटामिन सी बहुत कम मात्रा में बेकार जाए। शाक को पकाते समय उबालने से पानी के साथ थोड़ा सा लोहा और मैगनीशियम की कमी हो जाती है परन्तु कैलशियम तथा फासफोरस पर नाम मात्र को प्रभाव होता है। भाप द्वारा पकाने से खनिज लवणों को हानि बहुत न्यून मात्रा में होती है और आग पर तलने व सेंकने से खनिज लवणों में बिल्कुल कमी नहीं होती। खाद्य पदार्थों का विटामिन तथा खनिज लवण मूल्य वस्तु के ताजे होने पर निर्भर है। आलू के गुदाम में जमा रखने से विटामिन सी की मात्रा में अधिक कमी हो जाती है। रोटी, अंडे, दूध, मक्खन इत्यादि को बासी करने से विटामिन तथा खनिज लवणों में कमी हो जाती है। खाद्य पदार्थों की यह बरबादी बहुत हानिकारक है और जहाँ तक हो सके इसे हमें दूर करना चाहिए।

सौभाग्यवश वैज्ञानिकों तथा आहार के विशेषज्ञों से हमें आहार के विषय में काफी जानकारी प्राप्त है, परन्तु सब कुछ यह प्रत्येक व्यक्ति की विशिष्ट आवश्यकताओं पर निर्भर है। डाक्टर से अधिक मनुष्य स्वयं अपने देह की आवश्यकताएँ जानता है। आहार के विषय पर बहुत कम 'सामान्य निष्कर्ष' हो सकते हैं। कुछ मनुष्यों की रुचि ऐसी होती है कि वे आवश्यकता से अधिक भोजन करते हैं। आवश्यकता से अधिक भोजन करने में कई अवगुण हैं। एक प्रकार धन का अपव्यय, दूसरा खाना पचाने वाले अंगों पर एक प्रकार का बोझ और चर्बी का बढ़ना है। चर्बी के बढ़ने से शरीर को हानि पहुँचती है। इससे आंतों में सूजन हो जाती है और समस्त शरीर में जहर फैल जाता है। इँगलैंड तथा अमरीका में शिशु पालन ग्रहों में बच्चों को अधपेट भोजन तथा नारंगी के रस की थोड़ी से मात्रा देकर बहुत सुन्दर फल प्राप्त हुए हैं।

चाय, काफी और मद्यसार बनाम दूध

(श्री० नन्दलाल पी० एच० डी०, डी० एस० सी)

कॉंग्रेसी सरकारें शराब बंदी करने के लिए अपने प्रांतों में भरसक कोशिश कर रही हैं। जब कभी एक ताड़ी की दूकान बंद की जाती है तब उसकी जगह कई चाय की दूकानें खुल जाती हैं। चाय की दूकानें खोलने के लिये खास प्रोत्साहन दिया जाता है; क्योंकि वह एक सस्ता और लाभदायक उत्तेजक पेय है ऐसी मान्यता है।

यहाँ मुझे चाय की खेती और वह कैसे तैयार कर बाजार में भेजी जाती है, इसका जिक्र करने की जरूरत नहीं है। चाय जिस रूप में बाजार में मिलती है वहीं से हम शुरू करेंगे। यद्यपि चाय सूखी दिखाई देती है फिर भी उसमें औसतन ७०% पानी १३ से १५% टॅनिन और करीब ३% केफीन होता है।

टॅनिन उन द्रव्यों में से है जिनका उपयोग कच्चा चमड़ा पकाने के लिये होता है। इसलिये उसका असर हमारी जीभ, अन्नमार्ग और पेट पर रहने वाली नरम मांस पेशियों पर कितना भयंकर होता होगा इसकी कल्पना की जा सकती है।

चाय में का केफीन ही उत्तेजक द्रव्य है और उसी की बदौलत चाय, काफी आदि उत्तेजक द्रव्य पिये जाते हैं। वह ज्ञान तंतुओं को उत्तेजना देता है जिससे थकान का असर कम मालूम देता है।

जब चाय गरम पानी में डाली जाती है, तब उसमें का करीब सारा केफीन और चाय की किस्म और पानी में रखने के समय के अनुसार कम ज्यादा प्रमाण में टॅनिन पानी में उतर आता है।

टॅनिन पानी में धीरे-धीरे उतरता है यही कारण है कि अधिक समय तक चाय की पत्ती पानी में पड़ी रहने देने से चाय बहुत कड़वी लगने लगती है। उसमें दूध डालने से टॅनिन का गुण कुछ हद तक नष्ट होता है। टॅनिन बहुत ही खराब चीज है। वह पेट में खलबली मचाती है. कब्ज और बदहजमी पैदा करती है। करीब सभी चाय पीने वालों को कब्ज रहता है; इसका यही कारण है कि गरम चाय में का टेनिन अतःस्रावी पेशियोंपर बुरा असर करता है। अत्यधिक चाय पान करने से उसमें के टॅनिन के कारण पाचकरस काफी मात्रा में नहीं पैदा होता और इसलिये फिर बदहजमी पैदा होती है। चाय के केफीन के कारण ज्ञान तंतुओं को विशेष उत्तेजना मिलने पर कभी-कभी पागल के से चिन्ह भी दिखाई दे सकते हैं।

चाय सस्ती है यह उसके पक्ष में कोई दलील नहीं हो सकती क्योंकि सस्ती होने से लोग उसे अधिक पियेंगे और उससे होने वाला नुकसान अधिक होगा सारे देश में अग्निमन्द वालों की संख्या बेहद बढ़ जावेगी क्योंकि आज भी जिन देशों में चाय पी जाती है वहाँ यह दुष्परिणाम स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

इसलिये अधिक दूध पैदा करना चाहिये और वह विभिन्न रूपों में लोगों को पीने के लिये देना चाहिये 'अधिक दूध पियो' यही सरकारी प्रचार होना चाहिये। वह केवल पेय ही न होगा अपितु थके हुये लोगों को सारे दिन के श्रमों के बाद एक पौष्टिक खुराक भी सिद्ध होगी। इस सूचना में नवीनता कुछ नहीं है क्योंकि आज भी पश्चिमी देशों में जगह-जगह दूध भंडार रहते ही हैं पर हमारी सरकारें इस प्रश्न को दर किनार करती हैं क्योंकि वे इस कृषि प्रधान देश में भी दूध की पैदायिश बढ़ाने के उपाय अमल में लाने में असमर्थ है।

सोंठ

(गतांक से आगे)

[लेखकः—श्री० रामेश वेदी आयुर्वेदालङ्कार, हिमालय हर्बल इंस्टीट्यूट, लाहौर]

भोजन खाने से पहले थोड़ी सी अदरक को नमक के साथ या सोंठ के चूर्ण में नमक मिला कर खाने से भूख बढ़ती है और भोजन में रुचि पैदा होती है। लालास्राव अधिक होने से भोजन जल्दी पच जाता है।[२] कैयदेव ने भोजन के पूर्व नमक के साथ अदरक खाने के लाभ लिखे हैं—वायु के प्रकोप की शान्ति, प्रसन्नता, अग्निदीपन, पाचन, वायु और श्लेष्मा का निर्हरण, हृदय के लिए बलप्रदान। जीभ और गले की शुद्धि और भोजन में रुचि।[३] वृन्द-माधव कैयदेव का संवादी है।[४]

काञ्जी और सिरके में अदरक के टुकड़े करके डाल छोड़ते हैं। भूख उत्तेजित करने के लिए इसे नमक मिलाकर खाते हैं।[१] मुख का स्वाद ठीक करने के लिए लकुच के रस में इसे मिला कर खाते हैं।[२]

२ भोजनाग्रे सदा पथ्यं लवणार्द्रक भक्षणम्।
अग्निसन्दीपनं रुच्यं जिह्वाकण्ठविशोधनम्॥
भा० प्र०, पू० ख०, त्रि० प्र०, हरीतक्यादिवर्ग।५१।

३ वात प्रकोपशमनं हर्षणं लवणार्द्रकम्।
भक्षणं लवणार्द्रकस्य हृदयं वह्निप्रदीपनम्॥
भोजनाग्रे सदा पथ्यं जिह्वाकण्ठविशोधनम्।
कै० दे०, ओ० व०

४ भोजनाग्रे सदा पथ्यं जिह्वाकण्ठविशोधनम्।
अग्निसन्दीपनं हृद्यं लवणार्द्रक भक्षणम्॥
सि० यो० अजीर्णाग्नि; ९

१ काञ्जिकार्द्रं सलवणं दीपनं पाचनं परम्।
वातश्लेष्मविबन्धघ्नं विशेषादामवातनुत्।
रोचनं दीपनं चापि शोषदोषहरं परम्॥
कै० दे० ओ० व०, १३०६।

२ लकुचस्य रसेक्षिप्तमार्द्रकं मुखशोधनम्।
कै० दे०, ओ० व०, १३०९।

शाक, सब्जी और दालों आदि में अदरक का दैनिक उपयोग होता है। जलीय अंश होने से सोंठ की अपेक्षा यह कम शुष्कोष्ण है। इसका अचार सरदियों में शौक से खाया जाता है।

आमाशय और छोटी व बड़ी आंतो की क्रियाओं को सोंठ उत्तेजना देती है। और उनकी वायु को अधोमार्ग द्वारा निकाल देती है इसलिए यह वातानु-लोमक है और अजीर्ण, अफारा तथा आमाशय के उद्गर्त के कारण उत्पन्न विकारों में उपयोगी है। सोंठ से पकाई हुई यवागू वात का अनुलोमन करती है।[३] दीपक और उत्तेजक होने से फार्मेसी में इसका महत्व-पूर्ण स्थान है। ब्रिटिश और दूसरे फार्मकोपियों में अनेक ऐसे योग हैं जिनमें सोंठ डाली जाती है।

अफारे और अजीर्ण के लिए घरेलू दवा के रूप में यह बहुत उपयोग में है। सोंठ पांच रत्ती, अजवायन तीस रत्ती, छोटी इलायची का चूर्ण पन्द्रह रत्ती; भोजन के बाद यह चूर्ण सेवन करने से अजीर्ण को दूर करता है। आठ औंस ब्राण्डी में एक औंस सोंठ डाल कर दस दिन पड़ा रहने दें। एक चाय के चम्मच की मात्रा में पानी में मिला कर दीपक और उत्तेजक के रूप में प्रयोग करें। प्यास से व्याकुल रोगी को अदरक और शुण्ठीमद्य में आधा पानी मिला कर पिलाना चाहिए। हृदय को शक्ति देने वाली ये सुगन्धित मद्य जल्दी ही प्यास को शान्त कर देती हैं।[१]

३ ....विश्वैर्वातानुलोमनी॥
च०, सू० अ० २; २८।

१ ......आर्द्रकशृङ्गवेर... अर्धजलप्लुतानि।
मद्यानि हृद्यानि च गन्धवन्ति पीतानि सद्यः
शमयन्ति तृष्णाम्॥ सि० यो०, तृष्णा; ६।

पन्द्रह रत्ती सोडा बाइकार्ब को एक छटांक शुण्ठीफाण्ट में मिला कर अजीर्ण और वमन में दिया जा सकता है। आमाजीर्ण में सोंठ और गुड़ खाने से पाचकाग्नि ठीक हो जाती है।[२] स्निग्ध किये हुए रोगी को अन्न देने में अजीर्ण हो जाने की आशङ्का हो तो पहले सोंठ के साथ हरड़ देकर हितकर भोजन देना चाहिए।[३] सोंठ आधी रत्ती, सोडा बाइकार्ब डेढ़ रत्ती और रेवन्द चीनी एक रत्ती यह योग बच्चों की दूषित पाचकाग्नि को ठीक करता है। गरमियों या बरसात में पेट में पाचन सम्बन्धी गड़बड़ी होने से जिंजर की बोतल अच्छी लाभदायक होती है।

विरेचन द्रव्यों से जी मचलाना या ऐंठन आदि लक्षण प्रकट होते हों तो उनमें सोंठ मिला देने से वे दूर किये जा सकते हैं। पेट के रोगियों को विरेचन के बाद हल्के पथ्य पर रखते हुए पीने को सादा पानी न देकर सोंठ से पकाया हुआ कोसा पानी देना चाहिए।[१] चौथाई से आधे तोले तक अदरक के रस को इतने दूध में मिला कर या दस गुने अदरक के रस से पकाये तिलतेल को उदर रोगों में पिलाया जाता है।[२] गजपिप्पली और सोंठ के चूर्ण को दूध के साथ उदर रोगी को दिया जाता है।[३] पेट के कृमियों को मारने की आस्थापन वस्तियों में अदरक प्रयोग होता है।[४]

बराबर उल्टी आती हो या दस्त आते हों तो सोंठ वाली ब्राण्डी को आधे से एक चाय के चम्मच की मात्रा में हर दो घण्टे बाद दे सकते हैं। शूल और अफारे में भी यह लाभ करती है। ब्राण्डी न हो तो सोंठ के फाण्ट का ही प्रयोग कर लेना चाहिए। हैजे में रोगी के हाथ पैर ठण्डे पड़ गये हों तो सोंठ के चूर्ण को मलने से लाभ होता देखा गया है। इससे खून की गति ठीक होकर धीरे-धीरे गरमी आने लगती है।

सोंठ, अतीस और मोथे का या धनिया और सोंठ का क्वाथ बनाएँ। प्यास, शूल तथा अतिसार की निवृत्ति के लिए इस पाचन दीपन तथा लघु क्वाथ का सेवन करना चाहिए।[१] एक भाग सोंठ और तीन भाग एरण्ड मूल के क्वाथ में हींग और चौंकल नमक डाल कर वातिक शूल शान्ति के लिए पीते हैं।[२]

---

२ गुडेन शुण्ठीम्······ ···।
आमस्वजीर्णेषु··········॥
सि० यो० अजीर्णाद्य; १३।

३ भवेदजीर्णं प्रति यस्य शङ्का स्निग्धस्य जन्तोर्बलिनोऽन्नकाले।
पूर्वं सशुण्ठीमभयामशङ्को भुञ्जीत सम्प्राश्य हितं हिताशी॥
सि० यो०, अजीर्णाद्य; २४।

१ घृते जीर्णे विरिक्तस्तु कोष्णं नागरकैः शृतम्।
पिबेदम्बु ... ॰ ... ।

२ शृङ्गवेरार्द्रकरसः पाने क्षीरसमो मतः।
तैलं रसेन तेनैव सिद्धं दश गुणेन वा॥
च० चि० अ० १३, १५२।

३ ... क्षीरेण वा पिबेत्।
... हस्तिपिप्पलीविश्वभेषजम्॥
च० चि० अ० १३, १४६।

४ आमलकशृंगवेरदारुहरिद्रापिचुमर्दक पाणेन मदनफलसंयोगसंयोजितेन त्रिरात्रं सप्तरात्रं वाऽऽस्थापयेत्॥
च० चि० अ० ७; १७।

१ नागरातिविषामुस्तैरथवा धान्यनागरैः।
तृष्णाशूलातिसारघ्नं पाचनं दीपनं लघुः॥
भै० र०, अतिसारा: १३।
सि० यो० सारा०, ३
वं० स०, अतिसारा०।

२ क-विश्वमेरण्डजं मूलं क्वाथयित्वा जलं पिबेत्।
हिंगुसौवर्चलोतं रुधः शूलनिवारणम्॥
भै० र० शूलरोगा: ६।

२ ब नागरैरेरण्डजः क्वाथः।
हिंगुसौवर्चलोपेतो वातशूलनिवारणव॥
शा० स०, खं० २, ३० २, ६६।

परिणाम शूल की निवृत्ति के लिए सोंठ और "तिल से बनाई" दूध की खीर को गुड़ से मीठा करके सात रात पिलाते हैं। [3]

आधी छटांक यवकुट सोंठ को बारह छटांक उबलते पानी में एक घण्टे तक रहने दें। छान कर आधी छटांक की मात्रा में अफारे और शूल के लिए दिया जाता है।

ग्रहणी रोग में आमके पाचन के लिए सोंठ, मोथा और अतीस का कषाय बना कर सेवन कराया जाता है। इनके चूर्ण को गरम जल के अनुपात से भी प्रयोग कराया जा सकता है। अकेली सोंठ के चूर्ण को गरम पानी के साथ देने से आमका पाचन होता है। [1] इन तीन द्रव्यों में कभी कभी गिलोय का कषाय भी मिलाया जाता है। [2] सोंठ और कच्चे बिल की गिरी के कल्क को मसूर के पूष के साथ पीने से संग्रहणी नष्ट होती है। [3] सोलह सेर पानी में एक सेर सोंठ का कल्क और चार सेर गौ का घी डाल कर सिद्ध किये घी को सेवन करने से ग्रहणी, पाण्डु, तिल्ली, खांसी, ज्वर आदि रोगों में लाभ होता है। यह घृत बात का अनुलोमन करता है। [1] एक सेर सोंठ के कल्क को चार सेर गौ के घी और सोलह सेर दशमूल क्वाथ में डाल कर बनाये घी को आधे तोले की मात्रा में सेवन करने से पाण्डु, शोथ और ग्रहणी रोग दूर होते है, आंव आ रही हो तो बन्द हो जाती है। [2] आंव बन्द करने के लिए गुड़ और सोंठ की बनाई गोलियों का प्रयोग हितकर होता है। [3]

सोंठ अग्नि को प्रबल करती है और आम आदि दोषों को पचाती है तथा गरम होने से द्रव पदार्थों को सुखाती है इसलिए ग्राही है। [4] इस गुण के कारण यह अतिसार आंतों की बहुत सी शिथिलावस्था में प्रयुक्त होती है। दीपन और संग्राही गण में चरक ने सोंठ को गिनाया है। [1] इस गण के द्रव्य पाचक, बलकारक, रुचि उत्पन्न करने वाले तथा संग्राही हैं इसलिए ये अतिसार के रोगियों के लिए लाभप्रद हैं। [2]

---

३ नागरतिलगुडकल्कं पपसा संसाध्य यः पुमानधात्।
उग्रं परिणतिशूलं तस्यापैतीह सप्तरात्रेण॥
सि० यो०, परिणामशूला०, ४।

१ नागरातिविषायुस्त क्वाथः स्यादामपाचनः।
मुस्तान्तकल्कः पथ्या वा नागरं चोष्णवारिणा॥
च० चि० अ०, १५, ९७।
भै० र० ग्रहणी रोगा०; ११।

२ शुण्ठीं समुस्तातिविषां गुडूचीं पिबेज्जलेन क्वथितां समांशाम्।
मन्दानलत्वे सततामतोयामानुबन्धे ग्रहणी गदे च॥
भै० र० ग्रहणी रोगा०, १०।

३ पीतो मसूर पूषेण कल्कः शुण्ठीशलाटुजः।
जयेत्संग्रहणी ... तक्रेण ॥
शा० स० ख० २, अ० ५; २८।

१ घृत नागरकल्केन सिद्धं वातामुलोमनम्।
ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नं प्लीहाकासज्वरापहम्॥
सि० यो०, ग्रहण्यधिः ३७।
भै० र०, ग्रहणी रोगा०, १९६।

२ विश्वौषधस्य कल्केन दशमूलजले घृतम्।
घृतं निहन्याच्छ्वमथुं ग्रहणीसामतामपम्।
भै० र०, ग्रहणीरोगा०; १९४।
च० द०, शोथ चि०; ३२।

३ आमेषु सगुडां शुण्ठीम्।
दद्यात्॥
शा०, ख० २, अ० ७, २८।

४ दीपनं पाचनं मत्स्यादुष्णत्वाद् द्रवशोषकम्।
ग्राहि तच्च यथा शुण्ठी ... ॥
शा०, ख० १ अ० ४; ११।

१ देखें; च०, चि०, अ० १९; २९।

२ वातश्लेष्महरो ह्येष गणो दीपन पाचनः।
ग्राही बल्यो रोचनश्च तस्माच्छस्तोऽतिसारिणाम्॥
च० चि० अ० १९; ३२।

आंवलों को पानी में पीस कर रोगी की नाभि के चारों ओर ऊँचा-सा एक घेरा बना कर अदरक के रस से उसे भर देते हैं। नदी के वेग के समान न रुकने वाला, भयङ्कर, अत्यन्त बढ़ा हुआ दुर्जय अतिसार भी इससे रुक जाता है।[3] सोंठ को एरण्ड के पत्तों के रस के साथ पीस कर पुटपाक की रीति से पका कर अथवा कच्चा कल्क ही सेवन करने से आमातिसार तथा शूल नष्ट हो जाते हैं। यह अत्यन्त पाचक और अग्निदीपक है।[4] शार्ङ्गधर बताते हैं कि सोंठ के चूर्ण में थोड़ा-सा घी मिला कर गोल पिण्ड बना लें। इसके ऊपर एरण्ड के पत्ते लपेट कर पुटपाक की विधि से मन्द आंच में पकाए। पक जाने पर अन्दर से सोंठ का चूर्ण निकाल लें। मिश्री मिला कर प्रातः काल सेवन करने से आमातिसार की पीड़ा शान्त होती है।[1] आमातिसार अतीस और सोंठ से युक्त पेपा के खट्टे अनार के रस से जरा खट्टा करके देना हितकर होता है।[2] ज्वरातिसार के रोगी को सोंठ डाल कर पकाई हुई और अनार रस से खट्टी की हुई पेपा पिलानी चाहिए।[3] ज्वरातिसार तथा शोथयुक्त ग्रहणी रोग में एक माशे सोंठ के चूर्ण को दशमूल के कषाय से सेवन कराया जाता है।[4]

सोंठ चार तोला, छिलके रहित तिल सोलह तोले और गुड़ आठ तोले को एक जगह खूब कूट लें। वायु गोले में गरम दूध के साथ आधा तोला लें। पेट में ऐंठन और योनिशूल को भी यह शान्त करता है।[1] चौबीस तोले सोंठ का कल्क, गौ का घी और तिलतैल प्रत्येक एक सेर अड़तालीस तोला, दही का पानी बारह सेर चौसठ तोला; इनसे विधिपूर्वक बनाया घी छः माशा मात्रा में पीने से पेट के सब रोगों में और कफवातज गुल्म में लाभ करता है।[2] कफगुल्म में सोंठ तथा अदरक का पूष लाभ करता है।[3]

गर्भस्राव को रोकने लिए दसवें महीने सोंठ पका कर ठण्डा किये दूध का प्रयोग अच्छा समझा जाता

३ कृत्वाऽऽलवालं सुदृढं पिष्टैरामलकैर्भिषक्।
आर्द्रकस्य रसेनाशु पूरयेन्नाभिमण्डलम्॥
नदीवेगोपमं घोरं प्रवृद्धं दुर्द्धरं नृणाम्।
सद्योऽतीसारमजयं नाशयत्येष योगराट्॥
भा० प्र०, म० ख०, चि० प्र०, अतिसारा; ४०-४१।

४ एरण्डसम्पिष्टं पक्वयामल्ल नागरम्।
आमातिसारशूलघ्नं पाचनं दीपनं परम्॥
भा० प्र०, म० ख०, चि० प्र०, अतिसारा०; २२

१ चूर्णं किञ्चिद् घृताभ्यक्तं शुण्ठ्या एरण्डजैर्दलैः।
वेष्टितं पुटपाकेन विपचेद्वन्मन्दवह्निना॥
तत उद्धृत्य तच्चूर्णं ग्राह्यं प्रातः सितान्वितम्।
तेन यान्ति शमं पीडा आमातिसारसम्भवाः॥
शा० स०, ख० १, अ० १; ३८-३९।

२ दद्यात्सातिविषां पेया सामे साम्लां सनागराम्।
च० सू० अ० २; २१।

३ ज्वरातिसारी पेयां वा पिबेत्साम्लां शृतां नरः।
············नागर·········॥
च० चि० क० ३; १८२

४ दशमूलीकषायेण माषैकं नागरं पिबेत्।
ज्वरे चैवातिसारे च सशोथे ग्रहणी गदे॥
च० र० ज्वरातिसारा; १७

१ नागरार्धपलं पिष्ट्वा द्वे पले लुञ्चितस्य च॥
तिलस्यैकं गुडपलं क्षीरेणोष्णेन ना पिबेत्।
वातगुल्म मुदावर्तं योनिशूलं च नाशयेत्॥
च० चि० अ० ५, ९०-९१
भै० र० गुल्मा; १०

२ नागरं त्रिपलं प्रस्थं घृततैलात्तथाऽऽढकम्।
यस्तुनः साधयित्वैतत्पिबेत्सर्वोदरापहम्॥
कफमारुतसम्भूते गुल्मे चैतत्प्रशस्यते।
च० चि० अ० १३; ११४-११५
सि० यो०, उदरा, २९-३०

३ ·········नागरस्य च।
च० चि० अ० ५; १६४

शुष्क बरफ़ की कहानी

[ले०—श्री सुमन]

बालको! बाजार में तुमने हरे, लाल बक्सों में मैग्नोलिया, लकी चैप आदि आइसक्रीम बिकती देखी होगी। क्या तुमने कभी यह सोचने का प्रयत्न किया है कि किस प्रकार बक्स के अन्दर आइसक्रीम पिघलने से बची रहती है और हर समय इतनी सख्त निकलती है? शायद तुम उत्तर दोगे कि इन बक्सों में भी कुल्फ़ी बेचने वालों के मटकों की तरह बरफ और नमक भरा रहता होगा, जिसमें आइसक्रीम रक्खी रहती होगी। परन्तु क्या कभी इन बक्सों से पानी चूते हुए देखा है या कभी भी कुल्फ़ी वालों की तरह इन आइसक्रीम वालों को अपने बक्स में बरफ या नमक डालते देखा है? इसके अतिरिक्त एक बात जरा और ध्यान करना; किसी ऐसे बक्स को जरा स्वयं चलाओ तो, देखोगे कि वह कितना हल्का है। यदि आइसक्रीम को पिघलने से के लिए बरफ का प्रयोग किया जाता, तो कम से कम २० सेर बरफ इतने बड़े बक्से में भरना पड़ती। तब भला इन बक्सों में किस प्रकार आइसक्रीम सख्त रक्खी जाती है? आजकल इस कार्य्य के लिए एक पदार्थ का प्रयोग करते हैं जिसको शुष्क बरफ का नाम दिया जा सकता है।

शुष्क बरफ कोई नवीन पदार्थ नहीं है। पश्चिमी देशों में यह ३-४० वर्षों से बनाई जा रही है, परन्तु कुछ ही दिनों से वैज्ञानिकों का ध्यान उसके उपयोगों की ओर गया है। और शुष्क बरफ की इस उपादेयिता के कारण आज उसकी माँग बहुत बढ़ गयी है। जैसा कि स्वाभाविक है माँग की वृद्धि के साथ कारखानों में यह काफ़ी मात्रा में बनने भी लगी है और काफ़ी मात्रा में बनाये जाने के कारण अब बहुत सस्ती भी हो गयी है।

(पृष्ठ ?२? का शेषांक)

है।[4] सोंठ मुलहठी और देवदारु को दूध के साथ स्त्री को पिलाने से गर्भपात नहीं होता और तीव्र वेदना शान्त हो जाती है। इसके सेवन से गर्भ की पुष्टि होती है।[1] बच्चा होने के बाद सौभाग्य शुण्ठी स्त्रियों के लिए अमृत तुल्य समझा जाता है। गर्भाशय को शुद्ध करके इस समय होने वाली सब तकलीफों से बचाता है और पाचक तथा पुष्टि कर पाक रूप में बहुत प्रयोग किया जाता है।

दूध के शोधन के लिए स्त्रियों को सोंठ का कषाय पिलाना चाहिए।[2] स्त्रियों के दूध को शुद्ध करने वाली दस औषधियों में एक सोंठ है।[3]

---

४ पयस्तु दशमे शुण्ठ्याः मृतशीतं प्रशस्यते।
सि० पो०, स्त्रीरोगा०, ६।

१ सक्षीरा वा हिता शुण्ठी मधुकं देवदारु च।
एवमाप्यायते गर्भस्तीव्रा रुक् चोपशाम्यति ॥
सि० पो०, स्त्रीरोगा०; ७।

२ ······················नागरम् ॥
·········क्वाथं·········पिबेत्।
······स्तन्यशुद्ध्यर्थमिति सामान्यं भेषजम् ॥
च० चि० अ० ३०; २२८–२५९।

(क्रमशः)

आखिरकार शुष्क बरफ़ है क्या? तुम जानते हो कि कोई पदार्थ तीन रूपों में रह सकता है, ठोस, द्रव तथा गैस। पानी के इन्हीं तीन रूपों का नाम बरफ़, पानी तथा भाप है। इसी प्रकार दबाव और ठण्डक के प्रयोग से साधारण हवा भी द्रवित की जा सकती है, द्रवित ही नहीं पानी की तरह जमा कर ठोस रूप में भी परिवर्तित की जा सकती है। हवा में और गैसों के साथ साथ कार्बन डाई आक्सइड भी विद्यमान है और इसे भी आसानी से द्रव तथा ठोस के रूप में लाया जा सकता है और यही ठोस कार्बन डाई आक्साइड हमारी शुष्क बरफ़ है। आज हम तुम्हें इस ठोस बरफ़ के उपयोग आदि बतलाएँगे, अगले किसी अंक में तुम्हें इसके बनाने की विधि का रहस्य भी समझा देंगे।

तुम जानते ही हो कि साधारण बरफ़ वस्तुओं को ठण्डा करने के लिए प्रयोग में लाई जाती है। बरफ़ जिन वस्तुओं के निकट रक्खी जाती है, उनसे गरमी लेकर उनको ठण्डा कर देती है और इस गरमी से स्वयं पिघलने लगती है। इसी प्रकार शुष्क बरफ़ भी अपने आस पास से गरमी लिया करती है और इस गरमी से स्वयं पिघला करती है। शुष्क बरफ़ का विशेष गुण यह है कि उसकी थोड़ी सी मात्रा भी पिघलाने के लिए बहुत काफ़ी मात्रा में गरमी की आवश्यकता होती है, इसलिए थोड़ी सी शुष्क बरफ़ भी काफ़ी देर तक काम देती रहती है। आइसक्रीम वाले लगभग १ सेर शुष्क बरफ़ से दिन भर का काम चला लेते हैं; यदि वह साधारण प्रयोग करें तो उन्हें कम से कम इतने ही कार्य्य के लिए ८० सेर बरफ़ की आवश्यकता होगी। इसके अतिरिक्त शुष्क बरफ़ का एक और बड़ा लाभ है। बरफ़ पिघल कर पानी देती है, जो आस पास फैलता रहता है; परन्तु शुष्क बरफ़ पिघल कर कार्बनडाई आक्साइड गैस का रूप धारण कर लेती है और यह गैस हवा में अदृश्य हो जाती है, इसीलिए ठोस कार्बनडाई आक्साइड के प्रयोग से से किसी प्रकार की गन्दगी नहीं होती और उसे इसी गुण के आधार पर शुष्क बरफ़ का नाम दिया गया है।

शुष्क बरफ़ केवल आइसक्रीम को ठण्डा करने में उपयोगित नहीं होती, बल्कि आजकल उससे बहुत से काम लिए जाते हैं। तुमने पहियों पर लोहे का बम (Rim) चढ़ाये जाते देखा होगा। साधारणतया बम को आग पर तपाया जाता है जिससे उसका व्यास बढ़ जाता है, अब वह आसानी से पहिये पर चला जाता है और तब उसे ठण्डा कर देते हैं जिससे वह पहिये को मज़बूती से जकड़ लेता है। इस विधि का मुख्य दुर्गुण यह था कि गरम करने से लोहे के गुणों में परिवर्त्तन आ जाता है और उसकी मज़बूती में कमी आ जाती है। अब ठोस बरफ़ के उपयोग से पहिले पहिए को ठण्डा करके सिकुड़ा लिया जाता है और तब बम उस पर आसानी से चढ़ जाता है। पहिये के साधारण तापक्रम पर आते आते वह बिलकुल जकड़ जाता है। इस विधि से लाभ यही है कि ठण्डा करने से लोहे के गुणों में परिवर्त्तन नहीं होता, जैसा कि गरम करने से होता है।

लेमनेड सोडा आदि बनाने के लिए कार्बनडाई आक्साइड का प्रयोग तो एक दीर्घकाल से चला आता है। पहिले इस कार्य्य के लिये कार्बनडाई आक्साइड को लोहे के सिलिण्डरों में भरकर भेजा जाता था। लाने और ले जाने की सुविधा के कारण आजकल शुष्क बरफ़ के रूप में कार्बनडाई का आक्साइड का प्रयोग होता है। ठोस कार्बनडाई आक्साइड को आवश्यकता के समय फ़ौलाद के मज़बूत सिलिण्डरों में लेकर गरम किया जाता है जिससे बड़े दबाव में गैस पैदा होती है और लेमन, सोडा आदि बनाने में प्रयोग की जा सकती है।

शुष्क बरफ़ मुख्यतः उपर्युक्त उपयोगों में लाई जाती है। आश्चर्य की बात तो यह है कि जो वस्तु कुछ काल पूर्व ही केवल प्रयोगशालायों तक सीमित थी, आज इतने परिमाण पर व्यवसायों में प्रयोग होती है और यही विज्ञान का प्रथम ध्येय है!

प्रश्नोत्तर

३. श्री रमेश चन्द्र गर्ग मेरठ से कोई अच्छा खिजाब बनाने की विधि चाहते हैं।

हरे अखरोट का छिलका	४५० भाग
फिटकरी (चूर्ण)	३० भाग
गुलाब जल	१०० भाग
ऐलकोहल	३५ भाग
सेंट	इच्छानुसार

अखरोट के छिलके और फिटकरी को थोड़े से गुलाबजल के साथ खरल में हल किया जाता है और तब सब रस निचोड़ लिया जाता है। उसमें मिलाकर बोतलों बन्द कर ४-५ दिन तक के वास्ते रख छोड़ा जाता है। तब गई या सोखते से छालकर उसमें सेंट मिला दिया जाता है। इसे सिर में लगाने के पूर्व साबुन लगाकर बालों को खूब साफ कर लेना चाहिये।

ताजे अखरोट प्रतिदिन नहीं मिलते। इसलिये उनका रस निकालकर रख लिया जा सकता है।

इसके लिये हरे अखरोट के छिलके को कूट कर उस पर नमकीन पानी छोड़ देना चाहिये कि छिलका डूब जाय। १ प्रतिशत नमक मिला रहे। तीन दिन बाद मिश्रण को मंद आँच पर चढ़ाओ। धीरे २ उबलने दो।

जितना पानी जल जाय उतना उसमें डालते रहो। ४-५ घंटे बाद उतार लो। और सब रस निचोड़ लो। इसके लिये मजबूत कपड़े में छिलके को डाल कर कपड़े को ऐठना काफी होगा। इस रस को कड़ाही में डालकर इतना उबालो कि करीब तीन चौथाई पानी जल जाय और एक चौथाई ही बच जाय। इन रस में इसके छठे भाग के बराबर ऐलकोहल डालकर बोतलों में रख दो। खिजाब बनाने के वास्ते इसमें केवल फिटकरी और गुलाब जल ही डालना पड़ेगा।

४. श्री महेन्द्रनाथ, लखनऊ से कृत्तिम शहद बनाने बनाने की विधि जानना चाहते हैं।

कृत्तिम शहद तैयार करने के कई उपाय है। उनमें से एक इस प्रकार है।

शकर	१० भाग
वर्षा का पानी	३ भाग

इन दोनों वस्तुओं को धीमी-धीमी आग पर एक बार उबाल पर लाओ। पन्द्रह मिनट तक धीरे-धीरे उबालते रहना चाहिए तथा उसी समय साफ (मैल हटाना) करते रहना चाहिए। इसके पश्चात् ठंडा होने दो और प्रत्येक गैलन (इस तैयार किए हुए) में तीन भाग पुरानी कृत्तिम शहद और पाँच बूँद पिपरमेंट के तेल को मिला दो। यदि इस प्रकार की हुई शहद प्रयोग की जावे तो केवल स्वाद ही नहीं बल्कि इसमें तथा असली में कोई भेद नहीं बताया जा सकता। यदि खाँडसारी शकर प्रयोग की जावे तो इसे कुछ अधिक देर उबालना पड़ेगा तथा सावधानी से साफ करना पड़ेगा। बीस ग्रेन टारटार का सत एक गैलन में मिला देने से शहद और भी अच्छा बन जाता है।

५. श्री मोहनलाल केशरी बनारस फाउन्टेनपेन की स्याही बनाने की विधि जानना चाहते हैं।

फाउन्टेनपेन की स्याही बनाने के लिये नीचे लिखी हुई विधि का प्रयोग किया जा सकता है। नीचे लिखे घोल बनाओ।

(अ) १ ग्रामगैलिक अम्ल १०० सी. सी. पानी में घोल कर ५०° स० तक गर्म करके ठंढ़ा करो और छान लो।

(ब) २॥ ग्राम टैनिक अम्ल १०० सी. सी. पानी में घोल कर ५०° स० तक गर्म करके ठंढ़ा करो और छान लो।

(स) २॥ ग्राम फेरस सलफेट ५० सी. सी. पानी में घोल लो।

(द) ५ ग्राम गोंद ५० सी. सी. पानी के साथ उबालकर घोल ठंढ़ा कर लो।

अ० ब० स० व द को एक साथ मिला कर उसमें ६ सी. सी. ग्लेसियल ऐसिटिकाम्ल व १ बूँद फीनोल और इस मिश्रण को १ महीने तक रक्खा रहने दो। इसके बाद छान कर इसमें ५॥ ग्राम वाटर ब्लू या इंक स्पेशल नामक रंग २५० सी. सी. पानी में घोल कर मिला दो। इस प्रकार अच्छी स्याही बन जायगी।

वैज्ञानिक समाचार

१—एक अपील

परमाणु अनुसन्धान कर्त्ताओं की सामयिक कमेटी

रूम २८, ९० नसाऊ स्ट्रीट, प्रिंसेटन, न्यू जरसी
१० अप्रैल, १९४७

ट्रस्टी

प्रिय मित्र,

पूर्व ऐतिहासिक काल में मनुष्य की अग्नि की गवेषणा के बाद, आज हमारे युग में मानव ने परमाणुक शक्ति पर विजय प्राप्त करके हमको इतिहास की सबसे अधिक क्रांतिकारी शक्ति भेंट की है। संकीर्ण राष्ट्रीयता के रूढ़िवादी विचारों के साथ प्रकृति की इस आधारमूल शक्ति का समन्वय असम्भव है। इस शक्ति के बारे में कोई गुप्त बात नहीं है; इससे बचाव भी नहीं किया जा सकता और इसको नियंत्रित करने के लिये केवल एक मार्ग है—संसार के निवासियों को यह जागृत बोध हो और दृढ़ रूप से इस निश्चय पर अड़े रहे।

हम वैज्ञानिक अपने इस उत्तरदायित्व को जानते हैं कि हम संसार के अपने साथियों को इस शक्ति का रहस्य और समाज पर उसके प्रभाव को स्पष्ट रूप से बतलाएँ। केवल इसी एक प्रयत्न में हमारी रक्षा तथा आशा निर्धारित है। हमारा विश्वास है कि मानव समाज जीवन की ओर प्रगति करेगा, मृत्यु की ओर नहीं।

इस शिक्षा कार्य के लिये हमें १,०००,००० डालर की आवश्यकता है। हमारा यह विश्वास है कि बुद्धि के बल पर मानव अपनी भविष्य पर नियंत्रण रख सकता है और इसी विश्वास के आधार पर हम वैज्ञानिकों ने इस कार्य्य के लिये अपनी समस्त शक्ति तथा ज्ञान से सहायता का वचन दे दिया है।

और आज हम निसंकोच भाव से आपसे भी इस कार्य में सहायता मांगते हैं।

आपका शुभेच्छु
एलबर्ट आइन स्टाइन

२· रूस में वैज्ञानिक अनुसन्धान पर व्यय—

रूस में देश की उत्पादन शक्ति की उन्नति के लिये वैज्ञानिक अनुसन्धान को वर्तमान पञ्चवर्षीय योजना में बहुत महत्त्व दिया गया है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए रूस के अर्थ मंत्री ने १९४६ में वैज्ञानिक अनुसन्धान के लिये ५,०५२,०००,००० रूबल व्यय करने का निश्चय किया। १९४५ में इस मद पर व्यय केवल २,१३६,०००,००० था। उपर्युक्त रकम के अतिरिक्त यूनियन औद्योगिक संस्थाओं ने १,३२७,०००,००० रूबल और खर्च करने का निश्चय किया है।

३. इंडियन इंस्टीट्यूट आफ साइंस

सर एम० विश्वेसवारया ने अस्वस्थता के कारण इंडियन इंस्टीट्यूट आफ साइन्स की अध्यक्षता से त्याग पत्र दे दिया है और इनके स्थान पर १९४७-४८ के लिए इंस्टीट्यूट के कोर्ट के अध्यक्ष सर आर्देशिर दलाल चुने गये हैं।

४· हैदराबाद में चीनी-मिट्टी सम्बन्धी (Ceramic) व्यवसाय

निज़ाम हैदराबाद ने रियासत में चीनी मिट्टी के उद्योग की उन्नति के लिए पहिले ५ वर्षों में २ लाख रुपये का व्यय मन्जूर किया है। यह हर्ष का विषय है कि रियासत में कच्चे माल की बहुतायत है और शीघ्र ही एक कारखाना इस व्यवसाय के लिए रियासत में खोला जायेगा।

५. सिल्वर मैगनीसियम सोलडर

जर्मनी में अमेरिकनों ने एक सोलडर को ढूँढा है जो कि गैसों के जेट-द्वार तथा स्टेन रहित इस्पात

के लिए जर्मनों द्वारा प्रयोगित होता था। उस सोल-डर में ८५% चाँदी और १५% मैगनीशियम होता है। इसका गलाव बिन्दु १०९०° फैरनहाइट है और इसका मुख्य गुण यह है कि ८५०° फैरनहाइट तक यह अपनी मजबूती कायम रखता है।

६. पशुओं के लिए आम की गुठलियों का गूदा

इज्जत नगर के पशु भोजन अनुसन्धान कर्त्ताओं ने पता लगाया है, कि आम की गुठलियों का गूदा पशुओं के लिए बहुत ही पौष्टिक खाद्य पदार्थ है। उसमें पशुओं के बढ़ने के लिए पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन तथा कार्बोहाइड्रेट होते हैं और यदि पशुओं को यह खाने में मिला कर दिया जाए, तो उनके स्वास्थ्य में वृद्धि होती है और उनका वजन बढ़ जाता है।

७. भारत में रेशा उद्योग का विस्तार

केन्द्रीय सरकार ने नारियल की जटा, रस्से, रस्सियां और अन्य रेशा उद्योगों के सम्बन्ध में जो समिति नियुक्त की थी उसकी रिपोर्ट प्रकाशित हो गयी है। समिति ने सिफारिश की है कि नारियल की खेती बढ़ाने और उसमें सुधार करने तथा देश में नारियल की जटा का उत्पादन बढ़ाने के लिये जोरदार प्रयत्न होना चाहिये।

बिना खेती की जमीन

समिति ने इस बात की ओर भी संकेत किया है कि भारत में बिना खेती की बहुत-सी ऐसी जमीन पड़ी है जहां का जलवायु पूर्वी अफ्रीका का सा है इसलिये वहां बड़े बहुत पैमाने पर सीसल की खेती की जा सकती है। सीसल के रस्से, रस्सियां, चटाइयां और दरियां इसलिये अधिक उपयोगी सिद्ध होंगी कि इनमें नमी का असर नहीं पड़ सकेगा।

समिति की राय है कि भारत में प्रति वर्ष २,२९,१२० टन नारियल की जटा का उत्पादन होना चाहिए, इसके लिये उसने आधुनिक उत्पादन प्रणाली ग्रहण करने की सिफारिश की है। रिपोर्ट में एक क्वायर (जूटा) टेक्सटाइल इंस्टीट्यूट की स्थापना पर भी जोर दिया गया है।

समिति ने मनीला और सीसल रेशों का मुक्त आयात, विदेशी रस्सों के आयात पर कर लगाने, अन्वेषण कार्य के लिए जटा उद्योग को आर्थिक सहायता देने और नारियल की चटाइयाँ मंगाने वाले देशों में इन दोनों वस्तुओं के आयात कर में कमी करने की भी सिफारिश की है।

आलू के सम्बन्ध में नए अनुसन्धान

भारत सरकार आलू के उत्पादन तथा उपभोग के सम्बन्ध में स्वीकृत अनुसन्धानशाला स्थापित करने की समस्या पर विचार कर रही है। साथही एक केन्द्रीय बीज प्रमाणक केन्द्र खोलने के प्रश्न पर भी विचार हो रहा है। मुख्य अनुसन्धानशाला बिहार में रहेगी। यह निश्चय इसलिए किया गया है कि बिहार आलू उत्पन्न करने का एक मुख्य क्षेत्र रहा है। बिहार अपने यहाँ उत्पन्न आलू के ६० प्रतिशत भाग का निर्यात करता है।

बीज प्रमाणक केन्द्र स्थापित करने में उद्देश्य यह है कि आलू उत्पन्न करने के लिए रोग युक्त बीज का उपयोग न किया जाय। अनुभव से प्रकट हो चुका है कि सुधरे हुए बीजों के प्रयोग से फसल में शत-प्रतिशत वृद्धि हुई है। सुधरे प्रकार के आलुओं की फसल अधिक मात्रा में पैदा करने के लिए प्रमाण प्राप्त बीज का प्रयोग आवश्यक है।

भारत में प्रतिवर्ष लगभग ४,९०,००,००० मन आलू उत्पन्न होता है। भारत में आलू का औसत उत्पादन प्रति एकड़ १०० मन है, जब कि बृटेन में वह २२० मन प्रति एकड़ है। भारत में प्रति वर्ष बाहर से ११,००,००० मन आलू आते हैं और इस पर ३३,००,००० रु० का व्यय होता है भारत में आलू की फसल को लोकप्रिय बनाने के उपाय विभिन्न जलवायु तथा विभिन्न भूमियों के लिए आलू के अधिक उत्पन्न होने वाले बीजों का उत्पादन, आलू की बीमारियों का निराकरण और आलू के गोदामों में सुधार है।

शोक समाचार

स्व० डा० रामशरणदास

विज्ञान परिषद् के सदस्यों को यह सुनकर दुःख होगा, कि परिषद् के पुराने सदस्य और कोषाध्यक्ष श्री डा० रामशरण दासजी का १५ जुलाई १९४७ को प्रातःकाल देहान्त हो गया। डा० रामशरणदासजी

इधर कई मास से रुग्ण थे, और अनेक प्रकार के उपचारों के अनन्तर भी आपकी अवस्था सुधर न सकी। विज्ञान परिषद् प्रयाग की डाक्टर साहेब ने अनेक प्रकार से सेवा की। परिषद् की कार्य्यकारिणी समिति के आप सदा ही सदस्य रहे, और कई वर्ष मंत्रिमण्डल में थे। कई बार आप हमारे परिषद् के कोषाध्यक्ष भी रहे।

डाक्टर साहेब जीवविज्ञान शास्त्र के विशेषज्ञ थे। हिन्दी भाषा के प्रति आपका अनुराग था। इधर डाक्टर साहेब ने सर्पों के विषय में एक उपयोगी पुस्तक लिखी थी। विज्ञान में आपके कई लेख भी प्रकाशित हुये थे। आप सफल और योग्य अध्यापक थे, और शिष्यों के प्रति आपका विशेष स्नेह था। डाक्टर साहेब ने जीवविज्ञान विषय की मौलिक खोजें की थीं। प्रयाग विश्वविद्यालय ने इन खोजों के उपलक्ष में सन् १९३१ में आपको डी० एस० सी० की उपाधि दी थी। इसके अनन्तर भी अनेक छात्र आपकी सहकारिता में बराबर खोज का कार्य करते रहे हैं। प्रयाग विश्वविद्यालय के जीव विज्ञान विभाग को आपके देहावसान से जो क्षति हुई है, वह आसानी से पूर्ण नहीं हो सकती।

डाक्टर रामशरणदासजी प्रयाग विश्वविद्यालय की अनेक समितियों के सदस्य थे। कार्य्यकारिणी समिति के भी आप सदस्य थे, और विश्वविद्यालय में आपकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। इस समय आप विश्वविद्यालय के सर सुन्दरलाल होस्टल नामक छात्रावास के अध्यक्ष भी थे।

प्रयाग विश्वविद्यालय ने हिन्दी या उर्दू विषय को अनिवार्य करने की जो उपसमिति बनाई थी, डाक्टर साहेब उसके सदस्य थे, और आपने इस प्रकार की समितियों द्वारा विश्वविद्यालय में हिन्दी को प्रोत्साहित करने का स्तुत्य कार्य किया।

डा० रामशरणदासजी की इस समय आयु केवल ५० वर्ष थी। हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं, कि उनकी विगत आत्मा को सद्गति एवं उनके दुःखी कुटुम्ब को सान्त्वना प्राप्त हो।

सम्पादकीय

अत्यन्त हर्ष का विषय है विज्ञान का यह अंक प्रथम बार स्वतन्त्र भारत में निकल रहा है। १५ अगस्त मानवता के लिए युग-परिवर्त्तक दिवस था, इस दिन ४० करोड़ मनुष्यों ने परतन्त्रता की बेड़ी से मुक्ति पाकर स्वाधीनता की खुली हवा में साँस ली। राजनीति-विज्ञान की दृष्टि कोण से यह स्वतन्त्रता-प्राप्ति एक नवीन प्रकार के प्रयोग की आशातीत सफलता को प्रदर्शित करती है कि किस प्रकार कोई निःशस्त्र राष्ट्र जर्मनी विजेता ऐसे शक्तिशाली राष्ट्र से भी अहिंसा मार्ग के अवलम्बन से विजय प्राप्त कर सकती है। इस प्रयोग के प्रदर्शक तथा अन्वेषणकर्त्ता महात्मा गाँधी जी को हम प्रणाम करते हैं।

स्वाधीनता तो मिल गयी और उससे हम प्रसन्न भी हैं। स्वाभाविक ही है! परन्तु इस प्रसन्नता के उल्लास में हम अपना उत्तरदायित्व न विस्मरण कर बैठे, क्योंकि स्वतन्त्र होने के क्षण से ही हमारे कन्धों पर एक उत्तरदायित्व आ पड़ा है कि हमको हर प्रकार से उन्नति कर स्वाधीन देशों के बीच अपना एक सम्मान पूर्ण स्थान बनाना है। इस उन्नति के प्रयत्न में वैज्ञानिक अध्ययन तथा अनुसन्धान का कितना महत्व है, यह तो स्पष्ट है ही। हमारी राष्ट्रीय सरकार ने इस ओर प्रगति भी की है और आशा है कि राष्ट्रीय भौतिक, रासायनिक तथा धात्विक आदि प्रयोगशालाओं का स्थापना से यह कार्य्य कुछ आगे बढ़ सकेगा, परन्तु यह उन्नति स्थायी न हो सकेगी। इसका मुख्य कारण हमारे यहाँ वैज्ञानिक कार्य्य कर्त्ताओं की कमी है। कार्य्य-कर्त्ताओं की कमी के दो कारण है, पहिला तो विश्व विद्यालयों में वैज्ञानिक अध्ययन को पर्याप्त महत्व न दिया जाना है और दूसरा शिक्षा का माध्यम विदेशी भाषा होना है।

हमारे विश्वविद्यालयों की प्रयोग शालाओं में विज्ञान विभागों की इतनी दुर्दशा है कि अधिकतर विभागों में सोलहवीं शताब्दी के उपकरणों से सन्तोष करना पड़ता है। ऐसी अवस्था में इन प्रयोगशालाओं से जो प्रथम कोटि का अनुसन्धान कार्य्य प्रकाशित रहता है वह केवल भारतीय मस्तिष्क की कुशाग्रता का द्योतक है कि वह इन प्रतिकूल अवस्थाओं में भी कार्य्य करने से पीछे नहीं रहता। हरदेश के विश्वविद्यालयों में वैज्ञानिक विभागों में होने वालों अनुसन्धानों का देश की प्रगति में बड़ा हाथ रहता है और आशा है अधिकारी वर्ग तथा हमारी अपनी सरकार अब शीघ्र ही इस ओर ध्यान देंगी।

विज्ञान की अवनति का दूसरा कारण विदेशी भाषा का शिक्षा माध्यम होना है। हर्ष की बात है कि भारतीय विधान परिषद् ने इस ओर एक नियम बना कर हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा का निश्चय किया है; प्रान्तीय सरकार भी इस ओर प्रयत्नशील है। शिक्षा अपनी मात्र भाषा में हो इसमें तो अब कोई मतभेद नहीं दिखाई देता, परन्तु अब भी इसके कुछ स्वार्थवश विरोधी हैं, जो वैज्ञानिक शब्दावली व पुस्तकों के अभाव की ओर में कार्य को रोक रखने की सम्मति देते हैं। ऐसे महापुरुषों को हम अपनी छोटी सी संस्था का उदाहरण देकर चुप कर देना चाहते हैं। विज्ञान परिषद् की स्थापना १० मार्च १९१३ को देशी भाषा में वैज्ञानिक साहित्य के निर्माण के ही ध्येय को लेकर हुई थी और पिछले ३४ वर्ष से बराबर वह मासिक पत्रिका तथा अन्य पारिभाषिक पुस्तकें प्रकाशित करती रही है। बिना किसी सहायता या प्रोत्साहन के जब उस काल में यह कार्य्य केवल सम्भव ही न होकर इतने सुचारु रूप से चल सका, तो सरकार की सहायता से तो इस कार्य्य के आज ही से प्रारम्भ कर देने में कोई अड़चन नहीं हो सकती, ऐसा हमारा विश्वास है। यदि पठन-पाठन का कार्य्य क्रम आरम्भ कर दिया जाये, तो अपने आप ही एक ही दो वर्ष में वैज्ञानिक भाषा बन निकलेगी और पुस्तकों का अभाव तो रह ही नहीं सकता। स्वयं विज्ञान की पिछली फाइलों में अनेकानेक पुस्तकों की सामग्री विद्यमान है और जब इन प्रतिकूल अवस्थाओं में भी बिना किसी लाभादि की आशा के लेखक तथा प्रकाशकों के केवल उत्साह तथा निस्वार्थ सेवा भाव के प्रयत्न से लगभग हर विषय पर ग्रन्थ निकलते रहे हैं, तब इस काल में उनका अभाव रहेगा, यह तो बिल्कुल ही निमूल बात है।

आशा है शीघ्र ही हमारी राष्ट्रीय सरकार इस ओर कार्य्य करेगी। देश के संगठन के अन्य कार्य्यों में व्यस्त रहने के तर्क की ओट लेकर इस कार्य्य की ओर तत्काल ही ध्यान न देना अदूरदर्शिता होगी, क्योंकि इस प्रश्न के साथ ही हमारी समस्त दीर्घकालीन उन्नति सम्बन्धित है।

विज्ञान-परिषद्‌की प्रकाशित प्राप्य पुस्तकोंकी सम्पूर्ण सूची

१—विज्ञान प्रवेशिका, भाग १—विज्ञान की प्रारम्भिक बातें सीखने का सबसे उत्तम साधन—ले० श्री रामदास गौड़ एम० ए० और प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी० ;

२—चुम्बक—हाईस्कूल में पढ़ाने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी०; सजि०; ।।=)

३—मनोरञ्जक रसायन—इसमें रसायन विज्ञान उपन्यासकी तरह रोचक बना दिया गया है, सबके पढ़ने योग्य है—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम० एस-सी० ; १।।),

४—सूर्य-सिद्धान्त—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान-भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखनेका सबसे सुलभ उपाय—पृष्ठ संख्या १२१४ ; १४० चित्र तथा नकशे—ले० श्री महाबीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; सजिल्द; दो भागोंमें; मूल्य ६)। इस भाष्यपर लेखकको हिन्दी साहित्य सम्मेलनका १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है।

५—वैज्ञानिक परिमाण—विज्ञानकी विविध शाखाओंकी इकाइयोंकी सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहालकरण सेठी डी० एस सी०; ।।।),

६—समीकरण मीमांसा—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १।।) द्वितीय भाग ।।=),

७—निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमती प्रसादअग्निहोत्री बी० एस-सी० ; ।),

८—बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित—इंटरमीडियेटके गणितके विद्यार्थियोंके लिये—ले० डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी० ; १।),

९—गुरुदेवके साथ यात्रा—डाक्टर जे० सी० बोसीकी यात्राओंका लोकप्रिय वर्णन ; ।-),

१०—केदार-बद्री यात्रा—केदारनाथ और बद्रीनाथके यात्रियोंके लिये उपयोगी; ।),

११—वर्षा और वनस्पति—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शङ्करराव जोशी; ।),

१२—मनुष्यका आहार—कौन-सा आहार सर्वोत्तम है—ले० वैद्य गोपीनाथ गुप्त; ।=),

१३—सुवर्णकारी—क्रियात्मक—ले० श्री गंगाशंकर पचौली; ।),

१४—रसायन इतिहास—इंटरमीडियेटके विद्यार्थियोंके योग्य—ले० डा० आत्माराम डी० एस-सी०; ।।।),

१५—विज्ञानका रजत-जयन्ती अंक—विज्ञान परिषद् के २५ वर्षका इतिहास तथा विशेष लेखोंका संग्रह; १)

१६—फल-संरक्षण—दूसरा परिवर्धित संस्करण—फलोंकी डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार आदि बनानेकी अपूर्व पुस्तक; २१२ पृष्ठ; २५ चित्र—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्रनारायण सिंह एम० एस-सी०; २),

१७—व्यङ्ग-चित्रण—(कार्टून बनानेकी विद्या)—ले० एल० ए० डाउस्ट ; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी, एम० ए०; १७५ पृष्ठ; सैकड़ों चित्र, सजिल्द; १।।)

१८—मिट्टीके बरतन—चीनी मिट्टीके बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा ; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र; सजिल्द; १।।),

१९—वायुमंडल—ऊपरी वायुमंडलका सरल वर्णन—ले० डाक्टर के० बी० माथुर; १८६ पृष्ठ; २५ चित्र, सजिल्द; १।।),

Reg. No. A 372

२०—लकड़ी पर पॉलिश—पॉलिशकरनेके नवीन और पुराने सभी ढंगोंका ब्योरेवार वर्णन। इससे कोई भी पॉलिश करना सीख सकता है—ले० डा० गोरख-प्रसाद और श्रीरामयत्न भटनागर, एम०, ए०, २१८ पृष्ठ, ३१ चित्र, सजिल्द; १।।),

२१—उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश; आकार बड़ा विज्ञानके बराबर २६० पृष्ठ; २००० नुसखे, १०० चित्र; एक-एक नुसखेसे सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं या हज़ारों रुपये कमाये जा सकते हैं। प्रत्येक गृहस्थके लिये उपयोगी; मूल्य अजिल्द २) सजिल्द २।।),

२२—कलम-पेबंद—ले० श्री शंकरराव जोशी; २०० पृष्ठ; ४० चित्र; मालियों, मालिकों और कृषकोंके लिये उपयोगी; सजिल्द; १।।),

२३—जिल्दसाज़ी—क्रियात्मक और ब्योरेवार। इससे सभी जिल्दसाज़ी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०; १८० पृष्ठ, ६२ चित्र; सजिल्द १।।),

२४—त्रिफला—दूसरा परिवर्धित संस्करण-प्रत्येक वैद्य और गृहस्थके लिये—ले० श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार, २१६ पृष्ठ; ३ चित्र, एक रङ्गीन; सजिल्द २।),

यह पुस्तक गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय, की १३ श्रेणी के लिए द्रव्यगुणके स्वाध्याय पुस्तकके रूपमें शिक्षापटलमें स्वीकृत हो चुकी है।"

२५—तैरना—तैरना सीखने और डूबते हुए लोगोंको बचाने की रीति अच्छी तरह समझायी गयी है। ले० डाक्टर गोरखप्रसाद पृष्ठ १०४ मूल्य १),

२६—अंजीर—लेखक श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार-अंजीर का विशद वर्णन और उपयोग करनेकी रीति। पृष्ठ ४२, दो चित्र, मूल्य ॥),

यह पुस्तक भी गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालयके शिक्षा पटलमें स्वीकृत हो चुकी है।

२७—सरल विज्ञान-सागर प्रथम भाग—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद। बड़ी सरल और रोचक भाषा में जंतुओंके विचित्र संसार, पेड़ पौधों की अचरज-भरी दुनिया, सूर्य, चन्द्र और तारोंकी जीवन कथा तथा भारतीय ज्योतिषके संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। विज्ञानके आकार के ४५० पृष्ठ और ३२० चित्रोंसे सजे हुए ग्रन्थ की शोभा देखते ही बनती है। सजिल्द मूल्य ६), मिल है।

२८—वायुमण्डलकी सूक्ष्म हवाएँ—ले० डा० सन्त-प्रसाद टंडन, डी० फिल० मूल्य ।।।)

२९—खाद्य और स्वास्थ्य—ले० श्री डा० ओंकारनाथ परती, एम० एस-सी०, डी० फिल० मूल्य ।।।)

हमारे यहाँ नीचे लिखी पुस्तकें भी मिलती हैं:—

१—विज्ञान हस्तामलक—ले०—स्व० रामदास गौड़ एम० ए० भारतीय भाषाओंमें अपने ढंगका यह निराला ग्रंथ है। इसमें सीधी सादी भाषामें अठारह विज्ञानोंकी रोचक कहानी है। सुन्दर सादे और रंगीन पौने दो सौ चित्रोंसे सुसज्जित है, आजतककी अद्भुत बातोंका मनोमोहक वर्णन है, विश्वविद्यालयोंमें भी पढ़ाये जानेवाले विषयोंका समावेश है, अकेली यह एक पुस्तक विज्ञानकी एक समूची लैब्रेरी, है एक ही ग्रंथमें विज्ञानका एक विश्वविद्यालय है। मूल्य ६)

२—सौर-परिवार—लेखक डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० आधुनिक ज्योतिष पर अनोखी पुस्तक ७७६ पृष्ठ, ५८७ चित्र (जिनमें ११ रंगीन हैं) मूल्य १२) इस पुस्तक पर काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा से रेडिचे पदक तथा २००) का छन्नूलाल पारितोषिक

३—भारतीय वैज्ञानिक—१२ भारतीय वैज्ञानिकोंकी जीवनियां—ले० श्री श्याम नारायण कपूर, सचित्र ३८० पृष्ठ; सजिल्द; मूल्य ३।।) अजिल्द ३)

४—वैक्युम-ब्रेक—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा। यह पुस्तक रेलवेमें काम करने वाले फ़िटरों इंजन-ड्राइवरों, फ़ोर-मैनों और कैरेज एग्ज़ामिनरोंके लिये अत्यन्त उपयोगी है। १६० पृष्ठ; ३१ चित्र जिनमें कई रंगीन हैं, २),

विज्ञान-परिषद्, बेली रोड, इलाहाबाद

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुखपत्र

भाग ६५ | सम्वत् २००४, सितम्बर १९४७ | संख्या ६

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces,
for use in Schools and Libraries

प्रकाशक

विज्ञान-परिषद्,

बेली रोड, इलाहाबाद ।

वार्षिक मूल्य ३)]

[एक संख्या का मूल्य

प्रयागकी

विज्ञान-परिषद् के मुख्य नियम

परिषद्का उद्देश्य

१—१९७० वि० वा १९१३ ई० में विज्ञान परिषद्की इस उद्देश्यसे स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञानके अध्ययनको और साधारणतः वैज्ञानिक खोजके कामको प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद्का संगठन

२—परिषद्में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमोंके अनुसार सभ्यगण सभ्योंमेंसे ही एक सभापति, दो उपसभापति एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमंत्री, दो मंत्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे, जिनके द्वारा परिषद्की कार्यवाही होगी।

पदाधिकारियोंका निर्वाचन

१८—परिषद्के सभी पदाधिकारी प्रतिवर्ष चुने जायँगे। उनका निर्वाचन परिशिष्टमें दिये हुये तीसरे नकशेके अनुसार सभ्योंकी रायसे होगा।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्यको ५) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश-शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ ७० रु० की रकमदे देनेसे कोई भी सभ्य सदाके लिये वार्षिक चन्देसे मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्योंको परिषद्के सब अधिवेशनोंमें उपस्थित रहनेका तथा अपना मत देनेका, उनके चुनावके पश्चात् प्रकाशित, परिषद्की सब पुस्तकों, पत्रों, विवरणों इत्यादिके बिना मूल्य पानेका—यदि परिषद्के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धनसे उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन-चौथाई मूल्यमें मिलेंगी।

२७—परिषद्के सम्पूर्ण स्वत्वके अधिकारी सभ्यवृन्द समझे जायँगे।

परिषद्का मुखपत्र

३३—परिषद् एक मासिक-पत्र प्रकाशित करेगी जिसमें सभी वैज्ञानिक विषयोंपर लेख प्रकाशित हुआ करेंगे।

// विज्ञान

विज्ञान-परिषद, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ।। तै० उ० ।३।५।

भाग ६५ | सम्वत् २००४, सितम्बर, १९४७ | संख्या ६

मानव विचारधारा में परिवर्त्तन की आवश्यकता

(मूल लेखक—एलबर्ट आइनस्टाइन)

कुछ दिन पहिले मैंने समाचार पत्रों को एक सन्देश दिया था कि "मानव समाज के जीवित रहने तथा उन्नति करने के लिए एक नवीन प्रकार की विचार धारा नितान्त आवश्यक है।" मेरे इस संदेश के बारे में बहुत लोगों ने प्रश्न पूछे हैं।

परिमाणवाद (Theory of Evolution) का यह प्रमुख सिद्धान्त है कि प्रत्येक जाति को जीवित रहने के लिये नवीन परिस्थितियों के अनुकूल अपने को परिवर्तित करना आवश्यक है। आज परमाणु बम ने हमारे इस संसार के स्वभाव को पूर्णतया परिवर्त्तित कर दिया है और फलतः मानव समाज अपने को नवीन अवस्थाओं में पाता है, जिनके अनुकूल उसे अपनी विचार धारा अवश्य कर लेनी चाहिए।

आज एक केन्द्रीय शासन की माँग केवल बन्धुत्व के दृष्टिकोण से ही प्रशंसनीय नहीं हैं, बरन् हमारे नवीन ज्ञान के प्रभाव के कारण वह हमारे जीवित रहने के लिये भी अत्यन्त आवश्यक है। आज के परमाणु बम के युग के पहिले किसी राष्ट्र के जीवन तथा सभ्यता की रक्षा प्रतिस्पर्धी फौजों की सहायता से की जा सकती थी। आज हम अपनी रक्षा पारस्परिक स्पर्धा द्वारा बिलकुल नहीं कर सकते बरन् रक्षा का एक ही मार्ग हम लोगों के लिये बच गया है—पारस्परिक सहयोग। भूत कालीन विचार पद्धति तथा कार्य्य विधि युद्धों की समाप्ति करने में सफल न हो सकी, परन्तु आज हमारे जीवित रहने के लिये यह जरूरी हो उठा है कि हमारी विचार पद्धति ऐसी हो कि भविष्य में युद्ध होना असम्भव हो जाये।

परमाणु बम, युद्ध कालीन अन्य गवेषणाओं तथा आधुनिक युद्ध शैली ने हमारे सम्मुख परिस्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्त्तन कर दिया है। इस काल से पहिले युद्ध प्रतिस्पर्धी सेनाओं में होता था, बिना सेना भेजे कोई भी राष्ट्र किसी दूसरी राष्ट्र पर आक्रमण न कर सकती थी; परन्तु आज 'राकेट' तथा 'परमाणु बम' के आविष्कार के बाद पृथ्वी का

कोई भी कोना अपने आपको एकाएकी हमले में सर्वथा नष्ट होने से नहीं बचा सकता। भाग्यवश इस समय युद्ध के साधन तथा उपकरणों में अमरीका सबसे प्रमुख है, परन्तु यह श्रेष्ठता क्षणिक ही है कि क्योंकि यह निश्चित है कि हमारे पास कोई भी स्थानीय गोपनीय वस्तु या भेद नहीं है। प्रकृति ने जो भेद आज हमें बतलाये हैं, वह कुछ ही समय उपरान्त किसी भी उत्सुक तथा प्रयत्नशील जाति को बतला देगी, परन्तु आज की क्षणिक श्रेष्ठता ने भी हमारे कंधों पर एक उत्तरदायित्व डाल दिया है कि हम संसार पर आने वाले संकट से मनुष्य जाति को बचाने के प्रयत्नों का नेतृत्व करें।

अभी तक अपनी कुशाग्र बुद्धि के कारण अमरीकी लोग यह विश्वास नहीं कर पाते की परमाणु बम से रक्षा सर्वदा असम्भव है, परन्तु यह निश्चित तथ्य है। वैज्ञानिक तो आज भी परमाणु बम से रक्षा करने वाली किसी विधि की कल्पना भी नहीं कर पाते, परन्तु प्राचीन विचार प्रणाली वाला सैनिक विभाग इस ओर निष्फल प्रयत्नों में लगा हुआ है। सैनिक विभाग की युक्तियों में प्रमुख यह है कि हम पृथ्वी के आन्तरिक भाग में चले जायें और युद्धकाल में हमारे कारखाने आदि गुफाओं में चले जायें; परन्तु तुरन्त ही समझदार लोगों के मन यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि 'क्या हमारी सभ्यता इन गुफाओं में जीवित रह सकेगी?' इसके अतिरिक्त सैनिक विभाग की दूसरी योजना यह है कि समस्त समुद्रतट पर १ लाख आदमी रात दिन निरन्तर "रादर" द्वारा आकाश की परीक्षा करते रहें, जिससे कोई राकेट या परमाणु बम लाने वाला यान हमारे तट तक पहुँचने के पहिले ही नष्ट किया जा सके। परन्तु वास्तविकता तो यह है कि रादर 'वी २' से हमारी रक्षा करने में बिल्कुल बेकार है और यदि वर्षों के अनुसंधान के बाद 'वी २' से रक्षा का कोई साधन निकल भी आये, तो भी वह अपूर्ण होगा। यदि किसी भी समय किसी मनुष्य की क्षणिक लापरवाही या परीक्षक मशीन की खराबी से कोई भी परमाणु बम से लदा यान हमारे तट को पार करके हमारे शहरों तक पहुँच सका, तो हमारे बड़े से बड़े शहरों का भाग्य 'नागास्की' के भाग्य से अच्छा न होगा। राइफिल की गोलियों से मनुष्य मरते हैं, परन्तु परमाणुक बम शहरों को नष्ट कर देने में सफल होते हैं। गोली के विरुद्ध टैंक हमारी रक्षा कर सकता है, परन्तु मानवीय सभ्यता के विनाशक इस भयंकर अस्त्र के विरुद्ध हमारे विज्ञान के पास कोई रक्षा का साधन नहीं है। आज इस युग में हमारी रक्षा शस्त्रों में नहीं, विज्ञान में नहीं, गुफाओं में नहीं, वरन् नियमों के पालन तथा समाज की उचित व्यवस्था में है।

अस्तु इस समय से, प्रत्येक देश की अन्तर्राष्ट्रीय नीति इस प्रकार की होनी चाहिये कि वह संसार में व्यवस्था तथा नियम स्थापन में सहायक हो। यह असम्भव है कि हम युद्ध की तैयारी करते रहें और साथ ही साथ संसार में पारस्परिक बन्धुत्व की भावना उत्पन्न करने में भी सफल हो जायें।

अमरीका में हम आज भी परमाणु बम बना रहे हैं और इससे बाकी संसार हमें घृणा तथा संदिग्ध दृष्टि से देखता है। हम अपने भेदों को गोपनीय रख रहे हैं और इससे पारस्परिक सन्देहों की पुष्टि हो रही है। मैं यह नहीं कहता कि हम परमाणु बम के सिद्धांतों को बिना किसी रोक के संसार के सामने खोल दें, परन्तु मेरा तो अमरीका वालों से केवल एक प्रश्न है कि 'क्या हम सचमुच एक ऐसे संसार के निर्माण करने के प्रयत्न में तन मन धन से लगे हुए हैं, जिसमें परमाणु बम तथा अन्य किसी भेद की आवश्यकता ही न रह जाये और जिस संसार में मानव समाज तथा वैज्ञानिक स्वतंत्र हों।" आज जब रूस हमारी गोपनीयता पर हमें संदिग्ध दृष्टि से देख रहा है और कुछ इन्हीं प्रकार के कारणों से हम रूस पर सन्देह करते हैं, तो इन अवस्थाओं में तो ऐसा भास होता है कि हम दोनों कंधे से कंधे मिला कर

नष्ट के मार्ग की ओर चल रहे हैं। इस निश्चित नष्टि से संसार को बचाने के लिये हमारे पास केवल एक आशा रेखा है और वह है यू० एन० ओ०। अभी तक इस संस्था में भी हमने केवल एक ही कार्य्य किया है कि वोट द्वारा रूस वालों को प्रत्येक प्रश्न पर नीचा दिखा देने का प्रयत्न करना, चाहे किसी विशिष्ट प्रश्न पर उनकी सम्मति सही हो या गलत ; परन्तु क्या इस प्रकार की कार्य्यप्रणाली से हम अपने ध्येय के निकट पहुँच रहे हैं ?

यह तो मानना ही पड़ेगा कि यू०एन०ओ० कभी-कभी ऐसे कार्य्य अवश्य करती है कि जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि वह हमारी आशाओं को पूरा करके सांसारिक बन्धुत्व के हमारे ध्येय में हमें सफल बना सकेगी। परन्तु आज की परिस्थिति में हमारे पास समय बहुत ही कम है, इस क्षण संसार में अत्यन्त बलशाली शक्तियाँ संकट की ओर बढ़ रही हैं। हमारे सरकारी विभाग अब भी केवल विगत काल की परिस्थितियों के अनुकूल स्वपनों में निमग्न हैं। वे राष्ट्रीयता की भावना अति उग्र रूप में जाग्रत करने का प्रयत्न कर रहे हैं। नित्य ही अनेक प्रकार के प्रश्न हमारे सम्मुख आते हैं और हमारी सरकारें उन्हें संकीर्ण राष्ट्रीयता के दृष्टिकोण से हल करने का प्रयत्न कर रही हैं। रक्षा तथा बचाव के लिए सरकारी विभाग नियंत्रणों की बात सोच रही है जिनसे हम सदैव भयभीत अवस्था में ही रहेंगे, हमारे राष्ट्रीय धन का अरबों रुपया व्यय होगा और साथ ही साथ सदैव से चलती आयी हमारे जीवन की स्वतन्त्र पद्धति का भी हास हो जायेगा।

हिरोशिमा पर आक्रमण होने के पहिले वैज्ञानिकों ने युद्ध विभाग पर यह जोर डालने का प्रयत्न किया था कि यह भयंकर अस्त्र निहत्थे तथा अरक्षित बच्चों तथा औरतों पर प्रयोग में न लाया जाये। बिना इस अमानुषिक कार्य के भी युद्ध जीता जा सकता था, परन्तु युद्ध विभाग ने उस समय यह तर्क देकर वैज्ञानिकों को चुप कर दिया था कि इस बम के प्रयोग से युद्ध की समाप्ति शीघ्र हो जायेगी और इससे लाखों अमरीका निवासियों का जीवन व्यर्थ नष्ट न होगा। परन्तु आज जब उसी प्रकार के संकट से अरबों अमरीका वालों की रक्षा का प्रश्न सामने आता है, तो हमें अपने उस निर्णय की भयंकर भूल स्पष्ट ही दिख पड़ती है। यदि हम उस अमानुषिक अस्त्र का प्रयोग भरी आबादी पर न करके मेक्सिको के मैदानों में करते और प्रयोग का प्रदर्शन अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिनिधियों के सम्मुख दिखला देते, तो उसका युद्ध की समाप्ति पर वही प्रभाव पड़ता जो परमाणु बम के हिरोशिमा पर डालने पर हुआ। परन्तु एक बार निहत्थे शहरियों पर ऐसे भयंकर अस्त्र के प्रयोग से भविष्य हमने सदैव के लिए अन्धकारमय बना दिया है, क्योंकि मनुष्य कुछ इस प्रकार के तर्क वितर्क का अभ्यस्त सा है कि जिस अस्त्र का प्रयोग एक बार हो गया, वह फिर दुबारा भी प्रयोग में लाई जा सकती है। अस्तु हमारी उस भूल से संसार की बड़ी ही नैतिक हानि हुई है, इसके विपरीत यदि हम उस भयंकर अस्त्र को 'हिरोशिमा पर न डाल कर केवल उसकी भयंकरता का प्रदर्शन भर करते तो हम संसार वालों के सामने अपनी नैतिकता तथा ईमानदारी का आदर्श रख सकते कि इतने भयंकर अस्त्र को रखते हुए भी हमने केवल मनुष्यता के लिहाज से उसका प्रयोग नहीं किया।

युद्ध के अनेक प्रभावों में से एक प्रभाव यह भी हुआ है कि हममें से बहुतों की स्वयं विचार करने की शक्ति नष्ट हो गयी है, क्योंकि युद्ध काल में तो सैनिक की परिस्थिति में हम केवल वही करते थे जिसकी हमें आज्ञा मिलती थी। परन्तु आज की परिस्थिति में इस तटस्थता से तो बहुत बड़ी हानि की सम्भावना है। आज तो यह आवश्यक हो उठा है कि जैसे कुछ पहिले हमने धुरी राष्ट्रों के विरुद्ध सभायें की थीं, वैसे ही आज भी इस प्रश्न पर भी सभाओं में, सोसायटियों में, गिरजाघरों में, स्कूलों में, पास-पड़ोस में वार्तालाप करें। एक दूसरे का ध्यान आने वाले संकट की ओर खींच कर उससे

मुक्ति का उपाय सोचें। परमाणु बम के बारे में केवल अध्ययन से तो हमारा ज्ञान ही बढ़ता है; परन्तु पारस्परिक वार्तालाप से हृदय में सचेत भावनायें जाग्रत होती हैं।

अभी तक वैज्ञानिक भी परमाणु शक्ति का पूरा रहस्य नहीं जानते। हममें से बहुत थोड़ों ने एक ऐसा बम देखा है, परन्तु यह तो प्रकट ही है कि हम सब उस शस्त्र की नष्टकारक शक्ति से भली भांति परिचित हैं। आज जब युद्ध के बादल मंडरा रहे हैं, तो परिस्थिति की भयंकरता स्पष्ट है। हम इस प्रश्न का हल केवल अपने नेताओं, सिनेट वालों और राजनीतिज्ञों पर नहीं छोड़ सकते। जिस गति से वह प्रगति कर रहे हैं, शायद युगों में भी वे किसी निर्णय तक न पहुँच पायें और शायद आज से पाँच ही वर्ष बाद बहुत सी राष्ट्रों के पास परमाणु बम हो जायेंगे और उस समय समस्या का हल निकला भी, तो वह निष्फल होगा।

आज हम वैज्ञानिकों का यह कर्तव्य हो गया है कि अमरीका के गाँव-गाँव में इस ज्ञान को फैलाएँ, जिससे प्रत्येक अमरीकी के मुख से यही आवाज निकले कि हमें ठीक मार्ग पर चल कर उस परिस्थिति से मुक्ति पाना है। इस कर्त्तव्य के भास होने के कारण हम वैज्ञानिकों ने प्रिंसेटन, न्यू जरसी में स्थिति एक कमेटी बनाई है। इस कमेटी द्वारा हम यह प्रयत्न करेंगे कि हम जहाँ तक सम्भव हो इस आधार मूल शक्ति के भेद गोपनीय न रक्खे जाये। यह कार्य्य इस प्रकार अवश्य करना होगा जिससे इस शक्ति का अनुचित उपयोग न हो। इसके साथ ही साथ हम संसार को यह बोध कराने का प्रयत्न करेंगे कि यह असम्भव है कि हम लड़ाई की तैयारी में भी लगे रहे और साथ ही साथ शान्ति की स्थापना में भी सफल हो सकें। जब हम अपने दिल व दिमाग में इस तथ्य के बारे में निश्चित हो जायेंगे, तभी हम आज संसार में छायी हुई भय की भावना पर विजय प्राप्त करने के साहस का उपार्जन करने में सफल होंगे।

(न्यूयार्क टाइम्स मैगजीन में प्रकाशित एक लेख के आधार पर')

गणितीय शब्दावली की समस्यायें

(डा० ब्रजमोहन)

(२)

(८)—प्रयोग—इस शब्द के चार अर्थ हैं जो निम्नलिखित वाक्यांशों से स्पष्ट हो जायंगे :—

Theory and Practice सिद्धान्त और प्रयोग
Application of a Theorem प्रमेय का प्रयोग
Use of a word शब्द का प्रयोग
Experiment प्रयोग

स्पष्ट है कि यदि यह शब्द चारों अर्थों में प्रयुक्त होता रहा तो अनेक अवसरों पर कठिनाई उपस्थित हो जायगी। उदाहरणार्थ मैं अंग्रेजी के दो वाक्य लेता हूँ :—

The use of this experiment is limited.

Theoretically, the rule is perfect, but in practice its application presents many difficulties.

इन वाक्यों में से प्रत्येक के अनुवाद में 'प्रयोग' शब्द दो दो बार डालना होगा। अतएव वाक्य बहुत भद्दे हो जायंगे। स्पष्ट है कि इस शब्द के कुछ अर्थों के लिये नये पर्याय बनाने होंगे।

Practice शब्द के भी कई अर्थ हैं। अंकगणित में यह एक विशेष क्रिया का नाम है जिसका पर्याय 'व्यवहारगणित' काफी प्रचलित हो चुका है। परन्तु इसके अतिरिक्त इस शब्द के दो प्रयोग और हैं जो इन दो वाक्यांशों से स्पष्ट हो जायंगे :—

Practical life
Science Practical

इनमें से पहिले को हम 'व्यवहारिक जीवन' कहते हैं परन्तु दूसरे को 'विज्ञान-व्यवहार' अथवा 'वैज्ञानिक व्यवहार' नहीं कह सकते। इसके लिये कोई नया शब्द ढूँढ़ना पड़ेगा। डा० रघुबीर का प्रस्ताव है कि इसके लिये 'अनुष्ठान' शब्द निर्धारित किया जाय। अतः भिन्न-भिन्न वाक्यांशों का अनुवाद इस प्रकार है :—

(Science) Practical	अनुष्ठान
Practical Method	व्यवहारिक विधि
Practical Use	व्यवहारिक उपयोग
Practical Class	अनुष्ठान कक्षा
Practically	व्यवहारिक रूप से

इस शब्दावली से यह भी स्पष्ट है कि Use के लिये 'उपयोग' शब्द 'प्रयोग' से अधिक उपयुक्त होगा इस प्रकार 'प्रयोग' के चार अर्थों में से दो का निपटारा हुआ जाता है। अब शेष बचे Experiment और Application। यदि इन दोनों के लिये एक ही शब्द प्रयोग किया जाय तो Applied Science और Experimental Science दोनों को 'प्रयोजित विज्ञान' अथवा 'प्रायोगिक विज्ञान' कहना होगा। और किसी स्थल पर यह जानने में कठिनाई जान पड़ सकती है कि 'प्रयोजित विज्ञान' से लेखक का तात्पर्य Applied Science से है अथवा Experimental Science से। अतएव मेरा प्रस्ताव है कि निम्नलिखित संशोधित शब्दावली स्वीकार की जाय :—

Applicable	लागू, प्रयोज्य
Application (of a rule)	प्रयोग
Application (of a triangle)	आच्छादन
Geometrical Application	ज्यामितीय प्रयोग
Point of Application	प्रयोग बिन्दु
Applied Science	प्रयोजित विज्ञान
Experiment	संपरीक्षा (र)
Experimental	संपरीक्षात्मक

(९) अनिश्चित—यह शब्द दो अर्थों में आ रहा है Indefinite और Undetermined इन दोनों अर्थों में आकाश पाताल का अन्तर है। Indefinite का एक अर्थ तो Infinite है। उस अर्थ से तो हमें यहाँ कोई प्रयोजन नहीं है। इस शब्द का दूसरा अर्थ इस प्रकार का है :—

The meeting is indefinitely postponed.

इस अर्थ में इस शब्द के लिये 'अनिश्चित' पर्याय सर्वथा उपयुक्त है। परन्तु Undetermined form आजकल एक विशेष प्रकार के व्यंजक को कहते हैं। इसका मान अनिश्चित तो होता ही है बिना किसी विशेष क्रिया के निश्चित हो भी नहीं सकता। अतएव Undetermined इस अर्थ में एक पारिभाषिक शब्द हो गया है। यदि इस शब्दावली में कोई परिवर्तन न किया गया तो 'अनिश्चित रूप' से Indefinite Shape का अर्थ भी हो सकेगा, Undetermined form का भी। मैं यहां तत्सम्बन्धी कुछ शब्दों की सूची देता हूँ :—

Indefinite Integral	अनिश्चित अनुकल
Definite Integral	निश्चित अनुकल
Indefinetely increases	अनन्ततः बढ़ता है
Indeterminate	अनिर्णीत
Limits of indetermination	अनिर्णीतता की सीमायें
Undetermined form	अनियत रूप

नागरी प्रचारिणी सभा की वैज्ञानिक शब्दावली में 'अनियत' Arbitrary का पर्याय दिया है परन्तु थोड़े से विचार से स्पष्ट हो जायगा कि Arbitrary के लिये 'अनियत' की अपेक्षा 'स्वेच्छ' अधिक उपयुक्त पर्याय होगा। इसी प्रकार

Take any point at random

का अनुवाद होना चाहिये।

स्वेच्छा से कोई बिन्दु ले लो।

(१०) आधार—इस शब्द के भी कई अर्थ दृष्टिगोचर हो रहे हैं :—

Base of a traingle	त्रिभुज का आधार
Base of a logarithm	लघुगणक का आधार
Basis	आधार

Point of Support   आधार विन्दु

पहिले तीन अर्थों में तो परस्पर भ्रम की कोई आशंका नहीं है। चौथे अर्थ के कारण भ्रम पड़ सकता है। 'आधार विन्दु' का अर्थ Point of Support भी हो सकता है. Point of the base भी। इसके अतिरिक्त मान लो कि कोई प्रश्न इस ढङ्ग का है :—

A triangle is supported at a point of the base aud the point of support is joined to another point of the base.

इस वाक्य के अनुवाद में दोनों रेखांकित वाक्याशों के लिये 'आधार विन्दु' का प्रयोग करना होगा। अतएव मेरी समझ में Snpport के लिये 'आधार के स्थान पर 'आलम्ब' शब्द का प्रयोग होना चाहिये।

(११) फल—इस शब्द का प्रचलित अर्थ Result है जैसा कि इन शब्दों से स्पष्ट है :—

भजनफल, गुणनफल, घनफल

परन्तु नागिरी प्रचारिणी सभा की शब्दावली में Function का पर्याय भी 'फल' ही दिया है। यह कदाचित ध्वनि-साम्य के कारण दिया गया है। यह शब्द तो किसी प्रकार भी इस अर्थ में चल ही नहीं सकता। चलन-कलन में इस ढङ्ग के वाक्य बहुधा आयेंगे :—

The result of differentiating the function is 2x .

इस वाक्य में रेखांकित दोनों शब्दों के लिये 'फल' शब्द का प्रयोग करना पड़ेगा। इसी प्रकार यदि कहीं 'फल का अवकलन करने से' ऐसा वाक्यांश आयेगा तो उसके अर्थ Differentiating the function और Differentiating the result दोनों हो सकेंगे।

बहुत दिनों तक इस समस्या पर विचार करने से मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि Function के लिये 'फलिन' शब्द उपयुक्त होगा। 'फलिन' का अर्थ कोषों में दिया है 'फलने वाला'। इस प्रकार एक विचार से यह अर्थ ठीक बैठ जाता है क्योंकि जब Function पर भिन्न-भिन्न प्रकार की क्रियायें होती हैं तो वह फलती फूलती है। यदि यह शब्द स्वीकार हो जाय तो हमारी तत्सम्बन्धी शब्दावली इस प्रकार की बनेगी :—

Function	फलिन
Functional	फलिन्य
Functionality	फलिन्यता
Funciional dependence	फलिन्य परतन्त्रता
Functionals	फलिनवाद

(१२) गणना—यह शब्द Calculation और Counting दोनों के लिये प्रयुक्त हो रहा है। इन दोनों अर्थों में तो परस्पर भ्रम की आशंका बहुत अधिक है। यदि कोई कहे कि

मैंने गणना कर ली है

तो इसका क्या अर्थ होगा

I have couuted

I have calculated ?

अथवा

Counting के लिये सीधा सादा शब्द 'गिनना' विद्यमान है। इस शब्द के लिये सदैव इसी का प्रयोग किया जाय और गणना शब्द Calculation के लिये छोड़ दिया जाय तो यह कठिनाई दूर हो जाय।

(१३) नियामक—

नियामक	Coordinates
नियामक वृत्त	Director circle

इस शब्द को इन दो अर्थों में लेना आवश्यक है। परवलय की Directrix भी Director circle की ही एक विशिष्ट दशा होती है। सभा* की शब्दावली में Directrix का पर्याय 'नियता' दिया है। अतएव Director circle को हम 'नियती वृत्त' कह सकते हैं। इस प्रकार 'नियामक' केवल Coordinates के लिये रह जाता है।

(१४) कक्षा—इस शब्द के तीन अर्थ देखने में आये हैं।

Class of a curve	वक्र की कक्षा
Orbit	कक्षा
Different order	भिन्न कक्षा

* नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

अब मान लिया कि हमें निम्नलिखित वाक्य का अनुवाद करना है :—

Tne orbit of the planet is a curve of the second class.

तो इसमें दो स्थलों पर दो भिन्न अर्थों में 'कक्षा' का प्रयोग करना होगा। एक बात और भी है। प्राचीन काल से Clas ification को 'वर्गीकरण' कहते चले आये हैं। अतएव Class को वर्ग कहना ही उचित होगा। परन्तु वर्ग के भी दो अर्थ और हैं :—

Square (Geometrical figure) वर्ग
Square (Second power) वर्ग

इन दोनों अर्थों में तो परस्पर भ्रम की आशंका नहीं है परन्तु इन अर्थों और तीसरे अर्थ 'Class' में भ्रम हो सकता है क्योंकि वर्गीकरण का अर्थ Squaring भी हो सकता है, Classification भी। इस कठिनाई को दूर करने के लिये यह अच्छा होगा कि Squaring को वर्गकरण कहा जाय, Classification को 'वर्गीकरण'।

Order के लिये एक और भी शब्द वर्ण भी प्रचलित है जो सर्वथा उपयुक्त है। अतएव ऊपर लिखे शब्दों के पर्याय ये होंगे।

Class of a curve	वक्र का वर्ग
Classification	वर्गीकरण
Squaring	वर्गकरण
Orbit	कक्षा
Different order	भिन्न वर्ण

(१५) गुणक—इस शब्द के दो अर्थ है Multiplier और Coefficient परन्तु इन दोनों अर्थों में में गड़बड़ की संभावना बहुत कम है। इसके अतिरिक्त यह दोनों अर्थ इतने रूढ़ हो गए हैं कि इन्हें बदलना दुस्तर है।

(१६) विनिमय—यह शब्द Barter और Exchange दोनों के अर्थ में आ रहा है। परन्तु Barter के लिए गणित की प्राचीन पुस्तकों में 'भाण्ड प्रति भाण्ड' दिया है। Barter शब्द बहुत कम स्थानों में प्रयुक्त होता है यदि इसके लिये 'भाण्ड प्रति भाण्ड' का प्रयोग किया जाय तो Exchange के लिये 'विनिमय' निर्धारित हो जाता है।

(१७) पूर्ण इसके चार अर्थ हैं :—

पूर्ण भाजक	Complete divisor
पूर्ण तल	Whole surface
पूर्ण डोलन	Total fluctuation
पूर्ण वर्ग	Perfect Sqaure

इनमें के पहिले तीन अर्थों के कारण तो कोई भ्रम नहीं पड़ता परन्तु यदि हम Perfect का पर्याय भी 'पूर्ण' ही चलने दें तो Total Differential और Perfect Differential दोनों का पर्याय एक ही बनेगा पूर्ण अवकल। इसी प्रकार 'पूर्ण संख्या' का अर्थ Whole number भी हो सकेगा, Perfect Number भी। यह वांछनीय नहीं होगा। अतएव Perfect का पर्याय बदलना होगा। यदि इसका पर्याय 'सम्पूर्ण, निर्धारित किया जाय तो तत्सम्बन्धी शब्दों के ये पर्याय होंगे :—

Perfect fluid	सम्पूर्ण तरल
Perfect Differential	सम्पूर्ण अवकल
Total Differential	पूर्ण अवकल
Whole Nnmber	पूर्ण संख्या, पूर्णाङ्क
Perfect Number	सम्पूर्ण संख्या
Totality	सर्वयोग
Complete Integral	पूर्ण अनुकल
Complete Quadrilateal	पूर्ण चतुर्भुज
Complete Primitive	पूर्ण पूर्वज

(१८) विशिष्ट—यह शब्द दो अर्थों में आरहा है :—

विशिष्ट प्रतिज्ञा	Particular enunciation
विशिष्ट संख्या	Concrete Number

इस शब्दावली से Particular Concrete Number का अनुवाद हो ही नहीं सकेगा। अतएव यह उचित होगा कि हम पर्याय इस प्रकार निर्धारित करें :—

Concrete number मूर्त संख्या
Abstract number अमूर्त संख्या

Particular के लिये 'विशिष्टि' का ही प्रयोग किया जाय जो रूढ़ हो चुका है।

(१९) परिणाम—यह शब्द Result और Conclusion दोनों के लिये प्रयुक्त हो रहा है। यदि कहीं इस वाक्य का अनुवाद करना हुआ

The result follows as a conclusion

तो इस कठिनाई में पड़ जायंगे।

परन्तु हमारे पास भी इस ढङ्ग के दो शब्द विद्यमान हैं, 'फल' और 'परिणाम' हम Result के लिये 'फल' और Conclusion के लिये 'परिणाम' निर्धारित कर सकते हैं।

इसी ढङ्ग की गड़बड़ 'अनुमान' शब्द के कारण पड़ी हुई है। तर्क शास्त्र में यह शब्द Inference का पर्याय माना जाता है परन्तु कुछ लोग इसे Guess के अर्थ में प्रयुक्त करते हैं जो अनुचित है। Guess के लिये 'अटकल' का प्रयोग हो सकता है।

(क्रमशः)

रेडियो समाचार-पत्र

(ले०—विद्यासागर विद्यालंकार)

अभी कुछ ही सप्ताह पूर्व प्रसिद्ध अमरीकन समाचार पत्र 'न्यूयार्क नेशन' में एक प्रसिद्ध अमरीकी लेखक ने अपने जाति गत गुण के कारण गप्प मारते हुए लिखा था : 'कुछ ही दिनों में ऐसा युग प्रारम्भ हो जायेगा जब कि समाचार पत्रों के लिये कोई स्थान न होगा। उनके स्थान पर 'रेडियो समाचार पत्र' आ जायेंगे, जिन्हें हमारे घरों में रखे हुए रेडियों सेटों की भाँति के वायु-मुद्रक सेट मुद्रित किया करेंगे। इनकी प्रतिद्वन्द्विता आज का कोई भी समाचार-पत्र नहीं कर सकेगा। वायु-मुद्रक द्वारा तैयार होने वाली प्रतियाँ समाचार पत्रों की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से प्राप्त हो जायेंगी, तथा अधिक सस्ती होगी। पाठक को इस पत्र द्वारा इतनी अधिक सामग्री प्राप्त होगी, जितनी वह पढ़ने में समर्थ भी नहीं हो सकेगा। इस पत्र का व्यय केवल इतना ही होगा कि पाठक को उस सेट में लगाने के लिये कागज खरीदना होगा तथा बिजली का व्यय देना होगा।'

अमरीकन लेखक के इस रहस्योद्घाटन से अमरीकी पत्रकारों में खलबली मच गई। उन लोगों ने सरकार के प्रेस इन्फार्मेशन ब्यूरो से इस सम्बन्ध में पूछ ताछ करके उस के नाक में दम कर दिया। तब अमरीकन सरकार के निर्देश से टैलीविजन क्षेत्र में ख्याति प्राप्त डबल्यू० जी० एच० फिंच ने घोषणा करते हुए कहाः 'वायु-मुद्रक से मुद्रित समाचार-पत्र अन्य समाचार पत्रों के संहारक नहीं अपितु पूरक होंगे। इससे लेखन कला में नयी क्रांति हो जायगी, लेखन कला में नूतन ढङ्ग का प्रवेश होगा, लम्बे-लम्बे प्रतिवृत्त संक्षेप में बुलेटिन रूप में होंगे। इनसे तो संक्षिप्त समाचार प्राप्त होंगे उन्हें विस्तार से पढ़ने के लिये यथा पूर्व समाचार पत्र पढ़ने होंगे।' साथ ही महाशय फिंच ने प्रमुख पत्रकारों को अपने यहाँ निमन्त्रण दिया और अमरीका के प्रसिद्ध पत्रकार महाशय फिंच के यहाँ आश्चर्ययुक्त प्रसन्नता के साथ इकट्ठे हुए।

महाशय फिंच के घर पर तमाशा

इन नियमित पत्रकार अतिथियों ने जब फिंच के घर में प्रवेश किया तो उन लोगों ने देखा कि अतिथि ग्रह के प्रमुख स्थान पर एक अति सामान्य तिपाई पर एक रेडियो सेट रखा हुआ है जिसमें से एक सीटी की सी ध्वनि आ रही है। सब अतिथियों के यथा स्थान बैठते ही मि० फिंच ने एक उपकरण अपने हाथ में लिया और दर्शकों की ओर एक बार दृष्टिपात करके तिपाई पर रखे रेडियो सेट में उसे वहाँ फिट कर दिया, जहाँ से सीटी की ध्वनि आ रही थी। इस उपकरण का नाम जिसे रेडियो सेट पर लगाया गया था—दर्शकों को **टेली फेक्स**

बताया गया। एक बटन दबाते ही रेडियो सेट में से सिर निकलता हुआ एक कागज निकाला जिस पर अंग्रेजी में लिखा हुआ था AIR PRESS। ज्यों-ज्यों कागज की वह शीट ऊपर आने लगी, त्यों-त्यों संक्षिप्त समाचार चित्रों सहित ऊपर आते गये। केवल चित्र और समाचार ही उसमें न थे, विज्ञापनों ने भी स्थान पाया हुआ था।

दर्शकों के चेहरे दर्शनीय हो रहे थे। 'वाशिंगटन पोस्ट' के मालिक के माथे पर पसीने की बूँदें चमक उठीं। न्यूयार्क हेराल्ड के प्रधान सम्पादक अपनी कुर्सी पर शान्ति से बैठे न रह सके, उद्विग्नता और आश्चर्य के साथ रेडियो सेट की ओर बढ़ चले। मि० हर्स्ट जो कि अमरीका के सबसे बड़े पत्रकार पूँजीपति हैं—एकदम चिल्लाए 'मि० फिंच, मुँह माँगा दूँगा, मेरा इस पर एकाधिकार होगा!' मि० हर्स्ट की इस चिल्लाहट पर अच्छा मनोरञ्जन रहा। अब तो न्यूयार्क टाइम्स, स्पोकसमैन रिव्यू (वाशिङ्गटन), पोस्ट डिस्पैच आदि पत्रों के सम्पादक भी उछल-कूद मचाने से नहीं चूके।

इस यन्त्र की कार्य-पद्धति

इन पत्रकारों के कौतूहल को शान्त करने के उद्देश्य से पहले ही एक छोटे से व्याख्यान का आयोजन कर रखा गया था। पत्रकारों के यथा स्थान बैठते ही उन्होंने इसकी कार्य प्रणाली पर बोलते हुए मि० फिंच ने कहा।

"इन रेडियो सेटों के लिये नियमित ब्राडकास्टिंग का उसी प्रकार प्रबन्ध करना होगा जिस प्रकार सामान्य रेडियो सेटों के लिये किया जाता है। इसी प्रकार के एक छोटे से स्टेशन का प्रबन्ध न्यूयार्क के मैनहट्टन के निकट किया गया है। इस स्टेशन पर मेरा ही अधिकार है।

अब, आप लोग स्वभावतः यह जानना चाहेंगे कि यह कार्य कैसे करता है। संक्षेप में, छपे हुए टाइप किये हुए अथवा हस्त लिखित कागज ट्रान्समीटर की मैशीन में रख दिये जाते हैं। इन कागजों पर तालों (लैन्स) की सहायता से प्रकाश फेंका जाता है, इससे कागज पर लिखे अक्षरों अथवा चित्रों और रिक्त स्थान से प्रकाश और छाया उत्पन्न होता है और उन्हें यन्त्रों की सहायता से परावर्त्तित किया जाता है अर्थात् उन्हें दूर-दूर फेंका जाता है। इसी परावर्त्तित प्रकाश के आघातों (चोट) की सहायता से एक फोटो इलैक्ट्रिक सैल विद्युत्धारा की मात्रा को नियंत्रित करके एक कोमल सीटी जैसी ध्वनि पैदा करना है। यदि इस ध्वनि को सामान्य ब्राडकास्टिंग एम्पलीफायर के साथ जोड़ दिया जाय और रेडियो ट्रांसमीटर द्वारा प्रसारित किया जाय तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह ध्वनि रेडियो स्टेशन के माइक्रोफोन स्टूडियो से आ रही है।

हमारे घर में रखा हुआ रेडियो सैट ध्वनि रूप में आने वाले संकेतों को पकड़ता रहता है, उन्हें पकड़ कर टैलीफैक्स को देता रहता है। इस सैट में में लगे हुए उपकरण आने वाले समाचारों, चित्रों, विज्ञापनों को कागज की रोल पर छापते चले जाते हैं। आप अपने बिस्तरे पर जाने से पहले अपने सैट का बटन खोल दीजिये और निश्चिन्त होकर सो जाइये। रात भर सैट अपना काम करता रहेगा; आप प्रातः उठकर अपने लिये रेडियो समाचार पत्र तैयार पायेंगे। आपको यह जान कर कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिये कि थोड़ी दूरी के स्थानों पर हमें शत प्रतिशत सफलता प्राप्त हुई है। हम आशा करते हैं कि थोड़े ही दिनों में हजारों मील की दूरी पर होते हुए भी एक छोटे से सैट की सहायता से विश्व के प्रत्येक महत्वपूर्ण समाचार से हम परिचित होंगे।"

ब्रिटेन भी इस प्रतियोगिता में

केवल अमरीका ही क्षेत्र में आगे नहीं बढ़ रहा है; अपितु ब्रिटेन के वैज्ञानिक भी इस दिशा में अत्यधिक प्रयत्नशील हैं। स्वर्गीय जान एल० बेयर्ड जिन्होंने टेलिविजन में रङ्गीन चित्र प्रेषित करने के लिये बहुत प्रयत्न किये हैं—इस दिशा में भी कार्य

कर रहे थे, उनकी मृत्यु से ब्रिटेन के इस अनुसंधान क्षेत्र में ब्रेक नहीं लगी। बेअर्ड महोदय के कार्यों का विवरण 'केबल एण्ड वायरलैस' के वैज्ञानिकों के पास सुरक्षित हैं। यह आशा की जा रही है कि ब्रिटेन के वैज्ञानिक बहुत शीघ्र इस मैदान में प्रतियोगिता के लिये आ उपस्थित होंगे।

क्या इसका नियन्त्रण सरकार करेगी ?

यह कहा जा रहा है क्योंकि इसका उपयोग सरकारी कार्यों में बहुत अधिक होगा इसलिये इस पर सरकार को नियन्त्रण कर लेना चाहिये। उदाहरण के लिये इसका प्रयोग पुलिस की कारों, ट्रेनों, वायुयानों और जलयानों में किया जायेगा। इस प्रकार यात्रा करने वाली सेनाओं, अपराधियों के समाचार, फोटो, अशुद्धियों की छाप आदि सुविधा पूर्वक भेजी जा सकेंगी। आदेश आदि देने में भी सुविधा हो जायेगी।

यदि उपयुक्त कारणों से अथवा किन्हीं अन्य प्रयोजनों से सरकार रेडियो समाचार पत्रों का नियंत्रण करती है अथवा भारतीय ब्राडकास्टिंग पद्धति के समान केवल सरकार द्वारा ही इससे समाचार भेजे जाते हैं तो 'स्वतंत्र प्रेस' के लिये वस्तुतः ही एक संकट उत्पन्न हो जायेगा। तो क्या पत्रकार इसे सहन कर सकेंगे ?

कुछ भी हो इस नूतन आविष्कार से थोड़े दिनों में ही पत्रकार कला, सम्पादन कला, लेखनकला आदि पत्रों से सम्बद्ध क्षेत्रों में एक नूतन क्रान्ति हो जायेगी।

नए काग़ज़ के नए उपयोग

(लेखक—श्री कपिल भार्गव, बी० एस० सी०)

सन् १९४३ की जुलाई में अमेरिका में एक फौजी पड़ाव (कैंप) को एक नए प्रकार के कागज पर बना हुआ एक नक्शा दिया गया और उनसे पूछा गया कि यह नक्शा किस हद तक बुरी तरह प्रयुक्त हो सकता है जिसके बाद भी यह काम लायक हो।

एक सप्ताह के बाद उन्होंने कहा कि इस नक्शे को (१) २० बार पानी में भिगो कर जोर से निचोड़ा गया (२) बहुत बार खोला और मोड़ा गया हर बार बन्दूक के कुन्दों से पीटा गया। (३) इसमें तेल लगा दिया गया (४) पेट्रोल में भिगोया गया (५) कीचड़ में डाल कर कुचला गया (६) साबुन के पानी में उबाल कर ब्रुश से रगड़ा गया (७) जमीन पर जड़ दिया गया जहाँ से पूरी फौज ने उस पर मार्च किया (८) उसके ऊपर से टैंक चला दिया गया।

उन्होंने साथ-साथ यह भी कहा कि 'इस सबसे उसमें कोई विशेष अंतर नहीं हुआ।'

यह तो इस कागज और फौज की मुलाकात थी। इस कागज को इस दशा में पहुँचाने का श्रेय अमेरिका की एस० डी० वारेन कम्पनी को है। देखने में यह साधारण कागज की तरह है पर इसके रेशे थोड़े से 'प्लास्टिक' द्वारा मजबूती से जुड़े रहते हैं। बहुत सी कागज की प्रतिदिन काम में आने वाली वस्तुएँ इसी कागज से बनाई जा रही हैं। इन चीजों में आश्चर्यजनक सहनशक्ति होती है। अब दीवारों और अलमारियों में आप ऐसा कागज लगा सकते हैं जो वास्तव में धोया जा सके। संभवतः इस कागज की चद्दरें कंबल बरसाती इत्यादि भी जल्दी ही बिकने लगें।

इस महायुद्ध में सेना ने ४००,०००,००० नक्शे, जो इसी कागज पर बने हुए थे, काम में लाए। दक्षिण पैसिफिक में यह नक्शे अमूल्य थे, क्योंकि साधारण नक्शे कुछ ही घंटों में गल जाते थे।

युद्ध के अंत से पहले ही समुद्री बेड़े व सेना

की प्रत्येक कागज की वस्तु जो भीग सकती थी, इसी कागज की बनने लगी थी। कभी इसके बने थैलों में खाने-पीने की वस्तुएँ रख कर पानी में तैरा दी जाती थीं। कभी यह थैले खुले मैदान में महीनों तक पड़े रहते थे। इन सब से कुछ भी नुकसान नहीं होता था।

अब चाय के पैकिट, जो खौलते पानी में भी बंद रहेंगे इसी कागज के बनते हैं। ताजे फल व गीली तरकारियाँ इस कागज के थैलों में मजे में रखी जा सकती हैं।

दो तरह के 'प्लास्टिक राजन' जो टौर्चों के काले केस में और बोतलों के डाट में भी होते हैं, वही साधारण कागज में मिला देने से वह इस आश्चर्य-जनक शक्ति को प्राप्त कर लेता है। दोनों में से कोई भी राजन को कागज की लुब्दी में सीधे ही मिलाया जा सकता है। उसके पश्चात् कागज साधारण तौर से बना लिया जाता है। इस राजन के महीन कण, जो पानी में नहीं घुलते, कागज के रेशों को खूब जकड़ कर बाँध देते हैं। अब भीगने से यह रेशे अलग नहीं हो सकते।

यह कागज ऐसा नहीं है कि 'प्लास्टिक' बरसाती की तरह गीला ही न हो। साधारण कागज की तरह यह भी पानी सोख सकता है पर गीला होने पर भी यह फाड़ा नहीं जा सकता। इस कागज को मोम इत्यादि से ऐसा भी बनाया जा सकता है कि यह गीला भी न हो। एक इसी कागज के थैले में, जो कई तह का था और 'अलकतरे' से पानी न सोखने वाला बना दिया गया था, २५ सेर आटा भरा गया। तब इसे अमेरिका के प्रसिद्ध जल-प्रपात न्यागरा में डाल दिया गया। ऊपर से गिरने के पश्चात् ७२ घंटे तक यह चट्टानों से टकराता रहा। जब इसे निकाला गया तो यह अच्छी दशा में था और आटा बिल्कुल सूखा था।

नए बनाए हुए 'राजनों' के डालने से इस कागज में असीम शक्ति आ जाती है। वह लुब्दी जिसके रेशे बहुत लम्बे होते हैं काफी मजबूत कागज बना सकती है। पर राजन के प्रयोग से साधारण लुब्दी का कागज और भी मजबूत बनाया जा सकता है। इस तरह लम्बे रेशे वाली लकड़ी के स्थान पर साधारण लकड़ी काम में लाई जा सकती है क्योंकि लम्बे रेशे की लकड़ी अधिक कठिनाई से और मँहगी मिलती है।

इस कागज का दाम साधारण कागज से अधिक नहीं होना चाहिए। इसमें अधिक शक्ति होने के कारण यह साधारण कागज से अधिक दिन तक चलेगा। इस कागज का भूरा दूकानी थैला भी अब बनाया जा रहा है। यह कागज गृहस्थी में बहुत उपयुक्त सिद्ध होगा

कागज की कमी होने के कारण इसको पूरी तरह उपयोग में लाया नहीं गया। अब संभवतः इसकी पानी से बचने की टोपी भी मिलेगी जिसे पानी रुकते ही आप फेंक सकते हैं। सेनानी अफ़सरों ने इन टोपियों को फ्राँस में काम में लिया था।

एक सामान बनाने वाले ने इस कागज का एक कंबल बनाने का तरीका निकाला है। यह कंबल अत्यधिक सस्ता और उपयोगी होगा। इसके साथ चद्दरें, मजबूत, न भीगने वाली, और आग में न जलने वाली बनेगी। यह चद्दरें बारह घंटे तक पानी में भीगने के बाद भी काम लायक रहेंगी। पिकनिक और कैंप इत्यादि के लिए ये दोनों चीजें बहुत उप-युक्त होंगी।

इस कागज का सबसे आश्चर्यजनक उपयोग मकान बनाने का है। ऐपिल्टन की कागज के बारे में अनुसंधान करने वाली प्रयोगशाला में एक मकान केवल इसी कागज का बना हुआ है। एक आठ फिट चौड़े और सोलह फिट लम्बे कमरे का दाम २००) इस समय होता है। इसकी एक इंच मोटी दीवारें इतनी मजबूत होती हैं कि कोई सहायक ढाँचे की आवश्यकता नहीं होती। यह मकान दो साल पहले बनाया गया था। उस समय इसका दाम भी अधिक

था क्योंकि बनाने का तरीका इतना उन्नत नहीं था। पर दो साल के बाद भी यह मकान विसकौन्सिन की जलवायु में खड़ा है।

आशा है कि पिकनिक और शिकार वालों के लिए भी ऐसे मकान बनाए जा सकेंगे। ऐपिल्टन का यह मकान कागज़ के सबसे आश्चर्यजनक उपयोग का प्रतीक है। अब मनुष्य की सबसे सस्ती वस्तु बड़े-बड़े नए कामों में प्रयुक्त हो सकेगी।

दियासलाई की उत्पत्ति के आधुनिक साधन

लेखक—गिरजाशंकर मिश्रा, एम० एस० सी० (प्रीवियस)

संक्षिप्त इतिहास

अग्नि और उसकी उपासना के सम्बन्ध में हम अब भी अपने प्राचीन इतिहास की पुस्तकों में और अधिक पुराने आर्य ग्रन्थों में जैसे वेद, पुराण आदि में उनका उल्लेख पाते हैं। यह ग्रन्थ उस समय लिखे गये थे जब कि भारतीय संस्कृति का सारे संसार में बोलबाला था और उस समय की अन्य जातियाँ नग्न रह कर केवल जंगलों में रहा करती थीं और उनकी भाषा और संस्कृति का कोई रूप न था।

अग्नि को वेदों के समय में 'अग्नि देव' के नाम से पुकारा जाता था क्योंकि उस समय अग्नि को ही एक देवता समझते थे। वे अग्नि को दो पत्थरों को रगड़ कर उत्पन्न करते थे, अगर परस्पर रगड़ने वाले पत्थरों में किसी एक में लोहा न हुआ तो चिनगारियाँ उत्पन्न नहीं होती थी। इस विचार से अग्नि की भी गणना आर्य लोग देवता के रूप में करते थे। कुछ भी हो अग्नि को पहले प्राचीन आर्य निवासियों ने ही समझा था। अन्य जातियाँ लकड़ी के रगड़ से अग्नि उत्पन्न करती थीं। उनको अग्नि के सम्बन्ध में कोई बोध न था।

पाषाणकाल में पत्थरों से ही रगड़कर अग्नि उत्पन्न की जाती थी और चिनगारियाँ जो पत्थरों के रगड़ से उत्पन्न होती थीं उनको किसी खड़-पतवार (tinder) में लगा लेते थे इस प्रकार उस अग्नि की कुछ लपटें लेकर सांसारिक जीवन के भोज्य पदार्थों के बनाने में प्रयोग करते थे। शनैः शनैः इसके सम्बन्ध में लोगों ने अधिक जानकारी प्राप्त करने की चेष्टा करते रहे।

पत्थर और लोहे के बीच में लोगों नेगन्धक से एक ढंकी हुई तीली का लाना प्रारम्भ किया जिसको अंग्रेजी में (Spunk) कहते हैं। चिनगारियों और लपटों के कारण तीलियों के सिरे जो कि गन्धक से मढ़े रहते थे जलने लगते थे। और कभी-कभी तीलियाँ अधिक प्रज्वलित होने लगती थीं।

१६७३ में प्रोफेसर 'ब्रैन्ड आफ हैम्बर्ग' ने फासफोरस नाम के एक तत्व का अनुसंधान किया और उसको अग्नि के लिये प्रयोग करना चाहा पर फासफोरस अधिक विषैला और जलनशील होने के कारण उसका प्रयोग अधिकांश लोगों ने कम किया। इस प्रकार हैम्बर्ग को किसी प्रकार की कोई सफलता प्राप्त न हुई। 'हैम्बर्ग' और 'हेरेस' ने शहद, आँटा और फिटकिरी को मिला कर एक नई वस्तु बनाया जिसको अंग्रेजी में 'पाइरोफोरिया' कहते हैं। परन्तु इन दो वैज्ञानियों को भी इस सम्बन्ध में कोई सफलता प्राप्त न हुई।

पेरिस के एक वैज्ञानिक चैन्सेल ने एक नई वस्तु का अनुसन्धान किया जिसको अंग्रेजी में आक्सी-म्यूरियेड कहते हैं। उसको लुगदी की तरह बनाकर तीलियों के सिरे के ऊपर लगा देते थे। 'पोटैशियम कुलरेट' चीनी और गोंद (gum) से लुगदी बनाया था और उस लुगदी से मढी हुई तीली को गन्धक के तेजाब के पास ले जाने से अग्नि पैदा किया था। १८२७ में वाकर आफ स्टाकहम' में तीली के सिरे को 'एन्टीमनी सल्फाइड' पोटैशियम कुलरैट और गोंद की लुगदी बनाकर टीन के पीपों में पतले शीशे के कागजों के साथ अग्नि पैदा करने के लिये विदेश

भेजना शुरू किया और उन सलाइयों का नाम 'फ्रिकशन लाइट' रक्खा।

कुछ दिन पश्चात सलाइयों के सिरे के लिये ५० फी सदी फासफोरस और ५० फी सदी पोटैशियम क्लोराइड की लुगदी का प्रयोग किया गया। फास-फोरस के प्रयोग से अनेक प्रकार की बीमारियों ने कारीगरों को प्रमित किया। जबड़ों का दर्द हड्डियों और पंजड़ों में दर्द यह कारीगरों को काफी कष्टदायक होती थी। साथ ही साथ दाँत भी खराब होने लगते थे। इन कठिनाइयों को मिटाने के लिये कारखानों ने अधिक प्रयत्न किये। बहुधा कारखानों की तरफ से अस्पताल भी खोले गये जो कि दाँतों का अधिक ध्यान रखते थे।

शुद्धहवा तारपीन के तेल से मिश्रित कारखानों में स्वास्थ्य के लिये प्रयोग की गई। थोरप और टटन ने यह बताया कि फासफोरस ट्राईआक्साइड जो एक गैस के रूप में होती है दाँतों और हड्डियों पर असर करके बड़ा प्रचन्ड दर्द उत्पन्न करती है। जो कि दाँतों के लिये अत्यन्त हानिकारक सिद्ध हुई।

डेनमार्क और स्वीजर लैन्ड इन दो देशों में १८७५ वा १८७६ ई० में पीला फासफोरस का प्रयोग पूर्णतः बन्द कर दिया और डेनमार्क ने केवल स्वीडिश दियासलाइयों को अपने देश से आने दिया जिनको कि 'सुरक्षित दियासलाइयाँ' कहते थे। १८४३ ई० में 'स्कोटा' ने लाल फासफोरस का अनु-सन्धान किया और पेशाच ने उसको भूल से फास-फोरस का आक्साइड समझा था। इस अनुसन्धान के पश्चात जर्मनी और इंग्लैन्ड वगैरह ने लाल फास-फोरस का प्रयोग करना शुरू किया परन्तु कुछ दिन पश्चात लाल फासफोरस और पोटैशियम कुलरैड के प्रयोग से भी हानिकारक असर हुये।

१८५५ में लान्ड स्ट्राम ने स्वेडेन में दियासलाई के तीलियों के लिये एक नई लुगदी तैयार की और उसको रगड़ने के लिये लाल फासफोरस की एक लेप दियासलाई के बक्स के अगल-बगल पर लगाई। तीलियों को लाल फासफोरस के लेप पर रगड़ने से अग्नि उत्पन्न की गई इसके पश्चात अन्य देश के वैज्ञानिकों ने अमुक स्थान पर रगड़ने वाली दियासलाइयों का आविष्कार किया। 'होकाररर' ने विषैली वस्तुओं को जैसे पीला फासफोरस वगैरह का प्रयोग करना बन्द कर दिया। उन्होंने उन्होंने तीलियों के लिये 'पोटैशियम कुलरेड', 'पोटै-शियम डाइकोमेड' और एन्टीमनी सल्फाइड से लुगदी तैयार की। १८९८ ई० में "केहन" ने टेटरा फासफोरस ट्राईसल्फाइड की लुगदी तीलियों के सिरों के लिये बनाई क्योंकि यह वस्तुयें अत्यन्त विषैली न थीं। १९०२ और १९३३ के मध्य में तीलियों के सिरे के लिये 'थायो सल्फेट' और 'थायो साइनेड' का प्रयोग किया गया, पर कोई अधिक महत्वपूर्ण सफलता नहीं प्राप्त हुई।

दियासलाई के तीलियों के लिये अंग्रेजी में Straw, Cotton, linen, Pipe Clay वगैरह प्रयोग किया परन्तु लकड़ी की तीलियाँ ही अधिक लाभप्रद सिद्ध हुई।

दियासलाई के उत्पत्ति के आधुनिक साधन

अनुव्रत-उत्पादन यंत्र (automatic machinery) के द्वारा दियासलाई के उत्पत्ति के साधन अत्यन्त सरल हो गये हैं। दियासलाई के उत्पादन में—'अनुव्रत उत्पादन यंत्र' ने काफी हाथ बटाया है दियासलाइयों की बहुतायत संख्या में उत्पत्ति और कम श्रम का मुख्य कारण यही यन्त्र है। अनुव्रत उत्पादन यंत्र के प्रयोग से दियासलाई के कारीगरों का स्वास्थ्य को अधिक सुधार दिया है। दियासलाई के उत्पादन को हम निम्नलिखित धाराओं पर विचार कर सकते हैं।

(१) सुरक्षित दियासलाइयाँ (Safety matches)।

(क) या तीलियों की लकड़ी का प्रयोग (ख) दिया-सलाई का बक्स (ग) तीलियाँ (घ) तीलियों को बनाना और बक्स में भरकर भेजना।

(२) अमुक स्थान पर रगड़ने वाली दियासलाइयाँ।

(३) वैक्समैचेज।

(४) अन्य प्रकार की दियासलाइयाँ।

(१) सुरक्षित दियासलाइयाँ

(Safety matches)

(क) तीलियों की लकड़ी का प्रयोगः—दियासलाई के तीलियों के लिये अनेक प्रकार की लकड़ियों का प्रयोग किया गया है, जैसे पापलर, बीचउड, अल्डर, स्पन और पापलर लकड़ियाँ रूस और फिनलैण्ड के जंगलों से दियासलाई के कारखानों में प्रयोग करने के लिये आती हैं शहतीर की लकड़ियाँ भारतवर्ष में दियासलाई बनाने के काम में लाई जाती हैं। दियासलाई के मुख्य कारखाने भारतवर्ष में बरेली, देहरादून और दार्जिलिंग में है।

(ख) दियासलाई के बक्सों का बनाना—दियासलाई के बक्सों और तीलियाँ बड़ी-बड़ी लकड़ियों को काट कर बनाते हैं। उसको इस प्रकार काटते हैं कि जिससे लकड़ी अधिक नष्ट न हो। उसकी छाल 'सर्कलर रोटेटिंग डिस्क' द्वारा जिनमें कि तेज चाकू लगे रहते हैं, उनसे छाल को निकालते जाते हैं। फिर लकड़ी को हारिजैन्टल प्लैनिंग नाइफ' से काटते हैं। दियासलाई के बक्स लकड़ी के अधिक दबाने से बनते हैं। चाकू द्वारा बक्सों के किनारे को रगड़ कर ठीक करते हैं। 'Chopper' के द्वारा बक्सों की चौड़ाई को बराबर करते हैं और इस प्रकार लकड़ी का आकार एक दियासलाई के रूप में हो जाता है। उसके पश्चात् उन बक्सों की लकड़ियों को दियासलाई बनाने वाले विभाग में भेजते हैं।

दियासलाई के ऊपर छपे हुये लेबुल भी मशीनों द्वारा छपते और लगते हैं। उनके लिये उसी इमारत में मुद्रण यन्त्र का भी विभाग होता है। लाखों की संख्या में ये लेबुल छपते और लगते हैं। कागज की रील को प्रिंटिंग रोलर के ऊपर से भेजते हैं जिसमें कि कागज के ऊपर भिन्न प्रकार के रंगों वा छपाई का समावेश हो जाय। कागज के रील की चौड़ाई का मशीन के कारीगर अधिक ख्याल करते हैं अगर अधिक चौड़ी हुई तो दियासलाई के ऊपर चिपकाने में कठिनाई पड़ती है। कागज की रील को लेबिल बनाने के लिये उसको तीन भागों में काटते हैं। इस प्रकार का कार्य "Guilloine knioves" द्वारा किया जाता है। मशीन से दियासलाई के बक्स बनाने का हाल भिन्न कम्पनियों के ऊपर निर्भर रहता है। दियासलाई के बक्स बनाने वाले टुकड़ों को हायर मशीन में लगा देते हैं। छपे हुये लेबिल भी दूसरे 'हायर' यन्त्र में लगा दिये जाते हैं। तीसरे 'हायर' यन्त्र में केवल गोंद या पलश्तर का लेप कर देते हैं। पलश्तर के बक्स के नीचे एक ऐसा यन्त्र होता है जो कि आवश्यकता के अनुसार पलश्तर खींचता रहता है। मशीन का चक्र जब घूमता है तो बक्स वाले टुकड़े जो पहले 'हायर' में लगे हुये होते हैं चल कर लेबिल के लगे हुये हायर यन्त्र से मिलते हैं और पलश्तर भी "हायर यन्त्र" से लेबिलों को चपकाने के लिये लिया जाता है। इसके पश्चात् यन्त्रों द्वारा लेबिलों को लपेट देते हैं और लकड़ी को एक दियासलाई का रूप दे देते हैं। इन दियासलाई के बक्सों के टुकड़ों को फिर मशीनों से बाहर निकाल लेते हैं तब उनको लोहे की जालियों पर सुखाया जाता है और अधिक सुखाने के लिये Exhaust fan भी ऊपर लगाये जाते हैं। इस तरह से हर एक दियासलाई के बक्स को बार-बार सुखाते हैं क्योंकि व्योपार में एक दूसरे से न मिल जांय। दियासलाई के नीचे का भाग भी मशीनों द्वारा बनाया जाता है और हायर द्वारा पलश्तर और फिर उसमें कागज के रिम से कागज लगता है। फिर उनको ऊपर बताये हुये ढङ्ग से सुखाया जाता है।

(ग) दियासलाइयों की तीलियों का बनाना

लकड़ी के ढेर को मशीनों द्वारा छोटे टुकड़ों में जैसा ऊपर बताया गया है छाल निकाल कर

तीलियों के रूप में बनाया जाता है। सम्पूर्ण कार्य मशीनों से किया जाता है फिर उसको चापिंग मशीन में भेजा जाता है। उसमें वह अधिक बोझ से दब जाता है जिससे कि उसके सब गांठ आपस में मिलजाते हैं तब उसके ऊपर Guillotine knife से काट कर महीन और सुन्दर तीलियाँ तीलियों के रूप में बना लेते हैं फिर मशीन द्वारा यह तीलियां "अमोनिया फासफेट" के घोल में छोड़ दी जाती है इस घोल में छोड़ने का तात्पर्य यह है कि तीलियों के बुझ जाने के बाद फिर न जलती रहे। इसके पश्चात् तीलियों को 'गर्मबाश' के चैम्बर में सुखाया जाता है। फिर तीलियों को एक लम्बे धातु के ड्रम में ले जाते हैं और उस ड्रम को घुमाया जाता है जिससे कि तीलियाँ एक ही तरह की हो जाय और खुदरापन जाता रहे।

दियासलाई का बन्डल बनाना और बाहर भेजना

(घ) अनुव्रत उत्पादक यन्त्र (automatic machine) द्वारा ही दियासलाई अधिकांश संख्या में तैयार की जाती हैं। तीलियों के सिरों पर मसाला लगाना भी मशीनों द्वारा किया जाता है। तीलियों हापर यंत्र में लगा दी जाती हैं और उनके सिरे मशीन के छिद्रों द्वारा एक घोल में छोड़ दिये जाते हैं जिसका कि घोल पोटैशम कुलरेड लेडाक्साइड और पोटैशियम ड्राइक्रोमेड का होता है। तीलियों के सिरों का घोल भिन्न प्रांतों में भिन्न है और इसका अनुमान लगाना अत्यन्त कठिन है कि किस देश में किस प्रकार का घोल प्रयोग में लाया जाता है क्योंकि यह छिपे हुये व्यापार के हथकन्डे हैं। इस घोल से लगी हुई तीलियाँ 'ड्राई ओवीन' में सुखाई जाती है और फिर इनको मशीन द्वारा दियासलाई के डिब्बों में भर दी जाती हैं। प्राचीन समय में स्वेडन वगैरह में तीलियाँ हाथों से, भेजने वाले डिब्बों में रक्खी जाती थीं और यह कार्य स्त्रियाँ बड़े रूचि से करती थीं पर यंत्रों के आविष्कार से इस कार्य में काफी धक्का पहुँचा है।

भारतवर्ष में दियासलाइयों के कारखाने बहुत ही न्यून संख्या में हैं। इसकी उत्पादन संख्या तो अत्यन्त ही न्यून है पर इसका भविष्य बड़ा उज्वल है क्योंकि दियासलाई के लिये शहतीर वगैरह की लकड़ी बड़ी सुगमता से मिल जाती है। भारतवर्ष में दियासलाई के कारखाने दार्जिलिङ्ग, देहरादून और बरेली में हैं।

मिट्टी द्वारा नाइट्रोजन निग्रहण और भूमि में नाइट्रोजन की उत्पत्ति

(मूल लेखक—डाकटर नील रत्नधर; अनुवादक—श्री रमेश चन्द्र कपूर)

यदि वनस्पति का विश्लेषण किया जाय तो कार्बन, नाइट्रोजन, आक्सीजन प्रधानतः मिलेंगे। यद्यपि नाइट्रोजन की मात्रा अधिक नहीं होती, पर वह वनस्पति का प्राण है, हम यह कह सकते हैं। वनस्पति के लिये नाइट्रोजन अत्यावश्यक है। जिस भूमि में नाइट्रोजन के सर्वदा अभाव से ही भूमि ऊसर हो जाती है। पर नाइट्रोजन सम्पन्न यौगिकों को मिला देने से भूमि पर हरियाली छा जाती है।

पर क्या वनस्पति को नाइट्रोजन भूमि से मिलती है? आधुनिक अनुसन्धानों ने यद्यपि अब इसको निश्चयात्मक रूप से सिद्ध कर दिया है कि भूमि ही वनस्पति को नाइट्रोजन देती है, पर यह हमारे प्राचीन वैज्ञानिकों के लिये, यहाँ तक कि गत शताब्दि के मध्य तक, एक समस्या ही थी। लीबिग जैसा रासायनज्ञ भी नाइट्रोजन की आवश्यकता को नहीं समझ पाया। उसकी सम्मति में

पौदा जिस प्रकार कार्बोनिक एसिड वायु से स्वयं ले लेता है, नाइट्रोजन भी उसी प्रकार अमोनिया के रूप में उसे प्राप्त होती है। उसके विचार से एक पौदे के लिये क्षार, फासफेट, सल्फेट ही आवश्यक थे।

पिछली शताब्दी के मध्य से वैज्ञानिकों को यह मालूम हुआ कि मिट्टी में कुछ जीवाणु नाइट्रोजन निग्रहण में भाग लेते हैं। प्रथम बार सन १८६२ में "जोडिन" ने कुछ जीवाणु केवल वायु मण्डल से नाइट्रोजन निग्रहण करते हुए प्रदर्शित किये। "बर्थेला" ने १८८५ में कहा कि उसने साधारण मिट्टी में नाइट्रोजन की मात्रा को बढ़ते पाया परन्तु जीवाणु रहित (Sterile) मिट्टी में नहीं पाया। "हेलरीगल" और "विलफार्थ" ने अपने अनुसंधान में कुछ विशेष जीवाणु पाये जिन्हें "नोड्ल" (Nodule) कहते हैं। वे लेग्यूमिनस (leguminous) पौदों की जड़ों में थे और उनके सहयोग में नाइट्रोजन निग्रहण करते थे।

इन अनुसंधानों के पश्चात् अन्य प्रमाण मिले जिनसे यह सिद्ध हुआ कि मिट्टी में नाइट्रोजन निग्रहण जीवाणुओं द्वारा होता है। १८९३ में "विनोग्रेडस्की" ने एस जीवाणु खोज निकाले जो कि वायु के अभाव में भी जीवित रह सकते थे (क्लास्ट्रीडियम पेस्टोरिएनियम)। वे मिट्टी के तह में नाइट्रोजन निग्रहण करते थे।

इससे भी अधिक महत्व का अनुसंधान "अजटोबेक्टर क्रोकोनम" और "अजटोबेक्टर एजिलिस" नामक नाइट्रोजन जीवाणुओं का हुआ जिसे "बिजेरनिक" ने १९०१ में किया। यह जीवाणु मिट्टी और नहर के पानी से अलग किये गये और वायु से नाइट्रोजन निग्रहण करने योग्य पाये गये।

कुछ वैज्ञानिक इस निश्चय पर आये हैं कि नाइट्रोजन निग्रहण जीवाणुओं द्वारा होता है। परन्तु उन्हें वायु द्वारा नाइट्रोजन निग्रहण (जैसा अजटोबेक्टर करते हैं) नाम मात्र को ही मिला। निम्न लिखित लेख द्वारा यह प्रतीत होता है।

"(Humid) नम जलवायु के प्रदेशों में अनुसंधान करने में एक विशेष कठिनाई यह है कि मिट्टी में नाइट्रोजन स्वयम् इतनी अधिक मात्रा में होती है कि अन्तर से निग्रहण की हुई मात्रा का ज्ञान असंभव ही है। ऐसी मिट्टी में अनुसंधान सरल होगा कि जिसमें नाइट्रोजन की मात्रा पहले ही से कम हो जैसा कि उष्ण और हवादार प्रदेशों में है। हम यह तभी सिद्ध कर सकते हैं जब कि यह प्रदर्शित सम्भव हो कि नाइट्रोजन निग्रहण केवल अजटोबेक्टर द्वारा ही हुआ हो अन्य किसी प्रकार नहीं"। (Russell "Soil Conditions and plant growth" 1932 Ed. p- 342)

"नाइट्रोजन जीवाणु द्वारा कितनी नाइट्रोजन निग्रह की गई है, इसके स्पष्ट प्रमाण मिलना कुछ कठिन ही है। जहाँ कहीं भी नम जलवायु में नाइट्रोजन निग्रहण प्रदर्शित किया गया है वहाँ पर पर लेग्यूमिनस (leguminous) पौदे भी पाये गये हैं, जिनके द्वारा भी निग्रहण सम्भव है"। (Russell Soil Conditions and plant growth" 1932 Ed. p. 389)

कई वर्षों से हम इस विषय पर अनुसंधान कर रहे हैं और हमने सिद्ध कर दिया है कि मिट्टी में नाइट्रोजन निग्रहण शक्तिवर्धक वस्तुओं के डालने से होता है। उदाहरण के लिये हम कार्बोहाइड्रेट, ग्लीसरीन, काष्ठिक (cellulose), गोबर, पेन्टोजन, चर्बी, पत्तियाँ, फूस इत्यादि ले सकते हैं।

हमने यह भी पाया है कि प्रकाश में अंधेरे से अधिक निग्रहण होता है। यह भी सत्य है कि धूप या कृत्रिम प्रकाश नाइट्रोजन निग्रहण में उसी प्रकार उपयोगी होता है जैसे कि पौदों में प्रकाश जन्य संयोग (Phots Synthesio) क्रिया होती है। प्रकृति में काष्ठिक (cellulose) के रूप में शक्तिवर्धक पदार्थ बहुत बड़ी मात्रा में भूमि को प्राप्त होता रहता है। इसके आक्सीकरण से बहुत बड़ी मात्रा में नाइट्रोजन निग्रहण होता है जिसमें सूर्य का प्रकाश

सहायक है। निस्संदेह मिट्टी को नाइट्रोजन यहीं से मिलती रहती है। और पौदे इस प्रकार नाइट्रोजन प्राप्त कर लेते हैं। कृत्रिम प्रकाश में भी बिलकुल इसी प्रकार नाइट्रोजन निग्रहण पाया गया है।

जब कि कोई शक्ति-पदार्थ मिट्टी में डाला जाता है तो प्रकाश में सदा अंधेरे से अधिक नाइट्रोजन निग्रहण होता है यद्यपि अंधेरे में जीवाणु अधिक होते हैं। निम्नलिखित फल बाहर मिट्टी में तथा तश्तरी में किये हुए अनुसंधानों के अनुसार है।

कार्बोहाइड्रेट द्वारा नाइट्रोजन निग्रहण क्यारी की माप ४ फीट × ४ फीट (४ कीलोग्राम स्टार्च शक्ति-पदार्थ)

(१) धूप में खुला हुआ

तारीख	कुल नाइट्रोजन %	कुल कार्बन %	नमी %	नाइट्रोजन जीवाणु की सूखी मिट्टी में संख्या (प्रति ग्राम लाख में)	कुल जीवाणु की सूखी मिट्टी में संख्या (प्रति ग्राम लाख में)
१३-२-१९३७ (साधारण मिट्टी)	०·०३११	०·३३७४	१·५	१५	१३५
१२-३-१९३७	०·०३३३	१·०६२२	३·०	६५	२००
२७-४-१९३७	०·०३६५	०·८६१८	४·०	४८०	१४००
२४-५-१९३७	०·०३८८	०·७४४२	३·०	७५०	१९५०
१०-६-१९३७	०·०४०७	०·६७०२	३·५	७००	२१००
११-७-१९३७	०·०४२४	०·५५९४	—	७६०	२१५०
२९-९-१९३७	०·०४११	०·४६८४	४·०	३५०	१७५०

प्रति ग्राम कार्बन आक्सीकरण से नाइट्रोजन निग्रहण = १६·५ मिलीग्राम

(२) ढका हुआ

तारीख	कुल नाइट्रोजन %	कुल कार्बन %	नमी %	नाइट्रोजन जीवाणु की सूखी मिट्टी में संख्या (प्रति ग्राम लाख में)	कुल जीवाणु की सूखी मिट्टी में संख्या (प्रति ग्राम लाख में)
१३-२-१९३७ (साधारण मिट्टी)	०·०४२०	०·४३६०	१·५	१५	१३५
१२-३-१९३७	०·०४३७	१·१९२४	४·०	८५	३१५
२७-४-१९३७	०·०४५६	१·०११४	४·०	७००	२०५०
२४-५-१९३७	०·०४६२	०·९२५८	३·५	१०५०	२५५०
१०-६-१९३७	०·०४६६	०·८२०५	४·५	१३००	२८२३
११-७-१९३७	०·०४७२	०·७०३६	४·०	१६५०	३४५०
२७-९-१९३७	०·०४८२	०·४८६४	४·८	१६२६	३५०८

प्रति ग्राम कार्बन आक्सीकरण से नाइट्रोजन निग्रहण (५·९ मिली ग्राम)

बिलकुल इसी प्रकार के फल एक दूसरी क्यारी में शीरा डालने से प्राप्त हुए।

तश्तरियों में अनुसन्धान

१ किलोग्राम मिट्टी + २० ग्राम डेक्सट्रिन

(१) धूप में खुला हुआ

(तापमान ३४०-४०° सेन्टीग्रेड)

तारीख	कुल नाइट्रोजन %	कुल कार्बन %	नाइट्रोजन जीवाणु सूखी मिट्टी में (फीग्राम लाख में)
८-१०-१९३६ (साधारण मिट्टी)	०·०५७०	०·६१५६	५२
१०-१२-१९३६	०·०६०८	१·१९२३	१५२
१८-१-१९३७	०·०६३६	०·९४१४	२८१
४-२-१९३७	०·०६४६	०·७७२८	२०५
२०-२-१९३७	०·०६४०	०·६२९२	१८५
६-३ १९३७	०·०६३६	०·६०८६	११५

प्रति ग्राम कार्बन के आक्सीकर से नाइट्रोजन निग्रहण = १३·०३ मिलीग्राम

(२) काले कपड़े से ढका हुआ

(तापमान (२८°-३१० सेन्टीग्रेड)

तारीख	कुल नाइट्रोजन %	कुल कार्बन %	नाइट्रोजन जीवाणु
८-१०-१९३६ (साधारण मिट्टी)	०·०५७०	०·६१५६	५२
१०-१२-१९३६	०·०५८६	१·२६४४	३२५
१८-१-१९३७	०·०६००	१·१०३२	१५०५
४-२-१९३७	०·०६०४	०·९७७८	१९८५
२० २-१९३७	०·०६०८	०·८४५४	३२५०
६-३-१९३७	०·०६१२	०·६८६८	२८००

प्रति ग्राम कार्बन आक्सीकरण से नाइट्रोजन निग्रहण = ५·९८ मिलीग्राम

इसी प्रकार के फल ग्लूकोज़, फ्रुक्टोज़ तथा अन्य कार्बोहाइड्रेजो के साथ प्रयोग करने से मिले।

उपर्युक्त फलों से यह प्रमाणित होता है कि यद्यपि नाइट्रोजन जीवाणुओं की संख्या तथा कुल जीवाणुओं की संख्या अंधेरे में बहुत अधिक है परन्तु नाइट्रोजन निग्रहण प्रकाश में अंधेरे से दूना होता है। न केवल कार्बन के आक्सीकरण की गति ही बढ़ जाती है वरन् प्रति ग्राम कार्बन आक्सीकरण से प्रकाश में अँधेरे से दूना नाइट्रोजन निग्रहण होता है। नाइट्रोजन जीवाणुओं को प्लेट (Plate) करने से प्रतीत होता है कि अँधेरे में रक्खी मिट्टी के जीवाणुओं की प्रत्येक जीव-समूह (Colony) प्रकाश के जीवाणुओं से कहीं अधिक फैली हुई होती है। इससे यह तात्पर्य निकलता है कि प्रकाश के पड़ने से नाइट्रोजन जीवाणु क्षीण पड़ जाते हैं और उनकी विस्तार शक्ति कम हो जाती है। यदि केवल जीवाणुओं के द्वारा ही नाइट्रोजन निग्रहण होता तो उनके पनपने से अंधेरे में कहीं अधिक निग्रहण होता। परन्तु हमें इसके विपरीत फल प्राप्त हुए हैं।

भिन्न-भिन्न कार्बोहाइड्रेट तथा ग्लसरीन को शक्ति-पदार्थ के रूप में काम में लाने से निम्नलिखित फल प्राप्त हुये।

शक्ति पदार्थ प्रति ग्राम कार्बन के आक्सीकरण से नाइट्रोजन निग्रहण

	प्रकाश में	अँधेरा
ग्लूकोज़ (२ प्रतिशत)	१२·५ मिलीग्राम	६·५ मिलीग्राम
ग्लिसरीन (५ ”)	५·०४ ”	२·७६ ”
स्टार्च (५ ”)	७·५८ ”	३·१३ ”
मेनीटाल (२ ”)	१२·८ ”	६·९ ”
डेक्सट्रीन (२ ”)	१३·०३ ”	५·९८ ”
फ्रुक्टोज़ (२ ”)	११·९ ”	६·८ ”
माल्टोज़ (२ ”)	१२·३ ”	६·५ ”
गेलेक्टोज़ (२ ”)	१२·०९ ”	६·७ ”

शीरे को क्यारियों में शक्ति-पदार्थ के रूप में डालने से निम्नलिखित नाइट्रोजन निग्रहण प्राप्त हुआ।

शीरा प्रति एकड़	प्रकाश में प्रति एकड़ प्राप्त नाइट्रोजन
३ टन	१०० पौंड
१० "	२५० "
२० "	३५० "
३० "	५०० "

पाँच प्रतिशत स्टार्च और ग्लीसरीन डालने से और क्यारी में १० टन शीरा डालने से प्रति ग्राम कार्बन के आक्सीकरण से कम नाइट्रोजन निग्रह हुई क्योंकि मिट्टी में शक्ति पदार्थ अधिक मात्रा में हो गया था।

अलग अलग तापमान पर नाइट्रोजन निग्रहण के फल निम्नलिखित हैं। इनमें ग्लूकोज को शक्ति-पदार्थ के रूप में मिट्टी के साथ मिलाया गया था। एक फ्लास्क धूप में भी रक्खा गया था।

तापमान	नाइट्रोजन-जीवाणु (प्रति ग्राम लाख में)	नाइट्रोजन निग्रहण मिलीग्राम में
(४९° धूप में प्रदर्शित)	२२५	१३·१
अंधेरे में (१०°-१२°)	६०	·०
२५°	१२६०	४·८
३०°	१७५०	६·४
३५°	२०००	७·७६
४०°	९८०	३·९७
४५°	७८०	३·०३
५०°	७५	१·६
६०°	०	·०

ऊपर लिखित फल से यह प्रमाणित होता है कि नाइट्रोजन निग्रहण ३५° में अँधेरे में सबसे अधिक होता है। शीतोष्ण प्रदेशों में यह तापमान २८° पाया गया है। ११° और ६०° पर निग्रहण बिलकुल रुक जाता है। धूप में प्रदर्शित मिट्टी जिसका तापमान ४०°–४४° तक था नाइट्रोजन निग्रहण, अँधेरे में किसी भी तापमान के तापस्थापक में रखी हुई मिट्टी से अधिक है, यद्यपि २५°, ३०°, ३५°, ४०° और ४५° के तापस्थापकों रखी हुई मिट्टियों में जीवाणुओं की संख्या प्रकाश से अधिक है। प्रकाश में नाइट्रोजन निग्रहण ३५° के तापस्थापक की मिट्टी से भी कहीं अधिक है। इससे यह भली प्रकार से प्रमाणित होता है कि प्रकाश में अधिक निग्रहण होने का कारण तापमान अधिक होना नहीं है वरन् प्रकाश स्वयम् निग्रहण में सहायक है।

हमारे अनुसंधानों से यह भी प्रमाणित होता है कि शक्ति-पदार्थों के मिट्टी में डालने से नाइट्रोजन का अनिग्रहण कभी भी नहीं होता। प्राप्य नाइट्रोजन (अमोनिकल तथा नाइट्रिक नाइट्रोजन का योग) और कुल नाइट्रोजन किसी भी अवस्था में शक्ति पदार्थों के डालने से कम नहीं होती। इसके विपरीत प्राप्य नाइट्रोजन तो प्रायः कुछ ही दिनों पश्चात बढ़ जाती है। कभी-कभी कुछ समय के लिए नाइट्रिक नाइट्रोजन की कुछ मात्रा अमोनिकल के रूप में परिणित हो जाती है। परन्तु दोनों का योग कभी भी कम नहीं होता। यह शीतोष्ण प्रदेशों के अनुसंधानों के विपरीत है जहाँ पर शीत जलवायु होने के कारण शक्ति पदार्थ डालने से प्राप्य नाइट्रोजन की मात्रा घट जाती है।

अधिक नाइट्रोजन मात्रा की मिट्टी में निग्रहण

भारतीय भूमि में नाइट्रोजन की मात्रा ठंडे प्रदेशों से कम है (·०४% से ·०५% तक) शीतोष्ण प्रदेशों में नाइट्रोजन की मात्रा ·०८% से ·१% तक होती है। यहाँ पर मिट्टी में नाइट्रोजन की मात्रा शीतोष्ण प्रदेशों के बराबर लाकर कुछ प्रयोग किये गये हैं जिससे कि वह योरोपीय मिट्टी पर किये गये प्रयोगों से मिलाए जा सकें। इन प्रयोगों के करने का कारण यह जानना था कि मिट्टी में नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ाने से निग्रहण पर क्या प्रभाव पड़ता है।

निम्नलिखित प्रयोग में मिट्टी के साथ हिप्यूरिक एसिड नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ाने के लिये मिलाई गई है।

प्रयोग का समय :—१९ अप्रैल १९४१ से ३ जून १९४१ प्रतिदिन ८ घंटे से ९ घंटे तक

(१) ५० ग्राम मिट्टी + ०·२५८७ ग्राम हिप्यूरिक एसिड + २० सी. सी. पानी

कार्बन की प्रतिशत मात्रा—०·८०३६% कार्बन/नाइट्रोजन = १०·०५
नाइट्रोजन " " —०.०८०%

धूप में प्रदर्शित

प्रदर्शन घंटों में	आक्सीकरण रहित कार्बन %	कार्बन का आक्सीकरण %	कुल नाइट्रोजन %	नाइट्रोजन अभिग्रहण %	नाइट्रोजन जीवाणु (फी ग्राम लाख में)
१	२	३	४	५	६
०	०·८०३६	—	०·०८००	—	१७
७५	०·७०३१	०·१००५	०·०७७८	२·७३	—
१७५	०·६१४९	०·१८७७	०·०७४६	६·८१	—
२७५	०·५५६८	०·२४६८	०·०७०२	१२·२५	१२

अँधेरे में रक्खा हुआ

१	२	३	४	५	६
०	०·८०३६	—	०·०८००	—	१७
७५	०·७४३३	०·०६०३	०·०७८५	१·८८	—
१७५	०·६८११	०·१२२५	०·०७६२	३·८८	—
२७५	०·६४१४	०·१६२२	०·०७४९	६·२९	१२

(२) ५० ग्राम मिट्टी + ०·२५५७ ग्राम हिप्यूरिक एसिड + ०·९९५५ ग्राम सुक्रोज + २० सी सी० पानी
नाइट्रोजन " " ०·०८० =
कार्बन/नाइट्रोजन २०
कार्बन की प्रतिशत मात्रा १·६० =

धूप में प्रदर्शित

प्रदर्शन घंटों में	आक्सीकरण रहित कार्बन %	कार्बन का आक्सीकरण %	कुल नाइट्रोजन %	नाइट्रोजन निग्रहण मिलीग्राम	नाइट्रोजन जीवाणु (फी ग्राम लाख में)
१	२	३	४	५	६
०	१·६०००	—	०·०८००	—	१७
७५	१·४३३८	०·१६६२	०·०८१२	७·३२	—
१७५	१·३०२०	०·२९८०	०·०८२०	६·८४	—
२७५	१·१८०४	०·४१९६	०·०८२५	६·१२	५५

अंधेरे में रक्खा हुआ

१	२	३	४	५	६
०	१·६०००	—	०·०८००	—	१४
७५	१·४७१५	०·१२८५	०·०८०५	४·२०	—
१७५	१·३६०४	०·२३९६	०·०८०९	३·७६	—
२७५	१·२७९३	०·३२०७	०·०८११	३·४८	५२८

१. क्या आप जानते हैं कि रूढ़ संख्यायों में सब से बड़ी संख्या ($२^{१२७}$—१) है ? इस संख्या को लूकस महाशय ने १८७७ में बतलाया था और इसका मान १७०, १४१, १८३, ४६०, ४६९, २३१, ७३१, ६८७, ३०३,७१५, ४४४, १०५, ७२७ है।

२. क्या आप अनुमान कर सकते हैं कि यदि आप किसी आदमी को पहिली जनवरी को १ पैसे रोज पर इस वचन के साथ रक्खें कि नित्य आप उसका वेतन दुगना करते जायेंगे, तो ३१ जनवरी को आपको उसे १६,७७७,२१६ रुपये देने पड़ेंगे।

३. क्या आप निम्न संख्या के मान का अनुमान लगा सकते हैं ? ९ (९९) यह तीन संख्याओं से प्रकटनीय सब से बड़ी संख्या है।

क्या आप विश्वास करेंगे, यदि मैं आप से कहूँ कि इस संख्या का मान ३६ करोड़ ९० लाख इकाइयों में होगा ; या यदि मैं कहूँ कि यदि आप प्रति इञ्च में पाँच इकाइयाँ लिखते जायें, तो उपर्युक्त संख्या के मान को लिखने के लिये १,१६४ मील लम्बा कागज़ आवश्यक होगा।

४. एक कहानी कही जाती है कि ऐतिहासिक काल में कोई राजा शतरंज के खेल को देख कर बहुत प्रसन्न हुआ उसने खिलाड़ी को मुँह माँगा इनाम देने का वचन दिया। खिलाड़ी ने कहा कि मैं अनाज के कुछ दाने चाहता हूँ, आप केवल शतरंज के खानों में से पहिले में १ गेहूँ का दाना, दूसरे में २ दाने, तीसरे में चार; इसी तरह प्रत्येक में खाने में दुगने दाने रखते जायें और इतना अनाज मुझे दे दें। राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह कैसा मूर्ख है, इस समय मुझसे सोना, जवाहरात माँग सकता था और मेरी प्रसन्नता का लाभ उठा सकता था। खैर, उसने मंत्री को आज्ञा दी कि इसकी इच्छा पूरी कर दो—शीघ्र ही पता लगा कि सरकारी गोदाम का तो सब गेहूँ समाप्त हो गया, परन्तु अभी तो आधी शतरंज भी नहीं भरी। वह क्या कोई भी समस्त संसार का भी राजा समस्त पृथ्वी पर सैकड़ों वर्ष खेती करवा के भी उस खिलाड़ी की माँग पूरा नहीं कर सकते थे। खिलाड़ी की माँग को पूरा करने के लिये $१+२+२^{२}+२^{३}$............$२^{६३}$ दानों की आवश्यकता होगी।

५. क्या आप जानते हैं कि ९ को किसी भी संख्या से गुणा करने से प्राप्त गुणनफल की इकाइयों

का योगफल ९ या ९ के किसी गुणनफल के बराबर होगा ?

९ × १ = ९
९ × २ = १८;　　　　　　　　१ + ८ = ९
९ × ९ = ८१;　　　　　　　　१ + ८ = ९
९ × ११ = ९९;　　　　　　　९ + ९ = १८
९ × १८ = १६२;　　　　　　१ + ६ + २ = ९
९ × १०१२७ = ९११४३;　९ + ० + १ + ४ + ३ = १८
९ × ५७१८९३४ = ५१४७०४०६;　५ + १ + ४ + ७ + . ४ + ६ = २७

६. क्या निम्नलिखित वर्गफल कुछ आश्चर्य-जनक से नहीं दिखाई देते ?

$११^{२} = १२१$

$१११^{२} = १२३२१$

$११११^{२} = १२३४३२१$

$१११११^{३} = १२३४५४३२१$

$१११११११^{२} = १२३४५६५४३२१$

७. निम्नलिखित संख्या को १ से लेकर १० तक किसी भी गुणक से गुणा करो, तो यही संख्याएँ गुणनफल में फिर से प्रकट होंगी

५२६, ३१५, ७८९, ४७३, ६८४, २१०

प्रश्नोत्तर

६. श्री वी० पी० आर्यन जोधपूर से बालों को घुँघराले व छल्लेदार बनाने का उपाय जानना चाहते हैं।

लोहा या किसी और चीज की सहायता के बिना बालों के घुँघराले य छल्लेदार करना असंभव असंभव सा ही है। कुछ लोग विशेष विधियों से यह काम करते हैं जिनका विज्ञापन आपने देखा होगा। नीचे दिये नुसखे काम में लाये जा सकते हैं परन्तु कहा नहीं जा सकता कि सफलता होगी या नहीं।

(१) सुहागा	६ आउन्स
गोंद	२ ड्राम
गर्म पानी	४ पिंट
स्प्रिट कैम्फार	५ अउन्स

सुहागा व गोंद को गर्म पानी में घोल लो और जब ठंढ़ा हो जाय तो स्प्रिट कैम्फर मिला दो। रात में सोते समय यह घोल बालों में रगड़ कर लगा लेना चाहिये।

(२) गोंद	२ ड्राम
चीनी	२ ड्राम
गुलाब जल	४ आउन्स

घोल कर मिला लो। बालों को इनसे भिगोकर कागज की सहायता से छल्ले बना लो।

७. श्री नरेन्द्रनाथ, झाँसी से मुहासे की दवा जानना चाहते हैं।

इकीथओल	१ ड्राम
जिंक आँक्साइड	२ ,,
स्टार्च	२ ,,
पेट्रोलाटम	२ ,,

रात को खूब गरम पानी में मुँह धोओ। फोड़ने लायक मुँहासों को धीरे से फोड़ दो। फिर मलहम लगाकर सो रहो। सबेरे अच्छे साबुन से मुँह धो डालो। फिर ठन्डे पानी से मुँह धोओ और तौलिये से रगड़ कर पोंछ डालो।

८. श्री रामानन्द जी रामपूर पाउडर बनाने की विधि जानना चाहते हैं।

बारीक (पानी से परिष्कृत) जिंक व्हाइट	१$\frac{3}{4}$ औंस
टैलकम	१$\frac{3}{4}$,,
मैगनीसियम कारबोनेट	१$\frac{3}{4}$,,
इत्रगुलाब	३० बूँद

इत्र थोड़े पाउडर में अच्छी प्रकार मिला कर उसे शेष पाउडर में मिला दो।

९. श्री रमेश प्रसाद फतेहपुर, टिंचर आयोडीन बनाने की विधि जानना चाहते हैं।

आयोडीन	१०० ग्रेन
पोटैसियम आयोडाट	५० ग्रेन
मेथिलेटेड स्प्रिट	१० औंस

अयोडीन व पोटैसियम आयोडाइड मिलाकर कुछ पानी डालो, इस घोल में स्प्रिट डाल दो। यदि मुँह के अन्दर या कटे स्थान में लगाना हो तो रेक्टीफाइड स्पिरिट का प्रयोग करना चाहिये।

१०. श्री गणेशप्रसादजी कानपुर, धूपबत्ती बनाने की विधि पूछते हैं।

कोयला	१ छटाँक
कलमीशोरा	१ तोला
लोबान	४ ,,
चंदन का बुरादा	१ ,,

अलग २ पीस कर गोंद के पानी में हल करो और सींक पर लेप की तरह चढ़ाकर बत्ती बनाओ। गोंद केवल इतना रहे कि कोयला आदि झरे नहीं।

११. श्री गोरखनाथ जी गया से पोमेड बनाने की विधि पूछते हैं।

स्पर्मैसीटी	१ औंस
पेट्रोलाटम (वेसलीन)	४ ,,
रेंडी का तेल	४ ,,
इत्र कैसी (खुशबूदार बबूल)	३० बूँद
इत्र लौंग	१० ,,
इत्र बरगमोट (या नीबू)	१ ड्राम

स्पर्मैसीटी को पिघलाओ, उसमें पेट्रोलाटम और तेल छोड़ो, फिर इत्र छोड़ो, चलाओ, फिर चुपचाप (बिना चलाये ठंढा होने को, इस प्रकार इसमें मोती के समान झलक आ जायेगी।

[पृष्ठ १५० का शेष]

इसी प्रकार अन्य मात्राओं में यही तथा अन्य शक्ति पदार्थ डाल कर नाइट्रोजन निग्रहण तथा अनिग्रह देखा गया। यूरिया भी नाइट्रोजन की मात्रा में वृद्धि करने के लिये प्रयोग किया गया। इन सब से यही तात्पर्य निकला कि नाइट्रोजन निग्रहण नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ा देने के पश्चात भी हो सकता है यदि उसमें ठीक मात्रा में शक्ति-पदार्थ डाला जाय। परन्तु प्रति ग्राम कार्बन के आक्सीकरण से नाइट्रोजन निग्रहण की मात्रा (Efficiency of Nitrogen fixation) घट जाती है। भिन्न प्रकार के कार्बनिक (Organic) अम्लों का भी प्रयोग किया गया। परन्तु उनसे मिट्टी में क्षारता आने के कारण नाइट्रोजन निग्रहण की मात्रा (Efficiency) घट जाती है। घटने की मात्रा अँधेरे से प्रकाश में अधिक होती है। यह भी हो सकता है कि मिट्टी में क्षारता आने के कारण कुछ नाइट्रोजन अमोनियाँ के रूप में उड़ जाती हो परन्तु यहाँ पर भी प्रकाश में जीवाणुओं की संख्या बहुत होने पर भी निग्रहण अँधेरे से दूना ही रहता है।

(क्रमशः)

वैज्ञानिक समाचार

१—भारत में वैज्ञानिक अनुसन्धान :—

हर्ष का विषय है कि पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने "वैज्ञानिक अनुसन्धान" के विभाग को अपनी देख-रेख में लिया है शायद वह किसी भी स्वतन्त्र देश के प्रथम प्रधान मंत्री हैं जिन्होंने वैज्ञानिक अनुसन्धान को इतना महत्व देकर उसे अपनी देख-रेख में लिया है। आशा है कि यह तथ्य यह प्रकट करता है कि हमारे देश में विज्ञान का भविष्य बहुत उज्जवल है।

२—वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसन्धान कौंसिल :—

२५ अगस्त को पण्डित जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसन्धान कौंसिल की एक बैठक हुई।

पण्डित नेहरू ने अपने भाषण में कहा कि शीघ्र ही विभिन्न दिशाओं में वैज्ञानिक अनुसन्धान के लिए हम योजनाएँ बनाने वाले हैं। तब हमें आपकी सलाह की आवश्यकता होगी। पंजाब की साम्प्रदायिक समस्या के बारे में आपने कहा कि हमें इस समस्या के बारे में उत्तेजना पूर्ण रूप से नहीं सोचना, बल्कि इस समस्या का वैज्ञानिक हल निकलना चाहिए।'

कौंसिल ने निम्न योजनाओं के लिए ८३,७०० रुपये का व्यय मंजूर किया—(१) डा० एस० के० बनर्जी, सूर्य्य का वायु मण्डल (२) प्रो० केदारेश्वर बनर्जी कोयले का एक्स किरणों द्वारा अनुसन्धान (३) डा० प्र० च०, गुहा, मैलेरिया की नयी दवाइयों का निर्माण (४) डा० एस० के० के० जथकर, गैसों और वाष्पों में अति सूक्ष्म ध्वनियों की गति (५) डा० जा० च० घोष, औद्योगिक Catalyots का उत्पादन (६) श्री० जी० सी० मित्र पोटैशियम परमैंगनेट का उत्पादन (७) कर्नल शान्ति स्वरूप भटनागर कीटाणुनाशकों का उत्पादन (८) कर्नल आर० एन० चोपड़ा, उपचारक पौधों की खेती और उन्नति।

कौंसिल ने इंडियन एकाडेमी आफ सांइस की अनुसन्धान इंस्टीट्यूट के लिए ३ लाख रुपया मंजूर किया।। यह रकम सर च० वे० रमन की देख-रेख में 'भारतीय खनिज पदार्थों के भौतिक तथा रासायनिक निरीक्षण' पर अनुसन्धान किया जायेगा।

३—पण्डित जवाहर नेहरू नेशनल इंस्टीट्यूट आफ सांइस, इंडिया के सभ्य निर्वाचित किये गये हैं।

४—प्रयाग विश्वविद्यालय में भौतिक विभाग के अध्यापक डाक्टर अवध बिहारी भाटिया को ब्रिस्टल विश्वविद्यालय में भौतिक विज्ञान पर अनुसन्धान करने के लिए १८५१ की प्रदर्शिनी छात्रवृत्ति दी गयी है।

५—केन्द्रीय मेडिकल इंस्टीट्यूट :—शीघ्र ही भारतवर्ष के केन्द्रीय मेडिकल इस्टीट्यूट नामक उपयोगी संस्था स्थापित की जायेगी। यह इंस्टीट्यूट अमरीका की प्रसिद्ध जान हापकिन्स मेडिकल कालेज के सदृश होगी और इसकी स्थिति के लिए दिल्ली को चुना गया है।

विज्ञान-परिषद्की प्रकाशित प्राप्य पुस्तकोंकी सम्पूर्ण सूची

१—विज्ञान प्रवेशिका, भाग १—विज्ञान की प्रारम्भिक बातें सीखने का सबसे उत्तम साधन—ले० श्री रामदास गौड़ एम० ए० और प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी० ;

२—चुम्बक—हाईस्कूल में पढ़ाने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी०; सजि०; ।।≈)

३—मनोरञ्जक रसायन—इसमें रसायन विज्ञान उपन्यासकी तरह रोचक बना दिया गया है, सबके पढ़ने योग्य है—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम० एस-सी० ; १।।),

४—सूर्य-सिद्धान्त—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान-भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखनेका सबसे सुलभ उपाय—पृष्ठ संख्या १२१४ ; १४० चित्र तथा नकशे—ले० श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; सजिल्द; दो भागोंमें; मूल्य ६) । इस भाष्यपर लेखकको हिन्दी साहित्य सम्मेलनका १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है ।

५—वैज्ञानिक परिमाण—विज्ञानकी विविध शाखाओंकी इकाइयोंकी सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहालकरण सेठी डी० एस-सी०; ।।।),

६—समीकरण मीमांसा—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १।।) द्वितीय भाग ।।≈),

७—निर्णायक (डिटर्मिनेंट्स)—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमती प्रसादअग्निहोत्री बी० एस सी० ; ।),

८—बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित—इंटरमीडियेटके गणितके विद्यार्थियोंके लिये—ले० डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी० ; १।),

९—गुरुदेवके साथ यात्रा—डाक्टर जे० सी० बोसीकी यात्राओंका लोकप्रिय वर्णन ; ।=),

१०—केदार-बद्री यात्रा—केदारनाथ और बद्रीनाथके यात्रियोंके लिये उपयोगी; ।),

११—वर्षा और वनस्पति—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शङ्करराव जोशी; ।),

१२—मनुष्यका आहार—कौन-सा आहार सर्वोत्तम है—ले० वैद्य गोपीनाथ गुप्त; ।≈),

१३—सुवर्णकारी—क्रियात्मक—ले० श्री गंगाशंकर पचौली; ।);

१४—रसायन इतिहास—इंटरमीडियेटके विद्यार्थियोंके योग्य—ले० डा० आत्माराम डी० एस-सी०; ।।।),

१५—विज्ञानका रजत-जयन्ती अंक—विज्ञान परिषद के २५ वर्षका इतिहास तथा विशेष लेखोंका संग्रह; १)

१६—फल-संरक्षण—दूसरा परिवर्धित संस्करण-फलोंकी डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार आदि बनानेकी अपूर्व पुस्तक; २१२ पृष्ठ; २५ चित्र—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्र-नारायण सिंह एम० एस-सी०; २),

१७—व्यङ्ग-चित्रण—(कार्टून बनानेकी विद्या)—ले० एल० ए० डाउस्ट ; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी, एम० ए०; १७५ पृष्ठ; सैकड़ों चित्र, सजिल्द; १।।)

१८—मिट्टीके बरतन—चीनी मिट्टीके बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा ; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र, सजिल्द; १।।),

१९—वायुमंडल—ऊपरी वायुमंडलका सरल वर्णन—ले० डाक्टर के० बी० माथुर; १८६ पृष्ठ; २५ चित्र; सजिल्द; १।।),

Reg. No. A 372

२०—लकड़ी पर पॉलिश—पॉलिश करनेके [illegible] पुराने सभी ढंगोंका ब्योरेवार वर्णन । इस [illegible] पॉलिश करना सीख सकता है—ले० डा० [illegible] प्रसाद और श्रीरामयत्न भटनागर, एम० ए०, २१८ पृष्ठ; ३१ चित्र, सजिल्द; १॥),

२१—उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश; आकार बड़ा विज्ञानके बराबर २६० पृष्ठ ; २००० नुसखे, १०० चित्र; एक-एक नुसखेसे सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं या हज़ारो रुपये कमाये जा सकते हैं। प्रत्येक गृहस्थके लिये उपयोगी ; मूल्य अजिल्द २) सजिल्द २॥),

२२—कलम-पैबन्द—ले० श्री शंकरराव जोशी; २०० पृष्ठ; ४० चित्र; मालियों, मालिकों और कृषकोंके लिये उपयोगी; सजिल्द; १॥),

२३—जिल्दसाज़ी—क्रियात्मक और ब्योरेवार । इससे सभी जिल्दसाज़ी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०; १८० पृष्ठ, ६२ चित्र; सजिल्द १॥),

२४—त्रिफला—दूसरा परिवर्धित संस्करण-प्रत्येक वैद्य और गृहस्थके लिये—ले० श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार, २१६ पृष्ठ; ३ चित्र, एक रङ्गीन; सजिल्द २),

यह पुस्तक गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय, की १३ श्रेणी के लिए द्रव्यगुणके स्वाध्याय पुस्तकके रूपमें शिक्षापटलमें स्वीकृत हो चुकी है।'

२५—तैरना—तैरना सीखने और डूबते हुए लोगोंको बचाने की रीति अच्छी तरह समझायी गयी है। ले० डाक्टर गोरखप्रसाद पृष्ठ १०४ मूल्य १),

२६—अंजीर—लेखक श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार-अंजीर का विशद वर्णन और उपयोग करनेकी रीति । पृष्ठ ४२, दो चित्र, मूल्य ॥),

यह पुस्तक भी गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालयके शिक्षा पटलमें स्वीकृत हो चुकी है।

२७—सरल विज्ञान-सागर प्रथम भाग—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद। बड़ी सरल और रोचक भाषा में जंतुओंके विचित्र संसार, पेड़ पौधों की अचरज-भरी दुनिया, सूर्य, चन्द्र और तारोंकी [illegible] कथा तथा भारतीय ज्योतिषके [illegible] इतिहास का वर्णन है। विज्ञानके आकार के [illegible] पृष्ठ और ३२० चित्रोंसे सजे हुए ग्रन्थ की शोभा [illegible] ही बनती है। सजिल्द मूल्य ६), मिल रहे हैं।

२८—वायुमण्डलकी सूक्ष्म हवाएँ—ले० डा० सन्तप्रसाद टंडन, डी० फिल० मूल्य ॥)

[illegible] और स्वास्थ्य—ले० श्री डा० ओंकारनाथ परती, एम० एस-सी०, डा० [illegible]

हमारे यहाँ नीचे लिखी पुस्तकें भी मिलती हैं:—

१—विज्ञान हस्तामलक—ले० [illegible] रामदास गौड़ एम० ए० भारतीय भाषाओंमें अपने ढंगका यह निराला ग्रंथ है। इसमें सीधी सादी भाषामें अठारह विज्ञानोंकी रोचक कहानी है। सुन्दर सादे और रंगीन पौने दो सौ चित्रोंसे सुसज्जित है, [illegible] अद्भुत बातोंका मनोमोहक वर्णन है, [illegible] भी पढ़ाये जानेवाले विषयोंका समावेश है, अकेली यह एक पुस्तक विज्ञानकी एक समूची लाइब्रेरी है एक ही ग्रंथमें विज्ञानका एक विश्वविद्यालय है। मूल्य ६)

२—सौर-परिवार—लेखक डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० आधुनिक ज्योतिष पर अनोखी पुस्तक ७७६ पृष्ठ, ५८७ चित्र (जिनमें ११ रंगीन हैं) मूल्य १२) इस पुस्तक पर काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा से रेडिचे पदक तथा २००) का छन्नूलाल पारितोषिक

३—भारतीय वैज्ञानिक—१२ भारतीय वैज्ञानिकोंकी जीवनियां—ले० श्री श्याम नारायण कपूर, सचित्र ३८० पृष्ठ; सजिल्द; मूल्य २॥) अजिल्द २)

४—वैक्युम-ब्रेक—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा। यह पुस्तक रेलवेमें काम करने वाले फ़िटरों इंजन-ड्राइवरों, फ़ायरमैनों और कैरेज एग्ज़ामिनरोंके लिये अत्यन्त उपयोगी है। १६० पृष्ठ; ३१ चित्र जिनमें कई रंगीन हैं, २),

विज्ञान-परिषद्, बेली रोड, इलाहाबाद

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।